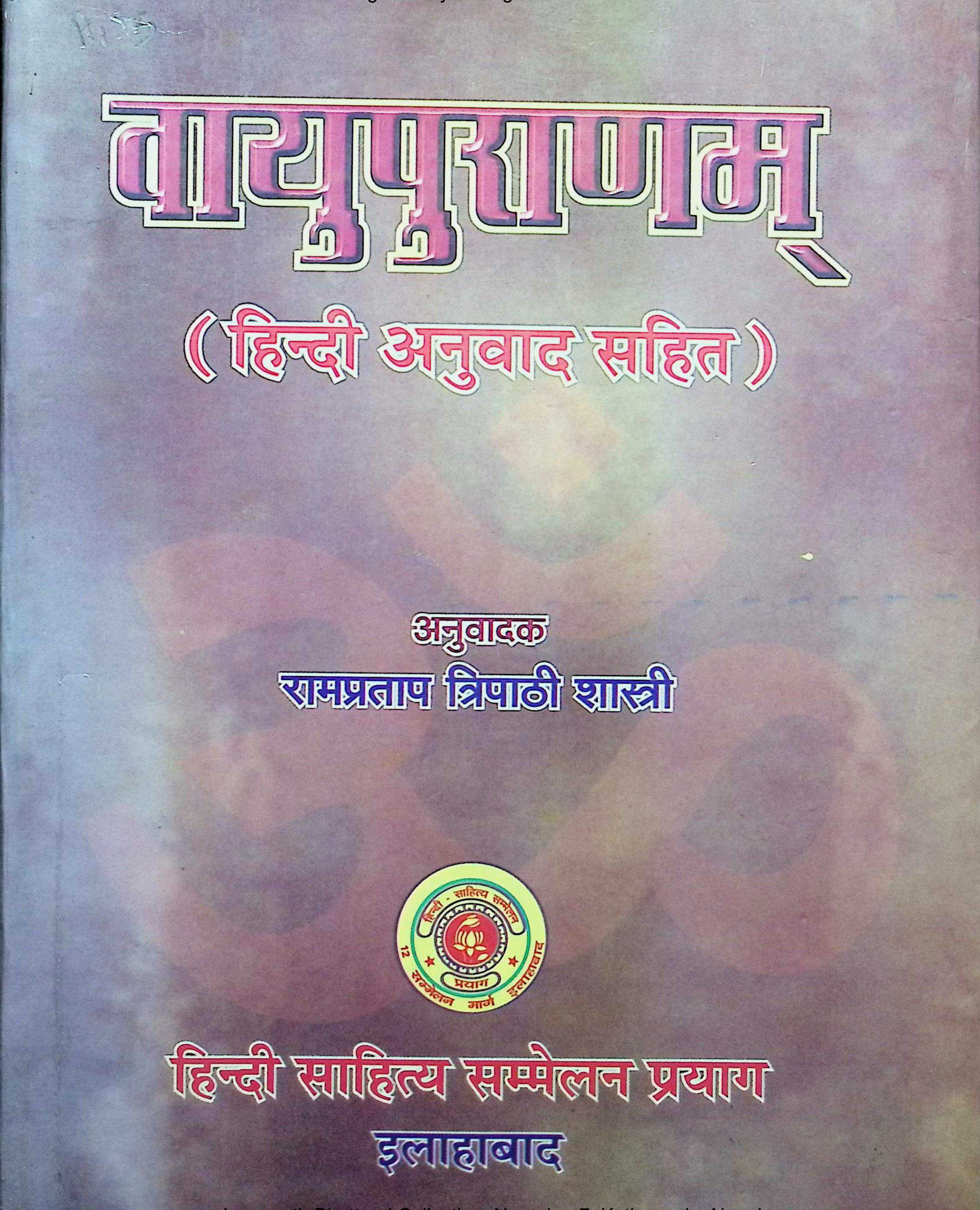

वायुपुराणम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
इलाहाबाद

रामेश्वर शर्मा

वायुपुराणम्

महामुनिश्रीमद्व्यासप्रणीतं

वायुपुराणम्

[हिन्दीअनुवादसहितम्]

◆

अनुवादक

रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

शक १९२७ : संवत् २०६२ : सन् २००५

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

प्रकाशक

विभूति मिश्र

प्रधानमन्त्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

⊙

प्रकाशन वर्ष : सन् २००५

संस्करण : तृतीय

प्रतियाँ : २२००

मूल्य : ४५० रुपये

⊙

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

१३, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

प्रकाशकीय

नमः पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे।।

सम्मेलन के प्रतिष्ठापक स्वर्गीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशन की योजना बनायी थी, जिससे भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मूलाधार पुराण सुगमता से घर-घर पहुँच सकें तथा उनके अध्ययन और अनुशीलन से सभी लोग लाभान्वित हों। तदनुसार टण्डन जी के समय में ही मत्स्य एवं वायुपुराण का केवल हिन्दी अनुवाद मात्र सम्मेलन से प्रकाशित हुआ था, जिनकी सारी प्रतियाँ अब समाप्त हैं। कुछ समय के पश्चात् पुनः पुराण प्रकाशन योजना चालू की गयी तो विद्वानों के सुझाव पर पाठान्तर के साथ मूल श्लोक और अनुवाद सहित पुराणों के प्रकाशन का निश्चय किया गया। तदनुसार ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण और अग्निपुराणों का मूल श्लोक के साथ हिन्दी अनुवाद सम्मेलन से प्रकाशित हुआ, जिसका प्रबुद्ध पाठकों ने अत्यधिक स्वागत किया। इससे प्रोत्साहित होकर सम्मेलन ने मत्स्य, वायु एवं बृहन्नारदीय पुराण को भी श्लोक एवं उसके अनुवाद के साथ छापने की योजना बनायी। इन तीनों में मुद्रित वायुपुराण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

पहले वायुपुराण, वाङ्मयमर्मज्ञ विद्वानों के कथनानुसार विशालकाय ग्रन्थ था, जिसका एक भाग शिवपुराण के रूप में परिवर्तित हो गया है। संप्रति वायुपुराण में बारह सहस्र श्लोक ही पाये जाते हैं। महाभारत और हरिवंशपुराण में इसका उल्लेख आता है। महाकवि बाणभट्ट (६०० ई०) ने अपने ग्राम में वायुपुराण के पाठ का वर्णन किया है। इसमें बौद्ध और जैन धर्म का उल्लेख नहीं है, पर गुप्त साम्राज्य का उल्लेख है। यही नहीं, इसमें गया माहात्म्य बहुत विशद रूप से वर्णित है। संगीत विषय पर भी एक अध्याय है। 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च'—इत्यादि सुप्रसिद्ध पुराण लक्षण इसमें पूर्णतया घटित होते हैं।

इस पुराण का अनुवाद स्वर्गीय पण्डित रामप्रताप त्रिपाठी ने किया था। उसी को सम्मेलन ने इस संस्करण में स्थान दिया है। इसमें मूल श्लोक आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित 'वायुपुराण' से लिये गये हैं। किन्तु मूल श्लोक तथा यत्र-तत्र हिन्दी अनुवाद में भी पण्डित श्री तारिणीश झा ने सपरिश्रम संशोधन किया है। अतएव मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इस संस्करण को प्रूफ संशोधन द्वारा दोषमुक्त करने का कार्य श्री रमेशकुमार उपाध्याय ने किया है, उनके प्रति भी मेरा साधुवाद। शुभमस्तु।

रामनवमी
संवत् २०६२ वि०

विभूति मिश्र
प्रधानमन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

विषयानुक्रमणिका

अध्यायक्रमः	शीर्षकम्	पृष्ठ संख्या
	आमुख	९
१	अनुक्रमणिका	२५
२	द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणम्	४०
३	प्रजापतिसृष्टिकथनम्	४३
४	सृष्टिप्रकरणम्	४७
५	सृष्टिप्रकरणम्	५४
६	सृष्टिप्रकरणम्	५९
७	प्रतिसंधिकीर्तनम्	६६
८	चतुराश्रमविभागः	७३
९	देवादिसृष्टिकथनम्	९०
१०	मन्वन्तरवर्णनम्	९९
११	पाशुपतयोगः	१०७
१२	योगोपसर्गकथनम्	११२
१३	योगैश्वर्यनिरूपणम्	११६
१४	पाशुपतयोगनिरूपणम्	११८
१५	पाशुपतयोगनिरूपणम्	१२२
१६	शौचाचारलक्षणनिरूपणम्	१२३
१७	परमाश्रमविधिकथनम्	१२६
१८	यतिप्रायश्चित्तविधिकथनम्	१२७
१९	अरिष्टिनिरूपणम्	१२९
२०	ओंकारप्राप्तिलक्षणनिरूपणम्	१३३
२१	कल्पनिरूपणम्	१३७
२२	कल्पसंख्यानिरूपणम्	१४४
२३	माहेश्वरावतारयोगः	१४७
२४	शार्वस्तवः	१६५
२५	मधुकैटभोत्पत्तिविनाशवर्णनम्	१७९
२६	स्वरोत्पत्तिनिरूपणम्	१८७
२७	महादेवतनुवर्णनम्	१९२
२८	ऋषिवंशानुकीर्तनम्	१९७
२९	अग्निवंशवर्णनम्	२०१
३०	दक्षशापवर्णनम्	२०५
३१	देववंशवर्णनम्	२३२
३२	युगधर्माः	२३८
३३	स्वायंभुववंशवर्णनम्	२४४
३४	जम्बूद्वीपवर्णनम्	२५०
३५	जम्बूद्वीपवर्णनम्	२५८
३६	भुवनविन्यासः	२६२
३७	भुवनविन्यासः	२६५
३८	भुवनविन्यासः	२६८
३९	भुवनविन्यासः	२७५
४०	भुवनविन्यासः	२८०
४१	भुवनविन्यासः	२८३
४२	भुवनविन्यासः	२९०
४३	भुवनविन्यासः	२९७
४४	भुवनविन्यासः	३००
४५	भुवनविन्यासः	३०३
४६	भुवनविन्यासः	३१४
४७	भुवनविन्यासः	३१७
४८	भुवनविन्यासः	३२४
४९	भुवनविन्यासः	३२८
५०	ज्योतिष्प्रचारः	३४४
५१	ज्योतिष्प्रचारः	३६४
५२	ज्योतिष्प्रचारः	३७१
५३	ज्योतिःसंनिवेशः	३८०
५४	नीलकण्ठस्तवः	३९१

अध्यायक्रमः	शीर्षकम्	पृष्ठ संख्या
५५	लिङ्गोद्भवस्तवः	४०२
५६	पितृवर्णनम्	४०९
५७	यज्ञवर्णनम्	४१८
५८	चतुर्युगाख्यानम्	४३०
५९	ऋषिलक्षणम्	४४१
६०	महास्थानतीर्थवर्णनम्	४५५
६१	प्रजापतिवंशानुकीर्तनम्	४६३
६२	पृथिवीदोहनम्	५८१
६३	पृथुवंशानुकीर्तनम्	५००
६४	वैवस्वतसर्गवर्णनम्	५०५
६५	प्रजापतिवंशानुकीर्तनम्	५०९
६६	कश्यपीयप्रजासर्गः	५२४
६७	कश्यपीयप्रजासर्गः	५३९
६८	कश्यपीयप्रजासर्गः	५५२
६९	कश्यपीयप्रजासर्गः	५५५
७०	ऋषिवंशानुकीर्तनम्	५८९
७१	श्राद्धप्रक्रियारम्भः	५९८
७२	श्राद्धकल्पः	६०६
७३	श्राद्धकल्पः	६११
७४	श्राद्धकल्पः	६१७
७५	श्राद्धकल्पः	६२१
७६	श्राद्धकल्पः	६२८
७७	श्राद्धकल्पः	६३३
७८	श्राद्धकल्पः	६४५
७९	श्राद्धकल्पः	६५२
८०	श्राद्धकल्पे दानफलम्	६६१
८१	श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलम्	६६७
८२	श्राद्धकल्पे नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलम्	६७०
८३	श्राद्धकल्पे भिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्य-विशेषगयाश्राद्धादिफलब्राह्मण-परीक्षादिकथनम्	६७२
८४	श्राद्धकल्पे वरुणवंशवर्णनम्	६८५
८५	श्राद्धकल्पे वैवस्वत-मनुवंशवर्णनम्	६९३
८६	वैवस्वतमनुवंश-गान्धर्वमूर्च्छनाकथनम्	६९६
८७	गीतालंकारनिर्देशः	७०२
८८	वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्	७०६
८९	वैवस्वतमनुवंशकीर्तनम्	७२६
९०	सोमजन्मविवरणम्	७२८
९१	चन्द्रवंशकीर्तनम्	७३३
९२	चन्द्रवंशकीर्तनम्	७४४
९३	चन्द्रवंशवर्णनम्	७५४
९४	कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणम्	७६५
९५	ज्यामघवृत्तान्तकथनम्	७७०
९६	विष्णुवंशवर्णनम्	७७५
९७	विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्	७९७
९८	विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्	८१६
९९	तुर्वस्वादिवंशवर्णनम्	८२८
१००	मन्वन्तरनिसर्गवर्णनम्	८६८
१०१	भूर्लोकादिव्यवस्थावर्णनम्	८९०
१०२	प्रतिसर्गवर्णनम्	९२३
१०३	सृष्टिवर्णनम्	९३६
१०४	व्याससंशयापनोदनम्	९४३
१०५	गयामाहात्म्यम्	९५३
१०६	गयामाहात्म्यम्	९५९
१०७	गयामाहात्म्यम्	९६८
१०८	गयामाहात्म्यम्	९७५
१०९	गयामाहात्म्यम्	९८६
११०	गयामाहात्म्यम्	९९२
१११	गयामाहात्म्यम्	९९९
११२	गयामाहात्म्यम्	१००९

आमुख

भारतीय जीवन-साहित्य के शृंगार 'पुराण' अतीत को वर्तमान के साथ जोड़नेवाली स्वर्णिम शृंखला हैं। विश्व साहित्य की अक्षय निधि में अठारह पुराण सर्वश्रेष्ठ अठारह रत्न हैं। प्रतीकवाद, परोक्षवाद और रहस्यवाद से अनुप्राणित ये पुराण हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन के दर्पण हैं। अपनी सरल-सुबोध भाषा और प्रबुद्ध कथानक शैली के कारण अतिप्राचीन होते हुए भी नवीनता और स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं।

'पुराण' यह एक पारिभाषिक शब्द है जिससे यह सहज ही व्यक्त होता है कि पुराण उन ग्रन्थों को कहते हैं, जिनमें सर्ग (ईश्वरीय कृति), प्रतिसर्ग (सृष्टि और प्रलय), वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित–इन पाँच विषयों का समावेश रहता है। पुराणों में परस्पर शैली और भाषा का सामंजस्य होते हुए भी वर्ण्य-विषयों की विशेषता से वैषम्य भी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पुराण, उपपुराण और महापुराण संज्ञाओं से स्वयं विभाजित हैं।

पुराणों की प्राचीनता : इतिहास के आलोक में

हमारी भारतीय मान्यता पुराणों को वेदों की प्रतिच्छाया सिद्ध करती हुई उन्हें अतिप्राचीन मानती है। अथर्ववेद (७१। ७। २४) के अनुसार यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए हैं। बृहदारण्यक (२। ४। १०) का मत है कि गीली लकड़ी के संयोग से जलती हुई आग में से जैसे अलग-अलग धुआँ निकलता रहता है उसी प्रकार इस महाभूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुख्यान निकले हैं। छान्दोग्योपनिषद् के मत से इतिहास और पुराण वेद निकाय में पाँचवें वेद हैं।

पुराणों के पूर्व रूप

पुराणों की कहानी स्वयं पुराण भी कहते हैं। प्रायः सभी पुराण यह स्वीकार करते हैं कि 'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्, अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।' अर्थात् पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे पश्चात् ब्रह्मा के मुख से वेद निकले। इसका मूल तात्पर्य वृद्ध जनों से, श्रुत कथाओं और मनोरंजक कहानियों से है।

पुराणों के अध्ययन से भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुराण वस्तुतः वैदिक कथाओं, जनश्रुतियों एवं सृष्टि, विसृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, आचारवर्णन, राजवंश वर्णन के प्रतीक हैं। पौराणिक सूतों के कथनानुसार पुराण तत्त्वज्ञ भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की रचना की। पुराणों की इस स्वीकृति से सिद्ध होता है कि वेदों की भाँति इतस्ततः बिखरे हुए पुराणों को भी संग्रह करके व्यास जी ने अपनी मान्यता के अनुसार उनका संपादन किया। वेद की भाँति आदिकाल में 'पुराणमेकमेवासीत्' अर्थात् पुराण एक ही था। कालान्तर में पुराणों का विभाजन सूतों द्वारा हुआ।

पुराणों में पाठान्तर और प्रक्षेप

वेदव्यास द्वारा संपादित पुराण की कथाओं का प्रचार तात्कालिक सूतों द्वारा हुआ। सूत एक जाति या संप्रदाय था जो वंशपरम्परा के अनुसार घूम-घूमकर कथाओं द्वारा समाज का संशोधन एवं मनोरंजन करता था। विभिन्न सूतों के मुख से उद्‌गीर्ण पौराणिक कथाओं में कालक्रमानुसार पाठांतर और प्रक्षेप का होना स्वतःसिद्ध है। कालांतर में स्वार्थनिरत व्यासों और सूतों ने अपनी-अपनी मान्यता का समावेश किया। धीरे-धीरे पुराण तिल के ताड़ बनाये गये। उनकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ उत्पन्न हुईं। राजवंशों के वर्णन में क्रमभंग दोष और वर्णनात्मक विवर्तन उत्पन्न हुए। सांप्रदायिक घृणा, द्वेष की प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हुईं। पाठांतर और प्रक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये, फिर भी पुराणों की मौलिकता और वास्तविकता समूल नष्ट न हुई; हाँ, असमीक्ष्यकारी पाठकों के लिए भ्रम और विवाद का हेतु उत्पन्न हो गया।

पुराणों का निर्माण-काल

भावनामूलक शोध-प्रणाली से व्यतिरिक्त यदि हम तर्क और बुद्धिवाद का सहारा लेकर पुराण रचना-काल पर विचार करते हैं तो प्रथम हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि पुराणों की रचना विभिन्न समय और वातावरण में हुई है। आधुनिक आलोचक और इतिहासकार पुराणों की रचना का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी भी मानने में संकोच करते हैं। कुछ पुराणों को तो एकदम अर्वाचीन भी मानते हैं। यह निर्णय स्थूलतया उन घटनाओं को पढ़कर किया जाता है जो वैदिककाल से लेकर यवनकाल किंवा मरहठा काल और अंग्रेजी राज से संबद्ध हैं। पुराणों की विशृंखलता और अनैतिहासिकता प्रकट करने में दूसरा प्रमाण वंश वर्णन में परस्पर अनुक्रम-भेद है।

इसमें संदेह नहीं कि पुराणों में कथानकों का परस्पर सामंजस्य और वैषम्य विचित्र रूप से है, साथ ही, काल-भेद भी पाया जाता है। किंतु जब तर्क की कसौटी पर अन्वीक्षणशक्ति से विचार करते हैं तो इन कारणों से पुराणों की प्राचीनता और ऐतिहासिकता कलंकित इसलिए नहीं होती कि बिखरे हुए पुराण-कथानकों को व्यास जी ने मूलसंहिता का रूप दिया, फिर उसे अपने शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया। रोमहर्षण से उनके शिष्य शांशपायन आदि ने अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार विभाजन किया और फिर सूतों द्वारा उन कथाओं का प्रचार मनमाने ढंग से होने लगा। शिष्य-प्रशिष्य की इस परम्परा ने पुराण कथाओं को अनियन्त्रित और अमर्यादित बना दिया। भविष्यत् की कथाओं के वर्णन में आपाततः संदेह करना निर्मूल है। यह सही हो सकता है कि भविष्य की सांकेतिक घटनाओं को अतिरंजित और विकसित बाद में बना दिया गया हो किंतु भविष्यत् की कथाओं पर पुराणों की प्राचीनता पर आक्षेप उचित नहीं है। भविष्य में होनेवाले कल्कि अवतार और उससे पूर्व होनेवाली समाज की स्थिति के वर्णन की सत्यता से सहसा इनकार इसलिए नहीं किया जा सकता कि घटनाओं की सत्यता उत्तरोत्तर प्रमाणित होती जा रही है।

कुछ भी हो वायुपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद उन्हें महाभारतकालीन मानना अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

पुराणों की उपयोगिता

मानव जीवन को हर पहलू से सँवारने में पुराणों ने बहुत बड़ा योग दिया है। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुराण, मुमूर्षु समाज को प्रेरणा शक्ति, शिथिल एवं असंयत राष्ट्र को जागृति प्रदान

करनेवाले सतत प्रीतिशिखावाही स्रोत हैं। इनमें हमारे जातीय जीवन का जीवित अभिमान एवं राष्ट्रीय जीवन का उदात्त उत्साह निहित है।

लोकचेतना, लोकरुचि और लोकहित की भावना से प्रेरित होकर ही पुराणों का प्रचलन किया गया है। पुराण हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए एक अनुपम देन हैं। पौराणिक आदर्शों को अपनाकर चलनेवाला समाज सदैव प्रशस्त और जागरूक रहा है। ऐसे समाज के समक्ष उसका आत्मगौरव और देश सबसे महान् सिद्ध हुआ है। समाज के अन्तर्बाह्य कलेवर को शुद्ध बनाकर सत्यं शिवं सुन्दरम् के निकट पहुँचाने की सामर्थ्य पुराणों में अब भी है। किन्तु उनके उपयोग की कला सीखनी चाहिए।

प्राचीन और अर्वाचीन को एक ही धरातल पर रखते हुए पुराण समाज के अन्तःकरण के अभावों को समझने और उन्हें दूर करने में बहुत सफल हुए हैं। भारतीय संस्कृति में श्रुतियों, स्मृतियों की भाँति पुराणों की उपादेयता बनी हुई है। वेदों के मर्म समझने के लिए पूर्वाचार्यों ने इतिहास, पुराण पढ़ने की सलाह दी है। सारांश यह कि जब तक पुराणों का अध्ययन नहीं किया जाता तब तक भारतीय अध्ययन अधूरा ही माना जाता है।

वायुपुराण

पुराणों को राष्ट्रीय जीवन का आधार और सांस्कृतिक इतिहास की शृंखला समझकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उनके अनुवाद की जो स्तुत्य योजना बनायी है उसी के अन्तर्गत वायुपुराण का यह हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

वायुपुराण भारतीय जीवन और सभ्यता के क्रमिक विकास की कहानी है। अन्य पुराणों की भाँति इसमें भावुकता की प्रधानता न होकर तर्क का प्राधान्य है। इस पुराण की मुखर वाणी और वर्णन शैली में वैदिककाल से लेकर बौद्धकाल तक के भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष का अभिमान एवं गौरव निहित है।

वायुपुराण की प्राचीनता

वायुपुराण के राजवंश-वर्णन प्रसंग में अध्याय ९९, श्लोक २५८ में शांशपायन जी ने अपने समकालीन राजा अधिसामकृष्ण का उल्लेख किया है, जो जनमेजय के पौत्र थे और जिनका समय महाभारत युद्ध से प्रायः दो सौ वर्ष बाद माना जाता है। इस मान्यता के अनुसार वायुपुराण का समय महाभारतकाल से दो सौ वर्ष बाद का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त वायुपुराण की शैली भी प्राचीनता का साक्ष्य दे रही है। जो अंश बाद में प्रक्षिप्त हुए हैं उनकी शैली और अध्ययनपाठ से स्पष्टतया नवीनता प्रकट होती है।

नाम, संख्या-क्रम-निरूपण

पुराणों के नाम, संख्या और क्रम में मतभेद है। नाम-संख्या आदि प्रतिपादक पुराण ही इस संबंध में एक-दूसरे से असंगति रखते हैं। विष्णुपुराण में दिये गये पुराणों के नामक्रम के अनुसार ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड ऐसा क्रम है। किन्तु इस नामक्रम में वायुपुराण का कहीं भी निर्देश नहीं है। समालोचकों की दृष्टि से वायुपुराण शिवपुराण के अन्तर्गत है या उसी का विकल्प रूप है। बँगला विश्वकोशकार ने दोनों नाम से एक ही शिवपुराण की विषय-

सूची दी है। किन्तु आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली में छपे हुए वायुपुराण की विषय-सूची शिवपुराण के अन्तर्गत दी हुई वायवीय संहिता की विषय-सूची से भिन्न है। इसलिए शिवपुराण के अन्तर्गत वायुपुराण को मानना ठीक नहीं है। हाँ, शिवपुराण का विकल्प रूप मानने से वायुपुराण की गणना अष्टादश पुराणों की क्रमसंख्या सूची में की जा सकती है।

मत्स्यपुराण में दी हुई पुराणों की उपक्रमणिका में शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का जो उल्लेख है, उससे वायुपुराण के नाम पड़ने का कारण स्पष्ट होने के साथ ही उसका पुराण होना भी सिद्ध होता है।

पुराणों के आन्तरिक रहस्य

पुराणों को वेदों के साथ प्रादुर्भूत ईश्वरीय निःश्वास तर्कहीन श्रद्धा अवश्य स्वीकार करती है। किन्तु बुद्धिवादी तार्किक अपनी अन्वीक्षण शक्ति द्वारा जब वेद और पुराण का तुलनात्मक अध्ययन करता है तो उसे भी पुराणों के आन्तरिक रहस्य और वेदों के साथ पुराणों के सम्बन्ध स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत (१।४।२८) में लिखा है कि 'भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः' अर्थात् पुराणों में भारत के इतिहास के व्याज से वेदों का रहस्य खोला गया है। इसी आशय को स्वीकार करते हुए महाभारत में भी स्पष्ट कर दिया गया है कि 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' अर्थात् इतिहास पुराणों से वेदों का मर्म जाना जाता है।

यदि हम वेदों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं, तो सचमुच उनमें ऐतिहासिक सामग्री के स्थान पर भूगोल और खगोल का ही प्रमुख वर्णन है। वेदों में जो ऐतिहासिक सामग्री बतायी जाती है वह अधिकतर पुराणों के कारण ही वस्तुतः वेदों के चमत्कारपूर्ण आलंकारिक वर्णनों को पुराणकारों ने ऐतिहासिक पुरुषों और घटनाओं के साथ मिलाकर उनका रहस्य उस साधारण जनता तक पहुँचाया जो वेदों की सूक्ष्म, गंभीर, रहस्यमयी बातें नहीं समझ सकती थीं और जो 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा' की व्यवस्था से वेद पढ़ने और सुनने के अधिकारी नहीं थे।

इस चातुर्य का परिणाम वेदों के हक में बुरा सिद्ध हुआ। लोगों में यह भ्रान्त धारणा समा गयी कि वेदों में पुरूरवा, नहुष, ययाति, गंगा, यमुना, व्रज, अयोध्या आदि वंशों, नदियों, स्थानों और युद्धों का वर्णन है। उदाहरण के लिए विश्वामित्र और मेनका वेद के चमत्कारिक पदार्थ हैं। इधर दुष्यन्त और शकुन्तला पौराणिक मनुष्य हैं। पर दोनों को मिलाने से भरत को इन्द्र के यहाँ जाना पड़ा। इन्द्र भी आकाशीय चमत्कारिक पदार्थ हैं। ऐसी स्थिति में भरत और दुष्यन्त को, मेनका और विश्वामित्र के साथ जोड़कर यह भ्रम उत्पन्न करा दिया गया कि वेदों में भरत वंश का वर्णन है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन वैदिक ऋचाओं का यदि विश्लेषण किया जाता है, तो लेशमात्र भी मानुषी वर्णन नहीं मिलता।

पुराणों की वंशावली

अठारहों पुराणों में जो वंश-वर्णन है वह दो विभागों में विभक्त है। एक वंश-वर्णन महाभारतकाल से पूर्व का है और दूसरा महाभारत के पश्चात् का है। यदि हम सभी पुराणों की वंशावलियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, तो द्यावापृथिवी का-सा परस्पर अन्तर प्राप्त होता है। जैसे विष्णुपुराण में मनु से लेकर महाभारतकालीन बृहद्वल

तक ९२ पीढ़ियाँ, वायुपुराण में ८२ पीढ़ियाँ, भविष्यपुराण में ९१ पीढ़ियाँ और भागवत में ८८ पीढ़ियाँ लिखी हैं। इससे हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि प्रत्येक पुराण में जो वंश-वर्णन है वह वंशानुक्रम नहीं, बल्कि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओं की नामावली मात्र है।

वंशावली को नामावली मानने के लिए हमारे सामने तर्क के अतिरिक्त प्रत्यक्ष प्रमाण और विश्वस्त सूत्र भी हैं। किसी भी पुराण की वंशावली को बिना किसी दूसरे से तुलना किये हुए यदि हम क्रमशः देखते हैं तो उसमें भी भ्रम और सन्देह की गुंजाइश होती है। एक ही वंशावली में पिता और पुत्रों के नामों का ठीक-ठीक निराकरण नहीं होता। जैसे महाभारत के प्रथम अध्याय में सूक्ष्म और विस्तार से दो वंशावलियाँ एक ही जगह दी गयी हैं पर एक में ३० पीढ़ी और दूसरी में ४३ पीढ़ी के नाम हैं। इससे यह अनुमान सहज किया जा सकता है कि ये वंशावली नहीं, नामावली हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत में नहुष और ययाति वंश चन्द्रवंश के अन्तर्गत हैं पर वाल्मीकीय रामायण में (७०।३६) लिखा है कि सूर्यवंशी अम्बरीष के नहुष, नहुष के ययाति और ययाति के नाभाग हुए। कालिदास के रघुवंश और वाल्मीकि रामायण के रघुवंश में बहुत ही व्यत्यन्तर है। वाल्मीकि के अनुसार रघु दिलीप के प्रपौत्र ठहरते हैं किन्तु रघुवंशकार कालिदास ने रघु को दिलीप का पुत्र माना है।

इस प्रकार इन नामावलियों को वंशावली की संज्ञा देकर सूतों ने पुराणों में एक गम्भीर भ्रम उत्पन्न किया; जो पाठकों और श्रोताओं में आशंका और अविश्वास उत्पन्न किया करता है।

वायुपुराण के वर्ण्य-विषय

अन्य पुराणों की भाँति वायुपुराण के भी वर्ण्य-विषय, सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर आदि से समन्वित हैं। वंशानुचरित इस पुराण में अन्य पुराणों की भाँति न्यून है। वायुपुराण के वंशानुक्रम और अन्य वर्ण्य-विषयों में स्पष्टतः परोक्षवाद, प्रतीकवाद और रहस्यवाद निहित हैं। वायुपुराण पढ़ते समय दो दृष्टिकोण—वैज्ञानिक और व्यावहारिक जब तक नहीं अपनाये जायँगे तब तक वास्तविक रहस्य नहीं खुल सकता। क्योंकि पुराण वेदों की छाया की भाँति हैं। वेदों के रहस्यवाद और चमत्कारपूर्ण वर्णन पुराणों में बहुत ही कौशल के साथ रोचक कथाशैली में लिखे गये हैं। उदाहरण के लिए वायुपुराण के अन्तर्गत नहुष, ययाति, तुर्वश आदि राजाओं के वर्णन दोनों पक्ष में अपना रहस्यपूर्ण स्थान रखते हैं। जब हम इन राजाओं की कथाओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए वैदिक वर्णन से तुलना करते हैं तो हमें राजा के बजाय आकाशीय पदार्थ ही जान पड़ते हैं। वायुपुराण में नहुष के लड़के का नाम ययाति था, उसकी रानी शुक्र की कन्या थी। दूसरी रानी का नाम शर्मिष्ठा था। वैदिक आख्यान से संगति मिलाते हुए जब हम इस पौराणिक आख्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो ययाति, शुक्र की कन्या और शर्मिष्ठा सभी आकाशीय पदार्थ ही सिद्ध होते हैं। पुराणों में ययाति को नहुष का पुत्र माना गया है और नहुष के पिता का नाम आयु था। यजुर्वेद (५।२) में लिखा है कि 'अग्ने आयुरसि' अर्थात् हे अग्नि, तू 'आयु' है। यही आयु पुराणों में उर्वशी और पुरूरवा का पुत्र माना गया है। वेदों के वर्णन के अनुसार उर्वशी और पुरूरवा अग्नि निर्मित सूर्य और रश्मि हैं। अतएव उनके पुत्र आयु को अग्नि होना ही चाहिए। इसका साक्ष्य ऋग्वेद (१।३१।११) में इस प्रकार है–

'त्वमग्ने प्रथमं आयुं आयवे देवाः अकृण्वन्' अर्थात् हे अग्नि, पहले तूने आयु को बनाया और आयु से देवताओं को। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि आयु नामक अग्नि से सूर्य रश्मि-उषा आदि देवता बने।

आयु के पुत्र नहुष को आकाशीय पदार्थ सिद्ध करते हुए ऋग्वेद (८।८।३) कहता है–

'आयातं नहस्पर्यन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः पिबाथो अश्विना मधु।' अर्थात् नहुष के ऊपर अन्तरिक्ष से कोई आते हैं। आगे चलकर ऋग्वेद (१०।९२।१२) में लिखा है कि सूर्यों के मास दिवि में विचरते हैं जिन्हें नाहुषी समझना चाहिए। नहुष के पुत्र ययाति के सम्बन्ध में ऋग्वेद (१।३१।१७) में लिखा है कि 'अग्ने अंगिरस्वत् अंगिरः ययातिवत्' अर्थात् हे अग्नि, तुम अंगिरस् की भाँति हो और अंगिरस् हैं। ययाति की भाँति हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (३।३४) में लिखा है कि 'ये अंगारा आसन् ये आंगिरसोभवन्' अर्थात् अंगार ही आंगिरस् है। ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि ययाति अंगार की तरह है। ययाति की पत्नी शुक्र की कन्या है। शुक्र आकाशीय पदार्थ है ही। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि ययाति शुक्र की भाँति कोई नक्षत्र है। ययाति की दूसरी रानी शर्मिष्ठा बादलों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

वायुपुराण के अनुसार यदु, तुर्वसु, पुरु, द्रुह्यु और अनु ये पाँच पुत्र ययाति के हैं। इन पाँचों को आकाशीय पदार्थ के रूप में ऋग्वेद की विभिन्न बारह ऋचाओं ने स्वीकार किया है जिनके संक्षिप्त आशय इस प्रकार हैं–

१–जो विद्युत् तुर्वश में है, वह सूर्य की किरणों से आयी है। (ऋ० १।४७।७)

२–अग्नि से तुर्वश यदु को दूर करते हैं। (ऋ० १।३६।१८)

३–प्रकाश से तुर्वश यदु को पार करो। (ऋ० १।७४।९)

४–अन्तरिक्ष का मार्ग पुरु है। (ऋ० ८।१०।६)

५–यदु सूर्य के द्वारा जाने जाते हैं। (ऋ० ८।९।१८)

६–हुत पदार्थों को ले जानेवाले पुरु। (ऋ० १।१२।१२)

७–अनु का घर द्युलोक है। (ऋ० ८।६९।१८)

८–पुरु सूर्य के आश्रित हैं। (ऋ० १०।९४।५)

९–इन्द्र माया करके पुरु बन जाता है। (ऋ० ६।४७।१८)

१०–तुर्वश यदु को शचीपति इन्द्र पार कर देगा। (ऋ० ४।३०।१७)

११–जो इन्द्र और अग्नि, यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु में है। (ऋ० १।१०८।८)

१२–प्रातःकाल का दृश्य पुरु को प्रिय है। (ऋ० ५।१८।१)

सूर्य सिद्धान्त में तारा और ग्रहों में परस्पर योग का नाम युद्ध है। और ययाति एक तारा का नाम है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आलोचना करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक नक्षत्रवंश को पुराणों में राजवंश का रूप दिया गया है। अथवा नक्षत्रवंशों के अभिधानों का अनुकरण राजवंश की नामावली में किया गया है।

मत्स्यपुराण के ९९वें अध्याय में महाराज शान्तनु का वर्णन है। शान्तनु के दो भाई देवापि और बाह्लीक और थे। शान्तनु का विवाह गंगा नदी से हुआ था। तर्कवादी की दृष्टि में मानव का नदी से समागम और विवाह किसी

भी सूरत में ग्राह्य नहीं वरन् हास्यास्पद होता है। किन्तु जब हम प्रतीकवाद से प्रभावित रहस्यवादी पुराणों का भावार्थ वैदिक अलंकारों से समन्वित कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं, तो हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक आकाशीय पदार्थों के आलंकारिक वर्णनों के रहस्य पुराणों द्वारा किस चातुर्य से व्यक्त किये गये हैं।

ऋग्वेद (१०।९८) में शान्तनु शब्द आया है। उनके दोनों भाई देवापि और बाह्लीक का भी नाम है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ९८वाँ सूक्त वर्षा-वर्णन का है। इस वर्णन में शान्तनु और उनके भाइयों का रहस्य खुल जाता है।

गंगा के साथ शान्तनु के विवाह का रहस्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत ही संभव और सन्देहहीन है। गंगा नदी का दूसरा नाम त्रिपथगा भी है। जो जल आकाश से गिरता है उसका नाम गंगा है, जो जमीन पर बहता है वह भी गंगा है और जो पाताल पर है वह भी गंगा नाम से विख्यात है।

भावप्रकाश में लिखा है–'गांगमासयुजे प्रायो वर्षति वारिदः। सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथैव चरकेवचः।' अर्थात् आश्विन के महीने में जो पानी ऊपर से बरसता है उसे 'गांगेय' कहते हैं। आकाश में जब बिजली चमकती है तो जलचक्र में एक प्रकार की हरकत उत्पन्न होती है तब आकाशगंगा पानी के रूप में नीचे बरसती है।

सुश्रुत (४६।२१) में शान्तनु एक अनाज का नाम है। इस धान्य का मुख्य जीवन वर्षा है। आश्विन मास में इस धान्य को विशेष जल की आवश्यकता पड़ती है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका कि आश्विन की वर्षा का नाम गंगा है। यह गंगा जब शान्तनु से समागम करती है तभी इसका तप्त हृदय शान्त होता है। उक्त गंगा को देवापि और आर्ष्टिषेण (शान्तनु के भाई) नामी विद्युत् और जल शक्तियाँ प्रेरित करके नीचे लाया करती हैं। यही शान्तनु और गंगा के विवाह का रहस्य है।

इसी प्रकार वायुपुराण में ऋषियों का जो वंशानुकीर्त्तन किया गया है वह भी वैज्ञानिक है। ७०वें अध्याय के प्रारम्भ ही में लिखा है कि–

"....प्रजापति ब्रह्मा ने सबके आधिपत्य पर क्रमशः भिन्न-भिन्न को नियुक्त करने का उपक्रम किया। समस्त द्विजातियों, वीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यक्षों एवं तपस्याओं के राजा के पद पर सोम को अभिषिक्त किया। सभी अंगिरा के वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया। भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद काव्य (शुक्र) को दिया। इसी प्रकार आदित्यों का राज्यपद विष्णु को, मरुतों का वासव को दिया....।"

यही बात ऋग्वेद (८।३।४) भी स्वीकार करते हुए कहता है कि–

'अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणेशवो यज्ञेषु विप्रराज्ये।'

यहाँ हजारों ऋषियों को विप्रराज्य अर्थात् चन्द्रमा के राज्य में बसनेवाला कहा गया है। चन्द्रमा विप्र द्विजराज भी कहलाता है। चन्द्रमा की चन्द्रिका से समस्त ओषधियाँ-वनस्पतियाँ बढ़ती हैं। चन्द्रोदय से नक्षत्र उद्भासित होते हैं इसलिए चन्द्रमा सब का राजा माना गया है। अधिक शीतल होने से विप्र भी कहा जाता है।

वैदिक निघण्टु के अनुसार ऋषि शब्द का अर्थ नक्षत्र, किरण, आकाशीय चमत्कारिक पदार्थ और मनुष्य के शरीर में स्थित इन्द्रियों का वाचक है। अरुन्धती के सहित सप्तर्षि और ध्रुव तो आकाशीय ग्रह विख्यात ही हैं। ऋग्वेद में ध्रुव के पिता उत्तानपाद का भी वर्णन है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में 'पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम्' आदि श्लोक द्वारा यह स्वीकार किया गया है–आकाश एक संसार है। वहाँ गली, ग्राम, नगर, युद्ध, ऋषि आदि सभी कुछ हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार भाव यही है कि उत्तरी गोलार्ध में नामवीथी के अन्त में सप्तर्षि हैं और दक्षिणी गोलार्ध में अगस्त्य तारा के पास अजवीथी है। वहाँ ८८,००० मुनि निवास करते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति के इस साक्ष्य से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि यह वही ८८,००० ऋषि हैं जो नैमिषारण्य में एकत्र सूत जी से पुराणों की कथा सुना करते थे।

इसी प्रकार पुराणों में वर्णित अयोध्या, मिथिला, अंग, बंग, कलिंग, कीकट के भी भाव वैदिक विज्ञान और रहस्य से भरे हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के इस विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि शास्त्रकारों ने पुराणों के सम्बन्ध में जो लिखा है कि पुराण वेदों के साथ ईश्वर के निःश्वास के रूप में प्रकट हुए हैं और बिना पुराणों के अध्ययन, मनन के वेदों का अध्ययन अधूरा होता है, बिल्कुल सही है। वैदिक संज्ञाओं और परिभाषाओं तथा चमत्कारिक वर्णनों को अपने समय के राजाओं और घटनाओं से सामंजस्य मिलाकर पुराणों की जो रचना की गयी है वह निःसन्देह स्तुत्य है।

सामान्य निरूपण

पौराणिक वंशावलियों पर विचार करते हुए हमने पीछे लिखा है कि ये वंशावलियाँ दो प्रकार के काल में विभक्त हैं। एक तो महाभारतकाल के पूर्व की हैं और दूसरी महाभारत के बाद की हैं। प्रथम श्रेणी की वंशावलियों में वेदों के चमत्कारिक वर्णनों के अधिक अंश तत्कालीन इतिहास लिखने में ग्राह्य हुआ है। दूसरे प्रकार की वंशावलियों में वैदिक आख्यानों और चमत्कारों के बहुत कम अंश ग्रहणकर व्यक्तियों के इतिहास लिखे गये हैं जो आगे चलकर धीरे-धीरे एक में मिला दिये गये और आज हमारे लिए एक गोरखधंधा बन रहे हैं।

सृष्टि प्रक्रिया में ब्रह्माण्ड और विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन युक्ति-युक्त ढंग से किया गया है। तर्क और कल्पनाओं को भी प्रश्रय प्रदान किया गया है। भुवन विन्यास में तत्कालीन भूगोल का समीक्ष्यकारी वर्णन है। पाशुपतयोग, परमाश्रय विधि, योग-निरूपण आदि अध्यायों द्वारा तत्कालीन प्रचलित और ग्राह्य योग-क्रियाओं, रूढ़ियों और सिद्धियों को व्यक्त किया गया है।

नाथपंथियों द्वारा स्वीकृत योग-मार्ग का प्रकृत स्वरूप उस समय था, ऐसा ज्ञात होता है। सम्भवतः बौद्ध परम्परा ने उसी को अपनाकर उसको भ्रष्ट बना दिया था जिसका परिष्कृत रूप पुनः नाथपंथ में देखने को मिला। ८६वें और ८७वें अध्याय में गीतालंकार का वर्णनकर संगीतशास्त्र के स्वर, राग, मूर्च्छना आदि का सामान्य परिचय दिया गया है। शैव पुराण होते हुए भी तीन अध्यायों (९६, ९७, ९८) में विष्णु माहात्म्य का वर्णनकर इस पुराण ने अपनी पक्षपातहीनता का परिचय दिया है। इसी व्याज से श्रीकृष्ण चरित्र का भी वर्णन हो गया है। श्राद्ध, श्राद्ध माहात्म्य, श्राद्धकाल, श्राद्धीय सामग्री और विधियों का वर्णन भी किया गया है। प्रायः प्रत्येक पुराणों में श्राद्ध का वर्णन है, क्योंकि श्राद्ध हिन्दू धर्म का अनिवार्य अंग है। इस श्राद्ध वर्णन के कतिपय अध्याय मत्स्यपुराण के श्राद्ध वर्णन से मिलते-जुलते हैं। केवल श्लोकों में थोड़ा-सा परिवर्तन किया गया है। आचार, आश्रम और वर्ण व्यवस्था का भी

संक्षेप में वर्णन है। गयाश्राद्ध महिमा ग्रन्थमध्य और ग्रन्थान्त में दो बार दी गयी है। राजवंश-वर्णन अधिक प्रामाणिक है, केवल ९९वाँ अध्याय अधिक लम्बा है जो कि प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

मत्स्यपुराण में इसके सम्पूर्ण श्लोकों की संख्या २४,००० कही गयी है परन्तु इसके ११२ अध्यायों की श्लोक गणना में नव कम ग्यारह हजार हैं। अतः मत्स्यपुराण के अनुसार १३,००० और इस पुराण के अनुसार १२,००० श्लोकों का पता नहीं चलता। इसके चौथे अध्याय में जहाँ पुराणों की संख्या या नामावली दी गयी है वहाँ 'एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि बृहन्ति च। पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते निरूपिताः' (अ० १०४, श्लोक ११) अष्टादश पुराण तो कहा गया परन्तु गणना में सोलह ही होते हैं। अतः जान पड़ता है कि बीच में दो श्लोक छूट गये हैं जिनमें दो पुराणों का उल्लेख रहा होगा। यहाँ यह विचारणीय है कि १०४ अध्याय में ग्रन्थ समाप्त-सा जान पड़ता है, क्योंकि उसमें ग्रन्थ माहात्म्य दिखाकर उपसंहार किया गया है। उसके बाद के गया-माहात्म्य के ८ अध्याय अलग से जोड़े गये-से जान पड़ते हैं। इन ८ अध्यायों को प्रक्षिप्त कहा जाता है क्योंकि बीच में भी गया का माहात्म्य लिखा गया है।

भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्य

प्रत्येक पुराणों में सर्ग का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में पृथ्वी, ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्र और ब्रह्माण्ड निर्माण का जो क्रम है वह प्रायः सम्पूर्ण पुराणों में एक-सा है। सप्तद्वीपा और सप्तसमुद्रा पृथ्वी का वर्णन भी सब में पाया जाता है। द्वीपान्तर्गत वर्षों का वर्णन, उनकी सीमा और विस्तार प्रमाण के विषय में यही कहा जा सकता है कि ये आधुनिक परिमाणों से मेल नहीं रखते। जम्बू द्वीप, प्लक्ष द्वीप आदि द्वीपों का नामकरण आज के भौगोलिक नामों के प्रतिकूल है। यद्यपि उस समय के ऋषि-मुनि अधिकतर अरण्यवासी थे, पृथ्वी परिक्रमा के भी आख्यान पुराणों में आये हैं तो भी जो वर्णन दिया गया है वह काल्पनिक जान पड़ता है। जो ऋषि दिव्यदृष्टि संपन्न थे, चन्द्रलोक तक यात्रा करते थे, उनके मुख से भूमण्डल का यह परिमाण या द्वीपों का ऐसा वर्णन कैसे हो सकता है? सम्भव है ऐसा वर्णन जनश्रुति के आधार पर किया गया हो। अथवा उस समय की भौगोलिक सीमा कुछ दूसरी रही हो। योजन परिमाण के विषय में तो यही कहना पड़ता है कि पुराणों के योजन या तो कोई छोटे परिमाण थे या ये वर्णन अतिरंजित हैं।

इस पुराण में समग्र भूवलय पर स्थित देशों का वर्णन किया गया है। वहाँ के निवासियों के आचार-विचार, स्वभाव, सभ्यता, रुचि और भौगोलिक स्थिति (पर्वत, नदी) आदि का वर्णन भी है। भारतवर्ष से अन्य देशों के नामों के अप्रचलित होने के कारण उनके विषय में कुछ कहना असंगत है। यहाँ केवल भारतवर्ष और इसके सीमावर्ती देशों के विषय में ही कहा जा सकता है। यह पुराण भारतवर्ष को जम्बू द्वीप का मध्य स्थान मानता है। जम्बू द्वीप सम्भवतः एशिया का प्राचीन नाम जान पड़ता है। भारत की सीमा पर स्थित देशों के प्राकृतिक वर्णन में सूत जी अपना हृदय खोलकर रख देते हैं, परन्तु वहाँ के निवासियों के आचार-विचार को देखकर क्षुब्ध हो जाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि प्राकृतिक असुविधाओं और अनेक प्रकार के अभावों के कारण सभ्यता और रहन-सहन का स्वरूप भिन्न-भिन्न हो जाता है। इसके बाद जब वे पूरब से पश्चिम लम्बायमान हिमालय पर्वत के दक्षिण स्थित भारतवर्ष का वर्णन करने लगते हैं तब उनके हृदय में देशप्रेम और देशाभिमान इस प्रकार जाग्रत हो जाता है कि 'यह देश विचित्र है, कर्म भूमि है, यहीं से स्वर्ग-मोक्ष आदि गति प्राप्त होती है।' भारतवर्ष, नामकरण का कारण भी विचित्र ढंग से बतलाते हैं। ४५वें अध्याय में वे कहते हैं कि यहाँ भारती प्रजा रहती है, प्रजाओं के भरण-पोषण के कारण

यहाँ के मनु भरत (बिस्व भरण पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।–तुलसी) कहलाते हैं। भरत नाम की इस व्याख्या (निर्वचन) के कारण ऐसे मनु की निवास भूमि भारत या भारतवर्ष कहलायी। प्राकृतिक सुविधाओं को देखकर वह पुनः कहते हैं कि इस देश को छोड़कर कहीं अन्यत्र कर्म व्यवस्था नहीं है–

"न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ।"

आगे– भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदाः प्रकीर्तिताः
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ।।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।।

(वायु पु० अ० ४५, श्लो० ७८-८१)

'इस भारतवर्ष के नव भेद हैं जो समुद्र से घिरे हुए और परस्पर अगम्य हैं। उनमें यह भारतवर्ष, जो कुमारी अन्तरीप से लेकर गंगोत्री तक फैला हुआ है, नवाँ है; यह कहकर पुराणकार भारतवर्ष के अन्य आठ विभाग और बतलाते हैं। पता नहीं, उन आठों की सीमा क्या थी। इस समय भी बहुत-से भूगोलविद् कहा करते हैं कि प्राचीनकाल में भारत की सीमा और भौगोलिक स्थिति आज से कुछ भिन्न थी। जान पड़ता है कि इस प्रकार की जनश्रुति उस समय भी थी। भारतवर्ष की नदियों, पर्वतों और प्रान्तों के वर्णनों को देखकर उनके समग्र भारतवर्ष के भौगोलिक ज्ञान का पता चलता है। हिमालय से लेकर दक्षिण के सह्याद्रि, मलय, नीलगिरि, मध्य के विन्ध्य, श्रीशैल आदि पर्वतों; सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, गंगा, यमुना, सरयू, गंडकी, इरावती, कौशिकी (कोसी), इक्षु, लोहित (ब्रह्मपुत्र) आदि उत्तर की (हिमवत्पादविनिःसृताः) हिमालय से निकलनेवाली नदियों और विदिशा, वेत्रवती (बेतवा), महानद शोण (सोन) आदि विन्ध्य से निकलनेवाली नदियों, गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा, भीमरथी, सुप्रयोगा, कावेरी आदि दक्षिणापथ की सह्य (पश्चिमी घाट) पाद से निकली नदियों का वर्णन कर विशाल भारत के भौगोलिक और सांस्कृतिक ऐक्य का परिचय दिया है। इन नदियों को 'विश्वस्य मातरः सर्वाः जगत्पापहरा स्मृताः' कहकर सूत जी ने प्राचीन भारतीयों की प्रकृति के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम का मुग्धकारी वर्णन किया है। प्रान्तों के वर्णन प्रसंग में कुरु, पांचाल, शाल्व, सजांगल, भद्रकार, वत्स, किसण्णा, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, तिलंग, मगध आदि देशों को मध्यदेश कहा है। उदीच्य (उत्तर) देशों की नामावली में वाह्लीक, बाटधान, आभीर, तोयक, पह्लव, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, शक्र, सृद, केकय, ज्ञानमानिक (ये क्षत्रिय उपनिवेश थे)। काम्बोज, दरद, बर्बर, पीन (चीनाश्च), तुषार, काश्मीर, तंगण आदि देशों का नाम आया है। इससे पता चलता है कि उस समय तक अफगानिस्तान, फारस, तुर्किस्तान, बुखारा आदि देशों में क्षत्रियों का राज्य था और ये भारतवर्ष के उपनिवेश थे। प्राच्य देश आन्ध्रवाक, सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, वंगेय, मालद, प्राग्ज्योतिष (आसाम), मुण्ड (छोटा नागपुर के पास के पहाड़ी जिले), विदेह (मिथिला), ताम्रलिप्तक, माल, मगध, गोविन्द आदि कहलाते थे। दक्षिणापथवासी जनपद पाण्ड्य, चोल, केरल, कुल्या, सेतुमा, मूषिका, कुमुना, वनवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, इषीक, आटवी, पुलिन्द, विदर्भ, दण्डक, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्धन, नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद्, नलमालिक आदि कहलाते थे। विन्ध्य के समीपवाले जनपदों में भानुकच्छ, कच्छ,

सुराष्ट्र, आनर्त, मालव, करुष, तुमुर, तुम्बुरु, निषध, अवन्ति, वीतिहोत्र आदि थे। इनके अतिरिक्त पर्वताश्रयी जनपद भी थे जिनमें हंसमार्ग, क्षुपण, तंगण, खस, त्रिगर्त आदि मुख्य थे। इन जनपदों की नामावली देखकर यह सिद्ध होता है कि पुराणकाल में या उसके पूर्व भारत छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त था, जिनका विभाग, प्राकृतिक सीमाओं, बोलियों, जाति-विशेष (खस, पुलिन्द) के आधार पर किया जाता था। उस समय बृहत्तर भारत का विस्तार पूरब में प्राग्ज्योतिष (आसाम) से लेकर पश्चिम में ईरान तक और दक्षिण में कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में रूसी तुर्किस्तान तक था। इतने विशाल भूभाग में भारतीय संस्कृति का प्रसार था। सब पुराणों के पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि वैदिककाल में जिस प्रकार सप्तसिन्धु और गंगा, यमुना का महत्त्व था उसी प्रकार पुराणकाल में गोदावरी का महत्त्व था।[१] उसके प्राकृतिक सौन्दर्य पर लोग मुग्ध थे।

जिस प्रकार भुवनविन्यास प्रकरण को पढ़कर तत्कालीन भौगोलिक रहस्यों का पता चलता है उसी प्रकार इस पुराण के राजवंश वर्णन के प्रसंग में बहुत-से ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है। मन्वन्तर और राजवंश वर्णन पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व काल के सप्तसिन्धु के निवासी आर्य किस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण जाकर अपना राज्य स्थापन, संस्कृति विस्तार और अपने नाम पर उन नवीन राज्यों और नगरों का नामकरण करते थे। ९९वें अध्याय में तुर्वसुवंश वर्णन में यह दिखाया गया है कि ययाति पुत्र तुर्वसु के वंशलोप होने पर पुरुवंशी कुमार दत्तक पुत्र स्वीकार किया गया। उसी दत्तक पुत्र की अगली पीढ़ी में जनापीड़ उत्पन्न हुए, जिनके पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य हुए, जिन्होंने सुदूर दक्षिण जाकर पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य राज्यों को स्थापित किया। उसी वंश में गान्धार नामक राजा हुआ जिसके नाम से गान्धार जनपद प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में भारतीयों के हृदय में नवीन उपनिवेश बसाने और संस्कृति-प्रचार का उत्साह १६वीं और १७वीं शताब्दी के यूरोपीय लोगों के समान था।

ऋषिवंश, इक्ष्वाकुवंश और पुरुवंश के वर्णन से वैदिककाल से लेकर पुराणकाल तक के राजाओं और ऋषियों की परम्परा का बहुत-कुछ परस्पर संगत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अर्जुन की वंश-परम्परा का वर्णन उस उदयन तक भविष्य कथन के रूप में किया गया है जो गौतम बुद्ध का समकालीन था। इस प्रकार गौतम बुद्ध के पूर्व के इतिहास पर इस वंश-परम्परा वर्णन द्वारा एक हल्का-सा प्रकाश पड़ता है। यदि पुराणों पर वह अविश्वास न रखा जाय, जो बहुत-कुछ अपनी संकीर्ण भावनाओं और पाश्चात्य इतिहासज्ञों को ही सब-कुछ मान लेने के कारण है, तो बहुत-कुछ अतीत की सामग्री इन पुराणों से प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए पार्जीटर आदि कतिपय यूरोपीय विद्वान् भी पुराणों की राजवंश परम्परा को इतिहास के लिए उपयोगी सामग्री मानते हैं। भारतीय विद्वानों ने भी अब शनैः-शनैः इधर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। यदि पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश में लायी जाय तो इससे बहुत-कुछ इतिहास और समाज का कल्याण हो सकता है। प्राचीन आर्यों की ऐतिहासिक खोजों और अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं से आज की सामाजिक परम्परा के नवनिर्माण में भी सहायता प्राप्त हो सकती है।

काव्य-सौन्दर्य

इस पुराण में काव्य-सौन्दर्य ढूँढ़ना इतिहास में काव्यात्मक सौन्दर्य ढूँढ़ने के समान है। इसमें मानव जीवन के

---

[१] सहस्य चोत्तरार्धे तु यत्र गोदावरी नदी, पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः।

उपयोगी तथ्यों को प्राप्त किया जा सकता है, भावनाओं को नहीं। यहाँ तो सूत जी सृष्टि, विसृष्टि और पाशुपत योग वर्णन में व्यस्त हैं, उन्हें हृदय को रमानेवाले स्थलों और सामग्रियों को लाने का अवकाश कहाँ? उनके सामने तो शौचाचार, परमाश्रमविधि, कल्पसंख्या, भुवनविन्यास आदि से संबंध रखनेवाले प्रश्नों की झड़ियाँ लगी हैं। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि यह पुराण काव्यात्मक आनन्द और सौन्दर्य से सर्वथा शून्य है। स्तुति, ऐश्वर्य-वर्णन, गन्धर्वों के रूप-वर्णन प्रसंग में सूत जी ने उपमाओं का उपयुक्त प्रयोग किया है। भुवनविन्यास प्रसंग में तो मेरुगिरि का वर्णन करते समय स्वर्णाभ पर्वत-शिखरों को मृदु पद्मपत्रों की तुलना में रखते हुए उनको तनिक भी संकोच नहीं होता है। चन्द्रप्रतीकाशा पूर्णचन्द्रनिभानना (पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली) गन्धर्व कुमारियों के वर्णन और मानसरोवर के रत्नजटित सोपान से उतरती हुई अप्सराओं के सौन्दर्य का आकर्षण और उनकी भावभंगिमा उन्हें भी आकृष्ट करती है। हरिवर्ष और केतुमाल के वर्णन में प्राकृतिक छटा और श्वेतनील शिखरवाले शिखरियों की शोभा का मनोहारी वर्णन किया है। वलय, अंगद, केयूर, हार, कुण्डल से आभूषित ललनाओं और चित्र-विचित्र मुकुट पहननेवाले मालाधारी रंग-बिरंगे वस्त्र पहननेवाले लोगों का निरीक्षण करना वे भूलते नहीं–

(वलयाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषिताः स्रग्विणश्चित्रमुकुटाश्चित्राच्छादनवाससः (४५/४५)) इसी प्रकार गिरिवर की शोभा का वर्णन–

चन्द्रतुल्यप्रभैः कान्तैश्चन्द्राकारैः सुलक्षणैः ।
श्वेतवैदूर्यकुमुदैश्चित्रोऽसौ कुमुदप्रभः ।
अनेकचित्रकोद्यानो नैकनिर्झरकन्दरः ।
महासानुदरीकुंजैर्विविधैः समलंकृतः ।।

(वायु पु०, अध्याय ४५, श्लोक ५४-५५)

(वह पर्वत स्वयं कुमुद के समान धवल, उसके सरोवरों में विकसित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान कान्तिमान् कुमुद उसकी धवलिमा को द्विगुणित कर रही है। साथ ही विचित्र पर्वतोद्यान, अनेक झरनों, कन्दराओं, उत्तुंग शिखरों और विविध कुंजों से भी वह गिरि सुशोभित है।) इन पंक्तियों में अधिक काव्य-सौंदर्य प्रस्तुत किया गया है। इनमें हृदय का उल्लास भी प्रतिबिम्बित होता है। गिरि से धरणीतल पर उतरती हुई भ्रान्ततोया तरंगिणी के वर्णन में सूत जी की काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखायी देता है। आशुगामिनी महानदी का पारिजात नामक महाशैल पर गिरना, उस आशुगामिनी (तीव्र धार से बहनेवाली) के हृदय की व्यग्रता व्यक्त करता है जो अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव है–

अनेकाभिः स्रवन्तीभिराप्यायितजला शिवा,
एवं शैलसहस्राणि सादयन्ती महानदी ।
पारिजाते महाशैले निपपाताऽऽशुगामिनी ।

(वायु पु०, अ० ४२, श्लोक ५४)

(वह कल्याणी महानदी जिसमें अनेक झरनों का जल मिला हुआ है, अनेक पर्वत-शिखरों को कुचलती हुई बड़े वेग से उस पारिजात शैल पर उतरी।)

तस्य कुक्षिष्वनेकासु भ्रान्ततोया तरंगिणी
व्याहन्यमानसंवेगा गण्डशैलैरनेकशः ।
संविद्यमानसलिला गता च धरिणीतले ।।

(वही, अ० ४२, श्लोक ५५-५६)

(उस पर्वत की अनेक कन्दराओं में उस तरंगिणी को निकलने के लिए मार्ग ढूँढ़ने में कठिनाई होती है। अन्त में अनेक गण्डशैलों के आघात से उसकी धारा तीव्र हो जाती है, तब वह धरणीतल पर उतरती है।)

इन उपर्युक्त पंक्तियों में अरण्यवासी ऋषि का प्रकृति-निरीक्षण पाया जाता है, जो मरुभूमि के मध्य लहलहाते शाद्वल प्रदेश के समान है, जहाँ पाठक को आनन्द और शान्ति मिलती है। स्तुति वर्णन में भी शिव और विष्णु के प्रति अनन्यभाव और आत्मनिवेदन की आकुलता, भक्त की 'अन्यथा शरणं नास्ति' (अब दूसरा क़ोई आधार नहीं) वाली विशेषता के साथ मुखरित हो जाती है।

वायुपुराण का विकासवाद

सभ्यता और संस्कृति के विकास के विषय में वायुपुराण अपना तर्कसंगत सिद्धान्त सामने रखता है। इसके अनुसार मनुष्य प्रारम्भ में वनेचर थे। पश्चात् उन्होंने ग्रामीण और नागरिक जीवन अपनाया। पहले वे पशुओं की भाँति शीतातप सहा करते थे परन्तु कालान्तर में उनकी बुद्धि का विकास हुआ और वे शीतातप से बचने के लिए उपाय सोचने लगे। धीरे-धीरे अपने अंगों को ढँकने और शीत से रक्षा के लिए वस्त्रों का आविष्कार किया।[1] पहले वे निकेतनहीन और निकामचार (इच्छानुसार आहार-विहार करनेवाले), पीछे वे गृही और आचारप्रिय बने।[2] सर्वप्रथम उन्होंने वहीं अपना घर पर्वतों पर और नदियों के किनारे बनाया जहाँ उनकी रुचि होती थी और जहाँ उनको प्राकृतिक सुख सामग्री प्राप्त होती थी।[3] धीरे-धीरे खेट (टोला), ग्राम, पुर और नगर आदि का निर्माण किया। घर बनाते समय अन्तर्गृह निर्माण के लिए लम्बाई-चौड़ाई में समानुपात कैसे हो, इस कठिनाई को दूर करने में संज्ञाओं एवं पर्यायवाची शब्दों के अभिधेय पर प्रकाश पड़ता है। इस पुराण के कतिपय अध्यायों के (चतुराश्रम विभाग आदि) पढ़ने से मनुष्य का सामाजिक विकास, सभ्यता एवं कला-कौशल का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ, यह रहस्य व्यक्त होता है। जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य को ईश्वर ने स्वयं आकर इन बातों को सिखाया-उनको इस पुराण का अवलोकन करना चाहिए।

इन पुराणों के सृष्टिवर्णन आदि असत्य जान पड़नेवाले आख्यानों के विषय में यह समझना चाहिए कि ये वर्णन अधिकतर रूपक शैली या श्रुतिकात्मक शैली में हैं। इनको पढ़कर घटना की सत्यता पर ध्यान न देकर उन आख्यानों

---

[1] शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ।
द्वन्द्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ।।अ० ८/९५।।

[2] कृत्वा द्वन्द्वप्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ।।अ० ८/९६।।

[3] यथायोग्यं यथा प्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः ।

से प्रतिध्वनित होनेवाले सत्य पर ध्यान देना चाहिए। जैसे समुद्र-मन्थन के द्वारा यह संकेत किया गया है कि अमृत और विष दोनों इस संसाररूपी महासागर से ही निकले हुए हैं। किसी उत्तम वस्तु की प्राप्ति या आविष्कार में शक्ति (असुर) और ज्ञान (सुर) या सत्त्व (सुर) और रज या तम (असुर) के परस्पर सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु उपभोग के समय ज्ञान और सत्त्वगुण की आवश्यकता है अन्यथा आसुरी शक्ति प्रबल होकर विश्व संहार कर देगी। यही कारण है कि असुरों को अमृतपान नहीं कराया गया। नदियों, पर्वतों, वृक्षों और ओषधियों की सृष्टिकथा भी रहस्यात्मक है। इसी प्रकार भावात्मक सृष्टि काम, क्रोध, मोह, द्वेष, हिंसा, अहिंसा आदि का वर्णन भी है। अब तक प्रायः लोग पुराणों की कथाओं के ही सत्यासत्य पर विचारकर पुराणों को उपेक्ष्य सिद्ध कर उनके पठन-पाठन की उपेक्षा करते आये हैं परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि पुराणों में वर्णित जीवन के प्रति प्राचीन ऋषियों के सिद्धांतों, मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और विविध परिस्थितियों तथा उसका जीवन प्रभाव और उनसे प्राप्त समाज निर्माण सम्बन्धी प्रेरणाओं पर ध्यान दिया जाय। हिन्दू समाज अब तक अपनी परम्परा पर ही आस्था रखनेवाला है।

हमारे देश में पुराणों के पाठ का बहुत महत्त्व स्वीकार किया गया है। आज तक धर्मप्रेमी जनता इसको पुण्यजनक मानती है। परन्तु अब धर्म के वास्तविक तथ्यों को समझना चाहिए। धर्म इहलोक, परलोक दोनों से सम्बन्ध रखता है। पुराणों में वर्णित कथाओं में भी यही सत्य रक्षित है। उसको पढ़कर या सुनकर प्रत्यक्ष जीवन में भी उसका उपयोग करना चाहिए। पुराणों के अध्ययन से हमें विदित होता है कि हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार मुक्ति का उपाय निकाला। अँगुलियों से नाप-नापकर कोठरियाँ बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। 'मित्वा मित्वाऽऽत्मनोऽङ्गुलैः मनोऽर्थानि प्रमाणानि तदा प्रभृति चक्रिरे।' इस प्रकार माप क्रिया करते-करते जब उनको माप का ज्ञान हुआ तब दूरी नापने के लिए ताल, गोकर्ण, वितस्ति, रत्नि आदि मापदण्ड बने। यह परिभाषा बच्चों को समझाने के लिए बनायी गयी थी।[१] इसी प्रकार धनुर्दण्ड (चार हाथ लम्बा), गव्यूति (दो कोस जो दो हजार धनुर्दण्ड के बराबर होता है।) और आठ हजार धनुष परिमाण का योजन (अष्टौ धनुः सहस्राणि) निश्चित किया गया। शत्रु के आक्रमण से बचने के लिए दुर्ग बनाये गये। आवश्यकतानुसार सौध, वप्र (गुम्बज), प्राकार (चहारदीवारी), स्वस्तिक द्वार, कुमारीपुर (अन्तःपुर), स्रोतसी संहतद्वार (वह द्वार जिसके दोनों ओर खाइयाँ खुदी रहती हैं) आदि बनने लगे। आने-जाने की सुविधा के लिए, जिससे मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथ आदि के आवागमन में बाधा न हो, राजपथ (चौड़ी पक्की सड़कें) बनाये गये। इस दिशा में भी मानव मस्तिष्क ने घण्टापथ, शाखारथ्या (ब्रांच स्ट्रीट), गृहस्थ्या (घर के भीतर बनी सड़कें) आदि का निर्माण कर अपनी आवश्यकता पूरी की और रचना कौशल दिखाया। उस आदिम काल में भी मनुष्यों के प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिकता और मर्यादा देखी जाती है। उन मनुष्यों ने नगर, पुर आदि का निर्माण आजकल के अवैज्ञानिक बेतुके गाँवों (जो कि भारतीय संस्कृति के स्थान माने जाते हैं) की भाँति नहीं किया, प्रत्युत लम्बाई, चौड़ाई में अनुपात रखकर किया। इस प्रसंग में इस पुराण में यह स्पष्ट कहा गया है कि उन आदिम मानवों को गृह, उपगृह और अन्तर्गृह बनाने का ज्ञान और वृक्षों और उनसे निकली हुई शाखाओं, उपशाखाओं को देखकर प्राप्त हुआ। घरों का नामकरण भी गुणानुसार हुआ। जैसे, घर का नाम प्रासाद इसलिए पड़ा कि उसको देखकर या उसमें रहने से मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है–

---

[१] तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया, कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल उच्यते। रत्निरङ्गुलपर्वणि। अ० ८/१०३-१०४

प्रसीदति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः।
तस्माद् गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः।।

(वायु पु० ८/१२६)

उन शालाओं में रहने से मन प्रसन्न होता था इसलिए उन घरों और शालाओं का नाम प्रासाद रखा गया। इसी प्रकार इस पुराण में यत्र-तत्र शब्दों की व्युत्पत्ति गुणानुसार की गयी है, जिससे आधुनिक प्रचलित मुक्ति, अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। प्राचीन सत्यद्रष्टा ऋषियों ने अध्यात्म का समर्थन जीवन को मानव वरदान समझने के लिए किया। किसी भी अवस्था में निराश न हों, अपने को सर्वदा ऊपर उठाने का प्रयत्न करें, अपने स्व को विश्व के स्व के साथ संयुक्त कर विश्व में आत्मवत् सर्वभूतेषु (सबको अपने ही समान समझो) को प्रत्यक्ष कर कल्याण पथ प्रशस्त करें। इस प्रकार पुराणों के शाश्वत सिद्धान्त को हृदयंगम करना ही पुराणपाठ या श्रवण का उद्देश्य होना चाहिए।

मूलपाठ और अनुवाद

मध्यकाल की अनियन्त्रित स्वार्थपूर्ण यशोलिप्सा और आधुनिक उपेक्षावृत्ति के दुष्परिणाम से वायुपुराण भी सुरक्षित न रह सका। ऐतिहासिक अध्ययन और वैज्ञानिक अनुसंधान से स्पष्ट विदित होता है कि मध्ययुग के स्वार्थसंघर्ष में पड़कर यह पुराण भी लुप्तांग और अधिकांग बन गया। लुप्तांगों की पूर्ति प्रक्षिप्तांशों द्वारा किये जाने की चेष्टा स्पष्ट प्रतीत होती है। यह प्रक्षेपणकला अवैज्ञानिक ढंग और अनधिकार चेष्टा द्वारा सम्पादित हुई है। ग्रंथ के अन्त में उपसंहार के बाद पुनः किये गये गयामाहात्म्य के वर्णन में 'प्रक्षेपण प्रयास' तिल तंडुल न्याय चरितार्थ कर रहा है।

मध्यकाल और वर्तमानकाल की इस स्वार्थपूर्ण रगड़-झगड़ के बीच मूल वायुपुराण के जो संस्करण सम्पादित और मुद्रित हुए हैं उनमें 'ननु नच' की पर्याप्त गुंजाइश है। ऐसी स्थिति में अनुवाद कार्य में हमें पदे-पदे बौद्धिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आनन्दाश्रम पूना, निर्णय सागर प्रेस बम्बई और कलकत्ता से प्रकाशित वायुपुराण के संस्करणों में अनेक स्थलों पर परस्पर द्यावापृथिवी का अन्तर है। इसलिए संभव है क्वचित् विवादग्रस्त मूलपाठ के अनुवाद संदेहास्पद हों फिर भी यथासाध्य हमने पाठ सम्बन्धी दुर्बलताओं को दूर करने का प्रयत्न किया है। जहाँ भ्रम विच्छेद नहीं कर सके वहाँ विवश होकर प्रश्नसूचक (?) चिह्न लगाकर हमने सन्देह प्रकट किया है। अन्यत्र संदिग्ध स्थलों में हमने अपनी पाद-टिप्पणियों द्वारा अपने मत भी व्यक्त किये हैं।

प्रस्तुत पुराण का अनुवाद राष्ट्रीय हित और समाज की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए सार्वजनीन, सरल-सुबोध भाषा और कथानक शैली में करने का प्रयास किया गया है। अनुवाद की भाषा-शैली और भावाभिव्यक्ति में विवेकशील पाठकों और आलोचकों का द्वैत अवश्य प्रतीत होगा, क्योंकि ग्रन्थ के आरम्भ के कुछ अध्यायों का अनुवाद बहुत पहले एक अन्य विद्वान् द्वारा किया गया है, न जाने किस कारणवश पूरा अनुवाद करने में वे असमर्थ रहे। तदनन्तर शेषांश को पूरा करने का भार मुझे सौंपा गया। वायुपुराण की महत्ता और अनुवाद की लोकप्रियता को दृष्टिगत रखते हुए मुझे इस अनुवाद कार्य में जो कठिनाइयाँ पड़ीं उन्हें निराकृत करने तथा पूर्वांश अनुवाद की पांडुलिपि को सम्पादित करने में मुझे अपने जिन गुरुजनों, मित्रों, सहयोगियों से सहायता मिली है, उनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

वायुपुराण का यह अनुवाद पहले ही पूरा हो चुका था, किन्तु बहुत दिनों तक प्रेस में जाने से रुका रहा। उसका कारण यह था कि मुझे एकाएक संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य छोड़कर सम्मेलन के सहायकमन्त्री पद का भार सँभालना पड़ा। कार्य की जटिलता तथा विविधता के कारण मैं उसकी पाण्डुलिपि में यथेष्ट परिश्रम न कर सका और इसका भार मैंने अपने अनन्य मित्र पण्डित घनश्याम त्रिपाठी, बी० ए०, व्याकरणाचार्य-साहित्यरत्न को सौंपा। उन्होंने इसमें पर्याप्त श्रम किया है। मित्रवर पण्डित देवदत्त शास्त्री का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अनेक बहुमूल्य सुझाव और सहयोग मुझे दिये हैं।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय के अमररत्न वायुपुराण का यह अनुवाद भारतभारती-भक्तों के समक्ष रखते हुए हम सफल मनोरथ होने की आशा करते हैं। सांथ ही यह विश्वास भी है कि-

'करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः'

रामप्रताप त्रिपाठी

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतम्

वायुपुराणम्

तत्र प्रक्रियापादे

प्रथमोऽध्यायः

अनुक्रमणिका

*नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।१।।
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्याऽऽस्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ।।२।।
प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्। महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ।।३।।
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम्। प्रभुं भूतभविष्यस्य सांप्रतस्य च सत्पतिम् ।।४।।
ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ।।५।।

अध्याय १

श्रीनारायण एवं नरोत्तम नर तथा देवी सरस्वती और व्यास जी को नमस्कार करने के बाद जय (अर्थात् वायु पुराण) कहना चाहिए ।।१।।

सत्यवती के हृदय-नन्दन पराशर के पुत्र श्री व्यास जी की जय हो, जिनके मुख-कमल से निकले वाङ्मय अमृत का पान सारा संसार करता है ।।२।।

समस्त जगत् के पति, देव, ईशान, नित्य, अचल, अविकारी, महात्मा, महादेव, लोक-कर्त्ता, सर्वज्ञ, अजित एवं भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रभु सत्पति ब्रह्मा की मैं शरण में हूँ। जिस जगदीश के अनुपम ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा धर्म साथ-ही-साथ सिद्ध हैं, जो इन सत्-असत्-रूप समस्त पदार्थों का पालन करते हैं, जिनमें सारे पदार्थ उत्पन्न होने

---

* एतच्छ्लोकद्वयं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

य इमान्पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान्। आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ।।६।।
लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित्। असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।७।।
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम्। पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ।।८।।
ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः। ऋषीणां च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ।।९।।
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णा (र्ण्या) य चर्षये। वशिष्ठायैव शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ।।१०।।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसंमितम्। धर्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषितम् ।।११।।
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि। प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ।।१२।।
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः। ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।।१३।।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रं तु ईजिरे। नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।।१४।।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः। द्रष्टुं तान्स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ।।१५।।
लोमानि हर्षयांचक्रे श्रोतृणां यत्सुभाषितैः। कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिंल्लोमहर्षणः ।।१६।।
तपःश्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमतः। शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।१७।।
पुराणवेदो ह्यखिलस्तस्मिन्सम्यक्प्रतिष्ठितः। (*भारती चैव विपुला महाभारतवर्धिनी ।।१८।।
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन्प्रतिष्ठिताः)। सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ।।१९।।

के लिए ही प्रविष्ट होते हैं तथा जो भुवनभावन लोकतत्त्वज्ञ तत्त्ववेत्ता भगवान् योग के बल से स्थावर, जङ्गम और समस्त भूतों की सृष्टि करते हैं, पुराण की कथाएँ जानने की लालसा से मैं उन्हीं अजन्मा, सर्वकर्मा, लोकसाक्षी, चित्पति प्रभु की शरण में आया हूँ। ब्रह्मा, वायु, महेन्द्र तथा ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ एवं उनके दौहित्र परम कीर्तिमान् जातूकर्ण्य ऋषि प्रकृष्ट पुण्यात्मा कृष्णद्वैपायन को नमस्कार करके समाहितचित्त होकर धर्म, अर्थ, न्याय से भरे-पूरे शास्त्रों से विभूषित, वेदों के समान ब्रह्मोक्त पुराण को मैं सुनाऊँगा ।।३-११।।

जिस समय अनुपम कान्तिमान् व्रिकमशाली नरपति श्रेष्ठ राजा असीमकृष्ण धर्मपूर्वक इस पृथ्वी पर शासन करते थे, उस समय पवित्र तटवाली पुण्यसलिला दृषद्वती नदी के तीर पर धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में सरल, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, रजोगुणविहीन, स्थिरबुद्धि, सत्यव्रती ऋषियों ने एक महान् यज्ञ किया। शास्त्र की विधि से उन नैमिषारण्यवासी ऋषियों की दीक्षा हुई थी। वहाँ उनके दर्शन करने के लिए महाबुद्धि पौराणिकप्रवर सूत आये ।।१२-१५।।

उनके सुभाषित वचनों को सुन श्रोताओं को रोमांच हो जाता था, अतः इस संसार में इस कर्म के अनुसार उनका लोमहर्षण नाम प्रसिद्ध था ।।१६।। वे तपस्या, विद्या तथा आचार के निधान श्री वेदव्यास के बड़े मेधावी शिष्य थे, तीनों लोकों में उनकी ख्याति थी ।।१७।। समस्त पुराणों, वेदों तथा महाभारत को पल्लवित करनेवाली शक्तिमती वाणी उनमें प्रतिष्ठित थी। जिस प्रकार पृथ्वी में ओषधियाँ भरी हुई हैं उसी प्रकार उनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कथाएँ, सूक्तियाँ एवं सुन्दर परिभाषाएँ भरी पड़ी थीं। नीतिज्ञ मेधावी सूत जी ने मुनिवरों के पास पहुँचकर नियम से सादर हाथ

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

स तान्न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुंगवान् । अभिगम्योपसंसृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।।२०।।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् । ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महौजसः ।।२१।।
तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रतिपेदिरे । अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।।२२।।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणम् । तस्मिन्सत्रे गृहपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ।।२३।।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषां सूतमचोदयत् । त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान्ब्रह्मवित्तमः ।।२४।।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः । दुदोह वै मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां कथाम् ।।२५।।
एषां च ऋषिमुख्यानां (णां) पुराणं प्रतिधीमताम् । शुश्रूषाऽस्तिमहाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ।।२६।।
सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागताः । स्वान्स्वान्वंशान्पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिनः ।।२७।।
सपुत्रान्दीर्घसत्रेऽस्मिञ्श्रावयेथा मुनीनथ । दीक्षिष्यमाणैरस्माभिस्तेन प्रागसि संस्मृतः ।।२८।।
इति संनोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभां गिराम् । श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां यां ब्रूयाल्लोमहर्षणः ।।२९।।

सूत उवाच

पूतोऽस्म्यनुगृहीतश्च भवद्भिरभिनोदितः । पुराणार्थं पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ।।३०।।
स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः । देवतानामृषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम् ।।३१।।
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम् । इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ।।३२।।

जोड़ नमस्कार किया और उनको अपनी नम्रता से सन्तुष्ट कर दिया। वे परम तेजस्वी यज्ञकर्त्ता मुनिगण सदस्यों के साथ बहुत प्रसन्न हुए और यथायोग्य उनकी प्रशंसा और पूजा की गयी। उस समय मुनियों के मन में पुराण सुनने की इच्छा प्रकट हुई ।।१८-२२।।

उस यज्ञ का गृहपति समस्त शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने अत्यन्त विश्वस्त परमविद्वान् लोमहर्षण को देखकर तथा उन ऋषियों के इङ्गित से उनके मनोभावों को समझकर सूत जी से कहा–"सूत जी! आपने इतिहास और पुराण के निमित्त ब्रह्मज्ञ-वरिष्ठ मेधावी व्यास जी की बड़ी उपासना की है और उनकी बुद्धि से आपने पुराणों की कथा का दोहन कर लिया है। महाबुद्धे! इन धीमान् ऋषिप्रवरों को पुराण सुनने की बड़ी आकांक्षा है अतएव आपको सुनाना चाहिए। ये सब विभिन्न गोत्रों के महात्मा यहाँ आये हुए हैं। अपने-अपने वंशों को पुराणों के द्वारा ये सुन लें। ये लोग इस महान् यज्ञ में पुत्रों समेत आये हुए हैं, इन्हें पुराण की कथाएँ सुनाइये। प्रस्तुत यज्ञ की दीक्षा लेने के पूर्व इसीलिए हम लोगों ने आपका स्मरण किया है। ऋषियों तथा गृहपति के इस प्रकार अनुरोध करने पर लोमहर्षण सूत जी मधुर स्वर में न्याययुक्त कल्याणकारी वाणी बोलने लगे ।।२३-२९।।

सूत जी ने कहा– ऋषिवृन्द! आप लोग स्वयं पुराण जानते और सत्यव्रत का पालन करते हैं। आप लोगों ने जो मुझे पुराण सुनाने की प्रेरणा की उससे मैं परम पुनीत हुआ और यह हमारे ऊपर आपका परम अनुग्रह है। प्राचीन सत्पुरुषों ने सूत का यही अपना निजी धर्म बताया है कि वह इतिहास-पुराणों में ब्रह्मवादियों द्वारा बताये हुए देवताओं, ऋषियों तथा अतुल तेजस्वी राजाओं की वंशावली तथा महात्माओं की सुनी बातों को धारण करे। वेदों में सूतों का कोई अधिकार नहीं है। महात्मा

न हि वेदेष्वधीकारः कश्चित्सूतस्य दृश्यते। वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः ।।३३।।
सुत्यायामभवत्सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः। ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।।३४।।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत। प्रमादात्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु ।।३५।।
शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः। अधरोत्तरचारेण * जज्ञे तद्वर्णवैकृतः ।।३६।।
यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्रह्मणावरयोनितः। ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः ।।३७।।
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम्। रथनागाश्वचरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ।।३८।।
तत्स्वधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः। कस्मात्सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ।।३९।।
पितृणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत। अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ।।४०।।
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः। तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ।।४१।।
तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे। पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्तिने ।।४२।।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे। जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे संसग्रहः ।।४३।।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम्। मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।।४४।।
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः। वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ।।४५।।
भूमिकालगुणान्प्राप्य बहुशाखो यथा द्रुमः। तस्मादहमुपश्रुत्य पुराणं ब्रह्मवादिनः ।।४६।।

वेन के पुत्र (पृथु) के यज्ञ के अवसर पर सर्वप्रथम सुत्यों में (अर्थात् यज्ञ की ओषधियों के कूटने के समय) वर्णसंकर सूत की उत्पत्ति हुई। क्योंकि उसमें इन्द्र को दिये जानेवाले द्रव्य के साथ बृहस्पति का द्रव्य मिश्रित हो गया और उसी की आहुति इन्द्रदेव को भूल से दे दी गयी। इसी गड़बड़ी से सूत उत्पन्न हुआ और कार्यों में प्रायश्चित्त भी आया। शिष्य के हविष्य के साथ मिलने से गुरु के हविष्य का अनादर हुआ, अतएव इधर का उधर होने से (नीच का उच्च में मिल जाने से) वर्णसंकर सूत की उत्पत्ति हुई। क्षत्रिय से ब्राह्मण योनि द्वारा उत्पन्न होने के कारण सूत साधर्म्य से उसी के (क्षत्रिय के) तुल्य धर्मवाला कहलाया। सारथि की जीविका अर्थात् रथ, हाथी, घोड़ों के परिचालन का काम– यह सूत का मध्यम एवं चिकित्सा करना जघन्य धर्म है। अतएव जब आप ब्रह्मवादियों ने मुझसे अपने धर्म की बात पूछी है तो फिर मैं ऋषिपूजित पुराण का भली-भाँति वर्णन क्यों नहीं करूँगा?।।३०-३९।।

पितरों की एक मानसी कन्या वासवी हुई। पितरों ने उसे शाप दिया जिससे मत्स्य योनि में वह उत्पन्न हुई। जैसे अग्नि के जन्म का निमित्त अरणी (काष्ठ) होती है, वैसे ही वेदज्ञों में श्रेष्ठ महायोगी व्यास जी ने उसी से जन्म ग्रहण किया। उन्हीं भृगु मुनि के वाक्यों पर चलनेवाले ब्रह्मरूप, पुराणपुरुष, मनुष्य के कपट वेश में साक्षात् प्रभविष्णु विष्णु भगवान् श्री व्यास जी को नमस्कार करके जिस व्यासदेव के जन्म लेते ही समस्त संग्रहों के साथ वेद स्वयं उपस्थित हो आये, जिन्होंने धर्म को सामने रखकर जातूकर्ण्य से उन्हें पाया और अपनी बुद्धि की मथानी से उस श्रुतिरूप समुद्र को मथकर संसार में महाभारत जैसे चन्द्रमा का प्रकाश उत्पन्न किया; जिसको पाकर वेदवृक्ष शाखाओं से वैसे ही सुशोभित

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजितोद्दीप्ततेजसः। पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।।४७।।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः। महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्बाहुश्चतुर्मुखः ।।४८।।
अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च स्वयंभूर्हेतुरीश्वरः। अव्यक्तं कारणं यद्यन्नित्यं सदसदात्मकम् ।।४९।।
महदादिविशेषान्तं सृजतीति विनिश्चयः। अण्डं हिरण्ययं चैव बभूवाप्रतिमं ततः ।।५०।।
अण्डस्याऽऽवरणं चाद्भिरपामपि च तेजसा। वायुना तत्स नभसा नभो भूतादिनाऽऽवृतम् ।।५१।।
भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनाऽवृतो महान्। अतोऽत्र विश्वदेवानामृषीणां चोपवर्णितम् ।।५२।।
नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र शस्यते। मन्वन्तराणां सर्वेषां कल्पानां चोपवर्णनम् ।।५३।।
कीर्तनं ब्रह्मक्षत्रस्य ब्रह्मजन्म च कीर्त्यते। अतो ब्रह्मणि सृष्टत्वं प्रजासर्गोपवर्णनम् ।।५४।।
अवस्थाश्चात्र कीर्त्यन्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कल्पानां वत्सरं चैव जगतः स्थापनं तथा ।।५५।।
शयनं च हरेरत्र पृथिव्युद्धरणं तथा। सन्निवेशः पुरादीनां वर्णाश्रमविभागशः ।।५६।।
वृक्षाणां गृहसंस्थानां सिद्धीनां च विनाशनम्। योजनानां पथां चैव संचरं बहुविस्तरम् ।।५७।।
स्वर्गे स्थानविभागं च मर्त्यानां शुभचारिणाम्। वृक्षाणामोषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्तनम् ।।५८।।
वृक्षनारकिकीटत्वं मर्त्यानां परिकीर्तनम्। *देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते ।।५९।।
अन्नादीनां तनूनां च सृजनं त्यजनं तथा। प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ।।६०।।

हुआ जैसे भूमि, काल और गुणों को पाकर पेड़ों में अनेक टहनियाँ फूट निकलती हैं, उन सर्वज्ञ, समस्त वेदों में पूजित दीप्त तेजवाले ब्रह्मवासी से पुराण सुनकर मैं आज आप लोगों को यह पुराण सुनाऊँगा जिसको प्राचीन काल में नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों के पूछने पर वायुदेव ने कहा था। महेश्वर, पर, अव्यक्त, चतुर्बाहु, चतुर्मुख, अचिन्त्य, अप्रमेय स्वयंभू ईश्वर हेतु हैं, सत्-असत्‌रूप नित्य अव्यक्त कारण हैं। वे महत् तत्त्व से लेकर विशेष-तत्त्व तक की सृष्टि करते हैं, यह बात निश्चित है। सबसे पहले हिरण्य अण्ड उत्पन्न हुआ। अण्ड जल से, जल तेज से, तेज वायु से, वायु आकाश से, आकाश भूतादि (मानसिक अहंकार) से, भूतादि महत् तत्त्व से और महत् तत्त्व अव्यक्त से ढँका था ।।४०-५१।।

सर्वप्रथम इसी का वर्णन है, इसके पश्चात् यहाँ समस्त देवताओं तथा ऋषियों का वर्णन है। नदियों, पर्वतों की उत्पत्ति बतायी गयी है और मन्वन्तरों तथा कल्पों की भी चर्चा है। ब्राह्मण और क्षत्रियों की कथा और ब्राह्मण जन्म बतलाया गया है। फिर ब्रह्मा से सृष्टि के होने तथा प्रजा सर्ग की बात है। अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्म की अवस्थाएँ, कल्पों के वर्ष तथा जगत् की स्थापना कही गयी है। यहाँ भगवान् का शयन तथा पृथ्वी का उद्धार करना, वर्ण और आश्रम के विभाग के साथ-साथ पुर-नगर आदि की संनिवेश स्थापना, गृहों के वृक्ष तथा सिद्धियों का विनाश, मार्ग-माप या मार्गों का विस्तारपूर्वक वर्णन है ।।५२-५७।।

पुण्यात्मा पुरुषों के स्वर्ग में अलग-अलग स्थान, वृक्षों, ओषधियों और लताओं का कीर्तन यहाँ है। पापी मनुष्यों

---

* इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः । अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ।।६१।।
पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्तितः । तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः ।।६२।।
नव सर्गाः पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः । त्रयोऽन्ये बुद्धिपूर्वास्तु ततो लोकानकल्पयत् ।।६३।।
ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः । ये द्वादश प्रसूयन्ते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ।।६४।।
कल्पयोरन्तरं प्रोक्तं प्रतिसंधिश्च यस्तयोः । तमोमात्रामृतत्वाच्च ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ।।६५।।
तथैव शतरूपायाः संभवश्च ततः परम् । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयश्च ताः ।।६६।।
कीर्त्यन्ते धुतपाप्मानो येषु लोकाः प्रतिष्ठिताः । रुचेः प्रजापतेश्चोर्ध्वमाकूत्यां मिथुनोद्भवः ।।६७।।
प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानां प्रभवस्ततः । दाक्षायणीषु चाप्यूर्ध्वं श्रद्धाद्यासु महात्मनाम् ।।६८।।
धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्य सुखोदयः । तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ।।६९।।
महेश्वरस्य सत्यां च प्रजासर्गः प्रकीर्तितः । निरामयं च ब्रह्माणं तादृशं कीर्तितं पुनः ।।७०।।
योगं योगनिधिः प्राह द्विजानां मुक्तिकाङ्क्षिणाम् । अवतारश्च रुद्रस्य महाभाग्यं तथैव च ।।७१।।
त्रैवेदिका कथावाऽपि संवादःपरमो महान् । ब्रह्मनारायणाभ्यां च यत्र स्तोत्रं प्रकीर्तितम् ।।७२।।
स्तुतस्ताभ्यां स देवेशस्तुतोष भगवाञ्शिवः । प्रादुर्भावोऽथ रुद्रस्य ब्रह्मणोऽङ्गे महात्मनः ।।७३।।
कीर्त्यते नामहेतुश्च यथाऽरोदीन्महामनाः । रुद्रादीनि यथा ह्यष्टौ नामान्याप्नोत्स्वयंभुवः ।।७४।।

का मरने पर वृक्ष, नारकीय कीट होना तथा देवताओं और ऋषियों की दो प्रकार की गति बतायी है। अन्नादि शरीरों की सृष्टि, उनको त्यागना तथा ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के पहले पुण्य का स्मरण किया, तब उनके मुख से वेद, वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्र निकले। व्रत और नियम, पशु एवं पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन, उनकी व्याख्या कल्प के साथ वर्णित है ।।५८-६२।।

फिर ब्रह्मा के बुद्धिपूर्वक नव सर्ग, फिर तीन और बुद्धिपूर्वक सर्ग, नव लोकों की सृष्टि, फिर बारह धर्म जो बार-बार प्रजाकल्प में ब्रह्मा के अंगों से उत्पन्न होते हैं बताये गये हैं। दो कल्पों का अन्तर तथा प्रतिसन्धि, तमोगुण से ढँकने के कारण ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति एवं उसके पश्चात् शतरूपा का जन्म, प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा प्रसूति और आकूति, जिनसे सृष्टिविस्तार हुआ, पुनः जिनके स्मरण से लोग पवित्र हो जाते हैं–जिनमें लोक प्रतिष्ठित हैं, उनका वर्णन है। रुचि एवं प्रजापति दोनों की उत्पत्ति के बाद फिर आकूति से मैथुनात्मक सृष्टि, प्रसूति से दक्ष की लड़कियों की उत्पत्ति, श्रद्धा आदि में महात्माओं की उत्पत्ति आदि बतायी गयी है। सात्त्विक धर्म की सुखमयी तथा अधर्म की तामसी अशुभरूपा हिंसामयी सृष्टि का वर्णन है। सती में महेश्वर की प्रजा-सृष्टि और वैसे ही निरामय ब्रह्म का कीर्त्तन किया गया है। मोक्ष की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणों के लिए योगीश्वर ने योगब्रह्म बतलाया है एवं रुद्र के भाग्यशाली अवतार का वर्णन है। तीनों वेदों की कथा, ब्रह्मा और नारायण का उत्तम संवाद एवं वहाँ स्तोत्र का भी कीर्त्तन है। इन दोनों की स्तुति से देवेश भगवान् शिव सन्तुष्ट हुए और महात्मा रुद्र का ब्रह्मा के शरीर में आविर्भाव हुआ। महामना रुद्र क्यों रोये, उसका तथा रुद्र आदि आठों नाम स्वयंभू के क्यों पड़े, उसका कारण बताया

यथा च तैर्व्याप्तमिदं त्रैलोक्यं सचराचरम् । भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम् ।।७५।।
*वशिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्यत्र गोत्रानुकीर्तनम् । अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्तिता ।।७६।।
पितृणां द्विप्रकाराणां स्वधायास्तदनन्तरम् । पितृवंशप्रसङ्गेन कीर्त्यते च महेश्वरात् ।।७७।।
दक्षस्य शापः सत्यर्थे भृग्वादीनां च धीमताम् । प्रतिशापश्च रुद्रस्य दक्षादद्भुतकर्मणः ।।७८।।
प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते (+दोषदर्शनात् । मन्वन्तरप्रसङ्गेन कालज्ञानं च कीर्त्यते ।।७९।।
प्रजापतेः कर्दमस्य कन्या या शुभलक्षणा । प्रियव्रतस्य पुत्राणां कीर्त्यते) यत्र विस्तरः ।।८०।।
उक्तो नाभेर्निसर्गश्च रजसश्च महात्मनः । द्वीपानां ससमुद्राणां पर्वतानां च कीर्तनम् ।।८१।।
वर्षाणां च नदीनां च तद्भेदानां च सर्वशः । द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भेदश्च सप्तसु ।।८२।।
विस्तरान्मण्डलांश्चैव जम्बुद्वीपसमुद्रयोः । प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यते पर्वतैः सह ।।८३।।
हिमवान्हेमकूटस्तु निषधो मेरुरेव च । नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च कीर्त्यन्ते वर्षपर्वताः ।।८४।।
तेषामन्तरविष्कम्भा उच्छ्रायायामविस्तराः । कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ।।८५।।
भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा । भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा ।।८६।।
जम्बुद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः । ततश्चाप्यमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ।।८७।।
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी । भूरादयश्च कीर्त्यन्ते वरणैः प्रकृतैः सह ।।८८।।

गया है। साथ ही इस सचराचर जगत् को उन्होंने कैसे व्याप्त कर लिया एवं भृगु आदि ऋषियों के प्रजासर्ग का वर्णन है ।।६३-७५।।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के गोत्र का वर्णन तथा अग्नि का स्वाहा से प्रजासर्ग वर्णित है। पितृ-वंश के प्रसंग में दो प्रकार के पितरों तथा फिर स्वधा का वर्णन है एवं महेश्वर का सती के लिए दक्ष तथा श्रीमान् भृगु आदि के प्रति शाप एवं विचित्रकर्मा दक्ष का रुद्र को प्रतिशाप देना वर्णित है। दोष दिखाकर वैर का प्रतिषेध एवं मन्वन्तर के प्रसंग से काल का ज्ञान वर्णित है। कर्दम प्रजापति की शुभ लक्षणोंवाली कन्या तथा प्रियव्रत के पुत्रों का विस्तार बतलाया गया है। तत्पश्चात् वे सब पृथक्-पृथक् किन-किन द्वीपों और देशों में भेजे गये एवं फिर स्वायंभुव सर्ग का वर्णन है। नाभि तथा महात्मा रजस का सर्ग एवं समुद्रों, द्वीपों और पर्वतों का वर्णन, वर्षों, नदियों तथा उन सबके भेदों एवं सातों द्वीपों के सहस्रों भेद और उपभेद बताये गये हैं ।।७६-८२।।

जम्बूद्वीप और समुद्र के विस्तार तथा उनके मण्डल तथा पर्वतों के साथ योजन-मान से उनका प्रमाण बताया गया है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये वर्षपर्वत कहाते हैं। इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तथा इनके बीच के विष्कम्भों का परिमाण योजनों में दिया गया है एवं इनमें निवास करनेवालों का भी वर्णन है। भारत आदि वर्ष चल, अचल, नदियों, पर्वतों तथा प्राणियों से भरे हैं। जम्बूद्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं और उसके पश्चात् जलमयी भूमि तथा लोकालोक का कीर्त्तन है ।।८३-८८।।

ब्रह्माण्ड के बीच से भू आदि लोक तथा सात द्वीपोंवाली पृथ्वी अपने-अपने नैसर्गिक प्राकारों के साथ है। इन सबों में जो प्रधान हैं उनका एकदेशिक परिमाण इनके व्यासों के प्रमाण के साथ संक्षेप में लिखा है। सूर्य तथा चन्द्रमा

---

* इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

सर्वं च तत्प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम् । सव्यासपरिमाणं च संक्षेपेणैव कीर्त्यते ।।८९।।
सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः । प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतैरभिमानिभिः ।।९०।।
महेन्द्राद्याः सभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्धनि । अत ऊर्ध्वं गतिश्चोक्ता स्वर्गस्यालातचक्रवत् ।।९१।।
नागवीथ्यजवीथ्योश्च लक्षणं परिकीर्त्यते । काष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानां च योजनैः ।।९२।।
लोकालोकस्य संध्याया अह्नो विषुवतस्तथा । लोकपालाः स्थिताश्चोर्ध्वं कीर्त्यन्ते ये चतुर्दिशम् ।।९३।।
पितॄणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ । गृहिणां न्यासिनां चोक्तौ रजःसत्त्वसमाश्रयात् ।।९४।।
कीर्त्यते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र धिष्ठिताः । सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ।।९५।।
कीर्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाशुभम् । ब्रह्मणा निर्मितः सौरः स्यन्दनोऽर्थवशात्स्वयम् ।।९६।।
कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्पति दिवि स्वयम् । स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।।९७।।
(+गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः । अपां सारमयश्चेन्दोः कीर्त्यते च रथस्तथा) ।।९८।।
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्येते सूर्यकारितौ । सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रकीर्तनम् ।।९९।।
कीर्त्यते शिशुमारश्च यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः । तारारूपाणि सर्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।।१००।।
निवासा यत्र कीर्त्यन्ते देवानां पुण्यकारिणाम् । सूर्यरश्मिसहस्रे च वर्षशीतोष्णनिःस्रवः ।।१०१।।
प्रविभागश्च रश्मीनां नामतः कर्मतोऽर्थतः । परिणामगती चोक्तं ग्रहाणां सूर्यसंश्रयात् ।।१०२।।

एवं पृथ्वी का भी मान योजन आदि में एतत्कालीन मान प्रमाण के साथ दिया है। मानस के उत्तर शिखर पर महेन्द्र आदि की पुण्य सभाएँ तथा उसके पश्चात् आलातचक्र की भाँति स्वर्ग की गति बतायी गयी है ।।८९-९१।। नागवीथी तथा अजवीथी का लक्षण बताकर योजनों में मण्डलों की काष्ठा और लेखाओं का मान बताया है।।९२।। लोकालोक, सन्ध्या, दिन और विषुवत् का भी वर्णन है एवं पुनः चारों दिशाओं में लोकपालों के रहने की बात है।।९३।। पितरों और देवताओं के दक्षिण और उत्तर मार्ग, रजोगुण और सत्त्वगुण के आश्रय से गृहस्थों तथा संन्यासियों के कर्म बताये गये हैं। विष्णु का धाम जहाँ धर्म आदि रहते हैं एवं सूर्य और चन्द्रमा तथा ग्रह और नक्षत्रों की चाल बतायी गयी है। ध्रुव के सामर्थ्य से प्रजाओं का शुभ-अशुभ तथा प्रयोजनवश ब्रह्मा के बनाये हुए सूर्य के रथ का वर्णन है।।९४-९६।। जिस रथ से स्वयं भगवान् आकाश में चलते और जिस पर देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, ग्रामणी, साँप और राक्षस आदि सवार रहते हैं उसका वर्णन है। और गन्धर्व, अप्सरागण तथा ग्रामणी, साँप और राक्षसों के साथ जल के सार रूप चन्द्रमा के रथ का वर्णन किया गया है।।९७-९८।। सूर्य के कारण चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय का होना तथा ध्रुव के साथ सूर्य आदि के रथों का वर्णन है।।९९।। फिर उस शिशुमार का वर्णन है जिसकी पूँछ में ध्रुव की स्थिति है, फिर ग्रहों के साथ तारा रूप समस्त नक्षत्रों का वर्णन है।।१००।। सूर्य की सहस्रों किरणों से वर्षा, शीत तथा धूप का झरना एवं उनमें पुण्यात्मा देवों के निवास-स्थान बताये गये हैं।।१०१।। नाम, कर्म तथा अर्थ के आश्रय से किरणों का, विभाग एवं सूर्य की अपेक्षा से ग्रहों की चाल और मान बताया है। ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर विषभक्षक शूलपाणि शम्भु का कण्ठ तुरन्त विष

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

यथा चाऽऽशु विषात्प्राप्ता शंभोः कण्ठस्य नीलता । ब्रह्मप्रसादितस्याऽऽशु विषादः शूलपाणिनः ।।१०३।।
स्तूयमानः सुरैर्विष्णुः स्तौति देवं महेश्वरम् । लिङ्गोद्भवकथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।१०४।।
विश्वरूपात्प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः । पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यानुप्रकीर्तनम् ।।१०५।।
पितृणां द्विप्रकाराणां तर्पणं चामृतस्य वै । ततः पर्वाणि कीर्त्यन्ते पर्वणां चैव संधयः ।।१०६।।
स्वर्गलोकगतानां च प्राप्तानां चाप्यधोगतिम् । पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ।।१०७।।
युगसंख्या प्रमाणं च कीर्त्यते च कृतं युगम् । त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्तायाः संप्रवर्त्तनम् ।।१०८।।
*वर्णानामाश्रमाणां च संख्यानां च प्रवर्तनम् । वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मतस्तथा ।।१०९।।
यज्ञप्रवर्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते । ऋषीणां वसुनां सार्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः ।।११०।।
प्रश्नानां दुर्वचस्त्वं च स्वायंभुवमृते मनुम् । प्रशंसा तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ।।१११।।
द्वापरस्य कलेश्चात्र संक्षेपेण प्रकीर्तनम् । देवतिर्यङ्मनुष्याणां प्रमाणानि युगे युगे ।।११२।।
कीर्त्यन्ते युगसामर्थ्यात्परिणाहोच्छ्रयायुषः । शिष्टादीनां च निर्देशः प्रादुर्भावश्च कीर्त्यते ।।११३।।
(+मन्त्राणां ब्राह्मणानां च लक्षणं परिकीर्तितम् । ईश्वराणामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च) ।।११४।।
(×वेदस्य तद्विजातानं मन्त्राणां च प्रकीर्तनम् । शाखानां परिमाणं च वेदव्यासादिशब्दनम्) ।।११५।।
मन्वन्तराणां संहारः संहारान्ते च संभवः । देवतानामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च ।।११६।।
न शक्यं विस्तराद्वक्तुमित्युक्तं च समासतः । मन्वन्तरस्य संख्या च मानुषेण प्रकीर्तिता ।।११७।।

से कैसे नीला हो गया, उसका वर्णन है।।१०२-१०३।। देवताओं ने विष्णु की स्तुति की और उन्होंने महादेव की फिर सब पापों को नाश करनेवाली लिङ्ग की उत्पत्ति की पवित्र कथा है। विश्वरूप शिव से प्रधान प्रकृति का यह विचित्र परिणाम तथा एक पुरूरवा के माहात्म्य का वर्णन किया है।।१०४-१०५।। उसने दोनों प्रकार के पितरों का अमृत से कैसे तर्पण किया, फिर पर्व तथा उनकी सन्धियों का वर्णन है।।१०६।। स्वर्गलोक में पहुँचे हुए प्राणियों की भी अधोगति तथा दोनों प्रकार के पितरों का श्राद्ध से महान् कल्याण का वर्णन है। युगों की संख्या तथा मान, सत्य युग तथा त्रेता युग में अपकर्ष के कारण एवं वर्णों, आश्रमों और संख्याओं की प्रवृत्ति तथा धर्म से वर्णों तथा आश्रमों की स्थिति का वर्णन है।।१०७-१०९।। यज्ञ की प्रवृत्ति तथा ऋषियों और वसु की शास्त्रार्थ की बात तथा फिर वसु की अधोगति का कीर्त्तन है। प्रश्नों का कठिन होना तथा स्वायंभुव मनु को छोड़कर तपस्या की प्रशंसा एवं सारे युगों की अवस्थाओं का वर्णन है। द्वापर तथा कलि का संक्षेप से वर्णन तथा युग-युग के देवता, पशु, पक्षी एवं मनुष्यों के परिमाण का वर्णन है। युग के सामर्थ्य से आयु की वृद्धि और ह्रास तथा शिष्ट आदि की उत्पत्ति तथा निर्देश का कथन है।।११०-११३।।

मन्त्र और ब्राह्मण के लक्षण तथा ईश्वर, ऋषि, मनु और पितरों के लक्षण बताये गये हैं। वेद तथा उनके मन्त्रों का वर्णन एवं शाखाओं की गणना तथा वेदव्यास आदि की बातें हैं। मन्वन्तरों का संहार तथा संहार के पश्चात् देवता, ऋषि, मनु तथा पितरों की उत्पत्ति विस्तार से नहीं कही जा सकती अतएव संक्षेप में कही गयी है एवं मानुष गणना से मन्वन्तर की संख्या बतायी गयी है।।११४-११७।। सभी अतीत और वर्तमान मन्वन्तरों

---

* इदमर्धं नास्ति ख.घ.ङ. पुस्तकेषु। + धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतं नास्ति घ. पुस्तके।

मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव च लक्षणम् । अतीतानागतानां च वर्तमानेन कीर्त्यते ।।११८।।
तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसंधानलक्षणम् । अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायंभुवेऽन्तरे ।।११९।।
मन्वन्तरत्रयं चैव कालज्ञानं च कीर्त्यते । मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्तनम् ।।१२०।।
दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुता । ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ।।१२१।।
सावर्ण्याद्याश्च कीर्त्यन्ते मनवो मेरुताश्रिताः । ध्रुवस्योत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ।।१२२।।
पृथुना वाऽपि वैन्येन भूमेर्दोहप्रवर्तनम् । पात्राणां पयसां चैव वंशानां च विशेषणम् ।।१२३।।
ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुंधरा । दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः ।।१२४।।
दक्षस्य कीर्त्यते जन्म सोमस्यांशेन धीमतः । भूतभव्यभवेशत्वं महेन्द्राणां च कीर्त्यते ।।१२५।।
मन्वादिका भविष्यन्ति आख्यानैर्बहुभिर्वृताः । वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यते सर्वविस्तरः ।।१२६।।
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं विभ्रतस्तनुम् । ब्रह्मशुक्रात्समुत्पत्तिर्भृगवादीनां च कीर्त्यते ।।१२७।।
विनिवृत्तं प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे । दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो ध्यानाद्वैवस्वतेऽन्तरे ।।१२८।।
नारदः प्रियसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान् । नाशयामास शापाय आत्मनो ब्रह्मणः सुतः ।।१२९।।
ततो दक्षोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामेव विश्रुताः । कीर्त्यते धर्मसर्गश्च कश्यपस्य च धीमतः ।।१३०।।
अत ऊर्ध्वं ब्रह्मणश्च विष्णोश्चैव भवस्य च । एकत्वं च पृथक्त्वं च विशेषत्वं च कीर्त्यते ।।१३१।।
ईशत्वाच्च यथा शप्ता जाता देवाः स्वयंभुवा । मरुत्प्रसादो मरुतां दित्या देवाश्च संभवाः ।।१३२।।

का यह लक्षण वर्तमान से लेकर बताया गया है। फिर स्वायंभुव मन्वन्तर में अतीत और वर्तमान सभी मन्वन्तरों का प्रतिसन्धान (मर्यादा) बताया गया है। तीनों मन्वन्तर, उनका अवसान एवं मन्वन्तरों के देवताओं तथा प्रजापतियों का वर्णन है। दक्ष के दौहित्र (उनकी प्रिय पुत्री के पुत्र) जिनको बुद्धिमान् दक्ष ने ही ब्रह्मा आदि के द्वारा उत्पन्न कराया। वे सावर्णि आदि मनु सुमेरु पर्वत के रहनेवाले हैं, उनका फिर उत्तानपाद ध्रुव की प्रजासृष्टि का वर्णन है। वेन के पुत्र पृथु से पृथ्वी का दोहन, पात्रों और दुग्धों तथा वंशों का वर्णन है। इसके पहले भी इस पृथ्वी का दोहन, ब्रह्मा आदि तथा दस प्रचेताओं ने किया था। ।।११८-१२४।। फिर सोम के अंग से मारिषा में श्रीमान् प्रजापति दक्ष की उत्पत्ति का और महेन्द्रों के भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान के शासक होने का वर्णन है।।१२५।।

अनेकों आख्यानों से युक्त मनु आदि, एवं वैवस्वत मनु की भी प्रजा-सृष्टि का वर्णन है। वारुणी शरीरधारी महादेव के यज्ञ में ब्रह्मा के वीर्य से भृगु आदि की उत्पत्ति बतायी गयी है। चाक्षुष मनु के शुभ-प्रजा-सर्ग हो जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर में दक्ष के ध्यान से की गयी सृष्टि का वर्णन है। ब्रह्मा के पुत्र प्रियवंद नारद ने स्वयं शाप (पाने) के लिए दक्ष के महाबली पुत्रों का विनाश किया। तब दक्ष ने वीरिणी में ही प्रसिद्ध कन्याओं की सृष्टि की। फिर मतिमान् कश्यप की धर्म-सृष्टि का वर्णन है। इसके उपरान्त ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एक ही तथा पृथक्-पृथक् होने और उनकी (परस्पर) विशेषता की बात है। स्वयंभू ने देवताओं को शाप देकर कैसे ईशत्व से च्युत किया तथा मरुतों को कैसे मरुत् होने का वर मिला तथा दिति से देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन है। उनचास मरुतों तथा पिता के वाक्य से उनका देवता होना एवं वायु के कन्धे पर रहना बतलाया गया है। दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग,

कीर्त्यन्ते मरुतां चाथ गणास्ते सप्तसप्तकाः। देवत्वं पितृवाक्येन (ण) वायुस्कन्धेन चाऽऽश्रयः ॥१३३॥
दैत्यानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सर्वभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम् ॥१३४॥
उत्पत्तयश्चाप्सरसां कीर्त्यन्ते बहुविस्तराः। समुद्रसंयोगकृतं जन्मैरावतहस्तिनः ॥१३५॥
वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा चास्याभिषेचनम्। भृगूणां विस्तरश्चोक्तस्तथा चाङ्गिरसामपि ॥१३६॥
कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः। पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥१३७॥
देवतानामृषीणां च प्रजोत्पत्तिस्ततः परम्। तिस्रः कन्याः प्रकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१३८॥
पितृदौहित्रनिर्देशो देवानां जन्म चोच्यते। विस्तरस्ते भगवतः पञ्चानां सुमहात्मनाम् ॥१३९॥
इलाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम्। विकुक्षिचरितं चोक्तं धुन्धोश्चैवनिबर्हणम् ॥१४०॥
बृहद्बलान्तसंक्षेपादिक्ष्वाकाद्याः प्रकीर्तिताः। निम्यादीनां क्षितीशानां यावज्जह्नु गणादिति ॥१४१॥
कीर्त्यंते विस्तरो यश्च ययातेरपि भूपतेः। यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः ॥१४२॥
क्रोष्टोरनन्तरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः। ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्यंते ॥१४३॥
देवावृधस्य त्वर्कस्य वृष्णेश्चैव महात्मनः। [*अनमित्रान्वयश्चैव विष्णो (+र्दिव्याभिशंसनम् ॥१४४॥
विवस्वतोऽथ संप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः। युधाजितः प्रजासर्गः कीर्त्यंते च महात्मनः) ॥१४५॥
कीर्त्यंते चान्वयः श्रीमान्राजर्षेर्देवमीढुषः। पुनश्च जन्म चाप्युक्तं चरितं च महात्मनः] ॥१४६॥
कंसस्य चापि दौरात्म्यमेकान्तेन समुद्भवः। वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोर्जन्म प्रजापतेः ॥१४७॥

राक्षस तथा सभी भूत, पिशाच, पशु, पक्षी एवं लताओं तथा अप्सराओं की उत्पत्ति बड़े विस्तार से बतायी गयी है तथा समुद्र के संयोग से ऐरावत हाथी का जन्म वर्णित है, गरुड़-उत्पत्ति तथा उनका अभिषेक एवं भृगु तथा अङ्गिरा गोत्रवालों का विस्तार बताया गया है। वहीं कश्यप, पुलस्त्य, महात्मा अत्रि तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का भी विस्तार है।।१२६-१३७।। तत्पश्चात् देवताओं और ऋषियों की प्रजाओं की उत्पत्ति है, तीन कन्याओं का वर्णन है जिनमें सारे लोक प्रतिष्ठित हैं।।१३८।। देवताओं के पिता और दौहित्र बताये गये हैं। तथा देवों की उत्पत्ति, पाँचों महात्माओं और भगवद्भक्त तुम्हारे जन्म का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इला का वर्णन, फिर आदित्य का, तब विकुक्षि का चरित और धुन्धु का विनाश है। संक्षेप में, एवं इक्ष्वाकु से लेकर बृहद्बल पर्यन्त तथा निमि से लेकर जह्नु गण तक राजाओं का, नृपति ययाति एवं यदुवंश तथा हैहयवंश का विस्तार है। इसके अनन्तर क्रोष्टा के वंश का विस्तार तथा ज्यामघ का माहात्म्य एवं उनके प्रजासर्ग का वर्णन है। देवावृध अर्क महात्मा वृष्णि के वंश तथा विष्णु का दिव्य वर्णन है। माहामति विवस्वान् को मणिरत्न की प्राप्ति तथा महात्मा युधाजित को प्रजासर्ग कहा गया है। श्रीमान् राजर्षि देवमीढुष के जन्म, चरित और वंश का वर्णन है। कंस की अत्यन्त दुष्टता तथा प्रजापति वसुदेव से विष्णु वासुदेव का देवकी के गर्भ से जन्म लेने का कथन है।।१३९-१४७।। तदनन्तर

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

विष्णोरनन्तरं चापि प्रजासर्गोपवर्णनम्। देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते ।।१४८।।
संरक्षता शक्रवधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः। भृगोश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम् ।।१४९।।
देवानामसुराणां च सङ्ग्रामा द्वादशाद्भुताः। नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्यन्ते प्राणनाशनाः ।।१५०।।
शुक्रेणाऽऽराधनं स्थाणोर्धीरेण तपसा कृतम्। वरदानप्रलुब्धेन यत्र शर्वस्तवः कृतः ।।१५१।।
अनन्तरं विनिर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम्। जयन्त्या सह सक्ते तु यत्र शुक्रे महात्मनि ।।१५२।।
आसुरान्मोहयामास शुक्ररूपेण बुद्धिमान्। बृहस्पतिस्तु ताञ्शुक्रः शशाप समहाद्युतिः ।।१५३।।
उक्तं च विष्णुमाहात्म्यं विष्णोर्जन्मादिशब्दनम् । तुर्वसुः शुक्रदौहित्रो देवयान्यां यदोरभूत् ।।१५४।।
अनुर्द्रुह्युस्तथा पूरुर्ययातितनया नृपाः। अत्र वंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः ।।१५५।।
कीर्त्यन्ते यत्र कार्त्स्न्येन भूरिद्रविणतेजसः। कुशिकस्य च विप्रर्षेः सम्यग्यो धर्मसंश्रयः ।।१५६।।
बार्हस्पत्यं तु सुरभिर्यत्र शापमिहानुदत्। कीर्तनं जह्नुवंशस्य शंतनोर्वीर्यशब्दनम् ।।१५७।।
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम्। अनागतानां सप्तानां मनूनां चोपवर्णनम् ।।१५८।।
भौमस्यान्ते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम्। परार्ध्यपरयोश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते ।।१५९।।
ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिकः स्मृतः ।।१६०।।
विविधः सर्वभूतानां कीर्त्यते प्रतिसंचरः। अनावृष्टिर्भास्कराच्च घोरः संवर्तकोऽनलः ।।१६१।।
मेघो ह्येकार्णवं वायुस्तथा रात्रिर्महात्मनः। संख्यालक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्राह्मं विशेषतः ।।१६२।।

विष्णु के प्रजासर्ग का वर्णन तथा देवासुर के उत्पन्न होने पर विष्णु को स्त्रीवध करके शक्र की प्राण-रक्षा करने पर भृगु शाप का मिलना तथा भृगु का शुक्र की दिव्य माता को उठाना वर्णित है ।।१४८-१४९।। देवताओं और असुरों के बारह विचित्र नारसिंह आदि प्राणनाशक संग्रामों का वर्णन है। धीर शुक्र ने तपस्या द्वारा शिव की आराधना तथा वरदान के लोभ से उनकी स्तुति की। तदनन्तर देवताओं और असुरों के कार्य तथा जयन्ती के साथ महात्मा शुक्र के आसक्त होने पर बुद्धिमान् बृहस्पति ने शुक्र का रूप धारण करके असुरों को मोहित किया और तेजस्वी शुक्र ने असुरों को शाप दिया ।।१५०-१५३।। तत्पश्चात् विष्णु का माहात्म्य तथा विष्णु के जन्म आदि की कथा है। फिर शुक्र की पुत्री देवयानी से यदु के तुर्वसु उत्पन्न हुआ। ययाति के पुत्र अनु, द्रुह्यु तथा पुरु राजा हुए। वहाँ उनके वंशज, जो उत्तम महात्मा नरेन्द्र बहुत धन और तेजवाले हुए, उनका पूरा-पूरा तथा विप्रर्षि कुशिक के धर्मपालन का वर्णन हैं। बृहस्पति के शाप को सुरभि ने हटाया फिर जह्नु-वंश कीर्त्तन तथा शन्तनु के बल-वीर्य की कथा है। तदुपरि भविष्य में होनेवाले राजाओं तथा सात मनुओं का वर्णन है ।।१५४-१५८।। अन्त में कलियुग के क्षीण होने पर पृथ्वी का संहार बताया गया है तथा परार्ध्य और पर के लक्षण कहे हैं। योजन में ब्रह्मा के परिमाण का निर्णय किया है एवं नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक तीन प्रकार के प्रलय समस्त भूतों के बताये गये हैं ।।१५९-१६०।। फिर सूर्य से अवर्षण होने तथा घोर संवर्तक अग्नि का वर्णन है। एकार्णव मेघ, वायु तथा महात्मा (परमात्मा) की रात्रि का वर्णन है तथा विशेषकर ब्राह्मकाल संख्या का लक्षण बतलाया है ।।१६१-१६२।।

भूरादीनां च लोकानां सप्तानामुपवर्णनम् । कीर्त्यन्ते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः ।।१६३।।
ब्रह्मलोकोपरिष्टात्तु शिवस्य स्थानमुत्तमम् । यत्र संहारमायान्ति सर्वभूतानि संक्षये ।।१६४।।
सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः । ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गे सर्वसंहारवर्णनम् ।।१६५।।
अष्टरूप्यमतः प्रोक्तं प्राणस्याष्टकमेव च । गतिश्चोर्ध्वमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रयात् ।।१६६।।
कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयः । प्रसंख्याय च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता ।।१६७।।
दौरात्म्यं चैव भोगानां परिणामविनिर्णयः । दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।।१६८।।
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् । नानात्वदर्शनाच्छुद्धं ततस्तदभिवर्तते ।।१६९।।
ततस्तापत्रयातीतो नीरूपाख्यो निरञ्जनः । आनन्दो ब्रह्मणः प्रोक्तो न बिभेति कुतश्चन ।।१७०।।
कीर्त्यते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत् । कीर्त्यते ऋषिवंशश्च सर्वपापप्रणाशनः ।।१७१।।
इतिकृत्यसमुद्देशः पुराणस्योपवर्णितः । कीर्त्यन्ते जगतो ह्यत्र सर्वप्रलयविक्रियाः ।।१७२।।
प्रवृत्तयश्च भूतानां निवृत्तीनां फलानि च । प्रादुर्भावो वशिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च ।।१७३।।
सौदासान्निग्रहस्तस्य विश्वामित्रकृतेन च । पराशरस्य चोत्पत्तिरदृश्यत्वं यथा विभोः ।।१७४।।
जज्ञे पितृणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः । शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ।।१७५।।
पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रकृतो यथा । वशिष्ठसंभृतश्चाग्निर्विश्वामित्रजिघांसया ।।१७६।।
संतानहेतोर्विभुना चीर्णः स्कन्देन धीमता । दैवेन विधिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा ।।१७७।।

फिर भूः आदि सात लोकों का और पापियों के रौरव आदि नरकों का वर्णन है। ब्रह्मलोक के ऊपर शिव का उत्तम स्थान है। वहीं प्रलय में समस्त भूतों का संहार होता है। फिर सब जीवों के परिणाम का निर्णय तथा ब्रह्मा के प्रलय में सबके संहार का वर्णन है। फिर आठ प्रकार के आठ प्राण बताये गये हैं एवं धर्म और अधर्म के आश्रय से ऊर्ध्व एवं अधः गतियाँ वर्णित हैं ।।१६३-१६६।। महान् भूतों का भी प्रत्येक कल्प में क्षय तथा दुःखों को बताकर ब्रह्मा की भी अनित्यता बतायी गयी है। भोगों के दोष तथा उनके परिणाम का निश्चय तथा मोक्ष की दुर्लभता एवं वैराग्य से दोष देखने की बात कही है। व्यक्त और अव्यक्त का परित्याग करके केवल ब्रह्म में स्थित एवं नानात्व के दर्शन से शुद्ध होकर जब जीव सत्त्व के परे जाता है तब वह तीनों नामों से अतीत नीरूप नामक निरञ्जन ब्रह्म का आनन्द कहलाता है, फिर किसी से वह डरता नहीं ।।१६७-१७०।। फिर पहले जैसी दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि तथा सब पापों को नाश करनेवाले ऋषियों के वंश का कीर्त्तन है। पुराण का इतिवृत्त वर्णन करके जगत् के सभी प्रलयों और विकारों की कथा है। फिर जीवों की प्रवृत्तियों तथा निवृत्तियों के फल एवं वसिष्ठ के प्रादुर्भाव और शक्ति के जन्म की कथा है। पुनः विश्वामित्र के द्वारा तथा सौदास से उनका निग्रह (अपमान) एवं प्रभु पराशर की उत्पत्ति तथा उनका अन्तर्धान वर्णित है ।।१७१-१७४।। पितरों की कन्या से व्यास मुनि के जन्म की कथा तथा पुत्र के सहित शुकदेव की उत्पत्ति की बात बतायी है। पराशर का विश्वामित्र से द्वेष कैसे हुआ एवं विश्वामित्र के वध की इच्छा से वसिष्ठ ने अग्नि प्रस्तुत किया, दैवविधि से विश्वामित्र के हितैषी मतिमान् विभु स्कन्द ने सन्तान के निमित्त उसका पालन किया। फिर भगवान् ईश्वर व्यास ने एक चतुष्पाद

एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धा पुनरीश्वरः । यथा विभेद भगवान्व्यासः सर्वान्स्वबुद्धितः ।।१७८।।
तस्य शिष्यैः प्रशिष्यैश्च शाखाभेदाः पुनः कृताः । प्रयोगैः षड्गुणीयैश्च यथा पृष्टः स्वयंभुवा ।।१७९।।
पृष्टेन चानुपृष्टास्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः । देशं पुण्यमभीप्सन्तो विभुना तद्धितैषिणा ।।१८०।।
सुनाभं दिव्यरूपाख्यं सत्याङ्गं शुभविक्रमम् । अनौपम्यमिदं चक्रं वर्तमानमतन्द्रिताः ।।१८१।।
पृष्ठतो यात नियतास्ततः प्राप्स्यथ यद्धितम् । गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।।१८२।।
पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच तदा प्रभुः । उक्त्वा चैवमृषीन्ब्रह्मा ह्यदृश्यत्वमगात्पुनः ।।१८३।।
गङ्गागर्भसमाहारं नैमिषेयत्वमेव च । ईजिरे चैव सत्रेण मुनयो नैमिषे तदा ।।१८४।।
मृते शरद्वति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम् । ऋषयो नैमिषेयास्तु श्रद्धया परया पुनः ।।१८५।।
निःसीमां गामिमां कृत्स्नां कृत्वा राजानमाहरत् । यथाविधि यथाशास्त्रं तमातिथ्यैरपूजयन् ।।१८६।।
प्रीतं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा । अन्तर्धानगतः क्रूरः स्वर्भानुरसुरोऽहरत् ।।१८७।।
अनुसस्त्रुर्हृतं चापि नृपमैडं यथा पुरा । गन्धर्वसहितं दृष्ट्वा कलापग्रामवासिनम् ।।१८८।।
संनिपातः पुनस्तस्य यथा यज्ञे महर्षिभिः । दृष्ट्वा हिरणमयं सर्वं यज्ञे वस्तु महात्मनाम् ।।१८९।।
तदा वै नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके । यथा विवदमानस्तु ऐडः संस्थापितस्तु तैः ।।१९०।।
जनयित्वा त्वरण्यान्त ऐडपुत्रं यथायुषम् । समापयित्वा तत्सत्रमायुषं पर्युपासते ।।१९१।।
एतत्सर्वं यथावृत्तं व्याख्यातं द्विजसत्तमाः । ऋषीणां परमं चात्र लोकतत्त्वमनुत्तमम् ।।१९२।।

वेद को चार भागों में अपनी बुद्धि से कैसे विभक्त किया—इन सबों का वर्णन है।।१७५-१७८।। तत्पश्चात् उनके शिष्यों ने शाखा-विस्तार किया। षड्गुणीय प्रयोगों से स्वयंभू प्रभु ब्रह्मा ने धर्म की लालसा से पुण्यप्रदेश पाने के इच्छुक मुनियों की पूछताछ करने पर उनकी हित-कामना से सुन्दर नाभिवाला दिव्य रूप नामक शुभ विक्रम अनुत्तम वर्तमान चक्र को बताकर कहा कि आलस्य छोड़ दृढ़तापूर्वक पीछे चले जाओ तब कल्याण प्राप्त होगा।। १७९-१८१।। जाते-जाते जहाँ इस धर्मचक्र की नेमी शीर्ण हो जाय उसी को बृहत् पुण्य देश समझना और ऐसा बतलाकर फिर ब्रह्मा अदृश्य हो गये। गङ्गा के गर्भ तथा नैमिषेय का वर्णन कर बताया है कि मुनियों ने नैमिषारण्य में यज्ञ किया। शरद्वान् के मरने पर नैमिषारण्य के ऋषियों ने बड़ी श्रद्धा से उसका उत्थापन किया।।१८२-१८५।। उसे इस सम्पूर्ण निःसीम पृथ्वी का राजा बनाकर ले आये और विधिपूर्वक शास्त्र की मर्यादा से उनका अतिथि-सत्कार किया।।१८६।। जब विधिपूर्वक आतिथ्य से राजा प्रसन्न हुआ तो उसको छिपकर क्रूर राक्षस स्वर्भानु (राहु) ने हर लिया। प्राचीनकाल में जैसे ऋषिगण हरे जाने पर भी गन्धर्वों के साथ कलाप ग्राम में रहनेवाले राजा ऐड के पीछे गये और यज्ञ में ऋषियों के साथ उनका मिलना आदि वर्णित है। महात्मा मुनियों के यज्ञ में सब वस्तु हिरण्मयी देखकर उस बारह वर्ष में होनेवाले नैमिषारण्य के ऋषियों के उस सत्र में कैसे विवाद हुआ और ऐड को उन्होंने कैसे स्थापित किया—सब वर्णित है।।१८७-१९०।। वन में ऐड के पुत्र आयुष को उत्पन्न कराकर उस यज्ञ को समाप्त करके आयुष की उपासना की। हे ऋषिश्रेष्ठो! यह सब जैसे-जैसे हुआ, बताया गया है एवं यहाँ ऋषियों का परम, सर्वोत्तम लोकतत्त्व भी वर्णित है। पूर्वकाल में जो उत्तम ज्ञान पुराणब्रह्म ने कहा था और द्विजों पर अनुग्रह करके

ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् । अवतारश्च रुद्रस्य द्विजानुग्रहकारणात् ।।१९३।।
तथा पाशुपता योगाः स्थानानां चैव कीर्तनम् । लिङ्गोद्भवस्य देवस्य नीलकण्ठत्वमेव च ।।१९४।।
कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना । धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१९५।।
कीर्तनं श्रवणं चास्य धारणं च विशेषतः । अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं संप्रचक्ष्यते ।।१९६।।
सुखमर्थः समासेन महानप्युपलभ्यते । तस्मात्किंचित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ।।१९७।।
पादमाद्यमिदं सम्यग्योऽधीयीत जितेन्द्रियः । तेनाधीतं पुराणं तत्सर्वं नास्त्यत्र संशयः ।।१९८।।
यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः । न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ।।१९९।।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।२००।।
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा । आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ।।२०१।।
यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् । निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२०२।।
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्तते । तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ।।२०३।।

अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्वकाले च करोति सर्गं संहारकाले पुनराददीत ।।२०४।।

।। इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादेऽनुक्रमणिका नाम प्रथमोऽध्यायः ।।

जो रुद्र का अवतार हुआ तथा पाशुपत योग एवं स्थान और लिङ्ग की उत्पत्ति तथा महादेव का कण्ठ कैसे नीला हुआ, सब बताया गया है। यहाँ ब्रह्मवादी वायु ने विप्रों से सब पापों को नाश करनेवाले तथा धन, यश और आयु देनेवाले इस पुराण को कहा है।।१९१-१९५।। इस पुराण का श्रवण, कीर्त्तन और विशेष रूप से धारण ही फलदायक है, इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है। लम्बी बात भी थोड़े में कहने पर सहज में समझ ली जाती है, इसीलिए पहले संक्षेप में कहकर पीछे से विस्तारपूर्वक कहूँगा। जो जितेन्द्रिय इस पाद को भली-भाँति पढ़ लेता है उसने इस समस्त पुराण को पढ़ लिया, इसमें सन्देह नहीं।।१९६-१९८।। जो द्विज अङ्गों और उपनिषदों के साथ चारों वेदों को जानता है; किन्तु पुराण नहीं जानता, वह चतुर नहीं हो सकता। वेद को इतिहास और पुराण द्वारा बढ़ाना चाहिए; अल्प विद्यावाले से वेद डरता है कि यह मुझे मार डालेगा अर्थात् अर्थ का अनर्थ कर देगा। साक्षात् स्वयंभू ने इस अध्याय को कहा है, जो इसका अभ्यास करता है उसकी आयी हुई आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और यथेष्ट गति उसे मिलती है। यह पुरा (अर्थात् पहले-पहले) अनन (अर्थात् प्राणन) करता है इसलिए इसे पुराण कहते हैं; जो इसकी व्याकृति को जानता है, वह सब पापों से छूट जाता है। इस समस्त संसार में नारायण व्याप्त रहते हैं उस जगत् के स्रष्टा के भी स्रष्टा देव महेश्वर हैं। अतएव संक्षेप में सुन लीजिये कि यह समस्त पुराण महेश्वर है। सर्ग काल में यही सृष्टि करते और संहार काल में प्रलय करते हैं।।१९९-२०४।।

।। श्रीवायुमहापुराण के प्रक्रियापाद में अनुक्रमणिका कथन नाम का पहला अध्याय समाप्त ।।१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणम्

प्रत्यब्रुवन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः। कुत्र सत्रं समभवत्तेषामद्भुतकर्मणाम्।।१।।
कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्तत। आचचक्ष पुराणं च कथं तेभ्यः प्रभञ्जनः।।२।।
आचक्ष्व विस्तरेणेदं परं कौतूहलं हि नः। इति संनोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः।।३।।
शृणुध्वं तत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम्। यावन्तं चाभवत्कालं यथा च समवर्तत।।४।।
सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा। सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान्।।५।।
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत्स्वयम्। इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान्।।६।।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रे महात्मनाम्। विबुधा ईजिरे तत्र सहस्रं प्रतिवत्सरान्।।७।।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत। कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्।।८।।
यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता। रोहिणी सुषुवे तत्र ततः सौम्योऽभवत्सुतः।।९।।
शक्तिज्येष्ठाः समभवन्वशिष्ठस्य महात्मनः। अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः।।१०।।
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना। यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवशिष्ठयोः।।११।।

अध्याय २

फिर उन तपस्वी ऋषियों ने सूत जी से कहा—उन विचित्रकर्त्ता ऋषियों का यज्ञ कहाँ हुआ? कितना समय लगा? और किस प्रकार वह यज्ञ सम्पन्न हुआ? वायुदेव ने उन ऋषियों को कैसे पुराण सुनाया? यह बात विस्तार से बतलाइये। हम लोगों को बड़ा कुतूहल हो रहा है।।१-२।। ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत जी मधुर वचन बोले—उन धीर मुनियों ने जहाँ उत्तम यज्ञ किया, जितना समय उसमें लगा एवं जिस प्रकार वह सम्पन्न हुआ, ये सारी बातें आप लोग सुनिये।।३-४।। जहाँ विश्व की सृष्टि की इच्छा से प्राचीनकाल में विश्व के स्रष्टाओं ने सहस्र वर्षपर्यन्त पवित्र यज्ञ किया था, जिस यज्ञ में तप ही यजमान और ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुए थे, जिसमें इला ने पत्नी तथा बुद्धिमान् तेजस्वी मृत्यु ने शामित्र (पशुबन्धन-स्थान) का कार्य किया था। महात्माओं के उस सत्र में जहाँ देवों ने सहस्र वर्ष तक यज्ञ किया था; घूमते-घूमते धर्मचक्र की नेमि विशीर्ण हो गयी इसीलिए जिस मुनिपूजित प्रदेश का अर्थतः नैमिष नाम पड़ा। जहाँ सिद्धों और चारणों से सेवित गोमती है, वहाँ रोहिणी से सौम्य नामक सुत उत्पन्न हुआ।।५-९।। जहाँ महात्मा वशिष्ठ तथा अरुन्धती के अति तेजस्वी सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें शक्ति ज्येष्ठ था; जहाँ शक्ति ने कल्माषपाद ऋषि को शाप दिया; जहाँ विश्वामित्र और वशिष्ठ में वैर हुआ, जहाँ अदृश्यन्ती में पराशर मुनि उत्पन्न हुए और जिनके जन्म लेने पर भी वशिष्ठ का पराभव बना रहा, वहाँ उस नैमिषक्षेत्र में उन ब्रह्मवादियों ने यज्ञ किया। अतएव वे ऋषि

अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः। पराभवो वशिष्ठस्य यस्मिञ्ज्ञातेऽप्यवर्तत ।।१२।।
तत्र त ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः। नैमिष ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः ।।१३।।
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम्। पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुंधराम् ।।१४।।
अष्टादशसमुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः। तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ।।१५।।
उर्वशी चकमे यं च देवहूतिप्रणोदिता। आजहार च तत्सत्रं स्वर्वेश्यासहसंगतः ।।१६।।
तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेयाः प्रचक्रिरे। यं गर्भे सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ।।१७।।
तदुल्बं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं प्रत्यपद्यत। हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ।।१८।।
विश्वकर्मा स्वयं देवो भावयँल्लोकभावनाम्। बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेषाममिततेजसाम् ।।१९।।
ऐडः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन्। तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ।।२०।।
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुं प्रचक्रमे। नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ।।२१।।
निजघ्नुश्चापि संक्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः। ततो निशान्ते राजानं मुनयो दैवनोदिताः ।।२२।।
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम्। और्वशेयं ततस्तस्य पुत्रं चक्रुर्नृपं भुवि ।।२३।।
नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते। स तेषु वर्तते सम्यग्धर्मशीलो महीपतिः ।।२४।।
आयुरारोग्यमत्युग्रं तस्मिन्स नरसत्तमः। सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः ।।२५।।
सत्रमारेभिरे कर्तुं यथावद्धर्मभूतये। बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्यं महात्मनाम् ।।२६।।

नैमिषेय कहे जाते हैं।।१०-१३।। वहाँ पर उन महामति मुनियों का वह सत्र विक्रमशाली भूपाल पुरूरवा के शासनकाल में बारह वर्ष तक हुआ। राजा पुरूरवा यद्यपि अठारह समुद्र के द्वीपों का उपभोग कर रहा था; किन्तु हमने सुना है कि रत्न के लोभ से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। देवहूति की प्रेरणा से उर्वशी ने उसका वरण किया और स्वर्ग की वेश्या के साथ उसने उस सत्र को नष्ट करने का प्रयत्न किया।।१४-१६।। परन्तु उस नरपति के शासनकाल में ही नैमिषेयों ने सत्र सम्पन्न किया। प्रदीप्त तेजवाले पावक से गङ्गा ने जो गर्भ प्रसव किया उस उल्ब को पर्वत पर रखा गया, जो सोना हो गया। तब उन अतुल तेजस्वी महात्माओं की यज्ञशाला स्वयं बृहस्पति देव विश्वकर्मा ने भगवान् का स्मरण करके सोने की बना दी। एक दिन आखेट खेलते-खेलते ऐल पुरूरवा वहाँ पहुँचा और सोने की बनी उस यज्ञशाला को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। लोभ से उसकी बुद्धि मारी गयी और उसने उसे लेना चाहा। तब नैमिषेय ऋषि राजा पर बहुत रुष्ट हुए और क्रोध में आकर दैववश उन मनीषी मुनियों ने उस राजा को रात बीतते-बीतते कुशवज्रों से मार डाला।।१७-२२।। कुशवज्रों से चूर्ण होकर महीपति ने शरीर छोड़ दिया। तब उर्वशी से उत्पन्न उसके पुत्र को पृथ्वी पर नरपति बनाया। उसी महात्मा को नहुष का पिता कहा जाता है। उस धर्मात्मा राजा ने ऋषियों के प्रति अच्छा बर्ताव किया। उस राजा की आयु और स्वास्थ्य बहुत उत्तम था। वह स्वयं बड़ा ही सज्जन था। उस राजा को प्रसन्न कर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ उन मुनियों ने धर्म की वृद्धि के लिए विधिवत् सत्र को प्रारम्भ किया। उन महात्माओं का वह यज्ञ बड़ा ही आश्चर्यजनक हुआ।।२३-२६।।

विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव । वैखानसैः प्रियसखैर्बालखिल्यैर्मरीचिकैः ।।२७।।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभैः । पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः ।।२८।।
संभारैस्तु शुभैर्जुष्टं तैरेवेन्द्रसदो यथा । स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान्पितॄन्पित्र्यैश्च कर्मभिः ।।२९।।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन्यथाविधि । आराधयितुमिच्छन्तस्ततः कर्मान्तरेष्वथ ।।३०।।
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ।।३१।।
मन्त्रादितत्त्वविद्वांसो जगदुश्च परस्परम् । वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नुः प्रतिवादिनः ।।३२।।
ऋषयस्तत्र विद्वांसः सांख्यार्थन्यायकोविदाः । न तत्र दुरितं किञ्चिद्विदधुर्ब्रह्मराक्षसाः ।।३३।।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः । प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत ।।३४।।
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः । एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः ।।३५।।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान्पृथक्पृथक् । चक्रिरे पृष्ठगमनान्सर्वानयुतदक्षिणान् ।।३६।।
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् । पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्यदहं द्विजाः ।।३७।।
प्रणोदितश्च वंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः । शिष्यः स्वयंभुवो देवः सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।।३८।।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैर्यः समन्वितः । तिर्यग्योन्यादिभिर्धर्मैः सर्वलोकान्बिभर्ति यः ।।३९।।
सप्तकन्धादिकं शश्वत्प्लवते योजनाद्वरः । विषये नियता यस्य संस्थिताः सप्तका गणाः ।।४०।।
ब्यूहांस्त्रयाणां भूतानां कुर्वन्यश्च महाबलः । तेजसश्चाप्युपध्यानं दधातीमं शरीरिणम् ।।४१।।

पूर्वकाल में विश्व की सृष्टि की इच्छा से विश्वस्त्रष्टाओं की भाँति उस यज्ञ में वैखानस, प्रिय मित्र बालखिल्य, मरीचि तथा अन्य सूर्य और अग्नि जैसी कान्तिवाले मुनिगण एवं पितर, देवता, अप्सराएँ, सिद्ध, गन्धर्व, नाग तथा चारणगण वहाँ उपस्थित हुए। उस यज्ञ में इन्द्रपुरी की भाँति उत्तमोत्तम सामग्रियाँ भरी थीं एवं स्तोत्र, सत्र तथा ग्रहों से देवताओं की, पित्र्य कर्मों से पितरों की एवं जाति के अनुसार गन्धर्व आदि की पूजा उन आराधना के प्रेमी ऋषियों ने की।।२७-३०।। उस यज्ञ में गन्धर्व साम गान करते थे, अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा मुनिगण चित्र-विचित्र अक्षरों और पदोंवाली वाणी का उच्चारण कर रहे थे। मन्त्र आदि तत्त्वों के विद्वान् आपस में वार्त्तालाप करते तथा कुछ वितण्डा से ही अपने प्रतिवादियों को परास्त कर रहे थे। वहाँ पर सांख्य तथा न्यायशास्त्र के विद्वान् ऋषिगण एकत्र थे। ब्रह्मराक्षसों ने किसी प्रकार का उपद्रव वहाँ नहीं किया।।३१-३३।। यज्ञघातक दैत्य या यज्ञचोर असुर नहीं पहुँचे और न वहाँ कोई प्रायश्चित्त या दुर्यज्ञ ही हुआ। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के योग से सारी विधि उत्तम रीति से हुई। इस प्रकार मनीषियों ने वहाँ बारह वर्षपर्यन्त यज्ञ किया। भृगु आदि धीर ऋषियों ने वहाँ पृथक्-पृथक् ज्योतिष्टोम किये एवं पर्याप्त दक्षिणा देकर सब को विदा किया ।।३४-३६।। 'ब्राह्मणो! यज्ञ के समाप्त होने पर सब ने महाराज शक्तिशाली वायु से वही बात पूछी जो बात आप लोगों ने हमसे आज पूछी है। वंश वर्णन के लिए प्रेरणा पाकर उस प्रभु ने उन ऋषियों से सब कथाएँ कह दीं। भगवान् वायु स्वयंभू के शिष्य, वशी एवं प्रत्यक्षद्रष्टा हैं।।३७-३८।। अणिमा आदि आठों ऐश्वर्यों से युक्त होकर वे पशु, पक्षी आदि की सहायता से धर्मपूर्वक सारे लोकों का भरण-पोषण करते हैं। सदा वे सातों स्कन्धों में योजन-योजन उड़ा करते हैं और उनके राज्य में सातों गण अपने-अपने स्थान पर नियत हैं। वे महाबली तीनों भूतों को, एक में संगठित कर प्रज्वलित तेज द्वारा इस शरीरी जीव का पोषण

प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः । प्रेर्यमाणाः शरीराणां कुर्वंते यास्तु धारणम् ।।४२।।
आकाशयोनिर्द्विगुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः । तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययं भावो मनीषिभिः ।।४३।।
तत्राभिमानी भगवान्वायुश्चातिक्रियात्मकः । वातारणिः समाख्यातः शब्दशास्त्रविशारदः ।।४४।।
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान्मुनीन्प्रह्लादयन्निव । पुराणज्ञः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ।।४५।।

।। इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रजापतिसृष्टिकथनम्

सूत उवाच

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्त्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ।।१।।
प्रजापतींल्लोकनमस्कृतांस्तथा स्वयंभुरुद्रप्रभृतीन्महेश्वरान् ।
भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ।।२।।
वशिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान्रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ।।३।।

करते हैं। प्राण आदि पाँच वृत्तियाँ इन्द्रियों की वृत्तियों से प्रेरित होकर शरीर को धारण करती हैं। इस तत्त्व को मनीषियों ने आकाश से उत्पन्न, दो गुण (शब्द, स्पर्श) वाला तथा तैजस प्रकृति का कहा है।।३९-४३।। वे अभिमानी देवता भगवान् वायु अतिक्रियाशील, शब्दशास्त्रविशारद तथा वातारणि कहलाते हैं। उस पुराणवेत्ता पवनदेव ने उन सहृदय मुनियों को सुन्दर पौराणिक आख्यान सुनाकर गद्गद कर दिया।।४४-४५।।

।। श्रीवायुमहापुराण का द्वादश वार्षिक यज्ञ वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।।२।।

अध्याय ३

सूत जी बोले–उस वीर्यवान्, कर्मठ, अति बुद्धिमान्, तेजस्वी सुरर्षभ सहस्त्रों सूर्य और अग्नि के समान दीप्तिमान् त्रिलोकी का संहार एवं सृष्टि करनेवाले महेश्वर को बार-बार नमस्कार है। लोकपूज्य प्रजापतिगण, स्वयंभू रुद्र आदि महेश्वर, भृगु, मरीचि, परमेष्ठी मनु, रजोगुण एवं तमोगुण धर्मवाले कश्यप, वशिष्ठ, दक्ष,

तथैव चु (च ?) क्रोधनमेकविंशति प्रजाविवृद्ध्याऽपितकार्यशासनम् ।
पुरातनानप्यपरांश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान्सगणानवस्थितान् ।।४।।
(*मनूंश्च सर्वानखिलानवस्थितां) स्तथैव चान्यानपि धैर्यशोभिनः ।
मुनीन्बृहस्पत्युशनः पुरोगमांस्तपः शुभाचारऋषीन्दयान्वितान् ।।५।।
प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीं प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमाम् ।
सुरेशदेवर्षिगणैरलंकृतां शुभामतुल्याममदामृषिप्रियाम् ।।६।।
प्रजापतीनामपि चोल्बणार्चिषां (+ विशुद्धवाग्बुद्धिशरीरतेजसाम् ।
तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम्) ।।७।।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्तिताम् ।
समासबन्धैर्नियतैर्यथातथं विशब्दनेनापि मनःप्रहर्षिणीम् ।।८।।
यस्यां च बद्धा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।
यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूतिः ।।९।।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरं च ।
शुक्रं तपः सत्त्वमभिप्रकाशं तद्व्यष्टि नित्यं पुरुषं द्वितीयम् ।।१०।।
तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयंभुवा लोकपितामहेन ।
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकात्कालस्य योगान्नियमावधेश्च ।।११।।

अत्रि, पुलस्त्य, कर्दम, रुचि, विवस्वान् एवं क्रतु तथा मुनि अङ्गिरा और प्रजापति को भावपूर्वक सिर से प्रणाम करके, इक्कीस क्रोधनों–जिन्हें प्रजा की वृद्धि के लिए कार्यशासन दे दिया गया है–एवं अन्य पुरातन शाश्वतों, इतर गणों के साथ वर्तमान समस्त मनुओं, अन्य धैर्यशील एवं तपस्या और शुभ आचारयुक्त बृहस्पति, शुक्र प्रभृति मुनियों का अभिवादन कर कवि के पापों को नाश करनेवाली अनुत्तमा प्रजापति की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, जो सृष्टि, सुरेश, देवों और ऋषियों के संघ से भूषित, शुभ, अतुल्य, अमद एवं ऋषियों की प्रिय है।।१-६।। जिसमें प्रदीप्त कान्तिवाले प्रजापतियों, विशुद्ध वाणी, बुद्धि और तेजधारी तपस्वियों और ब्रह्मा के दिन आदि काल का वर्णन तथा पूर्णरूप से पौरुष एवं श्री का विज्ञापन है, जो श्रुति और स्मृति में विस्तार से कही गयी है, जिस उत्तम से भी उत्तम सृष्टि-कथा को वायुदेव ने कहा है, और जो नियत समासबन्धों एवं विविध शब्दों से चित्त को प्रफुल्लित करनेवाली है।।७-८।।

जिस प्रजा-सृष्टि की ब्रह्मा ने सर्वप्रथम बुद्धिपूर्वक रचना की, जिससे ईश्वर का प्रधान कर्त्तव्य और प्रेरणा लक्षित होती है, उस प्रकृति-प्रसूति प्रधान ब्रह्म का, जिसे अप्रमेय कारण भी कहते हैं, यहाँ वर्णन है। जो आत्मा,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतं नास्ति क. पुस्तके ।

क्षेत्रज्ञयुक्तान्नियतान्विकाराँल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून् ।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाऽष्टौ संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ।।१२।।
देवासुराद्रिद्रुमसागराणां (*गन्धर्वयक्षोरगमानुषाणाम्) ।
मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानां पिशाचयक्षोरगराक्षसानाम् ।।१३।।
ताराग्रहार्कर्क्षनिशाचराणां मासर्तुसंवत्सररात्र्यहानाम् ।
दिक्कालयोगादियुगायनानां वनौषधीनामपि वीरुधां च ।।१४।।
जलौकसामप्सरसां पशूनां विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानाम् ।
यत्सूक्ष्मगं यद्भुवि यद्वियत्स्थं यत्स्थावरं यत्र यदस्ति किंचित् ।।१५।।
सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्तिराब्रह्मणो यावदियं प्रसूतिः ।
छन्दांसि वेदाः सऋचो यजूंषि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञः ।।१६।।
आजीव्यमेषां यदभीप्सितं च देवस्य तस्यैव च वै प्रजानाम् ।
वैवस्वतस्यास्य मनोः पुरस्तात्संभूतिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।।१७।।
येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधानमापूरितं चोपरिभूषितं च ।।१८।।

गुहा, योनि एवं चक्षु, क्षेत्र, अमृत, अक्षर, शुक्र, तप तथा प्रकाशमय सत्त्व है, उसकी यहाँ चर्चा है। द्वितीय, नित्य, व्यष्टि पुरुष लोक पितामह स्वयंभू पुरुष से संयुक्त, रजोगुण की अधिकता और उत्पादकता से काल संयोग तथा नियम के कारण, क्षेत्रज्ञ से संयुक्त, लोक की सन्तान वृद्धि के निमित्तभूत समस्त विकार तथा आठों प्रकृतियाँ महेश्वर के संकल्प मात्र से उत्पन्न हुईं ।।९-१२।। देव, असुर, अद्रि; द्रुम तथा समुद्र की (गन्धर्व, यक्ष, उरग तथा मनुष्य की); मनु, प्रजापति, ऋषि, पितर तथा द्विजातियों की; पिशाच, यक्ष, उरग तथा राक्षसों की; तारा, ग्रह, सूर्य, नक्षत्र एवं निशाचरों की; मास, ऋतु, संवत्सर, रात्रि तथा दिनों की; दिक्, काल, योग आदि तथा युग और अयनों की; वन की ओषधियों एवं लताओं की, जलचर तथा अप्सराओं की, पशुओं, विद्युत्, सरित्, मेघ एवं विहङ्गों की; जो कोई सूक्ष्म गतिवाले, भूमि पर या आकाश में रहनेवाले, या स्थावर आदि जो कुछ हैं। अर्थात् ब्रह्मा से लेकर जो कुछ उत्पन्न हुआ सब की गति और विभाग का यहाँ वर्णन है। छन्द, वेद, ऋक्, यजु, साम, सोम, यज्ञ एवं इनके आश्रय और जो कुछ ईश्वर के या उनकी प्रजाओं के अभीप्सित पदार्थ हैं वे सब एवं पहले वैवस्वत मनु की फिर उन लोकपूज्य पुण्यात्माओं की उत्पत्ति वर्णित है जिनकी प्रसूति से तीनों लोक सुरेश, देवर्षि एवं मनु आदि वंश भरे-पूरे और सुशोभित हैं ।।१३-१८।। रुद्र के शाप से दक्ष का फिर मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करना, शिव का

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतं नास्ति क. पुस्तके।

रुद्रस्य शापात्पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके।
वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।।१९।।
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि युगेषु संभूतिविकल्पनं च।
ऋषित्वमार्षस्य च संप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ।।२०।।
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान्व्यासाश्च तेऽत्र क्रमशो निबद्धाः।
कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ।।२१।।
+ अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्मात्मनां स्वर्गनिवासिनां वा।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्केण तेषामपि च प्रमाणम् ।।२२।।
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ।।२३।।
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात्समस्तमाविष्कृतधीधृतिभ्यः।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ।।२४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

पृथ्वी पर नियम से रहना तथा दक्ष का प्रतिशाप पाना, मन्वन्तरों का परिवर्तन, तथा युग-युग में संभूति (उत्पत्ति), उनका बार-बार जन्म लेकर ऋषि होना, युगादिकों में ऋषियों की वृद्धि सब यहाँ बताया गया है।।१९-२०।। द्वापर युगों में जो-जो व्यास वेदों को प्रकाशित करते हैं उनका क्रमशः वर्णन है; कल्पों, भुवनों तथा ब्रह्मा के दिन की गणना भी यहाँ दी हुई है। अण्डज, उद्भिज, स्वेदज तथा जरायुज जीवों तथा धर्मात्मा स्वर्गवासियों एवं यातना स्थान में पहुँचे सभी प्राणियों का प्रमाण तर्कयुक्त दिया गया है। प्रत्यक्ष के आत्यन्तिक, प्राकृतिक और नैमित्तिक तीनों कारण, विशेष रीति से बन्ध और मोक्ष तथा प्रधान संसार की गति का वर्णन है। प्रकृतिस्थ अवस्था में कारणों की कैसी स्थिति रहती है तथा फिर कैसे प्रवृत्ति होती है ये सब बातें शास्त्र की युक्ति और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानों के लिए प्रकाशित की गयी हैं। ब्राह्मणो! तदनुरूप ही पूर्व ऋषियों ने जैसे कहा है, मैं कह रहा हूँ, आप लोग सुनिये।।२१-२४।।

श्रीवायुमहापुराण के प्रक्रियापाद में सृष्टिप्रकरण नामक तीसरा अध्याय समाप्त।।३।।

+ 'अण्डोद्भिज' इत्यार्षः प्रयोगः।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सृष्टिप्रकरणम्

ऋषयस्तु ततः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः। प्रत्यूचुस्ते ततः सर्वे सूतं पर्याकुलेक्षणाः ।।१।।
भवान्वै वंशकुशलो व्यासात्प्रत्यक्षदर्शिवान्। तस्मात्त्वं भवनं कृत्स्नं लोकस्यामुष्य वर्णय ।।२।।
यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम्। तेषां पूर्वर्षिसृष्टिं च विचित्रां तां प्रजापतेः ।।३।।
असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा लोमहर्षणः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः ।।४।।

लोमहर्षण उवाच

पृष्टां चैतां कथां दिव्यां श्लक्ष्णां पापप्रणाशिनीम्। कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मताम् ।।५।।
यश्चेमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः। श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषतः ।।६।।
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च। दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्तनात् ।।७।।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते। विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ।।८।।
कीर्त्यमानं निबोधध्वं सर्वेषां कीर्तिवर्धनम्। धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ।।९।।
कीर्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकारिणाम्। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।।१०।।

अध्याय ४

इतना सुनकर नैमिषारण्य के रहनेवाले समस्त ऋषियों ने आँखों में आँसू भरकर सूत जी से कहा–"आप वंशज्ञ हैं, आपने व्यास जी से सब कुछ प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर लिया है इसलिए आप इस लोक की सारी उत्पत्ति का वर्णन कीजिये। जिसके जो-जो वंशज हैं उन सब को, प्रजापति की विचित्र सृष्टि को तथा पूर्व ऋषियों की सृष्टि को जानने की हम लोगों की लालसा है" ।।१-३।। ऋषियों के बार-बार पूछने पर सत्पुरुष महात्मा लोमहर्षण विस्तारपूर्वक क्रम से कहने लगे।।४।।

लोमहर्षण ने कहा–"यह जो दिव्य, मधुर, पापनाशिनी और विचित्र, अनेकार्थयुक्त, वेदसम्मत कथा हमसे पूछी गयी है, और जो कुछ हम कह रहे हैं उसे जो सदा स्मरण रखेगा या बार-बार सुनेगा, ब्राह्मणों एवं विशेषकर यतियों को पवित्रता से समाहित चित्त होकर पर्व के दिनों में तीर्थों और मन्दिरों में सुनायेगा वह इस पुराण कीर्त्तन के फलस्वरूप दीर्घ आयु प्राप्त करेगा। अपने वंश को जो धारण करता है; स्वर्गलोक में उसकी पूजा होती है। जैसा सुने ठीक शब्दशः उसको कीर्त्तन करने से सभी कीर्त्ति विस्तृत होती है।।५-८।। स्थिर कीर्त्तिवाले समस्त पुण्यात्माओं के गुणगान से धन, यश तथा स्वर्ग मिलता है, शत्रुओं का नाश होता और आयु बढ़ती है। सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित यही पुराण के पाँच लक्षण हैं। यह न्याय से भी न्याय और शुचि से भी निश्चित ही शुचि है। वेदसम्मत वायु प्रोक्त पुराण

वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्। कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ।।११।।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसंमितम्। प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।।१२।।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः। उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।।१३।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम्। एवं हि पादाश्चत्वारः समासात्कीर्तिता मया ।।१४।।
वक्ष्याम्येतान्पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम्। तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।।१५।।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने। ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्वा स्वयंभुवे ।।१६।।
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम्। पञ्चप्रमाणं षट्श्वेतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम् ।।१७।।
असंशयात्मवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम्। अव्यक्तकारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् ।।१८।।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः। गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।।१९।।
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्। जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।।२०।।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल। अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभावप्ययम् ।।२१।।
असांप्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत। तस्याऽऽत्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।।२२।।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्गुणभावे तमोमये। सर्वकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।।२३।।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान्प्रादुर्बभूव ह। सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृतः ।।२४।।
सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रं प्रकाशकम्। मनो महांश्च विज्ञेयो मनस्तत्कारणं स्मृतम् ।।२५।।

मैं सुनाऊँगा। इस पुराण में प्रबोध और प्रलय, स्थिति और उत्पत्ति वर्णित हैं।।९-१२।। कथनीय वस्तुओं का संग्रह पहला प्रक्रिया पाद, उपोद्घात पाद, अनुषङ्ग पाद तथा उपसंहार पाद भी हैं। ये धर्म, यश, आयु के देनेवाले तथा सब पापों का नाश करनेवाले हैं। इस प्रकार चारों पादों को संक्षेप में बतला दिया। अब इनको क्रम से विस्तारपूर्वक सुनाऊँगा।।१३-१४।। उस हिरण्यगर्भ पुरुषेश्वर, अज, प्रथम, विशिष्ट, प्रजारूप, लोकतन्त्र स्वयंभू ब्रह्मा को नमस्कार करके महत् तत्त्व से लेकर विशेषपर्यन्त नाना रूपों और लक्षणों के साथ पाँच प्रमाणों तथा छह श्वेतोंवाली, पुरुष से अधिष्ठित वन्दनीय अनुत्तम भूतसृष्टि को निस्सन्देह बताऊँगा।।१५-१७$\frac{१}{२}$।।

अव्यक्त कारण जो सदा सत्, असत् रूप में रहता है जिसे तत्त्वचिन्तक लोग प्रधान एवं प्रकृति तथा गन्ध, वर्ण, रस से शून्य, शब्द स्पर्श से रहित, अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य, अपने में उपस्थित, जगत् का आदि कारण, महत् भूत, परब्रह्म, सनातन तथा समस्त भूतों के विग्रह (शरीर रूप) और अव्यक्त कहते हैं, जो आदि अन्त से रहित, सूक्ष्म, निर्गुणात्मक, सब की उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान, असाम्प्रत, अविज्ञेय ब्रह्म पहले हुआ, उसी की आत्मा से यह समस्त तमोमय जगत् व्याप्त था।।१८-२२।। उन गुणों की साम्यावस्था, तमोमय वह केवल एक गुण-भाववाले सृष्टि काल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से गुणयुक्त महान् नामक तत्त्व प्रकट हुआ जो पहले सूक्ष्म महत् अव्यक्त से ढका था। पहले सत्त्व बहुल महान् प्रकट हुआ। सत्त्वमात्र प्रकाशरूप मन को ही महान् समझना चाहिए। उसका कारण भी मन ही कहलाता है। क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से वह लिङ्ग मात्र उत्पन्न हुआ, लोक के तत्त्वों के कारण धर्म आदि उसके रूप हैं।।२३-२६।।

लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः। धर्मादीनां तु रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः ।।२६।।
महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया। मनो महान्मतिर्ब्रह्मा भूबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।।२७।।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद्विपुरं चोच्यते बुधैः। मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं विभुः ।।२८।।
सौ(सू)क्ष्मत्वेन विवृद्धानां तेन तन्मन उच्यते। तत्त्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः ।।२९।।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततः स्मृतः। बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च ।।३०।।
पुरुषोपभोगसम्बन्धात्तेन चासौ मतिः स्मृतः। बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च भावानां सलिलाश्रयात् ।।३१।।
यस्माद्बृंहयते भावान्ब्रह्मा तेन निरुच्यते। आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान्देहाननुग्रहैः ।।३२।।
तत्त्वभावांश्च नियतांस्तेन भूरिति चोच्यते। बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वभावान्हिताहितान् ।।३३।।
यस्माद्बोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते। ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात्संवर्तते ततः ।।३४।।
भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः। ख्यायते तद्गुणैर्वाऽपि नामादिभिरनेकशः ।।३५।।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते। साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।।३६।।
तस्माज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते। ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च ।।३७।।
चिनोति यस्माद्भोगार्थं तेनासौ चितिरुच्यते। वर्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।।३८।।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते। कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।।३९।।
तस्माद्विन्देर्विदश्चैव संविदित्यभिधीयते। विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्वं तस्मिंश्च विद्यते ।।४०।।

सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् ही सृष्टि करता है। उसी को पण्डित लोग मन, महान्, मति, ब्रह्मा, भू, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विपुर कहते हैं। यह विभु, सूक्ष्मता से विवृद्ध समस्त भूतों की चेष्टा के फल का मनन कर लेता अर्थात् उनको समझ जाता है इसलिए इसको मन कहते हैं।।२७-२९।। तत्त्वों में सबसे प्रथम उत्पन्न होने, परिमाण में अथच शेष गुणों से बड़ा होने के कारण इसको महान् कहते हैं। यह मान धारण करता जगत् तथा पुरुष के भोग के सम्बन्ध से विभाग को समझता और जानता है इसलिए उसे मति कहते हैं। बृहत् और बृंहण होने के कारण सलिल के आश्रय से भावों को बढ़ाता है अतएव इसका नाम ब्रह्मा है।।३०-३१½।। समस्त देहों तथा नियत तत्त्व भावों को अनुग्रह द्वारा भरण करता है अतएव भू कहलाता है। इसी से पुरुष हित, अहित सारे भावों का बोध करता तथा कराता है अतएव इसकी बुद्धि संज्ञा हुई। भोग के ज्ञाननिष्ठ होने के कारण इसी से ख्याति तथा प्रत्युपभोग होता है एवं अपने गुणोंवाले अनेक नामों से इसकी ख्याति है अतएव महत् को ख्याति कहते हैं। ये महात्मा सबको साक्षात् जानते हैं अतएव इनका नाम ईश्वर है।।३२-३६।। इसी से ग्रह भी उत्पन्न हुए इसलिए इसका नाम प्रज्ञा है। ज्ञान आदि रूप तथा क्रतु, कर्मफल सब को भोग के लिए चयन करता है अतएव इसे चिति कहते हैं। वर्तमान, अतीत तथा अनागत सभी कार्यों का स्मरण रखता है इसलिए इसका नाम स्मृति है। समस्त ज्ञान को प्राप्त करता है अतएव इसकी संज्ञा माहात्म्य है। विन्दन अर्थात् प्राप्त करने एवं वेदन अर्थात् ज्ञान के कारण तथा उसमें सब कुछ एवं यह सब में विद्यमान रहता है इसलिए भी इसे विशाल बुद्धिवाले

तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरैः । ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याह भगवाञ्ज्ञानसन्निधिः ।।४१।।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः । सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः ।।४२।।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते । क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः ।।४३।।
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते । नोत्पादितत्वात्पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति चोच्यते ।।४४।।
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् । व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः ।।४५।।
महासृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया । संकल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ।।४६।।
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः । त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्त्वराजसतामसः ।।४७।।
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहंकारस्ततोऽभवत् । महता चाऽऽवृतः सर्गो भूतादिर्विकृतस्तु सः ।।४८।।
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहंकारादजायत । भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ।।४९।।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह । (+ आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं शब्दलक्षणम् ।।५०।।
आकाशं शब्दमात्रं तु भूतादिश्चाऽऽवृणोत्पुनः । शब्दमात्रं तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह) ।।५१।।
*बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।।५२।।
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।।५३।।
स्पर्शमात्रं तु वै वायो रूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।।५४।।

संविद् कहते हैं। ज्ञाननिधि ने इसे ज्ञान रूप होने के कारण ज्ञान कहा है।।३७-४१।। द्वन्द्वों के विपुर (विशिष्ट स्थान) होने के कारण इसे पण्डितगण विपुर कहते हैं। लोकों का सर्वेश होने से यह अवश्य ही ईश्वर है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा' एवं उद्भूत होने से 'भव' तथा क्षेत्र के विज्ञान एवं एकत्व के कारण इसे 'क' कहते हैं। पुरी में शयन करता है इसलिए पुरुष कहलाता है। किसी ने इसे उत्पन्न नहीं किया एवं सबसे पहले होने के हेतु इसे स्वयंभू कहते हैं।।४२-४४।।

सद्भावों के चिन्तन करनेवालों तथा तत्त्वों के भाव जाननेवालों ने अनुत्तम आद्य तत्त्व की इस प्रकार व्याख्या पर्यायवाची शब्दों से की है। सर्ग की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् सृष्टि करता है। संकल्प तथा अध्यवसाय इसकी दो वृत्तियाँ हैं। लोकों के तत्त्व पदार्थ के हेतु धर्म आदि इसके रूप हैं तथा यह सात्त्विक, राजस एवं तामस रूप से त्रिगुण है, ऐसा जानना चाहिए।।४५-४७।। त्रिगुण में रजोगुण की अधिकता से अहङ्कार उत्पन्न हुआ, वह महान् से आवृत, आदि भूत और विकृत था, यह सृष्टि महत्तत्त्व से रुकी थी। उस तमोबहुल अहङ्कार से भूततन्मात्र की सृष्टि हुई। वह भूतादि अहंकार तामस ही तो है। भूतादि के विकृत होने पर शब्द तन्मात्रा की सृष्टि हुई और उससे शब्द लक्षणवाला महाविवर आकाश उत्पन्न हुआ।।४८-५०।। फिर भूतादि अहंकार ने शब्द मात्र आकाश को ढँक लिया और उस शब्दमात्र आकाश ने स्पर्शतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे बलवान् वायु उत्पन्न हुआ, उसका गुण स्पर्श है। शब्दमात्र आकाश ने स्पर्शमात्र को ढक लिया। वायु ने विकृत होकर रूप तन्मात्रा की सृष्टि की। वायु से ज्योति की उत्पत्ति होती है। ज्योति का गुण रूप कहा जाता है। वायु की स्पर्शतन्मात्रा को रूपतन्मात्रा ने आच्छादित कर लिया। फिर ज्योति की विकृति से रसतन्मात्रा की उत्पत्ति हुई।।५१-५४।। तत्पश्चात् ताप से रसमय जल

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

* इदमर्धं ङ. पुस्तके नास्ति।

सम्भवन्ति ततो ह्यापः पश्चात्तापै रसात्मिकाः । रसमात्रस्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ।।५५।।
आपो रसान्विकुर्वत्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे । संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः ।।५६।।
रसमात्रं तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत् । तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।।५७।।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः । अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ।।५८।।
भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् । वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् ।।५९।।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते । बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।।६०।।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश । एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ।।६१।।
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी । शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ।।६२।।
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् । गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यं च कर्म च ।।६३।।
आकाशं शब्दमात्रं च स्पर्शमात्रं समाविशत् । द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ।।६४।।
रूपं तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ । त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ।।६५।।
स शब्दस्पर्शरूपश्च रसमात्रं समाविशत् । तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ।।६६।।
स शब्दस्पर्शरूपेषु गन्धस्तेषु समाविशत् । संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्तो महीमिमाम् ।।६७।।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूलभूतेषु दृश्यते । शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।।६८।।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् । भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ।।६९।।

की सृष्टि होती है। जल की यह तन्मात्रा भी रूपतन्मात्रा से आवृत होती है। जलीय रसमात्रा की विकृति से गन्धमात्रा का उद्भव हुआ। इसी से संघात (पृथ्वी) होता है, उसका गुण गन्ध है। रसमात्रावाला तोय गन्धमात्रा को भूतों में ढँके रहा। उन-उन भूतों में वह वह (शब्द आदि) मात्रा रहती है इसलिए तन्मात्रा नाम पड़ा। नाम अविशेष होने तथा शान्त, घोर एवं फिर मूढ़ न होने के कारण इन तन्मात्राओं को अविशेष कहते हैं।।५५-५८।। इन भूतों और तन्मात्राओं की सृष्टि को पारस्परिक समझना चाहिए। अन्य सात्त्विक वैकारिक अहंकार से सत्त्व के उद्रेक के कारण वैकारिक सृष्टि एक साथ प्रवृत्त होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। साधक या करण का नाम इन्द्रिय है। ये दस वैकारिक देव हैं। ग्यारहवाँ मन भी वैकारिक देव ही है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा एवं पाँचवीं नासिका-- ये शब्द आदि की प्राप्ति या बोध के निमित्त हैं, इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। दोनों पाद, गुदा, लिंग, दोनों हाथ तथा दसवीं इन्द्रिय वाणी है। इनके कर्म गति, विसर्ग, आनन्द, शिल्प तथा वाक्य हैं। शब्दमात्र आकाश ने स्पर्शमात्र में प्रवेश किया अतएव वायु शब्द एवं स्पर्श दो गुणोंवाला हुआ।।५९-६४।। वैसे ही शब्द तथा स्पर्श ये दोनों गुण रूप में आविष्ट हुए और उससे शब्द, स्पर्श तथा रूप इन तीनों गुणोंवाली अग्नि हुई। शब्द, स्पर्श एवं रूप फिर रसमात्र में समाविष्ट हुए और उनसे चारों गुणोंवाला रसमय जल हुआ। इन गुणों से गन्ध संयुक्त हुआ और उससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। इसीलिए स्थूल भूतों में पृथ्वी पाँच गुणोंवाली दीखती है। इसी हेतु ये स्थूलभूत, शान्त, घोर तथा मूढ़ और विशेष कहे गये हैं।।६५-६८।। एक-दूसरे में प्रविष्ट होने के कारण ये एक-दूसरे को धारण करते हैं। यह सब

विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः। गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।।७०।।
तेषां यावच्च यद्यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम्। उपलभ्य शुचेर्गन्धं केचिद्वायोरनैपुणात् ।।७१।।
पृथिव्यामेव तद्विद्यादेषां वायोश्च संश्रयात्। (÷ एते सप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक्पृथक् ।।७२।।
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः। ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात्) ।।७३।।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च। महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ।।७४।।
(+ एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्। विशेषेभ्योऽण्डमभवद्बहत्तदुदकं च यत् ।।७५।।
तत्तस्मिन्कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणंस्तदा। प्राकृतेऽण्डे विबुद्धे सन्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंहितः ।।७६।।
[= स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते)। आदिकर्ता च भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्तत ।।७७।।
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः। सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः] ।।७८।।
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च। भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसंधिषु ।।७९।।
हिरणमयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं तन्महात्मनः। गर्भोदकं समुद्राश्च जराद्यस्थीनि पर्वताः ।।८०।।
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त वै। सप्तद्वीपा च पृथिवी समुद्रैः सह सप्तभिः ।।८१।।

केवल लोकालोक से सम्पूर्णतया आच्छन्न भूमि के भीतर हैं। इन्द्रिय ग्राह्य तथा नियत होने के कारण ये विशेष कहलाते हैं। पूर्व-पूर्व के गुण उत्तर-उत्तर में मिलाते हैं।।६९-७०।।

इन सबों के जितने-जितने और जो-जो गुण हैं उनके वे सब बताये गये हैं। किसी को शुद्ध वायु में अपने दोष के कारण गन्ध गुण मिलता है। वह गन्ध पृथिवी का ही समझना चाहिए, क्योंकि वहाँ वायु में पृथ्वी तत्त्व मिला है। ये सातों महाबली पृथक्-पृथक् अनेक होकर बिना पूर्णतया मिले प्रजाओं की सृष्टि नहीं कर सके।।७१-७२।। तब महत् तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त ये महत्तत्त्व एक-दूसरे के आधार बनकर पुरुष के अधिष्ठान तथा अव्यक्त के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति करते हैं। एक ही समय-विशेषों से वह अण्ड उस विपुल जल से पानी के बुलबुले की भाँति उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा का कार्यकरण सिद्ध हुआ। प्राकृत अण्ड के विकसित होने पर उसमें से सत् स्वरूप क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा हुए।।७३-७६।। वही प्रथम शरीरी हैं, उन्हीं को पुरुष कहते हैं। भूतों के आदि कर्त्ता ब्रह्मा ही पहले रहे। सर्ग या प्रतिसर्ग में पहले-पहल वही हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्म नामक क्षेत्रज्ञ प्रकट होते हैं। सृष्टि काल में करणों के साथ इनकी सृष्टि होती है फिर प्रलयकाल में करणों को त्याग देते हैं और पुनः असमाहार सन्धियों में शरीरों को ग्रहण कर लेते हैं। जो स्वर्णमय मेरु है वही उस महात्मा का उल्ब (कलल) है। समुद्र उसका गर्भ-जल तथा पर्वत उसकी जरादि हड्डियाँ हैं।।७७-८०।। उस अण्ड के भीतर ये सारे सातों लोक तथा सातों समुद्रों के साथ सात द्वीपवाली पृथिवी छिपी हुई है।।८१।। सहस्रों बड़ी नदियों

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति। + धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ पुस्तके नास्ति।
= एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः । अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ।।८२।।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना । लोकालोकं च यत्किंचिच्चाण्डेतस्मिन्समर्पितम् ।।८३।।
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम् । आपो दशगुणा ह्येवं तेजसा बाह्यतो वृताः ।।८४।।
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनाऽऽवृतम् । *वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसाऽऽवृतः ।।८५।।
आकाशेन वृतो वायुः खं च भूतादिनाऽऽवृतम् । भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान् ।।८६।।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् । एताश्चाऽऽवृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ।।८७।।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् । एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।।८८।।
आधाराधेयभावेन विकारश्च विकारिषु । अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ।।८९।।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः । अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत्प्रादुर्भूता तडिद्यथा ।।९०।।
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः । आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ।।९१।।
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम् । पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ।।९२।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

और पर्वतों के साथ ये सब लोक तथा यह समूचा जगत् उसी के भीतर है।।८२।। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और वायु जो कुछ लोक या आलोक है सब उस अण्ड में समर्पित हैं। वह अण्ड दसगुने जल से बाहर से घिरा हुआ है। और इसी प्रकार दसगुना जल बाहर से तेज से आवृत है।।८३-८४।। दसगुने वायु से तेज बाहर से आच्छादित है। वायु दसगुने आकाश से और आकाश से वायु ढँका है। स्वयं आकाश भूतादि अहङ्कार से ढँका है। फिर भूतादि महत्तत्व से तथा महत्तत्त्व अव्यक्त से परिवेष्टित है। इस सात प्राकृत आवरणों से अण्ड आच्छादित है। ये आठ प्रकृतियाँ एक-दूसरे को आच्छादित करके रहती हैं। (सृष्टिकाल में) स्थिर रहकर फिर प्रलय-काल में एक-दूसरे का ग्रास कर जाती हैं। इस प्रकार एक-दूसरे से उत्पन्न होती तथा एक-दूसरे को धारण करती हैं।।८५-८८।। आधार और आधेय भाव से विकृति अपनी प्रकृति में रहती है। अव्यक्त को क्षेत्र तथा ब्रह्मा को क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सर्ग है। यह पहले अबुद्धिपूर्वक हुआ जैसे तड़ित् उत्पन्न होती है। हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति को, जो ठीक-ठीक जानता है, उसकी आयु, कीर्ति, धन और प्रजा सभी बढ़ती हैं। शुद्धात्मा निवृत्ति का इच्छुक मनुष्य भी पुराण सुनने से गति पा जाता है एवं उसे सुख और क्षेम मिलता है।।८९-९२।।

श्रीवायुमहापुराण के प्रक्रिया पाद में सृष्टिप्रकरणकथन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ।।४।।

---

* इदमर्धं ड. पुस्तके नास्ति।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सृष्टिप्रकरणम्

÷ लोमहर्षण उवाच

यद्विसृष्टेस्तु संख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः। एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम्।।१।।
रात्रिस्त्वेतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः। अहस्तस्य तु या सृष्टिः प्रलयो रात्रिरुच्यते।।२।।
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा। उपचारः प्रक्रियते लोकानां हितकाम्यया।।३।।
(+ प्रजाः प्रजानां पतय ऋषयो मुनिभिः सह। ऋषीन्सनत्कुमाराख्यान्ब्रह्मसायुज्यगैः सह।।४।।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च)। तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह।।५।।
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमतः। अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः।।६।।
स्वात्मन्यवस्थिते सत्त्वे विकारे प्रतिसंहृते। साधर्मे (र्म्ये) णावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ।।७।।
तमःसत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ। अत्रोदिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम्।।८।।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते। तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्।।९।।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम्। उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तदा।।१०।।

अध्याय ५

लोमहर्षण ने कहा–ब्राह्मणो! जो सृष्टि समय की अवधि हमने बतायी है वही परमेश्वर का दिन समझना चाहिए।।१।। इतनी ही बड़ी परमेश की सम्पूर्णतया रात्रि भी जाननी चाहिए। जो सृष्टि है वही उसका दिन और प्रलय ही रात्रि है।।२।। वस्तुतः उसका दिन–ही–दिन होता है। रात कभी नहीं होती किन्तु लोगों की हितकामना से रात का भी उपचार (आरोप) कर दिया जाता है।।३।। प्रजाएँ, प्रजापतिवर्ग, सनत्कुमार आदि तथा ब्रह्म–सायुज्यवालों के साथ ऋषि तथा मुनिगण, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं उनके विषय पाँचों महाभूत तथा तन्मात्राएँ, कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन ये सब धीमान् परमेश्वर के दिन में अवस्थित रहते और दिन के अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।।४–५।। फिर रात्रि के बीतने पर विश्व की उत्पत्ति होती है।।६।। विकार का प्रतिसंहार होने पर जब सत्त्व अपने में स्थित रहता है उस समय प्रधान और पुरुष दोनों एक भाव से स्थिर रहते हैं।।७।। ये दोनों तमोगुण और सत्त्वगुण समभाव से स्थिर रहते हैं।।८।। फिर बढ़–घटकर एक दूसरे की विषमता से सृष्टि करते हैं। गुणों की साम्यावस्था में प्रलय तथा वैषम्य में सृष्टि होती है।।९।। जैसे तिलों में तैल अथवा दूध में घी रहता है उसी प्रकार सत्त्व और तम में अव्यक्त के आश्रय से रजोगुण रहता है।

÷ सूत उवाचेति घ. पुस्तके।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतं नास्ति ङ. पुस्तके।

अहर्मुखे प्रवृत्ते च परः प्रकृतिसंभवः। क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।।११।।
प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः । प्रधानात्क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्तत ।।१२।।
रजः प्रवर्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् । गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः ।।१३।।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे । आश्रिताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ।।१४।।
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत । रजः प्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ।।१५।।
*तमःप्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः । सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ।।१६।।
+एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः । एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।।१७।।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः । परस्परेण वर्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ।।१८।।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः । क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ।।१९।।
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महतः परः । ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्तते ।
परश्च पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ।।२०।।
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमानः समन्तात्।
अनुप्रवर्तन्ति महान्तमेव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात् ।।२१।।
प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्तते । ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदत्मकात् ।।२२।।

फिर समस्त माहेश्वरी परा रात्रि की उपासना करके प्रकृतिसम्भव परमेश्वर ही, जब दिन का आरम्भ होता है, तब अपने उत्कृष्ट योग से अण्ड में प्रवेश करके प्रधान प्रकृति और पुरुष को क्षुब्ध करते हैं। प्रकृति के क्षुब्ध होने पर रजोगुण उद्बुद्ध हुआ। बीजों में जल की भाँति रजोगुण प्रवर्तक है। गुणों की विषमता पाकर चेतना के अधिष्ठान से सृष्टि होती है। गुणों में क्षोभ आने पर आश्रित, परम, गुह्य, सर्वात्मा, शरीरी तीनों देव उत्पन्न हुए।।१३।। रजोगुणी ब्रह्मा, तमोगुणी अग्नि तथा सत्त्वगुणी विष्णु प्रकट हुए। रजोगुण के प्रकाशक ब्रह्मा स्रष्टारूप तथा तमोगुण के प्रकाशक विष्णु उदासीन भाव से अवस्थित हैं। यही तीनों लोक, ये तीनों गुण, ये ही तीनों वेद और यही तीनों अग्नियाँ हैं। ये एक-दूसरे के आश्रित तथा परस्पर मिले हुए एक-दूसरे में रहते, एक-दूसरे को धारण करते हैं। ये एक-दूसरे से मिले रहते और एक-दूसरे के सहायक हैं। आपस में क्षणमात्र भी वियोग नहीं सह सकते। ईश्वर पर देव हैं, विष्णु महान् से पर हैं और रजोगुण से प्रवृद्ध होकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। पर नाम है पुरुष का और परा प्रकृति को कहते हैं।।१०-२०।।

महेश्वर के अधिष्ठान से वह चारों ओर से प्रेरित होकर कार्य में प्रवृत्त होती है। वे चिरकाल तक प्रिय होने के कारण

---

* अयं श्लोको नास्ति ङ. पुस्तके। + इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्संबभूवतुः । तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ।।२३।।
(÷ संसिद्धः कार्यकरणब्रह्माऽग्रे समवर्तत । तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशते ।।२४।।
स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः) । =अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वितः ।।२५।।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः । तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम् ।।२६।।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः । अव्यक्ताज्जयते चास्य मनसा च यदिच्छति ।।२७।।
वशीकृतत्वाद्वैगुण्यात्सुरेशत्वात्स्वभावतः । चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत् ।।२८।।
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्राऽवस्थाः स्वयंभुवः । ×सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ।।२९।।
सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तिः स्वयंभुवः] । लोकान्सृजति ब्रह्मत्वे कालत्वे संक्षिपत्यपि ।।३०।।
पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः । ब्रह्मा कमलगर्भाभः कालो जात्याऽञ्जनप्रभः ।।३१।।
पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः । योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ।।३२।।
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया । त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।।३३।।
चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः । यदाप्नोति यदादत्ते यच्चास्ति(त्ति)विषयं प्रति ।।३४।।
त(य)च्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते । ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीराद्यात्स्वयंप्रभुः ।।३५।।

अपने विषय में रहकर फिर महान् को प्रवृत्त करते हैं। गुण की विषमता से सृष्टिकाल में पहले प्रकृति प्रवृत्त होती है तब उस सत्–असत् रूप से ब्रह्मा और बुद्धि दोनों उत्पन्न हुए। इसीलिए तम तथा अव्यक्तमय क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा कहा जाता है। कार्य और करणों से सिद्ध ब्रह्मा पहले–पहल थे। तेज से उस प्रथम बुद्धिमान् अव्यक्त का प्रकाश होता है।।२१–२४।। वही प्रथम शरीरी कारण रूप से है। वह अप्रतिहत ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त है।।२५।। अप्रतिहत धर्म तथा वैराग्य से भी वह सम्पन्न है। उसी ईश्वर का अप्रतिहत ज्ञान तथा वैराग्य स्वरूप है।।२६।। इस अभिमानी ब्रह्मा के धर्म और ऐश्वर्य से बुद्धि प्रकट हुई। यह जो अपने मन में चाहता है वही इस अव्यक्त से उत्पन्न होता है।।२७।। वशीकार, वैगुण्य, सुरेशत्व तथा स्वभाव के कारण ब्रह्मत्व में चतुर्मुख तथा कालत्व में अन्तक (मृत्यु) हुआ।।२८।। सहस्रों शिरोंवाला यह पुरुष है। इस स्वयंभू की तीन अवस्थाएँ हैं। इस स्वयंभू की ब्रह्मा होने पर सत्त्व तथा रजोमयी, काल होने पर रज और तमोमयी तथा पुरुष होने पर सत्त्वमयी गुणवृत्ति होती है। वह ब्रह्मा होकर लोकों की सृष्टि करता, काल होकर संहार करता तथा पुरुष होने पर उदासीन रहता है। प्रजापति की तीन अवस्थाएँ भी हैं। बह्मा कमल गर्भ के रंग के, काल अञ्जनवर्ण के हैं।।२९–३१।। पुरुष की आँखें पुण्डरीक–सी हैं। यही रूप परमात्मा का है। यह योगेश्वर अपनी लीला से नाना आकृति, क्रिया, रूप तथा नामों द्वारा शरीरों को बनाते तथा बिगाड़ते हैं। संसार में ये तीन प्रकार से रहते हैं अतएव इनका नाम त्रिगुण है।।३२–३३।। चार प्रकार से प्रविभक्त होने के कारण इन्हें चतुर्व्यूह कहा गया है। आप्ति तथा आदान करने तथा विषय का भोग करने से सदा उसका वही भाग हो जाता है अतः उसे आत्मा कहते हैं। सर्वत्र गति होने अर्थात्

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो म. पुस्तके नास्ति।

= इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

× एतच्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः।

स्वामित्वमस्य तत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् । भगवान्भगसद्भावाद्रागो रागस्य शासनात् ।।३६।।
परश्च तु प्रकृष्टत्वादवनादोमिति स्मृतः । सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ।।३७।।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः । त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्यं संप्रवर्तते ।।३८।।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् । अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।।३९।।
आदित्वाच्चाऽऽदिदेवोऽसावजातत्वादजःस्मृतः । पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाःप्रजापतिरतः स्मृतः ।।४०।।
देवेषु च महान्देवो महादेवस्ततः स्मृतः । सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ।।४१।।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते । (*क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः ।।४२।।
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते । नोत्पादितत्वात्पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति स स्मृतः) ।।४३।।
इज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् । क्रमशः क्रमणीयत्वाद्वर्णकस्याभिपालनात् ।।४४।।
आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः । हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।।४५।।
तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते । स्वयंभुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ।।४६।।
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि । कल्पसंख्यानिवृत्तस्तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृतः ।।४७।।

सर्वव्यापक और आद्य शरीर धारण करने से ऋषि कहाते एवं स्वयं सबके स्वामी होने से प्रभु कहे जाते हैं।।३४-३५।। सब में प्रविष्ट होने के कारण विष्णु कहलाते हैं। भग अर्थात् ऐश्वर्य के होने से भगवान् तथा राग पर शासन करने के कारण इसको राग कहा जाता है।।३६।। प्रकृष्ट होने से पर तथा अवन या रक्षण करने से इसे ओम् कहते हैं। नरों का अयन होने से नारायण कहलाता है। अपने को तीन प्रकार से विभक्त करके त्रैलोक्य को चलाता है।।३७-३८।। इन तीनों रूपों से वह सृष्टि, संहार तथा रक्षण करता है। पहले-पहल वह हिरण्यगर्भ चतुर्मुख रूप से प्रकट हुआ।।३९।। आदि होने से वह आदिदेव तथा अजन्मा होने से अज कहलाता है अतएव उसे प्रजापति कहते हैं।।४०।। सब देवों में यह बड़ा है इसलिए इसे महादेव कहते हैं। सब का ईश तथा लोकों के वश में न होने के कारण यह ईश्वर कहलाता है।।४१।। बृहत् होने से ब्रह्मा तथा भूत कहा जाता है। क्षेत्र के विज्ञान से क्षेत्रज्ञ तथा सर्वव्यापी होने से विभु इसका नाम है।।४२।। पुर अर्थात् शरीर में सोता है इसलिए इसे पुरुष कहते हैं।। किसी ने इसे उत्पन्न नहीं किया और रूप के पूर्व में वह रहता है अतएव सब इसे स्वयंभू कहते हैं।।४३।। इज्य (पूज्य) होने से यज्ञ तथा क्रान्तदर्शी होने के कारण कवि कहलाता है। क्रमणीय अर्थात् सबका गन्तव्य होने से क्रमण तथा वर्णों की रक्षा करने से आदित्य और कपिल कहलाता है। आगे उत्पन्न होने के कारण यह अग्नि कहा जाता है। हिरण्य इसका गर्भ तथा यह हिरण्य के गर्भ से उत्पन्न हुआ अतएव इसे पुराण में हिरण्यगर्भ कहते हैं। व्यतीत स्वयंभू के वर्ष आदि काल सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिनाये जा सकते। कल्प संख्या से युक्त ब्रह्मा का

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते मतिसृज्यते। कोटि कोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।।४८।।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परस्तु ये। यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहं तं निबोधत ।।४९।।
प्रथमः सांप्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः। तस्मिन्स्वायंभुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्दश ।।५०।।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः। तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।।५१।।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः। प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ।।५२।।
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै। भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव ह ।।५३।।
अतीतानि च कल्पानि सोदकानि सहान्वयः। अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।।५४।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

काल पर कहलाता है।।४४-४७।। उतना ही (जितना बीत चुका है) उसका काल अभी शेष है। उसके अन्त में प्रलय होता है। कोटि सहस्र कल्प जो बीत गये उतने ही पर काल अभी शेष है। इस समय जो वर्तमान वाराह कल्प है उसे सुनिये। ब्राह्मणो, उनमें से पहला यह साम्प्रत कल्प है। इसमें स्वायंभुव आदि चौदह मनु हैं।।४८-५०।। उनमें व्यतीत, वर्तमान तथा भविष्य जो हैं वे ही नरेश भली भाँति इस सातों द्वीपोंवाली पृथिवी का पूरे चार सहस्र युग तक तप तथा प्रजोत्पत्ति से पालन करते हैं। उनका विस्तार आप लोग सुनिये।।५१-५२।। ज्ञानी पुरुष को एक ही मन्वन्तर से सभी मन्वन्तरों का, एवं भविष्य से भविष्यों का तथा कल्प से कल्पों का, एवं वंश और देवों के साथ अतीत कल्प जैसे हैं वैसे ही भविष्य में भी होंगे ऐसा तर्क कर लेना चाहिए।।५३-५४।।

श्रीवायुमहापुराण प्रकृतिवर्णन नाम का पाँचवाँ अध्याय समाप्त।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

सृष्टिप्रकरणम्

सूत उवाच

आपो ह्यग्ने समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले। सान्तरालैकलीनेऽस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।१।।
एकार्णवे तदा तस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन। तदा स भगवान्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।२।।
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रियः। ब्रह्मा नारायणाख्यः स सुष्वाप सलिले तदा ।।३।।
सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः। इमे चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।।४।।
आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम। अप्सु शेते च यत्तस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ।।५।।
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः। शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।।६।।
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतां महीम्। अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ।।७।।
अकरोत्स तनुं ह्यन्यां कल्पादिषु यथा पुरा। ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।।८।।
सलिलेनाऽऽप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः। किं नु रूपं महत्कृत्वा उद्धरेयमहं महीम् ।।९।।

अध्याय ६

सूत बोले–पृथ्वी तल पर अग्नि के नष्ट हो जाने पर अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। स्थावर जंगम सहित पृथ्वी जब उस जल में विलीन हो गयी, तब चारों ओर केवल समुद्र दिखायी पड़ने लगा। उस प्रलय पयोधि में कोई दूसरा पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता था। उस समय सहस्र नेत्र, सहस्र पाद और सहस्रशीर्ष, रुक्म वर्ण और अतीन्द्रिय पुरुष भगवान् ब्रह्मा, जिनको नारायण कहा जाता है, उस सलिल राशि में सो गये।।१-३।। कुछ समय बाद सत्त्वगुण के जागरित होने पर वे जाग गये उस समय उनको चतुर्दिक् शून्य ही दिखायी पड़ता था। उस नारायण के प्रति यह श्लोक कहा जाता है कि अप्, नार, तनु ये जल की संज्ञाएँ हैं, अतः वे जल में सोते हैं इसलिए वे नारायण कहे जाते हैं।।४-५।। वे ही हजारयुगों के बराबर निशा काल बीत जाने पर रात्रि के अन्त में सृष्टि के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं।।६।। ब्रह्मा उस समय वायु का रूप धारणकर वर्षा काल के रात्रि के समय इधर-उधर उड़नेवाले जुगनूँ की तरह इधर-उधर समुद्र तल पर घूमने लगे। अनुमान से उस समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी का पता पाकर उसके उद्धार के लिए सचेष्ट हो गये। उन्होंने पूर्व कल्पों में जैसा शरीर धारण किया था वैसा ही दूसरा शरीर धारण कर लिया। पुनः वे महात्मा मन में दिव्य रूप का ध्यान करने लगे।।७-८।। वे चारों ओर से पृथ्वी को जल से घिरी हुई देखकर सोचने लगे कि किस महान् शरीर को धारणकर इस पृथ्वी का उद्धार करूँ।।९।। इतने में जल क्रीड़ा के उपयुक्त वाराह रूप का उनको

जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत्। अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ।।१०।।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम्। नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तानितनिस्वनम् ।।११।।
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेतं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम्। विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ।।१२।।
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम्। पीनोन्नतकटीदेशं सुश्लक्ष्णं शुभलक्षणम् ।।१३।।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहमभितं हरिः। पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ।।१४।।
स वेदपाद्यूपदंष्ट्रः क्रतुवक्षाश्चितीमुखः। अग्निजिह्वी दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो (र्षा) महातपाः ।।१५।।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः। आज्यनाशः (सः) स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् ।।१६।।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्धर्मविक्रमसंस्थितः। प्रायश्चित्तरथो घोरः पशुजानुर्महाकृतिः ।।१७।।
उद्गात्रन्त्रो होमलिङ्गः स्थानबीजी महौषधिः। वेद्यान्तरात्मा मंन्त्रस्फिगाज्यस्पृक्सोमशोणितः ।।१८।।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्। प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ।।१९।।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो विभुः। उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यवित्तभूषणः ।।२०।।
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ।।२१।।
भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः स प्राविशत्प्रभुः। (*अद्भिः संछादितामूर्वीं स तामश्नन्प्रजापतिः ।।२२।।

स्मरण हो गया। तब हरि ने, प्राणियों से अजेय, वाङ्मय और धर्ममूर्ति वाराह रूप को धारण किया, जिसका शरीर दस योजन लम्बा और सौ योजन ऊँचा था। वे रंग में नीले मेघ के समान और घोर चीत्कार करने में भी मेघ के ही समान विशालकाय, श्वेत, तीक्ष्ण और कठोर दाँतोंवाले उस वाराह की आँखें विद्युत् और अग्नि के समान चमकीली थीं। सूर्य के समान तेजस्वी, उसका स्कन्ध मोटा, लम्बा और गोल था। सिंह के समान गमन करनेवाले उस देव का कटि भाग पीन और उन्नत था। इस प्रकार सुडौल, शुभ लक्षण, अमित और विपुलकाय उस वाराह रूप को धारणकर भगवान् पृथ्वी का उद्धार करने के लिए रसातल में घुस गये।।१०-१४।। उस भगवान् वाराह के वेद चरण, यूप दंष्ट्र, यज्ञ वक्षःस्थल, चिति मुख, अग्नि जिह्वा, कुश रोमसमूह और ब्रह्मा ही सिर थे। उस महात्मा ने दिन-रात को नेत्र के रूप में धारण किया था। वेदाङ्ग उनके कानों के कुण्डल, आज्य नासिका के छिद्र और स्रुवा उनका तुण्ड (नथुना) था। उनका दीर्घ घोष ही साम गान था। सत्य धर्ममय वे श्रीमान् धर्म और विक्रम की साक्षात् प्रतिमा थे। प्रायश्चित्त उनका रथ, पशु उनका भयङ्कर जनु देश था। वे महान् आकारवाले थे, उद्गाता उनकी अँतड़ियाँ, होम लिङ्ग स्थान और महोषधियाँ बीज, ज्ञान उनका अन्तःकरण, मन्त्र स्फिग्, आज्य रक्त, सोम शोणित तथा वेद स्कन्ध थे। हवि उनके शरीर की सुगन्ध, हव्य उनका वेग, और प्राग्वंश शरीर था परम द्युतिमान् वे नाना दीक्षाओं से दीक्षित थे।।१५-१९।। महायज्ञमय विभु योगी का दक्षिणा हृदय था उपाकर्म, रुचिर इष्टि और प्रवर्ग्य ही वैभव था, नाना छन्द गतिपथ और रहस्य उपनिषद् आसन थे। पत्नी छाया के सहित वे मणिमय शृङ्ग (सुमेरु) के समान ऊँचे थे। इस प्रकार प्रभु यज्ञवाराह बनकर उस जलराशि में घुस गये। उस प्रजाप्रति ने जल से

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

उपगम्योज्जहाराऽऽशु अपस्ताश्च स विन्यसन् । सामुद्रीर्वै समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ ।।२३।।
रसातलतले) मग्नां रसातलतले गताम् । प्रभूर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाऽभ्युज्जहार गाम् ।।२४।।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीकरः । मुमोच पूर्वं मनसा धारयित्वा धराधरः ।।२५।।
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता । चरितत्वाच्च देहस्य न मही याति विप्लवम् ।।२६।।
ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया । पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।।२७।।
पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् । प्राक्सर्गे दह्यमानास्तु तदा संवर्तकाग्निना ।।२८।।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः । शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनाऽऽपस्तु संहृताः ।।२९।।
निषिक्ता यत्र यत्राऽऽसंस्तत्र तत्राचलोऽभवत् । स्कन्नाचलत्वादचलः पर्वभिः पर्वतः स्मृतः ।।३०।।
गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः । ततस्तेषु विशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ ।।३१।।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः । ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।।३२।।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः सोऽथ प्रकल्पयत् । लोकान्प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज हा ।।३३।।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा ।।३४।।
तस्याभिध्यायतः सर्गं सदा वै बुद्धिपूर्वकम् । प्रध्यानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।।३५।।

आवृत पृथ्वी के समीप जाकर उसको दाँतों से पकड़कर जल के ऊपर स्थापित कर दिया।।२०-२४।। इतना कर चुकने के बाद समुद्र जल को समुद्रों में, नदी जल को नदियों में बाँट दिया। पृथ्वी के उद्धारकर्त्ता उस हरि ने पृथ्वी को अपने निर्दिष्ट स्थान पर रखकर पहले मन में भविष्य की रूपरेखा निश्चित कर उनको जल तल पर छोड़ दिया। उस जलराशि के ऊपर पृथ्वी बहुत बड़ी नाव के समान स्थित हुई जो कि अपने आकार की विपुलता और भगवान् के प्रभाव से डूबती नहीं है। कमलनेत्र देव पृथ्वी का उद्धार करने के अनन्तर संसार स्थापन के उद्देश्य से पृथ्वी को कई भागों में विभक्त करने को सोचने लगे। पहले भूतल को समतल कर उस पर पहाड़ों को स्थापित किया। पूर्व सृष्टि में जो संवर्तक अग्नि से गल गये थे और धरातल पर चारों ओर जलकर बिखर गये थे, वे उस जलप्लावन में शीतलता के कारण, वायु के द्वारा जल इकट्ठा हो जाने से पहले जहाँ-जहाँ स्थित थे वहाँ-वहाँ इस बार भी अचल हो गये।।२५-२९$\frac{१}{२}$।। पहले पिघलकर वे अचल (स्थित) हुए, इसलिए पर्वतों का नाम अचल पड़ा, पर्व (गाँठ) होने के कारण वे पर्वत कहे गये। जल के भीतर निगल जाने के कारण गिरि और शिलाओं के चयन (चुनना) के कारण पर्वतों का नाम शिलोच्चय पड़ा। उन लोक-समुद्र और पर्वतों के नष्ट हो जाने पर विश्वस्रष्टा हरि कल्प के आदि में बार-बार पृथ्वी का विभाग और निर्माण करते हैं। इस नियम के अनुसार इस बार भी उन्होंने समुद्र, सप्तदीप और पर्वतों से युक्त इस पृथ्वी, भू आदि चारों लोकों की सृष्टि की।। ३०-३२$\frac{१}{२}$।। लोकसृष्टि के अनन्तर प्रजासृष्टि की। जिस समय ध्यानावस्थित होकर उन्होंने बुद्धिपूर्वक सृष्टि की इच्छा की उसी समय ध्यान के साथ ही तमोमोह, तामिस्र और अन्ध नामक पाँच प्रकार की तमोमय सृष्टि हुई। उस महात्मा के ध्यान मात्र से पाँच पर्वों (श्रेणी) वाली यह अविद्या उत्पन्न हुई। उस

तमोमोहो महामोहस्तामिस्रो अ(ह्य)न्धसंज्ञिताः । अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ।।३६।।
पञ्चधा चाऽऽश्रितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः । सर्वतस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ।।३७।।
बहिरन्तःप्रकाशश्च शुद्धो निःसंज्ञ एव च । तस्मात्तैः संवृत्ता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ।।३८।।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः । मुख्यसर्गंतथाभूतं ब्रह्मादृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।।३९।।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो न्यासोऽभ्यमन्यत । तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ।।४०।।
तस्मात्तिर्यग्व्यवर्तन्त तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतम् । तमोबहुत्वात्ते सर्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।।४१।।
उत्पथग्राहिणश्चापि ते ध्यानाद्ध्यानमानिनः । तिर्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।।४२।।
(*अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः । एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।।४३।।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः । अन्तःप्रकाशास्ते सर्व आवृताश्च बहिः पुनः ।।४४।।
यस्मात्तिर्यक्प्रवर्तेत तिर्यक्स्रोताः स उच्यते । (+तिर्यक्स्रोतश्च दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।।४५।।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्वं तथाविधम् । तस्याभिध्यायतो नित्यं सात्त्विकः समवर्तत) ।।४६।।

अभिमानी ध्यानस्थ देव का यह सर्ग पाँच भागों में विभक्त था।।३३–३६$\frac{१}{२}$।। वह सर्ग चारों ओर से अन्धकार से ढका ऐसा जान पड़ता था मानो घड़े से ढका दीपक हो। वह सर्ग बाहर और भीतर से प्रकाशमान, शुद्ध और निःसंज्ञ (अचेतन) था।।३७$\frac{१}{२}$।। अतः उन पाँचों से बुद्धि और मुख्य करण (इन्द्रियाँ) ढकी हुई थीं इसीलिए वे संवृत्तात्मा 'नग' नामक मुख्य सर्ग कहलाये।।३९।। ब्रह्मा अपने मुख्य सर्ग को इस प्रकार सृष्टिकार्य में अवरोधक देखकर असंतुष्ट हो गये। उस सर्ग से विरक्त हो वे अन्य सृष्टि के लिए ध्यान करने लगे। उनके ध्यान करने से वहाँ तिर्यक् (तिरक्षा) स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ।।३८–४०।। अतः उस समय के उत्पन्न पदार्थ तिर्यक् (उलटा) व्यवहार और व्यापार करनेवाले थे इसीलिए उनका नाम तिर्यक् स्रोत पड़ा। वे सभी तमोगुण की अधिकता के कारण अज्ञानी हुए।।४१।। विपरीत मार्ग पर चलनेवाले ध्यान और अध्यान पर कुछ भी विचार करनेवाले न थे। उस तिर्यक् स्रोत सर्ग को देखकर ईश्वर ने पुनः दूसरे प्रकार की सृष्टि की। वह सृष्टि अहंकार भाववाली और अट्ठाईस प्रकार की है। एकादश इन्द्रियवाले उस सर्ग का नवविध उदय बताया गया है।।४२–४३।। तारक आदि की संख्या आठ है, जिनकी शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की है। उनका अन्तस् प्रकाशमान परन्तु बाहर से वे ढके हुए हैं।।४४।। (वे तिर्यक् व्यवहारवाले हैं अतः तिर्यक् स्रोत उनका नाम है। इस तिर्यक् स्रोतवाली सृष्टि को देखकर भी ईश्वर ने तृतीय सृष्टि की इच्छा की क्योंकि पूर्व की दो सृष्टियों को देखकर उनके हृदय में अन्य प्रकार की सृष्टि करने की इच्छा हुई थी)। उनके नित्य ध्यान से सात्त्विक सर्ग उत्पन्न हुआ।।४५–४६।। वह तीसरा संग ऊर्ध्वस्रोत हुआ जो कि ऊर्ध्व दिशा की ओर ही व्यवस्थित रहा। यतः

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्ध्वं व्यवस्थितः। यस्माद्व्यवर्ततोर्ध्वं तु ऊर्ध्वस्त्रोतास्ततः स्मृतः ।।४७।।
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्त्रोतोद्भवाः स्मृताः ।।४८।।
तेन वातादयो ज्ञेयाः सृष्टात्मानो व्यवस्थिताः। ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ।।४९।।
ऊर्ध्वस्त्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः। प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत ।।५०।।
ससर्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः। अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।।५१।।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्त्रोतः सुसाधकम्। यस्मादर्वाग्व्यवर्तेत (?) ततोऽर्वाक्स्त्रोत उच्यते ।।५२।।
ते च प्रकाशबहुलास्तमःसत्त्वरजोधिकाः। तस्मात्ते दुःखबहुला भूया भूयश्च कारिणः ।।५३।।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते। लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ।।५४।।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्मिणः। इत्येष तैजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्त्रोताः प्रकीर्तितः ।।५५।।
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः। विपर्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च ।।५६।।
विवृत्तं वर्तमानं च तेऽर्थं जानन्ति तत्त्वतः। भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ।।५७।।
(×ते परिग्रहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः। खादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकास्तु ते) ।।५८।।

उसके ऊपर की ओर ही गति थी इसलिए उस सर्ग का नाम ऊर्ध्वस्रोत पड़ा। उस सर्ग के जीव सुखी और प्रेमी थे। उनका अन्तः और ब्राह्य दोनों प्रकाशमान और समान रूप से व्यवस्थित था। ऐसे ऊर्ध्वस्रोत सर्ग से उत्पन्न सभी ऊर्ध्वस्रोत ही कहे जाते हैं।।४७-४८।। उसी सर्ग के अन्तर्गत जीवों में प्राण संचार करनेवाले वायु आदि सम्मिलित हैं। उर्ध्व प्रवृत्ति होने के कारण ही वह सर्ग ऊर्ध्वस्रोत कहा गया है।।४९।। उस समय ऊर्ध्वस्रोत देवों की सृष्टि हो जाने के अनन्तर प्रभु ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने अब दूसरे प्रकार की सृष्टि करने का विचार किया।।५०।। उस प्रभु ईश्वर ने अन्य साधक (इच्छानुकूल) सर्ग की सृष्टि की। उस समय सत्य चिन्तन करनेवाले ब्रह्मा के चिन्तन से अव्यक्त स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ जो कि प्रभु के इच्छानुकूल था। अतः वह सर्ग अर्वाक् (मध्यगत) प्रवृत्तिवाला था इसलिए वह अर्वाक् स्रोत कहा गया है।।५१-५२।। उस सर्ग के जीव प्रकाश, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से यथेष्ट रूप से पूर्ण थे। इसलिए उनमें दुःख की मात्रा अधिक थी और वे बार-बार कर्म करनेवाले हुए। वे मनुष्य अन्तः बाह्य सभी ओर से प्रकाशपूर्ण और सृष्टि के सहायक हुए। वे तारक आदि लक्षणों से आठ रूपों में स्थित हैं।।५३-५४।। वे सिद्धात्मा मानव गन्धर्वों के सहधर्मी हैं। इस प्रकार यह सर्ग तैजस और अर्वाक् स्रोत कहा गया है।।५५।। पाँचवाँ सर्ग अनुग्रह के नाम से विख्यात है, जिसकी व्यवस्था शक्ति, तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय (उलटे) क्रम से की गयी है।।५६।। उस सृष्टि के प्राणी (ब्रह्म के) विवृत्त रूप एवं उसके वर्तमान अर्थ को तात्त्विक रूप से जानते हैं, इस प्रकार भूतादि (पञ्चभूत आदि) जीवों का वह सर्ग छठा सर्ग कहा जाता है।।५७।। उनमें जो संचय तथा समान विभाग करनेवाले और भक्षणशील एवं कठोर प्रवृत्ति के हैं, उन्हें भूत सर्ग नामक छठा सर्ग जानना चाहिए।।५८।। विपर्यय के क्रम से उत्पन्न वह भूतादि

× धनुश्चिह्नान्तर्गतं नास्ति क. पुस्तके।

विपर्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः। प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः ।।५९।।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते। वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्व ऐन्द्रियकः स्मृतः ।।६०।।
इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः। मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृता ।।६१।।
तिर्यक्स्त्रोताश्च यः सर्गस्तिर्यग्योनिः स पञ्चमः। तथोर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।।६२।।
(÷तथाऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः। अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसस्तु सः ।।६३।।
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः। प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ।।६४।।
प्राकृतास्तु त्रयः सर्गाः कृतास्ते बुद्धिपूर्वकाः)। बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तु ते ।।६५।।
विस्तारानुग्रहं सर्गं कीर्त्यमानं निबोधत। चतुर्धाऽवस्थितः सोऽथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ।।६६।।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च। स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तिता ।।६७।।
सिद्ध्यात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः। इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः ।।६८।।
सर्गाः परस्परस्याथ प्रकारा बहवः स्मृताः। अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।।६९।।
सनन्दनं च सनकं विद्वांसं च सनातनम्। विज्ञानेन निवृत्तास्ते वैवर्तेन महौजसः ।।७०।।

सर्ग, शक्तिहीन रूप से स्थित है। प्रथम उत्पन्न होने के नाते इसको महत् सर्ग कहा गया है, इसीलिए उसे महत् सर्ग जानना चाहिए।।५९।। पञ्चतन्मात्रा का दूसरा रूप भूतसर्ग कहा जाता है, और विकारजनित होने के नाते उसके तीसरे रूप को वैकारिक कहते हैं। इन्हें ऐन्द्रियक (इन्द्रिय द्वारा जनित) भी कहा जाता है।।६०।। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक यह प्राकृत सर्ग उत्पन्न हुआ। चौथा मुख्य सर्ग है, जिसमें मुख्य स्थावर सर्ग का होना बताया गया है।।६१।। तिर्यक् स्रोतवाले उस पाँचवें सर्ग को तिर्यक् योनि कहा गया है और ऊर्ध्व स्रोतवाले उस छठें को देवसर्ग।।६२।। इसी प्रकार अर्वाक् स्रोतवाले को सातवाँ मानुष सर्ग कहा जाता है एवं अनुग्रह सर्ग को आठवाँ जो कि सात्त्विक और तामस के संमिश्रण से प्रादुर्भूत है।।६३।। इसी प्रकार पाँच प्रकार के विकृत और तीन प्रकार के प्राकृत सर्ग बताये गये हैं। उन्ही विकृत तथा प्राकृत सर्गों के समेत नवें कौमार सर्ग की व्याख्या की गयी है (इनमें तीन प्रकार के इस प्राकृतिक सर्ग की बुद्धिपूर्वक सृष्टि की गयी है) इस प्रकार ब्रह्म की ये छहों सृष्टियाँ बुद्धिपूर्वक ही प्रवृत्त होती हैं।।६४-६५।। अब मैं वर्णनीय उस अनुग्रह नामक सर्ग की जो समस्त प्राणियों में चार प्रकार से पूर्णरूपेण स्थित है, विस्तृत व्याख्या बता रहा हूँ, तुम लोग सुनो।।६६।। शक्ति, तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय क्रम से स्थावर सृष्टि में विपर्यय और तिर्यक् योनियों में शक्ति का संचार हुआ है।।६७।। अतः मनुष्यों में सिद्धि और देवों में तुष्टि पूर्ण रूप से निहित है। पुनः इस प्रकार प्राकृत तथा विकृत सर्ग नव प्रकार के बताये गये हैं।।६८।। परस्पर संबद्ध इन सर्गों के बहुत से भेद कहे गये हैं। सबसे पहले ब्रह्मा ने अपने ही समान विद्वान् सनक, सनन्दन और सनातन नामक तीन मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। वे तीनों महातेजस्वी अपने सृष्टि विज्ञान के प्रभाव से निवृत्ति मार्ग पर अटल रहे।।६९-७०।। नानात्व के रहस्य को जानकर वे ज्ञान सम्पन्न

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

संबुद्धाश्चैव नानात्वादपविद्धास्त्रयोऽपि ते । असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः ।।७१।।
तदा तेषु व्यतीतेषु तदान्यान्साधकांश्च तान् । मानसानसृजद्ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः ।।७२।।
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत । आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।।७३।।
स्वर्गं दिवः समुद्रांश्च नदाञ्शैलान्वनस्पतीन् । ओषधीनां तथाऽऽत्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ।।७४।।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहाः । अर्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।।७५।।
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ।।७६।।
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूतास्तद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे ।
वैश्याश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ।।७७।।
नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् । अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ।।७८।।
एषः व कथितः पादः समासान्नतु विस्तरात् । अनेनाऽऽद्येन पादेन पुराणं संप्रकीर्तितम् ।।७९।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

समाप्त प्रक्रियापादः।

हो गये और पिता की आज्ञा न मानकर प्रजोत्पत्ति से विमुख हो अन्यत्र चले गये।।७१।। इस प्रकार उन कुमारों के चले जाने पर ब्रह्मा ने पुनः अपने पद का अभिमान करनेवाले अन्य मानस पुत्रों को उत्पन्न किया, जिन्होंने सृष्टि कार्य में पूरा सहयोग दिया।।७२।। प्रलय तक स्थित रहनेवाले स्थानाभिमानी देवों के नामों को गिना रहा हूँ सुनो–जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, दिशाएँ, स्वर्ग, दिव, समुद्र, नद, शैल, वनस्पतियाँ, ओषधियाँ, आत्मा, मन, वृक्ष, वीरुध (छोटे वृक्ष), लव, काष्ठ, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, ये सभी स्थानाभिमानी और स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं।।७३–७६।। जिसके मुख से ब्राह्मण, वक्षःस्थल से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और जिसके पैर से शूद्र, इस प्रकार जिसके शरीर से सब वर्ण उत्पन्न हुए वे नारायण अव्यक्त से परे हैं। उस अव्यक्त से अण्ड की उत्पत्ति हुई और अण्ड से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने स्वयं लोकों को उत्पन्न किया। यह प्रक्रियापाद आप लोगों से संक्षेप में कहा गया है। इस प्रकार इस आद्य पाद के द्वारा यह पुराण कहा गया है।।७७–७९।।

श्री वायुमहापुराण का सृष्टि–प्रमाण नामक छठा अध्याय समाप्त।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रतिसंधिकीर्तनम्

+सूत उवाच

इत्येष प्रथमः पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्तितः। श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काश्यपेयः सनातनः ।।१।।
संबोध्य सूतं वचसा पप्रच्छाथोत्तरां कथाम्। अतः प्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसंधिं प्रचक्ष्व नः ।।२।।
समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयोः। कल्पयोरन्तरं यच्च प्रतिसंधिर्यतस्तयोः।
एतद्वेदितुमिच्छाम अ(मो ह्य) त्यन्तकुशलोऽह्यसि ।।३।।

लोमहर्षण उवाच

अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसंधिश्च यस्तयोः। समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयोः ।।४।।
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रताः। यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः सांप्रतः शुभः ।।५।।
अस्मात्कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः। तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत ।।६।।
प्रत्याहृते पूर्वकाले प्रतिसंधिं च तत्र वै। अन्यः प्रवर्तते कल्पो जनाल्लोकात्पुनः पुनः ।।७।।
व्युच्छिन्नात्प्रतिसंधेस्तु कल्पाकल्पः परस्परम्। व्युच्छिद्यन्ते क्रियाःसर्वाः कल्पान्ते सर्वशस्तदा ।।८।।

अध्याय ७

सूत जी बोले–यह पहला प्रक्रिया पाद कह दिया गया, जिसको सुनकर सनातन काश्यपेय प्रसन्न हो गये ।।१।। इसके बाद सूत का प्रिय शब्दों से सम्मान कर उन्होंने आगे की कथा पूछी कि–हे कल्प की कथा जाननेवाले! आप अत्यन्त कुशल हैं अब इसके बाद प्रतिसन्धि के विषय में हम लोगों को बतलाइये। बीते हुए और वर्तमान कल्प का जो मध्य काल है और उनकी जो प्रतिसन्धि है उसको हम लोग जानना चाहते हैं, आप अत्यन्त कुशल हैं।।२-३।।

लोमहर्षण बोले–'अब मैं अतीत और वर्तमान दोनों कल्पों की जो प्रतिसन्धियाँ हैं तथा जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं, हे सुव्रत! उसको बतला रहा हूँ! यह जो वर्तमान कल्प है वह शुभ साम्प्रत या वाराह कल्प कहलाता है।।४-५।। इस कल्प से पूर्व का जो कल्प बीत गया है वह सनातन कल्प था। उस अतीत और इस वर्तमान वाराह कल्प की मध्य अवस्था के विषय में सुनिये।।६।। पूर्व कल्प के बीत जाने पर प्रतिसन्धि आती है, तब दूसरा कल्प जनलोक से आता है।।७।। बीच में प्रतिसन्धि के आ जाने से ही एक कल्प दूसरे कल्प से पृथक् होते हैं। पूर्व कल्प के बीत जाने पर उस अतीत कल्प को प्रतिसन्धि कहा जाता है। मन्वन्तर और युगों की अविच्छिन्न सन्धियाँ मन्वन्तर

+ इदं नास्ति क. पुस्तके।

तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्निगद्यते । मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च संधयः ।।९।।
परम्पराः प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह । उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ।।१०।।
तेषां परार्धकल्पानां पूर्वोह्यस्मात्तु यः परः । आसीत्कल्पो व्यतीतो वै परार्धं न परस्तु सः ।।११।।
अन्ये भविष्या ये कल्पाअपरार्धाद्द्विगुणीकृताः । प्रथमः सांप्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्ततेद्विजाः ।।१२।।
यस्मिन्पूर्वः परार्धे तु द्वितीयः पर उच्यते । एतावान्स्थितिकालस्य प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ।।१३।।
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः । चतुर्युगसहस्रान्ते अहो मन्वन्तरैः परा ।।१४।।
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन्दाहकाले ह्युपस्थिते । तस्मिन्कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ।।१५।।
नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये । अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ।।१६।।
मन्वन्तरे तथैकस्मिंश्चतुर्दशसु वै तथा । त्रीणि कोटिशतान्यासन्कोट्यो द्विनवतिस्तथा ।।१७।।
अष्टादिकाः सप्तशताः सहस्राणां स्मृताः पुरा । वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।।१८।।
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः । अथ मन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसु वै दिवि ।।१९।।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा । तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।।२०।।

युगों के साथ परस्पर प्रवृत्त होती हैं। जो प्रक्रिया पाद में संक्षेप में कहे गये हैं वे पूर्व कल्प हैं।।८-१०।। उन परार्ध कल्पों में इससे पूर्व जो प्रथम कल्प था वह तो व्यतीत हो चुका किन्तु द्वितीय परार्द्ध कल्प अभी नहीं व्यतीत हुआ है।।११।। अन्य जो भविष्य में आनेवाले कल्प हैं वे अपरार्ध से गुणीकृत (अपरार्द्ध नाम से प्रसिद्ध) हैं। द्विजो! उनमें से पहला साम्प्रत नामक यह कल्प बीत रहा है।।१२।। जो प्रथम परार्द्ध में पूर्व है और जो द्वितीय परार्द्ध में पर कहा जाता है इतना काल परिमाण स्थितिकाल है इसके बाद का काल प्रत्याहार काल (प्रलय काल) कहा गया है अर्थात् पूर्व और पर परार्द्ध काल स्थितिकाल और इस द्विपरार्द्ध के बाद का प्रलय काल (प्राकृत प्रलयकाल) कहा जाता है ।।१३।। इस कल्प से पूर्व जो सनातन कल्प था वह बीत चुका है। वह सहस्र चतुर्युग के अन्त में मन्वन्तर परिमित ब्राह्म दिवस के अन्त होने पर क्षीण हो गया ।।१४।। उस समय कल्प के क्षीण होने पर और प्रलयकालीन दाहकाल के आ जाने पर उस कल्प में जितने विमान-विहारी देवता, नक्षत्र, ग्रह, तारामण्डल, सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह थे, वे सुकृतात्मा देव सब मिलाकर अट्ठाईस करोड़ थे।।१५-१६।। यह एक मन्वन्तर के देवताओं की संख्या है। इस प्रकार चौदहों मन्वन्तरों के देवों की संख्या तीन सौ बानवे करोड़ हुई।।१७।। पहले व्यतीत (बीते हुए) कल्प में जो वैमानिक देव थे उनकी संख्या सात सौ आठ हजार कही गयी है। एक कल्प में जितने वैमानिक देव होते हैं स्वर्ग में उतने ही चौदहों मन्वन्तरों में होते हैं।।१८-१९।। उस मन्वन्तर या कल्प काल में जितने देवता, पितर, मुनि तथा मानव, उनके अनुचर, वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों के पूज्य जितने देवता एवं मन्वन्तरों में जो देवलोक के रहनेवाले देवता थे, वे अपने संयोजकों के साथ उस समय संहार काल में प्रलयकालीन लक्षणों के उपस्थित हो जाने पर समान भाव से अपने

वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन्काले तु ये सुराः । मन्वन्तरेषु ये ह्यासन्देवलोके दिवौकसः ।।२१।।
ते तैः संयोजकैः सार्धं प्राप्ते संकालने तथा । तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ।।२२।।
ततस्तेऽवश्यभावित्वाद्बुध्वा पर्यायमात्मनः । त्रैलोक्यवासिनो देवा (*इहस्थानाभिमानिनः ।।२३।।
स्थितिकाले तदा पूर्णे ह्यासन्ने पश्चिमेऽन्तरे । कल्पवासानिका देवा) तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे ।।२४।।
तेनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावतः । महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ।।२५।।
ते युक्ता उपपद्यन्ते महसि स्थैः शरीरकैः । विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।२६।।
कः कल्पवासिभिः सार्धं महानासादितस्तु यैः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनैः ।।२७।।
मत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश । ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मतिम् ।।२८।।
विशुद्धिबहुला सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः । तै कल्पवासिभिःसार्धं महानासादितस्तु यैः ।।२९।।
दशकृत्व इवाऽऽवृत्य तस्माद्गच्छन्तिस्वस्तपः । तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुनः ।।३०।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) यान्ति कल्पनिवासिनः । एवं देवयुगानां तु सहस्राणि परस्परात् ।।३१।।
गतानि ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् । आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।।३२।।

अवश्यम्भावी पर्याय (स्थान-नाश) को जान गये।।२०-२२।। अतएव वे त्रैलोक्यवासी देवता जो कि अपने स्थान-महत्त्व पर अभिमान करनेवाले थे–उस समय अपने स्थितिकाल को समाप्तप्राय और पश्चाद्भावी प्रलय के उपद्रवों को निकट आया हुआ समझ गये।।२३-२४।। अतएव अपने स्थानों को छोड़कर उत्सुकता और विषादयुक्त हो महर्लोक जाने के लिए आतुरता के साथ सोचने लगे।।२५।। उस समय वे सभी देवता अपनी परम आत्म-विशुद्धि के कारण महर्लोक के उपयुक्त शरीर को पा गये, इस प्रकार उस समय सबको मानसी सिद्धि प्राप्त हो गयी।।२६।। वे चौदह प्रकार के देवगण उस महर्लोक में उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, भक्तों और अपर जनों के साथ जिन्होंने 'महान्' को प्राप्त कर लिया है–कुछ समय रहकर जनलोक जाने के लिए उद्विग्न हो सोचने लगते हैं।।२७-२८।। तत्पश्चात् वे अति विशुद्ध अन्तःकरणवाले जिन्होंने मानसी सिद्धि प्राप्त कर ली है, उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने कि 'महान्' को प्राप्त कर लिया है–जनलोक को चले जाते हैं, वहाँ पर दसगुने समय तक (पूर्व काल के दसगुने अर्थात् दस कल्प तक) आनन्द भोगकर पुनः वहाँ से तपोलोक को चले जाते हैं। वहाँ पर भी दस कल्प तक रहकर पुनः सत्यलोक को चले जाते हैं।।२९-३०।। इस क्रम से कल्पनिवासी ऊर्ध्व लोक जाते हैं। इस प्रकार एक के बाद एक लोक को प्राप्त करने में देवों के सहस्र युग बीत जाते हैं।।३१।। वे देव ब्रह्मलोक में जाकर ऐसी गति को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ से पुनः लौटते नहीं हैं। वहाँ वे आधिपत्य तो नहीं प्राप्त करते, परन्तु रूप और विषय से ब्रह्म के ही अनुरूप होते हैं

---

* धनुश्चिह्नातर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च। तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति (न्ते) प्रीतियुक्ताः प्रसंगमात् ।।३३।।
आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह। अवश्यंभाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।।३४।।
नानात्वेनाभिसंबद्धास्तदा तत्कालभाविनः। स्वपतो बुद्धिपूर्वं हि यथा भवति जाग्रतः ।।३५।।
तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्तते। प्रत्याहारे तु भेदानां येषां भिन्नाभिसूक्ष्मणाम् (?) ।।३६।।
तैः सार्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च। नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।।३७।।
विनष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम्। ते तुल्यलक्षणाःसिद्धाः शुद्धात्मानोनिरञ्जनाः ।।३८।।
प्रकृतौ कारणातीताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः। प्रख्यापयित्वा ह्यात्मानं प्रकृतिस्तेषु सर्वशः ।।३९।।
पुरुषाव्यवहृत्वे (त्त्वे) न प्रतीता न प्रवर्तते। प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां वा कारणं पुनः ।।४०।।
संयोगे प्राकृते तेषां युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम्। अत्रापवर्गिणां तेषामपुनर्मार्गगामिना (णा) म् ।।४१।।
अभावः पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्चिषामिव। ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु ।।४२।।
तैः सार्धं ये महर्लोकात्तदा नाऽऽसादिता जनाः। तच्छिष्टाश्चेह तिष्ठन्ति कल्पाद्देहमुपासते ।।४३।।
गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ता मानुषा ब्राह्मणादयः। पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ।।४४।।

और उन्हीं के समान ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। प्रसन्नतापूर्वक वे वहाँ ब्रह्मानन्द को पाकर ब्रह्म के साथ मुक्ति (मोह-मुक्ति) प्राप्त करते हैं, पुनः जो स्वयं प्रकृति-सिद्ध अवश्यम्भावी सृष्टिप्रयोजनवश नानात्व से सम्बद्ध हो जाते हैं, उस काल से सम्बद्ध उन देवों की ऐसी अवस्था हो जाती है, जैसी जान-बूझकर सोने का बहाना करनेवालों की होती है।।३२-३४।। वे उस समय जैसे सोये हुए भी जागते रहते हैं उसी प्रकार उस समय उन मुक्त पुरुषों या देवों के मन में तत्काल सम्बन्धी नानात्व का ज्ञान उद्‌बुद्ध हो जाता है।।३५$\frac{१}{२}$।। जो भेद ज्ञान प्रत्याहार (प्रलय) काल में रहता है वही अब अपने भिन्न-भिन्न सूक्ष्म रूपों में व्यक्त हो जाता है।।३६।। उन ब्रह्मलोक निवासी, अपने धर्म का पालन करनेवाले परन्तु सम्प्रति नानात्व दर्शन से अधिकारच्युत महापुरुषों के प्राकृत ज्ञान के साथ ही कार्य और करण की सृष्टि होने लगती है।।३७।। वे (पहली कोटि के शुद्ध आत्मा), निरञ्जन और तुल्य लक्षण कारणातीत सिद्ध पुरुष अपनी प्रकृति में ही व्यवस्थित रहते हैं।।३८।। प्रकृति उन द्वितीय कोटि के मुक्त पुरुषों पर सर्वथा अपनी धाक तो जमा लेती है परन्तु वह पुरुषों के बिना सहयोग के किसी कार्य को स्वयं नहीं प्रारम्भ करती है। अतः प्रलयकाल में पुरुष में ही वह लीन रहती है।।३९-४०।। सृष्टि प्रारम्भ होने पर या कारण उपस्थित होने पर उन योगी, तत्त्वदर्शी, युक्त, आवागमन के बन्धन से रहित पुरुषों की उस प्राकृत संयोग काल में भी (सृष्टि-काल में) शान्त अग्नि ज्वाला के समान पुनः उत्पत्ति नहीं होती।।४१$\frac{१}{२}$।। इस प्रकार इस त्रैलोक्य से ऊर्ध्व अत्यन्त महान् लोकों में (तपः सत्य) उन महापुरुषों के चले जाने पर उनके साथ रहनेवाले वे महापुरुष तपस्वीजन जिन्होंने कि अपनी तपस्या से महर्लोक से ऊपर के लोकों का अधिकार नहीं प्राप्त किया है, कल्पपर्यन्त वहीं (महर्लोक में) शरीर धारणकर निवास करते हैं।।४२-४३।। उस समय गन्धर्वों से लेकर पिशाच पर्यन्त, मानव (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि), पशु-पक्षी, स्थावर, सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले साँप आदि)

तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु । सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विभासते ।।४५।।
ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायते रविः । क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रींल्लोकान्प्रदहन्त्युत ।।४६।।
जङ्गमं स्थावरं चैव नदीः सर्वाश्च पर्वतान् । पूर्वे शुष्का ह्यनावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्च प्रधूपिताः ।।४७।।
तदा ते विवशाः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः । जङ्गमाःस्थावराः सर्वे धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।।४८।।
दग्धदेहास्ततस्ते वै गताः पापयुगात्यते । योन्या तया ह्यनिर्मुक्ताः शुभपामानुबन्धया ।।४९।।
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपा जने जनाः । विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।५०।।
उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुनः सर्गे भवन्तीह ब्रह्मणो मानसीप्रजाः (?) ।।५१।।
ततस्तेष्वप्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु । निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषु सूर्यैस्तु सप्तभिः ।।५२।।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विशीर्णेष्वालयेषु च । समुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः ।।५३।।
व्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिताः । आगतागतिकं तद्वै यदा तु सलिलं बहु ।।५४।।
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्या तदा च सा । आभान्ति यस्मान्नाऽऽभान्ति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।।५५।।
सर्वतः समनुप्लाव्य तासां चाम्भो विभाव्यते । सदम्भस्तनुते यस्मात्सर्वां पृथ्वीं समन्ततः ।।५६।।

जो जीव पृथ्वीतल पर रहते हैं, उनको प्रलय का सामना करना पड़ता है। उस समय सूर्य की जो सहस्र किरणें चमकती रहती हैं; उनमें से प्रत्येक सप्तरश्मि होकर एक-एक सूर्य बन जाती हैं।।४४-४५$\frac{१}{२}$।। क्रमशः वे सूर्य अधिकाधिक प्रज्वलित होते जाते और अपनी-अपनी असह्य ज्वाला से तीनों लोकों को जलाने लगते हैं। स्थावर, जंगम, सब नदियाँ, सब पर्वत जो कि पहले अनावृष्टि के कारण सूख गये थे, वे अब सूर्य किरणों से जला दिये जाते हैं।।४६-४७$\frac{१}{२}$।। वे समस्त धर्मात्मक अधर्मात्मक पार्थिव पदार्थ अगत्या जल जाते हैं। तब वे सभी अपने पार्थिव शरीर के जल जाने के कारण निष्पाप हो जाते हैं और उनका आयु युग के बीत जाने पर भी अपने शुभ और अशुभ कर्मों से सम्बन्ध रखनेवाली योनि से सम्बन्ध बना ही रहता है। अत्यन्त विशुद्ध, मानसी सिद्धि प्राप्त करनेवाले व्यक्ति जनलोक में वैसी ही (कर्मानुसारिणी) तुल्याकृति प्राप्त करते हैं।।४८-५०।। वे अव्यक्त-जन्मा ब्रह्मा की रात्रि को वहाँ रहकर बिताते हैं। पुनः सृष्टिकाल में वे ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न होते हैं ।।५१।। तदनन्तर जब त्रैलोक्यवासी जनलोक में जाने के लिए नहीं शेष रह जाते अर्थात् अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने पर वे जनलोक के अधिकारी नहीं रहते, सप्तसूर्य की ज्वाला से वे सब लोक दग्ध हो जाते, सम्पूर्ण पृथ्वी वृष्टि से लबालब भर जाती और सब आवास स्थान नष्ट हो जाते हैं तब समुद्र, मेघ, सम्पूर्ण जल और सब पृथिवी से सम्बद्ध जलराशि परस्पर एकाकार होकर एक महासागर के रूप में हो जाती है। इस प्रकार जब जलराशि एकाकार हो इस भूमि को चारों ओर से घेर लेती है तब इसका नाम 'अर्णवा' हो जाता है ।।५२-५४$\frac{१}{२}$।। जिससे सब प्रकाशित होते हैं, जिसके बिना कोई प्रकाश में नही आते, जो अपनी व्याप्ति एवं दीप्ति के कारण चारों ओर फैला रहता है उसको अम्भ कहते हैं। वह अम्भ (जल) सम्पूर्ण पृथिवी को चारों ओर विस्तृत करता है और तनु धातु विस्तार अर्थ में प्रयुक्त होता है इसलिए अम्भ को तनु भी कहा जाता है ।।५५-५६$\frac{१}{२}$।। कवियों

धातुस्तनोति विस्तारे तेनाम्भस्तनवः स्मृताः । अरमित्येष शीघ्रं तु निपातः कविभिः स्मृतः ।।५७।।
एकार्णवे भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः । तस्मिन्युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।।५८।।
रजन्यां वर्तमानायां तावत्तत्सलिलात्मना । ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।।५९।।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्ततः । येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ।।६०।।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तुमिच्छति । एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।६१।।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् । सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।।६२।।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा । सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।।६३।।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । आपो नराख्यास्तनव इत्यपां नाम शुश्रुम ।।६४।।
आपूर्य नाभिं तत्राऽऽस्ते तेन नारायण स्मृतः ।।६५।।

सहस्रशीर्षा सुमनः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ।।६६।।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ।।६७।।

कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत्प्रजाः । कल्पान्ते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाऽग्रसत्पुनः ।।६८।।

ने 'अर' इसको शीघ्रार्थ द्योतक माना है, एकार्णव काल में जल शीघ्रगामी नहीं होता इसलिए जल को 'नर' या 'नार' भी कहा जाता है। सहस्र युग काल परिमाणवाले ब्रह्मा के एक दिन की स्थिति के बाद उतने ही परिमाणवाली रात्रि के हो जाने पर जबकि चारों ओर केवल जल व्याप्त रहता है और अग्नि के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी तल पर चारों ओर घना अन्धकार छा जाता, कहीं पर भी आलोक नहीं दिखायी देता तब उस सलिल में निवास करनेवाले उस प्रभु पुरुष ब्रह्मा के हृदय में पुनः इस लोक को विभक्त करने की इच्छा हुई ।।५७-६०$\frac{१}{२}$।। स्थावर जङ्गमात्मक सृष्टि के नष्ट हो जाने पर जब उस समय केवल एकमात्र समुद्र ही शेष रह जाता है तब केवल इच्छा मात्र से वह ब्रह्मा सहस्राक्ष (हजार आँखोंवाला), सहस्रपाद (हजार पैरवाला), सहस्रशीर्ष (हजार सिरवाला) सुवर्ण के समान वर्णवाला और अतीन्द्रिय हो गया। उस समय ये नारायण नामक ब्रह्मा जल में ही सोते थे। ब्रह्मा के हृदय में उस समय जब सत्त्व गुण की वृद्धि हुई तब उनको ज्ञान-प्राप्ति हो गयी, तब उन्होंने चारों ओर केवल शून्य को ही देखा।।६१-६३।। नारायण के सम्बन्ध में इस प्रकार का श्लोक प्रसिद्ध है कि जल का नर और तनु नाम है। उस जल में वे नाभि तक मग्न होकर रहते हैं अतः उसका नाम नारायण पड़ा।। ६४-६५।। इन सहस्रप्राण, मन, मुख, मस्तक, हस्त, पाद, चक्षु और कर्णवाले, सर्वाग्रवर्ती, प्रजापति पुरुष के विषय में वेदों में विशेष उल्लेख है।।६६।। यही महात्मा वेद में आदित्यवर्ण, भुवनपालक, अपूर्व, प्रथम प्रजापति इन्द्र तम से परे हिरण्यगर्भ और महापुरुष कहे जाते हैं।।६७।। यही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक होने से ब्रह्मा होकर प्रजा की सृष्टि करते हैं और कल्पान्तर काल में तमोगुण के उद्रेक होने से काल होकर सबको निगल जाते हैं।।६८।। सत्त्वगुण के उद्रेक होने से वे एकार्णव में शयन करते हैं, अतः नारायण नाम से प्रसिद्ध

स वै नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् । त्रिधा विभज्य चाऽऽत्मानं त्रैलोक्ये समवर्तत ।।६९।।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु तान् । एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।७०।।
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते । ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ।।७१।।
चतुर्विधाः प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मयां रात्र्यां महार्णवे । पश्यन्ति तं महर्लोकात्सुप्तं कालं महर्षयः ।।७२।।
भृग्वादयो यथा सप्त कल्पे ह्यस्मिन्महर्षयः । (*ततो विवर्तमानैस्तैर्महान्परिगतः परः ।।७३।।
गत्यर्थादृषयो धातो ना (र्ना) मनिर्वृत्तिरादितः । तस्मादृषिपरत्वेन महांस्तस्मान्महर्षयः) ।।७४।।
महर्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः । सत्याद्याः सप्त ये ह्यासन्कल्पेऽतीते महर्षयः ।।७५।।
एवं ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रशः । दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्तं कालं महर्षयः ।।७६।।
कल्पस्याऽदौ तु बहुशो यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश । कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ।।७७।।
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः । व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।।७८।।
इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः । सांप्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ।७९।।
कीर्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा । सांप्रतं ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ।।८०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रतिसंधिकीर्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

होते हैं। वे अपने को तीन भागों में विभक्त कर, त्रैलोक्य में विराजमान रहते हैं।।६९।। तीन मूर्तियों के द्वारा वे सृष्टि और पालन किया करते हैं। चार हजार युग के बाद जब स्थावर, जङ्गम विनष्ट हो जाते हैं दशों दिशाएँ जलमय होकर एकार्णवाकार हो जाती हैं, जब ब्रह्मा कालरूप से चतुर्विध प्रजाओं को निगलकर प्रकाशहीन जलराशि के मध्य में नारायण रूप में सोते रहते हैं, तब उन्हें कल्प के महर्लोकवासी भृगु आदि महर्षिगण देखते हैं। उन महर्षियों ने महान् पुरुष का आश्रय प्राप्त किया है।।७०-७३।। गमनार्थक ऋष् धातु से सर्वप्रथम ऋषि शब्द बना है उसमें भी वे महान् हैं, अतः महर्षि कहे जाते हैं।।७४।। महर्लोक में स्थित वे समस्त ऋषिगण उस समय सोये हुए काल को देखते हैं। पूर्व कल्प में जो सत्य प्रभृति महर्षिगण थे उन्होंने भी काल को इसी प्रकार सुप्त देखा था। इस प्रकार ब्रह्मा की सहस्र-सहस्र रात्रि के बीत जाने पर अन्य महर्षियों ने भी काल को इसी प्रकार शयन करते देखा है।।७५-७६।। यतः कल्प के आदि में ब्रह्मा ने चौदह संस्थाओं के विभाग की कल्पना की इसलिए उस काल को कल्प कहते हैं। वही व्यक्ताव्यक्त महादेव कल्प के आदि में सर्वभूतों की बार-बार सृष्टि करते हैं; अतः यह जगत् उनका ही है ।।७७-७८।। अतीत और वर्तमान काल के मध्य भाग में जो कुछ घटित हुआ है वही प्रतिसन्धि वृत्तान्त है। मैंने आपके आगे उसे कह दिया है। कल्प-कल्प में जो घटना घटित होती है, उसे भी संक्षेप में कह दिया है अब तक जो कुछ कहा गया है। अब आप लोगों से साम्प्रत कल्प के विषय में कह रहा हूँ इसको सुनिये ।।७९-८०।।

श्री वायुमहापुराण का प्रतिसन्धि वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।।७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अथाष्टमोऽध्यायः

चतुराश्रमविभागः

सूत उवाच

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः। शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।।१।।
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वा तदा चरन्। अन्धकारे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।२।।
जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले। अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु तु ।।३।।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः। तदाऽऽकाशे चरन्सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयंभुवः ।।४।।
प्रतिष्ठाया ह्युपायं तु मार्गमाणस्तदा प्रभुः। ततस्तु सलिले तस्मिञ्ज्ञात्वा ह्यन्तर्गतां महीम् ।।५।।
अनुमानात्तु संबुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति। चकारान्यां तनुं चैव पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ।।६।।
स तु रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत्प्रभुः। अद्भिः संछादितामुर्वीं समीक्ष्याथ प्रजापतिः ।।७।।
उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसन्। सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।।८।।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्। प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ।।९।।
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः। (*शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनाऽऽपस्तु संहताः ।।१०।।

अध्याय ८

सूत जी बोले–हजार युग के बराबर रात्रि काल को बिताकर वे आदि पुरुष रात्रि के अन्त में सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं।।१।। ब्रह्मा उस समय वायु रूप धारणकर उस अन्धकार में–जबकि स्थावरजंगमात्मक जगत् नष्ट हुआ रहता, सारा भूमण्डल चारों ओर से जलमग्न रहता, पंच महाभूतों का विभक्त रूप नहीं रहता अर्थात् पाँचों महाभूत पृथक्–पृथक् नहीं दिखायी पड़ते–इधर–उधर जल के ऊपर घूमते रहते हैं।।२–३।। वर्षा ऋतु के खद्योत की भाँति वे इधर–उधर घूमते तो रहते परन्तु स्वयंभू सर्वदा उनका निरीक्षण किया करते हैं।।४।। उस समय प्रभु भू–प्रतिष्ठा (पृथ्वी को जल के ऊपर लाना) के उपाय को ढूँढ़ते रहते हैं। वे उस समय समुद्र में मग्न पृथ्वी का अनुमान से ठीक पता पाकर पृथ्वी के उद्धार के लिए सचेष्ट हो गये। उन्होंने पूर्व कल्पों का स्मरणकर तदनुरूप ही दूसरा शरीर धारण कर लिया। तब प्रभु वाराह का रूप धारणकर उस समुद्र में घुस गये, और जल से आच्छादित पृथ्वी को भलीभाँति देखकर उसको उस जल के ऊपर स्थापित किया। जल को विभक्त कर भिन्न–भिन्न जलाशयों में स्थापित किया। समुद्र जल को समुद्रों में, नदी जल को नदियों में और पार्थिव जल को पृथ्वी में स्थापित कर दिया। पूर्व सर्ग के संवर्तक अग्नि से भस्म होने पर उस समय के पर्वत भी पृथ्वी में ही गलकर लीन हो गये थे। जलप्लावन के समय शीतलता के कारण, वे जहाँ–जहाँ पहले गड़े हुए थे वहाँ–वहाँ पुनः जमकर स्थिर हो गये। वायु के द्वारा ऊपर का जल भी सूख गया। गतिहीन होने के कारण उनका नाम अचल, पर्व (गाँठ) के कारण पर्वत, जल से निगले

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

निषक्ता यत्र यत्राऽऽसंस्तत्र तत्राऽचलोऽभवत् । स्कन्धाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।।११।।
गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः । ततस्तु तां समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्जलात्प्रभुः ।।१२।।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत्पुनः । सप्त सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु ।।१३।।
विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् । द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशस्तथैव च ।।१४।।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः । सर्गादौ संनिविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ।।१५।।
सप्त द्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् । सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ।।१६।।
भूराख्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह । पूर्वं तु निर्ममे ब्रह्मा स्थानीनामानि सर्वशः ।।१७।।
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत्स्थानिनः पुरा । आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ।।१८।।
स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्वांश्च पर्वतान् । ओषधीनां तथाऽऽत्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ।।१९।।
लवाः का (वान्का) ष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं संधिरात्र्यहम् । अर्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च ।।२०।।
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक्पृथक् । स्थानात्मनः स सृष्ट्वा वै युगावस्थां विनिर्ममे ।।२१।।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् । कल्पस्याऽऽदौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत्प्रजाः ।।२२।।
प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः । तस्मिन्संवर्तमाने तु कल्पे दग्धस्तदाऽग्निना ।।२३।।
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः । प्रवर्तन्ति (न्ते) पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ।।२४।।

जाने के कारण अर्थात् जल में डूब जाने के कारण गिरि, पत्थरों के चयन के कारण उसका नाम शिलोच्चय पड़ा।।५-११$\frac{१}{२}$।। तदनन्तर प्रभु ने जल के भीतर पृथ्वी का उद्धार कर उसको निर्दिष्ट स्थान पर स्थापित किया और उसका फिर से विभाग किया। पहले उसको सात द्वीपों में और प्रत्येक द्वीपों को सात-सात वर्षों में बाँटा। विषम भूमि को समतल बनाकर शिलाखण्डों से चुनकर पर्वतों को बनाया।।१२-१३$\frac{१}{२}$।। उन द्वीपों में चालीस वर्ष बनाये गये और प्रत्येक वर्षों में उतने ही पर्वत सृष्टि के आदि में प्रकृति की अनुकूलता के आधार पर स्थापित किये गये, उसमें कोई उलटफेर नहीं हुआ।।१४-१५।। सातों द्वीप और सातों समुद्र एक-दूसरे के मण्डल को प्रकृतितः घेरकर एक-दूसरे के निकट स्थित हैं।।१६।। ब्रह्मा ने सबसे पहले भूः आदि चार लोकों को, चन्द्रमा, सूर्य अन्य ग्रहों के सहित बनाया और उन पर भली-भाँति स्थानों का भी विभाग किया।।१७।। ब्रह्मा ने सबसे पहले इस कल्प के स्थानी (एक स्थान पर रहनेवाले) जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, स्वर्ग, दिशाएँ, समुद्र, नदी, सब पर्वत, अमृतमय ओषधियाँ, वृक्ष, लता आदि वनस्पतियाँ, लव, काष्ठ, कला, मुहूर्त्त, सन्ध्या, रात, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, पृथक्-पृथक् स्थान एवं स्थानाभिमानी और स्थानात्माओं का निर्माण कर उन्होंने कृत, त्रेता, द्वापर और कलि आदि युगों का निर्माण किया। सबसे पहले कल्प के आदि में कृत युग को व्यवस्थित किया।।१८-२२।। पहले मैंने जिस काल और प्रजा की चर्चा की है और उस कल्प के अन्त में जो संवर्तक अग्नि से जलाये गये परन्तु तपोलोक को न जाकर जो जनलोक तक ही रह गये, वे पुनः नवीन सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होते हैं और वे सृष्टि के कारण बनते हैं।।२३-२४।। वहाँ सृष्टिबीज के

बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् । ततस्ताः सृज्यमानास्तु संतानार्थं भवन्ति हि ।।२५।।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिह ताः साध (धि) काः स्मृताः । देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।।२६।।
ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्ति हि । ब्रह्मणो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ।।२७।।
ये सङ्गाद्वेषयुक्तेन कर्मणा ते दिवं गताः । आवर्तमाना इह ते संभवन्ति युगे युगे ।।२८।।
स्वकर्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तथात्मिकाः । संभवन्ति जनाल्लोकात्कर्मसंशयबन्धनात् ।।२९।।
आशयः कारणं तत्र बोद्धव्यं कर्मणां तु सः । तैः कर्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोकाः शुभाशुभैः ।।३०।।
गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु । देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्ते परस्परम् ।।३१।।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे । (+तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।३२।।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।३३।।
कल्पेष्वासन्व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च । तान्येवानागते काले प्रायशः प्रतिपेदिरे ।।३४।।
*तस्मात्तु नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे) । पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपतः ।।३५।।
ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै । प्रजास्ता ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।।३६।।

लिए वे पुनः सृष्टि के लिए देह धारण करते और सन्तानवृद्धि में सहायक होते हैं।।२५।। वे प्रजा, देवता, पितर, ऋषि, मनु आदि धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष के साधन माने गये हैं।।२६।। तदनन्तर वे तपस्या में लीन होकर अपने स्थानों को (कार्यों को) पूरा करते हैं और सिद्धात्मा ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप में देह धारण करते हैं।।२७।। और जो अपने शुभ और उदार कर्मों के प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त किये थे वे पुनः यहाँ प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं।।२८।। अपने कर्मफल के शेष रहने के कारण वे ऐसा रूप धारण करते हैं और कर्मसंशय के बन्धन के कारण ही वे जनलोक से पुनः इस लोक में आते हैं।।२९।। इस उत्पत्ति में कर्मों के आशय को ही कारण समझना चाहिए। वे उन शुभ, अशुभ कर्मों के कारण ही जनलोक से वहाँ उत्पन्न होते हैं।।३०।। नाना योनियों में वे नाना रूप धारणकर देवयोनि से लेकर स्थावर पर्यन्त योनियों से उत्पन्न होते हैं।।३१।। उनमें से सृष्टि के पूर्व जिनको जो–जो कर्म प्राप्त थे, वे पुनः–पुनः जन्म लेकर उन्हीं कर्मों को प्राप्त करते हैं। हिंसा, अहिंसा (मृदुता, क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि को कर्मानुसार प्राप्त करते हैं। इसलिए वे कर्म ही उनको अच्छे जान पड़ते हैं।।३२–३३।। बीते हुए कल्पों में उनके जैसे रूप और नाम रहते प्रायः उन्हीं नामरूपों को भविष्य कल्पों में प्राप्त करते हैं। इस नियम के अनुसार उन्हीं नामरूपों को इस सृष्टि में भी प्राप्त किया।) वे इस प्रकार प्रत्येक कल्प में नामरूपों के अनुसार जन्म लेते हैं। तदनन्तर सृष्टि की इच्छा से चिन्तनशील ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में उन जनलोकवासी प्रजाओं का ध्यान किया। उस समय अपने मुख से एक सहस्र युग्म (नर–नारी) उत्पन्न किये।।३४–३६$\frac{१}{२}$।। सत्त्वगुण के उद्रेक से वे पुरुष, स्त्री बुद्धिमान् और सत्त्वगुणी

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति। * इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

मिथुनानां सहस्रं तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा। जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सुचेतसः ।।३७।।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह। ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिणः ।।३८।।
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वंद्वानामुरुतः पुनः। रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः ।।३९।।
पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानां ससर्ज ह। उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः ।।४०।।
ततो वै हर्षमाणास्ते द्वंद्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः। अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः ।।४१।।
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनोत्पत्तिरुच्यते । मासे (सि) मासे (स्या) र्तवं यद्यत्तत्तदासीद्धि योषिताम् ।।४२।।
तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः। आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ते सकृत् ।।४३।।
(*कुटकाः कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिताः । ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि संभवः ।।४४।।
ध्याते तु मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत्)। शब्दादिविषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ।।४५।।
इत्येव मानसी पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापतेः। तस्यान्ववाये संभूता यैरिदं पूरितं जगत् ।।४६।।
सरित्सरः समुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि। तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिंश्चरन्ति वै ।।४७।।
÷पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै। ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसी सिद्धिमास्थिताः ।।४८।।

हुए। वक्षःस्थल से दूसरे एक हजार पुरुष-स्त्री जोड़े उत्पन्न किये। वे सभी रजोगुण की अधिकता से तेजस्वी और तेजविहीन दोनों प्रकार के थे।।३७-३८।। पुनः अपने उरु से अन्य एक हजार जोड़ों को उत्पन्न किया जो रज और तम दोनों की अधिकता से कामुक हुए।।३९।। अपने चरणों से जिन हजार जोड़ों को उत्पन्न किया वे केवल तमोगुण की अधिकता के कारण तामसी, श्रीहीन और अल्प तेजवाले थे।।४०।। वे मिथुन प्राणी एक-दूसरे के प्रेम से आकृष्ट होकर मैथुन कर्म में प्रवृत्त हुए। इस कल्प में उसी समय से मैथुन-सृष्टि आरम्भ हुई। उस समय स्त्रियों को प्रतिमास रजोदर्शन नहीं होता था अतः मैथुन करने पर भी उनको सन्तान नहीं होते थे।।४१-४२½।। वे एक बार ही जीवन के अन्तिम भाग में एक बालक और बालिका को जनती थीं।।४३।। वे क्षुद्र और कुविक (?) मरणशील थे। उस समय से ही इस कल्प में मैथुनसृष्टि की उत्पत्ति हुई।।४४।। उन प्रजाओं को मन से ध्यान करने पर (विचार करने पर) एक बार प्रत्येक को पंच लक्षण शुद्ध शब्द आदि विषयों का ज्ञान हो गया।।४५।। प्रजापति की जो पहली मानसी सृष्टि हुई उसी वंश में मिथुन सृष्टि भी हुई जिससे यह जगत् परिपूर्ण हो गया।।४६।।

उस समय उस कृतयुग के आरम्भ काल में वे मानव नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे, उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं होती थी, वे इच्छानुसार इधर-उधर घूमते रहते थे।।४७।। वे पृथिवी से उत्पन्न वनस्पितियों या फल मूल को खाते थे। उनको मानसिक सिद्धि प्राप्त थी और वे कामचारी थे।।४८।। उनको धर्म, अधर्म

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ग. पुस्तके नास्ति।

÷ इदमर्धं नास्ति ङ. पुस्तके।

धर्माधर्मौ न तास्वास्तां (+निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः । तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे ।।४९।।
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां) कल्पादौ तु कृते युगे । स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ।।५०।।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया । आद्यं कृतयुगं प्राहुः संध्यानांतु चतुःशतम् ।।५१।।
ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि । न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वंद्वं नापि च क्रमः ।।५२।।
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयस्तु ताः । विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजाः ।।५३।।
ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः । पशवः पक्षिणश्चैव न तदाऽऽसन्सरीसृपाः ।।५४।।
नोद्भिज्जा नारकाश्चैव ते ह्यधर्मप्रसूतयः । न मूलफलपुष्पं च नाऽऽर्तवमृतवो न च ।।५५।।
सर्वकामसुखः कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता । (×मनोभिलषिताः कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ।।५६।।
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां वै ताभिर्ध्याता रसोत्थिताः) । बलवर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशिनी ।।५७।।
असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः । तासां विशुद्धात्संकल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ।।५८।।
समं जन्म च रूपं च म्रियन्ते चैव ताः समम् । तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टिः सुखं दमः ।।५९।।

का विचार न था, कोई भेदभाव भी न था। उस कृत युग में वे आयु, रूप और सुखानुभूति में समान थे।।४९।। कल्प के आदि में कृतयुग में धर्म और अधर्म का विचार न था। लोग कृतयुग में अपने-अपने कर्मानुसार उत्पन्न होते थे।।५०।। उस कृतयुग का वर्षप्रमाण चार हजार दिव्य वर्ष है और संध्या तथा सन्ध्यांश का प्रमाण चार सौ वर्ष है।।५१।। यद्यपि उस समय प्रजाएँ हजारों की संख्या में थीं तथापि उनमें किसी प्रकार का संघर्ष, प्रतिद्वन्द्विता और क्रम का प्रश्न नहीं था।।५२।। वे तो पर्वतों और समुद्रों के निकट बसते थे। उनका कोई स्थायी घर भी नहीं था, वे एकान्त सुखी, शोकरहित और सत्त्वगुणी थे।।५३।। अपनी इच्छा के अनुसार इधर-उधर घूमते और सर्वदा प्रसन्न रहते थे, उस समय पशु, पक्षी, सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले) आदि जीव नहीं थे।।५४।। न तो उस समय अधर्म करनेवाले कोई नारकीय जीव थे और न कोई उद्‌भिज्ज पदार्थ ही थे। मूल, फल, पुष्प का उस समय अभाव था (ये उपजाये नहीं जाते थे)।।५५।। ऋतु और ऋतु सम्बन्धी परिवर्तन आदि भी नहीं थे, उनके लिए प्रत्येक क्षण सुखदायी थे, अति शीत और असह्य आतप नहीं था।।५६।। उनको सर्वत्र सर्वदा अभीष्ट पदार्थ प्राप्त थे, उनकी इच्छामात्र से पृथ्वी से रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको बल और रूप को बढ़ानेवाली रोगनाशक ओषधियाँ प्राप्त थीं।।५७।।

यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) आदि नहीं करते थे तथापि वे स्थिर यौवन थे। उनके शुद्ध संकल्प से ही मिथुनप्रजा (सन्तति) उत्पन्न हो जाती थी।।५८।। वे जन्म और रूप में समान थे, मृत्यु भी साथ ही होती थी। उस समय सत्य, अलोभ, क्षमा, तुष्टि, सुख और संयम का ही प्रचार था।।५९।। इनके रूप,

---

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

निर्विशेषास्तु ताः सर्वा रूपायुः शीलचेष्टितैः । अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानां जायते स्वयम् ।।६०।।
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः । वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदाऽऽसन्न संकरः ।।६१।।
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्तयन्ति परस्परम् । तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः ।।६२।।
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे । नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबलाः ।।६३।।
लाभालाभौ न तास्वास्तां मित्रामित्रे प्रियाप्रिये । मनसा विषयस्तासां निरीहाणां प्रवर्तते ।।६४।।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यं नानुगृह्णन्ति चैव हि । ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।।६५।।
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञं (ज्ञो) दानं कलियुगे वरम् । सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं तु रजस्तमौ ।।६६।।
कलौ तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तवशेन तु । कालः कृते युगे त्वेष तस्य संख्यां निबोधत ।।६७।।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् । संध्यांशो तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च संख्यया ।।६८।।
तदा तासां बभूवाऽऽयुर्न च क्लेशविपत्तयः । ततः कृतयुगे तस्मिन्संध्यांशे हि गते तु वै ।।६९।।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वशः । संध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु ।।७०।।
पादवश्चावशिष्टे तु संध्याधर्मो युगस्य तु । एवं कृते तु निःशेषे सिद्धिस्त्वन्तर्दधे तदा ।।७१।।
तस्यां च सिद्धौ भ्रष्टायां मानस्यामभवत्ततः । सिद्धिरन्या युगे तस्मिस्त्रेतायामन्तरे कृता ।।७२।।

आयु, शीत और चेष्टाओं में पार्थक्य या विशेषता नहीं थी। प्रजाओं के व्यापार और व्यवहार स्वाभाविक होते थे बुद्धिपूर्वक नहीं।।६०।। कृतयुग में शुभ और अशुभ कर्मों में प्रजा की प्रवृत्ति नहीं थी क्योंकि शुभ-अशुभ का विभाग था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी, न तो संकर दोष ही था।।६१।। वे परस्पर अकाम और अनिच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। रूप, आयु में सभी तुल्य थे, उत्तम, अधम का प्रश्न नहीं था, उस युग में तो सभी सुखी, विशोक, सदा प्रसन्न, महासत्त्व और महाबलवान् थे।।६२-६३।। उनमें लाभ-अलाभ, मित्र-अमित्र, प्रिय-अप्रिय के व्यवहार न थे, वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे। एक-दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा, स्वार्थ न था, न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी। कृतयुग में ध्यान का ही महत्त्व है, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलि में दान ही श्रेष्ठ समझा जाता है।।६४-६५$\frac{१}{२}$।। युगानुरूप कृतयुग में सत्त्वगुण, द्वापर में रज और तम और कलियुग में केवल तम की प्रधानता रहती है। कृत का जो काल परिमाण है उसको सुनो।।६६-६७।। चार हजार दिव्य वर्षों का कृतयुग है, उसकी संध्या और संध्यांश का परिमाण आठ सौ दिव्य वर्ष है।।६८।। उस युग में प्रजाओं की मृत्यु, क्लेश और विपत्तियों की आशंका नहीं। तदनन्तर उस कृतयुग में संध्यांश काल के बीत जाने पर उस समय का युगधर्म चौथाई शेष रह जाता है। इस प्रकार कृतयुग के बीत जाने पर उस युग की सिद्धि भी लुप्त हो गयी।।६९-७१।। उस मानसी सिद्धि के लुप्त हो जाने पर त्रेता और कृतयुग के सन्धिकाल में दूसरी सिद्धि उत्पन्न हुई। मैंने सृष्टि के आरम्भ की जिन आठ प्रकार की सिद्धियों को गिनाया है, वे आठों क्रमशः नष्ट हो जाती हैं। कल्प के आदि में कृतयुग में वह मानसी सिद्धि होती है। सब मन्वन्तरों में चारों युगों

सर्गादौ या मयाऽष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः । अष्टौ ताः क्रमयोगेन(ण) सिद्धयो यान्ति संक्षयम् ।।७३।।
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते । मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः ।।७४।।
वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्धोद्भवः स्मृतः । संध्या कृतस्य पादेन संध्यापादेन चांशतः ।।७५।।
कृतसंध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन्पादान्परस्परान् । ह्रसन्ति युगधर्मस्ते तपः श्रुतबलायुषैः ।।७६।।
ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम् । त्रेतायां युगमन्यत्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ।।७७।।
तस्मिन्क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह । कल्पादौ (*संप्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा ।।७८।।
प्रणश्यति तदा सिद्धिः कालयोगेन नान्यथा । तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिरवर्तत ।।७९।।
अपां सौक्ष्म्ये) प्रतिगते तदा मेघात्मना तु तौ । मेघेम्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम् ।।८०।।
सकृदेव तथा वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले । प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।।८१।।
सर्वप्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते । वर्तयन्ति हि तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ।।८२।।
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् । रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।।८३।।
यत्तद्भवति नारीणां जीवितान्ते तदाऽर्तवम् । तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु ।।८४।।
तासां पुनः प्रवृत्तं तु मासे मासे तदार्तवम् । ततस्तेनैव योगेन वर्ततां मिथुने तदा ।।८५।।
तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छताम् । अकाले ह्यार्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ।।८६।।

के विभाग के अनुसार वर्णाश्रम धर्म के आचार पालन के द्वारा कर्मों की सिद्धियाँ होती हैं। किन्तु युगशेष के साथ-ही-साथ वर्णाश्रमों के आधार और कर्मजन्य उनकी समस्त सिद्धियाँ भी विनष्ट हो जाती हैं। सत्ययुग के सन्ध्याकाल में युगधर्म का एक पाद, सन्ध्यांशकाल में सन्ध्याकालीन धर्म का एक पाद एवं त्रेता के आरम्भ में उस सन्ध्यांशकालीन धर्म का एक पाद नष्ट हो जाता है, इसी क्रम से तपस्या, शास्त्रज्ञान, बल और आयु भी क्षीण होती है। मुनिगण! सत्ययुग और सन्ध्यांश के क्षीण हो जाने पर त्रेता युग का प्रारम्भ होता है। जब प्रजाओं में युगादिकालीन वह सिद्धि नहीं रहती तब फिर उनमें दूसरी सिद्धि उत्पन्न होती है।।७२-७९।। जल समूह की सूक्ष्मता विनष्ट हो जाती है और वह गर्जनकारी मेघ के रूप में परिणत हो जाता है, और वृष्टि की सृष्टि हो जाती है।।८०।। एक बार भी वृष्टि के हो जाने से प्रजाओं के वासस्थानों में वृक्षादि उग आते हैं। इससे प्रजाओं को विविध उपभोग प्राप्त हो जाते हैं। त्रेता युग की प्रथम अवस्था में प्रजाजन उसी से जीविका निर्वाह करते हैं।।८१-८२।। इसके बाद क्रम-क्रम से उनके भावों में परिवर्तन होने लगता है। वे आकस्मिक राग और लोभ से आक्रान्त हो जाते हैं। सत्ययुग में स्त्रियों को आयु के शेषकाल में ही गर्भ धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती थी; किन्तु वह भाव युग प्रभाव से त्रेतायुग में विलुप्त हो जाता है। इस युग में स्त्रियाँ प्रतिमास ऋतुमती होती हैं। सहवासकारी प्रजाओं के प्रतिमास संगम करने से अकाल में ही गर्भोत्पत्ति एवं आर्तवोत्पत्ति होने लगती है। पुनः क्रमशः काल के परिवर्तनवश प्रजाओं के निवास में उगे हुए वृक्षादि विनष्ट होने लगते हैं, इससे

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

विपर्ययेण तासां तु तेन कालेन भाविना । प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ।।८७।।
प्रादुर्बभूवुस्तासां च वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ।।८८।।
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता व्याकुलेन्द्रियाः । अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।।८९।।
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् । अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ।।९०।।
तेन ता वर्तयन्ति स्म सुखे त्रेतायुगस्य वै । हृष्टतुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः ।।९१।।
पुनः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः । वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात् ।।९२।।
तासां तेनापचारेण पुनर्लोककृतेन वै । प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित् ।।९३।।
सस्यामेवाल्पशिष्टायां संध्याकालवशात्तदा । प्रावर्तन्त तदा तासां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ।।९४।।
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् । द्वंद्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ।।९५।।
कृत्वा द्वन्द्वप्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे । पूर्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ।।९६।।
यथायोग्यं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः । मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च ।।९७।।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वानं शाश्वतोदकम् । यथायोगं यथाकामं समेषु विषमेषु च ।।९८।।
आरब्धास्ते निकेता वै(न्वै)कर्तुं शीतोष्णवारणम् । ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।।९९।।
ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैवान्तःपुराणि च । तासामायामविष्कम्भान्संनिवेशान्तराणि च ।।१००।।

लोग विभ्रान्त और व्याकुल चित्त होकर पहले का सिद्धि विषयक ध्यान करने लगते हैं। उनके सत्याभिध्यान के फल से फिर घरों में वृक्षादि उगने लगते। इस प्रकार वे उसी वृक्षों से वस्त्र, फल, आभरण एवं उत्तम गन्धवाला, देखने में सुन्दर, सरस और अत्यन्त वीर्यकारी अमाक्षिक मधु हरे पत्तों से प्राप्त करने लगे।।८३-९०।। त्रेतायुग में प्रजागण उसी के द्वारा सुख से जीवन व्यतीत करते थे। सभी उसी सिद्धि के द्वारा हृष्ट, पुष्ट और क्षोभरहित होकर कालयापन करते थे। फिर जब कालक्रम से प्रजावर्ग के वशीभूत होकर उन समस्त वृक्षों को और माक्षिक मधु को बलपूर्वक अपनाने लगे।।९१-९२।। तब उनके इस अपचार के कारण कहीं-कहीं वे कल्पवृक्ष मधु के साथ ही विनष्ट होने लगे। उस काल में कल्पवृक्षों के क्षीण होने से प्रजाओं में शीतोष्णादि द्वन्द्व-क्लेश भी उत्पन्न हो गये।।९३-९४।। वायु, ठंडक और गर्मी से पीड़ित होकर लोग गात्रावरण (वस्त्र) धारण करने लगे। ये यथेच्छविहारी गृहहीन प्रजागण गात्रावास द्वारा वायु, शीत और घाम के कष्ट का निवारण करने के लिए घर बनाकर रहने लगे। यथायोग्य अपनी रुचि के अनुसार गृह निर्माण कर सुख से निवास करने लगे।।९५-९६$\frac{१}{२}$।। उन्होंने मरु, उन्नत, निम्न, पर्वत, नदी, जलप्राय सम, विषम, दुर्गम इत्यादि नाना स्थान में अपनी रुचि के अनुसार शीतातप-क्लेश से बचने के लिए दुर्ग, भवनादि बनाना आरम्भ कर दिया। तब खेट (क्षुद्रग्राम), पुर, अन्तःपुर, हर्म्यादि बनाये गये।।९७-९९।। उनकी लम्बाई-चौड़ाई यथाबुद्धि निश्चित की गयी, उनके दीर्घप्रस्थादि परिमाण के लिए अङ्गुलि के माप द्वारा विविध परिमाण की संज्ञा भी निश्चित हुई।

चक्रुस्तदा यथाप्रज्ञं (*मित्वा मित्वाऽऽत्मनोऽङ्गुलैः । मनोऽर्थानि प्रमाणानि तदा प्रभृति चक्रिरे ।।१०१।।
यथाङ्गुलप्रदेशांस्त्रीन्हस्तकिष्कुधनूंषि च । दश त्वङ्गुलपर्वाणि) (×प्रदेशः संज्ञितस्तु तैः ।।१०२।।
अष्टाङ्गुलः प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते । तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ।।१०३।।
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल उच्यते । रत्निरङ्गुलपर्वाणि) संख्यया त्वेकविंशतिः ।।१०४।।
चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु । किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् (?) ।।१०५।।
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च । धनुःसहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ।।१०६।।
अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तैर्निरुच्यते । एतेन योजनेनैव संनिवेशस्ततः कृतः ।।१०७।।
चतुर्णामेव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु । चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम् ।।१०८।।
सौधोच्चवप्रप्राकारं सर्वतश्चातकावृतम् । तदेकं स्वस्तिकद्वारं कुमारीपुरमेव च ।।१०९।।
स्रोतसीसंहतद्वारं निखातं पुनरेव च । हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मताः ।।११०।।
खेटानां नगराणां च ग्रामाणां चैव सर्वशः । त्रिविधानां च दुर्गाणां पर्वतोदकबन्धनम् ।।१११।।
त्रिविधानां च दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च । योजनानां च निष्कम्भमष्टभागार्धमायतम् ।।११२।।

प्रादेश, हस्त, किष्कु, धनु इत्यादि संज्ञाएँ तभी से प्रचलित हुईं। दस अंगुलिपर्वों का एक प्रदेश, अङ्गुष्ठा से लेकर तर्जनी तक के विस्तार-परिमाण को प्रादेश, मध्यमापर्यन्त का ताल, अनामिका के अन्त तक गोकर्ण और कनिष्ठान्त परिमाण की एक वितस्ति (वित्ता) होती है। वितस्ति का परिमाण बारह अँगुलियों का होता है।।१००-१०३$\frac{१}{२}$।। इक्कीस अँगुलियों के पर्वों की रत्नि, चौबीस अँगुलियों के पर्वों का हस्त और दो रत्नियों का अर्थात् बयालीस अँगुलियों का एक किष्कु होता है। चार हाथ का एक धनु, दण्ड या नालिका युग होता है। दो हजार धनुषों की एक गव्यूति और आठ हजार धनुषों का एक योजन होता है।।१०४-१०६$\frac{१}{२}$।। इस योजन परिमाण के अनुसार उन लोगों ने अपना-अपना वासस्थान बनाया था। उन लोगों ने चार तरह के दुर्गों का भी निर्माण किया। जिनमें तीन दुर्ग तो प्राकृतिक होते थे, परन्तु चौथा कृत्रिम होता था। इस कृत्रिम दुर्ग की भी विधि सुनिये-उसमें ऊँचे घेरेवाले कोठे, बहुजलपूर्ण परिखा, सेतु संयुक्त द्वारदेश और स्वस्तिक द्वार होते हैं। दुर्ग में कुमारीपुर भी रहता है।।१०७-१०९।। परिखा की लम्बाई और चौड़ाई दस और आठ हाथ की ठीक होती है, या नौ और आठ हाथ की भी होती है। खेट, नगर, ग्राम और त्रिविध दुर्गों की सीमा पर्वत अथवा जल द्वारा बाँधी जाती है। विष्कम्भ परिमाण के त्रिविध दुर्गों का आयतन परिमाण से साढ़े आठ अंश का होता है। लम्बाई से आधी चौड़ाईवाला पुर श्रेष्ठ होता है। पूर्वोत्तर दिशा का भाग कुछ निम्न रहना चाहिए। छिन्नकर्ण, विकर्ण, छिटपुट, घना, गोल, छोटा और बड़ा पुर निन्दनीय

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो नास्ति।

परमार्धार्धमायामं प्रागुदक्प्रवणं पुरम्। छिन्नकर्णं विकर्णं तु व्यञ्जनं कृतसंस्थितम् ।।११३।।
वृत्तं हीनं च दीर्घं च नगरं न प्रशस्यते। चतुरस्त्रार्जवं दिक्स्थं प्रशस्तं वै पुरं पुरम् ।।११४।।
चतुर्विंशतिराद्यं तु हस्तनष्टशता परम्। अत्र मध्यं प्रशंसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ।।११५।।
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यं निवेशनम्। नगरादर्धं विष्कम्भं खेटं ग्रामं ततो बहिः ।।११६।।
नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोऽर्धयोजनम्। द्विक्रोशे परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्धनुः ।।११७।।
विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तु तैः कृतः। विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु ।।११८।।
धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान्राजपथः स्मृतः। नृवाजिरथनागानामसम्बाधः सुसंचरः ।।११९।।
धनूंषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु तैः कृताः। गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः ।।१२०।।
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदं च गृहान्तरम्। वृत्तिमार्गास्त्वर्धपदं प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः ।।१२१।।
अवस्करं परीवाहं पदमात्रं समन्ततः। कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ।।१२२।।
मधा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः। तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ।।१२३।।
वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः। अत ऊर्ध्वं गताश्चान्या एवं तिर्यग्गताः पुरा ।।१२४।।
बुद्ध्वाऽन्विष्यंस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः। तथा कृतास्तु तैः शाखास्तस्माच्छालास्तु ताः स्मृताः ।।१२५।।

होता है। चौकोर कुछ बड़ा एवं एक दिशा में घना पुर उत्तम होता है, किन्तु इनमें भी अपेक्षाकृत पहला ही उत्तम है। चौबीस हाथ और एक सौ आठ हाथों के विष्कम्भ परिमाण से युक्त सम चतुरस्र (चौकोर) मध्य भाग प्रंशसनीय होता है। पुरमध्यवर्ती मुख्य वासस्थान का विष्कम्भ परिमाण अष्ट शत किष्कु है।।११०-११५$\frac{१}{२}$।। नगर के परिमाण से खेट का परिमाण आधा होता है और खेट (कस्बा) के परिमाण से ग्राम का परिमाण छोटा रहता है। नगर से खेट एक योजन पर और खेट से ग्राम आधे योजन पर रहता है। परम (चरम) सीमा दो कोसों की, क्षेत्र की सीमा चार धनु की होती है।।११६-११७।। प्रत्येक दिक्पथ का विस्तार बीस-बीस धनुओं का होता है। ग्राम्य पथ का विस्तार भी बीस धनु और सीमापथ का परिमाण दस धनु होता है। श्रीसम्पन्न राजपथ का विस्तार दस धनुओं का होता है, जिसमें मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथ आदि सुखपूर्वक चल-फिर सकें।।११८-११९।। उस काल के प्रजागण शाखागली चार धनु का बनाते थे। घरेलू गली दो धनु की, साधारण गली एक धनु की, घंटापथ चार पद का और गृहान्तर तीन पद का होता था।।१२०-१२१$\frac{१}{२}$।। वे प्रजागण ऐसा करके पहले जिस प्रकार वृक्षों के निकट वास करते थे वैसे ही घरों को भी उन्हीं वृक्षों के अनुकरण से बार-बार सोच-विचारकर बनाने लगे।।१२२-१२३।। वृक्ष की शाखा जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर और इधर-उधर फैली रहती है, उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगों ने उत्तम घर बनाया। वृक्षशाखा की तरह विन्यस्त होने से वैसे घरों का नाम शाला रखा गया। शाखा के आकार में बनाये जाने के कारण वे गृह शाला के नाम

एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च । (*तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ।।१२६।।
प्रसीदति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः) । तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ।।१२७।।
कृत्वा द्वंद्वोपघातास्तांस्तान्वार्तोपायमचिन्तयन् । नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ।।१२८।।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः । ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।।१२९।।
वार्तार्थसाधिकाऽप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः । तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।।१३०।।
+वृष्ट्या तदभवत्स्रोतः खातानि निम्नगाः स्मृताः । एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने ।।१३१।।
ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले । अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।।१३२।।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे । अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।।१३३।।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे । प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्तायामौषधस्य तु ।।१३४।।
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा । ततः पुनरभूत्तासां रोगो लोभश्च सर्वशः ।।१३५।।
अवश्यं भाविनाऽर्थेन त्रेतायुगवशेन तु । ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।।१३६।।
वृक्षान्गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् । सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याताः प्राक्कृते यया ।।१३७।।

से प्रसिद्ध हुए। यही शाला शब्द का योगार्थ है; क्योंकि शाखाओं से ही शाला और शालात्व बने हैं।।१२४-१२६।। जिस घर से मन प्रसन्न हो और जो मन को प्रसन्न करे, ऐसे गृह और शाला का नाम प्रासाद रखा गया। उस काल के प्रजागण इस प्रकार शीतोष्णादि द्वन्द्व क्लेश का निवारण करके जीविका का उपाय सोचने लगे। मधु के साथ-साथ कल्पवृक्षों के विनष्ट हो जाने से वे प्रजागण भूख, प्यास और विषाद से व्याकुल हो रहे थे। तब सत्ययुग की ही तरह त्रेतायुग में उनके बीच कामानुरूप वार्तार्थसाधक (जीविका साधक) वृष्टि रूप सिद्धि उत्पन्न हुई। इसी से उनकी वृत्ति 'जीविका' चली। उस द्वितीय वृष्टि-सृष्टि से पृथ्वी का जो स्थान जलहीन और शुष्क हो गया था, वह जलपूर्ण हो गया। गड्ढे नदी के रूप में परिणत हो गये और जगह-जगह से जो जल रुक गये थे, उससे पृथ्वी रसवती होकर शस्यशालिनी हो गयी। बिना जोते-बोये चौदह तरह की फल-फूल-मूलवाली ओषधियाँ गाँवों और जंगलों में उग आयीं। उस त्रेता युग में ही ऋतुओं के अनुकूल पुष्प, फल, वृक्ष, गुल्म और जीविका की बहुविध ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन ओषधियों के गुण से उस काल के प्रजा लोग सुखपूर्वक कालयापन करते थे। तब युग धर्म के अनुसार अवश्यम्भावी रोग और लोभ उनमें उत्पन्न हुए। अपनी शक्ति के अनुसार उन लोगों ने नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और ओषधियों को अपने-अपने अधिकार में करने लगे। सत्ययुग के पूर्व जिन सिद्धात्माओं की कथा को कहा है, वे ब्रह्मा की मानस सृष्टि हैं।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

+ एतदर्धस्थाने ''वृष्ट्या निम्ना निरभवत्स्रोतः खातानि निमम्ना'' इति क. ख. घ. ङ. पुस्तकेषु।

ब्रह्मणा मानवास्ते वा उत्पन्ना योजनादिह । शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तदा ।।१३८।।
ततः प्रवर्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः । ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।।१३९।।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः । इतस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ।।१४०।।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै । प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ।।१४१।।
तेषां कर्माणि कुर्वन्ति तेभ्यश्चैवाबलास्तु ये । परिचर्यास्व(सु)वर्तन्ते तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ।।१४२।।
एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् । तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा ।।१४३।।
प्रनष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा । अग्रसद्भूर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।।१४४।।
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्च या पुनः । ततस्तासु प्रनष्टासु विभ्रान्तास्ताः प्रजास्तदा ।।१४५।।
स्वयंभुवं प्रभुं जग्मुः क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम् । वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।।१४६।।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्ज्ञात्वा तासां मनीषितम् । युक्तं प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।।१४७।।
ग्रस्ताः पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुनः । कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।।१४८।।
दुग्धेयं गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले । जज्ञिरे तानि बीजानि ग्रामारण्यास्तु ताः पुनः ।।१४९।।
ओषध्यः फलपाकान्ताः सप्तसप्तदशास्तु ताः । व्रीहयश्च यवाश्चैव (*गोधूमा अणवस्तिलाः ।।१५०।।

यजन से ही उनकी उत्पत्ति है। वे ही फिर त्रेतायुग में जन्म ग्रहण करते हैं।।१२७-१३८½।। शुभाशुभ कर्म के गुरुत्व और लघुत्व के अनुसार यथाक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और इन तीनों का द्रोहकारी शूद्र, इस तरह चतुर्विध प्रजा उत्पन्न हुई। उनके बीच जो बलवान्, सत्यवादी, अहिंसक, निर्लोभ और जितेन्द्रिय थे, वे ऊपर बताये गये। नगर, ग्राम आदि में रहते थे। इसकी अपेक्षा जो दुर्बल थे, वे इनसे प्रतिग्रह 'दान' लिया करते थे।।१३९-१४१।। जो इनकी अपेक्षा भी दुर्बल थे, इनका कर्म किया करते थे जो इनसे भी दुर्बल थे, वे इनकी परिचर्या किया करते थे। इस तरह वे परस्पर आश्रय लेकर कालयापन करते थे। उनके इस दोष से ओषधियाँ इस तरह नष्ट हो गयीं, जिस प्रकार क्रमशः मुट्ठी-मुट्ठी हटाने से बालुका राशि नष्ट हो जाती है। युगधर्मानुकूल पृथ्वी ने तब चौदहों प्रकार के जंगली और ग्रामीण शस्यों को अपने में छिपा लिया। प्रजागण उस समय फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्र को भी तोड़ लिया करते थे, इससे वे सब नष्ट हो गये और प्रजागण व्याकुल हो उठे। वे व्याकुल हो पुनः जीविका लाभ के लिए स्वयंभू प्रजापति ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए। उस त्रेतायुग के आदिकाल में स्वयंभू प्रजापति (ब्रह्मा) ने उनकी अभिलाषा को जान लिया और प्रत्यक्ष भी देखा। विचार करने के बाद यह जानकर कि पृथ्वी ने ओषधियों को अपने में छिपा लिया है, पृथ्वी को फिर से दुहा। उन्होंने सुमेरु को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी को दुहा। दुहे जाने पर इस धेनु रूपा पृथ्वी ने जंगली और ग्रामीण बीजों को पृथ्वी तल पर उत्पन्न किया। फल पकने तक जिसके बीज रहें वे ओषधियाँ हैं। ये ओषधियाँ

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

+प्रियंगवो ह्युदाराश्च कारूषाश्च सवी (ती) नकाः । माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाःसकुलत्थकाः ।।१५१।।
आढक्याश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशाः स्मृताः । इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः ।।१५२।।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश । व्रीहयः सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः ।।१५३।।
प्रियंगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका । श्यामाकास्त्वथ नीवारा जतिलाः सगवेधुकाः ।।१५४।।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये । ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्त चतुर्दश ।।१५५।।
उत्पन्नाः प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु । अफालकृष्टा ओषध्यो ग्रामारण्यास्तु सर्वशः ।।१५६।।
वृक्षा गुल्मलता वल्ली वीरुधस्तृणजातयः । मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन्पुष्पैश्च जायते (?) ।।१५७।।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयंभुवा । ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।।१५८।।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः । ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्तोपायं चकार ह ।।१५९।।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजाम् । ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ।।१६०।।
संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तासां स्वयंभुवा । मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ।।१६१।।
ये वै परिग्रहीतारस्तामासामासन्विधात्मकाः । इतरेषां कृतत्राणाः स्थापयामास क्षत्रियान् ।।१६२।।
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा । सत्यं ब्रह्म यथा भूतं ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ।।१६३।।

सत्रह प्रकार की हैं। घान, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, प्रियंगु, उदार, कारूष, सवीनक, माष, मूँग, मसूर, निष्पाव, कुलथी, आढ़क्य और चना ये सत्रह प्रकार की ओषधियाँ ग्रामीण कही जाती हैं।।१४२-१५२।। ग्रामीण और जंगली चौदह प्रकार की ओषधियाँ यज्ञसाधन हैं। व्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, प्रियंगु, कुलथी, श्यामाःक, नीवार, जतिल गवेधुक, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कटक ये चौदह प्रकार की ओषधियाँ ग्रामीण और आरण्यक दोनों हैं। त्रेतायुग के आदिकाल में पहले से उत्पन्न हुईं। बिना जोते ये ओषधियाँ जंगलों और ग्रामों में उत्पन्न हुईं। इनके अतिरिक्त वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, वीरुध, तृण आदि भी प्रादुर्भूत होकर मूल, फल, पुष्प आदि से प्रजाओं को सुख-समृद्ध करने लगे। ब्रह्मा द्वारा दुहे जाने पर पृथ्वी ने जिन बीजों को उत्पन्न किया था, उनसे ऋतुओं के अनुकूल उनसे विविध प्रकार के फल उत्पन्न हुए। किन्तु जब वे ओषधियाँ अच्छी तरह उगी नहीं तब तक के लिए उन्होंने उनकी जीविका का उपाय किया कि भूमि जोतकर अन्न उपजाया जाय। स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा ने उनकी कर्मजन्य सिद्धि को देखकर ऐसा किया। तभी से कर्षणज सस्योत्पत्ति आरम्भ हुई है। उनकी संदिग्ध वार्ता में यानी जीविकोपाय के विवाद-संवाद में ब्रह्मा ने बहुतेरी मर्यादा (व्यवस्था) स्थापित की। उनके बीच जो बलवान् और भूमिपति थे उन क्षत्रियों को दूसरे की रक्षा का भार सौंपा। जो उन क्षत्रियों के निकट निर्भय होकर जाते थे, सत्यवादी और सर्वभूतों में ब्रह्मज्ञानवान् थे वे ब्राह्मण कहलाये।।१५३-

---

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

ये चान्येऽप्यबालास्तेषां वैशसं कर्म संस्थिताः । कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्या प्रागतान्द्रिताः ।।१६४।।
वौश्यन्येव तु तानाहुः कीनाशान्वृत्तिसाधकान् । शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः ।।१६५।।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः । तेषां कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात्प्रभुः ।।१६६।।
संस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्वर्ण्यस्य सर्वशः । पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान्धर्मान्तानपालयन् ।।१६७।।
वर्णधर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् । ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन वै प्रभुः ।।१६८।।
क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीवमादिशत् । याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च प्रतिग्रहम् ।।१६९।।
ब्राह्मणानां विभुस्तेषां कर्माण्येतान्यथाऽऽदिशत् । पाशुपाल्यं वाणिज्यं कृषिं चैव विशां ददौ ।।१७०।।
शिल्पाजीवं भृतिं चैव शूद्राणां व्यदधात्प्रभुः । सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशां पुनः ।।१७१।।
यजनाध्ययनं दानं सामान्यानि तु तेषु च । कर्माजीवं ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।।१७२।।
लोकान्तरेषु स्थानानि तेषां सिद्ध्याऽददात्प्रभुः । प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।।१७३।।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां सङ्ग्रामेष्वपलायिनाम् । वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममुपजीविनाम् ।।१७४।।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां प्रतिचारेण तिष्ठताम् । स्थानान्येतानि वर्णानां व्यत्याचारवतां स्वयम् ।।१७५।।
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाऽऽश्रमान् । गृहस्थो ब्रह्मचारित्वं वानप्रस्थं सभिक्षुकम् ।।१७६।।

१६३।। जो उनकी अपेक्षा निम्नक्रूर कर्म करनेवाले और यम की तरह जान-बूझकर पृथ्वी पर प्रजाओं का नाश करते थे उन्हें कीनाश पद से अभिहितकर वैश्य कहा और उन्हें सर्वसाधारण के वृत्ति साधन कार्य में लगाया। जो सोचते हुए, शोक करते हुए इधर-उधर भ्रमण करते थे और निस्तेज थे, उन्हें शूद्र कहा और उन्हें परिचर्या-कार्य में लगाया। इस तरह ब्रह्मा ने उनके धर्म-कर्म का प्रणयन किया और वे चातुर्वर्ण अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करने लगे। फिर वे क्रम-क्रम से मोहवश होकर उन सकल वर्णधर्म नियमों का अनादर कर परस्पर विरुद्धाचरण में प्रवृत्त हुए। प्रभु ब्रह्मा ने यथार्थतः उनके आचरणों को जानकर क्षत्रियों को बल, शासन और युद्ध जीविकोपाय बताया, ब्राह्मणों को याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह रूप तीन कर्म बतलाये, पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकर्म रूप जीविकोपाय वैश्यों को दिया एवं शूद्रों के लिए शिल्प तथा दासत्व की व्यवस्था की। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिए यजन, अध्ययन एवं दान की सामान्य रूप से व्यवस्था की। ब्रह्मा ने उन्हें परस्पर कर्म और जीविका देकर उनकी सिद्धि के अनुरूप लोकान्तर में भी स्थानों का निर्देश कर दिया। क्रियाशील ब्राह्मणों के लिए प्राजापत्यस्थान, संग्राम में डटे रहनेवाले क्षत्रियों के लिए ऐन्द्रस्थान, स्वधर्मनिष्ठ वैश्यों के लिए मारुत नामक स्थान और अपने आचरण में निरत शूद्रों के लिए गांधर्वस्थान का निरूपण किया। स्वधर्मनिष्ठ वर्णचतुष्टयों के लिए उन्होंने इन स्थानों का विधान किया। इस तरह वर्णधर्म के प्रतिष्ठित हो जाने पर उन्होंने आश्रमों का स्थापन किया।।१६४-१७५$\frac{१}{२}$।। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक नामक चार आश्रमों को ब्रह्मा ने पहले स्थापित किया। उन आश्रमवासी प्रजाओं में कुछ वर्णधर्म को नहीं करते थे

आश्रमांश्चतुरो ह्येतान्पूर्वमास्थापयत्प्रभुः । वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते ।।१७७।।
कुतः कर्मांक्षितिं प्राहुराश्रमस्थानवासिनः । ब्रह्मा तान्स्थापयामास आश्रमान्नाम नामतः ।।१७८।।
निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्मा धर्मानभाषत । प्रस्थानानि च तेषां वै यमांश्च नियमांश्च ह ।।१७९।।
चातुर्वर्ण्यात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाऽऽश्रमः स्मृतः । त्रयाणामाश्रमाणां च प्रतिष्ठा योनिरेव च ।।१८०।।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ते । दाराग्नऽयोथाऽऽतिथेय इज्याश्राद्धक्रियाः प्रजाः ।।१८१।।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः । दण्डी च मेखली चैव ह्यधःशायी तथा जटी ।।१८२।।
गुरुशुश्रूषणां भैक्ष्यं विद्यार्थं ब्रह्मचारिणः । चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ।।१८३।।
उभे संध्ये वगाहश्च होमश्चारण्यवासिनाम् । आसन्नमुसले भैक्षमस्तेयं शौचमेव च ।।१८४।।
अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा । अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यं च दशमं स्मृतम् ।।१८५।।
दशलक्षणको ह्येष धर्मः प्रोक्ताः स्वयंभुवा । भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च ।।१८६।।
आचारशुद्धिर्विनयः शौचं चाप्रतिकर्म च । सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि ।।१८७।।
ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां ससागरैर्भैक्ष्यमथोपगम्य । मौनं पवित्रोपचितैर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्ममिमं वदन्ति ।।१८८।।
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्ता आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम् । सत्यार्जवं तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ।।१८९।।

और कहने लगे कि पृथ्वीतल में हमारा कर्त्तव्य कर्म क्या है, क्या करें। तब ब्रह्मा ने उन्हें कर्मनिष्ठ करने के लिए चार आश्रमों का विधान किया। प्रभु ब्रह्मा ने तब प्रजावर्ग को शिक्षा देने के लिए धर्म, आचार और यम-नियमादि का उपदेश दिया।।१७६-१७९।। चार आश्रमों के मध्य गृहस्थाश्रम ही अन्य आश्रमों की उत्पत्ति और स्थिति का कारण है अतः गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों का मूल है। अब हम यथाक्रम से यम-नियम के साथ आश्रम चतुष्टय का विधान करते हैं। स्त्रीपरिग्रह, अग्निहोत्रानुष्ठान, अतिथिसत्कार, यज्ञश्राद्धादि कार्य और सन्तानोत्पादन यही संक्षेप में गृहस्थों के कर्त्तव्य-धर्म हैं। दण्ड, मेखला, जटाधारण, भूतल-शयन, गुरुशुश्रूषा और भिक्षा यह विद्यार्थी एवं ब्रह्मचारियों के लिए पालनीय धर्म है। चीर, पत्र और अजिन धारण; धान्य, मूल और फल भक्षण; दोनों सन्ध्या काल में डुबकी लगाकर स्नान तथा होमानुष्ठान यह वानप्रस्थवालों का करणीय धर्म है। जिस समय मुसल का शब्द नहीं सुना जाता हो, उस समय भिक्षा करना, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, सावधानता, सम्भोग से पराङ्मुख होना, प्राणियों के प्रति दया, क्षमा, अक्रोध, गुरुशुश्रूषा और सत्य इस तरह इस दस लक्षण धर्म को स्वयंभू ने संन्यासियों के लिए कहा है। इनमें ऊपरवाले पाँच भिक्षुकों के लिए मुख्य हैं और नीचे पाँच गौण। इनके अतिरिक्त सदाचार, विनय, शुद्धता, विलासहीनता और सम्यग्विवेचन ये पाँच उपव्रत कहे गये हैं। ध्यान, इंद्रिय-मन का संयम, सर्वत्र जाकर बिना कटु वचन कहे भिक्षा ग्रहण; शरीर या इंद्रिय को सुख पहुँचानेवाले उपचारों का निरादर संन्यासियों के लिए धर्म कहा गया है।।१८०-१८८।। ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि सभी आश्रम कल्याण के लिए हैं; किन्तु सत्य, सरलता, दया, क्षमा, योग, याग, दम, वेद, वेदाङ्ग,

वेदाः सांगाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये । न सिध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते।।१९०।।
बहिः कर्माणि सर्वाणि प्रसिध्यन्ति कदाचन । अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान्।।१९१।।
सर्वस्वमपि यो दद्यात्कलुषेणान्तरात्मना । न तेन धर्मभाक्स स्याद्भाव एवात्र कारणम्।।१९२।।
एवं देवाः सपितर ऋषयो मनवस्तथा । तेषां स्थानममुष्मिंस्तु संस्थितानां प्रचक्षते ।।१९३।।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तु तेषां तत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।।१९४।।
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै दिवौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ।।१९५।।
योगिनाममृतं स्थानं नानाधीनां न विद्यते । स्थानान्याश्रमिणां तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिताः ।।१९६।।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिताः । ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ।।१९७।।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः । तथैव पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।।१९८।।
एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा । यदाऽस्य न व्यवर्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिकाः ।।१९९।।
ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्येऽसृजत्प्रजाः । आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ।।२००।।
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु । ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजाः स्रष्टुं प्रचक्रमे ।।२०१।।
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत्प्रभुः । धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्तायाश्चैव साधिकाः ।।२०२।।

यजन, व्रत, नियम आदि कर्म सद्भावनारहित श्रद्धाहीन व्यक्तियों के लिए फलप्रद नहीं हैं, अन्तःशुद्धि नहीं है, वह पराक्रम करके भी कभी सफल नहीं हो सकता। कलुषित हृदय से सर्वस्व दान करके भी कोई धर्मभाजन नहीं हो सकता; क्योंकि उसकी भावना शुद्ध नहीं। धर्मलाभ के विषय में मानसिक भावना ही कारण है। देव, पितर, ऋषि और मनुओं के लिए जो स्थान निर्दिष्ट हैं, वे ही स्थान संन्यासियों के लिए भी हैं।।१८९-१९३।। अठासी हजार उध्वरिता ऋषि हैं, इनके जो स्थान हैं वे ही गुरु के निकट रहनेवाले ब्रह्मचारियों के लिए हैं। सप्तर्षि जहाँ निवास करते हैं, इनके जो स्थान हैं, वही देवों का वासस्थान है। गृहस्थ प्रजापति लोक में वास करते हैं और संन्यासी ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। योगियों के लिए अमृत (कैवल्य) नामक स्थान, किन्तु नाना बुद्धिवालों के लिए कहीं स्थान नहीं है। ये स्थान आश्रमस्थ स्वधर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिए निर्दिष्ट हैं। देवयान महापथ के ये चार साधारण पथ हैं। लोक विस्तारार्थी ब्रह्मा ने आदि मन्वन्तर में देवयान प्राप्ति के लिए भूमण्डल में इनका निर्माण किया है। सूर्य इन सब पथों के द्वार रूप हैं। इसी तरह पितृयान के द्वार चन्द्रमा कहे जाते हैं। इस तरह वर्णाश्रम विभाग करने पर भी प्रजागण उस वर्णाश्रम धर्म के पालन में शिथिलता दिखाने लगे। यह देखकर उन्होंने फिर अपने शरीर से उस त्रेता युग में अपनी ही तरह कितनी ही मानसी प्रजा की सृष्टि की है।।१९४-२००।। उस त्रेता युग के क्रम से मध्य काल प्राप्त होने पर उन्होंने दूसरी मानसी प्रजा की सृष्टि करने का प्रयत्न किया।।२०१।। प्रभु ब्रह्मा ने उस समय सत्त्व-रजः प्रधान देव, ऋषि, पितर और मनु नामक चार प्रकार के सन्तान को उत्पन्न किया। ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जीवन-यात्रा के साधक हैं।।२०२।। ब्रह्मा के

देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा। युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिताः प्रजाः ।।२०३।।
उपस्थिते तदा तस्मिन्प्रजाधर्मे स्वयंभुवः। अभिदध्यौ प्रजाः सर्वा नानारूपास्तु मानसीः ।।२०४।।
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यं जनलोकं समाश्रिताः। कल्पेऽतीते तु ते ह्यासन्देवाद्यास्तु प्रजा इह ।।२०५।।
ध्यायतस्तस्य ताः सर्वाः संभूत्यर्थमुपस्थिताः। मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मताः ।।२०६।।
ख्यात्याऽनुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविताः। कुशलाकुशलप्रायैः कर्मभिस्तैः सदा प्रजाः ।।२०७।।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धा प्रजज्ञिरे। देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपैः ।।२०८।।
वृक्षनारकिकीटत्वैस्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः। अधीनार्थं प्रजानां च आत्मनो वै विनिर्ममे ।।२०९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चतुराश्रमविभागकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

इन पुत्रों ने ही धर्म के अनुसार युगानुरूप सन्तानोत्पादन द्वारा सृष्टि-विस्तार किया है।।२०३।। स्वयंभू द्वारा निर्मित उस प्रजाधर्म के पूर्ण प्रभाव काल में सब मानसी प्रजा नाना रूप होकर ध्यान करने लगी।।२०४।। हमने पहले ही कहा कि, जनलोक में जो अतीत कल्प में थे, वे देवादि यहाँ प्रजा होकर आये।।२०५।। ब्रह्मा के ध्यान करने से ही इस तरह की प्रजासृष्टि हुई। प्रथम या कनिष्ठ सभी मन्वन्तरों में सुकर्म-कुकर्म, सुख-दुःख, ख्याति, प्रतिपन्न रूपगुणादि सम्पूर्ण विषयों में एक प्रकार रहते हैं। प्राणियों को कर्म-फल के अवशेष होने पर ही जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वे देव, असुर, पितर, पशु, पक्षी, सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले), वृक्ष, नारकीय कीट आदि नाना रूप से प्रादुर्भूत होते हैं। अपने द्वारा रची गयी प्रजाओं के सुख, स्वतन्त्रता के लिए ब्रह्मा ने ऐसा विधान बनाया।।२०६-२०९।।

श्रीवायुमहापुराण में चतुराश्रम विभाग कथन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।।८।।

अथ नवमोऽध्यायः

देवादिसृष्टिकथनम्

सूत उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसी(स) प्रजाः। तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ॥१॥
क्षेत्रज्ञा समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः। ततो देवासुरपितॄन्मानवं च चतुष्टयम् ॥२॥
सिसृक्षुरम्भांस्येतांश्च स्वात्मना समयूयुजत्। युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयंभुवा ॥३॥
तमभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत्प्रजापतेः। ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ॥४॥
असुः प्राणः स्मृतो विप्रैस्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः। यया सृष्टाः सुरास्तन्वा तां तनुं स व्यपो(पौ)हत ॥५॥
साऽपविद्धा तनुस्तेन (*सद्यो रात्रिरजायत। सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रियामिका ॥६॥
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वयंभुवः। दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ॥७॥
अव्यक्तां सत्त्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्ययूयुजत्। ततस्तां युञ्जतस्तस्य प्रियमासीत्प्रभोः किल ॥८॥
ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः। यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः ॥९॥
धातुर्दिवीति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते। तस्यां तन्वां तु दिव्यायां जज्ञिरे तेन देवताः ॥१०॥
देवान्सृष्ट्वाऽथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत। +उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्यो हस्तादजायत ॥११॥

अध्याय ९

सूत जी बोले–इसके अनन्तर ब्रह्मा के ध्यान करने से मानसी प्रजा उत्पन्न हुई। धीमान् ब्रह्मा के शरीर से कार्य–कारणों के साथ क्षेत्रज्ञसमूह उत्पन्न हुआ। देव, असुर, पितृ और मानव स्वरूप चतुर्विध प्रजा की सृष्टि के लिए जलराशि के बीच वे आत्मयोग में निरत हो गये। युक्तात्मा स्वयंभू ब्रह्मा सर्ग के लिए ध्यान करने लगे, जिससे सृष्टि–कार्य प्रारम्भ हुआ। उनके जघन से पहले असुर नामक सन्तान की उत्पत्ति हुई। विप्रगण प्राण को असुर कहते हैं; अतः उससे जन्म ग्रहण करने के कारण वे असुर कहलाये। ब्रह्मा ने जिस शरीर से असुरों को उत्पन्न किया, उस शरीर को उन्होंने छोड़ दिया। वह त्यक्त शरीर तुरन्त ही रात्रि रूप में परिणत हो गया। वह शरीर तमोबहुल था, इससे रात्रि त्रियामा कहलायी। इसी से स्वयंभू की समस्त प्रजा रात में तमोगुण से आवृत हो जाती है। देवेश ब्रह्मा ने असुरों को देखकर अव्यक्त और सत्त्वबहुल दूसरे शरीर को धारण किया। उस शरीर को धारणकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब आनन्दमग्न ब्रह्मा के मुख से देवगण उत्पन्न हुए। उस आनन्दमय ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण वे देव कहलाये ॥१-९॥ दिवि धातु का अर्थ है क्रीड़ा। उस दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण ही वे देवतापदवाच्य हुए ॥१०॥ देवेश ब्रह्मा ने देवों की भी सृष्टि करने के पश्चात् दूसरे शरीर को धारण किया। वह छोड़ा हुआ शरीर तुरन्त दिन के रूप में परिणत हो गया। इसलिए

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ इदमर्धं क. ख. पुस्तकयोर्नास्ति।

÷तस्मादहःकर्मयुक्तो देवताः समुपासते। सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यां सोऽभ्यपद्यत ।।१२।।
पितृवन्मन्यमानस्तान्पुत्रान्प्राध्यायत प्रभुः। पितरो ह्युपपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरन्तराऽसृजत् ।।१३।।
तस्मात्ते पितरो देवाः पुत्रत्वं तेन तेषु तत्। यया सृष्टास्तु पितरस्तां तनुं स व्यपो (पौ) हत ।।१४।।
साऽपविद्धा तनुस्तेन)सद्यः संध्या प्र (ह्य) जायत। तस्मादहस्तु देवानां रात्रिर्या साऽऽसुरी स्मृता ।।१५।।
तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी। तस्माद्देवासुराः सर्व ऋषयो मनवस्तथा ।।१६।।
ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणो मध्यमां तनुम्। ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत ।।१७।।
रजोमात्रात्मिकायां तु मनसा सोऽसृजत्प्रभुः। रजःप्रायात्ततः सोऽथ मानसानसृजत्सुतान् ।।१८।।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा (स्यो) जज्ञिरे प्रजाः। (*दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनुं तामपी (पौ) हत ।।१९।।
साऽपविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत। तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः) ।।२०।।
इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना। सद्यो रात्र्यहनी चैव संध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ।।२१।।
ज्योत्स्ना संध्या तथाऽहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम्। तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका ।।२२।।
तस्माद्देवा दिव्यतन्वा हृष्टाः सृष्टाः मुखात्तु वै। यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा ।।२३।।

कर्मानुष्ठान के लिए दिन में उपासना करते हैं। तब ब्रह्मा ने सत्त्वमात्रात्मक दूसरे शरीर को धारण किया और पितर की तरह मानकर उन पुत्रों का ध्यान करने लगे, उन्होंने तब दोनों पक्षों के साथ दिन और रात्रि के मध्य में पितरों का सृजन किया। इसीलिए उन देवगणों की पितृ संज्ञा हुई और उनका पुत्रत्व भी इसी कारण हुआ। जिस शरीर से ब्रह्मा ने पितरों को उत्पन्न किया उस शरीर को भी उन्होंने छोड़ दिया। वह छोड़ा हुआ शरीर तुरंत सन्ध्या के रूप में परिणत हो गया। इसलिए दिन देवों के लिए, रात्रि असुरों के लिए और दिन और रात्रि के बीचवाली गरीयसी सन्ध्या पितरों के लिए सुखदायक हुई। तब से ऋषि, देवता, असुर और मनु आदि ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर (सन्ध्या) की उपासना करने लगे। ब्रह्मा ने फिर दूसरे शरीर को धारण किया। उनका यह शरीर रजःप्रधान था। उस रजोबहुल देह से उन्होंने तब कितने मानस सन्तानों को उत्पन्न किया। मन से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम मानस पड़ा। प्रजाओं को देखकर उन्होंने अपने शरीर को फिर छोड़ दिया ।।११-१९।। वह त्यक्त शरीर तुरन्त ज्योत्स्ना हो गया; इसलिए ज्योत्स्ना के प्रकट होने पर सभी लोग प्रसन्न होते हैं। उस महामना ब्रह्मा ने इस प्रकार शरीर-समुदाय का त्याग किया और वे तुरंत रात्रि, दिन, सन्ध्या और ज्योत्स्ना के रूप में हो गये ।।२०-२१।। ज्योत्स्ना, संध्या तथा दिन सत्त्व गुणात्मक हैं और रात्रि तमः प्रधान है; इसीलिए वह त्रियामा कहलाती है। ब्रह्मा के दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण देवता सतत प्रसन्नचित्त रहते हैं और दिन में उत्पन्न होने के कारण वे दिन में ही अधिक बलवान् होते हैं ।।२२-२३।। यतः रात में जघन से असुरों को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है,

---

÷ इदमर्धं नास्ति क. ख. ग. पुस्तकेषु।

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

तन्वा यदसुरान्रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः । प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ।।२४।।
एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह । पितृणां मानवानां च अतीतानागतेषु वै ।।२५।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवन्ति हि । ज्योत्स्ना रात्र्यहनी संध्या चत्वार्याभासितानि वै ।।२६।।
भान्ति यस्मात्ततोऽभा(म्भां)सि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः । व्याप्तिदीप्त्यां निगदितः पुनश्चाऽऽह प्रजापतिः ।।२७।।
सोऽम्भांस्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् । पितृंश्च वाऽसृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान्पुनः ।।२८।।
तामुत्कृत्य तनुं कृत्स्नां ततोऽन्यामसृजत्प्रभुः । मूर्तिं रजस्तमःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत् ।।२९।।
अन्धकारे क्षुधाविष्टस्ततोऽन्यां सृजते पुनः । तेन सृष्टाः क्षुधात्मानस्तेऽम्भांस्यादातुमुद्यताः ।।३०।।
अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च । राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचराः ।।३१।।
येऽब्रुवन्क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् । तेन ते कर्मणा यज्ञा गुह्यकाः क्रूरकर्मिणः ।।३२।।
रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते । य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे संनिरुच्यते ।।३३।।
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त(?) धीमतः । शीतोष्णाश्चोच्छ्रिता ह्यूर्ध्वं तदाऽरोहन्त तं प्रभुम् ।।३४।।
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिताः । (÷व्यालात्मानः स्मृता व्याला हीनत्वादहयः स्मृताः ।।३५।।
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिणः । तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्याचन्द्रमसोरधः ।।३६।।

इसीलिए रात्रिजात असुरगण रात में असह्य पराक्रमवाले हो जाते हैं। देव, असुर, पितृ, मनु आदि की भूत, भविष्य सभी मन्वन्तरों में इसी प्रकार उत्पत्ति होती है। ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या का भी प्रदुर्भाव इसी प्रकार होता है। उस एकार्णव जलराशि में ये चारों आभासित होते थे, इसी से जल का नाम अम्भस् पड़ा। भा धातु व्याप्ति और दीप्तिवाचक है। विद्वानों ने और स्वयं ब्रह्मा ने भी यही कहा है। उन्होंने इस जल को देखकर ही देव, दानव, मानव, पितर और अन्यान्य बिबुधादि प्रजाओं को बनाया है। ब्रह्मा ने उस शरीर को भी सम्पूर्ण रूप से छोड़ दिया और फिर रजस्तम प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होंने दूसरी प्रजा को उत्पन्न किया। उसके द्वारा उत्पन्न वह प्रजा जल को ही खाने के लिए तैयार हो गयी। 'हम जल की रक्षा करते हैं', यह कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस कहलाये ।।२४-३१।। जिन्होंने कहा था कि हम जल को खा जायेंगे, नष्ट कर देंगे, वे क्रूरकर्मा गुह्यक यक्ष कहलाये ।।३२।। रक्ष धातु पालनार्थक है; इसी से उसका नाम राक्षस पड़ा और क्षि धातु क्षयार्थक, इसी से उनका नाम यक्ष पड़ा। इस अप्रिय सृष्टि को देखकर धीमान् ब्रह्मा की केशराशि स्खलित हो गयी। वह शीतोष्ण गुणयुक्त सर्पाकार में परिणत होकर उन्हीं के ऊपर चढ़ने लगी। ब्रह्मा के सिर से हीन होकर अर्थात् स्खलित होकर उसने अपसर्पण (टेढ़ा चलना) किया था इसी से वह कालात्मा (खलस्वभाव), हीनत्व के कारण अहि और सर्पण के कारण सर्प, पन्नत्व अर्थात् रूपान्तर प्राप्ति के कारण पन्नग उसका नाम पड़ा। पृथ्वी के गर्भ में जहाँ चन्द्र-सूर्य की किरणें नहीं पहुँच सकतीं वहीं उनका वास-स्थान निर्दिष्ट हुआ। उस समय ब्रह्मा को अग्नितुल्य अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ। वह क्रोध साँपों के साथ ही उत्पन्न हुआ था अतः वह भी विष होकर साँपों में प्रवेश कर गया।

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतश्लोको न दृश्यते ख. ग. घ. पुस्तकेषु।

तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भसुदारुणः । स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकान् ।।३७।।
सर्पान्सृष्ट्वा ततः क्रोधात्क्रोधात्मा(त्म)नो विनिर्ममे । वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ।।३८।।
भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् । धयन्तो गास्ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ।।३९।।
धयतीत्येष धातुर्वै पानार्थे परिपठ्यते । पिबन्तो जज्ञिरे गास्तु गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः ।।४०।।
अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः । ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ।।४१।।
छाद्यतस्तानि च्छंदांसि वयसोऽपि वयांस्यपि । शून्यान्दृष्ट्वा तु देवो वै सृजत्पक्षिगणानपि ।।४२।।
मुखतोऽजान्ससर्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् । गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे ।।४३।।
पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गाञ्शरभान्गवयान्मृगान् । उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ।।४४।।
ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे । एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ।।४५।।
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा । गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ।।४६।।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत । श्वापदा द्विखुरो हस्ती वानरः पक्षिपञ्चमाः ।।४७।।
उन्दकाः पशवः सृष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपाः । गायत्रं वरुणं चैव त्रिवृत्सौम्यं रथंतरम् ।।४८।।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् । छन्दांसि त्रैष्टुभं कर्म स्तोमं पञ्चदशं तथा ।।४९।।
बृहत्साममथोक्थं च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् । (*सामानि जगती छन्दःस्तोमं पञ्चदशं तथा ।।५०।।

ब्रह्मा साँपों को देखकर क्रुद्ध हुए, इसी से उन्होंने क्रोधपरायण भूत-पिशाचों को भी बना दिया। भूमण्डल पर प्रायः आवृत होने से भूत और पिशित यानी कच्चा मांस खाने के कारण पिशाच ये नाम क्रम से दोनों के लिए पड़े। ब्रह्मा के तेज के पान करने के कारण गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। 'धे' धातु पानार्थक है और गाः माने तेज, अतः तेज के पान करने से उनका नाम गन्धर्व पड़ा। ब्रह्मा ने इस प्रकार अष्टविध देवयोनि की सृष्टि कर स्वच्छन्द भाव से व्यवस्था द्वारा पक्षियों को बनाया ।।३३-४१।। वे छादन करते हैं, छन्द और वयस् द्वारा सृष्ट हुए हैं, इसलिए वे वयः पदवाच्य हैं। शून्य को देखकर उन्होंने पक्षियों को बनाया।।४२।। मुख से बकरे की सृष्टि हुई और वक्षःस्थल से वयस् की। ब्रह्मा ने उदर के पार्श्वद्वय से गौओं को बनाया।।४३।। उनके दोनों पैरों से अश्व, हस्ती, शरभ, गवय, मृग, ऊँट, अश्वतर और इसी जाति के अन्य पशुगण उत्पन्न हुए।।४४।। रोमों से ओषधि और फल-फूल उत्पन्न हुए। प्रभु ब्रह्मा ने इस प्रकार उस त्रेतायुग के आदि कल्प में पशुओं और ओषधियों की सृष्टि करके यज्ञ कार्य में उनका विनियोग किया। गो, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर, गर्दभ ये ग्राम्य पशु हैं। अब जंगली पशुओं को भी सुनिये ।।४५-४६$\frac{१}{२}$।। श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, उन्दक (ऊदविलाव) और सरीसृप ये जंगली पशु हैं। गायत्र, वरुण, त्रिवृत, सौम्य, रथन्तर, अग्निष्टोम आदि श्रेष्ठ यज्ञ उनके पूर्व मुख से उत्पन्न हुए। छन्दः सकल, त्रैष्टुभ, कर्म, स्तोम, पञ्चदश बृहत्साम, उक्थ्य इत्यादि उनके दक्षिण मुख से उत्पन्न हुए। साम, जगती छन्द के पन्द्रह प्रकार के भेद, वैरूप्य, अतिरात्र इत्यादि पश्चिम मुख से और इक्कीस प्रकार का अथर्व,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

वैरूप्यमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् । एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।।५१।।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।।५२।।
वयांसि च ससर्जाऽऽदौ कल्पस्य भगवान्प्रभुः । उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।।५३।।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः । सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन्प्रजाः ।।५४।।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च । यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरां गणान् ।।५५।।
नरकिंनररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् । अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ।।५६।।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।५७।।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।५८।।
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु । विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम् ।।५९।।
केचित्पुरुषाकारं तु प्राहुः कर्म च मानवाः । दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ।।६०।।
पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः । न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।।६१।।
एतदेवं (कं) च नैकं च न चोभे न च वाऽप्युभे । कर्मस्थान्विषयान्ब्रूयुः सत्त्वस्था समदर्शिनः ।।६२।।
नाम रूपं च भूतानां कृतानां च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ निर्ममे स महेश्वरः ।।६३।।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः । शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवास्य दधाति सः ।।६४।।

आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप्, वैराज आदि उनके उत्तर मुख से सृष्ट हुए ।।४७-५१½।। प्रभु ब्रह्मा ने कल्प के आदि काल में बिजली, वज्र, मेघ, रोहितवर्ण इन्द्रधनुष और वयस् का सृजन किया एवं छोटे-बड़े जीव-जन्तु उनके शरीर से उत्पन्न हुए ।।५२-५३।। प्रजा की सृष्टि करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने पहले देव, असुर, पितर, प्रजा नामक चार प्रकार की सृष्टि करके स्थावर-चरादि अन्यान्य भूतों को उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, नर, किन्नर, अप्सरा, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थावर, जंगम आदि समस्त पदार्थों को बनाया ।।५४-५६।। पहली सृष्टि में इन लोगों ने जैसा कर्म प्राप्त किया था, वैसा ही कर्म इन लोगों ने बार-बार उत्पन्न किये जाने पर भी पाया । उसी कर्म-वासना के अनुरूप वे सब पृथक्-पृथक् प्रवृत्तिवाले होते हैं । इसी से वे सब हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, अनृतादि विविध कर्म से अपनी इच्छा के अनुसार प्रवृत्त होते हैं ।।५७-५८।। विधाता ने स्वयं ही महाभूतों का नानात्व और मूर्ति तथा इन्द्रियार्थ समूहों की व्यवहार-रीति को निश्चित किया है ।।५९।। विप्रगण ! कोई पुरुषाकार, कोई दैव और कोई स्वभाव को ही कर्मफलदायक कहकर निरूपण करते हैं ।।६०।। किन्तु पुरुषाकार, दैव और कर्म ये तीनों ही स्वभाव के वश फलदायक हैं। इनके बीच न्यूनाधिक भाव नहीं है; प्रत्येक समान भाव से प्रधान हैं। कोई कर्म इनमें एक के द्वारा सम्पन्न होता है, यह कहा नहीं जा सकता। कर्म साधन समूह का एकत्व-द्वित्वादि भेद कर निर्वाचन भी नहीं किया जा सकता; इसलिए सत्त्वस्थ ब्रह्मनिष्ठगण विषयसमूह को कर्मस्थ कहकर निर्देश करते हैं ।।६१-६२।। महेश्वर ब्रह्मा ने कल्पादि काल में वेदवचन द्वारा भूत समूह के नाम, रूप और कर्मादि का निर्माण किया है। रात्रि के अवसान में और दिन के प्रारम्भ काल में भगवान् ब्रह्मा पूर्व काल के वेदों का प्रकाश करते हैं और ऋषिगण भी पूर्वकालीन नाम प्रकट करते

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।।६५।।
एवंविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना । शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ।।६६।।
एवं भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च । यदाऽस्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः ।।६७।।
अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् । भृगु पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमाङ्गिरसं तथा ।।६८।।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् । नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।।६९।।
तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् । ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।।७०।।
संकल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः । अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।।७१।।
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् । सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम् ।।७२।।
न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः । सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।।७३।।
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकवृत्तानुकारणात् । हिरण्यगर्भो भगवान्परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।।७४।।
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः । अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः ।।७५।।
सर्व तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् । विभजाऽऽत्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।७६।।
एवमुक्त्वा द्विधा भूतः पृथक्स्त्री पुरुषः पृथक् । स चैकादशधा जज्ञे अर्धमात्मानमीश्वरः ।।७७।।
तेनोक्तास्ते महात्मानः सर्व एव महात्मना । जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिणः ।।७८।।

हैं। विभिन्न ऋतुकाल में जिस प्रकार ऋतु-चिह्न विविध आकार में व्यक्त होते हैं, उसी प्रकार विभिन्न युग में भाव समूह भी विविध आकार में प्रकाशित होता है। अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा रात्रि के अवसान में मानसी सिद्धि के द्वारा प्रतिदिन इसी प्रकार सृष्टि कर्म में प्रवृत्त होते हैं। वे प्रत्येक दिन इसी प्रकार स्थावर-जंगम आदि की सृष्टि करते हैं। जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार प्रजा-वृद्धि नहीं हो रही है, तब भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ नामक मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ये ही नव 'ब्रह्माण' नाम से पुराणों में प्रसिद्ध हैं ।।६३-६९।। ये सभी ब्रह्मवादी और ब्रह्मचर्यनिष्ठ हुए। तब ब्रह्मा ने फिर अपने रोष से रुद्र की सृष्टि की। सबके पुरोवर्ती ब्रह्मा ने सङ्कल्प और धर्म को भी बनाया। ब्रह्मा ने सबके आगे सनन्दन, सनक, सनातन और सनत्कुमार नामक अपने समान ब्रह्मनिष्ठ पुत्रों को उत्पन्न किया। किन्तु वे सब संसार में आसक्त नहीं हुए प्रत्युत निरपेक्ष, जितेन्द्रिय, वीतराग, विमत्सर और भविष्य ज्ञान सम्पन्न हुए। हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा उन पुत्रों को निरपेक्ष ब्रह्मनिष्ठ होते देखकर चिन्ता करने लगे ।।७०-७४।। उनके क्रोध करने से सूर्य के समान कान्तिवाली, अग्नि के समान जलती हुई एक मूर्ति उत्पन्न हुई जिसका आधा शरीर स्त्री का और आधा पुरुष का था। उसके उत्पन्न होते ही चारों ओर सूर्य के समान प्रकाश फैल गया। वह मूर्ति बोल उठी- 'अपने को विभक्त करो' यह कहकर वह पुरुष अन्तर्हित हो गया। इस तरह कहे जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने अपने को दो भागों में विभक्त किया-एक स्त्री और एक पुरुष ।।७५-७६½।। अपनी आधी आत्मा यानी पुरुष मूर्ति को उन्होंने

लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिता । विश्वं विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ।।७९।।
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः । रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा नाम्नेति विश्रुताः ।।८०।।
यैर्हि व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । तेषामनुत्तरा लोके सर्वलोकपरायणाः ।।८१।।
नैकनागायुतबला विक्रान्ताश्च गणेश्वराः । तत्र या सा महाभागा शंकरस्यार्धकायिनी ।।८२।।
प्रागुक्ता न मया तुभ्यं स्त्री स्वयंभोर्मुखोद्गता । कायार्धं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ।।८३।।
आत्मानं विभजस्वेति सोक्ता देवी स्वयंभुवा । सा तु प्रोक्ता द्विधा भूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ।।८४।।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः । स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।।८५।।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला । उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः ।।८६।।
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता । विश्वरूपमथाऽऽर्यायाः पृथग्देहविभावनात् ।।८७।।
शृणु संक्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्वशः । प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ।।८८।।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका । द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ।।८९।।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती । कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ।।९०।।
बहिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी । माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ।।९१।।
अपराजिता बहुभुजः प्रगल्भा सिंहवाहिनी । एकानंसा (शा) दैत्यहनी माया महिषमर्दिनी ।।९२।।
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका । देवीनामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ।।९३।।
भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः । ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभवः ।।९४।।

ग्यारह भागों में विभक्त किया और कहा कि महात्मन्! तुम लोग संसार के हित-विधानार्थ सृष्टि-विस्तार एवं सृष्ट प्रजाओं की मङ्गल व्यवस्था करने के लिए अनलस भाव से यत्न-परायण होओ। यह सुनकर वे रोने लगे और चारों ओर से द्रवित हो गये, अतः रोदन और द्रवण के कारण उनका नाम रुद्र पड़ा ।।७७-८०।। ये रुद्रगण सम्पूर्ण चराचर और सृष्टि प्रपंच को व्याप्त करके विराजमान हैं। गणेश्वर रुद्रगण सभी सिरजे हुए भूत प्रपंचों में श्रेष्ठ, सर्वलोकपरायण, अधिक विक्रमशील और अयुत नागों से भी अधिक बलवान् हैं। हमने पहले ही कहा है कि दक्षिणार्द्ध से शुक्लवर्ण और वामार्द्ध से कृष्णवर्ण शंकरार्द्ध शरीरिणी एक महाभागा देवी प्रादुर्भूत हुई। उस देवी से भगवान् ब्रह्मा ने देह-विभाग करने को कहा! द्विजगण! उन देवियों का नाम कहते हैं सुनिये। स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा, एकपर्णा, पाटला, उमा, हेमवती, षष्ठी, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा और गौरी। इन आर्या देवियों ने ही पृथक्-पृथक् देह धारणकर सृष्टि को व्याप्त किया है।।८१-८७।। संक्षेप से उनके और नामों को भी कहता हूँ-प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका। द्वापरादि युग में देवी जिन नामों से प्रसिद्ध होती हैं उनको भी सुनिये।।८८-८९।। गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्णा, पिंगला, बहिर्ध्वजा, शूलधरा, परमब्रह्मचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, एकवाससी, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानंशा, दैत्यहनी, माया, महिषमर्दिनी, अमोघा, विन्ध्यनिलया, विक्रान्ता और गणनायिका। ये समस्त

अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि पुरे वाऽपि गृहेऽपि वा। रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वाऽपि स्थलेऽपि वा ।।९५।।
व्याघ्रकुम्भीरचौरेभ्यो भूतस्थाने विशेषतः। आधिष्वपि च सर्वासु(र्वेषु)देव्या नामानि कीर्तयेत् ।।९६।।
अर्भकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिः सदा। अभ्यर्दिनां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ।।९७।।
महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते। आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।।९८।।
साऽसृजद्व्यवसायं तु धर्मं भूतसुखावहम्। संकल्पं चैव कल्पादौ जज्ञिरेऽव्यक्तयोनितः ।।९९।।
मानसश्च रुचिर्नाम विज्ञेयो ब्रह्मणः सुतः। प्राणास्त्वादसृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।।१००।।
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः। शिरसोऽङ्गिरसं चैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च ।।१०१।।
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं पुनः। समानजं वशिष्ठं तु अपानान्निर्ममे क्रतुम् ।।१०२।।
अभिमानात्मकं भद्रं निर्ममे नीललोहितम्। इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः प्राणजा द्वादश स्मृताः ।।१०३।।
इत्येते मानसाः पुत्रा विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः। भृग्वादयस्तु ये सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः ।।१०४।।
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः प्राक्प्रवर्तितः। द्वादशैते प्रवर्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजाः ।।१०५।।
ऋभुः सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ। पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ ।।१०६।।
व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाधकौ। वैराजे तावुभौ लोके तेजः संक्षिप्य चाऽऽस्थितौ ।।१०७।।
तावुभौ योगधर्माणावारोप्याऽऽत्मानमात्मनि। प्रजाधर्मं च कामं च वर्तयेतां महौजसौ ।।१०८।।

यथाक्रम से उस देवी के नाम भेद हैं।।९०-९३।। यह देवियों का नाम भद्रकाली का स्तव है। जो आदमी इसे पढ़ते हैं, उनका पराभव नहीं होता।।९४।। जंगल, प्रान्तर, नगर, गृह, जल और स्थल में, बाघ-कुम्भीर-चौरादि द्वारा आक्रान्त होने पर एवं जितने भी मानस दुःख के अवसर हैं उनमें देवी के इन नामों का कीर्त्तन और रक्षार्थ प्रयोग करे।।९५-९६।। बालग्रह, भूत, पूतना और मातृकादि कृत अनिष्ट होने पर बालकों के लिए इस रक्षा प्रयोग (कवच) को करे। प्रजा और श्री उस महादेवी की मूल मूर्तियाँ हैं। इन दोनों मूर्तियों से हजार मूर्तियाँ समुद्भूत हुई हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लिया है।।९७-९८।। उस देवी ने कल्पादि काल के प्रारम्भ में व्यवसाय, भूत-सुखकर धर्म और संकल्प का सृजन किया है। अव्यक्त योनि ब्रह्मा के मन से रुचि नामक पुत्र जन्मा एवं प्राण से दक्ष, चक्षुर्द्वय से मरीचि, हृदय से भृगु, मस्तक से अङ्गिरा, कान से अत्रि, उदान से पुलस्त्य, व्यान से पुलह, समान से वशिष्ठ, आपान से क्रतु एवं अभिमान से नीललोहित रुद्र उत्पन्न हुए। ये बारहों पुत्र ब्रह्मा के प्राण से उत्पन्न हुए हैं, ये ही ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं। भृगु आदि नौ पुत्र जो सृष्ट हुए वे ब्रह्मवादी हैं।।९९-१०४।। ये प्राचीन गृहस्थ हैं और इन्होंने ही पहले धर्म का प्रवर्तन किया है। रुद्र के साथ ये बारहों प्रजा का प्रवर्तन करनेवाले हैं।।१०५।। ऋभु और सनत्कुमार सबसे पहले उत्पन्न हुए हैं और दोनों ही ऊर्ध्वरिता हैं।।१०६।। प्रथम कल्प के अवसान में लोकहित की अभिलाषा से इन दोनों महात्माओं ने अपने तेज का संयमन करके वैराज लोक में आश्रय प्राप्त किया था। महातेजस्वी और महायोगी वे दो ब्रह्मर्षि आत्मा से आत्मा का समाधान करके प्रजाओं के धर्म और काम समूह का साधन करते हुए स्थित हुए।।१०७-१०८।। वे जैसे

यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते । तस्मात्सनत्कुमारोऽयमिति नामास्य कीर्तितम् ।।१०९।।
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः । क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ।।११०।।
इत्येष करणोद्भूतो लोकान्स्त्रष्टुं स्वयंभुवः । महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ।।१११।।
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः । नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृतः ।।११२।।
पुरैश्च विविधाकारैः प्रीतैर्जनपदैस्तथा । तस्मिन्ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ।।११३।।
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः । बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ।।११४।।
महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा । धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ।।११५।।
आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः । एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ।।११६।।
अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् । इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु यः ।।११७।।
मुख्यादयस्तु षट्सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः । त्रैकाले समवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ।।११८।।
सर्गाः परस्परस्याथ कारणं ते बुधैः स्मृताः । दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ।।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्ति नान्यः सर्वात्मनस्ततः ।।११९।।
द्यौर्मूर्धानं यस्य विप्राः स्तुवन्ति खं नाभिर्वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रसूतिः ।।१२०।।

जनमे हैं वैसे ही हैं, इसीलिए कुमार कहे जाते हैं और सनत्कुमार भी इसीलिए कहे जाते हैं।।१०९।। इन द्वादश ब्रह्मतनयों की वंशवृद्धि दिव्य, देवगुणान्वित, क्रियायुक्त प्रजा समन्वित और महर्षि गुणालंकृत हुई।।११०।। लोक की सृष्टि करने के लिए स्वयंभू का जो महान् से विशेष पर्यन्त प्रकृति-विकार हैं, वे ही चन्द्र, सूर्य, आलोक, अन्धकार, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, विविधाकारवाले पुर, सुप्रीत जनपदादि युक्त जगत्प्रपञ्च में परिवर्तित हुए हैं। उस अव्यक्त ब्रह्मवन में ब्रह्मा अपना रात्रिकाल बिताते हैं। वह ब्रह्मवृक्ष अव्यक्त बीज से उत्पन्न और उसी के अनुग्रह से उत्थित अर्थात् बढ़ा भी है। बुद्धि उसका स्कन्ध है, इन्द्रियगण कोटर, महाभूत शाखा-प्रशाखा; विशेष (तत्त्व) पत्र; धर्माधर्म पुष्प और सुख-दुःख उसके फल हैं।।१११-११५।। यह सनातन वृक्ष सम्पूर्ण भूतों का आश्रय है। उस ब्रह्मवृक्ष का यह ब्रह्मवन अव्यक्त, नित्य और सदसदात्मक कारण है। यह प्राकृत सर्ग के नाम से प्रसिद्ध है। वैकृत नामक मुख्य सर्ग छह प्रकार के हैं, जो बुद्धिपूर्वक विचारणीय हैं। ये सर्ग अभिमानी ब्रह्मा के तीनों काल में प्रवर्तित होते हैं ।।११६-११८।। ये सर्ग परस्पर एक-दूसरे के कारण हैं ऐसा पण्डितों ने कहा है। उस ब्रह्मवृक्ष पर समानाकार और समानचारी दो दिव्य पक्षी निवास करते हैं। उनमें केवल एक को वृक्ष का ज्ञान है। उस सर्वात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई इस भू तत्त्व को जाननेवाला नहीं है।।११९।। विप्रगण! भूलोक को जिसका सिर, आकाश को नाभि, चन्द्र, सूर्य को नेत्र, दिशाओं को कान और भूमि को चरण कहकर जिसकी स्तुति करते हैं। जिसके मुख से ब्राह्मण, छाती के पूर्व भाग से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और

वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे।।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ।।१२१।।
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम्। अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे।।१२२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते देवादिसृष्टिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

अथ दशमोऽध्यायः

मन्वन्तरवर्णनम्

सूत उवाच

एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा। यदा ता न प्रवर्तन्ते प्रजाः केनापि हेतुना ।।१।।
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखितः। ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।।२।।
अथाऽऽत्मनि समस्त्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्। राजसत्त्वं पराजित्य वर्तमानं च धर्मतः ।।३।।
तप्यते तेन दुःखेन शोकं चक्रे जगत्पतिः। तमश्च व्यनुदत्तस्मात्तद्रजस्तमसावृणोत् ।।४।।

चरणों से शूद्र इस प्रकार सब वर्ण जिसके शरीर से उत्पन्न हुए वही अचिन्त्य परमात्मा सब भूतों का उत्पादक है ।।१२०-१२१।। महेश्वर अव्यक्त से सभी अण्ड की उत्पत्ति हुई। अण्ड से ब्रह्मा का जन्म हुआ और ब्रह्मा ने चराचर त्रैलोक्य को उत्पन्न किया ।।१२२।।

श्रीवायुमहापुराण का देवादिसृष्टिवर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।।९।।

अध्याय १०

सूत जी बोले–लोककर्त्ता ब्रह्मा ने इस प्रकार समस्त प्रजाओं की सृष्टि की; किन्तु किसी कारण वे प्रजागण विधिनिर्दिष्ट पथ में प्रवृत्त नहीं हुए।।१।। इससे ब्रह्मा तमोगुण से आच्छन्न हो गये और दुःखी रहने लगे। तब उन्होंने इष्टसिद्धि का उपाय सोच निकाला और अपने में तामसी शक्ति की सृष्टि की। प्रजागण राजस भाव को छोड़कर सत्त्वगुणावलम्बी होकर सन्तप्त हो रहे हैं, यह देखकर जगत्पति पुनः शोक करने लगे। तब उन्होंने तमोभाव को छोड़कर रजोगुण का अवलम्बन किया। उस रजोगुण ने उनके तमोगुण को ढक लिया। उस परित्यक्त तमोगुण से एक मिथुन की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के चरण से अधर्म और शोक से हिंसा का जन्म हुआ। इससे ब्रह्मा अत्यन्त आनन्दित हो गये।

तत्तमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत। अधर्मचरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत।।५।।
ततस्तस्मिन्समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि। ततश्च भगवानासीत्प्रीतश्चैवमशिश्रियत्।।६।।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपो(पौ)हदभास्वराम्। द्विधाऽकरोत्स तं देहमर्धेनपुरुषोऽभवत्।।७।।
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत। प्रकृतां भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान्विभुः।।८।।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता। ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वादिदमावृत्य तिष्ठति।।९।।
या त्वर्धात्सृजते नारी शतरूपा व्यजायत। सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।।१०।।
भर्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत। स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते।।११।।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते। लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्।।१२।।
तया स रमते सार्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते। प्रथमः संप्रयोगः स कल्पादौ समवर्तत।।१३।।
विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषो विराट्। स सम्राट्सासरूपात्तु वैराजस्तु मनुः स्मृतः।।१४।।
स वैराजः प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषो मनुः। वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत।।१५।।
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ। कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः।।१६।।
देवी नाम्ना तथाऽऽकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे। स्वायंभुवः प्रसूतिं तु दक्षाय व्यसृजत्प्रभुः।।१७।।
(+प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः संकल्पो मनुरुच्यते। रुचेः प्रजापतेश्चैव आकुतिं प्रत्यपादयत्।।१८।।
आकुत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्)। यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ संबभूवतुः।।१९।।

अपने उस मलिन शरीर की मलिनता को ब्रह्मा ने दूर कर उस देह को दो भागों में विभक्त किया, जिसमें एक भाग पुरुष हो गया और दूसरा स्त्री।।२-७।। उस स्त्री का नाम शतरूपा पड़ा। उस प्राकृत और जीवों को धारण करनेवाली देवी को ब्रह्मा ने सृष्टि कामना से उत्पन्न किया।।८।। उसने अपनी महिमा से द्यावापृथिवी को व्याप्त कर लिया। गगनव्यापिनी उस ब्राह्मी तनु ने, जो ब्रह्मा के आधे शरीर से उत्पन्न हुई थी और जिसका नाम शतरूपा पड़ा था, नियुत वर्षों तक परम घोर तपस्या की।।९-१०।। उसने दीप्त यशवाले स्वायंभुव मनु को पति के रूप में वरण किया। इकहत्तर युग का मन्वन्तर माना गया है। स्वायंभुव मनु उस अयोनिजा शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त कर उसके साथ रमण करने लगे। इसी से उसका एक नाम रति भी पड़ा। कल्प के आदि में वही प्रथम नर-नारी संयोग हुआ। ब्रह्मा ने विराट् का सृजन किया है। विराट् से ही वैराज मनु की उत्पत्ति है। वीर सम्राट् वैराज मनु ने शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो श्रेष्ठ पुत्रों और आकूति तथा प्रसूति नाम्नी दो शुभ पुत्रियों को उत्पन्न किया। उन्हीं दो पुत्रियों से यह सारी प्रजा उत्पन्न हुई है। स्वायंभुव मनु ने प्रसूति को दक्ष के हाथ में सौंप दिया। जो प्राण है, वही दक्ष है और संकल्प को मनु कहा जाता है। मनु ने रुचि प्रजापति को आकूति नाम की कन्या दे दी।।११-१८।। ब्रह्मा के मानस पुत्र रुचि को आकूति के गर्भ से यज्ञ और दक्षिणा नामक मिथुन सन्तान उत्पन्न हुए।।१९।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

यज्ञस्य दक्षिणायां च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।२०।।
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृताः । अजिताश्चैव शूकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणः स्मृतौ ।।२१।।
यामाः पूर्वं परिक्रान्ता यतः संज्ञा दिवौकसः । स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः ।।२२।।
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वनयत्प्रभुः । सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः ।।२३।।
योगपत्न्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः । *सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः ।।२४।।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा । बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ।।२५।।
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः । द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयंभुवा ।।२६।।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः । ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।।२७।।
संनतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा । तास्ततः प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः ।।२८।।
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः । पुलस्त्योऽत्रिर्वशिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ।।२९।।
सतीं भवाय प्रायच्छत्ख्यातिं च भृगवे तथा । मरीचये च संभूतिं स्मृतिमङ्गिरसे ददौ ।।३०।।
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च । क्रतवे संनतिं नाम अनसूयां तथाऽत्रये ।।३१।।
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ । स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि वक्ष्यते (?) ।।३२।।
एते सर्वे महाभागाः प्राज्ञाः स्वानुष्ठिताः स्थिताः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् ।।३३।।

उस स्वायंभुव मन्वन्तर में दक्षिणा में बारह पुत्र हुए। उनका नाम याम पड़ा।।२०।। यज्ञ का ही दूसरा नाम यम था। उनके पुत्र होने के कारण वे याम कहलाये। वे अर्जित और शूक नामक दो भागों में विभक्त हैं, किन्तु देवों के बीच वे याम नाम से ही प्रसिद्ध हैं। दक्ष प्रभु ने स्वायंभुव मनु की पुत्री प्रसूति के गर्भ से संसार की मातास्वरूप चौबीस पुत्रियों को उत्पन्न किया। वे सभी अत्यन्त भाग्यशालिनी और कमल के समान आँखवाली, योगपत्नी, योगमाता और ब्रह्मवादिनी थीं। वे सभी संसार की माता थीं।।२१-२४।। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति इन समस्त दक्ष कन्याओं को प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में वरण किया। स्वायंभुव ब्रह्मा ने धर्मलाभ के लिए इन्हें द्वार रूप से निर्देश किया है। इनकी कनिष्ठा सती, ख्याति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक एकादश कन्यकाओं को रुद्र, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितृगण और अग्नि ने यथाक्रम से वरण किया। सती भव को, ख्याति भृगु को, सम्भूति मरीचि को, स्मृति अङ्गिरा को, प्रीति पुलस्त्य को, क्षमा पुलह को, संनति क्रतु को, अनुसूया अत्रि, ऊर्जा वशिष्ठ को, स्वाहा अग्नि को और स्वधा पितृगण को दी गयीं। अब इनकी सन्ततियों को भी कहते हैं ।।२५-३२।। ये सब बुद्धिमती और महाभाग्यशालिनी दक्षकन्याएँ प्रलयकालपर्यन्त सभी मन्वन्तरों में सदाचारों का प्रतिपालन करती हुई स्थिर रहती

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः। धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष उच्यते ।।३४।।
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा। क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्डः समय एव च ।।३५।।
बुद्धेर्बोधः सुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ। लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपोः सुतः ।।३६।।
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत। यशः कीर्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः ।।३७।।
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्यां रत्यां व्यजायत। इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः ।।३८।।
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ। निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ।।३९।।
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः। भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्युं भूतापहारिणम् ।।४०।।
वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्। मृत्योर्व्याधिर्जरा शोकः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।।४१।।
दुःखान्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः। नैषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ह्यनिधनाः स्मृताः ।।४२।।
इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः। प्रजाः सृजेति व्यादिष्टा ब्रह्मणा नीललोहितः ।।४३।।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसंभवान्। नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ।।४४।।
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत्कृत्तिवाससाम्। तुल्याश्चैवाऽऽत्मनः सर्वे रूपतेजोबलश्रुतैः ।।४५।।
पिङ्गलान्संनिषङ्गानां सकपर्दान्विलोहितान्। विवासान्हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ।।४६।।

हैं। श्रद्धा ने काम, लक्ष्मी ने दर्प, धृति ने नियम, तुष्टि ने सन्तोष, पुष्टि ने लाभ, मेधा ने श्रुत, क्रिया ने नय-दण्ड-समय, बुद्धि ने बोध-अप्रमाद, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख एवं कीर्ति ने यश नामक पुत्र को प्रसव किया। ये सब पुत्र धर्म के थे।।३३-३७।। काम को रति के गर्भ से हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। धर्म का यही सुखदायक वंश वर्णन है।।३८।।

अधर्म को हिंसा के गर्भ से निकृति नाम की कन्या और अनृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनृत को निकृति से भय और नरक नामक दो पुत्र एवं वेदना तथा माया नाम की दो पुत्रियाँ पैदा हुईं। भय को माया से सब भूतों को नष्ट करनेवाला मृत्यु नामक पुत्र हुआ। रौरव यानी नरक को वेदना से दुःख नामक पुत्र हुआ। मृत्यु को वेदना से जरा, शोक, क्रोध और असूया नामक चार सन्तान हुए। वेदना की यह सन्तति दुःखमय और अधर्म लक्षणों से युक्त है। इन्हें दूसरी भार्या तथा पुत्रादि नहीं हैं एवं ये सभी अमर हैं। यह तामस सर्ग धर्म का नियामक होकर प्रादुर्भूत हुआ है। ब्रह्मा ने जब नीललोहित यानी महादेव को प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए कहा, तब उन्होंने भार्या सती का ध्यान करके समान गुण स्वभाववाले आत्मसम अनेकानेक मानव सन्तान को उत्पन्न किया। महादेव के सभी पुत्र रूप, तेज, बल और ज्ञान में पिता के तुल्य थे।।३९-४४।। सभी चर्म धारण किये हुए थे, वे पिङ्गलवर्ण, निषङ्गधारी, जटिल, कुछ लोहितवर्ण, वसनहीन, हरितकेश, क्रूरदृष्टि और कपालधारी थे। इसमें कोई बहुरूपधारी, विरूप, सुरूप, विश्वरूप, रथी, वर्मी (कवचधारी), चर्मी, वरूथी, शतबाहु, सहस्रबाहु, द्युचारी, भूविहारी, अन्तरिक्षगामी, स्थूल

बहुरूपान्विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः । रथिनो वर्मिणश्चैश्व चर्मिणश्च वरूथिनः ।।४७।।
सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान् । स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रानुद्दिद्वजिह्वांस्त्रिलोचनान् ।।४८।।
अन्नादान्पिशितादांश्च आज्यपान्सोमपांस्तथा । मेढ्रपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः ।।४९।।
सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनो ह्युपवर्मिणः । आसीनान्धावतश्चैव जृम्भिनश्चैव धिष्ठितान् ।।५०।।
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतो ध्यायतस्तथा । ज्वलतो वर्षतश्चैत द्योतमानान्प्रधूपितान् ।।५१।।
बुद्धान् बुद्धतमांश्चैव ब्रह्मिष्ठाञ्शुभदर्शनान् । नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाथ क्षपाचरान् ।।५२।।
अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगान्महौजसः । रुदतो द्रवतश्चैव एवं युक्तान्सहस्रशः ।।५३।।
अयातयामानसृजद्रुद्ररूपान्सुरोत्तमान् । ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेतान्मा स्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ।।५४।।
स्रष्टव्या नाऽऽमनस्तुल्या प्रजा नैवाधिकास्त्वया । अन्याःसृज त्वं भद्रं ते (*प्रजा वै मृत्युसंयुताः ।।५५।।
नाऽऽरप्स्यन्ते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यवः । एवमुक्तोऽब्रवीदेनं नाहं मृत्युसमन्विताः ।।५६।।
प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रं ते) स्थितोऽहं त्वं सृज प्रजाः । एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ।।५७।।
सहस्राणां सहस्रं तु आत्मनोपमनिश्चिताः । एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः ।।५८।।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुताः । शतरुद्रसमाम्नाता भविष्यन्तीह यज्ञियाः ।।५९।।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवयुगैः सह । मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह च्छन्दजाः ।।६०।।

मस्तकवाले, आठ दाँतवाले, जिह्वाहीन, द्विजिह्व, त्रिलोचन, अतिकाय, शितिकण्ठ, नीलग्रीव, अन्नभोजी, मांसभोजी, घृतपायी, सोमपायी, अतिक्रोधी, धनुर्बाणादि नाना अस्त्रधारी आसीन, धावमान, जम्हाई लेनेवाले, स्थित, अध्यापनशील, जप करने योग्य, ध्यान करनेवाले, ज्वलनशील, वर्षणशील, प्रकाशशील, धूप करने में अशक्त, बुद्ध, बुद्धतम, ब्रह्मिष्ठ, शुभदर्शन, नीलग्रीव, सहस्रलोचन, सर्वाङ्गलोचन, रात्रिचारी, सब भूतों के लिए अदृश्य, महायोगयुक्त, स्थिर यौवन और महातेजस्वी थे। हजार-हजार का दल बाँधकर वे सब रोदन और द्रवण कर रहे थे। रुद्ररूप सुरोत्तम की प्रजा-सृष्टि देखकर ब्रह्मा ने कहा-आप इस तरह की प्रजा-सृष्टि न करें।।४५-५४।। रुद्र आपका कल्याण हो। आप अब अपनी तरह इस आकार-प्रकार की प्रजाओं को मत उत्पन्न करें। आप मरणशील प्रजाओं की सृष्टि करें। मृत्युरहित प्रजा कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त नहीं होती है। यह सुनकर नीललोहित रुद्र ने कहा-आपका कल्याण हो। हम मरणशील प्रजा की सृष्टि नहीं करते। हम इस कर्म से विरत होते हैं। आप ही प्रजा की सृष्टि करें। हमने जो इन नीललोहित, विरूप और अपने समान हजारों प्रजाओं को उत्पन्न किया है, वे महाबली देवगण भूलोक और अन्तरिक्ष में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होकर यज्ञीय देवों के मध्य में परिगणित होंगे एवं शतरुद्र नाम से विख्यात होंगे। सब युगों के साथ ये यज्ञीय भाग का भोग करेंगे। प्रत्येक मन्वन्तर में छन्दः समुत्पन्न जो यज्ञीय देवता प्रादुर्भूत होंगे, उनके साथ यज्ञीय होकर ये महाप्रलयपर्यन्त रहेंगे।।५५-६०$\frac{१}{२}$ ।। धीमान् महादेव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए और भीममूर्ति

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

तैःसार्धमिज्यमानास्तेस्थास्यन्तीह (हा)युगक्षयात्। एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता ।।६१।।
प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः। एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो ।।६२।।
ब्रह्मणा समनुज्ञाते सदा सर्वमभूत्किल। तदा प्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः ।।६३।।
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्। यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मीति ततः स्थाणुरिति स्मृतः ।।६४।।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। स्त्रष्टृत्वमात्मसंबोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च ।।६५।।
अथ यानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे। सर्वान्देवानृषींश्चैव समेतानसुरैःसह ।।६६।।
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः। अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्
ज्ञानेन च मुनीन्सर्वान्योगाद्भूतानि सर्वशः ।।६७।।

ऋषय ऊचुः

योगं तपश्च सत्यं च धर्मं चापि महामुने। माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनं च प्रचक्ष्व नः ।।६८।।
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो ।।६९।।

वायुरुवाच

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः। माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ।।७०।।
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्यां चैव सर्वशः। मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ।।७१।।

महादेव से कहा—हे प्रभु! आपका कल्याण हो। आपने जैसा कहा है, वैसा ही हो।।६१-६२।। विधाता के आदेश से ही सब कार्य हुआ करते हैं! तब से महादेव ने प्रजासृष्टि को बन्द कर दिया। उस समय से कल्पान्तपर्यन्त वे स्थाणु और उध्वरिता होकर रहे। यतः उन्होंने कहा था कि हम इस कर्म से विरत होते हैं—(ठहर गये) इसीलिए उनका नाम स्थाणु पड़ा। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टि-योग्यता, शासन-गुण और आत्मसंबोध ये दस गुण शंकर में सदा वर्तमान रहते हैं। देवता, असुर और ऋषियों से भी वे अधिक तेजस्वी हैं, इसी से उनका नाम महादेव पड़ा। उन्होंने ऐश्वर्य से देवों को, बल से असुरों को और ज्ञान से ऋषियों को तथा योग द्वारा सम्पूर्ण भूतों को पराजित किया है।।६३-६७।।

ऋषिगण बोले—महामुनि! आपने हम लोगों से महेश्वर का ज्ञानसाधन, योग, तप, सत्य और धर्म कहा है। प्रभु! जिस धर्माचरण से द्विजगण सद्गति प्राप्त करते हैं उस माहेश्वर योग को हम लोग सुनना चाहते हैं।।६८-६९।।

वायु बोले—रुद्र ने पाँच प्रकार के धर्मों को बताया है, जो पुराण में माहेश्वर धर्म के नाम से कहा गया है। अक्लिष्टकर्मा रुद्रगण, आदित्य, वसु, साध्य, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण, भृगुवंशीय गण, सुरपुरवासी, शुक्र, यम, पितृ, काल और अन्तक प्रभृति अनेकानेक धार्मिक व्यक्ति उस धर्म का प्रतिपालन करते हैं।।७०-७२।। इस धर्म के उपासक

यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकैस्तथा। एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्माः पर्युपासिताः ।।७२।।
ते वै प्रक्षीणकर्माणः शारदाम्बरनिर्मलाः। उपासते मुनिगणाः संधायाऽऽत्मानमात्मनि ।।७३।।
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः। विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ।।७४।।
महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्माः सनातनाः। तान्सर्वान्क्रमयोगेन (ण) उच्चमानान्निबोधत ।।७५।।
प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा। स्मरणं चैव योगेऽस्मिन्पञ्च धर्माः प्रकीर्तिताः ।।७६।।
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा। प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ।।७७।।
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्याऽऽयाम उच्यते। स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ।।७८।।
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः। प्राणायामप्रमाणं तु मात्रा वै द्वादश स्मृताः ।।७९।।
मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः। मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ।।८०।।
उत्तमस्तत्त्रिरुद्घातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते। स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः ।।८१।।
इत्येतत्त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम्। प्रमाणं स समासेन लक्षणं च निबोधत ।।८२।।
सिंहो वा कुञ्जरो वाऽपि तथाऽन्यो वा मृगो वने। गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते ।।८३।।
(*तथा प्राणो दुराधर्षः सर्वेषामकृतात्मनाम्। योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ।।८४।।

वासना से रहित और शरद् ऋतु के आकाश के समान निर्मल हो जाते हैं। मुनिगण आत्मा में मन को लगाकर उस धर्म की उपासना करते हैं।।७३।। इस धर्म के उपासक गुरु के प्रिय और हितकर कार्य में निरत एवं गुरु के प्रियपात्र होकर मनुष्य जन्म की कुछ चिन्ता न कर देवता की तरह विहार करते हैं।।७४।। महेश्वर ने जिस सनातन पाँच धर्मों को कहा है उन्हें हम यथाक्रम से कहते हैं, आप लोग सुनें।।७५।। माहेश्वर योग के प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये ही पाँच धर्म हैं। उनका क्रमशः लक्षण, कारण और तत्त्व, जैसा कि रुद्र ने बताया है, हम कहते हैं।।७६-७७।। प्राण की विस्तारगति को ही प्राणायाम कहते हैं। वह तीन प्रकार का है—उत्तम, मध्यम और मन्द।।७८।। प्राण के निरोध को भी प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रात्मक है।।७९।। मन्द प्राणायाम द्वादश मात्रात्मक है, इसके बारह उद्घात हैं। मध्यम प्राणायाम चौबीस मात्रात्मक है। इसके दो उद्घात हैं।।८०।। उत्तम प्राणायाम की तिरसठ मात्राएँ हैं और इसके तीन उद्घात हैं स्वेद, कम्प और विषाद जिससे उत्पन्न हो, वह उत्तम प्राणायाम है।।८१।। प्राणायाम का यह त्रिविध लक्षण हुआ। प्रमाण और लक्षण भी अब संक्षेप से सुनिये—सिंह, हाथी, मृग या अन्य बनैले पशुओं को पकड़कर पालने से जैसे धीरे-धीरे वे मृदुता धारण करने लगते हैं वैसे ही अजितेन्द्रियों के लिए प्राण भी दुराधर्ष है। योग और अभ्यास के द्वारा ही वह वशीभूत होता है।।८२-८४।। वे सिंह या हाथी जैसे दुर्बल हो जाते हैं यानी खाने-पीने के अभाव

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वाऽपि दुर्बलः। कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्दनात् ।।८५।।
परिधाय मनो मन्दं वश्यत्वं चाधिगच्छति। परिधाय मनोदेवं तथा जीवति मारुतः ।।८६।।
वश्यत्वं हि यथा वायुर्गच्छते योगमास्थितः। तदा स्वच्छन्दतः प्राण नयते यत्र चेच्छति ।।८७।।
यथा सिंहो गजो वाऽपि वश्यत्वादवतिष्ठते। अभयाय मनुष्याणां मृगेभ्यः संप्रवर्तते ।।८८।।
यथा परिचितश्चायं वायुर्वै विश्वतोमुखः। परिध्यायमानः संरुद्धः शरीरे किल्बिषं दहेत् ।।८९।।
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः। सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ।।९०।।
तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये। सर्वयज्ञफलं चैव प्राणायामश्च तत्समः ।।९१।।
अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते। संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामं च तत्समम् ।।९२।।
प्राणायामैर्दहद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम्। प्रत्याहारेण विषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।।९३।।
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत्। सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ।।९४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगे मन्वन्तरादिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

से दुर्बल होकर अहिंसक हो जाते हैं, वैसे ही प्राण भी कालक्रम से योगाभ्यास द्वारा वशीभूत हो जाता है। वही प्राण वायु मानस व्यापार द्वारा संयत होने पर मन्द और वश्य हो जाता और मन अधीन होकर जीवित रहता है।।८५-८६।। योगानुष्ठान के द्वारा जब प्राणवायु वश में हो जाता है, तब उसे इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकते हैं। जैसे जब सिंह और हाथी वशीभूत हो जाते हैं, तो मनुष्यों का पशुभय दूर हो जाता है और वे मनुष्यों के कार्यसाधक बन जाते हैं, उसी प्रकार यह परिचित प्राणवायु ध्यान द्वारा जब संयत और अनुकूल हो जाता है, तब शरीरगत पाप का नाश कर देता है।।८७-८९।। प्राणायाम करनेवाले जितेन्द्रिय ब्राह्मणों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वे सत्त्वगुणी हो जाते हैं। जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं प्राणायाम भी उन्हीं के समान है।।९०-९१।। सौ संवत्सरों तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलविन्दु पान करने से जो फल होता है वही फल प्राणायाम करने से होता है।।९२।। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है। धारणा से पाप का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता हैं। इसलिए योगी को उचित है कि वह प्राणायामनिष्ठ हो। इससे वह विशुद्धात्मा होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है।।९३-९४।।

श्रीवायुमहापुराण का मन्वन्तर वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त।।१०।।

अथैकादशोऽध्यायः

पाशुपतयोगः

*वायुरुवाच

एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा। अर्धमासं तथा मासमयनाब्दयुगानि च ।।१।।
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः। उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा ।।२।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम्। फलं चैव विशेषेण यथाऽऽह भगवान्प्रभुः ।।३।।
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै। शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ।।४।।
घोराकारशिवानां तु कर्मणां फलसंभवम्। स्वयंकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ।।५।।
पितृमातृप्रदुष्टानां ज्ञातिसंबन्धिसंकरैः। क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ।।६।।
लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः। इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ।।७।।
सूर्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तु विषयो भवेत्। ऋषीणां च प्रसिद्धानां ज्ञानविज्ञानसंपदाम् ।।८।।
अतीतानागतानां च दर्शनं सांप्रतस्य च। बुद्धस्य समतां यान्ति दीप्तिः स्यात्तप उच्यते ।।९।।

अध्याय ११

पाशुपत योग

वायु बोले–महात्मा ऋषिगण एक महादिवस, अहोरात्र, अर्द्धमास, मास, अयन, वत्सर, युग अथवा हजार महायुगों तक तपस्या करते हुए दिव्य चक्षु से प्राण की उपासना करते हैं। इसके आगे हम अब प्राणायाम के प्रयोजन और फल को विशेष प्रकार से कहते हैं, जैसा कि स्वयं भगवान् प्रभु ने कहा है।।१-३।। शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद, इन चारों को प्राणायाम का प्रयोजन समझिये। इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किये हुए भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का जिससे नाश होता है, उसे शान्ति कहते हैं।।४-६।। इस लोक और परलोक में हित के लिए लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का जिससे संयम हो, उस तपस्या को प्रशान्ति कहते हैं।।७।। तपःपरायण योगी की जिस प्रतिबुद्ध अवस्था में ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारकादि और भूत, भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो अर्थात् अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त हो जाय, उसे दीप्ति कहते हैं।।८-९।। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंचवायु जिससे प्रसन्न हों उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम धर्म हुआ। यह आशु फलदायक और काल भय

---

* ख. पुस्तके सूत उवाचेति पाठः।

*इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च मनः पञ्च च मारुतान्। प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः ।।१०।।
इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः। (÷संनिकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकालप्रसादजः ।।११।।
अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम्। आसनं च यथा तत्त्वं युञ्जतो योगमेव च ।।१२।।
ओंकारं प्रथमं कृत्वा चन्द्रसूर्यौ नमस्य च। आसनं स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममर्धासनं तथा ।।१३।।
समजानुरेकजानुरुत्तानः सुस्थितोऽपि च। समो दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ।।१४।।
संवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः। पार्ष्णिभ्यां वृषणौ छाद्य तथा प्रजननं यतः ।।१५।।
किंचिदुन्नामितशिराः शिरो ग्रीवां तथैव च। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।१६।।
तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन च्छादयेत्। ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा योगं युञ्जन्समाहितः ।।१७।।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थश्च मनः पञ्च समारुतान्। निगृह्य समवायेन) प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।।१८।।
यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः। तथाऽऽत्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ।।१९।।
पूरयित्वा शरीरं तु सबाह्याभ्यन्तरं शुचिः। आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ।।२०।।
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च। तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ।।२१।।
धारणाद्द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम्। तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते ।।२२।।
वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा। प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ।।२३।।

निवारक है। इसके आगे हम प्राणायाम का लक्षण और योग के लिए योगियों के योग्य आसन कहते हैं।।१०-१२।। पहले ओंकार का उच्चारण करे और चन्द्र-सूर्य को प्रणाम करे। फिर स्वस्तिक, पद्म, अर्द्ध समजानु, एकजानु, उत्तान, सुस्थित आदि किसी आसन को दृढ़ भाव से लगाकर समकाय हो जाय और दोनों चरणों को परस्पर मिला ले।।१३-१४।। अथवा दोनों पैर की एड़ियों द्वारा लिंग तथा दोनों अण्डकोष को कुछ निपीड़ित करके ग्रीवा और मस्तक को कुछ ऊपर उठावे फिर मुँह बन्द कर और आँखों को मूँदकर बैठे। दिशाओं को न देखे केवल नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमा दे।।१५-१६।। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को सत्त्वगुण से आच्छादित कर दे। तब सत्त्वमात्रा में स्थित होकर एकाग्र मन से योगानुष्ठान करे। इन्द्रियों, विषयों, मन और पंच वायु को समवाय द्वारा वंश में कर प्रत्याहार का अभ्यास करे।।१७-१८।। कछुआ जिस प्रकार अपने शरीर का आकुंचन करता है, उसी प्रकार योगी सम्पूर्ण कामों से अर्थात् विषय समूह से मन को हटाकर एकस्थ होकर आत्मरति करे और आत्मा में ही सब का निरोध करे। ऐसा ही करने से योगी आत्मा का दर्शन अपने में ही करते हैं।।१९।। योगी बाहर-भीतर से शुद्ध होकर प्राणायामकाल में वायु द्वारा नाभि से कण्ठपर्यन्त पूर्ण करके प्रत्याहार का आरम्भ करे। निमेषोन्मेष (पलक गिरना और उठना) काल को कला या मात्रा कहते हैं। प्राणायाम के लिए बारह मात्रा का काल बताया गया है।।२०-२१।। बारह प्राणायामों की एक धारणा होती है और दो धारणाओं का एक योग होता है। इस तरह जो योग करता है, उसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है, वह अपने तेज से प्रदीप्त होकर परमात्मा का दर्शन करता है।।२२-२३।। जितेन्द्रिय और प्राणायाम करनेवाले ब्राह्मण के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और वह सत्त्व

---

* इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते। एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः ।।२४।।
जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनिः। अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून् ।।२५।।
विवर्धयति संमोहं न रोहेदजितां ततः। नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वितः ।।२६।।
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुं जितश्रमः। नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चाऽऽनने ।।२७।।
नासाग्रे तु यथा नेत्रे भ्रूवोर्मध्येऽथ मूर्धनि। किंचिदूर्ध्वं परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।।२८।।
प्राणायामसमारोधात्प्राणायामः स कथ्यते। मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।।२९।।
निवृत्तिर्विषयाणां तु प्रत्याहारस्तु संज्ञितः। सर्वेषां समवाये तु सिद्धिः स्याद्योगलक्षणा ।।३०।।
तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम्। ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्यचन्द्रवत् ।।३१।।
सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनं तु न विद्यते। अदेशकालयोगस्य दर्शनं तु न विद्यते ।।३२।।
अग्न्यभ्यासे वने वाऽपि शुष्कपर्णचये तथा। जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।।३३।।
सशब्दे सभये वाऽपि चैत्यवल्मीकसंचये। उदपाने तथा नद्यां न चाऽऽध्मातः कदाचन ।।३४।।
क्षुधाविष्टास्तथाऽप्रीता न च व्याकुलचेतसः। युञ्जीत परमं ध्यानं योगी ध्यानपरः सदा ।।३५।।
एतान्दोषान्विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै। तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारकाः ।।३६।।
जडत्वं बधिरत्वं च मूकत्वं चाधिगच्छति। अन्धत्वं स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ।।३७।।
एते दोषाः प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै। तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन योगी युञ्जेत्समाहितः ।।३८।।

गुण में प्रतिष्ठित हो जाता है। साधक आहार को नियत करके और प्राणायाम में आसक्त होकर एक-एक भूमि को जीतने के बाद आगे बढ़े यानी प्राणायाम सम्बन्धी पहली अवस्था पूर्ण करके बादवाली अवस्था को साधे। पूर्वभूमि को बिना जीते परभूमि के लिए उद्यम करने से सम्मोहादि बहुतेरे दोष उत्पन्न हो जाते हैं।।२४-२५।। इसलिए बिना जीती हुई (अजिता) भूमि पर आरोहण न करे। यन्त्र नल के द्वारा जिस प्रकार जल बलपूर्वक लाये जाने पर पिया जाता है, उसी प्रकार परिश्रमी साधक प्राण वायु को भी ऊपर खींचे (यानी प्राणायाम करे) नाभि, हृदय, कण्ठ, वक्षःस्थल, मुख, नासाग्र, नेत्र, भ्रूमध्य, मस्तक और ब्रह्मरंध्र में मन को स्थिर करे। प्राणापानादि वायु के निरोध को प्राणायाम कहते और मन की धारणा ही धारणा कही जाती है।।२६-२९।। विषयों से निवृत्ति पाने को प्रत्याहार कहते हैं और इन सब की समष्टि रूप से सिद्धि हो जाने पर योगलक्षण प्रकाशित होता है।।३०।। उससे उत्पन्न योग की सिद्धि का लक्षण ध्यान है। ध्यानयुक्त योगी अपने को सदा चन्द्र, सूर्य के समान देखे।।३१।। सत्त्वगुण की वृद्धि नहीं होने पर अथवा देश-कालादि के विचार से हीन योग होने पर दर्शन लाभ नहीं होता।।३२।। अग्नि के निकट, वन में सूखे पत्तों के ढेर पर, कीड़े-मकोड़ोंवाली जगह में, श्मशान में, पुरानी गोशाला में, चौराहे पर, कोलाहल के स्थान पर, डरावनी जगहों में, वृक्ष के नीचे, दीमक की मिट्टी से बनी ऊँची भूमि, नदी और कुआँ आदि के समीप, भूखा रहकर, बे मन से और व्याकुल चित्त होकर योगी को ध्यान-योग में लीन नहीं होना चाहिए।।३३-३५।। इन दोषों को बिना विचारे जो प्रमाद से योग साधने लगते हैं, उनके शरीर में बहुतेरे विघ्नकारक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।।३६।। जड़ता, बहिरापन, मूकत्व, अन्धत्व, स्मृतिलोप, जरा प्रभृति नाना रोग उत्पन्न होकर योगी को सताने लगते हैं, जो अज्ञानवश योगकार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। इसलिए ज्ञानपूर्वक शुद्ध चित्त से योगी योगसाधना करे।।३७-३८।। जो सावधान रहते, उन्हें कोई दोष उत्पन्न नहीं होता। उन दोषों को भी

अप्रमत्तः सदा चैव न दोषान्प्राप्नुयात्क्वचित् । तेषां चिकित्सां वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ।।३९।।
यथा गच्छन्ति ते दोषाः प्राणायामसमुत्थिताः । स्निग्धां यवागुमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।।४०।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) वातगुल्मं प्रशाम्यति । गु (उ) दावर्तप्रतीकारमिदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।।४१।।
भुक्त्वा दधि यवागूं वा वायुरूर्ध्वं ततो व्रजेत् । वायुग्रन्थिं ततो भित्त्वा वायुदेशे प्रयोजयेत् ।।४२।।
तथाऽपि न विशेषः स्याद्धारणां मूर्ध्नि धारयेत् । युञ्जानस्य तनुं तस्य सत्त्वस्थस्यैव देहिनः ।।४३।।
गु (उ) दावर्तप्रतीघाते एतत्कुर्याच्चिकित्सितम् । सर्वगात्रप्रकम्पेन (ण) समारब्धस्य योगिनः ।।४४।।
इमां चिकित्सां कुर्वीत तया संपद्यते सुखी । मनसा पर्वतं किंचिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ।।४५।।
उरोद्घात उरःस्थानं कण्ठदेशे च धारयेत् । त्वचोऽवघाते तां वाचि बाधिर्ये श्रोत्रयोस्तथा ।।४६।।
जिह्वास्थाने तृषार्तस्तु अग्नेः स्नेहांश्च तन्तुभिः । फलं वैचिन्तयेद्योगी ततः संपद्यते सुखी ।।४७।।
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्त्विकीम् । यस्मिन्यस्मिन्रुजोदेशे तस्मिन्युक्तो विनिर्दिशेत् ।।४८।।
योगोत्पन्नस्य विप्र(घ्न)स्य इदं कुर्याच्चिकित्सितम् । वंशकीलेन मूर्धानं धारयान (ण) स्य ताडयेत् ।।४९।।
मूर्ध्नि कीलं प्रतिष्ठाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् । भयभीतस्य सा संज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ।।५०।।
अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यां तत्र धारयेत् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञा धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।५१।।
स्निग्धमल्पं च भुञ्जीत ततः संपद्यते सुखी । अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित् ।।५२।।
दिव्यं च पृथिवीं चैव वायुमग्निं च धारयेत् । प्राणायामेन तत्सर्वं दह्यमानं वशी भवेत् ।।५३।।

हम यथाक्रम से कहते हैं ।।३९।। जिससे प्राणायामजनित दोष शान्त हो जाते हैं। स्निग्ध पदार्थ-मिश्रित गर्म यवागू को खाकर कुछ काल तक उस स्थान पर धारणा करे। इससे वातगुल्म नष्ट हो होता है। गुदावर्त को दूर करने के लिए यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायुग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊर्ध्वदेश में परिचालित करे ।।४०-४२।। अगर इससे शान्त न हो तो मस्तक में धारणा करे। योगरत सत्त्वस्थ योगी की देह में अगर गुदावर्त की पीड़ा हो तो वह यही उपचार करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी प्रारम्भ हो जाय, वह इस प्रकार चिकित्सा करके सुखी हो सकता है। शरीर को स्थिर कर मन से किसी पर्वत की धारणा करे।।४३-४५।। उरोद्घात या वक्षोभ्रंश (छाती का रोग) होने से उरःस्थान या कण्ठ देश में भी वैसी ही धारणा करे। वाग्रोध होने से वचन में और बधिरत्व होने से कानों में धारणा की जाती है ।।४६।। तृषार्त होने से जिह्वा स्थान में स्नेहाक्त प्रज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं का जो फल हो, उसकी प्रतीक्षा करे। फिर तो वह सुखी हो जायगा।।४७।। क्षय, कुष्ठ और कीलासादि राजस रोग में सात्त्विकी वृत्ति की धारणा करे। जिस-जिस देश में जो विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्त्विकी धारणा करे।।४८।। जिस ब्राह्मण को इस प्रकार योगजनित दोष उत्पन्न हो उसको इसी प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए। जो भयभीत हो जाय, बाँस की कील से उसके सिर पर ताड़ना करे अथवा भयभीत योगी के सिर पर लकड़ी की कील रखकर लकड़ी से खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट जाती है। जिसकी संज्ञा लुप्त हो गयी हो उसे सिर पर दोनों हाथों से धारणा करावे, इससे उसकी संज्ञा फिर जाती है-उसको पुनः मूर्द्धा में धारणा करनी चाहिए।।४९-५१।। रोगी को स्निग्ध और थोड़ा भोजन करावे इससे वह सुख पाता है। योगी जब अमानुष तत्त्वों का अनुभव करने में समर्थ हो जाय, तब आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी की धारणा करे। वैसी दशा में प्राणायाम के द्वारा सब तत्त्व दग्ध होकर वशीभूत हो जाते हैं।।५२-५३।। फिर भी अगर कोई दोष शरीर में प्रवेश कर जाय, तो उसका

अथापि प्रविशेद्देहं ततस्तं प्रतिषेधयेत्। ततः संस्तभ्य योगेन धारयान (ण) स्य मूर्धनि ।।५४।।
प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्वं विलयं व्रजेत्। कृष्णसर्पापराधं तु धायरेद्धृदयोदरे ।।५५।।
महो जनस्तपः सत्यं हृदि कृत्वा तु धारयेत्। विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्यां धारयेत्ततः ।।५६।।
सर्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वा मनसि धारयेत्। हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्वांश्च देवताः ।।५७।।
सहस्रेण घटानां च युक्तः स्नायीत योगवित्। उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।५८।।
प्रतिस्रोतोविषाविष्टो धारयेत्सर्वगात्रिकीम्। शीर्णोऽर्कपत्रपुटकैः पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।।५९।।
चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्मितः। व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।।६०।।
ब्रुवतो लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत्क्वचित्। अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ।।६१।।
तस्मात्प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथंचन ।।६२।।

सत्त्वं तथाऽऽरोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ।।६३।।

आत्मानं पृथिवीं चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति। कृत्वाऽन्यं विशते चैव विद्यात्सिद्धिमुपस्थिताम् ।।६४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगो नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

निराकरण यह है कि मस्तक में संस्तम्भन करके धारणा करे और प्राणायाम रूप अग्नि में सब को जला डाले। ऐसा करने से सभी दोष नष्ट होते हैं। अगर नाग ने डँस लिया हो, तो हृदय और उदर में धारणा करे ।।५४-५५।। महः जन, तप, सत्यलोक की भी हृदय में धारणा करे। अगर विष पी लिया गया हो, तो हृदय में विशल्या धारण करे ।।५६।। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे ।।५७।। योगी हजार घड़े जल से भी स्नान करे। कण्ठमात्र जल में बैठकर मस्तक में धारणा करे, नदी की विपरीत दिशा में रहकर, सम्पूर्ण शरीर में धारणा का अवलम्बन करे। अकवन के सूखे पत्ते की दोनिया बनाकर दीमक की मिट्टी भी पी सकता है। योगज रोग होने पर इस प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए। विख्यात योग निर्माता ने योग द्वारा प्राप्त ज्ञान के द्वारा संक्षेप में इस प्रकार की विधि कही है ।।५८-६०।। योग सम्बन्धी बातों को किसी से नहीं कहना चाहिए। कहे भी तो ब्राह्मणों से ही। मोहवश अगर किसी से कह दिया जायगा, तो उसका विज्ञान लुप्त हो जायगा। इसलिए योग की प्रवृत्ति किसी से नहीं कहनी चाहिए ।।६१-६२।। सत्त्व गुण की अधिकता, आरोग्य, लोभ का अभाव, कान्ति, सुन्दर स्वर, सुभगमूर्ति, उत्तम गन्ध, मूत्रपुरीष की अल्पता जब शरीर में हो जाय, तब समझना चाहिए कि योग की पहली प्रकृति सिद्ध हो गयी। अपने को और पृथ्वी को अगर जलता हुआ देखे और सृष्ट पदार्थ में प्रवेश कर सके, तो सिद्धि को उपस्थित समझे ।।६३-६४।।

श्रीवायुमहापुराण का पाशुपत योग नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

योगोपसर्गकथनम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा। प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ।।१।।
मानुष्यान्विविधान्कामान्कामयेत ऋतुं स्त्रियः। विद्यादानफलं चैव अपसृष्टस्तु योगवित् ।।२।।
अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत्प्रतपनं तथा। मायाकर्म धनं स्वर्गमुपसृष्टस्तु काङ्क्षति ।।३।।
एषु कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः। उपसृष्टं तु जानीयाद्बुद्ध्या चैव विसर्जयेत् ।।४।।
नित्यं ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात्प्रमुच्यते। जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ।।५।।
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः। प्रतिभा श्रवणे चैव देवानां चैव दर्शनम् ।।६।।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः। विद्या काव्यं तथा शिल्पं सर्ववाचाकृतानि तु ।।७।।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावस्यैव लक्षणम्। शृणोति शब्दाञ्श्रोतव्यान्योजनानां शतादपि ।।८।।
सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत्। यक्षराक्षसगन्धर्वान्वीक्षते दिव्यमानुषान् ।।९।।

अध्याय १२

योगोपसर्ग

सूत जी बोले–तत्त्वदृष्टि-सम्पन्न योगियों को जो उपसर्ग (रोग) होता है, उसे अब हम यथायोग्य इसके आगे कहते हैं। मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री प्रसङ्गाभिलाषा, पुत्रोत्पादनेच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ, अन्य तपस्या आदि, कपट, धनार्जन, स्वर्गस्पृहा आदि वस्तुओं में यदि योगी पुरुष आसक्त हो गये तो वे अविद्या के वशीभूत हो जायँगे इन्हें उपसर्ग या विघ्न समझकर योगिजन इनका विवेचन कर निराकरण करें। प्रतिदिन ब्रह्मनिष्ठ होकर योगाभ्यास करने से ये दोष नष्ट हो जाते हैं। इन उपसर्गों को और श्वास को जीतनेवाले योगियों को सात्त्विक, राजस और तामस विघ्न उपस्थित होते हैं ।।१-५$\frac{१}{२}$।।

दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओं का दर्शन और अभ्रान्ति, सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्पनैपुण्य, सब भाषाओं का बोध और विद्या का तत्त्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुन ले, सर्वज्ञ हो, विधिज्ञ हो और उन्मत्त की तरह रहता हो यह योग प्रभाव का लक्षण है ।।६-८$\frac{१}{२}$।। यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि दिव्य दर्शन योगियों के लिए विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओं में देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि और पितरों को देखने लगते

वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् । देवदानवगन्धर्वानृषींश्चापि तथा पितॄन् ।।१०।।
प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्तं तं विनिर्दिशेत् । भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।।११।।
वर्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्वं प्रणश्यति । (*वार्ता नाशयते चित्तं चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।।१२।।
वर्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञानं प्रणश्यति) । प्रावृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ।।१३।।
ततस्तु परमं ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् । तस्माच्चैवाऽऽत्मनो दोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् ।।१४।।
परित्यजेत् मेधावी यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुराः ।।१५।।
उपसर्गेषु संयुक्ता आवर्तन्ते पुनः पुनः । तस्माद्युक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।।१६।।
तथा सुप्तः सुसूक्ष्मेषु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् । ततस्तु योगयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिनः ।।१७।।
उपसर्गाः पुनश्चान्ये जायन्ते प्राणसंज्ञकाः । पृथिवीं धारयेत्सर्वां ततश्चापो ह्यनन्तरम् ।।१८।।
ततोऽग्निं चैव सर्वेषामाकाशं मन एव च । ततः परां पुनर्बुद्धिं धारयेद्यत्नतो यती ।।१९।।
सिद्धीनां चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्येजत् । पृथ्वीं धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।।२०।।
+आत्मानं मन्यते नित्यं पृथ्वीगन्धश्च जायते । आपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ।।२१।।
शीता रसाः प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसंनिभाः । तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्तते ।।२२।।

हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं ।।९-१०$\frac{१}{२}$ ।। भ्रान्त योगी भ्रमवश अन्तरात्मा द्वारा विविध विषय की ओर प्रेरित होने पर भूल जाते हैं। भ्रम से उनकी बुद्धि मारी जाती है और उनका ज्ञान नष्ट हो जाता है। अन्तरात्मा द्वारा प्रेरित होने पर वार्ता (?) चित्त को नष्ट कर देती है और उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाने पर सब नष्ट हो जाता है ।।११-१२$\frac{१}{२}$।। ऐसा होने पर शीघ्र ही उज्ज्वल वस्त्र या कम्बल से शरीर को ढककर मन-ही-मन परब्रह्म का ध्यान करे। इसलिए सिद्धि चाहनेवाला मेधावी योगी आत्मजनित दोष और उपस्थित उपसर्गों को दूर कर दे ।।१३-१४$\frac{१}{२}$ ।। ऋषि, देव, गन्धर्व, यक्ष, उरग, महासुर आदि उपसर्ग के वशीभूत होकर बार-बार उसी में फँसे रहते हैं; इसलिए योगी जितेन्द्रिय होकर थोड़ा खाय, निद्रा को जीते और मूर्धा में सूक्ष्म की धारणा करे। इन्द्रिय को जीतनेवाले जो योगयुक्त योगी हैं उन्हें फिर प्राणसंज्ञक उपसर्ग होता है। ऐसा होने पर पहले योगी सम्पूर्ण पृथ्वी की धारणा करे। अनन्तर अग्नि, सम्पूर्ण आकाश, मन और परा बुद्धि की यत्नपूर्वक धारणा करे। सिद्धि-लक्षण को देखकर उनका फिर एक-एक कर त्याग करता जाय ।।१५-१९$\frac{१}{२}$।।

पृथ्वी की धारणा करने से पृथ्वीतत्त्व सूक्ष्म रूप से उसमें प्रविष्ट हो जाता है। योगी उस समय अपने को नित्य पृथ्वीमय समझे। ऐसा करने से उसके शरीर से उत्तम गन्ध निकलने लगती है। जल की धारणा करने से जल का सूक्ष्म तत्त्व उसमें प्रवेश करता है ।।२०-२१।। और अमृततुल्य शीतल सूक्ष्म रस उसके शरीर से प्रवाहित होने लगता है। तेज की धारणा करने से तेज सूक्ष्म रूप से उसमें संक्रान्त हो जाता है ।।२२।। योगी अपने को तेजोमय समझने लगता है

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

८

(×आत्मानं मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति। =वायुं धारयमाणस्य वायुः सूक्ष्मः प्रवर्तते ।।२३।।
आत्मानं मन्यते वायुं वायुवन्मण्डलं भ्रमेत्। आकाशं धारयमाणस्य व्योम सूक्ष्मं प्रवर्तते) ।।२४।।
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्तते। ( ) आत्मानं मन्यते नित्यं वायुः सूक्ष्मः प्रवर्तते ।।२५।।
तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्तते। मनसा सर्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः ।।२६।।
बुद्ध्या बुद्धिं यदा युञ्जेत्तदा विज्ञाय बुध्यते। एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित् ।।२७।।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परमं व्रजेत्। यस्मिन्यस्मिंश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे ।।२८।।
तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति। तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ।।२९।।
परित्यजति यो बुद्ध्या स परं प्राप्नुयाद्द्विजः। दृश्यते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुषः ।।३०।।
संसक्ताः सूक्ष्मभावेषु ते दोषास्तेषु संज्ञिताः। तस्मान्न निश्चयः कार्यः सूक्ष्मेष्विह कदाचन ।।३१।।
ऐश्वर्याज्जायते रागे विरागं ब्रह्म चोच्यते। विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम् ।।
प्रधानं विनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।३२।।
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।।३३।।

और उसी भाव को देखता भी है। वायु की धारणा से वायु सूक्ष्म भाव से संक्रान्त हो जाता है। योगी अपने को वायु समझता है और वायु की तरह वायुमण्डल में भ्रमण करने लगता है। आकाश की धारणा करने से सूक्ष्म आकाश संक्रान्त होता है ।।२३-२४।। और योगी नादसम्पन्न होकर उसके सूक्ष्म मण्डल को देखने लगता है। वायु की धारणा करनेवाला योगी अपने को वायुमय, नित्य समझने लगता है और वायु सूक्ष्म रूप से उसमें संक्रांत हो जाता है ।।२५।। मन की धारणा करने से मन सूक्ष्म होकर संक्रान्त होता है और योगी अपने मन से सबके मन में प्रवेश कर जाता है। बुद्धि द्वारा जब बुद्धि की धारणा की जाती है तब योगी समस्त तत्त्वबोध में समर्थ होते हैं। इन सप्त सूक्ष्मों को जानकर भी जो योगवित् मेधावी इनका परित्याग कर देते हैं, वे बुद्धिगुण से परम तत्त्व को प्राप्त करते हैं ।।२६-२७$\frac{१}{२}$।। योगी जिस किसी ऐश्वर्यजनक भूत से आसक्त होते हैं और उनका सेवन करते हैं, उसी के साथ उसका विनाश हो जाता है ।।२८$\frac{१}{२}$।। जो ब्राह्मण परस्पर संसक्त सूक्ष्म भूत समूह का परित्याग करते हैं, वे परम तत्त्व को प्राप्त करते हैं। ऐसा देखा गया है कि दिव्य चक्षु महात्मा ऋषिगण भी सूक्ष्म भाव-समूह में लिप्त होने के कारण दोष-दुष्ट हो गये हैं। इसलिए सूक्ष्म भाव-समूह में एकान्त निष्ठावान् नहीं होना चाहिए। ऐश्वर्य से राग उत्पन्न होता है और विराग का ही नाम ब्रह्म है। इन सप्त सूक्ष्म तत्त्वों को और षडंग महेश्वर को जानकर जो योगी क्रिया-कलाप में पटु होते हैं, वे ही परब्रह्म को प्राप्त करते हैं ।।२९-३२।। विधि तत्त्व को जाननेवाले व्यक्तियों ने प्रभु महेश्वर के षडङ्ग तत्त्व को इस प्रकार बताया है, सर्वज्ञता,

---

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।
= इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।
() इदमर्धं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

नित्यं ब्रह्मधनो युक्त उपसर्गैः प्रमुच्यते। जितश्वासोपसर्गस्य जितरागस्य योगिनः।।३४।।
एका बहिः शरीरेऽस्मिन्धारणा सार्वकामिकी। विशेष्यदा द्विजो युक्तो यत्र यत्रार्पयेन्मनः।।३५।।
भूतान्याविशते वाऽपि त्रैलोक्यं चापि कम्पयेत्। एतया प्रविशेद्देहं हित्वा देहं पुनस्त्विह।।३६।।
मनो द्वारं हि योगानामादित्यं च विनिर्दिशेत्। आदानादिक्रियाणां तु आदित्य इति चोच्यते।।३७।।
एतेन विधिना योगी विरक्तः सूक्ष्मवर्जितः। प्रकृतिं समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते।।३८।।
(*ऐश्वर्यगुणसंप्राप्तं ब्रह्मभूतं तु तं प्रभुम्। देवस्थानेषु सर्वेषु सर्वतस्तु निवर्तते)।।३९।।
पैशाचेन पिशाचांश्च राक्षसेन च राक्षसान्। गान्धर्वेण च गन्धर्वान्कौबेरेण कुबेरजान्।।४०।।
इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन सौम्यं सौम्येन चैव हि। प्रजापतिं तथा चैव प्राजापत्येन साधयेत्।।४१।।
ब्राह्मं ब्राह्मेन (ण) चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम्। तत्र सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्वं प्रवर्तते।।४२।।
नित्यं ब्रह्मपरो युक्तः स्थानान्येतानि वै त्यजेत्। असज्जमानः स्थानेषु द्विजः सर्वगतो भवेत्।।४३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते योगोपसर्गनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

तृप्ति, अनादि बुद्धि, स्वतन्त्रता, नियत अविनश्वर शक्ति और अनन्त शक्ति ।।३३।। जो योगी परब्रह्म को ही नित्य धन समझने लगते हैं, उनके सभी उपसर्ग शान्त हो जाते हैं। जिसने राग और प्राणायामजनित उपसर्गों को जीत लिया है, उसके लिए बहिः शरीर में सर्वकार्य-साधिका एकमात्र धारणा ही विहित है। योगी जहाँ-जहाँ जिस भूत-विशेष में मन को लगाते हैं, वहाँ वे प्रवेश कर जाते हैं ।।३४-३५।। वे तीनों लोकों को भी कँपा सकते हैं। वे देह छोड़कर दूसरी देह में भी प्रवेश कर सकते हैं। सब योगों का द्वार मन है। आदित्य को भी योग का द्वार कहते हैं। ये इन्द्रियों का आदान करते हैं अर्थात् इन्द्रिय-वृत्ति समूह का आकर्षण करते हैं, इससे वे आदित्य कहलाते हैं ।।३६-३७।। इस विधि से योगी विषय से विरक्त होकर, सूक्ष्म तत्त्वों को त्यागकर और प्रकृति का अतिक्रमण करके रुद्रलोक में निवास पाता है ।।३८।। ऐश्वर्य गुण से संयुक्त होने पर योगी ब्रह्मत्व प्राप्त करता है। तब वे सम्पूर्ण देवस्थानों से हो जायँ यानी देवस्थानों में धारणा नहीं करें ।।३९।। तब वे अपने पिशाचगुण से पिशाचादि को, राक्षस गुण से राक्षसों को, गान्धर्व गुण से गन्धर्वों को, कौबेर गुण से कुबेर को, ऐन्द्र गुण से इन्द्र को, सौम्य गुण से सोम को, प्राजापत्य से प्रजापति को साधें ।।४०-४१।। ब्राह्म गुण से ब्रह्म की साधना भी योगी करे। वे ही प्रभु सब कार्यों के प्रवर्तक हैं। उनमें आसक्त होने से योगी उन्मत्त अर्थात् सिद्ध हो जाता है। उन्हीं से सब का प्रवर्तन होता है। इसलिए इन गुण स्थानों का त्यागकर योगी नित्य ब्रह्म में रत हो जाय। इन स्थानों में अनासक्त योगी सर्वत्रगामी हो जाता है ।।४२-४३।।

श्रीवायुमहापुराण का योगोपसर्ग निरूपण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१२।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

योगैश्वर्यनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुणविस्तरम्। येन योगविशेषेण सर्वलोकानतिक्रमेत् ।।१।।
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम्। तत्सर्वं क्रमयोगेन(ण) उच्यमानं निबोधत ।।२।।
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च। प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैव सर्वतः ।।३।।
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता। तच्चापि विविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम् ।।४।।
सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मं चैव प्रवर्तते। सावद्यं नाम यत्तत्त्वं पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ।।५।।
निरवद्यं तथा नाम पञ्चभूतात्मकं स्मृतम्। इन्द्रियाणि पुनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ।।६।।
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तस्तु पञ्चभूतात्मकं पुनः। इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्यहंकारसंज्ञितः ।।७।।
तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च। संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्तते ।।८।।
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्तते। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाऽऽह भगवान्प्रभुः ।।९।।
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु जीवस्यानियतः स्मृतः। अणिमा च यथाव्यक्तं सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ।।१०।।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम्। तच्चापि भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलात् ।।११।।
लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत्। शीघ्रगं सर्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् ।।१२।।

अध्याय १३

योगैश्वर्यनिरूपण

वायु बोले–इससे आगे अब हम योग के ऐश्वर्य-विस्तार को कहते हैं, जिस योग-विशेष से तीनों लोक जीते जा सकते हैं ।।१।। योगियों के लिए आठ प्रकार के ऐश्वर्य कहे गये हैं। उन्हें हम क्रम से कहते हैं, सुनिये–अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता। यह सार्वकामिक ऐश्वर्य भी विविध प्रकार का है। जैसे सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नाम का जो तत्त्व है, वह पंचभूतात्मक है। निरवद्य भी पंचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहङ्कार एवं सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहङ्कार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति–अष्ट ऐश्वर्यों की यह त्रिविध प्रवृत्ति है। स्थूल और सूक्ष्म सर्वभूतों में यह अष्ट ऐश्वर्य जिस भाव से प्रवृत्त होता है, उसे हम ठीक वैसा ही कहते हैं जैसा कि स्वयं प्रभु ब्रह्मा ने कहा है ।।२-९।। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं, वे सभी उस योगी के वशवर्ती हो जाते हैं। जिसने अणिमा ऐश्वर्य को प्राप्त किया है, तीनों लोकों में प्राणियों द्वारा जो दुष्प्राप्य कहा गया है, उसे भी योगी अपने प्रथम (अणिमा) योगबल से प्राप्त कर लेते हैं ।।१०-११।। द्वितीय ऐश्वर्य लघिमा के द्वारा योगी सब जीवों के बीच शीघ्रता से चले जाते हैं, वे आकाश में उड़ सकते और पानी में तैर सकते हैं ।।१२। तृतीय ऐश्वर्य प्राप्ति द्वारा

त्रैलोक्ये सर्वभूतानां प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च। महिमा चापि यो यस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते ।।१३।।
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु त्रैलोक्यमगमं स्मृतम्। प्रकामान्विषयान्भुङ्क्ते न च प्रतिहतः क्वचित् ।।१४।।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुखदुःखे प्रवर्तते। ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।।१५।।
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे। भवन्ति सर्वकार्येषु इच्छतो न भवन्ति च ।।१६।।
*यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे। इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ।।१७।।
शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा। प्रवर्ततेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति तथेच्छया ।।१८।।
न जायते न म्रियते भिद्यते न च च्छिद्यते। न दह्यते न मुह्येत हीयते न च लिप्यते ।।१९।।
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन। क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ।।२०।।
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जितः। अवर्णो ह्यस्वरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ।।२१।।
भुङ्क्तेऽथ विषयांश्चैव विषयैर्न च युज्यते। ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मं सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ।।२२।।
व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुषः स्मृतः। पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परतः स्थितः ।।२३।।
गुणान्तरं तु ऐश्वर्ये सर्वतः सूक्ष्म उच्यते। ऐश्वर्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम्।
अपवर्गं ततो गच्छेत्सुसूक्ष्मं परमं पदम् ।।२४।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते योगैश्वर्यनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

तीनों लोकों के पदार्थ को योगी पा जाते हैं। प्राकाम्य के फलस्वरूप इच्छानुरूप विषय-भोग कर सकते हैं और कहीं भी उनके लिए रोक-टोक नहीं हो सकती। महिमा द्वारा एक स्थान में रहकर भी तीनों लोकों की सब वस्तुओं से संयुक्त हो सकते हैं ।।१३-१४।। ईशित्व के प्रभाव से योगी त्रैलोक्यगत सम्पूर्ण भूतों के सुख-दुःख विधान में समर्थ होते हैं ।।१५।। वशित्व के द्वारा सभी चराचर योगी के वश हो जाते हैं; लेकिन यह उनकी इच्छा के अधीन है ।।१६।। कामावसायिता के प्रभाव से योगी की इच्छा के अनुसार ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं और प्राणी भी वशीभूत हो जाते हैं परन्तु वह भी योगी की इच्छा के अधीन ही है ।।१७।। शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि योगी की इच्छा के अनुसार प्रवर्तित होते हैं और इच्छा न होने पर वे तिल भर भी इधर-उधर नहीं होते ।।१८।। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग, क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ नहीं होते। वे सभी अवस्था में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य-सम्पादन करते हैं ।।१९-२०।। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वर्ण, स्वर आदि उन्हें कुछ नहीं है ।।२१।। वे विषय-भोग करते हैं; किन्तु विषय में लिप्त नहीं होते। परम सूक्ष्म का ज्ञान होने से अपवर्ग होता है; क्योंकि अपवर्ग सूक्ष्म है ।।२२।। व्यापक-व्यापित्व और अपवर्ग के कारण ही वे पुरुष कहे जाते हैं। पुरुष सूक्ष्म भाव के ऐश्वर्य के चारों ओर अवस्थित हैं ।।२३।। ऐश्वर्यगत अन्य गुण सबकी अपेक्षा सूक्ष्म हैं। मानव अविनाशी उत्तम योग के प्रभाव से परम सूक्ष्म अपवर्ग नामक परम पद प्राप्त करते हैं ।।२४।।

श्रीवायुमहापुराण का योगैश्वर्य निरूपण नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।।१३।।

---

* न दृश्यतेऽयं श्लोकः ख. घ. पुस्तकयोः।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पाशुपतयोगनिरूपणम्

वायुरुवाच

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात्मर्म समाचरेत्। राजसं तामसं वाऽपि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ।।१।।
तथा सुकृतकर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते। तस्मात्स्थानात्पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ।।२।।
तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते। ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ।।३।।
परिश्रमस्तु यज्ञानां महताऽर्थेन वर्तते। भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम् ।।४।।
अथ वै ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः। न च स्याद्व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ।।५।।
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वरूपिणम्। विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम्
विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ।।६।।

गोभिर्मही संयतते पतत्रिणं महात्मानं परममतिं वरेण्यम्।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ।।७।।

अध्याय १४

पाशुपत योग निरूपण

वायु बोले–इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व ज्ञान से रहित प्राणी रागवश राजस और तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं और सुकृत करनेवाले स्वर्ग लाभ करते हैं। वे फल-भोग करने के उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है, इसलिए ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिए। उसी में परम सुख निहित है ।।१-३।। अत्यन्त परिश्रम और बहुव्यय करने से यज्ञ सम्पन्न होता है; किन्तु उससे भी मृत्यु का निराकरण नहीं होता है; इसीलिए मोक्ष ही परम सुख है। ध्यानसंयुक्त ब्रह्मयज्ञपरायण व्यक्ति सौ मन्वन्तरों तक प्रयत्न करने पर भी किसी के द्वारा (मृत्यु के द्वारा) सीमित नहीं होता है ।।४-५।। विश्वाख्य, विश्वरूपी, विश्वपादशिरोग्रीव, विश्वेश, विश्वभावन, विश्वगन्ध, विश्वमाल्य, विश्वाम्बरधर, प्रभु अपनी किरण से भूमण्डल का संयमन करनेवाले, नियत गतिमान्, परम गति, वरेण्य, महात्मा, कवि, अनुशासक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, निरिन्द्रिय, दिव्य पुरुष को योगी योग से देखते हैं न कि इन आँखों से। योगिगण योगबल से उन चेतनात्मक नित्य, निर्गुण, अलक्ष्य परम पुरुष के सगुण, स्वर्णवर्ण, सर्वव्यापी, शुचि और अचल प्रकाशमान् रूप का दर्शन करते हैं। वही एक अतीन्द्रिय सुसूक्ष्म भावनात्मक तेज प्रभाव से दीप्यमान् है, जिसको पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा नहीं हैं। वे चक्षुविहीन होकर भी देखते

योगेन पश्यन्ति च चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम्।
अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं सलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनं च ॥८॥
नित्यं सदा सर्वगतं तु शौचं पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलं प्रकाशम्।
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमानः अ (नो ह्य) पाणिपादोदरपार्श्वजिह्वः ॥९॥
अतीन्द्रियोऽद्यापि सुसूक्ष्म एकः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
नास्यास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्वं न च वेदवेद्यः ॥१०॥
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं सचेतनं सर्वगतं ससूक्ष्मम् ॥११॥
तमाहुर्मुनयः सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम्। प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥१२॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१३॥
युक्ता योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम्। पुरुषं सर्वभूतानां तस्माद्ध्याता न मुह्यति॥१४॥
(+भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम्। सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति) ॥१५॥
पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन्सर्वमूर्तिषु। पुरि शेते तथाऽभ्रे च तस्मात्पुरुष उच्यते॥१६॥
अथ चेल्लुप्तधर्मात्तु सविशेषैश्च कर्मभिः। ततस्तु ब्रह्मयोन्यां वै शुक्रशोणितसंयुतम्॥१७॥
स्त्रीपुमांस(पुंसयोः)प्रयोगेण जायते हि पुनः पुनः। ततस्तु गर्भकाले तु कललं नाम जायते॥१८॥

हैं, कर्णहीन होकर भी सुनते हैं। इनसे कुछ अज्ञात नहीं है; यद्यपि इन्हें बुद्धि नहीं है। ये सब-कुछ जानते हैं परन्तु इन्हें वेद भी नहीं जान पाते हैं। इसी सर्वगत, अतिसूक्ष्म, सचेतन महापुरुष को ही सर्वाग्रवर्ती परम पुरुष कहा जाता है ॥६-११॥ मुनियों ने इन्हीं को सम्पूर्ण लोकों और जीवों को प्रसव करनेवाली प्रकृति कहा है। योगी इन्हीं को ध्यान से देखते हैं। इनके पाणिपाद सभी जगह हैं, आँख, सिर, मुँह और कान भी सब जगह हैं एवं सभी को आवृत करके ये स्थित हैं ॥१२-१३॥ ध्यान योग द्वारा इस सर्वगत, सनातन, सर्वभूतेश परम पुरुष को प्रत्यक्ष करने पर ध्यान करनेवाला मोहग्रस्त नहीं होता है ॥१४॥ भूतात्मा, महात्मा, परमात्मा, सर्वात्मा और अव्यय परब्रह्म का ध्यान करने पर मोह नहीं होता है। वायु जिस तरह सब भूतों में विचरणशील है और उसको भी रूप में बाँध लेते हैं उसी प्रकार सब भूतों के हृदयाकाशरूपी पुर में शयन करने के कारण वह पुरुष कहलाता है ॥१५-१६॥

धर्महीन जीवगण विशेष प्रारब्ध कर्म के अनुसार वह ब्रह्म योनि में रजोवीर्यमय होकर माता-पिता के मिथुन कर्म द्वारा बार-बार उत्पन्न होते हैं। गर्भकाल में वे पहले कलल रूप में रहते हैं। फिर कुछ काल बाद वह कलल बुद्बुद हो जाता है। मिट्टी का लोंदा जिस तरह चाक पर घुमा-घुमाकर कुम्हार द्वारा दोनों हाथों से दबाकर गढ़ा जाता है और विभिन्न रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार वायु द्वारा प्रेरित होकर आत्मा भी अस्थियुक्त होकर रूपानुकूल मन प्राप्त

+ धनुश्चिह्नान्तर्गग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

कालेन कलनं (लं) चापि बुद्बुदश्च प्रजायते। मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रावर्तेन पीडितः।।१९।।
हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति। एवमात्मास्थिसंयुक्तो वायुना समुदीरितः।।२०।।
जायते मानुषस्तत्र यथा रूपं तथा मनः। वायुः संभवते तेषां वातात्संजायते जलम्।।२१।।
जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्धते। रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशच्छुक्रभागाश्चतुर्दश ।।२२।।
भागतोऽर्धपलं कृत्वा ततो गर्भे निषेव्यते। ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः।।२३।।
पितुः शरीरात्प्रत्यङ्गं रूपमस्योपजायते। ततोऽस्य मातुराहारात्पीतलीढप्रवेशितम्।।२४।।
नाभिः स्त्रोतःप्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम्। नव मासान्परिक्लृप्तः संवेष्टितशिरोधरः।।२५।।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्यायक्रमागतः। नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः।।२६।।
ततस्तु कर्मभिः पापैर्निरयं प्रतिपद्यते। असिपत्रवनं चैव शाल्मलीछेदभेदयोः ।।२७।।
तत्र निर्भर्त्सनं चैव तथा शोणितभोजनम्। एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः ।।२८।।
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्नाः स्वरूपमुपयान्ति वै। तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः ।।२९।।
एवं जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वयंकृतैः। प्राप्नुयात्कर्मभिः शेषं दुःखं वा यदि चेतरम् (त्) ।।३०।।
एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमृत्युनिवेशनम्। एकेनैव च भोक्तव्यं तस्मात्सुकृतमाचरेत् ।।३१।।
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति। वदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति ।।३२।।

कर मानव रूप में उत्पन्न होता है। वायु सब का संभव यानी आश्रय स्थान है। वायु से जल होता है, जल से प्राण और प्राण से वीर्य उत्पन्न होता है। तैंतीस भाग रज और चौदह भाग वीर्य करीब आधे पल के परिमाण में जब गर्भाशय में जाता है, तब गर्भ बनकर वह पंच वायु द्वारा आवृत हो जाता है ।।१७-२३।। पिता के शरीर के अनुरूप उसका रूप और प्रत्येक अंग उत्पन्न होते हैं एवं माता द्वारा खाये, पिये, चाटे गये द्रव्य रस के द्वारा–जो नाभिरन्ध्र से वहाँ तक पहुँचता है–देहधारियों का प्राण टिका रहता है। वह नौ मास तक निःसामर्थ्य–सा पैर से लेकर सिर तक स्नायु द्वारा क्रमहीन भाव से बँधा रहता है। इसी तरह नौ महीना रहकर वह अधोमुख होकर योनि छिद्र से उत्पन्न होता है ।।२४-२६।। फिर पाप कर्म के कारण वह नरक प्राप्त करता है। असिपत्रवन और शाल्मली नरक में उसका छेदन होता है, वह शोणित भोजन करता है, दुस्सह झिड़कियाँ पाता है और कुंभीपाक की यातना तो उसके लिए अत्यन्त कठिन और दुस्सह हो जाती है ।।२७-२८।। जिस प्रकार जल छिन्न–भिन्न होकर भी अपना रूप प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार छिन्न–भिन्न किये जाने पर भी जीवगण यातना स्थान में पीड़ा का अनुभव करते हैं। अपने कृत पापों द्वारा दुःखित होकर जीव कर्म के शेष हो जाने पर दुःख अथवा सुख प्राप्त करते हैं ।।२९-३०।। मृत्युपुर में अकेले ही जाना होता है और कर्मफल का भोग भी अकेले ही करना पड़ता है, इसलिए सुकृत कार्यों को ही करना चाहिए ।।३१।। यहाँ से प्रस्थान करने पर इस जीव का कोई साथ नहीं देता। केवल अपने द्वारा किया कर्म ही साथ जाता है ।।३२।। यममन्दिर में पापियों की देह

ते नित्यं यमविषये विभिन्नदेहाः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगैः।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमधर्मयातनाभिः ।।३३।।

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेव्यते। तत्प्रसह्य हरेत्पापं तस्मात्सुकृतमाचरेत् ।।३४।।
यादृग्जातानि पापानि पूर्वं कर्माणि देहिनः। संसारं तामसं तादृक्षड्विधं प्रतिपद्यते ।।३५।।
मानुष्यं पशुभावं च पशुभावान्मृगो भवेत्। मृगत्वात्पक्षिभावं तु तस्माच्चैव सरीसृपः ।।३६।।
सरीसृपत्वाद्गच्छेद्धि स्थावरत्वं न संशयः। स्थावरत्वं पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ।।३७।।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रैव परिकीर्तितः। इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तिके ।।३८।।
विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्तते। सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्तितः ।।३९।।
पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम्। ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः ।।४०।।
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः। मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्तस्य देहिनः ।।४१।।
ततस्तु परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति। संस्कारात्पूर्वधर्मस्य भावनायां प्रनो (णो) दितः ।।
मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समादधेत् ।।४२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

छिन्न-भिन्न हो जाती है। सर्वदा घोर यातना मिलती रहती है, जिससे वे 'हाय बाप' करते रहते हैं। अधर्म के परिणामस्वरूप बड़ी भारी यातना की वेदना सहते-सहते शरीर सूख जाता है ।।३३।। मन, वचन या कर्म से जो कुछ भी पापाचार किया गया है, वह पाप बलात् यातना स्थान में ले जाता है, इसलिए सत्कर्म ही करना चाहिए ।।३४।। देहधारी पहले जिस प्रकार का पापकर्म करता है, उसी प्रकार वह षड्विध तामस संसार में प्राप्त होता है ।।३५।। मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और स्थावर आदि क्रमशः निकृष्ट योनियों में जन्म प्राप्त कर पापी जीव फिर मनुष्यत्व प्राप्त करता है। कुम्हार के चक्के की तरह पापी जीव सदा घूमता रहता है। संसार में मनुष्य से लेकर स्थावर पर्यन्त की यही दशा है। ये तामस हैं और पापी जीव इन्हीं में घूमता रहता है। ब्रह्मा से लेकर पिशाचपर्यन्त सात्त्विक सृष्टि है। इनका स्थान स्वर्ग में है। ब्राह्म सृष्टि में केवल सत्त्व है और स्थावर में केवल तम है ।।३६-४०।। चतुर्दशविध सृष्टिस्थान के मध्य में केवल रज ही व्याप्त है। देहधारी सदा कष्ट से पीड़ित रहते हैं, जिससे उनका हृदय छिन्न-भिन्न हुआ रहता है, तब वे परब्रह्म का स्मरण किस प्रकार कर सकते हैं? पूर्व धर्म की भावना और संस्कार से प्रेरित होकर जीव मानव शरीर प्राप्त करता है; अतः वह नित्य परब्रह्म का ध्यान किया करे ।।४१-४२।।

श्रीवायुमहापुराण का पाशुपतयोगनिरूपण नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।।१४।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पाशुपतयोगनिरूपणम्

वायुरुवाच

चतुर्दशविधं ह्येतद्बुद्ध्वा संसारमण्डलम्। तथा समारभेत्कर्म संसारभयपीडितः ।।१।।
ततः स्मरति संसारं चक्रेण परिवर्तितः। तस्मात्तु सततं मुक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः ।।२।।
तथा समारभेद्योगं यथाऽऽत्मानं स पश्यति। एष आद्यः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः ।।३।।
विवृद्धो ह्येष भूतानां न संभेदश्च शाश्वतः। तदेनं सेतुमात्मानमग्निं वै विश्वतोमुखम् ।।४।।
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत विधानवित्। हुत्वाऽष्टावाहुतीः सम्यक्शुचिस्तद्गतमानसः ।।५।।
वैश्वानरं हृदिस्थं तु यथावदनुपूर्वशः। अपः पूर्वं सकृत्प्राश्य तूष्णीं भूत्वा उपासते ।।६।।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता। अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ।।७।।
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी। स्वाहाकारैः परे हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ।।८।।
अपः पुनः सकृत्प्राश्य त्र्याचम्य हृदयं स्पृशेत्। ॐ प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः ।।९।।
स रुद्रो ह्यात्मनः प्राणा एवमाप्याययेत्स्वयम्। त्वं देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्वं चतुरो वृषा ।।१०।।

अध्याय १५

पाशुपतयोग निरूपण

वायु बोले–प्राणी चौदह प्रकार के संसार–मंडल को जानकर संसार के भय से डरता हुआ सांसारिक कार्यों का सम्पादन करे। कालचक्र से परिवर्तित होकर ही वह संसार का स्मरण करता है यानी संसार में लिप्त होता है। इसलिए ध्यान तत्पर होकर सदा योगाराधन करना युक्त है। ऐसे योग का आरम्भ करे, जिससे कि आत्मदर्शन प्राप्त हो। यही आत्मा आद्य और परम ज्योति है एवं संसार–सागर से पार जाने के लिए उत्तम पुल है ।।१–३।। आत्मा के विवृद्ध यानी प्रकाशमान होने से जीवों का शाश्वत संभेद यानी सर्वदा का आवागमन रुक जाता है। इसलिए विधि को जाननेवाले योगी सेतुस्वरूप, विश्वतोमुख, अग्निरूप और सब भूतों के हृदय में रहनेवाली आत्मा की उपासना करें। शुद्ध होकर और आत्मा में मन लगाकर योगी उस हृदयस्थ अग्नि में यथाविधि आठ आहुति का हवन कर एक बार जल से आचमन कर चुपचाप उपासना करे। उसकी पहली आहुति प्राण के लिए, दूसरी अपान के लिए, तीसरी समान के लिए, चौथी उदान के लिए, पाँचवीं व्यान के लिए है। सब के अन्त में स्वाहा भी कहना चाहिए। इसके बाद शेष अन्न का यथेच्छ भोजन करे ।।४–८।। एक बार जल पिये, तीन बार आचमन करे और हृदय का भी स्पर्श करे। मन्त्र यह है "आत्मा ही प्राण की ग्रन्थि है और सर्वसंहारी रुद्र ही आत्मा हैं।।९।। वे ही रुद्र हमारे प्राण को स्वयं तृप्त करें। आप देवों में ज्येष्ठ हैं, उग्र हैं, चतुर वृषवाहन हैं। आप हमारी मृत्यु के निवारक हों। यह हवन की गयी हवि कल्याणकारक हो।" इस प्रकार हृदय का स्पर्श करे। दाहिने पैर के अँगूठे को दाहिने हाथ से छुआ दे ।।१०–११।। फिर हाथ से नाभि को छुए और आचमन

मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्यं भद्रमेतद्धुतं हविः । एवं हृदयमालभ्य पादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे ।।११।।
विश्राव्य दक्षिणं पाणिं नाभिं वै पाणिना स्पृशेत् । ततःपुनरुपस्पृश्य चाऽऽत्मानमभिसंस्पृशेत् ।।१२।।
*अक्षिणी नासिका श्रोत्रं हृदयं शिर एव च । द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ।।१३।।
तयोः प्राणोऽन्तरात्माऽस्य घाह्योऽपानोऽत उच्यते । अन्नं प्राणस्तथाऽपानं मृत्युर्जीवितमेव च ।।१४।।
अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं प्रजानां प्रसवस्तथा । अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।।१५।।
वर्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते । तदेवाग्नौ हुतं ह्यन्नं भुञ्जते देवदानवाः ।।१६।।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि पिशाचाश्चान्नमेव हि ।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

अथ षोडशोऽध्यायः

शौचाचारलक्षणनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् । यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाऽऽप्नुयात् ।।१।।

करके आत्मा का स्पर्श करे। दोनों आँख, दोनों कान, नाक, हृदय और सिर का भी स्पर्श करे। प्राण और अपान दोनों ही आत्मा कहे गये हैं ।।१२-१३।। उनमें प्राण अन्तरात्मा है और अपान बहिरात्मा। अन्न ही प्राण और अपान है और अन्नाभाव ही जीवों के लिए मृत्यु है। अन्न ही ब्रह्म और प्रजाओं का सृष्टिमूल है। अन्न से ही भूतसमूह उत्पन्न होते हैं और अन्न द्वारा ही उनका पालन होता है। सकल जीव अन्न से ही वृद्धि पाते हैं; इसलिए यह अन्न कहा जाता है। देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाचादि अग्नि में हुत अन्न को ही खाते हैं ।।१४-१६।।

श्रीवायुमहापुराण का पाशुपतयोगनिरूपण नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।१५।।

अध्याय १६

शौचाचार-लक्षण निरूपण

वायु बोले-इसके आगे अब हम शौचाचार का लक्षण कहते हैं, जिसके अनुष्ठान से जीव शुद्धात्मा होकर स्वर्ग प्राप्त करता है ।।१।। शुद्धता की अभिलाषा करनेवाले मुनियों के लिए जल सबसे उत्तम है। जो मुनि इसमें आलस्य

---

* इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः।

उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम्। यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यान्स मुनिर्नावसीदति ।।२।।
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाऽऽहुर्विषामृते। अवमानं विषं तत्र मानस्त्वमृतमुच्यते ।।३।।
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात्स मुनिर्नावसीदति। गुरोः प्रियहिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ।।४।।
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्। प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ।।५।।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत्पृथिवीमिमाम्। चक्षुष्पूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।।६।।
सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम्। आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ।।७।।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा। वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।।८।।
विचरेन्मतिमान्योगी न तु तेष्वेव नित्यशः। यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च ।।९।।
युक्तस्तथाऽऽचरेद्भैक्षं सतां धर्ममदूषयन्। भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ।।१०।।
श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते। अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ।।११।।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु। अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ।।१२।।
भैक्षचर्या त्रिवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते। भैक्षं यवागुं तक्रं वा पयो यावकमेव च ।।१३।।
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं शक्तितोऽपि वा। इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्धना ।।१४।।

नहीं दिखाते हैं, उन्हें कभी भी विषाद नहीं होता है। मान और अपमान दोनों ही विष और अमृत कहे गये हैं। उनमें अपमान विष है और मान अमृत ।।२-३।। इसमें भी जो मुनि आलस्य नहीं दिखाते हैं, उन्हें कभी भी विषाद नहीं होता है। गुरु के प्रियतर कार्य को करनेवाला मुनि सर्वदा सुखपूर्वक रहता है ।।४।। यम और नियम का जो सदा पालन करते हैं और गुरु की आज्ञा लेकर उत्तम ज्ञान का अनुगमन करते हैं, वे धर्मानुकूल कार्य को करते हुए पृथ्वी पर विचरण करते हैं। आँख से देखकर राह में चलना चाहिए, कपड़े से छानकर जल पीना चाहिए और सत्य से शुद्ध कर वचनों का उच्चारण करना चाहिए। यही धर्मशास्त्र की आज्ञा है। योगी किसी भी श्राद्ध यज्ञ में आतिथ्य स्वीकार न करे और अहिंसक होकर रहे, यही शास्त्रीय सिद्धान्त है ।।५-७$\frac{१}{२}$।। रसोई की आग जब निर्धूम होकर ठंडी पड़ जाय, घर के सभी लोग खा लिये हों तब योगी उस घर में भिक्षा के लिए जाय; लेकिन एक ही घर नित्य न जाय। सज्जनों के धर्म की रक्षा करते हुए योगी इस प्रकार भिक्षा करे, जिससे कि उनके अपमान और पराभव का विचार न रहे। आचारशील गृहस्थों के यहाँ भिक्षा माँगना योगियों के लिए परम श्रेष्ठ वृत्ति कही गयी है। नहीं तो शालीन, श्रद्धावान्, शान्त, महात्मा, श्रोत्रिय गृहस्थों के यहाँ भिक्षाचरण करे। इसके अतिरिक्त अदुष्ट और अपतित गृहस्थों के घर भिक्षाचरण किया जा सकता है; किन्तु हीन वर्णों के यहाँ भिक्षा माँगना योगियों के लिए निकृष्ट कहा गया है ।।८-१२$\frac{१}{२}$।। भिक्षावस्तु में यवागू, तक्र, दूध, अपक्व, फल-मूल, पिण्याक अथवा शक्त्यनुसार जो कुछ भी दिया गया हो वह योगियों के लिए सिद्धिवर्द्धक है। योगियों के लिए वही आहार श्रेष्ठ है, जो भिक्षा द्वारा प्राप्त होता है। जो योगी प्रत्येक मास कुश के अग्र भाग से जलविन्दु का पान

आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्षमिति स्मृतम्। अब्बिन्दु यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।।१५।।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते। योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं स्मृतम् ।।१६।।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत्। अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च ।।१७।।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता। अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।।१८।।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः। बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्धः कर्मभिरेव च ।।१९।।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते। प्राप्यते वाऽचिरादेवाङ्कुशेनेव निवारितः ।।२०।।
एवं ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः। विमुक्तबन्धः शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ।।२१।।

वेदैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्यं ज्ञानिनामाहुरग्र्यम्।
ज्ञानाद्ध्याने सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ।।२२।।
दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेष्वथाऽऽर्जवम्।
अतीन्द्रियज्ञानमिदं तथाऽऽर्जवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।।२३।।
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवाऽऽत्मरतिर्जितेन्द्रियः।
समाप्नुयुर्योगमिमं महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ।।२४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते शौचाचारलक्षणनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

करते हैं और जो न्यायपूर्वक भिक्षाचरण करते हैं उनमें पहले से पीछेवाले श्रेष्ठ हैं ।।१३-१५$\frac{1}{2}$।। सब योगियों के लिए चान्द्रायण व्रत श्रेष्ठ कहा गया है। अतएव शक्ति के अनुसार योगी एक, दो, तीन अथवा चार चान्द्रायण व्रत करे। चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अलोभ और त्याग योगियों के व्रत हैं। अहिंसा, तत्त्वजिज्ञासा, अक्रोध, गुरु-शुश्रूषा, शौच, आहार में लघुता और नित्य स्वाध्याय योगियों के लिए नियम कहे गये हैं ।।१६-१८$\frac{1}{2}$।। जिस प्रकार जंगली हाथी अंकुशाघात से शान्त होकर शीघ्र ही मनुष्यों के वशीभूत हो जाता है उसी प्रकार कर्मबीजोत्पन्न गुणमय देह यानी कर्मबद्ध जीव शुद्ध ज्ञान-योग में दग्ध बीज होकर निष्पाप और शान्त हो जाता है। कर्म बन्धन से मुक्त होने पर वही जीव मुक्त पदवी को प्राप्त करता है ।।१९-२१।। वेद की ही तरह सम्पूर्ण यज्ञक्रियाएँ हैं और यज्ञों में जप ही ज्ञानियों द्वारा श्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान से सङ्ग-रागरहित ध्यान श्रेष्ठ है। इस ध्यान को प्राप्त करने से ही नित्य वस्तु की उपलब्धि होती है। शुद्धसत्त्व ज्ञानी कहते हैं कि शम, दम, सत्य, निष्पापत्व, मौन, सम्पूर्ण भूतों पर दया और सरलता ही अतीन्द्रिय ज्ञान को उत्पन्न करनेवाली है। जो समाधि तत्पर, अप्रमादी, ब्रह्मनिष्ठ, शुचि, जितेन्द्रिय और आत्मरति करनेवाले साधु हैं, वे ही इस योग को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार अनिन्दित और निर्मल आशयवाले महामति महर्षिगण ने इस योग को प्राप्त किया है ।।२२-२४।।

श्री वायुमहापुराण में शौचाचार-लक्षण-निरूपण नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।१६।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

परमाश्रमविधिकथनम्

वायुरुवाच

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम्। अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ।।१।।
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत्पृथिवीमिमाम्। सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ।।२।।
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्। अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ।।३।।
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि ध्याने ह्येव मनो दधेत् ।।४।।
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा। नदीनां पुलिने चैव नित्यं युक्तः सदा भवेत् ।।५।।
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः। यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी व्यवस्थितः ।।६।।
अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ।।७।।
इदं शरीरं प्रविमुच्य शास्त्रतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ।।८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते परमाश्रमविधिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

अध्याय १७

परमाश्रम-विधि कथन

वायु बोले-संवत्सर के (आयु) अन्तिम भाग में गुरु की आज्ञा से उत्तम ज्ञान प्राप्त कर तीनों आश्रमों का परित्याग कर चौथे आश्रम में प्रवेश करे और ब्रह्म-प्राप्ति में सहायक सारभूत ज्ञान की उपासना करता हुआ पृथ्वी में विचरण करे ।।१-२।। जो तृषित होकर यह जानने की चेष्टा करता है कि यह ज्ञान है और यह ज्ञेय है, वह हजार कल्पों में भी ज्ञेय को प्राप्त नहीं करता है। सङ्गहीन होकर, क्रोध को जीतकर, थोड़ा भोजन कर, जितेन्द्रिय बुद्धि योग से समस्त इन्द्रिय द्वार को बन्दकर ध्यान में मन का निवेश करे।।३-४।। ऊपर से खुले हुए शून्य स्थान में, गुफा में, जंगल में और नदियों की बालुकाराशि पर नियत रूप से योगानुष्ठान करे। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड स्वरूप तीन दण्ड हैं। जिनके पास ये तीनों दण्ड हैं, वे त्रिदण्डी कहलाते हैं। ध्याननिष्ठ जितेन्द्रिय मनुष्य शास्त्रानुकूल विधि का पालन और शुभाशुभ कर्मों का परित्याग कर अगर शरीर छोड़ते हैं तो फिर उनका जन्म-मरण नहीं होता है।।५-८।।

श्री वायुमहापुराण में परमाश्रम-विधि कथन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।।१७।।

अथाष्टादशोऽध्यायः

यतिप्रायश्चित्तविधिकथनम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम्। प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन यान्यकामकृतानि तु ।।१।।
अथ कामकृतेऽप्याहुः सूक्ष्मधर्मविदो जनाः। पापं च त्रिविधं प्रोक्तं वाङ्मनः कायसंभवम् ।।२।।
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं बध्यते जगत्। न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीति परा श्रुतिः ।।३।।
क्षणमेवं प्रयोज्यं तु आयुषस्तु तु विधारणात्। भवेद्धीरोऽप्रमत्तस्तु योगो हि परमं बलम् ।।४।।
न हि योगात्परं किंचिन्नराणामिह दृश्यते। तस्माद्योगं प्रशंसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिणः ।।५।।
अविद्यां विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम्। दृष्ट्वा परापरं धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम् ।।६।।
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च। एकैकापक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।।७।।
उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्। प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सांतपनं तथा ।।८।।
ततश्चरति निर्देशं कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः। पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ।।९।।
न म (न) र्मयुक्तं वचनं हिनस्तीति मनीषिणः। तथाऽपि च न कर्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ।।१०।।

अध्याय १८

यतियों का प्रायश्चित्त-विधान कथन

वायु बोले–इसके बाद अब मैं यतियों के प्रायश्चित्त को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ। सूक्ष्म धर्म जाननेवालों ने कामकृत और अकामकृत दोनों ही पापों के लिए प्रायश्चित्त कहा है। मन, वचन और शरीर से उत्पन्न होनेवाले पाप तीन प्रकार के हैं ।।१-२।। इसी त्रिविध पाप से यह संसार दिन-रात सदा बँधा रहता है। परा (उच्च) श्रुति का ऐसा कथन है कि कर्मसमूह या कर्मबद्ध संसार सत्य नहीं है। जीवनकाल में ये पाप क्षण भर के लिए ही आते हैं, अतः आयुष्काल में जीवगणों को सर्वदा धीर और सावधान होना चाहिए; क्योंकि योग ही परम बल है ।।३-४।। मनुष्यों के लिए योग से उत्कृष्ट दूसरा कुछ नहीं है, इसलिए धर्मिष्ठ विद्वानों ने योग की प्रशंसा की है। धीर व्यक्ति विद्या की सहायता से अविद्या को पारकर (दूर कर) अनुत्तम ऐश्वर्य का लाभ करते हुए पर-अपर का प्रत्यक्ष करते हैं और परम पद को प्राप्त करते हैं। संन्यासियों के लिए जो व्रत निर्धारित हैं, उनमें एक का भी त्याग करने से प्रायश्चित्त करना पड़ता है ।।५-७।। संन्यासी अगर कामवश स्त्री-प्रसङ्ग कर ले, तो प्रायश्चित्त करना होगा। ऐसी दशा में प्राणायाम के साथ सान्तपन करे और उक्त कृच्छ्र व्रताचरण के अनन्तर वह अपने आश्रम में प्रवेश करे एवं सावधान होकर भिक्षा करे ।।८-९।। क्रीड़ा-परिहास के समय असत्य बोलने से दोष नहीं होता है; किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा प्रसङ्ग ही भयङ्कर होता है ।।१०।।

अहोरात्राधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः। हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।।११।।
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः। स तस्य हरति प्राणान्यो यस्य हरते धनम् ।।१२।।
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तौ व्रताच्च्युतः। भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।१३।।
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः। ततः संवत्सरस्यान्ते भूयः प्रक्षीणकल्मषः ।।१४।।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः। अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।।१५।।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून्मृगान्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ।।१६।।
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात्स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि। तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।।१७।।
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते। (*त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ।।१८।।
रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नातो द्वादशैव तु धारणाः। प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः ।।१९।।
एकान्नं मधु मांसं वा ह्यामश्राद्धं तथैव च। अभोज्यानि यतीनां च प्रत्यक्षलवणानि च ।।२०।।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते)। प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते ।।२१।।
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसंभवम्। सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ।।२२।।

दिन–रात में अधिक–से–अधिक एकाध अक्षर परिहास में कहा गया असत्य अधर्म नहीं है ऐसा श्रुति कहती है; किन्तु देवता और मुनियों ने हिंसा को सबसे बड़ा पाप कहा है, यही वेद भी कहते हैं।।११।। सारांश यह कि हिंसा सब पापों से बढ़कर है। धन लोगों के बहिर्गत प्राण हैं; इसलिए जो धन का हरण करता है, वह उसके प्राण का हरण करता है। इन अपकर्मों को करनेवाला दुष्टात्मा भिक्षुक व्रत से च्युत हो जाता है और क्लेश प्राप्त करता है। ऐसा भिक्षुक शास्त्रविधि से संवत्सर पर्यन्त चान्द्रायण व्रत करे, यही श्रुति कहती है। संवत्सर के अन्त में निष्पाप होकर भी वह व्यथित चित्त से सावधान होकर भिक्षाचरण करे ।।१२–१४$\frac{१}{२}$।। मन, वचन और कर्म से सब जीवों के लिए अहिंसा धारण करनी चाहिए। अगर बिना किसी अभिलाषा के भी भिक्षु मृगादि पशुओं की हिंसा कर डाले, तो उसे कठिन–से–कठिन चान्द्रायण करना चाहिए ।।१५–१६।। इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण यदि स्त्री दर्शन से ही यति का वीर्यपात हो जाय तो उसे षोडश प्राणायाम करना चाहिए ।।१७।। अगर ब्राह्मण का दिन में वीर्यपात हो जाय, तो इसके लिए प्रायश्चित्त यह है कि वह तीन रात उपवास कर सौ प्राणायाम करे, रात में वीर्यपात करने से स्नान के बाद बारह बार प्राणायाम करे। प्राणायाम के द्वारा ब्राह्मण शुद्ध और निष्पाप हो जाता है ।।१८–१९।। बिना किसी दूसरी वस्तु को मिलाये कोई एक अन्न, मधु, मांस, आम श्राद्ध और अधिक नमक खाना यतियों के लिए वर्जित है ।।२०।। इनमें एक का भी अगर यति सेवन कर ले, तो उसे प्रायश्चित्त करना होगा। कृच्छ्र प्राजापत्य के द्वारा वह पाप से मुक्त होगा। मन, वचन और शरीर के द्वारा जो कुछ पाप हो जाय, उसके प्रायश्चित्त के लिए सज्जनों से निश्चय करे और वे जो कहें, वही करे। विशुद्ध बुद्धि, मिट्टी के रोड़े

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु चरन्समाहितः।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते ।।२३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते यतिप्रायश्चित्तविधिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अरिष्टनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत। येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यति चाऽत्मनः ।।१।।
अरुन्धती ध्रुवं चैव सोमच्छायां महापथम्। यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरः संवत्सरात्परम् ।।२।।
अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तं च पावकम्। यः पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ।।३।।
वमेन्मूत्रं करीषं वा सुवर्णं रजतं तथा। प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दश मासान्स जीवति ।।४।।
अग्रतः पृष्ठतो वाऽपि खण्डं यस्य पदं भवेत्। पांशुले कर्दमे वाऽपि सप्त मासान्स जीवति ।।५।।

और सोने को समान समझनेवाला एवं सब जीवों पर दया करनेवाला व्यक्ति निश्चल, अविनाशी और सर्वकालीन उस स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ से जाकर वह फिर कभी नहीं लौटता ।।२१-२३।।

श्रीवायुमहापुराण का यति प्रायश्चित्त-विधान कथन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१८।।

अध्याय १९

अरिष्ट-निरूपण

वायु बोले—इसके आगे अब हम अरिष्टों को कहते हैं, उसको सुनिये। जिस ज्ञान-विशेष द्वारा योगी अपनी मृत्यु को भी जान जाते हैं ।।१।। जो व्यक्ति अरुन्धती, ध्रुव, सोम, छाया और महापथ को नहीं देखता है, वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीता ।।२।। जो सूर्य को बिना किरणवाला और अग्नि को किरण सम्पन्न देखता है, वह ग्यारह महीने से अधिक नहीं जीता है ।।३।। जो स्वप्न में या प्रत्यक्ष ही मल-मूत्र या सोना-चाँदी वमन करे, वह दस महीने से अधिक नहीं जीता है ।।४।। धूल या कीचड़ में जिसका पदचिह्न आगे या पीछे से खण्डित मालूम पड़े वह सात महीने से अधिक नहीं जीता है ।।५।। जिसके सिर पर कौआ, कबूतर, गीध या कोई भी मांसभोजी पक्षी बैठ जाय, वह छह महीने से

काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्धनि । क्रव्यादो वा खगः कश्चित्षण्मासान्नातिवर्तते ।।६।।
बध्येद्वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुनः । छायां वा विकृतां पश्येच्चतुः पञ्च स जीवति ।।७।।
अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमाश्रिताम् । उदकेन्द्रधनुर्वाऽपि त्रयो द्वौ वा स जीवति ।।८।।
अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति । अशिरस्कं तथाऽऽत्मानं मासादूर्ध्वं न जीवति ।।९।।
शवगन्धि भवेद्गात्रं वशा(सा)गन्धि ह्यथापि वा । मृत्युर्ह्युपस्थितस्तस्य अर्धमासं स जीवति ।।१०।।
(*यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादं वाऽवशुष्यति । धूमो(मं) वा मस्तकान्नश्ये(त्पश्ये) द्दशाहं न स जीवति) ।।११।।
संभिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति । अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।१२।।
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाऽऽशां तु दक्षिणाम् । गायन्नथ व्रजेत्स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ।।१३।।
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाऽथ चाङ्गना । यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ।।१४।।
छिद्रं वासश्च कृष्णं च स्वप्ने यो बिभृयान्नरः । भग्नं वा श्रवणं दृष्टा विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ।।१५।।
आ मस्तंकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे । दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ।।१६।।
भस्माङ्गारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजंगमान् । पश्येद्यो दशरात्रं तु न स जीवति तादृशः ।।१७।।
कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने सद्य एव न जीवति ।।१८।।

अधिक नहीं जीता है ।।६।। जिसके ऊपर दस-बीस कौए मँडराते रहें, जो सहसा धूलवर्षण से धूसरित हो जाय और जो अपनी छाया को विकृत देखे वह चार-पाँच महीने से अधिक नहीं जीता है ।।७।। दक्षिण दिशा में बिना मेघ के ही बिजली देखे और जल में इन्द्रधनुष देखे, तो वह दो-तीन महीनों से ज्यादा नहीं जीता है ।।८।। जल में या दर्पण में जो अपने को नहीं देखता है या अपने प्रतिबिम्ब को बिना सिर के देखता है, वह एक महीने से अधिक नहीं जीता है ।।९।। जिसके शरीर से मुर्दे या चर्बी की तरह गन्ध निकले वह पन्द्रह दिन से अधिक नहीं जीता है ।।१०।। स्नान करते जिसके दोनों पैर और हृदय सूख जायँ एवं सिर से धुआँ निकले, वह दस दिनों तक जीता है ।।११।। प्रकुपित वायु जिसके मर्म स्थान में पीड़ा पहुँचाये और जल को छूने पर भी जिसे तृप्ति नहीं हो, उसकी मृत्यु उपस्थित समझिये ।।१२।। जो स्वप्न में वानर-भालुओं से युक्त रथ पर बैठकर गाता हुआ दक्षिण की ओर जाता है, वह भी नहीं जीता है ।।१३।। काले कपड़े को पहनकर अगर श्यामा स्त्री गाती हुई किसी को दक्षिण दिशा की ओर ले जाय, तो वह नहीं जीता है ।।१४।। अगर स्वप्न में देखे कि हम फटा हुआ काला कपड़ा पहने हैं या हमारा कान दो टूक हो गया है तो वह नहीं जीता है। जो स्वप्न में अपने सिर तक दलदल में फँसा हुआ देखता है वह शीघ्र ही मर जाता है ।।१५-१६।। भस्म, आग, केश, सूखी नदी और साँप को स्वप्न में देखनेवाला मनुष्य दस रात से अधिक नहीं जीता है ।।१७।। काला-कलूटा विकराल पुरुष शस्त्रों को तानकर अगर पत्थर से स्वप्न में चोट पहुँचावे तो तुरन्त मृत्यु हो जाती है ।।१८।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा। क्रोशन्ती संमुखाऽभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः ।।१९।।
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम्। जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत् ।।२०।।
भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा। दीपगन्धं च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ।।२१।।
रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम्। परनेत्रेषु चाऽऽत्मानं न पश्येन्न स जीवति ।।२२।।
नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः। नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ।।२३।।
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्काभासं च वै मुखम्। गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।२४।।
मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन्नृत्यंश्च यो नरः। याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ।।२५।।
यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसंनिभाः। स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।२६।।
उष्ट्रा वा रासभा वाऽपि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः। यस्य सोऽपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ।।२७।।
द्वे चात्र परमे रिष्टे एतद्रूपं परं भवेत्। घोषं न शृणुयात्कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ।।२८।।
श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्ने द्वारं चास्य न विद्यते। न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ।।२९।।

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना।
मुखस्य चोष्मा शुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ।।३०।।

सूर्योदय या संध्याकाल में जिसके आगे गीदड़ हुआँ-हुआँ करता हुआ आवे तो उनकी आयु बीती हुई समझिये ।।१९।। स्नान करते ही जिसके हृदय में पीड़ा हो जाय और दाँत खटखटाने लगे, उसकी आयु भी बीती हुई कहिये ।।२०।। दिन और रात में भी जो जोर-जोर से साँस ले और दीप निर्वाण की गन्ध को नहीं समझे, उसकी भी मृत्यु उपस्थित समझिये ।।२१।। रात में इन्द्रधनुष को देखनेवाला, दिन में नक्षत्रमण्डल को देखनेवाला और अपना प्रतिबिम्ब दूसरे की आँखों में देख मनुष्य अधिक दिन नहीं जीता है ।।२२।। जिसकी एक आँख से ही सदा आँसू आता रहे, दोनों कान स्थानभ्रष्ट हो जायँ, और नाक टेढ़ी हो जाय, वह भी आयु क्षीण कहलाता है ।।२३।। जिसकी जीभ खुरखुरी और काली हो जाय, मुँह पर कीचड़ की आभा मालूम पड़े और गण्ड स्थान चिपटे होकर लाल दिखायी पड़ने लगें उसकी मृत्यु उपस्थित समझिये ।।२४।। स्वप्न में जो व्यक्ति खुला केश, हँसता हुआ और गाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर जाता है उसके जीवन का भी अन्त समझिये ।।२५।। श्वेत सरसों की तरह जिसे बार-बार पसीना निकले, उसकी भी मृत्यु उपस्थित समझिये ।।२६।। ऊँट या गधे जुते हुए रथ पर जो स्वप्न में दक्षिण दिशा जाता है, वह भी नहीं जीता है ।।२७।। जो कान से शब्द नहीं सुनता है और जिसकी आँखें पथरा जाती हैं उनकी मृत्यु आसन्न समझिये; क्योंकि ये दोनों अरिष्ट चरमकोटि के हैं ।।२८।। स्वप्न में जो गड्ढे में गिर जाय और निकलने का रास्ता नहीं पावे और उस गड्ढे से निकले ही नहीं, उसके जीवन का भी अन्त समझिये ।।२९।। जिसकी दृष्टि ऊर्ध्वगत, रक्तवर्ण और कँवल रहे, मुँह से बड़ी गर्मी निकले, नाभि गहरी हो जाय और पेशाब बहुत गर्म हो, उसकी भी अवस्था विषम समझिये ।।३०।। दिवा या रात्रिकालीन स्वप्न में अगर कोई आघात करता

दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं योऽभिहन्यते । तं पश्येदथ हन्तारं स हतस्तु न जीवति ।।३१।।
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः । स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदन्तं तस्य जीवितम् ।।३२।।
यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः । रक्तं कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।३३।।
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन्काल उपागते । त्यक्त्वा भयविषादं च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः ।।३४।।
प्राची वा यदि वोदीची दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः । समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्जिते ।।३५।।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च । स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्वा (त्य) महेश्वरम् ।।३६।।
सम (मं) कायशिरोग्रीवं धारयेन्नावलोकयेत् । यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।।३७।।
प्रागुदक्प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत यागवित् । (+कामं वितर्कं प्रीतिं च सुखदुःखे उभे य (त) था ।।३८।।
निगृह्य मनसा सर्वं शुक्लध्यानमनुस्मरेत्) । प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषोः स्पर्शने तथा ।।३९।।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् । कालधर्मं च विज्ञाय समूहं चैव सर्वशः ।।४०।।
द्वादशाध्यात्म इत्येवं योगधारणमुच्यते । शतमष्टशतं वाऽपि धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।४१।।
न तस्य धारणायोगाद्वायुः सर्वं प्रवर्तते । ततस्त्वापूरयेद्देहमोंकारेण समाहितः ।।४२।।
अथोंकारमयो योगी न चरेत्त्वक्षरी भवेत् ।।४३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽरिष्टनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

हो और नींद टूटने पर उसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष देख ले, तो स्वप्न में चोट खाया हुआ व्यक्ति नहीं बचे ।।३१।। स्वप्न में जो अग्नि-प्रवेश करता है और स्वप्न ही में इस बात को भूल जाता है, उसका भी जीवन शेष समझिये ।।३२।। अगर कोई आदमी श्वेत वस्त्र को स्वप्न में लाल या काला देखता है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है ।।३३।। बुद्धिमान् मनुष्य अरिष्ट की सूचना पाकर और उस काल को उपस्थित समझकर भय-विषाद को छोड़ दे और योगानुष्ठान का उद्योग करे ।।३४।। पूर्व या उत्तर दिशा में जाकर शुद्धभाव से सम, स्थिरतर, जनवर्जित और पवित्र स्थान में उत्तर या पूर्व मुख होकर स्वस्ति का आसन लगाकर स्वस्थ भाव से बैठ जाय और आचमन करे, महेश्वर को प्रणाम करे ।।३५-३६।। शरीर, सिर और ग्रीवा को सीधा कर धारणा का अवलम्बन करे, किसी भी ओर न देखे। निर्वात स्थान के दीये की तरह स्थिरता धारण करे ।।३७।। पूर्वोत्तर दिशा के निम्न भाग में योगी योगाराधन करे। काम, वितर्क, प्रीति, सुख-दुःख आदि भावों को मन से हटाकर सत्त्वगुण का ध्यान करे ।।३८$\frac{1}{2}$।। प्राण, चक्षु, त्वक्, कर्ण, मन, बुद्धि, वक्षःस्थल और मस्तक में योगी धारणा का अवलम्बन करे। कालधर्म को समझकर और अरिष्टादि समूह का समन्वय करके योगी बारह या एक सौ आठ धारणा को मस्तक में धारण करे ।।३९-४१।। इस प्रकार धारा के द्वारा वायु-वृत्ति को निरुद्ध करके एकाग्र मन से ओंकार द्वारा सम्पूर्ण देह को पूर्ण कर दे। ऐसा करने से योगी ओंकारमय हो जाता है, उस अविनाशी योगी का नाश नहीं होता और वह अमर हो जाता है ।।४२-४३।।

श्रीवायुमहापुराण का अरिष्ट-निरूपण नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१९।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

अथ विंशोऽध्यायः

ओंकारप्राप्तिलक्षणनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओंकारप्राप्तिलक्षणम् । एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यञ्जनं चात्र सस्वरम् ।।१।।
प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता । तृतीयां निर्गुणां विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ।।२।।
ग(गा)न्धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंभवा । पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ।।३।।
तथा प्रयुक्तमोंकारं प्रति निर्वाति मूर्धनि । तथोंकारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ।।४।।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।५।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म गुहायां निहितं पदम् । ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ।।६।।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यूजंषि च । मात्राश्चास्य चतस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।।७।।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत् । आकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरितः स्मृतः ।।८।।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इतिसंज्ञितः । अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुव उच्यते ।।९।।
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकश्च विधीयते । ओंकारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् ।।१०।।

अध्याय २०

ओंकार-प्राप्ति के लक्षण का निरूपण

वायु बोले–इसके बाद अब हम ओंकार-प्राप्ति के लक्षण कहते हैं। यह ओंकार तीन मात्राओं से युक्त है और इसका व्यञ्जन स्वर समन्वित है ।।१।। इसकी पहली मात्रा को वैद्युती, दूसरी को तामसी और तीसरी अक्षरगामिनी मात्रा को निर्गुण जानना चाहिए। सिर में चींटी के समान स्पर्शवाली गान्धार स्वर से उत्पन्न गान्धर्वी मात्रा भी लक्षित होती है। इन मात्राओं से युक्त ओंकार जब मस्तक में लय प्राप्त करता है, तब योगी ओंकारमय हो जाता है और अक्षरत्व लाभ करता है ।।२-४।। ओंकार धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। सावधान होकर लक्ष्य-भेद करना चाहिए। इसके लिए बाण की तरह तन्मयता आवश्यक है। ओंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म बुद्धि रूपी गुहा में निहित है, वही परम पद है। ओंकार ही तीनों वेद, तीनों लोक और तीनों अग्नि है। यह त्रिविक्रम के तीनों पाद ऋक्, यजुः और साम है। ओंकार में चार मात्राएँ हैं, यह विचार करके जानना चाहिए ।।५-७।। उस ओंकार में जो योगी युक्त होता है, वह ब्रह्म सारूप्य को प्राप्त करता है। ओंकार को अक्षर समझना चाहिए, उकार स्वर कहा गया है और मकार प्लुत है। इस प्रकार इसके परमार्थतः तीन मात्राओं को समझना चाहिए। अकार भूलोक, उकार भुवःलोक और व्यंजन सहित मकार स्वर्लोक कहा गया है। ओंकार त्रिलोकमय है। इसका शिरोभाग स्वर्ग है ।।८-१०।। सम्पूर्ण भाग भुवनमय ब्राह्मपद कहा गया

भुवनान्तं च तत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते । मात्रापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम् ।।११।।
एवं ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते । तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम् ।।१२।।
उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं पदमिच्छता । ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम् ।।१३।।
ततः प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते । एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः ।।१४।।
यावच्चैव नु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि । इन्द्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा ।।१५।।
अत्राष्टमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् । मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।।१६।।
न स तत्प्राप्नुयात्पुण्यं मात्रया युदवाप्नुयात् । अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नरः ।।१७।।
संवत्सरशतं पूर्णं मात्रया तदवाप्नुयात् । इष्टापूर्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत्फलम् ।।१८।।
अब्भक्षणे च मां(मा)सस्य मात्रया तदवाप्नुयात् । स्वाम्यर्थे युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।।१९।।
यद्भवेत्तत्फलं दृष्टं मात्रया तदवाप्नुयात् । न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ।।२०।।
यत्फलं प्राप्नुयात्सम्यङ्मात्रया तदवाप्नुयात् । तत्र वै योऽर्धमात्रो यः प्लुतो नामोपदिश्यते ।।२१।।
एषा एव भवेत्कार्या गृहस्थानां तु योगिनाम् । एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्यसमलक्षणा ।।२२।।
योगिनां तु विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे । अणिमाद्येतिविज्ञेया तस्माद्युञ्जतीत तां द्विजः ।।२३।।

है। मात्रापद रुद्रलोक है और अमात्रा यानी विन्दुस्वरूप शिवपद है। इस प्रकार विशेष प्रकार के ध्यान से उप पद की उपासना करे। इसलिए ध्याननिष्ठ योगी शाश्वत पद की कामना से यत्नपूर्वक उस नित्य, अविनाशी और अमात्र की उपासना करे। इसकी प्रथम मात्रा ह्रस्व है, दूसरी मात्रा दीर्घ और तीसरी मात्रा प्लुत है। इन मात्राओं को यथार्थ और आनुपूर्वी रूप से समझना चाहिए ।।११-१४।। जहाँ तक सामर्थ्य हो, वहाँ तक इनकी धारणा करनी चाहिए। इन्द्रिय, मन, बुद्धि का जो आत्मा में ध्यान करता हुआ अष्टमात्रा-विशिष्ट प्रणव की धारणा करता है, वह विशेष फल प्राप्त करता है। सुनिये, प्रत्येक मास को अश्वमेध से सौ वर्षों तक यजन करता है, वह उतना पुण्य प्राप्त नहीं करता है, जितना कि मात्रा के ज्ञान से प्राप्त होता है। जो आदमी कुश के अग्र भाग से प्रति मास जलविन्दु पान करते हैं और सौ वर्षों तक ऐसा करते रहते हैं उसके उस कर्म के समान मात्रा के ज्ञान द्वारा फल प्राप्त होता है ।।१५-१७$\frac{१}{२}$।। इष्टापूर्त यज्ञ का और सत्य वचन का जो फल है, एवं महीने भर जल पीकर रहने का जो फल है, वही फल मात्रा ज्ञान से प्राप्त होता है। स्वामी के लिए युद्ध में मर जानेवाले शूरों को जो फल प्राप्त होता है, वही फल मात्रा ज्ञान से होता है। मात्रा ज्ञान से जो फल प्राप्त होता है, वह उग्र तपस्या अथवा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ से भी नहीं प्राप्त होता है। उसकी जो अर्द्धमात्रा प्लुत के नाम से कही गयी है, वही गृहस्थ योगियों के लिए विशेष रूप से उपादेय है। वही विशेष रूप से ऐश्वर्य साधक है ।।१८-२२।। योगियों को अणिमादि आठ प्रकार के विशेष ऐश्वर्य की प्राप्ति उसी से होती है; अतएव ब्राह्मण उसी का साधन करे। इस प्रकार उस प्लुत मात्रा से संयुक्त होकर जो शुद्ध, शान्त और जितेन्द्रिय योगी अपने को जानता है, वह द्विज सब जान जाता

एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः । आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजः ।।२४।।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा । योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तकः ।।२५।।
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूतः स तु जायते । योगिसंक्रमणं कृत्वा याति वै शाश्वतं पदम् ।।२६।।
अपि चात्र चतुर्ह्येतां ध्यायमानाश्चतुर्मुखीम् । प्रकृतिं विश्वरूपाख्यां दृष्ट्या दिव्येन चक्षुषा ।।२७।।
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्व(स)रूपाम्(पाः)।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।।२८।।
अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गीम्।
आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति।।
ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ।।२९।।
इत्येदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम् । यस्तु वेदयते सम्यक्तथा ध्यायति वा पुनः ।।३०।।
संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः । अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।३१।।
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोंकारप्राप्तिलक्षणम् ।।३२।।
नमो लोकेश्वराय संकल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्वो हितं यद्ब्रह्मणे नमः।
सर्वत्रस्थानिने निर्गुणाय संभक्तयोगीश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिर्विशुद्धमिव ब्रह्ममुपतिष्ठेत्पवित्रं (?)
पवित्राणां पवित्रं पवित्रेण परिपूरितेन पवित्रेण ह्रस्वं दीर्घप्लुतमिति तदेतमोंकारमशब्दम-

---

है। ध्यानपरायण ब्राह्मण योगज्ञान से ही तीनों वेदों और उपनिषदों को जान जाते हैं, वे सब भूतों के लयस्थान में लीन होकर लयस्थान के रूप में परिणत हो जाते हैं। वे योगिजनोचित उत्क्रमण विधान से प्राण त्याग करके अविनाशी पद को प्राप्त करते हैं ।।२३-२६।। जो दिव्य दृष्टि से ध्यान के द्वारा चतुर्मुखी, विश्वरूपाख्या प्रकृति देवी को देखकर यह समझते हैं कि यही एक अजा है, जो रक्त-कृष्ण-वर्ण की है और अपनी ही तरह अनेक प्रजाओं को उत्पन्न करनेवाली है। जीव रूप एक अज उस अजा से मिलकर शयन करता है अर्थात् उसका उपभोग करता है; किन्तु दूसरा शिव स्वरूप अज उसे उपभुक्त समझकर छोड़ देता है। वह प्रकृति स्वरूपा आदि अजा आठ अक्षरोंवाली, सोलह पाणि-पादोंवाली, चतुर्मुखी, शिखाविहीन या विशिष्ट शिखावाली, एक शृङ्गवाली और संसार का सृजन करनेवाली है। इसके स्वरूप को जानकर पंडित अमृतत्व प्राप्त करते हैं, जो ब्राह्मण प्रणव को जानते है, वे पुनः संसार-यात्रा नहीं करते हैं ।।२७-२९।। यह ओंकार रूप अक्षर ब्रह्म है। इसका जो ध्यान करता है और जो इसे समझता है, वही सभी बन्धनों से मुक्त होकर और संसार के आवागमन से रहित होकर निश्चय ही अचल, निर्गुण शिवस्थान को प्राप्त करता है। वह हमने ओंकार-प्राप्ति का लक्षण बताया है ।।३०-३२।। सर्व सङ्कल्पाभिज्ञ लोकेश्वर को नमस्कार है। उसी महात्मा की उपासना करनी चाहिए। उसी ब्रह्म को प्रणाम करना आप लोगों के लिए हितकर है। सर्वव्यापी, निर्गुण, भक्त योगियों के लिए ऐश्वर्यदाता, जलयुक्त परन्तु उससे अलिप्त कमलपत्र की तरह शुद्ध ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। पवित्रों के बीच पवित्र, अतिशय

स्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासे (सी) त, अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य, अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्यं चास्ति ओंकारो विश्वविश्वो वै यज्ञो यज्ञो वै वेदो वेदो वै नमस्कारो नमस्कारो रुद्रो नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः।।

इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायं प्रातर्मध्याह्ने नम इति । सर्वकामफलो रुद्रः ।।३३।।
यथा वन्तात्फलं पक्वं पवनेन समीरितम् । नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ।।३४।।
यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुवः । अन्यदेवनमस्कारो न तत्फलमवाप्नुयात् ।।३५।।
तस्मात्त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम् । दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ।।३६।।
ओंकारं सर्वतः काले सर्वं विहितवान्प्रभुः । तेन तेन तु विष्णुत्वं नमस्कारं महायशाः ।।३७।।
नमस्कारस्तथा चैव प्रणवः स्तुवते प्रभुम् । प्रणवं स्तुवते यज्ञो यज्ञं संस्तुवते मनः ।।३८।।
मनः स्तुवति वै रुद्रो तस्माद्रुद्रपदं शिवम् । इत्येतानि रहस्यानि यतीनां वै यथाक्रमम् ।।
यस्तु वेदयते ध्यानं स परं प्राप्नुयात्पदम् ।।३९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ओंकारप्राप्तिलक्षणकथनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

पवित्र, पवित्रता से पूर्ण, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतमात्राविशिष्ट, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धवर्जित ओंकार की उपासना करनी चाहिए। अविद्याधिपति योगीश्वर को नमस्कार है। अविद्याधिपति को नमस्कार करनेवाले का विश्वरूप नहीं होता यानी उसे अविद्या नहीं सताती है। जिसने द्युलोक को उन्नत, पृथ्वी को दृढ़, स्वर्लोक को स्तम्भित और स्वर्ग को अन्तरिक्ष में रखा है, जो देवों के हृदय स्वरूप हैं वही परम पुरुष विश्वरूप हैं। उन्हें प्राणापान नहीं है और न उनकी उपमा है। यही ओंकार नामक विश्वरूपी रुद्र, यज्ञ, वेद और नमस्कारादि रूप से परिणत हुए हैं। उस योगेश्वराधिपति रुद्र को नमस्कार है। सिद्धिदायक रुद्रोपस्थान का सायं, मध्याह्न और प्रातःकाल में पाठ करने से रुद्र सभी कामनाओं को फलीभूत करते हैं ।।३३।। वायु के हल्के धक्के से ही जैसे पका फल गुच्छे से टपक पड़ता है, उसी प्रकार रुद्र को नमस्कार करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।।३४।।

रुद्र को नमस्कार करने से सब धर्मों का फल प्राप्त होता है, दूसरे देवों को नमस्कार करने से वह फल नहीं मिलता है, इसीलिए योगी त्रिकाल में जगद्विस्तारकारी ब्रह्मस्वरूप महेश्वर की उपासना करे। वह प्रभु सब समय ओंकार में निविष्ट है। इसीलिए महायशस्वी विष्णु ही नमस्करणीय हैं। नमस्कार मूर्ति विष्णु का प्रणव स्तवन करता है। यज्ञ प्रणव का, मन यज्ञ का और रुद्र मन का स्तवन करते हैं इसलिए रुद्रपद ही परम मङ्गलास्पद है। यतियों के लिए यह रहस्य यथाक्रम कहा गया है। जो इसे ध्यानपूर्वक जानता है, वह परमपद प्राप्त करता है ।।३५-३९।।

श्रीवायुमहापुराण में ओंकारप्राप्तिलक्षणकथन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२०।।

अथैकविंशोऽध्यायः

कल्पनिरूपणम्

सूत उवाच

ऋषीणामग्निकल्पानां नैमिषारण्यवासिनाम्। ऋषिः श्रुतिधरः प्राज्ञः सावर्णिर्नाम नामतः ।।१।।
तेषां सोऽप्यग्रतो भूत्वा वायुं वाक्यविशारदः। सातत्यं तत्र कुर्वन्तं प्रियार्थे सत्रयाजिनाम्
विनयेनोपसंगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ।।२।।

सावर्णिरुवाच

विभो पुराणसंबद्धां कथां वै वेदसंमिताम्। श्रोतुमिच्छामहे सम्यक्प्रसादात्सर्वदर्शिनः ।।३।।
हिरण्यगर्भो भगवाँल्ललाटान्नीललोहितम्। कथं तत्तैजसं देवं लब्धवान्पुत्रमात्मनः ।।४।।
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा कमलसंभवः। रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ।।५।।
कथं च विष्णो रुद्रेण सार्धं प्रीतिरनुत्तमा। सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणाः ।।६।।
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते। इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संशयः ।।
भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ।।७।।

सूत उवाच

एवमुक्तेऽथ भगवान्वायुः सावर्णिमब्रवीत्। अहो साधु त्वया साधो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ।।८।।

अध्याय २१

कल्प-निरूपण

वायु बोले—नैमिषारण्य में रहनेवाले अग्नितुल्य ऋषियों के बीच सावर्णि नाम के एक वेदज्ञ पण्डित ऋषि थे। बोलने में चतुर होने के कारण सब ऋषियों से आगे बढ़कर उन्होंने विनयपूर्ण, अत्यन्त कान्तिवाले वायु से सत्रयाज्ञिकों के कल्याण के लिए पूछा ।।१-२।।

सावर्णि बोले—प्रभो ! आप सर्वदर्शी हैं। आपके प्रसाद से हम वेदतुल्य पौराणिक कथा को अच्छी तरह से सुनना चाहते हैं। भगवान् हिरण्यगर्भ ने अपने ललाट से अत्यन्त तेजस्वी नीललोहित देव को किस प्रकार पुत्र रूप में प्राप्त किया? ।।३-४।। कमलयोनि ब्रह्मा किस प्रकार उत्पन्न हुए। ब्रह्मनन्दन नीललोहित को रुद्रत्व किस प्रकार प्राप्त हुआ? रुद्र के साथ विष्णु की उत्तम प्रीति किस प्रकार हुई? 'सभी देवता विष्णुमय हैं, सभी गण विष्णुमय हैं, विष्णु के समान कोई दूसरी गति नहीं है' देवगण सदैव ऐसा निःसंदिग्ध भाव से कहा करते हैं। फिर भी वही विष्णु भवदेव को (रुद्र को) क्यों प्रणाम करते हैं ? ।।५-७।।

सूत जी बोले—इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् वायु ने सावर्णि से कहा—अहो ! धन्यवाद है, हे साधु ! आपने

भवस्य पुत्रजन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा। ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ।।९।।
(*द्वाभ्यामपि च संप्रीतिर्विष्णोश्चैव भवस्य च। यच्चापि कुरुते नित्यं प्रणामं शंकरस्य च ।।१०।।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च शृणुत ब्रुवतो मम। मन्वन्तरस्य संहारे पश्चिमस्य महात्मनः ।।११।।
आसीत्तु सप्तमः कल्पः पद्मो नाम द्विजोत्तमाः। वराहः सांप्रतस्तेषां तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ।।१२।।

सावर्णिरुवाच

कियता चैव कालेन कल्पः संभवते कथम्। किं च प्रमाणं कल्पस्य तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।१३।।

वायुरुवाच

मन्वन्तराणां सप्तानां कालसंख्या(ख्यां) यथाक्रमम्। प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ।।१४।।
कोटीनां द्वे सहस्रे वै अष्टौ कोटिशतानि च। द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः ।।१५।।
कल्पार्धस्य तु संख्यायामेतत्सर्वमुदाहृतम्। पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदौ वर्षाग्रं लब्धमादिशेत् ।।१६।।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः। द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ।।१७।।
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम्। एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्धाद्द्विगुणीकृतः ।।१८।।
अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम्। प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ।।१९।।
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च। चतुरशीति चा(श्चा)न्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ।।२०।।

उत्तम प्रश्न पूछा ।।८।। ब्रह्मा के पुत्र रूप में भव का जन्मग्रहण, कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, शंकर का रुद्रत्व, विष्णु और भव दोनों की परस्पर प्रीति और विष्णु क्यों शंकर को नित्य प्रणाम करते हैं? यह सब हम यथाक्रम से विस्तारपूर्वक कहते हैं, सुनिये ।।९-१०$\frac{१}{२}$।। महात्मा द्विजोत्तम! छठे कल्प के बीत जाने पर मनु के अधिकार काल में सातवाँ पद्म नाम का कल्प था। अभी वाराह कल्प बीत रहा है। यह रहस्य हम विस्तार के साथ कहते हैं ।।११-१२।।

सावर्णि बोले–कितने काल का कल्प होता है ? कल्प का क्या प्रमाण है ? कृपाकर कहिये ।।१३।।

वायु बोले–सातों मन्वन्तरों की कल्पसंख्या हम यथाक्रम संक्षेप से कहते हैं, सुनिये। दो हजार आठ सौ करोड़ एवं बासठ करोड़ सत्तर नियुत कल्पार्द्ध की वर्षसंख्या कही गयी है ।।१४-१५$\frac{१}{२}$।। इसका पूर्व भाग वर्ष परिमाण कहा गया है। एक सौ अठहत्तर करोड़ दो लाख नब्बे नियुत के मानुष परिमाण से वैवस्वत मन्वन्तर है। कल्पार्द्ध मान का दुगुना परिमाण कल्प का परिमाण है ।।१६-१८।। आनेवाले सातों कल्पों का काल परिमाण और संख्या यथाक्रम इसी प्रकार समझना चाहिए। यही ईश्वरानुमोदित है ।।१९।। पाँच सौ आठ नियुत, अस्सी सौ नियुत और चौरासी प्रयुत

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः। एतत्कालस्य विज्ञेयं मर्षाग्रं तु प्रमाणतः ।।२१।।
एष मन्वन्तरे तेषां मानुषान्तः प्रकीर्तितः। प्रणवान्ताश्च ये देवाः साध्या देवगणाश्च ये ।।२२।।
विश्वे देवाश्च ये नित्याः कल्पं जीवन्ति ते गणाः। अयं यो वर्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्यते ।।
यस्मिन्स्वायंभुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ।।२३।।

ऋषय ऊचुः

कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्तितः। कस्माच्च कारणाद्देवो वराह इति कीर्त्यते ।।२४।।
को वा वराहो भगवान्कस्य योनिः किमात्मकः। वराहः कथमुत्पन्न एतदिच्छामि वेदितुम् ।।२५।।

वायुरुवाच

वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः। वाराहश्च यथा कल्पः कल्पत्वं कल्पना च या ।।२६।।
कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम्। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।।२७।।
भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा। ज्ञातव्यो भगवान्यत्र ह्यानन्दः सांप्रतः स्वयम् ।।२८।।
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसंभवम्। द्वितीयस्तु भुवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ।।२९।।
भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पञ्चमो रम्भ एव च। ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ।।३०।।
अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवाहनः। सावित्रो दशमः कल्पो भुवस्त्वेकादशः स्मृतः ।।३१।।
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदशः। चतुर्दशस्तु गन्धर्वो गांधारो यत्र वै स्वरः ।।३२।।

कालपर्यन्त सप्तर्षि, मनु और इन्द्रादि देवता वर्षकाल प्रमाण से विद्यमान रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए। इस मन्वन्तर के अन्त में मनुष्यों का भी अन्त हो जाता है। प्रणव प्रतिपाद्य देवता, साध्य और विश्वदेवता जो नित्य कहे जाते हैं, वे भी कल्पपर्यन्त ही जीते हैं। यह जो कल्प बीत रहा है, वह वाराह कल्प के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें स्वायंभुवादि चौदह मनु आविर्भूत होते हैं ।।२०-२३।।

ऋषिगण बोले–"किस कारण यह वाराहकल्प के नाम से प्रसिद्ध है ? किस कारण से वे देव वराह कहे गये ? भगवान् वराह कौन हैं ? वे किसके उत्पादक हैं ? उनका क्या स्वरूप हैं ? वे किस प्रकार उत्पन्न हुए ? हम लोगों को यह जानने की इच्छा है" ।।२४-२५।।

वायु बोले–"वराह जिस प्रकार जिस प्रयोजन के लिए उत्पन्न हुए, कल्प का वराह नाम पड़ने का कारण, कल्प का स्वरूप, विवृत्ति और दोनों कल्पों का अन्तर जिस प्रकार कल्पित हुआ है, उसे हमने जैसा देखा है और सुना है, वैसे ही कह रहे हैं ।।२६-२७।। सृष्टि के पहले भवकल्प हुआ। इस कल्प में स्वयं ज्ञातव्य आनन्दमय साम्प्रत भगवान् थे। उन्होंने दिव्य सम्भव, आधारभूत ब्रह्म स्थान प्राप्त किया था। दूसरा भुवकल्प, तीसरा तपःकल्प, चौथा भवकल्प, पाँचवाँ रम्भकल्प, छठा ऋतुकल्प, सातवाँ क्रतुकल्प, आठवाँ वह्निकल्प, नवाँ हव्यवाहन कल्प, दसवाँ सावित्र कल्प, ग्यारहवाँ भुवः कल्प, बारहवाँ उशिक कल्प, तेरहवाँ कुशिक कल्प और चौदहवाँ गान्धार कल्प हुआ।

उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिताः । ऋषभस्तु ततः कल्पो ज्ञेयः पञ्चदशो द्विजाः ।।३३।।
ऋषभो यत्र संभूतः स्वरो लोकमनोहरः । षड्जस्तु षोडशः कल्पः षड्जना यत्र चर्षयः ।।३४।।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च । शरद्धेमन्त इत्येते मानसा ब्रह्मणः सुताः ।।३५।।
उत्पन्नाः षड्जसंसिद्धाः पुत्रा कल्पे तु षोडशे । यस्माज्जातैश्च तैः षड्भिः सद्योजातो महेश्वरः ।।३६।।
तस्मात्समुत्थितः षड्जः स्वरस्तूदधिसंनिभः । ततः सप्तदशः कल्पो मार्जालीय इति स्मृतः ।।३७।।
मार्जालीयं तु तत्कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् । ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यते ।।३८।।
यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः । उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयंभुवः ।।३९।।
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः । वैराजो यत्र भगवान्मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ।।४०।।
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः । प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ।।४१।।
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् । तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ।।४२।।
ततो विंशतिमः कल्पो निषादः परिकीर्तितः । प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयंभूप्रभवं तदा ।।४३।।
विरराम प्रजाः स्त्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् । द्विव्यं वर्षसहस्त्रं तु निराहारो जितेन्द्रियः ।।४४।।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः । ऊर्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितं क्षुत्पिपासितम् ।।४५।।

इस कल्प में गान्धार स्वर उत्पन्न हुआ था ।।२८-३२।। उसी गान्धार स्वर से नाद और गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई है। हे ब्राह्मणो ! पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ हुआ, ऐसा जानिये। इसी कल्प में लोक मनोहर ऋषभ स्वर उत्पन्न हुआ। षड्ज नामक सोलहवाँ कल्प हुआ, जिसमें छह ऋषि प्रसिद्ध थे। शिशिर, वसन्त, निदाघ, वर्षा, शरत् और हेमन्त नामक ये छहों ऋषि के मानस पुत्र थे ।।३३-३५।। सोलहवें कल्प में वे पुत्र षड्ज से उत्पन्न हुए। यतः इन छहों के होने से ऐसा ज्ञात हुआ मानो महेश्वर ही सद्यः स्वयं उत्पन्न हो गये। इसलिए समुद्र की तरह गम्भीर ध्वनिवाला षड्ज स्वर उत्पन्न हुआ। सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय नाम से ख्यात है इसलिए कि इस कल्प में ब्रह्म सम्बन्धी मार्जालीय कर्म सृष्ट हुआ था ।।३६-३७।। अठारहवें कल्प का नाम था मध्यम। जिसमें धैवत से भी श्रेष्ठ मध्यम स्वर उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा की सृष्टि में वह मध्यम नाम से ख्यात हुआ। उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहलाता है, जिसमें ब्रह्मा के पुत्र वैराज मनु हुए। उन्हें दधीचि नाम का धर्मात्मा पुत्र हुआ। ये ही अत्यन्त तेजस्वी अधिपति प्रजापति यजन कर रहे थे कि गायत्री ने उनकी कामना की, जिसमें दधीचि को पुत्रस्वरूप स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ ।।३८-४२।। बीसवाँ निषाद कल्प कहलाता है। प्रजापति ने उस स्वयंभू-संजात निषाद को देखकर सृष्टि कर्म से हाथ रोक लिया। निषाद भी तपस्या करने लगा। जितेन्द्रिय निषाद निराहार रहकर देवों के वर्ष से हजार वर्षों तक तप करता रहा ।।४३-४४।। महातेजस्वी लोक-पितामह ब्रह्मा ने तब उस निषाद से, जो कि तपस्या के कारण कृश, दुःखित, भूख-प्यास से व्याकुल, शान्त

निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्तं पितामहः । तस्मान्निषादः संभूतः स्वरस्तु स निषादवान् ।।४६।।
एकविंशतिमः कल्पो विज्ञेयः पञ्चमो द्विजाः । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।।४७।।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः पञ्चैते ब्रह्मणः समाः । तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वरः ।।४८।।
यस्मात्परिगतैर्गीतः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः । स्वरस्तु पञ्चमः स्निग्धस्तस्मात्कल्पस्तु पञ्चमः ।।४९।।
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहनः । यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघी भूत्वा महेश्वरम् ।।५०।।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु अवहत्कृत्तिवाससम् । तस्य विश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ।।५१।।
निर्जगाम महाकायः कालो लोकप्रकालनः । यस्त्वयं पठ्यते विप्रैर्विष्णुर्वै कश्यपात्मजः ।।५२।।
त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा । प्रजापतिसुतः श्रीमांश्चितिश्च मिथुनं च तौ ।।५३।।
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता । तस्मात्तु चिन्तकः सो वै (कोऽसौ) कल्पः प्रोक्तः स्वयंभुवा ।।५४।।
चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूतिः कल्प उच्यते । आकूतिश्च तथा देवी मिथुनं संबभूव ह ।।५५।।
प्रजाः स्त्रष्टुं तथाऽऽकूतिं यस्मादाह प्रजापतिः । तस्मात्स पुरुषो ज्ञेय आकूतिः कल्पसंज्ञितः ।।५६।।
पञ्चविंशतिमः कल्पो विज्ञातिः परिकीर्तितः । विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं संप्र (सम) सूयते ।।५७।।
ध्यायतः पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसंज्ञितम् । विज्ञातं वै समासेन विज्ञातिस्तु ततः स्मृतः ।।५८।।

और हाथ ऊपर उठाये तपस्या कर रहा था, कहा कि 'निषीद' (बैठ जाओ)। इसलिए वह निषाद कहलाया और स्वर का नाम भी निषाद ही हुआ ।।४५-४६।। इक्कीसवें कल्प का नाम पञ्चम है। इसमें ब्रह्मा को उन्हीं के समान प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक पाँच मानस पुत्र हुए। वे अर्थ सहित स्तुति वचनों से महेश्वर का स्तवन करने लगे। जिस कारण उन पाँचों महात्माओं ने पञ्चम स्वर से गान किया; इसलिए वह कल्प पञ्चम कहलाया और उस स्निग्ध स्वर का नाम पञ्चम पड़ा ।।४७-४९।। बाईसवें कल्प का नाम मेघवाहन जानना चाहिए। इस कल्प में महाबाहु विष्णु ने मेघ के स्वरूप में चर्मवसनधारी महेश्वर को दिव्य सहस्र वर्ष तक धारण किया था। कश्यप के पुत्र विष्णु भाराक्रान्त होकर दीर्घ निःश्वास ले रहे थे कि उनके मुँह से लोक का नाश करनेवाला विकराल काल उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणों के द्वारा यह कथा इसी प्रकार कही गयी है। तेईसवाँ कल्प चिन्तक है ।।५०-५२$\frac{१}{२}$।। प्रजापतितनया चिन्तक के साथ विति नाम की एक पुत्री भी हुई। यतः ब्रह्मा को ध्यान करते समय वह हो गयी इसी से उस कल्प को ब्रह्मा ने चिन्तक कहा। चौबीसवाँ कल्प आकूति कहलाता है। इस कल्प में आकूत और आकूति मिथुन उत्पन्न हुए ।।५३-५५।। प्रजापति ने आकूति को सृष्टि करने के लिए कहा ; इसलिए उस कल्प का आकूति नाम पड़ा। पचीसवाँ कल्प विज्ञाति कहलाता है। विज्ञाति देवी भी विज्ञात के साथ जुड़वाँ उत्पन्न हुई थीं। सृष्टि की इच्छा से ध्यान करते हुए ब्रह्मा को शीघ्र ही सब ज्ञात हो गया, इससे उस कल्प का नाम विज्ञाति पड़ा ।।५६-५८।। छब्बीसवें कल्प का

षड्विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते । देवी च शंकरी नाम मिथुनं संप्रसूयते ।।५९।।
प्रजा वै चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य वै तदा । यस्मात्प्रजासंभवनादुत्पन्नस्तु स्वयंभुवा ।।६०।।
तस्मात्प्रजासंभवनाद्भावनासंभवः स्मृतः । सप्तविंशतिमः कल्पो भावो वै कल्पसंज्ञितः ।।६१।।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत । प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।६२।।
ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् । अग्निस्तु मण्डली भूत्वा रश्मिजालसमावृतः ।।६३।।
भुवं दिवं च विष्टभ्य दीप्यते स महावपुः । ततो वर्षसहस्रान्ते संपूर्णे ज्योतिमण्डले ।।६४।।
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत्सूर्यमण्डलम् । यस्माददृश्यो भूतानां ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।६५।।
दृष्टस्तु भगवान्देवः सूर्यः संपूर्णमण्डलः । सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिताः ।।६६।।
यस्मात्कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्तं दर्शमुच्यते (?) । यस्मान्मनसि संपूर्णो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।६७।।
पुरा वै भगवान्सोमः पौर्णमासी ततः स्मृता । तस्मात्तु पर्वदर्शे वै पौर्णमासं च योगिभिः ।।६८।।
उभयोः पक्षयोर्योज्यमात्मनो हितकाम्यया । दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति द्विजातयः ।।६९।।
न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन । योऽऽनाहिताग्निः प्रयतो वीराध्वानं गतोऽपि वा ।।७०।।
समाधाय मनस्तीव्रं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः । त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।।७१।।
त्वं पाशगन्धर्वशिषं पूषा विधत्तपासिना । इत्येव मन्त्र मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विजः ।।७२।।

नाम मन कहलाता है। शंकरी देवी ने एक मिथुन उत्पन्न किया। प्रजापति सृष्टि की कामना कर रहे थे, प्रजा की चिन्ता कर रहे थे। उसी प्रजा-संभवन काल में यह कल्प उत्पन्न हुआ। इसी कारण प्रजाविषयक भावना होने से वह कल्प भावनसंभव कहलाया। सत्ताईसवाँ कल्प भाव कहलाता है ।।५९-६१।। इस कल्प में भी पौर्णमासिक देवी ने एक मिथुन उत्पन्न किया। प्रजा की सृष्टि के अभिलाषी परमेष्ठी ब्रह्मा परमात्मा का ध्यान कर रहे थे कि उनका ज्योतिमण्डल अग्नि रूप से भूलोक और द्युलोक में व्याप्त होकर प्रदीप्त हो उठा ।।६२-६३$\frac{१}{२}$ ।। हजार वर्ष बीत जाने पर वह ज्योतिमण्डल पूर्ण हुआ अर्थात् एकीभूत हुआ और सूर्यमण्डल के रूप में परिणत हो गया। ब्रह्मा ने पूर्व में अदृश्य उस सूर्यमण्डल को देखा और उस मण्डल से समस्त योग और मन्त्रसमूह उत्पन्न हुए; इसलिए उस कल्प का नाम दर्श पड़ा। प्राचीनकाल में उस समय भगवान् सोम ब्रह्मा के मन में पूर्ण रूप से प्रकट हो गये थे, इससे पौर्णमासी भी कहलायी ।।६४-६८।। इसलिए योगियों को चाहिए कि उभय पक्ष के पर्व दिन में यानी दर्शं-पौर्णमासी में अपनी भलाई के लिए योगानुष्ठान करें। दर्श (अमावस्या) और पूर्णिमा में जो द्विजाति यजन करते हैं, उनका ब्रह्मलोक से फिर आवागमन नहीं रहता ।।६९$\frac{१}{२}$ ।। जो अनाहिताग्नि द्विज शुद्ध होकर वीर पथ में प्रवृत्त होते हैं और चंचल मन का समाधान कर इस मन्त्र का शनैः-शनैः पाठ करते हैं एवं मन-ही-मन उच्चारण करते हैं, अग्नि में प्रवेश कर

अग्निं प्रविशते यस्तु रुद्रलोकं स गच्छति। सोमश्चाग्निस्तु भगवान्कालो रुद्र इति श्रुतिः।।७३।।
तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रान्न निवर्तते। अष्टाविंशतिमः कल्पो बृहदित्यभिसंज्ञितः।।७४।।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य स्त्रष्टुकामस्य वै प्रजाः। ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथंतरम्।।७५।।
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहतः सर्वतोमुखः। तस्मात्तु बृहतः कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः।।७६।।
अष्टाशीतिसहस्त्राणां योजनानां प्रमाणतः। रथंतरं तु विज्ञेयं परमं सूर्यमण्डलम्।।७७।।
तस्माद्दण्डं तु विज्ञेयमभेद्यं सूर्यमण्डलम्। यत्सूर्यमण्डलं चापि बृहत्साम तु भिद्यते।।७८।।
भित्त्वा चैनं द्विजा यान्ति योगात्मानो दृढव्रताः। संघातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथंतरे।।७९।।
इत्येतत्तु मया प्रोक्तं चित्रमध्यात्मदर्शनम्। अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पानां विस्तरं शुभम्।।८०।।
*जिह्वे स्तुहि(?)जगत्त्रितयैकनाथं नारायणं परमकारुणिकं सदैव।
प्राचीनकर्मनिगडार्गलबन्धमुक्त्यै नान्यः पुराणपुरुषादपरोऽस्त्युपायः।।८१।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते कल्पनिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

जाते हैं, वे रुद्रलोक जाते हैं। अग्नि ही काल, रुद्र और सोम हैं–ऐसी श्रुति है।।७०-७३।। इस कारण जो अग्नि में प्रवेश करता है वह रुद्रलोक से नहीं लौटता है। मन्त्र–"त्वमग्ने रुद्रो असुरो महोदिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे, त्वं पाश गन्धर्व शिषं पूषा विधत्तपासिना।" अट्ठाईसवाँ कल्प बृहत् कहलाता है। सृष्टि की कामना करनेवाले प्रजाभिलाषी ध्यानपरायण ब्रह्मा के अन्तःकरण से बृहत् साम और रथन्तर प्रादुर्भूत हुए। जिस कारण सर्वतोमुख बृहत् समुत्पन्न हुए; इसीलिए उस कल्प को तत्त्वचिन्तकगण बृहत् कहते हैं।।७४-७६।। सूर्यमण्डल के रथन्तर का परिमाण अट्ठासी हजार योजन जानना चाहिए। इसलिए सूर्यमण्डल का भेद करना कठिन है परन्तु दृढ़चेता योगी द्विजगण उसका एवं बृहत् साम का भी भेदन कर वहाँ चले जाते हैं। उस रथन्तर में ही अन्यान्य कल्प संघातभाव प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हमने विचित्र अध्यात्मतत्त्व का वर्णन किया। इसके अनन्तर कल्पों का शुभ विस्तार कहेंगे।।७७-८०।। जिह्वे! त्रिलोकाधिपति, परमकारुणिक, परमपुरुष नारायण का सतत स्तवन कर, प्राचीन कर्म के शृङ्खला बन्धन से मुक्ति पाने के लिए उस पुराणपुरुष की अपेक्षा और कोई उपाय नहीं है।।८१।।

श्रीवायुमहापुराण में कल्पनिरूपण नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।।२१।।

---

* ख. पुस्तक एवायं श्लोको नान्यादर्शपुस्तकेषु।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कल्पसंख्यानिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुतमिदं सर्वं कल्पानां ते महामुने। रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणां च प्रकल्पनम्।।१।।
न तवाविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। यस्माद्विस्तरतः सर्वाः कल्पसंख्या ब्रवीहि नः।।२।।

वायुरुवाच

अत्र वः कथयिष्यामि कल्पसंख्या यथा तथा। युगाग्रं च वर्षाग्रं तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।।३।।
एकं कल्पसहस्रं तु ब्रह्मणोऽब्दः प्रकीर्तितः। एतदष्टसहस्रं तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम्।।४।।
एकं कल्पसहस्रं तु सवनं तत्प्रजापतेः। सवनानां सहस्रं तु द्विगुणं त्रिवृतं तथा।।५।।
ब्रह्मणः स्थितिकालस्य चैतत्सर्वं प्रकीर्तितम्। तस्य संख्यां प्रवक्ष्यामि कल्पसंज्ञा यथाक्रमम्।।६।।
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्तिताः। तेषां पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसंज्ञा यथाक्रमम्।।७।।
रथंतरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत। कल्पान्ते नामधेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या।।८।।
एकोनत्रिंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः। यस्मिंस्तत्परमं ध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा।।९।।

अध्याय २२

कल्प-संख्या निरूपण

ऋषियों ने कहा–महामुनि! आपने मन्त्रों की कल्पना और कल्पों का अत्यन्त आश्चर्यजनक और रहस्यमय आख्यान सुनाया। तीनों लोकों में आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं अतः कृपाकर विस्तारपूर्वक कल्प-संख्याओं का वर्णन हम लोगों को सुनाइये ।।१-२।।

वायु बोले–अब मैं कल्प-संख्या और परमेष्ठी ब्रह्मा के युग और वर्ष के विषय में तुम लोगों से कह रहा हूँ। एक हजार युग ब्रह्मा का वर्ष कहा जाता है। ब्रह्मा के आठ हजार वर्षों का उनका एक युग होता है ।।३-४।। एक सहस्र युग प्रजापति का सवन है। दो सहस्र सवनों का उनका त्रिवृत्त होता है। ब्रह्मा के स्थितिकाल की यही सारी कथा है। इसके आगे क्रमशः उस काल की संख्या बतला रहा हूँ ।।५-६।। जिन अट्ठाईस कल्पों की नामावली बतायी है, पहले उन कल्पों के नाम पड़ने का कारण कह रहा हूँ ।।७।। रथन्तर साम के बाद कल्पों का नाम और जिस कल्प में जिस मन्त्र की उत्पत्ति हुई उसका वर्णन कर रहा हूँ ।।८।। उनतीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नाम का है। जिस कल्प में परम ध्यानमग्न ब्रह्मा को श्वेतोष्णीषधारी, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण करनेवाला, अग्नि के

श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी। उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपमः।।१०।।
भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम्। दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्चसम्।।११।।
तं दृष्ट्वा पुरुषः श्रीमान्ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः। कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम्।।१२।।
पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां वरम्। ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा वै समचिन्तयत्।।१३।।
हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम्। सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत्।।१४।।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हासं जगत्पतिः। ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्चसः।।१५।।
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः। सुनन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः।।१६।।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम्। तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतनामा महामुनिः।।१७।।
विजयेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ। तत्र ते ऋषयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम्।।१८।।
तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपद्यन्ति वै द्विजाः। प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिनः।।१९।।
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति च।।२०।।

वायुरुवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः। रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्।।२१।।
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तविग्रहः।।२२।।

समान एक परम तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ।।९-१०।। उस भीममुख, महारौद्र, घोर रूप, श्वेतलोहित, अपनी देहकान्ति से प्रदीप्त, श्वेत वर्चस् और महामुख कुमार को देखकर श्रीमान् विश्वमुख ब्रह्मा ने उसको विश्वरूप लोकपालक महेश्वर समझा और उस पुराणपुरुष, योगिवर, देवदेवेश की लोकपितामह ब्रह्मा ने वन्दना की। तदनन्तर उस सद्योजात परमात्मा ईश्वर, महादेव, ब्रह्म का हृदय में ध्यानकर ब्रह्मा विचार करने लगे।।११-१४।। सारे रहस्य को जानकर जगत्पति, देवेश श्वेत ने प्रसन्न हो अट्टहास किया जिससे उनके पार्श्व से श्वेत माला और श्वेत अंगराग से सुशोभित, ब्रह्मतेज से युक्त श्वेत वर्ण के सुनन्द, नन्दक, विश्वनन्द और नन्दन नामक तेजस्वी ऋषि उत्पन्न हुए।।१५-१६।। वे महात्मा श्वेत देव के शिष्य हुए, ब्रह्मज्ञानी वे ब्रह्मा के चारों ओर आसीन थे। उसी समय उस श्वेत वर्ण के श्वेत नामक महातेजस्वी महामुनि उत्पन्न हुए जिनसे महातेजस्वी नर ऋषि उत्पन्न हुए।।१७$\frac{1}{2}$।। तदनन्तर उन ऋषियों ने उस सद्योजात महेश्वर की कृपा छाया में आश्रय प्राप्त किया। द्विजो! इसलिए जो प्राणायाम परायण योगी और ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति उस विश्वेश्वर देव की शरण में जाते हैं वे सब निष्पाप, तेजस्वी और शुद्ध हृदय होकर ब्रह्मलोक को भी पारकर उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं।।१८-२०।।

वायु बोले—इसके उपरान्त तीसवाँ रक्त नामक कल्प है, जिसमें महातेजस्वी रक्त ने रक्तवर्ण धारण किया।।२१।। परमेष्ठी ब्रह्मा पुत्रकामना से ध्यान कर रहे थे, उनको महातेजस्वी और प्रतापी एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान्। स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ।।२३।।
ध्यानयोगं परं गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम्। स तं प्रणम्य भगवान्ब्रह्मा परमयन्त्रितः ।।२४।।
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत्। एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।२५।।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत्। ध्यायता पुत्रकामेन (ण) यस्मात्तेऽहं पितामह ।।२६।।
दृष्टः परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम। तस्माद्ध्यानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ।।२७।।
वेत्स्यसे मां महासत्त्व लोकधातारमीश्वरम्। एवमुक्त्वा ततः शर्वः अ(र्वस्त्व)ट्टहासं मुमोच ह ।।२८।।
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः। संबभूवुर्महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ।।२९।।
विरजश्च विवाहुश्च विशोको विश्वभावनः। ब्रह्मणा ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ।।३०।।
रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः। रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचनाः ।।३१।।
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः। मृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम् ।।३२।।
अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया। धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणाः स्वयम् ।।३३।।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम्। येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम् ।।३४।।
प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः। ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः ।।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।३५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते कल्पसंख्यानिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

और नेत्र रक्त वर्ण के थे जो रक्त माला और वस्त्र पहने हुए था ।।२२$\frac{१}{२}$।। उस रक्ताम्बरधारी महादेव कुमार को देखकर ब्रह्मा ध्यानमग्न हो गये। ध्यान योग से उन्होंने जाना कि यह रक्तविग्रह कुमार स्वयं विश्वेश्वर है। तब भगवान् ब्रह्मा ने विनम्र भाव से उस कुमार को प्रणाम किया और उस ब्रह्मस्वरूप महादेव का चिन्तन करने लगे। परमेष्ठी ब्रह्मा के इस प्रकार ध्यान करने पर महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रेमपूर्वक ब्रह्मा से कहा ।।२३-२५$\frac{१}{२}$।। पितामह! जिसलिए तुमने पुत्रकामना से मेरा ध्यान किया है, और सत्तम! तुमने परम भक्ति और ध्यान योग से मेरा दर्शन किया है, इसलिए महातत्त्व! महातपस्वी तुम प्रत्येक कल्प में परम ध्यान के द्वारा लोकपालक, ईश्वर मुझको भली-भाँति जानोगे ।।२६-२७$\frac{१}{२}$।। इस प्रकार कहकर भगवान् शर्व ने अट्टहास किया। तदुपरान्त उस शर्व के चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए जिनका नाम विरज, विवाहु, विशोक और विश्वभावन था। वे चारों शुद्ध बुद्धि, महात्मा, ब्रह्मण्य, वीर, ब्रह्मा के समान और अध्यवसायी थे ।।२८-३०।। सभी रक्ताम्बरधारी, रक्तमाला और रक्त लेप से युक्त थे, सब के अंगों में रक्त विभूति लगी हुई थी, उनके मुख और लोचन भी रक्तवर्ण के ही थे ।।३१।। इसके अनन्तर उन ब्रह्मज्ञानी, अध्यवसायी महात्माओं ने उस वामदेव सम्बन्धी ज्ञान का अभ्यास किया और उनकी स्तुति की। लोकहित और शिष्यों की हितदृष्टि से अखिल धर्मों का उपदेश कर पुनः स्वयं उसी अव्यय रुद्र महादेव में विलीन हो गये ।।३२-३३$\frac{१}{२}$।। द्विजश्रेष्ठ! जो अन्य व्यक्ति भी वामदेव महादेव का ध्यान करते और अनन्य भाव से उसकी शरण में आते हैं जो भी शुद्ध, बुद्ध और निष्पाप होकर उस रुद्रलोक को प्राप्त करते हैं जहाँ से पुनः लौटना दुर्लभ और असम्भव है ।।३४-३५।।

श्रीवायुमहापुराण का कल्पसंख्यानिरूपण नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२२।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

माहेश्वरावतारयोगः

वायुरुवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः। ब्रह्म यत्र महातेजाः पीतवर्णत्वमागतः ।।१।।
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान् ।।२।।
पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्यधरो युवा। पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः ।।३।।
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ब्रह्मा लोकेश्वरं प्रभुम्। मनसा लोकधातारं ववन्दे परमेश्वरम् ।।४।।
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं पराम्। अपश्यद्गां विरूपां च महेश्वरमुखच्युताम् ।।५।।
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम्। चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ।।६।।
द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम्। स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवीं महेश्वरीम् ।।७।।
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः। मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ।।८।।
एह्येहीति महादेवीं सोत्तिष्ठत्प्राञ्जलिर्भृशम्। विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशी कुरु ।।९।।
अथोवाच महादेवो रुद्राणी त्वं भविष्यसि। ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थे भविष्यसि ।।१०।।

अध्याय २३

माहेश्वरावतार योग

वायु बोले–इकतीसवाँ कल्प पीतवासा कहलाता है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्मा पीतवर्ण के हो जाते हैं ।।१।। उस कल्प में पुत्रकामना से ध्यान करनेवाले परमेष्ठी ब्रह्मा को महातेजस्वी पीतवस्त्रधारी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके अङ्गों पर पीत चन्दन का लेप लगा हुआ था, जिसकी ग्रीवा पीत माला से सुशोभित थी, जो युवक था, जिसके गले में पीत यज्ञोपवीत और सिर पर पीली पगड़ी शोभित थी, बड़ी-बड़ी भुजाओंवाला वह कुमार अत्यन्त तेजस्वी था। ब्रह्मा ने उस ध्यानमग्न, लोकेश्वर, लोकपालक प्रभु को देखकर मन-ही-मन प्रणाम किया ।।२-४।। तदनन्तर ध्यानमग्न ब्रह्मा ने उस महेश्वर के मुख से उत्पन्न एक विचित्र गाय को देखा, जिसके चार पैर, चार मुख, चार हाथ, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींगें, चार दाँत और चार मुख थे। जो चारों ओर मुखवाली, बत्तीस लोकों से युक्त, ईश्वरी थी। सब देवों से पूजित महादेव उस महेश्वरी महादेवी को देखकर बार-बार कहने लगे कि तुम स्मृति, बुद्धि और मति हो, यहाँ आओ, यहाँ आओ ।।५-८$\frac{१}{२}$।। महादेव के आह्वान को सुनकर वह देवी विनम्र होकर हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी। उसको सामने खड़ा देखकर महादेव ने कहा कि तुम अपनी योगमाया से विश्व में व्याप्त होकर सारे संसार को वश में करो। देखो, तुम्हारा नाम भविष्य में रुद्राणी होगा। तुम्हारे द्वारा ब्राह्मणों का हित और परमार्थ-सिद्धि होगी ।।९-१०।।

अथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः। प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।।११।।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम्। ब्रह्मा लोकनमस्कार्यः प्रपद्ये तां महेश्वरीम् ।।१२।।
गायत्री तु ततो रौद्री ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः। इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ।।१३।।
जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम्। प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ।।१४।।
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतम्। ऐश्वर्यं ज्ञानसंपत्तिं वैराग्यं च ददौ पुनः ।।१५।।
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः। ततोऽस्य सर्वतो दीप्ताः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ।।१६।।
पीतमाल्याम्बरधराः पीतगन्धविलेपनाः। पीतोष्णीषशिराश्चैव पीतास्याः पीतमूर्धजाः ।।१७।।
ततो वर्षसहस्रान्त उषित्वा विमलौजसः। योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिणः ।।१८।।
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम्। उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ।।१९।।
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ते महेश्वरम्। अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ।।२०।।
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरेजा ब्रह्मवर्चसः। प्रविशन्ति महादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः ।।२१।।

वायुरुवाच

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः। पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामतः ।।२२।।
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके। स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ।।२३।।

इतना आदेश देने के अनन्तर उस देवाधिदेव ने पुत्रेच्छु ध्यानपरायण ब्रह्मा को वह माहेश्वरी गाय दे दी। तत्पश्चात् लोकपूज्य ब्रह्मा ध्यान योग से उस माहेश्वरी को जानकर उसकी शरण में आये ।।११-१२।। और संयमपूर्वक उस रौद्री गायत्री का ध्यानकर रौद्री, महादेव से हुई, रुद्रलोक नमस्कृत वैदिकी विद्या गायत्री का जपकर पुनः महादेव की शरण में गये। महादेव ने तब ब्रह्मा को दिव्य योग, ऐश्वर्य, ज्ञान, सम्पत्ति और वैराग्य प्रदान किया ।।१३-१५।। इसके अनन्तर महादेव ने भीषण अट्टहास किया, जिससे उनके शरीर से तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुए; जो कि पीली माला, पीत वस्त्र, पीत अंगराग धारण किये हुए थे, जिनके सिर पर पीली पगड़ी थी, जिनके मुख और केश भी पीत वर्ण के थे। वे सब तेजस्वी कुमार हजार वर्ष तक निवास करने के बाद रुद्र की देह में प्रवेश कर गये। इतने दिनों तक ये योगधारी, ब्राह्मणों के हितैषी और स्नान करनेवाले धर्म और योग से बलवान् होकर दीर्घकाल तक यज्ञ करनेवाले ऋषियों को योगविषयक उपदेश देते रहे ।।१६-१९।। इस विधान से दूसरे भी जो जितेन्द्रिय और ध्यानासक्त व्यक्ति महेश्वर की शरण में जाते हैं, वे सब भी निष्पाप और रजोरहित होकर ब्रह्मतुल्य तेजस्वी हो जाते हैं और महादेव रुद्र की शरण में प्रवेश कर फिर कभी जन्म ग्रहण नहीं करते ।।२०-२१।।

वायु बोले—ब्रह्म के उस पीतवर्ण कल्प के बीत जाने पर सित नामक दूसरा कल्प हुआ ।।२२।। उस समय दिव्य सहस्र वर्ष तक जगत् एकार्णव रूप में था। ब्रह्मा दुःखी होकर सृष्टि करने के लिए चिन्ता करने लगे ।।२३।। पुत्र कामना

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः । कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः ।।२४।।
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् । कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ।।२५।।
कृष्णाम्बरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् । कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्त्रगनुलेपनम् ।।२६।।
स तं दृष्ट्वा महात्मानममरं घोरमन्त्रिणम् । ववन्दे देवदेवेशं विश्वेशं कृष्णपिङ्गलम् ।।२७।।
प्राणायामपरः श्रीमान्हृदि कृत्वा महेश्वरम् । मनसा ध्यानसंयुक्तं प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ।।२८।।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् । एवं वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।२९।।
मुमोच भगवान्रुद्रः अ (द्रस्त्व) दृहादु महास्वनम् । अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्त्रगनुलेपनाः ।।३०।।
चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः । कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः कृष्णास्याः कृष्णवाससः ।।३१।।
तैश्चाट्टहासः सुमहान्हुंकारश्चैव पुष्कलः । नमस्कारश्च सुमहान्पुनः पुनरुदीरितः ।।३२।।
ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत्पारमेश्वरम् । उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ।।३३।।
योगेन योगसंपन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् । अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ।।३४।।
एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः । स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ।।३५।।
ततस्तस्मिन्गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके । अन्यः प्रवर्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ।।३६।।
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे । ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।।३७।।

से चिन्ता करनेवाले परमेष्ठी प्रभु ब्रह्मा के ध्यान करते ही उनका वर्ण काला हो गया। महातेजस्वी ब्रह्मा ने तब देखा कि एक कुमार उत्पन्न हुआ है ।।२४½।। जो कुमार कृष्णवर्ण, महावीर्य, अपने तेज से दीप्यमान, काला वस्त्र पहने हुए, काली पगड़ी और कृष्ण यज्ञोपवीतधारी, कृष्ण मौलिशाली एवं काली माला तथा काला लेपन लगाये हुए है। ब्रह्मा ने उस महात्मा देवकुमार को देखकर कृष्णपिङ्गलाभ देवाधिपति विश्वेश्वर को प्रणाम किया ।।२५-२७।। प्राणायामपरायण ब्रह्मा हृदय में महेश्वर का ध्यानकर मन-ही-मन उस ध्यानयोगी यतीश्वर के शरणापन्न हुए और अघोर इत्यादि मन्त्र से ब्रह्मा ने ब्रह्म का अनुचिन्तन किया। इस प्रकार परमेष्ठी ब्रह्मा ध्यान कर ही रहे थे कि भगवान् रुद्र ने घोर स्वर में अट्टहास किया ।।२८-२९½।। जिससे उनके पार्श्व से कृष्ण वर्ण के महात्मास्वरूप चार कुमार उत्पन्न हो गये। वे काला चन्दन लगाये, काली माला, काली पगड़ी और काला वस्त्र पहने हुए थे, और उनका मुँह भी काला था। उन कुमारों ने महान् हुंकार के साथ अट्टहास किया और बारम्बार नमस्कार शब्द का उच्चारण किया ।।३०-३२।। उन महाप्रभुओं ने योगबल से सहस्र वर्ष तक परमेश्वर की उपासना की और उस योगरहस्य को शिष्यों को दे दिया। योगसम्पन्न होकर उन कुमारों ने योग द्वारा मन-ही-मन शिव का ध्यान करते-करते विश्वेश्वर के निर्मल और निर्गुण स्थान में प्रवेश किया। इसी प्रकार इस योगविधान से जो दूसरे भी द्विजातिगण विधानज्ञ होकर रुद्र का स्मरण करेंगे, वे शाश्वत स्थान में गमन करेंगे ।।३३-३५।। उस भयानक कृष्णकल्प के बीत जाने पर दूसरा विश्वरूप नामक कल्प हुआ। कल्पान्तकालीन संहार कार्य के समाप्त हो जाने और सृष्टि रचना के पुनः आरम्भ होने पर परमेष्ठी ब्रह्मा पुत्र की कामना से ध्यान करने लगे ।।३६-३७।। उसी समय

प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती । विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ।।३८।।
विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् । अथ तं मनसा ध्यात्वा मुक्तात्मा वै पितामहः ।।३९।।
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं शंकरं प्रभुम् । ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते ।।४०।।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम् । उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि ।।४१।।
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम् । (*उवाच भगवान्ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा ।।४२।।
यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगं विश्वमीश्वरम् । एतद्वेदितुमिच्छामि कश्चायं परमेश्वरः ।।४३।।
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी । चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दन्ता चतुःस्तनी ।।४४।।
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता । किंनामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्या वाऽपि कर्मतः ।।४५।।

महेश्वर उवाच

रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम् । शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथातथम् ।।४६।।
अयं यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः । यस्मिन्भवादयो देवाः षट्त्रिंशन्मनवः स्मृताः ।।४७।।
ब्रह्मस्थानमिदं वाऽपि यदा प्राप्तं त्वया विभो । तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंसत्तमो ह्ययम् ।।४८।।
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयंभुवः । पुरस्तात्तव देवेश ताञ्शृणुष्व महामुने ।।४९।।

महानाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई। पितामह ने योगासक्तचित्त से विश्वमाल्य और विश्ववसनधारी, विश्वयज्ञोपवीती, विश्वोष्णीषधारी, विश्वगन्धी, विश्वस्थ, महाभुज, सर्वगामी, सर्वेश्वर ईशान देव का मन-ही-मन ध्यान करके वन्दना की और कहा-ईशान! महादेव! तुम्हें मेरा नमस्कार है ।।३८-४०।। इस प्रकार ध्यानपरायण पितामह के प्रणाम करने पर भगवान् ईशान ने कहा-"हम आपसे प्रसन्न हैं, क्या चाहते हैं, कहिये ?" तब ब्रह्मा ने प्रणत होकर महेश्वर की स्तुति की और अत्यन्त प्रसन्नचित्त से बोले-"देव! आपका जो यह विश्वगामी, विश्वेश्वर विश्वरूप है उसे हम जानने की इच्छा करते हैं। यह परमेश्वर कौन है ? ।।४१-४३।। यह भगवती कौन है, जो चार पैर, चार मुख, चार सींग, चार मुख, चार दाँत, चार स्तन, चार हाथ, चार आँखवाली और विश्वरूपा कहलाती है ? इसका क्या नाम है ? इसकी आत्मा और रूप कैसे है ? इसका पराक्रम और कर्म कैसे हैं ? ।।४४-४५।।

महेश्वर बोले-'मन्त्रों का यह रहस्य पावन और पुष्टिवर्द्धन है। आदि सर्ग के इस परम गुह्य तत्त्व को यथार्थ रूप से सुनिये ।।४६।। यह जो कल्प बीत रहा है, वह विश्वरूप कहलाता है। भवादि देवगण इस कल्प के छत्तीसवें मनु कहलाते हैं ।।४७।। विभो! जबसे आपने इस ब्रह्म पद को प्राप्त किया है, तब से यह तैंतीसवाँ कल्प चल रहा है ।।४८।। देवेश महामुनि! आपके समक्ष ही जो शत-शत और सहस्र-सहस्र स्वयंभू बीत चुके हैं, उनकी कथा सुनें ।।४९।। आप

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे महातपः। गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ।।५०।।
त्वयि योगश्च सांख्यं च तपो विद्याविधिः क्रिया। ऋतं सत्यं च यद्ब्रह्म अहिंसा संततिक्रमाः ।।५१।।
ध्यानं ध्यानवपुः शान्तिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः। कान्तिः शान्तिः स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धिः सरस्वती ।।५२।।
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव लज्जा शान्तिः प्रतिष्ठिता ।।५३।।
षड्विंशद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता। प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ।।५४।।
सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्यवंभुवः। चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता ।।५५।।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ।।५६।।
अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं संप्रसृजमानां सुरूपाम्।
अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्वा ।।५७।।
एवमुक्त्वा महादेवः अ(वस्त्व)ट्टहासमथाकरोत्। बलितास्फोटितरघं कहाकहनदं तथा ।।५८।।
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः सर्वरूपाः कुमारकाः। जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे ।।५९।।
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः। दिव्यं वर्षसहस्रं तु उपासित्वा महेश्वरम् ।।६०।।
धर्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम्। शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ।।६१।।

वायुरुवाच

ततो विस्मयमापन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः। प्रपन्नस्तु महादेवं भक्तियुक्तेन चेतस ।।
उवाच वचनं सर्वं श्वेतत्वं ते कथं विभो ।।६२।।

पहले आनन्द नाम से प्रसिद्ध थे। आपने बड़ी तपस्या की थी। आप गालव्य गोत्र में उत्पन्न हुए और तपस्या के बल से मेरे पुत्र हुए थे ।।५०।। योग, सांख्य, तपस्या, विद्या, विधि व्यवस्था, क्रिया, ऋत, सत्य, ब्रह्म, अहिंसा, अविच्छिन्न सन्तति, ध्यान, ध्यानयोग, शरीर-शान्ति, विद्या, अविद्या, मति, धृति, कान्ति, शान्ति, स्मृति, मेधा, लज्जा, शुद्धि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, लज्जा और शान्ति आदि आपमें प्रतिष्ठित थे। हे ब्रह्मन्! यह जो बत्तीस अक्षरों के नामवाली और छब्बीस गुणों से विराजमान है इस माहेश्वरी प्रकृति को ही आप अपनी प्रसूति या जननी कहें ।।५१-५४।। यह चतुर्मुखी, जगद्योनि, गोरूपिणी प्रकृति देवी भगवती ही आपकी प्रसूति है। तत्त्वदर्शी इसे ही प्रधान वा प्रकृति नाम से कहते हैं ।।५५-५६।। इसका जन्म नहीं हुआ है, यह लोहित-शुक्ल, कृष्णा विश्वसृष्टिकारिणी और सुरूपा है। इसी गोरूपिणी विश्वरूपा गायत्री को जानकर हम अज और बुद्धिसम्पन्न हुए हैं ।।५७।। यह कहकर महादेव ने उच्च स्वर से अट्टहास किया, जिससे उनकी बगल से दिव्य रूपधारी कतिपय कुमार उत्पन्न हुए। इनमें कोई जटी, कोई मुण्डी, कोई शिखण्डी और कोई अर्द्धमुण्डी थे ।।५८-५९।। वे पराक्रमशाली कुमारगण योगविधान से हजार वर्षों तक महेश्वर की उपासना करते रहे। फिर शिष्ट जनों के लिए नियत योगमय धर्मोपदेश करके वे नियतात्मा कुमारगण रुद्र के शरीर में प्रवेश कर गये ।।६०-६१।।

वायु बोले-ऐसा सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा अत्यन्त विस्मित हो गये। भक्तियुक्त चित्त से महादेव की शरण में आकर उन्होंने कहा-विभो! यह आप में श्वेतत्व कैसे आया ।।६२।।

भगवानुवाच

श्वेतः कल्पो यदा ह्यासीदहं श्वेतस्ततोऽभवम् । श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिवः ।।६३।।
श्वेतास्थिमांसरोमा च श्वेतत्वक्श्वेतलोहितः । तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ ।।६४।।
मत्प्रसादाच्च देवेशः श्वेताङ्गः श्वेतलोहितः । श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ।।६५।।
यस्मादहं च देवेश त्वया गुह्ये पदे स्थितः । विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातः सनातनः ।।
सद्योजातेति ब्रह्मैतद्गुह्यं चैव प्रकीर्तितम् ।।६६।।
तस्माद्गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यन्ति द्विजातयः । तत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।६७।।
यदाऽहं च पुनस्त्वासं लोहितो नाम नामतः । स मत्कृतेन वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः ।।६८।।
तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसंनिभा । लोहिताक्षस्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता ।।६९।।
ततोऽस्य लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्यये । वामत्वाच्चैव योगस्य वामदेवत्वमागतः ।।७०।।
तथापि हि महासत्त्व त्वयाऽहं नियतात्मना । विज्ञातः श्वेतवर्णेन तस्माद्वर्णोत्तमः स्मृतः ।।
ततोऽहं वामदेवेति ख्यातिं यातो महीतले ।।७१।।
ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः । विज्ञाय चेमां रुद्राणीं गायत्रीं मातरं विभो ।।७२।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विरजा ब्रह्मवर्चसः । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।७३।।

भगवान् बोले—चूँकि, यह श्वेत कल्प है इसलिए हम इस कला के प्रारम्भ से ही श्वेत हो गये हैं। हमारी पगड़ी, माला, कपड़ा, अस्थि, मांस, रोम, त्वक् और रक्त भी श्वेत हो गया है। हम श्वेत नाम से ही विख्यात हुए इसी कारण यह श्वेत कल्प कहलाया ।।६३-६४।। हमारे प्रसाद से इस समय देवाधिप श्वेताङ्ग, श्वेत लोहित एवं ब्रह्म नाम्नी गायत्री श्वेत वर्ण की हो गयी हैं ।।६५।। हे देवेश! जिस कारण हम भी तुम्हारे साथ गुह्य पद में अवस्थित थे; इसलिए अपनी तपस्या के प्रभाव से हम सद्योजात सनातन पुरुष के रूप में तुम्हारे द्वारा जाने गये ।।६६।। अभिनव हमारी मूर्ति गुह्य ब्रह्म के रूप में कही जाती है। इसलिए जो द्विजातिगण हमारे उस गुह्य रूप को जानेंगे, वे ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त करेंगे, जहाँ जाने पर फिर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता ।।६७।। जब हम लोहित नाम से विख्यात थे, तब हमारे वर्ण के अनुसार उस कल्प का भी नाम लोहित पड़ा ।।६८।। गोरूपिणी गायत्री भी उस समय लोहित वर्णवाली विख्यात हुई। उसका मांस, अस्थि, अक्षि और स्तन लोहित हो गये ।।६९।। उसने स्वयं लोहित वर्ण दूध की भाँति रूप धारण किया। रंग के हेर-फेर हो जाने से अर्थात् लाल रंग के हो जाने से और योग में भी वामता आ जाने से हम वामदेव हो गये, किन्तु महासत्त्व! आप हमें नियत चित्त से श्वेत वर्ण ही समझते रहे; इसी से हम वर्णोत्तम कहलाये। इसके बाद हमने महीतल में वामदेव के नाम से ख्याति लाभ की ।।७०-७१$\frac{१}{२}$।। हे विभो! जो द्विजाति हमारे वामदेवत्व को जानेंगे और इस रुद्राणी गायत्री माता को जानेंगे, वे सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विरजस्क और बह्मतुल्य तेजस्वी होंगे एवं रुद्रलोक में सदा निवास

यदा तु पुनरेवायं कृष्णवर्णो भयानकः। मत्कृतेन च वर्णेन मत्कल्पः कृष्ण उच्यते ॥७४॥
तत्राहं कालसंकाशः कालो लोकप्रकाशनः। विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन् घोरो घोरपराक्रमः ॥७५॥
तस्माद्विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले। तेषामघोरः शान्तश्च भविष्याम्यहमव्ययः ॥७६॥
तस्माद्विश्वत्वमापन्नं ये मां पश्यन्ति भूतले। तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव तु ॥७७॥
तस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः। विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता ॥७८॥
सर्वरूपास्तथा च मे संवृत्ता मम पुत्रकाः। चत्वारस्ते समाख्याताः पादा वै लोकसंमताः ॥७९॥
तस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजात्वं मे भविष्यति। सर्वभक्ष्या च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति ॥८०॥
मोक्षो धर्मस्तथाऽर्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम्। तस्माद्वेत्ता च वैद्यं च चतुर्धा वै भविष्यति ॥८१॥
भूतग्रामश्च चत्वार आश्रमाश्चतु(त्वा)रस्तथा। धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो मम पुत्रकाः ॥८२॥
तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम्। चतुर्धाऽवस्थितं चैव चतुष्पादं भविष्यति ॥८३॥
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा। जनस्तपश्च शान्तश्च रुद्रलोकस्ततः परम् ॥८४॥
(+अष्टाक्षरः स्मृतो लोकः स्थाने स्थाने तदक्षरम्। भुवं दिवं परं चैव पादाश्चत्वार एव च ॥८५॥
भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम्)। स्वर्लोको हि तृतीयस्तु चतुर्थस्तु महः स्मृतः ॥
तत्र लोकः परं स्थानं परं तद्योगिनां स्मृतम् ॥८६॥

करेंगे ॥७२-७३॥ जब फिर हमारा शरीर घोर कृष्ण वर्ण का हुआ, तब हमारे परिवर्तित वर्ण के अनुसार वह कल्प कृष्ण कल्प कहलाया ॥७४॥ उस समय हम लोकप्रकाशक काल के समान काल कहलाये। ब्रह्मन्! आपने हमें घोर पराक्रमी समझा। इसलिए पृथ्वांतल में जो हमें घोराकार से जानेंगे, उनके निमित्त हम सदैव अघोर, अव्यय और शान्त रूप से विराजमान रहेंगे। इस प्रकार भूतल में जो हमारा विश्वरूप से दर्शन करेंगे, उनके लिए हम सदा शिव और सौम्य होकर वर्तमान रहेंगे ॥७५-७७॥ इसलिए यह कल्प विश्वरूप के नाम से प्रसिद्ध हुआ है और इस सावित्री का भी नाम विश्वरूपा हुआ है ॥७८॥ हमें सर्वरूप नामक उस समय चार पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों पुत्र धर्म के लोकसम्मत चतुष्पद स्वरूप हैं। इसके अनन्तर हमें नाना वर्णत्व और प्रजात्व हुआ अर्थात् बहुविध पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें वर्णानुसार आगे चलकर कोई सर्वभोगी और कोई पवित्र हुए ॥७९-८०॥ मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम ये ही चार पुत्र हैं। इन्हीं से वेत्ता और वैद्य भी चार प्रकार के होते हैं। चार भूतग्राम और चतुराश्रम भी धर्म के चार पद स्वरूप एवं हमारे चार पुत्र हैं ॥८१-८२॥ इसलिए यह सचराचर जगत् चतुर्युगावस्था में अवस्थित और चार भागों में विभक्त है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन, तप और सत्य लोक एवं इसके ऊपर भी रुद्रलोक, ये ही आठ लोक हैं, जिनमें कोई-कोई क्षयशील भी है। भूर्लोक और स्वर्लोक प्रभृति चार पाद के हैं ॥८३-८५॥ उनके मध्य भूर्लोक प्रथम पाद, भुवर्लोक द्वितीय स्थान है, यही योगियों के द्वारा प्राप्य है ॥८६॥ जो निर्मम, निरहङ्कार, काम, क्रोध-हीन, ध्याननिष्ठ योगी हैं, वे ही उस लोक का अवलोकन कर सकते

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

निर्ममा निरहंकाराः कामक्रोधविवर्जिताः। द्रक्ष्यन्ते तद्विदो युक्ता ध्यानतत्परयुञ्जकाः ।।८७।।
यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती। तस्माच्च पशवः सर्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः ।।
तस्माच्चैषां भविष्यन्ति चत्वारो वै पयोधराः ।।८८।।
सोमश्च मन्त्रसंयुक्तो तस्मान्मम मुखाच्च्युतः। जीवः प्राणभृतां ब्रह्मन्सर्वः पीत्वा स्तनैर्धृतम् ।।८९।।
तस्मात्सोममयं चैतदमृतं चैव संज्ञितम्। चतुष्पादा भविष्यन्ति श्वेतत्वं चास्य तेन तत् ।।९०।।
यस्माच्चैवं क्रिया भूत्वा द्विपादा वै महेश्वरी। दृष्टा पुनस्त्वया चैषा सावित्री लोकभाविनी ।।
तस्माद्वै द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः स्मृताः ।।९१।।
यस्माच्चैवमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी। दृष्टा त्वया महासत्त्वा सर्वभूतधरा परा ।।९२।।
तस्मात्तु विश्वरूपत्वमजानां वै भविष्यति। अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति ।।९३।।
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः। *तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः ।।९४।।
तपसा भावितात्मानो ये वै द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः। ईशत्वे च शिवत्वे च सर्वगं सर्वतः स्थिरम् ।।९५।।
रजस्तमोविनिर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं भुवि। तत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।९६।।
इत्येवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः। प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः ।।९७।।

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश विश्वरूपो (प) महेश्वरः (र)। इमास्तव महादेव तनवो लोकवन्दिताः ।।९८।।

हैं। जिसलिए आपने चार पैरवाली सरस्वती का साक्षात्कार किया है, इसी से आपके सब पशु चार पैरवाले होंगे। इसी से उनके स्तन भी चार ही होंगे। ब्रह्मन्! सभी प्राणियों का प्राणस्वरूप मन्त्रमय सोम हमारे मुख से च्युत हुआ है, इसी से जीवधारियों ने उसे पीकर स्तनों में धारण किया है। इसी से वह सोममय और अमृत भी कहलाता है। सोम का वर्ण श्वेत होता और उसके चार पाद होते हैं ।।८७-९०।। जिस कारण आपने लोकभाविनी माहेश्वरी सावित्री को दो पैरोंवाली देखा है, उसी प्रकार आपके द्वारा सृष्ट नरगण, द्विपद और दो स्तनवाले होंगे ।।९१।। जो सर्ववर्णा, सर्वभूतधारिणी, महासत्त्वशालिनी, परम, जन्मरहित माहेश्वरी देवी हैं, उनका आपने साक्षात्कार किया है, इसलिए अन्य देवगण विश्वरूप होंगे और महातेजस्वी अज भी विश्वरूप धारण करेंगे ।।९२-९३।। इनके मुख में अमोघरेता हुताशन रहेंगे, इसलिए पशु रूपी हुताशन सर्वगत और मेध्य होंगे। जो तपस्वी द्विज हमें सर्वगामी ईश्वर शिव रूप में देखेंगे, वे रज और तमोगुण से मुक्त होकर मानव शरीर को छोड़ने के बाद हमारे समीप आवेंगे, जहाँ से कि वे फिर कभी नहीं लौटेंगे ।।९४-९६।। हे द्विजगण! जब रुद्र ने भगवान् ब्रह्मा से इस प्रकार कहा, तब पितामह ने नम्र होकर फिर कहा ।।९७।।

ब्रह्म बोले–"देव! देवेश! भगवन्! आप विश्वरूपधारी महेश्वर हैं। महादेव! आपके ये शरीर लोकपूज्य हैं; किन्तु

---

* इदमर्धं नास्ति घ. ङ. पुस्तकयोः।

विश्वरूप महासत्त्व कस्मिन्काले महाभुज। कस्यां वा युगसंभूत्यां द्रक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।।९९।।
केन वा तत्त्वयोगेन ध्यानयोगेन केन वा। तनवस्ते महादेव शक्या द्रष्टुं द्विजातिभिः ।।१००।।

भगवानुवाच

तपसा नैव योगेन दानधर्मफलेन वा। न तीर्थफलयोगेन ऋतुभिर्वा सदक्षिणैः ।।१०१।।
न वेदाध्यापनैर्वाऽपि न वित्तेन निवेदनैः। शक्योऽहं मानुषैर्द्रष्टुमृते ध्यानात्परं न हि ।।१०२।।
साध्वो नारायणश्चैव विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः। भविष्यतीह नाम्ना तु वाराहो नाम विश्रुतः ।।१०३।।
चतुर्बाहुश्चतुष्पादश्चतुर्नेत्रश्चतुर्मुखः। तदा संवत्सरो भूत्वा यज्ञरूपो भविष्यति ।।
षडङ्गश्च त्रिशीर्षश्च त्रिस्थानस्त्रिशरीरवान् ।।१०४।।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगम्। एतस्य पादाश्चत्वारः अ(रश्चा)ङ्गानि क्रतवस्तथा ।।१०५।।
भुजाश्च वेदाश्चत्वार ऋतुः संधिमुखानि च। द्वे मुखे द्वे च अयने नेत्राश्च चतुरस्तथा ।।१०६।।
शिरांसि त्रीणि पर्वाणि फाल्गुन्याषाढकृत्तिकाः। दिव्यान्तरक्षिभौमानि त्रीणि स्थानानि यानि तु ।।
संभवः प्रलयश्चैव आश्रमौ द्वौ प्रकीर्तितौ ।।१०७।।
स यदा कालरूपाभो वराहत्वे व्यवस्थितः। भविष्यति यदा साध्यो विष्णुर्नारायणः प्रभुः ।।१०८।।
तदा त्वमपि देवेश चतुर्वक्त्रो व्यवस्थितः। ब्रह्मलोकनमस्कार्यो विष्णुर्नारायणः प्रभुः ।।१०९।।
एकार्णवे प्लवे चैव शयानं पुरुषं हरिम्। यदा द्रक्ष्यसि देवेशं ध्यानयुक्तं महामुनिम् ।।११०।।

हम जानने की इच्छा करते हैं कि विश्वरूप! महासत्त्व, महाभुज! कब किस काल में और किस युग में द्विजातिगण आपको देख सकेंगे? महादेव! किस तत्त्वयोग से, किस ध्यान धारणा से द्विजातिगण आपकी मूर्ति का दर्शन कर सकेंगे?" ।।९८-१००।।

भगवान् बोले-'तपस्या, योग, दानधर्म के फल, तीर्थाटन, दक्षिणा सहित यज्ञ, वेदों का अध्यापन, धनों का दान आदि से नहीं बल्कि केवल ध्यान के द्वारा ही मनुष्य हमें देख सकते हैं ।।१०१-१०२।। त्रिभुवनपति नारायण विष्णु ही एकमात्र साधनीय हैं। वे वाराह नाम से विश्रुत होंगे ।।१०३।। उन्हें चार बाहु, चार पैर, चार नेत्र और चार मुख होंगे उस समय वे संवत्सर होकर यज्ञस्वरूप होंगे। वे षडङ्ग, त्रिशीर्ष, त्रिस्थान और त्रिशरीरवान् होंगे ।।१०४।। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चारों युग उनके चार पाद होंगे। सकल यज्ञ उनके अङ्ग, चारों वेद चारों भुजाएँ, ऋतु और ऋतु-सन्धि उनके मुख, दोनों अयन और दोनों अयनमुख उनकी चारों आँखें, पर्व यानी फाल्गुनी, आषाढ़ी, कृत्तिका उनके तीनों सिर, दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम ये तीनों स्थान उनके मस्तकत्रय एवं उत्पत्ति और प्रलय उनका आश्रम कहलाता है ।।१०५-१०७।। वही प्रभु नारायण जब काल रूप से वाराह देह में प्रतिष्ठित होकर सबके द्वारा आराधनीय होंगे, तब देवेश! आप भी चतुरानन होंगे। भगवान् नारायण तब ब्रह्मलोक निवासियों के लिए भी नमस्कारणीय होंगे ।।१०८-१०९।। जब संसार एकार्णवीभूत हो जायगा, तब आप उस प्रवाह के बीच पुरुषोत्तम हरि को ध्यानस्थ महामुनि की तरह शयन

तदा वां मम योगेन मोहितौ नष्टचेतसौ। अन्योन्यस्पर्धिनौ रात्रावविज्ञाय परस्परम् ।।१११।।
एकैकस्योदरस्थस्तु दृष्ट्वा लोकांश्चराचरान्। विस्मयं परमं गत्वा ध्यानाद्बुद्ध्वा तु मानुषौ ।।११२।।
ततस्त्वं पद्मसंभूतः पद्मनाभः सनातनः। पद्माङ्कितस्तदा कल्पे ख्यातिं यास्यसि पुष्कलाम् ।।११३।।
ततस्तस्मिंस्तदा कल्पे वाराहे सप्तमे प्रभोः। पुनर्विष्णुर्महातेजाः कालो लोकप्रकालनः ।।
मनुर्वैवस्वतो नाम तव पुत्रो भविष्यति ।।११४।।
तदा चतुर्युगावस्थे कल्पे तस्मिन्युगान्तके। भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ।।११५।।
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे। चतुःशिष्याः शिवयुक्ता भविष्यन्ति तदा मम ।।११६।।
श्वेतश्चैव शिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः। चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।।११७।।
ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम्। तत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।।११८।।
पुनस्तु मम देवेशो द्वितीयद्वापरे प्रभुः। प्रजापतिर्यदा व्यासः सत्यो नाम (*भविष्यति ।।११९।।
तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः। भविष्यामि कलौ तस्मिंल्लोकानुग्रहकारणात् ।।१२०।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्या नाम नामतः)। दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ।।१२१।।
प्राप्य योगं तथा ज्ञानं ब्रह्म चैव सनातनम्। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।१२२।।

करते हुए देखेंगे ।।११०।। उस समय हमारी माया से मोहित होकर आपकी चेतना नष्ट हो जायगी। रात होने के कारण आप दोनों ही एक-दूसरे को नहीं जान सकेंगे, आपस में स्पर्द्धा करेंगे। उस समय आप दोनों ही एक-दूसरे के उदर में चराचर लोक को देखकर अत्यन्त विस्मित हो जायँगे और ध्यान द्वारा अपने को मनुष्य समझने लगेंगे ।।१११-११२।। उस कल्प में आप पद्मनाभि, पद्मजन्मा, पद्माङ्कित आदि नामों से विपुल ख्याति प्राप्त करेंगे। प्रभु के उस सप्तम वाराह कल्प में विष्णु महातेजस्वी काल होकर संसार का संहार करेंगे। उस समय वैवस्वत मनु आपके पुत्र होंगे ।।११३-११४।। हम उस समय उस चतुर्युग के उपसंहारक कल्प में शिखायुक्त श्वेत नामक महामुनि होंगे ।।११५।। हिमालय के शिखर पर रमणीय छागल नामक पर्वत के ऊपर हमारे श्वेत, श्वेतशिखर, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक चार शिष्य होंगे। ये चारों ही महात्मा ब्राह्मण वेदपारग और शिवध्यानानुरक्त होंगे। वे चारों ही ब्रह्मभूयिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मगति को देखकर ब्रह्म के समीप अर्थात् हमारे समीप आयेंगे, जहाँ से कि वे फिर नहीं लौटेंगे ।।११६-११८।। जब द्वितीय द्वापर युग में प्रभु प्रजापति देव-देव सत्य व्यास नाम से अभिहित होंगे, तब हम संसार के कल्याण के लिए सुतार नाम ग्रहण करेंगे। उस कलिकाल में सांसारिकों पर अनुग्रह करने के लिए हमें दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक और केतुमान् नामक चार पुत्र होंगे। वे योग तथा ज्ञान को प्राप्तकर एवं सनातन ब्रह्म को जानकर रुद्रलोक में गमन करेंगे, जहाँ से कि लौटा नहीं जाता है ।।११९-१२२।। तृतीय द्वापर में जब भार्गव नाम से व्यास रहेंगे, तब हम उस युगान्त में दमन नाम से प्रसिद्ध

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः। तदा ह्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके ।।१२३।।
तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः। विशोकश्च विकेशश्च विशापः शापनाशनः ।।१२४।।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।१२५।।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः। तदाऽप्यहं भविष्यामि सुहोत्री नाम नामतः ।।
तत्रापि मम सत्पुत्राश्चत्वारश्च तपोधनाः ।।१२६।।
भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठा योगात्मानो दृढव्रताः। सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः ।।१२७।।
प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषा। तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ।।१२८।।
पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा। तदा चापि भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ।।१२९।।
अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मा नैककर्मकृत्। चत्वारस्तु महाभागा विरजाः शुद्धयोनयः ।।१३०।।
पुत्रा मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः। सनकः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यस्य सनातनः ।।१३१।।
ऋतुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहंकृताः। मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।१३२।।
परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः। तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ।।१३३।।
शिष्याश्च मम ते दिव्या योगात्मानो दृढव्रताः। भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसंमतः ।।१३४।।
सुधामा विरजश्चैव शङ्खपाद्रव एव च। योगात्मानो महामानस्ते सर्वे दग्धकिल्बिषाः ।।१३५।।

होंगे ।।१२३।। उस समय भी हमें विशोक, विकेश, विशाप और शापनाशन नामक चार पुत्र होंगे ।।१२४।। वे महातेजस्वी पुत्रगण उसी योगविधान पद्धति से, जहाँ से नहीं लौटा जाता है, उस रुद्रलोक में गमन करेंगे ।।१२५।। चतुर्थ द्वापर में जब व्यास अङ्गिरा कहलावेंगे, तब हमारा सुहोत्री नाम होगा।१२६। उस समय में हमें सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। ये चारों ही तपस्वी, योगी, दृढ़व्रत और द्विजश्रेष्ठ होंगे। वे योग की सूक्ष्म गति को प्राप्त कर निष्पाप और विमल हो जायँगे और उसी मार्ग से वे भी रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१२७-१२८।। पंचम द्वापर में जब व्यास सविता कहलायेंगे, तब हम कङ्क के नाम से महातपस्वी मुनि कहलायेंगे ।।१२९।। सांसरिकों के प्रति अनुग्रह करने के लिए हम उस समय अनेक कर्मों के कर्त्ता और योगात्मा होंगे। हमें चार पुत्र होंगे। वे विरजस्क, शुद्धयोनि, महाभाग, योगात्मा, दृढ़व्रत, निर्मम और निरहंकार होंगे। उनका नाम सनक, सनन्दन, ऋतु और सनत्कुमार होगा। ये भी हमारे पास गमन करेंगे, जहाँ से पुनरावृत्ति दुर्लभ है ।।१३०-१३२।। फिर छठे द्वापर में जब मृत्यु व्यास होंगे तब हम लोकाक्षि के नाम से प्रसिद्ध होंगे ।।१३३।। उस समय भी हमें चार शिष्य होंगे। वे सभी योगात्मा, दृढ़व्रत, लोकमान्य, महात्मा और निष्पाप होंगे। उनका नाम सुधामा, विरजा, शङ्खपाद् और रव होगा। ये भी उसी मार्ग से जायँगे इसमें कुछ संशय नहीं है ।।१३४-१३५$\frac{१}{२}$।। पूर्व में जो महातेजस्वी विभु शतक्रतु थे, वही सप्तम द्वापर में जब शतक्रतु व्यास होंगे,

---

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यति न संशयः। सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ।।१३६।।
विभुर्नाम महातेजाः पूर्वमासीच्छतक्रतुः। तदाऽप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।।१३७।।
जैगीषव्येति विख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तदा ।।१३८।।
सारस्वतः सुमेधश्च वसुवाहः सुवाहनः। तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयुक्तिं समाश्रिताः ।।१३९।।
भविष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकपरायणाः। वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः + (परिवर्ते भविष्यति ।।१४०।।
कपिलश्चाऽऽसुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः। वाग्वलिश्च महायोगी सर्व एव महौजसः) ।।१४१।।
प्राप्य माहेश्वरं योगं ध्यानिनो दग्धकल्मषाः। मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।१४२।।
परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा। तदा चाहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः ।।१४३।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। पराशरश्च गार्ग्यश्च भार्गवो ह्यङ्गिरास्तथा ।।१४४।।
भविष्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः। सर्वे तपोबलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः ।।१४५।।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः। ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यन्ति तथैव ते ।।१४६।।
दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नाम नामतः। भविष्यति यदा विप्रास्तदाऽहं भविता पुनः ।।१४७।।
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नमोत्तमे। नाम्ना भृगोस्तु शिखरे तस्मात्तच्छिखरं भृगुः ।।१४८।।
तत्रैव मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः। बलबन्धुर्निरा (र) मित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः ।।१४९।।
योगात्मानो महात्मानो ध्यानयोगसमन्विताः। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकल्मषाः ।।१५०।।

तब हम उस युगान्तकाल में योगिश्रेष्ठ जैगीषव्य नाम से ख्यात होंगे ।।१३७$\frac{१}{२}$।। उस युग में भी चार पुत्र सारस्वत, सुमेध, वसुवाह और सुवाहन नाम के होंगे। वे महात्मा भी ध्यान योग का अवलम्बन कर उसी मार्ग से रुद्रलोक गमन करेंगे। आठवें द्वापर में वसिष्ठ व्यास होंगे ।।१३८-१४०।। उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और वाग्वलि नामक चार महात्मा मुनि उनके शिष्य होंगे। वे महातेजस्वी और महायोगी ध्यानबल से माहेश्वर योग को प्राप्तकर निष्पाप हो जायँगे और हमारे पास आ जायँगे, जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता है ।।१४१-१४२।। नवम परिवर्तन में सारस्वत व्यास होंगे। उस समय हम ऋषभ नाम से विख्यात होंगे ।।१४३।। उस समय भी हमें महातेजस्वी पराशर, गार्ग्य, भार्गव और अङ्गिरा नामक चार पुत्र होंगे। वे महात्मा ब्राह्मण वेदज्ञाता होंगे और तपोबलशाली होकर निग्रह-अनुग्रह के भी ज्ञाता होंगे ।।१४४-१४५।। ये तपस्विगण उसी योगविधान पद्धति से ध्यान का अवलम्बन करके उसी प्रकार हमारे पास पहुँचेंगे, जिस प्रकार कि और पिछले युगों में हमारे पुत्र पास आये थे। दसवें द्वापर में त्रिधामा व्यास होंगे। उस समय हम नगोत्तम हिमालय के भृगु नामक उन्नत और रम्य शिखर पर आविर्भूत होंगे ।।१४६-१४८।। उस काल में भी हमें बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृङ्ग और तपोधन नामक चार पुत्र होंगे, जो व्रत करने में दृढ़, योगासक्त, महात्मा और ध्यानावस्थित होंगे। ये भी निष्पाप

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

एकादशे द्वापरे तु तिष्ठद्व्यासो भविष्यति। तदाऽप्यहं भविष्यामि गङ्गाद्वारे कलेर्धुरि ।।१५१।।
उग्रा नाम महानादास्तत्रैव मम पुत्रकाः। भविष्यन्ति महौजस्काः सुवृत्ता लोकविश्रुताः ।।१५२।।
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः ।।
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परां गतिम् ।।१५३।।
द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा महामुनिः। भविष्यति महासत्त्वो व्यासः कविवरोत्तमः ।।१५४।।
ततोऽप्यहं भविष्यामि अत्रिर्नाम युगान्तिके। हैमकं वनमासाद्य योगमास्थाय भूतले ।।१५५।।
अत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः। भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः ।।१५६।।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः ।।१५७।।
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु। धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा ।।१५८।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि वालिर्नाम महामुनिः। वालि(ल)खिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने ।।१५९।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः। सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ।।१६०।।
महायोगबलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः। तेनैव योगमार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ।।१६१।।
यदा व्यासः सुरक्षस्तु पर्यायश्च चतुर्दश। तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके ।।१६२।।
वंशे त्वङ्गिरसः श्रेष्ठो गौतमो नाम योगवित्। तस्माद्भविष्यते पुण्यं गौतमं नाम तद्वनम् ।।१६३।।
तत्रापि नाम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तथा। अत्रिरुग्रतपाश्चैव श्रावणोऽथ स्त्रविष्ट(ष्ठ)कः ।।१६४।।

होकर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१४९-१५०।। एकादशवें द्वापर में तिष्ठत् व्यास होंगे। उस समय हम कलिकाल में गंगाद्वार में आविर्भूत होंगे। उस समय हमें उग्र नामक महानाद करनेवाले अत्यन्त बलशाली लोकविख्यात लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष और लम्बकेश नामक चार पुत्र होंगे। ये भी माहेश्वर योग को प्राप्तकर रुद्रलोक के लिए उद्यत होंगे और उसी मार्ग से उत्तम गति को प्राप्त करेंगे ।।१५१-१५३।। बारहवें द्वापर में शततेजा महामुनि व्यास होंगे। ये कवियों में श्रेष्ठ और महासत्त्वशाली होंगे। उस युगान्त में हम अत्रि नाम से विख्यात होंगे और महीतल के हैमक वन में योगसाधना करेंगे ।।१५४-१५५।। यहाँ भी हमें भस्म लगाये हुए, रुद्रलोकाभिलाषी महायोगी पुत्र होंगे। उनके नाम सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और सर्व होंगे। ये भी ध्यानयोग में आसक्त होकर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१५६-१५७।। क्रम से जब तेरहवाँ द्वापर आवेगा, तब नारायणधर्म व्यास होंगे। तब हम गन्धमादन पर्वत के पवित्र बालखिल्याश्रम में बालि नामक महामुनि होंगे। उस समय हमें सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक महायोगी, तपस्वी, ऊर्ध्वरेता चार पुत्र होंगे ।।१५८-१६०।। ये भी उसी योगमार्ग से गमन करेंगे, इसमें संशय नहीं है। चौदहवें द्वापर में जब सुरक्ष व्यास होंगे, तब हम फिर उस युगान्त में अङ्गिरा के वंश में गौतम नामक श्रेष्ठ योगी होंगे। हमारा आश्रम वन में तब से गौतमाश्रम के नाम से परिचित होगा ।।१६१-१६३।। फिर कलि के प्रारम्भ में हमें चार पुत्र उत्पन्न होंगे। अत्रि, उग्रतपा, श्रवण और श्रविष्टक उनके नाम होंगे। ये योगासक्त महात्मा ध्याननिष्ठ होकर पूर्वोक्त रूप से योगमार्ग का अवलम्बन करके रुद्रलोक में निवास

योगात्मानो महात्मानो ध्यानयोगपरायणाः। तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकनिवासिनः ।।१६५।।
ततः प्राप्ते पञ्चदशे परिवर्ते क्रमागते। आरुणिस्तु यदा व्यासो द्वापरे भविता प्रभुः ।।१६६।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजाः। तत्र वेदशिरा नाम अस्त्रं तत्पारमेश्वरम् ।।१६७।।
भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः। हिमवत्पृष्ठमाश्रित्य सरस्वत्या नगोत्तमे ।।१६८।।
तदाऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः। कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ।।१६९।।
योगात्मानो महात्मानो ब्रह्मिष्ठाश्चोर्ध्वरेतसः। तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकं गतास्तु ते ।।१७०।।
ततः षोडशमे चापि परिवर्ते क्रमागते। व्यासस्तु संजयो नाम भविष्यति तदा प्रभुः ।।१७१।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नाम नामतः। (*तस्माद्भविष्यते पुण्यं गोकर्णं नाम तद्वनम् ।।१७२।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। काश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः)
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परं पदम् ।।१७३।।
ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते। तदा भविष्यते व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः ।।१७४।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः। हिमवच्छिखरे चैव महातुङ्गे महालये ।।
सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् ।।१७५।।
तत्रापि मम ते पुत्रा ब्रह्मज्ञा योगवेदिनः। भविष्यन्ति महात्मानो मर्मज्ञा निरहंकृताः ।।१७६।।
उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महालयः। तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणां ध्यानसाधनम् ।।१७७।।
भविष्यन्ति तदा कल्पे सर्वे ते ध्यानयुञ्जकाः। ते तु संनिहिता योगे हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।।
महालये पदं शिप्त्वा प्रविष्टाः शिवमव्ययम् ।।१७८।।

करेंगे ।।१६४-१६५।। क्रम में पन्द्रहवें द्वापर के आने पर जब अरुणि प्रभु व्यास होंगे, तब हम वेदशिरा नाम से विख्यात होंगे। हे द्विजगण! उसी वेदशिरा नाम से मेरा महापराक्रमी शैव अस्त्र और एक वेदशीर्ष नामक पर्वत भी विख्यात होगा। वहीं सरस्वती के तट पर नगाधिराज हिमालय के पृष्ठभाग में हम आश्रम बनायेंगे ।।१६६-१६८।। वहाँ भी हमें कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगी, महात्मा, ब्रह्मिष्ठ और ऊर्ध्वरिता होकर उसी मार्ग से रुद्रलोक गमन करेंगे, जिससे पहले के लोग गये हैं ।।१६९-१७०।। फिर क्रमागत सोलहवें द्वापर में संजय प्रभु व्यास होंगे, तब हम गोकर्ण नाम से विख्यात होंगे। इसलिए उस वन का भी नाम गोकर्ण होगा ।।१७१-१७२।। वहाँ भी हमें काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक महाबलिष्ठ चार पुत्र होंगे। वे भी उसी मार्ग से परम पद प्राप्त करेंगे ।।१७३।। जब क्रमपूर्वक सत्रहवाँ द्वापर लौटेगा, तब देव कृतञ्जय व्यास होंगे। उस समय हमारा नाम गुहावासी होगा। ऊँचे हिमालय के शिखर पर हमारा महापुण्यजनक सिद्धक्षेत्र प्रतिष्ठित होगा ।।१७४-१७५।। वहाँ भी हमें उतथ्य, वामदेव, महाकाल और महालय नामक चार पुत्र होंगे। ये ब्रह्मज्ञ, योगवेत्ता, महात्मा, मर्मज्ञ और निरहङ्कारी होंगे। इनके शत सहस्र संख्यक शिष्य ध्यानसाधना में तत्पर रहेंगे। इस कल्प में सभी ध्यानयोगी होंगे। वे योगासक्त हृदय में महेश्वर

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

ये चान्येऽपि महात्मानः काले तस्मिन्युगान्तिके । ध्यानयुक्तेन मनसा विमलाः शुद्धबुद्धयः ।।
गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम् । तूर्णं तारयते जन्तून्दश पूर्वान्दशापरान् ।।१७९।।
आत्मानमेकविंशं च तारयित्वा महार्णवम् । मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः ।।१८०।।
ततोऽष्टादशमश्चैव परिवर्तो यदा भवेत् । तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः ।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः ।।१८१।।
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते । हिमवच्छिखरे पुण्ये शिखण्डी यत्र पर्वतः ।।
शिखण्डिनो वनं चापि ऋषिसिद्धनिषेवितम् ।।१८२।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः । वाचस्त्रवा ऋत्ती (ची) कश्च शावासश्च दृढव्रतः ।।१८३।।
योगात्मानो महासत्त्वाः सर्वे ते वेदपारगाः । प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं व्रजन्ति ते ।।१८४।।
ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते । व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः ।।१८५।।
तत्राप्यहं भविष्यामि जटामालीति नामतः । हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः ।।१८६।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः । हिरण्यनामा कौशिल्यः काक्षीवः कुथुमिस्तथा ।।१८७।।
ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः । प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति न संशयः ।।१८८।।
ततो विंशतिमे सर्गे परिवर्ते क्रमेण तु । वाचःश्रवा स्मृतो व्यासो भविष्यन्ति महामतिः ।।१८९।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि ह्यट्टहासेति नामतः । अट्टहासप्रियाश्चापि भविष्यन्ति तदा नराः ।।१९०।।
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे त्वट्टहासो महागिरिः । भविष्यति महातेजाः सिद्धचारणसेवितः ।।१९१।।

को धारणकर महालय पद में वर्तमान रहकर अविनाशी शिव में प्रवेश कर जायँगे ।।१७६-१७८।। इनके अतिरिक्त और भी जो महात्मा उस युगान्त काल में ध्यानयुक्त मन से विमल और शुद्ध-बुद्धि होकर पवित्र महालय में गमन करेंगे और माहेश्वर पद का दर्शन करेंगे वे अपने साथ दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछे इस तरह इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करेंगे। हमारे प्रसाद से वे बिना क्लेश-विपाक के रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१७९-१८०।। जब अठारहवाँ द्वापर आयेगा, तब ऋतुञ्जय मुनि व्यास होंगे। उस समय हमारा नाम शिखण्डी होगा। देव-दानव पूजित हिमालय शिखर पर महापुण्यजनक सिद्धि क्षेत्र में हमारा निवास होगा। उस समय वह पर्वत शिखण्डी नाम से विख्यात होगा। उस शिखण्डी पर्वत का वन ऋषि-सिद्धों द्वारा सेवित रहेगा। वहाँ भी हमें वाचश्रवा, ऋत्तीक, शावास और दृढ़व्रत नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगी, महासत्त्व, वेदपारग, माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१८१-१८४।। उन्नीसवें द्वापर के आने पर भारद्वाज नामक महामुनि व्यास होंगे और हमारा नाम जटामाली होगा। हिमालय के रम्य जटायु शिखर पर हमारा आश्रम होगा ।।१८५-१८६।। वहाँ भी हमें हिरण्य, कौशिल्य, काक्षीव और कुथुमि नामक महाबलशाली चार पुत्र होंगे। ये सभी ऐश्वर्यशाली योगी और ऊर्ध्वरिता होकर माहेश्वर योग को प्राप्त करेंगे एवं रुद्रलोक गमन करेंगे, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है ।।१८७-१८८।। फिर क्रम से जब बीसवाँ सर्ग लौटेगा, तब महामति वाचःश्रवा व्यास बनेंगे और हमारा नाम अट्टहास होगा। उस समय के मानव भी अट्टहास-प्रिय होंगे ।।१८९-१९०।। उसी हिमालय के पृष्ठ पर

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। युक्तात्मानो महासत्त्वा ध्यानिनो नियमव्रताः ।।१९२।।
सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान्सुबन्धुः कुशिकन्धरः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः ।।१९३।।
एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु। वाचस्पतिः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः ।।१९४।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः। तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं महत् ।।१९५।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। प्लक्षो दाक्षायणिश्चैव केतुमाली वकस्तथा ।।१९६।।
योगात्मानो महात्मानो नियता ह्यूर्ध्वरेतसः। परमं योगमास्थाय रुद्रं प्राप्तास्तदाऽनघाः ।।१९७।।
द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुक्लायनो यदा। तदाऽप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ।।१९८।।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः। द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम् ।।१९९।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः। तुल्यार्चिर्मधुपिङ्गाक्षः श्वेतकेतुस्तथैव च ।।२००।।
तेऽपि माहेश्वरं योगं प्राप्य ध्यानपरायणाः। विरजा ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः ।।२०१।।
परिवर्ते त्रयोविंशे तृणविन्दुर्यदा मुनिः। व्यासो भविष्यति ब्रह्मा तदाऽहं भविता पुनः ।।२०२।।
श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रः सुधार्मिकः ।।२०३।।
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे। तेन कालंजरो नाम भविष्यति स पर्वतः ।।२०४।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। ऊसिजो बृहदुथ्यश्च देवलः कविरेव च ।।
प्राप्यं माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते ।।२०५।।
परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति। तत्राहं भविता ब्रह्मन्कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।।
शूली नाम महायोगी नैमिषे योगिवन्दिते ।।२०६।।

अट्टहास नामक महागिरि है, जो अत्यन्त प्रकाशमान और सिद्ध-चारणों द्वारा सेवित होगा। वहाँ भी हमें अत्यन्त ओजस्वी, महासत्त्व, ध्यानासक्त, युक्तात्मा और नियमित रूप से व्रत करनेवाले सुमन्तु, बर्बरि, सुबन्धु और कुशिकन्धर नामक चार विद्वान् पुत्र होंगे। ये भी माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।१९१-१९३।। इक्कीसवें द्वापर के आने पर ऋषिसत्तम वाचस्पति व्यास कहलायेगे ।।१९४।। उस समय हमारा नाम दारुक होगा। इसलिए वह महान् और पवित्र वन देवदारु वन कहलायेगा। वहाँ भी हमें प्लक्ष, दाक्षायणि, केतुमाली और वक नामक अत्यन्त ओजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे ।।१९५-१९६।। ये योगात्मा, महात्मा, नियतचित्त और ऊर्ध्वरेता होकर योगावलम्बन द्वारा निष्पाप होकर रुद्र को प्राप्त करेंगे। बाईसवें परिवर्तन में जब शुक्लायन व्यास होंगे, तब हम वाराणसी में महामुनि होंगे ।।१९७-१९८।। हमारा नाम लाङ्गली होगा और इन्द्रादि देवगण हमें उस कलिकाल में हलायुध रूप में अवतीर्ण हुआ देखेंगे। वे वहाँ हमें सुधार्मिक, तुल्यार्चि, मधुपिङ्गाक्ष और श्वेतकेतु नामक पुत्र उत्पन्न होंगे। वे रजोगुणरहित, ब्रह्मभूयिष्ठ, ध्यानपरायण होकर माहेश्वर योग को प्राप्त करेंगे और रुद्रलोक में निवास करेंगे। तेईसवें परिवर्तन में जब तृणविन्दु नामक मुनि व्यास होंगे, तब हम श्वेत नामक महाकाय सुधार्मिक मुनि पुत्र होंगे ।।१९९-२०३।। उस समय हम एक उत्तम गिरिवर पर समय बितायेंगे; इसलिए उस पर्वत का नाम कालंजर होगा। वहाँ भी हमें ऊसिज, बृहदुथ्य, देवल और कवि नाम के चार ओजस्वी पुत्र होंगे। ये सब भी माहेश्वर योग प्राप्तकर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।२०४-२०५।। चौबीसवें द्वापर में ऋक्ष व्यास होंगे। हे

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः। शालिहोत्रोऽग्निवेशमश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ।।
तेऽपि योगबलोपेता रुद्रं यास्यन्ति सुव्रताः ।।२०७।।
पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते यथाक्रमम्। वसिष्ठस्य यदो व्यासः शक्तिर्नाम भविष्यति ।।२०८।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः। कोटिवर्षं समासाद्य नगरं देवपूजितम् ।।२०९।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति क्रमागताः। योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।।२१०।।
छगलः कुम्भकर्षाश्यः कुम्भश्चैव प्रवाहुकः। प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति तथैव ते ।।२११।।
षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः। तदाऽप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः ।।
पुण्यं रुद्रवनं प्राप्य कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।।२१२।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः। उलूको वैद्युतश्चैव शर्वको ह्याश्वलायनः ।।
प्राप्य माहेश्वरं योगं गन्तारस्ते तथैव हि ।।२१३।।
सप्तविंशतिमे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते। जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः ।।२१४।।
तदाऽप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमाः। प्रभासं तीर्थमासाद्य योगात्मा लोकविश्रुतः ।।२१५।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः। अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च ।।२१६।।
योगात्मानो महात्मानो विमलाः शुद्धबुद्धयः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं ततो गताः ।।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते। पराशरसुतः श्रीमान्विष्णुर्लोकपितामहः ।।२१७।।

ब्रह्मा! उस कलियुगादि में हम योगियों द्वारा सेवित नैमिषारण्य में शूली नामक महायोगी होकर प्रादुर्भूत होंगे ।।२०६।। वहाँ भी हमें शालिहोत्र, अग्निवेशम, युवनाश्व और शरद्वसु नामक चार तपस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे। ये सब भी व्रत करते हुए योगबल से रुद्रलोक गमन करेंगे ।।२०७।। फिर यथाक्रम से जब पचीसवें द्वापर का परिवर्तन होगा, तब वसिष्ठशक्ति नामक व्यास होंगे और हम प्रभु दण्डी मुण्डीश्वर होकर देवपूजित कोटिवर्ष नगर में प्रादुर्भूत होंगे। उस समय हमें छगल, कुम्भकर्षाश्य, कुम्भ और प्रवाहुक नामक क्रमागत चार पुत्र होंगे। ये महात्मा, योगात्मा और ऊर्ध्वरेता माहेश्वर योग को प्राप्तकर रुद्रलोक गमन करेंगे ।।२०८-२११।। छब्बीसवें द्वापर के आने पर जब पराशर व्यास होंगे, तब हम सहिष्णु के नाम से विख्यात होंगे। उस कलियुग के आदि में हमारा पवित्र रुद्रवन में निवास होगा। वहाँ भी हमें धर्मनिष्ठ उलूक, वैद्युत, शर्वक और आश्वलायन नामक पुत्र होंगे जो माहेश्वर योग को प्राप्तकर रुद्रलोक को जायँगे ।।२१२-२१३।। क्रम से जब सत्ताईसवें द्वापर का परिवर्तन होगा, तब तपोधन जातुकर्ण्य व्यास होंगे। हम भी तब द्विजोत्तम सोमशर्मा होंगे। प्रभास तीर्थ में आश्रय ग्रहण करेंगे और योगात्मा होकर संसार में प्रसिद्ध होंगे ।।२१४-२१५।। वहाँ भी हमें अक्षपाद, कणाद, उलूक और वत्स नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगात्मा, महात्मा, विमल और शुद्ध-बुद्धि होंगे। वे सब भी

यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः। तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।।
वासुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ।।२१८।।
तदा चाहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया। (*लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ।।२१९।।
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा लोकमनाथकम्। ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया) ।।२२०।।
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना। भविष्यामि तदा ब्रह्मन्नकुली नाम नामतः ।।२२१।।
कायारोहणमित्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा। भविष्यति तु विख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति ।।२२२।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः। कुशिकश्चैव गार्ग्यश्च मित्रको रुष्ट एव च ।।२२३।।
योगयुक्ता महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः।।
रुद्रलोकं गमिष्यामि पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।२२४।।
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्। मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशयुगक्रमात् ।।२२५।।
+भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा। तत्र स्मृतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षणम् ।।२२६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते माहेश्वरावतारयोगो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

माहेश्वर योग को प्राप्तकर रुद्रलोक को जायँगे। क्रम से जब अट्ठाईसवें द्वापर का परिवर्तन होगा और लोकपितामह पराशरसुत श्रीमान् विष्णुद्वैपायन व्यास होंगे, तब यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण छठे अंश से वासुदेव के रूप में वासुदेव से प्रादुर्भूत होंगे ।।२१६-२१८।। उस समय हम योगात्मा होकर योगमाया द्वारा लोगों को विस्मित करने के लिए ब्रह्मचारी देह में प्रादुर्भूत होंगे ।।२१९।। मृत अनाथ लोगों को श्मशान में निक्षिप्त होते देखकर ब्राह्मणों के हित के लिए हम योगमाया-बल से आप एवं विष्णु के साथ दिव्य और पवित्र मेरुगुहा में प्रविष्ट होंगे। हे ब्रह्मा! उस समय हमारा नाम नकुली होगा ।।२२०-२२१।। जितने दिनों तक पृथ्वी रहेगी, उतने दिनों तक हमारे द्वारा अधिष्ठित स्थान कायारोहण नाम से सिद्धि क्षेत्र होकर विख्यात होगा। वहाँ भी हमें कुशिक, गार्ग्य, मित्रक और रुष्ट नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। ये योगात्मा, महात्मा, ब्राह्मण और वेदपारग होंगे। ये उध्वरिता माहेश्वर योग को प्राप्तकर रुद्रलोक जायँगे, जहाँ से कि पुनरावर्तन नहीं होता है ।।२२२-२२४।। यह हमने मनु से लेकर कृष्ण पर्यन्त क्रम से अट्ठाईसों योग के अवतारों का लक्षण कहा। जिस कल्प में कृष्णद्वैपायन होंगे, उसमें धर्मलक्षण के अनुसार स्मृतियों का विभाग होगा ।।२२५-२२६।।

श्रीवायुमहापुराण का माहेश्वरावतार योग नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२३।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ख. घ. पुस्तकेषु नास्ति।

+ इदमर्धं नास्ति क. "पुस्तके।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शार्वस्तवः

वायुरुवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः। कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् ।।१।।
एतत्सहस्त्रपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम्। यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्दश ।।२।।
सशरीरा श्रयन्ते स्म जनलोकं सहानुगाः। एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं तपः ।।३।।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः। ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ।।४।।
समेत्य देवैस्ते देवाः प्राप्ते संकालने तदा। महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश ।।५।।
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा। शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भवादिषु ।।
देवेष्वथ गतेषूर्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम् ।।६।।
तत्संहृत्य ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान्। संस्थापयति वै सर्वान्दाहवृष्ट्या युगक्षये ।।७।।
योऽतीतः सप्तमा कल्पो मया वः परिकीर्तितः। समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवैः ।।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।।८।।

अध्याय २४

शार्वस्तव

वायु बोले–"मुनियों ने कहा कि भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग होते हैं। इन हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस दिनावसान में यामादि सप्तगण और रोमवाले चौदह गण अनुचरों के साथ जनलोक में सशरीर आश्रय ग्रहण करते हैं ।।१-२$\frac{१}{२}$।। इस प्रकार फिर चौयुगी के नाश होने पर वे देवता पहले जन और तपोलोक को प्रस्थान करते हैं। मन्वन्तरों के बीत जाने पर बलशाली देवगण भी ऊर्ध्वगामी होते हैं और वे ऊपर गये हुए कल्पवासियों का सामीप्य ग्रहण करते हैं ।।३-४।। फिर जब प्रलय उपस्थित होता है, तब वे चौदहों देवगण अन्य देवों के साथ महर्लोक का त्याग करके जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं। उस समय स्थावरान्त अवशिष्ट भूतादि नष्ट हो जाते हैं, महान् भवादि लोक शून्य हो जाते हैं और कल्पवासियों के साथ देवगण ऊपर चले जाते हैं ।।५-६।। दाह और वृष्टि से जब युगक्षय हो जाता है, तब ब्रह्मा सब का संहार करके देव-दानव, ऋषियों को फिर से संस्थापित करते हैं। यह जो सप्तम कल्प बीत गया है, उसे हमने आप लोगों को बताया है। इस कल्पावशेष में सातों सागर मिलकर एक हो जाते हैं। घोर अन्धकार छा जाता है। इस एक समुद्र में कहीं भी विभाग नहीं रहता है ।।७-८।। उस एकार्णव में शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले मेघतुल्य, कमलनयन, किरीटधारी, श्रीपति, नारायण के मुख से उत्पन्न, अष्टम पुरुषोत्तम, अष्टबाहु, विशालवक्ष, लोकसमूह के उत्पत्तिस्थान योगात्मा हरि माया द्वारा किसी अचिन्त्य को ग्रहण करके

मायैकार्णवे तस्मिञ्शङ्खचक्रगदाधरः । जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ।।९।।
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः । अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।।
किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ।।१०।।
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् । महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ।।११।।
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना । आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ।।१२।।
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् । वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ।।१३।।
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवीमीढुषः । हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ।।१४।।
श्रिया युक्तेन नव्येन सुप्रभेण सुगन्धिना । तं क्रीडमानं पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान् ।।१५।।
स विस्मयमथाऽऽगम्य शस्यसंपूर्णया गिरा । प्रोवाच को भवाञ्शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ।।१६।।
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मज्ञस्तु शुभं वचः । उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।।१७।।
प्रत्युवाचोत्तरं चैव क्रियते यच्च किंचन । द्यौरन्तरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं प्रभुः ।।१८।।
तमेवमुक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनरथाब्रवीत् । कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान्कुतः ।।
कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ।।१९।।
को भवान्विश्वमूर्तिस्त्वं कर्तव्यं किं च ते मया । एवं ब्रुवाणं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः ।।२०।।
यथा भवांस्तथा चाहमादिकर्ता प्रजापतिः । नारायणसमाख्यातः सर्वं वै मयि तिष्ठति ।।२१।।

महान् नागराज के सहस्र फणों से युक्त अत्युन्नत अनुपम कान्तिवाले और सुवर्ण की तरह चमकीले शरीर रूपी पर्यङ्क को बिछाकर सोते हैं ।।९-११।। आत्माराम प्रभविष्णु ने सोते हुए ही कौतुकवश नाभिदेश से एक कमल को उत्पन्न किया। उस कमल का विस्तार सौ योजन का था और वह तरुण सूर्य की तरह कान्तिमान् था। वह वज्र की तरह दण्डवाला अत्युन्नत कमल प्रभविष्णु की लीला से उत्पन्न हुआ था। उस कमल से विष्णु क्रीड़ा कर रहे थे कि उनके समीप स्वर्णमय ब्रह्माण्ड से उत्पन्न अतएव स्वर्णवर्ण, अतीन्द्रिय, विशालाक्ष, चतुर्मुखी ब्रह्मा इच्छानुसार उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ गये। श्रीसम्पन्न, प्रभावान्, सुगन्धित नवीन पद्म से विष्णु को खेलते हुए देखकर ब्रह्मा उनके और समीप पहुँच गये। वहाँ जाने पर ब्रह्मा विस्मित हो गये। वे गम्भीर स्वर में बोले—"आप कौन हैं जो इस जल के बीच सो रहे हैं ?" ।।१२-१६।। ब्रह्मा के उस शुभ वचन को सुनकर ब्रह्मज्ञ अच्युत विस्मय से बड़ी-बड़ी आँखें नचाकर पलँग पर से उठ बैठे। उन्होंने उत्तर दिया—"जो कार्य, कारण, अन्तरिक्ष, भूमि, स्वर्ग आदि हैं, उनका प्रभु मैं हूँ। मैं ही परम पद हूँ।" इस तरह कहकर भगवान् विष्णु ने फिर कहा—"हे भगवन्! आप कौन हैं ? कहाँ से आप हमारे समीप आये हैं ? फिर कहाँ जायँगे ? आपका आश्रम कहाँ है ? विश्वमूर्ति धारण करनेवाले आप कौन हैं ? हम आपका कौन-सा कार्य करें ?" वैकुण्ठविहारी विष्णु के इस प्रकार कहने के बाद पितामह ने कहा ।।१७-२०।। "जिस तरह आप हैं उसी तरह हम भी आदिकर्त्ता प्रजापति हैं। मेरा नाम नारायण है और मुझमें ही सब प्रतिष्ठित है" ।।२१।। लोककर्त्ता ब्रह्मा से इस प्रकार सुनकर विश्वसम्भव

सविस्मयं परं श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा। सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसंभवः ।।२२।।
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम्। इमानष्टादश द्वीपान्ससमुद्रान्सपर्वतान् ।।२३।।
प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान्सप्तलोकान्सनातनान् ।।२४।।
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महायशाः। अहोऽस्य तपसो वीर्यं पुनः पुनरभाषत ।।२५।।
पर्यटन्विविधाँल्लोकान्विष्णुर्नानाविधाश्रमान्। ततो वर्षसहस्रान्ते नान्तं हि ददृशे तदा ।।२६।।
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रादिकेतनः। अजातशत्रुर्भगवान्पितामहमथाब्रवीत् ।।२७।।
भगवन्नादिमध्यं च अन्तः कालदिशे न च। नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ।।२८।।
एवमुक्त्वाऽब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः। भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ।।
प्रविश्य लोकान्पश्यैताननौपम्यान्द्विजोत्तम ।।२९।।
मनःप्रह्लादनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च। श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः ।।३०।।
तानेव लोकान्गर्भस्थः पश्यन्सोऽचिन्त्यविक्रमः। पर्यटित्वाऽऽदिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरेः ।।३१।।
ज्ञात्वाऽऽगमं तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि विधाय विष्णुः
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाऽऽशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ।।३२।।
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्य ते। सूक्ष्मं कृत्वाऽऽत्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत ।।३३।।
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामहः। उज्जहाराऽऽत्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ।।
विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ।।३४।।

वैकुण्ठविहारी भगवान् अत्यन्त विस्मित हो गये और उनसे आज्ञा लेकर महायोगी विष्णु ब्रह्मा के मुख में बैठ गये। महायशस्वी और तेजस्वी विष्णु ने वहाँ प्रवेश करके देखा कि सागर पर्वतों के साथ आठों द्वीप और ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त चतुराश्रम में विभक्त सातों सनातन लोक यहाँ विद्यमान हैं ।।२२-२४।। यह देखकर वे आप-ही-आप बोलने लगे-अहो! इनकी तपस्या का प्रभाव अद्भुत है! ।।२५।। विष्णु वहाँ नाना प्रकार के आश्रमों और लोकों में घूमने लगे; किन्तु हजार वर्ष के बीत जाने पर भी उन्होंने अन्त नहीं देखा। तब अजातशत्रु गरुड़ध्वज भगवान् ब्रह्मा के मुँह से निकलकर बोले-'हे भगवन्! हे निष्पाप! आपके उदर का आदि, अन्त, मध्य नहीं, काल, दिशा और अन्त का भी कुछ पता नहीं चलता। ऐसा कहकर भगवान् हरि ने पितामह से फिर कहा-हे द्विजोत्तम! आप भी इसी प्रकार हमारे शाश्वत उदर में प्रवेशकर अनुपम लोकों को देखें ।।२६-२९।। पितामह ने जब मन को प्रसन्न करनेवाली ऐसी वाणी को सुना, तो वे श्रीपति विष्णु का अभिनन्दन कर उनके उदर में बैठ गये। अत्यन्त पराक्रमी गर्भस्थ ब्रह्मा ने घूम-फिरकर उन्हीं लोकों को देखा, किन्तु विष्णु देवता के उदर का अन्त नहीं पा सके ।।३०-३१।। इधर विष्णु ने जब उदर के भीतर पितामह के आगमन को समझा तब उन्होंने सब द्वारों को बन्द कर उस महाजलराशि में सुखपूर्वक सो जाने की इच्छा की ।।३२।। ब्रह्मा ने जब सब द्वारों को बन्द देखा, तब उन्होंने सूक्ष्म रूप धारण किया और नाभिदेश में द्वार पाकर कमलनाल के

एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कात्स्न्र्यतः। प्रवर्तमाने संहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु* ।।३५।।

सूत उवाच

ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः। शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छदः ।।
आगच्छद्यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः ।।३६।।
शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिताः। उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयविन्दवः ।।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ।।३७।।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत। अब्बिन्दवो हि स्थूलोष्णाः कम्पते चाम्बुजं भृशम् ।।
एतं मे संशयं ब्रूहि किंचान्यत्वं चिकीर्षसि ।।३८।।
एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम्। श्रुत्वाऽप्रतिमकर्माऽऽह भगवानसुरान्तकृत् ।।३९।।
किं नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम्। वदति प्रियमत्यर्थं विप्रियेऽपि च ते मया ।।४०।।
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम्। किं न्वत्र भगवांस्तस्मिन्पुष्करे जातसंभ्रमः ।।४१।।
किं मया यत्कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम्। भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ।।४२।।
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकमात्रां तु तत्त्वगाम्। प्रत्युवाचाम्बुजाभास्कः ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।।४३।।
योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया। यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।।
तथैव दृष्टाः कात्स्न्र्येन मया लोकास्तवोदरे ।।४४।।

सहारे निकलकर अपने रूप का उद्धार कर लिया। उस समय चतुरानन ब्रह्मा पद्मगर्भ के समान द्युतिमान् होकर कमल के बीच जा बैठे। इसी प्रकार उन दोनों का आपस में कौतुक व्यापार उस जलार्णव में चलने लगा ।।३३-३५।।

सूत जी बोले–इसी समय जहाँ नाग भोगपति हरि स्थित थे, वहाँ अपरिमेयात्मा भूतपति सुवर्ण चीराम्बरधारी शूलपाणि महादेव आये ।।३६।। वे बड़ी शीघ्रता और जोर-जोर से पैर पटक रहे थे, जिससे खौलते हुए और अत्यन्त शीतल बड़े-बड़े जलविन्दु आकाश की तरफ उड़ने लगे तथा वायु भी जोर से बहने लगी ।।३७।। यह देखकर ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विष्णु से कहा–जलविन्दु स्थूल और उष्ण हो गये हैं, जिससे कमल काँप रहा है। हमारे मन में सन्देह हो रहा है कि यह आप क्या करना चाह रहे हैं ।।३८।। पितामह के मुख से निकली वाणी सुनकर असुरविनाशी और अनुपम कार्यकर्त्ता भगवान् विष्णु ने कहा–क्या मेरी नाभि में दूसरे जीव ने आकर आश्रय ग्रहण किया है ? ब्रह्मा! मैंने आपके प्रति अनुचित व्यवहार किया है फिर भी आप हमारे प्रति सुन्दर वचन कह रहे हैं। इस तरह मन में ध्यान कर उन्होंने फिर कहा–क्या आपको इस कमल के सम्बन्ध में कुछ सन्देह हो गया है? पुरुषश्रेष्ठ! मैंने क्या किया है, जो आप इस तरह प्रिय और उत्तम वचन मुझसे कह रहे हैं, यह आप कहें। लोकयात्रा के तत्त्वगामी देवेश विष्णु के कहने पर कमलनिवासी वेदनिधि प्रभु ब्रह्मा ने उत्तर दिया ।।३९-४३।। हे प्रभु! इसके पहले मैंने ही आपकी इच्छा से आपके उदर में प्रवेश किया था और आपने जिस प्रकार हमारे उदर में सब लोकों को देखा था, उसी प्रकार मैंने भी आपके उदर में सम्पूर्ण लोकों को देखा ।।४४।। हे निष्पाप! हजार वर्ष के बाद जब हम बाहर आने लगे, तब आपने

---

* अस्मिन्स्थलेऽध्यायपरिसमाप्तिर्दृश्यते ख. घ. ङ. पुस्तकेषु।

ततो वर्षसहस्रान्त उपावृत्तस्य मेऽनघ। नूनं मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ।।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ।।४५।।
ततो मया महाभाग संचिन्त्य स्वेन चेतसा। लब्धो नाभ्यां प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ।।४६।।
मा भूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्यघातोऽयं कथंचन। इत्येषाऽनुगतिर्विष्णोः कार्याणामौपसर्गिकी ।।४७।।
यन्मयाऽनन्तरं कार्यं मयाऽध्यवसितं त्वयि। त्वां वा बाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ।।४८।।
न तेऽन्यथाऽवमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान्। सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽथ कृतं तव ।।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ।।४९।।
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम्। स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यहम् ।।५०।।

विष्णुरुवाच

पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम्। सत्यधनो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ।।५१।।
अद्यप्रभृति सर्वेश श्वेतोष्णीषविभूषणः। पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि ।।
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन्सर्वलोकाधिप प्रभो ।।५२।।
ततः स भगवान्ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिनः। एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः ।।५३।।
प्रत्यासन्नमथाऽऽयान्तं बालार्काभं महाननम्। भूतमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ।।५४।।

मात्सर्य से शीघ्र सब इन्द्रियों-द्वारों को बन्द कर दिया था। आप हमें वशीभूत करना चाहते थे। हे महाभाग! तब अपने मन में सोचा और नाभि में प्रवेशकर कमलनाल द्वारा बाहर निकल आया। हे विष्णु! इससे आपके मन को जरा भी चोट न पहुँचे। कार्यों की परस्पर इसी प्रकार की स्वाभाविक गति होती है ।।४५-४७।।

विष्णु बोले-हे प्रभु! हमने आपके सम्बन्ध में जो कार्य किया है और हमारे द्वारा आपके प्रति जो अनुचित व्यवहार हुआ है, वह सिर्फ कौतुकवश ही। मैंने क्रीड़ापूर्वक आपको बाँधना चाहा था और इच्छावश सब द्वारों को तुरन्त ही बन्द कर दिया था। आप इसे मन में न लावें। वास्तव में आप हमारे मान्य और पूज्य हैं। हमने आपके प्रति जो कुछ किया है; उसे आप क्षमा कर दें। हे प्रभु! मेरा अनुरोध है कि आप कमल से उतर जायँ क्योंकि आप भारभूत तेजस्वी पुरुष हैं। आपका भार मैं वहन नहीं कर सकता ।।४८-४९$\frac{1}{2}$।।

ब्रह्मा ने कहा-विष्णु! वर माँगिये। मैं इस कमल से उतर रहा हूँ ।।५०।।

विष्णु बोले-शत्रुसूदन! आप मेरे पुत्र हों यही मेरी इच्छा है, इसमें आपकी भी कीर्ति बढ़ेगी और आप सुखी होंगे। आप सत्यधन हैं, महायोगी हैं, पूज्य हैं, प्रणव रूप हैं। सर्वेश! आज से श्वेत पगड़ी आपके सिर को सुशोभित करेगी, और आज से आप पद्मयोनि नाम से प्रसिद्ध होंगे। ब्रह्मन्! प्रभु! सब लोक के अधिपति! आप मेरे पुत्र बनें ।।५१-५२।। किरीटी विष्णु के वर को ब्रह्मा ने स्वीकार कर लिया। प्रसन्न हो उन्होंने हृदय का मात्सर्य भी छोड़ दिया और कहा, 'ऐसा ही होगा' ।।५३।। इसके अनन्तर प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी, विशाल मुखवाले किसी अद्भुत जीव को अपनी ओर समीप आते देखकर उन्होंने नारायण से पूछा ।।५४।। विष्णो! यह महामुख, बड़े-बड़े दाँतोंवाला पुरुष कौन

अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरोरुहः । दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः ।।५५।।
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली । मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम् ।।५६।।
कः खल्वेष पुमान्विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः । व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्तते ।।५७।।
तेनैवमुक्तो भगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत् । पद्भ्यां तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।।
वेगेन महताऽऽकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ।।५८।।
छटाभिर्विश्वतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्मसंभवः । घ्राणजेन च वातेन कम्प्यमानं त्वया सह ।।
दोधूयते महापद्मं स्वच्छदं मम नाभिजम् ।।५९।।
स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः । भवानहं च स्तोत्रेण ह्युपतिष्ठाव गोध्वजम् ।।६०।।
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभास्कं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् । न भवान्नूनमात्मानं लोकानां योनिमुत्तमम् ।।६१।।
ब्रह्माणं लोककर्तारं मां च वेत्ति सनातनम् । कोऽयं भोः शंकरो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ।।६२।।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत । मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ।।६३।।
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः । हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरुषोऽव्ययः ।।६४।।
जीवः खल्वेष जीवानां ज्योतिरेकं प्रकाशते । बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शंकरः स्वयम् ।।६५।।
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः । अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।।
यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ।।६६।।

है जिसको मैं पहचान नहीं रहा हूँ, जिसके सिर के केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं जो दसभुज, त्रिशूलधारी, चारों ओर मुख और आँखवाला, साक्षात् लोकप्रभु, विकृत मूँज की बनी मेखला पहने हुए है, जिसका लिंग ऊपर उठा हुआ है और जो भयंकर गर्जना कर रहे हैं। भगवन्! ये तेजोराशि कौन हैं जो अपने तेज से सब दिशाओं को और आकाश को व्याप्त करते हुए उधर ही आ रहे हैं ।।५५-५७।। ब्रह्मा की इन बातों को सुनकर भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा से कहा—'जिनके पद-प्रहार से समुद्र में बड़े वेग से चंचल, उत्ताल तरंगें उठ रही हैं, जिसकी छटा से पद्मसंभव ब्रह्मा भी आवृत से हो गये हैं, और जिसके श्वास से आपके सहित यह मेरी नाभि से निकला हुआ कमल वेग से कम्पित हो रहा है वे भगवान् ईश हैं जो अनादि, लोकनाशक और विभु हैं। चलिये, आप और मैं, स्तुति से इस वृषभध्वज के समीप चलकर अभिनन्दन करें ।।५८-६०।। यह सुनकर ब्रह्मा क्रुद्ध हो गये और कमलनयन केशव से बोले—'आप लोककर्त्ता अपने को और लोकपालक सनातन प्रभु मुझको (ब्रह्मा को) निश्चय ही नहीं जानते हैं। यह शंकर कौन है जो हम दोनों से बढ़कर है? ब्रह्मा की क्रोध से भरी बातों को सुनकर विष्णु ने कहा ।।६१-६२$\frac{१}{२}$।। कल्याण! महात्मा के प्रति ऐसी अपमानजनक बातें न कहें। ये मायायोगेश्वर, धर्मरूप, वरदाता और दुर्जेय हैं, ये इस जगत् के कारण, अव्यय, पुराण पुरुष हैं, जीवों के प्राण और अपने प्रकाश से प्रकाशित होनेवाले यही हैं। स्वयं शंकर ही बालकों की भाँति जगत् से खेला करते हैं। इस लोक की सृष्टि करनेवाले शिव के प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, तम और प्रकृति आदि नित्य नाम हैं। दुःख से पीड़ित योगी इसी शिव को 'वह कहाँ है' कहकर ढूँढ़ते रहते हैं। ये बीजी हैं, आप बीज हैं और मैं सनातन योनि हूँ ।।६३-६६।। विश्वात्मा

एष बीजी भवान्बीजमहं योनिः सनातनः। एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।।६७।।
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः। एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ।।६८।।
ज्ञात्वा चैवं समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा। इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ।।६९।।
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते। महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ।।७०।।
द्वैधीभावेन चाऽऽत्मानं प्रविष्टस्तु व्यवस्थितः। निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ।।७१।।
अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगमनस्य च। पुरा लिङ्गं भवद्बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ।।७२।।
मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात्। हिरण्ययमपारं तद्योन्यामण्डमजायत ।।७३।।
शतानि दशवर्षाणामण्डं चाप्सु प्रतिष्ठितम्। अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधाकृतम् ।।७४।।
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः। उल्बं तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्वतः ।।७५।।
ततस्तस्मात्प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः। हिरण्यगर्भो भगवानहं जज्ञे चतुर्भुजः ।।७६।।
(*ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा क्रतम्)। अतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।।
कोऽयमत्रेत्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ।।७७।।
प्रियदर्शनास्तु तनवो (या) येऽतीताः पूर्वजास्तव। भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवाऽऽत्मजास्तव ।।
भुवनानलसंकाशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।।७८।।

ब्रह्मा इन बातों को सुनकर विष्णु से बोले—आप योनि हैं, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीजी (बीज बोनेवाले) हैं, यह कैसे? आप मेरे इस सूक्ष्म, अव्यक्त सन्देह को अवश्य दूर करें ।।६७-६८।। लोकशासक ब्रह्मा ने लोकसृष्टि सम्बन्धी बातों को जानकर भी इस प्रकार का सन्देहयुक्त प्रश्न पूछा जिसको सुनकर भगवान् हरि ने उत्तर दिया कि 'इस महेश्वर से बढ़कर रहस्यमय दूसरा कोई भूत नहीं है। महान्-से-महान् और अध्यात्मवादियों के ये परम प्राप्य पद हैं ।।६९-७०।। ये दो रूपों से आत्मा में प्रविष्ट होकर स्थित हैं, ये एक रूप में निष्कल, सूक्ष्म, अव्यक्त और दूसरे रूप में सकल और महेश्वर हैं। इस मायाविधिज्ञ, अविज्ञेयगति का पूर्वकाल में एक लिंग आदि सर्ग के लिए ब्रह्मा रूपी बीज के सहित प्रकट हुआ। कालक्रम से मुझ सनातन योनि में वह बीज प्रविष्ट हुआ। उस योनि में वह बीज विशाल सुवर्णमय अण्ड के रूप में परिणत हो गया। वह अण्ड एक हजार वर्ष तक जल पर स्थित रहा। हजारवें वर्ष के अन्त में वायु के द्वारा वह दो भागों में विभक्त हो गया ।।७१-७४।। उसके एक टुकड़े से स्वर्ग और दूसरे से पृथ्वी उत्पन्न हुई। उस अण्ड कपाल का जो विशाल, ऊँचा उल्ब (आवरण) था, उससे कनकाचल बना ।।७५।। तत्पश्चात् उसमें से देवाधिदेव, प्रबुद्धात्मा, प्रभु हिरण्यगर्भ और चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्रकट हुए। तारा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा से शून्य लोक को देखकर 'यह क्या है' ऐसा आप सोचने लगे। उसी समय आपको कतिपय कुमार उत्पन्न हुए ।।७६-७७।। अतीत कल्प में पहले जो आपके प्रिय पुत्र उत्पन्न हुए थे वे ही पुनः सहस्र वर्ष के अन्त में आपके पुत्र हुए, जो अग्नि के समान तेजस्वी और जिनके नेत्र कमल के समान विशाल थे ।।७८।। उनमें श्रीमान् सनत्कुमार और ऋतु ऊर्ध्वरिता थे। सनातन, सनक और

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. पुस्तकेषु।

श्रीमान्सनत्कुमारस्तु ऋतुश्चैवोर्ध्वरेतसौ। सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दनः।।
उत्पन्नः समकालं ते बुद्ध्याऽतीन्द्रियदर्शनाः ।।७९।।
उत्पन्नाः प्रतिघात्मानो जगदुश्चैतदेव हि। नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः ।।८०।।
अल्पसौख्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम्। जीवितं मरणं चैव संभवं च पुनः पुनः ।।८१।।
स्वप्नभूतं पुनः स्वर्गं दुःखानि नरकास्तथा। विदित्वा चाऽऽगमं सर्वमवश्यं भवितव्यताम् ।।८२।।
ऋभुं सनत्कुमारं च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ। त्रयस्तु त्रीन्गुणान्हित्वा आत्मजाः सनकादयः।।
वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ।।८३।।
ततस्तेष्वप्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु। भविष्यसि विमूढस्तु मायया शंकरस्य तु ।।८४।।
एवं कल्पे तु वै कल्पे संज्ञा नश्यति तेऽनघ। कल्पशेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ।।८५।।
सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता। स एष पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः ।।८६।।
तवैवेदं हि माहात्म्यं दृष्ट्वा चाऽऽत्मानमात्मना। ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ।।८७।।
महादेवं महायोगं भूतानां वरदं प्रभुम्। प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्वा (त्य) जगद्गुरुम्।।
त्वां च मां चैव संक्रुद्धो निश्वासान्निर्दहेदयम् ।।८८।।
एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठ महाबल। अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ।।८९।।

सनन्दन भी उसी समय उत्पन्न हुए जो कि अपनी मेधा के प्रभाव से सूक्ष्मदर्शी हो गये ।।७९।। उत्पन्न होते ही उन कुमारों ने कहा हम कोई भी कार्य नहीं करेंगे। हम तीनों प्रकार से ताप से पृथक् रहकर आत्मज्ञ बनेंगे क्योंकि इस बुढ़ापा और शोकग्रस्त जीवन में सुख बहुत कम और क्लेश ही अधिक है, साथ ही जीवन, मरण और पुनर्जन्म का गोरखधन्धा भी लगा है ।।८०-८१।। जीवन में स्वर्ग-सुख स्वप्न है, केवल नरक और दुःख का ही भोग करना है। इस प्रकार उन कुमारों को समस्त आगम और अवश्यम्भावी भविष्य का ज्ञान था। ऋभु और सनत्कुमार को आपके वश में देखकर सनक आदि आपके तेजस्वी पुत्र परम ज्ञान के कारण सृष्टि कर्म से विमुख हो गये ।।८२-८३।। उस समय इस प्रकार अपने पुत्रों को निवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख होते देखकर आप शंकर की माया के प्रभाव से मोहित हो गये। अनघ! इसी प्रकार प्रत्येक कल्प में आपकी चेतना शक्ति लुप्त हो जाती है। कल्प के बीत जाने पर सब पार्थिव पदार्थ सूक्ष्म रूप में स्थित रहते हैं ।।८४-८५।। यही इस संसार की ईश्वरीय माया कही जाती है। यह मेरु पर्वत ही देवलोक कहा जाता है। यह सब कुछ आपका ही माहात्म्य है। अब आप स्वयं अपनी महत्ता को पहचानें। ईश्वर की स्थिति, कमलनयन मुझको (विष्णु को) महादेव महायोग, प्राणियों के वरदाता प्रभु, प्रणवात्मा महादेव को भली-भाँति जानकर इस जगद्गुरु को नमस्कार कीजिये। नहीं तो क्रुद्ध होकर ये महादेव एक ही साँस में हम दोनों को जला देंगे! महाबल! इस रहस्य को जानकर अब आप उठिये, मैं आपको आगे करके अग्नि के समान तेजस्वी शंकर की स्तुति करूँगा ।।८६-८९।।

सूत बोले-इस प्रकार ब्रह्मा को आगे कर गरुड़ध्वज विष्णु ने अतीत, भविष्य और वर्तमान के नामों तथा विविध

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः। अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्तमानैस्तथैव च।।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ।।९०।।
नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे। नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः।।९१।।
अमेढ्रायोर्ध्वमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे। नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय ह्यपूर्वप्रथमाय च।।९२।।
नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः। (*गह्वराय धनेशाय हैमचीराम्बराय च।।९३।।
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च। वेदकर्मावदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः।।९४।।
÷ग्रहाणां प्रभवे चैन ताराणां प्रभवे नमः)। ×नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः।।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः) ।।९५।।
विद्युत्दशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः। उदधीनां च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः।।९६।।
अद्रीणां प्रभवे चैन वर्षाणां प्रभवे नमः। नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः।।९७।।
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः। धर्माध्यक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः।।९८।।
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः। नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः।।९९।।

वैदिक ऋचाओं द्वारा इस स्तोत्र को कहा।।९०।। “आप भगवान् सुव्रत और अनन्त तेजवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप क्षेत्राधिपति बीजी और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप लिंङ्गरहित, ऊर्ध्वलिङ्ग और वैकुण्ठरेता हैं, आपको नमस्कार है। आप ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, अपूर्व और प्रथम हैं, आपको नमस्कार है ।।९१-९२।। आप हव्य, पूज्य और सद्योजात हैं, आपको नमस्कार है। आप गह्वर (शङ्कर), धनेश और स्वर्ण चीराम्बरधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम भूतों के प्रभव और वेदकर्मा के समान शुभ द्रव्यों के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप ग्रहों और ताराओं के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप योग के प्रभु, सांख्य के प्रभु एवं ध्रुव और निशीथ आदि ऋषियों के पति हैं, आपको नमस्कार है ।।९३-९५।। आप विद्युत्, वज्र, मेघ और गर्जन के जनक हैं, आपको नमस्कार है। आप समुद्र और द्वीपों के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप पर्वत और वर्षा के प्रभव हैं, आपको नमस्कार है। आप नद और नदी के उत्पत्ति-स्थान हैं, आपको नमस्कार है। आप ओषधि और वृक्षों के उत्पादक हैं, आपको नमस्कार है। आप रस और सम्पूर्ण रत्नों के उत्पादक हैं, आपको नमस्कार है! आप धर्माध्यक्ष, धर्म और स्थिति के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है ।।९६-९८।। आप क्षण, कला, निमेष, काष्ठा, अहोरात्र, अर्द्धमास और मास के प्रभव हैं, आपको नमस्कार है। आप ऋतु और परा, परार्द्ध आदि संख्या के सृष्टिकर्त्ता हैं, आपको नमस्कार है। आप पुराण, युग और चतुर्विध सर्ग के जनक हैं, आप अनन्तचक्षु हैं, आपको नमस्कार है। आप कल्पादि से संबद्ध घटनाओं के कारण हैं, आप विश्व और ब्रह्मादि के भी जनक हैं, आपको

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

÷ इदमर्धं क. ख. ग. पुस्तकेषु नास्ति।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

निमेषप्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः। अहोरात्रार्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ।।१००।।
नम ऋतूनां प्रभवे संख्यायाः प्रभवे नमः। प्रभवे च परार्धस्य परस्य प्रभवे नमः ।।१०१।।
नमः पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः। चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ।।१०२।।
कल्पोदयनिबद्धानां वार्तानां प्रभवे नमः। नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः ।।१०३।।
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः। नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ।।१०४।।
पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः। वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च ।।१०५।।
सुचारुचारुकेशाय ऊर्ध्वचक्षुःशिराय च। नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ।।१०६।।
प्रजापतीनां पतये सिद्धानां पतये नमः। (*दैत्यदानवसंघानां रक्षसां पतये नमः ।।१०७।।
गन्धर्वाणां च पतये यक्षाणां पतये नमः)। गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः ।।१०८।।
गोकर्णाय च गोष्ठाय शङ्कुकर्णाय वै नमः। वराहायाप्रमेयाय रक्षोधिपतये नमः ।।१०९।।
नमोऽप्सराणां पतये गणानां पतये नमः। अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ।।११०।।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रिमते नमः। बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ।।१११।।
दीर्घशृङ्गैकशृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने। नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ।।११२।।
भूताय च भविष्याय वर्तमानाय वै नमः। सुवर्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ।।११३।।
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च। नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ।।११४।।

नमस्कार है। आप विद्या के आदि कारण और विद्या के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों और मन्त्रों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप पितृपति और पशुपति हैं, आपको नमस्कार है। आप वाग्वृष और पुराण वृषभ हैं, आपको नमस्कार है ।।९९–१०५।। आप सुचारु, सुन्दर केशवाले, ऊर्ध्वचक्षु, ऊर्ध्व शिखावाले पशुपति और वृषभध्वज हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रजापतियों के पति, सिद्धों के पति, दैत्य, दानव और राक्षसों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप गन्धर्वपति, यक्षपति एवं गरुड़, सर्प और पक्षियों के पति हैं, आपको नमस्कार है ।।१०६–१०८।। आप गोकर्ण, गोष्ठ, शङ्कुकर्ण, वराह, अप्रमेय और रक्षोधिपति हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्सराओं के पति, गणों के पति तथा जल और तेज के पति हैं, आपको नमस्कार है ।।१०९–११०।। आप लक्ष्मीपति, शोभा सम्पन्न और लज्जावान् हैं, आपको नमस्कार है। आप बलाबल समूह अक्षोभ्यक्षोभण, दीर्घशृङ्गैकशृङ्ग, वृषभ और ककुद (वृषभ स्कन्ध) वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप स्थिर रहनेवाले वपुधारी और अति प्रभाशाली हैं, आपको नमस्कार है। आप भूत, भविष्यत् और वर्तमान हैं, आप तेजस्वी, शूर, वीर और अनतिक्रमणीय हैं, आपको नमस्कार है।।१११–११३।। आप वरद (श्रेष्ठ), वरेण्य और सर्वगत हैं, आपको नमस्कार है। आप भूत, भव्य, भव और महान् हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्व, महान्, अज और सर्वगत हैं, आपको नमस्कार है। आप जन, तपः और वरद हैं, आपको नमस्कार है। आप वन्दनीय, मोक्ष जन और नरक हैं, आपको नमस्कार है ।।११४–११५।। आप भव, भजमान, इष्ट, याजक, अभ्युदीर्ण (स्तुत), दीप्त, तत्त्व, निर्गुण,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो क. पुस्तके नास्ति।

सर्वाय महतेऽजाय नमः सर्वगताय च। जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ॥
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥११५॥
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च। अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥११६॥
नमः पाशाय हस्ताय नमः स्वाभरणाय च। हुताय अपहुताय प्रहुतप्राशिताय च ॥११७॥
नमस्त्विष्टाय मूर्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च। (+नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः) ॥११८॥
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च। अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥११९॥
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने। नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्त्रग्विणे ॥१२०॥
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोक्षिमुखाय च। सर्वतःपाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥१२१॥
नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः। नमः सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥१२२॥
सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च। सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२३॥
नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च। विरूपाक्षाय त्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२४॥
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च। नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२५॥
पिशिताय पिशङ्गाय पीताय च निषङ्गिणे। नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः ॥१२६॥
=नम इज्याय पूज्याय चोपजीव्याय वै नमः। नमः क्षेम्याय वृद्धाय वत्सलाय नमो नमः ॥
नम कृताय सत्याय सत्यासत्याय वै नमः) ॥१२७॥

पाशहस्त, स्वाभरण, हुत, अपहुत, प्रहुत, प्राशित, इष्ट, मूर्त, अग्निष्टोम यज्ञ के ऋत्विज, ऋतु, सत्य, भूताधिपति, सदस्य दक्षिणावभृथ, लोकों की अहिंसा और पशुओं के लिए मन्त्रौषधि हैं, आपको नमस्कार है ॥११६-११९॥ आप तुष्टि के दाता, त्र्यम्बक, सुगन्धि, इन्द्रियपति, परिहार (?) और मालाधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप विश्व, विश्वरूप, विश्वतोक्षिमुख, सर्वत्र पाणि पादवाले रुद्र, अनुपमेय, हव्य, कव्य, हव्य-कव्य, सिद्ध, मेध्य, चेष्टा, अव्यय, सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्य, क्षोभण, सुमेधा, दीप्त, भास्कर, सुप्रज, सुपर्ण और तपनीय वस्तु तुल्य हैं, आपको नमस्कार है ॥१२०-१२३$\frac{१}{२}$॥ आप विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, पिङ्गल, ओजस्वी, दृष्टिनाशक और शुभदर्शनवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप धूम्र, श्वेत, कृष्ण, लोहित, पिशित, पीत और निषङ्गी हैं, आपको नमस्कार है। आप सविशेष, निर्विशेष, इज्य, पूज्य, उपजीव्य, क्षेम्य, वृद्ध और वत्सल हैं, आप कृत, सत्य, सत्यासत्य हैं, आपको नमस्कार हैं ॥१२४-१२७॥ पद्मवर्ण, मृत्युघ्न, मृत्यु, श्याम, गौर, कद्र, रोहित, कान्त, सन्ध्या, मेघवर्ण, बहुरूपी, कपालहस्त, दिग्वस्त्र, कपर्दी, अप्रमेय, शर्व, अवध्य, वर, पुरोभाग या पृष्ठ भाग से विभ्रान्त, कृषानु, महादुर्ग, रोध, कपिल, सूर्य की प्रभा की तरह शरीरवाले, बली, वेगवान्, पिनाकी, प्रसिद्ध, स्फीत, प्रसृत (विस्तृत), सुमेधा, अक्षमाली, दिग्वास, शिखण्डी, चित्र, चित्रवर्ण, विचित्र,

---

+ इदमर्धं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

= अस्मिन्नर्धस्थाने इदमर्धं दृश्यते ख. घ. ङ. पुस्तकेषु। महासंध्याभ्रवर्णाय चारुरूपाय दक्षिणे।

नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे। नमः श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ।।१२८।।
(×नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय वायुरूपिणे)। नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ।।१२९।।
अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च। पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव विभ्रान्ताय कृशानवे ।।१३०।।
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च। अर्कप्रभशरीराय बलिने रंहसाय च ।।१३१।।
पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रसृताय च। सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ।।१३२।।
चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च। चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्वनिहिताय च ।।१३३।।
नमः क्षान्ताय शान्ताय वज्रसंहननाय च। रक्षोघ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्ध्वरेतसे ।।१३४।।
अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च। संमोदाय प्रमोदाय इरिण्यायैव ते नमः ।।१३५।।
प्रणवप्रणवेशाय भक्तानां शर्मदाय च। मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ।।१३६।।
सर्वभूताय भूताय सर्वेशातिशयाय च। पुरभेत्रे च शान्ताय सुगन्धाय वरेषवे ।।१३७।।
पूष्णो दन्तविनाशाय भगनेत्रान्तकाय च। कणादाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ।।१३८।।
रवेः करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च। दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च ।।१३९।।
श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे। नमस्ते प्राणपालाय धवमालाधराय च ।।१४०।।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिष्टुताय च। नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च ।।१४१।।
जटिने दण्डिने तुभ्यं व्यालयज्ञोपवीतिने। नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियाय च ।।१४२।।
मन्यवे गीतशीलाय सुगीतिं गायते नमः। कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च ।।१४३।।
विभीषणाय भीमाय भगप्रथनाय च। सिद्धसंघातगीताय महाभागाय वै नमः ।।१४४।।
नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च। नदते कूर्दते चैव मनः प्रमुदिताय च ।।१४५।।

धर, चेकितान, तुष्ट और अनिहित हैं, आपको नमस्कार है ।।१२८-१३३।। आप क्षान्त, शान्त, वज्रप्रहारी, राक्षसविनाशी, यज्ञविनाशी, शितिकण्ठ, ऊर्ध्वरेता, शत्रुनाशी, कृतान्त, तीक्ष्ण आयुधधारी, संमोद, प्रमोद और इरिण्य (शून्य) हैं, आपको नमस्कार है ।।१३४-१३५।। आप प्रणव, प्रणवेश, भक्तों के सुखदाता, मृगयाशील, दक्ष, दक्षयज्ञविनाशी, सर्वभूत, भूत, सबसे अधिक पराक्रमी, पुर दैत्य को मारनेवाले, शान्त, सुगन्ध, वराभिलाषी, पूषा के दाँत को तोड़नेवाले, सूर्य के नेत्र को फोड़नेवाले, कणाद, वरिष्ठ, मदन-दहन, सूर्य के कराल नामक चक्र, नागेन्द्रदमनकर्त्ता, दैत्यों के विनाशी, दिव्य घोष करनेवाले, श्मशान में नित्य रमण करनेवाले और त्रिनेत्र हैं, आपको नमस्कार है ।।१३६-१३९$\frac{१}{२}$।। आप प्राण पालक, धवलमालाधारी, शोकविहीन, विविध जीवों से स्तुत, नरनारी उभय शरीरवाले, देवी पार्वती के प्रियकारक, जटाधारी, दण्डधारी, साँप का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, नाचनेवाले, नृत्य-वाद्य के प्रेमी, यज्ञस्वरूप, गायक, सुगीति, गीतशील, कटककर, (?) भयङ्कर उग्र रूपधारी, विभीषण, भीम, भग (देवता), मन्थनकर्त्ता, सिद्धसमूह द्वारा प्रशंसित, महाभाग अट्टहासकर्त्ता, (सिंहनाद) करनेवाले, कूदनेवाले और प्रमुदित हैं, आपको नमस्कार है ।।१४०-१४५।। आप अद्भुत,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो क. पुस्तके नास्ति।

नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च। ध्यायते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नमः ।।१४६।।
चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे। नमस्कृताय कम्पाय मुण्डाय विकटाय च ।।१४७।।
नम उन्मत्तवेषाय किंकिणीकाय वै मनः। नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च ।।१४८।।
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च। नमः प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च ।।१४९।।
(*नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च। नमो गणाय गुह्याय गम्याय गमनाय च) ।।१५०।।
लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ। सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानं तवोदरम् ।।१५१।।
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम्। तारापथ इवाऽऽभाति श्रीमान्हारस्तवोरसि ।।१५२।।
दिशा दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिताः। विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपमः ।।१५३।।
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान्हेमसूत्रविभूषितः। दंष्ट्राकरालदुर्धर्षमनौपम्यं सुखं तव ।।१५४।।
पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षण्यं शोभते कथम्। दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्ये भूर्ह्यनिलो बले ।।१५५।।
तैक्ष्ण्यमैग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दः शैत्यमप्सु च। अक्षरोत्तमनिष्प(स्प)न्दान्गुणानेतान्विदुर्बुधाः ।।१५६।।
जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वरः। पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः ।।१५७।।
तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्धनः। हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहनः ।।१५८।।
बौद्धव्यो बोधनो नेता धूर्वहो दुष्प्रकम्पकः। बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनंजयः ।।१५९।।

शयनशील, धावमान्, प्रस्थित, ध्याता, जम्हाई लेनेवाले, पीड़क, पलायनकर्त्ता, चलमान, क्रीडारत, लम्बोदर, नमस्कृत, कम्प, मुण्ड, विकट, उन्मत्तवेष, क्रूर, उग्र, अमर्षण (असहनशील), अप्रमेय, किंकिणीधारी, विकृतनेत्र, विकृत वेशधारी, दीप्ति, निर्गुण, प्रिय, वाद, नगवाली अँगूठी पहने हुए, स्तोक, तनु, अनुपम गुणवाले, गण, गुह्य, गम्य, गमन हैं, आपको नमस्कार है ।।१४६-१५०।। हे भगवन्! यह लोकधात्री पृथ्वी, आपका सज्जन-सेवित पदयुगल है और नारायण से विभूषित जो विस्तीर्ण अन्तरिक्षमध्य है, वही आपका उदर है, जो सम्पूर्ण सिद्ध-योगियों का अधिष्ठान है। आपकी छाती का हार तारापथ (आकाशगंगा) की तरह शोभायमान है। दसों दिशाएँ आपकी भुजाएँ हैं, जो केयूर और अङ्गद से विभूषित हैं। विशाल और विस्तीर्ण नील मेघों का समूह आपका कण्ठ है, जो विद्युल्लता रूपी हेमसूत्र से विभूषित है ।।१५१-१५३½।। आपका अनुपम मुख दन्तपंक्ति से कराल एवं दुर्द्धर्ष है। पद्ममाला से मण्डित आपके सिर पर पगड़ी की शोभा ऐसी हो रही है मानो सूर्यमण्डल में दीप्ति, चन्द्रमा में वायु, पृथ्वी में स्थैर्य, वायु में बल, अग्नि में तीक्ष्णता, चन्द्रमा में प्रभा, आकाश में शब्द और जल में शीतलता हो। ये सब अविनाशी, उत्तम और स्थिर जितने गुण हैं, वे आपके ही हैं, विद्वान् लोग ऐसा ही कहते हैं ।।१५४-१५६।। आप जप, जप्य, महायोगी, महादेव, महेश्वर, पुरेशय, गुहावासी, खेचर, रजनीचर, तपोनिधि, गुहगुरु नन्दन, नन्दिवर्धन, हयशीर्ष, धराधाता, विधाता, भूतिवाहन, बोधव्य, बोधन, नेता, धूर्व, दुष्प्रकम्पक, बृहद्रथ, भीमकर्मा, बृहत्कीर्ति, धनञ्जय, घण्टाप्रिय, ध्वजी, छत्री, पताका, रथपति, कवची, पट्टिशी, शङ्खी,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः। कवची पट्टिसी शङ्खी पाशहस्तः परश्वभृत् ।।१६०।।
अगस्त्वमनघः शूरो देवराजारिमर्दनः। त्वां प्रसाद्य पुरास्माभिर्द्विषन्तो निर्हता युधि ।।१६१।।
अग्निस्त्वं चार्णवान्सर्वान्पिबन्नेव न तृप्यसे। क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ।।१६२।।
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्वं शिष्टपूजितः। वेदानामव्ययः कोशस्त्वयाः यज्ञः प्रकल्पितः ।।१६३।।
हव्यं च वेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः। प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ।।१६४।।
भवानीशोऽनादिमान्धामराशिर्ब्रह्मा लोकानां त्वं कर्ता त्वादिसर्गः।
सांख्याः प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वाऽक्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति ।।१६५।।
योगेन त्वां ध्यानिनो नित्ययुक्ता ज्ञात्वा भोगान्संत्यजन्ते पुनस्तान्।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते कर्मभिर्दिव्यभोगान्भजन्ते ।।१६६।।
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः। कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः ।।
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ।।१६७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते शार्वस्तवो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

पाशहस्त, परश्वभृत्, अग, अनघ, शूर और इन्द्रशत्रु विनाशक हैं। आपको प्रसन्न करके हम लोगों ने पूर्वकाल में युद्ध में शत्रुओं को मारा है ।।१५७-१६१।। आप अग्नि हैं। सब समुद्रों को पीकर भी आप तृप्त नहीं हुए हैं। आप क्रोधागार, प्रसन्नात्मा, काम को मारनेवाले, काम को देनेवाले, प्रिय, ब्रह्मण्य, ब्रह्मचारी, गोघ्न, शिष्टपूजित, वेदों का अविनाशी कोष, प्रकल्पित यज्ञ और हव्यवाहन हैं। आप वेदोक्त हव्य को धारण करते हैं। आपके प्रसन्न होने से ही हम सब प्रसन्न होते हैं ।।१६२-१६४।। आप ईश, अनादि, तेजोराशि, लोककर्त्ता और लोकसृष्टि कारक हैं। सांख्यज्ञाता योगिगण आपकी प्रकृति से श्रेष्ठ ज्ञान लाभ कर मृत्यु मुख से बचकर अमर हो जाते हैं ।।१६५।। नित्ययुक्त योगिगण योगबल से आपको जानकर भोगों का परित्याग कर देते हैं। जो मर्त्य आपका साक्षात्कार करके विशुद्ध होते हैं, वे अपने कर्मफल के अनुसार दिव्य भोगों का उपभोग करते हैं ।।१६६।। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्ति से जैसे हमने आपको समझा वैसा ही आपके अपार माहात्म्य का कीर्तन किया। आप हमारे लिए सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् आप अज्ञेय और अप्राप्य हैं आपको नमस्कार है" ।।१६७।।

श्रीवायुमहापुराण का शार्वस्तव नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।।२४।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

मधुकैटभोत्पत्तिविनाशवर्णनम्

सूत उवाच

संपिबन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः। प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवच्च स्वकीर्तनात् ।।१।।
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः। पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचनः ।।२।।
ततः स भगवान्देवः श्रुत्वा वाक्यामृतं तयोः। जानन्नपि महाभागः प्रीतिपूर्वमथाब्रवीत् ।।३।।
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ। समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन्घोरे जलप्लवे ।।४।।
तावूचतुर्महात्मानौ संनिरीक्ष्य परस्परम्। भगवन्किंच तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ।।
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारमृते त्वया ।।५।।
*तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यभिनन्द्यानुमान्य च। उवाच भगवान्देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण वदाम्यहम् ।।६।।
प्रीतोऽहमवया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया। भवन्तौ माननीयौ वै मम ह्यर्हतरावुभौ ।।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ।।७।।
तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत्। ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ।।८।।

अध्याय २५

मधुकैटभ की उत्पत्ति और विनाश

सूत जी बोले–मधु की भाँति पिङ्गल और बड़ी-बड़ी आँखोंवाले विरूपाक्ष, दक्षयज्ञ विनाशक, पिनाकी, खण्डपरशु, भूतप्रान्त, त्रिलोचन, पहले तो इस प्रकार देखते थे मानो वे दोनों देवताओं को पी जायँगे परन्तु पीछे अपनी स्तुति सुनकर उनको अपार हर्ष हुआ। उन देवों की सरस स्तुति वाणी को सुनकर सब कुछ जानते हुए भी अनजान की भाँति प्रेमपूर्वक बोले– ।।१-३।। कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाले आप दोनों महात्मा कौन हैं जो उस घोर प्रलय समुद्र में एक-दूसरे की हिताकांक्षा से यहाँ प्रकट हुए हैं। यह सुनकर वे दोनों एक-दूसरे की ओर देखकर बोले–भगवन्! विभो! सब रहस्य को जानते हुए भी आप क्यों इस प्रकार पूछ रहे हैं? आपके बिना कहाँ पर हम अत्यन्त सुख की आशा कर सकते हैं ।।४-५।। उन दोनों की विनीत वाणी को सुनकर भगवान् शंकर ने उनका अभिनन्दन किया और उनकी सराहना करते हुए मधुर और मृदु वाणी से बोले–"हिरण्यगर्भ और कृष्ण! सुनो, तुम दोनों की इस नित्य अक्षरों

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि धूर्वहम् । ततः स भगवान्ब्रह्मा वरेप्सुः पुत्रलिप्सया ।।९।।
अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् । वीरमप्रतिमं पुत्रं यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ।।१०।।
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् । स तस्य वाक्यं संपूज्य केशवस्य पितामहः ।।११।।
ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः । उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ।।१२।।
यदि मे भगवान्प्रीतः पुत्रकामस्य नित्यशः । पुत्रो मे भव विश्वात्मन्स्वतुल्यो वाऽपि धूर्वहः ।।१३।।
नान्यं वरमहं वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर । तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान्भगनेत्रहा ।।१४।।
निष्कल्मषममायं च बाढमित्यब्रवीद्वचः । यदा कार्यसमारम्भे कस्मिंश्चित्तव सुव्रत ।।१५।।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वां समुपैष्यति । आत्मैकादश ये रुद्रा विहिताः प्राणहेतवः ।।१६।।
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्तः सहानुगः । ऋषिर्मित्रो महात्मा वै ललाटाद्भविता तदा ।।१७।।
प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणस्तादृशं पुरा । विष्णुं पुनरुवाचेदं ददामि च वरं तव ।।१८।।
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः । सर्वमेत्कृतं देवं परितुष्टोऽसि मे यदि ।।
त्वयि ते सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ।।१९।।
एवमुक्तस्ततो देवः समभाषत केशवम् । विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहं तव शाश्वत ।।२०।।

से युक्त भक्ति से परम प्रसन्न हूँ। आप दोनों मेरे मान्य और पूज्य हैं, आप लोगों को मैं कौन-सा उत्तम वर दूँ ।।६-१०।। शिव की ऐसी बातें सुनकर विष्णु ने ब्रह्मा से कहा–महाभाग! माँगो, जो वर तुमको अभीष्ट हो उसको माँगो। तदनन्तर वर चाहनेवाले भगवान् ब्रह्मा ने कहा–विष्णो! मुझे पुत्र की इच्छा है, मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो मेरे भार को हल्का कर दे। विष्णु ने पुत्रेच्छु प्रजापति से कहा कि यदि तुम अप्रतिम, वीर और धुरन्धर पुत्र को चाहते हो तो देव-देव महेश्वर को ही अपना पुत्र बनने के लिए कहो। उस पितामह ने केशव के उस सुझाव को मान लिया और स्वयं ईशान, वरदाता, रुद्र का अभिवादन कर हाथ जोड़कर पुत्रप्राप्ति की इच्छा से विष्णु के साथ कहा–भगवन्! पुत्र की कामना करनेवाले मुझ पर यदि आप प्रसन्न हैं तो विश्वात्मन्! अपने समान धुरन्धर कार्यक्षम पुत्र दें। महेश्वर! आपके प्रसन्न हो जाने पर दूसरा वर मैं नहीं चाहता! ।।११-१३½।। भग के नेत्र को फोड़ देनेवाले भगवान् ने ब्रह्मा की उस प्रार्थना को सुनकर स्पष्ट शब्दों में कहा–ऐसा ही होगा। सुव्रत! तुम जब किसी कार्य को आरम्भ करोगे और उस काम में अड़चन आ जाने पर जब तुमको क्रोध होगा तो उस समय सब प्राणियों के जीवन के कारण जो एकादश रुद्र कहे गये हैं, जो मेरे ही रूप हैं, उनके रूप में शूलपाणि महात्मा और ऋषि एकादशात्मा मैं तुम्हारे ललाट से प्रकट होऊँगा ।।१४-१७।। पहले ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार अपनी अनुपम प्रसन्नता दिखाकर फिर विष्णु से बोले, 'तुमको भी वर दूँगा।' महाभाग विष्णु यह सुनकर शिव से बोले–'देव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो आपने मेरे लिए सब कुछ कर दिया। मेघवाहन! तुममें मेरी अचल भक्ति रहे।' शङ्कर इन बातों को सुनकर फिर केशव से बोले– ।।१८-१९½।। विष्णो! देव! शाश्वत! सुनो, मेरी जैसी तुम्हारे

प्रकाशं चाप्रकाशं च जङ्गमं स्थावरं च यत्। विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ।।२१।।
अहमग्निर्भवान्सोमो भवान्रात्रिरहं दिनम्। भवानृतमहं सत्यं भवान्क्रतुरहं फलम् ।।२२।।
भवाञ्ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः। मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः ।।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ।।२३।।
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम्। भवानर्धशरीरं मे त्वहं तव तथैव च ।।२४।।
वामपार्श्वं महन्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम्। त्वं च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ।।२५।।
त्वं च ते हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः। भवान्सर्वस्य कार्यस्य कर्ताऽहमधिदैवतम् ।।२६।।
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ। एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्धानमीश्वरः ।।२७।।
ततः सोऽन्तर्हिते देवे संप्रहृष्टस्तदा पुनः। अशेत शयने भूयः प्रविश्यान्तर्जले हरिः ।।२८।।
तं पद्मं पद्मगर्भाभं पद्माक्षः पद्मसंभवः। संप्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ।।२९।।
अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावुभौ। महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ।।३०।।
(+तत्पद्मं तरुणार्काभं दीप्ताक्षौ तमशालिनौ। कम्पयामासतुर्वीरौ हसन्ताविव निर्भयौ ।।
बभञ्जतुश्च पत्राणि तावुभौ मधुकैटभौ) ।।३१।।

ऊपर प्रीति है। प्रकाश, अप्रकाश, जङ्गम, स्थावर अथवा यह सारा विश्वरूप रुद्र और नारायणमय है ।।२०-२१।। मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि हो और मैं दिन हूँ। तुम ऋतु हो मैं सत्य, तुम यज्ञ और मैं फल हूँ। तुम ज्ञान हो तो मैं ज्ञेय हूँ। सुकृत करनेवाले जन तुम्हारा जप कर, तुमको प्रसन्न कर मुझमें भी प्रविष्ट हो जाते हैं। युगक्षय काल में हम दोनों को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं ।।२२-२३।। तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझे पुरुष शिव। तुम जिस प्रकार मेरे आधे शरीर हो, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ। तुम हमारे महान् श्रीवत्सपदलक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नीललोहित दक्षिण पार्श्व हूँ। विष्णो! तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय में स्थिर हूँ। तुम सभी कार्यों के कर्त्ता और हम कार्याधिष्ठित देवता हैं ।।२४-२६।। वत्स! जलदाभ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब जाता हूँ।" यह कहकर देवाधिदेव महादेव अन्तर्द्धान हो गये। महादेव जी के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् फिर शयन करने के लिए जल में घुस गये ।।२७-२८।। तब पद्माक्ष, पद्मजन्मा ब्रह्मा भी प्रसन्न होकर उस पद्मगर्भ की आभावाले उपयुक्त पद्मासन पर जा बैठे। इसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु-कैटभ नामक दो अतुलनीय बलशाली भ्राताओं ने तरुण सूर्य की तरह चमकनेवाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया ।।२९-३१।। उन दोनों की आँखें अन्धकार में चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँसकर निर्भयभाव से पद्मपत्रों को तोड़ रहे थे। उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा-"तुम हमारे भक्ष्य

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

ऊचतुश्चैव वचनं भक्ष्यो वै नौ भविष्यसि। एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्धानं गतावुभौ ।।३२।।
दारुणं तु तयोर्भावं ज्ञात्वा पुष्करसंभवः। माहात्म्यं चाऽऽत्मनो बुद्ध्वा विज्ञातुमुपचक्रमे ।।३३।।
कर्णिकाघटनं भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम्। ततः स पद्मनालेन अवतीर्य रसातलम् ।।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं ददृशेऽन्तर्जले हरिम् ।।३४।।
स च तं बोधयामास विबुद्धं चेदमब्रवीत्। भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शं कुरु ।।३५।।
ततः स भगवान्विष्णुः सप्रहासमरिंदमः। न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनिः स्वयम् ।।३६।।
यस्मात्पूर्वं त्वया चोक्तं भूतेभ्यो मे महद्भयम्। तस्माद्भूतादिवाक्यैस्तौ दैत्यौ त्वं नाशयिष्यसि ।।३७।।
भूर्भुवः स्वस्ततो देवं विविशुस्तमयोनिजम्। ततः प्रदक्षिणं कृत्वा तमेवाऽऽसीनमागतम् ।।३८।।
गते तस्मिंस्तुतोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात्। विष्णुं विष्णुं च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ।।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुनः ।।३९।।
चक्राते रूपसादृश्यं विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ। कृतसादृश्यरूपौ तौ तावेवाभिमुखौ स्थितौ ।।४०।।
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माणं दारुणं वचः। अस्माकं युध्यमानानां मध्ये वै प्राश्निको भव ।।४१।।
ततस्तौ जलमाविश्य संस्तभ्यापः स्वमायया। चक्रतुस्तुमुलं युद्धं यस्य येनेप्सितं तदा ।।४२।।
तेषां तु युध्यमानानां दिव्यं वर्षशतं गतम्। न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्यं संन्यवर्तत ।।४३।।

बनो।" यह कहकर वे अन्तर्द्धान हो गये ।।३२।। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य जानना चाहा; किन्तु वे तब तक उनकी गतिविधि या पद्मपत्रों का तोड़ा जाना नहीं समझ सके। वे उस कमलनाल के सहारे रसातल में उतर गये। वहाँ जल के भीतर उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीयधारी विष्णु को देखा। उन्होंने विष्णु को जगाया और उनके जागने पर कहा—"देव! हमें भूतों से भय हो रहा है, उठिये हमें बचाइये, हमारा कल्याण कीजिये।" ।।३३-३५।। शत्रु को दमन करनेवाले स्वयं भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले—कुछ चिन्ता नहीं। डरने की कोई बात नहीं है। जिसलिए पहले-पहल आपने कहा कि हमें भूतों से भय हो रहा है; इसलिए उन दैत्यों का भूतादि वाक्य से आप ही विनाश करेंगे। अनन्तर भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक प्रदक्षिणा करके बैठे हुए ब्रह्मा में प्रवेश कर गये। उनके चले जाने पर अनन्त भगवान् ने विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को मुख से उत्पन्न कर कहा—तुम दोनों ब्रह्मा की रक्षा करो ।।३६-३९।। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु-जिष्णु की आगमन वार्त्ता जानकर विष्णु-जिष्णु की ही तरह अपना रूप बना लिया और उसी रूप में ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित होकर उन दोनों (दैत्यों) ने ब्रह्मा से कठोर स्वर में कहा—"हम दोनों परस्पर युद्ध करते हैं, बीच में तुम निर्णायक बनो ।।४०-४१।। इसके बाद उन दोनों ने जल में प्रवेश कर अपनी माया से जल को स्तब्ध कर दिया। इसके बाद वे दोनों विष्णु-जिष्णु से अभिलषित रूप से युद्ध करने लगे। उनको युद्ध करते हुए दिव्य सौ वर्ष बीत गये, किन्तु रणमद से मत्त उनमें से कोई भी युद्ध विरत नहीं हुआ ।।४२-४३।।

लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ । सादृश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमत् ।।४४।।
आमेखलं च गात्रं च ततो मन्त्रमुदाहरत् ।।४५।।
तपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता । पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ।।
तां दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयाद्वर्णविवर्जितौ ।।४६।।
ततः प्रोवाच तां कन्यां ब्रह्मा मधुरया गिरा । काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ।।४७।।
साम्ना संपूज्य सा कन्या ब्रह्माणं प्राञ्जलिस्तदा । मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः संदेशकारिणीम् ।।४८।।
त्वया संकीर्त्यमानाऽहं ब्रह्मन्प्राप्ता त्वरायुता । अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा गौणं नाम चकार ह ।।४९।।
मया च व्याहृता यस्मात्त्वं चैव समुपस्थिता । महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यसि ।।५०।।
उत्थिता च शिरो भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते । एकानंशात्तु यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ।।५१।।
गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च । नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादाच्छुभानने ।।५२।।
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् । अनावृतं नौ मरणं पुत्रत्वं च भवेत्तव ।।५३।।
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्यमसादनम् । अनयत्कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ।।५४।।

उनका आकार, प्रकार और संस्थानादि एक प्रकार का था एवं गति स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा उन दोनों का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। ब्रह्मा ने तब दिव्य दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और कमल-केसर के बने सूक्ष्म कवच द्वारा उन दोनों के (विष्णु-जिष्णु के) नाभि से ऊपर के शरीर को बाँधकर मन्त्रों का पाठ करने लगे ।।४४-४५।। मन्त्र जपते हुए ब्रह्मा को एक इन्दुवदना, पद्म सुन्दरी, प्रियदर्शना, कमलहस्ता कन्या उत्पन्न हुई। उसे देखते ही दोनों दैत्यों के प्राण सूख गये ।।४६।। ब्रह्मा ने उस कन्या से मधुर शब्दों में कहा–"यथार्थ सुन्दरि, कहो तुम कौन हो, मैं तुम्हें क्या समझूँ ?" उस कन्या ने वेदोक्त विधि से ब्रह्मा की पूजाकर हाथ जोड़कर कहा–"मुझे आप विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। ब्रह्मन्! आपने मेरा स्मरण किया; इसलिए मैं शीघ्र ही यहाँ पहुँच गयी। सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसका एक गौण नाम रखा ।।४७-४९।। हमारे द्वारा बुलायी जाने पर तुम आयी हो इसलिए तुम्हारा एक नाम महाव्याहृति होगा ।।५०।। तुम हमारे सिर को भेदकर उत्पन्न हुई हो इसलिए सावित्री भी कही जाओगी। एकानंशा[१] होने के कारण तुम्हारा नाम अनेकांशा भी होगा ।।५१।। सुमुखि! इतने तो तुम्हारे गौण नाम हुए किन्तु हमारे प्रसाद से तुम्हारे कर्मजनित और भी असंख्य नाम होंगे। इधर युद्ध करते-करते वे दोनों दैत्य थक गये और उन दोनों ने विष्णु-जिष्णु से वर माँगा कि खुले स्थान में हमारी मृत्यु हो एवं आप दोनों हमारे पुत्र हों। 'ऐसा ही हो' कहकर विष्णु ने कैटभ को यमसदन पहुँचा दिया और जिष्णु ने भी मधु को मार डाला। इस प्रकार विष्णु-जिष्णु के द्वारा दोनों दैत्यों के मारे जाने पर ब्रह्मा प्रसन्न होकर संसार की हितकामना में रत हो गये ।।५२-५५।। अब ईश्वर ने जिस प्रकार पुत्र रूप से आत्मदान

---

[१] यहाँ मूल पाठ भ्रष्ट जान पड़ता है–एकानंशात्तु के स्थान पर नैकांशात्तु होना चाहिए। जिसका अर्थ है एकांश न होने के कारण। इस प्रकार अर्थ संगत हो जाता है।

एवं तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह। प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ।।५५।।
पुत्रत्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत। विष्णुना जिष्णुना सार्धं मधुकैटभयोस्तथा ।।
संपराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।।५६।।
अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः। संक्षेपसंप्लवं घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ।।५७।।
स तस्य वचसा देवः संहारमकरोत्तदा। महीं निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थांश्च जङ्गमान् ।।५८।।
यदि गोविन्द भद्रं ते क्षिप्रं ते यादसां प्रति। ब्रूहि यत्करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मिवर्धन* ।।५९।।
बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयोने वचो मम। प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात्पुत्रलिप्सया ।।६०।।
तं तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनृणो भवान्। चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व च ।।६१।।
अवाप्य संज्ञां गोविंदात्पद्मयोनिः पितामहः। प्रजा स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ।।६२।।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्तत। ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यवर्धत ।।६३।।
सक्रो(तत्क्रो)धाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रुबिन्दवः। ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ।।६४।।
महाभोगा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलंकृताः। प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ।।६५।।
सर्पांस्तथाऽग्रजान्दृष्ट्वा ब्रह्माऽऽत्मानमनिन्दत। अहो धिक्तपसा मह्यं फलमीदृशकं यदि ।।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ।।६६।।

किया, उसे सुनिये। विष्णु-जिष्णु के साथ जब मधु-कैटभ का युद्ध समाप्त हो गया, तब ब्रह्मा ने विष्णु से कहा ।।५६।। आज सौ वर्ष पूरे हो गये और समय भी आ गया। आप इस घोर संप्लव को समेट लें। हम भी अपने स्थान को जाते हैं। विष्णु ने ब्रह्मा के कहने पर संप्लव का संहार कर दिया और पृथ्वी को स्थावर विहीन करके जंगलों को प्रकृतिस्थ कर दिया। फिर ब्रह्मा बोले-गोविन्द! आपका कल्याण हो। आपने समुद्र को शीघ्र ही सीमित कर दिया। लक्ष्मीवर्द्धन, कहिये हम आपका कौन-सा कार्य करें? ।।५७-५९।। विष्णु बोले-स्वर्णवर्ण कमलयोनि ब्रह्मा! अच्छा, आप मेरी बात सुनिये। पुत्राभिलाषी होकर आपने जो महादेव से वरदान प्राप्त किया है, उसे सफल कीजिये और ऋणमुक्त होइये। आप चारों प्रकार से जीवों की सृष्टि और उनका विनाश कीजिये ।।६०-६१।। पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा गोविन्द से ज्ञान प्राप्त कर प्रजा की सृष्टि करने के लिए अत्यन्त उग्र तप करने लगे। इस प्रकार दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी कुछ नहीं हुआ, तब उन्हें दुःख हुआ। उस समय उनके क्रोध सम्पन्न नेत्रों से अश्रुविन्दु छलक पड़े। उन अश्रुविन्दुओं से वातपित्तकफात्मक महाविषवाले सर्प उत्पन्न हुए ।।६२-६४।। वे सर्प बड़े-बड़े फन धारण किये हुए थे, स्वस्तिक और लम्बे केशों से समलंकृत एवं महासत्त्व थे। सबसे पहले सर्पों को ही उत्पन्न होते देखकर ब्रह्मा अपनी निन्दा करने लगे कि मेरी तपस्या को धिक्कार है जिसका फल ऐसा हुआ कि प्रारम्भ में ही मैंने लोकविनाशकारक जीवों की ही सृष्टि की ।।६५-६६।। क्रोध से उन्हें भयङ्कर मूर्च्छा हो गयी। मूर्च्छितावस्था में ही प्रजापति ने अपना प्राण त्याग दिया। तब

---

* अत्र स्थले विष्णुरुवाचेति घ. पुस्तके।

तस्य तीव्राऽभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा। मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान्प्रजापतिः ॥६७॥
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम्। आत्मैकादश ते रुद्राः प्रोद्भूता रुदतस्तथा ॥
रोदनात्खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत् ॥६८॥
ये रुद्राः खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः। प्राणाः प्राणभृतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः ॥६९॥
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च। तस्य प्राणान्ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः ॥
ललाटात्पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मकः ॥७०॥
ब्रह्मणः सोऽददात्प्राणानात्मजः स तदा प्रभुः। प्रहृष्टवदनो रुद्रः किंचित्प्रत्यागतासवम् (?)
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वचः ॥७१॥
उपयाचस्व मां ब्रह्मन्स्मर्तमर्हसि चाऽऽत्मनः। मां च वेत्थाऽऽत्मजं रुद्रं प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥७२॥
श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतं च मनोगतम्। पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः ॥७३॥
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा। उवाच भगवान्ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७४॥
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः। को भवान्विश्वमूर्तिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥७५॥
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा। ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्याऽऽत्मजैः सह ॥७६॥
यत्ते वरमहं ब्रह्मन्याचितो विष्णुना सह। पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वाऽपि धूर्वहः ॥७७॥
लोकेषु विश्रुतैः कार्यं सर्वैर्विश्वात्मसंभवैः। विषादं त्यज देवेश लोकांस्त्वं स्त्रष्टुमर्हसि ॥७८॥

अनुपमेय पराक्रमी ब्रह्मा की देह से करुणापूर्वक रोते हुए एक साथ एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। रोने के ही कारण वे रुद्र हुए और उन्होंने रुद्रत्व प्राप्त किया। जो रुद्र हैं, वे ही प्राण हैं और जो प्राण हैं, वे ही रुद्र हैं। प्राणधारी सभी भूतों में वे ही प्राण रूप से स्थित हैं। पद्मयोनि के ललाट से उत्पन्न एकादशात्मक प्रभु त्रिशूलधारी नीललोहित ने साधु आचरण करनेवाले अतिशय महान् ब्रह्मा को फिर प्राणदान दिया। आत्मज स्वरूप प्रसन्नवदन प्रभु रुद्र ने ब्रह्मा को प्राणदान दिया और प्राण के लौट आने पर ब्रह्मा से कहा ॥६७-७१॥ "ब्रह्मन्! अपने को स्मरण कीजिये, हमसे याचना कीजिये और हम (रुद्र) को अपना पुत्र समझिये, हम पर प्रसन्न होइये।" रुद्र के इस मनोनुकूल वचन को सुनकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उनके दोनों नेत्र विकसित कमल की तरह खिल गये। तपाये हुए सोने की तरह देदीप्यमान भगवान् ब्रह्मा ने प्राण के लौट आने पर स्निग्ध-गम्भीर स्वर में कहा—महाभाग! आप कौन हैं, जो हमारे मन को आनन्दित कर रहे हैं? आप गिनती में ग्यारह और विश्वमूर्ति की तरह विराजमान हैं? आप स्पष्ट शब्दों में कहिये। अनन्त तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा ने जब इस प्रकार कहा, तब रुद्र ने आत्मजों के साथ उनका अभिवादन करके कहा ॥७२-७६॥ आपने विष्णु के साथ जो हमसे वर माँगा था कि देव! आप हमारे उपयुक्त पुत्र हों अथवा आपकी तरह सुयोग्य पुत्र हों, विश्वात्मसम्भव! लोकप्रसिद्ध उन्हीं पुत्रों के द्वारा हम कार्य सम्पादन करेंगे। अतः देवेश, विषाद को छोड़िये। आप संसार की सृष्टि करने के योग्य हैं ॥७७-७८॥ इन बातों को सुनकर ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और प्रलय में नीललोहित स्वरूप में व्यक्त होनेवाले रुद्र

एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमना भवत्। रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ।।७९।।
साहाय्यं मम कार्यार्थं प्रजाः सृज मया सह। बीजी त्वं सर्वभूतानां तत्प्रपन्नस्तथा भव ।।
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः ।।८०।।
ततः स भगवान्ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषितः। मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूतानां धारणां ततः ।।
जिह्वां सरस्वतीं चैव ततस्तां विश्वरूपिणीम् ।।८१।।
भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। वसिष्ठं च महातेजाः ससृजे सप्त मानसान्।।८२।।
पुत्रानात्मसमान्नन्यान्सोऽसृजद्विश्वसंभवान्। तेषां भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ।।८३।।
ओंकारप्रमुखान्वेदानभिमान्याश्च देवताः। एवमेतान्यथा प्रोक्तान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।।८४।।
दक्षाद्यान्मानसान्पुत्रान्प्रोवाच भगवान्प्रभुः। प्रजाः सृजत भद्रं वो रुद्रेण सह धीमता ।।८५।।
अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा। वयमिच्छामहे देव प्रजाः स्त्रष्टुं त्वया सह ।।
ब्रह्मणस्त्वेष संदेशस्तव चैव महेश्वर ।।८६।।
तैरेवमुक्तो भगवान्रुद्रः प्रोवाच तान्प्रभुः। ब्रह्मणाऽऽत्मजा मह्यं प्राणान्गृह्य च वै सुराः ।।८७।।
कृत्वाऽग्रजोऽग्रजानेतान्ब्राह्मणानात्मजान्मम। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान्सप्त लोकान्ममा(दा)त्मकान् ।।
भवन्तः स्त्रष्टुमर्हन्ति वचनात्मम स्वस्ति वः ।।८८।।
तेनैवमुक्ताः प्रत्यूचू रुद्रमाद्यं त्रिशूलिनम्। यथाऽऽज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ।।८९।।

से कहा–आप हमारे कार्य में सहायता दीजिये और हमारे साथ प्रजा की सृष्टि कीजिये। आप निखिल भूत और जगत् के कारण हैं; अतएव इस कार्य के लिए उद्यत होइये। शंकर ने 'ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्मा की बात मान लिया ।।७९-८०।। अनन्तर कृष्ण मृगचर्म से विभूषित होकर ब्रह्मा ने पहले मन को फिर भूतों की धारणा को और उसके बाद जिह्वानिवासिनी विश्वरूपिणी सरस्वती को बनाया। अनन्तर भृगु, अंगिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ आदि सात महातेजस्वी मानस पुत्रों को बनाया ।।८१-८२।। इनके अतिरिक्त अनेकानेक जगत्कर्त्ता पुत्रों की सृष्टि करने के बाद उनके मुख से गौओं की सृष्टि हुई। उसके बाद ओंकार प्रमुख वेद और उनके अभिमानी देवता बने। तब पितामह ब्रह्मा ने पूर्वोक्त दक्षादि मानस पुत्रों से कहा–"आपका कल्याण हो। आप लोग धीमान् रुद्र के साथ मिलकर प्रजा की सृष्टि करें।" ।।८३-८५।। तब प्रजापतिगण रुद्र के अनुगामी होकर बोले–'देव! हम लोग आपके साथ मिलकर प्रजा की सृष्टि करना चाहते हैं। महेश्वर! आपके प्रति ब्रह्मा का यही सन्देश है ।।८६।। उन लोगों के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उन लोगों से कहा–"ब्रह्मनन्दन देवगण! आपमें जो अग्रज हैं, वे हमसे प्राण ग्रहणकर और ब्रह्मतनयों को साथ लेकर ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सातों लोकों की सृष्टि करें। आप लोग हमारी आज्ञा से ऐसा कर सकते हैं! आप सबका कल्याण हो।" ।।८७-८८।। यह सुनकर उन लोगों ने त्रिशूलधारी रुद्र से कहा–देव! जैसे आप कहते हैं, वैसा ही होगा। इस प्रकार प्रजापतियों ने महादेव का अनुमोदन कर महात्मा दक्ष से कहा–"आप ही श्रेष्ठ प्रजापति हैं। आपकी जय हो! आपको ही आगे कर हम लोग प्रजा

अनुमान्य महादेवं प्रजानां पतयस्तदा। ऊचुर्दक्षं महात्मानं भवाञ्श्रेष्ठः प्रजापतिः।।
त्वां पुरस्कृत्य भद्रं ते प्रजाः स्त्रक्ष्यामहे वयम् ।।९०।।
एवमस्त्विति वै दक्षः प्रत्यपद्यत भाषितम्। तैः सह स्त्रष्टुमारेभे प्रजाकामः प्रजापतिः।।
सर्गस्थिते ततः स्थाणौ ब्रह्मा सर्वमथासृजत् ।।९१।।
अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै संबभूवतुः। ऋभुः सनत्कुमारश्च तपोलोकनिवासिनौ।।
ततो महर्षीनन्यान्स मानसानसृजत्प्रभुः ।।९२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते मधुकैटभोत्पत्तिविनाशवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

स्वरोत्पत्तिनिरूपणम्

सूत उवाच

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते। त्वयोक्तानि यथातत्त्वं लोकानुग्रहकारणात् ।।१।।
तत्र वै संशयो मह्यमवतारेषु शूलिनः। किं कारणं महादेवः कलिं प्राप्य सुदारुणम्।।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतारं करोति वै ।।२।।

की सृष्टि करेंगे" ।।८९-९०।। दक्ष ने भी 'ऐसा ही हो' कहकर उनके भाषण का अनुमोदन किया और उन लोगों के साथ मिलकर प्रजाभिलाषी प्रजापति ने सृष्टि-रचना प्रारम्भ की। रुद्रदेव को इस प्रकार सृष्टिकार्य में तत्पर होते देखकर ब्रह्मा भी सृष्टि करने लगे। सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर फिर तब तपोलोक निवासी ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। उसके बाद ब्रह्मा ने और भी ऋषि आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया ।।९१-९२।।

श्रीवायुमहापुराणान्तर्गत मधुकैटभ की उत्पत्ति और विनाश नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२५।।

अध्याय २६

स्वरोत्पत्ति निरूपण

सूत जी बोले—महामति! आपने संसारवासियों पर दया करके जिन विस्मयकारक रहस्यों को तत्त्वतः कहा है, उनमें महादेव के अवतार के सम्बन्ध में कुछ हमें सन्देह रह गया है ।।१$\frac{१}{२}$।। क्या कारण है कि अन्य पूर्व युगों को छोड़कर महादेव कठिन कलिकाल में अवतार ग्रहण करते हैं? प्रभो! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर वे क्यों अवतार

अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो। अवतारं कथं चक्रे एतदिच्छामि वेदितुम् ।।३।।
न तेऽस्त्यविदितं किंचिदिह लोके परत्र च। भक्तानामुपदेशार्थं विनयात्पृच्छतो मम ।।
कथयस्व महाप्राज्ञ यदि श्राव्यं महामते ।।४।।

लोमश उवाच

एवं पृष्टोऽथ भगवान्वायुर्लोकहिते रतः। इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ।।५।।
एतद्गुप्ततमं लोके यन्मां त्वं परिपृच्छसि। तत्सर्वं शृणु गाधेय उच्यमानं यथाक्रमम् ।।६।।
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके। स्त्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ।।७।।
तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः। दिव्यगन्धः सुधापेक्षी दिव्यां श्रुतिमुदीरयन् ।।८।।
अशब्दस्पर्शरूपां तामगन्धां रसवर्जिताम्। श्रुतिं ह्युदीरयन्देवो यामविन्दच्चतुर्मुखः ।।९।।
ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम्। चिन्तयामास मनसा त्रितयं को न्वयं त्विति ।।१०।।
तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं सदक्षरम्। अशब्दस्पर्शरूपं च रसगन्धविवर्जितम् ।।११।।
अथोत्तमं स लोकेषु स्वमूर्तिं चापि पश्यति। ध्यायन्वै स तदा देवमथैनं पश्यते पुनः ।।१२।।
ते श्वेतमथ रक्तं च पीतं कृष्णं तदा पुनः। वर्णस्थं तत्र पश्येत न स्त्री न च नपुंसकम् ।।१३।।
तत्सर्वं सुचिरं ज्ञात्वा चिन्तयन्हि तदक्षरम्। तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः ।।१४।।

ग्रहण करते हैं, हम यह जानना चाहते हैं ।।२-३।। परलोक या इस लोक की कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। महामति! महापण्डित! हम विनयपूर्वक आपसे पूछते हैं। भक्तों को उपदेश देने के लिए यह हमें कहिये, यदि आप सुनाना उचित समझते हों ।।४।।

लोमश ऋषि बोले–इस प्रकार पूछे जाने पर लोककल्याणकर्त्ता भगवान् वायु ने कहा–"गाधेय! आपने जो हमसे पूछा है, वह अत्यन्त गुप्त कथा है; किन्तु हम उसे यथाक्रम कहते हैं, उसे आप सुनिये! पहले जब दिव्य हजार वर्ष पर्यन्त जगत् एकार्णवाकार था, तब प्रजा की सृष्टि करने की अभिलाषा से ब्रह्मा दुःखी होकर चिन्ता करने लगे। उनके चिन्ता करते ही एक कुमार उत्पन्न हुआ। वह दिव्यगन्धी और सुधापेक्षी था, जो दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहा था। ।।५-८। चतुर्मुख ब्रह्मा ने तब अशब्द स्पर्शरूपा, अगन्धा और रसवर्जिता श्रुति का उच्चारण करके उसे प्राप्त किया। फिर वे ध्यान लगाकर भयङ्कर तप करने लगे और चिन्ता करने लगे कि यह कुमार कौन है और इसके द्वारा उच्चारित यह त्रिमूर्ति क्या है? उनके चिन्तन करते ही शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध रहित अक्षर प्रादुर्भूत हुआ। इनके बाद ब्रह्मा ने लोक में अक्षर और अपनी मूर्ति का दर्शन किया ।।९-११$\frac{1}{2}$।। ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने फिर देखा कि देवस्वरूप अक्षर श्वेत, कृष्ण, रक्त और पीत है और वह न स्त्री है न नपुंसक ।।१२-१३।। उन सम्पूर्ण अक्षरों को अच्छी तरह जानकर ब्रह्मा चिन्ता कर रहे थे कि उनके कण्ठ से एकमात्र, महाघोष, सुनिर्मल, श्वेतवर्ण अक्षर प्रकट हुआ। वही अक्षर ओंकार,

एकमात्रो महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः। स ओंकारो भवेद्वेदः अ(दो ह्य)क्षरं वै महेश्वरः ।।१५।।
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरं वै स्वयंभुवः। प्रादुर्भूतं तु रक्तं तु स देवः प्रथमः स्मृतः ।।१६।।
ऋग्वेदं प्रथमं तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम्। एतां दृष्ट्वा ऋचं ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ।।
तदक्षरं महातेजाः किमेतदिति लोककृत् ।।१७।।
तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वरः। द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ।।१८।।
ततः पुनर्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम्। प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ।।१९।।
इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थ देवो वः सविता *पुनः। ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रस्तु यजुः स्मृतः ।।२०।।
ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम्। द्विमात्रं चिन्तयन्ब्रह्मा त्वक्षरं पुनरीश्वरः ।।२१।।
तस्य चिन्तयमानस्य ओंकारः संबभूव ह। ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओंकारं समचिन्तयत् ।।२२।।
अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम्। +अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।।२३।।
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान्। चिन्तयित्वा च भगवांस्त्रिसंध्यं यत्त्रिरक्षरम् ।।
त्रिवर्णं यत्त्रिषवणमोंकारं ब्रह्मसंज्ञितम् ।।२४।।
ततश्चैव त्रिसंयोगात्त्रिवर्णं तु तदक्षरम्। (×लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यं च संहितं त्रिदिवं त्रिकम् ।।२५।।
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं चैव शाश्वतम्)। तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः ।।२६।।

वेद या साक्षात् महेश्वर था ।।१४-१५।। भगवान् स्वयंभू फिर अक्षर विषयक चिन्ता करने लगे, तो एक रक्त अक्षर उत्पन्न हुआ। यही रक्त अक्षर आदि देवता और ऋग्वेद का आदि मन्त्र–'अग्निमीले पुरोहितम्" कहलाता है। इस ऋचा को देखकर ब्रह्मा फिर चिन्ता करने लगे कि यह क्या है? लोकनिर्माता तेजस्वी ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे कि प्रभुत्व सम्पन्न द्विमात्र अक्षररूप महेश्वर आविर्भूत हुए ।।१६-१८।। फिर वे द्विमात्र अक्षर विषयक चिन्ता करने लगे कि ऋक्छंदयुक्त रक्ताक्षर यजुः प्रकट हुआ। जिसके आदि में 'इषे त्वोर्जे' इत्यादि मन्त्र है। ऋग्वेद एकमात्र है और यजुः द्विमात्र फिर उस अक्षर और वेद को देखकर स्वामी ब्रह्मा द्विमात्राक्षर की चिन्ता करने लगे ।।१९-२१।। ब्रह्मा चिन्ता कर रहे थे कि ओंकार समुद्भूत हुआ। तब ब्रह्मा उस अविनाशी अक्षर ओंकार की चिन्ता करने लगे। तब उन्होंने एक पीतऋचा को देखा--'अग्न आयाहि वीतये।' तब महातेजस्वी ब्रह्मा वेद को उपस्थित देखकर ब्रह्मा संज्ञित, त्रिवर्णात्मक ओंकार का त्रिसंध्य ध्यान करने लगे। यह ओंकार रूप अक्षर तीन वर्णों के संयोग में होने के कारण त्रिवर्ण, लक्ष्यालक्ष्य प्रदृश्य, संहित, त्रिदिव स्वरूप, त्रिक्, त्रिमात्र, त्रिपद, त्रियोग और शाश्वत है। इसलिए प्रभु ब्रह्मा उसी अक्षर की चिन्ता करने लगे।।२२-२६।। भगवान् स्वयंभू ने उस प्रदीप्त तेजस्क, आत्मरूप ओंकाराक्षर को चौदह मुँहवाला देखा।

---

* पुनरिति पदं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

+ इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्म रूपं स्वयंभुवः। चतुर्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ।।
तमोंकारं स कृत्वाऽऽदौ विज्ञेयः स स्वयंभुवः ।।२७।।
चतुर्मुखात्तस्मादजायन्त चतुर्दश। नानावर्णाः स्वरा दिव्यमाद्यं तच्च तदक्षरम् ।।२८।।
तस्मात्त्रिषष्टिर्वर्णा वै अकारप्रभवाः स्मृताः ।।
ततः साधारणार्थाय वर्णानां तु स्वयंभुवः। अकाररूप आदौ तु स्थितः स प्रथमः स्वरः ।।२९।।
ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखाः। मनवः संप्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरेश्वराः ।।३०।।
चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः। ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ।।३१।।
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनुः स्वायंभुवः स्मृतः। अकारस्तु स विज्ञेयः श्वेतवर्णः स्वयंभुवः ।।३२।।
द्वितीयात्तु मुखात्तस्य (*आकारो वै मुखः स्मृतः। नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्णः पाण्डुर उच्यते ।।३३।।
तृतीयात्तु मुखात्तस्य) इकारो यजुषां वरः। यजुर्मयः स चाऽऽदित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ।।३४।।
ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान्। ततः क्षत्रं प्रवर्तेत तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः ।।३५।।
चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वर उच्यते। वर्णतस्तु स्मृतास्ताम्रः स मनुस्तामसः स्मृतः ।।३६।।
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते। पीतको वर्णतश्चैव मनुश्चापि चरिष्णवः ।।३७।।
ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओंकारः कपिलः स्मृतः। वरिष्ठश्च ततः षष्ठो विजयः स महातपाः ।।३८।।
सप्तमात्तु मुखात्तस्य सूतो वैवस्वतो मनुः। ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णतः कृष्ण उच्यते ।।३९।।

प्रारम्भ में उन्होंने ओंकार को बनाया इसी से वे स्वयंभू कहलाये।।२७।। फिर चतुर्मुख ब्रह्मा के मुखों से नाना वर्णात्मक चौदह स्वर और आद्य दिव्य अक्षर प्रकट हुए। ये सब वर्ण अकार से प्रादुर्भूत हुए और साधारणतया इन वर्णों की संख्या तिरसठ है।।२८½।। स्वयंभू ने जिन साधारण वर्णों को देखा, उनके आदि में वे आकार रूप से स्थित हुए और वही प्रथम स्वर हुआ। फिर उन चौदहों स्वरों में मन्वन्तराधिपति दिव्य प्रधान चौदह मनु उत्पन्न हुए।।२९-३०।। अकार ही चतुर्दश मुखवाला ब्रह्म, ब्रह्मकल्प, सर्ववर्ण और प्रजापति के रूप में ख्यात है। उनके मुख से पहले स्वायंभुव मनु उत्पन्न हुए। ये स्वयंभू के अकार स्वरूप हैं। इसी प्रकार द्वितीय मुख से आकार रूप स्वारोचिष मनु उत्पन्न हुए। ये पाण्डुर वर्ण हैं।।३१-३३।। फिर तीसरे मुख से इकार उत्पन्न हुआ। यह यजुःश्रेष्ठ, यजुर्मय, आदित्यस्वरूप और यही यजुर्वेद कहलाता है। ईकार प्रतापवान् साक्षात् मनु स्वरूप है। यह रक्त वर्ण है। इसी से रक्त वर्ण क्षत्रकुल प्रवर्तित हुआ है।।३४-३५।। फिर चौथे मुख से जो स्वर उत्पन्न हुआ वह उकार कहलाता है। यह ताम्र वर्ण का है और मनु तामस कहलाता है।।३६।। पञ्चम मुँह से ऊकार उत्पन्न हुआ। यह पीत वर्ण का है और मनु चरिष्णु कहलाते हैं। छठे मुख से कपिल वर्ण ओंकार उद्भूत हुआ। यह महातपा वरिष्ठ विजय मनु कहलाता है।।३७-३८।। सप्तम मुख से कृष्ण वर्ण ऋक् स्वरूप वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए।।३९।। आठवें मुँह से श्याम वर्ण ऋकारात्मक सावर्णि मनु उत्पन्न

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अष्टमात्तु मुखात्तस्य ऋकारः श्यामवर्णतः। श्यामाक्षरसवर्णश्च ततः सावर्णिरुच्यते ।।४०।।
मुखात्तु नवमात्तस्य ऌकारः नवमः स्मृतः। धूम्रो वै वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ।।४१।।
दशमात्तु मुखात्तस्य ॡकारः प्रभुरुच्यते। समश्चैव सवर्णश्च बभौ सावर्णिको मनुः ।।४२।।
मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते। पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ।।४३।।
द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते। पिशङ्गो भस्मवर्णाभः पिशङ्गो मनुरुच्यते ।।४४।।
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते। (*पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तमः ।।४५।।
चतुर्दशान्मुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते। कर्बूरो वर्णतश्चैव मनुः सावर्णिरुच्यते) ।।४६।।
इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः। विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ।।४७।।
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद्वृता हि वै। तस्मात्तेषां सवर्णत्वादन्वयस्तु प्रकीर्तितः ।।४८।।
सवर्णाः सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः। तस्मात्प्रजानां लोकेऽस्मिन्सवर्णाः सर्वसंधयः ।।४९।।
भविष्यन्ति यथाशैलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थतः। अभ्यासात्संधयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ।।५०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते स्वरोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

हुए। ये श्यामाधर तुल्य हैं।।४०।। नवम मुख से नौवाँ ऌकार उत्पन्न हुआ। यह धूम्र वर्ण है और मनु भी धूम्र कहलाता है।।४१।। दसवें मुँह से ॡकार उत्पन्न हुआ। यह भी ॡकार के तुल्य धूम्र वर्ण है और सावर्णिक मनु कहलाता है।।४२।। एकादशवें मुख से पिशङ्ग वर्ण एकार उत्पन्न हुआ और वर्णानुरूप पिशङ्गी मनु हुआ।।४३।। बारहवें मुख से पिशङ्ग वर्ण और भस्मतुल्य ऐकार उत्पन्न हुआ एवं पिशंगी मनु कहलाया।।४४।। तेरहवें मुख से पञ्च वर्ण से युक्त उत्तम वर्ण ओकार की उत्पत्ति हुई और मनु उत्तम हुए।।४५।। चौदहवें मुख से कर्बुर वर्ण औकार उत्पन्न हुआ और मनु सावर्णि।।४६।। कल्प-कल्प में इसी भाँति मनु और स्वर वर्ण का ऐसा ही रूप रहता है जो स्वर और वर्ण के अनुसार यथातत्त्व जानने योग्य हैं।।४७।। चूँकि ये स्वर परस्पर समान वर्ण के अनुसार हैं इसलिए वर्ण की समानता के कारण उनका परस्पर अन्वय होता है और प्रत्येक कल्पों में इनका समान आकार और वर्ण होता है इसलिए इस प्रजालोक में सब सन्धियाँ सवर्ण होती हैं, भविष्य में भी स्वभाव और अर्थ के अनुसार ये एक प्रकृति के होंगे इसलिए उच्चारण की शीघ्रता के कारण इन स्वरों में संधियाँ भी होंगी।।४८-५०।।

श्री वायुमहापुराण का स्वरोत्पत्ति नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।।२६।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

महादेवतनुवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

अस्मिन्कल्पे त्वया चोक्तः प्रादुर्भावो महात्मनः । महादेवस्य रुद्रस्य साधकैर्मुनिभिः सह ।।१।।

सूत उवाच

उत्पत्तिरादिसर्गस्य मया प्रोक्ता समासतः । विस्तारेणास्य वक्ष्यामि नामानि तनुभिः सह ।।२।।
पत्नीषु जनयामास महादेवः सुतान्बहून् । कल्पेऽष्टमे व्यतीते तु यस्मिन्कल्पे तु तच्छृणु ।।३।।
कल्पादौ चाऽऽत्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः । प्रादुरासीत्ततोऽङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ।।
तं दधे सुस्वरं घोरं निर्दहन्निव तेजसा ।।४।।
दृष्ट्वा रुदन्तं सहसा कुमारं नीललोहितम् । किं रोदिषि कुमारेति ब्रह्मा तं प्रत्यभाषत ।।५।।
सोऽब्रवीद्देहि मे नाम प्रथमं वै पितामह । रुद्रस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ।।६।।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् । नाम देहि द्वितीयं मे इत्युवाच स्वयंभुवम् ।।७।।
भवस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः । किं रोदिषीति तं ब्रह्मा प्रत्युवाचाथ शंकरम् ।।८।।

अध्याय २७

महादेव के शरीर का वर्णन

ऋषिगण बोले–हे सूत! इस कल्प में आपने साधक मुनियों के साथ महात्मा महादेव रुद्र का प्रादुर्भाव बताया है ।।१।।

सूत जी बोले–मैंने संक्षेप में आदि सर्ग की उत्पत्ति बतायी। अब विस्तार के साथ महादेव के नामों को उनके विभिन्न शरीरों के साथ कह रहा हूँ ।।२।। अष्टम कल्प के बीत जाने पर जिस कल्प में महादेव ने अपनी पत्नियों में अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया, उसको अब सुनिये ।।३।। कल्प के आदि में प्रभु ब्रह्मा आत्मतुल्य पुत्र का ध्यान कर रहे थे कि उनकी गोद में एक नीललोहित कुमार प्रकट हो गया। उन्होंने उस कुमार को तेज द्वारा दग्ध करके घोर और सुस्वर बना दिया ।।४।। उस नीललोहित कुमार को सहसा रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा–क्यों रोते हो? ।।५।। कुमार ने कहा–हे पितामह, आप पहले हमारा नामकरण कीजिये। पितामह ने कहा–तुम्हारा नाम रुद्र होगा। वह फिर रोने लगा।।६।। और पूछे जाने पर दूसरा नाम रखने के लिए कहा। यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा–'तुम्हारा दूसरा नाम भव होगा।' पुनः उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने उस शंकर से कहा, 'तुम क्यों रो रहे हो'? ।।७-८।। शंकर ने कहा, 'मेरा तीसरा नाम रखिये' यह सुनकर उन्होंने कहा, 'तुम्हारा तीसरा नाम शिव होगा।' पुनः वह रोने लगा। चौथी बार उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा, 'अब क्यों

तृतीयं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम्। शिवस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ।।९।।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत्। चतुर्थं देहि मे नाम इत्युवाच स्वयंभुवम् ।।१०।।
पशूनां त्वं पतिर्देव इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः। किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ।।११।।
पञ्चमं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम्। ईशस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ।।१२।।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत्। षष्ठं मे नाम देहीति इत्युवाचाथ तं प्रभुम् ।।१३।।
भीमस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः। किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ।।१४।।
सप्तमं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम्। उग्रस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ।।१५।।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत्। अष्टमं देहि मे नाम त्वं विभो पुनरब्रवीत् ।।
महादेवस्तु नाम्नाऽसि इत्युक्तो विरराम ह ।।१६।।
लब्ध्वा नामानि चैतानि ब्रह्मणो नीललोहितः। प्रोवाच नाम्नामेतेषां स्थानानि प्रदिशेतिह ।।१७।।
ततोऽभिसृष्टास्तनव एषां नाम्नां स्वयंभुवा। सूर्यो मही जलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।।१८।।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येते ब्रह्मधातवः। तेषु पूज्यश्च वन्द्यः स्याद्रुद्रस्तान्न हिनस्ति वै ।।१९।।
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम्। द्वितीयं नामधेयं ते मया प्रोक्तं भवेति यत् ।।
एतस्याऽऽपो द्वितीया ते तनुर्नाम्ना भविष्यति ।।२०।।
इत्युक्ते यस्थिरं तस्य शरीरस्थं रसात्मकम्। तद्विवेश ततस्तोयं तस्मादापो भवः स्मृत ।।२१।।
यस्माद्भवन्ति भूतानि ताभ्यस्ता भावयन्ति च। भवनाद्भवनाच्चैव भूतानां संभवः स्मृतः ।।२२।।

रो रहे हो?' 'मेरा चौथा नाम रखिये' 'तुम पशुओं (प्राणियों) के प्रति अर्थात् पशुपति नाम से प्रसिद्ध होगे' यह चौथा नामकरण होने पर भी वह रोने लगा। उसको इस प्रकार रोदन करते देख ब्रह्मा ने पुनः रोने का कारण पूछा ।।९-११।। तब उसने कहा 'मेरा पाँचवाँ नाम रखिये।' 'देव! तुम्हारा पाँचवाँ नाम ईश होगा।' यह सुनकर वह पुनः रोने लगा। छठी बार उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने पुनः पूछा, 'तुम अब क्यों रो रहे हो?' 'मेरा छठा नाम रखिये' उसने ब्रह्मा से कहा ।।१२-१३।। ब्रह्मा ने कहा–'देव! तुम्हारा छठा नाम भीम होगा।' छठा नाम सुनकर भी वह रोता ही रहा। उसको रोते देखकर पुनः ब्रह्मा ने पूछा, 'अब क्यों रो रहे हो?' ।।१४।। उसने कहा–'मेरा सातवाँ नाम रखिये।' तब ब्रह्मा ने कहा–'देव! तुम्हारा सातवाँ नाम उग्र होगा।' सातवाँ नाम सुनकर भी वह रोता ही रहा। उसको पुनः रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा–'अब क्यों रो रहे हो?' उसने उत्तर दिया, 'मेरा आठवाँ नाम रखिये।' ब्रह्मा ने कहा–'देव! तुम्हारा आठवाँ नाम महादेव होगा।' यह कहकर ब्रह्मा चुप हो गये ।।१५-१६।। ब्रह्मा से इस प्रकार आठ नामों को प्राप्तकर नीललोहित ने कहा कि अब आप इन नामों का स्थान निर्देश कर दें। तब स्वयंभू ने सूर्य, मही, जल, वह्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्र राशि आठ नाम के लिए आठ मूर्तियों की सृष्टि की। ये मूर्तियाँ ब्रह्मा रूप हैं। इन मूर्तियों में जो रुद्र की पूजा या वन्दना करते हैं, रुद्रदेवता उनकी हिंसा नहीं करते हैं ।।१७-१९।। इसके बाद ब्रह्मा ने नीललोहित से कहा–आपका दूसरा नाम मैंने भव रखा है, इसलिए आपका दूसरा शरीर जल होगा। इतना कहने पर उनके शरीर में स्थित जो रस रूप जल था, उसमें जल प्रवेश कर गया। तब जल भी भव मूर्ति हो गया ।।२०-२१।। जल से सम्पूर्ण भूतसमूह उत्पन्न होता है और वह सबको उत्पन्न करता है, अतः भवन-भावन सम्बन्ध होने के कारण जल जीवों का सम्भव कहलाता है ।।२२।। इसलिए

तस्मान्मूत्रं पुरीषं च नाप्सु कुर्वीत सर्वदा । न स्नाये(या)दप्सु नग्नश्च न निष्ठीवेत्कदाचन ।।२३।।
मैथुनं नैव सेवेत शिरःस्नानं च वर्जयेत् । न प्रीतः परिचक्षीत वहन्न संस्थितोऽपि वा ।।२४।।
मेध्यामेध्यशरीरत्वान्नैव दुष्यन्त्यपः क्वचित् । विवर्णरसगन्धाश्च अल्पाश्च परिवर्जयेत् ।।२५।।
अपां योनिः समुद्रश्च तस्मात्तं कामयन्ति ताः । मेध्याश्चैवामृताश्चैव भवन्ति प्राप्य सागरम् ।।२६।।
तस्मादपो न रुन्धीत समुद्रं कामयन्ति ताः । न हिनस्ति भवो देवः सदैवं योऽप्सु वर्तते ।।२७।।
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं कृष्णलोहितम् । शर्वस्त्वमिति यन्नाम तृतीयं समुदाहृतम् ।।
तस्य भूमिस्तृतीया तु तनुर्नाम्ना भवत्वियम् ।।२८।।
इत्युक्ते यत्स्थिरं तस्य शरीरस्यास्थिसंज्ञितम् । तद्विवेश ततो भूमिस्तस्माद्भूः शर्व उच्यते ।।२९।।
तस्मात्कुर्वीत नो विद्वान्पुरीषं मूत्रमेव वा । न च्छायायां न सोपाने स्वच्छायां नापि मेहयेत् ।।३०।।
शिरः प्रावृत्य कुर्वीत अन्तर्धाय तृणैर्महीम् । य एवं वर्तते भूमौ तं शर्वो न हिनस्ति वै ।।३१।।
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम् । ईशान इति यत्प्रोक्तं चतुर्थं नाम ते मया ।।३२।।
चतुर्थस्य चतुर्थी स्याद्वायुर्नाम्ना तनुस्तव । इत्युक्ते यच्छरीरस्थं पञ्चधा प्राणसंज्ञितम् ।।३३।।
विवेश तं तदा वायुमीशानो वायुरुच्यते । तस्मादेनं परिवदेदायतं वायुमीश्वरम् ।।
एवं युक्तामथेशानो नैव देवो हिनस्ति तम् ।।३४।।
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं धूम्रलोहितम् । यत्ते पशुपतीत्युक्तं मया नामेह पञ्चमम् ।।
पञ्चमी पञ्चमस्यैषा तनुर्नाम्नाऽग्निरस्तु ते ।।३५।।

जल में मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए, न थूकना चाहिए और न नग्न होकर स्नान ही करना चाहिए।।२३।। जल में मैथुन न करे और न शिरःस्नान (उलटा स्नान) करे। स्थिर या बहते हुए जल के प्रति कोई अप्रीतिजनक बात भी नहीं कहनी चाहिए। पवित्र या अपवित्र शरीर के स्पर्श से जल कभी भी दूषित नहीं होता है; किन्तु मटमैला, विरस, दुर्गन्धित और थोड़े जल को उपयोग में नहीं लाना चाहिए ।।२४-२५।। समुद्र जल का उत्पत्ति-स्थान है। इसलिए जलराशि समुद्र की कामना करती है। जल समुद्र को प्राप्तकर पवित्र और अमृतमय हो जाता है। बहते हुए जल को रोकना नहीं चाहिए; क्योंकि वह समुद्र में जाना चाहता है। इस प्रकार जलतत्त्व को जानकर जो जल में रहता है, उसकी हिंसा भव देवता नहीं करते है ।।२६-२७।। इसके बाद ब्रह्मा ने फिर नीललोहित से कहा—आपका तीसरा नाम हमने शर्व कहा है, उसका शरीर भूमि होगा। ऐसा कहने पर उनके शरीर का जो अस्थि नामक स्थिर पदार्थ था, उसमें भूमि प्रवेश कर गयी। इसलिए भूमि शर्व कहलाती है ।।२८-२९।। इसलिए ज्ञानवान् व्यक्ति छाया, सोपान अथवा स्वच्छ स्थान में मूत्र-मल आदि का त्याग न करे। पहले सिर नवा ले और फिर पृथ्वी पर तृण घास रखकर मल-मूत्र त्याग करे। पृथ्वी के सम्बन्ध में जो ऐसा आचरण करता है, उसकी हिंसा शर्व देवता नहीं करते हैं ।।३०-३१।। ब्रह्मा ने फिर नीललोहित से कहा—आपका चौथा नाम हमने ईशान कहा है, उस चौथे शरीर की चौथी मूर्ति वायु होगी। ब्रह्मा के ऐसा कहते ही उनके शरीर में जो प्राणापानादि पंच वायु थे, उनमें सांसारिक वायु प्रवेश कर गयी; इसलिए ईशान वायु कहलाते हैं ।।३२-३३½।। जो व्यक्ति इस विराट् वायु की स्तुति करते हैं, ईशान देव उनकी हिंसा करते हैं ।।३४।। ब्रह्मा ने फिर धूम्रलोहित देव से कहा—हमने आपका पाँचवाँ नाम पशुपति कहा है, इसलिए उस पाँचवें शरीर की पाँचवीं मूर्ति अग्नि होगी ।।३५।।

इत्युक्ते यच्छरीरस्थं तेजस्तस्योष्णसंज्ञितम् । विवेश तत्तदा ह्यग्निस्तस्मात्पशुपतिः पतिः ।।३६।।
चन्द्रमास्तु स्मृतः सोमः तस्याऽऽत्मा ह्योषधीगणः । एवं यो वर्तते विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।।
न हन्ति तं महादेव एवं वन्देत तं प्रभुम् ।।३७।।
गोपायति दिवाऽऽदित्यः प्रजा नक्तं तु चन्द्रमाः । एकरात्रे समेयातां सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।।
अमावास्यानिशायां तु तस्यां युक्तः सदा वसेत् ।।३८।।
तत्राऽऽविष्टं सर्वमिदं तनुभिर्नामभिः सह । एकाकी यश्चरत्येष सूर्योऽसौ चन्द्र उच्यते ।।३९।।
सूर्यस्य यत्प्रकाशेन वीक्ष्यन्ते चक्षुषा प्रजाः । शुक्लात्मा संस्थितो रुद्रः पिबत्यम्भो गभस्तिभिः ।।४०।।
अद्य ते पीयते चैवाप्यन्नपानात्मकानि या । तनुरात्मभवा सा वै देहेष्वेवोपचीयते ।।४१।।
यया धत्ते प्रजाः सर्वाः स्थिरीभूतेन चेतसा । पार्थिवी सा तनुस्तस्य शार्वी धारयति प्रजाः ।।४२।।
यावत्स्थिता शरीरेषु भूतानां प्राणवृत्तिभिः । वाय्वात्मिका तु ऐशानी सा प्राणाः प्राणिना सह ।।४३।।
पीताशितानि पचति भूतानां जठरेषु या । ततः पाशुपती तस्य पाचिका शक्तिरुच्यते ।।४४।।
यानीह सुषिराणि स्युर्देहेष्वन्तर्गतानि वै । वायोः संचरणार्थाय सा भीमा चोच्यते तनुः ।।४५।।
वैतानदीक्षितानां तु या स्थितिर्ब्रह्मवादिनाम् । तनुरुग्रात्मिका सा तु तेनोग्रो दीक्षितः स्मृतः ।।४६।।
यत्तु संकल्पकं तस्य प्रजास्विह समं स्थितम् । सा तनुर्मानसी तस्य चन्द्रमाः प्राणिषु स्थितः ।।४७।।
नवो नवो भवति हि जायमानः पुनः पुनः । नीयते यो यथाकामं विबुधैः पितृभिः सह ।।
महादेवोऽमृतात्माऽसौ ह्यम्भयश्चन्द्रमाः स्मृतः ।।४८।।

ऐसा कहते ही उनके शरीरस्थ उष्ण नामक तेज में अग्नि प्रवेश कर गया। तब से अग्नि का नाम पशुपति हुआ। चन्द्रमा सोम कहलाते हैं, उनकी आत्मा ओषधियाँ हैं। जो विद्वान् इस तत्त्व को प्रत्येक पर्व में हृदयङ्गम करता है, महादेव उसकी हिंसा नहीं करते। इसलिए महादेव की वन्दना श्रेयस्कर है ।।३६-३७।। आदित्य दिन में और चन्द्रमा रात में प्रजाओं की रक्षा करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा जिस रात्रि में एकत्र निवास करते हैं, उसे अमावस्या कहते हैं। इस अमावस्या तिथि में योग युक्त होकर रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्म में नाम रूप के साथ सारा जगत् प्रविष्ट है। वही अकेले सूर्य और चन्द्र कहलाते हैं ।।३८-३९।। प्रजागण सूर्य के प्रकाश में चक्षु द्वारा देखते हैं और रुद्र देव शुक्लात्म रूप से सूर्य के मध्य में स्थित होकर किरण द्वारा जल का आकर्षण करते हैं। जो अन्नजल आदि भोजन द्वारा शरीर में जाते हैं वे उनका आत्मसम्भव शरीर होने के कारण प्रत्येक जीव शरीर में जाकर उसको बढ़ाते हैं। भगवान् स्थिर चित्त से जिस शरीर द्वारा प्रजाओं को धारण करते हैं, वही उनकी शार्वी पार्थिव मूर्ति है। जो शरीर प्राण-वृत्ति के साथ भूतों के शरीर में निवास करता है, वही उनकी वायु रूप ऐशानी मूर्ति है और वही प्राणियों का प्राण है ।।४०-४३।। जो शरीर जीवों के जठर में खाये पिये हुए को पचाता है, वही जठराग्नि उनकी शक्तिशालिनी पशुपति मूर्ति है। वायु के संचरण के लिए देह के भीतर जितने रन्ध्र हैं, वे ही उनकी भीमा मूर्ति हैं ।।४४-४५।। यज्ञ दीक्षित ब्रह्मवादियों की जो स्थिति (वृत्ति) है, वही उनकी उग्रात्मिका मूर्ति है एवं उनका वह उग्र शरीर यजमान है। देव-देव का जो संकल्प सभी प्रजाओं में समभाव से वर्तमान है, वही संकल्प उनका प्राणिस्थित सोमरूपी मानस शरीर है। इनका यह शरीर बार-बार होनेवाला और नित्य नवीन है एवं देव-पितृगण के साथ इच्छानुकूल ले जाया जाता है। इसलिए भगवान् महादेव ही अमृतात्मा जलमय चन्द्रमा कहे जाते हैं ।।४६-४८।। उनका जो पहला

तस्य वा प्रथमा नाम्ना तनू रौद्री प्रकीर्तिता। पत्नी सुवर्चला तस्य पुत्रस्तस्याः शनैश्चरः ।।४९।।
भवस्य या द्वितीया तु तनुरापः स्मृता तु वै। तस्योषाऽत्र स्मृता पत्नी पुत्रश्चाप्युशना स्मृतः ।।५०।।
शर्वस्य या तृतीया तु नाम भामस्तनुः स्मृता। पत्नी तस्य विकेशीति पुत्रश्चाङ्गारकः स्मृतः ।।५१।।
ईशानस्य चतुर्थस्य स्वर्गतस्य च या तनुः। तस्य पत्नी शिवा नाम पुत्रश्चास्य मनोजवः ।।५२।।
(*नाम्ना पशुपतेर्या तु तनुरग्निर्द्विजैः स्मृतः। तस्य पत्नी स्मृता स्वाहा स्कन्दश्चापि सुतः स्मृतः ।।५३।।
नाम्ना षष्ठस्य या भीमा तनुराकाश उच्यते)। दिशः पत्न्यः स्मृतास्तस्य स्वर्गश्चास्य सुतः स्मृतः ।।५४।।
उग्रा तनुः सप्तमी या दीक्षितैर्ब्राह्मणैः स्मृता। दीक्षा पत्नी स्मृता तस्य संतानः पुत्र उच्यते ।।५५।।
नाम्नाऽष्टमस्य महतस्तनुर्या चन्द्रमाः स्मृतः। पत्नी तु रोहिणी तस्य पुत्रश्चास्य बुधः स्मृतः ।।५६।।
इत्येतास्तनवस्तस्य नामभिः परिकीर्तिताः। तास्तु वन्द्या नमस्याश्च प्रतिनाम तनूषु वै ।।५७।।
भक्तैः सूर्येऽप्सु पृथिव्यां वाय्वग्निव्योमदीक्षितैः। तथा च वै चन्द्रमसि तनुभिर्नामभिः सह ।।
प्रजावानेति सायुज्यमीश्वरस्य नरो हि सः ।।५८।।
इत्येतद्वो मयाऽऽख्यातं गुह्यं भीमस्य तद्यशः। शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नोऽस्तु च चतुष्पदे ।।५९।।
एतत्प्रोक्तं निदानं वस्तनूनां नामभिः सह। महादेवस्य देवस्य भृगोस्तु शृणुत प्रजाः ।।६०।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते महादेवतनुवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

शरीर रौद्र नाम से कहा गया हैं, उसकी पत्नी सुवर्चला है, जिसका पुत्र शनैश्चर है। दूसरा भव शरीर जो जलात्मक है, उसकी पत्नी ऊषा है और पुत्र उशना ।।४९-५०।। महादेव के शर्व नाम की मूर्ति भूमि है, उसकी पत्नी विकेशी है और पुत्र अंगारक। उनके चौथे स्वर्गगत ईशान शरीर की पत्नी शिवा है और पुत्र मनोजव है ।।५१-५२।। पाशुपत रूप अग्नि शरीर की पत्नी स्वाहा है और पुत्र स्कन्द। छठे आकाश रूप भीम शरीर की पत्नी दिशाएँ हैं और स्वर्ग पुत्र है ।।५३-५४।। ब्राह्मणों द्वारा पूजित जो उनका सातवाँ उग्र नामक शरीर है, उसकी पत्नी दीक्षा है और पुत्र सन्तान है। चन्द्रमा रूप महान् आठवें शरीर की पत्नी रोहिणी है और पुत्र बुध है ।।५५-५६।। महादेव के ये शरीर हैं, जिनका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन किया गया है। ये सब शरीर अपने नामों के साथ वन्दनीय और नमस्करणीय हैं। जो मनुष्य सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, व्योम, दीक्षित और चन्द्रमा रूपी महादेव के शरीर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है, वह निश्चय ही प्रजावान् होता है और शिवसायुज्य प्राप्त करता है ।।५७-५८।। मैंने आप लोगों के निकट इस गुह्य और यशदायक शिवतत्त्व को कहा। इसके फल से मनुष्यों और चतुष्पदों का मंगल हो। इस प्रकार आप लोगों को नामों के साथ महादेव के शरीर वर्णन को सुना दिया। अब इसके बाद भृगुवंश का वर्णन सुनिये ।।५९-६०।।

श्री वायुमहापुराण का महादेव शरीर वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।।२७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

ऋषिवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः। शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तरविचारिणौ ।।१।।
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी। सा तु नारायणं देवं पतिमासाद्य शोभनम् ।।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ।।२।।
तस्यास्तु मानसाः पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः। ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्मणाम् ।।३।।
द्वे तु कन्ये स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च। आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ।।४।।
पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ। मनस्विन्यां मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ।।५।।
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्धन्यायामजायत। पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकराः स्मृताः ।।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ।।६।।
पाण्डोश्च पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत्। उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ।।७।।

अध्याय २८

ऋषिवंश-कीर्त्तन

सूत जी बोले—भृगु से ख्याति के गर्भ में सुख-दुःख के प्रभु, निखिल प्राणियों को शुभाशुभ देनेवाले, मन्वन्तर विहारी धाता और विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।।१।। लोकभाविनी श्री देवी उनकी ज्येष्ठा भगिनी थीं, जिन्होंने नारायण को पति रूप में वरण किया। उस साध्वी के गर्भ से नारायण को बल और उत्साह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।।२।। ये ही क्यों इस साध्वी श्री देवी के वे सभी मानस पुत्र हैं, जो दिव्यचारी हैं और पुण्य कर्म करनेवाले देवों के विमानों का संचालन करते हैं। आयति और नियति नामक दो प्रसिद्ध कन्यकाएँ धाता और विधाता की भार्या थीं, उन्हें पाण्डु और मृकण्डु नामक सनातन ब्रह्मकोश स्वरूप दो दृढ़व्रत पुत्र उत्पन्न हुए।।३-४।। मृकण्डु से मनस्विनी के गर्भ में मार्कण्डेय का जन्म हुआ। मार्कण्डेय को मूर्धन्या से वेदशिरा नामक पुत्र हुआ। फिर पीवरी के गर्भ से वेदशिरा को बहुत से वंश बढ़ानेवाले पुत्र हुए। वे सभी मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध हैं और सभी वेदपारग ऋषि हैं।।५-६।। पाण्डु को पुण्डरीका के गर्भ से द्युतिमान्, द्युतिमन्त और सृजवान् नामक तीन पुत्र हुए। उनके बीच द्युतिमन्त और सृजवान् के पुत्र-पौत्रों ने भार्गवों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया। इस प्रकार स्वायंभुव मनु

तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणां परस्परम् । स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीते मरीचेः शृणुत प्रजाः ।।८।।
पत्नी मरीचेः संभूतिर्विजज्ञे साऽऽत्मसंभवम् । प्रजापतेः पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत ।।
कुष्टिः पृष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ।।९।।
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रावुदपादयत् । विरजं चैव धर्मिष्ठं पर्वसं चैव तावुभौ ।।१०।।
विरजस्याऽऽत्मजो विद्वान्सुधामा नाम विश्रुतः । सुधामसुत (तो) वैराजः प्राच्यां दिशि समाश्रितः ।।११।।
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान् । पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टः स महायशाः ।।१२।।
पर्वसः पर्वसायां तु जनयामास वै सुतौ । यज्ञवासं च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ।।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ।।१३।।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसंभवौ । पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ।।१४।।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा । तथैव भरताग्निं च कीर्तिमन्तं च तावुभौ ।।१५।।
अग्नेः पुत्रं तु पर्जन्यं संहूती सुषुवे प्रभुम् । हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयत् ।।
आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः ।।१६।।
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ । वरिष्ठं धृतिमन्तं चाप्युभावङ्गिरसां वरौ ।।१७।।
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च येऽतीता वै सहस्रशः । अनसूयाऽपि जज्ञे तान्श्चाऽऽत्रेयानकल्मषान् ।।१८।।
कन्यां चैव श्रुतिं नाम माता शङ्खपदस्य या । कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः ।।१९।।

के बीत जाने पर मरीचि का वंश विस्तार सुनिये ।।७-८।। मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पूर्णमास नामक पुत्र और कुष्टि, पुष्टि, त्विषा और अपचिति नामक कन्याओं को उत्पन्न किया ।।९।। पूर्णमास ने सरस्वती के गर्भ से विरज और पर्वस नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। विरज को सुधामा नामक विद्वान् पुत्र हुआ। सुधामसुत वैराज ने प्राच्यादेवा का आश्रय लिया। गौरीपुत्र पर्वस सुधार्मिक, प्रतापवान् और महायशस्वी हुए। लोकपाल होकर ये सर्वगण में प्रविष्ट हुए ।।१०-१२।। पर्वस ने पर्वसा के गर्भ से यज्ञवास और कश्यप नामक धर्मनिर्णायक और वंश वृद्धि करनेवाले दो पुत्रों को उत्पन्न किया। अङ्गिरा ने स्मृति के गर्भ से भरताग्नि और कीर्तिमान् नामक दो पुत्र और सिनीवाली, कुहू, राका एवं अनुमति नामक चार पुत्रियों को उत्पन्न किया ।।१३-१५।। अग्नि को संहूती से पर्जन्य नामक पुत्र हुआ। फिर हिरण्यरोमा पर्जन्य ने मारीची के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया, जो महाप्रलय तक रहनेवाला लोकपाल हुआ ।।१६।। कीर्तिमान् ने धेनुका से वरिष्ठ और धृतिमान् नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों ही आंगिरस श्रेष्ठ थे ।।१७।। इन दोनों को हजारों पुत्र-पौत्र हुए। अनसूया ने अत्रि से पाँच निष्पाप पुत्र और एक कन्या को उत्पन्न किया। इस कन्या का नाम श्रुति था, जो शङ्खपाद की माता और प्रजापति कर्दम ऋषि की पत्नी थी। सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनीश्वर और सोम नामक जिन पाँचों पुत्रों को अनसूया ने उत्पन्न किया था, वे स्वायंभुव मनु के अधिकार-काल में विद्यमान

सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिः शनीश्वरः। सोमश्च पञ्चमस्तेषामासीत्स्वायंभुवेऽन्तरे ।।
यामेऽतीते सहातीताः पञ्चाऽत्रेया प्रकीर्तिताः ।।२०।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा वै महात्मना। स्वायंभुवेऽन्तरे यामे शतशोऽथ सहस्रशः ।।२१।।
पुरीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत्। पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।
तमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रयः ।।२२।।
याऽसौ यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता। पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी त्वग्नेः स्मृता शुभा ।।२३।।
पाल्यत्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः। दत्तालेः सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन्बहून्सुतान् ।।
पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।२४।।
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः। ते चाग्निवर्चस सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ।।२५।।
कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः। ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीवरी ।।२६।।
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यजनयत्सुतान्। पुत्रं शङ्खपदं चैव कन्यां काम्यां तथैव च ।।२७।।
स वै शङ्खपदः श्रीमांल्लोकपालः प्रजापतिः। दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्त्वा प्रियव्रते ।।२८।।
काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायंभुवसमान्सुतान्। दशकन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं संप्रवर्तितम् ।।२९।।
पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुतः। यशोधारी विजज्ञे वै कामदेवः सुमध्यमा ।।३०।।

थे। याम (नामक देवगण) के अतीत होने पर ये पाँचों अत्रिवंशधर भी विलुप्त हो गये ।।१८-२०।। स्वायंभुव मनु के अधिकार-काल में उनके सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रगण महात्मा अत्रि के साथ विद्यमान थे। प्रीति के गर्भ के पुलस्त्य को दत्तालि नामक पुत्र हुआ। ये ही स्वायंभुव मनु के समय पूर्व जन्म में अगस्त्य थे। उन्हें देवबाहु और विनीत नामक दो भाई और हुए। इनकी छोटी बहन का नाम सद्वती था, जो अग्नि से ब्याही गयी थी और पर्जन्य की माता थी। पुलस्त्य ऋषि के ज्येष्ठ पुत्र धीमान् दत्तालि ने अपनी पत्नी में सुजंघ प्रभृति बहुतेरे पुत्रों को उत्पन्न किया; जो स्वायंभुव मन्वन्तर में पौलस्त्य नाम से विख्यात थे ।।२१-२४।। पुलह प्रजापति की पत्नी क्षमा ने अनेक पुत्रों को प्रसव किया, जो अग्नितुल्य तेजस्वी और कीर्तिमान् थे ।।२५।। उनके नाम कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु थे। सहिष्णु का दूसरा नाम धनकपीवान् भी था। इनकी सुन्दरी भगिनी का नाम पीवरी था। कर्दम की पत्नी अत्रिपुत्री श्रुति ने शङ्खपाद नामक पुत्र और काम्या नाम की एक कन्या को उत्पन्न किया। वही श्रीमान् लोकपाल प्रजापति शङ्खपाद अपनी भगिनी काम्या को राजा प्रियव्रत से ब्याहकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये ।।२६-२८।। काम्या ने प्रियव्रत से स्वयंभू तुल्य दस पुत्रों को और दो कन्याओं को प्राप्त किया। इन्हीं पुत्रों से क्षत्रकुल की वृद्धि हुई। पुलह के तीसरे पुत्र सहिष्णु या धनकपीवान् ने सुमध्यमा नामवाली अपनी पत्नी से यशोधारी कामदेव नामक पुत्र को उत्पन्न किया। ऋतु को क्रतु के तुल्य पुत्र हुआ। इसी से उनकी सन्तति चली। इन्हें न भार्या थी और न पुत्र। सभी ऊर्ध्वरेता थे। ये साठ हजार

ऋतोः क्रतुसमः पुत्रो विजज्ञे संततिः शुभा । नैषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।।
षष्ट्येतानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ।।३१।।
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् । अभूतसंप्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिणः ।।३२।।
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते । पर्यसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै ।।३३।।
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे । ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ।।३४।।
जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया । अस्यां त्विमे यवीयांसो वसिष्ठाः सप्त विश्रुताः ।।३५।।
रजःपुत्रोऽर्धबाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः । सुतपाः शुक्ल इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ।।३६।।
रजसो वाऽप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी । प्रतीच्यां दिशि राजन्यं केतुमन्तं प्रजापतिम् ।।३७।।
गोत्राणि नामभिस्तेषां वसिष्ठानां महात्मनाम् । स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३८।।
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्तितः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३९।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते ऋषिवंशानुकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

बालखिल्य कहलाते हैं ।।२९-३१।। ये दिवाकर को चारों ओर घेरकर अरुण के आगे-आगे जाते हैं। जब तक प्रलय नहीं होता है, तब तक ये सूर्य के साथ चलते रहते हैं। इन्हें दो छोटी बहनें थीं, जिनका नाम पुण्या और आत्मसुमती था। ये दोनों ही पूर्णमास सुत पर्वस की पुत्र-वधुएँ थीं। ऊर्जा के गर्भ से वसिष्ठ को सात बेटे और एक पुत्री हुई, जिसका नाम पुण्डरीक था।।३२-३४।। कृशकटि वह द्युतिमान् की माता और पाण्डु की प्रिय पत्नी थी। इसी के गर्भ से विख्यात सप्त वासिष्ठ ने भी जन्म ग्रहण किया। इनके नाम रज, पुत्र, अर्द्धबाहु, सवन, अधन, सतुपा और शुल्क थे। ये सप्तर्षि कहलाते हैं।।३५-३६।। मनस्विनी मार्कण्डेयी ने भी रजस् से राजन्य, केतुमान् और प्रजापति को उत्पन्न किया। इन्होंने प्रतीची दिशा में आश्रय प्राप्त किया था। महात्मा वासिष्ठों का वंश नाम के साथ स्वायंभुव मन्वन्तर में लुप्त हो गया। अब अग्नि का वंश-विस्तार सुनिये। यह मैंने ऋषियों का वंश-विस्तार कहा। अब और विस्तार के साथ अग्नि का वंश-विस्तार अविकल रूप से कह रहा हूँ, सुनिये।।३७-३९।।

श्री वायुमहापुराण का ऋषिवंश-कीर्तन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।।२८।।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

अग्निवंशवर्णनम्

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत्स्वायंभुवेऽन्तरे। ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ।।१।।
पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः। शुचिः शौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु ते ।।२।।
निर्मथ्यपवमानस्तु शुचिः शौरस्तु यः स्मृतः। पावका वैद्युताश्चैव तेषां स्थानानि यानि वै ।।३।।
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते। पावकात्सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ।।४।।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः। सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां तु त्रयोऽग्नयः ।।५।।
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु। वक्ष्यामि नामतस्तेषां प्रविभागं पृथक्पृथक् ।।६।।
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुतः। ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ।।७।।
वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः। अमृतोऽथर्वणात्पूर्वं मथितः पुष्करोदधौ ।।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्गोऽथर्वणः सुतः ।।८।।
अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽग्निराथर्वणः सुतः। तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्गोऽथर्वणौ मतः ।।९।।
अथ यः पवमानोऽग्निर्निर्मन्थ्यः कविभिः स्मृतः। स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्ततः पुत्रद्वयं स्मृतम् ।।१०।।

अध्याय २९

अग्नि-वंश-वर्णन

स्वायंभुव मनु के अधिकार-काल में जो ब्रह्मा के मानस पुत्र अभिमानी अग्नि उत्पन्न हुए थे, उन्होंने स्वाहा से तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम थे पावक, पवमान या पावमान और शुचि। शुचि सौर भी कहे जाते हैं ।।१-२।। मन्थन से निकली अग्नि पवमान है। सूर्यकिरणस्थ अग्नि शुचि है और वैद्युत् अग्नि का नाम पावक है। इनके ये ही वासस्थान भी हैं। पवमान को कव्यवाहन, पावक को सहरक्ष और शुचि को हव्यवाह नामक पुत्र हुए ।।३-४।। देवताओं के अग्नि हव्यवाहन हैं, पितरों के कव्यवाहन और असुरों के सहरक्ष अग्नि हैं। इस प्रकार इन तीनों के ये तीन अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रादि उनचास हैं। अब हम पृथक्-पृथक् नाम से इनके विभाग को कहते हैं ।।५-६।। पहले ब्रह्मा के सुत लौकिकाग्नि वैद्युत् हुए, जिनके ब्रह्मौदनाग्नि पुत्र हुए जिनका नाम भरत हुआ ।।७।। वैश्वानरमुख उनका तेज एवं जल का रस काव्य रूप से कहा गया है। पुष्करोदधि के मन्थनकाल में अमृत निकलने के बाद अथर्वण अग्नि की उत्पत्ति हुई है। ये ही अथर्वा लौकिकाग्नि हैं। इनके बेटे का नाम दध्यङ्ग था ।।८।। अथर्वा ही भृगु थे और इनके पुत्र थे अङ्गिरा। अङ्गिरा ही अथर्वापुत्र लौकिकाग्नि दध्यङ्ग हैं। विद्वानों ने जिस मन्थन से निकली अग्नि को पवमान कहा है, वही गार्हपत्य अग्नि है। उस अग्नि के दो पुत्र हैं ।।९-१०।। पहला आहवनीय अग्नि, हव्यवाहन या शंस्य अग्नि और दूसरा शुक्राग्नि।

शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यः स्मृतो हव्यवाहनः। द्वितीयस्तु सुतः प्रोक्तः शुक्रोऽग्निर्यः प्रणीयते ।।११।।
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्नेः सुतावुभौ। शंस्यास्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहनः ।।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ।।१२।।
कावेरीं कृष्णवेणीं च नर्मदां यमुनां तथा। (*गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम् ।।१३।।
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रूं सरयूं तथा। सीतां सरस्वतीं चैव ह्लादिनीं पावनीं तथा) ।।१४।।
तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक्पृथक्। आत्मानं व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ।।१५।।
धिष्ण्यादव्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णयः। धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्तिता ।।१६।।
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे। तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः ।।
ताञ्शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान्यथा तथा ।।१७।।
ऋतुः प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे। विधीयन्ते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ।।१८।।
अनिर्देश्यान्यवच्यानामग्नीनां शृणुत क्रमम्। सम्राडग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ।।१९।।
सम्राडग्निः स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान्द्विजाः। अधस्तात्पर्षदन्यस्तु द्वितीयः सोऽत्र दृश्यते ।।२०।।
ग्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते। ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।।२१।।
(+हव्यसूर्याद्यसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते। विश्वस्याय समुद्रोऽग्निर्ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।।२२।।

शंस्य अग्नि को सभ्य और आवसथ्य नामक दो पुत्र हुए। ब्राह्मण लोग जिस अग्नि को अभिमानी आहवनीय हव्यवाहन कहते हैं, उसी शंस्य अग्नि ने सोलह नदियों की अभिलाषा की ।।११-१२।। कावेरी, कृष्णवेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी और पावनी नामक सोलह नदियों में शंस्य अग्नि ने अपने को पृथक्-पृथक् सोलह भागों में विभक्तकर उन धीष्णियों (आधारभूत नदियों) में आसक्त हुए। अग्नि स्वयं धिष्ण्य हैं। और साध्वी नदियों से उन्हें अनेक पुत्र हुए, जो धिष्णी से उत्पन्न होने के कारण धिष्ण्य कहलाये ।।१३-१५।। ये नदी-पुत्र जो धिष्णियों में उत्पन्न हुए हैं और अग्नि हैं, उनके विहार योग्य स्थानों को सुनिये, हम संक्षेप में कहते हैं ।।१६।। ऋतु, प्रवाहण, अग्नीघ्र और अपरापर धीष्णिगण यज्ञ दिवस में सवनक्रम से यथास्थान सम्मुख भाग में स्थापित होते हैं। जो अग्नि अनिर्देश्य और अवाच्य हैं, अर्थात् जिनके स्थान आदि का निर्देश नहीं हुआ है, उनके क्रम को सुनिये ।।१७-१८$\frac{1}{2}$।। कृशानु नामक जो सम्राट् अग्नि हैं, वे यज्ञ के उत्तर द्वितीय वेदी पर निवास करते हैं। सम्राट् अग्नि आठ प्रकार के हैं, जिनकी ब्राह्मण लोग पूजा किया करते हैं। पूर्वोक्त आठों अग्नियों में पर्षत् अग्नि द्वितीय हैं। ये वेदी के अधोभाग में रहते हैं। ग्रतद्वोच (?) में नभ नाम के अग्नि चार नामों से स्थित हैं। ब्रह्मज्योति वसु नामक अग्नि ब्रह्मस्थान में रहते हैं ।।१९-२१।। हव्य और सूर्यादि से जिनका कोई संसर्ग नहीं है, वह अग्नि शामित्र कर्म में स्थापित होते हैं। समुद्राग्नि का नाम विश्वस्याय है। यह ब्रह्मस्थान में निहित होते हैं ।।२२।। ऋतुधामा सुज्योति

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

(×ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्यां स कीर्त्यते। ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।।२३।।
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः। अनुद्देश्योऽप्यहिर्बुध्नः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ।।२४।।
शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः। ततौ विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ।।२५।।
ऋतुप्रवाहनोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे। विह्रयन्ते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ।।२६।।
पौत्रेयस्तत्सुतो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः। शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ।।२७।।
तथाऽग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते। अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ।।२८।।
उशीराग्निः सवीर्यस्तु नेष्ठीयः संविभाव्यते। अष्टमस्तु व्यरत्निस्तु मार्जालीयः प्रकीर्तितः ।।२९।।
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनाऽऽज्येन चैव हि। तयोर्यः पावको नाम स चापां गर्भ उच्यते ।।३०।।
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयः सम्यक्प्राप्याप्सु हूयते। हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणां स्थितः ।।३१।।
मन्युमाञ्जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निः सुतः स्मृतः। परस्परोच्छ्रितः सोऽग्निर्भूतानीह विभुर्महान् ।।३२।।
पुत्र सोऽग्नेर्मन्युमतो घोरः संवर्तकः स्मृतः। पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः ।।३३।।
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते। सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ।।३४।।
क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान्। इत्येते पावकस्याग्नेः पुत्रा ह्येवं प्रकीर्तिताः ।।३५।।

अग्नि औदुम्बरी में स्थापित होते हैं। ब्रह्मज्योति वसु नामक अग्नि ब्रह्म स्थान में रहते हैं ।।२३।। अजैकपाद अग्नि पूजनीय हैं और यज्ञशालामुख में स्थापित होते हैं। अहिर्बुध्न अग्नि अनुद्देश्य हैं और गृहपति कहलाते हैं। शंस्य के सभी पुत्र ब्राह्मणों द्वारा पूजनीय कहे गये हैं। अब विहरणीय अग्नि और उनके आठों पुत्रों को कहते हैं ।।२४-२५।। ऋतु, प्रवाहन, अग्नीघ्र और वहाँ रहनेवाले धीष्णिगण यज्ञदिवस में सवनक्रम से यथास्थान विहार करते हैं। उनके सुत हव्यवाहन अग्नि पौत्रेय कहे जाते हैं और शान्ति नामक अग्नि प्रचेता स्वरूप हैं। सत्य अग्नि द्वितीय कहे जाते हैं अर्थात् इनका दूसरा स्थान है ।।२६-२७।। विश्वदेव नामक अग्नि ब्रह्म स्थान में स्थापित होते हैं। अचक्षु एवं अच्छावाक अग्नि का भूमि में स्थापन होता है। सवीर्य उशीराग्नि नेष्ठीय कहे जाते हैं। अष्टम व्यरत्नि अग्नि मार्जालीय कहे जाते हैं ।।२८-२९।। जो धिष्ण्य सौम्य और आज्य के विहार योग्य हैं, उन दोनों के बीच पावक नामक अग्नि जलराशि के गर्भ कहे जाते हैं।।३०।। जो अग्नि जल में अच्छी तरह से डूबे रहते हैं, वह अवभृथ कहलाते हैं। इनके पुत्र का नाम हृच्छय अग्नि है, जो मनुष्यों के जठर देश में वर्तमान हैं। जाठराग्नि के पुत्र विद्वान् मन्युमान् अग्नि हैं। ये भूतों के प्रभु और परस्पर व्याप्त हैं। मन्युमान् अग्नि के पुत्र घोर संवर्तक हैं। ये वड़वामुख होकर समुद्र में जल पीते हुए निवास करते हैं ।।३१-३३।। समुद्रवासी वड़वामुख के पुत्र सहरक्ष हैं। सहरक्ष के पुत्र क्षाम हैं, जो मनुष्यों के घर जलाते हैं। इनके पुत्र क्रव्याद् अग्नि हैं, जो मृत पुरुषों को जलाते हैं। पावक अग्नि के इतने ही पुत्र हैं, जिनका वर्णन कर दिया ।।३४-३५।। शुचि सौरि अग्नि गन्धर्व-

---

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

ततः शुचेस्तु यैः सौरैर्गन्धर्वैरसुरावृतैः। मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिध्यते ।।३६।।
आयुर्नामाऽथ भगवान्पशौ यस्तु प्रणीयते। आयुषो महिमान्पुत्रः स शावान्नामतः सुतः ।।३७।।
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः। पुत्रश्च सवनम्याग्नेरद्भुतः स महाशयाः ।।३८।।
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान्स्मृतः। प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुङ्क्तेः हविः सदा ।।३९।।
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे। अनीकवान्वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ।।
सुरभिर्वसुरत्नादो प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ।।४०।।
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश। इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ।।४१।।
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः। स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ।।४२।।
एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह। स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन्हव्यवाहनाः ।।४३।।
काम्यनैमित्तिकाजस्त्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः। पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लैर्यामैः सुतैः सह ।।
देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्थान्तरे मनोः ।।४४।।
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह। तैरेव तु प्रसंख्यातमतीतानागतेष्वपि ।।४५।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम्। सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथास्तथा ।।
प्रजानां पतयः सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृताः ।।४६।।
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु। मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ।।४७।।

असुरों द्वारा अरणिमन्थन करने से समिद्ध (प्रदीप्त) हुए। आयु नामक भगवान् अग्नि पशुशरीर में वर्तमान रहते हैं। आयु के पुत्र महिमान् हैं। इनके शावान नामक पुत्र हुए ।।३६-३७।। जो अग्नि पाकयज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं, वे सवन कहलाते हैं। सवन के पुत्र महायशा अद्भुत हैं। अद्भुत अग्नि के पुत्र महाविविचि हैं। ये प्रायश्चित्त होम में हुत हवन का भक्षण करते हैं। विविचि के अर्क हैं और अर्क के पुत्र अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पित्तकृत और सुरभि हैं। यही स्वर्णवर्ण सुरभि अग्नि धन, रत्नादि में ज्योति रूप से प्रविष्ट हैं ।।३८-३९।। ये सभी शुचि अग्नि के सन्तान हैं और संख्या में चौदह हैं ।।४०$\frac{१}{२}$।। ये सभी वह्नि कहलाते हैं और यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। जो सभी अभिमानी अग्नि अतीत स्वायंभुव मनु के समय आदि सर्ग में याम वेदों के साथ बीत गये हैं, वे विहरणीय अग्नि कहलाते हैं। ये चेतन-अचेतन सब में स्थिर हैं ।।४१-४२$\frac{१}{२}$।। पहले ये काम्य, नैमित्तिक और नित्य कर्म में स्थित रहकर स्थानाभिमानी हव्यवाहन थे एवं पूर्व मन्वन्तर के बीत जाने पर प्रथम मनु के अधिकार-काल में पुण्यशाली महात्मा उज्ज्वल याम देवों के साथ स्थित थे। यह मैंने स्थानधारियों के स्थानों को कहा। अतीत और अनागत सभी मन्वन्तरों में अग्नियों का लक्षण इसी प्रकार कहा गया है। ये सभी तपस्वी अवभृथ, प्रजाओं के पति और ज्योतिष्मान् हैं ।।४३-४६।। स्वारोचिष मनु के समय से सावर्णि मनु के अधिकार तक सातों मन्वन्तरों में नाना प्रयोजनवश वर्तमान देवों के साथ अग्नि निवास करते हैं और अनागत

वर्तन्ते वर्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नयः। अनागतैः सुरैः सार्धं वर्तन्तेऽनागताग्नयः ।।४८।।
इत्येष विनयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथातथम्। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च पितॄणां वक्ष्यते ततः ।।४९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽग्निवंशवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

दक्षशापवर्णनम्

सूत उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान्पूर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे। अभ्यांसि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवताः ।।१।।
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै। तेषां निसर्गः प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ।।२।।
देवासुरामनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत। पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपयक्षिताः ।।३।।
मध्वादयः षड्तवस्तान्पितॄन्परिचक्षते। ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ।।४।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि। एते स्वायंभुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ।।५।।

देवों के साथ अनागत अग्नि। हमने यह यथाप्रकार अग्नियों का निर्णय किया। अब क्रमपूर्वक पितरों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ।।४७-४९।।

श्रीवायुमहापुराण का अग्नि वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२९।।

अध्याय ३०

दक्षशाप-वर्णन

सूत जी बोले—स्वायंभुव मन्वन्तर में भगवान् प्रजापति जब पहले प्रजा की सृष्टि करने लगे, तब पहले जल, फिर देव, असुर और मनुष्यों की सृष्टि हुई ।।१।। अपने को पिता की तरह माननेवाले ब्रह्मा से पितरगण उत्पन्न हुए। इनकी सृष्टि के सम्बन्ध में पहले कुछ कहा जा चुका है। अब विस्तारपूर्वक कह रहे हैं ।।२।। भगवान् ब्रह्मा ने देव, असुर और मनुष्यों को देखकर कहा—हम सभी के पितातुल्य हैं। उसी समय वसन्त आदि पितरतुल्य षट्ऋतुओं का उदय हुआ। इन्हीं ऋतुओं को पितर कहा जाता है। वसन्त ऋतु पितृदेव है, यह वैदिकी श्रुति है ।।३-४।। स्वायंभुवादि सभी अतीत और अनागत मन्वन्तरों में पितृगण उत्पन्न होते हैं। इनके नाम अग्निष्वात्ता और बर्हिषत् हैं। इनमें कुछ

अग्निष्वात्ताः स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्च वै । अयज्वानस्तथा तेषामासन्वै गृहमेधिनः ।।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्नयः ।।६।।
यज्वानस्तेषु ये ह्यासन्पितरः सोमपीथिनः । स्मृता बर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिणः ।।
ऋतवः पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः ।।७।।
मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ । नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ ।।८।।
इषश्चैव तथोर्जश्च सुधावन्तावुदाहृतौ । सह (हा) श्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ ।।
तप (पा) श्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शैशिरौ ।।९।।
कालावस्थास्तु षट्तेषां मासाख्या वै व्यवस्थिताः । त इमे ऋतवः प्रोक्ताश्चेतनाचेतनास्तु वै ।।१०।।
ऋतवो ब्रह्मणः पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिनः । मासार्धमासस्थानेषु स्थानं च ऋतवोर्तवाः ।।११।।
स्थानानां व्यतिरेकेण ज्ञेयाः स्थानाभिमानिनः । अहोरात्रं च मासाश्च ऋतवश्चायनानि च ।।१२।।
संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिनः । निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्ता वै दिनक्षपाः ।।१३।।
एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिताः । तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान्वक्ष्यामि निबोधत ।।१४।।
पर्वण्यास्तिथयः संध्या पक्षा मासार्धसंज्ञिताः । *निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्ता वै दिनक्षपाः ।।
द्वावर्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते ।।१५।।
ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । संवत्सरः सुमेकस्तु स्थानान्येतानि स्थानिनाम् ।।१६।।

गृहमेधी और अयज्वा (यज्ञ नहीं करनेवाले) हैं। अग्निष्वात्ता नाम के पितर अनाहिताग्नि अर्थात् अग्नि से सम्पर्क न रखनेवाले हैं ।।५-६।। पितरों के बीच जो यज्वा और सोमपीथी हैं वे बर्हिषद् पितर अग्निहोत्री हैं। ऋतुगण ही पितरदेव हैं, यह शास्त्रों का निश्चित मत है ।।७।। चैत-वैशाख रस, ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद जीव, आश्विन-कार्तिक सुधा, मार्गशीर्ष-पौष मन्यु, माघ-फाल्गुन घोर शिशिर कहे जाते हैं। मासानुरूप षड् ऋतुओं की यही कालव्यवस्था हुई। ये ऋतुगण चेतन एवं अचेतन कहे जाते हैं ।।८-१०।। ऋतुगण ब्रह्मा के अभिमानी पुत्र कहे गये हैं। मासार्द्ध काल में ऋतुगण आर्तव रूप में परिणत होते हैं और नियत स्थान पर रहने के कारण स्थानाभिमानी होते हैं। अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर आदिं अवस्था के अभिमानी काल के अवयव हैं। निमेष, कला, काष्ठा, मुहूर्त और दिन-रात आदि काल की व्यवस्था में जो स्थानाभिमानी हैं, वे उसी स्वरूप में वर्तमान रहने के कारण उन्हीं के तुल्य हैं। इनके सम्बन्ध में भी मैं कहता हँ, सुनिये ।।११-१४।। पर्व, तिथि, सन्ध्या, महीने का आधा पक्ष, निमेष, कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन-रात, दो पक्षों का एक मास, दो महीने की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का अयन, दक्षिणोत्तर भेद से दो अयन और संवत्सर अथवा सुमेक होता है ।।१५-१६।। ये सभी स्थानधारियों के स्थान हैं अर्थात् कालरूप

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

ऋतवः सुमेकपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट्। ऋतुपुत्राः स्मृताः पञ्च प्रजास्त्वार्तवलक्षणाः ।।१७।।
यस्माच्चैवाऽऽर्तवेयास्तु जायन्ते स्थाणुजङ्गमाः। आर्तवाः पितरश्चैव ऋतवश्च पितामहाः ।।१८।।
सुमेकात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः। तस्मात्स्मृतः प्रजानां वै सुमेकः प्रपितामहः ।।१९।।
स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्तिताः। तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मानश्च ते स्मृताः ।।२०।।
प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मतः। संवत्सरः स्मृतो ह्यग्निर्ऋतमित्युच्यते द्विजैः ।।२१।।
ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः। मासाः षड्ऋतवो ज्ञेयास्तेषां पञ्चाऽऽर्तवाः सुताः ।।२२।।
द्विपदां चतुष्पदां चैव पक्षिसंसर्पतामपि। स्थावराणां च पञ्चानां पुण्यं कालार्तवं स्मृतम् ।।२३।।
ऋतुत्वमार्तवत्वं च पितृत्वं च प्रकीर्तितम्। इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चाऽऽर्तवाश्च ये ।।२४।।
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे। तस्मादेतेऽपि पितर आर्तवा इति नः श्रुतम् ।।२५।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिताः कालाभिमानिनः। स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसंयमात् ।।२६।।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः। जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ।।२७।।
मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम्। पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददुः शुभे ।।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे ।।२८।।
अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी। धारिणी मानसी चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता ।।२९।।

अवयवी के अवयव हैं। ऋतुगण सुमेक के पुत्र हैं, जो छह या आठ भागों में विभक्त हैं। ऋतुओं के पाँच पुत्र हैं, जो प्रजागण के बीच आर्तव नाम से प्रसिद्ध हैं। यतः चर और अचर आर्तव से उत्पन्न हैं; अतः इनके पिता आर्तव हुए और ऋतुगण पितामह ।।१७-१८।। सुमेक से जो प्रजागण उत्पन्न हुए वे मर गये; इसलिए सुमेक मृत प्रजाओं के प्रपितामह कहलाये। ये यथास्थान-स्थित स्थानी हैं। अतः स्थानात्मक कहे जाते हैं। उसी रूप में वर्तमान रहने के कारण वे उन स्थानों के तुल्य हैं और उसी नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रजापति ही संवत्सर हैं और संवत्सर ही अग्नि या ऋत हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है। ऋत से ऋतुओं का जन्म हुआ है, इसीलिए वे ऋतु कहलायीं। छहों ऋतुओं में मासों का समावेश हो जाता है; इसलिए मास भी ऋतु स्वरूप हैं। ऋतुओं को आर्तव नामक पाँच पुत्र हैं ।।१९-२२।। द्विपद, चतुष्पद, पक्षी, सरीसृप और स्थावरादि पाँचभौतिकों का जो पुष्पकाल है, वही आर्तव कहलाता है। ऋतुत्व और आर्तवत्व पितृत्व कहलाता है; इसलिए ऋतु और आर्तव पितर कहे गये हैं ।।२३-२४।। सुना है कि सकल भूत ऋतुकाल में ऋतु और आर्तव से उत्पन्न हुए हैं; इसलिए आर्तव भी पितर हैं। सभी मन्वन्तरों में ये स्थानाभिमानी और कालाभिमानी संयमपूर्वक वर्तमान रहते हैं। अग्निष्वात्ता और बर्हिषद् नामक दो तरह के पितर हैं। इन पितरों ने लोकप्रसिद्ध दो कन्याओं को उत्पन्न किया ।।२५-२७।। उनका नाम था मेना और धारिणी। इन्हीं दोनों ने संसार को धारण किया है। ब्रह्मवादिनी और परमयोगिनी उन कन्याओं को पितरों ने धर्म के लिए दान कर दिया। अग्निष्वात्ता की मानस पुत्री मेना थी और बर्हिषद् की मानस कन्या धारिणी थी। सोमपीथी बर्हिषद् पितर ने सुन्दरी धारिणी को मेरु से ब्याह

मेरोस्तु धारणीं नाम पत्न्यर्थं व्यसृजञ्शुभाम्। पितरस्ते बर्हिषदः स्मृता ये सोमपीथिनः ।।३०।।
अग्निष्वात्तास्तु तां मेनां पत्नीं हिमवते ददुः। स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान्निबोधत ।।३१।।
(+मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं साऽन्वसूयत। गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधेः ।।
मैनाकस्यानुजः क्रौञ्चः क्रौञ्चद्वीपी यतः स्मृतः) ।।३२।।
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम्। मन्दरं सुषुवे पुत्रं तिस्रः कन्याश्च विश्रुताः ।।३३।।
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चाऽऽयतिः पुनः। धातुश्चैवाऽऽप्रतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृताः ।।३४।।
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं तयोर्वै कीर्तिताः प्रजाः। सुषुवे सागरादवेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ।।३५।।
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिषः। सवर्णा साऽथ सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।।३६।।
तेषां स्वायंभुवो दक्षः पुत्रत्वे जज्ञिवान्प्रभुः। त्र्यम्बकस्याभिशापेन चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।।३७।।
एतच्छ्रुत्वा ततः सूतमपृच्छच्छांशपायनः। उत्पन्नः स कथं दक्षो ह्यभिशापाद्भवस्य तु ।।
चाक्षुषस्या यये पूर्वं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।३८।।
इत्युक्तः कथयामास सूमो दक्षाश्रितां कथाम्। शांशपायनमामन्त्र्य त्र्यम्बकाच्छापकारणम् ।।३९।।

दिया और अग्निष्वात्ता ने हिमालय से मेना का ब्याह कर दिया। अब उनके पौत्रों की कथा सुनिये ।।२८-३१।। हिमालय की पत्नी मेना से मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसे नदियों में श्रेष्ठ एक गंगा नाम की बेटी भी हुई, जो लवण-सागर की पत्नी है! मैनाक का एक छोटा भाई भी था, जिसका नाम क्रौंच था। इसी के नाम पर क्रौंच द्वीप हुआ है ।।३२।। मेरु-पत्नी धारिणी ने दिव्य ओषधियों से युक्त मन्दार नामक पुत्र को उत्पन्न किया एवं वेला, नियति और आयति नामक तीन पुत्रियों को भी जन्म दिया ।।३३½।। इनमें आयति से धाता ने और नियति से विधाता ने ब्याह किया ।।३४।। स्वायंभुव मन्वन्तर के समय इनकी सन्ततियों की चर्चा की गयी है। वेला ने सागर की पत्नी होकर एक अपूर्व सुन्दरी को उत्पन्न किया। सावर्णि ने उस सामुद्री नाम की कन्या को प्राचीन बर्हिष् के हाथ में सौंपा। अपने पति से उस सामुद्री ने दस पुत्रों को प्राप्त किया। वे सभी प्रचेतस् धनुर्वेद के पारगामी विद्वान् थे। चाक्षुष मनु के अधिकार-काल में भगवान् त्र्यम्बक के अभिशाप से स्वायंभुव दक्ष उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे ।।३५-३७।। शांशपायन ने यह कथा सुनकर सूत से पूछा-चाक्षुष मन्वन्तर में महादेव के शाप से दक्ष किस प्रकार उत्पन्न हुआ इसको कृपाकर कहिये। सूत जी शांशपायन को सम्बोधन करके महादेव जी ने जिस कारण दक्ष को शाप दिया, वह कथा कहने लगे। पहले कहा जा चुका है कि दक्ष को आठ कन्याएँ थीं, उन्हें अपने घर में लाकर दक्ष ने उनका

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

दक्षस्याऽऽसन्सुता ह्यष्टौ कन्या याः कीर्तिता मया । स्वेभ्यो गृहेभ्यो ह्यानाय्य ताः पिताऽभ्यर्चयद्गृहे ।।
ततस्त्वभ्यर्चिताः सर्वा न्यवसंस्ता पितुर्गृहे ।।४०।।
तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै । नाऽऽजुहावाऽऽत्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन् ।।४१।।
अकरोत्स नतिं दक्षे न कदाचिन्महेश्वरः । जामाता श्वशुरे तस्मिन्स्वभावोत्तजसि स्थितः ।।४२।।
ततो ज्ञात्वा सती सर्वाः स्वसॄः प्राप्ताः पितुर्गृहम् । जगाम साऽप्यनाहूता सती तत्स्वं पितुर्गृहम् ।।
×ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसंमताम् ।।४३।।
ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधादमर्षिता । यवीयसीभ्यो ज्यायसीं किंतु पूजामिमां प्रभो ।।
असंमतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हिताम् ।।४४।।
अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा हि न त्वसत्कर्तुमर्हसि । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः ।।४५।।
त्वं तु श्रेष्ठा वरिष्ठा च पूज्या बाला सदा मम । तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमता सदा ।।४६।।
ब्रह्मिष्ठाश्च तपिष्ठाश्च महायोगाः सुधार्मिकाः । गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्वे ते त्र्यम्बकात्सति ।।४७।।
वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ।।४८।।
तस्याऽऽत्मा स च ते शर्वो भक्ता चासि हितं सदा । तेन त्वां न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भवः ।।४९।।

अच्छा सत्कार किया। इस प्रकार सत्कृत होकर वे कन्याएँ पिता के घर में रहने लगीं ।।३८-४०।। लेकिन दक्ष ने अपनी सबसे बड़ी लड़की सती को, जो कि महादेव से ब्याही हुई थी, नहीं बुलाया; क्योंकि दक्ष का महादेव से कुछ मनमुटाव था। बात यह थी कि किसी दिन महादेव ने दक्ष को प्रणाम नहीं किया था। यह दक्ष को बहुत बुरा लगा कि जामाता होकर भी ये ससुर के सामने अभिमान करते हैं ।।४१-४२।। सती को जब यह मालूम हुआ कि हमारी सभी बहनें मायके पहुँची हुई हैं, तो वह भी बिना बुलावे के ही वहाँ पहुँच गयी। सती वहाँ पहुँची तो सही; लेकिन पिता ने उनका वैसा सत्कार नहीं किया, जैसा कि उनकी और बहनों का किया था। क्रोध से तमककर सती ने पिता से कहा—तात! आप छोटी बहनों का तो बड़ा सत्कार कर रहे हैं; किन्तु मेरा निरादर कर रहे हैं ।।४३-४४।। मैं सब बहनों से बड़ी हूँ इसलिए निरादर के योग्य नहीं हो सकती। यह सुनते ही लाल-लाल आँखें करके दक्ष ने सती से कहा—यह सत्य है कि तू मेरी ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और आदणीय पुत्री हो, किन्तु मैं अपनी और लड़कियों के पतियों को बहुत अच्छा समझता हूँ। इसलिए कि वे सब-के-सब महादेव से ज्यादा गुणी; प्रशंसनीय, धार्मिक, महायोगी, तपस्वी और ब्रह्मकर्म को जाननेवाले हैं। वसिष्ठ, पुलस्त्य, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, भृगु और मरीचि आदि मेरे अच्छे जामाता हैं ।।४५-४८।। महादेव मेरे विरुद्ध हैं और तू उन्हीं की आत्मा हो, एवं उनकी ही सेवा करती हो; इसलिए मैं तेरा सत्कार नहीं कर सकता। मूढ़चित्त दक्ष ने शाप पाने की इच्छा से सती से इस प्रकार कहा। परमर्षिगण भी

× इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

इत्युवाच तदा दक्षः संप्रमूढेन चेतसा। शापार्थमात्मनश्चैव ये चोक्ताः परमर्षयः ।।५०।।
तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवीदमब्रवीत्। वाङ्मनः कर्मभिर्यस्माददुष्टां मां विगर्हसे ।।
तस्मात्त्यजाम्यहं देहमिदं तात तवाऽऽत्मजम् ।।५१।।
ततस्तेनावमानेन सती दुःखादमर्षिता। अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्वा (त्य) महेश्वरम् ।।५२।।
यत्राहमुपपत्स्येऽहं पुनर्देहेन भास्वता। तत्राप्यहमसंमूढा संभूता धार्मिकी पुनः ।।
गच्छेयं धर्मपत्नीत्वं त्र्यम्बकस्यैव धर्मतः ।।५३।।
तत्रैवाथ समासीना युक्ताऽऽत्मानं समादधे। धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणां मनसाऽऽत्मनः ।।५४।।
तत आग्नेयीसमुत्थेन वायुना समुदीरितः। सर्वाङ्गेभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ।।५५।।
तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देवोऽथ शूलभृत्। संवादं च तयोर्बुद्ध्वा याथातथ्येन शंकरः ।।
दक्षस्याथ ऋषीणां च चुकोप भगवान्प्रभुः ।।५६।।
यस्मादवमता दक्ष मत्कृते नाम सा सती। प्रशस्ताश्चेतराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह ।।५७।।
तस्माद्वैवस्वतं प्राप्य पुनरेव महर्षयः। उत्पत्स्यन्ते द्वितीये वै मम यज्ञे ह्ययोनिजाः ।।५८।।
हुते वै ब्रह्मणा शक्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। अभिव्याहत्य च ऋषीन्दक्षमभ्यगमत्पुनः ।।५९।।
भविता चाक्षुषो राजा चाक्षुषस्य समन्वये। प्राचीनवर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ।।६०।।
दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मार्षायां जनयिष्यसि। कन्यायां शाखिनां चैव प्राप्ते वै चाक्षुषेऽन्तरे ।।६१।।

ऐसा ही समझते हैं ।।४९-५०।। यह सुनते ही सती ने क्रुद्ध होकर पिता से कहा–मन, वचन और कर्म से मैं पवित्र हूँ, फिर भी आप मेरा तिरस्कार करते हैं। इसलिए आपके द्वारा जो यह मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है, उसे ही मैं छोड़ देती हूँ। उस अपमान से सती को बड़ा दुःख हुआ। उसने मन-ही-मन महादेव को प्रणाम करके कहा– ।।५१-५२।। मैं जहाँ कहीं अपने तेजस्वी शरीर से जन्म ग्रहण करूँगी, वहाँ बिना किसी मोह-माया में फँसे ऐसा धर्माचरण करूँगी, जिससे कि मैं फिर महादेव की ही पत्नी होऊँ। इस तरह कहकर सती वहीं पर योगासन लगाकर बैठ गयीं। मन-ही-मन उन्होंने अग्नि की धारणा की ।।५३-५४।। उस धारणा से आग्नेयी वायु उत्पन्न हुई, जिसने समूची देह में आग भड़काकर उसे राख कर दिया। शूलधारी महादेव ने जब यह सुना और उस समाचार की सत्यता पर भी विश्वास हो गया, तब वे ऋषियों और दक्ष पर बहुत क्रुद्ध हुए ।।५५-५६।। उन्होंने कहा–दक्ष! तुमने जिस कारण मेरे लिए सती का तिरस्कार किया और अपनी दूसरी सब बेटियों का पतियों के साथ सत्कार किया; इसलिए तुम्हारे पक्षपाती ऋषिगण मृत्यु मुख में प्राप्त होंगे एवं वैवस्वत मन्वन्तर में मेरे द्वितीय यज्ञ से उत्पन्न होकर वे अयोनिज कहलायेंगे ।।५७-५८।। चाक्षुष मनु के अधिकार-काल में ब्रह्मा इन्द्र का यज्ञ करा रहे थे कि ऋषियों को वैसा कहते हुए महादेव दक्ष के समीप पहुँचे और कहा–चाक्षुष मन्वन्तर में ही चाक्षुष नाम का एक राजा होगा, जो प्राचीनबर्हिष् का और प्रचेता का पुत्र होगा। वही राजा तुम्हें वृक्षकन्या मार्षा के गर्भ से उत्पन्न करेगा और तुम्हारा नाम दक्ष ही रखेगा ।।५९-६१।।

दक्ष उवाच

अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते। धर्मार्थकामयुक्तेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ।।६२।।
यस्मात्त्वं मत्कृते क्रूरमृषीन्व्याहृतवानसि। तस्मात्सार्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ।।६३।।
हुत्वाऽऽहुतिं ततः क्रूर अपस्त्यक्ष्यन्ति कर्मसु। इहैव वत्स्यसि तथा दिवं हित्वाऽऽयुगक्षयात् ।।६४।।

रुद्र उवाच

सर्वेषामेव लोकानां भूर्लोकस्त्वादिरुच्यते। तमहं धारयिष्यामि निदेशात्परमेष्ठिनः ।।६५।।
अस्यां क्षितौ वृता लोकाः सर्वे तिष्ठन्ति भास्कराः। तानहं धारयामीह सततं न तवाऽऽज्ञया ।।६६।।
चातुर्वर्ण्यं हि देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते। नाहं तैः सह भोक्ष्यामि ततो दास्यन्ति ते पृथक् ।।
ततो देवैः स तैः सार्धं नेज्यते पृथमिज्यते ।।६७।।
ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा। स्वायंभुवेऽन्तरे त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह ।।६८।।
कृत्वा गृहपतिं दक्षं ज्ञानानामीश्वरं प्रभुम्। दक्षो नाम महायज्ञैः सोऽऽयजद्दैवतैः सह ।।६९।।
अथ देवी सती या तु प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे। मेनायां तामुमां देवीं जनयामास शैलराट् ।।७०।।
या तु देवी सती पूर्वं ततः पश्चादुमाऽभवत्। सहव्रता भवस्यैषा न तया मुच्यते भवः ।।
यावदिच्छति संस्थातुं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह ।।७१।।

दक्ष बोले–हे दुर्मति! मैं तुम्हारे धर्मार्थयुक्त कर्म में उस जन्म में भी बार–बार विघ्न उपस्थित करूँगा। जिस लिए तुमने मेरे कारण ऋषियों के प्रति क्रूरता का व्यवहार किया है; इसलिए द्विजगण यज्ञ में देवों के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे। वे आहुति देने के बाद कर्म में यानी यज्ञकुण्ड में जल छोड़ दिया करेंगे और तुम स्वर्ग छोड़कर इसी भूलोक में युगक्षय पर्यन्त निवास करोगे ।।६२–६४।।

रुद्र बोले–सब लोकों में यह भूलोक ही श्रेष्ठ कहा गया है। इसका धारण मैं परमेष्ठी की आज्ञा से ही कर रहा हूँ। इस क्षितितल में भास्करोपम लोक विराजमान हैं। उन्हें मैं सदा धारण किये रहता हूँ, वह कुछ तुम्हारी आज्ञा से नहीं ।।६५–६६।। देवों के बीच भी चतुर्वर्ण व्यवस्था है; पर वे सभी एक साथ ही बैठकर खान–पान कर लिया करते हैं और मैं उनके साथ नहीं खाता; इसलिए मुझे पृथक् किया जाता है। इसीलिए वे लोग देवों के साथ मेरी पूजा न कर पृथक् पूजा करते हैं ।।६७।। इस तरह अत्यन्त तेजस्वी रुद्र से शप्त होकर स्वायंभुव मन्वन्तर के बाद मनुष्यलोक में दक्ष प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया। अपने को ज्ञानवान्, समर्थ और गृहपति जानकर दक्ष ने देवों के साथ मिलकर एक महायज्ञ आरम्भ किया। इधर वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर शैलाधिराज हिमालय ने मेना के गर्भ से देवी सती को उमा के रूप में उत्पन्न किया ।।६८–७०।। वही देवी जो पहले सती थी, पीछे उमा हुई। महादेव के साथ रहना ही उसका व्रत है। वह कभी भी मन्वन्तर में महादेव को उसी प्रकार नहीं छोड़तीं, जैसे अनुव्रता अदिति देवी मरीच कश्यप को, लक्ष्मी नारायण को, शची इन्द्र को, रुचि सूर्य को, अरुन्धती वसिष्ठ को किसी भी तरह नहीं छोड़ती हैं। दूसरे कल्पों

मरीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता। साध्यं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा ।।७२।।
विष्णुं कीर्ती रुचिः सूर्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती। नैतास्तु विजहत्येतान्भर्तॄन्देव्यः कथंचन ।।
हावर्तमानकल्पेषु पुनर्जायन्ति तैः सह ।।७३।।
एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे। प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ।।७४।।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मार्षायां च पुनर्नृपः। जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम् ।।७५।।
भृग्वादयस्तु ते सर्वे जज्ञिरे वै महर्षयः। आद्ये त्रेतायुगे पूर्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ।।७६।।
इति सानुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरागतः। प्रजापतेस्तु दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ।।७७।।
तस्मान्नानुशयः कार्यो वैरिष्विह कदाचन। जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य शुभाशुभैः ।।
जन्तुं न मुञ्चति ख्यातिस्तत्र कार्यं विजानता ।।७८।।

ऋषय ऊचुः

प्राचेतसस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे। विनाशमगमत्सूत हयमेधः प्रजापतेः ।।७९।।
देव्या मृत्युं कृतं मत्वा क्रुद्धं सर्वात्मकं प्रभुम्। कंथं प्रासादयद्दक्षः स यज्ञः साधितः कथम् ।।
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ।।८०।।

*सूत उवाच

पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाःशृङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ज्योतिष्कं नाम सावित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ।।८१।।

के लौटने पर भी ये देवियाँ उन्हीं के साथ उत्पन्न होती हैं ।।७१-७३।। इधर दक्ष प्रजापति भी रुद्र के शाप से चाक्षुष मन्वन्तर में प्राचीनबर्हिष् के पौत्र होकर दक्ष प्रचेता से मार्षा के गर्भ से फिर उत्पन्न हुए यह हम लोगों ने सुना है। भृगु आदि जो महर्षि थे, वे भी वैवस्वत मनु के पूर्व त्रेतायुग के आदि में वरुण-सदृश शरीर को धारणकर महान् देवता के यज्ञ में उत्पन्न हुए ।।७४-७६।। दक्ष प्रजापति और धीमान् महादेव का विद्वेष इस प्रकार जन्मान्तर में भी चलने लगा। इसलिए वैरियों के प्रति कभी भी विद्वेष नहीं करना चाहिए। शुभाशुभ कर्म से परिचालित जन्तु के आन्तरिक भाव दूसरे जन्म में भी नहीं छूटते हैं। इसीलिए यह जानकर विद्वेष नहीं करना चाहिए ।।७७-७८।।

ऋषिगण बोले-सूत! वैवस्वत मन्वन्तर में प्राचेतस दक्षप्रजापति का अश्वमेध किस प्रकार नष्ट हुआ? दक्ष ने सती की मृत्यु से क्रुद्ध सर्वात्मक महादेव को किस प्रकार प्रसन्न किया और अपने यज्ञ को किस प्रकार सम्पन्न किया? यह हम जानना चाहते हैं कृपाकर कहिये ।।७९-८०।।

सूत जी बोले-द्विजगण! पूर्व काल में मेरु के विश्वविश्रुत सर्वरत्नों से विभूषित ज्योतिष नामक पवित्र शिखर

---

* इदं नास्ति.ख. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम् । तस्मिन्देवो गिरिश्रेष्ठे सर्वधातुविभूषिते ।।
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो बभूव ह ।।८२।।
शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् । आदित्याश्च महात्मानो वसवश्चामितौजसः ।।८३।।
तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ । तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः ।।८४।।
यक्षाणामीश्वरः श्रीमान्कैलासनियः प्रभुः । उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः ।।
सनत्कुमारप्रमुखास्ते चैव परमर्षयः ।।८५।।
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे । विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ।।८६।।
अप्सरोगणसंघाश्च समाजग्मुरनेकशः । ववौ शिवः सुखो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ।।८७।।
सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तो द्रुमास्तथा । तथा विद्याधराश्चैव सिद्धिश्चैव तपोधनाः ।।८८।।
महादेवं पशुपतिं पर्युपासन्ति तत्र वै । भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधरान्यथ ।।८९।।
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः । बहुरूपधरा हृष्टा नानाप्रहरणोद्यताः ।।९०।।
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः । नन्दीश्वरश्च भगवान्देवस्यानुमते स्थितः ।।९१।।
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा । गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ।।
पर्युपासत तं देवरूपिणी द्विजसत्तमाः ।।९२।।
एवं स भगवांस्तत्र दीप्यमानः सुरर्षिभिः । देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यवस्थितः ।।९३।।
पुरा हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमारभत् । गङ्गाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते ।।९४।।

पर महादेव जी इस प्रकार बैठे थे, मानो कोई पलँग पर बैठा हो ।।८१-८२।। गिरि हिमालय का वह शृङ्ग सबका पूज्य, अत्यन्त विस्तृत और किसी प्रकार से उल्लंघन के योग्य न था। पार्वती भी उनकी बगल में बैठी हुई थीं। उस समय आदित्यगण, अत्यन्त पराक्रमी वसुगण, दोनों भाई वैद्यराज अश्विनीकुमार, गुह्यकों को साथ लेकर राजा वैश्रवण, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अङ्गिरा आदि देवर्षि, विश्वावसु, गन्धर्व, नारद, पर्वत कैलास निवासी यक्षराज, महामुनि उशना और अप्सराएँ बार-बार उनकी पूजा-उपासना करने लगीं ।।८३-८६$\frac{१}{२}$।। उस समय कल्याणकारक, सुखद, सुगन्धित, शीतल वायु चल रही थी, सब ऋतुओं के फूलों से युक्त होकर विटप सुशोभित हो रहे थे और सिद्ध, विद्याधर तथा तपस्वी आदि महादेव पशुपति की उपासना कर रहे थे। विविध स्वरूपों को धारण करनेवाले नाना प्रकार के भूत, महाभयङ्कर राक्षस, महाबली पिशाच आदि बहुविध रूपों को धारण करके और नाना प्रकार के अस्त्रों से सज्जित होकर अग्नि के समान दीप्ति को धारणकर सेवा कार्य करने लगे ।।८७-९०$\frac{१}{२}$।। भगवान् नन्दीश्वर चमकते हुए प्रज्वलित त्रिशूल को लेकर उनके निकट आदेश पालन करने जा बैठे। द्विजगण ! उस समय सब तीर्थों के जल को उत्पन्न करनेवाली नदीश्रेष्ठ और देवस्वरूप को धारण करनेवाली गंगा भी उनकी सेवा करने लगीं। इस प्रकार देवर्षियों और महाभाग्यशाली देवताओं से घिरे हुए भगवान् महादेव वहाँ बैठे थे ।।९१-९३।। उसी समय दक्ष ने हिमालय के पृष्ठ देश में यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञस्थान सिद्ध ऋषियों से सेवित, मंगलकारक गंगाद्वार में बनाया गया। ऐसा सुना जाता है कि अग्नि के तुल्य तेजस्वी

ततस्तस्य मखे देवः शतक्रतुपुरोगमाः। गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ।।९५।।
स्वैर्विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः। देवस्यानुमतेऽगच्छन्गङ्गाद्वार इति श्रुतिः ।।९६।।
गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्। ऋषिसंघैः परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम् ।।९७।।
पृथिव्यामन्तरिक्षे वा ये च स्वर्लोकवासिनः। सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम् ।।९८।।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सह मरुद्गणैः। जिष्णुना सहिताः सर्वे आगता यज्ञभागिनः ।।९९।।
उष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा। अश्विनौ पितरश्चैव आगता ब्रह्मणा सह ।।१००।।
एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्जकास्तथा ।।१०१।।
आहूता मंत्रतः सर्वे देवाश्च सह पत्निभिः ×। विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः ।।१०२।।
तान्दृष्ट्वा मन्युमाविष्टो दधीचो वाक्यमब्रवीत्। अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने ।।
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ।।१०३।।
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत। पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नाऽऽह्वयसे प्रभुम् ।।१०४।।

दक्ष उवाच

सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः। एकादशावस्थगता नान्यं वेद्मि महेश्वरम् ।।१०५।।

इन्द्र प्रमुख देवगण उस यज्ञ में जाने का विचार करने लगे और अग्नि के समान अपने चमकीले विमानों पर चढ़कर वे सब महात्मा गंगाद्वार पहुँचे ।।९४-९६।। भिन्न-भिन्न प्रकार की द्रुम-लताओं से आवृत, गन्धर्व-अप्सराओं से व्याप्त, ऋषि समूहों से घिरे हुए धर्मध्वज दक्ष प्रजापति की पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक के निवासी हाथ जोड़कर स्तुति और प्रशंसा करने लगे ।।९७-९८।। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण और विष्णु आदि यज्ञ में भाग पानेवाले वहाँ पहुँचे। उष्म, सोम, आज्य और धूम पीनेवाले, अश्विनीकुमार, पितर और ब्रह्मा आदि देवगण भी आये ।।९९-१००।। इनके अतिरिक्त बहुतेरे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि प्राणी, सभी देव मन्त्रबल से पत्नियों के साथ बुलाये गये। वे सभी विमान विहारी देव अग्नि की तरह प्रदीप्त हो रहे थे। उन सबको देखकर सुखपूर्वक बैठे हुए दधीचि ने दक्ष से कहा—अपूज्यों को पूजने और पूज्यों को न पूजने से मनुष्य घोर पाप का भागी होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह कहकर विप्रर्षि ने फिर दक्ष से कहा—पूजनीय प्रभु महादेव को आप क्यों नहीं बुला रहे हैं? ।।१०१-१०४।।

दक्ष बोले—ग्यारह प्रकार के कितने ही शूलधारी कपर्दी रुद्र मेरे यज्ञ में उपस्थित हैं। यहाँ हम दूसरे महादेव को नहीं जानते ।।१०५।।

× आर्षः प्रयोगः।

दधीच उवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं येनेशो न निमन्त्रितः। यथाऽहं शंकरादूर्ध्वं नान्यत्पश्यामि दैवतम्।।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ।।१०६।।

दक्ष उवाच

एतन्मखेशाय सुवर्णपात्रे हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम्।
विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य सर्वं प्रभोर्विभोर्ह्याहवनीयनित्यम् ।।१०७।।

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा। उवाच वचनं साध्वी देवं पशुपतिं तदा ।।१०८।।

उमोवाच

भगवन्क्व गता ह्येते देवाः शक्रपुरोगमाः। ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ।।१०९।।

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः। हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ।।११०।।

देव्युवाच

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं न गतोऽसि वै। केन वा प्रतिषेधेन गमनं प्रतिषिध्यते ।।१११।।

महेश्वर उवाच

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम्। यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ।।११२।।
पूर्वोपायोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि। न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धीमतः ।।११३।।

दधीचि बोले–सबसे बड़ी बात यह है कि महादेव निमन्त्रित नहीं हुए हैं। इनसे भी बड़े कोई देवता हैं, ऐसा हम नहीं समझते। इसलिए दक्ष का यह विपुल आयोजनवाला यज्ञ सम्पन्न हो सकेगा?।।१०६।।

दक्ष बोले–इस यज्ञ में हम विधि-विधान से मन्त्रपूत समस्त हवि को स्वर्णपात्र में रखकर विष्णु को समर्पण करेंगे। विष्णु ही नित्य हवनीय, प्रभु, विभु और अप्रतिम हैं। इधर नगेन्द्र-नन्दिनी पार्वती ने सभी देवताओं को कहीं जाते हुए देखकर महादेव से कहा ।।१०७-१०८।।

उमा बोलीं–भगवन्! तत्त्वज्ञ! हमारे मन में कुतूहल हो रहा है कि ये इन्द्र आदि देवता कहाँ गये हैं? आप सब समझाकर कहें ।।१०९।।

महादेव बोले–महाभागे! दक्ष नामक एक उत्तम प्रजापति हैं, वे ही अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। वहाँ ये देवगण जा रहे हैं ।।११०।।

देवी बोलीं–महाभाग! इस यज्ञ में आप क्यों नहीं गये? किसलिए आपको वहाँ नहीं बुलाया गया है? ।।१११।।

महादेव बोले–महाभागे! देवों ने ही यह सब किया है कि किसी भी यज्ञ में हमारे लिये भाग नहीं रखा जाय। वरवर्णिनि! उसी पूर्व व्यवस्था के अनुसार विद्वान् देवगण हमें यज्ञ में भाग नहीं देते हैं ।।११२-११३।।

देव्युवाच

भगवन्सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः। अजेयश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ।।११४।।
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागतः। अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च ममानघ ।।११५।।

किं नाम दानं नियमं तपो वा कुर्यामहं येन पतिर्ममाद्य।
लभेत भागं भगवानचिन्त्यो यज्ञस्य चार्धमथ वा तृतीयम् ।।११६।।
एवं ब्रुवाणां भगवानचिन्त्यः पत्नीं प्रहृष्टः क्षुभितामुवाच।
न वेत्सि देवेशि कृशोदराङ्गि किं नाम युक्तं वचनं तवेदम् ।।११७।।
अहं हि जानामि विशालनेत्रे ध्यानेन सर्वं हि वदन्ति सन्तः।
तवाद्य मोहेन महेन्द्रदेवो लोकत्रयं सर्वथा संप्रमूढम् ।।११८।।
मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथंतरे (रं) साम गायन्ति गेयम्।
मां ब्राह्मणा ब्रह्मसत्रे यजन्ते ममाध्वर्यवः कल्पयन्ते च भागम् ।।११९।।

देव्युवाच

सुप्राकृतोऽपि भगवान्सर्वस्त्रीजनसंसदि। स्तौति गोपायते वाऽपि स्वमात्मानं न संशयः ।।१२०।।

भगवानुवाच

नाऽऽत्मानं स्तौमि देवेशि पश्य त्वमुपगच्छ च। यं स्रक्ष्यामि वरारोहे भागार्थं वरवर्णिनि ।।१२१।।

देवी बोलीं–अनघ! भगवन्! सभी देवों में आपका अधिक प्रभाव है, आप अधिक गुणवान् भी हैं। यही क्यों, तेज, यश और शोभा की अधिकता से आप अजेय और अधृष्य हैं। अतः महाभाग! आपका जो यह तिरस्कार हुआ है, इससे मुझे बहुत दुःख हुआ है, मेरा शरीर काँप रहा है ।।११४-११५।। मैं कौन-सा दान, नियम या तप करूँ, जिससे मेरे अचिन्तनीय भाग्यवान् पति यज्ञ में आधा अथवा तृतीय भाग प्राप्त करें ।।११६।। इस प्रकार बोलनेवाली अपनी दुःखी पत्नी पर प्रसन्न होकर महादेव जी ने कहा–कृशोदराङ्गि! तुम जो कह रही हो कि मैं नहीं जानती, यह क्या ठीक कह रही हो? हम इस बात को जानते हैं कि साधु पुरुष ध्यान योग से सब बातों को जान जाते हैं। महेन्द्र प्रमुख देवों को कौन कहे, तीनों लोक तुम्हारी माया से मोहित हो गया है। देखो, प्रस्तोता यज्ञ में हमारा ही स्तवन कर रहे हैं, रथन्तर साम गान हो रहा है। ब्राह्मण लोग ब्रह्मयज्ञ में हमारी ही पूजा कर रहे हैं और अध्वर्युगण हमारे लिये भाग कल्पित कर रहे हैं ।।११७-११९।।

देवी बोलीं–स्त्रियों के बीच तो मामूली आदमी भी अधिक प्रशंसा कर दिया करता है और अपनी कमजोरी छिपा लिया करता है। यह पक्की बात है। क्या आप भी वही कर रहे हैं? ।।१२०।।

भगवान् बोले–देवेशि! हम झूठ-मूठ अपनी प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। वरारोहे! वरवर्णिनि! तुम आकर देखो कि

एवमुक्त्वा तु भगवान्पत्नीं प्राणैरपि प्रियाम् । सोऽसृजद्भगवान्वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसंनिभम् ।।१२२।।
सहस्रशीर्षं देवं च सहस्रचरणेक्षणम् । सहस्रामुद्गरधरं सहस्राशरपाणिनम् ।।१२३।।
शङ्खचक्रगदापाणिं दीप्तकार्मुकधारिणम् । परश्वसिधरं देवं महारौद्रं भयावहम् ।।१२४।।
घोररूपेण दीप्यन्तं चन्द्रार्धकृतभूषणम् । वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरनिस्रवम् ।।१२५।।
दंष्ट्राकरालं विभ्रान्तं महावक्त्रं महोदरम् । विद्युज्जिह्वं प्रलम्बोष्ठं लम्बकर्णं दुरासदम् ।।१२६।।
कुलिशोद्योतितकरं भाभिर्ज्वलितमूर्धजम् । ज्वालामालापरिक्षिप्तं मुक्तादामविभूषितम् ।।१२७।।
तेजसा चैव दीप्यन्तं युगान्तमिव पावकम् । आकर्णदारितास्यान्तं चतुर्दंष्ट्रं भयानकम् ।।१२८।।
महाबलं महातेजं महापुरुषमीश्वरम् । विश्वहर्तृ महाकायं महान्यग्रोधमण्डलम् ।।
युगपच्चन्द्रशतवद्दीप्यन्तं मन्मथाग्निवत् ।।१२९।।
चतुर्महास्यं सिततीक्ष्णदण्डं महोग्रतेजोबलपौरुषाढ्यम् ।
युगान्तसूर्याग्निसहस्रभासं सहस्रचन्द्रामलकान्तिकान्तम् ।।
प्रदीप्तसर्वौषधिमन्दराभं सुमेरुकैलासहिमाद्रितुल्यम् ।।१३०।।
युगार्काभं महावीर्यं चारुनासं महाननम् । प्रचण्डगण्डं दीप्ताक्षमग्निज्वालाविलाननम् ।।१३१।।

अपने भाग के लिए हम किसकी सृष्टि कर रहे हैं। प्राण से भी प्रिय पत्नी को भगवान् ने ऐसा कहकर अपने मुँह से जाज्वल्यमान अग्नि की तरह एक भूत को उत्पन्न किया, जिसे हजार सिर, हजार पैर और हजार आँखें थीं। वह हजारों मुद्‌गर और हजारों बाणों को हाथों में रखे हुए था ।।१२१-१२३।। शंख, चक्र, गदा और पालिश किये हुए धनुष को भी धारण किये हुए था। उनके हाथ में फरसा और खड्ग भी था। उसका रौद्र रूप देखने में भयावह जान पड़ता था; किन्तु उसका घोर रूप देदीप्यमान हो रहा था। वह अर्द्ध चन्द्र से भूषित था, रक्तमय बाघम्बर पहने हुए था, उसके बड़े विकराल दाँत थे, उसका पेट और मुँह दोनों ही विशाल थे। लम्बे ओंठों के बीच उसकी जीभ बिजली की तरह लपलपा रही थी। उसके कान भी बड़े-बड़े थे और वह दुरासद था ।।१२४-१२६।। वज्र से उसके हाथ चमक रहे थे और प्रभाधिक्य के कारण केशराशि भी प्रदीप्त हो रही थी। ज्वालमाला की भाँति वह मुक्तामाला पहने हुए और प्रलयकालीन अग्नि की तरह अपनी कान्ति से दीप्त हो रहा था। उसके मुँह कान तक फटे हुए थे, जिसमें चार भयानक दाँत दिखायी देते थे ।।१२७-१२८।। वह महाबली, महातेजस्वी, महापुरुष, ईश्वर, विश्वहर्ता और विशाल शरीरवाला था। महान् वटवृक्ष की तरह उसका देह विस्तार था। यह शतचन्द्र के समान उज्ज्वल और कामाग्नि की तरह दीप्यमान था ।।१२९।। उसे चार बड़े-बड़े मुँह थे जिसमें चमकते हुए दाँत थे। तेज, बल और पौरुष की अधिकता से वह अत्यन्त उग्र था। प्रलयकालीन हजारों सूर्य और अग्नि की तरह वह भास्कर, सुमेरु, कैलास और हिमालय की तरह विशाल था, हजारों चन्द्र की निर्मल कान्ति की तरह वह कमनीय था और निखिल ओषधियों से युक्त मन्दराचल की तरह प्रदीप्त था ।।१३०।। वह युगान्तकालीन सूर्य की तरह आभावाला, महाबली, सुन्दर नासिकायुक्त, महानन प्रचण्ड-गण्ड, दीप्ताक्ष, ज्वालामुखी

मृगेन्द्रकृत्तिवसनं महाभुजगवेष्टितम्। उष्णीषिणं चन्द्रधरं क्वचिदुग्रं क्वचित्समम् ।।१३२।।
नानाकुसुममूर्धानं नानागन्धानुलेपनम्। नानारत्नविचित्राङ्गं नानाभरणभूषितम् ।।१३३।।
कर्णिकारस्त्रजं दीप्तं क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनम्। क्वचिन्नृत्यति चित्राङ्गं क्वचिद्वदति सुस्वरम् ।।१३४।।
क्वचिद्ध्यायति युक्तात्मा क्वचित्स्थूलं प्रमार्जति। क्वचिद्गायति विश्वात्मा क्वचिद्रौति मुहुर्मुहः ।।१३५।।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः। प्रभुत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठानगुणैर्युतः ।।१३६।।
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रणतः प्राञ्जलिः स्थितः। आज्ञापय त्वं देवेश किं कार्यं करवाणि ते ।।१३७।।
तमुवाचाऽऽक्षिप मखं दक्षस्येह महेश्वरः। देवस्यानुमतिं श्रुत्वा वीरभद्रो महाबलः ।।
प्रणम्य शिरसा पादौ देवेशस्य उमापतेः ।।१३८।।
ततो बन्धात्प्रमुक्तेन सिंहेनेवेह लीलया। देव्या मन्युकृतं मत्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ।।१३९।।
मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः सर्वसाक्षित्वे तेन सार्धं सहानुगा ।।१४०।।
स एष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः। वीरभद्र इति ख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ।।१४१।।
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्यो रौद्रान्नाम गणेश्वरान्। रुद्रानुगा महावीर्या रुद्रवीर्यपराक्रमः ।।१४२।।
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्त्रशः ।।१४३।।

की तरह मुखगह्वरवाला, व्याघ्र चर्मधारी, विशाल साँपों से वेष्टित, पगड़ी पहने हुए, चन्द्रधारी, उच्चावच, रंग-बिरंगे फूलों से सिर को सजाये हुए, बहुविध गन्ध-चन्दन को लगाये हुए, विविध रत्नों से और कितने ही प्रकार के आभरणों से भूषित था ।।१३१-१३३।। वह कनेर की माला पहने हुए था और क्रोध से उसकी आँखें नाच रही थीं। कभी वह विचित्र भाव भङ्गी से नाच उठता था तो कभी मधुर स्वर में बोल उठता था, कभी वह योगावलम्बन करके ध्यान करता था, तो कभी मोटी चीजों को इधर-उधर हटाता था, कभी वह विश्वात्मा गाता था, तो कभी सिसकियाँ भरता था ।।१३४-१३५।। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, प्रभुत्व, आत्मसंबोध और अधिष्ठान गुण से युक्त उसने भूमि पर घुटने टेक दिये और हाथ जोड़कर बोला—देवेश! आज्ञा दीजिये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ ।।१३६-१३७।।

महादेव ने कहा—तुम दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करो।

महादेव की आज्ञा पाकर वह महाबली वीरभद्र देवेश उमापति के चरणों की वन्दना करके पिञ्जरमुक्त सिंह की तरह लीलापूर्वक यह सोचता हुआ चला कि 'भगवती क्रुद्ध हैं। अतः दक्ष के उस यज्ञ को विनष्ट ही समझना चाहिए, उसी समय देवी के क्रोध से एक महाभयङ्कर माहेश्वरी भद्रकाली उत्पन्न हुई, जो साथी की भाँति वीरभद्र के साथ चली ।।१३८-१४०।। प्रेतावास में रहनेवाले और उमा के क्रोध कारण को दूर करनेवाले भगवान् वीरभद्र ने अपने रोमकूप से रौद्र नामक असंख्य गणेश्वरों की सृष्टि की। वे रुद्र के अनुगामी, महाबली, रुद्र के तुल्य पराक्रमी, रुद्र के अनुचर और रुद्र के तुल्य कान्तिवाले थे। वे सौ-सौ और हजार-हजार की संख्या में दल बाँधकर शीघ्र ही यज्ञ दिशा की ओर दौड़ पड़े ।।१४१-१४३।।

ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव । तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः ।।१४४।।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त कम्पते च वसुंधरा । मेरुश्च घूर्णते विप्राः क्षुभ्यन्ते वरुणालयाः ।।१४५।।
अग्नयो नैव दीप्यन्ते न च दीप्यति भास्करः । ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः ।।१४६।।
ऋषयो नाभ्यभाषन्त न देवा न च दानवाः । एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति विमानिताः ।।१४७।।
सिंहनादं प्रमुञ्चन्ति घोररूपा महाबलाः । प्रभञ्जन्ते परे घोरा यूपानुत्पाटयन्ति च ।।१४८।।
प्रमर्दन्ति तथा चान्ये विनृत्यन्ति तथाऽपरे । आधावन्ति प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ।।१४९।।
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यागस्याऽऽयतनानि च । शीर्यमाणानि दृश्यन्ते तारा इव नभस्तलात् ।।१५०।।
दिव्यान्नपानभक्षाणां राशयः पर्वतोपमाः । क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः ।।
मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करवालुकाः ।।१५१।।
षड्रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः । उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च ।।१५२।।
पानकानि च दिव्यानि लेह्यं चोष्यं तथाऽपरे । भुञ्जते विविधैर्वक्त्रैर्विलुण्ठन्ति(*क्षिपन्ति च ।।१५३।।
रुद्रकोपान्महाकायाः कालाग्निसदृशोपमाः । सुरसैन्यानि मर्दन्तो भीषयन्ति) च सर्वशः ।।
क्रीडन्ति विविधाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः ।।१५४।।

उनकी किलकारियों से आकाश गूँज उठा और उस विकट शब्द से सभी देवगण भयभीत हो गये। पहाड़ टुकड़े-टुकड़े हो गये, धरती काँप उठी, मेरु चंचल हो गया, समुद्र क्षुब्ध हो गये, अग्नि दीप्तिहीन, सूर्य तेजोहीन और ग्रह-नक्षत्र तारकादि प्रकाशहीन हो गये ।।१४४-१४६।। यज्ञ में उपस्थित ऋषि, देव, दानव आदि चुप हो गये, घना अन्धकार छा गया और विमानित उन रुद्रगणों ने सबको कष्ट देना प्रारम्भ किया। वे घोर रूप महाबली रुद्रगण सिंहनाद करने लगे। किसी ने यज्ञागार को उखाड़ फेंका, तो कोई यज्ञयूप को पीड़ित करने लगा, तो कोई ताण्डव करने लगा। वायु और मन के तुल्य वेग धारणकर कितने तो कूदने और दौड़ने लगे ।।१४७-१४९।। कितनों ने यज्ञ पात्रों को और यज्ञशालाओं को तोड़-मरोड़ दिया, इससे वह यज्ञभूमि उसी प्रकार दिखायी पड़ने लगी, जिस प्रकार कि आकाश में तारागण बिखरे दीख पड़ते हैं ।।१५०।। उन लोगों ने दिव्य भक्ष्य अन्नों के ढेर को, जलराशि को, क्षीर-नदी को, कीचड़ की तरह पड़े हुए घी और उसी तरह पड़ी हुई खीर को, दिव्य मधु और मण्डोदक को, बालुकाराशि की तरह चीनी को, षड्रसवाहिनी असंख्य गुड़कुल्या (बड़े-बड़े नाद) को, मांस के छोटे-बड़े ढेर को, विविध प्रकार की भक्ष्य वस्तुओं को, बढ़िया-से-बढ़िया पीने की चीजों को और चाटने-चूसने की चीजों को अपने नाना प्रकार के मुखों से खाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कुछ को फेंक दिया और कुछ को उलट दिया ।।१५१-१५३।। रुद्र के कोप से उत्पन्न वे विशाल शरीरवाले, कालाग्नि सदृश रुद्रगण देव सेना को रौंदते हुए डराने लगे और विविध देह धारणकर क्रीड़ा करते हुए देव-पत्नियों को भी घसीटा ।।१५४।। रुद्रकोपोत्पन्न उन रुद्र तुल्य गणों ने देवों से रक्षित उस यज्ञ को उनके सामने ही नष्ट कर दिया। उनमें

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

रुद्रकोपप्रयुक्तास्तु सर्वदेवैः सुरक्षितम्। तं यज्ञमहञ्शीघ्रं रुद्रकल्पाः समीपतः ।।१५५।।
चक्रुरन्ये तथा नादान्सर्वभूतभयंकरान्। छित्त्वा शिरोऽन्ये यक्षस्य विनदन्ति भयंकराः ।।१५६।।
दक्षो दक्षपतिश्चैव देवो यज्ञपतिस्तथा। मृगरूपेण चाऽऽकाशे प्रपलायितुमारभत् ।।१५७।।
वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा ज्ञात्वा तस्य बलं तदा। अन्तरिक्षगतस्याऽऽशु चिच्छेदास्य शिरो महान् ।।१५८।।
दक्षः प्रजापतिश्चैव नष्टः संभ्रान्तचेतनः। क्रुद्धेन वीरभद्रेण शिरः पादेन पीडितम्।।
जराभिभूततीव्रात्मा निपपात महीतले ।।१५९।।
त्रयस्त्रिंशदेवतानां ताः कोट्यो विमलात्मिकाः। पाशेनाग्निबलेनाऽऽशु बद्धाः सिंहबलेन च ।।१६०।।
ततो जग्मुर्महात्मानं सर्वे देवा महाबलम्। प्रसीद भगवन्रुद्र भृत्यानां मा क्रुधः प्रभो ।।१६१।।
ततो ब्रह्मादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः। ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ।।१६२।।

वीरभद्र उवाच

न च देवो न चाऽऽदित्यो न च भोक्तुमिहाऽऽगतः। नैव द्रष्टुं हि देवेन्द्रान्न च कौतूहलान्वितः ।।१६३।।
दक्षयज्ञविनाशार्थं संप्राप्तं विद्धि मामिह। वीरभद्र इति ख्यातं रुद्रकोपाद्विनिर्गतम् ।।१६४।।
भद्राकाली च विज्ञेया देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता। प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमिहाऽऽगता ।।१६५।।
शरणं गच्छ राजेन्द्र देवं तं त्वमुमापतिम्। वरं क्रोधोऽपि रुद्रस्य वरदानं न देवतः ।।१६६।।

कुछ सबको त्रास उत्पन्न करनेवाले भयङ्कर शब्द करने लगे और किसी ने यक्ष के सिर को काटकर भयङ्कर चीत्कार किया ।।१५५-१५६।। इस ध्वंस लीला में यज्ञपति दक्ष मृग रूप धारणकर आकाश की ओर भागे; किन्तु अप्रमेयात्मा वीरभद्र ने दक्ष की शक्ति को समझ लिया और आकाश में ही जाकर उनके सिर को काट लिया ।।१५७-१५८।। दक्ष प्रजापति नष्ट हो गये, उनकी चेतना विलुप्त हो गयी और क्रुद्ध वीरभद्र ने उनके सिर को पैरों से रौंद दिया। वृद्ध दक्ष प्रजापति पृथ्वी पर लोट गये ।।१५९।। इधर विमल आत्मावाले तैंतीस करोड़ देवता भी अग्नि तुल्य प्रदीप्त दृढ़ पाश में बँध गये। तब वे सब देवता महाबली महात्मा वीरभद्र के पास गये और बोले—भगवन्! रुद्र प्रसन्न हो जायँ। प्रभु! दासों पर क्रोध मत करें। तब ब्रह्मादि देवता और दक्ष प्रजापति हाथ जोड़कर बोले—महाराज, आप कौन हैं? ।।१६०-१६२।।

वीरभद्र बोले—न हम देव हैं न आदित्य हैं, न भोजन की इच्छा से आये हैं और न कुतूहलवश देवताओं को देखने के लिए ही आये हैं ।।१६३।। हम तो दक्ष यज्ञ का विनाश करने के लिए यहाँ आये हैं। हमारा नाम वीरभद्र है और हम महादेव के कोप से उत्पन्न हुए हैं ।।१६४।। यह भद्रकाली है जो देवी के क्रोध से उत्पन्न हुई है और महादेव द्वारा यह भी इस यज्ञभूमि की ओर भेजी गयी है ।।१६५।। राजेन्द्र! आप उन्हीं उमापति की शरण में जाइये, जिनका क्रोध भी अन्य देवों के वरदान से उत्तम है ।।१६६।। वीरभद्र के वचन को सुनकर धर्मनिष्ठ दक्ष ने देवाधिदेव शूलपाणि महेश्वर

वीरभद्रवचः श्रुत्वा दक्षो धर्मभृतां वरः । तोषयामास देवेशं शूलपाणिं महेश्वरम् ।।१६७।।
प्रदुष्टे यज्ञवाटे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु । तारामृगमये दीप्ते रौद्रे भीममहानले ।।१६८।।
शूलनिर्भिन्नवदनैः कूजद्भिः परिचारिकैः । निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैर्यतस्ततः ।।१६९।।
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः । पक्षपातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ।।१७०।।
प्राणापानौ संनिरुध्य ततः स्थानेन यत्नतः । विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् ।।१७१।।
सहसा देवदेवेशस्त्वग्निकुण्डादुपागतः । चन्द्रसूर्यसहस्रस्य तेजः संवर्तकोपमम् ।।१७२।।
प्रहस्य चैनं भगवानिदं वचनमब्रवीत् । नष्टस्तेऽज्ञानतो दक्ष प्रीतिस्ते मयि सांप्रतम् ।।१७३।।
स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते । श्रावितं च समाख्याय देवानां गुरुभिः सह ।।१७४।।
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः । भीतशङ्कितवित्रस्तः सवाष्पवदनेक्षणः ।।१७५।।
यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः । यदि वाऽहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम ।।१७६।।
यद्दग्धं भक्षितं पीतमशितं यच्च नाशितम् । चूर्णीकृतं चापविद्धं यज्ञसंभारमीदृशम् ।।१७७।।
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च संचितम् । तन्न मिथ्या भवेन्मह्यं वरमेतं वृणोम्यहम् ।।१७८।।
तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः । धर्माध्यक्षं महादेवं त्र्यक्षं तं वै प्रजापतिः ।।१७९।।
जानुभ्यावनिं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम् । नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ।।१८०।।

को प्रसन्न किया ।।१६७।। उस समय यज्ञभूमि नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, यज्ञ में दीक्षित द्विजातिगण भाग चुके थे, यज्ञीय महाअनल बुझ चुका था, त्रिशूल से चोट खाये हुए अनुचरगण इधर-उधर कराह रहे थे, गाड़ा गया यज्ञयूप उखड़ा हुआ पड़ा था, मांस के लोभी गृध्र नीचे-ऊपर मँडरा रहे थे और जोर-जोर से डैने (पंख) हिला रहे थे तथा झुंड-के-झुंड गीदड़ चिल्ला रहे थे ।।१६८-१७०।। उसी समय शत्रु को दमन करनेवाले बहुदृष्टि देवदेवेश प्राणापान को यत्नपूर्वक अपने स्थान में रोककर और इधर-उधर देखते हुए सहसा अग्निकुण्ड से बाहर निकल आये। संवर्तकतुल्य हजार सूर्य के समान तेजोमय शंकर ने हँसकर कहा—दक्ष, तुम्हारे अज्ञान से यज्ञ नष्ट हुआ। अब तुम्हारी प्रीति मुझसे हुई। कहो, अब तुम्हारे लिये मैं क्या करूँ? ।।१७१-१७३½।। देवों और गुरुओं के साथ आपबीती को सुनाकर दक्ष प्रजापति ने जिनकी आँखों से आँसू टपककर गालों पर आ रहे थे और वे भय तथा सन्देह से घबराये हुए थे, दोनों हाथ जोड़कर महादेव से कहा।।१७४-१७५।। अगर भगवान् हम पर प्रसन्न हैं हम आपके प्रिय हुए, अनुग्रह के पात्र और वर पाने के योग्य हुए, तो हमारी जो यज्ञीय सामग्री नष्ट हुई है, भोज्य पदार्थ खा-पी लिया गया है, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है या बिगाड़ दिया गया है और जिसका बहुत दिनों में घोर परिश्रम करके संग्रह किया था, वह व्यर्थ न जाय। यही वर चाहते हैं ।।१७६-१७८।। भग के नेत्र को हरण करनेवाले महादेव ने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार महादेव से वर प्राप्तकर दक्ष प्रजापति घुटने के बल जमीन पर बैठ गये और उन्होंने त्रिनयन, धर्माध्यक्ष, वृषभध्वज महादेव की स्तुति आठ हजार नामों से की ।।१७९-१८०।।

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन। देवेन्द्र ह्यमरश्रेष्ठ देवदानवपूजित ।।१८१।।
सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वानावृत्य तिष्ठसि ।।१८२।।
शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय। गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते ।।१८३।।
शतोदर शतावर्त शतजिह्व शतानन। गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्चयन्ति तथाऽर्चिनः ।।१८४।।
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः। मूर्तीश त्वं महामूर्ते समुद्राम्बुधराय च ।।१८५।।
सर्वा ह्यस्मिन्देवतास्ते गावो गोष्ठा इवाऽऽसते। शरीरं ते प्रपश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम् ।।१८६।।
आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्। क्रिया कार्यं कारणं च कर्ता करणमेव च ।।१८७।।
असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्ययम्। नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।।१८८।।
पशूनां पतये चैव नमस्त्वन्धकघातिने। त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ।।१८९।।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः। नमश्चण्डाय मुण्डाय प्रचण्डाय धराय च ।।१९०।।
दण्डिमासक्तकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः। नमोऽर्धदण्डकेशाय निष्काय विकृताय च ।।१९१।।
विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय ते नमः। नमस्त्वप्रतिरूपाय शिवाय च नमोऽस्तु ते ।।१९२।।
सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने। नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ।।१९३।।
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च। हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः ।।१९४।।

दक्ष बोले–देव–देवेश! आपको नमस्कार है। आप देवारिबलसूदन, देवेन्द्र, अमरश्रेष्ठ, देवदानवपूजित, सहस्राक्ष, विरूपाक्ष, त्रिनयन, यक्षाधिपप्रिय, सर्वत्र पाणिपाद, सर्वत्र अक्षिशिरोमुख, सर्वत्र श्रुतिमान् और सम्पूर्ण संसार को आप ढँके हुए हैं ।।१८१-१८२।। शङ्कुकर्ण! आप महाकर्ण, कुम्भकर्ण, समुद्रवासी, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण और पाणिकर्ण हैं, आपको नमस्कार है।।१८३।। हे शतोदर! शतावर्त, शतजिह्व और शतानन, गायत्रीजपकर्त्ता आपकी स्तुति का गान करते हैं और पूजक आपकी पूजा करते हैं ।।१८४।। आप देव-दानवों के पालयिता, ब्रह्मा, इन्द्र, मूर्तीश, महामूर्ति और समुद्राम्बुधर हैं ।।१८५।। गोष्ठ में जैसे गोगण रहते हैं, उसी प्रकार देवगण आप में ही अवस्थित हैं। सोम, अग्नि, जलेश्वर, आदित्य, विष्णु, बह्मा और बृहस्पति आपके शरीर स्वरूप हैं। आप क्रिया, कार्य, कारण, कर्त्ता, करण, असत्, सदसत्, प्रभव और अव्यय हैं। भव, शर्व, रुद्र, वरदाता, पशुपति और अन्धक-विनाशी को नमस्कार है ।।१८६-१८८½ ।। आप त्रिजट, त्रिशीर्ष, त्रिशूलवरधारी, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, त्रिपुरघ्न, चण्ड, मुण्ड, प्रचण्ड, धर, दण्डी, आसक्तकर्ण, दण्डिमुण्ड, अर्द्धदण्डकेश, निष्क, विकृत, विलोहित, धूम्र, नीलग्रीव, अप्रतिरूप और शिव हैं, आपको नमस्कार है ।।१८९-१९२।। आप सूर्य, सूर्यपति, सूर्यध्वजपताकी, प्रमथनाथ, वृषकन्ध, धन्वी, हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच,

सत्रघाताय दण्डाय वर्णपानपुटाय च। नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः ।।१९५।।
सर्वायाभक्ष्यभक्ष्याय सर्वभूतान्तरात्मने। नमो होत्राय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ।।१९६।।
नमो नमाय नम्याय नमः किलिकिलाय च। नमस्ते शयमानाय शयितायोत्थिताय च ।।१९७।।
स्थिताय चलमानाय मुद्राय कुटिलाय च। नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ।।१९८।।
नाट्योपहारलुब्धाय गीतवाद्यरताय च। नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ।।१९९।।
कलनाय च कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च। भीमदुन्दुभिहासाय भीमसेनप्रियाय च ।।२००।।
उग्राय च नमो नित्यं नमस्ते दशबाहवे। नमः कपालहस्ताय चिताभस्मप्रियाय च ।।२०१।।
बिभीषणाय भीष्माय भीष्मव्रतधराय च। नमो विकृतवक्षाय खड्गजिह्वाग्रदंष्ट्रिणे ।।२०२।।
पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बवीणाप्रियाय च। नमो वृषाय वृष्याय वृष्णये वृषणाय च ।।२०३।।
कटंकटाय चण्डाय नमः सावयवाय च। नमस्ते वरकृष्णाय वराय वरदाय च ।।२०४।।
वरगन्धमाल्यवस्त्राय वरातिवरये नमः। नमो वर्षाय वाताय छायायै आतपाय च ।।२०५।।
नमो रक्तविरक्ताय शोभनायाक्षमालिने। संभिन्नाय विभिन्नाय विविक्तविकटाय च ।।२०६।।
अघोररूपरूपाय घोरघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततराय च ।।२०७।।
एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्ष नमोऽस्तु ते। नमो वृद्धाय लुब्धाय संविभागप्रियाय च ।।२०८।।
पञ्चमालार्चिताङ्गाय नमः पाशुपताय च। नमश्चण्डाय घण्टाय घण्टया जग्धगृन्धिणे ।।२०९।।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च। प्राणदण्डाय त्यागाय नमो हिलिहिलाय च ।।२१०।।

हिरण्यकृतचूड, हिरण्यपति, यज्ञ-नाशक, दण्ड, वर्णपानपुट, स्तुत, स्तुत्य, स्तूयमान् हैं, आपको नमस्कार है ।।१९३-१९५।। सर्वभक्ष्याभक्ष्य, सर्वभूतान्तरात्मा, होत्र, मन्त्र, शुक्लध्वजपताकी, नम, नम्य, किलकिल, शयमान, शयिता, उत्थित, स्थित, चलमान, क्षुद्र, कुटिल, नर्तनशील, मुँह बजानेवाले, नाट्य उपहार के लोभी, गीतवाद्यरत, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलप्रमथन, कलन, कल्प, क्षय, उपक्षय, भीम, दुन्दुभि की आवाज की तरह हँसीवाले और भीमसेनप्रिय हैं, आपको नमस्कार है ।।१९६-२००।। आप उग्र, दशबाहु, कपालहस्त, चिताभस्मप्रिय, विभीषण भीष्म, भीष्मव्रतधर, विकृतवक्ष, खड्गजिह्व, उग्रदंष्ट्री, पक्वाममांसलुब्ध, तुम्बवीणाप्रिय, वृष, वृष्य, वृष्णि, वृषण, कटंकट, चण्ड, सावयव, कृष्ण, वर, वरद, वरगन्धमाल्यवस्त्र, वरातिवर, वर्ष, वात, छाया, आतप हैं, आपको नमस्कार है ।।२०१-२०५।। आप रक्त, विरक्त, शोभन, अक्षमाली, संभिन्न, विभिन्न, विविक्त, विकट, अघोररूपरूप, घोर, घोरतर, शिव, शान्त, शान्ततर, एकपाद, बहुनेत्र, एकशीर्ष, वृद्ध, लुब्ध, संविभागप्रिय, पञ्चमालार्चिताङ्ग, पाशुपत, चण्ड, घण्ट, घण्टा से जग्धगृन्ध्री[1], सहस्र-शतघण्ट, घंटामालाप्रिय, प्राणदण्ड, त्याग, हिलिहिल हैं, आपको नमस्कार है ।।२०६-२१०।। हुंहुङ्कार, पार,

---

[1] घण्टाध्वनि से अभिलाषाओं को प्रदान करनेवाले।

हुंहुंकाराय पाराय हुंहुंकारप्रियाय च। नमश्च शम्भवे नित्यं गिरिवृक्षफलाय च ।।२११।।
गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च। नमो यज्ञाधिपतये द्रुतायोपद्रुताय च ।।२१२।।
यज्ञवाहाय दानाय तप्याय तपनाय च। तमस्तटाय भव्याय तडितां पतये नमः ।।२१३।।
अन्नदायान्नपतये नमोऽस्त्वन्नभवाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ।।२१४।।
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमोऽस्तु बालरूपाय बालरूपधराय च ।।२१५।।
बालानां चैव गोप्त्रे च बालक्रीडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणायाक्षताय च ।।२१६।।
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिरताय च ।।२१७।।
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथक्कर्मप्रवर्तिने। नमो घोषाय घोष्याय नमः कलकलाय च ।।२१८।।
(*श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मार्थकाममोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ।।२१९।।
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः। नमो रथ्यविरथ्याय चतुष्पथरताय च ।।२२०।।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान वज्रसंहाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ।।
अविवेकैकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते ।।२२१।।
काम कामद कामघ्न धृष्टोद्दृप्त निषूदन। सर्व सर्वद सर्वज्ञ संध्याराग नमोऽस्तु ते ।।२२२।।
महाबल महाबाहो महासत्त्व महाद्युते। महामेघवरप्रेक्ष महाकाल नमोऽस्तु ते ।।२२३।।
स्थूलजीर्णाङ्गजटिने वल्कलाजिनधारिणे। दीप्तसूर्याग्निजटिने वल्कलाजिनवाससे ।।
सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्य नमोऽस्तु ते ।।२२४।।

हुंहुङ्कारप्रिय, शम्भु, गिरिवृक्षफल, गर्भमांस, शृगाल, तारक, तर, यज्ञाधिपति, द्रुत, उपद्रुत, यज्ञवाह, दान, तप्य, तपन, तमस्तट, भव्य, तड़ित्पति, ।।२११-२१३।। अन्नद, अन्नपति, अन्नभव, सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्र उद्यतशूल, सहस्रनयन, बालरूप, बालरूपधर, ।।२१४-२१५।। बालगोप्ता, बाल-क्रीडनक, शुद्ध, बुद्ध, क्षोभण, अक्षत, तरङ्गांकितकेश, मुक्तकेश, षट्कर्मनिष्ठ, त्रिकर्मनिरत, वर्णाश्रमियों के लिए विधिवत् पृथक्-पृथक् कर्म बतानेवाले, घोष, घोष्य, कलकल, श्वेत-पिंगल नेत्र, कृष्ण-रक्त नेत्र, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, क्रथ, क्रथन, आपको नमस्कार है ।।२१६-२१९।। सांख्य, सांख्यमुख्य, योगाधिपति, रथ्य, विरथ्य, चतुष्पथरत, कृष्णाजिनोत्तरीय, सर्पयज्ञोपवीती, ईशान, वज्रसंह, हरिकेश, अविवेकैकनाथ और व्यक्ताव्यक्त को नमस्कार है ।।२२०-२२१।। आप काम, कामद, कामघ्न, धृष्ट, उद्दृप्त, निषूदन, सर्व, सर्वद, सर्वज्ञ, सन्ध्याराग, महाबल, महाबाहु, महासत्त्व, महाद्युति, महामेघवरप्रेक्ष, महाकाल, स्थूल, जीर्णाङ्गजटी, वल्कलाजिनधारी, दीप्तसूर्याग्निजटी, वल्कलाजिनवासा, सहस्रसूर्यप्रतिम, तपोनित्य को नमस्कार

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

उन्मादन शतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज । चन्द्रावर्त युगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते ।।२२५।।
त्वमन्नमन्नकर्ता च अन्नदश्च त्वमेव हि । अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक्तपचे नमः ।।२२६।।
जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च । त्वमेव देवदेवेशो भूतग्रामश्चतुर्विधः ।।२२७।।
चराचरस्य ब्रह्मा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च । त्वमेव ब्रह्मविदुषामपि ब्रह्मविदां वरः ।।२२८।।
सत्त्वस्य परमा योनिरब्वायुज्योतिषां निधिः । ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ।।२२९।।
हविर्द्धानी हवो हावी हुवां वाचाऽहुतिः सदा । गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा ब्रह्मवादिनः ।।२३०।।
÷यजुर्मयो ऋङ्मयश्च सामाथर्वमयस्तथा । पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ।।२३१।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये । त्वामेव मेघसंघाश्च विश्वस्तनितगर्जितम् ।।२३२।।
संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्द्धमेव च । कलाकाष्ठानिमेषाश्च नक्षत्राणि युगा ग्रहाः ।।२३३।।
वृषाणां कुकुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च । सिंहो मृगाणां पततां वाक्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ।।२३४।।
क्षीरोदो ह्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च । वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ।।२३५।।
इच्छा द्वेषश्च रागश्च मोहः क्षामो दमः शमः । व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ।।२३६।।
त्वं गदी त्वं शरी चापि खट्वाङ्गी भुर्भरी तथा । छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च त्वं नेताऽप्यन्तको मतः ।।२३७।।
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च । इन्द्रः समुद्राः सरितः पल्वलानि सरांसि च ।।२३८।।
लतावली तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः । द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ।।२३९।।
आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योङ्कार एव च । हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथाऽरुणः ।।२४०।।

है ।।२२२-२२४।। उन्मादन, शतावर्त, गंगातोयार्द्रमस्तक, चन्द्रावर्त, युगावर्त, मेघावर्त, अन्न, अन्नकर्त्ता, अन्नद, अन्नकर्त्ता, पक्ता, पक्वभुक्त-पच, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, देवदेवेश, चतुर्विधभूतग्राम, चराचर के ब्रह्मा, प्रतिहर्ता, ब्रह्मविदुष, ब्रह्मविद्वर, जीव-जन्तुओं की योनि, वायु, जल और ज्योतिर्निधि हैं ।।२२५-२२८$\frac{१}{२}$।। ब्रह्मवादी आपको ऋक्, साम और ओंकार कहा करते हैं। सुरश्रेष्ठ! साम गानेवाले ब्रह्मवादी आपको हविर्द्धानी, हव, हवि और होम की आहुति कहा करते हैं। ब्रह्मादिगण कल्पवासियों के साथ आपको ऋक्-यजु-साम और अथर्वमय कहा करते हैं ।।२२९-२३१।। आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्यान्यवर्ण, मेघसंग, विश्वस्तनितगर्जित, संवत्सर, ऋतु, मास, मासार्द्ध, कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र, युग, ग्रह, वृषकुकुद, गिरिशिखर, मृगों के मध्य सिंह, पक्षियों के बीच गरुड़, सर्प में अनन्त, समुद्रों में क्षीरसागर, यन्त्रों में धनुष हैं ।।२३२-२३४$\frac{१}{२}$।। प्रहरणों में वज्र, व्रतों में सत्य, इच्छा, द्वेष, राग, मोह, क्षाम, दम, शम, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय, अजय, गदी, शरी, चापी, खटवाङ्गी, भुर्भरी; छेत्ता, भेत्ता, प्रहर्ता, नेता, अन्तक, दस लक्षण संयुक्त, धर्म, अर्थ, काम, इन्द्र, समुद्र, सरित्, पल्वल, सर, लतावली, तृण, ओषधि, पशु, मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म, गुणारम्भ, कालपुष्प, फलप्रद, आदि, अन्त, मध्य, गायत्री, ओंकार, हरित, लोहित, कृष्ण, नील,

---

+ इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा। सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चापतो मतः ।।२४१।।
सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च। (*त्वमिन्द्रोऽथ यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ।।२४२।।
उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च। होत्रं होता च होमस्त्वं हुतं च प्रहुतं प्रभुः ।।२४३।।
सुपर्णं च तथा ब्रह्म यजूषां शतरुद्रियम्। पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।।२४४।।
गिरिः स्तोकस्तथा वृक्षो जीवः पुङ्गल एव च)। सत्त्वं त्वं च रजस्त्वं च तमश्च प्रजनं तथा ।।२४५।।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च। उन्मेषश्चैव मेषश्च तथा जृम्भितमेव च ।।२४६।।
लोहिताङ्गो गदी दंष्ट्री महावक्त्रो महोदरः। शुचिरोमा हरिछ्मश्रुरूर्ध्वकेशस्त्रिलोचनः ।।२४७।।
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः। मत्स्यो जली जलो जल्यो जवः कालः कली कलः ।।२४८।।
निकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः। मृत्युश्चैव क्षयोऽन्तश्च क्षमापायकरो हरः ।।२४९।।
संवर्तकोऽन्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ। वटो घटीको घण्टीको चूडालोलबलो बली ।।२५०।।
ब्रह्मकालोऽग्निवक्रश्च दण्डी मुण्डी च दण्डधृक्। चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ।।२५१।।
चतुराश्रमेवत्ता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह। क्षराक्षरप्रियो धूर्तोऽगण्योऽगण्यगणाधिपः ।।२५२।।
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिशो गिरिकप्रियः। शिल्पीशः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्तकः ।।२५३।।
भगनेत्रान्तकश्चन्द्रः पूष्णो दन्तविनाशनः। +स्वाहा स्वधा वषट्कार नमस्कार नमोऽस्तु ते ।।
गूढावर्तश्च गूढश्च गूढप्रतिनिषेविता ।।२५४।।

पीत, अरुण हैं ।।२३५-२४०।। आप कद्रु, कपिल, कपोत, मेचक, सुवणरिता, विख्यातसुवर्ण, सुवर्णनामा, सुवर्णप्रिय, इन्द्र, यम, वरुण, धनद, अनल, उत्फुल्ल, चित्रभानु, स्वर्भानु, भानु, होत्र, होता, होम, हुत, प्रहुत, प्रभु, सुपर्ण, ब्रह्मा, शतरुद्रिय, पवित्रों में पवित्र, मङ्गलों में मङ्गल, गिरि, स्तोक, वृक्ष, जीव, पुङ्गल, सत्त्व, रज, तम, प्रजन हैं ।।२४१-२४५।। आप प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, मेष, जृम्भित, लोहिताङ्ग, गदी, दंष्ट्री, महावक्त्र, महोदर, शुचिरोमा, हरित्श्मश्रु, ऊर्ध्वकेश, त्रिलोचन, गीतवादित्रनृत्याङ्ग, गीतावादनकप्रिय, मत्स्य, जली, जल, जल्य, जव, काल, कली, कल, निकाल, सुकाल, दुष्काल, कालनाशन, मृत्यु, क्षय, अन्त, क्षमापायकर, हर, संवर्तक, अन्तक, संवर्तक, बलाहक, वट, घटिक, घण्टीक, चूड़ाल, बल, बली हैं ।।२४६-२५०।। आप ब्रह्मकाल, अग्निवक्र, दण्डी, मुण्डी, दण्डधृक्, चतुर्युग, चतुर्वेद, चतुर्होत्र, चतुष्पथ, चतुराश्रमवेत्ता, चातुर्वर्ण्यकर, क्षराक्षरप्रिय, धूर्त, अगण्य, अगण्यगणाधिप, रक्तमाल्याम्बरधर, गिरिश, गिरिकप्रिय, शिल्पीश, शिल्पिश्रेष्ठ, सर्वशिल्पप्रवर्तक, भगनेत्रान्तक, चन्द्र, पूषा के दाँत का विनाश करनेवाले, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार हैं; आपको नमस्कार है ।।२५१-२५३½।। आप गूढ़ावर्त, गूढ़, प्रतिनिषेवित, तरण, तारक, सर्वभूतसुतारण, धाता, विधाता, सत्त्वविधाता, धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ख. पुस्तके नास्ति।

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

तरणस्तारकश्चैव सर्वभूतसुतारणः । धाता विधाता सत्त्वानां विधाता धारणो धरः ।।२५५।।
तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यमथाऽऽर्जवम् । भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः ।।२५६।।
भूर्भुवस्वरितिश्चैव तथोत्पत्तिर्महेश्वरः । ईशानोद्वीक्षणः शान्तो दुर्दान्तो दन्तनाशनः ।।२५७।।
ब्रह्मावर्त सुरावर्त कामावर्त नमोऽस्तु ते । कामबिम्बनिहर्ता च कर्णिकाररजःप्रियः ।।२५८।।
मुखचन्द्रो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखो मुखः । चतुर्मुखो बहुमुखो रणे ह्यभिमुखः सदा ।।२५९।।
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोदधिः परो विराट् । अधर्महा महादण्डो दण्डधारो रणप्रियः ।।२६०।।
गौतमो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः । *धर्मकृद्धर्मस्त्रष्टा च धर्मो धर्मविदोत्तमः ।।२६१।।
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो मानदो मान एव च । तिष्ठंस्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पः कम्प एव च ।।२६२।।
दुर्वारणो दुर्विषदो दुःसहो दुरतिक्रमः । दुर्धरो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विदो दुर्जयो जयः ।।२६३।।
शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णं दुर्जराऽथ तृट् । आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिगश्च ह ।।२६४।।
सह्यो यज्ञो मृगव्याधो व्याधीनामाकरोऽकरः । शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकावलोकनः ।।२६५।।
दण्डधरः सदण्डश्च दण्डमुण्डविभूषितः । विषपोऽमृतपश्चैव सुरापाः क्षीरसोमपः ।।२६६।।
मधुपश्चाज्यपश्चैव सर्वपश्च महाबलः । वृषाश्वबाह्यो वृषभस्तथा वृषभलोचनः ।।२६७।।
वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसत्कृतः । चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामह ।।
अग्निरापस्तथा देवो धर्मकर्मप्रसाधितः ।।२६८।।

भूतात्मा, भूतकृत्, भूत, भूतभव्य, भवोद्भव, भूः, भुवः, स्वः, इति, उत्पत्ति, महेश्वर, ईशान, उद्वीक्षण, शान्त, दुर्दान्त, दन्तनाशन, ब्रह्मावर्त, कामावर्त, सुरावर्त, कामबिम्बनिहर्ता, कणिका, रजप्रिय, मुखचन्द्र, भीममुख, सुमुख, दुर्मुख, मुख, चतुर्मुख, बहुमुख, सदा रणाभिमुख, हिरण्यगर्भ, शकुनि, महोदधि, पर विराट्, अधर्महा, महादण्ड, दण्डधार, रणप्रिय हैं ।।२५४-२६०।। आप गौतम, गोप्रतार, गोवृषेश्वरवाहन, धर्मकृत्, धर्मस्त्रष्टा, धर्म, धर्मविद्, उत्तम, त्रैलोक्यगोप्ता, गोविन्द, मानद, मान, तिष्ठन्, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प, कम्प, दूर्वारण, दुर्विषद, दुःसह, दुरतिक्रम, दुर्धर, दुष्प्रकम्प, दुर्विद, दुर्जय, जय, शश, शशाङ्क, शमन, शीतोष्ण, दुर्जरा, तृट्, आधि, व्याधि, व्याधिहा, व्याधिग, सह्य, यज्ञ, मृग-व्याघ, व्याधि-आकर, अकर, शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष, पुण्डरीकावलोकन हैं ।।२६१-२६५।। आप दण्डधर, सदण्ड, दण्ड-मुण्डविभूषित, विषप, अमृतप, सुराप, क्षीरसोमप, मधुप,.आज्यप, सर्वप, महाबल, वृषाश्ववाह्य, वृषभ, वृषभलोचन, विख्यात, वृषभ और लोकसत्कृत हैं। चन्द्र और आदित्य आपके नयन हैं तथा पितामह आपका हृदय हैं। अग्नि, जल, देव, धर्मकर्म-प्रसाधित हैं ।।२६६-२६८।। ब्रह्मा, गोविन्द, पुराण और ऋषि आदि आपके माहात्म्य को ठीक तरह से नहीं जान पाते हैं। हे शिव! आपकी जो सूक्ष्म मूर्तियाँ हैं वे हमारे दृष्टिपथ में नहीं आती हैं। उनसे आप

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. पुस्तकेषु।

न ब्रह्मा न च गोविंदः पुराणऋषयो न च। माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव ।।२६९।।
या मूर्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्ति दर्शनम्। ताभिर्मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ।।२७०।।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तुते। भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि ।।२७१।।
यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामाहत्य दुर्दशः। तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः ।।२७२।।
यं विनिद्रा जितश्वासः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः। ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ।।२७३।।
संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽप्सु शायिनम् ।।२७४।।
प्रविश्य वदने राहोर्यः सोमं ग्रसते निशि। ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ।।२७५।।
येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्। रक्षन्तु ते हि मां नित्यं नित्यामाप्याययन्तु माम् ।।२७६।।
ये चाप्युत्पतिता गर्भादधोभागगताश्च ये। तेषां स्वाहाः स्वधाश्चैव अप्नुवन्तु स्वदन्तु च ।।२७७।।
ये न रोदन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च। हर्षयन्ति च हृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ।।२७८।।
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ।।२७९।।
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। (+हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ।।२८०।।
पञ्चपञ्चसुभूतेषु दिशासु विदिशासु च)। चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ।।२८१।।
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परंगताः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ।।
सूक्ष्माः स्थूलाः कृशा ह्रस्वा नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ।।२८२।।

हमारी सदा रक्षा उसी प्रकार करें, जिस प्रकार कि, पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है ।।२६८-२७०।। अनघ! हमारी रक्षा करें। हम सदा रक्षणीय हैं। आपको नमस्कार है। आप भक्तों पर दया करनेवाले भगवान् हैं और हम आपके भक्त हैं। आप हजारों पुरुषों को लेकर समुद्रगर्भ में एकान्त शयन करते हैं, ऐसे आप हमारे रक्षक हों। निद्राविहीन होकर निःश्वास वायु को जीतनेवाले सत्त्वस्थ समदर्शी योगिगण आपकी ज्योति को देखते हैं उसी योगात्मा को प्रणाम है ।।२७१-२७३।। जो प्रलय उपस्थित होने पर सब जीवों का भक्षण कर जल के मध्य स्थित होकर शयन करते हैं उन्हीं जलशायी को प्रणाम है। जो राहु के शरीर में प्रवेश कर रात को सोम का ग्रास करते हैं और स्वर्भानु एवं सोमाग्नि होकर सूर्य को निगलते हैं तथा जो अंगुष्ठ मात्र पुरुष देहधारियों की देह में रहते हैं, वे हमारी सदा रक्षा करें और हमें तृप्त करें ।।२७४-२७६।। जो अङ्गुष्ठमात्र पुरुष गर्भ से उत्पन्न हैं, स्वाहा और स्वधा उन्हें तृप्त करें, उनके लिए रुचिकर हों। जो देहस्थ होकर भी स्वयं नहीं रोते हैं, किन्तु प्राणियों को रुलाते हैं, स्वयं हृष्ट नहीं होते; किन्तु प्राणियों को प्रसन्न करते हैं, उन्हें नित्य प्रणाम है ।।२७७-२७८।। जो समुद्र में, नदी-दुर्ग में, पर्वत में, गुहा में, वृक्ष मूल में, गोष्ठ में, गहन कानन में, चतुष्पथ में, गली में, चबूतरे पर, सभा में, हाथी-घोड़ा-रथ आदि के निवासस्थान में, पुरानी वाटिका और भवनों में, पंच तत्त्वों में, भूतों में, दिशा-विदिशा में, चन्द्र-सूर्य की रश्मि में, रसातल में और इन स्थानों के अतिरिक्त भी अवस्थित हैं, वे सूक्ष्म, स्थूल, कृश, ह्रस्व आदि सब आप ही हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है ।।२७९-२८२।। हे देव! आप सर्व

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ख. घ. पुस्तकेषु नास्ति।

सर्वस्त्वं सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भवान्। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः ।।२८३।।
त्वमेव चेज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ।।२८४।।
अथ वा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया त्वया। एतस्मात्कारणाद्वाऽपि तेन त्वं न निमन्त्रितः ।।२८५।।
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्याऽस्ति न मे गतिः ।।२८६।।
स्तुत्वैव स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ।।२८७।।
परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ।।२८८।।
अथैनमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः। कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यमाहतम् ।।२८९।।
दक्ष दक्ष न कर्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति। अहं यज्ञहा न त्वन्यो दृश्यते तत्पुरा त्वया ।।२९०।।
भूयश्च तं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नवदनो भूत्वा त्वमेकाग्रमनाः शृणु ।।२९१।।
अश्वमेधसहस्त्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ।।२९२।।
वेदान्षडङ्गानुद्धृत्य सांख्यान्योगांश्च कृत्स्नशः। तपश्च विपुलं तप्त्वा दुःश्चरं देवदानवैः ।।२९३।।
अर्थैर्दशार्धसंयुक्तैर्गूढमप्राज्ञनिर्मितम्। वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् ।।२९४।।
श्रुत्यर्थैरध्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम्। सर्वेषामाश्रमाणां तु मया पाशुपतं व्रतम् ।।
उत्पादितं शुभं दक्ष सर्वपापविमोक्षणम् ।।२९५।।

हैं, सर्वग हैं, सर्वभूतपति हैं और सब जीवों के अन्तरात्मा हैं, इसी से हमने आपको निमन्त्रित नहीं किया। विविध दक्षिणावाले यज्ञ में आप ही यजनीय होते हैं और आप ही सबके कर्त्ता हैं, इसी से आप निमन्त्रित नहीं हुए। अथवा देव! आपकी सूक्ष्म माया से हम भ्रान्त हो गये, इसी कारण आपको निमन्त्रण नहीं दिया। देवेश! प्रसन्न हों। आप ही हमारी शरण हैं। आप ही हमारी गति और प्रतिष्ठा हैं। आपके अतिरिक्त हमारी दूसरी गति नहीं है। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके दक्ष प्रजापति चुप हो गये। इस स्तुति से प्रसन्न होकर महादेव जी ने भी दक्ष से कहा–हे सुव्रत दक्ष! तुम्हारी इस स्तुति से हम प्रसन्न हुए। अधिक कहने से क्या, तुम मेरे समीप जाओगे ।।२८३–२८८।। वाक्यविशारद त्रिलोकीपति महादेव ने दक्ष को इस प्रकार सान्त्वना देकर फिर स्पष्ट रूप से कहा–दक्ष! इस यज्ञ के विघ्न के सम्बन्ध में तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए। मैंने ही इस यज्ञ का विध्वंस किया है, किसी दूसरे ने नहीं। यह तुमने स्वयं देखा है। सुव्रत! तुम हमसे फिर यह वर ग्रहण करो। तुम प्रसन्न वदन होकर एकाग्र मन से सुनो ।।२८९–२९१।। प्रजापति! तुम हमारे प्रसाद से हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों के फलभागी होओगे ।।२९२।। दक्ष! छहों अङ्गों के साथ वेदों का उद्धार करके एवं पूर्ण सांख्य योग का उद्धार करके देव-दानवों के साथ बड़ी कठिन तपस्या करके, पाँच अर्थों से संयुक्त होने के कारण जो गूढ़ सामान्य जनों की समझ के बाहर है, वह वर्णाश्रमप्रतिपादक धर्म से कहीं विपरीत और कहीं अनुकूल है, वेदाभिप्राय से संपादित करके मैंने सभी आश्रमवासियों के लिए पशुपाश विमोचन पाशुपत व्रत उत्पन्न किया है, जो शुभ और सभी पापों को नष्ट करनेवाला है। इस व्रत के करने से जो समीचीन फल होता है, उसका सम्पूर्ण

अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम्। तदस्तु ते महाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ।।२९६।।
एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः ।।२९७।।
अवाप्य च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणा भवः। ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ।।
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वं तत्र वै द्विजाः ।।२९८।।
शीर्षाभितापो नागानां पर्वतानां शिलारुजः। अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोकं भुजगेष्वपि ।।२९९।।
खौरकः सौरभेयाणामूषरः पृथिवीतले। इभानामपि धर्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ।।३००।।
रन्ध्रोद्भूतं तथाऽश्वानां शिखोद्भेदश्च वर्हिणाम्। नेत्ररोगः कोकिलानां ज्वरः प्रोक्तो महात्मभिः ।।३०१।।
अजानां पित्तभेदाश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम्। शुकानामपि सर्वेषां हिमिका प्रोच्यते ज्वरः ।।
शार्दूलेष्वपि वै विप्राः श्रमो ज्वर इहोच्यते ।।३०२।।
मानुषेषु तु सर्वज्ञ ज्वरो नामैव कीर्तितः। मरणे जन्मनि तथा मध्ये च विशते सदा ।।३०३।।
एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः। नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ।।३०४।।
इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।।
विमुक्तरोगः स नरो मुदा युतो लभेत कामान्स यथा मनीषितान् ।।३०५।।
दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा। नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घं चाऽयुरवाप्नुयात् ।।३०६।।
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो योगवान्हरः। तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां ब्रह्मनिर्मितः ।।३०७।।

फल तुम्हें हो। महाभाग! तुम मानसिक संताप को छोड़ दो ।।२९३-२९६।। इस प्रकार कहकर अतिपराक्रमी महादेव अपनी पत्नी और अनुचरों के साथ दक्ष की आँखों से ओझल हो गये। उस समय ब्रह्मा द्वारा यथोक्त भाग को प्राप्तकर अखिल धर्मवेत्ता महादेव ने ज्वर को कई भागों में विभक्त किया। ब्राह्मणो! सब जीवों के शान्त्यर्थ उसे सुनिये ।।२९७-२९८।। नागों के लिए शीर्षाभिताप, पर्वतों के लिए शिलारोग, जल के लिए शैवाल और साँपों के लिए केंचुल ज्वर समझना चाहिए। गौओं के लिए खुरका रोग, पृथ्वी के लिए ऊसर, हाथियों के लिए दृष्टि-व्याघात, घोड़ों के लिए रन्ध्रजनित रोग, मयूरों के लिए शिखा (चन्द्रक) विकास का काल और कोकिलों के लिए नेत्ररोग महात्माओं के द्वारा ज्वर कहा गया है ।।२९९-३०१।। हे विप्रो! हम लोगों ने सुना है कि सब बकरों के लिए पित्तभेद और सब शुकों के लिए हिमिका ज्वर है एवं इसी प्रकार सिंहों के लिए भी परिश्रम ज्वर कहा गया है।।३०२।। सर्वज्ञ! मनुष्यों के लिए वह ज्वर नाम से कहा गया है, जो जन्म-मरणकाल में और बीच में भी मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करता है। यह जो अत्यन्त कठोर ज्वर है, वह महेश्वर का तेज है; अतएव यह ईश्वर ज्वर सब प्राणियों द्वारा माननीय और वन्दनीय है।।३०३-३०४।। जो मनुष्य सुप्रसन्नचित्त से एकाग्र होकर इस ज्वरोत्पत्ति को सदा पढ़ता है, वह रोग से छुटकारा पाकर आनन्द लाभ करता है और अपनी अभिलषित कामना को प्राप्त करता है ।।३०५।। दक्ष द्वारा कहे गये स्तव को भी जो सुनता है या कहता है, उसका कोई अनिष्ट नहीं होता और वह दीर्घायु प्राप्त करता है। जैसे सब देवों में योगी महादेव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार स्तवों के बीच यह ब्रह्मानिर्मित स्तव श्रेष्ठ है ।।३०६-३०७।। यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन, आयु, वित्त और विद्या की कामना

यशोराज्यसुखैश्वर्यवित्तायुर्धनकाङ्क्षिभिः । स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ।।३०८।।
व्याधितो दुःखितो दीनश्चौरत्रस्तो भयार्दितः । राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ।।३०९।।
अनेन चैव देहेन गणानां स गणाधिपः । इह लोके सुखं प्राप्य गण एवोपपद्यते ।।३१०।।
न च यक्षाः पिशाचा वा न नागा न विनायकाः । कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ।।३११।।
शृणुयाद्वा इदं नारी सुभक्त्या ब्रह्मचारिणी । पितृभिर्भर्तृ पक्षाभ्यां पूज्या भवति देववत् ।।३१२।।
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः । तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः ।।३१३।।
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम् । सर्वं संपद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्तनात् ।।३१४।।
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य तु । बलिं विभवतः कृत्वा दमेन नियमेन च ।।३१५।।
ततः स शुल्को गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् । ईप्सिताँल्लभतेऽत्यर्थं कामान्भोगांश्च मानवः ।।
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रपरीवृतः ।।३१६।।
सर्वकर्मसु युक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । पठन्दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
मृतश्च गणसालोक्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ।।३१७।।
वृषेव विधियुक्तेन विमानेन विराजते । आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ।।३१८।।

करनेवाले यत्नपूर्वक, भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करें। जो पीड़ित, दुःखी, दीन, चोर से डरे हुए और राजकार्य में नियुक्त हैं, वे बड़े भय से भी मुक्त हो जाते हैं।।३०८–३०९।। इसी देह से वे गणों के बीच गणाधिप हो जाते हैं और इस लोक में सुख प्राप्तकर शिवगण हो जाते हैं। जिस घर में इस स्तव से महादेव की स्तुति होती है, वहाँ यक्ष, पिशाच, नाग और विनायक आदि कोई विघ्न नहीं करते हैं, ब्रह्मचारिणी होकर भक्ति श्रद्धा से जो स्त्री इस स्तवराज का श्रवण करती है, वह पितृकुल और भ्रातृकुल में देवता की तरह पूज्य होती है।।३१०–३१२।। जो इस सम्पूर्ण स्तोत्र का श्रवण करता है या बार-बार पाठ करता है, उसके सभी कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो जाते हैं। जो इस स्तोत्र को जोर-जोर से पढ़ता है या मन-ही-मन पढ़ता है, उसके सभी कार्य स्तोत्र पढ़ने के कारण सिद्ध हो जाते हैं।।३१३–३१४।। कार्तिकेय के साथ नन्दीश्वर महादेव और देवी को धन के अनुरूप नैवेद्य चढ़ाकर यम-नियमपूर्वक दक्षिणा देकर स्तोत्र में आये हुए नामों का शीघ्रता से पाठ करे। इस विधि से जो मानव इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह अभिलषित कामनाओं को और सकल भोगों को प्राप्त करता है एवं मरने पर सहस्र स्त्रियों के साथ स्वर्ग को जाता है।।३१५–३१६।। जो सभी प्रकार के विषय-भोगों में लिप्त हैं या सभी पातकों से युक्त हैं, यदि दक्ष कृत स्तोत्र को पढ़ें, तो वे भी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और मरने पर देव-दानवों से पूजित होकर गण-सालोक्य प्राप्त करते, सुसज्जित विमान पर वह इन्द्र की तरह शोभित होते और रुद्र के अनुचर होकर युगान्त पर्यन्त वर्तमान रहते हैं, पराशरसुत भगवान् व्यास ने ऐसा कहा है।।३१७–३१८½।। बिना विचारे सहसा किसी को बतलाना

इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः। नैतद्वेदयते कश्चिन्नेदं श्राव्यं तु कस्यचित् ।।३१९।।
श्रुत्वैतत्परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापकारिणः। वैश्या स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ।।३२०।।
श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु। रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ।।३२१।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते दक्षप्रोक्तस्तवो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

देववंशवर्णनम्

सूत उवाच

इत्येषा समनुज्ञाता कथा पापप्रणाशिनी। दक्षमधिकृत्येह कथा शर्वादुपागता ।।१।।
पितृवंशप्रसङ्गेन कथा ह्येषा प्रकीर्तिता। पितृणामानुपूर्व्येण देवान्वक्ष्याम्यतः परम् ।।२।।
त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन्स्वायंभुवेऽन्तरे। देवा यामा इति ख्याताः पूर्वं ये यज्ञसूनवः ।।३।।
अजिता ब्रह्मणः पुत्रा जिता जिदजिताश्च ये। पुत्राः स्वायंभुवस्यैते शुक्रनाम्ना तु मानसाः ।।४।।

नहीं चाहिए और न तो सुनाना ही चाहिए। इस परम गुह्य स्तोत्र को सुनकर सभी पापात्मा वैश्य, स्त्री, शूद्र आदि रुद्रलोक प्राप्त करते हैं। जो ब्राह्मण प्रति पर्व में इसे विप्रों को सुनाता है, वह निःसन्देह रुद्रलोक प्राप्त करता है ।।३१९-३२१।।

श्रीवायुमहापुराण का दक्षस्तुति नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३०।।

अध्याय ३१

देव-वंश वर्णन

सूत जी बोले—यह पापनाशिनी कथा आप लोगों को अब ज्ञात हो गयी। यह दक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली कथा महादेव से प्राप्त हुई है, जो पितरों के वंश-वर्णन के प्रसंग में कह दी गयी है। पितृवंश वर्णन की ही तरह अब आगे हम देव-वंश का वर्णन करते हैं ।।१-२।। पहले स्वायंभुव मनु के अधिकार-काल में त्रेता युग के आदि में याम नाम के विख्यात देव थे, जो पहले यज्ञ-तनय थे। उनमें अजित ब्रह्मा के पुत्र थे और जित, जित् तथा अजित स्वायंभुव के पुत्र थे। ये शुक्र नामक मानस पुत्र कहलाते थे ।।३-४।। देवों के तीन गण कहे गये हैं, जिनमें ये तृप्तिमान् गण कहलाते

तृप्तिमन्तो गणा ह्येते देवानां तु त्रयः स्मृताः। छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिंशत्सर्वे स्वायंभुवस्य ह ।।५।।
यदुर्ययातिर्द्वौ देवौ दीधयः स्त्रवसो मतिः। विभासश्च क्रतुश्चैव प्रजातिर्विशतो द्युतिः ।।६।।
वायसो मङ्गलश्चैव यामा द्वादश कीर्तिताः। (* अभिमन्युरुग्रदृष्टिः समयोऽथ शुचिश्रवाः ।।
कवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ।।७।।
तुरीयो निहर्युश्चैव युक्तो ग्रावाजिनस्तु ते। यमिनो विश्वदेवाद्यं यविष्ठोऽमृतवानपि ।।८।।
अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽथ दिदेहकः। श्रुतिशृणो बृहच्छुक्रो देवा द्वादश कीर्तिताः) ।।९।।
आसन्स्वायंभुवस्यैते अन्तरे सोमपायिनः। त्विषिमन्तो गणा ह्येते वीर्यवन्तो महाबलाः ।।१०।।
तेषामिन्द्रः सदा ह्यासीद्विश्वभुक्प्रथमो विभुः। असुरा ये तदा तेषामासन्दायादबान्धवाः ।।११।।
सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः। अष्टौ ते पितृभिः सार्धं नासत्या देवयोनयः ।।१२।।
स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीताः प्रजास्त्वासां सहस्त्रशः। प्रभावरूपसंपन्ना आयुषा च बलेन च ।।१३।।
विस्तरादिह नोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह। स्वायंभुवो निसर्गश्च विज्ञेयः सांप्रतं मनुः ।।१४।।
अतीते वर्तमाने न दृष्टो वैवस्वतेन सः। प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह ।।१५।।
तेषां सप्तर्षयः पूर्वमासन्ये तान्निबोधत। भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।।१६।।

हैं। स्वायंभुव मनु के तैंतीस पुत्र छन्दोग कहलाते हैं ।।५।। यदु, ययाति नामक दो देव एवं दीधय, स्त्रवस, मति, विभास, क्रतु, प्रजापति, विशत, द्युति, वायस और मङ्गल नामक बारह देव याम कहलाते हैं ।।६–$६\frac{१}{२}$।। अभिमन्यु, उग्रदृष्टि, समय, शुचिश्रवा, कवल विश्वरूप, सुयक्ष (सुरक्ष), मधुप, तुरीय, निहर्यु, युक्त, ग्रावाजिन, यमी, विश्वेदेवादि, यविष्ठ, मृतवान्, अजिर, विभु, विभाव, मृलिक, दिदेहक, श्रुतिशृण, बृहच्छुक्र और ऊपर कहे गये बारह देव स्वायंभुव मन्वन्तर के काल में वर्तमान थे ।।७–९।। ये सोम पीनेवाले महाबली और वीर्यशाली थे। ये त्विषिमान गण के कहलाते थे। विश्वभुक् प्रथम विभु उन लोगों के इन्द्र थे। उस समय जो असुरगण थे, वे भी इनके जाति–भाई थे। सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और पितरों के साथ नासत्य ये आठों देवयोनि कहलाते थे। इनके प्रभाव और रूप से संयुक्त एवं आयुष्मान् तथा बलवान् सन्तानें हजारों की संख्या में स्वायंभुव मन्वन्तर में बीत चुके हैं ।।१०–१३।। उसको विस्तारपूर्वक नहीं कहा जा रहा है; क्योंकि उसका प्रसंग भी यहाँ नहीं है। स्वायंभुव मनु के काल का सृष्टि विस्तार वर्तमान मनु की ही तरह समझना चाहिए। अतीत मन्वन्तर में प्रजा सृष्टि या स्वभावादि वर्तमान वैवस्वत मनु के काल की ही तरह देखा जाता है। प्रजाओं, देवताओं, ऋषियों और पितरों के साथ पहले जो उनमें सप्तर्षि थे, उनको सुनिये–भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ।।१४–$१६\frac{१}{२}$।। स्वायंभुव मन्वन्तर में अग्नीध्र, अतिबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति।

अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायंभुवेऽन्तरे। अग्नीध्रश्चातिबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ।।१७।।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः पुत्र एव च। मनोः स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ।।१८।।
वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे। सासुरं तत्सगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।।
सपिशाचमनुष्यं च सुपर्णाप्सरसां गणम् ।।१९।।
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि। बहुत्वान्नामधेयानां संख्या तेषां कुले तथा ।।२०।।
या वै व्रजकुलाख्यास्तु आसन्स्वायंभुवेऽन्तरे। कालेन बहुनाऽतीता अयनाब्दयुगक्रमैः ।।२१।।

ऋषय ऊचुः

क एष भगवान्कालः सर्वभूतापहारकः। कस्य योनिः किमादिश्च किं तत्त्वं स किमात्मजः ।।२२।।
किमस्य चक्षुः का मूर्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः। किंनामधेयः कोऽस्यात्मा एतत्प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।२३।।

सूत उवाच

श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम्। सूर्ययोनिर्निमेषादिः संख्याचक्षुः स उच्यते ।।२४।।
मूर्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च सः। संवत्सरशतं त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।।
सांप्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः ।।२५।।
पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थां निबोधत। दिनार्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ।।२६।।

ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य और सवन आदि ये महाबलशाली दस पुत्र स्वायंभुव मनु के थे। वायु ने कहा है कि प्रथम मन्वन्तर में ये ही महाबलशाली राजा थे ।।१७-१८½।। असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, पिशाच और मनुष्यों के साथ सुपर्ण तथा अप्सराओं का जो गण था, उसका अनुक्रम से कहा जाना सौ वर्षों में भी सम्भव नहीं है, क्योंकि उन राजकुलीनों के नामों की संख्या बहुत अधिक थी। स्वायंभुव मन्वन्तर में जो व्रजकुल नामक प्रजाजन थे, वे अयन, वर्ष और युगक्रम से बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं ।।१९-२१।।

ऋषिगण बोले—सब जीवों का हरण करनेवाले ये भगवान् काल कौन हैं? किसके पुत्र और किसके पिता हैं? तत्त्व, स्वरूप, चक्षु, मूर्ति, अवयव आदि इनके कौन-से हैं? इनका क्या नाम है? कौन इनकी आत्मा है? इन प्रश्नों को हम पूछ रहे हैं, कहिये ।।२२-२३।।

सूत जी बोले—आप लोग काल के सम्बन्ध में विशेष ध्यानपूर्वक सुनिये और सुनकर हृदय में रखिये। इनके (काल के) उत्पन्न करनेवाले सूर्य हैं, इनका आदि निमेष है और ये संख्या चक्षु कहलाते हैं। दिन-रात इनकी मूर्ति हैं, निमेष अवयव हैं और कलास्वरूप संवत्सरशत इनका नाम है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालस्वरूप वे प्रजापति हैं ।।२४-२५।। दिन, पक्ष, मास, ऋतु और अयन नामक पाँच भागों में विभक्त काल के अवस्था-भेद को सुनिये। पहला संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर, तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर और पंचम युग नामक वत्सर कहलाता है। इनके तत्त्व को

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।।२७।।
वत्सरः पञ्चमस्तेषां कालः स युगसंज्ञितः । तेषां तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ।।२८।।
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः । आदित्येयस्त्वऽसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ।।२९।।
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः । स इदावत्सरः सोमः पुराणे निश्चयो मतः ।।३०।।
यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः । आशु कर्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ।।३१।।
अहंकाराद्रुदन्रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणस्त्रयः । स रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नीललोहितः ।।
तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ।।३२।।
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात्कालात्मप्रपितामहः । ऋक्सामयजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ।।३३।।
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः । प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योनिर्मनीषिभिः ।।३४।।
यस्मात्कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि । ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुःकर्मणां तथा ।।
योजितः प्रविभागानां दिवसानां च भास्करः ।।३५।।
वैकारिकः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः । एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः ।।३६।।
आदित्यः सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः । प्रभवश्चाव्ययश्चैव भूतानां तेन भास्करः ।।३७।।
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः । सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामहः ।।३८।।
आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः । अवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः ।।३९।।
तिथीनां पर्वसंधीनां पूर्णिमादर्शयोरपि । योनिर्निशाकरो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापतिः ।।४०।।

मैं कहता हूँ सुनिये ।।२६–२८।। ऋतु नामक जिस अग्नि को मैंने पहले कहा है, वही संवत्सर है और यह परिवत्सर काल अग्नि स्वरूप है जो सूर्य से उत्पन्न तत्त्व है। पुराण में यह निश्चय किया गया है कि इद्वत्सर सोम है जो आकाश में चलनेवाला, जलों का सारभूत और सतत शुक्ल–कृष्ण गतिवाला है। जो उनचास शरीरों से लोकों को संतप्त करते हैं और अनुप्राणित करते हैं वही वायु वत्सर हैं। अहंकारवश रोदन करनेवाले रुद्र ब्रह्मा द्वारा तीन भागों में विभक्त हुए, वही नीललोहित रुद्र रुद्रों के वत्सर कहे गये हैं। उनके तत्त्व को भी मैं कहता हूँ सुनिये ।।२९–३२।। कालात्मा प्रपितामह अङ्ग–प्रत्यङ्ग के संयोग से ऋक्, साम और यजुः के उत्पत्ति–स्थान एवं पाँचों कालों के स्वामी हैं। वे ही अग्नि यजुः, सोम, भूत और प्रजापति हैं। विद्वानों ने सूर्य को ही अग्नि और संवत्सर कहा है। इन्हीं सूर्य से कालों का विभाग अर्थात् मास, ऋतु, अयन, ग्रह, नक्षत्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, आयु, कर्म तथा दिवसों का विभाग होता है ।।३३–३५।। विकारावस्था में ये ही प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र प्रजापति एक–एक कर दिवस, मास और ऋतु के प्रवर्तक हैं और ये ही पितामह हैं। ये ही आदित्य, सविता, भानु, जीवन और ब्रह्मसत्कृत कहे जाते हैं, भूतों के उत्पादक और अविनाशी होने के कारण ये भास्कर हैं ।।३६–३७।। तृतीय परिवत्सर ताराभिमानी है, जो सोम और निखिल ओषधियों का पति है, इसलिए यह भी प्रपितामह है। ये सभी जीवों के जीवन और योग–क्षेम करनेवाले हैं। ये सदा जागरूक रहते हुए किरणों द्वारा जगत् का पोषण करते हैं। तिथि, पर्व, सन्धि, पूर्णिमा, अमावस्या के ये ही उत्पादक, निशाकर और प्रजापति हैं ।।३८–४०।। इसीलिए ये सोम

तस्मात्स पितृमान्सोम ऋग्यजुश्छन्दसात्मकः। प्राणापानसमानानैर्व्यानोदानात्मकैरपि ।।४१।।
कर्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्तकः। प्राणापानसमानानां वायूनां च प्रवर्तकः ।।४२।।
पञ्चानां चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृतिजलात्मनाम्। समानकालकरणः क्रियाः संपादयन्निव ।।४३।।
सर्वात्मा सर्वलोकानामावहः प्रवहादिभिः। विधाता सर्वभूतानां क्ष्मी नित्यं प्रभञ्जनः ।।४४।।
योनिरग्नेरपां भूमेरवेश्चन्द्रमसश्च यः। वायुः प्रजाप्रतिर्भूतं लोकात्मा प्रपितामहः ।।४५।।
प्रजापतिमुखैर्देवैः सम्यगिष्टफलार्थिभिः। त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये ।।
इज्यते भगवान्यस्मात्तस्मात्र्यम्बक उच्यते ।।४६।।
गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगती चैव या स्मृता। त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता योनयः सवनस्य ताः ।।४७।।
ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः। त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रिकपालः स वै स्मृतः ।।४८।।
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभिः। यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः ।।
सैक षट्कं विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतपः किल ।।४९।।
ऋतुपुत्रार्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः। इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु ।।५०।।
नदीवेगसमायुक्तं कालो धावति संहरन्। अहोरात्रकरस्तस्मात्स वायुरभवत्पुनः ।।५१।।
एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम्। पितरः सर्वलोकानां लोकात्मानः प्रकीर्तिताः ।।५२।।

पितृमान् एवं ऋक् यजुर्वेद के स्वरूप हैं। ये प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानात्मक कर्म द्वारा लोक में निखिल प्राणियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के प्रवर्तक हैं। ये ही प्राण, अपान और समान वायु के प्रवर्तक हैं ।।४१-४२।। इन पाँचों के अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जल के यथाकाल पोषणकर्त्ता और इनकी क्रियाओं के सम्पादक हैं। ये प्रभंजन सर्वात्मा हैं। आवह प्रवह आदि के द्वारा सब लोकों के तथा सब भूतों के विधाता एवं पृथ्वी को धारण करनेवाले हैं। ये ही प्रभंजन, जल, अग्नि, भूमि, रवि और चन्द्रमा के उत्पादक हैं। ये ही वायु प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह हैं ।।४३-४५।। प्रजापति आदि देवगण अपने अभीष्ट फलों को पाने के लिए ओषधियों के क्षय हो जाने पर त्रिकपाल और त्र्यम्बका द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं इसलिए वे त्र्यम्बक कहलाते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती त्र्यम्बका नाम से ख्यात हैं, जो यज्ञयोनि या सवन की उत्पादिका हैं। ये ही तीनों छन्द जब अपने पराक्रम से एकत्र हो जाते हैं, तब वे ही त्रिसाधन, पुरोडाश और त्रिकपाल कहे जाते हैं ।।४६-४८।। विद्वानों ने इस प्रकार पाँच वर्षों का युग कहा है। विप्रों ने जो इन पाँच प्रकार के संवत्सरों को बताया है, उनमें प्रत्येक वसन्त आदि छह ऋतुओंवाले हैं ।।४९।। ऋतु पुत्र, आर्तव गण पाँच प्रकार के हैं। संक्षेप में यही कथा है। यह वायु प्राणियों के जीवन को काल रूप से संहार करती हुई नदी के वेग की तरह बहने लगती है और उस समय से फिर वह वायु दिन-रात को करनेवाली होती है। ये सभी प्रजापति सब देहधारियों में प्रधान, सब लोकों के पिता और लोकात्मा कहे गये हैं ।।५०-५२।। ध्यान करते हुए ब्रह्मा के मुख से रोते

ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्राद्रुदन्समभवद्भवः। ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः ।।५३।।
ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते। आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसंभवः ।।५४।।
अग्निः संवत्सरः सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च। युगाभिमानी कालात्मा नित्यं संक्षेपकृद्विभुः ।।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स इद्वत्सर उच्यते ।।५५।।
रुद्राविष्टो भगवता जगत्यस्मिन्स्वतेजसा। आश्रयाश्रयसंयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा ।।५६।।
ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम्। द्वितीयं भद्रसंयोगं शतं तस्यैककारकम् ।।५७।।
देवत्वं च पितृत्वं च कालत्वं चास्य यत्परम्। तस्माद्वै सर्वथा भद्रस्तद्वद्भिरभिपूज्यते ।।५८।।
पतिः पतीनां भगवान्प्रजेशानां प्रजापतिः। भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नीललोहितः ।।
ओषधीः प्रतिसंधत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः ।।५९।।
इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः। बहुत्वात्परिसंख्यातु पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।।६०।।
इमं वंशं प्रजेशानां महतां पुण्यकर्मणाम्। कीर्तयन्स्थिरकीर्तीनां महतीं सिद्धिमाप्नुयात्* ।।६१।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते देववंशवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

हुए रुद्र उत्पन्न हुए। ये ही ऋषि, विप्र, महादेव, भूतात्मा और प्रपितामह हैं। ये ही सभी के ईश्वर और प्रणव के लिए उत्पन्न हुए हैं। ये ही आत्मा रूप से जीवों के अंग-प्रत्यंग की उत्पत्ति के कारण हैं। ये ही अग्नि, संवत्सर, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, युगाभिमानी, कालात्मा, नित्य संहार करनेवाले, विभु, उन्मादक और अनुग्रह करनेवाले हैं। ये ही इद्वत्सर कहे जाते हैं ।।५३-५५।। क्रोधाविष्ट होकर ये ही भगवान् इस संसार में अपने तेज से आश्रय और आश्रयसंयोग के कारण अपने नामों और शरीरों से वर्तमान रहते हैं। तब उन्ही के पराक्रम से लोकों के अनुकूल कल्याणकारक दूसरी विस्तृत सृष्टि देवों, पितरों, काल तथा अन्यान्यों की हुई। इस कारण उन उत्पन्न लोकों द्वारा वे ही भद्ररूप महादेव पूजे जाते हैं ।।५६-५८।। ये नीललोहित भगवान् अधीश्वरों के अधीश्वर, प्रजाधिपों के प्रजापति, सब जीवों के उत्पादक और क्षीण ओषधियों के पुनः-पुनः उत्पादक हैं। इन सबके जो पुत्र हैं, वे प्रमाण में बहुत अधिक हैं और इनके पुत्र-पौत्र भी अनन्त हैं; इसलिए उनकी गणना करना शक्ति के बाहर है। जो आदमी स्थिर कीर्तिवाले महान् पुण्यकर्मा प्रजेशों के इस वंश का कीर्त्तन करता है, वह महान् सिद्धि प्राप्त करता है ।।५९-६१।।

श्रीवायुमहापुराण में देव-वंश-वर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त।।३१।।

---

* नात्राध्यायपरिसमाप्तिः ख. पुस्तके।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

युगधर्माः

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम्। ओंकारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णं चाऽऽदितः स्मृतम् ।।१।।
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो दैवतास्तथा। ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथाजलम्* ।।२।।
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे। चतुर्दश महात्मानो देवानां ये तु देवताः ।।३।।
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित्। अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ।।४।।
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभिः सह। अक्षरान्निःसृताः सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ।।५।।
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं परम्। पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः ।।६।।
कृतं त्रेता द्वापरं च युगादिः कलिना सह। परिवर्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ।।७।।
देवतास्तु तदोद्विग्नाः कालस्य वशमागताः। न शक्नुवन्ति तन्मानं संस्थापयितुमात्मना ।।८।।
तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै। ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपाः ।।९।।
समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान्। प्रपन्नास्ते महादेवं भीताः कालस्य वै तदा ।।१०।।

अध्याय ३२

युग-धर्म

वायु बोले–इसके आगे अब हम प्रणव के सम्बन्ध में कहते हैं। ओंकार अक्षर ब्रह्म है। इसमें तीन वर्ण हैं। यह आदि में स्मरण किया जाता है।।१।। जो-जो जिसके वर्ण तथा देवता कहे गये हैं, वे भी ओंकार से ही उत्पन्न हुए। ऋक्, यजुः और साम, वायु, अग्नि एवं जल भी ओंकार से उत्पन्न हुए।।२।। उस अक्षर से फिर दूसरे भी उत्पन्न हुए। देवों के बीच जो चौदह महात्मा देवता हैं; उनके भी मध्य जो सबको पानेवाले, सभी जगह जानेवाले और सब योगों को जाननेवाले हैं, वे ही लोकों पर अनुग्रह करने के लिए ओंकार के आदि, मध्य और अन्त कहे जाते हैं।३-४। सप्तर्षिगण, इन्द्र और पितरों के साथ देवगण आदि अक्षरस्वरूप देव-देव महादेव से उत्पन्न हुए हैं। इस लोक और परलोक में कल्याण के लिए ओंकार परम पद कहा गया है। मैंने पहले ही कहा है कि काल का नाम युग भी है।।५-६।। कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग के साथ युग आदि चक्र की तरह नीचे-ऊपर घूमते रहते हैं। देवगण तब काल के वशीभूत होकर व्यग्र हो गये और स्वयं इसकी इयत्ता (सीमा) परिमाण को निर्धारित करने में असमर्थ हो गये।।७-८।। आदि मन्वन्तर में वे ऋषि, देवता और इन्द्र आदि मौनावलम्बन कर हजारों वर्षपर्यन्त चंचल मन को एकाग्र करके कठिन तपस्या करने लगे। तब काल से डरे हुए वे देवादि की शरण में पहुँचे।।९-१०।। वे बोले–महेश्वर! महादेव! इस चार मुँह और मूर्ति धारण

---

* जलमित्यन्तेऽध्यायपरिसमाप्तिर्दृश्यते ख. पुस्तके।

अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः। कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ।।११।।
अथ दृष्ट्वा महादेवस्तं तु कालं चतुर्मुखम्। न भेतव्यमिति प्राह को वः कामः प्रदीयताम् ।।१२।।
तत्करिष्याम्यहं सर्वं न वृथाऽयं परिश्रमः। उवाच देवो भगवान्स्वयं कालः सुदुर्जयः ।।१३।।
यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते। एतत्कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ।।
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ।।१४।।
यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया। त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत्त्रेता युगं द्विजाः ।।१५।।
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात्। ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्त्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः ।।
इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्तते ।।१६।।
यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम्। द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ।।१७।।
यदेतत्कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम्। एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ।।१८।।
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयंकरम्। कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ।।१९।।
न सुखं नापि निर्वाणं तस्मिन्भवति वै युगे। कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन्भविष्यति ।।२०।।
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते। द्वापरे पूज्यते विष्णुरहं पूज्यश्चतुर्ष्वपि ।।२१।।
ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलास्त्रयः। सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ।।२२।।
अहं जनो जनयिता वः कालः कालप्रवर्तकः। युगकर्ता तथा चैव परं परपरायणः ।।२३।।

करनेवाले देवेश अगाध काल का पार कौन पा सकता है? महादेव जी ने उस चतुर्मुख काल को देखा और कहा–डरने की कोई बात नहीं है। कहिये, आपकी किस अभिलाषा को पूर्ण करूँ।।११–१२।। आपके सब कार्य हो जायँगे, आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। फिर स्वयं कालस्वरूप अजेय महादेव जी बोले–काल का जो यह चार जिह्वावाला श्वेत मुख दीख पड़ता है, वह काल का कृतयुग नामक मुख है और यही मुख देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और वैवस्वत भी कहलाता है।।१३–१४।। ब्राह्मणो! यह जो लाल रंग का, लपलपाती तीन जिह्वावाला दूसरा मुख कहा गया है, वह त्रेता युग है। इस युग में महादेव के द्वारा ही यज्ञ करने में लोगों की प्रवृत्ति होती है। इनसे ही यज्ञ का प्रारम्भ होता है। इन्हें तीन जिह्वाएँ हैं और तीन अग्नि। ये ही अग्नि काल की जिह्वाएँ हैं।।१५–१६।। यह जो दो जिह्वावाला भयङ्कर लाल और पिङ्गल वर्ण का मुख है, वह द्वापर नाम का युग है। इस युग में हम दो पैरवाले होंगे। यह जो चौथा काले रङ्ग का एवं लाल आँखोंवाला मुँह है, जिसमें काले रंग की एक मोटी जिह्वा बार–बार लपलपा रही है, वह सम्पूर्ण लोकों को भयत्रस्त करनेवाला घोर कलियुग है। यह कल्पों का भीषण चौथा मुख है।।१७–१९।। इस युग में न सुख है और न मुक्ति एवं प्रजाजन भी इस युग में काल से ग्रस्त होकर रहेंगे। कृतयुग में ब्रह्मा पूजित होते हैं, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में विष्णु और मैं चारों युगों में पूजित रहता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और यज्ञ ये काल की तीन कलाएँ या अंश हैं; किन्तु चार मूर्तिवाले महेश्वर सभी कालों में हैं।।२०–२२।। मैं ही जन हूँ और आप लोगों का उत्पादक भी मैं हूँ। मैं ही काल हूँ और काल का प्रर्वत्तक भी। मैं ही युगों का करनेवाला, परम एवं श्रेष्ठ हूँ ।।२३।। इसलिए कलियुग के आने पर सांसारिकों के कल्याण के लिए और

तस्मात्कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात्। अभयार्थं च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ।।२४।।
तदा भवश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः। तस्माद्भयं न कार्यं च कलिं प्राप्य महौजसः ।।२५।।
एवमुक्तास्ततः सर्वा देवता ऋषिभिः सह। प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ।।२६।।

देवर्षय ऊचुः

महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युतिः। भीषणः सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ।।२७।।

महादेव उवाच

एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः। लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ।।२८।।
नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन्सचराचरे। कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ।।२९।।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे। तस्मात्तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा ।।३०।।
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्ततिः। तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तयुगक्रमात् ।।३१।।
एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः। यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ।।३२।।
एवमुक्त्वा तु भगवान्देवर्षिपितृदानवान्। नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ।।३३।।
एवं स कालो भगवान्देवर्षिपितृदानवान्। पुनः पुनः संहरते सृजते च पुनः पुनः ।।३४।।
अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैः। पूज्यते भगवानीशो भयात्कालस्य तस्य वै ।।३५।।

देवों को अभय देने के लिए मैं दोनों लोकों में मंगलकारक और पूजनीय रहूँगा। हे महाबली देवगण! आप लोग कलियुग को देखकर मत डरें। ऋषियों के साथ उन देवगणों से जब महादेव ने इस प्रकार कहा, तब उन लोगों ने सिर नवाकर महादेव को प्रणाम किया और कहा।।२४-२६।।

देवता और ऋषि बोले-देव, अत्यन्त तेजस्वी, दीर्घ शरीर, महाबली, अतिशय दीप्तिशाली और सब जीवों के लिए भंयकर काल चार मुखवाले कैसे हुए?।।२७।।

महादेव जी बोले-ये काल चार मुँहवाले, चार दाँतवाले और चार मूर्तिवाले हैं। संसार की रक्षा के लिए ये सबका अतिक्रमण कर जाते हैं अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं करते हैं।।२८।। इस चराचरमय संसार में इनके लिए असाध्य कुछ नहीं है। काल की सृष्टि करते हैं और फिर क्रम से उनका संहार भी कर डालते हैं।२९। सभी काल के वश में हैं; किन्तु काल किसी के भी वश में नहीं है। इसलिए काल ही सभी जीवों का संकलन (शासन) करते हैं। पहले कहे गये इक्कीस युग काल का एक डग हैं। घूमनेवाले युगों के क्रम से वे ही मन्वन्तर कहलाते हैं। एक-एक पैर चलकर जब काल इक्कीस डग रखते हैं, तब मन्वन्तर का क्षय होता है।।३०-३२।। शंकर ने इस प्रकार देवता, ऋषि, पितर और दानवों से कहा। यह सुनकर प्रसन्न हो श्रोताओं ने भगवान् को नमस्कार किया तब भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।।३३।। भगवान् काल इसी प्रकार देवता, ऋषि, पितर और दानवों का बार-बार सृजन और संहार करते हैं। इसीलिए भगवान् ईश प्रति मन्वन्तर में काल के भय से डरे हुए देवता, ऋषि, पितर और दानवों से पूजित होते हैं।।३४-३५।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विजाः। प्रपन्नस्य महादेवं तस्य पुण्यफलं महत् ।।
तस्माद्देवा दिवं गत्वा अवतीर्य च भूतले ।।३६।।
ऋषयश्चैव देवाश्च कलिं प्राप्य सुदारुणम्। तप इच्छन्ति भूयिष्ठं कर्तुं धर्मपरायणाः ।।
अवतारान्कलिं प्राप्य करोति च पुनः पुनः ।।३७।।
एवं कालान्तरे सर्वे येऽतीता वै सहस्रशः। वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्देवराजर्षयस्तथा ।।३८।।
देवापिः पौरवो राजा मनुश्चेक्ष्वाकुवंशजाः। महायोगबलोपेताः कालान्तरमुपासते ।।३९।।
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्तिष्ये त्रेतायुगे कृते। सप्तर्षिभिश्चैव सार्धं भाव्ये त्रेतायुगे पुनः ।।
गोत्राणां क्षत्रियाणां च भविष्यास्ते प्रकीर्तिताः ।।४०।।
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह। कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।।४१।।
(*ब्रह्मक्षत्रस्य चोच्छेदा द्विजार्थाय कलौ स्मृताः। एवमेतेषु सर्वेषु युगेषु क्रमशस्तथा ।।४२।।
सप्तर्षिभिस्तथा सार्धं संतानार्थं युगे युगे। एवं क्षत्रस्य चोच्छेदाः संबन्धाद्वै द्विजैः स्मृताः) ।।
+नराः पातकिनो ये वै वर्तन्ते ते कलौ स्मृताः ।।४३।।
मन्वन्तराणां सप्तानां सन्तानार्था श्रुतिः स्मृतिः। एवमेतेषु सर्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा ।।४४।।

ब्राह्मणो! इसलिए कलियुग में खूब यत्नपूर्वक तपस्या करनी चाहिए। जो तपस्या द्वारा महादेव को प्राप्त करता है, उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। इसलिए देवगण भी स्वर्ग जाकर पृथ्वी तल पर उतर आते हैं और कठोर कलिकाल को पाकर वे देव-ऋषिगण धर्मरत होकर अधिक तप करने की इच्छा करते हैं। कलियुग का जब-जब अवतार होता है, तब-तब वे ऐसा ही करते हैं।।३६-३७।। इस प्रकार कालान्तर में अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर में जो सब हजारों की संख्या में देव राजर्षि आदि व्यतीत हो गये थे, वे सब तथा देवापि, पुरुवंशीय राजा, मनु और इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न होनेवाले महा योगबल से युक्त होकर दूसरे काल में जन्म ग्रहण करते हैं।।३८-३९।। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि के (आगामी) क्षीण हो जाने पर सप्तर्षियों के साथ फिर होनेवाले त्रेता युग में वे ही होनेवाले क्षत्रियों के वंशों के कारण कहे जाते हैं।।४०।। कृत, त्रेता और द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर अर्थात् द्वापर के अन्त में क्षत्रियगण ऋषियों के साथ रहते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रियों का जो विनाश होता है, वह कलियुग में द्विजादि के लाभ के लिए ही। इस प्रकार भी क्रमशः सभी युगों में सप्तर्षियों के साथ भावी सन्तान के लिए वे समय-समय पर उत्पन्न होते हैं। इस तरह द्विजों के लिए क्षत्रियों का विनाश होता है, जो पातकी मनुष्य है वे कलियुग में रहते हैं।।४१-४३।। सप्त मन्वन्तरों की सन्तानों के लिए श्रुति और स्मृति का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार इन सब में युगों का विनाश होता रहता है। जमदग्नि सुत परशुराम ने क्षत्रियों को मार

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

+ इदमर्धं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

परस्परं युगानां च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः। यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्तानां यथाक्षयम् ।।४५।।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते। क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।।
दिवंगतानहं तुभ्यं कीर्तयिष्ये निबोधत ।।४६।।
ऐडमिक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते। राजानः श्रोणिबन्धास्तु तथाऽन्ये क्षत्रिया भुवि ।।४७।।
ऐडवंशेऽथ संभूतास्तथा चेक्ष्वाकवो नृपाः। तेभ्य एव शतं पूर्णं कुलानामभिषेचितम् ।।४८।।
तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः। भोजं तु त्रिशतं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथादिशम् ।।४९।।
तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत। शतं वै प्रतिविन्ध्यानां हैहयानां तथा शतम् ।।५०।।
धार्तराष्ट्रास्त्वेकशतमशीतिर्जनमेजयाः । शतं वै ब्रह्मदत्तानां कुलानां वीर्यिणां शतम् ।।५१।।
ततः शतं तु पौलानां शतं काशिकुशादयः। तथाऽपरं सहस्त्रं तु येऽतीताः शशबिन्दवः ।।
ईजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणैः ।।५२।।
[×एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्त्रशः। मनोर्वैवस्वतस्येह वर्तमानेऽन्तरे शुभे ।।५३।।
पुनरुक्तबहुत्वाच्च न शक्यं विस्तरेण तु। ÷एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु ।।
वक्तुं राजर्षयः कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैः सह ।।५४।।
एते ययातिवंशस्य बभूवुर्वंशवर्धनाः। कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान्धारयन्ति वै ।।५५।।
लभन्ते च वरान्पञ्च दुर्लभान्ब्रह्मलौकिकान्। आयुः पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्यं भूतिरेव च ।।५६।।

डाला; क्योंकि वे क्षत्रिय राजा कुलटाओं की संख्या बढ़ा रहे थे। अब हम उन स्वर्गगत राजाओं का विवरण कहते हैं, सुनिये।।४४–४६।। इक्ष्वाकु वंश का मूल ऐड़ वंश है। श्रोणिबन्ध राजागण, इक्ष्वाकुवंशीय नृपगण तथा और–और क्षत्रियों ने इस पृथ्वी पर ऐड़ वंश में जन्म ग्रहण किया था। उन्हीं नृपतियों से पूर्ण सौ कुलों का अभिषेक अर्थात् विस्तार हुआ था।।४७–४८।। तभी उनके कुलों से भोज कुल का वंश विस्तार में दूना था। जैसा कि कहा है कि भोजकुल में प्रायः तीन सौ क्षत्रिय थे, जो चार भागों में विभक्त थे। उनमें जो राजा बीत चुके हैं, उनके बारे में कहते हैं, सुनिये।।४९–४९$\frac{१}{२}$।। प्रतिविन्ध्य हैहय और धार्तराष्ट्र के सौ–सौ कुल अतीत हुए हैं, जनमेजय के अस्सी कुल, ब्रह्मदत्त, वीर्यी, पौल के सौ–सौ कुल तथा काशिकुश के भी सौ कुल और शशविन्दुओं के हजार कुल अतीत हुए हैं। इन सभी राजाओं ने बहुत दक्षिणा देकर अश्वमेध यज्ञों को किया है।।५०–५२।। वैवस्वत मनु के मंगलजनक वर्तमान काल में जो सैकड़ों हजार राजर्षि व्यतीत हो चुके हैं, उनका आवृत्ति और अधिकता के भय से विस्तार के साथ वर्णन नही किया जा सकता है। इसलिए उनका वर्णन संक्षेप में किया गया। हम विस्तार के साथ उनका वर्णन नहीं कर सकते, जो सब राजर्षि उन युगों के साथ व्यतीत हो चुके हैं।।५३–५४।। ये सब ययाति वंश के वंश को बढ़ानेवाले कान्तिमान् संसार का पालन करनेवाले कहे गये हैं। इन्होंने दुर्लभ ब्रह्म, लौकिक आयु, पुत्र, धन, कीर्ति और ऐश्वर्य विभूति नामक पाँच वरों को प्राप्त किया था। वे अपनी प्रजा के पाँचों

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

÷ इदमर्धंनास्ति क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य धीमताम्। यथोक्ता लौकिकाश्चैव ब्रह्मलोकं व्रजन्ति वै ।।५७।।
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्। तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।।५८।।
कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते। तस्माच्चतुःशतं संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।।५९।।
त्रेता त्रीणि सहस्राणि संख्यया मुनिभिः सह। तस्यापि त्रिशती संध्या संध्यांशस्त्रिशतः स्मृतः ।।६०।।
अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु संख्यया। द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणां संप्रकीर्तितम् ।।६१।।
तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशो द्विशतस्तथा। उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ।।६२।।
कलिं वर्षसहस्रं तु प्राऽऽहुः संख्याविदो जनाः। तस्यापि शतिका संध्या संध्यांशः शतमेव च ।।६३।।
संहारपादः संख्यांतश्चतुर्थो वै फलौ युगे। ससंध्यानि सहांशानि चत्वारि तु युगानि वै ।।६४।।
एतद्द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम्। एवं पादैः सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च ।।६५।।
संध्यासध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे। एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ।।६६।।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम्। यथा युगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम्।।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ।।६७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते युगधर्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

वर्गों की बातों को (अभियोगों को) सुना करते थे और अपनी विद्वान् प्रजा का पालन किया करते थे, इससे वे सभी राजागण ब्रह्मलोक को गये।।५५-५७।। चार हजार वर्षों का कृतयुग होता है, जिसमें उतनी ही संध्या और उतने ही संध्यांश होते हैं। कृतयुग का प्रक्रियापाद चार हजार वर्षों का कहा गया है; इसलिए चार सौ संध्याएँ और उतने ही संध्यांश होते हैं। त्रेता युग संख्या में तीन हजार वर्षों का होता है। मुनियों ने कहा कि इसमें तीन सौ वर्ष की संध्याएँ और तीन सौ वर्ष के ही संध्यांश होते हैं।।५८-६०।। त्रेता का अनुषङ्गपाद संख्या में तीन हजार का है। द्वापर के दो हजार वर्ष कहे गये हैं। इसमें भी दो सौ वर्ष की संध्याएँ और उतने वर्षों के संध्यांश होते हैं। इस तरह तीसरा उपोद्घातपाद द्वापर का कहा गया है।।६१-६२।। संख्या जाननेवाले विद्वानों ने कलियुग को एक हजार वर्षों का कहा है। इसमें भी सौ वर्ष की संध्याएँ और सौ वर्ष के संध्यांश होते हैं। कलियुग में चौथा संहार पाद होता है। संध्या और संध्याशों के साथ चारों युग बारह हजार वर्षों के कहे गये हैं।।६३-६४$\frac{१}{२}$।। इस तरह युग पादों का परिमाण दस हजार वर्षों का है और संध्या तथा संध्यांश दो हजार वर्षों के। इस प्रकार युग पादों का परिमाण कवियो ने बारह हजार वर्षों का कहा है।।६५-६६।। जैसे वेद चार पादों के हैं, उसी प्रकार युग भी चार पादों के होते हैं। विधाता ने जैसे युग का स्वयं चतुष्पाद विधान किया है वैसे ही ब्रह्मा ने भी पहले युग को चतुष्पाद बनाया है।।६७।।

श्रीवायुमहापुराण में युग का धर्म-निरूपण नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।।३२।।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

स्वायंभुववंशवर्णनम्

सूत उवाच

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह । तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ।।१।।
देवाश्च विविधा ये च तस्मिन्मन्वन्तरेऽधिपाः । ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ।।२।।
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशं स्वायंभुवस्य तु । विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत ।।३।।
मनोः स्वायंभुवस्याऽऽसन्दश पौत्रास्तु तत्समाः । यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ।।४।।
ससमुद्रा करवती प्रतिवर्षं निवेशिता । स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ।।५।।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायंभुवस्य तु । प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ।।६।।
प्रियव्रतात्प्रजावन्तो वीरात्कन्या व्यजायत । कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः ।।७।।
कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट्कुक्षिश्च ते उभे । तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ।।८।।
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः । ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः सर्व एव च ।।९।।

अध्याय ३३

स्वायंभुव वंशवर्णन

सूत जी बोले–बीते हुए और आनेवाले सभी मन्वन्तरों में नाम और रूप के अनुसार समान भाव से कुछ अभिमानी देवता हुआ करते हैं ।।१।। उस मन्वन्तर में अनेकानेक देवता, मन्वन्तर के स्वामी, ऋषि, मनु आदि सभी समान रूप से अभिमानी होते हैं ।।२।। महर्षियों की सृष्टि पहले कही जा चुकी है। अब स्वायंभुव का वंश विस्तार हम क्रमशः कहते हैं, सुनिये ।।३।। स्वायंभुव मनु के उन्हीं की तरह दस पोते थे। जिन्होंने उसी स्वायंभुव मन्वन्तर के आदि त्रेता युग में पहले–पहल सातो द्वीपों और समुद्रों के साथ समूची पृथ्वी का प्रतिवर्ष कर–संग्रह किया था। प्रियव्रत के पुत्रों और स्वायंभुव के उन पौत्रों ने योग और तपस्या के द्वारा प्रजाओं की सृष्टि के अनुसार पृथ्वी का शासन किया। वीर प्रजापति प्रियव्रत को एक सौभाग्यशालिनी कन्या भी थी, जो कर्दम प्रजापति से ब्याही गयी थी ।।४–७।। इसके अतिरिक्त उन्हें और दो पुत्रियाँ तथा सम्राट् कुक्षि आदि सौ पुत्र थे। इन दोनों के प्रजापति की ही तरह शूर–वीर दस भाई थे। जिनके नाम थे अगनीध्र, वपुष्मान्, मेधा, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सव्य। प्रियव्रत ने इस सात राजाओं का उन सात भागों में विभक्त सात द्वीपों में धर्मानुसार अभिषेक किया। उन

प्रियव्रतोऽभिषिच्चैतान्सप्तसप्तसु पार्थिवान्। द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्च निबोधत ।।१०।।
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रं तु महाबलम्। प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ।।११।।
शाल्मलौ तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान्। ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपेश्वरं राजानं कृतवान्प्रभुः ।।१२।।
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्। शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः ।।१३।।
पुष्कराधिपतिं चापि सधिनं कृतवान्प्रभुः। पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ।।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।।१४।।
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः। नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ।।१५।।
हव्यो व्यजनयत्पुत्राञ्शाकद्वीपेश्वरान्प्रभुः। जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीचकम् ।।
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमं च महाद्रुमम् ।।१६।।
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते। कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ।।१७।।
सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्तितम्। मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ।।१८।।
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम्। मोदकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ।।१९।।
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तु महाद्रुमम्। एषां तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ।।२०।।

द्वीपों के विषय में सुनिये ।।८-१०।। जम्बू द्वीप में महाबली अग्नीध्र को प्रभु बनाया और उसी प्रकार प्लक्ष द्वीप में मेधातिथि ईश्वर बनाये गये। शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् राजा बनाकर राज्यासन पर बैठाये गये और कुशद्वीप के ज्योतिष्मान् राजा बनाये गये। क्रौञ्चद्वीप राजा द्युतिमान् को दिया गया। हव्य को प्रियव्रत ने शाकद्वीप का स्वामी बनाया ।।११-१३।। इसके अनन्तर प्रियव्रत ने सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति बनाया। पुष्कर द्वीप में सवन को महावीत और धातकि नामक दो श्रेष्ठ पुत्र हुए ।।१४।। उस महात्मा के नाम से महावीत नाम का वर्ष चलाया गया और धातकि के नाम से वह धातकि-खण्ड कहलाया। हव्यवाहन ने शाकद्वीप में सात पुत्रों को उत्पन्न किया, जो पीछे चलकर वहाँ के शासक हुए। उनके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, वसुमोद, सुमोद और महाद्रुम। इनके नामों से वहाँ सात वर्ष प्रचलित हुए ।।१५-१६।। जलद के नाम पर पहला जलद वर्ष, कुमार के नाम का दूसरा कौमार वर्ष, सुकुमार के नाम का तीसरा सुकुमार वर्ष, मणीचक के नाम का चौथा मणीचक वर्ष, वसुमोद के नाम का पाँचवाँ वसुमोदक वर्ष, मोदक के नाम का छठा मोदाक वर्ष और महाद्रुम के नाम का सातवाँ महाद्रुम वर्ष कहलाता है ।।१७-२०।। क्रौंचद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के भी कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि नामक पुत्र हुए। उन्हीं के नाम से क्रौंचद्वीप के देशों का नामकरण हुआ। उष्ण का देश उष्ण कहलाया, पीवर का पीवर,

क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै। (*कुशला मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः।।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै) ।।२१।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्च याः शुभाः। उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः।।२२।
अन्धकारकदेशस्तु अंधकारश्च कीर्त्यते। मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः।।
एतै जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ।।२३।।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैते सुमहौजसः। उद्भिदो वेणुमाश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः।।
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ।।२४।।
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्। तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम्।।२५।।
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम्। सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम्।।२६।।
तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु। आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलंकृताः।।२७।।
शाल्मस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः। श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ।।२८।।
श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः। जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारितः।।२९।।
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्यापि मानसः। सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः।।३०।।
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बुद्वीपादनन्तरम्। सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः।।३१।।
ज्येष्ठः शान्तमयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै। तस्याच्छान्तमयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ।।३२।।

अन्धकारक का अन्धकार, मुनि का मुनि और दुन्दुभि का दुन्दुभि। क्रौंचद्वीप में ये सात देश बड़े प्रसिद्ध हैं।।२१-२३।। ज्योतिष्मान् के कुशद्वीप में उद्भिद्, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और कपिल नामक सात बलवान् पुत्र हुए।।२४।। पहला उद्भिद् वर्ष, दूसरा वेणुमण्डल, तीसरा स्वैरथाकार, चौथा लवण, पाँचवाँ धृतिमद्, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल नाम का वर्ष वहाँ प्रसिद्ध है।।२५-२६।। कुशद्वीप में इन पुत्रों के ही नाम पर द्वीपखण्ड हैं, जहाँ वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप प्रजा रहती है। शाल्मलि द्वीप के अधिपति वपुष्मान् को श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात पुत्र हुए।।२७-२८।। श्वेत के नाम पर श्वेत देश, रोहित के नाम पर रोहित, जीमूत के नाम पर जीमूत और हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ के नाम पर हारित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ देश हुए और ये ही सातों देशों के रक्षक भी हुए।।२९-३०।। अब हम जम्बू द्वीप के परवर्ती अन्य सातों द्वीपों की कथा कहते हैं। मेधातिथि के सात पुत्र हुए, जो प्लक्ष द्वीप के अधीश्वर हुए। इनके बीच शान्तमय सबसे ज्येष्ठ थे। इन्हीं के नामानुसार वहाँ सात वर्ष हुए। शान्तमय के छोटे भाई थे-शिशिर, सुखोदय, आनन्द, ध्रुव, क्षेमक और शिव।।३१-३२।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

तानि तेषां सनामानि सप्तवर्षाणि भागशः । निवेशितानि तैस्तानि पूर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे ।।३३।।
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः । वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ।।३४।।
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै । ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ।।३५।।
सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः । पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वं साधारणं स्मृतम् ।।३६।।
सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत । अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम् ।।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बुद्वीपेश्वरं नृपम् ।।३७।।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः । ज्येष्ठो नाभिरितिख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ।।३८।।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः । रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हरिण्मान्षष्ठ उच्यते ।।३९।।
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वे ह्यष्टमः स्मृतः । नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ।।४०।।
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं तु पिता ददौ । हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किम्पुरुषाय तत् ।।४१।।
नैषधं यत्स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ । मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ।।४२।।
नीलं तु यत्स्मृतं वर्षं रम्यायैतत्पिता ददौ । श्वेतं यदुत्तरं तस्मात्पित्रा दत्तं हरिण्मते ।।४३।।
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ । वर्षं माल्यवतं चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ।।४४।।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमाले न्यवेदयत् । इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागशः ।।४५।।

ये सब स्वायंभुव मन्वन्तर के भोग काल में वर्तमान थे और इन्होंने अपने-अपने नाम के अनुसार सातों वर्षों का विभाग कर उन्हें चलाया। मेधातिथि के उन पुत्रों ने जो सातों द्वीपों में निवास करते थे-प्लक्ष द्वीप में प्रजाओं को वर्णाश्रम के आचार से मुक्त कर दिया। प्लक्ष द्वीप से लेकर शाकद्वीप पर्यन्त पाँच द्वीपों में वर्णाश्रम विभाग के अनुरूप धर्म चल रहा था ।।३३-३५।। इन पाँचों द्वीपों में सुख, आयु, रूप, बल और धर्म साधारणतया सभी को प्राप्त थे। सातों द्वीपों से घिरे हुए जम्बूद्वीप की अब कथा सुनिये। प्रियव्रत ने महाबली ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को कन्या पुत्र के साथ जम्बूद्वीप का राजा बनाकर अभिषिक्त किया। अग्नीध्र के पुत्र भी प्रजापति के समान महान् बलवान् हुए। उनमें ज्येष्ठ नाभि था, जिससे छोटा किम्पुरुष हुआ ।।३६-३८।। तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य, छठा हरिण्मान्, सातवाँ कुरु, आठवाँ भद्राश्व और नवाँ केतुमाल नाम का पुत्र हुआ। अब इनके देशों को सुनिये ।।३९-४०।। इनमें नाभि को पिता ने हिम नामक दक्षिण देश, किम्पुरुष को हेमकूट नामक देश, हरिवर्ष को नैषध देश, इलावृत को सुमेरु का मध्यप्रदेश, रम्य को नील नामक, हरिण्मान् को उत्तर का श्वेत देश, कुरु को भी उत्तर दिशा में शृङ्गवान् देश, भद्राश्व को माल्यवान् देश और केतुमाल को गन्धमादन देश दिया। देशों के ये ही बड़े-बड़े नौ विभाग हैं ।।४१-४५।। धर्मात्मा अग्नीध्र उन सभी देशों से यथाक्रम अपने पुत्रों को राजा बनाकर स्वयं तपस्या

अगनीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत । यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।।४६।।
इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपा निवेशिताः । प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायंभुवस्य तु ।।४७।।
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु । तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।।४८।।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च । धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ।।४९।।
नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तान्निबोधत । नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः ।।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।।५०।।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः । सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ।।५१।।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् । तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।।५२।।
भरतस्याऽऽत्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः । बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्ययोजयत् ।।
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ।।५३।।
तैजसस्तत्सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् । तैजसस्याऽऽत्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ।।५४।।
परमेष्ठी सुतस्याथ निधने तस्य शोभनः । प्रतीहारः तस्य कुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।।
प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ।।५५।।

करने चले गये ।।४६।। स्वायंभुव के पौत्र और प्रियव्रत के उन सातों पुत्रों ने इस प्रकार संपूर्ण सातों द्वीपों में राज्य स्थापित किया। किम्पुरुष आदि जिन शुभदायक आठ देशों को हमने कहा है वहाँ बिना यत्न किये ही सिद्धि अनायास आ जाती है। वहाँ न किसी प्रकार का परिवर्तन है और न बुढ़ापा या मृत्यु का डर। वहाँ धर्म है, अर्धम नहीं। उत्तम, मध्यम और अधम का भेद नहीं है। उन सभी क्षेत्रों में कभी भी युगानुकूल अवस्था नहीं होती है ।।४७-४९।। अब हम हिमक्षेत्र के अधिपति नाभि के वंश-विस्तार को कहते हैं। नाभि ने मरुदेवी में ऋषभ नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जो अत्यन्त तेजस्वी, राजाओं में श्रेष्ठ और सभी क्षत्रियों का पूर्वज था ।।५०।। ऋषभ से वीर भरत की उत्पत्ति हुई, जो अपने सौ भ्राताओं में ज्येष्ठ थे। ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राजगद्दी पर बैठाकर स्वयं संन्यास ले लिया। उन्होंने भरत को हिम नामक दक्षिण देश दिया। इस कारण विद्वान् लोग उनके नाम से उस देश को भारतवर्ष कहते हैं ।।५१-५२।। भरत के पुत्र सुमति हुए, जो विद्वान् और धार्मिक थे। तब भरत ने सुमति को राज्य दे दिया और बेटे को राज्य भार सौंपने के बाद स्वयं जंगल चले गये। सुमति को तैजस नामक पुत्र हुआ। इन्द्रद्युम्न के मर जाने पर स्वयं परमात्मा उसके वंश में प्रतिहार नाम से उत्पन्न हुए। प्रतिहार को प्रतिहर्ता नाम का बुद्धिमान् और विख्यात पुत्र हुआ ।।५३-५५।। प्रतिहर्ता को उन्नेता, उन्नेता को भुव, भुव को उद्गीथ, उद्गीथ को प्रतावि, प्रतावि को विभु,

उन्नेता प्रतिहर्तुस्तु भुवस्तस्य सुतः स्मृतः। उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रताविश्चापि तत्सुतः ।।५६।।
प्रतावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः। पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ।।५७।।
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट्। विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ।।५८।।
धीमतश्च महान्पुत्रो महतश्चापि भौवनः। भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।५९।।
अरिजस्य रजः पुत्रः शतजिद्रजसो मतः। तस्य पुत्रशतं त्वासीद्राजानः सर्व एव ते ।।६०।।
विश्वज्योतिष्प्रधाना यैस्तैरिमा वर्धिताः प्रजाः। तैरिदं भारतं वर्षं (*सप्तखण्डं कृतं पुरा ।।६१।।
तेषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं भारती धरा। कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यानेकसप्ततिः ।।६२।।
येऽतीतास्तैर्युगैः सार्धं राजानस्ते तदन्वयाः। स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं) शतशोऽथ सहस्रशः ।।६३।।
एष स्वायंभुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत्। ऋषिभिर्दैवतैश्चापि पितृगन्धर्वराक्षसैः ।।६४।।
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः। तेषां सृष्टिरियं लोके युगैः सह विवर्तते ।।६५।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते स्वायंभुववंशानुकीर्तनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

विभु को पृथु, पृथु को नक्त, नक्त को गय, गय को नर, नर को विराट्, विराट् को महावीर्य, महावीर्य को धीमान्, धीमान् को महान्, महान् को भौवन, भौवन को त्वष्टा, त्वष्टा को अरिज, अरिज को रजस, रजस को शतजित् और शतजित् को सौ राजा पुत्र हुए ।।५६–६०।। संसार भर में अपनी कीर्ति को फैलानेवाले उन राजाओं ने यहाँ की प्रजाओं को समृद्ध किया और उन्होंने ही भारतवर्ष को सात खण्डों में पहले विभक्त किया था। उन्हीं के वंशजों द्वारा यह भारत भूमि कृत, त्रेता आदि इकहत्तर चौयुगी में उपभुक्त हुई है ।।६१–६३।। पहले स्वायंभुव मन्वन्तर के काल में सहस्रों राजागण जो उन युगों के साथ अतीत हो गये हैं, वे भी उन्हीं के वंशज थे। ऐसा स्वायंभुव मनु का वंश-विस्तार है। ऋषियों, देवों, पितरों, गन्धर्वों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, मनुष्यों, मृगों और पक्षियों के साथ उन्हीं के वंशजों ने इस जगत् को पूर्ण किया है। संसार में उनकी यह सृष्टि युगों के साथ चलती रहेगी ।।६४–६५।।

श्रीवायुमहापुराण का स्वायंभुव वंश-वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

एवं प्रजासंनिवेशं श्रुत्वा च ऋषिपुंगवः। पप्रच्छ निपुणः सूतं पृथिव्यायामविस्तरौ ।।१।।
कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वताश्च कति प्रभो। कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च का स्मृताः ।।२।।
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकौ तथैव च। पर्यायपारिमाण्यं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा ।।
(*एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथा तथा ।।३।।

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम्। संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ।।४।।
यावन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च याः स्मृताः। महाभूतप्रमाणं च लोकालोकौ तथैव च ।।
पर्यायपारिमाण्यं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा) ।।५।।
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि वै। न शक्यन्ते प्रमाणेन वक्तुं वर्षशतैरपि ।।६।।
सप्तद्वीपं तु वक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह। येषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।।७।।

अध्याय ३४

जम्बूद्वीप का वर्णन

ऋषिगण बोले—पंडित ऋषिश्रेष्ठगण जब इस प्रकार प्रजाओं की कथा सुन चुके, तब सूत से पूछा कि पृथिवी की परिधि और विस्तार क्या है? प्रभो! कितने द्वीप और समुद्र हैं? कितने पर्वत, कितने देश हैं? उनमें कितनी नदियाँ हैं, और वे किन-किन नामों से प्रसिद्ध हैं? लोकालोक का प्रमाण क्या है? महाभूतों का प्रमाण क्या है? चन्द्र-सूर्य की गति तथा उनकी परिधि और विस्तार क्या है? यह हम लोगों को विस्तार के साथ क्रमशः सुनाइये ।।१-३।।

सूत जी बोले—इसके आगे हम पृथ्वी की परिधि, विस्तार, समुद्रों की संख्या, द्वीपों का विस्तार, देश और वहाँ की नदियों के नाम, महाभूतों का प्रमाण, लोकालोक तथा सूर्य-चन्द्रों की गति और उनका परिमाण क्रमशः कहते हैं ।।४-५।। सातों द्वीपों के अन्तर्गत हजारों उपद्वीप हैं, जिनका प्रमाण के साथ पृथक्-पृथक् वर्णन सौ वर्षों में भी नहीं हो सकता है ।।६।। इस समय चन्द्र, सूर्य और ग्रहों के साथ केवल सातों द्वीपों का ही वर्णन करते हैं। मनुष्य गण तर्क द्वारा इनका प्रमाण कहा करते हैं किन्तु जो अचिन्तनीय विषय हैं, उनके सम्बन्ध में तर्क नहीं करना चाहिए। जो प्रकृति

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण भावयेत् । प्रकृतिभ्यः परं यच्च तन्नित्यं च प्रचक्ष्य (क्ष) ते ।।८।।
नववर्षं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथा तथा । विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तान्निबोधत ।।९।।
शतमेकं सहस्त्राणां योजनानां प्रमाणतः । नानाजनपदाकीर्णैः पुरैश्च विविधैः शुभैः ।।१०।।
सिद्धचारणगन्धर्वपर्वतैरुपशोभितम् । सर्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ।।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः पर्वतैस्तथा ।।११।।
जम्बूद्वीपः पृथुः श्रीमान्सर्वतः परिवारितः। नवभिश्चाऽऽवृतः सर्वैर्भुवनैर्भूतभावनैः ।।
(+लावणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः) ।।१२।।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्समेन तु समन्ततः । प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्वताः ।।
अवगाढा उभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।।१३।।
हिमप्रायश्च हिमवान्हेमकूटश्च हेमवान् । तरुणादित्यवर्णाभो हैरण्यो निषधः स्मृतः ।।१४।।
चातुर्वर्णस्तु सौवर्णो मेरुश्चोच्चतमः स्मृतः । प्लुताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्त्रः समुच्छ्रितः ।।१५।।
नानावर्णस्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः । नाभिबन्धनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।।१६।।
पूर्वतः श्वेतवर्णोऽसौ ब्राह्मण्यं तस्य तेन तत् । पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।।१७।।

से अतीत परम वस्तु है, वही नित्य कहलाता है ।।७-८।। जो हो, हम नौ देशोंवाले जम्बूद्वीप का यथारूप वर्णन करते हैं। वृत्ताकार इस द्वीप का विस्तार जितने योजनों का है, सो सुनिये ।।९।। इस द्वीप का परिमाण एक हजार एक सौ योजन का है, इस द्वीप में कितने ही देश हैं और विविध भाँति के सुन्दर पुरों से तथा सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं पर्वतों से सुशोभित हैं। यहाँ के पर्वतों में नाना प्रकार की धातुएँ भरी पड़ी हैं, शिलाखण्डों से और पर्वतीय नदियों से सब पर्वत सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार यह शोभासम्पन्न विशाल जम्बूद्वीप नौ देशों में विभक्त और भूतभावन देवों द्वारा व्याप्त है तथा चारों ओर लवंण सागर से घिरा हुआ है ।।१०-१२।। चारों ओर से जम्बूद्वीप के विस्तार के ही अनुसार पूर्व की ओर अधिक लम्बे और सुन्दर शिखरों से युक्त छह वर्ष पर्वत हैं। वे सब दोनों ओर फैलकर पूर्व-पश्चिम समुद्रों में डूबे हुए हैं ।।१३।। इन छहों देश-विभाजक पर्वतों के नाम हैं—तुषारावृत, हिमवान्, हेममय, हेमकूट, बाल-सूर्य के समान सुनहला निषध और चातुर्वर्णमय सुवर्णमण्डित मेरु। मेरु सबसे उच्चतम कहा गया है। इसका प्रमाण प्लुताकृति (ऊबड़-खाबड़), चौकोर और बहुत ऊँचा है। इसके चारों ओर भिन्न-भिन्न वर्ण के मनुष्य निवास करते हैं; अतएव यह प्रजापति के गुणों से युक्त है। अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के नाभि बन्धन से यह उत्पन्न हुआ है ।।१४-१६।। पूर्व में यह श्वेत वर्ण है; अतः उससे इसका ब्राह्मणत्व जाना जाता है। दक्षिण ओर से यह पीत है; अतः उससे इसका वैश्यत्व प्रकट होता है ।।१७।। यह

+ इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः।

भृङ्गपत्रनिभश्चासौ पश्चिमेन महाबलः। तेनास्य शूद्रता दृष्टा मेरोर्नानार्थकारणात् ।।१८।।
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः। तेनास्य क्षत्रता च स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः ।।
व्यक्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ।।१९।।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतशृङ्गो हिरणमयः। मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भस्तु शृङ्गवान् ।।२०।।
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्त्र उच्यते ।।२१।।
मध्ये त्विलावृतं यस्तु महामेरोः समन्ततः। नवैव तु सहस्त्राणि विस्तीर्णः पर्वतस्तु सः ।।
मध्ये तस्य महामेरोर्निर्धूम इव पावकः ।।२२।।
वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम्। वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां ये वर्षपर्वताः ।।
द्वे द्वे सहस्त्रे विस्तीर्णा योजनानि समुच्छ्रयात् ।।२३।।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते। योजनानां सहस्त्राणि शते द्वे मध्यमौ गिरी ।।२४।।
नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु येऽपरे। श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमावाञ्शृङ्गवांश्च यः ।।२५।।
नवतिर्द्वाविशीतिद्वौ सहस्त्राण्यायतास्तु ये। तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ।।२६।।
संपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि च। संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ।।
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि भागशः ।।२७।।

महाबली मेरु पश्चिम की ओर भृंगपत्र की तरह काला है; अतः उससे इसकी शूद्रता देखी जाती है और उत्तर की ओर यह स्वभाव से ही लाल वर्ण का है, उससे इसका क्षत्रिय होना व्यक्त होता है। नाना वर्णमय होने के कारण यह चातुर्वर्ण्य कहा गया है। स्वभाव, वर्ण और परिमाण के कारण यह व्यक्त कहा गया है ।।१८-१९।। नील गिरि वैदूर्य (मूँगा) और हिरण्यमय है। इसके शिखर उज्ज्वल हैं। मयूरपिच्छ की तरह यह सुन्दर है और इसके शिखर सुवर्णमय हैं। ये पर्वतराज हैं, जो सिद्ध-चारणों से सेवित हैं। इनका अन्तर विष्कम्भ नौ हजार योजन कहा जाता है। इन पर्वतों के बीच इलावृत नाम का देश है, जिसका वर्ष पर्वत नौ हजार योजन का है और जो मेरु को चारों ओर से घेरे हुए हैं। मेरु इनके बीच वैसा ही मालूम पड़ता है, जैसे बिना धुएँ की अग्नि ।।२०-२२।। मेरु के दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में दक्षिण वेदी और उत्तर वेदी है। इनके बीच जो सात देश हैं, उनके वर्ष पर्वतों का विस्तार दो-दो हजार योजनों का है। उनका विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार के अनुसार कहा जाता है अथवा जम्बूद्वीप से वे अधिक बड़े हैं। उनके मध्य में स्थित नील और मध्य नामक पर्वत दो हजार दो सौ योजनों के हैं। इनकी अपेक्षा और जो श्वेत, हेमकूट, हिमवान्, शृङ्गवान् आदि हैं, वे छोटे हैं ।।२३-२५।। इन पर्वतों का परिमाण बयासी हजार बानबे योजनों का है। उनके बीच जो देश हैं, वे सात भागों में विभक्त हैं। वे सब देश दुर्गम पर्वतों से घिरे हुए हैं और अनेकानेक नदियों से परस्पर अगम्य हैं। वहाँ नाना जाति के जीव विभाग क्रम से निवास करते हैं ।।२६-२७।। यह हैमवत वर्ष (देश) भारत के नाम से विख्यात है। इसके आगे

इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्। हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम् ।।२८।।
नैषधं हेमकूटं तु हरिवर्षं तदुच्यते। हरिवर्षात्परं चैव मेरोश्च तदिलावृतम् ।।२९।।
इलावृत्तप (तात्प) रं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्। रम्यात्परतरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरणमयम् ।।
हिरणमयात्परं चापि शृङ्ग्गवांस्तु कुरु स्मृतम् ।।३०।।
धनुःसंस्थे च विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ।।३१।।
अर्वाक्च निषधस्याथ वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्। परं नीलवतो यच्च वेद्यर्धं तु तदुत्तरम् ।।
वेद्यर्धे दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे ।।३२।।
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम्। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।।३३।।
उद्गायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः। योजनानां सहस्त्रोरुरानीलनिषधा यतः ।।
(*आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्त्राणि प्रकीर्तितः ।।३४।।
तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गन्धमादनः। आयामादथ विस्तारान्माल्यवानिति विश्रुतः) ।।३५।।
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुरुत्तमपर्वतः। चतुर्वर्णः सुसौवर्णश्चतुरस्त्रः समुच्छ्रितः ।।
अव्यक्ता धातवः सर्वे समुत्पन्ना जलादयः ।।३६।।
अव्यक्तात्पृथिवीपद्मं मेरुपर्वतकर्णिकम्। चतुष्पथं समुत्पन्नं व्यक्तं पञ्चगुणं महत् ।।३७।।
ततः सर्वाः समुत्पन्ना वृत्तयो द्विजसत्तमाः। नैककल्पार्जितैः पुण्यैर्विविधैः प्रागुपार्जितैः ।।३८।।

हेमकूट और हेमकूट के आगे किंपुरुष देश है ।।२८।। नैषध हेमकूट हरिवर्ष कहलाता है। हरिवर्ष और मेरु के आगे इलावृत है। इलावृत के आगे नील रम्यक देश है। रम्यक के आगे श्वेत देश है, जो हिरण्मय भी कहलाता है। हिरण्मय के आगे शृङ्ग्गवान् है, जो कुरु कहलाता है ।।२९-३०।। दक्षिणोत्तर दिशाओं के दो देश धनुषाकार में स्थित हैं वहाँ चार बड़े-बड़े देश हैं; किन्तु, इलावृत मध्यम है ।।३१।। निषध पर्वत के पूर्व भाग में दक्षिण आधी वेदी है और नील पर्वत के पर भाग में उत्तर आधी वेदी है। दक्षिण वेद्यर्ध में तीन और उत्तर वेद्यर्द्ध में भी तीन देश स्थित हैं ।।३२।। उन दोनों के बीच अर्थात् नील के दक्षिण और निषध के उत्तर मेरु के मध्य इलावृत स्थित है। महाशैल माल्यवान् नाम का पर्वत उत्तर दिशा में फैला हुआ है। निषध और नील पर्वतों से यह हजार योजन उन्नत है। इसका विस्तार तैंतालीस हजार योजन है ।।३३-३४।। इसके पश्चिम गन्धमादन नाम का पर्वत है। यह लम्बाई और विस्तार में माल्यवान् के ही तुल्य है ।।३५।। दोनों परिमण्डलों (घेरे) के बीच मेरु ही उत्तम पर्वत है। क्योंकि वह चतुर्वर्णमय है, चारों ओर से उन्नत, सुन्दर और अव्यक्त धातुओं से भरा है। जल की भी वहाँ कमी नहीं है। अव्यक्त से पृथिवीपद्म उत्पन्न हुआ है और मेरु गिरि उसका कर्णिका स्थान है। इसी से चारों पथ उत्पन्न हुए हैं और पाँचों महान् गुण प्रकट हुए हैं ।।३६-३७।। इसी से सभी वृत्तियाँ और द्विजगण उत्पन्न हुए हैं। अनेक कल्पों में पहले जिन लोगों ने विविध पुण्यों का उपार्जन किया है,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

कृतात्मभिर्विनीतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः। महादेवो महायोगी जगज्ज्येष्ठो महेश्वरः ।।
सर्वलोकगतोऽनन्तो ह्यमूर्तित्वादजायत ।।३९।।
न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोस्थिसंभवा। योगाच्चैवेश्वरत्वाच्च सर्वात्मा(त्म)गत एव सः ।।४०।।
तन्निमित्तं समुत्पन्नं लोकपद्मं सनातनम्। कल्पशेषस्य तस्याऽऽदौ कालस्य गतिरीदृशी ।।४१।।
तस्मिन्पद्मे समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः। प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा ईशानो जगतः प्रभुः ।।४२।।
तस्य बीजनिसर्गो हि पुष्करस्य यथार्थवत्। कृत्स्नः प्रजानिसर्गेण विस्तरेणेह कथ्यते ।।४३।।
यदब्जं वैष्णवं कार्यं ततस्तन्नाभितोऽभवत्। पद्माकारा समुत्पन्ना पृथिवी सवनद्रुमा ।।४४।।
तदस्य लोकपद्मस्य विस्तरेण प्रकाशितम्। वर्णमानं विभागेन क्रमशः शृणुत द्विजाः ।।४५।।
महाद्वीपास्तु विख्याताश्चत्वारः पत्रसंस्थिताः। ततः कर्णिकसंस्थानो मेरुर्नाम महाबलः ।।४६।।
नानावर्णेषु पार्श्वेषु पूर्वतः श्वेत उच्यते। पीतं तु दक्षिणं तस्य शृङ्गं कृष्णं तथाऽपरम् ।।४७।।
उत्तरं तस्य रक्तं वै शोभिवर्णसमन्वितम्। मेरुस्तु शोभते शुभ्रो राजवत्स तु धिष्ठितः ।।४८।।
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः। चतुरशीतिसाहस्त्र उत्सेधेन प्रकीर्तितः ।।४९।।

वे ही कृतात्मा यहाँ निवास करते हैं। विनीतात्मा, महात्मा, पुरुषोत्तम, महादेव, महायोगी, जगज्ज्येष्ठ, सर्वलोक व्यापक अनन्त महेश्वर अमूर्त रूप में यहाँ ही उत्पन्न हुए हैं ।।३८-३९।। मांस, मेद और अस्थि से उत्पन्न होनेवाली प्राकृत मूर्ति उन्हें नहीं है। ऐश्वर्य और योग प्रभाव से वे सर्वान्तर्यामी हैं। उन्हीं के लिए यह सनातन संसार पद्म उत्पन्न हुआ है। कल्पान्त में शेष रहनेवाले कालस्वरूप महादेव की ऐसी ही आदि गति है। उसी पद्म से देवाधिदेव, चतुर्मुख, संसार के स्वामी, ईशान, प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं ।।४०-४२।। उस कमल की बीज-सृष्टि सत्यमूलक है। अब सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि को हम विस्तार के साथ कहते हैं। वह कमल जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ है उसी से वन-वृक्षों से सुशोभित यह पृथ्वी पद्म के रूप में समुत्पन्न हुई है। वह लोकपद्म किस तरह प्रकाशित हुआ उसका विभागानुसार क्रमशः वर्णन हम विस्तार के साथ कह रहे हैं। ब्राह्मणो! आप लोग सुनिये ।।४३-४५।। पंखड़ी की तरह चार विख्यात महाद्वीप उसके चारों ओर हैं और बीच में महाबली मेरु कर्णिका (पद्मकेसर) की तरह है। मेरु का पार्श्व प्रदेश नाना वर्णों का है। पूर्व में श्वेत, दक्षिण में पीत, उत्तर में रक्त और शिखर में कृष्ण वर्ण है। इस प्रकार शोभा बढ़ानेवाले वर्णों से समन्वित होकर स्वयं शुभ्र वर्ण का मेरु राजा की तरह वर्तमान है ।।४६-४८।। उसकी कान्ति बाल-सूर्य की तरह चमक रही है, जान पड़ता है कि जैसे बिना धुएँ की आग हो। वह चौरासी हजार योजन ऊँचा कहा गया है। इसका विस्तार सोलह योजनों का है और उतने ही परिमाण में यह पृथ्वी में भी प्रविष्ट है। इसके मस्तक का विस्तार बारह योजनों का है और पूरब की ओर यह बाण के रूप में दीख पड़ता है। इसके चारों ओर की परिधि इसके विस्तार से तीन गुनी अधिक है। मण्डल के प्रमाण से इसके मूर्धज आधे हैं। उस त्रिकोण शिखर का परिमाण अड़तालीस हजार योजन है। चारों ओर इसका विस्तार चौंसठ हजार योजन है। यह पर्वत अत्यन्त दिव्य है। दिव्योषधियों से युक्त और सुन्दर सुवर्णमय भुवनों से घिरा हुआ

प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतस्तावदेव तु । स शरावस्थितः पूर्वं द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।।५०।।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः । (*मण्डलेन प्रमाणेन त्र्यस्त्रेऽर्धं तु तदिष्यते ।।५१।।
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि योजनानां+) समन्ततः । अष्टाभिरधिकानि स्युस्त्र्यस्त्रे मानं प्रकीर्तितम् ।।५२।।
चतुरस्त्रेण मानेन परिणाहः समन्ततः । (चतुःषष्टिः सहस्त्राणि योजनानां) विधीयते ।।५३।।
स पर्वतो महान्दिव्यो दिव्योषधिसमन्वितः । नैवभूरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ।।५४।।
तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः । शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसां गणाः ।।५५।।
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः । चत्वारो यस्य देशा वै नानापार्श्वेष्वधिष्ठिताः ।।५६।।
भद्राश्वो भरतश्चैव केतुमालश्च पश्चिमः । उत्तरा कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।।५७।।
कर्णिका तस्य पद्मस्य समन्तात्परिमण्डला । योजनानां सहस्त्राणि नवतिः षट् प्रकीर्तिताः ।।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च अन्तरा (र) न्तरधिष्ठिताः ।।५८।।
त्रिशतं च सहस्त्राणि योजनानां प्रमाणतः । तस्य केशरजालानि विस्तीर्णानि समन्ततः ।।५९।।
शतसाहस्त्रिकामाया साशीतिपृथुलायता । चत्वारि तस्य पत्राणि योजनानां चतुर्दिशम् ।।६०।।
तत्र याऽसौ मया पूर्वं कर्णिकेत्यभिशब्दिता । तां वर्ण्यमानामेकाग्राः समासेन निबोधत ।।६१।।
शताश्रिमेनं मेनेऽत्रिः सहस्त्राश्रिमृषिर्भृगुः । अष्टाश्रिमेनं सावर्णिश्चतुरस्त्रं तु भागुरिः ।।६२।।
व (वा) र्षायणिस्तु सामुद्रं शरावं चैव गालवः । ऊर्ध्ववेणीकृतं गार्ग्यः क्रोष्टुकिः परिमण्डलम् ।।६३।।

है ।।४९-५४।। उस शैलराज के ऊपर सुन्दरी अप्सराओं के गण, सभी देवगण एवं गन्धर्व, उरग राक्षसादि देखे जाते हैं। वह मेरु जीवों की सृष्टि करनेवाले भुवनों से घिरा हुआ है एवं उनके चारों ओर चार देश बसे हुए हैं। उनके नाम ये हैं–भद्राश्व, भरत, पश्चिम केतुमाल और उत्तर कुरु। इस उत्तर कुरु में पुण्यवान् लोग रहा करते हैं ।।५५-५७।। चारों ओर से परिमण्डलाकार उस पद्म की कर्णिका (पद्मकोष) छियानबे हजार योजनों की है। उसका अन्तराल चौरासी योजनों और उनके केसर जाल तीन सौ हजार योजनों में फैले हुए हैं। वे चारों पद्म-पत्र जो चारों दिशाओं में फैले हुए हैं उनका आयाम-विस्तार सौ हजार अस्सी योजनों का है। मुनिगण! हमने पहले जिसको कर्णिका कहा है, उसका संक्षेप से वर्णन करते हैं, आप लोग एकाग्र मन से सुनिये ।।५८-६१।। अत्रि मुनि उसे शताश्रि और भृगु ऋषि सहस्त्राश्रि मानते हैं। सावर्णि उसे अष्टाश्रि मानते हैं और भागुरि चतुरस्त्र। वार्षायणि उसे समुद्राकार मानते हैं और गालव शरावाकार। गार्ग्य उसे ऊर्ध्व वेणी के आकार का और क्रोष्टुकि परिमण्डलाकार मानते हैं ।।६२-६३।। उस पर्वताधिपति के जिस-जिस पार्श्व भाग में जो ऋषि रहते हैं, वे उसे वैसा ही मानते हैं। इसे अच्छी तरह से केवल एक ब्रह्मा ही जानते हैं। उसे ही पर्वतों में उत्तम मेरु समझिये, जो मणियों और रत्नों से भरा हुआ है जो विविध भाँति के वर्णों की प्रभा से युक्त, अनेक वर्ण को

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

यद्यद्यस्य हि यत्पार्श्वं पर्वताधिपतेर्ऋषिः । तत्तदेवास्य वेदासौ ब्रह्मैनं वेद कृत्स्नशः ।।६४।।
मणिरत्नमयं चित्रं नानावर्णप्रभायुतम् । अनेकवर्णनिचयं सौवर्णमरुणप्रभम् ।।६५।।
कान्तं सहस्रपर्वाणं सहस्रोदककन्दरम् । सहस्रशतपत्रं तं विद्धि मेरुं नगोत्तमम् ।।६६।।
मणिरत्नार्पितस्तम्भैर्मणिचित्रितवेदिकैः । सुवर्णमणिचित्राङ्गं तथा विद्रुमतोरणैः ।।६७।।
विमानयानैः श्रीमद्भिः शतसंख्यैर्दिवौकसाम् । प्रभादीपितपर्यन्तं मेरुं पर्वणि पर्वणि ।।६८।।
तस्य पर्वसहस्रेऽस्मिन्नानाश्रयविभूषिते । सर्वदेवनिकायानि संनिविष्टान्यनेकशः ।।६९।।
तमावसच्चोर्ध्वतले देवदेवश्चतुर्मुखः । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो वरिष्ठस्त्रिदिवौकसाम् ।।७०।।
महाभुवनसंपूर्णैः सर्वैः कामफलप्रदैः । महापुरसहस्रैस्तं दिक्ष्वनेकसमाकुलम् ।।७१।।
तत्र ब्रह्मसभा रम्या ब्रह्मर्षिगणसेविता । नाम्ना मनोवती नाम सर्वलोकेषु विश्रुता ।।७२।।
तत्रेशानस्य देवस्य सहस्रादित्यवर्चसम् । महाविमानसंस्थस्य महिम्ना वर्तते सदा ।।७३।।
तत्र सर्षिगणा देवाश्चतुर्वक्त्रस्य ते तदा । तदेव तेजसां राशिर्देवानां तत्र कीर्त्यते ।।७४।।
तत्राऽऽस्ते श्रीपतिः श्रीमान्सहस्राक्षः पुरंदरः । उपास्यानस्त्रिदशैर्महायोगैः सुरर्षिभिः ।।७५।।
तत्र लोकपतेः स्थानमादित्यसमवर्चसः । महेन्द्रस्य महाराज्ञः सर्वसिद्धैर्नमस्कृतम् ।।७६।।
तमिन्द्रलोकं लोकस्य ऋद्ध्या परमया युतम् । दीप्यते त्वमरश्रेष्ठैस्त्रिदशैर्नित्यसेवितम् ।।७७।।

धारण किये हुए सुवर्ण और अरुण की कान्ति के समान शोभाशाली है ।।६४–६५।। कमनीय, हजार सन्धियों या स्तरोंवाला, जल फेंकनेवाली हजार कन्दराओं से युक्त और हजारों पद्म पुष्पों से शोभायमान है। मेरु की प्रत्येक ग्रन्थि में (गण्डशैल) श्रीसम्पन्न सैकड़ों देवगण विमान–विहार द्वारा उसे दीप्तियुक्त करते हैं। मेरु स्वयं सुवर्ण–मणियों से अंग–अंग में खचित है और देवों के विमान भी मणि–रत्नों के खम्भों से ही बनाये गये हैं; उनके चबूतरों में भी मणियों से ही पच्चीकारी की गयी है। उन पर मूँगे के तोरण झूल रहे हैं, इससे मेरु की प्रभा पार्श्व भाग में भी छिटकती रहती है ।।६६–६८।। मेरु के सहस्रों गण्डशैल पर विविध भाँति के जीव आश्रय लिये हुए हैं और अनेकानेक देवगण वहाँ निवास कर रहे हैं। देवताओं में अग्रगण्य और ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ देवाधिप चतुर्मुख ब्रह्मा भी स्वयं उसके ऊपर के एक भाग में निवास करते हैं। सम्पूर्ण कर्मफल को देनेवाले महाभुवनों से परिपूर्ण हजारों पुर इस पर्वत पर विद्यमान हैं, जो सभी दिशाओं में फैले हुए हैं ।।६९–७१।। वहाँ ब्रह्मर्षियों से सेवित एक मनोहारिणी ब्रह्मसभा है जिसका नाम मनोवती है और जो सभी लोकों में विख्यात है ।।७२।। इस पर्वत पर महाविमान में स्थित ईशान देव का भी सहस्र सूर्यों के समान देदीप्यमान आवास–स्थान है, जो उनकी महिमा के ही अनुरूप है ।।७३।। वहाँ देवता, ऋषि और स्वयं चतुरानन विराजते रहते हैं। देवों द्वारा अधिष्ठित वह स्थान तेजों की राशि कहा गया है ।।७४।। यहाँ शोभासम्पन्न श्रीमान् सहस्राक्ष इन्द्र भी निवास करते हैं, जिनकी महायोगी देवर्षि और देव सेवा करते हैं ।।७५।। वहाँ सूर्य के समान तेजस्वी लोकपति महाराज महेन्द्र का स्थान है, जो निखिल सिद्धों द्वारा वन्दनीय हैं। यह इन्द्रलोक संसार की श्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त और अमर पुंगवों से नित्य सेवित होने के कारण दीप्त है ।।७६–७७।। पूरब–दक्षिण की ओर उसके दूसरे किनारे पर विविध धातुओं

द्वितीयेऽप्यन्तरतटे वैदिश्ये पूर्वदक्षिणे । नानाधातुशतैश्चित्रैः सुरम्यमतितेजसम् ।।७८।।
नैकरत्नार्थिततलमनेकस्तम्भसंयुतम् । जाम्बूनदकृतोद्यानं नानारत्नसुवेदिकम् ।।७९।।
कूटागारैर्विनिक्षिप्तमनेकैर्भवनोत्तमैः । महाविमानं प्रथितं भास्वरं जातवेदसम् ।।८०।।
सा हि तेजोवती नाम हुताशस्य महासभा । साक्षात्तत्र सुरश्रेष्ठः सर्वदेवमुखोऽनलः ।।८१।।
शिखाशतसहस्राढ्यो ज्वालामाली विभावसुः । स्तूयते हूयते चैव तत्र सर्षिगणैः सुरैः ।।८२।।
अधिदैवकृतं विप्रैर्विशेषः स तु उच्यते । सविभागं च तेजश्च सर्व ए (मे) व न संशयः ।।८३।।
भोगान्तरमनुप्राप्त एकतेजोविभुः स्मृतः । पृथक्त्वं च हि युक्त्या तु कार्यकारणमिश्रितम् ।।८४।।
तमग्निं लोकलोकज्ञैस्तद्वीर्यैस्तत्पराक्रमैः । महात्मभिर्महासिद्धैर्महाभागैर्नमस्कृतम् ।।८५।।
तृतीयेऽप्यन्तरतटे एवमेव महासभा । वैवस्वतस्य विज्ञेया लोके ख्याता सुसंयमा ।।८६।।
तथा चतुर्थदिग्देशे नैर्ऋत्याधिपतेः सभा । नाम्ना कृष्णाङ्गना नाम विरूपाक्षस्य धीमतः ।।८७।।
पञ्चमेऽप्यन्तरतटे एवमेव महासभा । वैवस्वतस्य विज्ञेया नाम्ना शुभवती सती ।।
उदकाधिपतेः ख्याता वरुणस्य महात्मनः ।।८८।।
परोत्तरे तथा देशे षष्ठेऽन्तरतटे शिवे । वायोर्गन्धवती नाम सभा सर्वगुणोत्तरा ।।८९।।
सप्तमेऽयन्तरतटे नक्षत्राधिपतेः सभा । नाम्ना महोदया नाम शुद्धवैदूर्यवेदिका ।।९०।।
तथाऽष्टमेऽन्तरतटे ईशानस्य महात्मनः । यशोवती नाम सभा सप्तकाञ्चनसुप्रभा ।।९१।।

से चित्रित सुन्दर-सा चमचमाता हुआ अग्निदेव का एक भास्वर विमान विद्यमान है, जिसमें रत्नमणियों से जड़ी हुई कितनी ही छतें हैं, जो अनेकानेक खंभों पर टिकी हुई हैं। उसमें सोने का ही उद्यान है, जिसमें रत्नमणियों की क्यारियाँ बनी हैं, बहुतेरे कूटागार और उत्तम-उत्तम भवन बने हैं। अग्निदेव की ऐसी ही तेजोवती नाम की महासभा है। वहीं साक्षात् अग्निदेव विराजमान रहते हैं। ये ही अग्निदेव देवों के मुख हैं। जो हजारों शिखावाले ज्वालामाली अग्निदेवों और ऋषियों द्वारा वन्दनीय हैं और हवन द्वारा पूजित हैं ।।७८-८२।। ब्राह्मण लोग उन्हें विशिष्ट अधिदेव कहा करते हैं। अग्नि ही सम्पूर्ण तेजों की समष्टि हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।।८३।। अनेक भागों को प्राप्तकर वे अद्वितीय तेजोनिधि विभु रूप में वर्तमान हैं। किन्तु कार्य-कारण के अनुसार उनका युक्तिपूर्वक विभाग किया जाता है। इसी प्रकार मेरु के तीसरे तट पर वैवस्वत की भी एक महासभा है, जो संसार में सुसंयमा नाम से विख्यात है ।।८४-८६।। चौथी ओर रक्षोपति धीमान् विरूपाक्ष की कृष्णाङ्गना नाम की सभा है। इसी प्रकार पाँचवें तट पर वैवस्वत की शुभवती नाम की महासभा है। वहीं जलाधिपति महात्मा वरुण की सती नाम की महासभा है ।।८७-८८।। इस सभा की उत्तर दिशा में छठे तट पर वायु की सर्वगुणसम्पन्न गन्धवती नाम की सभा है। मेरु के सातवें तट पर चन्द्रमा की महोदया नाम की सभा है, जिसमें शुद्ध वैदूर्य मणि की वेदी बनी हुई है ।।८९-९०।। आठवें स्तर पर महात्मा ईशान की तपाये सोने की तरह चमकनेवाली यशोवती नाम की सभा है ।।९१।। इन्द्र आदि आठ प्रमुख महात्मा देवों के ये आठ विमान आठों दिशाओं में कहे गये हैं। महाभाग्यशाली

महाविमानान्येतानि दिक्ष्वष्टासु शुभानि हि। अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम् ।।९२।।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरप्सरोभिर्महोरगैः । सेवितानि महाभागैरुपस्थानगतैः सदा ।।९३।।
नाकपृष्ठं दिवं स्वर्गमिति यैः परिपठ्यते। वेदवेदाङ्गविद्भिर्हि शब्दैः पर्यायवाचकैः ।।९४।।
तदेतत्सर्वदेवानामधिवासे कृतात्मनाम्। देवलोको गिरौ तस्मिन्सर्वश्रुतिषु गीयते ।।९५।।
नियमैर्विविधैर्यज्ञैर्बहुभिर्नियतात्मभिः । पुण्यैरन्यैश्च विविधैर्नैकजातिशतार्जितैः ।।
प्राप्नोति देवलोकं तं स स्वर्ग इति चोच्यते ।।९६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते जम्बूद्वीपवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच

यत्तद्वै कर्णिकामूलमिति वै संप्रकीर्तितम्। तद्योजनसहस्राणां सप्ततीनामधः स्मृतम् ।।१।।
चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च सहस्राण्यत्र मण्डलम्। शैलराजवृतं रम्यं मेरुमूलमिति श्रुतिः ।।२।।
तेषां गिरिसहस्राणामनेकेषु महोच्छ्रिताः। दिक्षु सर्वासु पर्यन्तैर्मर्यादाः पर्वताः स्मृताः ।।३।।

ऋषिगण, देवगण, गन्धर्वों, अप्सराओं और महासर्पों से ये सदा सेवित हैं ।।९२-९३।। वेदवेदांग जाननेवाले नाक, दिव, स्वर्ग आदि पर्यायवाची शब्दों से जिसे कहते हैं, वह कृतात्मा देवों का निवास-स्थान यही है। वेदों में भी कहा गया है कि इसी पर्वत पर देवलोक है। यही देवलोक स्वर्ग कहलाता है ।।९४-९६।।

श्रीवायुमहापुराण का जम्बद्वीप वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४।।

अध्याय ३५

जम्बूद्वीप का वर्णन

सूत जी बोले-मैंने पहले जिस कर्णिकामूल की चर्चा की है, उनके नीचे का भाग सात हजार योजनों का है ।।१।। उनके मण्डल का परिमाण अड़तालीस हजार योजनों का है। वह शैलराज को चारों ओर से घेरे हुए है और मनोहर मेरुमूल के नाम से प्रसिद्ध है ।।२।। उन हजारों पर्वतों में अनेक बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं, जो सभी दिशाओं में फैले हुए हैं एवं मर्यादा पर्वत कहलाते हैं। ये ही पर्वत सीमा-विभाजक हैं ।।३।। ये पर्वत निकुंज, कन्दर, नदी, गुहा और झरनों से शोभित

निकुञ्जकन्दरनदीगुहानिर्झरशोभिताः । बहुप्रासादकटकैस्तटैश्च कुसुमोज्ज्वलैः ।।४।।
नितम्बपुष्पमालौघैः सानुभिर्धातुमण्डितैः । शिखरैर्हेमकपिलैर्नैकप्रस्रवणावृतैः ।।
शोभिता गिरयः सर्वे पुष्टै रत्नसमर्पितैः ।।५।।
विहंगशतसंपुष्टैः कुञ्जैरनुपमैरपि । सिंहशार्दूलशरभैर्नैकैश्चामरवारणैः ।।
नानावर्णाकृतिधरैः सेविता विविधैर्नगैः ।।६।।
सप्ताश्वहरिकृष्णाङ्गमेकैकं दशपर्वतम् । बाह्यमाभ्यन्तरा ये तु त्रिवाहास्तु समाः स्मृतः ।।७।।
जष्ठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ । तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।।८।।
कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणोत्तरपर्वतौ । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ।।९।।
योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रांशुः कनकपर्वतः । विष्कम्भं तस्य वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।।१०।।
महापादास्तु चत्वारो मेरोरथ चतुर्दिशम् । यैर्धृतत्वान्न चलति सप्तद्वीपवती मही ।।११।।
दशयोजनसाहस्र आयामस्तेषु पठ्यते । देवगन्धर्वयक्षाणां नानारत्नोपशोभिताः ।।
नैकनिर्भुरवप्राढ्या रम्यकन्दरनिर्मिताः ।।१२।।
नितम्बपुष्पकादम्बैः शोभिताश्चित्रसानवः । मनःशिलादरीभिश्च हरितालतलैस्तथा ।।१३।।
सुवर्णमणिचित्राभिर्गुहाभिश्च समन्ततः । शुद्धहिङ्गुलकप्रख्यैः काञ्चनैर्धातुमण्डितैः ।।१४।।

हैं। इनके मध्य भागवाले तट पर अनेक कोठे बने हुए हैं, जो फूलों से सुशोभित हैं। इनके मध्य भाग में पुष्पमालाओं की ढेरी लगी हुई है। शिखर धातुओं से मण्डित हैं जिनसे पीले-काले वाले झरने झरते रहते हैं और बड़े दृढ़ रत्नों से ये पर्वत जटित हैं ।।४-५।। वहाँ कितने ही सुन्दर कुञ्ज हैं, जिनमें हजारों पक्षी हैं, सिंह, व्याघ्र, शरभ आदि जीव पड़े हुए हैं, चामर, हस्ती आदि विविध पशु एवं नाना वर्ण और आकृतिवाले जीव-जन्तुओं से वे भरे हुए हैं ।।६-७।। पूर्व दिशा में जष्ठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं, जो दक्षिणोत्तर भाग में लम्बे हैं और नील, निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। दक्षिण और उत्तर में कैलास और हिमवान् नाम के पर्वत हैं, जो पूरब से पश्चिम तक तक फैले हुए हैं और दोनों ओर समुद्र में प्रविष्ट हैं। द्विजश्रेष्ठ! यह जो अत्युच्च कनकाचल मेरु है, उनके विष्कम्भ (विस्तार) के सम्बन्ध में कहते हैं, सुनिये।।८-१०।। मेरु की चारों दिशाओं में बड़े-बड़े स्तम्भपाद हैं, जो सातों द्वीपवाली पृथ्वी को पकड़े हुए हैं, जिससे कि पृथ्वी इधर-उधर नहीं हिलने पाती है। इन पर्वत पादों का विस्तार दस हजार योजनों का कहा गया है। इनके नीचे अनेक झरनों से युक्त नाना रत्नों से शोभित देव-गन्धर्व-यक्षों की अनेक रमणीय और शान्त कन्दराएँ बनी हुई हैं ।।११-१२।। मध्यदेश में पुष्पों की ढेरी लगी हुई है, जिनसे सुशोभित शिखर चित्रित-से जान पड़ते हैं। वहाँ मैनशिल की कन्दराएँ हैं। सुवर्ण तथा मणियों से चित्रित गुफाएँ हैं। सिद्धों के निवास-स्थान की छतें हरिताल की बनी हैं जो हिंगुल, सुवर्ण और अन्यान्य धातुओं से मंडित हैं। प्रवाल और सुवर्ण से उनमें चित्रकारी की गयी है। वहाँ सर्वत्र आनन्द और उल्लास

वरकाञ्चनचित्रैश्च प्रवालैः समलंकृताः । रुचिराः शतपर्वाणः सिद्धवासा मुदान्विताः ।।
महाविमानैः श्रीमद्भिः समन्तात्परिदीपिताः ।।१५।।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः । विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ।।१६।।
तेषां सहस्रशृङ्गेषु वज्रवैदूर्यवेदिकाः । शाखासहस्रकलिताः सुमूलाः सुप्रतिष्ठिताः ।।१७।।
स्निग्धैर्नीलैर्घनैः पर्णैः संच्छन्नविविधाश्रयाः । अनेकयोजनोत्सेधाः सदा पुष्पफलोपगाः ।।१८।।
यक्षगन्धर्वसेवाश्च सेविताः सिद्धचारणैः । महावृक्षाः समुत्पन्नाश्चत्वारो दीपकेतवः ।।१९।।
मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे महावृक्षः स केतुराट् । आलम्बशाखाशिखरः कन्दरश्चैव पादपः ।।२०।।
महाकुम्भप्रमाणैस्तु पुष्पैर्विकचकेसरैः । महागन्धैर्मनोज्ञैश्च शोभितः सर्वकालजैः ।।२१।।
सहस्रमधिकं सोऽथ गन्धेनाऽऽपूरयन्दिशः । योजनानां समन्ताद्वै मन्दमारुतवीजितः ।।२२।।
वरकेतुरेव प्रथितो भद्राश्वो नाम यो द्विजाः । यत्र साक्षाद्धृषीकेशः सिद्धसंघैर्महीयते ।।२३।।
तस्य रुद्रकदम्बस्य तदा श्वेतहरो हतिः । प्राप्तवानमरश्रेष्ठः स तत्र सहितः पुरा ।।२४।।
तेन चाऽऽलोकितं सर्वं द्वीपं द्विपदनायकाः । यस्य नाम्ना समाख्यातो भद्राश्वो नाम नामतः ।।२५।।
दक्षिणस्यापि शैलस्य शिखरे देवसेविता । जम्बूः सदा पुष्पफला सदा माल्योपशोभिता ।।२६।।

जान पड़ता है। इस प्रकार शोभासम्पन्न अनेक प्रासाद और विमान पर्वत पर विराजमान हैं ।।१३–१५।। उनके दक्षिण में गन्धमादन, पूर्व में मन्दर, पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व नाम के पर्वत है ।।१६।। उनके हजारों शृङ्गसमूहों पर दीपपताका की तरह चार महान् वृक्ष शोभित हैं, जिनके नीचे हीरक और वैदूर्य मणि की वेदी बनी हुई है। जिनके काले और चिकने पत्ते की घनी छाया से अनेकानेक आश्रम ढके हुए हैं। जहाँ सिद्ध–चारण–यक्ष–गन्धर्व आदि सदा विराजमान रहते हैं। जिनकी हजारों शाखाएँ अनेक योजनों की ऊँचाई में फैली हुई हैं, एवं जिनमें फल–फूल सर्वदा लगे रहते हैं। उन वृक्षों के मूल देश अत्यन्त दृढ़ है ।।१७–१९।। उस मन्दर वृक्ष के शिखर पर एक केतुराट् नामक महावृक्ष विद्यमान है, जिसकी शाखाओं से कन्दराएँ, लघु पादप और शिखर आवृत हैं ।।२०।। उन शाखाओं में घट की तरह बड़े–बड़े फल लगे हुए हैं और विकसित केसरों से युक्त सभी ऋतुओं में खिलनेवाले, अत्यन्त सुगन्धित रमणीय पुष्प सुशोभित रहते हैं। मन्द मारुत के झकोरों से वे पुष्प अपनी गन्ध से हजार योजन से भी दूर की दिशा को सुरभित करते रहते हैं ।।२१–२२।। ब्राह्मणो ! वही वरकेतु देश भद्राश्व के नाम से भी प्रसिद्ध है, जहाँ साक्षात् हषीकेश भगवान् सिद्धों द्वारा पूजित हुए हैं। मानवश्रेष्ठ ! उसी देश के रुद्र कदम्ब वृक्ष के नीचे श्वेत अश्व पर अमर श्रेष्ठ हरि पहले स्वयं उपस्थित हुए थे ।।२३–२४।। और उन्होंने सम्पूर्ण द्वीप को देखा था, इसी से उस देश का नाम भद्राश्व पड़ा ।।२५।। दक्षिण शैल के शिखर पर देवों द्वारा सेवित, माला से शोभित और सदा फलने–फूलनेवाला एक जम्बू वृक्ष है जिसकी जड़ें और तना विशाल हैं। जो चिकने और नये पत्तों से सुशोभित हैं। जिसमें सदा फल–फूल लगे रहते हैं और जो अपनी विशाल शाखाओं से शोभित है।

महामूलैर्महास्कन्धैः स्निग्धवर्णैर्विभूषिता । नवैः सदापुष्पफलैः शाखाभिश्चोपशोभिता ।।२७।।
तस्या ह्यतिप्रमाणानि स्वादूनि च मृदूनि च । फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति गिरिमूर्धनि ।।२८।।
तस्माद्गिरिवरप्रस्थात्पुनः प्रस्यन्दवाहिनी । नदी जम्बूनदी नाम प्रवृत्ता मधुवाहिनी ।।२९।।
तत्र जम्बूनदं नाम सुवर्णं ज्वलनप्रभम् । देवालंकारमतुलं जायते पापनाशनम् ।।३०।।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । तत्पिबन्त्यमृतप्रख्यं मधु जाम्बूरसस्रवम् ।।३१।।
स केतुर्दक्षिणे द्वीपे जम्बूलोकेषु विश्रुता । यस्या नाम्ना स विख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ।।३२।।
विपुलस्यापि शैलस्य पश्चिमस्य महात्मनः । जातः शृङ्गेऽतिसुमहानश्वत्थश्चैव पादपः ।।३३।।
विलम्बिवरमालाढ्यः सुवर्णमणिवेदिकः । महोच्चस्कन्धविटपो नैकसत्त्वगुणालयः ।।३४।।
कुम्भप्रमाणैः सुस्वादैः फलैः सर्वर्तुकैः शुभैः । सकेतुः केतुमालानां देवगन्धर्वसेवितः ।।३५।।
केतुमालेति च यथा तस्या नाम प्रकीर्तितम् । तन्निबोधत विप्रेन्द्रा निरुक्तं नाम कर्मतः ।।३६।।
क्षीरोदमथने वृत्ते दैत्यपक्षे पराजिते । महासमरसंमर्दवृक्षक्षोभविमर्दिता ।।३७।।
सहस्राक्षेण विहिता माला तस्य सुतानिता । तस्य स्कन्धे समासक्त्या ह्यश्वत्थस्य वनस्पतेः ।।३८।।
सा तथैव महागन्धा ह्यम्लाना सर्वकामिकी । इज्यते सुमहाभागा विविधैः सिद्धचारणैः ।।३९।।
तस्य केतोः सदा माला देवदत्ता विराजते । पवनेनेरिता दिव्यं वाति गन्धं मनोरमम् ।।४०।।

उसके सुस्वादु, कोमल, अमृत तुल्य बड़े-बड़े फल पहाड़ के शिखर से टपकते रहते हैं ।।२६-२८।। जिस कारण उस पर्वत श्रेष्ठ के एक गण्ड देश से जम्बू नाम की नदी बह निकली है, जिसमें मधुतुल्य रस प्रवाहित होता रहता है। उस नदी से अग्नि के समान कान्तिवाला जाम्बूनद नाम का पापविनाशी सुवर्ण उत्पन्न होता है, जो देवों के अनुपम अलङ्कार के काम आता है ।।२९-३०।। देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग आदि अमृत तुल्य मधुर उस जम्बू रस को पीते रहते हैं। दक्षिण द्वीप में वह केतुस्वरूप जम्बू वृक्ष निखिल जम्बूलोक में विख्यात है, जिसके नाम पर ही वह द्वीप सदा से जम्बू द्वीप कहा जा रहा है ।।३१-३२।। महात्मा स्वरूप उस विशाल शैल के पश्चिम शृङ्ग पर एक बहुत बड़ा पीपल का वृक्ष है। उसमें लटकती हुई एक माला टँगी है। उसका तना और शाखाएँ बहुत बड़ी-बड़ी और ऊँची हैं। भाँति-भाँति के जीव उसके नीचे और ऊपर बसेरा लिये हुए हैं। उसके नीचे की भूमि सुवर्ण और मणियों से खचित है। सभी ऋतुओं में घड़े के समान बड़े-बड़े सुस्वादु फल उसमें लगे रहते हैं। देव-गन्धर्व भी उस वृक्ष की सेवा किया करते हैं ।।३३-३५।। वह वृक्ष केतुमाल देश की ध्वजा के समान है। विप्रो! सुनिये, उस देश का नाम केतुमाल क्यों पड़ा? क्षीरसागर के मथनकाल में जब दैत्य पक्ष पराजित हो गया, तब इन्द्र ने अपने गले से माला उतारकर इसी पीपल वृक्ष के स्कन्ध में लटका दी, वह माला समर में दैत्यों द्वारा फेंके गये वृक्षों से चोट खाकर मुर्झा गयी थी ।।३६-३७।। सर्वसिद्धिप्रदायिनी वह अति सुरभित माला अम्लान भाव से अब तक वहाँ टँगी है। उस महाभाग्यशालिनी माला की पूजा अभी भी सिद्ध-चारण आदि करते हैं। उस केतु रूप वृक्ष मर देवराज द्वारा टाँगी हुई माला सदा विराजती रहती है और वायु के झोंके से हिलने पर उससे मनोहर गंध निकलती रहती है ।।३८-४०।। इसलिए केतु और माला से चिह्नित

ताभ्यां नामाङ्कितो द्वीपः पश्चिमे बहुविस्तरः। केतुमाल इति ख्यातो दिवि चेह च सर्वशः ।।४१।।
स्वपार्श्वस्योत्तरे चापि शृङ्गे जातो महाद्रुमः। न्यग्रोधो विपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः ।।४२।।
माल्यदामकलापैश्च विविधैर्गन्धशालिभिः। शाकाविलम्बी शुशुभे सिद्धचारणसेवितः ।।४३।।
प्रवालकुम्भसदृशैर्मधुपूर्णैः फलैः सदा। स ह्युत्तरकुरूणां तु केतुवृक्षः प्रकाशते ।।४४।।
सनत्कुमारा वरजा मानसा ब्रह्मणः सुताः। सप्त तत्र महाभागाः कुरवो नाम विश्रुताः ।।४५।।
तत्र तैरागतज्ञानैः सत्त्वस्थैः पुण्यकीर्तिभिः। अक्षयं हेममपरं लोकं प्राप्तं सनातनम् ।।४६।।
तेषां नामाङ्कितो द्वीपः सप्तानां वै महात्मनाम्। दिवि चेह च विख्याता उत्तराः कुरवः सदा ।।४७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते जम्बूद्वीपवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम्। अनुबन्धानि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च ।।१।।

होने के कारण पश्चिम में विस्तृत द्वीप स्वर्ग तथा मृत्युलोक में केतुमाल नाम से प्रसिद्ध है। उसी के पार्श्व में उत्तर शिखर पर एक बड़ा वट वृक्ष भी है, जो अनेक योजनों में फैला हुआ है। विविध गन्धयुक्त माला-कलाप से सुशोभित उस वृक्ष की सिद्ध-चारण सदा सेवा करते रहते हैं ।।४१-४३।। घड़े के सदृश लाल-लाल मीठे फलों से वह सदा युक्त रहता है और उत्तर कुरु का केतु वृक्ष कहलाता है। सनत्कुमार आदि महाभाग श्रेष्ठ ब्रह्मपुत्रों के नामानुसार ही उसका कुरु नाम पड़ा है ।।४४-४५।। उन पुण्य कीर्तिवाले ब्रह्मज्ञानी महात्माओं ने उस अविनाशी, मंगलास्पद तथा शाश्वत लोक को प्राप्त किया। उन्हीं सातों महात्माओं के नाम पर उस द्वीप का नामकरण हुआ है और वह इस लोक तथा स्वर्ग में उत्तर कुरु के नाम से विख्यात है ।।४६-४७।।

श्रीवायुमहापुराण का जम्बूद्वीप वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३५।।

अध्याय ३६

भुवनविन्यास

सूत जी बोले-अब हम यथाक्रम से उन चारों पर्वतों के रमणीय स्थानों का वर्णन करते हैं। सभी कालों में वहाँ ऋतुकालीन फल-पुष्प लगे रहते हैं ।।१।। वहाँ सर्वत्र सारिका, मयूर; मदोत्कट, चकोर, शुक और चित्र-विचित्र

सारिकाभिर्मयूरैश्च चकोरैश्च मदोत्कटैः । शुकैश्च भृङ्गराजैश्च चित्रकैश्च समन्ततः ।।२।।
जीवञ्जीवकनादैश्च हेमकानां च नादितैः। मत्तकोकिलनादैश्च वल्गूनां च निनादितैः ।।३।।
सुग्रीवकाञ्चनरवैः कलविङ्करुतैस्तथा । कूजितान्तरशब्दैश्च सुरम्याणि च सर्वशः ।।४।।
मदोत्कटैर्मधुकरैर्भ्रमरैश्च महालसैः । उपगीतवनान्तानि किन्नरैश्च क्वचित्क्वचित् ।।५।।
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति मन्दमारुतकम्पिताः । तरवो यत्र दृश्यन्ते चारुपल्लवशोभिताः ।।६।।
स्तबकैर्मञ्जरीभिश्च ताम्रैः किशलयैस्तथा । मन्दवातवशाल्लोलैर्दोलयद्भिर्युतानि च ।।७।।
नानाधातुविचित्रैश्च कान्तरूपैः शिलाशतैः । शल्लैः क्वचिद्द्विजश्रेष्ठा विन्यस्तैः शोभितानि च ।।८।।
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । सिद्धाप्सरोगणैश्चैव सेवितानि ततस्ततः ।।९।।
मनोहराणि चत्वारि देवाक्रीडनकान्यथ । चतुर्दिशमुदाराणि नाम्ना श्रृणुत तानि मे ।।१०।।
पूर्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणं नन्दनं वनम् । वैभ्राजं पश्चिमं विद्यादुत्तरं सवितुर्वनम् ।।११।।
महावनेषु चैतेषु निविष्टानि यथाक्रमम् । अनुबन्धानि रम्याणि विहङ्गैः कूजितानि च ।।१२।।
नैर्विस्तीर्णतीर्थानि महापुण्यवनानि च । महानागाधिवासानि सेवितानि महात्मभिः ।।१३।।
सुरसामलतोयानि शिवानि सुसुखानि च । सिद्धदेवासुरवरैरुपस्पृष्टजलानि च ।।१४।।
छत्रप्रमाणैर्विकचैर्महागन्धैर्मनोहरैः । पुण्डरीकैर्महापत्रैरुत्पलैः शोभिनि च ।।
महासरांसि चत्वारि तानि वक्ष्यामि नामतः ।।१५।।

भृङ्गराज विचरण करते रहते हैं ।।२।। जीवंजीवक, हेमक, मत्तकोकिल, वल्गु, सुकण्ठ काञ्चन, कलविंक आदि पक्षियों के मधुर निनाद से उनके प्रान्तर भाग सदा गुंजित और सुरम्य बने रहते हैं। मतवाले अतएव अलसाये मधुकरों, भ्रमरों से तथा किन्नरों से भी कहीं-कहीं यह वन मुखरित रहता है। कोमल पल्लवों से सुशोभित सब वृक्ष वहाँ मन्द मारुत से कँपाये जाने पर सदा पुष्पवृष्टि करते हुए देखे जाते हैं ।।३-६।। फूलों के गुच्छे, मंजरियाँ और लाल-लाल पत्ते मन्द वायु के झोंके से सदा हिलते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो हिंडोले पड़े हों। ब्राह्मणो! नाना धातुओं से विचित्र अतएव रमणीय शत-शत शिलाएँ और शल्ल (पपड़ियाँ) इधर-उधर पड़े हुए हैं, जिससे सारा वन प्रान्त सुशोभित रहता है ।।७-८।। जहाँ-तहाँ देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, सिद्ध और अप्सरागण भी वहाँ घूमते-फिरते रहते हैं। वहाँ देवताओं के चार क्रीड़ावन हैं जो रमणीय और विस्तृत हैं। उनके नामों को सुनिये ।।९-१०।। पूर्व में चैत्ररथवन, दक्षिण में नन्दनवन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सवितृवन है। इन चारों वनों का भीतरी स्थान-संनिवेश बड़ा ही मनोहर है। वहाँ सदा ही पक्षिकुल कलरव करता रहता है। उन वनों में बड़े-बड़े तीर्थ, पुण्यस्थान हैं। जहाँ बड़े-बड़े नाग निवास करते हैं और महात्मा भी विराजते रहते हैं ।।११-१३।। वहाँ के जलाशयों का जल सुमधुर, निर्मल, सुखद और मंगलकर है, क्योंकि वहाँ की जलराशि सिद्धों, देवों और राक्षसों आदि के द्वारा स्पर्श की गयी है। छाते की तरह बड़े-बड़े मनोहर, सुगन्धित और बड़ी पंखड़ियोंवाले पुण्डरीक और उत्पलों से वे जलाशय शोभायमान हैं। वहाँ बड़े-बड़े चार सरोवर भी हैं। उनके नामों को भी सुनिये ।।१४-१५।। पूर्व में अरुणोद, दक्षिण में मान्स, पश्चिम में शीतोद

अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम्। शीतोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम् ।।१६।।
अरुणोदं च पूर्वेण ये च शैलास्ततः स्मृताः। तान्कीर्त्यमानांस्तत्त्वेन शृणुध्वं विस्तरान्मम ।।१७।।
शीतान्तश्च कुमुञ्जश्च सुवीरश्चाचलोत्तमः। विकङ्को मणिशीलश्च वृषभश्चाचलोत्तमः।।१८।।
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा। वेणुमांश्च सुमेधश्च निषधो देवपर्वतः ।।१९।।
इत्येते पर्वतवरा अन्ये च गिरयस्तथा। पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धवासा उदाहृताः ।।२०।।
सरसो मानसस्नेह दक्षिण ये महाचलाः। ये कीर्तिता मया ते वै नामतस्तान्निबोधत ।।२१।।
शैलश्रीशिखरश्चापि शिशिरश्चाचलोत्तमः। कलिङ्गश्च पतङ्गश्च रुचकश्चैव सानुमान् ।।२२।।
ताम्रभश्च विशाखश्च तथा श्वेतोदरो गिरिः। समूलो विषधारश्च रत्नधारश्च पर्वतः ।।२३।।
एकशृङ्गो महामूलो गजशैलः पिशाचकः। पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ।।२४।।
इत्येते देवचरिता ह्युत्कृष्टाः पर्वतोत्तमाः। दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ता मेरोरमरवर्चसः ।।२५।।
अपरेण सितोदस्य सरसो द्विजसत्तमाः। उत्तमा ये महाशैलास्तान्प्रवक्ष्ये यथाक्रमम् ।।२६।।
सुवक्षाः शिखिशैलश्च कालो वैदूर्यपर्वतः। कपिलः पिङ्गलो रुद्रः सुरसश्च महाचलः ।।२७।।
कुमुदो मधुमांश्चैव अञ्जनो मुकुटस्तथा। कृष्णश्च पाण्डरश्चैव सहस्रशिखरश्च ह ।।२८।।
पारिजातश्च शैलेन्द्रस्त्रिशृङ्ङ्श्चाचलोत्तमः। इत्येते पर्वतवरा दिग्भागे पश्चिमे स्मृताः ।।२९।।
महाभद्रस्य सरस उत्तरेपाणि श्रीमतः। ये मया पर्वताः प्रोक्तास्तान्वदिष्ये यथाक्रमम् ।।३०।।

और उत्तर में महाभद्र नामक चार सरोवर हैं।।१६।। अरुणोद सरोवर के पूर्व में जो पर्वत आदि हैं, उनके तत्त्व का हम विस्तार से वर्णन करते है, सुनिये ।।१७।। शीतान्त, कुमुञ्ज, सुवीर, विकङ्क, मणिशील, कृष्ण, महानील, सविन्दु, मन्दर, रेणुमान्, सुमेध, निषध और देवाचल। इतने तथा अन्यान्य और भी पर्वतगण मन्दर के पूर्व में वर्तमान हैं, जो सिद्धों के आवास हैं ।।१८–२०।। मानसरोवर के दक्षिण में जो पर्वत हैं, जिनके बारे में हम पहले कह चुके हैं, उनके भी नामों को सुनिये ।।२१।। श्रीशिखर, नगोत्तम शिशिर, कलिङ्ग, पतङ्ग, रुचक, सानुमान्, ताम्राभ, विशाख, श्वेतोदर, समूल, विषधार, रत्नधार, एकशृङ्ग, महामूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्। ये उत्तम पर्वत देवस्वभाव के और श्रेष्ठ कहे गये हैं और ये सब देवता के समान तेजस्वी मेरु के दक्षिण में स्थित हैं ।।२२–२४।। ब्राह्मणो! शीतोद सरोवर के अपर भाग में जो उत्तम पर्वत हैं, उनके सम्बन्ध में भी कहते हैं, सुनिये। सुवक्षा, शिखिशैल, काल, वैदूर्यगिरि, कपिल, पिंगल, रुद्र, सुरस, कुमुद, मधुमान, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पाण्डर, सहस्रशिखर, पारिजात और शैलराज त्रिशृङ्ग। इतने ये श्रेष्ठ पर्वत पश्चिम दिशा में हैं ।।२५–२९।। शोभासम्पन्न महाभद्र सरोवर के उत्तर में जिन पर्वतों को हमने बताया है, उन्हें यथाक्रम से कहते हैं, सुनिये। महाशैल, शंकुकूट, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, सानुमान्,

शङ्कुकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः। नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान् ।।३१।।
नीलः कनकशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः। पुष्पको मेघशैलश्च विराजश्चाचलोत्तमः।।
जारुधिश्चैव शैलेन्द्र इत्येते उत्तराः स्मृताः ।।३२।।
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्। स्थाल्योऽह्यन्तरद्रोणश्च सरांसि च निबोधत ।।३३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

शीतान्तस्याचलेन्द्रस्य कुमुञ्जस्यान्तरेण तु। द्रोण्यो विहङ्गसंघुष्टा नानासत्त्वनिषेविताः ।।१।।
(*त्रियोजनशतायामा विस्तीर्णाः शतयोजनाः। सुरसामलपानीयरम्यं तत्र सरोवरम् ।।२।।
द्रोण्यायामप्रमाणैस्तु पुण्डरीकैः सुगन्धिभिः)। सहस्रशतपत्रैर्हि महापद्मैरलंकृतम् ।।३।।

इन्द्रशैल, नील, कनकशृङ्ग, पुष्पक, मेघशैल, अचलोत्तम, विराज और शैलेन्द्र जारुधि। उत्तर में स्थित इतने पर्वतों के नाम गिनाये गये हैं। इन पर्वतश्रेष्ठों के मध्य जितनी स्थली, अन्तर्द्रोणी और सरोवर आदि हैं, उन्हें सुनिये ।।३०-३३।।

श्रीवायुमहापुराणान्तर्गत भुवनविन्यास नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३६।।

अध्याय ३७

भुवनविन्यास

सूत जी बोले—शीतान्त और कुमुञ्ज पर्वतों के बीच एक द्रोणी (घाटी) है, जहाँ पक्षिगण कलनाद करते हैं और नाना भाँति के जीव निवास करते हैं ।।१।। यह तीन सौ योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है। उनमें एक सरोवर भी है, जिसका जल रमणीय, निर्मल और सुस्वादु है ।।२।। द्रोणी के विस्तार के अनुकूल सुगन्धित पुण्डरीक और हजार पंखड़ीवाले पद्मों से वह सुशोभित है ।।३।। उसमें विशाल शरीरवाले दुर्धर्ष महासर्प निवास करते हैं और देव-दानव

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

महोरगैरध्युषितं +महाभोगैर्दुरासदैः। देवदानवगन्धर्वैरुपस्पृष्टं जलं शुभम्॥४॥
पुण्यं तच्छ्रीसरो नाम प्रकाशं दिवि चेह च। प्रसन्नजलसंपूर्णं शरण्यं सर्वदेहिनाम्॥५॥
तत्र त्वेकं महापद्मं मध्ये पद्मवनस्य ह। कोटिपत्रप्रचारं तत्तरुणादित्यवर्चसम्॥६॥
नित्यं व्याकोशमजरं चाञ्चल्याच्चातिमण्डलम्। चारुकेशरजालाढ्यं मत्तषट्पदनादितम्॥७॥
तस्मिन्पद्मे भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि। लक्ष्म्याः पद्मं तदावासं मूर्तिमत्या न संशयः॥८॥
सरसस्तस्य पूर्वस्मिंस्तटे सिद्धनिषेविते। सदा पुष्पफलं रम्यं तत्र बिल्ववनं महत्॥९॥
शतयोजनविस्तीर्णं त्रियोजनशतायतम्। अर्धक्रोशोच्चशिखरैर्महावृक्षैः सहस्रशः॥१०॥
शाखासहस्रकलितैर्महास्कन्धैः समाकुलम्। फलैः सुवर्णसंकाशैर्हरितैः पाण्डुरैस्तथा॥११॥
अमृतस्वादुसदृशैर्भेरीमात्रैः सुगन्धिभिः। शीर्यमाणैः पतद्भिश्च कीर्णा भूमिर्निरन्तरा॥१२॥
नाम्ना तच्छ्रीवनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम्। गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैर्महानागैश्च सेवितम्॥१३॥
सिद्धैश्चैव समाकीर्णं नित्यं बिल्वफलाशिभिः। विविधैर्भूतसंघैश्च नित्यमेव निषेवितम्॥१४॥
तस्मिन्वने भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि। देवी संनिहिता तत्र सिद्धसंघैर्नमस्कृता॥१५॥
विकङ्कस्याचलेन्द्रस्य मणिशैलस्य चान्तरे। शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम्॥१६॥

जिनके शुभ जल में सदा स्नान किया करते हैं ॥४॥ यह पवित्र श्रीसर स्वर्ग और मृत्युलोक में विख्यात है। यह सदा निर्मल जल से परिपूर्ण रहता और सब देहधारियों का शरणदाता है ॥५॥ वहाँ पद्मवन के मध्य में एक महापद्म है, जिसमें करोड़ पंखड़ियाँ हैं और जो तरुण सूर्य की तरह प्रकाशपूर्ण है। यह सर्वदा विकसित रहता है, कभी भी मुर्झाता नहीं, इसमें कोमल केसरजाल भरे हैं जिनके लोभ से मतवाले भौंरे गूँजते रहते हैं। उस पद्म में साक्षात् लक्ष्मी सदा निवास करती हैं। मूर्तिमती लक्ष्मी का वह निवास-स्थान है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥६-८॥ उस सरोवर के पूर्वीय तट पर सिद्धगण निवास करते हैं। वहाँ फूल-फूलों से लदा हुआ एक मनोहर और विस्तृत बिल्ववन है ॥९॥ वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा है। आधे कोस ऊँचे बड़े-बड़े हजारों वृक्ष उसमें खड़े हैं। उनके बड़े विशाल तने हैं, जो हजारों शाखाओं से सुशोभित हैं और उनमें सोने के समान पीले, हरे और पाण्डुर वर्ण के फल लगे हुए हैं ॥१०-११॥ ये सभी फल सुगन्धित, अमृत की भाँति स्वादिष्ट और भेरी बाजे के बराबर बड़े-बड़े हैं। जब ये पककर धरती पर गिरते हैं, तो वनप्रान्त भर जाता है। संसार में वह श्रीवन के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और महानाग सदा विचरण किया करते हैं ॥१२-१३॥ बिल्वफल की आशा से सिद्धगण और विविध भाँति के जीव वहाँ पड़े रहते हैं। उस वन में साक्षात् भगवती लक्ष्मी देवी स्वयं नित्य निवास करती हैं, उन्हें सिद्धगण प्रणाम किया करते हैं ॥१४-१५॥ विकंक और मणिशैल पर्वतों के बीच में सौ योजन लम्बा और दो योजन चौड़ा बड़ा-सा चम्पक वन है। यहाँ भी सिद्ध-चारण

+ महाभोगैरित्यारभ्य सप्तचत्वारिंशाध्यायस्यषोडशश्लोकस्थब्रह्मपातो निवसतीत्यन्तग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

विपुलं चम्पकवनं सिद्धचारणसेवितम् । पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति ज्वलन्तमिव नित्यदा ।।१७।।
अर्धक्रोशोच्चशिखरैर्महास्कन्धैः पलाशिभिः । प्रफुल्लशाखाशिखरैः पिञ्जरं भाति तद्वनम् ।।१८।।
द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायामविस्तरैः । मनःशिलाचूर्णनिभैः पाण्डुकेशरशालिभिः ।।१९।।
पुष्पैर्मनोहरैर्व्याप्तं व्याकोशैर्गन्धशालिभिः । विराजते वनं सर्वं मत्तभ्रमरनादितम् ।।२०।।
तद्वनं दानवैर्देवैर्गन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः । किंनरैरप्सरोभिश्च महानागैश्च सेवितम् ।।२१।।
तत्राऽऽश्रमं भगवतः कश्यपस्य प्रजापतेः । सिद्धसाध्यगणाकीर्णं नानाश्रुतिविभूषितम् ।।
महानीलकुमुञ्जाभ्यामन्तरेऽप्यचलावथ ।।२२।।
महानद्याः सुखायास्तु तीरे सिद्धनिषेविते। पञ्चशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तरम् ।।
रम्यं तालवनं तद्धि अर्धक्रोशोच्चमस्तकम् ।।२३।।
महामूलैर्महासारैः स्थिरैरविरलैः शुभैः । कुमुदाञ्जनसंस्थानैः परिवृत्तैर्महाफलैः ।।
मृष्टगन्धरसोपेतैरुपेतं सिद्धसेवितम् ।।२४।।
माहेन्द्रस्य द्विपेन्द्रस्य तत्र वास उदाहृतः । ऐरावतस्य भद्रस्य सर्वलोकेषु विश्रुतः ।।२५।।
वेणुमन्तस्य शैलस्य सुमेधास्योत्तरेण च । सहस्त्रयोजनायामं विस्तीर्णं शतयोजनम् ।।२६।।

निवास किया करते हैं। फूलों की शोभा से वह वन सदा जलता हुआ-सा मालूम पड़ता है ।।१६-१७।। विशाल तनेवाले उन वृक्षों के पत्तों के भार से झुकी शाखाएँ आधे कोस तक ऊपर फैली हुई हैं, जिनमें सदा फूल खिले रहते हैं। इससे वह वन पिंजड़े की तरह शोभित रहता है ।।१८।। पाण्डु वर्ण के केसरों से युक्त और मनःशिला के चूर्ण की तरह वर्णवाले, खिले हुए, मनोहर, सुगन्धित, तीन हाथ लम्बे, दो हाथ चौड़े पुष्पों से वह वन सदा व्याप्त रहता है। उन फूलों पर भौंरे मँडराते रहते हैं, जिससे वन स्वयं मुखरित-सा जान पड़ता है। यह वन भी दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा और महानागों द्वारा सदा सेवित रहता है ।।१९-२१।। यहाँ भगवान् कश्यप प्रजापति का आश्रम भी है, जहाँ सिद्ध और साध्यजन भरे पड़े हैं और जहाँ चारों वेदों का पाठ होता रहता है। महानील और कुमुंज पर्वतों के बीच भी सुखदायिनी महानदी के सिद्ध सेवित तट पर पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक मनोहर तालवन है। वहाँ के ताड़ के पेड़ आधे-आधे कोस लम्बे हैं ।।२२-२३।। वहाँ के वृक्ष भी कुमुद और अंजन पर्वत की ही तरह दृढ़ जान पड़ते हैं। उन दृढ़ पेड़ों का मूल भाग खूब मोटा और स्थिर है। सभी वृक्ष एक में सटे हुए हैं, जिनमें सुगन्धित और रसीले फल लगे हुए हैं। सिद्धगण इन फलों को खाया करते हैं ।।२४।। इन्द्र के गजराज ऐरावत का वासस्थान यही वन कहा गया है। यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ।।२५।। वेणुमन्त और सुमेध पर्वतों के बीच सत्तर हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा एक मैदान है, जहाँ वृक्ष, गुल्म, लता, निकुंज आदि कुछ भी नहीं है, जीव-जन्तुओं का निवास भी वहाँ नहीं

वृक्षगुल्मलतागुच्छैः सर्ववीरुद्भिरीरितम् । दूर्वाप्रस्तारमेवाथ सर्वसत्त्वविवर्जितम् ।।२७।।
तथा निषधशैलस्य देवशैलस्य चोत्तरे । सहस्रयोजनायामा शतयोजनविस्तृता ।।२८।।
सर्वा ह्येकशिला भूमिर्वृक्षवीरुद्विवर्जिता । आप्लुता पादमात्रेण ह्युदकेन संमततः ।।२९।।
इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो नानाकाराः प्रकीर्तिताः । मेरोः पूर्वेण विप्रेन्द्रा यथावदनुपूर्वशः ।।३०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणां दिशमाश्रिताः । या द्रोण्यः सिद्धचरिताः शृणु ता ह्यनुपूर्वशः ।।१।।
शिशिरस्याचलेन्द्रस्य पतङ्गस्यान्तरेण च । श्लक्ष्णभूमिश्रिया युक्तं लतालिङ्गितपादपम् ।।२।।
पृथुक्षेपोच्चशिखरैः पादपैरुपशोभितम् । उदुम्बरवनं रम्यं पक्षिसंघनिषेवितम् ।।३।।
पक्वैर्विद्रुमसंकाशैर्मधुपूर्णैर्मनोरमैः । ज्वलितं तद्वनं भाति महाकुम्भोपमैः फलैः ।।४।।

है। वहाँ केवल हरी-हरी दूबें उगी हुई हैं। निषधशैल और देवशैल के उत्तर में हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी एक शिलाखण्डमय भूमि है। यहाँ भी वृक्ष, लता आदि नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा पानी सभी जगह फैला हुआ है। ब्राह्मणो! मैंने उन नाना आकार-प्रकार की स्तर द्रोणियों को क्रमशः बता दिया जो मेरु के पूर्व में स्थित हैं ।।२६-३०।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।।३७।।

अध्याय ३८

भुवनविन्यास

सूत जी बोले-अब आगे हम दक्षिण दिशा की उन द्रोणियों का जहाँ सिद्धगण सदा आसन जमाये रहते हैं-क्रमशः वर्णन कर रहे हैं, सुनिये ।।१।। शिशिर और पतङ्ग पर्वतों के मध्य में एक रमणीय उदुम्बर-वन है। वहाँ की भूमि चिकनी है, लताएँ पादपों पर चढ़ी हुई हैं, ऊँचे शिखरवाले स्थूल वृक्षों पर पक्षिवृन्द बसेरा लिये हुए हैं, मूँगे की तरह लाल-लाल पके हुए रसीले बड़े-बड़े मनोहर फलों से वह वन जगमग हो रहा है ।।२-४।। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, उरग और

तत्सिद्धयक्षगन्धर्वाः किंनरा उरगास्तथा । विद्याधराश्च मुदिता उपजीवन्ति नित्यशः ।।५।।
प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यो बहूदकाः । सुरसामलतोयास्ताः सरांसि च समन्ततः ।।६।।
तत्राश्रमं भगवतः कर्दमस्य प्रजापतेः । रम्यं सुरगणाकीर्णं सर्वतश्चित्रकाननम् ।।
समन्ताद्योजनशतं तद्वनं परिमण्डलम् ।।७।।
ताम्रवर्णस्य शैलस्य पतङ्गस्यान्तरेण तु । शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम् ।।८।।
तरुणादित्यसंकाशैः पुण्डरीकैः समन्ततः । सहस्रपत्रैर्विकचैर्महापद्मै रलंकृतम् ।।९।।
तथा भ्रमरसंलीनैः शतपत्रैः सुगन्धिभिः । प्रफुल्लैः शोभितजलं रक्तनीलैर्महोत्पलैः ।।१०।।
सरोवरं महापुण्यं देवदानवसेवितम् । महोरगैरध्युषितं नीलजालविभूषितम् ।।११।।
तस्य मध्ये जनपदो ह्यायतः शतयोजनः । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो रक्तधातुविभूषितः ।।१२।।
तस्योपरि महारथ्या प्रांशुप्राकारतोरणा । नरनारीगणाकीर्णा स्फीता विभवविस्तरः ।।१३।।
वलभीकूटनिर्यूहैर्मणिभक्तिविचित्रितैः । रत्नचित्रार्पिततलैः श्लक्ष्णचित्रोत्तरच्छदैः ।।१४।।
महाभवनमालाभिर्महाप्रांशुभिरुत्तमैः । विद्याधरपुरं तत्र शोभते भ्राजयच्छुभम् ।।१५।।
विद्याधरपतिस्तत्र पुलोमा तत्र विश्रुतः । चित्रवेषधरः स्रग्वी महेन्द्रसदृशद्युतिः ।।१६।।
दीप्तानां चित्रवेषाणां सूर्यप्रतिमतेजसाम् । विद्याधरसहस्राणामनेकेषां स राजराट् ।।१७।।

विद्याधर आदि नित्य ही वहाँ उन फलों को बड़ी प्रसन्नता से खाया करते हैं ।।५।। निर्मल और मीठे जलवाली कितनी ही अगाध नदियाँ वहाँ बहती रहती हैं। इधर-उधर कितने ही निर्मल तथा मीठे जलवाले सरोवर भी दीख पड़ते हैं। वहाँ भगवान् कर्दम प्रजापति का रमणीय आश्रम है, जहाँ देवगण विराजमान रहते हैं। वह वन बड़ा ही मनोहर है। उसका मण्डल-विस्तार सौ योजन का है ।।६-७।। ताम्रवर्ण और पतङ्ग पर्वत के बीच सौ योजन लम्बा और दो योजन चौड़ा एक महापुण्य सरोवर है ।।८।। उसमें तरुण सूर्य की तरह पुण्डरीक, सहस्रपत्र और महापद्म चारों ओर खिले हुए हैं। भ्रमरों से आन्दोलित, सुगन्धित शतपत्रों से युक्त खिले हुए रक्त, नील वर्ण के बड़े-बड़े कमलों से उसका जल सुशोभित हो रहा है। जिसमें इधर-उधर शैवाल भी फैले हैं ।।९-१०।। देव-दानव और महोरग उस जल का सदा उपयोग किया करते हैं। उसी के बीच सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक देश है, जो मेरु से विभूषित है ।।११-१२।। वहाँ एक बड़ी-सी रथ्या (सड़क) है, जिसके चारों ओर तोरणों से सजी ऊँची दीवारें हैं। स्त्री-पुरुषों से खचाखच भरी वह रथ्या अपनी श्री पर अभिमान करती है। उस देश के मध्य भाग में विद्याधरों का एक सुसज्जित नगर है। वहाँ अत्युत्तम और अत्युन्नत अट्टालिकाओं की पंक्तियाँ शोभा को बढ़ा रही हैं, जिनमें सुन्दर दरवाजे और चन्द्रशालाएँ हैं। महलों में मणियों की पच्चीकारी की गयी है और अट्टालिकाओं की दीवारों पर रत्नों से चित्र बनाये गये हैं। वे अट्टालिकाएँ बाहर से अत्यन्त स्वच्छ तथा रंग-बिरंगी दीख पड़ती हैं ।।१३-१५।। वहाँ विद्याधरों के स्वामी पुलोमा नाम से विख्यात हैं जो इन्द्र के समान कान्तिवाले हैं और अपने को वेश-भूषा और मालाओं से सदा सजाते रहते हैं। उस राज-राज को भड़कीले वस्त्र और भूषण धारण करनेवाले सूर्य की तरह तेजस्वी सहस्रों विद्याधर घेरे रहते हैं ।।१६-१७।।

विशाखस्याचलेन्द्रस्य पतङ्गस्यान्तरेण च । सरसस्ताम्रवर्णस्य पूर्वे तीरे परिश्रुतम् ।।१८।।
पञ्चेषुक्षेपणैर्विद्धं सुशाखं वर्णशोभितम् । सर्वकालफलं तत्र स्फीतं चाऽऽम्रवनं महत् ।।१९।।
फलैः कनकसंकाशैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः । महाकुम्भप्रमाणैश्च तनुशाखैः समन्ततः ।।२०।।
गन्धर्वकिंनरा यक्षा नागा विद्याधरास्तथा । पिबन्त्याम्ररसं तत्र सुस्वादु ह्यमृतोपमम् ।।२१।।
तत्राऽऽम्ररसपीतानां मुदितानां महात्मनाम् । श्रूयन्ते हृष्टतुष्टानां नादास्तस्मिन्महावने ।।२२।।
समूलस्याचलेन्द्रस्य वसुधारस्य चान्तरे । समासुरभिपूर्णाढ्या विहङ्गैरुपशोभिता ।।२३।।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा पञ्चाशद्योजनायता । तत्र बिल्वस्थली विप्राः शुद्धा निम्नफलद्रुमाः ।।२४।।
सुस्वादैर्विद्रुमनिभैः फलैर्बिल्वैर्महोपमैः । शीर्यमाणैर्विशीर्णैश्च प्रक्लिन्नतलमृत्तिकाः ।।२५।।
तां स्थलीमुपजीवन्ति यक्षगन्धर्वकिंनराः । सिद्धा नागाश्च बहुशं नित्यं बिल्वफलाशिनः ।।२६।।
अन्तरे वसुधारस्य रत्नधारस्य चान्तरे । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ।।२७।।
सुगन्धं किंशुकवनं नित्यं पुष्पितपादपम् । पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति प्रदीप्तमिव सर्वतः ।।२८।।
यस्य गन्धेन दिव्येन वास्यते परिमण्डलम् । समग्रं योजनशतं काननानि समन्ततः ।।२९।।

विशाल और पतङ्गाचल के बीच ताम्रवर्ण सरोवर के पूर्व तीर पर सम्पूर्ण ऋतुओं में फलनेवाला एक विशाल आम्रवन है ।।१८।। इस वन पर कामदेव ने मानो अपने बाण चला दिये हैं। इसकी शोभा निखरी-सी रहती है, सुन्दर वर्णों से सुशोभित उस वन के वृक्षों की शाखाएँ भी एक-से-एक बढ़कर हैं। जिनमें सोने की तरह पीले, सुगन्धित और घड़े के बराबर बड़े-बड़े रसदार फल लगे हुए हैं ।।१९-२०।। उस आम्र फल के सुस्वादु और अमृतोपम रस को यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग, विद्याधर आदि बड़े चाव से पिया करते हैं। वहाँ आम्र के रस को पीकर प्रसन्नहृदय महात्मागण सन्तुष्ट होकर सदा आनन्द ध्वनि किया करते हैं जो ध्वनि उस वन में सदा सुनायी देती है ।।२१-२२।। विप्रो! समूल और वसुधार पर्वतों के बीच बिल्वस्थली है, जो समतल, सुगन्ध से परिपूर्ण, शुद्ध और फल के भार से झुके हुए वृक्षों से सुशोभित है। वह तीस योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी है। खगकुल वहाँ सर्वदा कलरव किया करते हैं। मूँगे की तरह लाल, सुस्वादु और बड़े-बड़े बेल गिर-गिरकर वहाँ की भूमि को गीली बनाये रखते हैं ।।२३-२५।। वहाँ पर यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग आदि बहुतेरे जीव नित्य बिल्वफल को खाकर ही जीवन बिताते हैं। वसुधार और रत्नधार पर्वतों के बीच तीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा एक किंशुक वन (पलाश वन) है। वहाँ के वृक्ष सदा पुष्पित और सुगन्धित रहते हैं और फूलों की शोभा से सदा जगमगाते रहते हैं ।।२६-२८।। फूलों की दिव्य गन्ध से वहाँ का प्रदेश सुवासित होता रहता है। उस वन भूमि की कौन बात कहे सौ योजन दूर तक वह गन्ध फैली रहती है। उस मनोहर किंशुक वन की शोभा जलाशय और बढ़ा देता है, जहाँ सिद्ध, चारण और अप्सराएँ सदा निवास किया करते हैं। वहाँ भगवान् सूर्य देव का एक सुविशाल देदीप्यमान भवन है, जहाँ प्रजापति सूर्य प्रत्येक मास में उतरा

तत्सिद्धचारणगणैरप्सरोभिश्च सेवितम् । रम्यं तत्किंशुकवनं जलाशयविभूषितम् ।।३०।।
तत्राऽऽदित्यस्य देवस्य दीप्तमायतनं महत् । मासे मासेऽऽवतरति तत्र सूर्यः प्रजापतिः ।।३१।।
तत्र कालस्य कर्तारं सहस्रांशुं सुरोत्तमम् । सिद्धसंघा नमस्यन्ति सर्वलोकनमस्कृतम् ।।३२।।
पञ्चकूटस्य शैलस्य कैलासस्यान्तरेण तु । षट्त्रिंशद्योजनायामं विस्तीर्ण शतयोजनम् ।।३३।।
क्षुद्रसत्त्वैरनाधृष्यं सर्वतो हंसपाण्डुरम् । दुष्पारं सर्वसत्त्वानां दुर्गमं लोमहर्षणम् ।।३४।।
इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो दक्षिणे परिकीर्तिताः । यथानुपूर्वमखिलाः सिद्धसंघनिषेविताः ।।३५।।
पश्चिमायां दिशि तथा येऽन्तरद्रोणिविस्तराः । तान्वर्ण्यमानांस्तत्त्वेन श्रृणुतेमान्द्विजोत्तमाः ।।३६।।
अन्तराले गिरौ तस्मिन्सुवक्षः शिखिशैलयोः । समन्ताद्योजनशतमेकभूमं शिलातलम् ।।३७।।
नित्यतप्तं महाघोरं दुःस्पर्शं रोमहर्षणम् । अगम्यं सर्वसत्त्वानामीश्वराणां सुदारुणम् ।।३८।।
मध्ये तस्यां शिलास्थल्यां त्रिंशद्योजनमण्डलम् । ज्वालासहस्रकलिलं वह्निस्थानं सुदारुणम् ।।३९।।
अनिन्धनस्तत्र सदा ज्वालामाली विभावसुः । ज्वलत्येष सदा देवः शश्वत्तत्र हुताशनः ।।४०।।
अधिदेवकृते योऽसावग्नेर्भागो विधीयते । स तत्र ज्वलते नित्यं लोकसंवर्तकोऽनलः ।।४१।।
अन्तरे शैलवरयोर्देवा वाऽपि तयोः शुभाः । मातुलुङ्गस्थली तत्र ह्यायाद्दशयोजना ।।४२।।
मधुव्यञ्जनसंस्थानैः सुरसैः कनकप्रभैः । फलैः परिणतैः सर्वा शोभिता सा महाःस्थली ।।४३।।

करते हैं ।।२९-३१।। समय का विभाग करनेवाले सहस्र किरणधारी सुरश्रेष्ठ, सब देवों के पूज्य भगवान् सूर्यदेव को वहाँ सिद्धगण प्रणाम किया करते हैं। पंचकूट और कैलास शिखरों के बीच की वन भूमि सौ योजन लम्बी और तिरसठ योजन चौड़ी है। मामूली जीव वहाँ नहीं जा सकते हैं, सामान्य देहधारियों के लिए वह दुर्गम और भयङ्कर है। वहाँ की भूमि उज्ज्वल और पाण्डुर वर्ण की है। दक्षिण दिशा में स्थित, सिद्ध समूह द्वारा सेवित इतनी ही अन्तर द्रोणियाँ हैं जिनका हमने क्रमशः वर्णन कर दिया ।।३२-३५।। द्विज श्रेष्ठ! अब पश्चिम दिशा में जो अन्तर द्रोणियाँ हैं और उनका जो विस्तार है, उनका हम भली-भाँति वर्णन कर रहे हैं, सुनिये! सुवक्ष और शिखिशैल पर्वतों के मध्य एक शिला-खण्डमय भूमि है जिसकी परिधि सौ योजन की है, जो सर्वदा गर्म रहती है। महाभयङ्कर उस भूमि को छूते ही लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सभी जीवों के लिए वह अगम्य तो है ही, समर्थों के लिए भी वह भयावह है ।।३६-३८।। उस शिलास्थली के बीच तीस योजन के घेरे में हजारों लपटों को फेंकनेवाले अग्निदेव का एक भयङ्कर स्थान है। बिना ईंधन के ही वहाँ शिखाशाली विभावसु अग्निदेव सदा जलते रहते हैं। देवता के निमित्त जिस अग्नि को भाग दिया जाता है, वे ही लोकसंवर्तक अग्निदेव सदा जलते रहते हैं ।।३९-४१।। देवापि और गय नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच दस योजन की एक मातुलुंगस्थली है। मधुमय व्यञ्जनों से और सुरस तथा सुवर्ण सदृश पके हुए फलों से वह वनस्थली सर्वत्र सुशोभित है ।।४२-४३।। वहाँ बृहस्पति का एक महापवित्र आश्रम है, जो सिद्ध-समूह से भरा हुआ, सुखद और सभी

तत्राऽऽश्रमं महापुण्यं सिद्धसंघनिषेवितम् । बृहस्पतेः प्रमुदितं सर्वकामगुणैर्युतम् ।।४४।।
तथैव शैलवरयोः कुमुदाञ्जनयोरपि । अन्तरे केसरद्रोणिरनेकायामयोजना ।।४५।।
द्विबाहुपरिणाहैस्तस्त्रिहस्तायतविस्तृतैः । चन्द्रांशुवर्णैर्व्याकोशैर्मत्तषट्पदनादितैः ।।४६।।
मधुसर्पीरजः पृक्तैर्महागन्धैर्मनोहरैः । शबलं तद्वनं भाति कुमुमैः सर्वकालजैः ।।४७।।
तत्र विष्णोः सुरगुरोर्दीप्तमायतनं महत् । प्रकाशं त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृतम् ।।४८।।
अन्तरे शैलवरयोः कृष्णपाण्डुरयोरपि । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं नवत्यायतयोजनम् ।।४९।।
श्लक्ष्णमेकशिलं देशं वृक्षवीरुद्विवर्जितम् । सुखपादप्रचारं च निम्नोन्नतविवर्जितम् ।।५०।।
मध्ये तु सरसस्तस्य रम्या तु स्थलपद्मिनी । सहस्रपत्रैर्व्याकोशैश्छत्रमात्रैरलंकृता ।।५१।।
पुण्डरीकैर्महापद्मै मरुचिरैन्धशालिभिः । शतपत्रैश्च विकचैरुत्पलैर्नीलपत्रकैः ।।५२।।
मदोत्कटैर्मधुकरैर्भ्रमरैश्च मदोत्कटैः । मृदुगद्गदकण्ठानां किंनराणां च निस्वनैः ।।५३।।
उपगीतपद्मखण्डाढ्या विस्तीर्णा स्थलपद्मिनी । यक्षगन्धर्वचरिता सिद्धचारणसेविता ।।५४।।
मध्ये तस्याश्च पद्मिन्याः पञ्चयोजनमण्डलः । न्यग्रोधो विपुलस्कन्धो ह्यनेकारोहमण्डितः ।।५५।।
तत्र चन्द्रप्रभः श्रीमान्पूर्णचन्द्रविभाननः । सहस्रवदनो देवो नीलवासाः सुरारिहा ।।५६।।

कामनाओं को सिद्ध करनेवाला है। उसी प्रकार कुमुद और अञ्जनाचल नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच बहुत योजनों में फैली हुई एक केसर द्रोणी है। वहाँ का वन सभी ऋतुओं में खिलनेवाले कुसुमों से रंग-बिरंगा-सा शोभित होता है। वे खिले हुए फूल डेढ़ हाथ लम्बे-चौड़े, चन्द्रमा की तरह श्वेत हैं और उन पर मतवाले भौंरे गूँजते रहते हैं। वहाँ सुरगुरु विष्णु का एक देदीप्यमान महान् मन्दिर है, जो तीनों लोकों में प्रकाशमान और सब के द्वारा वन्दनीय है ।।४४-४८।। कृष्ण और पाण्डुर नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच नब्बे योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक देश है, जिसमें चिकनी-सी एक ही शिला एक छोर से दूसरे तक बिछी है। लता वृक्ष आदि वहाँ कुछ नहीं हैं। चलनेवालों के लिए वहाँ बड़ी सुविधा है; क्योंकि ऊबड़-खाबड़ भूमि वहाँ कहीं भी नहीं है ।।४९-५०।। उनके बीच एक सरोवर है, जिसमें एक रमणीय स्थल-पद्मिनी है। खिले हुए सहस्रपत्रवाले कमलों से वह सरोवर मालूम पड़ता है मानो अनेक छत्रों से वह अलंकृत है। इस सरोवर में मनोहर गन्धों से युक्त महापद्म, पुण्डरीक और खिले हुए शतपत्र, उत्पल, नीलपत्र एवं मदमत्त भ्रमर तथा मदमत्त मधुकर सुशोभित हैं। कोमल गद्गद कण्ठवाले किन्नरों के गीतों से यह पद्मवन सदा निनादित रहता है। यह स्थल-पद्मिनी अतीव विस्तीर्ण है। यक्ष-गन्धर्व यहाँ विचरण करते रहते हैं और सिद्ध-चारण उसकी देख-रेख करते रहते हैं ।।५१-५४।। उस पद्मवन के बीच पाँच योजन की परिधि में अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त विशाल स्कन्धवाला एक न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है। वहाँ असुर निहंता श्रीमान् सहस्रमुखधारी नीलाम्बर देव विराजमान हैं। इनकी कान्ति चन्द्रमा की तरह है और इनके मुख की कान्ति भी पूर्णचन्द्र की ही तरह है। ये अपराजित महाभाग उस

पद्ममाल्यधरस्थल्यां महाभागोऽपराजितः । इज्यते यक्षगन्धर्वैर्विद्याधरगणैस्तथा ।।५७।।
तस्मिन्नायतने साक्षादनादिनिधनो हरिः । पद्मोपहारैर्विविधैरिज्यते सिद्धचारणैः ।।५८।।
तदनन्तसदो नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् । पद्ममालावलम्बाभिर्मालाभिरुपशोभितम् ।।५९।।
तथा सहस्रशिखरकुमुदस्यान्तरेण च । पञ्चाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तरम् ।।
इषुक्षेपोच्चशिखरं नानाविहगसेवितम् ।।६०।।
महागन्धैर्महास्वादैर्गजदेहनिभैः फलैः । मधुस्त्रवैर्महावृक्षैरुपेतं तत्समन्ततः ।।६१।।
तत्राऽऽश्रमं महापुण्यं देवर्षिगणसेवितम् । शुक्रस्य प्रथितं तत्र भास्वरं पुण्यकर्मणः ।।६२।।
शङ्कुकूटस्य शैलस्य वृषभस्यान्तरेण च । परूषकस्थली रम्या ह्यनेकाय (यु) तयोजना ।।६३।।
बिल्वप्रमाणैश्च शुभैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः । फलैः प्रक्लिद्यते भूमिः परुषैर्वृन्तविच्युतैः ।।६४।।
तां स्थलीमुपजीवन्ति किंनरोरगसाधवः । परूषकरसोन्मत्ता मानाढ्यातत्र चारणाः ।।६५।।
कपिञ्जलस्य शैलस्य नागशैलस्य चान्तरे । द्वियोजनशतायामा विस्तीर्णा शतयोजना ।।६६।।
स्थली मनोहरा सा हि नानावनविभूषिता । नानापुष्पफलोपेता किंनरोरगसेविता ।।६७।।
द्राक्षावनानि रम्याणि तथा नागवनानि च । खर्जूरवनखण्डानि नीलाशोकवनानि च ।।६८।।

पद्ममालामण्डित स्थली के मध्य में यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरों से सदा पूजित होते हैं ।।५५-५७।। उस स्थान में साक्षात् नित्य नारायण सिद्ध-चारणों द्वारा विविध भाँति के पद्मोपहार से पूजे जाते हैं ।।५८।। वह स्थान सब लोकों में अनन्त सदन के नाम से विख्यात है और पद्ममालाओं तथा अन्यान्य मालाओं से मंडित है। सहस्रशिखर और कुमुद पर्वतों के बीच सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा तथा फेंका गया तीर जितना ऊपर जा सकता है उतना ही ऊँचा पर्वत शिखर है। वहाँ विविध विहंग सदा कलरव करते रहते हैं ।।५९-६०।। वह चारों ओर से मधु टपकानेवाले वृक्षों से मण्डित है। उन वृक्षों के फल हाथी की देह के समान बड़े-बड़े, सुगन्धित और सुस्वादु हैं। उस शिखर पर पुण्यकर्त्ता भगवान् शुक्राचार्य का एक आश्रम है। वह आश्रम पवित्र, देवर्षियों से सेवित, विख्यात और देदीप्यमान है। शङ्कुकूट और वृषभ पर्वत के बीच एक अनेक योजन विस्तृत परूषकस्थली है, जिसके बेल के समान बड़े-बड़े, सुन्दर, सुगन्धित और सुस्वादु परूष फल टहनियों से टपक-टपककर वहाँ की भूमि को पंकिल बनाये रहते हैं। मान के धनी चारणगण परूष के रस को पीकर उन्मत्त बने फिरते हैं और किन्नर, उरग तथा साधुगण उस स्थली में सदा विचरण किया करते हैं ।।६१-६५।। कपिंजल और नागशैल के अन्तराल में नाना वनों से विभूषित एक मनोहर स्थली है, जो दो सौ योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है। वह विविध भाँति के फल-फूलोंवाले नाना प्रकार के वनों से सुशोभित है, जहाँ किन्नर और उरग विचरण किया करते हैं और जहाँ रमणीय द्राक्षावन, नागवन, खर्जूरवन, नील, अशोक-वन, स्वादिष्ट दाड़िमों

दाडिमानां च स्वादूनामक्षोटकवनानि च। अतसीतिलकानां च कदलीनां वनानि च ।।६९।।
बदरीणां च स्वादूनां वनखण्डानि सर्वशः। स्वादुशीताम्बुपूर्णाभिर्नदीभिः शोभितानि च ।।७०।।
तथा पुष्पकशैलस्य महामेघस्य चान्तरे। षष्टियोजनविस्तीर्णा सा भूमिः शतमायता ।।७१।।
समा पाणितलप्रख्या कठिना पाण्डुरा घना। वृक्षगुल्मलतागुल्मैस्तृणैश्चापि विवर्जिता ।।७२।।
वर्जिता विविधैः सत्त्वैर्नित्यमस्मिन्निराश्रया। सा काननस्थली नाम दारुणा रोमहर्षणा ।।७३।।
महासरांसि च तथा महावृक्षास्तथैव च। महावनानि सर्वाणि कान्तानीमानि सर्वशः ।।७४।।
सरसां च वनानां च स्थलीनां च प्रजापतेः। क्षुद्राणां सरसां चैव संख्या तत्र न विद्यते ।।७५।।
दश द्वादश सप्ताष्टौ विंशत्त्रिंशच्च योजनाः। स्थल्यो द्रोण्यश्च विख्याताः सरांसि च वनानि च ।।७६।।
केचित्सन्ति महाघोराः श्यामाः पर्वतकुक्षयः। सूर्यांशुजालैरस्पृष्टा नित्यं शीता दुरासदाः ।।७७।।
तथा ह्यनलतप्तानि सरांसि द्विजसत्तमाः। शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्राणि शतानि च ।।७८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

के वन, अखरोट के वन, अतसी-तिलक-वन, कदलीवन और सुन्दर स्वादवाले वदरीवन हैं। मधुवन और शीतल जलवाली नदियों से भी वह स्थली शोभित है ।।६६-७०।। पुष्पक और महामेघ पर्वतों के बीच सौ योजन चौड़ी और साठ योजन लम्बी एक भूमि है, जो हथेली की तरह समतल, कठोर, पाण्डुर और घन है। वहाँ वृक्ष, लता, गुल्म, तृण आदि का सर्वथा अभाव है और एक भी जीव-जन्तु वहाँ नहीं हैं वह भूमि अत्यन्त भयङ्कर और कठोर है। इसका नाम काननस्थली है ।।७१-७३।। वहाँ कितने महासरोवर, महावृक्ष और अति कमनीय महावन हैं। प्रजापति द्वारा बनाये गये वहाँ क्षुद्र सरोवरों, वनों और स्थलों की गणना नहीं हो सकती है ।।७४-७५।। इन छोटे-मोटे सरोवरों आदि की तो बात ही छोड़िये वहाँ के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थल, द्रोणी और सरोवरों की भी गिनती नहीं है, जो सात, आठ, दस और बारह, बीस, तीस योजन लम्बाई-चौड़ाई में हैं। उस प्रदेश में स्थान-स्थान पर कितनी ही कृष्ण वर्ण की कंदराएँ और घाटियाँ हैं, जहाँ कभी भी सूर्य की किरणें नहीं पहुँचती हैं, जिससे वे सदा ठंडी रहती हैं और जहाँ कोई जा नहीं सकता है। ब्राह्मणो! वहाँ कितने ही सरोवर हैं, जो सहस्रों की संख्या में पर्वतों के कुक्षि में वर्तमान हैं। इन सरोवरों का जल सदा खौलता रहता है ।।७६-७८।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३८।।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यस्मिन्यस्मिञ्शिलोच्चये । ये संनिविष्टा देवानां विविधानां गृहोत्तमाः ।।१।।
तत्र योऽसौ महाशैलः शीतान्तो नैकविस्तरः । नैकधातुशतैश्चित्रैर्नैकरत्नाकराकरः ।।२।।
नितम्बैः पुष्पसालम्बैर्नैकसत्त्वगुणालयः । महार्हमणिचित्राभिर्हेमवंशैरलंकृतः ।।३।।
नितम्बैः षट्पदोद्गीतैः प्रवालैर्हैमचित्रकैः । तटैः कुसुमसंकीर्णैर्मत्तभ्रमरनादितैः ।।४।।
लताम्बैश्चित्रवद्भिश्चित्रैर्धातुशतार्चितैः । सानुभी रत्नचित्रैश्च पुष्पाढ्यैश्च विभूषितः ।।५।।
विमलस्वादुपानीयैर्नैकप्रस्रवणैर्युतः । निकुञ्जैः कुसमोत्कीर्णैरनेकैश्च विभूषितः ।।६।।
पुष्पोडुपवहाभिश्च स्रवन्तीभिरलंकृतः । किंनराचरिताभिश्च दरीभिः सर्वतस्ततः ।।७।।
यक्षगन्धर्वचरितैरनेकैः कन्दरोदरैः । शोभितश्च सुखासेव्यैश्चित्रैर्गहनसंकटैः ।।८।।
नानासत्त्वगुणाकीर्णैः सुपानीयैः सुखाश्रयैः । नानापुष्पफलोपेतैः पादपैः समलंकृतः ।।९।।

अध्याय ३९

भुवनविन्यास

सूत जी बोले–इसके आगे अब हम पर्वतों के जिन–जिन शिखरों पर विविध देवों के उत्तमोत्तम गृह बने हुए हैं, उनकी कथा कहते हैं ।।१।। पर्वतों के बीच शीतान्त नाम का एक विस्तृत महागिरि है, जो बहुविध गैरिकादि धातुओं से चित्रित और अनेक प्रकार के रत्नों को उत्पन्न करनेवाला है। उसके मध्य भाग में पुष्पों के ढेर लगे हुए हैं और वह सब प्रकार के सत्त्वगुणों का आलय है। बहुमूल्य मणियों से जटित और सोने के बाँसों से वह सुशोभित है ।।२–३।। उस पहाड़ के मध्य में भौंरे सर्वदा गूँजते रहते हैं, किनारे–किनारे फूलों के ढेर लगे हुए हैं, जहाँ भौंरों की गुंजार होती ही रहती है, वहाँ की भूमि की पच्चीकारी सोने और मूँगे से की गयी है। पहाड़ की चोटियों पर लताओं ने ही मानो बेल–बूटे बना दिये हैं और इधर–उधर बिखरी हुई लाल–पीली धातुएँ चित्र की भाँति दीख पड़ती हैं। वहाँ फूलों की कोई गिनती नहीं है ।।४–५।। मीठे और स्वच्छ पानी के कितने ही झरने झर रहे हैं। फूलों से लदी हुई झाड़ियाँ या कुंजें वहाँ की शोभा को और बढ़ा देती हैं। वहाँ कुछ छोटी–बड़ी नदियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें फूलों से सजी हुई नावें तैरती रहती हैं। गुफाओं की भी कमी नहीं है, जिनके चारों ओर किन्नर लोग टहलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत–सी गुफाएँ हैं, जिनमें यक्ष, गन्धर्व आदि आनन्द से निवास किया करते हैं। सघन और संकटपूर्ण वनों के रहते हुए भी वे स्थान सुखपूर्वक निवास करने के योग्य हैं ।।६–८।। विविध भाँति के पुष्पों और फलों से युक्त वृक्ष वहाँ विराजमान हैं, खाने–पीने की सुविधा पाकर जिन पर अनेकानेक जीव निवास करते हैं। उस पर्वत के उदर में कितनी ही कन्दराएँ

तस्मिन्गुहाश्रयाकीर्णे अनेकोदरकन्दरे । क्रीडावनं महेन्द्रस्य सर्वकामगुणैर्युतम् ।।१०।।
तत्र तद्देवराजस्य पारिजातवनं महत् । प्रकाशं त्रिषु लोकेषु गीयते श्रुतिनिश्चयात् ।।११।।
तरुणादित्यशंकाशैर्महागन्धैर्मनोहरैः । पुष्पैर्भाति नगश्रेष्ठः सुदीप्त इव सर्वशः ।।१२।।
समग्रं योजनशतं तं गन्धमनिलो ववौ । पारिजातकपुष्पाणां माहेन्द्रवननिर्गतः ।।१३।।
वैदूर्यनालैः कमलैः सौवर्णैर्वज्रकेसरैः । सर्वगन्धजलोपेतैर्मत्तषट्पदनादितैः ।।१४।।
व्याकोशैर्विकचैश्चापि शतपत्रैर्मनोहरैः । सुपङ्कजैर्महापत्रैर्वाप्यस्तत्र विभूषिताः ।।१५।।
विरेजुरन्तरम्बुस्थाः सौवर्णमणिभूषिताः । परिस्पन्देक्षणा नित्यं मीनयूथाः सहस्रशः ।।१६।।
कूर्मैश्चानेकसंस्थानैर्हेमरत्नपरिष्कृतैः । चञ्चूर्यमाणैः सलिलैर्भाति चित्रं समन्ततः ।।१७।।
नानावर्णैश्च शकुनैर्नानारत्नतनूरुहैः । सुवर्णपुष्पैश्चानेकैर्मणितुण्डैर्द्विजातिभिः ।।१८।।
वल्गुस्वरैः मदोन्मत्तैः संपतद्भिः समन्ततः । शुशुभे तद्वनं रम्यं सहस्राक्षस्य धीमतः ।।१९।।
मत्तभ्रमरसंनादैर्विहङ्गानां च कूजितैः । नित्यमानन्दितवनं तस्मात्क्रीडावनं महत् ।।२०।।
सुवर्णपार्श्वैश्च नगैर्मणिमुक्तापुरस्कृतैः । मणिशृङ्गकणापन्नैः पतद्भिश्च समन्ततः ।।२१।।
शाखामृगैश्च चित्राङ्गैर्नानारत्नतनूरुहैः । नानावर्णप्रकारैश्च सत्त्वैरन्यैः समाकुलम् ।।२२।।

हैं, जिनमें लोग आश्रम बनाये हुए हैं। वहाँ निखिल विलास साधनों से युक्त देवराज इन्द्र का एक क्रीड़ावन है और वहीं उनका तीनों लोकों में विख्यात प्रसिद्ध पारिजात वन भी है। श्रुतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं ।।९-११।। तरुण सूर्य की तरह प्रकाशमान और मनोहर गन्धवाले पुष्पों से वह पर्वतराज सदा देदीप्यमान रहता है। महेन्द्र के वन से बाहर निकलनेवाली वायु उस पारिजात की गन्ध को सौ योजन तक उड़ा ले जाती है ।।१२-१३।। वहाँ बहुत-सी बावलियाँ भी हैं, जिनमें सोने के कमल खिले हुए हैं। उन कमलों के नालदण्ड वैदूर्य के और केसर हीरे के हैं जिन पर मदमत्त भ्रमर गुंजार करते रहते हैं। उनकी गन्ध से वापी का जल सुवासित रहता है। खिले हुए मनोहर शतपत्र और महापत्र पंकजों से भी वहाँ की वापिकाएँ विभूषित हैं। सुवर्ण और मणियों से भूषित हजारों चंचल आँखोंवाली मछलियाँ पानी के भीतर से उगती और डूबती रहती हैं ।।१४-१६।। सुवर्ण और रत्नों से परिष्कृत अनेक प्रकार के कछुये पानी को चीरकर इधर-उधर आते-जाते रहते हैं, जिससे पानी भी चित्रित-सा जान पड़ता है। बुद्धिमान् सहस्राक्ष इन्द्र का वह रमणीक वन विविध रंगवाले पक्षियों के कूजन और उनके उन्मत्त विचरण से सुन्दर दीख पड़ता है। उन पक्षियों के पंखों में कहीं रत्न गुथे हैं, तो कहीं सुवर्णपुष्प खचित हैं। किन्हीं-किन्हीं पक्षियों की चोंचों में मणि भी पिरोये हुए हैं। मत्त भ्रमरों के गुंजन और पक्षियों के कूजन से वह महान् क्रीड़ावन नित्य आनन्दमय रहता है और इसी से वह क्रीड़ावन भी कहलाता है ।।१७-२०।। इस क्रीड़ावन के पर्वत मणिमुक्ताओं से युक्त हैं। उनके पार्श्वदेश सुवर्ण के हैं और शिखरों से मणियों के कण झरते रहते हैं। विविध वर्ण के वानरों से जिनके लोम रत्नों से गुथे हुए हैं—और अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं से वह वन व्याप्त है। पारिजात पुष्प के वृक्ष और छोटी-छोटी लतिकाएँ बयार के हल्के धक्के से ही

मुञ्चन्ति पुष्पवर्षं च तत्र बाललता द्रुमाः । पारिजातकपुष्पाणां मन्दमारुतकम्पिताः ।।२३।।
शयनासननिर्व्यूहैः स्तीर्णै रत्नविभूषितैः । विहारभूमयस्तत्र द्विजाः शक्रवने शुभाः ।।
न च शीतो न चाप्युष्णो रविस्तत्र समः सदा ।।२४।।
नित्यमुन्मादजननो मधुमाधवसंभवः । वाति चाप्यनिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः ।।
नित्यं सङ्गसुखाह्लादी श्रमक्लमविनाशनः ।।२५।।
तस्मिन्निन्द्रवने शुभ्रे देवदानवपन्नगाः । यक्षराक्षसगुह्याश्च गन्धर्वाश्चामितौजसः ।।२६।।
विद्याधराश्च सिद्धाश्च किंनराश्च मुदा युताः । तथाऽप्सरोगणाश्चैव नित्यं क्रीडापरायणाः ।।२७।।
तस्य पर्वतराजस्य पूर्वे पार्श्वे महोचितम् । कुमुञ्जं (दं) शैलराजानं नैकनिर्झरकन्दरम् ।।२८।।
तस्य धातुविचित्रेषु कूटेषु बहुविस्तराः । अष्टौ पुर्यां ह्युदीर्णाश्च दानवानां महात्मनाम् ।।२९।।
वज्रके पर्वते चापि अनेकशिखरोदरैः । उदीर्णा राक्षसावासा नरनारीसमाकुलाः ।।३०।।
नीलका नाम ते घोरा राक्षसाः कामरूपिणः । तत्र तेऽभिरता नित्यं महाबलपराक्रमाः ।।३१।।
महानीलेऽपि शैलेन्द्रे पुराणि दश पञ्च च । हयाननानां विख्याताः किंनराणां महात्मनाम् ।।३२।।
देवसेनो महाबाहुर्बलमिन्द्रादयस्तथा । तत्र किंनरराजानो दश पञ्च च गर्विताः ।।३३।।
सुवर्णपार्श्वाः प्रायेण नानावर्णसमाकुलैः । बिलप्रवेशैर्नगरैः शैलेन्द्रः सोऽभ्यलंकृतः ।।३४।।
अतिदारुणा दृष्टिविषा ह्यग्निकोपा दुरासदाः । महोरगशतास्तत्र सुवर्णवशवर्तिनः ।।३५।।

पुष्पवृष्टि करने लगती हैं ।।२१-२३।। विप्रो! इन्द्र के उस वन में कितनी ही विहारभूमियाँ हैं जो रत्नों से विभूषित विविध शयन और आसनादि से भरी पड़ी हैं। वहाँ न गर्मी रहती है न सर्दी, क्योंकि वहाँ सूर्य सदा एक समान रहते हैं। विविध पुष्पों की गन्ध से सुवासित उन्मादजनक वसन्तकालीन वायु वहाँ सदा बहती है। वह वायु स्पर्श सुख से आनन्द उत्पन्न करनेवाली तथा थकावट और क्लेश को सदा हरनेवाली है ।।२४-२५।। उस सुन्दर इन्द्रवन में देव, दानव, पन्नग, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, महाबली गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर और अप्सराएँ प्रसन्नचित्त से सदा क्रीड़ा करती रहती हैं ।।२६-२७।। उस पर्वतराज के पूर्व पार्श्व में कुमुञ्ज नाम का एक पर्वतराज है, जिसमें अनेक झरने और कन्दराएँ हैं। उनकी धातुओं से चित्रित चोटी पर दानवों के अतिविस्तृत आठ पुर हैं। अनेक शिखर-कन्दराओं से युक्त वज्रक पर्वत पर भी राक्षसों के स्थान हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष रहते हैं ।।२८-३०।। वहाँ महाबली और पराक्रमी भयंकर कामरूपी नीलक नाम के राक्षस भी नित्य निवास करते हैं। उस महानील पर्वत पर घोड़े की तरह मुँहवाले महात्मा किन्नरों के भी पन्द्रह पुर हैं। महाबाहु देवसेन और बली इन्द्रादि गर्वीले पन्द्रह किन्नरराज वहाँ के अधिपति हैं ।।३१-३३।। उस पर्वतराज पर जो नगर बसे हुए हैं, उनमें कितने ही गुप्तद्वार हैं और विविध वर्णों की सोने की परिखा से वह नगर घिरा है। उस नगर में सैकड़ों विषैले अजगर (साँप) निवास करते हैं जिनके देखते ही विष चढ़ जाता है। वे अत्यन्त भयङ्कर, दुर्धर्ष और क्रोधित होने पर अग्नि की तरह देदीप्यमान हो जानेवाले हैं। परन्तु वे सुवर्ण के वशवर्ती भी हैं। सर्पों के रहने पर भी वहाँ उस

सुनागेऽपि महाशैले दैत्यावासाः सहस्त्रशः । हर्म्यप्रासादकलिलाः प्रांशुप्राकारतोरणाः ।।३६।।
वेणुमन्ते महाशैले विद्याधरपुरत्रयम् । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं पञ्चाशद्योजनायतम् ।।३७।।
उलूको रोमशश्चैव महानेत्रश्च वीर्यवान् । विद्याधरवरास्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमाः ।।३८।।
वैकङ्के शैलशिखरे ह्यन्तःकन्दरनिर्झरे । महोच्चशृङ्गे रुचिरे रत्नधातु विचित्रिते ।।३९।।
तत्राऽऽस्ते गारुडिर्नित्यमुरगारिर्दुरासदः । महावायुजवश्चण्डः सुग्रीवो नाम वीर्यवान् ।।४०।।
महाप्रमाणैर्विक्रान्तैर्महाबलपराक्रमैः । स शैलो ह्यावृतः सर्वः पक्षिभिः पन्नगारिभिः ।।४१।।
करञ्जेऽभिरतो नित्यं साक्षाद्भूतपतिः प्रभुः । वृषभाङ्को महादेवः शंकरो योगिनां प्रभुः ।।४२।।
नानावेषधरैर्भूतैः प्रमथैश्च दुरासदैः । करञ्जे सानवः सर्वे ह्यवकीर्णाः समन्ततः ।।४३।।
वसुधारे वसुमतः वसूनाममितौजसाम् । अष्टावायतनान्याहुः पूजितानि महात्मनाम् ।।४४।।
रत्नधातौ गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम् । सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि च ।।४५।।
महाप्रजापतेः स्थानं हेमशृङ्गे नगोत्तमे । चतुर्वक्त्रस्य देवस्य सर्वभूतनमस्कृतम् ।।४६।।
गजशैले भगवतो नानाभूतगणावृताः । रुद्राः प्रमुदिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृताः ।।४७।।
सुमेधे धातुचित्राड्ये शैलेन्द्रे मेघसंनिभे । नैकोदरदरीवप्रनिकुञ्जैश्चोपशोभिते ।।४८।।
आदित्यानां वसूनां च रुद्राणां चामितौजसाम् । तत्राऽऽयतनविन्यासा रम्याश्चैवाश्विनोरपि ।।४९।।

पर्वत पर हजारों दैत्यगण निवास करते हैं जिनकी अट्टालिकाओं और कोठों पर तोरण लगे हैं एवं जो ऊँची परिखाओं से घिरे हैं। वेणुमान नामक पर्वत पर पचास योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े विद्याधरों के तीन पुर हैं। उनके इन्द्र के तुल्य पराक्रमी महाबली उलूक, रोमश और महानेत्र नामक विद्याधर अधिपति हैं ।।३४-३८।। वैकंक नामक पर्वत के शिखर पर गरुड़पुत्र सुग्रीव निवास करते हैं। उस पर्वत का शिखर ऊँचा, रत्न-धातुओं से चित्रित और निर्झर कन्दराओं से युक्त है। वहाँ सुग्रीव नामक अत्यन्त बली, वायु के समान शीघ्रगामी, दुर्धर्ष और साँपों के निहन्ता गरुड़-पुत्र हैं। वह पर्वत महाबली, पराक्रमी एवं विशालकाय सर्पहन्ता पक्षियों से आवृत है ।।३९-४१।। करंज शैल पर साक्षात् भूतपति योगियों के प्रभु, वृषभाङ्क, भगवान् महादेव शंकर निवास करते हैं ।।४२।। उस करंज पर्वत पर नाना प्रकार के वेश धारण करनेवाले दुर्धर्ष प्रमथगण चारों ओर विराजमान हैं। वसुधार पर्वत पर अमित तेजस्वी महात्मा वसुगणों के पूज्यतम आठ आयतन (घर) विद्यमान हैं। गिरिवर रत्नधातु के ऊपर महात्मा सप्तर्षियों के सात आश्रम हैं, जो सिद्धों के भवनों से युक्त और पवित्र हैं ।।४३-४५।। हेमशृङ्ग पर्वत पर महाप्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा का निवास-स्थान है, जो सब जीवों के पूज्य हैं। गजशैल पर भगवान् रुद्र नाना भूतगणों से युक्त होकर प्रसन्न मन से नित्य निवास करते हैं। सभी जीव इनको नमस्कार करते हैं। शैलेन्द्र सुमेध विविध धातु रंगों से रंजित है, वह देखने में मेघ की तरह मालूम पड़ता है। उस पर कितनी ही कन्दराएँ, वन और कुंज हैं ।।४६-४८।। वहाँ अत्यन्त पराक्रमी आदित्य, वसु, रुद्र और अश्विनीकुमार के उत्तमोत्तम महल बने हुए हैं। इस श्रेष्ठ पर्वत पर और भी सिद्ध देवों के कितने ही निवास-स्थान हैं, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर

स्थानानि सिद्धैर्देवानां स्थापितानि नगोत्तमे । तत्र पूजापरा नित्यं यक्षगन्धर्वकिंनराः ।।५०।।
गन्धर्वनगरी स्फीता हेमकक्षे नगोत्तमे । अशीत्यमरपुर्याभा महाप्राकारतोरणा ।।५१।।
सिद्धा ह्यपत्तना नाम गन्धर्वा युद्धशालिनः । येषामधिपतिर्देवो राजराजः कपिञ्जलः ।।५२।।
अनले राक्षसावासाः पञ्चकूटेऽपि दानवाः । ऊर्जिता देवरिपवो महाबलपराक्रमाः ।।५३।।
शतशृङ्गे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम् । ताम्राभे काद्रवेयस्य तक्षकस्य पुरोत्तमम् ।।५४।।
विशाखे पर्वतश्रेष्ठे नैकवप्रदरीशुभे । गुहानिरतवासस्य गुहस्याऽऽयतनं महत् ।।५५।।
श्वेतोदरे महाशैले महाभवनमण्डिते । पुरं गरुडपुत्रस्य सुनाभस्य महात्मनः ।।५६।।
पिशाचके गिरिवरे हर्म्यं प्रासादमण्डितम् । यक्षगन्धर्वचरितं कुबेरभवनं महत् ।।५७।।
हरिकूटे हरिर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः । प्रभावात्तस्य शैलोऽसौ महानाभः प्रकाशते ।।५८।।
कुमुदे किंनरावासा अञ्जने च महोरगाः । कृष्णे गन्धर्वनगरा महाभवनशालिनः ।।५९।।
पाण्डुरे चारुशिखरे महाप्राकारतोरणे । विद्याधरपुरं तत्र महाभवनशालिनम् (?) ।।६०।।
सहस्रशिखरे शैले दैत्यानामुग्रकर्मणाम् । पुराणि समुदीर्णानां सहस्रं हेममालिनाम् ।।६१।।
मुकुटे पन्नगावासा अनेकाः पर्वतोत्तमाः । पुष्पके वै मुनिगणा नित्यमेव मुदा युताः ।।६२।।

आदि नित्य ही जिनकी पूजा किया करते हैं ।।४९-५०।। हेमकक्ष नामक पर्वतराज पर एक सुसमृद्ध गन्धर्व नगरी है, जो अस्सी देवपुर की तरह शोभाशालिनी, विशालाकार परिखा और तोरण से युक्त है। अपत्तन नामक सिद्धगण और युद्ध-प्रेमी गन्धर्वगण यहाँ निवास करते हैं, जिनके अधिपति राजराज कपिंजल हैं ।।५१-५२।। अनल पर्वत पर राक्षसों का और पंचकूट पर दानवों का निवास है। ये राक्षस और दानव महाबली, पराक्रमी और देवों के शत्रु हैं। शतशृंग पर्वत पर अत्यन्त बली यक्षों के सौ पुर हैं और ताम्राभ पर्वत पर कद्रुनन्दन तक्षक की उत्तम पुरी है ।।५३-५४।। अनेक परिखा और कन्दराओं से युक्त विशाख पर्वत पर गुहा में रहनेवाले गृह (कार्तिकेय जी) का एक विशाल निवास-स्थान है। श्वेतोदर महाशैल पर गरुड़पुत्र महात्मा सुनाभ का पुर है, जिसमें अनेक भवन बने हुए हैं। पिशाच नामक गिरिवर पर कुबेर का विशाल भवन है, जिसमें कोठे और छत भी हैं एवं यक्ष-गन्धर्व जहाँ विचरण किया करते हैं ।।५५-५७।। हरिकूट शैल पर सर्वभूत-नमस्कृत हरिदेव विराजमान हैं। उनके प्रभाव से वह पर्वत देदीप्यमान हो रहा है। कुमुद पर्वत पर किन्नरों का आवास है, अंजन पर्वत पर उरगगण रहते हैं और कृष्ण पर्वत पर विशाल भवन बनाकर गन्धर्वगण निवास करते हैं। मनोहर शिखरवाले पाण्डुर पर्वत पर विशाल भवनों से युक्त विद्याधरों का पुर है, जिसमें चारों ओर ऊँची परिखाएँ और तोरण लगे हैं ।।५८-६०।। सहस्रशिखर नामक पर्वत पर भयंकर कर्म करनेवाले दैत्यों की सुवर्ण मण्डित सहस्रपुरी है। मुकुट पर्वत पर पन्नगों के अनेक शैलावास हैं। पुष्पक पर्वत पर मुनिगण नित्य आनन्द से युक्त होकर रहते हैं। सुपक्ष नामक पर्वत पर वैवस्वत, सोम, वायु और नगाधिप के चार

वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च। सुपक्षे पर्वतवरे चत्वार्यायतनानि च ।।६३।।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैर्नागैर्विद्याधरोत्तमैः। सिद्धैर्हितेषु स्थानेषु नित्यमिष्टः प्रपूज्यते ।।६४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।।३९।।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

मर्यादापर्वते शुभ्रे देवकूटे निबोधत। विस्तीर्णे शिखरे तस्य कूटे गिरिवरस्य ह ।।१।।
समन्ताद्योजनशतं महाभवनमण्डितम्। जन्मक्षेत्रं सुपर्णस्य वैनतेयस्य धीमतः ।।२।।
नैकैर्महापक्षिगणैर्गारुडैः शीघ्रविक्रमैः। संपूर्णवीर्यसंपन्नैर्दमनैरुरगारिभिः ।।३।।
पक्षिराजस्य भवनं प्रथमं तन्महात्मनः। महावायुप्रवेगस्य शाल्मलिद्वीपवासिनः ।।४।।
तस्यैव चारुमूर्ध्वस्तु कूटेषु च महर्धिषु। दक्षिणेषु विचित्रेषु सप्तस्वपि तु शोभिनः ।।५।।

निवास-स्थान हैं। इन पूर्वोक्त स्थानों या पुर-भवनों के गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, विद्याधर और सिद्ध आदि अपने-अपने इष्ट देवों की पूजा किया करते हैं ।।६१-६४।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३९।।

अध्याय ४०

भुवनविन्यास

सूत जी बोले-श्वेतवर्ण के देवकूट नामक मर्यादा पर्वत के विस्तृत शिखर पर श्रीमान् विनतानन्दन सुपर्ण का स्थान है ।।१।। वह जन्म-क्षेत्र चारों ओर से सौ योजन के विस्तार में है जहाँ अनेक विशाल भवन बने हुए हैं। शाल्मलिद्वीप में निवास करनेवाले, वायु की तरह महावेगशाली महात्मा पक्षिराज गरुड़ का वही प्रथम भवन है, जहाँ महाबली, सर्पनिहंता शीघ्रगामी अनेकानेक गरुड़ के वंशज विशाल पक्षिगण निवास करते हैं ।।२-४।। सुन्दर शिखायुक्त उस पर्वतराज की दक्षिण दिशा में विचित्र प्रकार के सात शृङ्ग हैं, जिन पर सन्ध्याकालीन मेघ की तरह देवों द्वारा बनाये गये

(*संध्याभ्राभाः समुदिता रुक्मप्राकारतोरणाः । महाभवनमालाभिः शोभिता देवनिर्मिताः ।।६।।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णाश्चत्वारिंशत्तमायताः । सप्त गन्धर्वनगरा नरनारीसमाकुलाः ।।७।।
आग्नेया नाम गन्धर्वा महाबलपराक्रमाः । कुबेरानुचरा दीप्तास्तेषां ते भवनोत्तमाः ।।८।।
तस्य चोत्तरकूटेषु भुवनस्य महागिरेः । हर्म्यप्रासादबद्धं च उद्यानवनशोभितम् ।।९।।
पुरमाशीविषैः पूर्णं महाप्राकारतोरणम्) । वादित्रशतनिर्घोषैरानन्दितवनान्तरम् ।।१०।।
दुष्प्रसह्यममित्राणां त्रिंशद्योजनमण्डलम् । नगरं सैंहिकेयानामुदीर्णं देवविद्विषाम् ।।
सिद्धदेवर्षिचरितं देवकूटे निबोधत ।।११।।
द्वितीये द्विजशार्दूला मर्यादापर्वते शुभे । महाभवनमालाभिर्नानावर्णाभिरावृतम् ।।१२।।
सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलंकृतम् । विशालरथ्यं दुर्धर्षं नित्यं प्रमुदितं शिवम् ।।१३।।
नरनारीगणाकीर्णं प्रांशुप्राकारतोरणम् । षष्टियोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।।१४।।
नगरं कालकेयानामसुराणां दुरासदम् । देवकूटतटे रम्ये संनिविष्टं सुदुर्जयम् ।।
महाभ्रचयसंकाशं सुनासं नाम विश्रुतम् ।।१५।।
तस्यैव दक्षिणे कूटे विंशद्योजनविस्तरम् । द्विषष्टियोजनायामं हेमप्राकारतोरणम् ।।१६।।
हृष्टपुष्टावलिप्तानामावासाः कामरूपिणाम् । औत्कचानां प्रमुदितं राक्षसानां महापुरम् ।।१७।।

कितने ही बड़े-बड़े भव्य भवन हैं जो सोने के प्राकार-तोरण से सुशोभित हैं। चालीस योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े वहाँ गन्धर्वों के सात नगर हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष निवास करते हैं ।।५-७।। आग्नेय नामक महाबली और पराक्रमी कुबेर के अनुचर गन्धर्वगण उन उत्तम भवनों के अधिपति हैं। ब्राह्मणो! सुनिये! उस भुवन महागिरि के उत्तर शिखर पर देवशत्रु सैंहिकेयों का निवास है। उस वैभवशाली नगर का परिमण्डल तीस योजन का है, वह शत्रुओं के लिए अगम्य है। वहाँ कितने ही कोठे, अट्टालिकाएँ, उद्यान और वन हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी परिखाएँ हैं, चारों ओर तोरण लगे हुए हैं, सैकड़ों प्रकार के बाजे बजते रहते हैं, जिससे वाटिकाओं में आनन्द उमड़ता रहता है। नागों से वह नगर भरा हुआ है। देवकूट पर स्थित वह नगर सिद्ध और देवर्षियों का विहार-स्थल है ।।८-११।। ब्राह्मणश्रेष्ठ! दूसरे मर्यादा पर्वत पर विविध वर्ण के विशाल भवन समूह से युक्त कालिकेय नामक असुरों का एक दुर्गम नगर है, जिसमें सुवर्ण और मणियों से चित्रित तथा अलंकृत अनेक भवन और बड़े-बड़े राजपथ हैं, जिनमें सदा मंगल उत्सव होता है, जो सदा नर-नारियों से भरे रहते हैं, जिनकी परिखाओं से तोरण लटकते रहते हैं। वह सौ योजन लम्बा और साठ योजन चौड़ा सुनास नामक नगर महामेघ के समूह की तरह दीख पड़ता है ।।१२-१५।। उसी के दक्षिण शिखर पर बासठ योजन लम्बा और बीस योजन चौड़ा औत्कच नामक राक्षसों का महापुर है। इच्छा के अनुसार शरीर धारण करनेवाले, हृष्ट-पुष्ट और सगर्व राक्षस वहाँ निवास करते हैं ।।१६-१७।। वह पुर सुवर्ण की परिखा और तोरण से युक्त है, जो देवकूट पर्वत के मध्य

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ग. पुस्तके नास्ति।

मध्यमे तु महाकूटे देवकूटस्य वै गिरेः। सुवर्णमणिपाषाणैश्चित्रैः श्लक्ष्णतरैः शुभैः।।
शाखाशतसहस्राढ्यैर्नैकारोहसमाकुलम् ।।१८।।
स्निग्धपर्णमहामूलमनेकस्कन्धवाहनम् । रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमण्डलम् ।।१९।।
तत्र भूतवटं नाम नानाभूतगणालयम्। महादेवस्य प्रथितं त्र्यम्बकस्य महात्मनः।।
दीप्तमायतनं तत्र सर्वलोकेषु विश्रुतम् ।।२०।।
वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः । गृध्रोलूकमुखैश्चैव मेषोष्ट्राजमहामुखैः ।।२१।।
कदम्बैर्विकटैः स्थूलैर्लम्बकेशतनूरुहैः। नानावर्णाकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः ।।२२।।
दीप्तैरनेकैरुग्रास्यैर्भूतैरुग्रपराक्रमैः । अशून्यमभवन्नित्यं महापरिषदैस्तथा ।।२३।।
तत्र भूतपतेर्भूता नित्यं पूजां प्रयुञ्जते। झर्झरैः शङ्खपटहैर्भेरीडिण्डिमगोमुखैः ।।२४।।
रणितालसितोद्गीतैर्नित्यं बलितवर्जितैः। विस्फूर्जितशतैस्तत्र पूजायुक्ता गणेश्वराः।।
प्रीताः पुरारिप्रमथास्तत्र क्रीडापराः सदा ।।२५।।
सिद्धेदेवर्षिगन्धर्वयक्षनागेन्द्रपूजितः । स्थाने तस्मिन्महादेवः साक्षाल्लोकशिवः शिवः ।।२६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे भुवनविन्यासो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

शिखर पर सुशोभित है जो सुवर्ण मणिमय शिलाखण्डों से चित्रित, चिक्कन और भव्यतम हैं। उस महापुर के ऊँचे भवनों में सौ-सौ और हजार-हजार डगोंवाली सीढ़ियाँ बनी हुई हैं ।।१८।। उसी देवकूट पर्वत पर दस योजन विस्तृत एक भूतवट नाम का वृक्ष है, जिसके पत्ते चिकने, जड़ें विशाल, अनेक तने और जिसकी घनी छाया है। उस महावृक्ष पर नीचे-ऊपर अनेक जीव निवास करते हैं। त्रिनयन महात्मा महादेव का वहाँ तीनों लोकों में विख्यात एक भास्वर स्थान है ।।१९-२०।। सुअर, हाथी, सिंह, भालू, बाघ, करभ, गीध, उल्लू, भेड़ा, ऊँट और बकरे की तरह मुँहवाले उग्र पराक्रमी तथा अनेक प्रकार के भयङ्कर मुँहवाले, विकट, स्थूल, लम्बे केशोंवाले, नाना वर्ण और आकृति धारण करनेवाले, देदीप्यमान भूत-प्रेतादि से और महापरिषदों से वह स्थान सदा भरा रहता है ।।२१-२३।। भूतगण वहाँ भूतपति महादेव की पूजा नित्य किया करते हैं। झाँझ, शङ्ख, नगाड़ा, भेरी, डमरू, गोमुख आदि बाजे बजाकर नाच-गाना और भयङ्कर कोलाहल के साथ प्रमथादि गणेश्वर वहाँ महादेव की पूजा करके प्रसन्नता प्राप्त करते और क्रीड़ा किया करते हैं। इस प्रकार साक्षात् लोक-कल्याणकारक महादेव की उस स्थान में सिद्ध, देव, गन्धर्व, यक्ष और नाग सदा पूजा किया करते हैं ।।२४-२५।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४०।।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

विविक्तचारुशिखरं पत्रितं शङ्खवर्चसम्। कैलासं देवभक्तानामालयं सुकृतात्मनाम् ॥१॥
तस्य कूटतटे रम्ये मध्यमे कुन्दसंनिभे। योजनानां शतायामे पञ्चाशच्च तथाऽऽयतम् ॥२॥
सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलंकृतम्। महाभवनमालाभिर्भूषितं नैकविस्तरम् ॥३॥
धनाध्यक्षस्य देवस्य कुबेरस्य महात्मनः। नगरं तदनाधृष्यमृद्धियुक्तं मुदा युतम् ॥४॥
तस्य मध्ये सभा रम्या नानाकनकमण्डिता। विपुला नाम विख्याता विपुलस्तम्भतोरणा ॥५॥
तत्र तत्पुष्पकं नाम नानारत्नविभूषितम्। महाविमानं रुचिरं सर्वकामगुणैर्युतम् ॥६॥
मनोजवं कामगमं हेमजालविभूषितम्। वाहनं यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः ॥७॥
तत्रैकपिङ्गलो देवो महादेवसखः स्वयम्। वसति स्म स यक्षेन्द्रः सर्वभूतनमस्कृतः ॥८॥
तत्राप्सरोगणैर्यक्षैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः। वसति स्म महात्माऽसौ कुबेरो देवसत्तमः ॥९॥
तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ। कुमुदः शङ्खनीलस्य नन्दनो निधिसत्तमः ॥१०॥

अध्याय ४१

भुवनविन्यास

सूत जी बोले–उस देवकूट पर्वत के कुन्द तुल्य उज्ज्वल रमणीय मध्यम शिखर पर कैलास बसा हुआ है। यह सौ योजन लम्बा और पचास योजन चौड़ा है। इसका शिखर शङ्ख की तरह उज्ज्वल, विस्तृत, शान्त और मनोहर है। अनेक सुकृतकर्मा भक्त वहाँ निवास करते हैं ॥१–२॥ सुवर्ण–मणियों से चित्रित अनेक विशाल भवन–पंक्तियों से भूषित वहाँ एक लम्बा–चौड़ा नगर है, जो धनाधिपति महात्मा कुबेर देव का है। वह नगर शत्रु के आक्रमण से सुरक्षित होते हुए भी भव्य और वैभवसम्पन्न है। उस नगर के बीच अनेक स्तम्भवाला, तोरणों से युक्त और बहुविध सुवर्ण से भूषित एक मनोहर विपुला नामक सभा–भवन है ॥३–५॥ वहीं नाना रत्नों से विभूषित पुष्पक नामक एक सुन्दर–सा महाविमान है, जो सभी भोग्य पदार्थों से युक्त, मन की तरह शीघ्रगामी, इच्छामात्र से चलनेवाला और सोने के तारों से मढ़ा हुआ है। यही विमान यक्षराज महात्मा कुबेर की सवारी में काम आता है। वहाँ सब भूतों के पूज्य यक्षेन्द्र एकपिंगल देव स्वयं निवास करते हैं, जो महादेव के सखा हैं। देवोत्तम वह महात्मा कुबेर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण और अप्सराओं के साथ सतत निवास करते रहते हैं ॥६–९॥ महात्मा कुबेर की सभा में पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, शङ्ख, नील और निधिश्रेष्ठ नन्दन नामक आठ अक्षय दिव्य महानिधि (कोषागार) स्थित हैं जहाँ रत्न संचित रहते हैं। जहाँ

अष्टावेतेऽक्षया दिव्या धनेशस्य महात्मनः। महानिधानास्तिष्ठन्ति सभायां रत्नसंचयाः ।।११।।
तथेन्द्राग्नियमादीनां देवानामप्सरोगणैः। तेषां कैलास आवासो यत्र यक्षेश्वरः प्रभुः ।।१२।।
कृत्वा पूर्वमुपस्थानं यक्षेन्द्रस्य महात्मनः। पश्चाद्गच्छन्ति ये यस्य विहिताः परिचारिकाः ।।१३।।
तत्र मन्दाकिनी नाम सुरम्या विपुलोदका। सुवर्णमणिसोपाना नानापुष्पोत्कटोत्कटा ।।१४।।
जाम्बूनदमयैः पद्मैर्गन्धस्पर्शगुणान्वितैः। नीलवैदूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः ।।१५।।
तथा कुमुदखण्डैश्च महापद्मैरलंकृता। यक्षगन्धर्वनारीभिरप्सरोभिश्च शोभिता ।।१६।।
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः। उपस्पृष्टजला रम्या वापी मन्दाकिनी शुभा ।।१७।।
तथा अलकनन्दा च नन्दा च सरितां वरा। एतैरेव गुणैर्युक्ता नद्यो देवर्षिसेविताः ।।१८।।
तस्यैव शैलराजस्य पूर्वे कूटे परिश्रुताः। सहस्रयोजनायामास्त्रिंशद्योजनविस्तराः ।।१९।।
दश गन्धर्वनगराः समृद्ध्या परया युताः। महाभवनमालाभिरनेकाभिर्विभूषिताः ।।२०।।
सुबाहुहरिकेशाद्याश्चित्रसेनजरादयः। दश गन्धर्वराजानो दीप्तवह्निपराक्रमाः ।।२१।।
तस्यैव पश्चिमे कूटे कुन्देन्दुसदृशप्रभे। नानाधातुशतैश्चित्रैः सिद्धदेवर्षिसेविते ।।२२।।
अशीतियोजनायामं चत्वारिंशत्प्रविस्तरम्। एकैकयक्षभवनं महाभवनमालिनम् ।।२३।।
महायक्षालयान्यत्र त्रिंशदाढ्यानि मे शृणु। मुदाऽथ परमद्धर्या च संयुक्तानि समन्ततः ।।२४।।

वकेश्वर कुबेर का आवास-स्थान है, उसी के पास इन्द्र, अग्नि, यम आदि देवों और अप्सराओं का निवास है ।।१०-१२।। सबसे पहले महात्मा यक्षेन्द्र की पूजा करके परिचारकगण उनके पीछे-पीछे चला करते हैं। वहाँ गंभीर जलवाली एक मनोरम मन्दाकिनी नामक नदी भी है जिसमें मणियों के घाट बँधे हैं और तरह-तरह के सुगन्धित फूल खिले हैं जो गन्ध और स्पर्श गुण से युक्त सुवर्ण के पद्मों से तथा नील वैदूर्य के पत्रवाले गंधयुक्त महापद्मों और असंख्य कुमुद खण्ड एवं महापद्मों से अलंकृत हैं। उसमें यक्ष, गन्धर्वों की स्त्रियाँ और अप्सराएँ सदा स्नान करती हैं; उस मन्दाकिनी के जल को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस और पन्नग सदा पिया करते हैं ।।१३-१७।। इसके अतिरिक्त अलकनन्दा और नन्दा नाम की भी दो नदियाँ वहाँ बहती हैं, जो सुधा के समान जल से युक्त हैं और जिनका सेवन सदा देवर्षिगण किया करते हैं। उसी शैलराज के पूर्व शिखर पर हजार योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े गन्धर्व के दस नगर हैं। उन नगरों की समृद्धि का कोई ठिकाना नहीं है। वहाँ बड़े-बड़े महलों की कितनी ही श्रेणियाँ हैं। तप्त अङ्गार के सदृश तेजस्वी, पराक्रमी सुबाहु, हरिकेश, चित्रसेन और जर आदि दस गन्धर्वराज वहाँ के अधिपति हैं ।।१८-२१।। इस शैल के सिद्ध तथा सुरसेवित शत-शत धातुरंजित कुन्द तथा इन्दु तुल्य शुभ्रकान्तिमय पश्चिम शृङ्ग पर अलग-अलग यक्षों के भवन बने हैं। वह स्थान अस्सी योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा है। वहाँ कितने बड़े-बड़े भवन हैं ।।२२-२३।। सुनिये, यहाँ महाशयों के ऋषि-सम्पन्न तीस भवन हैं। उन भवनों में सदा आनन्द की धारा बहती रहती है। महामाली, सुनेत्र

महामालिसुनेत्राद्यास्तथा मणिवरादयः । उदीर्णा यक्षराजानस्तत्र त्रिंशत्सदा बभुः ।।२५।।
इत्येते कथिता यक्षा वाय्वग्निसमतेजसः । येषामधिपतिर्देवः श्रीमान्वैश्रवणः प्रभुः ।।२६।।
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे हिमवत्यचलोत्तमे । निकुञ्जनिर्झरगुहानैकसानुदरीतटे ।।२७।।
अर्णवादर्णवं यावत्पूर्वपश्चायतेऽचले । किंनराणां पुरशतं निविष्टं वै क्वचित्क्वचित् ।।२८।।
नैकशृङ्गकलापस्य शैलराजस्य कुक्षिषु । नरनारीप्रमुदितं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।।२९।।
द्रुमसुग्रीवसैन्याद्या भगदत्तपुरःसराः । तत्र राजशतं तेषां दीप्तानां बलशालिनाम् ।।३०।।
विवाहो यत्र रुद्रस्य महादेव्योमया सह । तपस्तप्तवती चैव यत्र देवी वराङ्गना ।।३१।।
किरातरूपिणा चैव तत्र रुद्रेण क्रीडितम् । यत्र चैव कृतं ताभ्यां जम्बूद्वीपावलोकनम् ।।३२।।
यत्र ताः संमुदा युक्ता नानाभूतगणैर्युताः । चित्रपुष्पफलोपेता रुद्रस्याऽऽक्रीडभूमयः ।।३३।।
हृष्टा गिरिदरीवासाः कृशोदर्यो मनोरमाः । सुन्दर्यो यत्र किंनर्यो रमन्ते स्म सुलोचनाः ।।३४।।
विशालाक्षस्तथा यक्षा अन्याश्चाप्सरसां गणाः । गन्धर्वाश्चाङ्गशालिन्यो यत्र तत्र मुदा युताः ।।३५।।
तत्रैवोमावनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् । अर्धनारीनरं रूपं धृतवान्यत्र शंकरः ।।३६।।
तथा शरवणं नाम यत्र जातः षडाननः । यत्र चैव कृतोत्साहः क्रौञ्चशैलवनं प्रति ।।३७।।

और मणिवर आदि तीस यक्षराज वहाँ के उदार प्रभु हैं। वायु और अग्नि के समान तेजस्वी उपर्युक्त यक्षों के अधिपति श्रीमान् वैश्रवण हैं ।।२४-२६।। उसी कैलास के दक्षिण पार्श्व में नगाधिराज हिमालय स्थित है। जिसमें कितने ही कुंज हैं। झरनों और गुफाओं की भी गिनती नहीं है। चोटियाँ, दर्रे और मैदान भी अनगिनत हैं। यह हिमालय पूर्वीय समुद्र से लेकर पश्चिमीय समुद्र तक फैला हुआ है। इसके किसी-किसी स्थान पर किन्नरों के नगर बसे हुए हैं, जो गिनती में सौ के लगभग हैं। अनगिनत शिखरोंवाले शैलाधिराज हिमालय के मध्य-उदर में ये सब नगर विराजमान हैं, जहाँ के स्त्री-पुरुष सदा प्रसन्न और प्रजा हृष्ट-पुष्ट रहती है ।।२७-२९।। द्रुम, सुग्रीव, सैन्य और भगदत्त प्रमुख सौ राजा उन बलशाली तेजस्वी किन्नरों के अधिपति हैं। इसी पर्वत पर महादेव रुद्र का उमा के साथ ब्याह हुआ था। वराङ्गना उमा देवी ने यहीं कठोर तप किया था। किरात के वेश में महादेव ने यहीं क्रीड़ा की थी। इसी पर्वत पर से महादेव और पार्वती ने समस्त जम्बूद्वीप का अवलोकन किया था ।।३०-३२।। वहाँ जो रुद्र देव की क्रीडा भूमि है, वह विविध भूतगणों से युक्त विचित्र पुष्प-फल-सम्पन्न और आनन्दमय है। इस शैलदेश में गिरि-गुहा-निवासिनी मनोहारिणी, प्रसन्नवदना, सुनयना, कृशोदरी, सुन्दरी किन्नरियाँ सदा रमण किया करती हैं ।।३३-३४।। जहाँ विशालाक्ष यक्ष, सुन्दर गन्धर्व और अन्यान्य अप्सराएँ सदा आनन्द मनाती रहती हैं। वहीं सब लोगों में विख्यात उमावन है। जहाँ भगवान् शङ्कर ने आधे शरीर से नर और आधे से नारी का रूप धारण किया था। वहीं शरवन भी है, जहाँ कार्तिकेय उत्पन्न हुए। यहीं रहकर उन्होंने क्रौंच शैलवन का विदारण करने के लिए उत्साह प्रकट किया था ।।३५-३७।। श्रीमान् कार्तिकेय का इसी स्थान

ध्वजापताकिनं चैव किङ्किणीजालमालिनम्। यत्र सिंहरथं युक्तं कार्तिकेयस्य धीमतः ।।३८।।
चित्रपुष्पनिकुञ्जस्य क्रौञ्चस्य च गिरेस्तटे। देवारिस्कन्दनः स्कन्दो यत्र शक्तिं विमुक्तवान् ।।३९।।
यत्राभिषिक्तश्च गुहः सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरोत्तमैः। सैनापत्ये च दैत्यारिर्द्वादशार्कप्रतापवान् ।।४०।।
भूतसंघावकीर्णानि एतान्यन्यानि च द्विजाः। तत्र तत्र कुमारस्य स्थानान्यायतनानि च ।।४१।।
तथा पाण्डुशिला नाम ह्याक्रीडा क्रौञ्चघातिनः। नानाभूतगणाकीर्णे पृष्ठे हिमवतः शुभे ।।४२।।
तस्य पूर्वे तटे रम्ये सिद्धवासमुदाहृतम्। कलापग्राममित्येवं नाम्नाऽऽख्यातं मनीषिभिः ।।४३।।
मृकण्डस्य वसिष्ठस्य भरतस्य नलस्य च। विश्वामित्रस्य विप्रर्षेस्तथैवोद्दालकस्य च ।।४४।।
अन्येषां चोग्रतपसामृषीणां भावितात्मनाम्। हिमवत्याश्रमाणां च सहस्राणि शतानि च ।।४५।।
नैकसिद्धगणावासं स्थानायतनमण्डितम्। यक्षगन्धर्वचरितं नानाम्लेच्छगणैर्युतम् ।।४६।।
नानारत्नाकरापूर्णं नानासत्त्वनिषेवितम्। नानानदीसहस्राणां संभवं वरपर्वतम् ।।४७।।
पश्चिमस्याचलेन्द्रस्य निषधस्य यथार्थवत्। कीर्त्यमानमशेषेण विशेषं शृणुत द्विजाः ।।४८।।
विस्तीर्णे मध्यमे कूटे हेमधातुविभूषिते। दीप्तमायतनं विष्णोः सिद्धर्षिगणसेवितम् ।।
यक्षाप्सरः समाकीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ।।४९।।
तत्र साक्षान्महादेवः पीताम्बरधरो हरिः। वरदः सेव्यते सिद्धैर्लोककर्ता सनातनः ।।५०।।

पर एक सिंहरथ है, जो ध्वजापताका से युक्त और किंकिणी जाल से सुशोभित है। चित्र-विचित्र पुष्प-कुंजों से युक्त क्रौंच पर्वत प्रान्त में देवशत्रुओं के संहारकर्त्ता कार्तिकेय ने यहीं अपनी शक्ति छोड़ी थी। यहीं पर इन्द्रादि श्रेष्ठ देवों के सेनापति बनाये गये थे और उनका अभिषेक हुआ था। वे बारह सूर्य की तरह देदीप्यमान थे ।।३८-४०।। ब्राह्मणो! भूत-यूथों से व्याप्त यहाँ कार्तिकेय के कितने ही स्थान और भवन हैं। हिमालय के मनोहर पृष्ठ भाग में जो नाना भूतों से संकुल हैं कुमार कार्तिकेय की पाण्डुशिला नामक एक क्रीड़ाभूमि है। उसके रमणीय पूर्वीय प्रान्त में सिद्धों का निवास-स्थान कहा गया है, जिसका नाम विद्वानों ने कलापग्राम रखा है ।।४१-४३।। मृकंड, वसिष्ठ, भरत, नल, विश्वामित्र, उद्दालक आदि विप्रर्षियों के तथा कठोर तपस्या करनेवाले कितने ही पवित्रात्मा ऋषियों के उस हिमालय पर सैकड़ों, हजारों आश्रम हैं। वहाँ बहुतेरे सिद्धों के आवास-स्थान और आयतन हैं। यक्ष-गन्धर्व वहाँ विचरण करते हैं, विविध म्लेच्छ जातियों का भी वहाँ निवास है। यह गिरिराज कितने ही प्रकार के रत्नों के खजानों से परिपूर्ण है। कितने ही प्रकार के जीव-जन्तु वहाँ रहा करते हैं। उस श्रेष्ठ पर्वत से अनगिनत हजारों नदियाँ निकलती हैं ।।४४-४७।। ब्राह्मणो! सुनिये। पश्चिमाचल निषध का अब हम यथार्थ रूप से वर्णन करते हैं। स्वर्ण धातु से विभूषित उसके विस्तृत मध्यम शिखर पर विष्णु का देदीप्यमान मन्दिर है जो सिद्ध ऋषियों से सेवित और यक्ष, अप्सरा, गन्धर्व आदि से व्याप्त है ।।४८-४९।। वहाँ साक्षात् पीताम्बरधारी देवाधिदेव हरि भगवान् निवास करते हैं, जो सनातन, सृष्टिकर्त्ता और वरदाता हैं, सिद्ध जिनकी सदा सेवा किया करते हैं। उसी निषध पर्वत के नाना धातु से विभूषित और चिकने

तस्यैवाभ्यन्तरे कूटे नानाधातुविभूषिते । तटे निषधकूटस्य श्लक्ष्णचारुशिलातले ।।५१।।
रुक्मकाञ्चनर्निर्यूहं तप्तकाञ्चनतोरणम् । अनेकवलभीकूटप्रतोलीशतसंकटम् ।।५२।।
हर्म्यप्रासादमतुलं तप्तकाञ्चनभूषितम् । हर्म्यप्रासादबद्धं च मुदितं चातिविस्तरम् ।।५३।।
उद्यानमालाकलितं त्रिंशद्योजनमायतम् । दुष्प्रसह्यमभित्रैस्तत्पूर्णमाशीविषोपमैः ।।
उलङ्घीनां प्रमुदितं रक्षसां राक्षसं पुरम् ।।५४।।
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे नैकदैत्यगणालये । गुहाप्रवेशं नगरं शैलकुक्षौ दुरासदम् ।।५५।।
तथैव पश्चिमे कूटे पारिजातशिलोच्चये । देवदानवनागानां समृद्धानि पुराणि तु ।।५६।।
तत्र सोमशिला नाम गिरेस्तस्य महातटे । सोमो यत्रावतरति सदा पर्वसु पर्वसु ।।५७।।
उपासतेऽत्र श्रीमन्तं तारापतिमनिन्दितम् । ऋषिकिन्नरगन्धर्वाः साक्षाद्देवं तमोनुदम् ।।५८।।
तत्रैव चोत्तरे कूटे ब्रह्मपार्श्वमिति स्मृतम् । स्थानं तत्र सुरेशस्य ब्राह्मणः प्रथितं दिवि ।।५९।।
इज्यापूजानमस्कारैस्तत्र सिद्धाः स्वयंभुवम् । उपासते महात्मानं यक्षगन्धर्वदानवाः ।।६०।।
तथैवाऽऽयतनं वह्नेः सर्वलोकेषु विश्रुतम् । तत्र विग्रहवान्वह्निः सेव्यते सिद्धचारणैः ।।६१।।
तथैव चोत्तरे रम्ये त्रिशृङ्गे वरपर्वते । ऋषिसिद्धानुचरिते नानाभूतगणालये ।।
पुरं तत्त्रिषु लोकेषु हेमचित्रं तु विश्रुतम् ।।६२।।

शिलातलवाले भीतरी शिखर पर उल्लंघी नामक राक्षसों का एक सुन्दर नगर है। वहाँ चाँदी-सोने के निर्यूह (द्वार) और चमकीले सोने के तोरण हैं, ओलती, गली, कूटागार आदि से वह नगर भरा है। कोठे और महल खरे सोने की भाँति जगमगा रहे हैं, महलों और कोठों का ताँता लगा हुआ है, स्थान-स्थान पर विविध वाटिकाएँ सुशोभित हैं। साँपों से वह नगर परिपूर्ण है। (साँप ही प्रवेश-द्वार पर रखवाली करते हैं); इसी से शत्रु वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते हैं। वह नगर तीस योजन का है और सदा हरा-भरा आनन्दमय रहता है ।।५०-५४।। उसके दक्षिण पार्श्व में बहुतेरे दैत्य निवास करते हैं और उसी शैल के मध्य उदर में दुष्प्रवेश्य नगर हैं। इस नगर में प्रवेश करने का मार्ग एक गुफा है। उसी के पश्चिम पारिजात शिलाखण्डवाले शिखर पर देव, दानव और नागों के वैभव सम्पन्न नगर हैं ।।५५-५६।। उस पर्वत की महातट-भूमि पर एक सोमशिला है, जिस पर प्रत्येक मास में चन्द्रमा उतरा करते हैं। ऋषि, किन्नर और गन्धर्वगण अन्धकारविनाशी, सुन्दरतम, श्रीमान् साक्षात् तारापति चन्द्र की वहाँ उपासना किया करते हैं। उस पर्वत का शिखर ब्रह्मपार्श्व कहलाता है। स्वर्ग में वह सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा का स्थान कहा जाता है ।।५७-५९।। यक्ष, गन्धर्व और दानव आदि भजन, पूजन और नमस्कार के द्वारा वहाँ महात्मा ब्रह्मा की उपासना किया करते हैं। वहीं वह्नि देव का निवास-स्थान है जो सब लोकों में विख्यात है। सिद्ध-चारण आदि देहधारी वह्नि की उपासना किया करते हैं। उसी श्रेष्ठ पर्वत के उत्तर रमणीय त्रिकूट पर जहाँ ऋषि, सिद्ध और नाना प्रकार के भूतगण निवास करते हैं, हेमचित्र नामक एक त्रिलोक-विख्यात नगर है ।।६०-६२।। वहाँ तीनों देवों के तीन स्थान हैं। ब्राह्मणो! पूर्व शिखर

त्रयाणां देवमुख्यानां त्रीण्येवाऽऽयतनानि च । नारायणस्याऽऽयतनं पूर्वकूटे द्विजोत्तमाः ।।
मध्यमे ब्रह्मणः स्थानं शंकरस्य तु पश्चिमे ।।६३।।
दैत्यदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । इं (ई) जाता अभिपूज्यते देवदेवा महाबलाः ।।६४।।
तथा पुराणि रम्याणि देशे चैव क्वचित्क्वचित् । यक्षगन्धर्वप्रागानां त्रिशृंगे वरपर्वते ।।६५।।
तथैव चोत्तरे देशे जातुधौ देवपर्वते । अनेकशृङ्गकलिते सिद्धसाधुनिषेविते ।।६६।।
यक्षाणां किंनराणां च गन्धर्वाणां सहस्रशः । नागानां राक्षसानां च दैत्यानां च महाबले ।।६७।।
कूटे तु मध्यमे तस्य सिद्धसंघनिषेविते । रम्ये देवर्षिचरिते रत्नधातुविभूषिते ।।६८।।
पद्मोत्पलवनैः फुल्लैः सौगन्धिकवनैस्तथा । तथा कुमुदखण्डैश्च विकचैरुपशोभते ।।६९।।
विहङ्गसंघसंघुष्टं नानासत्त्वनिषेवितम् । हंसकारण्डवाकीर्णं मत्तषट्पदसेवितम् ।।७०।।
नानासत्त्वगणाकीर्णं विहङ्गैरुपशोभितम् । चारुतीर्थसुसंबाधं त्रिंशद्योजनमण्डलम् ।।७१।।
सिद्धैरुपस्पृष्टजलं जलदोषविवर्जितम् । तत्राऽऽनन्दजलं नाम महापुण्यजलं सरः ।।७२।।
तत्र नागपतिश्चण्डश्चण्डो नाम दुरासदः । शतशीर्षो महाभागो विष्णुचक्राङ्कचिह्नितः ।।
इत्येवमष्टौ विज्ञेया विचित्रा देवपर्वताः ।।७३।।
पुरैरायतनैः पुण्यैः पुण्योदैश्च सरोवरैः । सुवर्णपर्वतैर्नैकैस्तथा रजतपर्वतैः ।।७४।।
नानारत्नप्रभासैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः । हरितालपर्वतैर्नैकस्तथा हिङ्गुलकाञ्चनैः ।।७५।।

पर नारायण का, बीच में ब्रह्मा का और पश्चिम में महादेव का स्थान है। पूज्य वे बलशाली दैत्य, दानव, गन्धर्व और यक्ष राक्षसों द्वारा सदा पूजे जाते हैं। श्रेष्ठ पर्वत के उन तीनों शिखरों पर कहीं-कहीं किसी स्थान में यक्ष, गन्धर्व और नागों के भी रमणीय पुर हैं ।।६३-६५।। उसी के उत्तर जातुधि नामक देवपर्वत पर जिसके अनेक शृङ्ग हैं और जिन पर साधु विराजते रहते हैं-हजारों यक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों और दैत्यों के भी अनेक मन्दिर हैं। उस पर्वत के रमणीय रत्न धातुओं से विभूषित मध्यमशिखर पर सिद्ध-संघ देवर्षि सदा निवास करते हैं ।।६६-६८।। वहाँ अत्यन्त पवित्र जलवाला आनन्द जल नामक एक सरोवर है। उसका जल सदा निर्मल रहता है, सिद्धगण उसमें स्नान करते हैं, विविध भाँति के जीवों से वह भरा हुआ है। वह पक्षियों के समूह से भरा हुआ और अति शोभाशाली है। हंस, कारण्ड और मतवाले भ्रमर वहाँ विचरण करते हैं। वह विकसित पद्म, उत्पल, सौगन्धिक और कुमुद से शोभित है और उसमें बढ़िया घाट बँधे हुए हैं। वह लम्बाई-चौड़ाई में तीस योजन का है ।।६९-७२।। वहाँ चण्ड नामक एक अत्यन्त दुर्धर्ष और भयंकर नागपति निवास करते हैं, वे महाभाग सौ सिरवाले हैं और उन सिरों पर विष्णुचक्र चिह्नित हैं। इन्हीं आठों को विचित्र देवपर्वत समझना चाहिए ।।७३।। अनेकानेक पवित्र पुर, मन्दिर, पवित्र जलवाले सरोवर, अनेक सोने-चाँदी के पर्वत, नाना रत्नप्रभा मण्डित अगणित मणिपर्वत, बहुत-से हरिताल शैल, असंख्य हिंगुल कांचन, अरुणाभ विशुद्ध भास्वर मनःशिला-समूह, नानाधातुरंजित अनगिनत मणिपर्वत एवं नदी, कन्दरा, शिलाखण्ड और

शुद्धैर्मनः शिलाजालैर्भास्वरैररुणप्रभैः । नानाधातुविचित्रैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः ।।७६।।
पूर्णा वसुमती सर्वा गिरिभिर्नैकविस्तरैः । नदीकन्दरशैलाढ्यैरनेकैश्चित्रसानुभिः ।।७७।।
(*तेषु शैलसहस्रेषु नानावर्णेषु नित्यशः । दैत्यदानवगन्धर्वयक्षाणां च महालयैः।) ।।७८।।
इत्येवमचलैर्युक्तैर्दैत्यराक्षससाधुभिः । किंनरोरगगन्धर्वैर्विचित्रैः सिद्धचारणैः ।।७९।।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेविता नैकविस्तराः । पुण्यकृद्भिः समाकीर्णाः केसराकृतयो नगाः ।।८०।।
गिरिजालं तु तन्मेरो सिद्धलोकमिति स्मृतम् । चित्रं नानाश्रयोपेतं प्रचारं सुकृतात्मनाम् ।।८१।।
नात्युग्रकर्मसिद्धानां प्रतिमा मध्यमाः स्मृता । स हि स्वर्ग इति ख्यातः क्रमस्त्वेष प्रकीर्तितः ।।८२।।
चतुर्महाद्वीपवती सेयमुर्वी प्रकीर्तिता । नानावर्णप्रमाणैर्हि नानावर्णबलैस्तथा ।।८३।।
नानाभक्ष्यान्नपानैश्च नानाच्छादनभूषणैः । प्रजाविकारैर्विविधैश्चित्रैरध्युषितैः सह ।।८४।।
चत्वारो नैकवर्णाढ्या महाद्वीपाः परिश्रुताः । भद्राश्च भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः ।।
उत्तराः कुर्यश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः
।।८५।।
सैषा चतुर्महाद्वीपा नानाद्वीपसमाकुला । पृथिवी कीर्तिता कृत्स्ना पद्माकारा मया द्विजाः ।।८६।।
तदेषा सान्तरद्वीपा सशैलवनकानना । पद्मेत्यभिहिता कृत्स्ना पृथिवी बहुविस्तरा ।।८७।।
सब्रह्मसदनं लोकं सदेवासुरमानुषम् । त्रिलोकमिति विख्यातं यत्सत्त्वैर्व्यवहार्यते ।।८८।।

विचित्र शिखरों से युक्त अनेक पर्वत से यहाँ की सम्पूर्ण भूमि परिपूर्ण है ।।७४-७७।। उन नाना वर्ण के हजारों पर्वतों पर दैत्य, दानव, गन्धर्व और यक्षों के भव्य भवन बने हुए हैं। इन शैलों पर दैत्य, राक्षस, साधु, किन्नर, उरग, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, अप्सरा आदि निवास करते हैं। सारांश यह कि ये विस्तृत पर्वत पुण्यात्माओं से परिपूर्ण हैं ।।७८-७९।। मेरु के केसर की तरह बिखरे हुए ये पर्वत-जाल ही सिद्धलोक कहलाते हैं। ये विचित्र विविध आश्रमयुक्त और सुकृतात्माओं के विहारस्थल हैं। यह उदार कर्मा सिद्धों की मध्यमा प्रतिमा कहा गया है। यह मेरु ही स्वर्ग कहा गया है। उसके संस्थान-क्रम का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।।८०-८२।। नाना वर्ण-प्रमाण, नाना वर्णबल, नाना भक्ष्य, अन्न, पान, आच्छादन, भूषण और विविध भाँति के निवासी प्रजाजनों से युक्त यह पृथ्वी चार द्वीपोंवाली कही गयी है। अनेक वर्णों से युक्त भद्र, भरत, केतुमाल और उत्तर कुरु नामक चार महाद्वीप विख्यात हैं। इन द्वीपों में पुण्यात्मा लोग निवास करते हैं ।।८३-८५।। ब्राह्मणो! यहाँ हमने चारों महाद्वीपों और नाना द्वीपों से युक्त पद्माकार संपूर्ण पृथ्वी का वर्णन किया है। इस प्रकार की अन्तर द्वीप, शैल, वन, कानन से युक्त अत्यन्त विस्तृत सम्पूर्ण पृथ्वी पद्मा कही गयी है। ब्रह्मलोक से लेकर देव, असुर और मनुष्यलोक तक यह सब जीव-जन्तुओं के द्वारा त्रिलोक कहा जाता है ।।८६-८८।। चन्द्र-सूर्य से जो आलोकित होता है और रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्द गुणों से जो

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

चन्द्रादित्यावतप्तं यत्तज्जगत्परिगीयते। गन्धवर्णरसोपेतं शब्दस्पर्शगुणान्वितम् ।।८९।।
ते लोकपद्मं श्रुतिभिः पद्ममित्यभिधीयते। एष सर्वपुराणेषु क्रमः सुपरिनिश्चितः ।।९०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे भुवनविन्यासो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

सरोवरेभ्यः पुण्योदा देवनद्यो विनिर्गताः। महौघतोया नद्यश्च ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् ।।१।।
आकाशाम्भोनिधेर्योऽसौ सोम इत्यभिधीयते। आधारः सर्वभूतानां देवानाममृताकरः ।।२।।
तस्मात्प्रवृत्ता पुण्योदा नदी ह्याकाशगामिनी। सप्तमेनानिलपथा प्रयाता विमलोदका ।।३।।
सा ज्योतिषि निवर्तन्ती ज्योतिर्गणनिषेविता। ताराकोटिसहस्त्राणां नभसश्च समायता ।।४।।
माहेन्द्रेण गजेन्द्रेण नाकाशपथयायिना। क्रीडिता ह्यन्तरतले या सा विक्षोभितोदका ।।५।।

युक्त है, वही जगत् है। इसी को लोकपद्म कहते हैं और श्रुति इसको पद्म कहती है। सभी पुराणों में पृथ्वी के वर्णन का क्रम इसी प्रकार है ।।८९-९०।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४१।।

अध्याय ४२

भुवनविन्यास

सूत जी बोले—सरोवरों से जो-जो जिस प्रकार पवित्र जलवाली देवनदियाँ और गम्भीर जलवाली नदियाँ प्रवाहित हुई हैं, उनका वर्णन यथाक्रम से कर रहा हूँ सुनिये—जो आकाश-समुद्र के चन्द्र कहे जाते हैं, जो जीवों के आधार और जो देवताओं के सुधारक हैं, उन्हीं से एक विमल जलवाली पुण्य सलिला आकाशगामिनी नदी निकलकर सप्तम वायुपथ की ओर गयी है ।।१-३।। यह नदी ज्योतिष्मण्डल पर्यन्त प्रवाहित होती है और करोड़ों तारिकाओं तथा ज्योतिष्क पिण्डों से व्याप्त है। आकाश में फैली हुई आकाशपथ में विचरण करनेवाले इन्द्र के ऐरावत द्वारा क्रीड़ाकाल में इस नदी का जल विक्षुब्ध हो जाता है ।।४-५।। सिद्धगण जब विमानों पर चढ़कर आकाश में विचरण करते हैं, तब इनके पवित्र

नैकैर्विमानसंघातैः प्रक्रामद्भिर्नभस्तलम् । सिद्धैरुपस्पृष्टजला महापुण्यजला शिवा ।।६।।
वायुना प्रेर्यमाणा च अनेकाभोगगामिनी । परिवर्तत्यहरहो य (हर्य) था सूर्यस्तथैव सा ।।७।।
चत्वार्यशीतिप्रतता योजनानां समन्ततः । वेगेन कुर्वती मेरुं सा प्रयाता प्रदक्षिणम् ।।८।।
विभिद्यमाना सलिलैस्तैजसेनानिलेन च । मेरोरुत्तरकूटेषु पतिताऽथ चतुर्ष्वपि ।।९।।
मेरुकूटतटान्तेभ्य उत्कृष्टेभ्यो निवर्तिता । विकीर्यमाणसलिला चतुर्धा संसृतोदका ।।१०।।
षष्टियोजनसाहस्रं निरालम्बनमम्बरम् । निपपात महाभागा (*मेरोस्तस्य चतुर्दिशम् ।।११।।
सा चतुर्ष्वभितश्चैव महापादेषु शोभना । पुण्या मन्दरपूर्वेण पतिता हि महानदी ।।१२।।
पूर्वेणांशेन देवानां सर्वसिद्धगणालयम् । सुवर्णचित्रकटकं नैकनिर्झरकन्दरम् ।।१३।।
प्लावयन्ती सशैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम् । वप्रप्रतापशमनैरनेकैः स्फाटिकोदकैः ।।१४।।
तथा चैत्ररथं रम्यं प्लावयन्ती प्रदक्षिणम् । प्रविष्टा ह्यम्बरनदी ह्यरुणोदसरोवरम् ।।१५।।
अरुणोदान्निवृत्ताऽथ शीतान्ते रम्यनिर्झरे । शैले सिद्धगणावासो निपपात सुगामिनी ।।१६।।
सीता नाम महापुण्या नदीनां प्रवरा नदी । सा निकुञ्जनिरुद्धा तु अनेकाभोगगामिनी ।।१७।।
शीतान्तशिखराभ्रष्टा मुकुञ्जे परपर्वते । निपपात महाभागा तस्मादपि सुमञ्जसम् ।।१८।।

जल का वे सब आचमन और स्पर्श किया करते हैं। सूर्य जिस प्रकार प्रत्येक दिन परिवर्तित होते हैं उसी प्रकार वायु द्वारा प्रेरित होने पर यह नदी भी अनेक स्थानों में घूमती रहती है। वह नदी चौरासी योजनों की है और यह सदा वेग से मेरु की प्रदक्षिणा किया करती है ।।६-८।। तेजोमय अनिल और अन्यान्य प्रकार के सलिल द्वारा छिन्न होने पर मेरु के उत्तरीय चार शिखरों पर गिरते हैं। मेरु के उत्तम शिखरों से टकराकर जब वह पुनः लौटती है तब इसका जल तितर-बितर हो जाता है, जिससे यह चार भागों में विभक्त होकर बहने लगती है। मेरु के चारों ओर साठ हजार योजनों में यह महाभागा पवित्र नदी बिना आलम्बन के आकाश घूमती हुई मेरु के पादप्रान्त में चार भागों में विभक्त होकर मनोहर रूप से मन्दर के पूर्व भाग में गिरती है ।।९-१२।। यह सुन्दर गतिवाली नदी पूर्व भाग से सिद्धों और देवों के आवासवाले अनेक निर्झर, कन्दराओं तथा सुवर्ण चित्रित कंटकों से युक्त पर्वतराज मेरु के साथ सुन्दर कन्दरावाले मन्दर को और वनदेवों के ताप को मिटानेवाले स्फटिक निर्मल जलसमूह से रमणीय चैत्ररथ को सींचती हुई और प्रदक्षिणा करती हुई अरुणोद सरोवर में प्रवेश करती है। वही आकाश-नदी अरुणोद सरोवर से निकलने के बाद सिद्ध सेवित रम्य निर्झरवाले शीतान्त शैल पर गिरती है ।।१३-१६।। तब उसका नदियों में श्रेष्ठ पुण्यसलिला सीता नाम पड़ता है। फिर निकुंजों में रुक जाने के कारण उसकी अनेक धाराएँ हो जाती हैं। शीतान्त पर्वत के शिखर से निकलकर वह श्रेष्ठ पर्वत मुकुंज पर गिरती है। फिर यह महाभागा वहाँ से सुमंज पर गिरती है। वहाँ से निकलकर माल्यवान् पर्वत को प्लावित करती

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

तस्मान्माल्यवतं शैलं भावयन्ती परापगा। वैकङ्कं समनुप्राप्ता वैकङ्कान्मणिपर्वतम् ।।
मणिपर्वतान्महाशैलमृषभं नैककन्दरम् ।।१९।।
एवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी। पतिताऽथ महाशैले जठरे सिद्धसेविते ।।२०।।
तस्मादपि महाशैलं देवकूटं तरङ्गिणी। तस्य कुक्षिसमुद्रान्ता क्रमेण पृथिवीं गता ।।२१।।
सैवं स्थलीसहस्राणि शैलराजशतानि च। वनानि च विचित्राणि सरांसि विविधानि च ।।२२।।
स्रावयन्ती महाभागा) विस्फारेष्ववलोकदा। नदीसहस्रानुगता प्रवृत्ता च महानदी ।।२३।।
भद्राश्वं समहाद्वीपं प्लावयन्ती वरापगा। प्रविष्टा ह्यर्णवं पूर्वं पूर्वे द्वीपे महानदी ।।२४।।
दक्षिणेऽपि प्रपन्ना या शैलेन्द्रे गन्धमादने। चित्रैः प्रपातैर्विविधैर्नैकविस्फालितोदका ।।२५।।
तद्गन्धमादनवनं नन्दनं देवनन्दनम्। प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता सा प्रदक्षिणम् ।।२६।।
नाम्ना ह्यलकनन्देति सर्वलोकेषु विश्रुता। प्रविशत्युत्तरसरो मानसं देवमानसम् ।।२७।।
मानसाच्छैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता। त्रिकूटाच्छैलशिखरात्कलिङ्गशिखरं गता ।।२८।।
कलिङ्गशिखराद्भ्रष्टा रुचके निपपात सा। रुचकान्निषधं प्राप्ता ताम्राभं निषधादपि ।।२९।।
ताम्राभ्रशिखराद्भ्रष्टा गता श्वेतोदरं गिरिम्। तस्मात्सुमूलं शैलेन्द्रं वसुधारं च पर्वतम् ।।३०।।
हेमकूटं गता तस्माद्देवशृङ्गे ततो गता। तस्माद्गता महाशैलं ततश्चापि पिशाचकम् ।।३१।।

हुई यह श्रेष्ठ नदी बैकंक पर्वत पर आती है। बैकंक पर्वत से मणिशैल पर और मणिशैल से अनेक कन्दराओंवाले महाशैल ऋषभ पर यह निपतित होती है ।।१७-१९।। इस प्रकार यह महानदी हजारों शैलों को फाड़ती हुई सिद्ध सेवित महाशैल जठर के ऊपर गिरती है। वहाँ से भी वह तरङ्गशालिनी नदी पर्वतराज देवकूट पर गिरती है। इस देवकूट का पार्श्वभाग समुद्र तक फैला हुआ है; इस प्रकार यह नदी क्रम से पृथ्वी पर उतरती है। वह महाभागा नदी सहस्रों स्थलियों, सैकड़ों पर्वतों, विचित्र वनों और विविध सरोवरों को प्लावित करके हजारों नदियों से मिलकर विमल तरङ्गमाला धारण करती हुई बहती है। वह श्रेष्ठ सरिता महानदी प्रधान-प्रधान द्वीपों को और भद्राश्ववर्ष को सींचती हुई पहले पूर्व सागर से मिलती है ।।२०-२४।। दक्षिण दिग्वर्ती पर्वतराज गन्धमादन पर जो नदी उतरती है वह विचित्र प्रपातों और अनेक तरंग-मालायुक्त जल-प्रवाह को धारण करती हुई देवराज के नन्दनवन को सींचती है एवं गन्धमादन की प्रदक्षिणा करती हुई चलती है। सभी लोग उसे अलकनन्दा कहा करते हैं। यह देवों के मानस रूप उत्तर मानसरोवर में प्रवेश करती है ।।२५-२७।। वहाँ से रमणीय तीन शिखरवाले शैलराज त्रिकूट पर गिरती है और त्रिकूट के शिखर से कलिंग के शिखर पर गिरती है। वहाँ से उतरकर रुचक पर गिरती है। रुचक से निषध पर और निषध से ताम्राभ पर गिरती है ।।२८-२९।। फिर ताम्राभ से श्वेतोदर पर्वत पर, वहाँ से सुमूल पर्वत पर, सुमूल से वसुधार पर, वसुधार से हेमकूट पर, हेमकूट से देवशृङ्ग पर, देवशृङ्ग से शैलश्रेष्ठ पिशाचक पर, पिशाचक से पंचकूट पर और पंचकूट से देवनिवास कैलास पर गिरती हुई एवं

पिशाचकाच्छैलवरात्पञ्चकूटं गता पुनः। पञ्चकूटात्तु कैलासं देवावासं शिलोच्चयम् ।।३२।।
तस्य कुक्षिषु विभ्रान्ता नैककन्दरसानुषु। (÷हिमवत्युत्तमनदी निपपाताचलोत्तमे ।।३३।।
सैवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी)। स्थलीशतान्यनेकानि प्लावयन्त्याशुगामिनी ।।३४।।
वनानां च सहस्राणि कन्दराणां शतानि च। स्रावयन्ती महाभागा प्रयाता दक्षिणोदधिम् ।।३५।।
रम्या योजनविस्तीर्णा शैलकुक्षिषु संवृता। या धृता देवदेवेन शंकरेण महात्मना ।।३६।।
पावनी द्विजशार्दूल घोराणामपि पाप्मनाम्। शंकरस्याङ्गसंस्पर्शान्महादेवस्य धीमतः ।।
द्विगुणं पवित्रसलिला सर्वलोके महानदी ।।३७।।
अनुशैलं समन्ताच्च निर्गता बहुभिर्मुखैः। अथोऽन्येनाभिधानेन ख्याता नद्यः सहस्रशः ।।३८।।
तस्माद्धिमवतो गङ्गा गता सा तु महानदी। एवं गङ्गेति नाम्ना हि प्रकाशा सिद्धसेविता ।।३९।।
धन्यास्ते सत्तमा देशा यत्र गङ्गा महानदी। रुद्रसाध्यानिलादित्यैर्जुष्टतोया यशोवती ।।४०।।
महापादं प्रवक्ष्यामि मेरोरपि हि पश्चिमम्। नानारत्नाकरं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।।४१।।
विपुलं शैलराजानं विपुलोदरकन्दरम्। नितम्बकुञ्जकटकैर्विमलैर्मण्डितोदरम् ।।४२।।
अपि या त्र्यंबकस्यैषा त्रिदशैः सेवितोदका। वायुवेगा गताभोगा लतेव भ्रामिता पुनः ।।४३।।

उसके शिखरकन्दरामय पार्श्व देश से बहती हुई अचलोत्तम हिमालय पर गिरती है ।।३०–३३।। वह महानदी हजारों शैलों को फाड़ती हुई, सैकड़ों स्थलों को सींचती हुई, हजारों वनों को और सैकड़ों कन्दराओं को भिगोती हुई तीव्र वेग से दक्षिण समुद्र में गिरती है ।।३४–३५।। जो रम्य नदी योजन परिमित चौड़ी और शैलकुक्षि में घिरी हुई है, महात्मा देवाधिदेव शङ्कर ने जिसको अपने सिर पर धारण किया है, वह घोर पापियों को भी पवित्र करनेवाली एवं श्रीमान् शङ्कर के अंग स्पर्श से द्विगुण पवित्र, पवित्र–सलिला महानदी गंगा है ।।३६–३७।। ब्राह्मणो! यह हिमालय पर्वत के चारों ओर से निकलकर अनेक शाखाओं में विभक्त हो गयी है, जो भिन्न–भिन्न नामों से सहस्र–सहस्र नदी रूपों में विख्यात है। यह महानदी गंगा नाम से प्रसिद्ध है, जो सिद्धों से सेवित है। जिन देशों के बीच से होकर यह रुद्र, साध्य, वायु और आदित्य से सेवित यशस्विनी गंगा प्रवाहित होती है, वह देश धन्य श्रेष्ठ है ।।३८–४०।। अब हम मेरु से पश्चिम दिशा में स्थित सुविस्तृत प्रत्यन्त पर्वत की कथा कहते हैं। वह नाना रत्नों का आकार, पुण्यमय पुण्यकर्त्ताओं से सेवित, अतिविस्तृत एवं विपुल कुक्षि और कन्दराओं द्वारा सुशोभित है। उसका भीतरी प्रदेश नितम्बस्थित कुंजों और विमल कटकों (पर्वत का मध्य भाग) से मंडित है ।।४१–४२।। भगवान् त्रिलोचन ने जिसको धारण किया है, देवगण जिसके जल का उपयोग करते हैं जो वायु की तरह वेगगामिनी, बहुदेशव्यापिनी और लता की तरह घूमती हुई मेरु के शृंग से

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

मेरुकूटतटाद् भ्रष्टा प्रहतैः स्वादितोदका। विस्तीर्यमाणसलिला निर्मलांशुकसंनिभा ।।४४।।
तस्य कूटेऽम्बरनदी सिद्धचारणसेविता। प्रदक्षिणमथाऽऽवृत्य पतिता सानुगामिनि ।।४५।।
देवभ्राजं महाभ्राजं सवैभ्राजं महावनम्। प्लावयन्ती महाभागा नानापुष्पफलोदका ।।४६।।
प्रदक्षिणं प्रकुर्वाणा नानावनविभूषिता। प्रविष्टा पश्चिमसरः सितोदं विमलोदकम् ।।४७।।
सा सितोदाद्विनिष्क्रान्ता सुपक्षं पर्वतं गता। सुपक्षतस्तु पुण्योदात्ततो देवर्षिसेविता ।।४८।।
सुपक्षकूटतटगा तस्माच्च संशितोदका। निपपात महाभागा रमण्यं शिखिपर्वतम् ।।४९।।
शिखेश्च पर्वतात्कङ्कं कङ्काद्वैदूर्यपर्वतम्। वैदूर्यात्कपिलं शैलं तस्माच्च गन्धमादनम् ।।५०।।
तस्माद्गिरिवरात्प्राप्ता पिञ्जरं वरपर्वतम्। पिञ्जरात्सरसं याता तस्माच्च कुमुदाचलम् ।।५१।।
मधुमन्तं जनं चैव मुकुटं च शिलोच्चयम्। मुकुटाच्छैलशिखरात्कृष्णं याता महागिरिम् ।।५२।।
कृष्णाच्छ्वेतं महाशैलं महानगनिषेवितम्। श्वेतात्सहस्रशिखरं शैलेन्द्रं पतिता पुनः ।।५३।।
अनेकाभिः स्रवन्तीभिराप्यायितजला शिवा। एवं शैलसहस्राणि सादयन्ती महानदी ।।
पारिजाते महाशैले निपपाताऽऽशुगामिनी ।।५४।।
अनेकनिर्झरनदी गुहासानुषु राजते। तस्य कुक्षिष्वनेकासु भ्रान्ततोया तरङ्गिणी ।।५५।।
व्याहन्यमानसंवेगा गण्डशैलैरनेकशः। संविद्यमानसलिला गता च धरणीतले ।।५६।।

गिरती है, जिसके जल का आस्वाद कितने ही जीवों ने किया है, जिसका जल अत्यन्त विस्तृत और निर्मल वस्त्र की तरह है, वह स्वर्णनदी मेरु शिखर पर सिद्ध चारणों द्वारा सेवित हो इस प्रकार बहती है मानो प्रदक्षिणा करती है ।।४३–४५।। वह शैल शिखर के मध्य से होकर बहती हुई अन्त में देवभ्राजवन में गिरती है। नाना पुष्प–फलों से युक्त जलवाली यह महाभागा नदी क्रम से देवभ्राज, महाभ्राज और वैभ्राज प्रभृति महावनों को प्रदक्षिणा क्रम से सींचकर एवं नाना वनों का मन्थन करके पश्चिम दिग्वर्ती विमल जल सितोद सरोवर में प्रविष्ट होती है। सितोद से निकलकर वह सुपक्ष पर्वत पर जाती है। देवर्षियों द्वारा सेवित वह पुण्यसलिला महाभागा सुपक्षशिखरगामिनी महानदी फिर वहाँ से रमणीय शिखिपर्वत पर गिरती है ।।४६–४९।। शिखि पर्वत से कंक पर, कंक से वैदूर्य पर्वत पर, वैदूर्य से कपिल शैल पर, कपिल से गन्धमादन पर, फिर श्रेष्ठ गन्धमादन पर्वत से शैलश्रेष्ठ पिंजर पर, पिंजर से सरोवर में, उससे कुमुदाचल पर, वहाँ से मधुमान पर, मधुमान से मुकुट पर, मुकुट से कृष्णपर्वत पर, कृष्ण से महानाग विभूषित श्वेतशैल पर और श्वेतशैल से शैलेन्द्र सहस्र शिखर पर उतरती है। इस प्रकार यह नदी सहस्र–सहस्र खण्ड, शत–शत पर्वतश्रेष्ठ, बहुत–से विचित्र वन एवं सरोवर को प्लावित करके, अनेक नदियों के जल से पूर्ण होकर बड़े वेग से महाशैल परिजात पर गिरती है ।।५०–५४।। अनेक निर्झर, नदी, गुहा और शिखरों से युक्त उस महाशैल परिजात के मध्य उदर में घूमती हुई यह नदी गण्डशैलों से टकराती हुई पृथ्वी पर उतरती है और नाना म्लेच्छों के आवास–स्थान केतुमाल महाद्वीप को सींचती

केतुमालं महाद्वीपं नानाम्लेच्छगणैर्युतम् । प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता पश्चिमार्णवम् ।।५७।।
सुवर्णचित्रपार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ । मेरोश्चित्रमहापादे महासत्त्वनिषेविते ।।५८।।
मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका । अनेकाभोगवक्राङ्गी क्षिप्यमाणे नभस्तले ।।५९।।
षष्टियोजनासाहस्रे निरालम्बेऽम्बरे शुभे । विकीर्यमाणा मालेव निपपात महानदी ।।६०।।
एवं कूटतटैर्भ्रष्टा नैकैर्देवर्षिसेवितैः । विकीर्यमाणसलिला नैकपुष्पोडुपोत्कचा ।।६१।।
नानारत्नवनोद्देशमरण्यं सवितुर्वनम् । महावनं महाभागा प्लावयन्ती प्रदक्षिणम् ।।६२।।
सरोवरं महापुण्यं महाभागनिषेवितम् । तत्राऽऽविवेश कल्याणी महाभद्रं सितोदका ।।६३।।
भद्रसोमेति नाम्ना हि महापारा महाजवा । महानदी महापुण्या महाभद्रा विनिर्गता ।।६४।।
नैकनिर्झरवप्राढ्या शङ्खकूटतटे तु सा । तत्र कूटे गिरितटे निपपाताऽऽशुगामिनि ।।६५।।
शङ्खकूटतटाद्भ्रष्टा पपात वृषपर्वतम् । वृषपर्वताद्वत्सगिरिं नागशैलं ततो गता ।।६६।।
तस्मान्नीलं नगश्रेष्ठं संप्राप्ता वर्षपर्वतम् । नीलात्कपिञ्जलं चैव इन्द्रनीलं च निम्नगा ।।६७।।
ततः परं महानीलं हेमशृङ्गं च सा ययौ । हेमशृङ्गाद्गता श्वेतं श्वेताच्च सुनगं ययौ ।।६८।।
सुनगाच्छतशृगं च संप्राप्ता सा महानदी । शतशृङ्गं महाशैलं पुष्करं पुष्पमण्डितम् ।।६९।।

हुई पश्चिम समुद्र से मिल जाती है ।।५५-५७।। पवनान्दोलित जलशालिनी पूर्वोक्त महानदी हेमकूटतट से गिरकर मेरु गिरि के उत्तर दिग्वर्ती सुवर्ण-चित्रित सुपाश्र्व शोभित विशाल, विचित्र, महासत्त्वसंकुल पाददेश में पतत होती है। आकाश में यह विस्तृताकार और टेढ़ी-मेढ़ी होकर साठ हजार योजनों में निरालम्ब भाव से बहती है। वहाँ से माला की तरह जल को बिखेरती हुई वह महानदी गिरती है ।।५८-६०।। अनेक देवर्षियों से सेवित विविध कूट तटों से गिरकर अनेक पुष्प नौकाओं को धारण करनेवाली एवं जल को बिखेरनेवाली यह नदी नाना रत्नमय देश अरण्य, सवितृवन और अन्यान्य महावन को प्रदक्षिणा क्रम से प्लावित करती हुई यह महाभागा कल्याणी शुभ्रसलिला नदी महाभद्र नामक एक महापुण्य सरोवर में मिलती है ।।६१-६३।। वहाँ से निकलने पर वह महापुण्या महानदी भद्रसोमा नाम से विख्यात होती है! वह भद्रसोमा बहुविस्तृत और अत्यन्त वेगवती है ।।६४।। यह शीघ्रगामिनी नदी शंखकूट तट के अनेक निर्झरों और वप्रों को पार करती हुई उसी शंखकूट गिरि के तट पर गिरती है फिर वहाँ से नागशैल पर जाती है और नागशैल से पर्वतश्रेष्ठ वर्षपर्वत नील पर उतरती है। वहाँ से वह नदी पर और कपिंजल से नीचे की ओर बहकर इन्द्रनील पर एवं इन्द्रनील से महानदी हेमशृंग पर गिरती है ।।६५-६७$\frac{1}{2}$।। हेमशृंग से श्वेत पर, श्वेत से सुनग पर और सुनग से वह महानदी शतशृंग पर जाती है। शतशृंग से पुष्पमण्डित महाशैल पुष्कर पर, पुष्कर से महाबली महाशैल द्विजराज पर, वहाँ से वराह पर्वत पर, वहाँ से शिलोच्चय मयूर पर, मयूर से अनेक कन्दराओंवाले, एक शिखर जातुधि नामक पर्वत के शिखर पर वह शीघ्रगामिनी नदी गरती है। इस प्रकार यह महानदी सहस्रों पर्वतों को विदीर्ण करती हुई शिखर संयुक्तत्रिशृंग नामक मर्यादा

पुष्कराच्च महाशैलं द्विराजं सुमहाबलम् । वराहपर्वतं तस्मान्मयूरं च शिलोच्चयम् ।।७०।।
मयूराच्चैकशिखरं कन्दरोदरमण्डितम् । जातुधिं शैलशिखरं निपपाताऽऽशुगामिनी ।।७१।।
एवं गिरिसहस्राणि दारयन्ती महानदी । त्रिशृङ्गं शृङ्गकलिलं मर्यादापर्वतं गता ।।७२।।
त्रिशृङ्गतटविभ्रष्टा महाभागनिषेविता । मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका ।।७३।।
वीरुधं पर्वतवरं पपात विमलोदका । प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता पश्चिमार्णवम् ।।७४।।
सुवर्णभुवि पार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ । मेरोश्चित्रे महापादे महासत्त्वनिषेविते ।।७५।।
कन्दरोदरविभ्रष्टा तस्मादपि तरङ्गिणी । नैकभोगा पपातोर्वी चित्रपुष्पोडुपोत्कचा ।।७६।।
प्लावयन्ती प्रमुदिता उत्तरान्सा कुरूञ्शिवा । महाद्वीपस्य मध्येन प्रयाता सोत्तरार्णवम् ।।७७।।
एवं तास्तु महानद्यश्चतस्रो विमलोदकाः । महागिरितटभ्रष्टाः संप्रयाताश्चतुर्दिशम् ।।७८।।
तत्सेयं कथितप्राया पृथिवी बहुविस्तरा । मेरुशैलमहाकीर्णाऽविशच्च सर्वतोदिशम् ।।७९।।
चतुर्महाद्वीपवती चतुराक्रीडकानना । चतुष्केतुमहावृक्षा चतुर्वरसरस्वती ।।८०।।
चतुर्महाशैलवती चतुरोरगसंश्रया । अष्टोत्तरमहाशैला तथाऽष्टवरपर्वता ।।८१।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

पर्वत पर गिरती है ।।६८-७२।। इसके बाद महाभागा नदी त्रिशृंग के तट से भ्रष्ट होकर पवन द्वारा प्रेरित होने पर मेरुकूट के तट से भी च्युत होती है। यह विमल जलशालिनी पर्वतश्रेष्ठ वीरुध पर गिरती है और वहाँ के प्रदेश को प्लावित करती हुई यह महाभागा पश्चिम समुद्र में मिलती है ।।७३-७४।। मेरु के उत्तर पार्श्व में सुपार्श्व नामक, नानाजीवसंकुल सुवर्णमय पाद देश में वह अनेक भागों में विभक्त होकर और फैलकर गिरती है। अनन्तर कन्दरा के बीच से निकलकर वह विशाल आकारवाली और कल्याणकारी नदी पुष्पों की विचित्र नौका को धारण करती हुई पृथ्वी पर उतरकर उत्तर कुरु को प्लावित करती हुई महाद्वीपों के बीचोबीच बहकर उत्तर समुद्र में जाकर मिल जाती है ।।७५-७७।। इस प्रकार विमल जलवाली वे चारों नदियाँ महागिरि तट से निकलकर चारों दिशाओं में प्रवाहित हुई हैं। विप्रगण! इन शब्दों में अत्यन्त विस्तृत पृथ्वी की कथा प्रायः कह दी गयी। यह पृथ्वी मेरु आदि शैलों द्वारा चारों ओर से व्याप्त है ।।७८-७९।। इसमें चारों महाद्वीप और चार क्रीड़ा कानन हैं। केतुस्वरूप चार महावृक्ष और चार सरोवर भी हैं। इस पृथ्वी पर चार महाशैल हैं और आठ उत्तर महाशैल तथा आठ अवर पर्वतों से युक्त यह भूमण्डल चार महानागों के आधार पर टिकी है ।।८०-८१।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४२।।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

गन्धमादनपार्श्वे तु स्फीता चोपरि गण्डिका । द्वात्रिंशतं सहस्राणि योजनैः पूर्वपश्चिमा ।।१।।
अस्याऽऽयामश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः । तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः ।।२।।
तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः । स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः ।।३।।
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः । ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ।।
तस्य पीत्वा फलरसं जीवन्ति हि समायुतम् ।।४।।
पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका । आयामतोऽथ विस्ताराद्यथैवापरगण्डिका ।।५।।
भद्राश्वास्तत्र विज्ञेया नित्यं मुदितमानसाः । भद्रं सालवनं तत्र कालाम्राश्च महाद्रुमाः ।।६।।
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ।।७।।
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्र्यश्च स्त्रियोश्चोत्पलगन्धिकाः ।।८।।
दशवर्षसहस्राणि तेषामायुर्निरामयम् । कालाम्रस्य रसं पीत्वा सर्वदा स्थिरयौवनः ।।९।।

अध्याय ४३

भुवनविन्यास

सूत जी बोले–गन्धमादन पर्वत के बगल में एक परिष्कृत गण्डशिला है। पूरब–पश्चिम में यह बत्तीस हजार योजनों में फैली है एवं इसका विस्तार प्रमाण चौंतीस हजार योजनों का है। वहाँ शुभ कर्म करनेवाले केतुमाल देशवासी निवास करते हैं ।।१–२।। वहाँ के रहनेवाले पुरुष महावीर्यशाली, बलशाली और काले रंग के होते हैं; किन्तु स्त्रियाँ कमल–दल–सी कोमल और देखने में मनोहर लगती हैं। वहाँ कटहल का एक दिव्य विशाल वृक्ष है, जिसके फलों में छहों रसों का स्वाद है। वह वृक्ष ब्रह्मा का पुत्र, ईश्वर, कामचारी और मन के समान वेगशाली है। वहाँ के निवासी उसके फलों के रस को पीकर हजारों वर्ष जीते हैं ।।३–४।। उसी प्रकार माल्यवान् के पूर्व भाग में दूसरी पूर्व गण्डशिला है; जिसकी लम्बाई–चौड़ाई भी पहली गण्डशिला के ही बराबर है ।।५।। भद्राश्ववासी लोग वहाँ नित्य प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। वहाँ भद्र नामक एक सालवन है, जहाँ के विशाल वृक्ष कालाम्र नाम से प्रसिद्ध हैं। वहाँ के पुरुष श्वेतवर्ण के महावीर्यशाली और बलशाली होते हैं। स्त्रियाँ भी कुमुद के रंग की, सुन्दरी और देखने में भली मालूम पड़ती हैं। वे स्त्रियाँ चन्द्र के समान आभापूर्ण, गौर वर्ण की, शीतलांगी, कमलगन्धा और पूर्ण चन्द्र की तरह मनोहर मुखवाली हैं। वहाँ के लोग दस हजार वर्षों तक स्वस्थ और निःशंक होकर जीते हैं और कालाम्र के रस को पीकर सदा युवक बने रहते हैं ।।६–९।।

ऋषय ऊचुः

प्रमाणं वर्णमायुश्च याथातथ्येन कीर्तितम्। चतुर्णामपि द्वीपानां समासान्न तु विस्तरात् ।।१०।।

सूत उवाच

भद्राश्वानां तथा चिह्नं कीर्तितं कीर्तिवर्धनाः। तच्छृणुध्वं तु कार्त्स्न्येन पूर्वसिद्धैरुदाहृतम् ।।११।।
देवकूटस्य सर्वस्य प्रथितस्येह यत्परम्। पूर्वेण दिक्षु सर्वासु यथावच्च प्रकीर्तितम् ।।१२।।
कुलाचलानां पञ्चानां नदीनां च विशेषतः। तथा जनपदानां च यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।।१३।।
सैवालो वर्णमालाग्रः कोरञ्जश्चाचलोत्तमः। श्वेतवर्णश्च नीलश्च पञ्चैते कुलपर्वताः ।।१४।।
तेषां प्रसूतिरन्येऽपि पर्वता बहुविस्तराः। कोटिकोटिः क्षितौ ज्ञेयाः शतशोऽथ सहस्रशः ।।१५।।
तैर्विमिश्रा जनपदैर्नानासत्त्वसमाकुलाः। नानाप्रकारजातीयास्त्वनेकनृपपालिताः ।।१६।।
नामधेयैश्च विक्रान्तैः श्रीमद्भिः षुरुषर्षभैः। अध्यासिता जनपदाः कीर्तनीयाश्च शोभिताः ।।१७।।
तेषां तु नामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च। गिर्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च ।।१८।।
तथा सुमङ्गलाः शुद्धाश्चन्द्रकान्ताः सुनन्दनाः। व्रजका नीलमौलेयाः सौवीरा विजयस्थलाः ।।१९।।
महास्थलाः सुकामाश्च महाकेशाः सुमूर्धजाः। वातरंहाः सोपसङ्गाः परिवायाः पराचक्राः ।।२०।।
संभवक्त्रा महानेत्राः सैवालास्तनपास्तथा। कुमुदाः शाकमुण्डाश्च उरःसंकीर्णभौमकाः ।।२१।।
सोदका वत्सकाश्चैका वाराहा हारवामकाः। शङ्खाख्या भाविचन्द्राश्च उत्तरा हैमभौमकाः ।।२२।।

ऋषियों ने कहा–आपने चारों द्वीपों के निवासियों के वर्ण, आयु और प्रमाण को यथार्थ रूप में बता दिया है; किन्तु विस्तारपूर्वक न कहकर संक्षेप में कहा है ।।१०।।

सूत जी बोले–महायशस्वियो! ऋषियो! भद्राश्ववासियों का जो स्वरूप हमने बताया है, उसे पहले सिद्धों ने जैसा कहा है, उसी के अनुरूप हम विस्तार के साथ कहते हैं उसे आप सब सुनें। प्रसिद्ध देवकूट गिरि के पूर्व की ओर से चारों ओर वर्तमान पाँचों कुल पर्वतों, नदियों और देशों का वर्णन जैसा हमने देखा और सुना है वैसा कह दिया है ।।११–१३।। शैवाल, वर्णमालाग्र, कोरञ्ज, श्वेत और नील ये पाँच कुल पर्वत हैं। इनके सन्तान के रूप में सैकड़ों हजारों और करोड़ों विशाल–विशाल पर्वत हैं। इन पर्वतों से युक्त कितने ही देश हैं जहाँ भाँति–भाँति की जातियाँ और जीव निवास करते हैं, जिसका पालन अनेक राजाओं द्वारा होता है ।।१४–१६।। उन देशों में कितने ही स्वनामधन्य बल–विक्रमशाली, श्रीमान्, पुरुषपुंगव निवास करते हैं जिनसे सुशोभित वे देश सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहे हैं। पर्वतों के बीच में सम और विषम स्थानों में स्थित उन विविध देशों के नाम इस प्रकार हैं–सुमङ्गल, शुद्ध, चन्द्रकान्त, सुनन्दन, व्रजक, नीलमौलेय, सौवीर, विजयस्थल, महास्थल, सुकाम, महाकेश, सुमूर्द्धज, वातरंह, सोपसङ्ग, परिवाय, पराचक्र, संभवक्त्र, महानेत्र, शैवाल, स्तनप, कुमुद, शाकमुण्ड, उरःसंकीर्ण, भौमक, सोदक, वत्सक, वाराह, हारवामक, शङ्ख; भाविचन्द्र, उत्तर हैमभौम,

कृष्णभौमाः सुभौमश्च महाभौमाश्च कीर्तिताः । एते चान्ये च विख्याता नानाजनपदा मया ।।२३।।
ते पिबन्ति महापुण्यां महागङ्गां महानदीम् । आदौ त्रैलोक्यविख्याता शीता शीताम्बुवाहिनी ।।२४।।
तथा च हंसवसतिर्महाचक्रा च निम्नगा । चक्रा वक्त्रा च काञ्ची च सुरसा चापगोत्तमा ।।२५।।
शाखावती चेन्द्रनदी मेघा मङ्गारवाहिनी । कावेरी हरितोया च सोमावर्ता शतह्रदा ।।२६।।
वनमाला वसुमती पम्पा पम्पावती शुभा । सुवर्णा पञ्चवर्णा च तथा पुण्या वपुष्मती ।।२७।।
मणिवप्रा सुवप्रा च ब्रह्मभागा शिलाशिनी । कृष्णतोया च पुण्योदा तथा नागनदी शुभा ।।२८।।
शैवालिनी मणितटा क्षारोदा चारुणावती । तथा विष्णुपदी चैव महापुण्या महानदी ।।२९।।
हिरण्यवाहिनी नीला स्कन्दमाला सुरावती । वामोदा च पताका च वेताली च महानदी ।।३०।।
एता गङ्गा महानद्यो नायिकाः परिकीर्तिताः । क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताः शतशोऽथ सहस्रशः ।।३१।।
पूर्वद्वीपस्य वाहिन्यः पुण्यवत्यश्च कीर्तिताः । कीर्तनेनापि चैतासां पूतः स्यादिति मे गतिः ।।३२।।
समृद्धराष्ट्रं स्फीतं च नानाजनपदाकुलम् । नानावृक्षवनोद्देशं नानानगसुवेष्टितम् ।।३३।।
नरनारीगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम् । बहुधान्यवनोपेतं नानानृपतिपालितम् ।।
उपेतं कीर्तनशतैर्नानारत्नाकराकरम् ।।३४।।
तस्मिन्देशे समाख्याता हेमशङ्खदलप्रभाः । महाकाया महावीर्याः पुरुषाः पुरुषर्षभाः ।।३५।।

कृष्णभौम, सुभौम और महाभौम। इन देशों के अतिरिक्त वहाँ कितने ही दूसरे भी विख्यात देश हैं ।।१७–२३।। उन देशों के निवासी महापुण्या महानदी महागंगा का जल पीते हैं। वह महागंगा पहले शीतलजल वाहिनी शीता नाम से विख्यात थी ।।२४।। गंगा की ही तरह वहाँ और भी महानदियाँ हैं जो नायिका कहलाती हैं। जैसे–हंसवसति, महाचक्रा, चक्रा, वक्त्रा, कांची, सुरसा, आपगोत्तमा, शाखावती, इन्द्रनदी, मेघा, मङ्गारवाहिनी, कावेरी, सोमावर्ता, हरितोया, सुवर्णा, पंचवर्णा, वपुष्मती, मणिवप्रा, सुवप्रा, ब्रह्मभागा, शिलाशिनी, कृष्णतोया, पुण्योदा, शतह्रदा, वनमाला, वसुमती, पम्पा, पम्पावती, नागनदी, शैवालिनी, मणितटा, क्षारोदा, अरुणावती, विष्णुपदी, महापुण्या, महानदी, हिरण्यवाहिनी, नीला, स्कन्दमाला, सुरावती, वामोदा, पताका और वेताली। इनके अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों और क्षुद्र नदियाँ हैं ।।२५–३१।। पूर्व द्वीप में बहनेवाली इन पुण्य नदियों को हमने कहा। इनके नाम–कीर्त्तन से लोग पवित्र हो जाते हैं ऐसी मेरी धारणा है। उस भद्राश्ववर्ष के राष्ट्र समृद्ध, स्फीत, विविध जनपदों से युक्त हैं जिनमें विविध प्रकार के वृक्ष, घने वन और विविध पर्वत हैं। वहाँ के प्रसन्नमुख नर–नारी सदा मंगलोत्सव मनाया करते हैं। उस भद्राश्व वर्ष में सदा फलने–फूलनेवाले कितने ही वन हैं, अनेक राजा राज्य कर रहे हैं और वहाँ बहुमूल्य प्रशंसनीय रत्नों की अनेकों खदानें भी हैं। उस देश में सुवर्ण–कमल–दल के समान प्रभा धारण करनेवाले पुरुषपुंगव निवास करते हैं। वे पुरुष विशालकाय और महाबली हैं ।।३२–३५।। वहाँ के पुण्यशाली मनुष्य देवों के साथ बैठते, बातचीत का आनन्द लूटते और उनका दर्शन–सुख प्राप्त करते

संभाषणं दर्शनं च समस्थानोपसेवनम्। देवैः सह महाभागाः कुर्वते तत्र वै प्रजाः ।।३६।।
दश वर्षसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्। धर्माधर्मविशेषश्च न तेष्वस्ति महात्मसु ।।
अहिंसा सत्यवाक्यं च प्रकृत्यैव हि वर्तते ।।३७।।
ते भक्त्या शंकरं देवं गौरीं परमवैष्णवीम्। इज्यापूजानमस्कारांस्ताभ्यां नित्यं प्रयुञ्जते ।।३८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

निसर्ग एष विख्यातो भद्राश्वानां यथार्थवत्। शृणुध्वं केतुमालानां विस्तरेण प्रकीर्तनम् ।।१।।
निषधस्याचलेन्द्रस्य पश्चिमस्य महात्मनः। पश्चिमेन हि यत्तत्र दिक्षु सर्वासु कीर्तितम् ।।२।।
कुलाचलानां सप्तानां नदीनां च विशेषतः। तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ।।३।।
विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्वतः। *अशोको वर्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।।४।।

हैं। उनकी आयु दस हजार वर्षों की कही गयी है। उन महात्माओं में धर्माधर्म की कुछ भी विशेषता नहीं है। वे स्वभावतः सत्यवक्ता और अहिंसक होते हैं। वे सब भक्तिपूर्वक प्रतिदिन देव-देव शंकर और परम वैष्णवी गौरी देवी की पूजा-अर्चा और नमस्कार किया करते हैं ।।३६-३८।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४३।।

अध्याय ४४

भुवनविन्यास

सूत जी बोले-भद्राश्ववासियों का यह स्वाभाविक वर्णन हमने यथार्थ रूप से कर दिया। अब केतुमाल देशवासियों का वर्णन विस्तार से सुनिये। पश्चिम दिग्वर्ती महात्मा निषधाचल से पश्चिम सम्पूर्ण दिशाओं में जो सात कुलपर्वत, नदियाँ और देश आदि हैं, उनका वर्णन विस्तारपूर्वक सुनिये ।।१-३।। विशाल, कंबल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, अशोक और वर्धमान ये सात कुलपर्वत हैं ।।४।। इनसे उत्पन्न अनेकानेक सैकड़ों, हजारों और करोड़ों बड़े-

---

* इदमर्धं नास्ति ग. पुस्तके।

तेषां प्रसूतिरन्येऽपि पर्वता बहुविस्तराः । कोटिकोटिशता ज्ञेयाः शतशोऽथ सहस्त्रशः ।।५।।
तैर्विमिस्त्रा जनपदा नानाजातिसमाकुलाः । नानाप्रकारविज्ञेयास्त्वनेकनृपपालिताः ।।६।।
ते नामधेयैर्विक्रान्ता विविधाः प्रथिता भुवि । अध्यासिता जनपदैः कीर्तनैश्च विभूषिताः ।।७।।
(+तेषां सनामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च । गिर्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च ।।८।।
यथेह कथिताः पौरा गोमनुष्यकपोतकाः)। तत्सुखा भ्रमरा यूथा माहेयाचलकूटकाः ।।९।।
सुमौलाः स्तावकाः क्रौञ्चाः कृष्णाङ्गमणिपुञ्जकाः । कूटकम्बलमौषीयाः समुद्रान्तरकास्तथा ।।१०।।
करम्भवाः कुचाः श्वेताः सुवर्णकटकाः शुभाः । श्वेताङ्गाः कृष्णपादाश्च विहाः कपिलकर्णिका ।।११।।
अत्याकरालगोज्वाला हीनाना वनपातकाः । महिवाः कुमुदाभाश्च करवाटाः सहोत्कचाः ।।१२।।
शुकनासा महानासा वनासगजभूमिकाः । करञ्जमञ्जमा वाहाः किष्किण्डीपाण्डुभूमिकाः ।।१३।।
कुबेरा धूमजा जङ्गा वङ्गा राजीवकोकिलाः । वाचाङ्गाश्च महाङ्गाश्च मधौरैयाः सुरेचकाः ।।१४।।
पित्तलाः काचलाश्चैव श्रवणा मत्तकासिकाः । गोदावा वकुला वाङ्गा वङ्गकामोदकाः कलाः ।।१५।।
ते पिबन्ति महाभागाः प्रथमां तु महानदीम् । सुवप्रां पुण्यसलिलां महानागनिषेविताम् ।।१६।।
कम्बलां तामसीं श्यामां सुमेधां बकुलां नदीम् । विकीर्णां शिखिमालां च तथा दर्भावतीमपि ।।१७।।

बड़े पर्वत वहाँ भी हैं। इन पर्वतों से युक्त कितने ही देश हैं, जहाँ विविध प्रकार की जातियाँ बसी हुई हैं जिनका पालन अनेक राजाओं द्वारा हो रहा है। स्वनामधन्य बलपराक्रमशाली अनेक जनपदवासियों के वे देश सुशोभित और बसे हुए हैं; अतः वे संसार में प्रसिद्ध हैं। पर्वतों के बीच के सम-विषम स्थानों में स्थित वहाँ से विविध देशों के नाम इस प्रकार कहे गये हैं ।।५-८$\frac{१}{२}$।। सुख, भ्रमर, यूथ के माहेय, अचलकूटक, सुमौल, स्तावक, क्रौंच, कृष्णांग, मणिपुंजक, कूटकंबल, मौषीय, समुद्रान्तरक, करंभव, कुच, श्वेत, सुवर्णकटक, शुभ, श्वेतांग, कृष्णापद, विह, कपिलकर्णिक, अत्याकराल, गोज्वाल, हीनान, वनपातक, महिव, कुमुदाभ, सहोत्कच, शुकनासा, महानास, वनास, गजभूमिक, करंज, मंजम, वाह, किष्किण्डी, पाण्डुभूमिक, कुबेर, धूमज, जंग, वंग, राजीव, कोकिल, वाचांग, महांग, मधौरेय, सुरेचक, पित्तल, काचल, श्रवण, मत्तकासिक, गोदाव, वकुल, वांग, वंगकामोद और कला। ये देश गो, मनुष्य कपोतों से यानी चतुष्पद, द्विपद और पक्षियों से परिपूर्ण हैं ।।९-१५।। यहाँ के भाग्यशाली लोग विशाल पर्वतों से उत्पन्न पवित्र सलिला, सुतटवाली महानदियों का जल पिया करते हैं ।।१६।। उन नदियों के नाम ये हैं–कंबला, तामसी, श्यामा, सुमेधा, बकुला, विकीर्णा, शिखिमाला, दर्भावती, भद्रानदी, शुकनदी, पलाशा, महानदी, भीमा, प्रभंजना, कांची, पुण्या, कुशावती, दक्षा, शाकवती, पुण्योदा, भारती, महानदी, चन्द्रावती, सुमूला, ऋषभा, समुद्रमाला, चम्पावती, एकाक्षा, पुष्कला, वाहा,

---

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

भद्रानदीं शुकनदीं पलाशां च महानदीम् । भीमां प्रभञ्जनां काञ्चीं पुण्यां चैव कुशावतीम् ।।१८।।
दक्षां शाकवतीं चैव पुण्योदां च महानदीम् । (*चन्द्रावतीं सुमूलां च ऋषभां चाऽऽपगोत्तमाम् ।।१९।।
नदीं समुद्रमालां च तथा चम्पावतीमपि । एकाक्षां पुष्कलां वाहां सुवर्णां नन्दिनीमपि ।।२०।।
कालिन्दीं चैव पुण्योदां भारतीं च महानदीम् । सीतोदापातिकां ब्राह्मीं विशालां च महानदीम् ।।२१।।
पीवरीं कुम्भकारीं च रुषां चैवापगोत्तमाम् । महिषीं मानुषीं दण्डां तथा नदनदीं शुभाम् ।।२२।।
एताश्चान्याश्च पीयन्ते बह्व्यो हि सरितोत्तमाः ÷ । देवर्षिसिद्धचरिताः पुण्योदाः पापहाः शुभाः ।।२३।।
नानाजनपदास्फीतं महापगाविभूषितम् । नानारत्नौघसंपूर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम् ।।२४।।
उदीर्णं धनधान्याढ्यैर्नरवासैः समन्ततः । संनिविष्टं महाद्वीपं पश्चिमं सुकृतात्मनाम् ।।
निसर्गः केतुमालानामेष वः परिकीर्तितः ।।२५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

सुवर्णा, नन्दिनी, कालिन्दी, पुण्योदा, भारती, नदी सीतोदा, पातिका, ब्राह्मी, विशाला, पीवरी, कुंभकारी, रुषा, महिषी, दण्डा और नदनदी इन नदियों का तथा अन्यान्य श्रेष्ठ नदियों का जल वहाँ के लोग पिया करते हैं। ये नदियाँ पवित्र जलवाहिनी, शुभकारक, पाप विनाशिनी और देव-देवर्षियों द्वारा सेवित हैं ।।१७-२३।। वह पश्चिमी दिग्वर्ती महाद्वीप केतुमाल धन-धान्यों से परिपूर्ण, सत्कर्म करनेवाले नर-नारियों से व्याप्त, उदार, विविध देशों से मनोहर महानदियों से विभूषित, नाना रत्न से समृद्ध, सदा आनन्दमय और नित्य मंगलकारक है। केतुमालवासियों का उपर्युक्त चरित्र वर्णन जो कि अभी आप लोगों को सुनाया गया है स्वभावसिद्ध है ।।२४-२५।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४४।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ आर्षोऽयं पाठः।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

शांशपायन उवाच

पूर्वापरौ समाख्यातौ द्वौ देशौ नस्त्वया प्रभो। उत्तराणां च वर्षाणां दक्षिणानां च सर्वशः॥
आचक्ष्व नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः ॥१॥

सूत उवाच

दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्यैवोत्तरेण तु। वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः॥२॥
सर्वर्तुकामदाः सत्त्वा जरादुर्गन्धवर्जिताः। शुक्लाभिजनसंपन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः॥३॥
तत्रापि सुमहादिव्यो न्यग्रोधो रोहिणो महान्। तस्य पीत्वा फलरसं पिबन्तो वर्तयन्त्युत॥४॥
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः॥५॥
उत्तरेण तु श्वेतस्य शृङ्गसाह्वस्य दक्षिणे। वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी॥६॥
महाबलाः सुतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः। सर्वर्तुकामदाः सत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः॥७॥
एकादश सहस्राणि वर्षाणां तेऽमितौजसः। आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च॥८॥

अध्याय ४५

भुवनविन्यास

शांशपायन बोले–हे महाराज! आपने पूर्व और पश्चिम दिशा के दो देशों का वर्णन किया। अब उत्तर तथा दक्षिण दिशा के देशों का और वहाँ के पर्वतों पर रहनेवाले लोगों का क्रमशः पूर्णरूप से वर्णन कीजिये ॥१॥

सूत जी बोले–श्वेत पर्वत के दक्षिण और नील पर्वत के उत्तर रमणक नामक एक देश है। वहाँ जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं वे सभी अनुकूल कामफल का उपयोग करते हैं। वे बूढ़े नहीं होते, न तो उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। उनका परिवार भी विशुद्ध होता और वे स्वयं सुन्दर होते हैं ॥२–३॥ वहाँ रोहिण नामक एक महान् और दिव्य वट वृक्ष है, जिसके फलों के रस को पीकर वहाँ के निवासी जीवन धारण करते हैं। वे महाभाग्यशाली नरश्रेष्ठ सदा प्रसन्न रहते हैं और दस हजार दस सौ पाँच वर्ष की आयु के होते हैं ॥४–५॥ श्वेताचल के उत्तर और शृंगाचल के दक्षिण हिरण्वत नामक एक देश है, जहाँ हैरण्वती नदी बहती है। वहाँ के लोग महाबली, तेजस्वी, जीवट के धनी, सुरूप और सभी ऋतुओं में समान कामफल का उपभोग करनेवाले हैं। वहाँ के पराक्रमी लोग ग्यारह हजार दस सौ पाँच वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं ॥६–८॥ उस देश में छहों रसों से युक्त बड़हर का एक महान् वृक्ष है। वहाँ के मानव उसी

तस्मिन्वर्षे महावृक्षो लकुचः षड्रसाश्रयः। तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः ।।९।।
त्रीणि शृङ्गवतः शृङ्गाण्युच्छ्रितानि महान्ति च। एकं मणिमयं तेषामेकं चैव हिरण्मयम् ।।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ।।१०।।
उत्तरस्य समुद्रस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे। कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ।।११।।
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यं पुष्पफलोपगाः। वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ।।१२।।
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा मनोरमाः। गन्धवर्णरसोपेतं प्रक्षरन्ति मधूत्तमम् ।।१३।।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः। ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं ह्यमृतोपमम् ।।१४।।
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका। सर्वतः सुखसंस्पर्शा निष्पङ्का नीरुजा शुभा ।।१५।।
देवलोकाच्च्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः। शुक्लाभिजनसंपन्नाः सर्वे च स्थिरयौवनाः ।।१६।।
मिथुनानि प्रसूयन्ते स्त्रियश्चातिमनोहराः। ते च तं क्षीरिणं वृक्षं पिबन्ति ह्यमृतोपमम् ।।१७।।
मिथुनं जायते सद्यः समं चैव विवर्तते। समं शीलं च रूपं च म्रियन्ते चैव ते समम् ।।१८।।
अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः। अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविणः ।।१९।।
त्रयोदश सहस्राणि शतानि दश पञ्च च। जीवन्ति ते महावीर्या न चान्यस्त्रीनिषेविणः ।।२०।।
कुरूणामपि चैतेषां शृणुध्वं विस्तरेण तु। जारुधेः शैलराजस्याप्युत्तरेणोत्तरस्य हि ।।
दिक्षु सर्वासु यद्यत्र कीर्त्यमानं विबोधत ।।२१।।

के फल के रस को पीकर जीते हैं। वहाँ शृंगवान् गिरि के तीन बड़े और ऊँचे शृंग हैं, जिनमें एक मणि का है, दूसरा सोने का और तीसरा भाँति-भाँति के रत्नों से भरा है। उन पर महल भी बने हुए हैं ।।९-१०।। उत्तर समुद्र के अन्त में दक्षिण और सिद्धों से सेवित पुण्यशाली कुरुवर्ष है। वहाँ के वृक्षों में मीठे फल लगे रहते और फूल खिले रहते हैं। वे वृक्ष फलों के साथ-साथ वस्त्र और भूषण भी दिया करते हैं ।।११-१२।। कितने ही मनोहर वृक्ष तो वहाँ सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं और सुगन्धित मनोहर मधु टपकाते रहते हैं। दूध देनेवाले भी वहाँ दूसरे वृक्ष हैं, जो देखने में मनोहर हैं और सदा अमृत तुल्य षड्रसमय दूध बहाया करते हैं। वहाँ की भूमि मणियों से युक्त है जहाँ सोने की बालू बिखरी रहती है। कीचड़ का कहीं पता नहीं है। कहीं पर धूलि का पता नहीं, धरातल छूने पर अत्यन्त कोमल जान पड़ता है। देवलोक से च्युत होने पर ही वहाँ मानव जन्म ग्रहण करते हैं। वहाँ भी चिर युवक और शुद्ध परिवारवाले हैं ।।१३-१६।। वहाँ की सुन्दर नारियाँ जुड़वाँ सन्तान पैदा करती हैं, जो दूध-वृक्ष के अमृततुल्य दूध को पिया करते हैं। वहाँवाले जुड़वाँ जनमते हैं साथ ही बढ़ते, स्वभाव-रूप में भी एक-से होते हैं और साथ ही मरते भी हैं। वे रोग-शोक से रहित होकर सदा सुखी रहते हैं और आपस में उसी प्रकार अनुरक्त रहते हैं, जैसे चकवा-चकई। वहाँवालों को परायी स्त्री की चाह नहीं रहती है। वे महाबली तेरह हजार दस सौ पाँच वर्ष तक जीवित रहते हैं ।।१७-२०।। शैलराज जारुधि के उत्तर जो उत्तर कुरु है, उसका वर्णन विस्तार से सुनिये। यह उत्तर कुरु सभी दिशाओं में प्रसिद्ध है। वहाँ बड़े ऊँचे-

अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरमण्डितौ । नैककुञ्जवनोपेतौ चित्रधातुविभूषितौ ।।२२।।
अनेकधातुकलिलौ सर्वधातुविभूषितौ । पुष्पमूलफलोपेतौ सिद्धचारणसेवितौ ।।२३।।
द्वावप्येतौ सुमहान्तावुच्छ्रितौ कुलपर्वतौ । ताभ्यां कूटशतैर्नैकैस्तद्द्वीपमुपसेवितम् ।।२४।।
चन्द्रकान्तश्च शैलश्च सूर्यकान्तश्च सानुमान् । ययोर्मध्येन सा याता भद्रीसीमा महानदी ।।२५।।
सहस्रशश्च नद्योऽन्याः प्रसन्नसुरसोदकाः । पर्याप्तोदाः कुरूणां हि स्नानपानावगाहनः ।।२६।।
तथाऽन्याः क्षीरवाहिन्यो महानद्यः सहस्रशः । मधुमैरेयवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च ।।२७।।
दध्नः शतह्रदाश्चान्यास्ततः स्वाद्वन्नपर्वताः । अमृतस्वादुकल्पानि फलानि विविधानि च ।।२८।।
गन्धवर्णरसाढ्यानि मूलानि च फलानि च । पञ्चयोजनमानानि महागन्धानि सर्वशः ।।२९।।
नानावर्णप्रकाराणि पुष्पाणि च सहस्रशः । उपभोगसहस्राणि भद्राणि च महान्ति च ।।३०।।
गन्धवर्णरसाढ्यानि स्पर्शोपेतानि सर्वशः । तमालागुरुगन्धानां चन्दनानां वनानि च ।।३१।।
भ्रमरैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सदैव च । वृक्षगुल्मलताढ्यानि वनानि सुसुखानि च ।।३२।।
षट्पदैरुपगीतानि द्विजैश्चान्यैर्द्विजोत्तमाः । पद्मोत्पलवनाढ्यानि सरांसि च सहस्रशः ।।३३।।
भक्ष्यमाल्यसमृद्धाश्च बहुमाल्यानुलेपनाः । मनोहरमुखैश्चित्रैः पक्षिसंघैर्निकूजिताः ।।३४।।
शयनासनोपभोगाश्च अनेकगुणविस्तराः । विहारभूमयो रम्याः सर्वर्तुषुः सुखपद्राः ।।३५।।

ऊँचे दो कुलपर्वत हैं, जो अनेक कन्दराओं, दरियों, गुहाओं और झरनों से मण्डित हैं, अनेक कुंज और वनों से युक्त, विचित्र धातुओं से विभूषित वे अनेक प्रकार की विविध धातुओं से रंजित, पुष्प, मूल और फलों से युक्त और सिद्ध चारणों से सुशोभित हैं ।।२१-२३।। उन दोनों पर्वतों के सैकड़ों शिखरों से वह द्वीप शोभित हो रहा है। इन दोनों पर्वतों के नाम चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त हैं जिनके बीच से महानदी भद्रसीमा बहती है। और भी वहाँ हजारों नदियाँ हैं जिनके जल को कुरु देशवासी स्नान-पान आदि के कामों में लाते हैं ।।२४-२६।। इन नदियों में निर्मल मीठा जल पर्याप्त मात्रा में भरा रहता है। वैसे भी हजारों महानदियाँ हैं, जिनमें दूध, मधु, मदिरा और घी बहा करता है। दही के सैकड़ों तालाब हैं, सुस्वादु अन्नों के पर्वत की तरह ढेर लगे हुए हैं। अमृत की तरह स्वादवाले सुन्दर फल तो भाँति-भाँति के पड़े हैं। वहाँ गन्ध, वर्ण और रसों से युक्त ऐसे-ऐसे फल मूल हैं, जिनकी सुगन्ध बीस कोस दूर से जान पड़ने लगती है, भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे हजारों फूल खिले रहते हैं, जो उपभोग के योग्य और महान् कल्याणकारक हैं ।।२७-३०।। गन्ध, वर्ण और रसों से युक्त तथा सुख स्पर्श वहाँ तमाल, अगरु तथा चन्दनों के वन हैं, जहाँ भ्रमर प्रसन्न हो गाते रहते हैं। प्रफुल्लित वृक्ष गुल्म और लताओं से युक्त कितने ही और सुखदायक वन हैं, जहाँ भौंरे गुंजार करते रहते और चिड़ियाँ चहचहाती रहती हैं। ब्राह्मणो! वहाँ हजारों सरोवर हैं, जहाँ असंख्य पद्म और उत्पल के वन हैं ।।३१-३३।। सभी ऋतुओं में सुख देनेवाली रमणीय विहारभूमि में खाने की वस्तुएँ, माला, अनुलेपन, शयन, आसनादि उपभोग सामग्रियाँ प्रस्तुत रहती हैं, मनोहर मुखवाले चित्र-विचित्र पक्षियों का कलरव होता रहता है और वे विहारभूमि अनेक गुणों से युक्त हैं ।।३४-३५।। वहाँ स्वर्ण और

आक्रीडाः सर्वतः स्फीता मणिहेमपरिष्कृताः । शिलागृहा वृक्षगृहा वरेण्याः कदलीगृहाः ।।३६।।
लतागृहसहस्राणि सुसुखानि समन्ततः । शुद्धशङ्खदलाभानि भूमिवेश्मशतानि च ।।३७।।
तपनीयगवाक्षाणि मणिजालान्तराणि च । सुवर्णमणिचित्राणि सर्वत्र विपुलानि च ।।३८।।
महावृक्षसहस्राणि वरेण्यानि स सर्वशः । नानाकाराणि वासांसि सूक्ष्माणि सुसुखानि च ।।३९।।
मृदङ्गवेणुपणववीणाद्या बहुविस्तराः । फलन्ति कल्पवृक्षाणां सहस्राणि शतानि च ।।४०।।
सर्वत्रैव तथोद्यानं सर्वत्रैव हि तत्पुरम् । सर्वद्वीपप्रमुदितं नरनारीसमाकुलम् ।।
प्रवाति चानिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः ।।४१।।
नित्यमङ्गसुखाह्लादस्तस्मिन्द्वीपे श्रमापहे । तत्र स्वर्गपरिभ्रष्टा जायन्ते हि नराः सदा ।।
भौमं तदपि हि स्वर्गं तत्रापि च गुणोत्तमम् ।।४२।।
चन्द्रकान्ता नरवराः श्यामाङ्गाः पूर्वकूलजाः । श्यामावदाताः सुखिनः सूर्यकान्ता वराः प्रजाः ।।४३।।
तस्मिन्देशे नराः श्रेष्ठा देवसत्त्वपराक्रमाः । सदा विहारिणः सर्वे कामवृत्त्या सुवर्चसः ।।४४।।
वलयाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषिताः । स्रग्विणश्चित्रमुकुटाश्चित्राच्छादनवाससः ।।४५।।
अजीर्णयौवनधराः सुप्रियाः प्रियदर्शनाः । प्रजा वर्षसहस्राणि जीवन्ति सुबहून्युत ।।४६।।
न ताः प्रसवधर्मिण्यो न वंशप्रक्षयो विधिः । मिथुनं जायते वृक्षादुपक्षममनीदृशम् ।।४७।।

मणियों से परिष्कृत एवं सभी प्रकार से सम्पन्न उद्यान, शिलागृह, वृक्षगृह और श्रेष्ठ कदलीगृह हैं। सभी प्रकार के सुख देनेवाले कितने ही लतागृह हैं। शङ्ख की तरह उज्ज्वल कितने ही भूमिगृह भी हैं, जिनमें सोने और मणियों से चित्र बने हैं एवं सोने और मणियों की ही खिड़कियाँ हैं। वे भवन भी बड़े-बड़े हैं ।।३६-३८।। वहाँ बड़े-बड़े हजारों वृक्ष, विविध प्रकार के मूल्यवान् और सुख पहुँचानेवाले महीन कपड़े हैं। मृदङ्ग, वेणु, पणव, वीणा आदि बजते रहते हैं। वहाँ हजारों सैकड़ों कल्पवृक्ष हैं, जो इच्छानुसार फल देते हैं ।।३९-४०।। सभी जगह उद्यान हैं, सभी जगह नगर हैं, सम्पूर्ण द्वीप आनन्ददायक हैं, जहाँ सुखी नर-नारी निवास करते हैं। वहाँ वायु में विविध फूलों की सुगन्धि रहती है, जिसके स्पर्श से शरीर में सुख और आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। क्लान्तिनाशक उस द्वीप में स्वर्ग से भ्रष्ट होकर मानव जनमते हैं, क्योंकि वह द्वीप उत्तम गुणों के कारण भूमि का स्वर्ग कहलाता है ।।४१-४२।। पूर्वतट में चन्द्रकान्त पर्वत के निकट रहनेवाले नरपुंगव श्याम वर्ण के और सूर्यकान्त पर्वत के निकट रहनेवाले श्याम-अवदात वर्ण के होते हैं। वहाँ के उत्तम निवासी सदा सुखी रहते हैं। उस देश के श्रेष्ठ मनुष्य देवता की तरह पराक्रमी, तेजस्वी और इच्छाधीन विहार करनेवाले हैं। वलय, अंगद, केयूर, हार, कुण्डल, माला, चित्रकारी किये हुए मुकुट और रंग-बिरंगी चादर पहननेवाले वहाँ के सदा युवक बने रहनेवाले लोग हजारों वर्षों तक जीवित रहते हैं। वहाँ की प्रजा देखने में सुन्दर और भली है। प्रजा को न प्रसव होता है और न उनको वंशक्षय होता है; क्योंकि वहाँ के वृक्ष ही नर-नारियों के जोड़े को उत्पन्न करते हैं इसमें बाधा नहीं पड़ती है ।।४३-४७।। सभी समान

सामान्यविभवाः सर्वे ममत्वपरिवर्जिताः । न तत्र विद्यते धर्मो नाधर्मः संप्रवर्तते ।।४८।।
न व्याधिर्न जरा तत्र न दुर्मेधा न च क्लमः । पूर्णे काले विनश्यन्ति जलबुद्बुदवच्च ते ।।४९।।
एवमत्यन्तसुखिनः सर्वदुःखविवर्जिताः । रक्ता धर्मं न पश्यन्ति दुःखाद्धर्मोऽभिजायते ।।५०।।
उत्तराणां कुरूणां तु पार्श्वे ज्ञेयं तु दक्षिणे । समुद्रमूर्मिमालाढ्यं नानास्वरविभूषितम् ।।५१।।
पञ्चयोजनसाहस्रमतिक्रम्य सुरालयम् । चन्द्रद्वीपमिति ख्यातं चन्द्रमण्डलसंस्थितम् ।।५२।।
सहस्रयोजनानां तु सर्वतः परिमण्डलम् । नानापुष्पफलोपेतं समृद्ध्या परया युतम् ।।
शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं तावदेव तु ।।५३।।
तस्य मध्ये गिरिवरः सिद्धचारणसेवितः । चन्द्रतुल्यप्रभैः कान्तश्चन्द्राकारैः सुलक्षणैः ।।५४।।
श्वेतवैदूर्यकुमुदैश्चित्रोऽसौ कुमुदप्रभः । अनेकचित्रकोद्यानो नैकनिर्झरकन्दरः ।।
महासानुदरीकुञ्जैर्विविधैः समलंकृतः ।।५५।।
तस्माच्छैलान्महापुण्या चन्द्रांशुविमलोदका । प्रवहत्युत्तमनदी चन्द्रावर्ता तरङ्गिणी ।।५६।।
तत्र चन्द्रमसः स्थानं नक्षत्राधिपतेर्वरम् । सदाऽवतरते तत्र चन्द्रमा ग्रहनायकः ।।५७।।
तत्र चन्द्रमसो नाम्ना शैलः स तु परिश्रुतः । चन्द्रद्वीपं महाद्वीपं प्रकाशं दिवि चेह च ।।५८।।
तत्र चन्द्रप्रतीकाशाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रकान्ताः प्रजाः सर्वा विमलाश्चन्द्रदैवताः ।।५९।।

वैभववाले हैं। किसी को भी सम्पत्ति पर ममता नहीं है। वहाँ धर्म-अधर्म आदि कुछ भी नहीं है। वहाँ न रोग है, न बुढ़ापा है, न कुमति है, न थकावट। जीवन-काल को पूर्णकर वे पानी के बुलबुले की तरह समाप्त हो जाते हैं। वे अत्यन्त सुखी हैं, उन्हें कोई भी दुःख नहीं है। वे कभी भी अनुरक्त होकर धर्म नहीं करते हैं। दुःख की अवस्था में ही धर्म किया जाता है ।।४८-५०।। उत्तर कुरु के दक्षिण पार्श्व में चन्द्रद्वीप है। यह पाँच हजार योजन विस्तीर्ण और देवलोक से भी बढ़कर है। यहाँ चन्द्रमा का मण्डल स्थित है जहाँ समुद्र की तरंगमालाएँ सदा लहराती हैं, जिनके तरह-तरह के शब्दों से यह द्वीप मुखरित होता रहता है ।।५१-५२।। इसका घेरा चारों ओर से हजार योजनों का है और लम्बाई-ऊँचाई भी सौ-सौ योजनों की है। यहाँ भाँति-भाँति के फल-फूल लगे हुए हैं और यहाँ अपार वैभव है। उसके बीच कुमुदप्रभ नामक एक पर्वत है। जहाँ सिद्धचारण निवास करते हैं वह पर्वत चन्द्रमा के तुल्य प्रभासम्पन्न, कमनीय, सुलक्षण और चन्द्रतुल्य श्वेत वैदूर्य मणि तथा कुमुद से चित्रित है। वहाँ अनेक विचित्र-विचित्र उद्यान, विविध निर्झर-कन्दराएँ हैं और वह पर्वत विविध विशाल शिखर, दरी और कुंजों से विभूषित है ।।५३-५५।। उस पर्वत से चन्द्रावर्ता नाम की एक उत्तम नदी प्रवाहित होती है। यह अत्यन्त पवित्र है और इसका जल चन्द्रमा की किरण की तरह निर्मल है। वह नक्षत्रों के अधिपति चन्द्रमा का श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ गृहनायक चन्द्रमा सदा उतरा करते हैं। वहाँ चन्द्रमा के नाम का एक विख्यात पर्वत है। वह महाद्वीप चन्द्रद्वीप, स्वर्गलोक और मृत्युलोक में प्रकाशित (प्रसिद्ध) है ।।५६-५८।। वहाँ की प्रजा चन्द्रमा की भाँति कान्तिमान्, पूर्ण चन्द्र के समान मुखमण्डलधारी, चन्द्रमा के समान विमल, चन्द्रपूजक, अत्यन्त धार्मिक, सौम्य,

अत्यन्तधार्मिकाः सौम्याः सत्यसंधाः सुतेजसः। प्रजास्तत्र सदाचारा दशवर्षशतायुषः ।।६०।।
पश्चिमेन तु द्वीपस्य पश्चिमस्य प्रकीर्तितम्। चतुर्योजनसाहस्रं समतीत्य महोदधिम् ।।६१।।
दशयोजनसाहस्रं समन्तात्परिमण्डलम्। द्वीपं भद्राकरं नाम नानापुष्पोपशोभितम् ।।६२।।
प्रभूतधनधान्याढ्यमनेकनृपपालितम्। नित्यं प्रमुदितं स्फीतं महाशैलैश्च शोभितम् ।।६३।।
तत्र भद्रासनं वायोर्नानारत्नैश्च मण्डितम्। तत्र विग्रहवान्वायुः सदा पर्वसु पूज्यते ।।६४।।
तपनीयसुवर्णाभास्तपनीयविभूषिताः। विराजन्तेऽमरप्रख्यास्तत्र चित्राम्बरस्रजः ।।६५।।
वीर्यवन्तो महाभागाः पञ्चवर्षशतायुषः। सत्यसन्धा मुदा युक्ताः प्रजास्ता वायुदेवताः ।।६६।।

सूत उवाच

एवमेव निसर्गोऽयं वर्षाणां भारते युगे। दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं कीर्तयामि ते ।।६७।।
आख्याते त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता। उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ।।६८।।

ऋषय ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः। चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ।।६९।।
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम। एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषामब्रवील्लोमहर्षणः ।।७०।।
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम्। एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः ।।७१।।

सत्य-प्रतिज्ञ, तेजस्वी और सदाचारी रहकर हजार वर्ष जीवित रहती है। पश्चिम दिग्वर्ती उस द्वीप के पश्चिम भद्राकर नाम का द्वीप है। यह समुद्र से चार हजार योजन दूर है। यह दस हजार योजनों में फैला हुआ है। यह तरह-तरह के पुष्पों से शोभित, धन-धान्यों समृद्ध, अनेक राजाओं द्वारा पालित, सदा प्रसन्न, निर्मल और विशाल पर्वतों से युक्त है। यहाँ वायुदेव का नाना रत्नों से मण्डित एक सुन्दर आसन है, जहाँ शरीरधारी वायुदेव सदा पर्वों में पूजे जाते हैं। वहाँ के लोग तपाये हुए सोने की तरह रंगवाले होते हैं और उसी के भूषण पहनते हैं। वे देवता की तरह शोभित हैं। वे नाना रंग के कपड़े और माला पहनते हैं। वे वीर्यशाली, सत्यप्रतिज्ञ, आनन्दसम्पन्न और वायुपूजक होकर पाँच सौ वर्षों तक जीते हैं।।५९-६६।।

सूत जी बोले-परम तत्त्वज्ञ ऋषियों ने जैसा देखा है वैसे ही हमने देशों का स्वभावसिद्ध वर्णन कर दिया है। अब और आगे हम आप लोगों को क्या कहें? इस प्रकार धीमान् सूतपुत्र द्वारा कहे जाने पर फिर कुछ सुनने की इच्छा से ऋषियों ने पूछा ।।६७-६८।।

ऋषिगण बोले-हे सत्तम! यह जो भारतवर्ष है, जहाँ प्रजासृष्टि के व्यापारक्रम में स्वायंभुवादि चौदह मनु उत्पन्न हुए हैं, इसे हम जानने की इच्छा करते हैं, कहिये। पवित्रात्मा ऋषियों की बात सुनकर पुराण-पण्डित कथावाचक लोमहर्षण जी स्थिर चित्त से फिर विस्तार के साथ ऋषियों से कहने लगे ।।६९-७१।।

सूत उवाच

निसर्ग एष विख्यातः कुरूणां तु यथार्थवत् । भारतस्य तु वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत ।।७२।।
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्यातलस्य हि । पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ।।७३।।
तथा जनपदानां च निस्तरं श्रोतुमर्हथ । अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन्भारते प्रजाः ।।७४।।
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् । उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ।।७५।।
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा । भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ।।७६।।
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते । न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ।।७७।।
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदाः प्रकीर्तिताः। समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ।।७८।।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णी गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ।।७९।।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ।।८०।।
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै । तिर्यगुत्तरविस्तीर्णाः सहस्राणि नवैव तु ।।८१।।
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लच्छैरन्तेषु नित्यशः । पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ।।८२।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः । इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।।८३।।

सूत जी बोले–हे द्विजगण! कुरुवर्ष की स्वाभाविक स्थिति को हमने यथार्थ रूप से कह दिया। अब भारतवर्ष के सम्बन्ध में कहते हैं, सुनिये–पूरब से पश्चिम तरफ लम्बायमान हिमालय पहाड़ के दक्षिण पुण्य तीर्थ भारतवर्ष है। इस देश का जैसा विस्तार है, उसे सुनिये। अब हम आप लोगों को भारतवर्ष की प्रजा का वर्णन करेंगे ।।७२–७४।। यह मध्यम स्थान विचित्र है, शुभाशुभ फलों का यहाँ उदय होता है। समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण जो देश है, वह भारतवर्ष कहलाता है। यहाँ भारती प्रजा रहती है। प्रजाओं का भरण–पोषण करने के कारण यहाँ के मनु भरत कहे गये हैं। भरत नाम की इस प्रकार निरुक्ति होने के कारण यह भारतवर्ष कहलाया ।।७५–७६।। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष, मध्य तथा अन्त गति प्राप्त होती है। इस स्थान को छोड़कर मृत्युलोकवासियों के लिए दूसरी जगह कहीं कर्म करने की व्यवस्था नहीं है। इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये हैं, ये नव द्वीप समुद्र से घिरे हुए हैं; अतः परस्पर अगम्य हैं ।।७७–७८।। इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रवर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व और वारुण के अतिरिक्त नौवाँ यह भारतवर्ष सागर द्वारा घिरा हुआ है। यह द्वीप दक्षिण से उत्तर हजार योजन का है ।।७९–८०।। यह कुमारी से लेकर हिमालय तक तिर्यक् भाव से उत्तर और नौ हजार योजन विस्तीर्ण है। यह द्वीप इस प्रकार बसा हुआ है कि इसके अन्त में म्लेच्छ, पूर्व में किरात, पश्चिमान्त में यवन रहते हैं ।।८१–८२।। और मध्य में विभक्त होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र निवास करते हैं। ये वर्णचतुष्टय यज्ञ, युद्ध एवं व्यापारादि के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। इन वर्ण चतुष्टयों का अपने–अपने कर्मों में

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम्। धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ।।८४।।
संकल्पपत्र्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि। इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ।।८५।।
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते। कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्यते ।।८६।।
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट्स्मृतः। स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ।।८७।।
सप्त चास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।।
विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।।८८।।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः। अभिजाताः सर्वगुणा वितुलाश्चित्रसानवः ।।८९।।
मन्दरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा। कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।।९०।।
पातंधमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः। गन्तुप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ।।९१।।
पुष्पगिर्युज्जयन्तो च शैलो रैवतकस्तथा। श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ।।९२।।
अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः। तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यशः ।।९३।।
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुसरस्वती। शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।।९४।।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः। गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ।।९५।।
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा। इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृता ।।९६।।
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च। वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ।।९७।।

परस्पर व्यवहार धर्म और काम के अनुरूप होता है। इसी देश में स्वर्ग और अपवर्ग के लिए संकल्पजन्य पाँच आश्रम (?) यथाविधि प्रतिपालित होते हैं और इन आश्रमों में मनुष्यों की स्वभावतः प्रवृत्ति है। जो यह नवम द्वीप टेढ़ा और लम्बा कहा गया है, उसे जो सम्पूर्ण जीत लेता है, वही यहाँ सम्राट् कहलाता है ।।८३-८६।। वह इस लोक में सम्राट्, अन्तरिक्ष में विराट् और अन्य लोक में स्वराट् कहलाता है जो हो हम इसके आगे की बातें विस्तारपूर्वक कहते हैं। सुन्दर पर्व (गाँठ का स्तर) वाले महेन्द्र, मलय, सत्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र यहाँ के सात कुलपर्वत हैं ।।८७-८८।। इनके समीप में भी अन्यान्य हजारों पर्वत हैं। ये सभी सब गुणों से युक्त, बृहत्, विचित्र शिखर सम्पन्न और रमणीय हैं। पर्वतश्रेष्ठ मन्दर, वैहार, दर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक, वैद्युत, पातन्धम, पाण्डुर, गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोधनगिरि, पुष्पगिरि, उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, कारु, कूटशैल आदि अनेक पर्वतों के अतिरिक्त छोटे-छोटे भी कितने ही पहाड़ हैं ।।८९-९२½।। इन पर्वतों के पाददेश में कितने ही देश हैं, जहाँ आर्य और म्लेच्छ निवास करते हैं ।।९३।। वे सब इन नदियों का पानी पिया करते हैं-गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धुतपाता, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, गंडकी, निश्चीरा, इक्षु और लोहित। ये नदियाँ हिमालय के पाददेश से निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सतीरा, महती, परा, चर्मण्वती,

परा चर्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि । शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।।९८।।
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा । मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।।९९।।
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका । नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ।।१००।।
सितेरजा शुक्तिमती मक्रुणा त्रिदिवा क्रमात् । ऋक्षपादात्प्रसूताश्च नद्यो मणिनिभोदकाः ।।१०१।।
तापी पयोष्णी निर्बन्ध्या मद्रा च निषधा नदी । वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ।।१०२।।
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा । विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।।१०३।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वैण्यथ वञ्जुला । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथाऽऽपगा ।।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ।।१०४।।
कृतमाला ताम्रवर्णी पुष्पजात्युत्पलावती । मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ।।१०५।।
त्रिसामा ऋतुकूल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या । लाङ्गूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृता ।।१०६।।
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी । कूपा पलानिशी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।।१०७।।
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्याः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः । विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ।।१०८।।
तासां नद्युपनद्योऽपि शतशोऽथ सहस्रशः । तास्त्विमे कुरुपञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ।।१०९।।
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः । वत्साः किसष्णाः कुलयश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ।।११०।।
अर्थपाश्च तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह । मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ।।१११।।

विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा, अवन्ती आदि नदियाँ पारियात्र पहाड़ से निकली हैं ।।९४-९८।। महानदी शोण, नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पला, विपाशा, जम्बुला, बालुवाहिनी, सितेरजा, शक्तिमती, मक्रुणा और त्रिदिवा क्रम से ऋक्ष पर्वत से उत्पन्न हुई हैं और इनका जल मणि के तुल्य है ।।९९-१०१।। तापी, पयोष्णी, निर्बन्ध्या, मद्रा, निषधा, वेन्वा, वैतरणी, शितिबाहु, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तशिला विन्ध्य के पाददेश से उत्पन्न हुई हैं। ये नदियाँ पुण्य सलिला हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला, तुगंभद्रा, सुप्रयोगा और कावेरी नाम की नदियाँ दक्षिण देश की नदियाँ हैं और ये सह्य पर्वत के पादमूल से बाहर आयी हैं। कृतमाला, ताम्रवर्णी, पुष्पजाती और उत्पलावती मलयाचल से निकली हैं। इन नदियों का जल शीतल और शुभकारक है ।।१०२-१०५।। त्रिसामा, ऋतुकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लांगूलिनी और वंशधरा महेन्द्र पर्वत से निकली हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कूपा, पलानिशी शुक्तिमान् पहाड़ से उत्पन्न हुई हैं ।।१०६-१०७।। गंगा, सरस्वती आदि सभी नदियाँ समुद्र में जाकर गिरी हैं। ये सभी नदियाँ पवित्र, संसार के पाप को नष्ट करनेवाली और संसार की माता स्वरूप हैं। इन नदियों की हजारों-सैकड़ों उपनदियाँ हैं। इनमें कुछ कुरुपांचाल, शाल्व, जांगल, शूरसेन, भद्रकार, बोध, शतपथेश्वर, वत्स, किम्नष्ण, कुलय, कुन्तल, काशिकोशल, तैलंग और मगध में बहती हैं। मध्यम प्रदेश के देश प्रायः ये ही कहलाते हैं ।।१०८-१११।। सह्यपर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ गोदावरी नदी बहती है, वह प्रदेश

(* सह्यस्य चोत्तरार्धे तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ।।११२।।
[+ तत्र गोवर्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः)। रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ।।११३।।
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः। अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः] ।।११४।।
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः। अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ।।११५।।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः। शका ह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः ।।११६।।
रमटा रद्धकटका केकया दशमानिकाः क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।।११७।।
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराः प्रियलौकिकाः। पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ।।११८।।
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरुकाः। लम्पकाः स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ।।११९।।
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानां च जातयः। तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ।।१२०।।
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च। एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान्देशान्निबोधत ।।१२१।।
अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः। तथा प्रवङ्गवङ्गेयामालदा मालवर्तिनः ।।१२२।।
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थकाः। प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।।
माला मगधगोविन्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः ।।१२३।।
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः। पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च ।।१२४।।
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः। महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ।।१२५।।

संपूर्ण पृथ्वी में मनोहर है। यहाँ इन्द्र ने गोवर्द्धन नामक स्वर्गपुर का निर्माण किया है। भरद्वाज मुनि ने रामचन्द्र की प्रिय कामना से वहाँ वृक्ष और ओषधियों को उगाया है। वह वन रामचन्द्र के अन्तःपुर के उद्देश्य से बनाया गया है, अतः यह मनोहर बना है ।।११२-११४।। उत्तर की ओर इतने देश है—वाह्लीक, वाटधान आभीर, कालतोयक, अपरीत, शूद्र, पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, ह्रद, कुलिन्द, परित, हारपूरिक, रमट, रद्धकटक, केकय, दशमानिक। ये क्षत्रियोपनिवेश हैं। वैश्य-शूद्र कुलों से युक्त देश। कम्बोज, दरद, बर्बर, प्रियलौकिक, पीन, तुषार, पह्लव, बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पाक, स्तनय, पीड़िक, जुहुड़, अपग, अलिमद्र, किरातजाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, तंगण, चूलिक, आहुक और पूर्णदेव हैं। पूरब दिशा के देशों को सुनिये– ।।११५-१२१।। आन्ध्रवाक, सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, वंगेय, मालद, मालवर्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमर्थक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द।। १२२-१२३।। इसके बाद दक्षिण दिशा के देश और वहाँ के निवासी ये हैं—पाण्ड्य, केरल, चौल्य, कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुमन, वनवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अ(आ)भीराः सहचैषीका आटव्याश्च वराश्च ये । पुलिन्दा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ।।१२६।।
पौनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्धनाः । नैर्णिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ।।१२७।।
दक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत । सूर्पाकाराः कोलवना दुर्गाः कालीतकैः सह ।।१२८।।
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह । तथा सुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ।।१२९।।
नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये वै चान्तरनर्मदाः । भानुकच्छाः समाहेयाः सहसा शाश्वतैरपि ।।१३०।।
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च आनर्ताश्चार्बुदैः सह । इत्येते संपरीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ।।१३१।।
मालवाश्च करूषाश्च रोकलाश्चोत्कलैः सह । उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ।।१३२।।
तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा । तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरा निषधैः सह ।।१३३।।
अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः । एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ।।१३४।।
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये । निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ।।१३५।।
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः । त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ।।१३६।।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः । कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ।।१३७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

सहचैषीक, आटव्य, वर, पुलिन्द, विन्ध्यमूलिक, वैदर्भ, दण्डक, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्णिक, कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिद और नलकलिका ।।१२४-१२७।। इतने तो दक्षिण दिशा के देश हुए, और जो अन्य देश हैं उन्हें भी सुनिये– सूर्पाकार, कौलवन, दुर्ग, कालीतक, पुलेय, सुराल, रूपस, तापस, सुरसित, परक्षर और नासिक्य प्रभृति एवं इनके अतिरिक्त नर्मदानदी के तीरवर्ती अन्यान्य देश–भानुकच्छ, समाहेय, सहस, शाश्वत, कच्छीय, सुराष्ट्र, आनर्त, आर्बुद और संपरीत। अब विन्ध्याचलस्थ देशों का नाम सुनिये ।।१२८-१३१।। मालव, करुष, रोकल, उत्कल, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर, वैदिक, तुमुर, तुंबुर, षट्सुर, निषध, अनूप, तुंडिकेर, वीतिहोत्र और अवन्ती। इतने ये देश विन्ध्याचल के पृष्ठ देश में अवस्थित हैं ।।१३२-१३४।। इसके आगे अब हम पहाड़ी देशों को बताते हैं– निगर्हर, हंसमार्ग, क्षुपण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व, सहूदक, त्रिगर्त, मालव, किरात और तामस हैं। विद्वानों ने भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग बताये हैं। इनका पूरा परिचय तथा स्वभाव आदि का वर्णन बाद में किया जायगा ऐसा आप लोग समझिये ।।१३५-१३७।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४५।।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

*सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते। शुश्रूषवा मुदा युक्ताः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।।१।।

ऋषय ऊचुः

यच्च किंपुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च। आचक्ष्व नो यथा तत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया ।।२।।
पृष्टस्त्विदं यथा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः। उवाच मुनिनिर्दिष्टं पुराणं विहितं यथा ।।३।।

सूत उवाच

शुश्रूषा यत्र वो विप्रास्तच्छृणुध्वं मुदा युताः। प्लक्षखण्डः किंपुरुषे सुमहान्नन्दनोपमः ।।४।।
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे स्मृता। सुवर्णवर्णाश्च नरा स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।।५।।
अनामया ह्यशोकाश्च सर्वे ते शुद्धमानसाः। जायन्ते मानवास्तत्र निस्तप्तकनकप्रभाः ।।६।।
वर्षे किंपुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः शुभः। तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम् ।।७।।

अध्याय ४६

भुवनविन्यास

सूत जी बोले—ऋषियों ने इस प्रकार उत्तर सुनकर आनन्द से युक्त होकर कुछ और सुनने की इच्छा से लोमहर्षण से पूछा ।।१।।

ऋषिगण बोले—जिस प्रकार आपने भारतवर्ष के बारे में बताया है, उसी प्रकार किंपुरुषवर्ष और हरिवर्ष के सम्बन्ध में भी कहिये। ब्राह्मणों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उनके निर्दिष्ट प्रश्नों का पुराणसम्मत यथातथ्य उत्तर देने के लिए सूत जी बोले ।।२–३।।

सूत जी बोले—ब्राह्मणो! आप लोग जो सुनना चाहते हैं उसे आनन्दपूर्वक सुनिये। किंपुरुषवर्ष में नन्दन कानन के समान एक महान् प्लक्षखण्ड है। वहाँ लोगों की आयु दस हजार वर्षों की है। पुरुषों का रंग सोने का-सा होता है और स्त्रियाँ अप्सरा के समान होती हैं ।।४–५।। वहाँ तपाये हुए सोने की तरह रंगवाले मानव रोग-शोक से रहित और शुद्ध हृदय होते हैं। उस पवित्र किंपुरुषवर्ष में मधु बहानेवाला एक प्लक्ष का वृक्ष है, वहाँ के निवासी उसके उत्तम रस को पिया करते हैं। अब किंपुरुष के बाद हरिवर्ष का वर्णन करते हैं। वहाँ के लोगों का रंग चाँदी के समान

---

* इदं नास्ति ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अतः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षः प्रवक्ष्यते । महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ।।८।।
देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः । हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ।।९।।
एकादश सहस्राणि वर्षाणां तु मुदा युताः । हरिवर्षे तु जीवन्ति सर्वे मुदितमानसाः ।।
न जरा बाधते तत्र जीर्यन्ति न च ते नराः ।।१०।।
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् । न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः ।।११।।
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते । पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ।।
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।।१२।।
जम्बूरसफलाहारा ह्यनिष्यन्दाः सुबन्धिनः । मनस्विनो भुक्तभोगाः सत्कर्मफलभोगिनः ।।१३।।
देवलोकाच्च्युताः सर्वे जायन्ते ह्यजरामराः । त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः ।।१४।।
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षे त्विलावृते । मेरोः प्रतिदिशं ते तु नवसाहस्रविस्तृते ।।१५।।
योजनानां सहस्राणि षड्विंशस्तस्य विस्तरः । चतुरस्रः समन्ताच्च शरावाकारसंस्थितः ।।१६।।
मेरोस्तु पश्चिमे भागे नवसाहस्रसंमिते । चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनपर्वतः ।।१७।।
उदग्दक्षिणतश्चैव आनीलनिषधायतः । चत्वारिंशत्सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात् ।।
सहस्रमवगाढस्तु तावदेव तु धिष्ठितः ।।१८।।

होता है। वहाँ वाले सभी देवलोक से परिभ्रष्ट हुए हैं; अतः सभी देवस्वरूप हैं। वहाँ के सब लोग ईख का मधुर रस पिया करते हैं ।।६–९।। हरिवर्ष में लोग प्रसन्नतापूर्वक आनन्दित हृदय से ग्यारह हजार वर्षों तक जिया करते हैं। वहाँ किसी को भी बुढ़ापा नहीं सताता और न वहाँ के लोग बड़े ही होते हैं ।।१०।। हमने जो मध्यम इलावृत वर्ष का नाम कहा है, वहाँ सूर्य की किरणें न तो कभी तीक्ष्ण होती हैं और न वहाँ कोई बूढ़ा होता है। इलावृत में चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों का प्रकाश नहीं होता है। वहाँ के लोग पद्म–कान्ति, पद्मवर्ण, पद्मपत्र के समान नेत्रोंवाले तथा पद्मपत्र की तरह सुगन्ध धारण करनेवाले होते हैं ।।११–१२।। वहाँ के सभी मनुष्य देवलोक से परिभ्रष्ट हुए हैं अतः अजर-अमर हैं जो जामुन के फल खाकर सदा प्रसन्न रहते हैं। क्षरणरहित और आत्मसंयमी, मनस्वी, भोगों के उपभोग करनेवाले और सुन्दर कर्मफल का भोग करनेवाले हैं। वे नरोत्तमगण तेरह हजार वर्षों के आयुप्रमाण से उस इलावृतवर्ष में जीवन धारण करते हैं, जो मेरु की प्रति दिशा में नौ हजार योजन विस्तृत है उसका विस्तार छब्बीस हजार योजनों का है। वह चारों ओर से चौकोर है और शराव की तरह स्थित है ।।१३–१६।। मेरु के पश्चिम भाग में नौ हजार योजन दूर गन्धमादन पर्वत है, जो चौंतीस हजार योजनों का है। उत्तर और दक्षिण की ओर वह नील और निषध पर्वतों तक फैला हुआ है एवं पृथ्वीतल से चालीस हजार योजन ऊपर बढ़ा हुआ है। वह हजार योजन पृथ्वी के भीतर धँसा है और उतने ही योजनों में अधिष्ठित है ।।१७–१८।। इसके पूर्व माल्यवान् पर्वत है, जिसका परिमाण

पूर्वेण माल्यवाञ्शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्तितः । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।।१९।।
तेषां मध्ये महामेरुः सुप्रमाणः प्रकीर्तितः । सर्वेषामेव शैलानामवगाढो यथा भवेत् ।।२०।।
विस्तरस्तत्प्रमाणः स्यादायामे नियुतः स्मृतः । वृत्तभावात्समुद्रस्य महीमण्डलभावनः ।।२१।।
आयामाः परिहीयन्ते चतुरस्राः समस्ततः । अनावृत्ताश्चतुष्केण भिद्यन्ते मध्यभागतः ।।२२।।
प्रभिन्नाञ्जनसंकाशा जम्बूरसवती नदी । मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण तु ।।२३।।
सुदर्शनो नाम महाजम्बुवृक्षः सनातनः । नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ।।२४।।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपे वनस्पतिः । योजनानां सहस्रं तु शतं चान्यमहाद्रुमः ।।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवं स्पृशति सर्वशः ।।२५।।
अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि तु । फलप्रमाणं संख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।२६।।
पतमानानि तानुर्व्यां कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् । तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदीभूय प्रसर्पति ।।२७।।
मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य जम्बूवृक्षं विशत्यधः । ते पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसफलावृताः ।।२८।।
जम्बूरसफलं पीत्वा न जरां प्राप्नुवन्ति ते । न क्रोधं न च रोगं तु न च मृत्युं तथाविधम् ।।२९।।
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् । इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत् ।।३०।।
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः । स्कन्नं भवति तच्छुक्रं कनकं देवभूषणम् ।।३१।।

कहा जा चुका है। नील के दक्षिण, निषध के उत्तर और पूर्वोक्त पर्वतों के बीच विशालकाय महामेरु स्थित है। वह ऐसा जान पड़ता है, मानो सब पर्वत उसमें डूबे हुए हों। उसका विस्तार-प्रमाण नियुत योजन का है ।।१९-२०$\frac{१}{२}$।। समुद्र वृत्ताकार है और पृथ्वीमंडलस्थ सुमेरु उससे कुछ छोटा है; इसलिए कि चौकोर का विस्तार जब कि वह वृत्ताकार के रूप में परिणत किया जाता है कुछ कम हो जाता है। तब उसका मध्यभाग भी न्यून पड़ जाता है। मेरु के दक्षिण और निषध के उत्तर अंजन की तरह जम्बूरसवती नदी है ।।२१-२३।। वहाँ सुदर्शन नाम का एक पुराना जामुन का वृक्ष है। जिसमें फल-फूल सदा लगे रहते हैं और सिद्धचारण उसकी सेवा किया करते हैं। उसी के नामानुसार जम्बूद्वीप में एक विशाल वनस्पति है। वह महावृक्ष सौ हजार योजन का है। उसका शिखर स्वर्ग को स्पर्श करता है ।।२४-२५।। तत्त्वदर्शी ऋषिगण कहते हैं कि इस वृक्ष के प्रत्येक फल का प्रमाण आठ सौ अरत्नी है। ये फल पृथ्वीतल पर गिरकर महान् शब्द उत्पन्न करते हैं और उनका रस नदी बनकर बह निकलता है ।।२६-२७।। यह नदी मेरु की प्रदक्षिणा कर फिर उसी वृक्ष के मूल देश में प्रवेश कर जाती है। वहाँ वाले प्रसन्न होकर जामुन के फल और रस को पिया करते हैं। उस रस को पीने के कारण वे कभी वृद्ध नहीं होते हैं। यही क्यों, रोग, क्रोध और मृत्यु भी उन्हें प्राप्त नहीं होती है ।।२८-२९।। देवों के भूषणयोग्य जाम्बूनद नाम का सुवर्ण है, जो इन्द्रगोप कीट की तरह चमकीला होता है। उन सभी वृक्षों का शुभ फल रस शुक्र रूप में क्षरित होकर देव भूषणोचित सुवर्ण बन जाता है। उनका मूत्र और पुरीष भी विभागक्रम से सभी दिशाओं में बिखर जाता है। ईश्वर की कृपा से भूमि उस मृत्तिका को ग्रस

तेषां मूत्रं पुरीषं च दिक्षु सर्वासु भागशः। ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान् ।।३२।।
रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवताः स्मृतः। हेमकूटे तु गन्धर्वा विज्ञेयाः साप्सरोगणाः ।।३३।।
सर्वे नागास्तु निषधे शेषवासुकितक्षकाः। महामेरौ त्रयस्त्रिंशद्भ्रमन्ते यज्ञियाः सुराः ।।
नीले तु वैडूर्यमये सिद्धब्रह्मर्षयोऽमलाः ।।३४।।
दैत्यानां दानवानां च श्वेतपर्वत उच्यते। शृङ्गवान्पर्वतः श्रेष्ठः पितृणां प्रतिसंचरः ।।३५।।
नवस्वेतेषु वर्षेषु यथाभागस्थितेषु वै। भूतान्युपविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।।३६।।
तेषां विवृद्धिर्बहुला दृश्यते देवमानुषी। न शक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेयाऽनुबुभूषता ।।३७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४६।।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

सव्ये हिमवतः पार्श्वे कैलासो नाम पर्वतः। तस्मिन्निवसति श्रीमान्कुबेरः सह राक्षसैः ।।
अप्सरोगणसंयुक्तो मोदते ह्यलकाधिपः ।।१।।

लेती है ।।३०-३२।। राक्षस, पिशाच और यक्षगण हिमालय पर, गन्धर्व और अप्सराएँ हेमकूट पर एवं शेष वासुकि, रक्षकप्रभृति समस्त नाग निषधाचल पर स्थित हैं। तैंतीस याज्ञिक सुरगण महामेरु के ऊपर भ्रमण करते हैं। वैडूर्यमय नीलाचल पर सिद्ध ब्रह्मर्षि और सिद्ध लोग रहते हैं ।।३३-३४।। दैत्य और दानवों के लिए श्वेत पर्वत नियत किया गया है। श्रेष्ठ शृङ्गवान् पर्वत पितरों का भ्रमणस्थान है। विभागक्रम से अवस्थित इन नवों देशों में गतिशील भूतगण नित्य निवास करते हैं। इन भूतों की वृद्धि देव, मानुष के रूप में अधिकतर देखी जाती है। विशेष अनुसंधान करने पर भी उनकी गणना नहीं की जा सकती है ।।३५-३७।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४६।।

अध्याय ४७

भुवनविन्यास

सूत जी बोले–हिमालय के वाम पार्श्व में कैलास नामक पर्वत है। वहाँ श्रीमान् कुबेर राक्षसों के साथ निवास करते हैं। अलकाधिपति वहाँ अप्सराओं के साथ आमोद किया करते हैं ।।१।। कैलास पर्वत के पाद देश से शरत्कालीन मेघ के

कैलासपादात्संभूतं पुण्यं शीतजलं शुभम् । मन्दं नाम्ना कुमुद्वन्तं शरदम्बुदसंनिभम् ।।२।।
तस्माद्दिव्या प्रभवति नदी मन्दाकिनी शुभा । दिव्यं च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ।।३।।
प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यसत्त्वौषधं गिरिम् । सुरधातुमयं चित्रं सुवर्णं पर्वतं प्रति ।।४।।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुद्धो रत्नसंनिभः । तस्य पादे महद्दिव्यमच्छोदं नाम तत्सरः ।।५।।
तस्माद्दिव्या प्रभवति ह्यच्छोदा नाम निम्नगा । तस्यास्तीरे महद्दिव्यं वनं चैत्ररथं स्मृतम् ।।६।।
तस्मिन्गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः । यक्षसेनापतिः क्रूरगुह्यकैः परिवारितः ।।७।।
पुण्या मन्दाकिनी चैव निम्नगाच्छोदिका तथा । महीमण्डलमध्येन प्रविष्टे ते महोदधिम् ।।८।।
कैलासाद्दक्षिणप्राच्यां शिवसत्त्वोषधिं गुरुम् । मनःशिलामयं दिव्यं पिशङ्गं पर्वतं प्रति ।।९।।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् । तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं नाम तत्सरः ।।१०।।
तस्मात्पुण्यः प्रभवति लौहित्यः सदनो महान् । देवारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महावनम् ।।११।।
तस्मिन्गिरौ निवसति यक्षो मणिवरो वशी । सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ।।१२।।
कैलासाद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्त्वौषधं गिरिम् । वृत्रकायात्किलोत्पन्नमञ्जनं त्रिककुं प्रति ।।१३।।
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान्वैद्युतो गिरिः । तस्य पादे सरः पुण्यं मानसं सिद्धसेवितम् ।।१४।।

समान पवित्र, सुखद शीतल कुमुदों से युक्त मन्द नामक जल उत्पन्न होता है ।।२।। उससे दिव्य और शुभावह मन्दाकिनी नाम की नदी उत्पन्न होती है। उसी के किनारे नन्दन नाम का एक दिव्य महावन है ।।३।। कैलास के पूरब-उत्तर ओर दिव्य सत्त्व और ओषधियों से युक्त, देवोचित्त धातुओं से मण्डित और विचित्र सुवर्ण पर्वत के पास शुद्धरत्न के तुल्य चन्द्रप्रभ नाम का एक पर्वत है। उसी के मूलदेश में अच्छोद नाम का सरोवर है ।।४-५।। जिस सरोवर से अच्छोदा नाम की नदी निकलती है। इस अच्छोदा के तीर पर एक चैत्ररथ नाम का महादिव्य वन है। उस चन्द्रप्रभ पर्वत पर यक्ष सेनापति मणिभद्र अपने अनुचरों के साथ निवास करते हैं। वहाँ क्रूर प्रकृति गुह्यक भी उसके परिवार की भाँति रहते हैं। पवित्र मन्दाकिनी और अच्छोदा नाम की नदी महीमण्डल के बीच से बहती हुई महासमुद्र में प्रविष्ट हुई है ।।६-८।। कैलास के दक्षिण-पश्चिम शिवभक्त जीवों और ओषधियों से युक्त, मनःशिलामण्डित एवं विशाल और दिव्य जो पिशङ्गपर्वत है, उसके आसपास सुवर्णशृङ्ग से युक्त रक्तवर्ण का सूर्यप्रभ नामक एक महान् पर्वत है। उसी के मूलदेश में लोहित नामक महादिव्य सरोवर है ।।९-१०।। इसी सरोवर से लौहित नामक एक पुण्यशील महानद प्रवाहित हुआ है। उसी के तट पर विशोक नामक एक महावन है, जो देवों का लीलावन है। उसी पर्वत पर जितेन्द्रिय मणिवर नामक कोई यक्ष निवास करता है, जो शान्त, धार्मिक गुह्यकों से पारिवारिक सद्भाव रखता है ।।११-१२।। कैलास के दक्षिण भाग में क्रूर जीव और ओषधियों से युक्त एवं तीन शिखरवाले वृत्रासुर की देह से उत्पन्न अंजनाचल के समीप सर्वधातु सम्पन्न वैद्युत नामक एक महान् पर्वत है, जिसके मूलदेश में सिद्धसेवित और पवित्र मानस नाम का सरोवर है ।।१३-१४।। इससे लोकपावनी पवित्र सरयू प्रवाहित

तस्मात्प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकभावनी । तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ।।१५।।
कुबेरानुचरस्तत्र प्रहेतृतनयो वशी । ब्रह्मपातो निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ।।
अन्तरिक्षचरैर्घोरैर्यातुधानशतैर्वृतः ।।१६।।
अपरेण तु कैलासान्मुख्यसत्त्वौषधिं गिरिम् । अरुणं पर्वतश्रेष्ठं रुक्मधातुमयं प्रति ।।१७।।
भवस्य दयितः श्रीमान्पर्वतो मेघसंनिभः । शातकुम्भमयैः शुभ्रैः शिलाजालैः समावृतः ।।१८।।
शतसंख्यस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् । सञ्जवान्स महादिव्यो दुर्गशैलो हिमाचितः ।।१९।।
तस्मिन्गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोहितः । तस्य पादात्प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ।।२०।।
तस्मात्प्रभवते दिव्या शैलोदा नाम निम्नगा । सा चक्षुःशीतयोर्मध्ये प्रविष्टा लवणोदधिम् ।।२१।।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं विश्रुतं सुरभीति वै । अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवसत्त्वौषधो गिरिः ।।२२।।
गौरो नाम गिरिस्तत्र हरितालमयः शुभः । हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः ।।२३।।
तस्य पादे महद्दिव्यं शुभं काञ्चनबालुकम् । रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र यातो भगीरथः ।।२४।।
गङ्गानिमित्तं राजर्षिरुवास बहुलाः समाः । दिवं यास्यन्ति मे पूर्वे गङ्गातोयपरिप्लुताः ।।२५।।
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता । सोमपादप्रसूता सा सप्तधा प्रतिपद्यते ।।२६।।
यूपा मणिमयस्तत्र चितयश्च हिरण्मयाः । तत्रेष्ट्वा तु गतः शर्वं शक्रः सर्वैः सुरैः सह ।।२७।।

होती है, जिसके तीर पर वैभ्राज नाम का एक दिव्य वन है। वहाँ एक अत्यन्त पराक्रमी ब्रह्मपात नामक राक्षस निवास करता है। वह कुबेर का अनुचर और प्रहेता का पुत्र है। वह स्वयं इन्द्रियजित् और अन्तरिक्षगामी सैकड़ों भयानक निशिचरों से घिरा रहता है ।।१५-१६।। कैलास के पश्चिम प्रान्त में मुख्य-मुख्य जीवों और ओषधियों से युक्त एक सुवर्णमय अरुण नामक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसके पास सुवर्णमय, विशुभ्र शिलाओं से आच्छन्न, मेघतुल्य, शिव-प्रिय पर्वत अवस्थित है ।।१७-१८।। शतसंख्य हेमशृङ्गों से युक्त यह स्वर्ग को छू रहा है। शिव से युक्त यह दुर्गम विशाल पर्वत देवभोग्य और हिममय है। इस पर्वत पर गिरीश धूम्रलोहित निवास करते हैं। उस पर्वत के मूलदेश में शैलोद नामक सरोवर उत्पन्न हुआ ।।१९-२०।। जिससे दिव्य शैलोदा नाम की एक नदी निकलती है। यह चक्षु और शीता नाम की नदियों के मध्य से लवण सागर में प्रविष्ट हुई है। उसके तीर पर दिव्य और प्रसिद्ध सुरभि नामक वन है। कैलास के उत्तर मङ्गलमय प्राणी और ओषधियों से युक्त गौर नामक एक पर्वत है। हरितालमय इस पर्वत के शिखर सुवर्णमय हैं। वह एक महान् स्वर्गीय मणिमय पर्वत है ।।२१-२३।। उसके पाददेश में एक रमणीय सुवर्ण-बालुकामय विन्दु सरोवर है, जहाँ राजा भागीरथ गये हुए थे। उस राजर्षि ने गङ्गा के लिए वहाँ बहुत दिनों तक इसलिए निवास किया था कि गङ्गाजल से पवित्र होकर उनके पूर्वज स्वर्गगमन करें। गङ्गा देवी वहाँ पहले से ही प्रतिष्ठित थीं। यह सोमपाद से उत्पन्न होकर सात भागों में विभक्त हुई हैं ।।२४-२६।। वहाँ मणिमय यज्ञयूप और सोने की चितियाँ हैं। वहाँ इन्द्र ने सब देवों के साथ मिलकर

दिवि च्छायापथो यस्तु अनुनक्षत्रमण्डलम्। दृश्यते भास्वरो रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ।।२८।।
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयन्ती भुवं गता। भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया ।।२९।।
तस्या ये बिन्दवः केचित्क्रुद्धायाः पतिताः क्षितौ। कृतं बिन्दुसरस्तत्र ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ।।३०।।
ततो निरुद्धा देवी सा भवेन स्मयता किल। चिन्तयामास मनसा शंकरक्षेपणं प्रति ।।३१।।
भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसाऽऽगृह्य शंकरम्। ज्ञात्वा तस्या अभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।।३२।।
तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम्। तस्यावलेपं तं बुद्ध्वा नद्याः क्रुद्धस्तु शंकरः ।।
निरुध्य तु शिरस्येनां वेगेन पतितां भुवि ।।३३।।
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्टा राजानमग्रतः। धमनीसंततं क्षीणं क्षुधापरिगतेन्द्रियम् ।।३४।।
अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव हि। बुद्ध्वाऽस्य वरदानं तु कोपं नियतवांस्तु सः ।।३५।।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञाधारणं प्रति। ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ।।
नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः ।।३६।।
ततो विसर्ज्यमानायाः स्रोतस्तत्सप्ततां गतम्। त्रयः प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रय एव तु ।।३७।।
नद्याः स्रोतस्तु गङ्गायाः प्रत्यपद्यत सप्तधा। नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्रागगता ।।३८।।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च प्रतीचीं दिशमाश्रिताः। सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।।३९।।

यज्ञ कर स्वर्ग प्राप्त किया था। अन्तरिक्ष में नक्षत्र मण्डल के बीच रात में जो चमकीला छायापथ दीख पड़ता है, वह त्रिपथगा ही है। वही त्रिपथगा जब अन्तरिक्ष और स्वर्ग को प्लावित करती हुई पृथ्वी पर आयी, तब वह पहले महादेव के ही सिर पर गिरी और महादेव ने उसे योगमाया से वहीं रोक रखा ।।२७-२९।। क्रोध से तमतमायी गङ्गा की कुछ बूँदें उछलकर पृथ्वी पर गिरीं, उन्हीं से बिन्दुसर बन गया ।।३०।। गंगा मन में कह रही थीं कि मैं अपने प्रवाहवेग में शंकर को बहाती हुई सब कुछ तोड़ती-फोड़ती पाताल चली जाऊँगी। महादेव गङ्गा देवी के क्रूर कर्म और अभिप्राय को समझकर वेग से पृथ्वी पर गिरनेवाली गंगा को सिर पर रोक रखा। उस नदी के गर्व को समझकर महादेव क्रुद्ध हो गये और अपने सिर में छिपा लेना चाहा ।।३१-३३।। इस बीच महादेव ने राजा भगीरथ को सामने खड़ा देखा, जिसकी धमनी क्षीण हो चली थी और भूख से इन्द्रियाँ विकल हो रही थीं। गङ्गा के निमित्त राजा ने पहले ही महादेव को प्रसन्न कर लिया था; अतः उनके वरदान का ध्यानकर महादेव ने क्रोध को शान्त कर दिया। इसी बीच ब्रह्मा ने भी महादेव को प्रतिज्ञापालन के लिए स्मरण कराया। तब उन्होंने अपने तेज से निरुद्ध गङ्गा नदी को छोड़ दिया; क्योंकि कठोर तपस्या के द्वारा वे सन्तुष्ट होकर भगीरथ की भलाई करने के लिए कृतसंकल्प थे ।।३४-३६।। छूटने पर गंगा सात धाराओं में बहीं। उनमें तीन धाराएँ पूरब की ओर और तीन पश्चिम की ओर चलीं। इस प्रकार गङ्गा का स्रोत सात भागों में विभक्त हुआ। नलिनी, ह्लादिनी और पावनी नामक तीन धाराएँ पूरब की तरफ गयीं एवं सीता, चक्षु और सिन्धु नामक तीन धाराएँ पश्चिम को। सातवीं धारा भगीरथ के पीछे दक्षिण तरफ चली ।।३७-३९।। इसलिए उस धारा का नाम भागीरथी हुआ

तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम्। सप्तैता भावयन्तीह हिमाह्वं वर्षमेव तु ।।४०।।
प्रसूताः सप्त नद्यस्ताः शुभा विन्दुसरोद्भवाः। नानादेशान्भावयन्त्यो म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः ।।४१।।
उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः। सिरिन्ध्रान्कुन्तलांश्चीनान्बर्बरान्यवसान्द्रुहान् ।।४२।।
रुषाणांश्च कुणिन्दांश्च अङ्गलोकवराय ये। कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम् ।।४३।।
अथ चीनमरूंश्चैव तङ्गणान्सर्वमूलिकान्। सान्ध्रांस्तुषारांस्तम्पाकान्पह्लवान्दरदाञ्छकान् ।।
एताञ्जनपदाञ्चक्षुः प्लावयन्ती गतोदधिम् ।।४४।।
दरदांश्च सकाश्मीरान्गान्धारान्वरपान्ह्रदान् । शिवपौरानिन्द्रहासान्वदातींश्च विसर्जयान् ।।४५।।
सैन्धवान्रन्ध्रकरकान्भ्रमराभीररोहकान् । शुनामुखांश्चोर्ध्वमनून्सिद्धचारणसेवितान् ।।४६।।
गन्धर्वान्किन्नरान्यक्षान्रक्षोविद्याधरोरगान् । कलापग्रामकांश्चैव पारदान्सीगणान्खसान् ।।४७।।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून्सभरतानपि। पञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगन्धाङ्गास्तथैव च ।।४८।।
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च। एताञ्जनपदानार्यान्गङ्गा भावयते शुभान् ।।४९।।
ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्। ततश्चाऽऽह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ ।।५०।।
प्लावयन्त्युपभोगांश्च निषादानां च जातयः। धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि ।।५१।।
केरलानुष्ट्रकर्णांश्च किरातानपि चैव हि। कालोदरान्विवर्णांश्च कुमारान्स्वर्णभूषितान् ।।५२।।
सा मण्डले समुद्रस्य तिरोभूताऽनुपूर्वतः। ततस्तु मावनी चैव प्राचीमेव दिशं गता ।।५३।।

और वह लवण-सागर में प्रविष्ट हुई। ये सातों धाराएँ हिमवर्ष को प्लावित करती हैं ।।४०-४१।। ये सभी वहाँ जाती हैं, जहाँ मेघ बरसता रहता है, जैसे सिरिन्ध्र, कुन्तल, चीन, बर्बर, यवस, द्रुह, रुषाण, कुणिन्द और श्रेष्ठ अङ्गलोक। सिन्धु मरु को दो टुकड़ों में विभक्त कर सीता नदी पश्चिम समुद्र में गिरी है ।।४२-४३।। चीन मरु, तङ्गण, सर्वमूलिक, सान्ध्र, तुषार, तम्पाक, पह्लव, दरद और शक नामक जनपद को प्लावित करके चक्षु समुद्र में गिरी है ।।४४।। दरद, काश्मीर, गांधार, वरप, ह्रद, शिवपौर, इन्द्रहास, वदाति, विसर्जय, सैन्धव, रन्ध्रकरक, भ्रमर, आभीर, रोहक, शुनामुख, उर्ध्व, मनु, सिद्धचारणसेवित देश, गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-राक्षस-विद्याधर-उरग आदि के निवास देश, कलापग्राम, पारद, सीगण, खस, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पांचाल, काशि, मत्स्य, मगध, अंग, ब्रह्मोत्तर, वंग और ताम्रलिप्त आदि शुभ आर्य देशों को प्लावित करती है ।।४५-४९।। फिर वह विन्ध्य पर्वत से टकराकर दक्षिण सागर में प्रवेश करती है। वहाँ से वह पवित्र आह्लादिनी धारा पूरब की ओर बहती है ।।५०।। कितने ही देश और निषधों, धीवरों, ऋषिकों, नीलमुखों, केरलों, उष्ट्रकर्णों, किरातों, कालोदरों, विवर्णों और स्वर्णभूषित कुमारों को प्लावित करती हुई वह समुद्रमण्डल में पूर्व की ओर विलीन हो गयी है। पार्वती धारा भी पूरब दिशा को ही बही है ।।५१-५३।। यह अपथों को, इन्द्रद्युम्न

अपथान्प्लावयन्तीह इन्द्रद्युम्नसरोऽपि च । तथा खरापथांश्चैव इन्द्रशङ्कुपथानपि ।।५४।।
मध्येनोद्यानमकरान्कुथप्रावरणान्ययौ । इन्द्रद्वीपसमुद्रे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ।।५५।।
ततश्च नलिनी चागात्प्राचीमाशां जवेन तु । तोमरान्प्लावयन्तीह हंसमार्गान्सहूहुकान् ।।५६।।
पूर्वान्देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरीन् । कर्णप्रावरणांश्चैव प्राप्य चाश्वमुखानपि ।।५७।।
सिकतापर्वतमरून्गत्वा विद्याधरान्ययौ । नेमिमण्डलकोष्ठे तु प्रविष्टा सा महोदधिम् ।।५८।।
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः । उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ।।५९।।
वस्वोकसायास्तीरे तु वने सुरभिविश्रुते । हरिशृङ्गे तु वसति विद्वान्कौबेरको वशी ।।६०।।
यज्ञोपेतः स सुमहानमितौजाः सुविक्रमः । तत्राऽऽगस्त्यैः परिवृतो विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः ।।
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाः स्मृताः ।।६१।।
एवमेव तु विज्ञेया ऋद्धिः पर्वतवासिनाम् । परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।६२।।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सायनं नाम तत्सरः । मनस्विनी प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती च सा ।।६३।।
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ । सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे ।।६४।।
तस्माद्द्वयं प्रभवति गान्धर्वी नत्वली च या । मेरोः पश्चात्प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।।६५।।

सरोवर को, खरापथ को, इन्द्रशङ्कुपथ को और कुथप्रावरण प्रभृति स्थानों को प्लावित करती हुई इन्द्रद्वीप समुद्र के निकट लवण-सागर में प्रविष्ट हुई है। नलिनी भी पूरब की ओर वेग से बहती है। यह भी तोमर, हंसमार्ग, हूहुक और अन्यान्य पूर्वीय देशों को प्लावित करती हुई अनेकानेक पर्वतों को फोड़ती हुई, कर्णप्रावरण, अश्वमुख, सिकतापर्वत, मरु प्रभृति स्थानों में गमन करती हुई विद्याधर के देश में उपस्थित हुई है। यह नेमिमण्डल कोष्ठ के पास महासागर में प्रविष्ट हुई है ।।५४-५८।। इन नदियों की सैकड़ों-हजारों उपनदियाँ हैं। वे इनसे ही निकलकर फिर इनमें ही इस प्रकार मिलती हैं, जिस प्रकार मेघ समुद्र से जल लेकर बरसाता है और वह जल फिर समुद्र में ही मिल जाता है। वस्वोकसा के तीर पर प्रसिद्ध सुरभि वन में हरिशृङ्ग के ऊपर विद्वान् वशी कौबेरक रहते हैं ।।५९-६०।। वहाँ जितेन्द्रिय यज्ञोपेत, अमितौजा, सुमहान और सुविक्रम नामक कुबेर के चार अनुचर निवास करते हैं। ये अगस्त्य वंशीय विद्वान् ब्रह्मराक्षसों द्वारा सेवित और कुबेर के ही समान हैं ।।६१।। पर्वतवासियों की समृद्धि इसी प्रकार प्रसिद्ध है। वे धर्म, अर्थ और काम के सम्बन्ध में परस्पर द्विगुणित समृद्धि सम्पन्न हैं ।।६२।। हेमकूट के पीछे सायन नामक एक सरोवर है, जिससे मनस्विनी ज्योतिष्मती उत्पन्न हुई है। यह आगे-पीछे दोनों ही भागों से पूर्व-पश्चिम समुद्रों में प्रवेश करती है। पर्वतोत्तम निषध पर विष्णुपद नामक सरोवर है ।।६३-६४।। इससे गान्धर्वी और नत्वली नामक नदियाँ निकली हैं। मेरु के पीछे चन्द्रप्रभ नामक एक महान् ह्रद है। वहाँ पावनी जम्बू नदी बहती है, जिसमें शुभावह सुवर्ण होता है। नीलाचल पर शुभ्र पुण्डरीकयुक्त

तत्र जाम्बूनदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं शुभम्। पयोदं तु सरो नीले सुशुभ्रं पुण्डरीकवन् ।।६६।।
पुण्डरीका पयोदा च तस्मान्नद्यौ विनिर्गते। श्वेतात्प्रभवते पुण्यं सरस्तूत्तरमानसम् ।।६७।।
ज्योत्स्ना च मृगकान्ता च तस्माद्द्वे संबभूवतुः। मधुमत्सरः पुण्यं च पद्ममीनद्विजाकुलम् ।।६८।।
कल्पवृक्षसमाकीर्णं मधुवत्सर्वतः सुखम्। रुद्रकान्तमिति ख्यातं निर्मितं तद्भवेन तु ।।६९।।
अन्ये चाप्यत्र विख्याताः पद्ममीनद्विजाकुलाः। नाम्ना ह्रदा जया नाम द्वादशोदधिसंनिभा ।।७०।।
तेभ्यः शान्ती च माध्वी च द्वे नद्यौ संबभूवतुः। यानि किंपुरुषाद्यानि तेषु देवो न वर्षति ।।७१।।
उद्भिज्जान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः। ऋषभो दुन्दुभिश्चैव धूम्रश्चैव महागिरिः ।।७२।।
पूर्वायता महाभागा निम्नगा लवणाम्भसि। चन्द्रकङ्कस्तथा प्राणो महानग्निः शिलोच्चयः।।
उद्‌गयाता उदीच्यान्ता अवगाढा महोदधिम् ।।७३।।
सोमकश्च वराहश्च नारदश्च महीधरः। प्रतीचीमायतास्ते वै प्रविष्टा लवणोदधिम् ।।७४।।
वक्रो बलाहकश्चैव मैनाकश्चैव पर्वतः। आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति।।
*चन्द्रमैनाकयोर्मध्ये विदिशं दक्षिणं प्रति ।।७५।।
तत्र संवर्त्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्। नाम्ना समुद्रपः श्रीमानौर्वः स वडवामुखः ।।७६।।
द्वादशैते प्रविष्टा हि पर्वता लवणोदधिम्। महेन्द्रभयवित्रस्ताः पक्षच्छेदभयात्तदा।।
यदेतदृश्यते चन्द्रे श्वेते कृष्णशशाकृति ।।७७।।

पयोद नाम का सरोवर है। उसी से पुण्डरीका और पयोदा नाम की नदियाँ निकली हैं। श्वेत पर्वत से उत्तर मानस नामक पुण्य सरोवर उत्पन्न हुआ है ।।६५-६७।। ज्योत्स्ना और मृगकान्ता नामक नदियाँ उससे निकली हैं। शिव द्वारा निर्मित रुद्रकान्त नामक वहाँ एक और सरोवर है, जो मधुरस से परिपूर्ण, पद्ममीन-पक्षियों से युक्त, कल्पवृक्षों से व्याप्त, सुखसम्पन्न और पवित्र है। और भी पद्ममीन-पक्षियों से युक्त यहाँ कितने ही ह्रद हैं। वे सब जय कहलाते हैं और मालूम पड़ते हैं जैसे बारह समुद्र हों ।।६८-७०।। उनसे शान्ती और माध्वी नामक दो नदियाँ निकली हैं। किंपुरुषादि देशों में वृष्टि नहीं होती है ।।७१।। वहाँ की श्रेष्ठ नदियाँ उद्भिज्ज जल राशि को बहाया करती हैं। ये भाग्यशालिनी नदियाँ पूरब की तरफ लम्बी होकर लवण-सागर में गिरी हैं। ऋषभ, दुन्दुभि, महागिरि धूम्र, चन्द्रकंक तथा प्राणादि शिलोच्चयों के उत्तर बहती हुई ये नदियाँ उत्तरी सीमा तक जाकर महासमुद्र में गिरी हैं ।।७२-७३।। सोमक, वराह और नारद नामक महीधर पश्चिम की ओर लम्बायमान होते हुए लवणसागर में मिल गये हैं ।।७४।। बक, बलाहक और मैनाक पर्वत दक्षिण दिशा में लम्बायमान होकर दक्षिण सागर में मिल गये हैं, दक्षिण दिशा में चन्द्र और मैनाक पर्वत के बीच संवर्तक नामक एक अग्नि है, जो समुद्रजल को पिया करते हैं। इस अग्नि का नामान्तर समुद्रप, वड़वामुख और श्रीमान और्व है ।।७५-७६।। ये बारह पर्वत इस भय से कि कहीं इन्द्र उनके पक्ष न काट डालें लवणोदधि में प्रविष्ट हैं। श्वेत चन्द्र में यह जो काला शशांक देखा जाता है ।।७७।। वह नवधा भिन्न भारतवर्ष का ही प्रतिबिम्ब है। इस देश में ही उदित

---

* इदं नास्ति घ. पुस्तके

भारतस्य तु वर्षस्य भेदास्ते नव कीर्तिताः। इहोदितस्य दृश्यन्ते तथाऽन्येऽन्यत्र नोदिते ।।७८।।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्दिश्य ते गुणैः। आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।७९।।
समन्वितानि भूतानि गुणैरेतैस्तु भागतः। वसन्ति नानाजातीनि तेषु वर्षेषु तानि वै ।।
इत्येषाऽधारयत्सर्वं पृथ्वी विश्वं जगत्स्थितौ ।।८०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

दक्षिणेनापि वर्षस्य भारतस्य निबोधत। दशयोजनसाहस्रं समतीत्य महार्णवम् ।।१।।
त्रीण्येव तु सहस्राणि योजनानां समायतम्। अतस्त्रिभागविस्तीर्णं नानापुष्पफलोदयम् ।।२।।
विद्युत्वन्तं महाशैलं तत्रैकं कुलपर्वतम्। येन कूटतटैर्नैकैस्तद्द्वीपं समलंकृतम् ।।३।।
प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यः सहस्रशः। वाप्यस्तस्य तु द्वीपस्य प्रवृत्ता विमलोदकाः ।।४।।

चन्द्र के मध्य यह देखा जाता है, दूसरी जगह नहीं ।।७८।। उत्तरोत्तर क्रम से इन देशवासियों के प्राणी आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ और काम आदि गुणों में उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व देशस्थ लोगों की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं। नाना जातियों के प्राणिसमूह उल्लिखित देशों में निवास करते हैं। इसी प्रकार यह पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को अपने वक्षःस्थल पर लोकस्थिति के लिए धारण करती है ।।७९-८०।।

श्री वायुमहापुराण में भुवनविन्यास नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४७।।

अध्याय ४८

भुवनविन्यास

सूत जी बोले-भारतवर्ष के दक्षिण दस हजार योजन का एक महासागर है जिसमें तीन हजार योजन विस्तीर्ण तीन भागों में विभक्त एक द्वीप है जो नाना भाँति के फल-पुष्पों से समृद्ध है ।।१-२।। वहाँ विद्युत्वान् नामक एक महाशैल कुलपर्वत है, जिसके अनेक शिखरों से वह द्वीप सुशोभित है, वहाँ हजारों नदियाँ हैं, जिनका जल निर्मल और सुस्वादु है। उस द्वीप की वापियों का जल भी निर्मल है ।।३-४।। उस पर्वत के अनेकों विस्तीर्ण और चौड़े दर्रों में विभिन्न वर्ण और

तस्य शैलस्य च्छिद्रेषु विस्तीर्णेष्वायतेषु च । अनेकेषु समृद्धानि नानाकाराणि सर्वशः ।।५।।
नरनारीसमाढ्यानि मुदितानि महान्ति च । तेषां तलप्रवेशानि सहस्राणि शतानि च ।।६।।
पुराणि संनिविष्टानि पर्वतान्तर्गतानि च । सुसंबद्धानि चान्योन्यमेकद्वाराणितान्यथ ।।७।।
दीर्घश्मश्रुधरात्मानो नीलमेघसमप्रभाः । जातमात्राः प्रजास्तत्र अशीतिपरमायुषः ।।८।।
शाखामृगसधर्माणः फलमूलाशिनस्तथा । गोधर्माणो ह्यनिर्दिष्टाः शौचाचारविवर्जिताः ।।९।।
तद्द्वीपं तादृशैः पूर्णं मनुजैः क्षुद्रमानुषैः । एवमेतेऽन्तरद्वीपा व्याख्याता अनुपूर्वशः ।।१०।।
विंशत्त्रिंशच्च पञ्चाशत्षष्ट्यशीतिः शतं तथा । सहस्रमपि चाप्युक्तं योजनानां समन्ततः ।।११।।
विस्तीर्णाश्चाऽऽयताश्चैव नानासत्त्वसमाकुलाः । बर्हिणद्वीपपर्वाणि क्षुद्रद्वीपाः सहस्रशः ।।१२।।
जम्बूद्वीपप्रदेशास्तु षडन्ये विविधाश्रयाः । अत्र द्वीपाः समाख्याता नानारत्नाकराः क्षितौ ।।१३।।
अङ्गद्वीपं यमद्वीपं मलयद्वीपमेव च । *शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च ।।१४।।
अङ्गद्वीपं निबोध त्वं नानासंघसमाकुलम् । नानाम्लेच्छगणाकीर्णं तद्द्वीपं बहुविस्तरम् ।।१५।।
हेमविद्रुमपूर्णानां रत्नानामाकरं क्षितौ । नदीशैलवनैश्चित्रं संनिभं लवणाम्भसा ।।१६।।
तत्र चक्रगिरिर्नाम नैकर्निर्झरकन्दरः । तत्र सा तु दरी चास्य नानासत्त्वसमाश्रया ।।१७।।

आकृति के अनेकों प्रसन्नहृदय स्त्री–पुरुष रहा करते हैं। उस पर्वत के बीच तलदेश में उनके सैकड़ों–हजारों पुर हैं, जो परस्पर एक में एक मिले और एक ही द्वारवाले हैं ।।५–७।। वहाँ वाले बड़ी–बड़ी दाढ़ी और मूँछ रखते हैं तथा मेघ के समान नीलवर्ण के होते हैं। और सभी अस्सी वर्ष की आयुवाले होते हैं। वानरों की तरह फल–मूल खाकर जीवन यापन करते हैं और पशुओं की तरह शौच आदि आचार–विचार से विहीन हैं ।।८–९।। इसी प्रकार के असभ्य मनुष्यों से वह द्वीप परिपूर्ण है। इसी प्रकार इन अन्तर द्वीपों के विषय में यथाक्रम वर्णन किया गया है। ये बीस, तीस, पचास, साठ, अस्सी, सौ और हजार योजन लम्बे–चौड़े अन्तर द्वीप हैं। वहाँ भाँति–भाँति के प्राणी निवास करते हैं। जम्बू द्वीप में विविध वस्तुओं को धारण करनेवाले और भी छह द्वीप, बर्हिण द्वीप–पुञ्ज तथा हजारों क्षुद्र द्वीप भी हैं ।।१०–१२।। यहाँ के द्वीप पृथ्वीतल में विविध रत्नों को धारण करने के कारण विख्यात हैं। कुछ द्वीपों के नाम हैं–अंग, यम, मलय, शङ्ख, कुश और वराह ।।१३–१४।। अङ्गद्वीप नाना प्राणी संघ से व्याप्त, विभिन्न म्लेच्छों से युक्त और अत्यन्त विस्तृत है। वहाँ पृथ्वीतल में सुवर्ण, विद्रुम आदि रत्नों की खानें हैं। वह नदी, पर्वत, वनों से सुशोभित एवं लवण–सागर की तरह है जहाँ चक्रगिरि नामक पर्वत की गुफा में नाना प्रकार के जीव निवास करते हैं ।।१५–१७।। नाग देश के मध्य में वह महागिरि अनेक प्रदेशों में फैला है। उसके कटि देश में अनेकों पर्वत हैं जो समुद्र तक फैले हुए हैं। यमद्वीप के नाम से जो द्वीप कहा

---

* इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

स मध्ये नागदेशस्य नैकदेशो महागिरिः। कोटिभ्यां नागनिलयं प्राप्तो नदनदीपतिम् ।।१८।।
यमद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकराचितम्। (+तत्रापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः ।।
समुद्रगानां (णां) प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु ।।१९।।
तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम्)। मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च ।।२०।।
आकरं चन्दनानां च समुद्राणां तथाऽऽकरम्। नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितम् ।।२१।।
तत्र श्रीमांस्तु मलयः पर्वतो रजताकरः। महामलय इत्येवं विख्यातो वरपर्वतः ।।२२।।
द्वितीयं मन्दरं नाम प्रथितं च सदा क्षितौ। *नानापुष्पफलोपेतं रम्यं देवर्षिसेवितम् ।।
अगस्त्यभवनं तत्र देवासुरनमस्कृतम् ।।२३।।
तथा काञ्चनपादस्य मलयस्यापरस्य हि। निकुञ्जैस्तृणसोमाङ्गैराश्रमं पुण्यसेवितम् ।।२४।।
नानापुष्पफलोपेतं स्वर्गादपि विशिष्यते। तत्रावतरते स्वर्गः सदा पर्वसु पर्वसु ।।२५।।
तथा त्रिकूटनिलये नानाधातुविभूषिते। अनेकयोजनोत्सेधे चित्रसानुदरीगृहे ।।२६।।
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा। निर्यूहवलभी चित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी ।।२७।।

गया है, वह भी नाना रत्नों की खानों से पूर्ण है, वहाँ धातुओं से मण्डित द्युतिमान् नाम का एक पर्वत है। इसी पर्वत से वहाँ की नद-नदियाँ निकलती हैं और सुवर्ण भी इसी से उत्पन्न होता है ।।१८-१९।। इसी प्रकार मलय द्वीप भी है। वहाँ मणि, रत्न और सुवर्ण की खानें हैं। चन्दन के वृक्ष भी अधिकाधिक होते हैं और समुद्र भी वहाँ अनेकों हैं। उस द्वीप में विभिन्न प्रकार के म्लेच्छ रहते हैं और नदी-पर्वत से वह द्वीप भरा हुआ है। वहाँ मलय नामक एक शोभासम्पन्न पर्वत है, जिसमें चाँदी की खानें हैं। महामलय नाम का भी एक विख्यात और श्रेष्ठ पर्वत है ।।२०-२२।। दूसरा मन्दर नाम का एक पर्वत है, जो इस पृथ्वीतल पर विख्यात है। यह रमणीय पर्वत अनेक फल-पुष्पों से युक्त है, जहाँ देवर्षि निवास करते हैं। यहाँ अगस्त्य ऋषि का भवन है, जिसकी वन्दना देंवता और असुर दोनों ही किया करते हैं ।।२३।। मलय की तरह वहाँ एक और कांचनपाद नाम का पर्वत है, जहाँ महात्माओं के अनेक आश्रम हैं जो निकुंज, तृण और सोमलता से बने हुए हैं ।।२४।। वह पर्वत नानाविध फलपुष्पों से युक्त और स्वर्ग से भी बढ़ा-चढ़ा है। वहाँ प्रत्येक पर्वत पर मानो स्वर्ग सदा उतरा करता है। इसके अनन्तर वहाँ नाना धातुओं से विभूषित त्रिकूट पर्वत है, जिसके शिखर अनेक योजन ऊँचे हैं जिनमें गृह तुल्य अनेक विचित्र कन्दराएँ हैं। इस त्रिकूट के रमणीय शिखर पर सुवर्णमय परकोटे, तोरणों से सजाये गये द्वारों, वलभियों, कोठों और अटारियों से सुशोभित

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

* इदमर्धं नास्ति क. ख. ग. पुस्तकेषु।

शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशदायामयोजना। नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी ।।२८।।
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम्। आवासो बलदृप्तानां तद्विद्यादेवविद्विषाम् ।।
मानुषाणामसंबाधा ह्यगम्या सा महापुरी ।।२९।।
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदीपतेः। गोकर्णनामधेयस्य शंकरस्याऽऽलयं महत् ।।३०।।
तथैकराज्यं विज्ञेयं शङ्खद्वीपसमास्थितम्। शतयोजनविस्तीर्णं नानाम्लेच्छगणालयम् ।।३१।।
तत्र शङ्खगिरिर्नाम धौतशङ्खदलप्रभः। नानारत्नाकरः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः ।।३२।।
शङ्खनागा महापुण्या यस्मात्प्रभवते नदी। यत्र शङ्खमुखो नाम नागराजः कृतालयः ।।३३।।
तथैव कुमुदद्वीपं नानापुष्पोपशोभितम्। नानाग्रामसमाकीर्णं नानारत्नाकरं शिवम् ।।३४।।
कुमुदा नाम महाभागा दुष्टचित्तनिबर्हणी। महादेवस्य भगिनी प्रभाभिस्ताभिरिज्यते ।।३५।।
तथा वराहद्वीपे च नानाम्लेच्छगणाकुले। नानाजातिसमाकीर्णे नानाधिष्ठानपत्तने ।।३६।।
धनधान्ययुते स्फीते धर्मिष्ठजनसंकुले। नदीशैलवनैश्चित्रैर्बहुपुष्पफलोपमैः ।।३७।।
वराहपर्वतो नाम तत्र रम्यः शिलोच्चयः। अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरशोभितः ।।३८।।
तस्मात्सुरसपानीया पुण्यतीर्थतरङ्गिणी। वाराही नाम वरदा प्रवृत्ता स्म महानदी ।।३९।।

सौ योजन लम्बी तथा तीस योजन चौड़ी लंका नामक महापुरी है ।।२५-२८।। यह पुरी धन-धान्य से समृद्ध और प्रसन्न नर-नारियों से स्वयं हँसती-सी जान पड़ती है। यह लंका इच्छानुरूप स्वरूप धारण करनेवाले देवशत्रु बलशाली महात्मा राक्षसों का निवास-स्थान है। यहाँ कोई राक्षसों को बाधा नहीं पहुँचा सकता। मनुष्य लोग इस महापुरी में किसी भी प्रकार नहीं जा सकते हैं। उस द्वीप के पूर्वी समुद्रतट पर गोकर्ण महादेव का विशाल मन्दिर है ।।२९-३०।। इसके बाद शङ्खद्वीप में सौ योजन विस्तीर्ण एक विशाल राज्य है जहाँ बहुतेरे म्लेच्छों का निवास-स्थान है। वहाँ निर्मल धुले शङ्ख की तरह उज्ज्वल एक शङ्खगिरि नामक पवित्र पर्वत है। उस पर विविध रत्नों की खानें हैं जिस पर पुण्यशाली जन निवास करते हैं ।।३१-३२।। उसी पर्वत से शङ्खनागा नाम की एक पवित्र नदी निकली है। जहाँ शङ्खमुख नामक नागराज निवास करते हैं। कुमुदद्वीप में तरह-तरह के फूल खिले रहते हैं। अनेकानेक ग्राम और रत्नों की अनेकों खाने हैं। वहाँ महादेव की महाभागा कुमुदा नाम की भगिनी हैं जो अपनी ज्योति के कारण सर्वपूजित हैं। जिनके दर्शन से चित्त-दोष दूर हो जाते हैं ।।३३-३५।। वराह द्वीप में नाना प्रकार के म्लेच्छ लोग और कितनी ही जाति के लोग शहर-गाँवों में घर बनाकर बसे हुए हैं। वह द्वीप धन-धान्यों से समृद्ध और धार्मिक जनों से व्याप्त है। वहाँ नदी, पर्वत, वनों में रमणीय और फल-पुष्पों से युक्त मनोहर शिलावाला एक वाराह नाम का पर्वत है, जिसमें अनेक कन्दरा, दरी, गुहा और झरने हैं ।।३६-३८।। उसमें निर्मल जलवाली वाराही नाम की, पवित्र तीर्थ स्वरूप

वाराहरूपिणे तत्र विष्णवे प्रभविष्णवे। अनन्यदेवतास्तस्मै नमस्कुर्वन्ति वै प्रजाः ।।४०।।
एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः। भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ।।४१।।
एवमेकमिदं वर्षं बहुद्वीपमिहोच्यते। समुद्रजलसंभिन्नं खण्डं खण्डीकृतं स्मृतम् ।।४२।।
एवं चतुर्महाद्वीपः सान्तरद्वीपमण्डितः। सानुद्वीपः समाख्यातो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः ।।४३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनविन्यासः

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपं प्रवक्ष्यामि यथावदिह संग्रहात्। शृणुतेमं यथातत्त्वं ब्रुवतो मे द्विजोत्तमाः ।।१।।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारादि्द्वगुणस्तस्य विस्तरः। विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः ।।
तेनाऽऽवृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदकाः ।।२।।

तरङ्ग धारण करनेवाली नदी निकली है। वाराह रूपधारी विष्णु को ही वहाँ की प्रजा नमस्कार करती है और किसी भी देव को नहीं ।।३९-४०।। इस प्रकार मैंने चारों दिशाओं में वर्तमान छह अनुद्वीपों का वर्णन किया। भारतद्वीप दक्षिण दिशा में अति विस्तीर्ण द्वीप है। इस एक ही भारतवर्ष में कितने ही द्वीप हैं, जो समुद्र से पृथक् होकर कितने ही भागों में विभक्त हो गये हैं। इस प्रकार अन्तर द्वीप से सुशोभित चार महाद्वीप हैं। अनुद्वीपों के साथ जम्बूद्वीप का वर्णन मैंने पहले ही कर दिया है ।।४१-४३।।

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४८।।

अध्याय ४९

भुवनविन्यास

सूत जी बोले–ब्राह्मणो! अब मैं अपने ज्ञान के अनुसार प्लक्ष द्वीप का उसी के अनुरूप रहस्यमय वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनें ।।१।। जम्बू द्वीप से प्लक्ष द्वीप का विस्तार दुगुना है और उसकी अपेक्षा इसकी सीमा की लम्बाई तिगुनी अधिक है। लवण सागर को यह द्वीप चारों ओर से घेरे हुए है ।।२।। यहाँ के निवासी अत्यन्त पवित्र और

तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते प्रजा। कुत एव हि दुर्भिक्ष्यं जराव्याधिभयं कुतः ।।३।।
तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषणाः। रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानि वक्ष्यते (च्म्यहम्) ।।४।।
प्लक्षद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्तसु सप्तसु। ऋज्वायताः परिदिशं निविष्टाः पर्वताः सदा ।।५।।
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्तद्वीपान्महाचलान्। गोमेदकोऽत्र प्रथमः पर्वतो मेघसंनिभः।।
ख्यायते तस्य नाम्ना वै वर्षं गोमेदकं तु तत् ।।६।।
द्वितीयः पर्वतश्चन्द्रः सर्वोषधिसमन्वितः। अश्विभ्याममृतस्यार्थे ओषध्यस्तत्र संस्थिताः ।।७।।
तृतीयो नारदो नाम दुर्गशैलो महोच्छ्रयः। तत्राचले समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ।।८।।
चतुर्थस्तत्र वै शैलो दुन्दुभिर्नाम नामतः। शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन्दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः।।
रज्जुदारो रज्जुमयः शाल्मलश्चासुरान्तकृत् ।।९।।
पञ्चमः सोमको नाम देवैर्यत्रामृतं पुरा। संभृतं संहृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ।।१०।।
षष्ठस्तु सुमना नाम स एवर्षभ उच्यते। हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्छैले निषूदितः ।।११।।
वैभ्राजः सप्तमस्तत्र भ्राजिष्णुः स्फाटिको महान्। यस्माद्विभ्राजतेऽर्चिभिर्वैभ्राजस्तेन स स्मृतः ।।१२।।
तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि नामतस्तु यथाक्रमम्। गोमेदं प्रथमं वर्षं नाम्ना शान्तमयं स्मृतम् ।।१३।।

दीर्घायु होते हैं। न वहाँ दुर्भिक्ष होता है और न किसी को बुढ़ापा या रोग सताता है। वहाँ मणियों से भूषित शुभ्र वर्ण के सात पर्वत और रत्नों को उत्पन्न करनेवाली नदियाँ हैं। इनके नामों को भी कह रहा हूँ, सुनिये ।।३-४।। इन प्लक्षादि सात द्वीपों में सीधे-सीधे और बड़े-बड़े सात पर्वत चारों ओर वर्तमान हैं। पहले हम प्लक्ष द्वीप के सातों महाचलों को कहेंगे। यह मेघ के तुल्य पहला गोमेदक नाम का पर्वत है। उसी के नाम पर वह देश गोमेदक कहलाता है ।।५-६।। दूसरे पर्वत का नाम है चन्द्र। इस पर सब ओषधियाँ मिलती हैं। अमृत के लिए सब ओषधियाँ यहाँ अश्विनी कुमारों के द्वारा स्थापित हुई हैं। तीसरे पर्वत का नाम नारद है। यह ऊँचा पर्वत दुर्गशैल नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी पहाड़ पर पूर्व काल में नारद और पर्वत ऋषि उत्पन्न हुए थे। चौथे पर्वत का नाम है दुन्दुभि। इसी पर्वत पर पहले देवों ने वह नगाड़ा बजाया था, जिसकी ध्वनि सुनते ही जीव मर जाते थे। रज्जुदार और शाल्मल आदि असुर यहीं मारे गये हैं ।।७-९।। पाँचवाँ सोमक नामक पर्वत है, जिस पर प्राचीन काल में देवों ने अमृत रखा था और गरुड़ ने उसे अपनी माता के लिए हर लिया था। छठे पर्वत का नाम सुमना या ऋषभ है। यहीं वराह भगवान् ने हिरण्याक्ष को मारा था। सातवें पर्वत का नाम है वैभ्राज। यह महा पर्वत दीप्तिमान् और स्फटिकमय है। अपनी प्रभा से ही भासमान होने के कारण इसका नाम वैभ्राज पड़ा ।।१०-१२।। वहाँ के देशों को भी हम यथाक्रम कहते हैं। प्रथम गोमेद पर्वत का प्रदेश शान्तमय कहा गया है ।।१३।। चन्द्र का शिखर, नारद का सुखोदय, दुन्दुभि का आनन्द,

चन्द्रस्य शिखरं नाम नारदस्य सुखोदयम्। आमन्दं दुन्दुभेर्वर्षं सोमकस्य शिवं स्मृतम्।।
क्षेमकमृषभस्यापि वैभ्राजस्य ध्रुवं तथा ।।१४।।
एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः। विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु तैः सह ।।१५।।
तेषां नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः। नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि सप्त गङ्गा महानदीः ।।१६।।
(*अनुतप्ता सुतप्तैव निष्पापा मुदिता क्रतुः। अमृता सुकृता चैव सप्तैताः सरितां वराः) ।।१७।।
अभिगच्छन्ति ता नद्यस्ताभ्यश्चान्याः सहस्रशः। बहूदकाश्चौघवत्यो यतो वर्षति वासवः ।।१८।।
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते। शुभाः शान्तवहाश्चैव प्रमोदा ये च ते शिवाः ।।१९।।
आनन्दाश्च ध्रुवाश्चैव क्षेमकाश्च शिवैः सह। वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्रजास्तेष्वथ सर्वशः ।।२०।।
सर्वेष्वरोगाः सुबलाः प्रजास्त्वामयवर्जिताः। अधःसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी न च ।।२१।।
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित्। त्रेतायुगसमः कालः सर्वदा तत्र वर्तते ।।२२।।
प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः पञ्चस्वेतेषु सर्वशः। देशस्यानुविधानेन कालस्यानुविधाः स्मृताः ।।२३।।
पञ्च वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः। सुरूपाश्च सुवेषाश्च अरोगा बलिनस्तथा ।।२४।।
सुखमायुर्बलं रूपमारोग्यं धर्म एव च। प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयं शाकद्वीपान्तकेषु च ।।२५।।
प्लक्षद्वीपः पृथुः श्रीमान्सर्वतो धनधान्यवान्। दिव्योषधिफलोपेतः सर्वोषधिवनस्पतिः ।।२६।।

सोम का शिव, ऋषभ का क्षेमक और वैभ्राज का प्रदेश धुव्र कहा गया ।।१४।। इन स्थानों में देव, गन्धर्व, सिद्ध और चारणगण रमण करते हुए और विहरते हुए देखे जाते हैं। इन सातों देशों में समुद्रगामिनी सात नदियाँ हैं। इन महानदियों को सप्त गंगा कहते हैं ।।१५–१६।। इनके नाम हैं–अनुतप्ता, सुतप्ता, निष्पापा, मुदिता, क्रतु, अमृता और सुकृता। ये सातों द्वीप सब नदियों में श्रेष्ठ हैं। इनमें हजारों नदियाँ निकलकर बहती रहती है। ये नदियाँ विपुल जलवाली और वेगवती हैं इसलिए कि देवराज यहीं अधिक वृष्टि किया करते हैं। वहाँ के निवासी उन्हीं नदियों के जल को पीकर प्रसन्न रहते हैं ।।१७–१८$\frac{१}{२}$।। शुभ, शान्तवहा, प्रमोदा, शिवा, आनन्दा, ध्रुवा और क्षेमका यथाक्रम से उन देशों की नदियाँ हैं। यहाँ की प्रजा वर्णाश्रम धर्म से युक्त, नीरोग, बलिष्ठ और आधिव्याधि से रहित है। उनके विचार न अत्युच्च हैं और न अति नीच। प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में सदा त्रेता युग के समान काल व्यतीत होता है ।।१९–२२।। वहाँ सत्ययुग आदि चारों युग नहीं होते हैं। देशाचार औंर काल–माहात्म्य से वहाँ के निवासी पाँच हजार वर्ष जीवित रहते हैं। वहाँ वाले सुरूप, सुवेष, नीरोग और बली होते हैं। प्लक्ष आदि द्वीपो की ही भाँति शाक द्वीप में भी सुख, आयु, बल, रूप आदि सभी गुण–धर्म हैं ।।२३–२५।। श्रीसम्पन्न प्लक्ष द्वीप, कीर्तिमान् और धन–धान्य से सभी प्रकार पूर्ण है। ब्राह्मणो! प्लक्ष द्वीप दिव्योषधि और फलों से युक्त तथा सर्वोषधि वनस्पतियों से पूर्ण है। हजारों ग्राम्य और

---

*धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्रामा(म्या)रण्यैः सहस्रशः । जम्बूवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये द्विजोत्तमाः ।।
प्लक्षो नाम महावृक्षस्तस्य नाम्ना स उच्यते ।।२७।।
स तत्र पूज्यते स्थाणुर्मध्ये जनपदस्य हि । स चापीक्षुरसोद्देशः प्लक्षद्वीपसमावृतः ।।२८।।
प्लक्षद्वीपस्य चैवेह वैपुल्याद्विस्तरेण तु । इत्येष संनिवेशो वः प्लक्षद्वीपस्य कीर्तितः ।।
आनुपूर्व्या समासेन शाल्मलं तं निबोधत ।।२९।।
ततस्तृतीयं द्वीपानां शाल्मलं द्वीपमुत्तमम् । शाल्मलेन समुद्रस्तु द्वीपेनेक्षुरसोदिकः ।।
प्लक्षद्वीपस्य विस्ताराद्विगुणेन समावृतः ।।३०।।
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः । रत्नाकरास्था नद्यस्तेषु वर्षेषु सप्तसु ।।३१।।
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः । सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमुद्गतैः ।।३२।।
द्वितीयः पर्वतस्तस्य उन्नतो नाम विश्रुतः । हरितालमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ।।३३।।
तृतीयः पर्वतस्तस्य बलाहक इति श्रुतः । जात्यञ्जनमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ।।३४।।
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः । विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा ।।३५।।
कङ्कस्तु पञ्चमस्तत्र पर्वतः सुमहोदयः । दिव्यपुष्पफलोपेतो वृक्षवीरुत्समावृतः ।।३६।।
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसन्निभः । यस्मिन्सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम वारिजः ।।३७।।

जंगली पशु वहाँ पाये जाते हैं। जम्बू वृक्ष की ही तरह उस देश के भी मध्य में प्लक्ष नामक एक महावृक्ष है। उसी के नाम से वह प्लक्ष द्वीप कहलाता है ।।२६-२७।। उस देश के पूज्य देवता हैं स्थाणु। वह प्लक्ष द्वीप ईख-रस के सागर से घिरा हुआ है। ब्राह्मणो! आप लोगों के निकट हमने प्लक्ष द्वीप की विपुलता और देश विभाग को विस्तार के साथ कह दिया। अब शाल्मल द्वीप का वर्णन संक्षेप में सुनिये ।।२८-२९।। द्वीपों में उत्तम तीसरा शाल्मल द्वीप है। ईख-रस के सागर को यह शाल्मल द्वीप घेरे हुए है। प्लक्ष द्वीप से यह दुगुना अधिक बड़ा है ।।३०।। यहाँ भी रत्नों को उत्पन्न करनेवाले सात पर्वत हैं और उन सातों वर्ष पर्वतों से रत्न को उत्पन्न करनेवाली सात नदियाँ निकली हैं। पहला सूर्य की तरह तेजोमय कुमुद पर्वत है। इसके अनेक धातुमय शिखरों से अनेकानेक शिलामालाएँ उत्पन्न हुई हैं ।।३१-३२।। दूसरा पर्वत उन्नत नाम से विख्यात है। इसके आकाश छूनेवाले शिखर हरिताल के हैं। तीसरे पर्वत का नाम बलाहक है। यह अपने अञ्जनतुल्य शिखरों से आकाश को छू रहा है ।।३३-३४।। चौथे पर्वत का नाम द्रोण है। इस पर विशल्यकरणी और मृत संजीवनी आदि बलदायिनी ओषधियाँ हैं। पाँचवें पर्वत का नाम कंक है। यह दिव्य फल-पुष्पवाले वृक्षों और लताओं से घिरा हुआ है ।।३५-३६।। छठा मेघ की तरह महिष नाम का पर्वत है। इस पर जल से उत्पन्न महिष नामक अग्नि निवास करते हैं। सातवें ककुद्मान नामक रत्नमय पर्वत पर वासव उस

सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मन्नाम भाष्यते । तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं वर्षति वासवः ।।
प्रजापतिमुपादाय प्राजापत्ये विधिः स्वयम् ।।३८।।
इत्येते पर्वताः सप्त शाल्मले मणिभूषिताः । तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु शुभानि वै ।।
कुमुदात्प्रथमं श्वेतमुन्नतस्य तु लोहितम् ।।३९।।
बलाहकस्य जीमूतं द्रोणस्य हरितं स्मृतम् । कङ्कस्य वैद्युतं नाम महिषस्य तु मानसम् ।।४०।।
ककुदः सुप्रभं नाम सप्तैतानि तु सप्तधा । वर्षाणि पर्वतश्चैव नदीस्तेषु निबोधत ।।४१।।
पानीतोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्रा विमोचनी । निवृत्तिः सप्तमी तासां प्रतिवर्षं तु ताः स्मृताः ।।४२।।
तासां समीपगाश्चान्याः शतशोऽथ सहस्रशः । अशक्याः परिसंख्यातुं श्रद्धेयास्तु बुभूषता ।।४३।।
इत्येष संनिवेशो वः शाल्मलस्यापि कीर्तितः । प्लक्षवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ।।४४।।
शाल्मलिर्विपुलस्कन्धस्तस्य नाम्ना स मुच्यते । शाल्मलिस्तु समुद्रेण सुरोदेन समन्ततः ।।
विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः ।।४५।।
उत्तरेषु तु धर्मज्ञा द्वीपेषु शृणुत प्रजाः । यथाश्रुतं यथान्यायं ब्रुवतो मे निबोधत ।।४६।।
कुशद्वीपं प्रवक्ष्यामि चतुर्थं तं समासतः । सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः ।।४७।।
सप्तैव गिरयस्तत्र वर्ण्यमानान्निबोधत । शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ।।४८।।

समय स्वयं वर्षा करते हैं जब कि प्रजापति पहले-पहल प्रजा उत्पन्न करना चाहते हैं ।।३७-३८।। शाल्मल द्वीप में ये ही सात मणिभूषित पर्वत हैं। यहाँ के सातों शुभ देशों को भी अब बता रहे हैं। कुमुद का देश श्वेत, उन्नत का लोहित ।।३९।। बलाहक का जीमूत; द्रोण का हरित, कंक का वैद्युत, महिष का मानस और ककुद का सुप्रभ देश है। ये सातों सात भागों में विभक्त हैं। इतने ही देश और पर्वत हैं। अब नदियों का नाम सुनिये। पानीतोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति, ये ही सात नदियाँ उन देशों की हैं ।।४०-४२।। श्रद्धेय ब्राह्मणो! उन नदियों के समीप में बहनेवाली और भी सैकड़ों नदियाँ हैं। उनकी गणना नहीं की जा सकती है। इस प्रकार शाल्मल द्वीप की स्थिति के विषय में आप लोगों को कह दिया। प्लक्ष वृक्ष की ही तरह यहाँ भी बीच में सेमल (शाल्मलि) का एक वृक्ष है, जिसका तना खूब मोटा है। इसी के नाम से यह देश शाल्मल द्वीप कहलाता है। यह द्वीप सुरासागर से चारों ओर घिरा हुआ है और विस्तार में भी चारों ओर से शाल्मलि के ही अनुरूप है।।४३-४५।। धर्मज्ञ ब्राह्मणो! इससे उत्तर द्वीप में प्रजागण जिस प्रकार निवास करते हैं, उसको जैसा हमने सुना है, वैसा ही कहते हैं, सुनिये। चौथे कुश द्वीप का वर्णन हम संक्षेप में कहते हैं। यह कुशद्वीप चारों ओर से सुरासागर को घेरे हुए है। यहाँ भी सात पर्वत हैं। उनका वर्णन सुनिये ।।४६-४७$\frac{१}{२}$।। शाल्मल द्वीप से यह दूना बड़ा है। कुशद्वीप का पहला पर्वत विद्रुमोच्चय है दूसरा हेम पर्वत, तीसरा मेघसदृश द्युतिमान् गिरि, चौथा पुष्पवान्, पाँचवाँ कुशेशय; छठा हरिगिरि

कुशद्वीपे तु विज्ञेयः पर्वतो विद्रुमोच्चयः। द्वीपस्य प्रथमस्तस्य द्वितीयो हेमपर्वतः ।।४९।।
तृतीयो द्युतिमान्नाम जीमूतसदृशो गिरिः। चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।।५०।।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम सप्तमो मन्दरः स्मृतः। मन्दा इति ह्यपां नाम मन्दरो दारणापहाम् ।।५१।।
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः परिवारितः। उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ।।५२।।
तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम्। पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ।।
सप्तमं कपिलं नाम सप्तैते वर्षपर्वताः ।।५३।।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रभासु जगदीश्वराः। विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु वर्षशः ।।५४।।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्यस्तथैव च। गौरप्रायो जनः सर्वः क्रमाच्च म्रियते तथा ।।५५।।
तत्रापि नद्यः सप्तैव धुतपापाः शिवास्तथा। पवित्रा संततिश्चैव द्युतिगर्भा मही तथा ।।५६।।
अन्यास्ताभ्योऽपरिज्ञाताः शतशोऽथ सहस्रशः। अभिगच्छति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ।।५७।।
घृतोदेन कुशद्वीपो बाह्यतः परिवारितः। विज्ञेयः स तु विस्तारात्कुशद्वीपसमेन तु ।।५८।।
इत्येष सन्निवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः। क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारं वक्ष्याम्यहमतः परम् ।।५९।।
कुशद्वीपस्य विस्तारादिद्वगुणः स तु वै स्मृतः। घृतोदकसमुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ।।६०।।
तस्मिन्द्वीपे नगश्रेष्ठः क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः। क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः ।।६१।।
अन्धकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः। दिवावृतः परश्चापि दिविन्दो गिरिरुच्यते ।।६२।।
दिविन्दात्परतश्चापि पुण्डरीको महागिरिः। पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ।।६३।।

और सातवाँ मन्दराचल है ।।४८–५०$\frac{१}{२}$।। जल का एक नाम मन्दा है और जल का भेदन कर यह पर्वत निकला है, इसी से इसका नाम इन पर्वतों के बीच का विस्तार दूने परिमाण का है। पहला उद्भिद, दूसरा वेणुमण्डल, तीसरा स्वैरथाकार, चौथा लवण, पाँचवाँ धृतिमान्, छठा प्रभाकर, सातवाँ कपिल नामक देश वहाँ बसे हैं ।।५१–५३।। इन पर्वतों या पार्वत्य प्रदेशों में ईश्वरीय शक्तिसम्पन्न देव-गन्धर्व रमण करते और विहरते हुए देखे जाते हैं। इन देशों में दस्यु या म्लेच्छ कोई भी नहीं है। वहाँ के निवासी गौर वर्ण के होते हैं और उनकी मृत्यु क्रमानुसार ही होती है ।।५४–५५।। वहाँ भी पापों को दूर करनेवाली और शुभ सात नदियाँ हैं। जिनकी शाखा नदियाँ भी पवित्र हैं। वहाँ की मृत्तिका पवित्र और पृथ्वी तेजोमय है। इन नदियों से और भी सैकड़ों-हजारों नदियाँ निकली हैं। इन नदियों में वासव सदा बरसते रहते हैं, इसी से ये सदा बहा करती हैं ।।५६–५७।। यह कुशद्वीप घृतसागर से चतुर्दिक् घिरा हुआ है। उसका विस्तार भी कुशद्वीप के समान है। इस प्रकार हमने कुशद्वीप की स्थिति को कह दिया ।।५८–५९।। इसके बाद अब हम क्रौंच द्वीप के विस्तार को कहते हैं! कुशद्वीप से यह क्रौंचद्वीप दूना बड़ा है। यह द्वीप घृतसागर को घेरे हुए है ।।६०।। इस द्वीप का पहला पर्वत क्रौंच है और यह सबसे श्रेष्ठ है। क्रौंच के बाद वामनक, वामनक के बाद अन्धकारक, अन्धकारक के बाद दिवावृत, दिवावृत के बाद दिविन्द, दिविन्द के बाद पुण्डरीक और पुण्डरीक के बाद दुन्दुभिस्वन नामक पर्वत है ।।६१–६३।। क्रौंचद्वीप के ये सातों पर्वत

एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः। बहुवृक्षफलोपेता नानावृक्षलतावृताः ।।६४।।
परस्परेण द्विगुणा विष्कम्भाद्वर्षपर्वताः। वर्षाणि तत्र वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ।।६५।।
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः। मनोनुगात्परश्चोष्णतृतीयो देश उच्यते ।।६६।।
उष्णात्परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः। अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ।।६७।।
मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः। सिद्धचारणसंकीर्णो गौरमायो जवः स्मृतः ।।६८।।
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं स्मृताः शुभाः। गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा ।।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता ।।६९।।
तासां समुद्रगाश्चान्या नद्यो यास्तु समीपगाः। अनुगच्छन्ति ताः सर्वा विपुलाः सुबहूदकाः ।।७०।।
क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु। आवृतः सर्वतः श्रीमान्क्रौञ्चद्वीपसमेन तु ।।७१।।
प्लक्षद्वीपादयो ह्येते समासेन प्रकीर्तिताः। तेषां निसर्गो द्वीपानामानुपूर्व्येण सर्वशः ।।७२।।
न शक्यं विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि। निसर्गोऽयं प्रजानां तु संहारो यश्च तासु वै ।।७३।।
अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाकद्वीपस्य यो विधिः। शाकद्वीपस्य कृत्स्नस्य यथावदिह निश्चयात् ।।
शृणुध्वं वै यथातत्त्वं ब्रुवतो मे यथार्थवत् ।।७४।।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारादिद्वगुणस्तस्य विस्तरः। परिवार्य समुद्रं स दधिमण्डोदकं स्थितः ।।७५।।
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः। कुत एव तु दुर्भिक्षं जराव्याधिभयं कुतः ।।७६।।

रत्नमय हैं। इन पर्वतों पर अनेक फल-पुष्पवाले वृक्ष और लताएँ हैं। इन पर्वतों के मध्य की भूमि क्रमशः दूनी अधिक है। यहाँ के देशों के नाम को भी कहते हैं, सुनिये ।।६४-६५।। क्रौंच का देश कुशल है, वामन का मनोनुग, मनोनुग के बाद तीसरा देश उष्ण, उष्ण के बाद प्रावरक, प्रावरक के बाद अन्धकारक, अन्धकारक के बाद मुनिदेश और मुनिदेश के बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश हैं। ये देश सिद्धचारणों से भरे हैं और यहाँ के निवासी गौर वर्ण के होते हैं ।।६६-६८।। यहाँ भी सातों देशों में गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका ये सातों नदियाँ बहती हैं। इन नदियों के समीप में बहनेवाली और भी कितनी ही अधिक जलवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, जो समुद्र में जाकर गिरती हैं। क्रौंचद्वीप दधिमण्डोदक समुद्र से घिरा हुआ है। यह समुद्र भी क्रौंचद्वीप के ही बराबर है। प्लक्ष आदि इतने द्वीपों का वर्णन हमने संक्षेप से कर दिया ।।६९-७१$\frac{१}{२}$।। इन द्वीपों की स्वाभाविक अवस्था का क्रमिक वर्णन और प्रजाजन की उत्पत्ति या संहार का विस्तार के साथ सांगोपांग वर्णन सौ वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है। इसके अनन्तर अब हम शाकद्वीप का वर्णन करते हैं। सम्पूर्ण शाकद्वीप के विषय में जो यथार्थ रूप से कहते हैं आप सब सुनें। क्रौंचद्वीप से शाकद्वीप दूना बड़ा है। दधिमण्डोदक समुद्र को यह घेरे हुए है ।।७२-७५।। वहाँ के निवासी पवित्र और चिरायु होते हैं। वहाँ न दुर्भिक्ष होता है और न रोग-शोक का ही भय होता है। मणियों से भूषित शुभ्र वर्ण के सात

तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव परिभूषिताः। रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानि मे शृणु ।।७७।।
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते। प्रागायतः ससौवर्ण उदयो नाम पर्वतः ।।७८।।
तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्ति च यान्ति च। तस्यापरेण सुमहाञ्जलधारो महागिरिः ।।७९।।
तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्। ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले प्रजास्विह ।।८०।।
तस्यापरे रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः। रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो गिरिः ।।८१।।
तस्यापरेण सुमहाञ्श्यामो नाम महागिरिः। तस्माच्छ्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ।।८२।।
तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः। तस्यापरेणाऽऽम्बिकेयो दुर्गः शैलो हिमाचितः ।।८३।।
आम्बिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिसमन्वितः। स चैव केशरीत्युक्तो यतो वायुः प्रवायति ।।८४।।
शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः। उदयस्योदकं वर्षं जलदं नाम विश्रुतम् ।।८५।।
द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम्। रैवतस्य तु कौमारं श्यामस्य तु मणीचक्रम् ।।८६।।
अस्तस्यापि शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्तरम्। आम्बिकेयस्य मोदाकं केसरेषु महाद्रुमम् ।।८७।।
द्वीपस्य परिमाणं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च। शाकद्वीपेन विख्यातस्तस्य मध्ये वनस्पतिः ।।
शाको नाम महावृक्षस्तस्य पूजां प्रयुञ्जते ।।८८।।

पर्वत हैं और मणियों को उत्पन्न करनेवाली नदियाँ हैं। इनके नामों को हमसे सुनिये ।।७६–७७।। देवर्षियों और गन्धर्वों से युक्त प्रथम मेरु नामक पर्वत है। दूसरा सुवर्णमय उदय नामक पर्वत है। यह पूरब की ओर लम्बा है। यहाँ ही मेघ उत्पन्न होते हैं और वृष्टि करने के लिए दूसरे स्थानों को जाते हैं। उसके पश्चात् विशालकाय जलधार नामक महागिरि है ।।७८–७९।। इसी पर्वत से वासव अत्युत्तम जल को नित्य ग्रहण करते हैं और वर्षाकाल में प्रजाजन के बीच उसे बरसाते हैं। जलधार के बाद रैवतक नामक पर्वत है। इस पर्वत पर रेवती नक्षत्र सदा वर्तमान रहता है। यह स्वर्ग के समान है और पितामह ब्रह्मा के द्वारा बनाया गया है। रैवतक के बाद अति विशाल श्याम नामक महागिरि है। यहीं प्रजाओं ने सबसे पहले श्यामता को पायी है ।।८०–८२।। इस गिरि के बाद बृहदाकार अस्तगिरि है। यह चाँदी का पर्वत है। हिममय और दुर्गम आम्बिकेय पर्वत अस्तगिरि के बाद स्थित है। आम्बिकेय पर्वत के बाद सम्पूर्ण ओषधियों से युक्त रम्य पर्वत है। इस पर्वत को लोग केशरी भी कहते हैं। वायु यहीं से बहा करती है ।।८३–८४।। अब यहाँ के प्रदेशों का भी अक्षरशः वर्णन और नाम सुनिये। उदय का जलद, जलधार का सुकुमार, रैवतक का कौमार, श्याम का मणीचक्र, अस्त का शुभ कुसुमोत्तर और आम्बिकेय का मोदाक और केसर का महाद्रुम वर्ष या देश है। इस द्वीप के बड़े-छोटे का परिमाण भी शाकद्वीप के ही समान है। इसके बीच एक विख्यात वनस्पति है, जिसका नाम शाक है। वहाँ वाले इस वृक्ष को आदर की दृष्टि से देखते हैं ।।८५–८८।। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि

एतेन देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह ।।८९।।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः । तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः ।।
विद्धि नाम्नश्च (म्ना च) ताः सर्वा गङ्गास्ताः सप्तधा स्मृताः ।।९०।।
प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला तथा । अनुतप्ता च नाम्नैव नदी संपरिकीर्तिता ।।९१।।
कुमारी नामतः सिद्धा द्वितीया सा पुनः सती । नन्दा च पार्वती चैव तृतीया परिकीर्तिता ।।९२।।
शिवेतिका चतुर्थी स्यात्त्रिदिवा च पुनः स्मृता । इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः क्रतुः ।।९३।।
धेनुका च मृता चैव षष्ठी संपग्किीर्तिता । एताः सप्त महागङ्गाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः ।।
भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम् ।।९४।।
अनुगच्छन्ति तास्त्वन्या नदीर्नद्यः सहस्रशः । बहूदकपरिस्रावा यतो वर्षति वासवः ।।९५।।
तासां तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च । न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः ।।
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।।९६।।
शांशपायन विस्तीर्णो द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः । नदीजलैः प्रतिच्छन्नः पर्वतश्चाभ्रसंनिभैः ।।९७।।
सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः । पुरैश्च विविधाकारैः स्फीतैर्जनपदैरपि ।।९८।।
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः समन्ताद्धनधान्यवान् । क्षीरोदेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ।।
शाकद्वीपस्तु विस्तारात्समेन तु समन्ततः ।।९९।।
तस्मिञ्जनपदाः पुण्याः पर्वतान्तरिते शुभाः । वर्णाश्रमसमाकीर्णा देशास्ते सप्त वै स्मृताः ।।१००।।

इन स्थानों में विहार और रमण किया करते हैं। वहाँ के पवित्र देशों में चारों वर्णों के लोग बसे हुए हैं। वहाँ के सातों देशों में सात नदियाँ हैं, जो समुद्र की ओर बहा करती हैं। वे नदियाँ सप्त गंगा कहलाती हैं। उनके नामों को सुनिये ।।८९-९०।। शिवजला, सुकुमारी गंगा है। यह नदी अनुतप्ता नाम से भी त्रिख्यात है। इसी प्रकार दूसरी कुमारी या सिद्धा, तीसरी नन्दा या पार्वती, चौथी शिवेनिका या त्रिदिवा, पाँचवीं इक्षु या क्रतु, छठी धेनुका या मृता ये सप्त गंगा नाम की नदियाँ वहाँ प्रति देश में कल्याणकारक जल को धारण कर बहा करती हैं और शाकद्वीपियों को पवित्र किया करती हैं ।।९१-९४।। विपुल जल को धारण करनेवाली हजारों नदियाँ इनमें सम्मिलित हुई हैं; क्योंकि मेघ यहाँ सदा वृष्टि किया करते हैं। इन नदियों के नामों और परिमाणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है; किन्तु वे सभी नदियाँ श्रेष्ठ और पवित्र हैं। इन नदियों के जल को पीकर वहाँवाले सदा प्रसन्न रहा करते हैं ।।९५-९६।। शांशपायन! नदियों के जल से आवृत और मेघतुल्य पर्वतों से घिरा हुआ यह विस्तीर्ण द्वीप चक्र की तरह स्थित है। विविध धातुओं से, विचित्र मणि-विद्रुमों से मण्डित, विविध भाँति के समृद्ध पुरों और देशों से तथा फल-फूलवाले वृक्षों से धनधान्यवान् शाकद्वीप चारों ओर से क्षीरसागर से घिरा हुआ है। इस सागर का विस्तार शाकद्वीप के ही समान है ।।९७-९९।। पर्वतों के अन्तराल में बसे हुए वहाँ के पवित्र देशों की संख्या सात है। वहाँ व्यभिचार का नाम तक नहीं है; अतः धर्म

न संकरश्च तेष्वस्ति वर्णाश्रमकृतः क्वचित् । धर्मस्य चाव्यभिचारादेकान्तसुखिताः प्रजाः ।।१०१।।
न तेषु लोभो माया वा ईर्ष्याऽसूयाऽधृतिः कुतः । विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत्स्वाभाविकं स्मृतम् ।।१०२।।
करोत्पत्तिर्न तेष्वस्ति न दण्डो न च दण्डकाः । स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ।।१०३।।
एतावदेव शक्यं वै तस्मिंद्वीपे निवासिनाम् । पुष्करं सप्तमं द्वीपं प्रवक्ष्यामि निबोधत ।।१०४।।
पुष्करेण तु द्वीपेन वृतः क्षीरोदको बहिः । शाकद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ।।१०५।।
पुष्करे पर्वतः श्रीमानेक एव महाशिलः । चित्रैर्मणिमयैः शैलैः शिखरैस्तु समुच्छ्रितैः ।।१०६।।
द्वीपस्य तस्य पूर्वार्धे चित्रसानुः स्थितो महान् । परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः पञ्चविंशतिः ।।१०७।।
उर्ध्वं चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि समाचितः । द्वीपार्धस्य परिस्तोमः पर्वतो मानसोत्तमः ।।१०८।।
स्थितो बेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः । योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।।१०९।।
तावदेव स विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः । स एवं द्वीपपश्चार्धे मानसः पृथिवीधरः ।।११०।।
एक एव महासानुः संनिवेशाद्द्विधा कृतः । स्वादूदकेनोदधिना सर्वतः परिवारितः ।।१११।।
पुष्करद्वीपविस्ताराद्विस्तीर्णोऽसौ समन्ततः । तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ ।।
अभितो मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ ।।११२।।

का पालन करने के कारण वहाँ की प्रजा अत्यन्त सुखी है। वहाँ के लोगों को न लोभ है, न माया, न ईर्ष्या, न डाह, न अधीरता है और न कर्त्तव्यसङ्करता। ऐसा ही उन लोगों का स्वभाव है। वहाँ वाले कर (मालगुजारी) नहीं देते। उन लोगों को न कोई दंड है और न कोई दंड देनेवाली ही है। वे सब धर्म को जानते हैं अतः धार्मिक आचार-विचार के ही द्वारा वे एक-दूसरे की रक्षा करते हैं ।।१००-१०३।। शाकद्वीपवासियों का वर्णन यहाँ तक मैंने अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार किया। सातवाँ पुष्कर द्वीप है। इसके सम्बन्ध में भी कहते हैं, सुनिये। पुष्कर द्वीप से क्षीरसागर चारों ओर घिरा हुआ है। यह शाकद्वीप से दुगुना बड़ा है। इस द्वीप में शोभासम्पन्न एक महाशिल नाम का पर्वत है, जिसके समुन्नत शैलशिखर मणियों द्वारा चित्रित हैं। इस द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में इसका एक विचित्र सानुदेश (चोटी) स्थित है, जिसका घेरा या विस्तार पचीस हजार योजन का है और ऊँचाई चौंतीस हजार योजन की। द्वीपार्द्ध के परिमाण के बराबर एक उत्तम मानस पर्वत है ।।१०४-१०८।। जो समुद्र तट पर उगे हुए नवीन चन्द्रमा की भाँति वर्तमान है। यह पचास हजार योजन ऊँचा है और इसका घेरा या विस्तार भी उतना ही है। इस द्वीप के पश्चात् अर्द्ध भाग में पृथ्वी को धारण करनेवाला मानस पर्वत है ।।१०९-११०।। यह एक ही विशालकाय शिखर है, जो देश भेद से दो भागों में विभक्त है। मीठे जलवाले समुद्र से यह घिरा हुआ है। पुष्करद्वीप के विस्तार के अनुरूप ही उसका भी विस्तार है। इस द्वीप में पवित्र और शुभकारक दो देश हैं। ये दोनों देश मानस पर्वत के निम्नभाग में मण्डलाकार अवस्थित

महावीतं तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तत्। तस्यैवाभ्यन्तरे यत्तु धातकीखण्डमुच्यते ।।११३।।
दश वर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः। आरोग्यसुखभूयिष्ठा मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।११४।।
सममायुश्च रूपं च तस्मिन्वर्षद्वये स्थितम्। अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते रूपशीलतः ।।११५।।
न तत्र वञ्चको नेर्ष्या न स्तेया (यं) न भयं तथा। निग्रहो न च दण्डोऽस्ति न लोभो न परिग्रहः ।।११६।।
सत्यानृतं न तत्रास्ति धर्माधर्मौ तथैव च। वर्णाश्रमाणां वार्ता वा पाशुपाल्यं वणिक्क्रिया ।।११७।।
त्रयी विद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा शल्यमेव च। वर्षद्वये सर्वमेतत्पुष्करस्य न विद्यते ।।११८।।
न तत्र नद्यो वर्षं च शीतोष्णं वा न विद्यते। उद्भिज्जान्युदकान्यत्र गिरिप्रश्र (स्त्र) वणानि च ।।११९।।
उत्तराणां कुरूणां तुल्यकालो जनः सदा। सर्वत्र सुसुखस्तत्र जराक्लमविवर्जितः ।।१२०।।
इत्येष धातकीखण्डे महावीते तथैव च। आनुपूर्व्याद्विधिः कृत्स्नः पुष्करस्य प्रकीर्तितः ।।१२१।।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः। विस्तरान्मण्डलाच्चैव पुष्करस्य तथैव च ।।१२२।।
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृता। द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्तमस्तु सः ।।१२३।।
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परात्। अपां चैव समुद्रेकात्समुद्रा इति संज्ञिताः ।।१२४।।
ऋषयो निवसन्त्यस्मिन्प्रजा यस्माच्चतुर्विधाः। तस्माद्वर्षमिति प्रोक्तं प्रजानां सुखदं तु तत् ।।१२५।।

है। मानस के बाहर जो देश है वह महावीत कहलाता है और जो देश भीतर है, वह धातकी खण्ड के नाम से प्रसिद्ध है ।।१११-११३।। वहाँ लोग दस हजार वर्ष तक जीते हैं। वहाँ के लोगों को मानसी सिद्धि प्राप्त है। वे सभी नीरोग तथा सुखी हैं। उन दोनों देशों के लोग आयु तथा रूप में एक समान ही हैं ।।११४-११५।। वहाँ ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं है। रूपस्वभाव में सभी बराबर हैं। वहाँ न वंचकता है, न वंचना है, न डाह, न चोरी, न भय, न बल-प्रयोग, न दण्ड, न लोभ है और न दान आदि की समस्या। पुष्करद्वीप के दोनों देशों में सच-झूठ, धर्म-अधर्म, वर्णाश्रम विषयक बात, पशुपालन, क्रय-विक्रय, त्रयी विद्या, दण्डनीति, सेवावृत्ति और दुर्वाक्य या शस्त्र प्रयोग की समस्या नहीं है। वहाँ न नदी है, न वर्षा होती है, न गर्मी-सर्दी है, न उद्भिज्ज, न जल और झरने हैं ।।११६-११९।। वहाँ का काल सदा उत्तर कुरु की तरह रहता है। वहाँ सर्वत्र सुख है। लोगों को न थकावट आती है और न बुढ़ापा ही। पुष्करद्वीप के महावीत और धातकी खण्ड का इस प्रकार हमने क्रम से सम्पूर्ण वर्णन कर दिया। सुस्वादु दधिसागर से यह पुष्कर सागर घिरा हुआ है। विस्तार और घेरे में यह पुष्करद्वीप के ही बराबर है ।।१२०-१२२।। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। द्वीपों को जो समुद्र घेरे हुए हैं, वे उसी के बराबर हैं। द्वीपों और समुद्रों की परस्पर वृद्धि या संस्थान इसी प्रकार का होता है। जल का समुद्रेक या वृद्धि होने के कारण सागरों का नाम समुद्र पड़ा है ।।१२३-१२४।। चातुर्वर्ण प्रजा और ऋषिगण देश में निवास करते हैं इसलिए देश को वर्ष कहते हैं। यह वर्ष प्रजाजन को सुख देनेवाला होता है। जिस प्रकार ऋष् धातु से ऋषि शब्द बना है, उसी प्रकार शक्ति प्रबन्धन बोधक

ऋषइत्येव ऋषिणो वृषः शक्तिप्रबन्धने। रतिप्रबन्धनात्सिद्धं वर्षत्वं तेन तेषु तत् ।।१२६।।
शुक्लपक्षे चन्द्रवृद्धौ समुद्रः पूर्यते सदा। प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते खगे ।।१२७।।
आपूर्यमाण उदधिः स्वत एवाभिपूर्यते। ततोऽपक्षीयमाणेऽपि स्वात्मनैवापकृष्यते ।।१२८।।
उखास्थमग्निसंयोगाज्जलमुद्रिच्यते यथा। तथा महोदधिगतं तोयमुद्रिच्यते ततः ।।१२९।।
अन्यूना ह्यतिरिक्ताश्च वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च। उदयास्तमितेश्चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।
क्षयवृद्धिरेवमुदधेः सोमवृद्धिक्षयात्पुनः ।।१३०।।
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलीनां शतानि तु। अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु ।।१३१।।
द्विरापत्वात्स्मृता द्वीपाः सर्वतश्चोदकावृताः। उदकस्याऽऽधानं यस्मात्तस्मादुदधिरुच्यते ।।
अपर्वाणस्तु गिरयः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः। प्लक्षद्वीपे तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते ।।१३२।।
शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते च महाद्रुमः। कुशद्वीपे कुशस्तम्बस्तस्य नाम्ना स उच्यते ।।१३३।।
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चो मध्ये जनपदस्य ह। शाकद्वीपे द्रुमः शाकस्तस्य नाम्ना स उच्यते ।।१३४।।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे तत्र तैः स नमस्कृतः। महादेवः पूज्यते तु ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः ।।१३५।।
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः। उपासते तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः ।।
स तत्र पूज्यते चैव देवैर्देवोत्तमोत्तमः ।।१३६।।

वृष् धातु से वर्ष पद सिद्ध होता है। वृष शब्द से ही 'वर्ष' हुआ है ।।१२५–१२६।। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार समुद्र बढ़ता है और कृष्णपक्ष में जब चन्द्रमा क्षीण होते हैं, तब समुद्र भी घटता है। समुद्र स्वतः अपने को जल से भरता है और जब उनका जल घटता है, तब भी उसी में समाकर रह जाता है। बर्तन में रखा हुआ जल आग पर चढ़ाये जाने से जैसे खौलकर बढ़ जाता है, उसी प्रकार समुद्र का जल भी बढ़ता है। शुक्ल और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त के हिसाब से नियमपूर्वक–न कम न अधिक जल बढ़ा करता है। सारांश यह है कि चन्द्रमा की क्षय-वृद्धि के अनुसार ही समुद्र के जल की भी क्षय और वृद्धि होती है ।।१२७–१३०।। पर्वों में समुद्र का जल एक सौ पन्द्रह अंगुल तक बढ़कर घटा करता है, ऐसा देखा गया है। दोनों ओर जल बहने के कारण और सभी तरफ जल से घिरे रहने के कारण द्वीपों की 'द्वीप' संज्ञा पड़ी है। जिस कारण समुद्र में जल रहा करता है, इसीलिए उसे उदधि कहते हैं। बिना पर्व गाँठ या स्तरवाले गिरि कहलाते हैं और पर्ववाले पर्वत कहलाते हैं। इसी नियम के अनुसार प्लक्षद्वीप में जो गोमेद है, वह पर्वत है ।।१३१–१३२।। शाल्मलद्वीप में शाल्मलि नामक महावृक्ष पूज्य है। कुशद्वीप में कुश नामक तृण है, अतः उसी के नाम वह द्वीप कुशद्वीप कहलाता है। क्रौंचद्वीप के मध्यदेश में क्रौंच नामक पहाड़ है। शाकद्वीप में शाकवृक्ष है, अतः वह शाकद्वीप कहलाता है ।।१३३–१३४।। पुष्करद्वीप में एक वटवृक्ष है, जिसकी वन्दना सब किया करते हैं। यहाँ त्रिभुवनेश्वर महादेव और ब्रह्मा पूजित होते हैं। वहाँ साध्यों के साथ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं और तैंतीस महर्षियों के साथ देवगण उपासना किया करते हैं। वहाँ देवों के द्वारा देवाधिदेव ब्रह्मा पूजित होते हैं ।।१३५–१३६।। जम्बूद्वीप में विविध भाँति के रत्न उत्पन्न होते हैं। उन समस्त द्वीपों में प्रजागण क्रमशः

जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां हि क्रमात्त्विह ।।१३७।।
सर्वशो ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च। आरोग्यायुः प्रमाणाद्धि द्विगुणं च समन्ततः ।।१३८।।
एतस्मिन्पुष्करद्वीपे यदुक्तं वर्षकद्वयम्। गोपायति प्रजास्तत्र स्वयं सज्जनमण्डिताः ।।१३९।।
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः। सविष्णुः सशिवो देवः स पिता स पितामहः ।।१४०।।
भोजनं चाप्रयत्नेन तत्र स्वयमुपस्थितम्। षड्रसं सुमहावीर्यं भुञ्जते च प्रजाः सदा ।।१४१।।
परेण पुष्करस्याथ आवृत्यायः(यं) स्थितो महान्। स्वादूदकः समुद्रस्तु समन्तात्परिवेष्टितः ।।१४२।।
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः। काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैकशिलोपमा ।।१४३।।
तस्मात्परेण शैलस्तु मर्यादान्ते तु मण्डलम्। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ।।१४४।।
आलोकस्तस्य चार्वाक्तु निरालोकस्ततः परम्। योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ।।१४५।।
तावांश्च विस्तरस्तस्य पृथिव्यां कामगश्च सः। आलोके लोकशब्दस्तु निरालोके सलोकता ।।
लोकार्थं संमतो लोको निरालोकस्तु बाह्यतः ।।१४६।।
लोकविस्तारमात्रं तु आलोकः सर्वतो बहिः। परिच्छिन्नः समन्ताच्च उदकेनाऽऽवृतश्च सः ।।
निरालोकात्परश्चापि अण्डमावृत्य तिष्ठति ।।१४७।।
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी। भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा ।।१४८।।

सर्वज्ञता धारण करके ब्रह्मचर्य, सत्य और दम के द्वारा आरोग्य तथा द्विगुण आयु प्राप्त करते हैं। इस पुष्करद्वीप में हमने जिन दो देशों को बताया है, उनकी रक्षा वहाँ के साधु स्वभाव प्रजागण स्वयं करते हैं ।।१३७–१३९।। विष्णु, शिव, सूर्य और पितरों के साथ स्वयं ब्रह्मा दण्डविधान से वहाँ का शासन करते हैं। वहाँ वाले बिना प्रयत्न के ही षड्रस और बलशाली भोजन प्राप्त करते हैं। यह पुष्करद्वीप स्वादु जलवाले समुद्र से घिरा हुआ है ।।१४०–१४२।। इसके आगे एक बड़ी भारी कांचनपुरी है, जहाँ की भूमि एक शिला की तरह सम और घनी बसी हुई है। इसके आगे सीमान्त में एक पर्वत है, फिर मण्डल है। उसके बाद लोकालोक है, जिसकी एक दिशा में प्रकाश और दूसरी दिशा में अन्धकार है ।।१४३–१४४।। आलोक पूरब की दिशा में और अन्धकार पश्चिम दिशा में है। यह दस हजार योजन ऊँचा है। इसका विस्तार भी उतना ही है। पृथ्वी के बीच यह पर्वत इच्छाधीन गतिवाला है। इसकी जिस दिशा में आलोक है उसी को लक्ष्य कर लोक शब्द बना है। अन्धकारवाले भाग की ओर भी लोक हैं। आलोक के ही कारण लोक हुआ है। अन्धकार बाहर है। बाहर में भी जहाँ तक आलोक है, वहाँ तक लोकों का विस्तार है। इसके बाद जल के द्वारा सब ढँका हुआ है। निरालोक के बाद जो भाग है, वह अण्ड लोक मण्डल ब्रह्मा को ढँके हुए है ।।१४५–१४७।। अण्ड के मध्य में यही सातों द्वीपवाली पृथ्वी है, इसके अतिरिक्त, भूर्लोक, भुवर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और

जनस्तपस्तथा सत्य एतावांल्लोकसंग्रहः । एतावानेव विज्ञेयो लोकान्तश्चैव तत्परः ।।१४९।।
कुम्भस्थायी भवेद्यादृक्प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः । आदितः शुक्लपक्षस्य वपुरण्डस्य तद्विधम् ।।१५०।।
अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः । तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च कारणस्याव्ययात्मनः ।।
कारणै प्राकृतैस्तत्र ह्यावृतं प्रतिसप्तभिः ।।१५१।।
दशाधिक्येन चान्योन्यं धारयन्ति परस्परम् । परस्परावृताः सर्वे उत्पन्नाश्च परस्परात् ।।१५२।।
अण्डस्यास्य समन्तात्तु संनिविष्टो घनोदधिः । समन्ताद्येन तोयेन धार्यमाणः स तिष्ठति ।।१५३।।
बाह्यतो घनतोयस्य तिर्यगूर्ध्वानुमण्डलम् । धार्यमाणं समन्तात्तु तिष्ठते घनतेजसा ।।१५४।।
अयोगुडनिभो वह्निः समन्तान्मण्डलाकृतिः । समन्ताद्घनवातेन धार्यमाणः स तिष्ठति ।।
घनवायुस्तथाऽऽकाशं धारयाणस्तु तिष्ठति ।।१५५।।
भूतादिश्च तथाऽऽकाशं भूताद्यं चाप्यसौ महान् । महान्व्याप्तो ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ।।१५६।।
अनन्तमपरिव्यक्तं दशधा सूक्ष्म एव च । अनन्तमकृतात्मानमनादिनिधनं च तत् ।।१५७।।
अतीत्य परतो घोरमनालम्बमनामयम् । नैकयोजनसाहस्त्रं विप्रकृष्टं तमोवृतम् ।।१५८।।
तम एव निरालोकममर्यादमदेशिकम् । देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ।।१५९।।

सत्यलोक भी है। लोकों के विषय में इतना ही ज्ञान प्राप्त है, इसलिए इतने ही लोकों को समझना चाहिए। इसके बाद कुछ भी नहीं है ।।१४८–१४९।। पश्चिम दिशा में जिस प्रकार शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा कुम्भस्थायी होकर रहते हैं, उसी प्रकार अण्ड का शरीर है। इस प्रकार से हजारों–करोड़ों अण्ड हैं, जो अव्ययात्मा कारण के ऊपर, नीचे और बीच में स्थित हैं। ये प्रत्येक सात–सात प्रकृत कारणों द्वारा आवृत हैं ।।१५०–१५१।। इनमें एक–दूसरे से दस गुने बड़े हैं और हर एक–दूसरे को धारण किये हुए और ढँके हुए हैं; क्योंकि सभी एक–दूसरे की सहायता से उत्पन्न हुए हैं। इन अण्डों के चारों ओर घनीभूत सागर इस प्रकार अवस्थित है कि उसके जल द्वारा ही सभी कारण कर लिये गये हैं और इस घनीभूत जल का भी जो ऊँचा या तिरछा मण्डल है, वह बाहर की ओर से घनीभूत तेज के द्वारा धारण कर लिया गया है ।।१५२–१५४।। यहाँ क्यों लौहगोलक की तरह मण्डलाकार होकर अग्नि इसके चारों ओर है, जो घनीभूत वायु के आधार पर स्थित है। इसी घनीभूत वायु ने आकाश को भी धारण किया है ।।१५५।। आकाश भूतादि महान् को और महान् भूतादि को धारण किये हुए है और यह महान् अव्यक्त अनन्त द्वारा व्याप्त है। यह अपरिव्यक्त अनन्त दस प्रकार का है—सूक्ष्म, अकृतात्मा, अनादिनिधन, असीम, घोर, अनालम्ब, अनामय, बहु सहस्र योजन दूरस्थ अन्धकाराच्छन्न, अन्धकार की भाँति अदर्शनीय, निःसीम, अदेशिक, देवों के द्वारा भी अविदित और व्यवहाररहित ।।१५६–१५९।। अन्धकार के अन्त में और आकाश के शेष भाग में

तमसोऽन्ते च विख्यातमाकाशान्ते च भास्वरम्। मर्यादायामतस्तस्य शिवस्याऽऽयतनं महत् ।।१६०।।
त्रिदशानामगम्यं तु स्थानं दिव्यमिति श्रुतिः। महतो देवदेवस्य मर्यादायां व्यवस्थितम् ।।१६१।।
चन्द्रादित्यावतप्तास्तु ये लोकाः प्रथिता बुधैः। ते लोका इत्यभिहिता जगतश्च न संशयः ।।१६२।।
रसातलतलात्सप्त सप्तैवोर्ध्वतलाः क्षितौ। सप्त स्कन्धास्तथा वायोः सब्रह्मसदना द्विजाः ।।१६३।।
आपातालाद्दिवं यावदत्र पञ्चविधा गतिः। प्रमाणमेतज्जगत एष संसारसागरः ।।१६४।।
अनाद्यन्ता प्रयात्येवं नैकजातिसमुद्भवा। विचित्रा जगतः सा वै प्रवृत्तिरनवस्थिता ।।१६५।।
यथैतद्भौतिकं नाम निसर्गबहुविस्तरम्। अतीन्द्रियैर्महाभागैः सिद्धैरपि न लक्ष्यते ।।१६६।।
पृथिव्यां चाग्निवायूनां महतस्तमसस्तथा। ईश्वरस्य तु देवस्य अनन्तस्य द्विजोत्तमाः ।।१६७।।
क्षयो वा परिमाणे वा अन्तो वाऽपि न विद्यते। अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते ।।
तस्य चोक्तं मया पूर्वं तस्मिन्नामानुकीर्तने ।।१६८।।
य एष शिवनाम्ना हि तद्वः कार्त्स्न्येन कीर्तितम्। स एष सर्वत्र गतः सर्वस्थानेषु पूज्यते ।।१६९।।
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले। अर्णवेषु स सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ।।१७०।।
तथा तपसि विज्ञेय एष एव महाद्युतिः। अनेकधा विभक्ताङ्गो महायोगी महेश्वरः ।।
सर्वलोकेषु लोकेश इज्यते बहुधा प्रभुः ।।१७१।।

अर्थात् सीमा प्रान्त में शिव का एक देदीप्यमान विख्यात आयतन या मन्दिर है। वह दिव्य स्थान है, जहाँ देवगण भी नहीं जा सकते हैं। देवाधिदेव महादेव के आयतन की सीमा में चन्द्र-सूर्य की किरण से प्राप्त जो लोक हैं, उन्हें पण्डित लोग जागतिक लोक कहते हैं ।।१६०-१६२।। द्विजगण! पृथ्वी में रसातल के ऊपर या नीचे सात-सात लोक हैं। ब्रह्मसदन-पर्यन्त वायु के सात स्कन्ध हैं। वहाँ पाताल से लेकर स्वर्ग-पर्यन्त वायु की गति पाँच प्रकार की है। यही जगत् का प्रमाण है और यही संसार-सागर कहलाता है। अनेक जातियों की उद्भव-भूमि यह अनादि-अनन्त जगत्परम्परा इसी प्रकार चलती रहती है। जगत् की यह अस्थिर प्रवृत्ति सचमुच विचित्र है। इसकी भौतिक सृष्टि का अत्यधिक विस्तार है, जिसे अतीन्द्रिय महाभाग सिद्धगण भी नहीं जान सकते हैं ।।१६३-१६६।। इस जगत् में अग्नि, वायु, महान्, तम, ईश्वर और देव अनन्त का क्षय, परिमाण या अन्त नहीं होता है। ये सभी स्थानों में अनन्त नाम से अभिहित हैं। नामों के वर्णन प्रसङ्ग में हमने पहले ही इस सम्बन्ध में कह दिया है ।।१६७-१६८।। जो शिव नाम से प्रसिद्ध है, उनके नामानुकीर्त्तनप्रसङ्ग में हमने विस्तार के साथ कह दिया है। ये ही सर्वगामी हैं और सभी स्थानों में अर्थात् भूमि, रसातल, आकाश, पवन, अग्नि, समुद्र और स्वर्ग में पूजित होते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है। ऐसा जाना जाता है कि ये तपस्या में रत हैं और महाद्युतिसम्पन्न हैं। ये ही महायोगी प्रभु महेश्वर अनेक रूपों में विभक्त होकर सभी लोकों में लोकेश नाम से पूजित होते हैं ।।१६९-१७१।। जिस प्रकार विकार विकारी

एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परान्। आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणः ।।१७२।।
पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम्। परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम् ।।१७३।।
यस्माद्विष्टाश्च तेऽन्योन्यं तस्मात्स्थैर्यमुपागताः। प्रागासन्ह्यविशेषास्तु विशेषान्योन्यवेशनात् ।।
पृथिव्याद्याश्च वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्त्रयस्तु ते ।।१७४।।
गुणापचयसारेण परिच्छेदो विशेषतः। शेषाणां तु परिच्छेदः सौम्यान्नेह विभाव्यते ।।१७५।।
भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यालोकः परतः स्मृतः। भूतान्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः ।।१७६।।
पात्रे महति पात्राणि यथैवान्तर्गतानि तु। भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात् ।।
तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गता मताः ।।१७७।।
कृत्स्नान्येतानि चत्वारि अन्योन्यस्याधिकानि तु। यावदेतानि भूतानि तावदुत्पत्तिरुच्यते ।।१७८।।
जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतो मतः। प्रत्याख्याय च भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते ।।१७९।।
तस्मात्परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु ते। करणात्मकास्तथैव स्युर्भेदा ये महदादयः ।।१८०।।
इत्येष संनिवेशो वो मया प्रोक्तो विभागशः। सप्तद्वीपसमुद्राया याथातथ्येन वै द्विजाः ।।१८१।।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यातेन चैव हि। वैश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम् ।।१८२।।

को धारण करता है, उसी प्रकार आधाराधेय भाव से परस्पर उत्पन्न लोक एक-दूसरे को धारण करता है। पृथ्वी आदि वैकारिक पदार्थ परस्पर परिच्छिन्न अर्थात् अलग-अलग हैं; किन्तु एक-दूसरे से महान् होने पर भी आपस में मिले हुए हैं। जिस कारण वे परस्पर मिले हुए हैं; उसी कारण से उन्होंने स्थिरता भी पायी है। पहले ये सामान्य रूप से वर्तमान थे, पीछे परस्पर संनिवेश करने के लिए अर्थात् मिलने के लिए वे विशेष भाव से स्थिर हुए। पृथ्वी से लेकर वायुपर्यन्त तीनों विकार पृथक् हैं ।।१७२-१७४।। इन तीनों का पार्थक्य परस्पर गुणों के अपचय के अनुसार है। शेष विकारों का पार्थक्य सूक्ष्मता के कारण नहीं जाना जाता है। उन भूतों से परे एक आलोक है। आलोकमय आकाश में सभी भूत उसी प्रकार भेदभाव से स्थित हैं, जैसे बड़े पात्र में छोटा पात्र ढँक जाता है और दूसरे की अपेक्षा एक हीन मालूम पड़ता है। उसी प्रकार आलोकमय आकाश में पृथ्वी आदि भूतों का भेद जाना जाता है। ये चारों भूत परस्पर एक-दूसरे से क्रमशः अधिक हैं। जितने भूत हैं या प्राणी हैं, उतनी ही सृष्टि है ।।१७५-१७७।। जन्तुओं का संस्कार स्थूल भूत के ही अनुसार कहा गया है। पंचभूत के बिना कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए महदादि जितने कार्यात्मक भेद देखे जाते हैं, वे सभी कारणात्मक हैं। कार्य और कार्यात्मक भेदों को परिच्छिन्न समझना चाहिए ।।१७८-१८०।। ब्राह्मणो! इस प्रकार हमने सातों द्वीपों और समुद्रोंवाली पृथ्वी का विभाग और संनिवेश (कैसे बसी हुई है) यथार्थ रूप से बता दिया। विस्तार और मंडल की परिसंख्या से विश्वरूपिणी प्रकृति का यह आंशिक परिमाण हुआ। यह समस्त जगत् उसी जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर का निवास-स्थान है। इस प्रकार भूतगण

अधिष्ठानं भगवतो यस्य सर्वमिदं जगत्। एवं भूतगणाः सप्त संनिविष्टाः परस्परम् ॥१८३॥
एतावान्संनिवेशस्तु मया शक्यः प्रभाषितुम्। एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशे तु पार्थिव ॥१८४॥
सप्त प्रकृतयस्त्वेता धारयन्ति परस्परम्। तास्वल्पपरिमाणेन प्रसंख्यातुमिहोच्यते ॥
असंख्येयाः प्रकृतयस्तिर्यगूर्ध्वमधश्च याः ॥१८५॥
तारकासंनिवेशश्च यावद्दिव्यं तु मण्डलम्। मर्यादासंनिवेशस्तु भूमेस्तदनुमण्डलम् ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यां वै द्विजोत्तमाः ॥१८६॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अथ पञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिष्प्रचारः

सूत उवाच

अधः प्रमाणमूर्ध्वं च व्रण्र्यमानं निबोधत। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥
अनन्तधातयो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिताः ॥१॥

इन सातों लोकों में परस्पर आश्रित हैं ॥१८१-१८३॥ लोक-सन्निवेश के विषय में इतना ही कहने की शक्ति रखता हूँ। पार्थिव! आप भी मुझसे इतना ही सुनने की इच्छा करें। जिन सातों प्रकृतियों ने परस्पर एक-दूसरे को धारण किया है और जो ऊपर, नीचे या बीच में अनेकानेक प्रकृतियाँ हैं, उनमें से कुछ का थोड़ा-सा वर्णन मैं यहाँ करता हूँ। ताराओं का सन्निवेश और जितने दिव्य मंडल हैं तथा सीमाप्रान्त में जितने भूमि के अनुमंडलों के सन्निवेश हैं, उन सबके सम्बन्ध में मैं अब आगे कहूँगा ॥१८४-१८६॥

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त॥४९॥

अध्याय ५०

ज्योतिष्प्रचार

सूत जी बोले—अब पृथ्वी के नीचे और ऊपर के भागों का प्रमाण सुनिये। यह पृथ्वी मृत्तिका, वायु, आकाश, जल और ज्योतिःस्वरूप पंचभूतों से परिव्याप्त है। ये ही अनन्त धातुओं के कारण हैं और व्यापक कहे गये हैं ॥१॥ सभी

जननी सर्वभूतानां सर्वभूतधरा धरा । नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ।।२।।
नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला । अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ।।३।।
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रयाः स्थिताः । पर्वताकाशसंस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्च याः ।।४।।
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाऽग्निः सर्वलौकिकः । अनन्तः पठ्यते चैव व्यापकः सर्वसंभवः ।।५।।
तथाऽऽकाशमनालम्बं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम् । अनन्तं प्रथितं सर्वं वायुश्चाऽऽकाशसंभवः ।।६।।
आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता । आकाशञ्चापरमधः पुनर्भूमिः पुनर्जलम् ।।७।।
एवमन्तम(न्तो ह्य)नन्तस्य भौतिकस्य न विद्यते । पुरा सुरैरभिहितं निश्चितं तु निबोधत ।।८।।
भूमिर्जलमथाऽऽकाशमिति ज्ञेया परम्परा । स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन्रसातले ।।९।।
दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम् । साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ।।१०।।
प्रथममतलं चैव सुतलं तु ततः परम् । ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ।।११।।
ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम् । श्रीतलं च ततः प्राऽऽहुः पातालं सप्तमं स्मृतम् ।।१२।।
कृष्णभौमं च प्रथमं भूमिभागं च कीर्तितम् । पाण्डुभौमं द्वितीयं तु तृतीयं रक्तमृत्तिकम् ।।१३।।
पीतभौमं चतुर्थं तु पञ्चमं शर्करातलम् । पृष्ठं शिलामयं चैव सौवर्णं सप्तमं तलम् ।।१४।।
प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् । नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चाऽऽलयम् ।।१५।।

भूतों को धारण करनेवाली यह पृथ्वी सम्पूर्ण जीवों की जननी है। इस पर अनेकानेक देश, नगर और भवन हैं। अपरिमित नद, नदियाँ, पहाड़ और अनगिनत जातियों के जीवों से यह लम्बी-चौड़ी पृथ्वी व्याप्त है। इस पृथ्वी देवी का अन्त नहीं है ।।२-३।। नदी, नद, समुद्र, क्षुद्र जलाशय, पर्वत, आकाश और भूमि के नीचे सर्वत्र जल विद्यमान है; इसीलिए इसे अनन्त समझना चाहिए। सार्वलौकिक अग्नि सबका उत्पादक और व्यापक है; अतः इसे भी अनन्त कहते हैं ।।४-५।। इसके अनन्तर आकाश निरालम्ब है, रमणीय है और नानाविध वस्तुओं का आश्रय है; अतः यह भी अनन्त कहा गया है और आकाश से उत्पन्न होनेवाली वायु भी अनन्त है। पृथ्वी के ऊपर जल और जल के ऊपर पृथ्वी है, फिर आकाश है। आकाश के नीचे पृथ्वी है, फिर जल है। इस प्रकार अनन्तानन्त भौतिक सृष्टियाँ हैं। प्राचीन काल में देवों ने निश्चय करके ऐसा ही मत प्रकट किया है। सप्तम रसातल पर्यन्त पहले भूमि है फिर जल है तब आकाश है। इसी परम्परा से लोकस्थिति समझनी चाहिए ।।६-९।। दस हजार योजन की एक रसातल भूमि है। पण्डितों ने अत्यन्त विस्तार के साथ प्रत्येक की व्याख्या की है। प्रथम अतल, द्वितीय सुतल, तदनन्तर अत्यन्त विस्तृत वितल है। वितल के बाद गभस्तल फिर महातल है। उसके अनन्तर श्रीतल है और सातवाँ पाताल कहा गया है ।।१०-१२।। पहले भूमि भाग की मृत्तिका कृष्णवर्ण की है, दूसरे की पाण्डुवर्ण, तीसरे की रक्तवर्ण, चौथे की पीतवर्ण, पाँचवें की शक्कर के रंग की, छठे का भूमिभाग शिलामय और सातवें का तालप्रदेश सुवर्ण के रंग का है ।।१३-१४।। इनमें प्रथम के निम्नदेश में भयङ्कर शब्द करनेवाले इन्द्रशत्रु नमुचि का निवास-स्थान और मन्दिर है। इस तरह प्रथम कृष्णभौम के तल देश में

पुरं च शङ्कुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम्। निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसंकुलम् ।।१६।।
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चाऽलयम्। लोहिताक्षकलिङ्गानां नगरं श्वापदस्य तु ।।१७।।
धनंजयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः। कालियस्य च नागस्य नगरं कलसस्य च ।।१८।।
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ।।१९।।
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुवक्षसः। महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ।।२०।।
हयग्रीवस्य च कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम्। शङ्खाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ।।२१।।
राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च। पुरं च कुकुपादस्य च महोष्णीषस्य चाऽऽलयम् ।।२२।।
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च। कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ।।२३।।
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। द्वितीयेऽस्मिंस्तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ।।२४।।
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः। अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ।।२५।।
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा। शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ।।२६।।
च्यवनस्य च विज्ञेयं राक्षसस्य च मन्दिरम्। राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ।।२७।।
विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च। हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ।।२८।।
मणिमन्त्रस्य च पुरं कपिलस्य च मन्दिरम्। नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ।।२९।।
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्राः पीतभौमे न संशयः ।।३०।।
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः। गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ।।३१।।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम्। मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चाऽऽलयम् ।।३२।।

शङ्कुकर्ण का पुर, कबन्ध का मन्दिर, प्रसन्न जनों से व्याप्त निष्कुलाद का पुर है और भीम राक्षस तथा शूलदन्त का भी नगर है। इसके अतिरिक्त लोहिताक्ष, कलिङ्ग, श्वापद, धनंजय, महात्मा महेन्द्र, कालिय नाग और कलस आदि अनेक नाग, दानव और राक्षसों के हजारों पुर हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।१५-१९।। ब्राह्मणो! दूसरे तल में भी पहले ही विशालवृक्ष दैत्येन्द्र महाजम्भ का नगर है। हयग्रीव, कृष्ण, निकुम्भ, शङ्ख, गोमुख, नीलराक्षस, मेघ, क्रथन, कुकुपाद, महोष्णीष, कम्बलनाग, अश्वतर, कद्रुपुत्र महात्मा तक्षक आदि नाग, दानव और राक्षसों के दूसरे पाण्डुभौमतल में हजारों पुर, नगर और आलय हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।२०-२४।। तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद और दैत्येन्द्र महात्मा अनुह्लाद का पुर है। वहाँ तारक और त्रिशिरा के पुर हैं तथा प्रसन्न जनों से युक्त शिशुमार का भी पुर है। च्वयन राक्षस का मन्दिर भी वहीं है तथा खर और राक्षसेन्द्र कुम्भिल के भी वहाँ पुर हैं ।।२५-२७।। विरोध, क्रूर और पाण्डुरक नाग के भी वहाँ पुर हैं। वहाँ मणिमन्त्र का पुर, कपिल का मन्दिर तथा उरगपति नन्द और विशाल के भी मन्दिर हैं। ब्राह्मणो! इस तीसरे पीत-भौमतल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।२८-३०।। चौथे तल में दैत्यसिंह, महात्मा कालनेमि का, गजकर्ण एवं कुंजर का नगर है। वहाँ राक्षसेन्द्र सुमालि का एक विस्तीर्ण पुर तथा लोकनाथ मुंज और वृकवक्त्र के आलय हैं। इसी चौथे रसातल में वैनतेय गरुड़ का हजारों योजन लम्बा-चौड़ा एक नगर है, जो पक्षियों

बहुयोजनसाहस्त्रं बहुपक्षिसमाकुलम् । नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन्रसातले ।।३३।।
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते । विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ।।३४।।
वैदूर्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चाऽऽलयम् । पुरं च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ।।३५।।
महामेधस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः । कर्मारस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ।।३६।।
एवं पुरसहस्त्राणि नागदानवरक्षसाम् । पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ।।३७।।
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् । सुपर्वणः पुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ।।३८।।
तत्राऽऽस्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः । कश्यपस्य सुतः श्रीमान्वासुकिर्नाम नागराट् ।।३९।।
एवं पुरसहस्त्राणि नागदानवरक्षसाम् । षष्ठे तलेऽस्मिन्विख्याते शिलाभौमे रसातले ।।४०।।
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे । बलेः प्रमुदितं पुरं नरनारीसमाकुलम् ।।४१।।
असुराशीविषैः पूर्णमुद्धतैर्देवशत्रुभिः । मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै नगरं महत् ।।४२।।
अनेकैर्दितिपुत्राणां समुदीर्णैर्महापुरैः । तथैव नागनगरैर्ऋद्धिमद्भिः सहस्त्रशः ।।४३।।
दैत्यानां दानवानां च समुदीर्णैर्महापुरैः । उदीर्णैराक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ।।४४।।
पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने । आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामरः ।।४५।।
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुजः । विशालभोगो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ।।४६।।

से भरा हुआ है ।।३१–३३।। पाँचवें अनेक योजन विस्तीर्ण शर्कराभौम में दैत्यसिंह धीमान् विरोचन का नगर है। वैदूर्य, अग्निजिह्व, हिरण्याक्ष, धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व, महामेघ और राक्षसेन्द्र शालि के भी पुर वहीं हैं। इसके अनन्तर कर्मार, स्वस्तिक और जय नामक नाग वहाँ निवास करते हैं। इस प्रकार पाँचवें शक्कर की तरह मृत्तिकावाले तल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं ।।३४–३७।। छठे तल में दैत्यपति केसरि का उत्तम नगर है। वहाँ सुपर्वा, पुलोमा और महिष के नगर एवं महात्मा उत्क्रोश राक्षस का भी पुर वहीं है। शतशीर्ष सुरसापुत्र वहाँ आनन्द से रहा करते हैं और कश्यपतनय श्रीमान् वासुकि नामक नागराज भी निवास करते हैं। इस प्रकार शिलाभौम नामक छठे रसातल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं ।।३८–४०।। सबके पश्चिम या पीछे सातवाँ पाताल तल है। यहाँ बलि का नर–नारियों से युक्त आनन्ददायक नगर है। यह असुरों तथा नागों से पूर्ण और उत्कट देवशत्रुओं से व्याप्त है। यही मुचुकुन्द दैत्य का महानगर है ।।४१–४२।। यह तल दितिपुत्रों के अनेकानेक विशाल पुरों तथा धन–सम्पन्न हजारों नाग–नगरों एवं दैत्य–दानवों के बड़े–बड़े महापुरों से और राक्षसों के अनेकानेक विशाल भवनों से भरा पड़ा है। हे ब्राह्मणो ! बहुयोजन विस्तीर्ण पाताल के अन्त में सर्पगण निवास करते हैं। ये महात्मा कुण्डली लाल कमल की तरह आँखवाले, अजर–अमर, धौत शंख की तरह (उज्ज्वल) शरीरवाले, नील वस्त्र को धारण करनेवाले और विचित्र माला को धारण करनेवाले हैं। ये

रुक्मशृङ्गावदातेन दीप्तास्येन विराजता। प्रभुर्मुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ।।४७।।
स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलार्चिषा। ज्वालामालापरिक्षिप्तः कैलास इव लक्ष्यते ।।४८।।
स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता। बालसूर्याभिताग्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ।।४९।।
तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते। तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्धनि ।।५०।।
जटाकरालो द्युतिमाँल्लक्ष्यते शयनासने। विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्रशिखरो गिरिः ।।५१।।
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबलैः। उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ।।५२।।
स राजा सर्वनागानां शेषो नाम महाद्युतिः। स वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादायां व्यवस्थिता ।।५३।।
सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातलाः। देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ।।५४।।
अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभिः। देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ।।५५।।
पृथिव्यग्न्यम्बुवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः। महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र संशयः* ।।५६।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।।
प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ।।५७।।
सप्तानां च समुद्राणां द्वीपानां तु स विस्तरः। विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ।।५८।।

विशाल भुजावाले और विशाल शरीरवाले हैं। ये कान्तिमान् प्रभु कुण्डली, निर्मल, सुवर्णशृङ्गमय और प्रदीप्त हजारों मुखों से वहाँ सुशोभित रहते हैं। ये नागराज अग्नि की चंचल शिखा की तरह अनगिनत जिह्वाओं से ज्वाला-माला को फेंकते रहने के कारण कैलास की तरह दीख पड़ते हैं ।।४३-४८।। चिकने शरीर से (कुंडली बाँधे हुए) नागराज बाल सूर्य की तरह ताम्रवर्णवाले अपने दो हजार नेत्रों से वहाँ सुशोभित हो रहे हैं। कुन्द और इन्दु के समान उज्ज्वल नागराज के नयनों की पंक्ति उसी तरह विराजती है, जैसे श्वेत पर्वत के मस्तक पर तरुण सूर्य की पंक्ति। जिस समय ये सोते या बैठते हैं, उस समय द्युतिमान् नागराज जटाओं के द्वारा अत्यन्त भयङ्कर मालूम पड़ते हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि मानो हजार शिखरवाला विशाल पर्वत पृथ्वी पर पड़ा है ।।४९-५१।। विशालशरीर, महाभाग्य, अतुलबल और महानाग होने के कारण वह महातेजस्वी महानागपति सबके द्वारा पूजित हो रहे हैं। सभी नागों के राजा वे महाद्युतिमान् शेषनाग हैं। यह विष्णु का ही सर्परूपी शरीर है, जो पृथ्वी की सीमा पर स्थित है। देव, असुर, महानाग और राक्षसों के निवास से युक्त व्यावहारिक सातों रसातलों का ऐसा ही वर्णन है ।।५२-५४।। इसके आगे ऐसे स्थान हैं जहाँ पर न तो साधु ही जा सकते हैं, न तो देवता। यहाँ तक कि वे अब तक न तो सिद्धों द्वारा देखे ही गये हैं और न तो देवता ही उनको जान पाये हैं। ब्राह्मणो! महर्षिगण पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश का महत्त्व इसी प्रकार बताते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।५५-५६।। इसके आगे अब हम सूर्य और चन्द्र की गति बतलाते हैं। ये चन्द्र और सूर्य अपने मण्डल (कक्षा) में वर्तमान रहकर सदा घूमते रहते हैं और अपनी प्रभा से प्रकाश किया करते हैं ।।५७।। सातों समुद्रों और द्वीपों

---

* षट्पञ्चाशतश्लोकान्तेऽध्यायसमाप्तिः ख. पुस्तके वर्तते।

पर्यासपारिमाण्यं तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः। पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ॥५९॥
अवति त्रीनिमांल्लोकाँन्यस्मात्सूर्यः परिभ्रमन्। अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ॥६०॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः। महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्वर्षे निपात्यते ॥६१॥
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भं तु सुविस्तरम्। मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु। विस्तारात्त्रिगुणाश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम्॥
निष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्द्विगुणः शशी ॥६३॥
अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह। सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलं च यत् ॥६४॥
इत्येतदिह संख्यातं पुराणं परिमाणतः। तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय सांप्रतैरभिमानिभिः ॥६५॥
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते सांप्रतैरिह। देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६॥
तस्मात्तु सांप्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम्। दिवस्तु संनिवेशो वै सांप्रतैरेव कृत्स्नशः ॥६७॥
शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नतः स्मृता। तस्या बाधप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या बाधविस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तितः। मेरुमध्यात्प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता ॥६९॥
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः। पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्याबाधविस्तरः ॥७०॥

का वही विस्तार है, जो पृथ्वी का है। चन्द्र-सूर्य बहिर्भागस्थ परिधि परिमाण में प्रकाश करते हैं। यह आकाशमण्डल भूमि के परिधि परिमाण के समान है। घूमते हुए सूर्य जिस कारण तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं; इस कारण प्रकाशार्थक 'अव' धातु से प्रकाश करने के कारण 'रवि' शब्द बना है ॥५८-६०॥ इसके आगे अब हम चन्द्र-सूर्य के प्रमाण को कहते हैं। इस भारतवर्ष में मही शब्द 'महितत्वात्', अर्थात् पूज्यत्व के कारण निपातन से सिद्ध हुआ है। इस भारतवर्ष का विस्तार सूर्य के विस्तृत मण्डल के समान है। अब इसके बाद इनके विस्तार का प्रमाण सुनिये ॥६१-६२॥ सूर्य का विस्तार नौ हजार योजन है। इस विस्तार से इनके मण्डल की विशालता तीन गुनी अधिक है एवं सूर्य से चन्द्रमंडल का विस्तार दुगुना अधिक है। अब हम सातों द्वीपों और समुद्रोंवाली पृथ्वी का विस्तार और मंडल-प्रमाण योजनों में कहते हैं। वर्तमान अभिमानी देवों द्वारा संख्यात और पुराणानुमोदित जो परिमाण है उसे ही हम कह रहे हैं। वर्तमान कालिक देवगण रूपों और नामों में अतीत अभिमानी देवों के ही समान हैं। इसलिए वर्तमान कालिक देवों के साथ पृथ्वीतल और आकाश के संनिवेश को पूर्ण रूप से कह रहे हैं ॥६३-६७॥ मेरुमध्य से चारों ओर इस सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार प्रमाण पचास करोड़ योजन है। पृथ्वी का बाध विस्तार मेरुमध्य से एक योजन आगे से कहा गया है और मेरु के मध्य में प्रत्येक और करोड़ योजन कहा गया है। फिर पृथ्वी का बाध विस्तार एक करोड़ पचास हजार नवासी योजन है ॥६८-७०॥ पृथ्वी के सम्पूर्ण विस्तार को योजनों में सुनिये। चतुर्दिक् इसका विस्तार तीन करोड़

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत । तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिशम् ।।७१।।
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते । सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः ।।७२।।
विस्तरात्त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् । गणितं योजनाग्रं तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ।।७३।।
तथा शतसहस्रं तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु । इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।।७४।।
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् । पर्यासः संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ।।७५।।
पर्यासपरिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् । सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ।।७६।।
पर्यासपरिमाण्येन मण्डलानुगतेन च । उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डलम् ।।७७।।
संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः । एतदण्डकटाहस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।।७८।।
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी । भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ।।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ।।७९।।
एते सप्त कृता लोकाछत्राकारा व्यवस्थिताः । स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक्पृथक् ।।८०।।
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः । धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ।।८१।।
अस्याण्डस्य समन्ताच्च संनिविष्टो घनोदधिः । पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते ।।८२।।
घनोदधिपरेणाथ धार्यते घनतेजसा । बाह्यतो घनतेजस्तु तिर्यगूर्ध्वं तु मण्डलम् ।।८३।।

एक लाख उन्यासी हजार योजन है। सातों द्वीपों और समुद्रोंवाली पृथ्वी का यही विस्तार है। पृथ्वी के अन्त का मंडल इस विस्तार से तिगुना अधिक है। इस प्रकार गिना गया हैं कि समण्डल पृथ्वी का विस्तार ग्यारह करोड़ एक लाख सैंतीस योजन है। इस प्रकार पृथ्वी के अन्त तक के मंडल की नाप की गयी है। आकाश में जहाँ तक तारागण और उनका मंडल है, पृथ्वी के सन्निवेश का मंडल भी वहाँ तक कहा गया है। भूमि के विस्तार-परिमाण के ही अनुसार आकाश का भी परिमाण है। सातों लोकों का ऐसा ही मान कहा गया है ।।७१-७६।। पर्याप्त परिमाण के अनुसार मंडलानुक्रम से सातों लोक छत्र की तरह ऊपर-ऊपर घेरे हुए हैं। इन्हीं लोकों में सभी जन्तु रहा करते हैं। अण्डकटाह का यही प्रमाण कहा गया है। इस अण्डकटाह के मध्य में ही सप्तद्वीपा मेदिनी है। सातों लोकों के नाम इस प्रकार हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, तपोलोक और सत्यलोक ।।७७-७९।। ये सातों लोक छत्राकार रूप से अवस्थित हैं। ये सातों लोक अपने सूक्ष्म आवरणों से आवृत होकर पृथक्-पृथक् स्थित हैं। ये बहिः स्थित आवरण परस्पर दस-दस गुना अधिक हैं। ये परस्पर उत्पन्न हुए हैं; किन्तु एक से दूसरा विशेषता लिये हुए है और इन्ही के द्वारा सातों लोकों का धारण हो रहा है ।।८०-८१।। इस अंडे के चारों ओर घनीभूत समुद्र है। इसी सघन जल के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी का धारण किया गया है। इस घनीभूत समुद्र के बाद सघन तेज है। बाहर से यह घनीभूत तेज नीचे-ऊपर मंडलाकार होकर पृथ्वी को धारण करता है। इसके बाद चारों ओर घनीभूत वायु है, जिसके द्वारा भी पृथ्वीमंडल का धारण किया गया है। घनीभूत

समन्ताद्घनवातेन धार्यमाणं प्रतिष्ठितम् । घनवातात्तथाऽऽकाशमाकाशं च महात्मना ।।८४।।
भूतादिना वृतं सर्वं भूतादिर्महता वृतः । ततो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ।।८५।।
पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् । ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते ।।८६।।
मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्धनि । वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।।८७।।
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्धनि । वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।।८८।।
प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्धनि । सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमतः ।।८९।।
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि । तुल्या माहेन्द्रपुर्यां तु सोमस्यापि विभावरी ।।९०।।
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् । स्थिता धर्मव्यवस्थायै लोकसंरक्षणाय च ।।९१।।
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने । काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत ।।९२।।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति । ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ।।९३।।
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः । वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ।।९४।।
सुखायामर्धरात्रं च मध्यमः स्याद्रविर्यदा । सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन्स तु दृश्यते ।।९५।।
विभायामर्धरात्रं स्यान्माहेन्द्र्यामस्तमेति च । तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्नो विधीयते ।।९६।।
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्वाह्नः परिकीर्त्यते । तेषामपररात्रं च ये जना उत्तरापथे ।।९७।।

वायु के बाद महा आकाश है। इस महा आकाश के द्वारा निखिल भूतादि आवृत हैं और भूतादि के द्वारा आकाश घिरा हुआ है एवं यह महा आकाश प्रधान अव्ययात्मा अनन्त के द्वारा आवृत है ।।८२–८५।। अब हम यथाक्रम से लोकपालों के पुर का और ग्रह–नक्षत्रादि के गतिविषयक प्रमाण को कहते हैं। मेरु से पूरब और मानस के शिखर पर धनधान्यपूर्ण और सुवर्ण की तरह परिष्कृत पवित्र इन्द्रपुरी है ।।८६–८७।। मेरु से दक्षिण और मानस के शिखर पर ही संयमन नामक पुर में वैवस्वत यमराज निवास करते हैं। मेरु से पश्चिम और मानस के शिखर पर ही वरुणदेवता की रमणीय सुखा नामक पुरी है ।।८८–८९।। मेरु से उत्तर और मानस के शिखर पर इन्द्रपुरी के समान सोम की विभावरी नामक पुरी है। मानस के उत्तरीय गंडशैल पर चारों ओर लोकपालगण धर्म की व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए और लोकों की रक्षा करने के लिए टिके हुए हैं ।।९०–९१।। लोकपालों से ऊपर रहनेवाले सूर्य जब दक्षिणायन हो जाते हैं, तब उसी दिशा में वर्तमान सूर्य की जो गति है, उसे सुनिये। दक्षिण दिशा में सूर्य की गति धनुष से फेंके गये बाण की तरह हो जाती है। उस समय सूर्यमंडल के साथ–साथ ज्योतिष्चक्र भी साथ–साथ चलने लगता है ।।९२–९३।। जब सूर्य अमरावती के बीचोबीच आ जाते हैं तब यमराज के संयमन पुर में सूर्योदय होता है। जब सूर्य सुखा पुरी में आ जाते हैं, तब वहाँ आधी रात हो जाती है। वरुण देवता की इसी सुखा पुरी से सूर्य का उदय देखा जाता है। सूर्य के विभावरी नगरी में जाने से आधी रात और इन्द्रपुरी में जाने से अस्त काल होता है। उस समय दक्षिण–पूर्व दिशा में अपराह्न और इस दक्षिण दिशा में अपर देशों में पूर्वाह्न हो जाता है ।।९४–९६$\frac{१}{२}$।। जो जन उत्तरापथ में निवास करते हैं, उनके लिए वह रात्रि का शेष काल और जो उत्तर–पूर्व देश में निवास करते हैं, उनके लिए

देशा उत्तरपूर्वा ये पूर्वरात्रं तु तान्प्रति। एवमेवोत्तरेष्वर्को भवनेषु विराजते ।।९८।।
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्यमा यदा। * विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ।।९९।।
रात्र्यर्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च। सोमपुर्यां विभायां तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ।।१००।।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः। अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।।१०१।।
स शीघ्रमेति पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत्। भ्रमन्वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रविः ।।१०२।।
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति। उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।।१०३।।
पूर्वाह्णे चापराह्णे तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः। तपत्येकं तु मध्याह्ने तैरेव तु स रश्मिभिः ।।१०४।।
उदितो वर्धमानाभिरामध्याह्नं तपन्रविः। अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ।।१०५।।

वह रात्रि का पूर्व काल कहलाता है। जब सूर्य उत्तरीय भवन में विराजते हैं और जब वे वरुण के सुखा नामक पुर में जाते हैं, तब मध्याह्न होता है एवं जब वे चन्द्र की विभावरी नगरी में जाते हैं, तब उदय होता है ।।९७-९९।। उस समय अमरावती में आधी रात और यम के नगर में सूर्यास्त होता है। जब चन्द्र की विभावरी पुरी में मध्याह्न और इन्द्र की अमरावती में उदय होता है उस समय संयमन पुर में आधी रात और वरुण की सुखा नगरी में अस्त होता है ।।१००-१०१।। सूर्य जब शीघ्र गति से भ्रमण करते हैं, तब जान पड़ता है कि नक्षत्रगण चक्राकार जलते हुए अंगारे की तरह सूर्य के पीछे घूम रहे हैं। इस प्रकार सूर्य दक्षिण दिशा होकर चारों द्वीपों में भ्रमण करते हैं और बारम्बार उदय-अस्तकाल में उदित और अस्त होते हैं ।।१०२-१०३।। सूर्य अपनी किरणों से स्वर्गीय दोनों देवालयों में से एक पूर्वार्द्ध को पूर्वाह्न में और परार्द्ध को पराह्न में तपाते हैं एवं मध्याह्न में प्रत्येक को प्रतप्त करते हैं। सूर्य उदय से लेकर मध्याह्न पर्यन्त अपनी किरण को बढ़ाते हैं और मध्याह्न से अस्त पर्यन्त धीरे-धीरे किरणों का ह्रास करते हुए अस्त हो जाते हैं ।।१०४-१०५।।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं ग्रन्थः ख. पुस्तके वर्तते-विभावर्यां सोनपुर्यां भास्वरं सूर्यसंज्ञितम् ।।१।।
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च। ऋक्षचन्द्रग्रहः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः ।।२।।
नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः। शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ।।३।।
पठ्यते चाग्निरादित्य उदकश्चन्द्रमाः स्मृतः। शेषाणां प्रकृतिः सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ।।४।।
सरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः। नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो बुधाः ।।५।।
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम्। महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ।।६।।
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ। प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।।७।।
देवी महेन्द्रस्त्वनयोराधिपत्ये विनिर्मितौ। आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः ।।८।।
भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्। रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।।९।।
द्युतिर्द्युतिमतः कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम्। सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ।।१०।।
ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते। भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।।११।।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुग्रहो रविः। यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ।।१२।।

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ । यावत्पुरस्तात्तपति तावत्पृष्ठे तु पार्श्वयोः ।।१०६।।
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः । यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ।।१०७।।
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे । विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ।।१०८।।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च । उच्छ्रयस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ।।१०९।।
शुक्लच्छायोऽग्निरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी । विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।।
रक्तभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णाता ।।११०।।
लेखयाऽवस्थितः सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते । ऊर्ध्वं गतः सहस्रं तु योजनानां स दृश्यते ।।१११।।

उदय और अस्त से ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं का ज्ञान होता है। सूर्य जिस प्रकार आगे तपते हैं या प्रकाश का दान करते हैं, उसी प्रकार पीछे दोनों (पार्श्व) बगलों में भी जहाँ सूर्य उदित हुए देखे जाते हैं वही उदयाचल कहलाता है और जहाँ वे अदृश्य हो जाते हैं, वही अस्ताचल कहलाता है ।।१०६-१०७।। सब लोकों से उत्तर मेरु है और दक्षिण में लोकालोक। बहुत दूर जाने के कारण यह स्थान भूमि की रेखा की तरह प्रतीयमान होता है। सूर्य की किरणें रात को क्षीण हो जाती हैं; अतः यह दिखायी नहीं पड़ता है ।।१०८।। ग्रह, नक्षत्र, तारा और सूर्य के दर्शन तथा अस्त ऊँचे स्थानों से जाने जाते हैं। अग्नि और जल की छाया शुक्ल वर्ण की होती है तथा पृथ्वी की छाया कृष्ण वर्ण की। बहुत दूर रहने के कारण उगते हुए सूर्य किरणों से हीन मालूम पड़ते हैं। क्षीणकिरण होने के कारण उस समय सूर्य में उतनी गर्मी भी नहीं रहती है और वे लोहित वर्ण हो जाते हैं ।।१०९-११०।। रेखा पर स्थित सूर्य जहाँ-जहाँ से देखे जाते हैं, वहाँ से वे हजार योजन ऊपर रहते हैं ।।१११।। सूर्य के अस्त हो जाने पर उनकी किरणों का एक भाग अग्नि में प्रवेश कर जाता

क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः । मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ।।१३।।
तदादित्यादृते येषां कालसंख्या न विद्यते । कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ।।१४।।
ऋतूनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः । कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ।।१५।।
अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च । जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।१६।।
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः । तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।१७।।
स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः । उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदं जगत् ।।१८।।
पार्श्वमूर्ध्वमधश्चैव यापयत्येष सर्वशः । रवे रश्मिसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम् ।।१९।।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः । सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।।२०।।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संपद्व सुरतः परम् । अर्वावसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः ।।२१।।
सुषुम्ना सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन् । तिर्यगूर्ध्वंप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्तितः ।।२२।।
हरिकेश पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्तिता । दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्धयते बुधम् ।।२३।।
विश्वश्रवास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः । संपद्वसुस्तु यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य तु ।।२४।।

प्रभा हि सौरी पादेन अस्तं गच्छति भास्करे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते ।।११२।।
उदितस्तु पुनः सूर्ये ह्यस्तमाग्नेयमाविशत्। संयुक्तो वह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा ।।११३।।
प्रकाश्यं च तथोष्णं च सूर्याग्नेयौ च तेजसी। परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।११४।।
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा रश्मिश्च दक्षिणे। उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।११५।।
अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनं वै प्रविशत्यपः। तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ।।११६।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे। उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ।।११७।।
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते। तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यावेक्ष्यमहः स्मृतम् ।।११८।।
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः। त्र्यंशांशकं तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति ।।११९।।
योजनाग्रान्मुहूर्तस्य इमां संख्यां निबोधत। पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ।।१२०।।

है। इसी से अग्नि रात को बहुत दूर से मालूम पड़ती है। फिर जब सूर्य का उदय होता है, तब उनके अस्तकालीन तेज के साथ अग्नि का तेज भी सूर्य में मिल जाता है। इसी से सूर्य दिन में अधिक तपते हैं। सूर्य का प्रकाशमान तेज और अग्नि का उष्ण तेज परस्पर मिलकर सम्पूर्ण लोगों को रात-दिन सन्तुष्ट करते हैं। उत्तर भूम्यर्द्ध में अथवा दक्षिण भूम्यर्द्ध में जब सूर्य उगते हैं, तब रात्रि जल के बीच प्रवेश कर जाती है इसलिए दिन में रात के प्रवेश करने से जल ताम्र वर्ण का हो जाता है ।।११२-११५।। फिर जब सूर्य अस्त हो जाते हैं, तब दिन भी जल में प्रवेश कर जाता है। इसी कारण जल में दिन के प्रवेश कर जाने से रात को जल उज्ज्वल हो जाता है। सूर्य के प्रकाश से युक्त दिन है और अन्धकारमयी रात्रि है। इसीलिए सूर्य को देखकर ही अर्थात् सूर्य के उदय-अस्त से ही दिन-रात की व्यवस्था होती है ।।११६-११८।। इस प्रकार जब सूर्य पुष्कर के बीच विचरण करते हैं तब पृथ्वी के तीन अंश को वे एक मुहूर्त में ही पार कर जाते हैं। सूर्य

षष्ठस्त्वर्वावसूरश्मियोनिस्तु स बृहस्पतेः। शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।।२५।।
एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः। वर्धन्ते विदिताः सर्वा विश्वं चेदं पुनर्जग ।।२६।।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता। क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।।२७।।
तेषां क्षेत्राण्यथाऽऽदत्ते सूर्यो नक्षत्रतां ततः। तीर्णानां सुकृत्तेनेह सुकृन्तान्ते गृहाश्रयात् ।।२८।।
ताराणां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः। दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः ।।२९।।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान्। सुवतिस्यन्दनार्थश्च धातुनेष विभाव्यते ।।३०।।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः। बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।।३१।।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते। सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डलं भास्करे खगे ।।३२।।
ज्वलभेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भमिते शुभे। घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ।।३३।।
घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु। विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः ।।३४।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः। तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।।३५।।
शौरे सूर्योविशस्था"तिविभावसुः इति ।।

पञ्चाशत्तु तथाऽन्यानि सहस्त्राण्यधिकानि तु। मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥१२१॥
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्। पर्यागच्छेत्तदाऽऽदित्यो माघे काष्ठन्तमेव हि ॥१२२॥
सर्पते दक्षिणायां तु काष्ठायां तन्निबोधत। नव कोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ॥१२३॥
तथा शतसहस्त्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च। अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४॥
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः। क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्तोदितश्चरन् ॥१२५॥
मण्डलं विषुवद्यापि? योजनैस्तन्निबोधत। तिस्त्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवद्यापि? सा स्मृता ॥१२६॥
तथा शतसहस्त्राणामशीत्येकाधिका पुनः। श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत् ॥
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्तोदितश्चरन्
॥१२७॥
उत्तरायां च काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च। योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८॥
अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च। अष्टपञ्चाशतं चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९॥
नागवीथ्युत्तरा वीथी अजवीथी च दक्षिणा। मूलं चैव तथाऽऽषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रयः ॥
अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रयः
॥१३०॥
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः। एतच्छतसहस्त्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥१३१॥
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्च योजनैः। काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात्प्रतिष्ठितम् ॥१३२॥
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे। ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३॥
एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्ततिः। सहस्त्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्ततिः ॥१३४॥

एक मुहूर्त में जितने योजन जाते हैं, उसको सुनिये। सूर्य प्रति मुहूर्त में एकतीस लाख पचास हजार योजन चला करते हैं ॥११९-१२१॥ इस गति से जब सूर्य दक्षिण दिशा में जाते हैं, तब वे माघ महीने तक उस दिशा में रहते हैं। अब दक्षिण दिशा में उनकी जो गति है, उसको सुनिये। इस दिशा में सूर्य दिन-रात में नौ करोड़ एक लाख पैंतालीस हजार योजन चला करते हैं। क्षीरोद समुद्र के उत्तर उदित होकर चलते हुए सूर्य जब दक्षिण दिशा से लौटकर विषुवत् रेखा पर स्थित होते हैं, उस काल में विषुव मण्डल के योजन-प्रमाण को सुनिये ॥१२२-१२५½॥ इस विषुव का विस्तार तीन करोड़ इक्यासी लाख योजन है। छठे शाकद्वीप के उत्तर उदित होकर विचरण करते समय जब सूर्य श्रावण मास में उत्तर दिशा में चले जाते हैं, तब उत्तरीय दिशा के मण्डल-प्रमाण को विद्वानों ने एक करोड़, अस्सी नियुत अठावन योजन बताया है। सूर्य के गमनमार्ग के दो नाम हैं—नागवीथी और अजवीथी। उत्तरवाली नागवीथी है और दक्षिणवाली अजवीथी। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नामक तीनों नक्षत्रों में जब सूर्य उदित होते हैं, तब उसका नाम अजवीथी होता है एवं अभिजित से लेकर तीन नक्षत्रों में जब उदय होते हैं, तब उसका नाम नागवीथी रहता है ॥१२६-१३०॥ इन दोनों दिशाओं में जो अन्तर है उसे हम योजनों में बताते हैं। यह दोनों दिशाओं का अन्तर एकतीस लाख तैंतीस सौ तैंतीस योजन का है, किन्तु इसकी संख्या एक योजन ऊपर से की गयी है। दक्षिण और उत्तर दिशाओं के रेखामध्यगत अन्तर की संख्या भी हम योजनों में बताते हैं, सुनिये ॥१३१-१३३॥ इन दोनों रेखाओं में एक से दूसरे का अन्तर एकहत्तर नियुत एक हजार पचहत्तर योजन है। दोनों दिशाओं की बाहरी और भीतरी रेखाओं का परिमाण एक-सा ही कहा गया

लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोः स्मृतम् । अभ्यन्तरं तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ।।१३५।।
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततं तु यथाक्रमम् । मण्डलानां शतं पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ।।१३६।।
*चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसुः । प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ।।१३७।।
एकविंशद्योजनानां सहस्राणि समासतः । शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्तिते ।।१३८।।
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते । एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मण्डलं हि तत् ।।१३९।।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक्स तु विधीयते । प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ।।१४०।।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्तते । दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते ।।१४१।।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं च कालेनाल्पेन गच्छति । सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणोत्तरे ।।१४२।।
त्रयोदशार्धमृक्षाणामह्नाऽनुचरते रविः । मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।।१४३।।
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति । तथोदगमने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ।।१४४।।
त्रयोदशार्धमर्धेन ऋक्षाणां चरते रविः । तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ।।१४५।।
अष्टादशमुहूर्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् । अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ।।१४६।।
त्रयोदशार्धमर्धेन ऋक्षाणां चरते रविः । मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।।१४७।।
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा । मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ।।१४८।।
त्रिंशन्मुहूर्तानेवाऽऽहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् । उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि सः ।।१४९।।

है। सूर्य जब उत्तर की ओर रहते हैं, तब वे भीतरी मण्डल में परिभ्रमण करते हैं और जब दक्षिण में रहते हैं तब बाहरी मण्डल की परिक्रमा करते हैं। इसी क्रम से वे सदा एक सौ अस्सी मण्डलों के भीतर-बाहर घूमा करते हैं। दक्षिण दिशा में भी सूर्य इसी प्रकार चला करते हैं। यहाँ के मण्डल का परिमाण भी संक्षेप में योजनों में सुनिये ।।१३४-१३७।। इस मण्डल का प्रमाण इक्कीस हजार दो सौ इक्कीस योजन कहा गया है। मण्डल का विष्कम्भ या विस्तार वक्र है। सूर्य प्रतिदिन मण्डलक्रम से अर्थात् एक के बाद दूसरे पर विचरण किया करते हैं ।।१३८-१४०।। कुम्हार का चक्का जैसे शीघ्र घूम आता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिण दिशा में जाकर शीघ्र लौट आते हैं। सूर्य थोड़े ही काल में अर्थात् बारह घड़ियों में ही दक्षिण दिशा में उत्तमोत्तम भूमि में विचर आते हैं। दिन में सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रों का परिभ्रमण कर लेते हैं और रात में वे अठारह मुहूर्तों में फिर उतने ही नक्षत्रों का परिभ्रमण करते हैं। कुम्हार के चक्के के बीच का हिस्सा जिस प्रकार धीरे-धीरे घूमता है, उसी प्रकार उत्तरायण होने पर सूर्य का भी पराक्रम मन्द हो जाता है और वे धीरे-धीरे चलने लगते हैं। इस समय सूर्य अधिक देर में थोड़ी-सी ही दूरी तय कर पाते हैं ।।१४१-१४६।। उत्तरायण काल में पश्चिम दिशा में मन्द पराक्रमवाले सूर्य अठारह मुहूर्तों में चौदह नक्षत्रों का परिभ्रमण दिन में करते हैं। फिर रात में भी वे उतने ही नक्षत्रों का परिभ्रमण अठारह मुहूर्तों में ही करते हैं। फिर चक्र की गति धीमी पड़ जाने से जैसे उसके बीच

---

* अत्राऽऽप्मनेपदमाषम्।

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते। ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्तते ।।१५०।।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु। दिवा नक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ।।१५१।।
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता। तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ।।१५२।।
दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्रं विधीयते। गतिः सूर्यस्य नक्तं वै मन्दा चापि तथा स्मृता ।।१५३।।
एवं गतिविशेषेण विभजन्रात्र्यहानि तु। तथा विचरते मार्गं समेन विषमेण च ।।१५४।।
लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चतुर्दिशम्। अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ।।
भजन्नसावहोरात्रमेवं गतिविशेषणैः ।।१५५।।
दक्षिणे नागवीथ्यायां लोकालोकस्य चोत्तरम्। लोकसंतारको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ।।१५६।।
पृष्ठे यावत्प्रभा सौरी पुरस्तात्संप्रकाशते। पार्श्वयोः पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वतः ।।१५७।।
योजनानां सहस्राणि दशोर्ध्वं तूच्छ्रितो गिरिः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ।।१५८।।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह। अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ।।१५९।।
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वतः परम्। लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ।।१६०।।

का मृत्पिण्ड घूमता रहता है उसी प्रकार दोनों दिशाओं में मध्य में अवस्थित ध्रुव भी उस समय घूमा करता है। ध्रुव तीस मुहूर्तों में एक अहोरात्र का परिभ्रमण कर दोनों दिशाओं के मध्य में स्थित मण्डलों की परिक्रमा करता है। कुम्हार के चक्के का नाभि-देश जैसे जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहता है, उसी प्रकार ध्रुव भी एक स्थान पर ही वर्तमान रहते हैं ।।१४७-१५०।। दोनों दिशाओं के मध्य में मंडलों का परिभ्रमण करनेवाले सूर्य की गति दिन में मन्द और रात में तीव्र हो जाती है। चन्द्रमा की उत्तर दिशा में गति होने से दिन की गति मन्द पड़ जाती है और उसी दिशा में सूर्य की गति होने से रात की गति तीव्र हो जाती है। चन्द्रमा के दक्षिण जाने से दिन की गति तीव्र हो जाती है और सूर्य के दक्षिण जाने से रात की गति मन्द हो जाती है ।।१५१-१५३।। इस प्रकार अपने गति-विशेष से दिन-रात का विभाग करते हुए वे सम और विषम मार्ग से विचरण किया करते हैं। लोकालोक पर्वत के चारों ओर जो लोकपालगण अवस्थित हैं उनके ऊपर होकर अगस्त्य वेग से चला करता है और यही अपने गति-विशेष से दिन-रात का विभाग किया करता है ।।१५४-१५५।। नागवीथी के दक्षिण और लोकालोक के उत्तर एवं वैश्वानर पथ के बाहर लोक को तारनेवाला अगस्त्य वर्तमान है। लोकालोक पर्वत के पृष्ठभाग और अग्रभाग में सूर्य की जितनी प्रभा चमकती है, उतनी ही उसके दोनों पार्श्वों में पृष्ठ भाग में और सभी स्थानों में चमकता है। सारांश यह है कि सूर्य उस पर्वत के दो भागों को प्रकाशित करते हैं, तो अगस्त्य भी उसके दो भागों को प्रकाशित करता है। यह पर्वत एक हजार दस योजन ऊँचा है। यह एक ओर प्रकाशवान् और दूसरी ओर से अन्धकारपूर्ण एवं चारों ओर मंडलाकार है। चन्द्र-सूर्यादि नक्षत्र ग्रह ताराओं के साथ इस लोकालोक पर्वत के भीतर ही प्रकाशित होते हैं ।।१५६-१५९।। यहाँ तक तो लोक है, उसके बाद निरालोक है। लोकालोक एक ही है; किन्तु निरालोक की गणना नहीं की जा सकती है। जिस कारण सूर्य भ्रमण

लोकालोकं तु संधत्ते यस्मात्सूर्यः परिग्रहम्। तस्मात्संध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम्।।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ।।१६१।।
सूर्यं हि ग्रसमानानां संध्याकाले हि रक्षसाम्। प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम्।।
अक्षयत्वं च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ।।१६२।।
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः। प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुदयन्तं दिने दिने।।
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।।१६३।।
अथ सूर्यस्य तेषां च युद्धमासीत्सुदारुणम्। ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः।।
संध्येति समुपासन्तः क्षेपयन्ति महाजलम् ।।१६४।।
ओंकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ।।१६५।।
(+अग्निहोत्रे हूयमाने समन्ताद्ब्राह्मणाहुतिः। सूर्यज्योतिः सहस्रांशुः सूर्यो दीप्यति भास्करः) ।।१६६।।
ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः। योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते शतम् ।।१६७।।
ततः प्रयाति भगवान्ब्राह्मणैः परिवारितः। बालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः ।।१६८।।
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलान्तम्।।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।।१६९।।

करते समय लोकालोक का संधान करते हैं इसी कारण उषा और व्युष्टि के मध्य को द्विजगण संध्या कहा करते हैं एवं उषा को रात्रि कहते हैं और व्युष्टि को दिन ।।१६०-१६१।। एक बार संध्या काल में दुरात्मा राक्षसों ने सूर्य को खा जाना चाहा; किन्तु प्रजापति ने उन्हें शाप दे दिया, जिससे उनकी (तात्कालिक) मृत्यु हो गयी; परन्तु उनकी देह सदा के लिए अक्षय हो गयी। ये मन्देह नामक राक्षस संख्या में तीन करोड़ हैं। ये दुरात्मा प्रतिदिन उदय काल में सूर्य को खा जाना चाहते हैं और उन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं ।।१६२-१६३।। तब सूर्य के साथ उन राक्षसों का घनघोर युद्ध होता है। ब्राह्मणों के साथ श्रेष्ठ देवतागण और ब्रह्मा उस समय सन्ध्या की उपासना करने लग जाते हैं एवं गायत्री तथा ओंकार से अभिमन्त्रित कर महाजल प्रदान करते हैं ।।१६४।। उस वज्रभूत जल से वे दैत्यगण जल जाते हैं। इतना ही नहीं ब्राह्मण लोग भी सर्वत्र अग्निहोत्र में यथाविधि आहुतियाँ देने लग जाते हैं, जिससे सहस्र किरणवाले प्रभा-सम्पन्न सूर्य जगमगा उठते हैं। तब फिर महातेजस्वी, अत्यन्त द्युतिमान् और महापराक्रमी सूर्य सौ हजार योजन ऊपर उठ जाते हैं। इतना हो जाने के बाद भगवान् ब्रह्मा कार्य सम्पन्न करनेवाले मुनियों, ब्राह्मणों और मरीचि तथा बालखिल्य ऋषियों के साथ अपने स्थान को लौट जाते हैं ।।१६५-१६८।। पन्द्रह निमेषो की काष्ठा, तीस काष्ठा की कला, फिर तीस कला का मुहूर्त और तीस मुहूर्तों का रात-दिन होता है। भाग के अनुसार दिवसों का यथाक्रम वृद्धि

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

ह्रासवृष्टी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम्। संध्या मुहूर्तमानं तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ।।१७०।।
लेखाप्रभृत्यथाऽऽदित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै। प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागस्त्वह्नः स पञ्चमः ।।१७१।।
तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्तस्तु संगवः। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालाच्च संगवात् ।।१७२।।
तस्मान्मध्यंदिनात्कालादपराह्ण इति स्मृतः। त्रय एव मुहूर्तास्तु तस्मात्कालाच्च मध्यमात् ।।१७३।।
अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते। दशपञ्च मुहूर्तांद्वै मुहूर्तस्त्रिय एव च ।।१७४।।
दशपञ्चमुहूर्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम्। ÷दशपञ्चमुहूर्ताद्वै रात्रिंदिवमिति स्मृतम् ।।१७५।।
वर्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ।।१७६।।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तद्विभाव्यते। अहोरात्रं कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ।।१७७।।
तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते। द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः ? ।।
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ।।१७८।।
निमेषादिकृतः कालः काष्ठाया दश पञ्च च। कलायास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशीतिद्वयास्मिका ।।१७९।।
शतघ्नैकोनकास्त्रिशन्मात्रात्रिंशत्षडुत्तरा। द्विषष्टिभाक्त्रयोविंशन्मात्रायां च चला भवेत् ।।१८०।।
चत्वारिंशत्सहस्त्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतिः। सप्ततिं चापि तत्रैव नवतिं विद्धिनिश्चये ।।१८१।।

और ह्रास होता रहता है, किन्तु सन्ध्या का परिणाम सदा एक मुहूर्त रहता है। दिन के न्यूनाधिक होने का प्रभाव इस पर नहीं पड़ता है। सूर्य जब अपनी रेखा पर उदय काल से तीन मुहूर्त तक चल चुकते हैं, तब वह काल प्रातस्तन कहलाता है और वह दिन का पाँचवाँ भाग होता है ।।१६९-१७१।। उस प्रातस्तन काल के बाद तीन मुहूर्त तक संगव काल कहलाता है। उस संगव काल के बाद तीन मुहूर्त तक मध्याह्न काल कहलाता है। उस मध्याह्न काल के बाद तीन मुहूर्त तक अपराह्ण रहता है। अपराह्ण बीत जाने के बाद का समय सायाह्न कहलाता है। यह सायाह्न पन्द्रह मुहूर्तों के बाद तीन मुहूर्तों तक रहता है ।।१७२-१७४।। जब विषुवत् रेखा पर सूर्य स्थिर रहते हैं, तब पन्द्रह मुहूर्तों का दिन और पन्द्रह मुहूर्तों की रात होती है। सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने पर रात और दिन घटते-बढ़ते रहते हैं। इसी से कभी दिन रात को ग्रस लेता है और कभी रात दिन को ।।१७५-१७६।। शरद् और वसन्त काल के मध्य में सूर्य विषुवत् रेखा पर चले जाते हैं, उस समय विषुव अर्थात् दिन-रात बराबर होता है। पन्द्रह दिनों का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो महीनों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयनों का एक संवत्सर होता है ।।१७७-१७८।। निमेषादि के द्वारा काल का विभाग किया जाता है। पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठाओं की कला, बयासी कलाओं की मात्रा होती है। निन्यानबे (?) छत्तीस, बासठ और तेईस मात्राओं की चला होती है। चालीस हजार आठ सौ सत्तर या नब्बे मात्राओं की विद्युति होती है। चार सौ विद्युत् परिमाणों का चरांश या नालिका होती है ।।१७९-१८२।। पाँच प्रकार के जो संवत्सरादि हैं, उनका चतुर्विध मान कहा गया

÷ इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

चत्वार्येव शतान्याहुर्विश्रुतौ वैधसे युगे । चरांशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ।।१८२।।
संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पितः । निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ।।१८३।।
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञितः ।।१८४।।
विंशं शतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगम् । एतान्यष्टादशस्त्रिं (त्रिं) शदुदयो भास्करस्य च ।।१८५।।
ऋतवस्त्रिंशतः सारा अयनानि दशैव तु । पञ्चत्रिंशच्छतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्करः ।।१८६।।
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्करः । एकषष्टिस्त्वहोरात्रादनुरेको विभाव्यते ।।१८७।।
अह्नां तु त्र्यधिकाशीतिः शतं चाप्यधिकं भवेत् । मानं तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयं भुवनस्य तु ।।१८८।।
सौरसौम्यं तु विज्ञेयं नाक्षत्रं सावनं तथा । नामान्येतानि चत्वारि यैः पुराणं विभाव्यते ।।१८९।।
श्वेतस्योत्तरतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वतः । त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ।।१९०।।
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्वतश्चैव विश्रुतः । एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तितः ।।१९१।।
तस्य वै पूर्वतः शृङ्गं मध्यमं तद्धिरणमयम् । दक्षिणं राजतं चैव शृङ्गं तु स्फटिकप्रभम् ।।१९२।।
सर्वरत्नमयं चैकं शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् । एवं कूटैस्त्रिभिः शैलः शृङ्गवानिति विश्रुतः ।।१९३।।
यत्तद्विषुवतं शृङ्गं तदर्कः प्रतिपद्यते । शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः ।।
अहस्तुल्यामथा रात्रिं करोति तिमिरापहः ।।१९४।।

है। सभी काल में युगादि का भी निश्चय इसी प्रकार होता है। वत्सरों की विशेष संज्ञा इस प्रकार कही गयी है– पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर ।।१८३–१८४।। बीस सौ पर्वों के पूर्ण हो जाने पर एक सूर्य युग होता है। यह सूर्य के अठारह और तीस (अड़तालीस) बार उदय होने पर होता है। सूर्य के दस अयन तीस ऋतुओं के होते हैं। इस प्रकार के पैंतीस सौ अयनों के सूर्य के साठ महीने होते हैं ।।१८५–१८६।। सूर्य के एक महीने में तीस दिन-रात होते हैं। इस प्रकार के एकसठ अहोरात्र का एक दनु होता है। भानु का भुवन-भ्रमण मान एक सौ तिरासी दिनों का है। सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन नामक चार प्रकार के मान सभी पुराणों में कहे गये हैं ।।१८७–१८९।। श्वेत पर्वत के उत्तर शृङ्गवान् नाम का एक पर्वत है, जिसके तीनों शृङ्ग आकाश को छूते रहते हैं। उन्हीं शृङ्गों के कारण उसका शृङ्गवान् नाम विख्यात है। इसका विस्तार तथा विष्कम्भ आदि पहले ही बताया जा चुका है ।।१९०–१९१।। इसका पूर्व शृङ्ग सोने का है और दक्षिण ओर चाँदी का शिखर है, जो स्फटिक की तरह है, उत्तर दिशा में एक अत्युत्तम शृङ्ग है जो सभी रत्नों से परिपूर्ण है। इन्हीं तीनों शिखरों से वह पर्वत शृङ्गवान् कहलाता है। शरद् और वसन्त काल में मध्यम गति अवलम्बन करके भगवान् भास्कर उस पर्वत के उस शिखर का अवलम्बन करते हैं, जो विषुवत् रेखा के सन्निकट है। उन दिनों सूर्य दिन-रात्रि को बराबर बना देते हैं ।।१९२–१९४।। सूर्य के

हरिताश्च हया दिव्यास्ते नियुक्ता महारथे। अनुलिप्ता इवाऽऽभाति पद्मरक्तैर्गभस्तिभिः ।।१९५।।
मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः। मुहूर्ता दश पञ्चैव अहो रात्रिश्च तावती ।।१९६।।
कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत्। विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांशे निशाकरः ।।१९७।।
विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम्। तदा चन्द्रं विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ।।१९८।।
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः। सूर्येण विषुवं विद्यात्कालं सोमेन लक्षयेत् ।।१९९।।
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत्। तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ।।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुखमेतत्तु दैवतम् ।।२००।।
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्तकाः। पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ।।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ।।२०१।।
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ।।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः सहः सहस्याविति दक्षिणं स्यात् ।।२०२।।
संवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुता। तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तराः स्मृताः ।।२०३।।
तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्याऽस्य पर्वणः। तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदेवहितं सदा ।।२०४।।
एवं ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानवः। तस्मात्स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्वगं सदा ।।२०५।।

महारथ में हरित वर्ण के अर्थात् हरे रङ्ग के दिव्य घोड़े जुते हुए हैं, जिनके शरीर की कान्ति पद्मराग मणि के समान है। मेष और तुला राशि पर सूर्य के जाने पर रात तथा दिन पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्तों के ही होते हैं ।।१९५-१९६।। सूर्य जिस समय कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में पहुँचते हैं, उस समय चन्द्रमा विशाखा के चतुर्थ चरण में वर्तमान रहते हैं। जब सूर्य विशाखा के तीसरे अंश या चरण में जाते हैं, तब तक चन्द्रमा कृत्तिका के सिर पर पहुँच जाते हैं। महर्षिगण इसी को विषुव काल कहा करते हैं। चन्द्र-सूर्य की गति से ही इस विषुव काल का ज्ञान होता है। जब दिन और रात का मान बराबर हो जाता है, तब विषुव होता है। इस समय पितरों के निमित्त दान देना चाहिए। यह दान विशेषकर ब्राह्मणों को देना चाहिए; क्योंकि ब्राह्मण ही देवों के मुख कहे जाते हैं ।।१९७-२००।। कला, काष्ठा और मुहूर्तादि के भेद से ऊनरात्र और अधिक मास होते हैं। अनुमति और राका नामक दो प्रकार की पूर्णिमा तथा सिनीवाली और कुहू नामक दो प्रकार की अमावस्या होती है ।।२०१।। माघ, फाल्गुन, चैत, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ उत्तरायण है, एवं श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष एवं पौष दक्षिणायन। इन्ही बारह महीनों का एक संवत्सर होता है। पञ्चाब्द या पञ्च संवत्सर ब्रह्मतनय कहलाता है। ऋतुएँ इन्हीं से उत्पन्न हुई हैं और इन्हीं का अंश कहलाती हैं ।।२०२-२०३।। इस कारण देव, पितरों का कार्य पर्वानुमुख अमावस्या में करना चाहिए और अमावस्या की अपेक्षा विषुव में करना श्रेष्ठ है। मानव इस विषुव रहस्य को जानकर कभी भी देव-पितरों के कार्य में प्रमाद न करे, इसलिए सभी प्रजा को यह विषुव तत्त्व जान लेना चाहिए ।।२०४-२०५।। आलोक का जहाँ तक अन्त है, वहाँ तक लोक

आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते । लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ।।२०६।।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवात् । सुधामा चैव वैराजः कर्दमः शङ्खपास्तथा ।।
हिरण्यलोमा पर्जन्यः केतुमान्रजतश्च यः ।।२०७।।
निर्द्वंद्वा निरभिमाना निस्तन्त्रा निष्परिग्रहाः । लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ।।२०८।।
उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् । पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ।।२०९।।
तत्राऽऽसते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः । लोकस्य संतानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ।।२१०।।
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते । प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।।२११।।
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे । संतत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।।२१२।।
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु च । पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।।
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवात् ।।२१३।।
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् । सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।।
क्रियावतां प्रसंख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ।।२१४।।
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भप्रकृतेन च । इच्छाद्वेषप्रकृत्या च मैथुनोपगमेन च ।।२१५।।
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च । एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।।२१६।।

है; लोकान्तपर्यन्त लोक कहलाता है। सारांश यह कि लोकालोक पर्वत आलोक के शेष भाग में वर्तमान है। इस लोकालोक के मध्य में लोकपालगण स्थित हैं। वैराज सुधामा, शङ्खपाभिधेय कर्दम, पर्जन्य, हिरण्यलोमा और केतुमान् रजत नामक चार महात्मा लोकपाल वहाँ प्रलयकाल तक रहते हैं ।।२०६-२०७।। ये लोकपाल वहाँ चारों ओर निर्द्वन्द्व, निरभिमान, शासनविहीन और परिजनशून्य होकर निवास करते हैं। अगस्त्य के उत्तर और अजवीथी के दक्षिण एवं वैश्वानर मार्ग के बाहर जो मार्ग है वह पितृयान है। उस पितृयान मार्ग में लोक विस्तारक, प्रजावान्, अग्निहोत्रकर्त्ता मुनिगण निवास करते हैं। ये सब प्रजाजन की वृद्धि करने की अभिलाषा से आशीर्वाद द्वारा जीवों के प्रारब्ध कर्म को पुष्ट या आरम्भ करते हैं। इनका दक्षिण पथ है ।।२०८-२११।। सन्तान, तपस्या, मर्यादा और शास्त्र ज्ञानादि द्वारा ये प्रत्येक युग में विचलित धर्म का पुनः संस्थापन करते हैं। इनके पूर्ववर्ती वंशधरों के घर में जिस प्रकार परवर्ती वंशधरों का जन्म होता है, उसी प्रकार परवर्ती वंशधर के घर में पूर्ववर्ती वंशधर के मरण होने पर जन्म होता है। इसी प्रकार इनका परिवर्तन होता रहता है और प्रलय काल तक ये वर्तमान रहते हैं ।।२१२-२१३।। अठासी हजार गृहस्थ मुनिगण सूर्य के दक्षिण भाग में चन्द्र-तारा आदि जब तक रहते हैं तब तक रहते हैं। ये क्रियावान् रूप से जन्म ग्रहण करके श्मशान में आश्रय ग्रहण करते हैं। लोक व्यवहार, भूतों का आरम्भ, इच्छा द्वेषादि युक्त, प्रकृति, मैथुन, कर्म और कायकृत विषय-भोगजनित दोष आदि कारणों से सिद्धगण श्मशान का सेवन करते हैं। इन मुनियों ने प्रजा कामना से द्वापर युग में जन्म ग्रहण किया था ।।२१४-२१६।। नागवीथी

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम्। उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥२१७॥
यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः। सततं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ॥२१८॥
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम्। उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसंप्लवात् ॥२१९॥
(*ते प्रसङ्गात्तु लोकस्य मैथुनस्य तु वर्जनात्। इच्छाद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ॥
पुष्टिश्च कामसंयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात् ॥२२०॥
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे। आभूतसंप्लवस्थानममृतत्वं विभाव्यते ॥२२१॥
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः । ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ॥
आभूतसंप्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२२२॥
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यत्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम्। एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥
तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्। धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ॥२२३॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्योतिष्प्रचारो नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०॥

के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण एवं सविता के उत्तर जो मार्ग है, वह देवयान कहलाता है। वहाँ निवास करनेवाले विमल, सिद्ध ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म को सदा हेय समझते हैं। इसी से वे मृत्युंजय हैं ॥२१७-२१८॥ इनके अनन्तर अट्ठासी हजार ऊध्वरिता ऋषिगण हैं, जो सूर्य के उत्तर पथ में प्रलयकाल तक निवास करते हैं। ये लोक व्यवहार से विरत हैं, मैथुन नहीं करते, इच्छा-द्वेषादि का संग्रह, भूतों का आरम्भ (सृष्टि) नहीं करते, इच्छापूर्ति से विरक्त और शब्दादि दोष का दर्शन (आप्त वाक्य में दोष) भी नहीं करते हैं। अतएव इन शुद्ध कारणों के द्वारा इन्होंने अमृतत्व लाभ किया है और प्रलयकाल तक अमृतत्व का उपभोग करते हैं ॥२१९-२२१॥ यही तीनों लोकों की स्थिति का काल है। पुनर्जन्म से रहित मुक्त व्यक्ति अथवा ब्रह्महत्या करनेवाले पापी, अश्वमेध करनेवाले पुण्यात्मा और ऊर्ध्वरिता मुनिगण इस महाप्रलय-काल तक रहते हैं। इसके बाद इन सबका क्षय हो जाता है। सप्तर्षि मण्डल के ऊपर ध्रुव तक विष्णु पद कहलाता है। यह आकाश में दिव्य और प्रकाशवान् तीसरा पदार्थ है। यहाँ जाने पर फिर कोई चिन्ता नहीं सताती है। यह विष्णु का परम पद है। लोक साधक ध्रुव आदि इसी विष्णु पद के सहारे टिके हुए हैं ॥२२२-२२३॥

श्री वायुमहापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

अथैकपञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिष्प्रचारः

सूत उवाच

स्वायंभुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु। भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ।।१।।
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम्। सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः ।।२।।

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम्। तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासंकरेण च ।।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ।।३।।
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम। भूतसंमोहनं त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ।।४।।

सूत उवाच

भूतसंमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोधत। प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तत्संमोहयते प्रजाः ।।५।।
योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शैशुमारे व्यवस्थितः। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ।।६।।
स हि भ्रमन्भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।।७।।

अध्याय ५१

ज्योतिष्प्रचार

सूत जी बोले–स्वायंभुव मन्वन्तर के वर्णन–प्रसङ्ग में भूतकालिक वृत्तान्त कह चुके हैं। अब हम अनुक्रम से भविष्य की बातों का विवरण सुनाते हैं। यह सुनकर मुनियों ने लोमहर्षण सूत से पूछा कि सूर्य–चन्द्र आदि ग्रहों की गति किस प्रकार की होती है ।।१–२।।

ऋषिगण बोले–यह ज्योतिश्चक्र गगनमण्डल में किस प्रकार घूमता है। यह व्यूहाकार टेढ़ा–मेढ़ा घूमता हुआ भी आपस में टकराता नहीं है। इसे कौन घुमाता है? अथवा यह स्वयं घूमता है? यह सब हम जानने की इच्छा करते हैं; क्योंकि यह कथा जीवों को भ्रम में डाल देनेवाली है; इसी से सुनने की इच्छा होती है। सूतसत्तम! आप हम लोगों को यह कथा सुनावें ।।३–४।।

सूत जी बोले–जीवों को आश्चर्यचकित करनेवाली यह कथा हम कहते हैं, आप लोग सुनें। यह ज्योतिश्चक्र प्रत्यक्ष होते हुए भी अज्ञेय होने के कारण भ्रम में डाल देता है। आकाश में जो यह चारों ओर सौर मण्डल स्थित है, उसके पुच्छ भाग में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव मेधिस्तम्भ (केन्द्र) के रूप में वर्तमान हैं ।।५–६।। ये स्वयं घूमते हैं और ग्रहों के साथ चन्द्र–सूर्य को भी घुमाते हैं। घूमते हुए ध्रुव का नक्षत्र–समूह चक्र की तरह अनुसरण करता है। ध्रुव के

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम्। सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।।८।।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै। तेषां योगश्च भेदाश्च कालाचारस्तथैव च ।।९।।
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे। विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ।।१०।।
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा। शुभाशुभं प्रजानां च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते ।।११।।
ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति। तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ।।१२।।
परिवर्तक्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन्दिशः। सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः ।।१३।।
आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम्। नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते ।।१४।।
यत्सोमात्स्रवते सूर्यं तदभ्रेष्ववतिष्ठते। मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि ।।१५।।
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम्। न नाशमु (उ) दकस्यास्ति तदेव परिवर्तते ।।१६।।
संधारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता। अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।१७।।
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः। धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ।।१८।।
सार्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसश्च्युतम्। सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम् ।।१९।।
सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्तते। शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ।।२०।।

ही अनुकूल सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि नक्षत्र मण्डल घूमा करते हैं। वायु समूह के बन्धन द्वारा यह नक्षत्र मण्डल ध्रुव में बँधा हुआ है। उनका योग, भेद, कालाचार, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणोत्तर अयन, विषुव और ग्रहवर्ण ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं ।।७–१०।। वर्षा, घाम, हिम, रात, दिन और संध्या तथा प्रजाजन के शुभाशुभ व्यापार ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं। सभी नक्षत्रादि ध्रुव के ही अधिकार में हैं। सूर्य केवल उन्हें आवृत करते हैं। वही प्रदीप्त किरण ध्रुव कालाग्नि और दिवाकर भी हैं। विप्रो! परिवर्तन क्रम से सूर्य वायु युक्त किरण द्वारा दिशाओं को आलोकमय कर सम्पूर्ण जगत् का जल शोषण करते हैं ।।११–१३।। वह सूर्य द्वारा खींचा हुआ जल अग्निमय सूर्य से वायुयुक्त नाड़ी द्वारा सोम में संक्रान्त होता है। फिर लोक रक्षा के लिए वृष्टि रूप में परिवर्तित होता है। सोम से जो जल स्रवित होता है, वह आकाश में या मेघ में ठहरता है। फिर वायु के धक्के से मेघ जल बरसाया करते हैं। इसी प्रकार जल की वृष्टि और शोषण होता है। जल का कभी भी नाश नहीं होता है; प्रत्युत ऐसा ही परिवर्तन हुआ करता है। जीवों की रक्षा के लिए विधाता के द्वारा यह माया निर्मित की गयी है। इसी माया के द्वारा सचराचर तीनों लोक व्याप्त हैं ।।१४–१७।। देव दिवाकर ही विश्वेश, लोककर्त्ता, सहस्रांशु, प्रजापति, सम्पूर्ण लोकों के धारणकर्त्ता, प्रभु और विष्णु हैं। सार्वलौकिक जो जल है, वह सोम से मेघमण्डल में ही द्रवित हुआ है; इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् चन्द्र के ही द्वारा प्रतिष्ठित है। यह हमने यथार्थ बात कही है। सूर्य से ताप निकलता है और चन्द्र से शीतलता। ये ही शीतोष्ण तत्त्व पृथ्वी को धारण करते हैं ।।१८–२०।। पवित्र

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका। सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमाः ।।२१।।
सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः। तेषु संदह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ।।२२।।
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम्। आर्कं तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ।।२३।।
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः। यतस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तो दिवाकरः ।।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभिः ।।२४।।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ।।२५।।
ततो वर्षति षण्मासान्सर्वभूतविवृद्धये। वायव्यं स्तनितं चैव वैद्युतं चाग्निसंभवम् ।।२६।।
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च। न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्रं कवयो विदुः ।।२७।।
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते। आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः ।।
त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि संभवम् ।।२८।।
आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात्प्रवर्तनम्। शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ।।२९।।
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः। भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च ।।३०।।
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसंभवाः। विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिनः ।।३१।।

और विमल जलवाली गंगा नदी का आधार चन्द्र है। विप्रो! महानदियाँ भी चन्द्रपुत्र की पुरोवर्तिनी हैं। सभी जीव-जन्तुओं के शरीर में जल है; अतः स्थावर-जंगम जब दग्ध होते हैं, तब उनके शरीर से जल भाप होकर निकल जाता है। उससे मेघ बनते हैं; क्योंकि मेघ ही जल का आधार स्थान है ।।२१-२२$\frac{1}{2}$।। सूर्य का तेज किरणजाल द्वारा जीव-जन्तुओं से जल ग्रहण कर लेता है, समुद्र के जल को भी किरणों के द्वारा वायु वेग से खींच लेता है। फिर सूर्यदेव ऋतु परिवर्तन होने पर स्वयं नवीनता धारण करते हैं और मेघों को निर्मल जल किरणों द्वारा प्रदान करते हैं। तब वायु द्वारा प्रेरित होने पर मेघों में रुका हुआ जल चारों ओर बरसने लगता है। इसी तरह सभी जीवों के कल्याण के लिए वायु सम्बन्धी गर्जना और अग्नि सम्बन्धी विद्युत् को साथ करके छह महीने तक मेघ बरसते रहते हैं ।।२३-२६।। मिह् धातु क्षरणार्थक है। इसी से मेघ शब्द निष्पन्न हुआ है और मेघत्व को प्रकट करता है। जिससे जल भ्रष्ट नहीं होता है, अतः उसे पण्डित लोग अभ्र कहते हैं ।।२७।। मेघ तीन प्रकार के हैं; अतः उनकी उत्पत्ति भी तीन प्रकार से हुई है। आग्नेय, ब्रह्मज और पक्षज नाम से मेघ पृथक्-पृथक् तीन प्रकार के हैं। उनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है-आग्नेय मेघ जल से उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि शीतलता, वायु और दुर्दिन आदि जो कुछ उनमें वर्तमान हैं, वे जल से उत्पन्न होने के कारण ही उनमें आये हैं ।।२८-२९।। ये मेघ भैंस, सुअर या मतवाले हाथी का रूप धारणकर पृथ्वी के निकट आते हैं और चक्कर लगाया करते हैं। उन मेघों का नाम जीमूत है, जो देर तक बरसते रहते हैं जो बिजली चमकाना नहीं जानते हैं और जो वृष्टि द्वारा जीव-जन्तुओं को बढ़ाया करते हैं ।।३०-३१।। ये मेघ शब्द-विहीन, विशाल शरीर और वायु के वशवर्ती हैं। ये

मूका घना महाकाया आवहस्य वशानुगाः । क्रोशमात्राश्च वर्षन्ति क्रोशार्धादपि या पुनः ।।३२।।
पर्वतग्रानितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च । बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ।।३३।।
ब्रह्मजा नाम ते मेघा ब्रह्मनिश्वाससंभवाः । ते हि विद्युद्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ।।३४।।
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्गरुहोद्गमा । राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ।।
तेष्वियं प्रीतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ।।३५।।
जीमूता नाम ते मेघा येभ्यो जीवस्य संभवाः । द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ।।३६।।
एते योजनमात्राच्च सार्धार्धान्निष्कृतादपि । वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासाराः प्रकीर्तिताः ।।
पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसंभवाः ।।३७।।
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम् । कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता ।।३८।।
पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः । पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ।।३९।।
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते । कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः ।।४०।।
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्तिताः । अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ।।
वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ।।४१।।
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा । तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयंभुवः ।।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ।।४२।।

एक कोस अथवा आधा कोस ऊपर से बरसा करते हैं। ये पर्वतों के कटिभाग में भी बरसा करते और घूमते रहते हैं। ये बलाका (बगुला) को गर्भदान करते हैं; इसलिए ये वकपङ्क्ति के गर्भदाता भी कहलाते हैं। ब्रह्मा के निःश्वास से उत्पन्न मेघों का नाम है ब्रह्मज। ये गरजते हैं, कौंधते हैं और इनका गर्जन बड़ा भला जान पड़ता है ।।३२-३४।। इनके शब्द को सुनकर भूमि उस प्रकार पुलकित हो जाती है, जैसी राज्याभिषेक होने से रानी पुलकित होकर नवीन यौवन सुख का अनुभव करती है। चराचर जीवों के कल्याण के लिए पृथ्वी इन मेघों से प्रेम करती है ।।३५।। जीवनोत्पादक जीमूत नामक मेघ द्वितीय प्रवह नामक वायु का आश्रय ग्रहण कर स्थित हैं। ये एक योजन, आधा योजन या चौथाई योजन ऊपर से मूसलधार वृष्टि किया करते हैं। इनके बरसने का यही ढंग है। पुष्करावर्तकादि मेघ पक्षसम्भव हैं। पूर्व काल में चराचरों का कल्याण चाहनेवाले इन्द्र ने महाबलशाली, विशालकाय और इच्छानुरूप गमन करनेवाले पर्वतों का पक्ष काट दिया था ।।३६-३८।। वे ही विशाल पक्ष जलपूर्ण होकर मेघाकार हो गये। उन मेघों का नाम हुआ पुष्कर। इसी कारण वे पुष्करावर्तक नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मेघ नाना रूप को धारण करनेवाले, महाभयङ्कर, कल्पान्त में वृष्टि करनेवाले और संवर्तक अग्नि के नियामक हैं ।।३९-४०।। ये तृतीय श्रेणी के मेघ कल्पान्त में वृष्टि करते हैं और विविध रूप धारणकर महीमण्डल को पूर्ण कर देते हैं एवं परावह वायु का आश्रय लेकर कल्पों को बदल दिया करते हैं। चार

तेषामाप्यायनं धूम सर्वेषामविशेषतः । तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ।।४३।।
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह । कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ।।४४।।
पर्जन्योदिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवाः । तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ।।४५।।
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः । योऽसौ बिभर्ति भगवान्गङ्गामाकाशगोचराम् ।।
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथे स्थिताम् ।।४६।।
तस्याविष्यन्दजं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः । शीकरं संप्रमुञ्चति नीहार इति स स्मृतः ।।४७।।
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः । उदग्घिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ।।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ।।४८।।
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवं । ततस्तदावहो वायुर्हिमशैलात्समुद्वहन् ।।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ।।४९।।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् । इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ।।५०।।
मैघावा(च्चाऽऽ)प्यायनंचैव सर्वमेतत्प्रकीर्तितम् । सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ।।५१।।
ध्रुवेणाऽऽवेष्टितां सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्तते । ध्रुवेणाऽऽवेष्टितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ।।५२।।
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले । वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ।।५३।।

मुँहवाले स्वयंभू ब्रह्मा, जिस प्राकृत अण्डकपाल से उत्पन्न हुए हैं, उसी अण्डकपाल से सभी मेघ हुए हैं ।।४१–४२।। सभी मेघों को धूम आप्यायित यानी तृप्त करते हैं। उन सभी मेघों में पर्जन्य श्रेष्ठ हैं और दिग्गज चतुष्टय। गज, पर्वत, मेघ और साँपों का कुल पृथक् होने पर भी एक ही है; क्योंकि इन सबका उत्पत्ति–स्थान जल ही कहा गया है ।।४३–४४।। हेमन्त काल में सम्पूर्ण सस्यों की वृद्धि करने के लिए शीत सम्भव दिग्गज और पर्जन्य तुषार वृष्टि किया करते हैं। श्रेष्ठ परिवह वायु इन सबका आश्रय स्थान है। यही भगवान् परिवह वायु स्वर्गपथ में तीन धाराओं में बहनेवाली, दिव्य, पवित्र और अमृत की तरह जलवाली आकाश–गङ्गा को धारण करनेवाले हैं। आकाशगङ्गा के जल को दिग्गजगण अपनी मोटी सूँड़ों से फुहारे की तरह उछालते हैं। वही जलकण नीहार कहलाता है ।।४५–४७।। सुमेरु के दक्षिण और हिमालय के उत्तर हेमकूट नामक एक पर्वत है। इसके निकट पुण्ड्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है ।।४८।। वहाँ तुषार की ही वृष्टि हुआ करती है। तब फिर आवह नामक वायु उस तुषार को अपने सामर्थ्य से बटोरकर उस महाशैल से महागिरि हिमालय पर बरसा देते हैं। यह वृष्टि हिमालय तक ही समाप्त हो जाती है। इसके बाद अन्य देशों में वैसी वृष्टि नहीं होती; किन्तु जो कुछ भी होती है, उसी से सस्य–वृद्धि होती है ।।४९–५०।। मेघ और उनका वृद्धि–वृत्तान्त इस प्रकार कहा गया; किन्तु वास्तव में वृष्टि करनेवाले सूर्य ही बताये गये हैं। सूर्य के द्वारा वृष्टि होती है और वायु के द्वारा वृष्टि रोकी जाती है; इसलिए ध्रुव से आवेष्टित सूर्य और वायु ही वृष्टि करनेवाले और वृष्टि को रोकनेवाले हैं ।।५१–५२।। वायु

अतः सूर्यरथस्याथ संनिवेशं निबोधत। संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ।।५४।।
हिरण्मयेन भगवान्पर्वणा तु महौजसा। नष्टवर्त्माऽन्धकारेण षट्प्रकारैकनेमिना ।।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।५५।।
दशयोजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृता। द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ।।५६।।
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु। असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः ।।५७।।
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतः शुक्रस्ततः स्थितः। वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः ।।
तेनासौ सर्पति व्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः ।।५८।।
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु। संवत्सरस्यावयवैः कम्पितानि यथाक्रमम् ।।५९।।
अहस्तु नाभिः सूर्यस्य एकचक्रः स वै स्मृतः। अराः पञ्चर्तवस्तस्य नेमिः षडृतवः स्मृताः ।।६०।।
रथनीडः स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूबरावुभौ। मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कलाः स्मृताः ।।६१।।
तस्य काष्ठाः स्मृता घाणा ईषादण्डः क्षणास्तु वै। निमेषाश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य लवाः स्मृताः ।।६२।।
रात्रिर्वरूथो धर्मोऽस्य ध्वज ऊर्ध्वः समुच्छ्रितः। युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ।।६३।।
सप्ताश्वरूपाच्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुरम्। गायत्री चैव त्रिष्टुप्च अनुष्टुब्जगती तथा ।।६४।।
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक्चैव तु सप्तमम्। अक्षे चक्रं निबद्धं तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः ।।६५।।
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः। अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ।।६६।।

सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल का परिभ्रमण कर दिन के अन्त में पुनः ध्रुव द्वारा परिवेष्टित सूर्य में ही प्रवेश कर जाता है। अब सूर्य के रथ का संनिवेश सुनिये। इस रथ में एक चक्का, पाँच अराएँ और तीन नाभियाँ हैं। अन्धकार से आच्छन्न पथ पर इस हिरण्मय अत्यन्त भास्वर, महावेगशाली, षड्विध नाभिवाले और तेजोमय रथ के चक्र से अन्धकार को नष्ट करते हुए भगवान् सूर्य गमन करते हैं ।।५३–५५।। इस रथ का विस्तार दस हजार योजन है। इस रथ से मध्य में ईषादण्ड का प्रमाण दुगुना है। प्रयोजनवश या सूर्य के लिए ब्रह्मा ने इस रथ का निर्माण किया है। यह रथ असङ्ग, सुवर्णमय, दिव्य और परम वेगगामी अश्वों से युक्त है। छन्दः स्वरूप अश्वों से युक्त यह रथ जहाँ शुक्र हैं, वहाँ ठहरा है एवं लक्षण में वरुण के रथ के समान है। इसी चमकीले रथ के द्वारा सूर्य आकाश–मार्ग में गमन करते हैं ।।५६–५८।। सूर्य–रथ के जितने अवयव हैं, वे संवत्सर के अङ्गों द्वारा यथाक्रम कल्पित हुए हैं। सूर्य–रथ का नाभि–स्थान दिन है। यही एक चक्र भी कहलाता है। पाँचों ऋतुएँ उसकी अराएँ हैं और छह ऋतुएँ नेमि कही गयी हैं ।।५९–६०।। रथ का मध्य स्थान वर्ष, दोनों जुये अयन, बन्धुर मुहूर्त, युगकील कला, घोणा काष्ठा, ईषादण्ड क्षण, अनुकर्ष निमेष, ईषा लव, वरूथ रात्रि, समुन्नत ध्वज धर्म युग और अक्षकोटि अर्थ तथा काम एवं गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, उष्णिक् आदि सातों छन्द सप्ताश्व हैं। रथ के अक्ष में चक्र मिला हुआ है और चक्र ध्रुव से मिला हुआ है, इसलिए अक्ष के साथ ही चक्र घूमता है और चक्र के साथ–ही–साथ ध्रुव घूमा करता है। ध्रुव की प्रेरणा से चक्र के साथ अक्ष भी घूमा करता है ।।६१–६६।। प्रयोजनवश सूर्य के रथ का इस प्रकार संघटन किया गया है। उस

एवमर्थवशात्तस्य संनिवेशो रथस्य तु। तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः ।।६७।।
तेनासौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि। युगाक्षकोटिसंबद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ।।६८।।
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै। भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ।।६९।।
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु। ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत् ।।७०।।
भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ। युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ।।७१।।
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतोदिशम्। ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ।।७२।।
वर्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु। ध्रुवेण संगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम् ।।७३।।
आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ। तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।।७४।।
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन्। ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ।।७५।।
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु। उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।।७६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ज्योतिष्प्रचारो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।।५१।।

रथ का संघटन इस प्रकार किया गया है कि उसमें अतिशय प्रभा आ गयी है। उसी रथ के द्वारा सूर्य भगवान् वेगपूर्वक आकाश में गमन करते हैं ।।६७-६९।। रथ के युग और अक्षकोटि में इस प्रकार की दो किरणें जुड़ी हुई हैं, जो ध्रुव द्वारा परिचालित होने पर आकाश तल में रथ को मण्डलाकार बना देती हैं। उस रथ के दक्षिण भाग में जो युगाक्षकोटि है, वह ध्रुव द्वारा संगृहीत या संलग्न होने पर उस तरह दीखती है, जैसे श्वेत तन्तुओं के दो चक्र हों। रथ की युगाक्षकोटि में लगी हुई वे दोनों किरणें वायुमय हैं, जो घूमते हुए ध्रुव का अनुसरण करती हैं ।।७०-७१।। खूँटे से बँधा हुआ धागा जैसे चारों दिशाओं में घूमता है, उसी प्रकार रश्मियाँ घूमती हैं; किन्तु उत्तरायण होने पर किरणें कुछ घट जाती हैं और दक्षिणायन होने पर बढ़ जाती हैं। इस तरह मण्डलाकार घूमते हुए रथ की किरणों को ध्रुव जब खींचता है, तब सूर्य भी खिंच जाते हैं। ध्रुव जब उन दोनों किरणों को खींचता है, तब सूर्य भीतरी मण्डल में घूमते हैं ।।७२-७४।। उस समय सूर्य दोनों दिशाओं के एक सौ अस्सी मण्डलों का चक्कर लगाते हैं। फिर जब ध्रुव दोनों रश्मियों को जोड़ देता है, तब सूर्य बाहरी मण्डल में घूमने लगते हैं। उस समय वे वेग से मण्डलों को आवृत करते हुए घूमते हैं ।।७५-७६।।

श्रीवायुमहापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त।।५१।।

अथ द्विपञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिष्प्रचारः

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ।।१।।
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु। धाताऽर्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ।।२।।
उरगो वासुकिश्चैव संकीर्णारश्च तावुभौ। तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ।।३।।
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला। ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तथोर्जश्चैव तावुभौ ।।४।।
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ। मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ।।५।।
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह। ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ।।६।।
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहा हूहूः। रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ ।।७।।
पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ। एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ।।८।।
ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः। इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ।।९।।
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ। विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ।।१०।।
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे। यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभौ ।।
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ।।११।।

अध्याय ५२

ज्योतिष्प्रचार

सूत जी बोले–उस रथ पर देव, आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी (शिल्पी), सर्प और राक्षस निवास करते हैं। ये सब क्रम से दो–दो महीना सूर्य के रथ पर रहते हैं। धाता–अर्यमा, पुलस्त्य–पुलह, प्रजापति, वासुकि–संकीर्णार सर्प, तुम्बुरु, नारद–गायक श्रेष्ठ गन्धर्व, क्रतु–स्थली, पुञ्जिकस्थला अप्सराएँ, रथ कृच्छ्र–उर्ज ग्रामणी यानी शिल्पी, हेति–प्रहेति, यातुधान, राक्षस चैत्र–वैशाख में सूर्य के गण होकर उनके साथ रहते हैं ।।१–५।। फिर ज्येष्ठ–आषाढ़ में यानी वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु में मित्र वरुण, आदित्य, अत्रि, वसिष्ठ ऋषि, तक्षक रम्भसर्प, मेनका–सहजन्या अप्सरा, हाहा–हूहू गन्धर्व, रथस्वन, रथचित्र, ग्रामणी तथा पौरुषेय वध नामक यातुधान राक्षस सूर्य के साथ रहते हैं। सावन–भादों में उनके साथ दूसरे–दूसरे देवता निवास करते हैं ।।६–८$\frac{1}{2}$।। जैसे, इन्द्र, विवस्वान्, अंगिरा, भृगु मुनि, एलापर्ण, शंखपाल, सर्प, विश्वावसु, उग्रसेन गन्धर्व, प्रातः अरुण, प्रम्लोचा–निम्लोचा अप्सरा और व्याघ्र श्वेत राक्षस। आश्विन–कार्तिक (शरद् ऋतु) में आगे कहे हुए देव–मुनिगण सूर्य के साथ निवास करते हैं ।।९–११$\frac{1}{2}$।।

शरदृतौ पुनः शुभ्रा वसन्ति मुनिदेवताः। पर्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतमः ।।१२।।
विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथैव सुरभिश्च यः (या)। विश्वाची वा घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ।।१३।।
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनंजयः। सेन(ना)जिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ।।१४।।
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ। वसन्त्येते तु वै सूर्ये मासयोश्च इषोर्जयोः ।।१५।।
हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे। अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ।।१६।।
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा। चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ।।१७।।
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे। तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ।।१८।।
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ। सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ।।१९।।
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै। त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ।।२०।।
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ। गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ।।२१।।
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा। ऋतजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ।।२२।।
ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः। एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ।।२३।।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः। सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ।।२४।।
प्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ।।२५।।
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम्। सर्पा वहन्ति सूर्यं च यातुधाना*नुयान्ति च ।।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिचार्योदयाद्रविम् ।।२६।।

पर्जन्य-पूषा आदित्य, भरद्वाज, गौतम मुनि, विश्वावसु-सुरभि गन्धर्व, विश्वाची-घृताची अप्सरा, ऐरावत-धनंजय सर्प, सेनाजित् सुषेण-सेनानी ग्रामणी और आप वात नामक राक्षस। फिर हेमन्त ऋतु के अगहन-पूष मास में सूर्य से साथ अंश-भग आदित्य, कश्यप ऋतु मुनि, महापद्म-कर्कोटक सर्प, चित्रसेन-ऊर्णायु गन्धर्व, उर्वशी-विप्रचित्ति अप्सरा, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि सेनानी, ग्रामणी, विद्युत्-स्फूर्ज राक्षस रहते हैं ।।१२-१९।। फिर शिशिर ऋतु के माघ-फागुन महीने में ये सब देव दो मास सूर्य के साथ निवास करते हैं। त्वष्टा-विष्णु आदित्य, जमदग्नि-विश्वामित्र ऋषि, काद्रवेय-कम्बलाश्वतर सर्प, धृतराष्ट्र-सूर्यवर्चागन्धर्व, देवी तिलोत्तमा और मनोहारिणी रम्भा अप्सरा, विश्वविख्यात ऋतजित्-सत्यजित् ग्रामणी एवं ब्रह्मोपेत राक्षस, यज्ञोपेत ।।२०-२३।। सात श्रेणी के ये बारह देवता अर्थात् चौरासी देवता स्थानाभिमानी कहलाते हैं। ये अपने तेज से उत्तम तेजवाले सूर्य को समृद्ध करते हैं। मुनिगण अभिमत वचनों द्वारा सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व और अप्सराएँ नृत्य-गीतों से उपासना करती हैं, ग्रामणी यक्ष भूतादि भयङ्करता का संग्रह करते हैं, सर्पगण सूर्य को ढोते हैं, राक्षस उनकी रक्षा करते हैं और बालखिल्य ऋषिगण उदय होते ही सूर्य की परिचर्या करने लगते हैं और उन्हें अस्ताचल पहुँचा देते हैं ।।२४-२६।। इन देवों का जैसा

---

* अत्र संधिरार्षः।

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः। यथायोगं यथासत्त्वं यथाधर्मं यथाबलम् ।।२७।।
यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा। इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ।।२८।।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः। ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूयशः ।।२९।।
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च। भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ।।३०।।
मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम्। दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित्क्वचित् ।।३१।।
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः। एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ।।३२।।
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः। गोपायन्ति तु भूतानि सर्वाणीहाऽऽमनुक्षयात् ।।३३।।
स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै। अतीतानागतानां वै वर्तन्ते सांप्रतं तु ये ।।३४।।
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दिशम्। चतुर्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ।।३५।।

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु च मुञ्चमानो धर्मं हिमं च वर्षं च दिनं निशां च ।।
कालेन गच्छत्यृतुवशात्परिवृत्तरश्मिर्देवान्पितॄंश्च मनुजांश्च स तर्पयन्वै ।।३६।।
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्धयित्वा ।।
शुक्रे तु पूर्णं दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ।।३७।।
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्तं क्षरन्तम् ।।
स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ।।३८।।

वीर्य, तप, योग, सत्य और बल है, उसी के अनुसार सूर्य उनके तेज द्वारा तप्त होते हैं। ये सब दो-दो महीने सूर्य के निकट निवास करते हैं। ऋषि, देव, गन्धर्व, सर्प, अप्सरा, ग्रामणी, यक्ष और राक्षसगण ही तपते हैं, बरसते हैं, चमकते हैं, वायु की तरह बहते हैं और जीवों के शुभाशुभ कर्म का उत्पादन करके उसका विनाश भी करते हैं ।।२७-३०।। कभी ये मानवों के शुभ कार्य का अपहरण करते हैं और कभी पापियों के पाप का नाश करते हैं। वायु के समान वेगवाले ये देवगण दिव्य विमान पर चढ़कर सूर्य के साथ प्रतिदिन गमन करते हैं। प्रलयकाल पर्यन्त ये सभी जीवों की रक्षा करते हैं और प्रजाजन को वृष्टि तथा ताप द्वारा प्रसन्न करते हैं ।।३१-३३।। इन स्थानाभिमानी देवों का यह स्थान भूत, भविष्य और वर्तमान सभी मन्वन्तरों में एक-सा रहता है। ये देव सप्तक चौदहों मन्वन्तर के समय में सूर्य के चारों तरफ इसी प्रकार निवास करते हैं। भगवान् भुवन भास्कर ऋतुकाल के अनुसार किरणों को बदल-बदलकर देवता, पितर और मनुष्यों को तृप्त किया करते हैं ।।३४-३६।। वे ग्रीष्म ऋतु में घाम, जाड़े में ठंडक और बरसात में पानी बरसाकर दिन-रात का विभाग किया करते हैं। सूर्यदेव अपनी सुषुम्न किरण द्वारा चन्द्रमा को बढ़ाते हैं और देवों को अमृत पिलाकर सन्तुष्ट करते हैं। दिवसक्रम से जब चन्द्रमा शुक्लपक्ष में पूर्ण हो जाते हैं, तब कृष्णपक्ष में देवगण उन्हें अर्थात् उनके अमृत को पी जाते हैं। पिये जाने पर दो कलामात्र शेष सोम कृष्णपक्ष के बीतने पर जिस किरण का क्षरण करते हैं, उस अमृतरूपी किरण को पितर लोग स्वधा समझकर पीते हैं और

सूर्येण गोभिस्तु समुद्धताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धताभिः ।।
वृष्ट्याऽतिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधं त्वन्नपानैर्जयन्ति ।।३९।।
अमृतेन तृप्तिस्त्वर्धमासं सुराणां मासार्धतृप्तिः स्वधया पितृणाम् ।।
अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्याः सूर्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ।।४०।।
अयं हरिस्तैर्हरिभिस्तुरंगमैरयम्हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत्सविता चराचरम् ।।४१।।
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।।
ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्त्वसौ हरिः समुह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः ।।४२।।
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु । भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ।।४३।।
अहोरात्राद्रथेनाऽसौ एकचक्रेण तु भ्रमन् । सप्तद्वीपसमुद्रांश्च सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ।।४४।।
छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः । कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ।।४५।।
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः । अशीतिमण्डलशतं भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ।।४६।।
बाह्यमभ्यन्तरं चैव मण्डलं दिवसक्रमात् । कल्यादौ संप्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसंप्लवात् ।।
आवृत्ता बालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहाणि तु ।।४७।।

देवगण उसे कव्य समझकर पीते हैं ।।३७–३८।। फिर सूर्य की किरणों से ही जल उत्पन्न होता है। वृष्टि से ओषधि और अन्न उत्पन्न होते हैं। जिनमें मानव अपनी क्षुधा शान्त करते हैं। देवों को अमृत से अर्द्ध मास तक तृप्ति होती है और पितरों को भी स्वधा से आधे मास तक। किन्तु मनुष्यों को अन्न के द्वारा सदा तृप्ति मिलती है, क्योंकि सूर्य किरणों से अन्न को पुष्ट किया करते हैं। सूर्य हरिद्वर्ण के अश्वों पर चढ़कर किरणों द्वारा जल का शोषण करते हैं। फिर वर्षाकाल में जल बरसाकर सूर्यदेव चराचर का पोषण करते हैं ।।३९–४१।। सूर्य हरिद्वर्ण के घोड़ों पर चढ़कर हजारों किरणों से जल का शोषण करते हैं फिर हरिद्वर्ण के घोड़ों पर घूमते हुए वे जल बरसा देते हैं। इस प्रकार प्रलयकाल तक सूर्यदेव एक चक्के के रथ पर सवार होकर मंगलकारक बलिष्ठ अश्वों द्वारा वेग से आकाश में भ्रमण करते हैं। सूर्य एक चक्र रथ द्वारा समुद्रान्त सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी का भ्रमण दिन–रात किया करते हैं ।।४२–४४।। उनके छन्दः स्वरूप सातों घोड़े चक्के की ओर जुते हुए, इच्छाधीन शरीर धारण करनेवाले, मन की तरह अतिशय वेगवाले, ब्रह्मवादी, समर्थ, हरित्पिङ्गल वर्ण के और रथ में एक ही बार जोते गये हैं। वे घोड़े एक वर्ष में एक सौ अस्सी मण्डल का परिभ्रमण किया करते हैं ।।४५–४६।। कल्प के आदि में घोड़े एक बार जोते गये हैं और कल्पान्त तक वे रथ को खींचते रहते हैं। इस तरह वे दिवसक्रम से बाह्य और आभ्यन्तर मण्डलों का परिभ्रमण बालखिल्य ऋषियों द्वारा आवृत

प्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः। सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः।।
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ।।४८।।
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी। ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत्स्मृते ।।४९।।
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः। अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः।।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ।।५०।।
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः। सकृद्युक्ते रथे तस्मिन्वहन्ते चाऽऽयुगक्षयात् ।।५१।।
संगृहीतो रथे तस्मिञ्श्वेतचक्षुःश्रवास्तु वै। अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसम् ।।५२।।
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हयः। अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ।।५३।।
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः। एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ।।५४।।
देवैः परिवृतः सोमः पितृभिश्चैव गच्छति। सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते।।
आपूर्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ।।५५।।
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा। पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः ।।५६।।
अपूरयन्सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात्। सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्धन्ति वै फलाः ।।५७।।
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च। इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याऽऽप्यायिता तनुः ।।५८।।

होकर दिन-रात किया करते हैं। अग्रगामी महर्षि अभिमत वचनों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और गन्धर्व-अप्सराएँ नृत्य-गीत से उनकी सेवा करती हैं। इस प्रकार आकाशगामी दिन नामक सूर्य अश्वों के साथ भ्रमण करते हैं ।।४७-४८।। चन्द्रमा भी नक्षत्रों की गलियों से चला करते हैं। इनकी किरणों का भी सूर्य की तरह वृद्धि और नाश हुआ करता है। चन्द्रमा के रथ में तीन चक्के हैं और दोनों तरफ घोड़े जुते हुए हैं। इसका यह रथ अश्व और सारथि के साथ जल के भीतर से उत्पन्न हुआ है। इस रथ में एक सौ अराएँ, तीन चक्के और उज्ज्वल वर्ण के घोड़े जुते हुए हैं ।।४९-५०।। ये दिव्य अश्व गिनती में दस हैं। ये मन की तरह वेगवान्, कृश, असङ्ग और कल्पादि में एक बार जोते गये हैं, जो युगान्त पर्यन्त रथ का वहन करते हैं। रथ में जुते हुए उज्ज्वल वर्ण के वे अश्व के समान कान्तिवाले चन्द्र के रथ को आकाश में खींचते रहते हैं ।।५१-५२।। चन्द्रमा के दसों घोड़ों के नाम हैं—ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी और मृग। ये घोड़े चन्द्रदेव को कल्पांत पर्यन्त वहन करते हैं। देवों और पितरों द्वारा सेव्यमान होकर चन्द्रमा इसी प्रकार गमन करते हैं ।।५३-५५।। शुक्ल पक्ष में सूर्य चन्द्रमा के आगे रहते हैं और देवों द्वारा पिये गये चन्द्र को दिवस क्रम से नित्यप्रति परिपुष्ट कर तृप्त करते हैं। इस प्रकार पन्द्रह दिन पिये गये चन्द्र को सूर्य एक सुषुम्न किरण द्वारा दिवसक्रम से प्रतिदिन एक-एक भाग करके पूर्ण करते हैं। तब सुषुम्न किरण द्वारा परिपूर्ण चन्द्रमा की कला उज्ज्वलतर हो जाती है। अतः कृष्णपक्ष में चन्द्र का ह्रास होता है और शुक्ल पक्ष में वे परिपूर्ण होते हैं। इस प्रकार सूर्य के सामर्थ्य से चन्द्रमा का शरीर घटता-बढ़ता है। शुक्लपक्ष में दिन क्रम से चन्द्रदेव परिपुष्ट हो जाते

पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः संपूर्णमण्डलः। एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ।।५९।।
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी। अपां सारमयेस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामयम् ।।६०।।
संभृतं चार्धमासेन अमृतं सूर्यतेजसा। भक्षार्थममृतं सौम्यं पौर्णमास्यामुपासते ।।६१।।
एकरात्रं सुरैः सर्वैः पितृभिश्च महर्षिभिः। सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ।।
प्रक्षीयते परस्यान्तः पीयमानाः कलाः क्रमात् ।।६२।।
(*त्रयश्च त्रिशतं चैव त्रयत्रिंशत्तथैव च। त्रयत्रिंशत्सहस्राश्च देवाः सोमं पिबन्ति वै ।।६३।।
इत्येतैः पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति वै कलाः)। +क्षीयन्ते तस्मात्कृष्णे या शुक्ले ह्याप्याययन्ति ताः ।।६४।।
एवं दिनक्रमातीते विबुधास्तु निशाकरम्। पीत्वाऽर्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ।।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ।।६५।।
ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके। अपराह्णे पितृगणैर्जघन्यः पर्युपास्यते ।।६६।।
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य तु या कला। निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ।।
तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ।।६७।।

हैं और वे पूर्णिमा को उज्ज्वल परिपूर्ण मण्डल से प्रकाशित होने लगते हैं ।।५६-५९।। फिर कृष्णपक्ष की द्वितीया से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त देवगण जल के सार स्वरूप और रसमय चन्द्र के जल-प्रधान और सुधामय मधु पान करते हैं। वह अमृत सूर्य के तेज से आधे मास में संचित होकर पूर्णमासी में देवों के भोजन के लिए कल्पित होता है। कृष्णपक्ष के आदि में एक रात देवता, पितर और महर्षिगण भास्कराभिमुखवर्ती चन्द्र का पान करते हैं। पीने पर उनकी कला फिर धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है ।।६०-६२।। तैंतीस हजार तैंतीस सौ तीन देवता चन्द्र के मधु का पान करते हैं। इसके द्वारा पी जाने पर चन्द्रमा की कृष्णपक्ष की कला फिर बढ़ने लगती है। इसीलिए कृष्णपक्ष में इनकी कला क्षीण होती है और शुक्लपक्ष में बढ़ने लगती है। इसी प्रकार देवगण प्रतिदिन क्रम से आधे मास तक चन्द्रमा को पीकर अमावस्या को प्रस्थान करते हैं। पुनः अमावस्या आते ही पितर लोग चन्द्रमा के निकट आ जाते हैं ।।६३-६५।। चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला का जो अवशेष रह जाता है, उसे पितर लोग मध्याह्न काल में पीते हैं। उस अवशिष्ट कला से जो स्वधा रूप अमृत क्षरित होता है, उसको द्विकलात्मक कालमात्र में पानकर पितर लोग एक महीने तक तृप्त रहते हैं ।।६६।। सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त और कव्य पितर ही हैं। विद्वानों ने जिसे पंचाब्द संवत्सर कहा है, वही कव्य है। ऋतु सौम्य, मास बर्हिषद् और ऋतु अग्निष्वात्त हैं। ब्राह्मणो! पितृसर्ग यानी पितरों की व्यापार-वार्ता

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

+ एतदर्धस्थान इदमर्ध वर्तते-क्षीयन्ति तस्माच्छुक्ला या कृष्णा ह्याप्याययन्ति च।

सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च। कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते ।।६८।।
संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः। सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः ।।
अग्निष्वात्ता (त्त) र्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ।।६९।।
पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्यां कला तु वै। यावन्न क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः ।।७०।।
अमावास्यां तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम्। वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ ।।७१।।
एवं सूर्यनिमित्तैषां क्षयवृद्धिर्निशाकरे। ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ।।७२।।
तोयतेजोमयः शुभ्रः सौमपुत्रस्य वै रथः। युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः ।।७३।।
सवरूथः सानुकर्षः सूतो दिव्यो रथे महान्। सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसंनिभः ।।७४।।
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसंनिभः। पृथिवीसंभवैर्युक्तैर्नानावर्णैर्हर्योत्तमैः ।।७५।।
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः। कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृश्निरेव च ।।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ।।७६।।
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्सोमस्यापि रथोऽभवत्। असङ्गैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसंभवैः ।।
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुचक्रगः ।।७७।।
तवस्त्वाङ्गिरसो विद्वान्देवाचार्यो बृहस्पतिः। शोणैरश्वैः काञ्चनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।७८।।

इसी प्रकार की है। अमावस्या में पितरों द्वारा पीत चन्द्र की पन्द्रहवीं कला के परिपूर्ण भाग का जब तक क्षय होता है, तब तक उनका अन्तिम भाग पूर्ण हो जाता है। अर्थात् सोलहवीं कला का नाश नहीं है। पक्षादि में चन्द्रमा का वृद्धि-क्षय इसी प्रकार होता रहता है। चन्द्रमा की जो यह क्षय-वृद्धि होती है, उसका मुख्य कारण सूर्य ही है ।।६७–७१½।। अब हम तारकादि ग्रहों और राहु के रथ के सम्बन्ध में कहते हैं। बुध का रथ शुभ्रवर्ण और जलीय तेज से युक्त अर्थात् उसमें जल का तेज वर्तमान है। वायु की तरह वेगवान् पिशङ्ग वर्ण के आठ घोड़े उसमें जुते हुए हैं। वह रथ मेघ की तरह है, जिस पर ध्वजा-पताका फहरा रही हैं, तरकस रखे हुए हैं। उस दिव्य रथ के नीचे काठ लगा हुआ है और ऊपर से फौलादी चादर कढ़ी हुई है। उस रथ का सारथी भी दिव्य है। शुक्र का रथ तेज में सूर्य की तरह और शोभा सम्पन्न है। इसमें पृथ्वी से उत्पन्न नाना वर्ण के मोटे-मोटे वायु की तरह वेगशाली दस घोड़े जुते हुए हैं। ये घोड़ों में श्रेष्ठ महाभाग अश्व श्वेत, पिशङ्ग, सारंग, नील, लोहित, पीत, कृष्ण, हरित, पृषत और पृश्नि रंग के हैं। मंगल का रथ सोने का है, जिसमें आठ घोड़े जुते हुए हैं। यह रथ अत्यन्त शोभा सम्पन्न है। इनके लोहित वर्ण के बेजोड़ घोड़े अग्नि से उत्पन्न हुए हैं और सर्वत्र गमन करनेवाले हैं ।।७२–७६।। मंगल इन्हीं पर आरोहण कर सीधी और टेढ़ी गति से राशिचक्र का भ्रमण करते हैं। अंगिरातनय देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति सोने के रथ पर घूमा करते हैं। इनके दिव्य घोड़े लाल रंग के हैं और रथ सर्वत्र गमन करनेवाला है, जिसमें वायु की तरह वेगशाली

युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसंमितैः । नक्षत्रेऽब्दं निवसति सर्वगस्तेन गच्छति ।।७९।।
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः शवलैर्व्योमसंभवैः । कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ।।८०।।
स्वर्भानोस्तु तथैवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः । रथं तमोमयं तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ।।८१।।
आदित्यान्निःसृष्टो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु । आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।।८२।।
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः । पलालधूमसंकाशाः शबला रासभारुणाः ।।८३।।
एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह । सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभिः ।।८४।।
एते वै भ्राम्यमानास्तु यथायोगे भ्रमन्ति वै । वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ।।८५।।
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि । भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवं ते ज्योतिषां गणाः ।।८६।।
यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते । तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ।।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ।।८७।।
यावत्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मयः । सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ।।८८।।
तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा । तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ।।८९।।
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु । यस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहंस्तेन स स्मृतः ।।९०।।

आठ घोड़े जुते हुए हैं। ये एक राशि पर एक वर्ष निवास करते हैं ।।७७-७९।। शनैश्चर का रथ काले लोहे का बना है। इनके चितकबरे घोड़े आकाश से उत्पन्न हुए हैं। वे अपने रथ पर चढ़कर धीरे-धीरे चला करते हैं। राहु के तमोमय कृष्णवर्ण के रथ में मन की तरह वेगशाली काले रंग के आठ घोड़े एक ही बार जोत दिये गये हैं। ये रथ को सदा खींचा करते हैं। राहु पर्व के दिन सूर्यमण्डल से निकलकर चन्द्रमण्डल में प्रवेश करते हैं और फिर पर्व में ही चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमण्डल में प्रवेश किया करते हैं। केतु के रथ के घोड़े वायु की तरह वेगशाली, गधे की तरह धूसर वर्ण, चितकबरे और धान के भूसे के धुएँ की तरह हैं। ये गिनती में चौंसठ हैं। यह हमने ग्रहों के घोड़ों और रथों का वर्णन किया। ये सभी वायुकिरणों द्वारा ध्रुव से संलग्न हैं ।।८०-८४।। अदृश्य वायुकिरणों द्वारा ये रथ-घोड़े या ग्रहगण घुमाये जाते हैं और यथावकाश भ्रमण करते हैं। वायुकिरणों द्वारा आबद्ध चन्द्र-सूर्यादि ग्रहगण आकाश में घूमते हैं और घूमते हुए ध्रुव का अनुगमन करते हैं। नदी-जल में जैसे नौका जल पर स्थित रहती है, उसी प्रकार ये देवालय वायुकिरणों के आधार पर रुके रहते हैं। इसी कारण आकाश में देवगण का दर्शन सभी कर सकते हैं। जितने तारे हैं, उतनी ही वायु की किरणें हैं। ये सभी ध्रुव से संलग्न हैं। स्वयं घूमते और ध्रुव को घुमाते हैं ।।८५-८८।। कोल्हू का चक्का जैसे स्वयं घूमता हुआ दूसरे को घुमाता है उसी प्रकार वायु द्वारा आबद्ध ज्योतिर्मण्डल सर्वत्र घूमता है। वायु चक्र द्वारा चालित होकर ज्योतिर्मण्डल अलातचक्र की तरह घूमता है यतः वायुचक्र ज्योतिर्मण्डल का वहन करता है, इसी से वह प्रवहन् कहलाता है ।।८९-९०।। इस प्रकार ध्रुव से मिलकर ज्योतिः समूह चला

एवंध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः । सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वां तं निशि मुच्यते ।।९१।।
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि । तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ।।९२।।
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः । उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ।।९३।।
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धानमाश्रितः । हृदि नारायणः साध्य(ध्या)अश्विनौ पूर्वपादयोः ।।९४।।
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी । शिशुः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रितः ।।९५।।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः । तारकाः शिशुमारश्च नास्तमेति चतुष्टयम् ।।९६।।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहस्तारागणैः सह । उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ।।९७।।
ध्रुवेणाधिष्ठिताः सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् । प्रयान्तीह वरं श्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि ।।९८।।
ध्रुवाग्निकश्यपानां तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः । स्मृतः एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्धनि ।।९९।।
ज्योतिषां चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुखः । मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ।।१००।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्योतिष्प्रचारः नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ।।५२।।

करता है। वह तारामय ध्रुव शिशुमार (ज्योतिर्मण्डल) की तरह आकाश में प्रतिष्ठित है। रात में ध्रुव को देखने से दिनभर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। आकाश में जितने तारे उस ज्योतिर्मण्डल में हैं, उतने बरसों तक ध्रुव को देखनेवाला जीवित रहता है। यह शिशुमार सब काल में रहनेवाला है, नित्य है। इस प्रकार विभाग द्वारा इसे जानना चाहिए ।।९१-९२$\frac{१}{२}$।। उत्तानपाद इसकी निचली ठुड्डी, यज्ञ अधर, धर्म मस्तक, नारायण हृदय, अश्विनीकुमार पूर्व दो पाद, वरुण-अर्यमा पश्चिम दो पाद, मित्र गुह्यदेश और पूँछ अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप तथा ध्रुव हैं। इस संवत्सरात्मक शिशुमार का अस्तोदय नहीं होता है। ग्रह-ताराओं के साथ चन्द्र-सूर्यादि नक्षत्र आकाश में नीचे या ऊपर मुँहकर मंडलाकार स्थित हैं ।।९३-९७।। ये सभी ध्रुव के द्वारा धारण किये गये हैं और सभी मेधिस्तम्भ (दौनी का खम्भा) स्वरूप श्रेष्ठ ध्रुव की ही प्रदक्षिणा करते हैं। ध्रुव, अग्नि और कश्यपों में ध्रुव ही श्रेष्ठ हैं। यही एक ध्रुव ही मेरु पर्वत के मस्तक पर अधोमुख होकर मेरु को देखते हुए भ्रमण करते हैं और साथ-ही-साथ ज्योतिर्मण्डल का भी आकर्षण करते रहते हैं ।।९८-१००।।

श्री वायुमहापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५२।।

अथ त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिःसंनिवेशः

शांशपायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः। पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ।।१।।

ऋषय ऊचुः

यदेतदुक्तं भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम्। कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ।।२।।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषां चैव निश्चयम्। श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ।।३।।
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः। तद्वोऽहं संप्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ।।४।।
अतःपरं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहं तु समुद्भवम्। दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेराप्याग्नेः पार्थिवस्य च ।।५।।
व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्राह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। (*अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसाऽऽवृतम् ।।६।।
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन्पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते। यश्चाऽऽदौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः) ।।७।।

अध्याय ५३

ज्योतिःसंनिवेश

शांशपायन बोले–यह सुनकर मुनियों ने संशय युक्त होकर फिर लोमहर्षण सूत से कहा ।।१।।

ऋषिगण बोले–आपने जो देवों के विख्यात गृहों का वर्णन किया है, वे घर कैसे हैं और उनकी कान्ति कैसी है? यह सब और ज्योतिर्मण्डल का वृत्तान्त हमें कहिये। ऋषियों के वचन को सुनकर सुस्थिर होकर सूत जी बोले–"इस विषय में ज्ञान-बुद्धिवाले महापण्डितों ने जैसा कहा है, तदनुसार हम आप लोगों से कहते हैं। देवों का और चन्द्र-सूर्य का जैसा घर है एवं चन्द्र-सूर्य का जैसा संस्थान है, सब-कुछ आप लोगों को सुना रहे हैं ।।२-४।। किन्तु इसके पहले हम त्रिविध अग्नि की उत्पत्ति बताते हैं। अग्नि तीन तरह के हैं-दिव्य, भौतिक और पार्थिव। अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा की रात्रि के बीत जाने पर, जब नैश अन्धकार से सब आच्छन्न था, कहीं कुछ सृष्टि नहीं हुई थी, केवल चार भूत ही अवशिष्ट थे, उस समय जो सर्वप्रथम अग्नि हुए वे पार्थिव कहलाये। जो अग्नि सूर्य में रहकर तपते हैं या ताप दान करते हैं, वे शुचि अग्नि कहलाते हैं ।।५-७।। वैद्युत अग्नि भी इन्हीं का नाम है। इनका अब लक्षण कहते हैं। वैद्युत जाठर

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् । वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपां गर्भास्त्रयोऽग्नयः ।।
तस्मादपः पिबन्सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ।।८।।
वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भिः प्रशाम्यति । मानवानां च कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ।।९।।
अर्चिष्मान्परमः सोऽग्निः प्रभवो जाठरः स्मृतः । यश्चायं मण्डली शुक्रो निरूष्मा संप्रकाशते ।।१०।।
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे । अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते ।।११।।
उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् । पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ।।१२।।
प्रकाशश्च तथौष्ण्यं च सौराग्नेये तु तेजसी । परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ।।१३।।
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तस्मादस्मिंश्च दक्षिणे । उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।।१४।।
अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः । तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो विशन्ति भास्करे ।।१५।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे । उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ।।१६।।
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभिः । पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ।।१७।।
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः । आदत्ते तत्तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ।।१८।।

और सौर अग्नि जल से उत्पन्न हुए हैं; इसीलिए जब किरणों द्वारा सूर्य जल का पान करते हैं तब ये आकाश में अधिक प्रकाशमान हो जाते हैं। वैद्युत अग्नि अगर वृक्ष में चले जाते हैं, तो पानी से नहीं बुझते हैं। उसी प्रकार मनुष्यों के पेट में अग्निदेव हैं, वे भी पानी से नहीं बुझते हैं। पेट में रहनेवाले जो जाठर अग्नि हैं, वे अतिशय ज्योतिष्मान् हैं और जो यह मण्डलाकार बिना गर्मीवाला शुक्र नामक अग्नि प्रकाशित होता है, वह दिन की अपेक्षा रात में दूर से ही प्रकाशित होता है, इसलिए कि सूर्य की किरण अस्तकाल में एक-एक चरण से उसमें प्रवेश कर जाती है ।।८-११।। फिर सूर्योदय होने पर पार्थिव अग्नि की उष्णता एक चरण से सूर्य में प्रवेश कर जाती है इस कारण सूर्य तृप्त होते हैं। प्रकाश और उष्णता गुण सम्पन्न सूर्य और अग्नि का तेज परस्पर प्रवेश करके एक-दूसरे को दिन-रात तृप्त करते हैं। उत्तरीय भूगोलार्द्ध में अथवा दक्षिणीय भूगोलार्द्ध में जब सूर्य उदित होते हैं, तब रात्रि जल में प्रवेश कर जाती है; इस कारण दिन में रात्रि के प्रवेश कर जाने से जल ताम्र वर्ण का हो जाता है ।।१२-१४।। फिर सूर्य के अस्त होने पर दिन जल में प्रवेश कर जाता है, इस कारण रात को जल उज्ज्वल हो जाता है। इसी तरह दक्षिणोत्तर भूगोलार्द्ध में सूर्य के उदय-अस्त होने पर क्रमपूर्वक रात और दिन जल में प्रवेश किया करते हैं। ताप वितरण करनेवाले सूर्य की किरणों से जो जल पिया करते हैं, वे विमिश्र पार्थिव अग्नि हैं। ये ही दिव्य शुचि अग्नि भी कहलाते हैं ।।१५-१७।। ये हजार किरणवाले और घड़े की तरह गोल हैं। ये हजार किरणों से चारों ओर का जल खींचा करते हैं। नदी, समुद्र, कूप, बिल, स्थावर, जंगम आदि के जल को ये खींच लिया करते हैं। हिरण्मय सूर्य गर्मी, शीत और वर्षा बरसानेवाली हजार किरणों से युक्त हैं। उनमें

नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव सधान्वनीः। स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्यो हिरण्मयः ।।
तस्य रश्मिसहस्रं तु वर्षशीतोष्णनिस्त्रवम् ।।१९।।
तासां चतुःशता नाड्यो मर्षन्ति चित्रमूर्तयः। वन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ।।२०।।
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः। दृश्या मेध्याश्च बाह्याञ्च ह्रादिन्यो हिमसर्जनाः ।।२१।।
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तयः। शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।।२२।।
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता धर्मसर्जनाः। समं बिभर्ति नाभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ।।२३।।
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि। अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ।।२४।।
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तैः सुतपते त्रिभिः। वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः संप्रकर्षति ।।२५।।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमं स सृजते त्रिभिः। ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितॄनपि ।।
सूर्योऽमरत्वममृतत्रयं त्रिषु नियच्छति ।।२६।।
एवं रश्मिसहस्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम्। भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिस्त्रवम् ।।२७।।
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्करं सूर्यसंज्ञितम्। (*नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च ।।
ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः ।।२८।।

विचित्र रूपवाली चार सौ किरणें वृष्टि किया करती हैं। वृष्टि करनेवाली वे सभी किरणें वन्दन, वन्द्य, ऋतन, नूतन और अमृत नाम से प्रसिद्ध हैं ।।१८–२०।। उनके बाद तीन सौ दूसरी शीतल किरणें हैं, जो पीले रंग की हैं। इन्हीं से शीत उत्पन्न होता है। इनके नाम दृश्य, मेध्य, बाह्य, ह्रादिनी और चन्द्र हैं। फिर शुक्ल, ककुभ, विश्वभृत् आदि शुक्ल वर्ण का ताप बरसानेवाली तीन सौ किरणें हैं। सूर्य इन किरणों से मनुष्य, देवता और पितरों का समान भाव से पोषण करते हैं ।।२१–२३।। औषधों से मनुष्यों को, स्वधा से पितरों को और अमृत द्वारा देवों को इस प्रकार त्रिविध किरणों से सबको तृप्त करते हैं। वे हेमन्त और शिशिर में तीन सौ किरणों द्वारा शीत बरसाते हैं, वसन्त और ग्रीष्म में तीन सौ किरणों द्वारा ताप वितरण करते हैं और बरसात तथा शरद् में चार सौ किरणों द्वारा वृष्टि संपादन करते हैं। वे ओषधियों को बल देते, स्वधा द्वारा पितरों को तृप्त करते और अमृत द्वारा अमरत्व का विधान करते हैं। इस प्रकार वे तीनों किरणों से तीनों को तृप्त करते हैं ।।२४–२६।। इस तरह सूर्य की हजारों किरणों से केवल लोकों का उपकार ही होता है। वे किरणें ऋतुक्रम से उत्ताप, शीतलता और जल प्रदान किया करती हैं। शुक्ल और प्रभावान् सूर्यमण्डल नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा का प्रतिष्ठान–स्थान तथा उद्भव–स्थान है। नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र सभी सूर्य से ही उत्पन्न हुए हैं। चन्द्रमा नक्षत्राधिपति हैं और सूर्य ग्रहराज हैं। शेष पाँचों ग्रह इच्छाधीन शरीरवाले और सर्वसमर्थ हैं। ऐसा कहा जाता है कि अग्नि आदित्य हैं और जल

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः। शेषाः पञ्च ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ॥२९॥
पठ्यते चाग्निरादित्य उदकश्चन्द्रमाः स्मृतः। शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ॥३०॥
सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः। नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ॥३१॥
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्मो लोके प्रभुः स्वयम्। महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ॥३२॥
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ। प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ॥
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३॥
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः। भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥३४॥
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम्। द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥३५॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम्। ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥३६॥
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा। जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमांसुग्रहो रविः ॥३७॥
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः। क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः ॥
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥३८॥
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ॥३९॥
ऋतूनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः। कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ॥४०॥

चन्द्रमा है। शेष ग्रहों की प्रकृति का भी वर्णन करते हैं, सुनिये ॥२७–३०॥ देव सेनापति कार्तिकेय मङ्गल ग्रह कहे जाते हैं। ज्ञानवान् लोग नारायण को बुध कहते हैं ॥३१॥ लोक में रुद्र देवता ही साक्षात् वैवस्वत धर्मराज कहे जाते हैं और ये ही द्विजश्रेष्ठ मन्दगामी महाग्रह शनैश्चर हैं। देवगुरु और असुरगुरु दोनों ही प्रकाशवान् महाग्रह हैं। ये दोनों ही शुक्र-बृहस्पति प्रजापति के पुत्र हैं। इन दोनों के प्रभाव से ही दैत्यपति और सुरपति प्रतापवान् हैं। तीनों लोकों का मूल कारण सूर्य ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। देवता, असुर और मनुष्यों से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत् सूर्य का ही है ॥३२–३४॥ विप्रो! रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता हैं। सूर्य से ही सब उत्पन्न हुए हैं और सूर्य में ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल में लोकों की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। विप्रो! इसलिए यह जगत् ही ग्रहमय है और सूर्य दीप्तिमान् सुन्दर ग्रह हैं ॥३५–३७॥ जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु, वर्ष और युग आदि उत्पन्न होकर जिसमें लय प्राप्त करते हैं, वह सूर्य ही हैं। सूर्य को छोड़कर दूसरे से काल की संख्या नहीं की जाती है। और बिना काल और समय के न शास्त्र, न दीक्षा और न दैविक कृत्य हो सकते हैं ॥३८–३९॥ तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे, न फल-मूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा, न ओषधियाँ बढ़ेंगी। संसार को प्रतप्त करनेवाले और जल का अपहरण करनेवाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग में भी देवों का व्यावहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल हैं, अग्नि हैं और द्वादशात्मा

अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च। जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।४१।।
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः। तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४२।।
स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः। उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदं जगत् ।।
पार्श्वमूर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ।।४३।।
रवेरश्मिसहस्त्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम्। तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ।।४४।।
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च। विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतं परम् ।।
अर्वाग्वसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तितः ।।४५।।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन्। तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ।।४६।।
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते। दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्धयते बुधम् ।।४७।।
विश्वश्रवास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतः बुधैः। संयद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य तु ।।४८।।
षष्ठस्त्वर्वाग्वसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः। शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ।।४९।।
एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः। वर्धन्ते विदिताः सर्वा विश्वं चेदं पुनर्जगत् ।।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ।।५०।।
क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः। तेषां क्षेत्राण्यथाऽऽदत्ते सूर्यो नक्षत्रतां गतः ।।५१।।

प्रजापति हैं। ये ही तीनों लोकों के चराचर को प्राप्त किया करते हैं। सूर्यदेव परमतेजस्वी हैं और समस्त लोकों के आत्मा हैं। ये उत्तम वायुमार्ग का अवलम्बन करके किरणों द्वारा ऊपर-नीचे पार्श्व भाग और सभी जगहों में ताप दान करते हैं ।।४०-४३।। हमने पहले सूर्य की जिन हजार किरणों को बताया है, उनमें ग्रहों को उत्पन्न करनेवाली सात किरणें प्रधान हैं। सातों किरणें ये हैं—सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वश्रवा, संयद्वसु, अर्वाग्वसु और स्वराट्। सूर्य की सुषुम्न किरण क्षीण हुए चन्द्रमा को बढ़ाती है। यह सुषुम्न किरण वक्र होकर ऊपर की ओर जाती है। हरिकेश किरण आगे की ओर रहती है। ये नक्षत्रों की उत्पत्ति स्थान कहलाती हैं। दक्षिण ओर रहकर विश्वकर्मा किरण बुध को परिपुष्ट करती है। पश्चाद्भाग में रहनेवाली विश्वश्रवा किरण शुक्र का उद्भवस्थान है। संयद्वसु किरण मंगल को उत्पन्न करनेवाली है। छठी अर्वाग्वसु किरण से बृहस्पति उत्पन्न हुए हैं और स्वराट् किरण शनैश्चर को तृप्त करनेवाली है। इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से ही ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि वृद्धि प्राप्त करते हैं, यह सर्वविदित है। यह सम्पूर्ण संसार ही सूर्य के द्वारा प्रकट हुआ है। यतः ये क्षीण नहीं होते हैं, उसी से इनका नाम नक्षत्र पड़ा है ।।४४-५०।। पहले किरणों द्वारा इन क्षेत्रों में पतित होते हैं, और उनके क्षेत्रों को ग्रहण करते हैं; अतः सूर्य भी नक्षत्र कहलाते हैं। ये तारागण सुकर्म द्वारा विस्तृत हैं और सुकर्म द्वारा ही ग्रहों का आश्रय लेते हैं, इसी से ये तारका कहलाते हैं और शुक्ल होने के कारण भी इनका नाम तारका पड़ा है। दिव्य, पार्थिव और निशा सम्बन्धी अन्धकार का सब प्रकार से विनाश करने के कारण महान् तेजोराशि का

तीर्णानां सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात्। ताराणां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ।।५२।।
दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः। आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ।।५३।।
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते। सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः ।।५४।।
बह्वर्यश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते। शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ।।५५।।
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे। ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ।।५६।।
घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम्। घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ।।५७।।
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ।।५८।।
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च। सौरं सूर्यो विशः स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ।।५९।।
शौक्रं शुक्रो विशः स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान्। बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितं चैव लोहितः ।।
शानैश्चरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ।।६०।।
आदित्यरश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः। नवयोजनासाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।।६१।।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलं च प्रमाणतः। द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।।६२।।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽऽधस्तात्प्रसर्पति। उद्धृत्य पार्थिवच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ।।६३।।
स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं निर्मितं यत्तमोमयम्। आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ।।६४।।

नाम आदित्य हुआ है ।।५१–५३।। 'सु' धातु का अर्थ होता है, स्फुरण या क्षरण। तेज और जल का क्षरण करने के कारण सूर्य सविता भी कहलाते हैं। 'चदि' धातु के आह्लादन, शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अनेक अर्थ हैं। इसी धातु से चन्द्र शब्द बना है। चन्द्र और सूर्य का दिव्य मण्डल, आकाश में वर्तमान है देदीप्यमान, तेजोमय, जाज्वल्यमान, शुक्ल और घड़े की तरह गोल है ।।५४–५६।। उन मण्डलों में जलप्रधान चन्द्रमण्डल और तेजःप्रधान उज्ज्वलाकार सूर्यमण्डल है। सभी मन्वन्तरों में नक्षत्र–ग्रहों के साथ देवगण इन स्थानों में प्रवेश करते है। इसीलिए ये देवगृह कहलाते हैं। जो जिस घर में आश्रय प्राप्त करता, उसका वही नाम कहलाता है। सूर्य सौर स्थान में, सोम सौम्य स्थान में, शुक्र शौक्र स्थान में प्रवेश करते हैं। शुक्र सोलह किरणवाले और प्रतापवान् हैं। बृहस्पति बृहत् स्थान में, लोहित (मंगल) लोहित स्थान में और शनैश्चर देव शनैश्चर स्थान में प्रवेश करते हैं ।।५७–६०।। वे सभी स्थान सूर्य किरण द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। सूर्यमण्डल का विष्कम्भ–विस्तार नौ हजार योजनों का है और मण्डल का विस्तार–प्रमाण उससे तिगुना अधिक है। सूर्य के विस्तार से चन्द्रमा का विस्तार दूना है। इसके बराबर राहु भी इन दोनों के नीचे–नीचे चलता है। वह मण्डलाकार राहु पृथ्वी की छाया द्वारा निर्मित हुआ है ।।६१–६३।। राहु का अन्धकारमय बृहत् स्थान है। यह पूर्णिमा को सूर्यमण्डल से निकलकर चन्द्रमण्डल में जाता है और पुनः चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमण्डल में चला आता है। जिस कारण यह अपनी किरणों को प्रेरित करता है, इसी से स्वर्भानु कहलाता है ।।६४–६५।। चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग शुक्र है।

आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमं च पर्वसु। स्वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ।।६५।।
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवश्च विधीयते। निष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः ।।६६।।
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।।
विस्तारान्मंडलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ।।६७।।
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै। बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ।।६८।।
प्रायश्चन्द्रयोगीनि(णि) विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ।।६९।।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने। पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।।
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ।।७०।।
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः। सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ।।७१।।
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः। सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ।।७२।।
यावन्त्यस्तारकाः कोट्यस्तावदृक्षाणि सर्वशः। वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ।।७३।।
गतिस्तास्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात्। उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः ।।
बौधं बौधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानोः स्थानमास्थितः ।।७४।।
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत। गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ।।७५।।
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयंभुवा। स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ।।७६।।

बृहस्पति शुक्र से एक चौथाई छोटा और विस्तार-मण्डल में एक योजन बड़ा है फिर शनैश्चर और मंगल बृहस्पति से एक चरण (चतुर्थांश) कम हैं। उसी तरह इन दोनों से बुध विस्तार-परिमाण में एक चरण कम है ।।६६-६७।। जो तारा नक्षत्रादि स्थूलाकार देखे जाते हैं, उनका विस्तार-मण्डल प्रायः बुध के समान है। ये नक्षत्रादि प्रायशः चन्द्रमा के ही निकटवर्ती हैं। इस विषय को तत्त्वज्ञानी ऐसा ही समझें। तारा-नक्षत्रादि परस्पर दो, तीन, चार, पाँच सौ योजनों के व्यवधान पर स्थिर हैं। इनमें कोई बड़े हैं और कोई छोटे। एक-दूसरे से कोई भी आधा योजन के भीतर नहीं है ।।६८-७०।। शनि, गुरु और मंगल सभी ग्रहों के ऊपर धीरे-धीरे विचरण करते हैं। ये दूर तक गमन करनेवाले और इनकी गति वक्र होती है। इनके नीचे सूर्य, सोम, बुध और शुक्र नामक और भी चार महाग्रह हैं, जो शीघ्रगामी हैं। साधारण बात तो यह है कि जितने तारे दीख पड़ते हैं, उतने ही नक्षत्र हैं। वीथी के नियम से नक्षत्रों का मार्ग भी व्यवस्थित है। अयनक्रम से सूर्य उसी मार्ग में अधः, ऊर्ध्व होकर गमन करते हैं। पर्व में जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग पर वर्तमान रहते हैं, तब बुध बुधस्थान में, राहु राहुस्थान में और सब नक्षत्र नक्षत्रस्थान में वर्तमान रहते हैं। पुण्यात्मा ग्रहों के ही सब ज्योति स्वरूप घर हैं ।।७१-७५।। ब्रह्मा ने कल्प के आदिकाल में इन स्थानों का निर्माण किया है और ये प्रलयकाल तक वर्तमान रहते हैं। सभी मन्वन्तरों में ये देवगृह अभिमानी देवों के साथ वर्तमान रहते है ये स्थान बारंबार होते और विनष्ट होते हैं। बीते

मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै । अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति स्थानानि तु पुनः पुनः ।।७७।।
अतीतैस्तु सहातीता भाव्या भाव्यैः सुरासुरैः । वर्तन्ते वर्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ।।७८।।
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः । विवस्वानदितैः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ।।७९।।
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः । शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः ।।८०।।
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः । बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ।।८१।।
अग्निर्विकल्पात्संजज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः । नक्षत्रऋक्षगामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ।।८२।।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः । सोमर्क्षग्रहसूर्ये तु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ।।८३।।
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः । शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ।।८४।।
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च । आप्यं श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ।।८५।।
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सद्म षोडशरश्मिवत् । नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ।।८६।।
हरिश्चा (चाऽऽ)प्यं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः । अष्टरश्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं बुधस्य अम्मयम् ।।८७।।
स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसंतापनालयम् । विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मयः ।।८८।।
आश्रयः पुण्यकीर्तीनां सुशुक्लाश्चैव वर्णतः । घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादौ वेदनिर्मिताः ।।८९।।
उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभिः । तथा दक्षिणमार्गस्थो नीवीवीथीसमाश्रितः ।।९०।।

हुए देवों के साथ वे स्थान बीत गये, आनेवालों के साथ उत्पन्न होंगे और वर्तमान देवगण उन स्थानों में निवास कर रहे हैं। इस मन्वन्तर में ग्रहगण विमानों पर रहा करते हैं ।।७६–७८$\frac{१}{२}$।। वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति के पुत्र विवस्वान् सूर्य, धर्मपुत्र त्विषिमान्, वसु, चन्द्रमा, असुरों के पुरोहित भृगुपुत्र शुक्र देव, देवों के पुरोहित अंगिरा के पुत्र महातेजस्वी बृहस्पति, त्विषिपुत्र मनोहर बुध, अग्नि के विकल्प से उत्पन्न युवा मङ्गल और नक्षत्रों का अनुगमन करनेवाले दाक्षायणीगण एवं भूतों को पीड़ित करनेवाले सिंहिका पुत्र असुर राहु हैं ।।७९–८२$\frac{१}{२}$।। इस तरह हमने चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रादि अभिमानी देवों के सम्बन्ध में कहा। ये ही इन स्थानों के देवता हैं और ये ही इनके स्थान हैं। सहस्र किरण विवस्वान् का स्थान अग्निमय शुक्लवर्ण है और हजार किरणवाले चन्द्रमा का भी स्थान शुक्लवर्ण है; लेकिन जलमय है। पाँच किरणवाले बुध का स्थान जलमय और कृष्णवर्ण है ।।८३–८५।। सोलह किरणवाले शुक्र का भी स्थान जलमय है। नौ किरणवाले मङ्गल का स्थान लाल रंग का और जलमय है। बारह किरणवाले बृहस्पति का स्थान बृहत् और हरिद्वर्ण है। आठ किरणवाले शनि का स्थान जलमय और कृष्णवर्ण है। राहु का स्थान जीव-जन्तुओं को पीड़ा पहुँचानेवाला और तमोमय है। इनके बाद जो तारे हैं, वे एक किरणवाले हैं और उनका स्थान जलमय है। ये तारे पवित्र कीर्तिवालों के आश्रय हैं, शुक्लवर्ण हैं, जलमय हैं, और कल्प के आदि काल में विधाता द्वारा देवोक्त विधान से निर्मित हुए हैं ।।८६–८९।। ये बहुत दूर रहने पर भी स्पष्ट किरणों द्वारा शीघ्र दीखने लगते हैं। सूर्य जब दक्षिणायन होकर नागवीथी में विचरण करते हैं, तब भूमि लेखा द्वारा आवृत होकर अमावस्या और पूर्णिमा में नहीं मालूम पड़ते हैं; क्योंकि इनका अस्त शीघ्र

भूमिलेखावृतः सूर्यः पूर्णिमावास्ययोस्तथा। न दृश्यते यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च ।।९१।।
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः। दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ।।९२।।
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ। समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ।।९३।।
उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ। पौर्णि (पूर्णा) मावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ ।।९४।।
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान्। तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति ।।९५।।
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं*चरते शशी। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ।।९६।।
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं बृहस्पतिः। तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।।
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्ध्वं व्यवस्थितः ।।९७।।
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च।ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ।।९८।।
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा। नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ।।९९।।
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्वव्यवस्थिताः। समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः ।।१००।।
परस्परस्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम्। असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ।।१०१।।
इत्येष संनिवेशो वः पृथिव्यां ज्योतिषस्य च। द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च ।।१०२।।

ही हो जाता है ।।९०–९१।। चन्द्रमा जब उत्तरीय मार्ग में विचरण करते हैं, तब ये दीख पड़ते हैं; किन्तु दक्षिण होते ही कभी ये दीख पड़ते हैं और कभी नहीं ।।९२।। नक्षत्रों की गति के अनुसार सूर्य और चन्द्र दोनों ही जब विषुवत् रेखा पर आते हैं; तब दोनों का ही अस्त और उदय समान काल में ही होता है। फिर उत्तर वीथी में जब वे वर्तमान रहते हैं, तब पूर्णिमा और अमावस्या में ज्योतिश्चक्र का अनुवर्तन करनेवाले उन दोनों के अस्त और उदय काल में अन्तर आ जाता है। जब तेजस्वी सूर्य दक्षिण दिशा के मार्ग में गमन करते हैं, तब वे सब ग्रहों के नीचे से चलते हैं ।।९३–९५।। उस समय चन्द्रमा सूर्य के ऊपरी भाग में अपने मण्डल का विस्तार कर गमन करते हैं और नक्षत्र मण्डल चन्द्रमा से और ऊपर विचरण करता है। नक्षत्र से ऊपर बुध, बुध से ऊपर बृहस्पति, बृहस्पति से ऊपर शनि, शनि से ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डल से ऊपर ध्रुव रहते हैं ।।९६–९७।। तारा-ग्रहों का अन्तर ऊपर की ओर यथाक्रम से दो लाख योजनों का है। चन्द्र, सूर्य और ग्रह आदि दिव्य तेज के द्वारा आकाश में नियमक्रम से नित्य संयुक्त होते हैं और पृथक् होते हैं। ग्रह, नक्षत्र, सूर्यादि समागमकाल में या निम्न-उच्च होने के समय में मृदुभाव धारण कर लेते हैं, जिससे सब कोई उन्हें एक बार देख लेते हैं ।।९८–१००।। यदि परस्पर में इनका संयोग भी होता है, तो ये तिल-तण्डुल की तरह पृथक् ही रहते हैं। विद्वानों को ऐसा ही समझना चाहिए। यह हमने पृथिवी, ज्योतिश्चक्र, द्वीप, सागर, पर्वत, वर्ष, नदी और

---

* अत्राऽऽत्मनेपदं छन्दोनुरोधात्।

वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै। एते चैव ग्रहाः पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थिताः ।।१०३।।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे। विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ।।१०४।।
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा। शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ।।१०५।।
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनन्तरम्। ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थितः ।।१०६।।
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः। फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्वासु च जगद्गुरुः ।।१०७।।
नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः। आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ।।१०८।।
रेवतीष्वेव सप्तार्चिस्तथा सौरः शनैश्चरः। रेवतीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चन्द्रार्कमर्दनौ ।।१०९।।
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादयः। जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः ।।
(+स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु) ।।११०।।
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते। ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनां चैव धूमवान् ।।१११।।
ध्रुवः कीलो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम्। नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ।।११२।।
वर्षाणां चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः। ऋतूनां शिशिरं चापि मासानां माघ एव च ।।११३।।
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा। अहोरात्रविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ।।११४।।

इनके निवासियों का वर्णन किया। ये सब ग्रह पहले नक्षत्र-समूह में समुत्पन्न हुए हैं ।।१०१-१०३।। अदितिपुत्र विवस्वान् सूर्य जो ग्रहों में आदि ग्रह हैं, वे चाक्षुष मन्वन्तर में विशाखा में उत्पन्न हुए हैं। धर्मपुत्र, त्विषिमान्, सोम, विश्वावसु, शीतरश्मि, निशाकर, कृत्तिका में उत्पन्न हुए हैं। सूर्य की उत्पत्ति के बाद सोलह किरणवाले भृगुपुत्र शुक्र, जो ताराग्रहों में श्रेष्ठ हैं, वे पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न हुए हैं। अंगिरा के पुत्र बारह किरणवाले जगद्गुरु बृहस्पति फाल्गुनी में उत्पन्न हुए हैं ।।१०४-१०७।। नौ किरणवाले प्रजापति तनय मङ्गल पूर्वाषाढ़ में उत्पन्न हुए। श्रुति ऐसा ही कहती है। सात किरणवाले सूर्यपुत्र शनि रेवती में उत्पन्न हुए हैं एवं चन्द्र-सूर्य को पीड़ा पहुँचानेवाले राहु-केतु भी रेवती में ही उत्पन्न हुए हैं। शुक्र प्रमुख ये तारा ग्रह आदि जन्मकालिक नक्षत्र के वश यदि विगुण या दुष्ट हो जाते हैं, तब वे उसी दोष के कारण क्लेश पहुँचाने लगते हैं। वह पीड़ा उनमें भक्ति करने से ही शान्त हो जाती है ।।१०८-११०।। सभी ग्रहों में आदि ग्रह सूर्य कहे जाते हैं और तारा ग्रहों में आदि शुक्र हैं एवं केतु समस्त केतुग्रहों में आदि हैं। चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों के बीच कील स्वरूप ध्रुव श्रेष्ठ हैं। नक्षत्रों के बीच श्रविष्ठा और अयनों में उत्तरायण श्रेष्ठ हैं। पाँचों वर्षों में संवत्सर प्रथम है। ऋतुओं में शिशिर, मासों में माघ, पक्षों में शुक्ल, तिथियों में प्रतिपदा और दिन-रात में दिन आदि कहा गया है ।।१११-११४।। मुहूर्तों के बीच रौद्र मुहूर्त और काल-समूह के बीच निमेषात्मक काल ही आदि है। यह कालज्ञ पण्डितों का

+ इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः।

मुहूर्तानां तथैवाऽऽदिमुहूर्तो रुद्रदैवतः । अक्ष्णोश्चापि निमेषादिः कालः कालविदो मतः ।।११५।।
श्रवणान्तं प्रविष्टादि युगं स्यात्पञ्चवार्षकम् । भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते ।।११६।।
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् । चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्तकनिवर्तकः ।।११७।।
इत्येष ज्योतिषामेव संनिवेशोऽर्थनिश्चयात् । लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ।।११८।।
उत्पन्नः श्रवणेनासौ संक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा । सर्वतोऽन्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इति स्थितिः ।।११९।।
बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ संप्रकीर्तितः । साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिषात्मकः ।।
विश्वरूपं प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ।।१२०।।
नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् । गतागतं मनुष्येषु ज्योतिषां मांसचक्षुषा ।।१२१।।
आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः । परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ।।१२२।।
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः । पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्गणविचिन्तने ।।१२३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ज्योतिःसंनिवेशो नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ।।५३।।

मत है। श्रवणा से लेकर श्रवणा तक पाँच वर्षों का एक युग होता है, जो सूर्य के गति-विशेष से चक्के की तरह घूमता रहता है। इसी कारण सूर्य ही काल कहे गये हैं। इन्हीं को ईश्वर समझना चाहिए। ये ही चारों प्रकार के चराचरों के प्रवर्तक और निवर्तक हैं ।।११५-११७।। लौकिक व्यवहार को सुश्रृंखलित करने के लिए ईश्वर ने इस प्रकार ज्योतिश्चक्र का निर्माण किया है। हमने भी अर्थानुसंधान करके ज्योतिश्चक्र का विवरण इस तरह बतला दिया। ये ज्योतिश्चक्र अन्त तक सभी दिशाओं में वृत्ताकार में विस्तीर्ण हैं, ये श्रवणा से उत्पन्न हुए हैं और ध्रुव में संलग्न हैं। भगवान् ने कल्प के आदिकाल में बुद्धिपूर्वक इन सभी आश्रयवान् अभिमानियों का संस्थान किया है। यह ज्योतिश्चक्र विश्वरूपात्मिका प्रकृति का एक अद्‌भुत विपरिणाम है ।।११८-१२०।। ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्मचक्षु से देखकर नहीं कर सकता है इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्र, अनुमान और प्रत्यक्ष एवं उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमें भक्ति और श्रद्धा करे। बुद्धिमान् विप्रो ! ज्योतिष्तत्त्व के निर्णय में चक्षु, शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित ये ही पाँच कारण कहे गये हैं ।।१२१-१२३।।

श्री वायुमहापुराण का ज्योतिःसंनिवेश नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।५३।।

अथ चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः

नीलकण्ठस्तवः

ऋषय ऊचुः

कस्मिन्देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम्। वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन्काले महाद्युते ॥
एतदाख्याहि नः सम्यग्यथावृत्तं तपोधन ॥१॥

सूत उवाच

यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना। कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठाः सत्रे वर्षसहस्रके ॥२॥
नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः। तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ॥३॥
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितो ह्रदाः। पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४॥
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः। स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥५॥
ऋग्यजुःसामवेदैश्च नृत्यगीतार्चनादिभिः। ओंकारं हुं नमस्कारैरर्चयन्ति सदा शिवम् ॥६॥
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे। देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ॥
अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥७॥

अध्याय ५४

नीलकण्ठ की स्तुति

ऋषिगण बोले–महाद्युतिवाले! किस देश में और किस काल में ब्रह्मपुरोगामियों का पवित्र और उत्तम आख्यान घटित हुआ है। तपोधन! यह घटना जिस तरह घटी है, उसे हमें अच्छी तरह से कहें ॥१॥

सूत जी बोले–व्रतानुष्ठान करनेवाले द्विजश्रेष्ठ! हजार वर्ष के यज्ञ में संसार के आयुः स्वरूप वायुदेव ने पूर्वकाल में जिस प्रकार बताया है और हमने सुना है, वैसा ही आप लोगों से कहते हैं कि कैसे देवाधिदेव महादेव का कण्ठ नीलवर्ण का हुआ। शैलाधिराज हिमालय के उत्तर सरोवर, नदी, ह्रद, पवित्र उद्यान, तीर्थ, देवालय, गिरिशिखर, कन्दरा, उपवन आदि स्थानों में उत्तम व्रत करनेवाले देवभक्त, महात्मा मुनिगण विधि नियम से महादेव की स्तुति किया करते हैं ॥२-५॥ वे ऋक्-यजुः वेद-विधान से, सामवेद के गान से, नृत्य-गीत से, पूजा से, ओंकार के उच्चारण से और नमस्कार आदि के द्वारा शिव की पूजा सदा किया करते हैं। किसी समय सूर्य ज्योतिर्मण्डल के बीच आ गये। सभी नियतात्मा देवता इस कथा की आलोचना करने लगे। नियमानुष्ठान में प्रवृत्त मुनियों की दशा बिगड़ गयी। पीड़ा से सबको घोर कष्ट होने लगा। इसी समय वायु ने कहा–"नीलकण्ठ को नमस्कार है" यह सुनकर नियमव्रत करनेवाले

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः। तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः।।
बालखिल्येतिविख्याताः पतङ्गसहचारिणः ।।८।।
अष्टाशीतिसहस्त्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। तस्मात्पृच्छन्ति वै वायुं वायुपर्णाम्बुभोजनाः।।९।।

ऋषय ऊचुः

नीलकण्ठेति यत्प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम। एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वराः।।१०।।
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन। नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः।।११।।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक्तव वक्त्राद्विशेषतः। यावद्वाचः प्रवर्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः।।१२।।
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते। ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते।।१३।।
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः। यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः।।१४।।
तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्वगस्त्वं सदाऽनिल। नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण।।१५।।
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल। वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम्।।१६।।
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किंकृता रूपविक्रिया। श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम्।।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ।।१७।।

वायुरुवाच

पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः। वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापतेः।।१८।।

पवित्रात्मा बालखिल्य मुनियों ने वायु से पूछा। वे मुनिगण ऊर्ध्वरेता, वायु और पत्तियों को खानेवाले, सूर्य के साथ गमन करनेवाले एवं गिनती में अठासी हजार थे।।६-९।।

ऋषिगण बोले-सुकृतात्माओं में श्रेष्ठ पवन! आपने जो यह 'नीलकण्ठ' शब्द का उच्चारण किया है, यह पवित्रात्माओं के लिए पुण्यजनक और परम गुह्य है। यह कथा हम आपकी कृपा से सुनना चाहते हैं कि अम्बिकापति महादेव का कण्ठ किस कारण नील वर्ण का हुआ है यह कथा हम विशेषरूप से आपके मुँह से सुनना चाहते हैं क्योंकि वायु द्वारा प्रेरित होने पर ही वचनों के उच्चारण में सार्थकता आती है। वायु! वर्ण स्थान में जब आप जाते हैं, तब शब्दों का उच्चारण होता है। आपसे ही पहले ज्ञान, उत्साह और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।।१०-१३।। शरीर से आपके निकल जाने पर वर्णों का उच्चारण समाप्त हो जाता है, वचन नहीं निकलते और क्या कहा जाय, देह धारण करना भी कठिन हो जाता है। अनिल! आपका सबसे सद्भाव है। आपकी सर्वत्र गति है। समीरण, आपके अतिरिक्त और कोई भी देवता सर्वत्र गमन करनेवाले नहीं हैं। अनिल! यह जीवलोक आपका प्रत्यक्ष करता है, आपको मन का नायक, ईश्वर और वाचस्पति देव समझता है। हे वायु! आप बतावें कि किस प्रकार नीलकण्ठ के कण्ठ से विकार उत्पन्न हुआ? ।।१४-१७।। पवित्रात्मा ऋषियों के वचन को सुनकर लोक-पूज्य और महातेजस्वी वायु बोले-ब्राह्मणो! पहले कृतयुग में प्रजापति के मानस पुत्र विद्वान् और धर्मात्मा वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक कार्तिकेय से पूछा। कार्तिकेय का मयूर उत्तम वाहन है, वे महिषासुर की स्त्रियों के नयनों से काजल

पप्रच्छ कार्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम्। महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ।।१९।।
महासेन महात्मानं मेघस्तनितनिस्वनम्। उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम् ।।२०।।
क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम्। वसिष्ठः पृच्छते भक्त्या कार्तिकेयं महाबलम् ।।२१।।

वसिष्ठ उवाच

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते। नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ।।२२।।
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत। नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ।।२३।।
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने। एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ।।२४।।
यदेतद्दृश्यते वर्यं शुभं शुभ्राञ्जनप्रभम्। तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसप्रभे ।।२५।।
एतदाप्ताय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते। कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ।।२६।।
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः। प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ।।२७।।
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम। उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथा श्रुतम् ।।२८।।
पार्वत्या सह संवादः सर्वस्य च महात्मनः। तदहं कीर्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ।।२९।।
कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। (*तरुणादित्यसंकाशे तप्तचामीकरप्रभे ।।३०।।

हर लाये हैं, वे उमा के मन को प्रसन्न करने के लिए छद्मरूपधारी बालक हैं, क्रौंच के जीवन का हरण करनेवाले, पार्वती के हृदयनन्दन, महात्मा और सेनानायक हैं ।।१८-२१।।

वशिष्ठ जी बोले—हरनन्दन! आपको नमस्कार है। उमागर्भ! अग्निगर्भ! गंगागर्भ! आपको नमस्कार है। शरगर्भ! कृत्तिकासुत! आपको नमस्कार है। आपको छह मुख और बारह नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। हे शक्ति, पताका और दिव्य घंटा धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति कर उन्होंने मयूरवाहन सेनापति कार्तिकेय से पूछा। यह जो शिव जी के कुन्द और इन्दु के सदृश उज्ज्वल कण्ठ में काजल की तरह शुभ नीलिमा दीख पड़ती है, यह क्या है? ।।२२-२५।। महाभाग! इस पापनाशिनी मंगलमय पवित्र कथा को आप हमारे कल्याण के लिए विस्तार से कहें। हम आपके भक्त हैं, आप में हमारी श्रद्धा है, अतः हम पूछ रहे हैं, महात्मा वशिष्ठ के वचन को सुनकर राक्षस सेना पर विजय पानेवाले महातेजस्वी कार्तिकेय जी बोले—बोलनेवालों में श्रेष्ठ! पार्वती की गोद में बैठकर हमने जैसा सुना है, उसको हम कहते हैं, सुनिये। देवाधिदेव महादेव का पार्वती के साथ जो संवाद है, उसे हम आपके कल्याण के लिए कह रहे हैं ।।२६-२९।। महामुनि! नाना धातुओं से युक्त, चित्रमय, तरुण सूर्य की तरह प्रकाशवान्, तप्त सुवर्ण की तरह दीप्त, हीरा और स्फटिक की सीढ़ियों से युक्त, चित्रित शिलातल से मनोहर नाना धातुओं से जटित, दिव्य,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले । जाम्बूनदमये दिव्ये नानाधातुविचित्रिते) ।।
नानाद्रुमलताकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते ।।३१।।
षट्पदोद्गीतबहुले धारासंपातनादिते । मत्तक्रौञ्चमयूराणां नादैरुद्घुष्टकन्दरे ।।३२।।
अप्सरोगणसंकीर्णे किंनरैश्चोपशोभिते । जीवजीवकजातीनां वीरुद्भिरुपशोभिते ।।३३।।
कोकिलारावमधुरे सिद्धचारणसेविते । सौरभेयीनिनादाढ्ये मेघस्तनितनिस्वने ।।३४।।
विनायकभयोद्विग्नैः कुञ्जरैर्मुक्तकन्दरे । वीणावादित्रनिर्घोषैः श्रोत्रेन्द्रियमनोरमैः ।।३५।।
दोलालम्बितसंपाते वनितासंघसेविते । ध्वजैर्लम्बितदोलानां घण्टानां निनदाकुले ।।३६।।
मुखमर्दलवादित्रैर्बलिनां स्फोटितैस्तथा । क्रीडारवविचाराणां निर्घोषः पूर्णमन्दिरे ।।३७।।
हासैः संत्रासजननैर्विकरालमुखैस्तथा । देहगन्धैर्विचित्रैश्च प्रकीडितगणेश्वरैः ।।३८।।
*वज्रस्फटिकसोपानचित्रपट्टशिलातलैः । व्याघ्रसिंहमुखैश्चान्यैर्गजवाजिमुखैस्तथा ।।३९।।
विडालवदनश्चोग्रैः क्रोष्टुकाकारमूर्तिभिः । ह्रस्वैर्दीर्घैः कृशैः स्थूलैर्लम्बोदरमहोदरैः ।।४०।।
ह्रस्वजङ्घैश्च लम्बोष्ठैस्तालजङ्घैस्तथा परैः । गोकर्णैरेककर्णैश्च महाकर्णैरकर्णकैः ।।४१।।
बहुपादैर्महापादैरेकपादैरपादकैः । बहुशीर्षैर्महाशीर्षैरेकशीर्षैरशीर्षकैः ।।४२।।
बहुनेत्रैर्महानेत्रैरेकनेत्रैरनेत्रकैः+ । एवंविधैर्महायोगी भूतैर्भूतपतिर्वृतः ।।४३।।

सुवर्णमय, विविध द्रुम-लताओं से आच्छादित, चक्रवाक से शोभित, भ्रमरों से गुंजित, वृष्टि से निनादित, मतवाले क्रौंच और मयूरों के नाद से जिसकी कंदरा मुखरित हो रही है, अप्सराओं से व्याप्त, किन्नरों से शोभित जीवजीवक और जातिलतिकाओं से रमणीय, कोकिल की 'कुहू-कुहू' से मधुर, सिद्ध-चारण से सेवित, नदी के निनाद से जिस कैलास का रमणीय शिखर निनादित हो रहा है। कहीं मेघ के गर्जन से, कहीं गजवदन के भय से कन्दराओं को छोड़ हाथी चिंघाड़ रहे हैं और कहीं श्रवण-सुखद वीणा वादन का निर्घोष हो रहा है ।।३०-३५।। कहीं स्त्रियाँ हिंडोले पर चढ़ी हुई हैं, जिनके संपात से ध्वजा में लटकनेवाली घंटियाँ बज रही हैं। कहीं पहलवान मुँह बजा रहे हैं, कहीं ताल ठोंक रहे हैं। मन्दिरों से कीड़ा का मधुर रव हो रहा है। कहीं महादेव के गण हँस रहे हैं, जिससे उनके विकराल मुँह भयावह हो रहे हैं। उनकी देह से विचित्र गन्ध निकल रही है, जिससे गणेश्वर क्रीड़ा कर रहे हैं ।।३६-३८।। हीरा और स्फटिक की सीढ़ियों पर और चित्रित शिलातल पर बाघ, सिंह, हाथी, घोड़ा, बिल्ली, सियार आदि की तरह मुँहवाले प्रमथगण विराज रहे हैं। ऐसे स्थान पर छोटे, बड़े, दुबले, मोटे, लम्बे विशाल पेटवाले, छोटी जाँघवाले, लम्बे ओंठवाले, ताड़ के आकार की जाँघवाले, गोकर्ण, एककर्ण, महाकर्ण, अकर्ण एवं अनेक पैरवाले, विशाल पैरवाले, एक पैरवाले, बिना पैरवाले, बिना सिरवाले, एक सिरवाले, विशाल सिरवाले, अनेक सिरवाले, अनेक नेत्रवाले, विशाल नेत्रवाले, एक नेत्रवाले और अंधे भूतगणों द्वारा सहयोगी भूतपति महादेव जी घिर हुए हैं ।।३९-४३।। ऐसे समय में विशुद्ध मणि-

---

* इदमर्धं नास्ति ङ. पुस्तके।

+ नेत्रकैरित्युत्तरं बहुशीर्षैरित्याद्यर्धं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

विशुद्धमुक्तामणिरन्तभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ।।४४।।

देव्युवाच

भगवन्भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन । तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसंनिभम् ।।४५।।
नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् । किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्गनाशन ।।४६।।
को हेतुः कारणं किंच कण्ठे नीलत्वमीश्वर । एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ।।४७।।
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः । कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शंकरः ।।४८।।
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः । अग्रे समुत्थितं तस्मिन्विषं कालानलप्रभम् ।।४९।।
ते दृष्ट्वा सुरसंघाश्च दैत्याश्चैव वरानने । विषण्णवदनाः सर्वे गतास्ते ब्राह्मणोऽन्तिकम् ।।५०।।
दृष्ट्वा सुरगणान्भीतान्ब्रह्मोवाच महाद्युतिः । किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ।।५१।।
अथाऽष्टगुणमैश्वर्यं भवतां संप्रकल्पितम् । केन व्यावर्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ।।५२।।
त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः । प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्तयेत् ।।५३।।
विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः । अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।।
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्तितुम् ।।५४।।

मुक्ता-रत्न-भूषित, सुवर्णमय, मनोहर शिलातल पर सुखपूर्वक बैठे हुए कामदेव के शरीर को जलानेवाले महादेव जी से पार्वती ने पूछा ।।४४।।

पार्वती ने कहा–हे सांसारिकों का कल्याण करनेवाले वृषभध्वज महादेव! आपके कण्ठ में यह जो मेघ की तरह और नीले काजल की तरह दीप्त हो रहा है, जो न अत्यन्त शुभ्र है और न अत्यन्त स्पष्ट है, वह क्या है? हे काम के शरीर को जलानेवाले महादेव! आपके कण्ठ में यह जो नीलिमा है, यह किस कारण से हुई है? यह सब आप हमसे भली-भाँति कहें। हमें यह जानने का बड़ा कौतूहल हो रहा है ।।४५–४७।। देवी के वचन को सुनकर पार्वतीप्रिय शंकर ने उस मङ्गलदायिनी कथा को इस प्रकार कहा–पहले किसी समय देव-दानव मिलकर अमृत निकालने के लिए क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे। किन्तु अमृत निकलने के पहले काल और अग्नि के समान प्रभावाला विष निकल आया। वरानने! उस विष को देखकर देव-दानवों के मुँह सूख गये और वे सब ब्रह्मा के निकट पहुँचे ।।४८–५०।। महातेजस्वी ब्रह्मा ने डरे हुए देवों को देखकर कहा–"महाभाग! आप सब डरे हुए क्यों हैं, आपका चित्त उद्विग्न क्यों हो रहा है? सुरसत्तम! हमने आप लोगों के ही लिये अष्ट गुण ऐश्वर्य की सृष्टि की है। फिर किसने आपके उस ऐश्वर्य का अपहरण किया है? आप सब त्रैलोक्य के ईश्वर हैं, आप सबको कोई सन्ताप नहीं होता है। हम यह भी देख रहे हैं कि हमारी सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं है, जो हमारी आज्ञा का उल्लंघन करे ।।५१–५३।। आप सब स्वच्छन्दगामी विमान-विहारी हैं और प्रजाजन के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक कर्म विपाक को

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव। किं दुःखं केन संतापः कुतो वा भयमागतम्।।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ।।५५।।
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मनः। ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः।।५६।।
सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः। भुजङ्गभृङ्गसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम्।।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ।।५७।।
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम्। त्रैलोक्योत्सादिसूर्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः।।५८।।
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा। निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतः कृष्णो जनार्दनः।।५९।।
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतं कृष्णं जनार्दनम्। भीताः सर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः।।६०।।
सुराणामसुराणां च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः। प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया।।६१।।
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः। तत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ।।६२।।
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम्। येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतः कृष्णो जनार्दनः।।६३।।
तस्य विष्णुरहं चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः। न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शंकरात्।।६४।।
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः। ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः।।६५।।
नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः।।६६।।

भी बदल देने में समर्थ हैं। यह सब होते भी हुए भी फिर क्यों आप इस तरह डरे हुए हैं, जैसे सिंह से पीड़ित हरिण हो। क्या दुःख है, कौन शोक है, यह भय कहाँ से आया है? यह सब आप हमें शीघ्र बतलावें ।।५४-५५।। महात्मा ब्रह्मा की बातों को सुनकर ऋषि प्रमुख देव-दानवगण बोले-"महात्मा देव-दानवों द्वारा क्षीरसागर मथा जा रहा था कि एक भयङ्कर विष निकला, जो संवर्तक अग्नि की भाँति प्रभावाला और भुजङ्ग, भृङ्ग एवं नील मेघ की तरह काला है। वह विष काल मृत्यु की तरह, युगान्त काल में तीनों लोको को जलानेवाली सूर्य की प्रतप्त किरण की तरह सभी दिशाओं में प्रस्फुरित हो रहा है। उस विष से जो कालाग्नि के समान कान्ति निकल रही है, उससे लाल और गोरे शरीरवाले विष्णु काले हो गये हैं। लाल और गोरे विष्णु को काला होते देखकर हम सभी देवगण डर गये हैं और आपकी शरण में आये हैं ।।५६-६०।। महातेजस्वी ब्रह्मा ने देव-दानवों की बात सुनकर संसार के कल्याण के लिए कहा-हे तपोधन ऋषियो! और सभी देवो! आप लोग सुनें, सागर के मथे जाने पर आपके आगे ही जो कालाग्नि के समान कालकूट विष निकला है और जिसने निकलते ही विष्णु को काला बना दिया है, उस विष के वेग को हम, विष्णु या आप देवगण नहीं सह सकते हैं। हाँ, उसके वेग को शङ्कर भगवान् सहन कर सकते हैं ।।६१-६४।। यह कहकर पद्मगर्भ की तरह आभावाले पद्मयोनि होने पर भी अयोनिज, लोकपितामह ब्रह्मा ने स्तुति करना प्रारम्भ किया। हे अनेक नेत्रवाले विरूपाक्ष, हे पिनाक और वज्र धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है ।।६५-६६।। हे त्रैलोक्यनाथ!

नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः। नमः सुरारिसंहर्त्रे तापसाय त्रिचक्षुषे ।।६७।।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः। सांख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः ।।६८।।
मन्मथाङ्गविनाशाय कालकालाय वै नमः। रुद्राय च सुरेशाय देवदेवाय ते नमः ।।६९।।
कपर्दिने करालाय शंकराय कपालिने। विरूपायैकरूपाय शिवाय वरदाय च ।।७०।।
*त्रिपुरघ्नाय वन्द्याय मातृणां पतये नमः। बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च ।।७१।।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने। लोकत्रयविधात्रे च रुद्राय वरुणाय च ।।७२।।
अग्राय चैव चोग्राय विप्रायानेकचक्षुषे। रजसे चैव सत्त्वाय तमसेऽव्यक्तयोनये ।।७३।।
नित्यायानित्यरूपाय नित्यानित्याय वै नमः। व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ।।७४।।
चिन्त्याय चैवाचिन्त्याय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः। भक्तानामार्तिनाशाय नरनारायणाय च ।।७५।।
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिचक्राङ्किताय च। पक्षमासार्धमासाय नमः संवत्सराय च ।।७६।।
बहुरूपाय मुण्डाय दण्डिनेऽथ वरूथिने। नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ।।७७।।
ध्वजिने रथिने चैव यमिने ब्रह्मचारिणे। ऋग्यजुःसामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।।
इत्येवमादिचरितैस्तुभ्यं देव नमोऽस्तु ते ।।७८।।

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुत्वा ततो देवः प्रणिपत्य वरानने ।।७९।।

हे भूतपति! हे त्रिनयन! आप तपस्वी और देव-शत्रुओं के विनाशकर्त्ता हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। सांख्ययोग और भूतग्राम आपसे ही प्रतिष्ठित हुआ है, आपको नमस्कार है। आप कामदेव के शरीर का दहन करनेवाले, कालकाल, रुद्र, सुरेश और देवदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप कपर्दी, कपाली, कराल, शङ्कर, विरूप, एकरूप, शिव और वरद हैं, आपको नमस्कार है ।।६७-७०।। आप त्रिपुरारि, वन्दनीय, माताओं के पति, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त और आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, आपको नमस्कार है। आप कमल धारण करनेवाले, नग्न, शिखण्डी, तीनों लोकों के विधाता, चन्द्रमा और वरुण हैं, आपको नमस्कार है। आप अग्र, उग्र, विप्र, अनेक चक्षु, सत्त्व, रज, तम और अव्यक्त योनि हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य, अनित्य, नित्यानित्य, व्यक्त, अव्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, चिन्त्य, अचिन्त्य, चिन्त्याचित्य और भक्तों की पीड़ा नाश करनेवाले नर-नारायण हैं ।।७१-७५।। आप उमाप्रिय, शर्व, नन्दिचक्र से अङ्कित शरीरवाले, पक्ष, मास, अर्धमास, संवत्सर, बहुरूप, मुण्डी, दण्डी, वरूथी, कपालहस्त, दिग्वस्त्र और शिखण्डी हैं। आप ध्वजी, रथी, यमी, ब्रह्मचारी, ऋग्यजुः, सामवेद, पुरुष और ईश्वर हैं। देव! आप इस प्रकार के अन्यान्य गुणों से विभूषित हैं, आपको नमस्कार है ।।७६-७८।।

महादेव जी बोले-पार्वती! ब्रह्मा ने इस प्रकार स्तुति और प्रणामकर फिर कहा-जिनका मस्तक गंगाजल से

---

* नास्त्ययं श्लोको घ. पुस्तके।

ज्ञात्वा तु भक्तिं मम देवदेवो गङ्गाजलाप्लावितकेशदेशः ।।
सूक्ष्मोऽतियोगातिशयादचिन्त्यो न हि प्लुतो व्यक्तमुपैति चन्द्रः ।।८०।।
एवं भगवता पूर्वं ब्रह्मणा लोककर्तृणा । स्तुतोऽहं विविधैस्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसंभवैः ।।८१।।
ततः प्रीतोऽह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने । ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ।।८२।।
भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । किं कार्यं ते मया ब्रह्मन्कर्तव्यं वद सुव्रत ।।८३।।
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षण । भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर ।।८४।।
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण । भगवन्मेघसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम् ।।८५।।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् । कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ।।८६।।
त्रैलोक्योत्सादसूर्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः । अग्रे समुत्थितं तस्मिन्विषं कालानलप्रभम् ।।८७।।
तं दृष्ट्वा तु वयं सर्वे भीताः संभ्रान्तचेतसः । तत्पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।।
भवानग्र्याह्यस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः ।।८८।।
त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न विद्यते । नास्ति कश्चित्पुमाञ्शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ।।
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ।।८९।।
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसंनिभम् । पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ।।
कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ।।९०।।

प्लावित हो रहा है वही अति सूक्ष्म और योग द्वारा अचिन्त्य देव-देव महादेव हमारी भक्ति जानकर आविर्भूत हों, जैसे चन्द्रमा प्रत्यक्ष रहने पर भी किसी का आह्वान नहीं चाहते हैं ।।७९-८०।। इस प्रकार लोककर्त्ता ब्रह्मा द्वारा विविध प्रकार के वेद-वेदाङ्ग से अनुमोदित स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने पर हम प्रसन्न हो गये और महात्मा पितामह ब्रह्मा से सूक्ष्म वचन में कहा-"भगवन्! भूतभव्येश! लोकनाथ! जगत्पति! सुव्रत! ब्रह्मा! आपका कौन-सा कार्य है, जिसे हम करें ।।८१-८३।। इस तरह की बात सुनकर कमलनयन ब्रह्मा ने उत्तर दिया-नाथ! चराचर के कल्याणकर्त्ता कारण रूप ईश्वर! सुनिये-देव-दानव मिलकर क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे कि नीले मेघ की तरह भयङ्कर विष उत्पन्न हुआ। उसकी कान्ति चारों ओर छिटक रही थी, संवर्तक अग्नि की तरह वह प्रज्वलित हो रहा था, जान पड़ता था कि प्रलयकाल आ गया है और सूर्य की किरणें तीनों लोकों को जलाने के लिए उद्यत हो चुकी हैं। काल और मृत्यु सामने खड़े हैं। इस तरह काल और अग्नि की तरह प्रभावाले विष को उपस्थित देखकर हम सभी डर से विह्वल हो गये हैं। अतः कमलनयन महादेव! आप संसार के कल्याण के लिए उसे पीजिये। आप श्रेष्ठ हैं, प्रभु हैं और आप ही पंक्तिपावन हैं ।।८४-८८।। महादेव! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष तीनों लोकों में समर्थ नहीं कहा जा सकता है, जो इस विष के वेग को सहन करे। वरानने! परमेष्ठी ब्रह्मा के वचन को सुनकर हमने स्वीकार कर लिया और देवों के लिए भी भयदायक काल की तरह महाघोर विष को पी गया। उसके पान से हमारा कण्ठ तत्क्षण कृष्ण वर्ण का हो गया ।।८९-९०।। कमलपत्र

तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम्। तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ।।९१।।
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ।।९२।।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे। पश्यतां देवसंघानां दैत्यानां च वरानने ।।९३।।
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्। धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ।।९४।।
तत्कालकूटं विषमुग्रतेजः कण्ठे मया पर्वतराजपुत्रि।
निवेश्यमानं सुरदैत्यसंघो दृष्ट्वा परं विस्मयमाजगाम ।।९५।।
ततः सुरगणाः सर्वे सदैत्योरगराक्षसाः। ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा मत्तमातङ्गगामिनि ।।९६।।
अहो बलं वीर्यपराक्रमस्ते अहो पुनर्योगबलं तथैव।
अहो प्रभुत्वं तव देवदेव गङ्गाजलास्फालितमुक्तकेश ।।९७।।
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युर्वरदस्त्वमेव।
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव ।।९८।।
त्वमेव यज्ञो नियमस्त्वमेव त्वमेय भूतं भविता त्वमेव।
त्वमेव चाऽऽदिर्निधनं त्वमेव स्थूलश्च सूक्ष्मः पुरुषस्त्वमेव ।।९९।।
त्वमेव सूक्ष्मस्य परः परस्य त्वमेव वह्निः पवनस्त्वमेव।
त्वमेव सर्वस्य चराचरस्य लोकस्य कर्ता प्रलये च गोप्ता ।।१००।।
इतीदमुक्त्वा वचनं सुरेन्द्राः प्रगृह्य सोमं प्रणिपत्य मूर्ध्ना।
गता विमानैरनिगृह्यवेगैर्महात्मनो मेरुमुपेत्य सर्वे ।।१०१।।

के समान और लपलपाते नागराज तक्षक की तरह उस विष को कण्ठ में लगा देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने कहा–सुव्रत! महादेव! इस कण्ठ के द्वारा आप अत्यधिक शोभा पा रहे हैं ।।९१–९२।। ब्रह्मा के वचन को सुनकर देव-दानवों, यक्ष-गन्धर्व-भूतों और पिशाच-उरग एवं राक्षसों के सामने ही उस घोर विष को कण्ठ में धारण कर लिया। सुमुखि! गिरिराजपुत्रि! तब से हम नीलकण्ठ कहलाते हैं। पर्वतराजपुत्रि! उस कालकूट के समान तेज विष को जब हमने कण्ठ में रख लिया तब देव और दानव यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ।।९३–९५।। गजगामिनि! तब सभी दैत्य-उरग-राक्षस और देवगण हाथ जोड़कर बोले–अहो, आपका बल, वीर्य और पराक्रम धन्य है, आपका योगबल और प्रभुत्व धन्य है। देवदेव! गंगाजल की तरङ्ग से आपके मस्तक का केशपाश खुल गया है। आप विष्णु हैं, ब्रह्मा हैं, मृत्यु हैं और वरदाता भी हैं। आप सूर्य, चन्द्र, भूमि, जल, यज्ञ, नियम, भूत, भविष्य, आदि, अन्त, स्थूल, सूक्ष्म और पुरुष हैं। आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म, परात्पर, वह्नि, पवन, चराचरात्मक जगत् के कर्त्ता और प्रलयकाल में सबके रक्षक हैं ।।९६–१००।। देवों ने इस प्रकार स्तुति की और सिर झुकाकर महादेव को प्रणाम किया। फिर वे सब महात्मा अपने-अपने वेगगामी विमानों पर चढ़कर मेरुप्रस्थ की ओर चले गये ।।१०१।। यह लोक विश्रुत, विख्यात

इत्येतत्परमं गुह्यं पुण्यात्पुण्यतरं महत्। नीलकण्ठेति यत्प्रोक्तं विख्यातं लोकविश्रुतम् ।।१०२।।
स्वयं स्वयंभुवा प्रोक्तां कथां पापप्रणाशनीम्। यस्तु धारयते नित्यमेनां ब्रह्मोद्भवो कथाम् ।।
तस्याहं संप्रवक्ष्यामि फलं वै विपुलं महत् ।।१०३।।
विषं तस्य वरारोहे स्थावरं जङ्गमं तथा। गात्रं प्राप्य तु सुश्रोणि क्षिप्रं तत्प्रतिहन्यते ।।१०४।।
शमयत्यशुभं घोरं दुःस्वप्नं चापकर्षति। स्त्रीषु वल्लभतां याति सभायां पार्थिवस्य च ।।१०५।।
विवादे जयमाप्नोति युद्धे शूरत्वमेव च। गच्छतः क्षेममध्वानं गृहे च नित्यसंपदः ।।१०६।।
शरीरभेदे वक्ष्यामि गतिं तस्य वरानने। नीलकण्ठो हरिच्छ्मश्रुः शशाङ्काङ्कितमूर्धजः ।।१०७।।
त्र्यक्षस्त्रिशूलपाणिश्च वृषयानः पिनाकधृक्। नन्दितुल्यबलः श्रीमान्नन्दितुल्यपराक्रमः ।।१०८।।
विचरत्यचिरात्सर्वान्सर्वलोकान्ममाऽऽज्ञया। न हन्यते गतिस्तस्य अनिलस्य यथाऽम्बरे ।।
मम तुल्यबलो भूत्वा तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ।।१०९।।
मम भक्ता वरारोहे ये च शृण्वन्ति मानवाः। तेषां गतिं प्रवक्ष्यामि इह लोके परत्र च ।।११०।।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम्। वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।।१११।।
व्याधितो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। गुर्विणी लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।।
नष्टं च लभते सर्वमिह लोके परत्र च ।।११२।।

नीलकण्ठोपाख्यान परम गुह्य और पवित्रतम है ।।१०२।। स्वयं स्वयंभू ने इस पापनाशिनी कथा को कहा है। ब्रह्मा द्वारा कही गयी इस कथा को जो व्यक्ति नित्य पढ़ा करता है, उसे अत्यधिक जो फल प्राप्त होता है, उस फल को हम कहते हैं। सुश्रोणि! वरारोहे! शरीर में स्थावर-जङ्गम आदि किसी भी प्रकार का विष प्रवेश कर जाय, वह इस कथा के प्रभाव से शीघ्र नष्ट हो जाता है ।।१०३-१०४।। यह कथा अशुभ, भयङ्कर दुःस्वप्न को नष्ट करती है। राजसभा में और स्त्रियों के बीच सम्मान देती है, विवाद में जय प्राप्त कराती है, युद्ध में वीरता आती है, मार्ग सुखकर होता है और घर धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। वरानने! जो व्यक्ति नीलकण्ठ, हरित्श्मश्रु, शशांकांकितमूर्धज, त्र्यक्ष, त्रिशूलपाणि, वृषयान और पिनाकधृक् नाम को शरीर में धारण करता है, वह नन्दि के तुल्य बलवान् और पराक्रमी होकर श्रीसम्पन्न हो जाता है ।।१०५-१०८।। वह हमारी आज्ञा से सम्पूर्ण लोकों में विचरण करता है। उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता है, जैसे आकाश में वायु का वेग कहीं नहीं रुकता। वह मेरे तुल्य बलवान् होकर प्रलयकाल तक रहता है ।।१०९।। वरारोहे! जो मनुष्य हममें भक्ति रखकर हमारी कथा का श्रवण करता है, इस लोक और उस लोक में वह कैसा सामर्थ्यवान् हो जाता है उसको सुनो। ब्राह्मण वेदाध्यायी होता है, क्षत्रिय जय लाभ करता है, वैश्य धन लाभ प्राप्त करता है और शूद्र सुख पाता है। रोग रोग-मुक्त और बन्दी बन्धन-मुक्त हो जाता है। गर्भिणी पुत्र-प्रसव करती है और कन्या सुन्दर पति पाती है। इस लोक और परलोक में नष्ट द्रव्य प्राप्त होता है ।।११०-११२।।

गवां शतसहस्त्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं भवति श्रुत्वा विभोर्दिव्यामिमां कथाम् ।।११३।।
पादं वा यदि वाऽप्यर्धं श्लोकं श्लोकार्धमेव वा । यस्तु धारयते नित्यं रुद्रलोकं स गच्छति ।।११४।।

+(इतिहासमेनं गिरिराजपुत्रि मया सुतुष्टेन तवाम्बुजेक्षणे ।
निवेदितं पुण्यफलादियुक्तं मया च गीतं चतुराननेन) ।।११५।।
कथामिमां पुण्यफलादियुक्तां निवेद्य देव्याः शशिबद्धमूर्धजः ।
वृषस्य पृष्ठेन सहोमया प्रभुर्जगाम किष्किन्धगुहां गुहप्रियः ।।११६।।
क्रान्तं मया पापहरं महापदं निवेद्य तेभ्यः प्रददौ प्रभञ्जनः ।
अधीत्य सर्वं त्वखिलं सलक्षणं जगाम आदित्यपथं द्विजोत्तमाः ।।११७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते नीलकण्ठस्तवो नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः।।५४।।

विधानपूर्वक एक लाख गौओं के दान करने से जो पुण्य होता है, वह महादेव की इस दिव्य कथा को सुनने से प्राप्त होता है। सम्पूर्ण, आधा या एक चरण ही जो इस कथा का नित्य पाठ करता है, वह शिवलोक को जाता है ।।११३-११४।। पार्वती! हमने चतुरानन ब्रह्मा के प्रति प्रसन्न होकर पुण्य फल देनेवाली इस कथा को कहा था। वही आज तुम्हारे आगे भी कही गयी है। इसके बाद कार्तिकेय को प्यार करनेवाले चन्द्रशेखर महादेव इस पुण्य फल देनेवाली कथा को पार्वती से कहकर और उनके साथ नन्दी पर सवार होकर किष्किन्धक गुहा की ओर चले गये। ब्राह्मणो! वायुदेव पाप नाश करनेवाली, महापद देनेवाली, सुलक्षण इस कथा को मुनियों से कहकर आदित्य पथ की ओर चले गये और हमने भी इस कथा को तदनुरूप ही आप लोगों से कह दिया ।।११५-११७।।

श्री वायुमहापुराण का नीलकण्ठ-स्तुति नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त।।५४।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

अथ पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

लिङ्गोद्भवस्तवः

ऋषय ऊचुः

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वरः। श्रोतुमिच्छामहे सम्यगैश्वर्यगुणविस्तरम् ।।१।।

सूत उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वं च महात्मनः ।।२।।
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहतम्। बलिं बद्ध्वा महौजास्तु त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ।।३।।
प्रनष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ। अथाऽऽजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं सर्वे देवाः सवासवाः ।।४।।
यत्राऽऽस्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः। सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।५।।
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः। अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ।।६।।
त्वं धाता त्वं च कर्ताऽस्य त्वं लोकान्सृजसि प्रभो। त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।।
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ।।७।।

अध्याय ५५

लिंगोद्भव-स्तव

ऋषिगण बोले–बोलनेवालों में श्रेष्ठ! गुण, कर्म और प्रभाव में कौन श्रेष्ठ हैं एवं किनका ऐश्वर्य सबसे अधिक है? इस बात को हम लोग अच्छी तरह से सुनना चाहते हैं ।।१।।

सूत जी बोले–इस विषय में भी हम एक प्राचीन इतिहास बतलाते हैं। देव-देव महादेव का क्या माहात्म्य है और उनका क्या प्रभुत्व है इस सम्बन्ध में विष्णु ने भी त्रैलोक्य-विजय-काल में पहले इस प्रकार कहा है। त्रैलोक्याधिपति महाबली विष्णु ने जब बलि को बाँध दिया, तब इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये; क्योंकि राक्षस सब मारे जा चुके थे। उस समय भगवान् को देखने के लिए इन्द्र प्रभृति देवगण क्षीरसागर के समीप गये ।।२-४।। वहाँ जाकर विश्वरूपात्मा आदि पुरुष हरि की वे सब स्तुति करने लगे। वहाँ सिद्ध, ब्रह्मर्षि, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, नाग; देवर्षि, नदी और पर्वत आदि सभी स्तवन काल में उपस्थित थे। विष्णु! आप धाता हैं, कर्त्ता हैं, लोकों के स्रष्टा हैं और आपके ही प्रसाद से तीनों लोकों को अविनाशी कल्याण प्राप्त होता है। आपने बलि को बाँधकर सब असुरों को जीत लिया है ।।५-७।। इस प्रकार जब देवों और सिद्धों के द्वारा विष्णु की स्तुति की गयी तब वे पुरुषोत्तम सब

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः । प्रत्युवाच ततो देवान्सर्वांस्तान्पुरुषोत्तमः ।।८।।
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः । यः स्त्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ।।९।।
येनाहं ब्रह्मणा सार्धं सृष्टा लोकाश्च मायया । तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०।।
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया । उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ।।११।।
सहस्त्रशीर्षो भूत्वाऽथ सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् । शङ्खचक्रगदापाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२।।
एतस्मिन्नन्तरे दूरात्पश्यामि ह्यमितप्रभम् । शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।।१३।।
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् । कृष्णाजिनधरं देवं कमण्डलुविभूषितम् ।।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४।।
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकनमस्कृतः । कस्त्वं कुतो वा किंचेह तिष्ठसे वद मे विभो ।।१५।।
अहं कर्ताऽस्मि लोकानां स्वयंभूर्विश्वतोमुखः । एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाऽहमुवाच तम् ।।१६।।
अहं कर्ता च लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः । एवं संभाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम् ।।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाऽप्यधिष्ठिता ।।१७।।
ज्वालां ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदाऽनघाः । तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिष्कृतं जलम् ।।१८।।

देवों से बोले–देवो! हम इसका कारण बताते हैं, आप सब सुनें। जो सब जीवों के स्त्रष्टा हैं, काल हैं, काल के भी स्त्रष्टा प्रभु हैं और जिन्होंने माया का विस्तार कर ब्रह्मा के साथ सब लोगों की सृष्टि की है, उन्हीं के प्रसाद से हमने समर में जय लाभ किया है ।।८–१०।। पूर्व काल में जब तीनों लोक अन्धकार से व्याप्त था और जीवगण हमारे उदर में निवास कर रहे थे, उस समय हम भी हजार सिर, हजार नयन और हजार चरण धारणकर एवं शङ्ख, चक्र, गदा से सुशोभित होकर विमल जल में शयन कर रहे थे। उसी समय हमने एक योगी पुरुष को दूर से देखा। वे अत्यन्त प्रभा से युक्त, सौ सूर्य की तरह दीप्तिमान्, अपनी प्रभा से प्रकाशवान् चतुरानन, सुवर्ण की तरह दीप्तिमान् तथा कृष्ण चर्म और कमण्डलु से विभूषित हैं। वे पुरुषोत्तम एक निमेष के भीतर ही हमारे निकट उपस्थित हो गये। तब सब लोकों के द्वारा नमस्कृत ब्रह्मा ने हमसे कहा–विभो! आप कौन हैं और कहाँ से आकर यहाँ निवास करते हैं? यह आप हमसे कहें। हम चतुरानन, लोकों के कर्त्ता और स्वयंभू हैं ।।११–१५$\frac{१}{२}$।। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा कहे जाने पर हमने ब्रह्मा से कहा–हम सभी लोकों के कर्त्ता और बार–बार संहार करनेवाले हैं। इस प्रकार हम दोनों बोल रहे थे और परस्पर जय पाने की अभिलाषा कर ही रहे थे कि हम दोनों ने उत्तर की ओर एक जलती हुई ज्योति को देखा ।।१६–१७।। पवित्र मुनियो, उस ज्वाला को देखकर हम दोनों ही विस्मित हो गये; क्योंकि उस तेज के प्रभाव से समूची जलराशि जगमगा उठी। वह अद्भुत तेज धीरे–धीरे बढ़ने लगा और हम दोनों शीघ्र ही उसका अन्त देखने के लिए उत्सुक हो उधर गये। हम दोनों ने देखा कि वह ज्वालामाला पृथ्वी और स्वर्लोक को पार कर रही

वर्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते । अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहं स सत्वरौ ।।१९।।
दिवं भूमिं च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् । तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ।।२०।।
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् । न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ।।२१।।
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः । महौजसं महाघोरं वर्धमानं भृशं तदा ।।
ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्वभूतभयंकरम् ।।२२।।
अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं वै गच्छते मन्त्रकारणम् । घोररूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ।।२३।।
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छत्वतन्द्रितः । अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ।।२४।।
अहमूर्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते । तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्ध्वमधश्च ह ।।२५।।
ततो वर्षसहस्रं तु अहं पुनरधो गतः । न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ।।२६।।
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तं तस्य पश्यति । समागतो मया सार्धं तत्रैव च महाम्भसि ।।२७।।
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः । मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ।।२८।।
ततो ध्यानगतं तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् । प्रभवं निधनं चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ।।२९।।
ब्रह्माऽञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने । महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ।।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ।।३०।।

है। उस ज्वाला-मण्डल के मध्य में अत्यन्त प्रभापूर्ण चमकता हुआ एक वितस्ति परिमाण का अस्पष्ट शिवलिङ्ग था। मध्य में सुशोभित वह लिङ्ग न तो सोने का था, न चाँदी का और न तो पत्थर का ही। वह अपरिचित, अचिन्त्य, कभी लक्ष्य तो कभी अलक्ष्य होनेवाला, अत्यन्त ओजपूर्ण, महाधीर, प्रतिक्षण अधिकाधिक बढ़नेवाला, सब प्राणियों को भय-त्रस्त करनेवाला और अपनी ज्वाला की अधिकता से विशाल जान पड़ता था ।।१८-२२।। यह देखकर मैंने कहा कि इस भयंकर रूपवाले लिंग का जो कि अपनी ऊँचाई से आकाश को फोड़ता-सा जान पड़ता है-पता लगाना चाहिए। यह सुनकर ब्रह्मा ने मुझसे कहा-आप आलस्य त्यागकर इसके निम्न भाग की ओर जाइये, किसी-न-किसी प्रकार इस रहस्यमय लिंग का अन्त जानना चाहिए। मैं स्वयं इसका पता लगाने के लिए ऊपर की ओर जा रहा हूँ जब तक इसका अन्त न होगा, ऊपर की ओर बढ़ता ही जाऊँगा। इस प्रकार संकल्प कर दोनों ऊपर और नीचे की ओर गये ।।२३-२५।। तत्पश्चात् मैं (विष्णु) एक सहस्र वर्ष तक नीचे की ओर चलता ही गया। परन्तु उसका अन्त न देख सका। तब तो सचमुच ही मैं डर गया। उधर ब्रह्मा की भी यही गति थी। वे भी चलते-चलते थक गये परन्तु पार न पा सके। तब विवश हो वे भी लौट पड़े और मेरे ही साथ उसी महासागर में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। हम दोनों उस महात्मा शिव की माया से मोहित किंकर्त्तव्यविमूढ-से हो गये, चेतना लुप्त-सी हो गयी। निदान उस विश्वतोमुख, अव्यय, शक्तिशाली लोक के स्रष्टा एवं विनाशक प्रभु शंकर का ध्यान करने लगे और अञ्जलि बाँधकर उस शर्व, शूली, महाभैरव शब्द करनेवाले, भीमरूप, दंष्ट्री, अव्यक्त और महान् शंकर की स्तुति करने लगे ।।२६-

नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महान्त ।।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ।।३१।।
परमेष्ठि (ष्ठी) परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् । श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ।।३२।।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परं पदम् । स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम् ।।३३।।
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा । वेदा लोकाश्च देवाश्च भगवानेव सर्वशः ।।३४।।
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् । भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ।।३५।।
वायोःस्पर्शश्च देवेश वपुश्चन्द्रसम (मस) स्तथा । बुधो ज्ञानं च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ।।३६।।
त्वं कर्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्मयोऽन्तकः । त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ।।३७।।
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वं (स्त्वं) च प्रकाशसे । दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान्संक्षियसि प्रभो ।।३८।।
पश्चिमेण तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै । उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वं च व्यवस्थितम् ।।३९।।
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः । आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनीसुतौ ।।४०।।
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः । बालखिल्या महात्मानस्तपःसिद्धाश्च सुव्रताः ।।४१।।
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः । उमा सीता सिनीवाली कुहूर्गायत्रिरेव च ? ।।४२।।

३०।। हे देव! लोक और देव दोनों के ईश! आपको नमस्कार है, भूतपति! महान्त! आपको नमस्कार है, शाश्वत! सिद्ध योनि! आपको नमस्कार है। सब जगत् की प्रतिष्ठा करनेवाले! नमस्कार है ।।३१।। आप परमेष्ठी, परब्रह्म, अक्षर और परम पद हैं। आप श्रेष्ठ हैं, वामदेव, रुद्र-स्कन्द, शिव और प्रभु आप ही हैं, यज्ञ, वषट्कार, ओंकार और परमपद हैं, स्वाहाकार, नमस्कार, सब कर्मों के संस्कार, स्वधाकार, जपनीय, व्रत, नियम, वेद, लोक, देव और सर्वव्यापी भगवान् आप ही हैं। आकाश का शब्द गुण, समस्त प्राणियों के अव्यय आदि कारण आप ही हैं ।।३२–३४$\frac{१}{२}$।। महेश्वर! आप भूमि में गन्धस्वरूप, जल में रस और तेजोरूप हैं। वायु का स्पर्श गुण एवं चन्द्रमा रूप आप ही हैं। देवेश! आप प्रकृति के बीजरूप से वर्तमान हैं। आप ही ज्ञानरूप और ज्ञानी भी हैं, आप समस्त भूतों के बनानेवाले और अन्त करनेवाले काल अन्तक (यम) हैं, आप ही तीनों लोकों को धारण करते और सृष्टि भी करते हैं ।।३५–३७।। अपने पूर्व मुख से तुम इन्द्र रूप में प्रकाशित होते हो, प्रभो! दक्षिण मुख से सभी लोकों का विनाश करते हो अर्थात् यम रूप में विद्यमान हो, पश्चिम मुख से वरुण का कार्य करते हो एवं उत्तर मुख से चन्द्रमा का धर्म तुममें व्यवस्थित है ।।३८–३९।। देव! इस प्रकार तुम अनेक रूपों द्वारा इस समस्त जगत् के उत्पादक रूप में शोभित होते हो, तुम्हारा कभी नाश नहीं होता। देवेश! बारह आदित्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, उनचासों मरुत्, दोनों अश्विनीकुमार एवं इनके अतिरिक्त जो साध्य, विद्याधर, नाग, चारण, तपस्वी, बालखिल्य प्रभृति महात्मा तपोनिष्ठ हैं, वे सभी तुमसे उत्पन्न हुए हैं। अन्य जितने जगत् में तपोनिष्ठ व्रतधारी हैं, वे सब भी तुमसे उत्पन्न हुए हैं। उमा, सीता, सिनीवाली, कुहू,

लक्ष्मीः कीर्तिधृतिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपुः स्वधा । तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती ।।
त्वत्तः प्रसूता देवेश संध्या रात्रिस्तथैव च ।।४३।।
सूर्यायुतानामयुतप्रभाव नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणाकराय ।।४४।।
नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु ते चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सायकचक्रधारिणे ।।४५।।
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ।।४६।।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोऽस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ।।४७।।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ।।४८।।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ।।४९।।

गायत्री, लक्ष्मी, कीर्ति, धृति, मेधा, लज्जा, क्षान्ति, वपु, स्वधा, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, वाग्देवी सरस्वती, संध्या, रात्रि– ये सभी तुमसे उत्पन्न हुई हैं ।।४०–४३।। दस सहस्र सूर्य से भी अधिक प्रभावशाली तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे सहस्रों चन्द्रमा के समान कान्तिशालिन्! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। पर्वत के समान विशाल स्वरूप धारण करनेवाले, सर्वगुणों के आकर स्वरूप तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे पट्टिश के धारण करनेवाले, चर्म एवं विभूति से विभूषित तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम रुद्र हो, पिनाकपाणि हो, सायक तथा चक्र धारण करनेवाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे भस्म से विभूषित अंगोंवाले! कामदेव के शरीर को नष्ट करनेवाले! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। देव! तुम स्वर्णिम वस्त्र धारण करनेवाले हो, हिरण्यबाहु हो। हे हिरण्यरूप, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है, हे हिरण्यनाभ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे सहस्रों नेत्र से विचित्र आकृतिवाले, हिरण्यरेता देव! तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है ।।४४–४७।। हे देव! तुम हिरण्य के समान वर्णवाले हो, हिरण्यगर्भ हो। हे देव! तुम हिरण्य का चीर धारण करनेवाले हो, हिरण्य दान करनेवाले हो, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे हिरण्य की माला धारण करनेवाले देव! तुम्हें हमारा नमस्कार है, देव! तुम हिरण्यवाही हो, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे देव! तुम हिरण्यवर्मा हो, अतिभीषण नाद करनेवाले तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है। हे भीषणवेगशाली! शंकर! नीलकण्ठ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे दिव्य सहस्र बाहु धारण करनेवाले! नृत्य एवं वाद्य को पसन्द करनेवाले! तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार

नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शंकर नीलकण्ठ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्त्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्तनवादनप्रिय ।।५०।।
एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः। भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।।५१।।
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः। वक्त्रकोटिसहस्त्रेण ग्रसमान इवाम्बरम् ।।५२।।
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः। नानारत्नावचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ।।५३।।
पिनाकपाणिर्भगवान्वृषभासनशूलधृक् । दण्डकृष्णाजिनधरः कपाली घोररूपधृक् ।।५४।।
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयंकरः। दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ।।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वमपूरयत् ।।५५।।
तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मनः। तदोवाच महायोगी प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ।।५६।।
पश्येतां च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यताम्। युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वं सनातनौ ।।५७।।
अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः। वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु तिष्ठति ।।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ।।५८।।
ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः। ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदाऽनघौ ।।५९।।
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ। भक्तिर्भवतु नो नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ।।६०।।

है ।।४८-५०।। इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महाबुद्धिमान्, कोटि सूर्य के समान कान्तिवाले, महायोगी भगवान् प्रकट हुए। उस समय प्रसन्नचित्त महेश्वर महादेव प्रार्थियों की ओर मुख कर कुछ बोलते हुए शतकोटि मुखों द्वारा आकाश को निगलते हुए से शोभित हो रहे थे। उस समय भगवान् पिनाकपाणि अति शोभायुत् हो रहे थे। उनके एकमात्र कण्ठ था, जटा एक थी, शरीर विविध आभूषणों से विभूषित था, विविध रत्नों से अङ्गों की शोभा चित्र-विचित्र हो रही थी, शरीर पर विविध प्रकार के पुष्प-चन्दन सुशोभित हो रहे थे। वृषभ पर समासीन थे, हाथ में शूल धारण किये थे, दण्ड एवं कृष्णमृग का चर्म धारण किये कपाल लिये हुए थे। उस समय उनकी आकृति अतिघोर थी, सर्प का यज्ञोपवीत धारण किया था; पर ऐसा स्वरूप होते हुए भी वे देवताओं के लिए भयङ्कर नहीं प्रतीत हो रहे थे। उनके स्वर दुन्दुभि के एवं बादलों की गड़गड़ाहट के समान भीषण तथा गम्भीर थे। उस समय शङ्कर ने भीषण अट्टहास किया जिससे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया ।।५१-५५।। महात्मा शंकर के उस भीषण नाद से हम लोग भयभीत हो गये। तदनन्तर महायोगी शंकर ने कहा, देवताओं में श्रेष्ठ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। भय को छोड़कर मेरी महामाया को देखो, पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुए हो। यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं, और यह नित्य युद्ध में स्थिर रहनेवाले विष्णु मेरे बायें हाथ हैं। मैं तुम दोनों पर अति प्रसन्न हूँ और मनोऽभिलषित वरदान दे रहा हूँ। शिव की ऐसी बातें सुनकर निष्पाप महात्मा ब्रह्मा, विष्णु अति प्रसन्न मन से शिव के चरणों पर बारम्बार प्रणत हुए और बोले, देव! यदि सचमुच हम पर आपकी प्रीति उत्पन्न हुई है और वरदान देने के लिए प्रस्तुत हैं तो सुरेश्वर! आपमें हमारी भक्ति सर्वदा बनी रहे ।।५६-६०।।

भगवानुवाच

एवमस्तु महाभागौ सृजतां विविधाः प्रजाः। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।।६१।।
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः। तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयं त्विह ।।६२।।
एतद्विरूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्। अचिन्त्यं तददृश्यं च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।६३।।
(+तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुञ्ज्वहे। येन सूक्ष्ममचिन्त्यं च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः) ।।६४।।
महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते। सुरासुरवरश्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ।।६५।।

सूत उवाच

एतच्छुत्वा गताः सर्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम्। नमस्कारं प्रयुञ्जानाः शंकराय महात्मने ।।६६।।
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः। कामांश्च लभते सर्वान्पापेभ्यस्तु विमुच्यते ।।६७।।
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ।।
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया माहेश्वरं बलम् ।।६८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते लिङ्गोद्भवस्तवो नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः।।५५।।

भगवान् बोले–महाभाग्यशाली! जैसा तुम दोनों कह रहे हो, वैसा ही हो, विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करते जाओ। भगवान् शंकर इतना कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मैंने उन योगी शंकर के प्रभाव का यह वर्णन तुम लोगों को सुना दिया। उन्हीं भगवान् ने इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि की है, हम लोग तो हेतुमात्र हैं। ये भगवान् स्वरूपरहित हैं, अज्ञात हैं, अव्यक्त हैं, लोक में उनकी 'शिव' नाम से प्रसिद्धि है, वे अचिन्त्य हैं, अदृश्य हैं, ज्ञान-चक्षु पण्डितजन ही उन्हें देख सकते हैं। उन देवाधिपति को हम नमस्कार करते हैं जिनके द्वारा ज्ञानचक्षु पण्डितजन सूक्ष्म एवं अचिन्त्य पदार्थों का दर्शन करते हैं। हे महादेव! तुम्हें हमारा नमस्कार है। महेश्वर! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं, सभी सुरासुरों में श्रेष्ठ! मनोहंस! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो ।।६१–६५।।

सूत बोले–इस प्रकार की बातें सुनकर सभी देवगण महात्मा शंकर को नमस्कार करते हुए अपने-अपने वास-स्थान को चले गये। जो मनुष्य महात्मा शंकर के इस उपर्युक्त स्तोत्र का पाठ करता है, वह सभी मनोरथों को प्राप्त करता है तथा सभी पापों से विमुक्त होता है। इस प्रकार महामहिमामय सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु ने महादेव की कृपा से इन उपर्युक्त बातों की चर्चा की। और वह सब महेश्वर की पराक्रम प्रकट करनेवाली बातें मैंने तुम लोगों को सुनायीं ।।६६–६८।।

श्री वायुमहापुराण का लिङ्गोद्भव स्तव नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त।।५५।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अथ षट्पञ्चाशोऽध्यायः

पितृवर्णनम्

शांशपायन उवाच

अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृपः । ऐडः पुरूरवाः सूत कथं वाऽतर्पयत्पितॄन् ।।१।।

सूत उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन । ऐडस्याऽऽदित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ।।२।।
अपां सारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णयः ।।३।।
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणां तर्पणं तथा । काव्याग्नेश्चाऽऽत्तसोमानां पितॄणां चैव दर्शनम् ।।४।।
यथा पुरूरवाश्चैडस्तर्पयामास वै पितॄन् । एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ।।५।।
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ । अमावास्यां निवसत एकरात्रैकमण्डले ।।६।।
स गच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ । अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।।
अभिवाद्य तदा तत्र कालापेक्षः प्रतीक्षति (ते) ।।७।।
प्रसीदमानात्सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्त्रवात् । ऐलः पुरूरवा विद्वान्मासि मासि प्रयत्नतः ।।
उपास्ते पितृमन्ते तं ससोमं स दिवा स्थितः ।।८।।

अध्याय ५६

पितरों का वर्णन

शांशपायन ने कहा–सूत जी! प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि को इडा[1] का पुत्र पुरूरवा किस प्रकार स्वर्ग को जाता था और किस प्रकार पितरों का तर्पण करता था? ।।१।।

सूत ने कहा–शांशपायन! उस महात्मा इलापुत्र राजा पुरूरवा का प्रभाव आपको बतला रहा हूँ, चन्द्रमा का सूर्य के साथ संयोग, जल के सारभूत चन्द्रमा की शुक्ल और कृष्ण पक्ष में ह्रास और वृद्धि, पितरों के पक्ष का निर्णय, चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति, पितरों का तर्पण, कव्यों को वहन करनेवाले अग्नि और आत्तसोम पितरों का दर्शन, इलापुत्र पुरूरवा ने पितरों का तर्पण किस प्रकार किया, इसका विवरण तथा पर्वों का वर्णन–इन सब विषयों को क्रमानुसार बतला रहा हूँ ।।२–५।। जिस समय चन्द्रमा तथा सूर्य एक ही रात्रि तथा एक ही मण्डल में समान नक्षत्र पर होते हैं, उसे अमावस्या कहते हैं, प्रत्येक अमावस्या को पुरूरवा अपने नाना तथा पितामह सूर्य तथा चन्द्रमा को देखने जाता था, और उन्हें प्रणामकर समय की प्रतीक्षा करता हुआ स्थित रहता था। प्रसन्न हुए चन्द्रमा से पितरों के लिए अमृत का परिस्रवण होता था ।।६–७½।। इला का पुत्र विद्वान् पुरूरवा इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक मास

---

[1] पुरूरवा इला का पुत्र था, संस्कृत में ड और ल में भेद नहीं माना जाता।

द्विलवं कुहुमात्रं तु ते उभे तु विचार्य सः। सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ।।९।।
कुहुमात्रां कलां चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहुं पुनः। स तदा भानुमत्येककालावेक्षी प्रपश्यति ।।१०।।
सुधामृतं कुतः सोमात्प्रस्रवेन्मासतृप्तये। दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ।।११।।
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांऽशुभिः। सद्यः प्रक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ।।१२।।
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्र्येण विधिना नृपः। सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ।।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ।।१३।।
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः। जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्मादृतुभ्यश्चाऽऽर्तवाश्च ये ।।१४।।
आर्तवा ह्यर्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः। ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ।।१५।।
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः। सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवे सुताः ।।१६।।
उपहूताः स्मृता देवाः सोमजाः सोमपास्तथा। आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः ।।१७।।
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा। गृहस्था ये च यज्वान ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ।।१८।।
गृहस्थाश्चापि यज्वानो अ (ह्य) ग्निष्वात्तास्तथाऽऽर्तवाः। अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ।।१९।।

की अमावस्या को स्वर्गलोक में उपस्थित रहकर पितरों समेत चन्द्रमा की उपासना करता था। दो लव[१] कुहू मात्र पर्यन्त ही वे दोनों (पितर और सोम) रहते हैं अर्थात् कव्य ग्रहण करते हैं, अतः सिनीवाली के प्रमाण–काल के भीतर ही सिनीवाली का प्रेमी उपासक पुरूरवा चतुर्दशीयुक्त अमावस्या तथा प्रतिपदायुक्त अमावस्या–इन दोनों को भली–भाँति उपासना योग्य समझकर अमावस्या और कुहू की उपासना करता था, उस समय वह भानुमती (सूर्ययुक्त अमावास्या) के एक काल की प्रतीक्षा करता हुआ वहाँ निवास करता था ।।८–१०।। पितरों की एक मास की तृप्ति के लिए चन्द्रमा से सुधामृत का प्रस्रवण होता है। कृष्णपक्ष में पन्द्रह सुधामृत की प्रस्रवण करनेवाली सूर्य की किरणों द्वारा चन्द्रमा से दुहे गये सुधामृत का पान होता है। नृपतिवर पुरूरवा इस शीघ्र स्रवित चन्द्रमा के अमृत द्वारा पितरों की विधि से निर्वापण कर पितरों को तृप्त करता था, सौम्य बर्हिषद, काव्य और अग्निष्वात्त, ये पितर हैं ।।११–१३।। ऋतु जो अग्नि कहा गया है, वही संवत्सर माना गया है, उसी से ऋतुगणों की उत्पत्ति हुई, उन ऋतुगणों से आर्तवों की उत्पत्ति हुई। वे आर्तव अर्धमास नाम से प्रसिद्ध वर्ष के पुत्र पिता कहे जाते हैं। ऋतुगण पितामह हैं, वे भी मास नाम से प्रसिद्ध तथा वर्ष के पुत्रगण कहे जाते हैं। ब्रह्मा के पुत्र पञ्चाब्द नाम से प्रसिद्ध जो देवगण हैं, वे प्रपितामह नाम से प्रसिद्ध हैं। सौम्य नामक पितरगण सौम्य से उत्पन्न जानने चाहिए, काव्य नामक पितर कवि (भृगु) के पुत्र हैं ।।१४–१६।। सोम से उत्पन्न होनेवाले सोमपायी पितरगण उपहूत नाम से स्मरण किये जाते हैं, आज्य (घृत) पान करनेवाले पितरगण काव्य कहे जाते हैं–और इस प्रकार ये पितरवर्ग तृप्ति लाभ करते हैं। काव्य, बर्हिषद और अग्निष्वात्त–पितरों के ये तीन भेद हैं। यज्ञकर्त्ता गृहस्थ ऋतु और बर्हिषद (पितरों की श्रेणी है) होते हैं एवं वे ही गृहस्थ अग्निष्वात्त तथा आर्तव पितर भी होते हैं। अष्टकापति, काव्य, पञ्चाब्द नामक पितर कहे जाते हैं ।।१७–१९।।

---

२. दो काष्ठा, अर्थात् ३६ निमेष का अल्प समय।

एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः। सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः ।।२०।।
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः। लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ।।२१।।
एते पिबन्त्यमावास्यां मासि मासि सुधां दिवि। तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः ।।२२।।
यस्मात्प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत। तस्मात्सुधामृतं तद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ।।२३।।
एवं तदमृतं सौम्य सुधा च मधु चैव ह। कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पञ्चदश क्रमात् ।।२४।।
पिबन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्तुछन्दजाः । पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्दश्यां सुधामृतम् ।।२५।।
इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः। समागच्छदमावास्यां भागे पञ्चदशे स्थितिः ।।२६।।
सुषुम्नाप्यायितं चैव अमावास्यां यथाक्रमम्। पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम् ।।२७।।
ततः पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना। आप्याययत्सुषुम्नेन पितॄणां सोमपायिनाम् ।।२८।।
निःशेषायां कलायां तु सोममाप्याययत्पुनः। सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भागमहःक्रमात् ।।
कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाऽऽप्याययन्ति तम् ।।२९।।
एवं सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याऽऽप्यायिता तनुः। दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः संपूर्णमण्डलः ।।
संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।।३०।।

इनके संवत्सर का नाम अग्नि है, सूर्य परिवत्सर है, चन्द्रमा इद्वत्सर है, वायु अनुवत्सर है और रुद्र वत्सर है, जो युगात्मक पाँच वर्ष कहे गये हैं, वे लेखा ऊष्मपा और दिवाकीर्त्य नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये प्रत्येक मास में अमावस्या तिथि को आकाश में सुधा का पान करते हैं। राजा पुरूरवा जब तक जीवित था इसी प्रकार सुधा द्वारा उन पितरों को तृप्त करता था ।।२०–२२।। प्रत्येक मास में चन्द्रमा से यतः प्रस्रवित होता था अतः सोमपायी पितरों के लिए वह सुधा अमृत था, इस प्रकार क्षरित वह अमृत सौम्य, सुधा और मधु नाम से प्रसिद्ध है। कृष्णपक्ष में क्रमशः चन्द्रमा की पन्द्रह कलाओं को, जो जलमयी हैं, छन्द से उत्पन्न होनेवाले तैंतीस देवगण पान करते हैं, और इस प्रकार सुधामृत को एक मास पान करने के उपरान्त चले जाते हैं ।।२३–२५।। देवताओं द्वारा इस प्रकार पान किया गया चन्द्रमा अमावस्या को पन्द्रहवें भाग में स्थित रहकर गमन करता है। सुषुम्ना द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए चन्द्रमा के सुधामृत को क्रमशः पितरगण अमावस्या को दो कला मात्र समय तक पान करते हैं। और इस प्रकार देवताओं के पान द्वारा चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर सूर्य अपनी उसी सुषुम्ना नामक रश्मि से सोमपान करनेवाले पितरों की तृप्ति करता है ।।२६–२८।। कलाओं से निःशेष हो जाने पर सूर्य चन्द्रमा को पुनः पूर्ण करता है। सुषुम्ना द्वारा पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं के एक-एक भाग को क्रमश देवगण पान करते हैं। वे कलाएँ क्षीण होकर कृष्ण और पूर्ण होने पर शुक्ल कहाती हैं, और इस प्रकार क्रमशः चन्द्रमा क्षीण और पूर्ण होता है। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा का शरीर पूर्ण होता है, और पूर्णमासी तिथि को उसका सम्पूर्ण मण्डल श्वेत दिखायी पड़ता है। शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की ह्रास और वृद्धि इसी प्रकार होती रहती है। पितृमान् चन्द्रमा इस प्रकार क्रमशः इद्वत्सर स्मरण

इत्येष पितृमान्सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् । क्रान्तः पञ्चदशैः सार्धं सुधामृतपरिस्त्रवैः ।।३१।।
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां संधयस्तथा । ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ।।३२।।
तथाऽर्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः । पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थिर्या संधयश्च वै ।।३३।।
अर्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु । अग्न्याधानक्रिया यस्मात्क्रियते पर्वसंधिषु ।।३४।।
(*सायाह्ने ह्यनुमत्याऽसौ द्वौ लवौ काल उच्यते । लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ।।३५।।
+प्रतिपत्कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिकः) । सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णिमासिकः ।।३६।।
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्ध्वं ? तु युगान्तरे । युगान्तरोदिते चैव लेखोर्ध्वं ? शशिनः क्रमात् ।।३७।।
पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् । यस्मिन्काले स सोमान्ते स व्यतीपात एव तु ।।३८।।
कालं सूर्यस्य निर्देशं दृष्टा संख्या तु सर्पति । स वै पथं ? क्रियाकालः कालात्सद्यो विधीयते ।।३९।।
पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिषु पूर्णिमा । ×यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ।।४०।।

किया गया है, और वह सुधामृत को प्रस्रवित करनेवाली पन्द्रह किरणों से घिरा हुआ है ।।२९–३१।। अब इसके उपरान्त पर्वों की संधियों का वर्णन कर रहा हूँ। जिस प्रकार ईख और बाँस के पोर गाँठोंवाले होते हैं, उसी प्रकार आधे मास पर होनेवाली शुक्लपक्षीय और कृष्णपक्षीय तिथियों को भी काल का पर्व कहा गया है। पूर्णिमा और अमावस्या के भेद से उनकी ग्रन्थि और संधियाँ कही गयी हैं। तृतीया आदि तिथियाँ आधे मास की पर्व तिथियाँ हैं, अग्न्याधान आदि सत्क्रियाएँ इसीलिए इन पर्वों की संधियों में की जाती हैं ।।३२–३४।। सायंकाल के समय अनुमति का दो लव काल तथा राका का तीसरे पहर का दो लव काल सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि को भी अपराह्न काल में सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। सायंकाल के समय यदि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की प्रवृत्ति होती है तो वह समय पूर्णमासी का है। चन्द्रमा और सूर्य परस्पर युग मात्र के व्यवधान पर अवस्थित रह विषुव रेखा के ऊपर समसूत्र में जब उदित होते हैं तो परस्पर दर्शन होता है। इसी का नाम व्यतीपात है। पूर्णमासी को भी इस प्रकार परस्पर दर्शन होता है। सूर्य को ही आधार मानकर समय के विषय में विशेष संख्याओं की कल्पना की जाती है। सूर्य ही समय का मार्ग-प्रदर्शक है और समय के ही अधीन सत्क्रियाओं का विधान माना गया है ।।३५–३९।। जिस रात्रि के संधिभाग में पूर्णिमा तिथि हो, पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश हो, उसे अनुमती[१] पूर्णिमा कहा गया है क्योंकि पितरगण

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तकेषु।

+ इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकेषु।

× यस्मादित्यारभ्य ततः स्मृतेत्यन्तग्रन्थस्य क्रमव्यत्यासः। ख. घ. ङ. पुस्तकेषु वर्तते।

१. जिस पूर्णिमा में एक कला न्यून चन्द्रमा सूर्यास्त से कुछ पहले उदय होता है, वह अनुमती कहलाती है। यह पूर्णिमा चतुर्दशी युक्त होने के कारण देवताओं और पितरों— दोनों को अनुमत है, अतः अनुमती नाम से प्रसिद्ध है। सूर्यास्त के उपरान्त अथवा सूर्यास्त के साथ ही जिस तिथि को पूर्णचन्द्र उदित होता है वह राका कहलाती है। चन्द्रमा की रंजनकारिका होने के कारण यह राका है–देवी पुराण से।

अत्यर्थं भ्राजते यस्मात्पौर्णमास्यां निशाकरः। रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ।।४१।।
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ। एकां पञ्चदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ।।४२।।
ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः। यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णौ परस्परम् ।।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ।।४३।।
विच्छिन्नांताममावास्यां पश्यतश्च समागतौ। अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ।।४४।।
द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसंधिषु। द्व्यक्षरं कुहुमात्रं तु एवं कालस्तु स स्मृतः ।।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण संगता ।।४५।।
दिवसार्धेन रात्र्यर्धं सूर्यं प्राप्य तु चन्द्रमाः। सूर्येण सहसा मुक्तं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।।
द्वौ कालौ संगमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ।।४६।।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात्। निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ।।४७।।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया। एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्याऽस्य पर्वणः ।।४८।।
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै। तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ।।४९।।

देवताओं के साथ उसे देखते हैं। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रमा अत्यन्त सुप्रकाशित होता है अतः चन्द्रमा के रंजन के कारण ही उसे कवि लोग राका कहते हैं। जिस पन्द्रहवीं रात्रि को एक ही नक्षत्र में चन्द्रमा तथा सूर्य एक साथ विराजमान रहते हैं उसे अमावस्या कहते हैं ।।४०-४२।। जिस दिन के तीसरे पहर में चन्द्रमा और सूर्य पूर्णरूप में व्यतीपात की भाँति परस्पर एक-दूसरे को देखते हैं, उसे पूर्णिमा कहते हैं। ऊपर कही गयी जिस अमावस्या तिथि को चन्द्रमा और सूर्य एक ही स्थान में समागत होकर एक-दूसरे को देखते हैं उसे दर्श कहा जाता है ।।४३-४४।। अमावस्या तिथि के दो लव तथा पर्व संधियों के दो लव काल-केवल कुहू इन दो अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है-सत्क्रियाओं के योग्य माना जाता है। मध्याह्न में सूर्य के साथ संगत होकर अमावस्या को जबकि चन्द्रमा नहीं दिखायी पड़ता, दिन के आधे भाग से रात्रि के आधे भाग तक चन्द्रमा सूर्य के साथ अवस्थित रहता है। तदनन्तर सूर्य से मुक्त होता है। प्रातःकाल के समय दो कला काल तक चन्द्रमा के साथ रहकर मध्याह्न के समय सूर्य चन्द्रमण्डल से बाहर निकलता है ।।४५-४६।। और इस प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से सूर्यमण्डल से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है, छोड़े जाते हुए उन दोनों सूर्य और चन्द्रमण्डलों के संगम का त्याग काल आहुति और वषट् क्रिया (यज्ञ और तर्पण) का उत्तम काल है। इस पर्व का— अमावस्याकाल का ही नाम ऋतुमुख जानना चाहिए। अमावस्या के दिन चन्द्रमा की कला का अधिकाधिकरूपेण क्षय हो जाता है। इसलिए उस दिन सूर्य ही ग्रहण किया जाता है। यही कारण है कि अमावस्या के दिन ही सूर्य राहु और केतु के द्वारा ग्रस लिया जाता है ।।४७-४९।। उन मान्य कलाओं

कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः । तिथीनां नामधेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ।।५०।।
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ । निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ।।५१।।
द्विलवेन ह्यहोरात्रं भास्करं स्पृशते शशी । स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।।५२।।
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नतः । तत्कालसंज्ञिता यस्मादमावास्या कुहूः स्मृता ।।५३।।
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः । अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ।।५४।।
(*अनुमत्याः सराकायाः सिनीवाली कुहूस्तथा । एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूस्तथा ।।
इत्येष पर्वसंधीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः) ।।५५।।
पर्वणः पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट्क्रिया । चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ।।५६।।
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रकः । कालः कुहूसिनीवाल्योः समुद्रो द्विलवः स्मृतः ।।५७।।
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्वकालः कलाश्रयः । एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्वसंधिषु ।।५८।।
संपूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते । यस्मादाप्यायते सोमः पञ्चदश्यां तु पूर्णिमा ।।५९।।
दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् । तस्मात्कलाः पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ।।६०।।

के आधार पर ही बुद्धिमान् विद्वानों ने तिथियों का नामकरण किया है। उस तिथि (अमावस्या) को सूर्य और चन्द्रमा परस्पर एक-दूसरे को देखते हैं। उसी दिन से चन्द्रमा सूर्यमण्डल से क्रमशः निकलकर पृथक् होता है। चन्द्रमा दो लव काल मात्र सूर्यमण्डल का स्पर्श करता है, वह उतना काल अमावस्या के निमित्त होनेवाले यज्ञ एवं वषट् क्रिया के उपयुक्त है। कोकिल की 'कुहू' यह आवाज जितने समय में सम्पन्न होती है, उतने ही कालवाली अमावस्या कुहू नाम से स्मरण की जाती है ।।५०-५३।। जिस अमावस्या तिथि को क्षीण चन्द्रमा सिनीवाली[१] के प्रमाण से सूर्य के मण्डल में प्रवेश करता है उसे सिनीवाली नाम से स्मरण करते हैं। अनुमती, रोंका[२], सिनीवाली और कुहू-इन सब के दो लव काल केवल कुहू मात्र प्रशस्त माने गये हैं, इस प्रकार पर्व की संधियों के यह दो लव काल प्रशस्त माने गये हैं, सब पर्व तिथियों का पूर्वकाल समान रूप से प्रशस्त है और वषट् क्रिया के लिए प्रशस्त है। चन्द्र और सूर्य का व्यतीपात योग पर संयोग और पूर्णिमा दोनों तुल्यफलदायी माने जाते हैं ।।५४-५६।। प्रतिपदा और पूर्णिमा का पर्वकाल द्विमात्रिक होता है, कुहू और सिनीवाली का पर्वकाल द्विलवात्मक होता है। चन्द्रमा के सूर्य और अग्निमण्डल से युक्त रहने पर जो पर्वकाल होता है वह कलाश्रय मात्र होता है। इस प्रकार रात्रि की पर्वसन्धियों में सम्पूर्ण मण्डलवाला श्रीमान् चन्द्रमा उपरक्त होता है (ग्रहण लगता है) जिस कारण से सोम पूर्णिमा के दिन पञ्चदश कलाओं के साथ

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

[१] चतुर्दशी युक्त अमावस्या।

[२] इन दोनों का परिचय पूर्व में आ चुका है।

इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्धनाः । आर्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च ।।६१।।
अतः पितॄन्प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये । तेषां गतिं च तत्त्वं च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ।।६२।।
न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः । तपसाऽपि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ।।६३।।
श्राद्धदेवान्पितॄनेतान्पितरो लौकिकाः स्मृताः । देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ।।६४।।
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान्भावयन्त्युत । मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ।।६५।।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ।।६६।।
ये यज्वानः स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषदः स्मृताः । कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसंभवात् ।।६७।।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः । ÷तेषां ते धर्मसाधर्म्यात्स्मृता या योज्यकैर्द्विजैः ।।
ये वाऽप्याश्रमधर्मेण प्रख्यानेषु व्यवस्थिताः ।।६८।।
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा । ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ।।६९।।
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा । कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्यादेहपातनात् ।।७०।।
देवैस्तैः पितृभिः सार्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः । स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ।।७१।।

बढ़ते हैं (पूर्ण होते हैं) इसीलिए उसको पूर्णिमा कहा जाता है। दिनों के अनुसार पाँच और दस कलाओं से ही वे बढ़ते हैं इसलिए सोम में पन्द्रह कलाएँ ही होती हैं सोलह कलाएँ नहीं होतीं। इसलिए पञ्चदशी (कला या पूर्णिमा) में ही चन्द्रमा का महाक्षय (ग्रहण) होता है ।।५७-६०।। ये ऊपर कहे गये सोमपायी और सोमवर्धक पितरगण और गण हैं। वे ऋतु और आर्तवदेव परस्पर एक-दूसरे की सहायता एवं पुष्टि भी करते हैं ।।६१।। इसके अनन्तर मासश्राद्ध के भोग करनेवाले पितरों का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी गति, उनका पराक्रम और उनको श्राद्धीय वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होती है इसका भी वर्णन कर रहा हूँ, सावधान हो सुनिये। मृत व्यक्तियों के आवागमन का हाल कोई योग दृष्टि सम्पन्न महातपस्वी भी नहीं जान सकते, तो फिर मेरे समान चर्म चक्षुवाले साधारण व्यक्ति कैसे जान सकते हैं ।।६२-६३।। उन श्राद्धदेव पितरों को लौकिक पितर कहा जाता है। सब अयोनिज और सौम्यदेव एवं यज्ञ करनेवाले पितर देव तुल्य हैं ऐसे पितरों की देवगण, मनुष्य और पितर भी पुष्टि करते हैं अर्थात् सम्मान करते हैं। पिता, पितामह उसी प्रकार प्रपितामह और जो सोम से यज्ञ करनेवाले हैं वे सोमवन्त कहे जाते हैं ।।६४-६६।। जो यज्ञ करनेवाले होते हैं वे मनुष्य मरकर बर्हिषद् पितर होते हैं। जो यज्ञ आदि सत्कर्मों के अनुष्ठान में रहते हैं वे पुनर्जन्म ग्रहण करने के समय तक तृप्त रहते हैं। उनमें से जो होमपरायण यज्ञाधिकारियों से यज्ञ करनेवाले हैं वे अग्निष्वात्त कहे गये हैं। जो अपने आश्रम-धर्मानुसार विहित अनुष्ठानों में निरत रहते हैं वे धर्मसाम्य के कारण योग्य ब्राह्मणों द्वारा अग्निष्वात्त

÷ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम् । तेषां निवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः ।।७२।।
मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिकाः । एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ।।७३।।
तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये संकीर्णाः कर्मयोनिषु । भ्रष्टाश्चाऽऽश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ।।७४।।
भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभूता यमक्षये । स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ।।७५।।
दीर्घायुषाऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः । क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति ततस्ततः ।।७६।।
सरित्सरस्तडागानि वापीश्चैव जलेप्सवः । परान्नानि च लिप्सन्ते काल्यमानास्ततस्ततः ।।७७।।
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै । शाल्मलौ वैतरण्यां च कुम्भीपाकेषु तेषु च ।।७८।।
करम्भवालुकायां च असिपत्रवने तथा । शिलासंपेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ।।७९।।
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् । तेषां लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ।।८०।।
भूम्यापसव्यं ? दर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयं तु वै । पतितांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः ।।८१।।
अप्राप्ता यातनास्थानं सृष्टा ये भुवि पञ्चधा । पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ।।८२।।
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु । यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धे दत्तोपतिष्ठति ।।८३।।

ही कहे जाते हैं। जो श्रद्धायुक्त कर्मों को करते हैं और ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, प्रजोत्पत्ति, श्रद्धा, विद्या और दान—इन सात श्रेष्ठकर्मों में जीवन भर निरत रहते हैं वे मृत्यु के बाद भी कष्ट नहीं प्राप्त करते प्रत्युत सोमपान करनेवाले, सूक्ष्म शरीर देवों और पितरों के साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करते हैं और पितरों को सन्तुष्ट करते हैं ।।६७–७१।। क्रियावान् और प्रज्ञावान् जन ही सिद्ध और प्रशंसनीय हैं। पितरों के निमित्त दिये हुए दान से, उनके कुलों में उत्पन्न एवं बन्धुओं द्वारा दिये गये श्राद्धान्न से सोम लोक में रहनेवाले श्राद्धभोजी पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं ऐसे ही पितरों को मासश्राद्धभुक् पितर कहते हैं। ऊपर कहे गये पितर मनुष्यों के पितर कहे जाते हैं जो कि मास-मास में श्राद्ध भोग करते हैं। उनसे अतिरिक्त जो हैं वे अपने संकीर्ण कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। वे आश्रम-धर्मभ्रष्ट स्वधा-स्वाहा (पितृकर्म, देवकर्म,) विमुख दुरात्मा शरीर नष्ट होने पर यमपुरी में प्रेत बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाएँ सहते हुए, कृतकर्मों पर पश्चात्ताप करते हैं ।।७२–७५।। दीर्घ आयुवाले वे अतिकृशकाय, वस्त्र-रहित, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल हो इधर-उधर भटकते फिरते हैं। नदी, तालाब, वापी आदि जलाशयों के जल की इच्छा से वहाँ-वहाँ जाते हैं और दूसरे के दिये हुए अन्न की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे भीषण नरकपुरी के यातना-स्थानों में—अर्थात् शाल्मली, वैतरणी, कुम्भीपाक, करम्भबालुका, असिपत्रवन, शिला संपेषण आदि घोर नरकों में स्वकर्मानुसार गिराये जाते हैं ।।७६–७९।। ऐसे प्रेतात्माओं के परिवारवालों को चाहिए कि वे उन प्रेतात्माओं के नाम-गोत्रादि का उच्चारण कर अपसव्य हो पृथ्वी पर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिण्ड दें। ऐसा करने से उन प्रेत-स्थानों में यातना पानेवाले पितरों को परम शान्ति मिलती है ।।८०–८१।। जो अपने कर्मों के अनुसार इन यातना-स्थानों को जाकर इस पृथ्वी पर पशु, स्थावर आदि पाँच प्रकार की योनियों में अथवा भूतों एवं नाना रूपात्मक जीव श्रेणी या तिर्यग्योनियों में उत्पन्न हो गये हैं, उनके लिए श्राद्ध में दिया हुआ अन्न उन योनियों के उपयुक्त आहार बनकर उनको मिलता है ।।८२–८३।। श्रेष्ठकाल में विधिपूर्वक सत्पात्र को श्राद्ध

काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम्। प्राप्नोत्यन्नं यथादत्तं बन्धुर्यत्रावतिष्ठते ।।८४।।
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दन्ति मातरम्। तथा श्राद्धे तदिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ।।८५।।
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं तु मन्त्रतः। सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन्दिव्येन चक्षुषा।।
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ।।८६।।
बह्वीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः। कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।।८७।।
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च ये। ऋतार्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ।।८८।।
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये। प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ।।८९।।
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम्। एतत्पितृमतत्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ।।९०।।
इत्यर्कपितृसोमानां ऐलस्य च समागमः। सुधामृतस्य चावाप्तिः पितॄणां चैव तर्पणम् ।।९१।।
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितॄणां स्थानमेव च। समाप्तात्कीर्तितस्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ।।९२।।
वैश्वरूप्यं तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम्। न शक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।।९३।।
स्वायंभुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयाऽत्र वै। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।९४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पितृवर्णनं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः।।५६।।

निमित्त दिया हुआ पदार्थ किसी भी योनि में गये हुए पितरों को प्राप्त होता है। जिस प्रकार गौओं में छिपी हुई अपनी माँ को (गौ का) बछड़ा प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार श्राद्ध में मन्त्र द्वारा जिस पितर के उद्देश्य से अन्न दिया जाता है वह उसको अवश्य प्राप्त होता है ।।८४–८५।। इस प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण श्राद्ध और मन्त्र द्वारा श्राद्ध में दिये गये पदार्थों की प्राप्ति के विषय में प्रेतों के आवागमन विद्या को जाननेवाले (प्रेत-विद्याभिज्ञ) सनत्कुमार ने अपने दिव्यचक्षुओं से देखकर बतलाया है। ये पितर बह्वीक, उष्मपा और दिवाकीर्त्य नाम से भी कहे जाते हैं। कृष्ण पक्ष उन पितरों का दिन और शुक्ल पक्ष विश्राम (शयन) करने के लिए रात्रि है। ये इतने पितृ देवता और देव पितर, ऋत और आर्तव सब एक-दूसरे के पितर (जनक) हैं। ये जितने पितर देवता हैं और जो मानुष पितर हैं, उनके श्रद्धायुक्त कर्म से और उनकी प्रसन्नता से सभी देव पितर भी प्रसन्न रहते हैं ।।८६–८९।। इस प्रकार सोमपायी पितरों के भी पितर पुराणों में कहे गये हैं। इन पितरों का महत्त्व पुराणों में निश्चित रूप से कहा गया है। इस प्रकार से सूर्य, चन्द्रमा, पितर और पुरूरवा का समागम, सुधा, अमृत की प्राप्ति, पितरों की तृप्ति, पूर्णिमा अमावस्या का पुण्यकाल, पितरों का स्थान आदि का वर्णन संक्षेप में तुमसे कहा है, यही सनातन सर्ग है ।।९०–९२।। यद्यपि इन सबका विस्तार अधिक है फिर भी मैंने इनके एक देश का वर्णन किया है, इसकी अलग-अलग गणना नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्यों को इस प्रकार श्रद्धा करनी चाहिए। यहाँ पर मैंने विस्तारपूर्वक यथार्थरूप से स्वायंभुव मनु के सृष्टि तत्त्व का वर्णन किया है। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं ।।९३–९४।।

श्री वायुमहापुराण में पितृवर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।।५६।।

अथ सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

यज्ञवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

चतुर्युगानि (णि) यान्यासन्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे। तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।।१।।

सूत उवाच

पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम्। तेषां चतुर्युगं ह्येतत्प्रवक्ष्यामि निबोधत ।।२।।
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः। युगं च युगभेदं च युगधर्मं तथैव च ।।३।।
युगसंध्यंशकं चैव युगसंधानमेव च। षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ।।४।।
लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्दस्तु मानुषः। तेनाब्देन प्रसंख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ।।५।।
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्तकाः। निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरं च यत् ।।६।।
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलास्ताः ।।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तास्त्रिंशता रात्र्यहणी समेते ।।७।।
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके। तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते ।।८।।
पित्र्ये रात्र्यहणी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः। कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।।९।।

अध्याय ५७

ऋषियों ने कहा–सूत जी! पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर में जो चार युग थे उन सबों के स्वभाव एवं तत्त्व को विस्तारपूर्वक सुनने के हम इच्छुक हैं ।।१।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! पृथ्वी आदि के वर्णन प्रसङ्ग में मैंने जिन चारों युगों का वर्णन पहले किया था उनको विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये ।।२।। प्रत्येक युगों का मान संख्याओं से परिगणित कर युग, युगभेद, युगधर्म, युगसंधि, युगांश तथा युगसंधान–इन छह प्रकार के युगों को तत्त्वतः बतला रहा हूँ ।।३–४।। मानव वर्ष लौकिक प्रमाण से माना गया है, उसी मानव वर्ष के प्रमाण से इन चारों युगों का प्रमाण बतला रहा हूँ। निमेषकाल, काष्ठा, कला और मुहूर्त–ये लौकिक काल के मापक हैं। एक लघु अक्षर के उच्चारण में जितना समय अपेक्षित है उसे निमेषकाल के बराबर जानना चाहिए। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, और तीस मुहूर्त का एक दिन–रात होता है ।।५–७।। मनुष्य और देव दोनों के दिन–रात का विभाजन सूर्य करता है, उसमें से दिन तो कर्म विधान के लिए और रात्रि शयन के लिए बनायी गयी है। पितरों का एक दिन–रात एक मास का होता है उसमें से कृष्ण पक्ष तो उनका दिन और शुक्ल शयन के लिए रात्रि रूप है–इस प्रकार मानव का तीस मास पितरों का एक मास कहा गया है और तीन सौ साठ मानव मास का पितरों का एक वर्ष होता है ।।८–१०।। मानव वर्ष

त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः । शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्याधिकानि वै ।।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ।।१०।।
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् । पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै ।।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्रे चैवेह कीर्तिताः ।।११।।
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः । एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः ।।१२।।
दिव्ये रात्र्यहणी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ।।१३।।
ये ते रात्र्यहणी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः । त्रिंशच्च तानि वर्षाणि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।।१४।।
मानुषं च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते । दश चैव तथाऽहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।।१५।।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिव (र्व) र्षाणि यानि च । दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।।१६।।
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः । त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ।।१७।।
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु । अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः संवत्सरः स्मृतः ।।१८।।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु । *षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।।
वर्षाणां तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।।१९।।
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि च । षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ।।२०।।

के मान के अनुसार उसके सौ वर्ष का पितरों का तीन वर्ष और चार मास कहा गया है। लौकिक मान से मानव के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन इस शास्त्र में निश्चित माना गया है। इस दिव्य (देवताओं के) वर्ष का विभाग इस प्रकार है, उसमें उत्तरायण तो दिन है और दक्षिणायन रात्रि ।।११-१२।। ये जो दिव्य दिन-रात कहे गये हैं, उसके तीस दिन-रात का एक दिव्य मास होता है अर्थात् मानव के तीस वर्षों का एक दिव्य मास कहा जाता है। और इस प्रकार सौ मानव वर्ष के तीन मास दस दिन देवताओं के जानना चाहिए। यह देवताओं के एक वर्ष का प्रमाण स्मरण किया गया है ।।१३-१५।। मानव के तीन सौ साठ वर्षों का एक दिव्य वर्ष कहा गया है। मानव के तीन सहस्र और तीस वर्षों का एक सप्तर्षिवत्सर कहा गया है और नौ सहस्र नब्बे वर्ष का एक क्रौंच संवत्सर स्मरण किया गया है। मानव के छत्तीस सहस्र वर्षों का देवताओं का एक सौ वर्ष स्मरण किया जाता है[१]–यह देवताओं के वर्ष की गणना का क्रम कहा गया है ।।१६-१९।। तीन नियुत साठ सहस्र मानव वर्षों का एक सहस्र दिव्य वर्ष संख्याविद् लोग जानते हैं। इस प्रकार ऋषियों ने दिव्य संख्या द्वारा दिव्य प्रमाण से युग की अवधि की कल्पना की है। भारतवर्ष

---

* इदमर्धं नास्ति क. ख. घ. पुस्तकेषु।

[१] आनन्दाश्रम की प्रति में इस श्लोक के मध्य में 'षष्टिश्चैव सहस्राणि वर्षाणां मनुषाणि तु' इतना पाठ अधिक दिया गया है, जो अयुक्त है। क्योंकि इस प्रकार साठ सहस्र मानव वर्ष का अर्थ होता है जो अशुद्ध है। गणित करने पर छत्तीस सहस्र मानव वर्ष का एक शत दिव्य वर्ष होता है।

इत्मेवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्ययाऽन्वितम्। दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ।।२१।।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः। पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतान्यकल्पयत् ।।२२।।
चत्वार्याहुः सहस्त्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्। तत्र तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।।२३।।
इतरासु च संध्यासु संध्यांशेषु च वै त्रिषु। एकापायेन वर्तन्ते सहस्त्राणि शतानि च ।।२४।।
त्रेता त्रीणि सहस्त्राणि संख्यैव परिकीर्त्यते। तस्यास्तु त्रिशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ।।२५।।
द्वापरं द्वे सहस्त्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः। तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशः संध्यया समः ।।२६।।
कलिं वर्षसहस्त्रं तु युगमाहुर्मनीषिणः। तस्याप्येकशती संध्या संध्यांशः संध्यया समः ।।२७।।
एषा द्वादशसाहस्त्री युगाख्या परिकीर्तिता। कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।।२८।।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः। कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणतः ।।२९।।
सहस्त्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संख्यया। चत्वारिंशत्सहस्त्राणि कलिकालयुगस्य तु ।।३०।।
+एवं संध्यांशकालस्य कालेष्विह विशेषतः। एवं चतुर्युगः कालो विना संध्यांशकैः स्मृतः ।।३१।।
÷नियुतान्येकषड्विंशन्निरंशानि तु तानि वै। चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च संख्यया ।।
विंशतिश्च सहस्त्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगे ।।३२।।

में कवियों ने युगों की संख्या चार बतलायी है, इन चारों युगों में सर्वप्रथम कृतयुग तदनन्तर त्रेता, द्वापर और कलियुग की कल्पना हुई ।।२०-२२।। उनमें कृतयुग को चार सहस्त्र वर्षों का कहा गया है और उसकी संध्या तथा संध्यांश का प्रमाण चार सौ वर्षों का है। अन्य तीनों युगों के प्रमाण, संध्या तथा संध्यांश में क्रमशः एक-एक सहस्त्र तथा एक-एक सौ वर्षों की न्यूनता रहती है। इस प्रकार त्रेतायुग का प्रमाण तीन सहस्त्र वर्षों का कहा गया है और उसकी संध्या तथा संध्यांश का प्रमाण तीन सौ वर्षों का है। पंडितजन द्वापरयुग का प्रमाण दो सहस्त्र वर्षों का बतलाते हैं उसकी संध्या तथा संध्यांश की संख्या भी दो-दो सौ वर्ष की मानी गयी है। इसी प्रकार विद्वानों ने कलियुग का प्रमाण एक सहस्त्र वर्ष का और उसकी भी संध्या तथा संध्यांश एक-एक सौ वर्षों का माना है ।।२३-२७।। यह बारह सहस्त्र वर्षों की संख्या सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग इन चारों युगों की कही गयी है, यह दिव्य वर्षों का प्रमाण है। इस संसार में संवत्सरों की कल्पना मानव वर्ष के प्रमाण से हुई है, अतः उसी के द्वारा कृतयुग का प्रमाण बतला रहा हूँ, वह कृतयुग चौदह लाख चालीस सहस्त्र मानव वर्ष का कहा गया है, कलियुग[1] का प्रमाण चालीस हजार वर्ष है। चारों युगों का प्रमाण इसी प्रकार संध्या और संध्यांश से विहीन छत्तीस नियुत वर्ष अर्थात् छत्तीस लाख वर्ष स्मरण किया गया है तथा तैंतालीस नियुत अर्थात् तैंतालीस लाख तथा बीस सहस्त्र मानव वर्षों का संध्या और संध्यांशों समेत चारों युगों का प्रमाण कहा गया है ।।२८-३२।। इसी प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों युगों

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

÷ अस्मिन्नर्धस्थान इदमर्धं संख्यातस्त्वेककालस्तु काले त्विह विशेषत इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

[1] कई मूल पुस्तकों में इस स्थल का पाठ भिन्न-भिन्न है, किसी में आधा श्लोक है ही नहीं, अतः अनुवाद की गति भंग हो जाती है। आनन्दाश्रम की प्रति में जोड़ा गया अर्धश्लोक संगति विहीन है।

एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः। कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।।३३।।
मन्वन्तरस्य संख्या तु वर्षाग्रेण निबोधत। त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ।।३४।।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतान्यधिकानि तु। विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं संधिकं विना ।।३५।।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता। मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्धं प्रकीर्तितः ।।३६।।
चतुःसहस्रयुक्तं वै प्रथमं तत्कृतं युगम्। त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।।३७।।
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते। क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ।।३८।।
तत्र त्रेतायुगस्याऽऽदौ मनुः सप्तर्षयश्च ते। श्रौतं स्मार्तं च धर्मं च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ।।३९।।
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुःसामसंज्ञितम्। इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।।४०।।
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं चाऽऽचारलक्षणम्। वर्णाश्रमाचारयुतं प्रभुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।।४१।।
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै। तेषां सुतप्ततपसामार्षेयेण क्रमेण तु ।।४२।।
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु। अबुद्धिपूर्वकं तेषामक्रियापूर्वमेव च ।।४३।।
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः। आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ।।४४।।

का इकहत्तर गुना काल एक मन्वन्तर का कहा गया है। मन्वन्तर के वर्षों की संख्या का प्रमाण इस प्रकार है, सुनिये। तीस करोड़ सरसठ लाख बीस सहस्र मानव वर्ष को एक मन्वन्तर का समय कहा गया है। काल की संख्या को जाननेवाले द्विजगण संधिकाल को छोड़कर मन्वन्तर की यही संख्या स्मरण करते हैं। युगों के साथ मन्वन्तर के समय का वर्णन इस प्रकार कर चुका ।।३३-३६।। जैसा कि पहले कह चुका हूँ इन चारों युगों में कृतयुग का प्रमाण चार सहस्र दिव्य वर्षों का है इसके अतिरिक्त त्रेता, द्वापर तथा कलियुग को बतला रहा हूँ। इसके पहले ऋषियों के वंश वर्णन के प्रसंग में व्यग्रतावश मैं इन युगों के प्रमाणों का निरूपण कर चुका हूँ ।।३७-३८।। एक प्रसंग में आये हुए संयुक्त अर्थ का वर्णन दो प्रकार से अलग-अलग नहीं किया जा सकता और क्रमशः इनके वर्णन को तो मैं तुम्हें सुना भी चुका हूँ। उस त्रेतायुग के आदिमकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट किये गये श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का प्रचार मनु और सप्त ऋषियों ने किया था। सातों ऋषियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से अनुमत स्त्री परिग्रह, अग्निहोत्रादि श्रौत धर्म का उपदेश किया था। परम्परा से चले आनेवाले वर्णाश्रम के अनुपम आचार व्यवहार के पोषक स्मार्त धर्म का प्रचार स्वायंभुव मनु ने किया था ।।३९-४१।। उस तेत्रायुग के आदिमकाल में उन परम तपस्वी सातों ऋषियों और मनु के सत्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान एवं तपस्या के कारण वेदोक्त क्रम से बुद्धि व्यापार एवं कर्मण्यता के बिना ही उन मन्त्रों की अभिव्यक्ति हुई। आदि कल्प में वे मन्त्र तारकादि निदर्शनों द्वारा देवताओं को स्वयमेव प्राप्त हुए थे किन्तु सिद्धियों के नष्ट हो जाने पर उनका फिर से प्रवर्तन हुआ। वे सहस्रों मन्त्र बीते हुए कल्पों में विद्यमान थे,

प्रणाशे त्वथ सिद्धीनामप्यासां च प्रवर्तनम् । आसन्मंत्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः ।।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ।।४५।।
ऋचो यजूंषि सामानि मंत्राश्चाथर्वणानि च । सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ।।४६।।
त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मशेषतः । संरोधादायुषश्चैव व्यसन्ते द्वापरेषु ते ।।४७।।
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै । अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं सृष्टाः स्वयंभुवा ।।४८।।
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे । विक्रियन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ।।४९।।
आरम्भयज्ञाः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशांपतेः । परिवारयज्ञाः क्षुद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ।।५०।।
तदा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः । क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ।।५१।।
ब्राह्मणाननुवर्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान्विशः । वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ।।५२।।
शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा । संकल्पितेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।।
त्रेतायुगे त्वविकलः कर्मारम्भः प्रसिध्यति ।।५३।।
आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता । सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ।।५४।।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाऽकरोत् । पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान्धर्मान्न ह्यपालयन् ।।५५।।

उन्हीं ऋषियों की प्रतिभा से उनका पुनः आविर्भाव हुआ ।।४२–४५।। ऋक्, यजुः, साम एवं आथर्वण–इन सभी मन्त्रों को सातों ऋषियों ने प्रचारित किया और स्मार्त धर्म का उपदेश स्वायंभुव मनु ने किया। त्रेता के आदिमकाल में वेद अति संक्षिप्त केवल धर्म तथा कर्मकाण्ड से युक्त थे, द्वापर युग में आयु की अल्पता एवं विघ्नपूर्णता के कारण उनका विभाग किया गया। कलियुग तथा द्वापर के आदिकाल में सर्वप्रथम स्वयंभू ब्रह्मा जी ने तपस्या के बल से दिव्य गुणयुक्त आदि–अन्त–विहीन ऋषियों तथा देवताओं की सृष्टि की ।।४६–४८।। प्रत्येक युग में समान अर्थवाले वेदों के वाक्य समूह युगों के स्वभाव के क्रम से धर्म, प्रजा एवं अपने विविध अंगों समेत विकार को प्राप्त हो जाते हैं। क्षत्रिय लोगों का उद्योग यज्ञ, वैश्यों का हवनीय यज्ञ, शूद्रों का तीनों श्रेष्ठ वर्णों की सेवा रूप यज्ञ तथा ब्राह्मणों का जप यज्ञ प्रधान माना गया था। उस त्रेतायुग में धर्म से रक्षित ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोग आनन्दयुक्त रहते थे। वे सर्वदा सत्कर्मपरायण, सन्तानयुक्त, समृद्ध तथा सुखी रहते थे ।।४९–५१।। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन एवं उनकी सेवा एवं शुश्रूषा में तत्पर रहते थे, इसी प्रकार वैश्य लोग क्षत्रियों की तथा शूद्र लोग वैश्यों की आज्ञा का पालन करते थे। अर्थात् सभी एक–दूसरे की सुख–सुविधा का ध्यान रखते थे। सभी वर्णो के लोगों की कल्याणमय कार्यों में प्रवृत्ति रहती थी, सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। उस त्रेतायुग में मन के संकल्प करने से, वचन कहने से तथा अनेक कर्मों द्वारा सम्पूर्ण कार्य अविकल रूप से सम्पन्न हो जाते थे, अर्थात् सबकी मनसा, वाचा, कर्मणा कार्य सिद्धि होती थी ।।५२–५३।। आयु, बुद्धि, बल, स्वरूप, आरोग्य, धर्मशीलता–ये सभी सर्वसाधारण को त्रेतायुग में प्राप्त थे। ब्रह्मा ने उन सभी प्रजाओं के लिए वर्णाश्रम की व्यवस्था बाँध रखी

परस्परविरोधेन मनुं ताः पुनरन्वयुः। मनुः स्वायंभुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ॥५६॥
ध्यात्वा तु शतरूपायाः पुमान्स उदपादयत्। प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रथमं तौ महीपती ॥५७॥
ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः। प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ॥५८॥
प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि। धर्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रे तपोमयाः ॥५९॥
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्तिताः। संहिताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तु ते ॥६०॥
यज्ञः प्रवर्तितश्चैवं तदा ह्येव तु दैवतैः। यागे कुशैर्जपैश्चैव सर्वसंभारसंवृतैः ॥६१॥
सार्धं विश्वभुजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा। स्वायंभुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्ते वाक्प्रवर्तिताः ॥६२॥
सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म उच्यते। क्रिया धर्मश्च ह्रसते सत्यधर्मः प्रवर्तते ॥६३॥
प्रजायन्ते ततः शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः। न्यस्तदण्डमहाभागा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ॥६४॥
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः। सिंहान्तका महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥६५॥
महाधनुर्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः। सर्वलक्षणसंपन्ना न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६६॥
न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते। व्यामेनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्ध्वं तु देहिनः ॥
समुच्छ्रयपरीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ॥६७॥

थी; किन्तु अज्ञानवश प्रजाओं ने वर्णाश्रम–धर्म का अनुपालन नहीं किया और परस्पर धर्म विषयक विवादों को खड़ाकर पुनः मनु के पास सभी लोग गये। प्रजापति स्वायंभुव मनु ने उनको अपने पास समुपस्थित देख यथार्थ का चिन्तन किया और ध्यान निमग्न हो शतरूपा नामक अपनी पत्नी में उस पुरुष ने सर्वप्रथम प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों सर्वप्रथम राजा हुए। उसी समय से धरातल पर राजा लोग दण्ड की व्यवस्था करनेवाले उत्पन्न होने लगे। प्रजा वर्ग का रंजन करने के कारण वे लोग राजा नाम से प्रसिद्ध हुए ॥५४–५८॥ गुप्त रूप से पापाचरण करनेवाले मनुष्य पृथ्वी पर वशीभूत न हो सके अतः उनको वश्य करने के लिए धर्म की मर्यादा के स्थापनार्थ वर्णों का विभाग, तपोमय मन्त्र एवं संहिताओं का ऋषियों और ब्राह्मणों ने त्रेतायुग में प्रचार किया। उसी समय देवताओं ने कुश, हवन, जप एवं अन्यान्य सामग्रियों समेत यज्ञ का प्रचलन किया। इस प्रकार स्वायंभुव मन्वन्तर में देवताओं ने विश्वभुक् महातेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ यज्ञों का सर्वप्रथम प्रवर्तन किया। त्रेतायुग में सत्य, जप, तपस्या एवं दान–ये प्रमुख रूपेण धर्म कहे जाते थे, किन्तु क्रिया (अनुष्ठान) धर्म का ह्रास था, केवल सत्य धर्म की प्रतिष्ठा थी ॥५९–६३॥ उस त्रेतायुग में शूरवीर, दीर्घायु, महाबलवान्, योग्य, दण्ड देनेवाले, महान् भाग्यशाली, यज्ञपरायण एवं ब्रह्मवादी राजा उत्पन्न हुए थे। उनके नेत्र कमल के दल की भाँति विस्तृत एवं मनोरम रहते थे, वक्षःस्थल विशाल थे, वे चुस्त एवं फुर्तीले थे, सिंह के समान पराक्रमशाली, वेगवान्, मत्तगयंद के समान गमन करनेवाले थे, वे सभी चक्रवर्ती तथा महाधनुर्धर थे। राजाओं के सभी लक्षण उनमें विद्यमान थे। वे सब–के–सब न्यग्रोध परिमण्डलवाले थे। दोनों बाहुओं तथा व्याम[1] को न्यग्रोध कहते हैं, जिस शरीरधारी के शरीर की ऊँचाई अपने व्याम के परिमाण के समान होती है, अर्थात् जिसकी ऊँचाई और दोनों बाहुओं के विस्तार समान होते हैं, उसके उस शुभ लक्षण को न्यग्रोधमण्डल जानना चाहिए ॥६४–६७॥ चक्र, रथ, मणि, स्त्री, निधि (कोष), अश्व

---

[1] फैलायी गयी दोनों भुजाओं के बीच के परिमाण को व्याम कहते हैं।

चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा। सप्तातिशयरत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ।।६८।।
चक्रं रथो मणिः खड्गं धनूरत्नं च पञ्चमम्। केतुर्निधिश्च सप्तैते प्राणहीनाः प्रकीर्तिताः ।।६९।।
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः। मन्त्र्यश्वः कलभश्चैव प्राणिनः संप्रकीर्तिताः ।।७०।।
रत्नान्येतानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम्। चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ।।७१।।
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ।।७२।।
(*भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च। त्रेतायुगादिकेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ।।७३।।
भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम्।) अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम् ।।७४।।
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम्। अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ।।७५।।
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च। अन्नेन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ।।७६।।
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः। केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चाऽऽस्य प्रमार्जनी ।।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठाः श्रीवत्साश्चोर्ध्वरोमशाः ।।७७।।

और हस्ती–ये सात प्रमुख रत्न सभी चक्रवर्ती राजाओं के मुख्य माने गये हैं। चक्र, रथ, मणि, खड्ग, धनुष, केतु और निधि–ये सात प्राणहीन रत्न कहे गये हैं ।।६८–६९।। स्त्री, पुरोहित, सेनापति, रथकार, मन्त्री, अश्व और गज शावक–ये सात प्राणधारी रत्न कहे गये हैं। ये उपर्युक्त चौदह प्रकार के रत्न दिव्य एवं सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, जो सब-के-सब चक्रवर्ती राजाओं के लिए प्रयोजनीय हैं। सभी व्यतीत हुए एवं आनेवाले मन्वन्तरों में चक्रवर्ती राजागण इस पृथ्वीमण्डल पर भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होते हैं। त्रेताप्रभृति युगों में जितने भी चक्रवर्ती सम्राट् उत्पन्न हो गये हैं, वर्तमान हैं अथवा भविष्य में होंगे–उन सभी महीपालों के लिए ये दिव्य रत्न कल्याणकारी एवं प्रयोजनीय हैं। इनके अतिरिक्त चार तो अद्भुत रत्न हैं, बल, धर्म, सुख एवं धन ।।७०–७४।। राजागण इन अद्भुत रत्नों को एक-दूसरे के बिना विरोध हुए ही प्राप्त करते हैं, अर्थात् एक ही राजा अपने गुणों से इन चारों अद्भुत रत्नों को एक ही समय प्राप्त करता है। वे चक्रवर्ती राजागण अपने धन, समृद्धि, धर्म, काम, यश, विजय, ऐश्वर्य, अणिमा प्रभृति सिद्धियाँ प्रभुशक्ति, अन्न एवं तपस्या से ऋषियों को भी पराभूत करते हैं तथा अपने बल एवं तपस्या से वे देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों को पराजित करते हैं। वे अपने शरीर के अनुपम दिव्य लक्षणों से समन्वित उत्पन्न होते हैं, उनकी केशराजि में ललाट पर उर्णा[1] होती है, जिह्वा स्वच्छ और चिकनी होती है, होंठों और दाँतों की कान्ति ताम्रवर्ण की होती है। रोमराजि ऊर्ध्वमुखी होती है, वे श्रीवत्स चिह्नयुक्त रहते हैं ।।७५–७७।। उनके विशाल बाहु घुटने

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ग. पुस्तके नास्ति।

[1] १. एक भ्रमरी, जो चक्रवर्तियों के ललाट भाग में होती है।

आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः। न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः।।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ।।७८।।
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः। पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः।।७९।।
असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम्। अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च।।८०।।
इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते। तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।।८१।।
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते। हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः।।८२।।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः। त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः।।८३।।
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु। एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंधौ निबोधत।।८४।।
त्रेतायुगस्वभावस्तु संध्यापादेन वर्तते। संध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति।।८५।।

शांशपायन उवाच

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तनम्। पूर्वं स्वायंभुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे।।८६।।
अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन वै। कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ।।८७।।

पर्यन्त लंबित रहते हैं; हाथ में जाल और वृषभ के चिह्न अंकित रहते हैं, वे सब न्यग्रोध परिणाह[१] वाले होते हैं, उनके विशाल स्कन्ध सिंहों के समान विस्तृत होते हैं, सुन्दर शिश्नवाले तथा गजेन्द्र के समान मन्दगति से गमन करनेवाले होते हैं, उनके चिबुक सुडौल, विशाल और सुन्दर होते हैं, उनके पाद तल में चक्र और मत्स्य का चिह्न रहता है, दोनों हाथों में शङ्ख और पद्म के आकार अंकित रहते हैं। वे चक्रवर्ती सम्राट् पचासी सहस्र वर्ष बिना वृद्धावस्था के जीवित रहते हैं। उन चक्रवर्तियों के चार स्थानों की गति अकेली होती है, आकाश में, समुद्र में, पालन में एवं पर्वत में, अर्थात् इन स्थानों पर जाते समय वे अकेले रहते हैं ।।७८-८०।। त्रेतायुग में यज्ञाराधन, दान, तपस्या और सत्याचरण—ये प्रमुख धर्म कहे जाते हैं, उसी त्रेतायुग में वर्णाश्रम धर्म के विभाग की व्यवस्था सम्पन्न होती है, मर्यादा के स्थापनार्थ उसमें दण्ड की व्यवस्था की जाती है। उस त्रेतायुग में सब प्रजा हृष्ट, पुष्ट, नीरोग और स्वस्थ चित्तवृत्तिवाली होती है। उस त्रेतायुग में एक ही वेद चार भागों में विभक्त होकर प्रसिद्ध हुआ—ऐसा स्मरण किया जाता है। उसमें मनुष्य तीन सहस्र वर्ष जीवन प्राप्त करते हैं ।।८१-८३।। सब लोग पुत्र-पौत्रादि से भरे-पुरे रहते हैं और क्रम के अनुसार मृत्यु प्राप्त करते हैं, अर्थात् पिता के सामने पुत्र-पौत्रों की मृत्यु नहीं होती। यह तो त्रेतायुग का स्वभाव बतलाया गया है, अब त्रेता के संधिकाल का विवरण सुनिये ।।८४।। त्रेतायुग का स्वभाव सन्ध्या के स्वभाव के एक पाद समेत रहता है और सन्ध्या का स्वभाव युगपाद रहता है ।।८५।।

शांशपायन ने कहा—सूत जी! पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर के त्रेता युग के प्रारम्भ काल में यज्ञ का प्रचलन

---

[१] पहले परिचय दिया जा चुका है।

संभारांस्तांश्च संभृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः। एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ।।८८।।
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तनम्। ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ।।८९।।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम्। मन्त्रासंयोजयित्वाऽथ इहामुत्रेषु कर्मसु ।।९०।।
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा। दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसंभारसंभृतम् ।।९१।।
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः। यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ।।९२।।
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सतते यज्ञकर्मणि। संप्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सुस्वरम् ।।९३।।
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च। आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ।।९४।।
हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः। आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ।।९५।।
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये। तान्यजन्ते तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये ।।९६।।
अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः। महर्षयस्तु तान्दृष्ट्वा दीनान्पशुगणान्स्थितान् ।।
प्रपच्छुरिन्द्रं संभूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ।।९७।।
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव। नेष्टः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ।।९८।।

किस प्रकार हुआ? उसको विस्तारपूर्वक बताइये। जब सतयुग के साथ उसकी सन्ध्या समाप्त हो गयी और त्रेतायुग के साथ कला मात्र उनकी संधि प्रारम्भ हुई, उस समय ऋषियों ने तथा मनु ने किस प्रकार पुनः वर्णाश्रम की व्यवस्था सम्पन्न की? और किस प्रकार उन सभी यज्ञीय सम्भारों को एकत्र कर यज्ञ का प्रचलन किया? शांशपायन की यह जिज्ञासा-भरी बात सुनकर सूत जी ने कहा, हे शांशपायन! जिस प्रकार त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में यज्ञ की प्रथा प्रचलित हुई, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो ।।८६–८८$\frac{१}{२}$।। जब त्रेता के प्रारम्भ में वृष्टि होने के उपरान्त सभी प्रकार की ओषधियाँ पृथ्वी पर उत्पन्न हो गयीं, लोग घर, द्वार, आश्रम और नगर की वार्ता में लीन हो गये उस समय विश्व भोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक निःश्रेयस् की प्राप्ति के लिए मन्त्रों एवं संहिताओं का प्रचार कर एवं उनको तत्तत् कर्मों में नियंत्रित कर सभी देवताओं के साथ सम्पूर्ण सामग्रियों एवं उपकरणों समेत यज्ञ की प्रथा प्रचलित की; उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब प्रारम्भ हुआ सभी महर्षिगण आकर उनमें सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओं द्वारा यज्ञ का कार्य प्रारम्भ सुनकर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुए, उस समय जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलनेवाले यज्ञ कर्म में व्यस्त हो गये, उच्च सुमधुर स्वर में वेद की ऋचाओं का गायन होने लगा, यज्ञ कर्म में व्यस्त रहने के कारण प्रमुख-प्रमुख अध्वर्युगण इधर-उधर शीघ्रता में घूमने-फिरने लगे ।।८९–९३$\frac{१}{२}$।। हवनीय पशुओं का वध होने लगा, देवताओं के होतागण अग्नि में हविष् की आहुति देने लगे, यम में भाग पानेवाले देवता एवं महात्मागण आवाहित होने लगे, देवता लोग प्रत्येक कल्पों में यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी इन्द्रियात्मक देवगणों की पूजा करने लगे, ठीक उसी समय यज्ञमण्डल में समागत महर्षिगण अध्वर्युगण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥९९॥
आगमेन भवान्यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि। विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्ममव्ययहेतुना ॥
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥१००॥
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः। एष धर्मो महानिन्द्र स्वयंभुविहितः पुरा ॥१०१॥
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ॥१०२॥
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः। संधाय वाक्यमिन्द्रेण पप्रच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥१०३॥

ऋषय ऊचुः

महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप। उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि न प्रभो ॥१०४॥
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम्। वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥
यथोपदिष्टैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ॥१०५॥
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा। हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ॥१०६॥
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः। दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ॥
तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुर्हथ ॥१०७॥

देखकर उन पशुओं की दीनता से करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ।।९४-९७।। हिंसामय धर्म कार्य करने को इच्छुक तुम यह महान् अधर्म कर रहे हो, सुरोत्तम! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ से यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो, यह पशुहिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जाता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा, उन यज्ञ बीजों से तुम यज्ञ प्रारम्भ करो, जिनमें हिंसा का नाम नहीं है ।।९८-१००।। इन्द्र! प्राचीनकाल में तीन वर्ष के पुराने रखे गये अंकुररहित बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, यह महान् धर्ममय यज्ञाराधन है। इस प्रकार उन तत्त्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर एवं जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिए—ऐसा कहा जाता है। इन्द्र के साथ इस विषय के विवाद में पड़े हुए उन तत्त्वदर्शी महर्षियों ने इन्द्र के साथ समझौता करके इस विषय की मीमांसा के लिए राजा वसु से पूछा ।।१०१-१०३।।

ऋषिगण बोले—हे परम बुद्धिमान्! राजन्! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र तथा स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है। ऋषियों की ऐसी बानी सुनकर राजा ने बलाबल का कुछ भी विचार न करके केवल वेदों एवं शास्त्रों के यज्ञ विधिपरक वचनों का स्मरण करके यज्ञ तत्त्व के बारे में यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिए ।।१०४-१०५।। शास्त्रों का ऐसा वचन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों या फलों द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिए; यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा

यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि (णि) च द्विजाः । तदा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ।।
एवं हतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ।।१०८।।
अधश्च भवनं दृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव । मिथ्यावादी नृपो यस्मात्प्रविवेश रसातलम् ।।१०९।।
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् । ऊर्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ।।११०।।
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् । धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरथाऽऽगतः ।।१११।।
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः । बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्माद्दूरमुपागतिः ।।११२।।
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् । देवानृषीनुपादाय स्वायंभुवमृते मनुम् ।।११३।।
तस्मान्न हिंसा धर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः । ऋषिकोटिसहस्राणि कर्मभिः स्वैर्दिवं ययुः ।।११४।।
तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः । (तुच्छं मूलं फलं शाकमुदापात्रं तपोधनाः ।।
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ।।११५।।
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः) । ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः ।।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ।।११६।।

है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी महर्षियों द्वारा आविष्कृत मन्त्र समूह हिंसा के द्योतक हैं, और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है, इन्हीं प्रमाणों के आधार पर मैंने उपर्युक्त बातें कही हैं, अतः यदि आपको ये अनुचित भी प्रतीत हों तो मुझे क्षमा करेंगे। हे महर्षिगण! यदि उन मन्त्रादिकों के वचन प्रमाणित हैं तो हिंसामूलक यज्ञ अनुष्ठान आप लोग करें अन्यथा मेरी बातें असत्य समझें। राजा वसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने उससे कहा कि हे राजन्! तू राजा होकर भी मिथ्या बातें कह रहा है अतः चुप रह, ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने हुए एक भवन की ओर देखा और पुनः कहा कि अब तू रसातल में प्रवेश कर ।।१०६-१०९।। मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु आकाशचारी होते हुए भी रसातलगामी हुआ, अर्थात् तुरन्त रसातल को प्रविष्ट हुआ। अपने उसी वाक्य के कारण धार्मिक बातों में संशय को दूर करनेवाला वह राजा वसु आकाश से वसुधातल पर आ गया। अतः बहुज्ञ एवं पण्डित व्यक्ति को भी अकेले कभी धार्मिक बखेड़ों में व्यवस्थापक नहीं बनना चाहिए। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ़ है। इसलिए केवल स्वायंभुव मनु को छोड़कर देवताओं एवं ऋषियों में से कोई भी निश्चित रूप से धर्म तत्त्व का निर्णय नहीं दे सकता। इसलिए महर्षियों ने जीव हिंसा को धर्म का द्वार नहीं माना है, प्राचीन काल में सहस्र कोटि ऋषिगण अपने-अपने सत्कर्मों के प्रभाव के कारण स्वर्गगामी हुए हैं ।।११०-११४।। यही कारण है कि महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते। अपनी शक्ति के अनुरूप तुच्छ मूल, फल, शाक, जलपात्रादि का दानकर तपस्वी लोग स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं ।।११५।। किसी से द्रोह न करना, निर्लोभ रहना, दमन, सभी जीवों पर दया भाव, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, क्षमा और धैर्य—ये सब सनातन धर्म के मूल हैं, जो अति कठिनता से प्राप्त किये जाते हैं। यज्ञ धर्म मन्त्रों द्वारा सिद्ध होते हैं, तपस्या अनशन द्वारा साध्य होती है, यज्ञ से मनुष्य देवत्व की प्राप्ति करता है और तपस्या द्वारा वैराग्य

धर्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् । यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्यं तपसा पुनः ।।११७।।
ब्राह्मण्यं कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रेक्षते लयम् । ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ।।११८।।
एवं विवादः समुहान्यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तने । ऋषीणां देवतानां च पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।।११९।।
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाऽद्भुतं वर्त्म बलेन तु । वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः ।।१२०।।
गतेषु देवसंघेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः । श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ।।१२१।।
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः । सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ।।१२२।।
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गताः । राजर्षयो महासत्त्वा येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ।।१२३।।
(*तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः । ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा) ।।१२४।।
+तस्मान्नात्येति तद्यज्ञस्तपोमूलमिदं स्मृतम् । यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमतः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।
ततः प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्तत ।।१२५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते यज्ञप्रवर्तनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ।।५७।।

की प्राप्ति होती है। कर्मों के संन्यास से ब्राह्मण्य (ब्रह्म की प्राप्ति) वैराग्य से लय और ज्ञान से कैवल्य पद की प्राप्ति होती है–ये पाँच गतियाँ स्मरण की जाती हैं ।।११६–११८।। इस प्रकार पूर्व काल में स्वायंभुव मन्वन्तर में ऋषियों और देवताओं के बीच में यज्ञ की प्रथा प्रचलित होने के अवसर पर बहुत बड़ा विवाद हुआ था। तदनन्तर उस अश्वमेध महायज्ञ में समुपस्थित ऋषिगण उक्त प्रकार के हिंसात्मक यज्ञ के अद्‌भुत धर्म पथ को देखकर राजा वसु की कही गयी बातों का अनादर करके जहाँ–जहाँ से आये थे, वापस चले गये ।।११९–१२०।। इस प्रकार ऋषियों के वापस चले जाने के बाद देवताओं ने यज्ञ का कार्य समाप्त किया। ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन काल में प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुमेधा, विरजा, शंखपाद, रज, प्राचीनबर्हि, पर्जन्य एवं हविर्धान प्रभृति अनेकानेक तपः सिद्ध ब्राह्मण महात्मा एवं क्षत्रिय राजागण, जो महातेजस्वी एवं कीर्तिशाली हो गये हैं, अपने तप के बल से सिद्धि प्राप्त कर स्वर्गगामी हुए ।।१२१–१२३।। इन्हीं सब कारणों से सभी स्थलों पर यज्ञ की अपेक्षा तपस्या विशेष फलदायिनी है। प्राचीन काल में ब्रह्मा जी ने इस निखिल विश्व की सृष्टि तप के भरोसे की है। यज्ञ कभी भी तप की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हो सकता, इस समस्त चराचर जगत् का मूल तप ही है। स्वायंभुव मन्वन्तर में इस प्रकार यज्ञ की प्रथा प्रचलित हुई थी, तभी से लेकर प्रत्येक युगों में यह यज्ञ होता चला आ रहा है ।।१२४–१२५।।

श्री वायुमहापुराण में यज्ञप्रवर्तन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अथाष्टपञ्चाशोऽध्यायः

चतुर्युगाख्यानम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः । तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ।।१।।
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या । परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा संप्रणश्यति ।।२।।
ततः प्रवर्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः । लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।।३।।
संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विनिर्णयः । याञ्चा वधः पणो दण्डो मदो दम्भोऽक्षमाऽबलम् ।।
एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ।।४।।
आद्ये कृते न धर्मोऽस्ति त्रेतायां संप्रपद्यते । द्वापरे व्याकुली भूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ।।५।।
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यते तथाऽऽश्रमः । द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिञ्श्रुतौ स्मृतौ ।।६।।
द्वैधाच्छ्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते । अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ।।७।।
परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च । अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते ।।८।।

अध्याय ५८

चतुर्युग-वर्णन

सूत जी बोले–अब इसके उपरान्त मैं द्वापर युग के स्वभाव का वर्णन करता हूँ। त्रेतायुग के क्षीण होने के बाद द्वापर युग का समय आता है। इस द्वापर युग के आदिमकाल में मनुष्यों को त्रेतायुग में जो सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं, वे युग की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाती हैं ।।१–२।। तदुपरान्त द्वापर में उन्हीं प्रजाओं के मन में लोभ, अधैर्य, वणिक् वृत्ति, युद्ध–वृत्ति, युद्ध, तत्त्वों का अनिश्चय, ब्रह्मादि वर्णों में पारस्परिक मतभेद, कार्याकार्य का अनिर्णय, याचना, वध, पण (नौकरी या पैसे पैदा करने के अन्य उपाय), दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, निर्बलता–इन सभी अवगुणों की रजोमय एवं तपोमय प्रवृत्तियाँ पायी जाने लगती हैं–ऐसा कहा गया है ।।३–४।। आदिमयुग कृत में धर्म नहीं था, त्रेतायुग में उसकी प्रवृत्ति होती है; द्वापर में वह व्याकुलित होकर कलियुग में विनष्ट हो जाता है ।।५।। उसमें वर्णों एवं आश्रमों का विध्वंस हो जाता है तथा श्रुतियों एवं स्मृतियों के दुविधा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। श्रुतियों तथा स्मृतियों के द्वैधीभाव के कारण किसी विषय का निश्चय नहीं होता एवं अनिश्चय परिणाम यह होता है कि धर्म तत्त्वों का सर्वथा विलोप हो जाता है और उनमें भिन्न–भिन्न मनुष्यों के भिन्न–भिन्न मत हो जाते हैं ।।६–७।। दृष्टि विभ्रम के कारण परस्पर भिन्न–भिन्न मत रखनेवाले उन मनुष्यों के बीच में 'यह धर्म है, यह अधर्म है', इस बात का निश्चय नहीं हो पाता। कारणों की विकलता (अपूर्णता) एवं अनिश्चित बुद्धि के कारण भिन्न–भिन्न मति रखनेवाले उन मनुष्यों में दृष्टि विभ्रम का हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। उन विभ्रान्त दृष्टिवाले मनुष्यों से शास्त्र बेचारे व्याकुल हो जाते हैं, एक वेद का त्रेतायुग

कारणानां च वैकल्यात्कारणस्याप्यनिश्चयात् । मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ।।९।।
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलं त्विदम् । एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ।।१०।।
संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च । वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।।११।।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः । मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णादिपर्ययैः ।।१२।।
संहिता ऋग्युजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः । सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ।।१३।।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च । अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः ।।१४।।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः । एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ।।१५।।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलं त्विदम् । आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ।।१६।।
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः । व्याकुलं द्वापरे भिन्नं क्रियते भिन्नदर्शनैः ।।१७।।
तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः । द्वापरे संप्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ।।१८।।
तेषां विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः । अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।।१९।।
वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः । निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ।।२०।।
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् । दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः ।।२१।।

में चार चरण करके चार विभाग किये गये हैं ।।८–१०।। द्वापरादि युगों में मनुष्यों की अल्पायु के कारण वेदव्यासों ने वेद को चार भागों में विभक्त किया। उसके बाद भी दृष्टि विभ्रम के कारण ऋषि पुत्रों द्वारा उन वेदों का विभाग हुआ, जिसमें स्वर और वर्ण के विपर्यय से मन्त्र और ब्राह्मण–दो भाग हुए। भ्रान्त दृष्टिवाले उन वेदाभ्यासी ऋषियों ने कहीं–कहीं सामान्य ढंग से और कहीं–कहीं बुद्धि की विकृति के कारण ऋक्, यजु और साम की संहिताओं का विपर्यय कर दिया। परिणामस्वरूप ब्राह्मण, कल्पसूत्र, मन्त्र, प्रवचन आदि सभी विपर्यस्त हो गये। उनमें से कुछ तो ब्राह्मणों से दूर कर दिये गये और कुछ उन पर आस्थाशील बने रहे ।।११–१४।। द्वापर युगों में आश्रम धर्म का विपर्यय हो जाता है, द्विजादिगण अपने–अपने आश्रमधर्मों से एवं आचारों से च्युत हो जाते हैं, प्राचीन काल में केवल एक आध्वर्यव[1] था, जिसका बाद में चलकर दो विभाग हो जाता है। सामान्य अर्थों के स्थान पर विपरीत अर्थ समझने के कारण यह शास्त्र ही एकदम से अस्त–व्यस्त हो जाता है, इस प्रकार आध्वर्यव के विभिन्न प्रस्तावों के कारण उसका मूलरूप विकृत हो जाता है। इसी प्रकार अथर्ववेद, ऋग्वेद और सामवेद में भी अतर्क्य विकल्पों के कारण भिन्न–भिन्न दृष्टिवाले ऋषियों द्वारा द्वापर युग में अस्तव्यस्तता आ जाती है। उन विकल्पों का परिणाम यह होता है कि द्वापर युग में उनके अगणित भेद–अभेद हो जाते हैं और कलियुग आते–आते वे पुनः एकदम से विलुप्त हो जाते हैं ।।१५–१८।। द्वापर युग में इस प्रकार प्रजावर्ग के कर्मों में विपर्यय हो जाता है, जिससे अनावृष्टि, मरण, विविध प्रकार की व्याधियाँ, अनेक उपद्रव, मानसिक, वाचिक एवं कर्म सम्बन्धी दोषों से उत्पन्न होनेवाले कष्टों के कारण प्रजा के मन में पश्चात्ताप होता है, जिसके

---

[1] यजुर्वेद का अध्वर्यु सम्बन्धी कर्म।

तेषां च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायंभुवेऽन्तरे। उत्पद्यते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ।।२२।।
आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च। अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ।।२३।।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक्पृथक्। द्वापरेष्वभिवर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।।२४।।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति। द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ।।२५।।
लोभोऽधृतिर्वनिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः। वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा ।।२६।।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते रागो लोभो वधस्तथा। वर्णाश्रमपरिध्वंसाः कामद्वेषौ तथैव च ।।२७।।
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम्। निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु पादतः ।।२८।।
प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु। तथैव संध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ।।२९।।
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्त तु निबोधत। द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कले रतः ।।३०।।
हिंसाऽसूयाऽनृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम्। एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ।।३१।।
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते। मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्ता सिध्यति वा नवा ।।३२।।

कारण उनके मन में उन दुःखों से मुक्ति पाने का विवेक उत्पन्न होता है। दुःख मोक्ष के उपाय चिन्तन से सांसारिक विषयों से वैराग्य हो जाता है और वैराग्य के कारण अपने दोषों पर दृष्टि जाती है, इस प्रकार दोष दर्शन से ज्ञान की उत्पत्ति द्वापर युग में होती है ।।१९-२२।। इस प्रकार पूर्व स्वायंभुव मन्वन्तर के द्वापर युग में उन मानी प्रजावर्गों के पूर्वज शास्त्रों के परिपन्थी (विरोधी) उत्पन्न हुए। आयुर्वेद, वेदों के सभी अंग, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, हेतुशास्त्र (न्यायशास्त्र), स्मृतिशास्त्र एवं अन्यान्य सभी प्रकार के शास्त्रों में मतभेदों के कारण विकल्प हो जाते हैं, सभी मनुष्यों में मतभेद हो जाते हैं ।।२३-२४।। द्वापर में कायिक, मानसिक, वाचिक व्यवहारों से अतिकष्ट के साथ जीविका निर्वाह होता है और सभी जीवों में शारीरिक कष्टों की अधिकता पायी जाती है। लोभ, अधैर्य, वाणिज्य बुद्धि, युद्धतत्त्वों का अनिश्चय, वेदों एवं शास्त्रों का मनमानी प्रणयन एवं सम्पादन, धार्मिक व्यवहारों में परस्पर विपर्यय–ये सभी कार्य द्वापर में अबाध रूप से प्रचलित हो जाते हैं, जिससे राग, लोभ, मारण, वर्णाश्रम का विध्वंस, काम और द्वेष की अधिकता हो जाती है। मनुष्य की अधिक आयु दो सहस्र वर्ष की होती है। इस प्रकार द्वापर के समाप्त हो जाने पर उसकी अवधि के चतुर्थ अंश में उसकी सन्ध्या प्रवृत्त होती है ।।२५-२८।। उस सन्ध्या के समय में द्वापर युग का स्वभाव अपने गुणों से कुछ विहीन होकर स्थित रहता है, सन्ध्या के समाप्त हो जाने पर सन्ध्या की पाद परिमित अवधि के लिए सन्ध्यांश की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार द्वापर युग के स्वभाव का वर्णन कर चुका, अब कलियुग के स्वभाव का वर्णन सुनो। द्वापर युग के सन्ध्यांश की निवृत्ति हो जाने के उपरान्त कलियुग की प्रवृत्ति होती है। हिंसा, असूया, असत्य भाषण, माया, तपस्वियों का संहार, ये कलियुग के स्वभाव हैं, उस युग की प्रजाएँ कालधर्म के अनुसार इनका पालन करती हैं। इन उपर्युक्त कलि धर्मों के कारण वेदानुमत धर्म सम्पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाता है। मनसा, कर्मणा एवं स्तुति द्वारा अथक प्रयत्न करने पर भी लोगों की जीविका निष्पन्न होने में सन्देह बना रहता है ।।२९-३२।। उस कलियुग में महामारी रोग, निरन्तर

कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै। अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ॥३३॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे। गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथाऽपरः॥
स्थाविरे माध्यकौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥३४॥
अधार्मिकास्त्वनाचारा मोहकोपाल्पतेजसः। अनृतब्रुवाश्च सततं तिष्ये जायन्ति वै प्रजाः ॥३५॥
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः। विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥३६॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतम्। तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥३७॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम्। नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः॥
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥३८॥
शूद्राणामन्त्ययोनेस्तु संबन्धा ब्राह्मणैः सह। भवन्तीह कलौ तस्मिञ्शयनासनभोजनैः ॥३९॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवर्तकाः। भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्तते ॥४०॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलं चैव प्रहीयते। शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥४१॥
राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः। भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥४२॥

क्षुधा की व्याधियाँ, दुर्भिक्ष आदि, घोर अनावृष्टि का भय तथा देशों में उथल-पुथल सर्वदा मची रहती है, उन स्मृतियों का लोक में कोई प्रमाण नहीं रह जाता, जिनका प्रत्येक युगों में मान था, कोई गर्भ में ही मर जाता है तो कोई जवानी में। इस प्रकार वृद्धावस्था, कुमारावस्था में भी कलियुग में प्रजाएँ मृत्युलाभ करती हैं ॥३३-३४॥ कलियुग में सभी लोग धर्मविहीन, अनाचारी, अज्ञानी, क्रोधी, अल्प बुद्धिवाले एवं निरन्तर असत्यभाषी उत्पन्न होते हैं। उस कलियुग में ब्राह्मण जाति की कुशिक्षा, दुष्ट उपायों से यज्ञाराधन करने, असत् उपायों से जीविका उत्पन्न करने, दुराचारी एवं दुर्व्यसनी होने के कारण प्रजावर्ग को भय उत्पन्न होता है। उस कलियुग में सभी जीवों में हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमाशीलता, असत्य भाषण, राग एवं लोभ प्रभृति दोषों का प्रादुर्भाव हो जाता है। उस कलियुग के प्राप्त होने पर प्रत्येक जीवों में अतिशय क्षोभ उत्पन्न हो जाता है, उस समय द्विजातिवर्ग न तो वेदों का अध्ययन करते हैं और न ठीक से यज्ञों का अनुष्ठान ही करते हैं तथा क्षत्रिय वैश्यों समेत सभी मनुष्य नष्ट होने लगते हैं ॥३५-३८॥ इस कलिकाल में शूद्र एवं अन्त्यज वर्णों के साथ ब्राह्मणों का शयन, आसन एवं भोजनादि में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। राजा लोग अधिकतर शूद्र जाति के होते हैं, और पाखण्ड को बढ़ानेवाले होते हैं, प्रजावर्ग में गर्भ हत्या आदि घोर पाप होते रहते हैं। सभी लोगों की आयु, बुद्धि, बल, रूप एवं कुल का विनाश हो जाता है, शूद्र लोग ब्राह्मणों की भाँति एवं ब्राह्मण लोग शूद्रों की भाँति आचार-व्यवहार करने लगते हैं। इसी प्रकार चोर लोग राजाओं की भाँति प्रजावर्ग पर शासन एवं दण्डादि की व्यवस्था करते हैं और राजा लोग चोरों की तरह चोरी से प्रजा के धनादि का अपहरण करते हैं। उस कलिकाल में नौकर लोग स्वामिभक्ति से रहित हो जाते हैं ॥३९-४२॥ स्त्रियाँ अतिशय दुःशील, व्रतादि में निष्ठा न रखनेवाली, मदिरा एवं मांस को पसन्द

अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः । मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ।।४३।।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैवाप्युपक्षयः । साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन्कलौ युगे ।।४४।।
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् । चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविचलिष्यति ।।४५।।
तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी । शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ।।४६।।
तदा ह्यैकाह्निको धर्मो द्वापरे यश्च मासिकः । त्रेतायां वत्सरस्थश्च एकाह्नादतिरिच्यते ।।४७।।
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः । युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ।।४८।।
अक्षत्रियाश्च राजानो विशः शूद्रोपजीविनः । शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ।।४९।।
यतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन्कलौ युगे । चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः ।।५०।।
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे । (*शूद्राश्च यतिनश्चैव गूढवासास्तपस्विनः ।।
लोलुपाः परदारेषु नष्टमार्गाः कलौ युगे) । भूयिष्ठं कूटमानैश्च पुण्यं विक्रीयते जनैः ।।५१।।
कुशीलचर्या पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम् । पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ।।५२।।
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् । क्रव्यादनः क्रूरवाक्योऽनार्जवो नानसूयकः ।।५३।।

करनेवाली, केवल मायाविनी होने लगती हैं, हिंस्र जीवों का उस कलियुग में प्राबल्य एवं गौओं का ह्रास होने लगता है। उस कलियुग में साधु प्रकृति के लोगों का एक प्रकार से सर्वथा अभाव ही समझना चाहिए। इस प्रकार उस कलिकाल में सूक्ष्म किन्तु महान् फल देनेवाला, अतिशय दुर्लभ दानमूलक धर्म चारों आश्रमों के शिथिल होने के कारण विचलित हो जायगा ।।४३–४५।। उस समय अति प्रभावशालिनी पृथ्वी अल्प फलदायिनी, शूद्र लोग तपस्या में निरत हो जायँगे, किन्तु उस युग का एक दिन का धर्म द्वापर के एक मास एवं त्रेता के एक वर्ष के धर्म के समान फलदायी होगा। उस युगान्तकाल में राजा लोग केवल अपनी रक्षा में तत्पर रहकर प्रजावर्ग के अरक्षक एवं कर ग्रहण करनेवाले होंगे। वे राजागण क्षत्रिय जाति के न होकर अन्य नीच जातियों में होंगे। उस कलिकाल में वैश्यगण शूद्रों के समान जीविका अर्जित करनेवाले तथा सभी ब्राह्मण लोग शूद्रों के नमस्कार करनेवाले होंगे ।।४६–४९।। उस कलियुग में बहुतेरे संन्यासी का वेश धारणकर जीविका चलानेवाले होंगे, उस समय जबकि युग समाप्ति सन्निकट होगी, दैव विचित्र वृष्टि करेगा, अर्थात् कहीं पर बहुत अधिक, कहीं पर कुछ भी नहीं, कहीं पर अकाल में वृष्टि और कहीं पर वर्षाकाल में भी अनावृष्टि होगी। उस अधम कलियुग के सभी मनुष्य प्रायः वाणिज्य व्यवसाय करनेवाले होंगे। शूद्र लोग संन्यासियों का बाना धारणकर कौपीन धारणकर तपस्य निरत होंगे और सभी लोग दूसरे की स्त्री में चित्त लगाकर अपने धर्म पथ से भ्रष्ट होंगे। व्यवसायी लोग प्रायः कपटपूर्ण तौल द्वारा वस्तुओं का विक्रयकर क्रेताओं को वंचित करेंगे ।।५०–५१।। व्यर्थ के बाहरी पाखण्डों में अभिरुचि रखनेवाले प्रायः सभी प्राणी अतिशय दुःशील एवं अनाचारी होंगे। उस युगान्त के समय

---

* नास्त्ययं श्लोकः क. घ. ङ. पुस्तकेषु।

न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति। अशङ्का चैव पतिते तद्युगान्तस्य लक्षणम् ।।५४।।
नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति। मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च ।।५५।।
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुंधरा। गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः ।।५६।।
हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात्साहसप्रियाः ।।५७।।
प्रनष्टचेतना पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः। ऊनषोडशवर्षाश्च (÷प्रजायन्ते युगक्षये ।।५८।।
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः। शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ।।५९।।
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः। चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्तार एव च ।।६०।।
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते। कीटमूषिकसर्पाश्च) धर्षयिष्यन्ति मानवान् ।।६१।।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत्। कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान्क्षुद्भयपीडितान् ।।६२।।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं भवेत्। दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।।६३।।
उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः। काषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ।।६४।।

पुरुषों की कमी और स्त्रियों की अधिकता होगी। लोगों में एक-दूसरे से याचना करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ जायगी। लोग कच्चा मांस खाने लगेंगे, कटुभाषी होंगे, अतिशय कुटिल व्यवहार करनेवाले तथा परनिन्दक होंगे। उपकार करनेवालों का प्रत्युपकार कोई भी नहीं करेगा। सभी शरीर से अति क्षीण होंगे और घोर पतित व्यवहारों में भी उन्हें आशंका नहीं होगी–यही युगान्त का लक्षण समझिये ।।५२–५४।। सारी पृथ्वी मनुष्यों से रहित होकर प्रायः सूनी हो जायगी। देशों और नगरों में मण्डलों की स्थापना होगी। सारी वसुन्धरा अल्प जल से युक्त तथा अल्प फलवाली हो जायगी। पृथ्वीरक्षक कहानेवाले राजागण उस समय रक्षा करने में असमर्थ हो जायँगे, राज्य में शासन व्यवस्था का सर्वथा अन्त हो जायगा। वे दुष्ट नृपतिगण दूसरे लोगों के रत्नों के छीननेवाले तथा दूसरों की स्त्रियों के साथ बलात्कार करनेवाले होंगे। अधर्म में साहस दिखानेवाले वे दुरात्मा नृपति अति कामुक तथा विद्या-बुद्धि से सर्वथा शून्य होंगे। उस युगान्त के समय के पुरुष अपने केशों के बिखराये हुए चूल धारण करनेवाले होंगे, सोलह वर्ष से भी अल्प अवस्था में वे सन्तानोत्पत्ति करेंगे ।।५५–५८।। युगान्त के आने पर श्वेत दाँतोंवाले, अपने को जितेन्द्रिय प्रकट करनेवाले शूद्र लोग, मुण्डित शिर हो काषाय वस्त्र धारणकर धर्मकार्य करेंगे। उस समय अन्न की चोरी करनेवाले तथा वस्त्र की चोरी करनेवाले चोर होंगे, चोरों के घर में भी चोरी करनेवाले तथा डाकुओं को भी लूटनेवाले लोग उत्पन्न होंगे। इस प्रकार बुद्धि एवं सत्कर्म के सर्वथा निवृत्त हो जाने पर सभी लोग अकर्मण्य हो जायँगे, उस समय कीट-पतंग, मूस और सर्पादि जीव भी मनुष्यों को पीड़ित करेंगे ।।५९–६१।। सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य एवं सामर्थ्य, ये सभी चीजें लोगों को दुर्लभ हो जायँगी, ऐसे समय में जबकि सारा देश क्षुधा के कारण सन्तप्त एवं भयभीत रहेगा, उल्लू के समूह वहाँ निवास करेंगे।

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे। वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः ।।६५।।
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे। नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्मार्थकोविदाः ।।६६।।
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः। स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ।।
उपहन्युस्तदाऽन्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ।।६७।।
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता। मोहो ग्लानिस्तथा सौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ।।६८।।
प्रजासु भ्रूणहत्या च अथ वै संप्रवर्तते। तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते ।।
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः शतं नृणाम् ।।६९।।
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः। उत्सीदन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः ।।७०।।
तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः। धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः ।।७१।।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः। त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ।।
यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ ।।७२।।
एषा कलियुगेऽवस्था संध्यांशं तु निबोध मे। युगे युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन्पादांश्च सिद्धयः ।।७३।।

इन दुःखों से पीड़ित कलियुग के मनुष्यों की अधिक-से-अधिक आयु सौ वर्ष की होगी, सभी वेद शास्त्र कहीं पर तो दिखायी पड़ेंगे, कहीं पर नहीं। धर्म कार्य के सर्वथा विलोप हो जाने के कारण यज्ञों की परम्परा नष्ट हो जायगी। उस समय गेरुआ वस्त्र धारणकर, बिना पढ़े-लिखे, कापालिक, धर्म की व्यवस्था देंगे, कोई वेदों का विक्रय करेगा तो कोई तीर्थों का ।।६२-६४½।। इसी प्रकार अन्यान्य वर्णाश्रम धर्म के विरोधी पाखण्डी उस कलियुग के आने पर उत्पन्न होंगे, उस समय ब्राह्मण लोग वेदशास्त्रों का अध्ययन छोड़ देंगे। शूद्र लोग धर्म के पण्डित माने जायँगे। शूद्र कुल में उत्पन्न होनेवाले राजा लोग अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान नहीं करेंगे। उस कलियुग में प्रजावर्ग स्त्रीहत्या, गोहत्या, परस्पर मारपीट एवं एक-दूसरे का वध करके किसी प्रकार जीवनयापन करता है। इन सब घोर पापों से होनेवाले दुःखों की अधिकता से लोग अल्पायु होते हैं, देश का विनाश हो जाता है, अनेक प्रकार की व्याधियाँ, रुग्णता, अज्ञान, ग्लानि, कृत्रिम सुख की अभिलाषा और तामसिक मनोवृत्ति, इन सबकी कलियुग में प्रधानता कही गयी है ।।६६-६८।। प्रजावर्ग में गर्भहत्या का घोर पाप अन्धाधुन्ध होता है, इन्हीं सब घोर पापों के कारण उस युग में आयु, बल एवं रूप, इन सबका विनाश हो जाता है। उस समय अनेक दुःखों से पीड़ित लोगों की अधिक आयु सौ वर्ष की होती है। उस घोर कलिकाल में सभी वेद शास्त्र कहीं तो दिखायी पड़ेंगे और कहीं नहीं। घोर अधर्म के कारण यज्ञादि सत्कर्मों का विलोप हो जाता है। किन्तु उस युग में थोड़े समय मे ही सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस युगान्त में धर्माचरण करनेवाले उत्तम द्विजगण धन्य हैं, जो श्रुतियों एवं स्मृतियों से अनुमोदित कर्म का बिना किसी प्रकार की निन्दा किये अनुष्ठान करते हैं। त्रेतायुग में एक वर्ष में प्राप्त होनेवाला जो धर्मफल है वह द्वापरयुग में एक मास में प्राप्त किया जाता है, किन्तु उसी धर्मफल को अपनी शक्ति के अनुरूप कलियुग में अनुष्ठान करने पर मनुष्य केवल एक दिन में प्राप्त करता है। यह कलियुग की अवस्था है। अब सन्ध्यांश का वर्णन मुझसे सुनिये ।।६९-७२।। प्रत्येक युगों में सिद्धियाँ पूर्व युग की अपेक्षा पिछले

युगस्वभावात्संध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः। संध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ।।७४।।
एवं संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके। तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ।।७५।।
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते। माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।।७६।।
समाः स विंशतिं पूर्णाः पर्यटन्वै वसुंधराम्। आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ।।७७।।
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः। स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हन्ति सहस्रशः ।।७८।।
स हत्वा सर्वगश्चैव राज्ञस्ताञ्शूद्रयोनिजान्। पाषण्डान्स ततः सर्वान्निःशेषान्कृतवान्प्रभुः ।।७९।।
नात्यर्थं धार्मिका ये च तान्सर्वान्हन्ति सर्वशः। वर्णव्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविनः ।।८०।।
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च। प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।।८१।।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह। गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनांस्तथा ।।८२।।
तुषारान्बर्बरांश्चीनाञ्शूलिकान्दरदान्खसान्। लम्बकानथ केतांश्च किरातानां च जातयः ।।८३।।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः। अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुंधराम् ।।८४।।
माधवस्य तु सोंऽशेन देवस्य हि विजज्ञिवान्। पूर्वजन्मविधिज्ञश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ।।८५।।
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः। द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रकान्ते विंशतिं समाः ।।८६।।

युग में अपने तीन चरणों से हीन हो जाती हैं, अर्थात् केवल एक चरण मात्र विद्यमान रहती है। इसी प्रकार युग के स्वभाव से उसकी सिद्धियाँ सन्ध्या में एकपाद रहती हैं और सन्ध्यांश में सन्ध्या के स्वभाव से एक पाद शेष रहती हैं। इस नियम के अनुसार स्वायंभुव मन्वन्तर के आदि कलियुग के सन्ध्यांश के समुपस्थित होने पर उन असत्पुरुषों को दण्ड देनेवाला भृगुवंशियों की मृत्यु के उपरान्त उसी वंश में उत्पन्न हुआ, चन्द्रमा के गोत्र का प्रमिति नामक राजा भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होता है, वह समस्त पृथ्वीमण्डल पर सैकड़ों सहस्र शस्त्रास्त्रधारी ब्राह्मणों को साथ लेकर एक विशाल वाहिनी की सहायता से पूरे बीस वर्ष तक भ्रमणकर सहस्रों म्लेच्छों का संहार करता है ।।७३–७८।। सभी स्थलों पर जानेवाले उस अमित तेजस्वी ने उन शूद्र कुल में उत्पन्न होनेवाले राजाओं को मारकर सभी प्रकार के फैले हुए पाखण्डों का निराकरण कर जो लोग धर्म में अधिक विश्वास करनेवाले नहीं थे उन सबको एकदम से विनष्ट करता है। इसके अतिरिक्त वर्णसंकर एवं उनके सहायकों का भी समूल विनाश कर देता है ।।७९–८०।। उदीच्य, मध्यदेशीय, पार्वतीय, प्राच्य, प्रतीच्य तथा विन्ध्यगिरि के पृष्ठ पर बसनेवाले, सीमान्त प्रदेशीय, दाक्षिणात्य, द्राविड़, सिंहलद्वीप निवासी, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, तुषार, बर्बर, चीन, शूलिक, दरद, खस, लम्बक, केत और किरात प्रभृति म्लेच्छ जातियों को, वह सभी भूतों से न पराजित होनेवाला, म्लेच्छों का घोर शत्रु प्रमिति अपनी-अपनी सेना को साथ ले विनष्ट करता है ।।८१–८४।। चन्द्रमा के गोत्र में उत्पन्न, विष्णु का अंशीभूत, पूर्वजन्म की विधियों को जाननेवाला, प्रमिति नामक परम पराक्रमी वह अमित तेजस्वी प्रभु अपनी बत्तीस वर्ष की अवस्था में बीस वर्ष तक अनवरत पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर

विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः। कृत्वा वीर्यावशेषा तु पृथ्वीं रूढेन कर्मणा।।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाऽऽकस्मिकेन तु ।।८७।।
स साधयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्। गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ।।८८।।
ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके। उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ।।८९।।
तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके। स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ।।९०।।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः। उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ।।९१।।
अराजके युगवशात्संशये समुपस्थिते। प्रजास्ताः वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ।।९२।।
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च। स्वान्प्राणान्समवेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदुःखिताः ।।९३।।
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा। निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ।।९४।।
नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः। हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ।।९५।।
अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः। प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान्स्वकान् ।।९६।।
सरितः सागरानूपान्तेवन्ते पर्वतांस्तदा। मधुमासैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदुःखिताः ।।९७।।
चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः। वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः ।।९८।।
एतां काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तथा। जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ।।९९।।

सभी जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों का विनाश करता है और इस प्रकार अपने प्रचण्ड कर्म द्वारा समस्त पृथ्वीमण्डल को पराक्रमशून्य कर निमित्तवश एवं आकस्मिक क्रोध से उन अधार्मिक शूद्रों को दण्ड दे गङ्गा और यमुना के मध्य भाग में अपने अनुगामियों समेत शरीर त्याग करता है ।।८५-८८।। तदुपरान्त उस सन्ध्यांश काल में सहस्रों शूद्रवंशीय राजाओं एवं सभी म्लेच्छों को ध्वस्त कर सैनिकों एवं मंत्रियों के समेत प्रमिति के स्वर्गस्थ हो जाने पर यत्र-तत्र स्थान-स्थान पर थोड़ी संख्या में प्रजाएँ शेष बच रहती हैं। किसी शासक के अभाव में बिना नियन्त्रण के उन सभी लोगों की चेष्टाएँ एक-दूसरे के मारने, लूटने-खसोटने की ओर हो जाती हैं। इस प्रकार उस युगान्त में अराजकता के समय जबकि जीवन का संशय उपस्थित हो जाता है, सभी लोग एक-दूसरे के भय से विह्वल एवं परिश्रान्त होकर घर-द्वार, स्त्री-बच्चों को छोड़कर अपने-अपने प्राणों का ध्यान करते हुए इधर-उधर भटकते हुए करुणा से रहित होकर अति दुःख का अनुभव करते हैं ।।८९-९३।। उस समय श्रौत-स्मार्त धर्मों के विनष्ट हो जाने पर मर्यादा, दया, लज्जा एवं स्नेहरहित सारे लोग एक-दूसरे से युद्ध करते हुए मृत्यु प्राप्त करते हैं। उस समय के लोग लघुकाय के तथा पचीस वर्ष की छोटी उम्रवाले होते हैं, वे अपने पुत्र-स्त्री प्रभृति परिवार के लोगों को छोड़कर विषाद से व्याकुलेन्द्रिय रहते हैं। घोर अनावृष्टि से पीड़ित होकर वे जीविका की आशा छोड़ देते हैं और अपने-अपने जनपदों को छोड़कर समीपस्थ देशों में निवास करते हैं। उस समय वे प्राणी नदियों, सागरों; जलप्राय स्थलों एवं पर्वतों पर अति दुःखित जीवन बिताते हुए मधु, मांस, मूल तथा फलों से जीविका निर्वाहित करते हैं ।।९४-९७।। चीर चर्म को धारणकर स्त्री-पुत्रादि से विरहित, निमर्याद वर्णाश्रम धर्म से च्युत घोर संकरवर्ण में उत्पन्न होनेवाले वे प्राणी जो कि बहुत थोड़ी संख्या में शेष रह जाते हैं, इस कष्ट की

विचारणं तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात् । साम्यावस्थासु संबोधः संबोधाद्धर्मशीलता ।।१००।।
तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् । अहोरात्रं तदा तासां युगं तु परिवर्तते ।।१०१।।
चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां तैः सप्तमं तु तत् । भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ।।१०२।।
प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिंस्ततः कृतयुगे तु वै । उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुग्यः प्रजास्तदा ।।१०३।।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुहृष्टा विचरन्ति च । सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ।।१०४।।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह । कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाऽभवन् ।।१०५।।
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च । वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ।।१०६।।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्तन्ते वै प्रजाः कृते । श्रौतः स्मार्तः कृतानां तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ।।१०७।।
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहाऽऽयुगक्षयात् । मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ।।१०८।।
यथा दावप्रदग्धेषु तृष्णेष्विह तपे ऋतौ । नवानां प्रथमं दृष्टास्तेषां मूले तु संभवः ।।१०९।।
*तथा कार्तयुगानां तु कलिङ्गेष्विह संभवः । एवं युगाद्युगस्येह संतानस्तु परस्परम् ।।
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ।।११०।।

अन्तिम सीमा को पहुँचकर जरा, व्याधि एवं क्षुधा की पीड़ा से अतिशय सन्तप्त होकर दुःख के कारण जीवन से विरक्त हो जाते हैं। इस प्रकार जीवन से विरक्त होने पर उन्हें विवेक उत्पन्न होता है, विवेक से सभी जीवों पर समानता का व्यवहार करते हैं। इस साम्यावस्था में उन्हें संबोध (वास्तविक ज्ञान) की प्राप्ति होती है और संबोध से उनकी प्रवृत्तियाँ धर्म की ओर उन्मुख होती हैं। और इस प्रकार कलियुग की उन अल्प धर्मशील प्रजाओं के शेष प्रजाओं के चित्त में संमोह उत्पन्न करके भवितव्यतावश सतयुग की प्रवृत्ति होती है, सतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर कलियुग की शेष अल्पसंख्यक उन प्रजाओं से ही सतयुग की प्रजाओं की उत्पत्ति होती है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों की उत्पत्ति के बीजस्वरूप जो स्मरण किये गये हैं, वे लोग तथा वे सिद्धगण जो अतिहर्ष के साथ सदा विचरण किया करते हैं, तथा वे सातों ऋषिगण—उन अवशेष कलियुगीन प्रजाओं के साथ निर्विशेष भाव से सम्मिलित होकर परस्पर व्यवहार करते हैं उनमें वे सप्तर्षिगण अन्य सभी लोगों को वर्णाश्रमाचारयुक्त इन दो प्रकार के श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का उपदेश करते हैं ।।१०२–१०७।। जिससे सतयुग की वे प्रथाएँ उनके उपदेशानुसार श्रौत–स्मार्त धर्मों का पालन करती हैं। इस प्रकार सतयुग में उत्पन्न होनेवाले लोगों का श्रौत–स्मार्त धर्म उन्हीं सप्तर्षियों द्वारा प्रदर्शित होता है। प्रत्येक मन्वन्तरों में सप्तर्षिगण युगक्षयपर्यन्त धर्म की व्यवस्था के लिए उन प्रजाओं में विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भस्म हुए तृण समूहों के मूल भाग से वर्षाऋतु में पुनः नवाङ्कुर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार उन अल्पशेष कलियुगी धार्मिक प्रजाओं से सतयुग की प्रजाओं की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मन्वन्तर के अवसानपर्यन्त एक युग के समाप्त हो जाने

---

* इदमर्धं नास्ति ङ. पुस्तके।

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च। युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ।।१११।।
ससंध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः। इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः ।।११२।।
चतुर्युगानां (णां) सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम्। एषां चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात्प्रवर्तते ।।११३।।
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता। अत्राऽऽर्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ।।११४।।
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्। एषां चतुर्युगानां (णां) तु गणना ह्येकसप्ततिः ।।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ।।११५।।
चतुर्युगे तथैकस्मिन्भवतीह यथाश्रुतम्। तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।।११६।।
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु। पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ।।११७।।
तथा कल्पयुगैः सार्धं भवन्ति समलक्षणाः। मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ।।११८।।
तथा युगानां परिवर्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ।।११९।।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः। अतीतानतीतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ।।१२०।।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता। मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।।१२१।।

पर दूसरे युग की प्रजाओं का उन्हीं आद्ययुगीन प्रजाओं से उत्पत्ति एवं विस्तार होता है ।।१०८–११०।। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम–ये सभी प्रत्येक युगों में अपने–अपने स्वभाव के अनुरूप एक–एक चरण न्यून होते जाते हैं। और युगों की धर्मसिद्धियाँ अपने संध्या एवं सन्ध्यांश में तो प्रायः विलुप्त हो जाती हैं। हे ऋषिगण! यह युगों की प्रतिसन्धि मैं आप लोगों को बतला चुका। इसी के द्वारा सभी युगों के स्वभावादि का तात्त्विक ज्ञान होता है। इन चारों युगों के एक सहस्र वार व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही वार व्यतीत होने पर एक रात्रि होती है ।।१११–११३$\frac{१}{२}$।। युगपर्यन्त उसमें सरलता एवं जड़ता सभी जीवों में विद्यमान पायी जाती है। यही सभी युगों का लक्षण कहा गया है। इन्हीं चारों युगों की आवृत्ति जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है तब मन्वन्तर कहा जाता है। एक चतुर्युग में जिस प्रकार की घटनाएँ जिस क्रम से घटित होती हैं, उसी प्रकार की घटनाएँ उसी क्रम से दूसरे चतुर्युग में घटित होती हैं। परन्तु एक सृष्टि की अपेक्षा दूसरी सृष्टि में जो भेद पाये जाते हैं, वे संख्या में पचीस होते हैं, न इससे न्यून, न अधिक और कल्प तथा युग ये भी समान लक्षणवाले होते हैं। इसी प्रकार सभी मन्वन्तरों का भी यही लक्षण जानना चाहिए ।।११४–११८।। इसी प्रकार स्वभाववश सभी युगों का परिवर्तन भी चिर प्रवृत्त सनातन जानना चाहिए, विनाश एवं उत्पत्ति–इन दो विशेष अवस्थाओं में परिवर्तित जीवसमूह सर्वदा एक अवस्था में अवस्थित नहीं रह सकता। बीते हुए एवं भविष्य में आनेवाले सभी मन्वन्तरों में युगों के लक्षणों का मैं संक्षेप में वर्णन कर चुका। बीते हुए मन्वन्तरों की घटनाओं द्वारा बुद्धिमान् मनुष्य भविष्य में आनेवाले सभी मन्वन्तरों की

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै । व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ।।१२२।।
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत । देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ।।१२३।।
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः । एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगे युगे ।।१२४।।
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः । वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगसिद्धये ।।१२५।।
अनुषङ्गः समाख्यातः सृष्टिसर्गं निबोधत । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ।।१२६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चतुर्युगाख्यानं नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः ।।५८।।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

ऋषिलक्षणम्

सूत उवाच

युगेषु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता वै निबोधत । आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ।।
यस्मिन्युगे च संभूतिस्तासां यावत्तु जीवितम् ।।१।।
पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । युगमात्रं तु जीवन्ति ऋते मृत्युं वधेन ते ।।२।।

घटनाओं का भी वर्णन हो चुका समझना चाहिए। इसी प्रकार एक कल्प के वर्णन से अन्य कल्पों की घटनाओं का भी अनुमान कर लेना चाहिए ।।११९-१२२।। इनके अभिमानी जो मन्वन्तरों के स्वामी आठ प्रकार के देव, ऋषि तथा मनु गण हैं, वे सभी नाम तथा रूप से समान प्रयोजन सिद्ध करनेवाले होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक युगों में वर्णाश्रमों का विभाग होता है। भगवान् विधाता सर्वदा युगों के स्वभाव के अनुसार तत्तद्युग की कार्यसिद्धि के लिए वर्णाश्रम के आचार-व्यवहार से युक्त सृष्टि का विधान सम्पादित करते हैं। युगों के पास्परिक सम्बन्ध आदि का वर्णन मैं कर चुका, अब सृष्टि का वृत्तान्त सुनिये। मैं विस्तारपूर्वक क्रमशः सभी युगों की स्थिति का विवरण बतला रहा हूँ ।।१२३-१२६।।

श्री वायुमहापुराण का चतुर्युगाख्यान नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त।।५८।।

अध्याय ५९

ऋषियों के लक्षण

सूत जी बोले—प्रत्येक युगों में जो प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, उनका विवरण सुनिये। असुर, सर्प, गौ, पक्षी, पिशाच, यक्ष-राक्षसादि प्रजावर्ग जिस युग में जन्म लेकर जितने दिनों तक जीवन धारण करते हैं, उसे बतला रहा हूँ। पिशाच, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प—इन सब प्राणधारियों का यदि कोई वध न करे तो ये पूरे युग भर जीवित रहते हैं ।।१-२।। मनुष्य,

मनुष्याणां पशूनां च पक्षिणां स्थावरैः सह। तेषामायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ।।३।।
अस्थितिस्तु कलौ दृष्टाः भूतानामायुषस्तु च। परमायुः शतं त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ।।४।।
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्ताङ्गुलं ह्रसत्। अङ्गुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ।।५।।
देवासुरप्रमाणं चतुच्छ्रायं कलिजैः स्मृतम्। चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरङ्गुलैः स्मृतम् ।।६।।
स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन ऊर्ध्वमापादमस्तकम्। इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ।।७।।
सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह। स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ।।८।।
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः। संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ।।९।।
गवाश्वहस्तिनां चैनं महिषस्थावरात्मनाम्। क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ।।१०।।
षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै। अङ्गुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः ।।११।।
अङ्गुलानां सहस्रं चत्वारिंशाङ्गुलं विना। पञ्चाशतं हयानां च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः ।।१२।।
मानुषस्य शरीरस्य संनिवेशस्तु यादृशः। तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ।।१३।।
बुद्ध्याऽतिशययुक्तं च देवानां कायमुच्यते। देवानतिशयं चैव मानुषं कायमुच्यते ।।१४।।

पशु, पक्षी और स्थावर जीव गण अपने युगधर्म के अनुसार सभी युगों में पूर्ण आयु तक जीवित रहते हैं ।।३।। केवल कलियुग में मनुष्यों की आयु में अस्थिरता (अनिश्चितता) देखी जाती है। इस कलियुग में मनुष्य की अधिक-से-अधिक आयु केवल सौ वर्ष की कही गयी है ।।४-५।। और असुरों की ऊँचाई प्रमाण से मानव की ऊँचाई सात-सात अंगुल न्यून होती है। कलियुग में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के एक सौ अट्ठावन अंगुल की ऊँचाई देवताओं और असुरों की होती है। कलियुग में उत्पन्न मनुष्य के चरण से लेकर मस्तक तक की ऊँचाई अपने चौरासी अंगुल की होती है। मनुष्यों की ऊँचाई का यह मान युगान्त में और भी न्यून हो जाता है। व्यतीत एवं भविष्यत्कालीन सभी युगों में मानव अपने अंगुलों से आठ ताल[1] ऊँचाई का बतलाया जाता है ।।६-८।। जो व्यक्ति चरण से लेकर मस्तक तक अपने अंगुल मान से नव ताल ऊँचा हो और जिसके बाहु घुटनेपर्यन्त लम्बे एवं सघन हों, वह देवताओं द्वारा भी पूजनीय होता है। गौ, अश्व, हस्ती, भैंस और स्थावर जीवगणों की प्रत्येक युगों में क्रमशः निम्नलिखित परिमाणगत ह्रासवृद्धि होती हैं। गौओं की ऊँचाई पाद से लेकर ककुद (डील) पर्यन्त छिहत्तर अंगुल की होती है। हाथियों की ऊँचाई पूरी एक सौ आठ अंगुल की कही गयी है ।।९-११।। अश्वों की ऊँचाई पचास अंगुल की तथा वृक्षों की ऊँचाई नव सौ साठ अंगुल की स्मरण की जाती है। मनुष्यों के शरीर का गठन एवं अवयव संस्थान जिस प्रकार का होता है उसी प्रकार का गठन देवताओं के शरीर का भी समाधि द्वारा देखा जाता है। इसके अतिरिक्त देवताओं का शरीर अतिशय बुद्धि एवं चेतना से संयुक्त बतलाया जाता है, मनुष्यों का शरीर देवताओं की अपेक्षा अल्पचेतनायुक्त एवं लघुशक्तिसम्पन्न कहा गया है। देवताओं और मनुष्यों के स्थूल भेदों का निरूपण मैं कर चुका, अब इसके उपरान्त पशु, पक्षी एवं स्थावरादि जीवों

---

[1] १. देशी भाषा में उसे बित्ता कहते हैं।

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः। पशूनां पक्षिणां चैव स्थावराणां निबोधत ।।१५।।
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः। उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ।।१६।।
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः। यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्तयः ।।१७।।
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः। मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ।।१८।।
अतः शिष्टान्प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च। सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।।
सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्षते ।।१९।।
दशात्मके ये विषये कारणं चाष्टलक्षणे। न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ।।२०।।
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च। ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातयः ।।२१।।
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः। श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ।।२२।।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः। क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ।।२३।।
साधनातपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः। यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ।।२४।।

के बारे में सुनिये ।।१२-१५।। इस संसार में उत्पन्न होनेवाले गौ, बकरे, भैंसे, अश्व, हस्ती, पक्षी एवं वृक्षादि जीवगण यज्ञादि क्रियाओं के साधनभूत हैं और इनका सामान्य नाम यज्ञिय (यज्ञादि कार्यों के उपकरण) है। देवताओं को अतिप्रिय लगनेवाले अतिकमनीय स्वरूपसम्पन्न ये जीव तद्रूप होकर उनके (देवताओं) निवास-स्थानों में पुनः उत्पन्न होते हैं और इनका पुनः देवताओं द्वारा उपभोग होता है। स्थावर एवं जंगम जीवों के उपर्युक्त प्रमाणों के अनुरूप तथा उन्हीं के स्वरूप के अनुसार मनोहारी स्वरूप धारणकर ये जीवगण सुख का तात्त्विक अनुभव करते हैं ।।१६-१८।। अब इसके उपरान्त मैं सन्तों, साधुओं एवं शिष्ट पुरुषों के बारे में बतला रहा हूँ। 'सत्' यह ब्रह्मवाची शब्द है, जो लोग ब्रह्मवान् (ब्रह्मनिष्ठ) होते हैं तथा ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य प्राप्त करते हैं, वे सन्त कहलाते हैं। जो लोग दस प्रकार के विषयों एवं आठ प्रकार के कारणों में फँसकर कभी क्रुद्ध और हर्षित नहीं होते वे जितात्मा कहे जाते हैं। यतः सामान्य और विशेष इन दोनों प्रकार के धर्मों से अनुमोदित आचरण करते हैं, अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग द्विजाति कहलाते हैं। वर्णाश्रमाचार योग युक्त स्वर्ग, तीर्थ एवं मंत्रात्मक श्रुति-स्मृति से अनुमोदित धर्म का ज्ञान वास्तविक धर्म का ज्ञान कहलाता है ।।१९-२२।। गुरु का हित करनेवाला ब्रह्मचर्य व्रत परायण विद्यार्थी विद्या की साधना में तन्मय रहने के कारण साधु कहा जाता है। सत्क्रियाओं के साधन में लीन रहने से गृहस्थाश्रम में रहनेवाला व्यक्ति साधु कहाता है। घोर जङ्गल में तपस्या की साधना में निरत रहनेवाला वैखानस साधु कहा जाता है। योगाभ्यास में परायण यति योग की साधना में लीन रहने के कारण साधु कहा जाता है। इसी प्रकार आश्रम धर्म के पालन करनेवाले अपने-अपने धर्मों के पथ पर अडिग रहने के कारण साधु कहे जाते हैं, वे चाहे गृहस्थ हों, चाहे ब्रह्मचर्य व्रत में विद्याभ्यास करनेवाले विद्यार्थी हों, चाहे वानप्रस्थाश्रम में दीक्षित होकर भिक्षाटन पर निर्भर हों। तो न देवता, न पितर, न मुनिगण और न मनुष्य-इनमें से कोई भी भिन्न मतों के कारण 'यह धर्म है, अधर्म है' ऐसा कहने में समर्थ नहीं हो सकते ।।२३-२४।।

एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः। गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।।२५।।
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः। अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते भिन्नदर्शनाः ।।२६।।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ। कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ।।२७।।
(+धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्तितः। अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ।।२८।।
अत्रेष्टमापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते)। वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः ।।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते ।।२९।।
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि। आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः संनियमैर्युतः ।।३०।।
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन्। ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुतिः ।।३१।।
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृताऽऽचारं पुनर्जगौ। तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ।।३२।।
स एष द्विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते। शेषशब्दाच्छिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ।।३३।।
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः। मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसंतानकारणात् ।।
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्षते ।।३४।।

इस जगत् में धर्म तथा अधर्म ये दो शब्द जो कहे गये हैं, वे क्रियात्मक अर्थात् वैसा आचरण करने पर निष्पन्न होते हैं। कुशलता एवं अकुशलता सम्पादित करनेवाले कर्म ही धर्म और अधर्म के नाम से विख्यात हैं अर्थात् जिसके आचरण करने से कुशल हो उसे धर्म तथा जिसके आचरण से अमंगल की प्राप्ति हो उसे अधर्म कहते हैं। धारणार्थक 'धृ' धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है। जो धारण करने योग्य नहीं है, जिसके आचरण से महत्त्व की प्राप्ति नहीं होती उसे अधर्म कहते हैं। इस प्रसङ्ग में आचार्य लोग उसे धर्म कहते हैं, जिसके आचरण से इष्ट की प्राप्ति हो। जो वृद्ध, लोभविहीन, आत्मनिष्ठ, दम्भरहित, विपुल विद्यावान्, विनम्र तथा सरल हों उन्हें आचार्य कहते हैं ।।२७–२९।। यतः वे आचार्यगण सभी नियमों एवं संयमों के साथ स्वयं उन आचरणीय धर्म कार्यों का अनुष्ठान करते हैं, तथा लोक को प्रवृत्त करने के लिए मर्यादा स्थापित करते है, शास्त्रों के अर्थों को संगृहीत करते हैं अतः उन्हें आचार्य कहते हैं। सप्तर्षिगण पूर्व कल्पों में उत्पन्न होनेवाले लोगों को ऋक्, यजु, साम आदि श्रुतियों एवं वेदाङ्गों का उपदेश कर श्रौत धर्म का ज्ञान लाभ कराते हैं ऐसा सुना जाता है। बीते हुए मन्वन्तरों में उत्पन्न होनेवाले लोगों के आचारों का स्मरण कर वे वर्तमान मन्वन्तर के लोगों को उपदेश करते हैं अतः वर्णाश्रम के विभागों से संयुक्त उस धर्म को स्मार्त धर्म कहते हैं ।।३०–३२।। इस प्रकार लोक में ये दो श्रौत एवं स्मार्त धर्म शिष्टाचार नाम से प्रसिद्ध हैं। शेष शब्द से शिष्ट शब्द की निष्पत्ति होती है और उन्हीं शिष्ट लोगों के आचारों को शिष्टाचार कहा जाता है। प्रत्येक मन्वन्तरों की समाप्ति के अवसर पर जिन धार्मिक प्रवृत्तिवाले मनु एवं सप्तर्षि प्रभृति महानुभावों की सत्ता लोक में सन्तानोत्पत्ति के बीजारोपण एवं धर्म की मर्यादा व्यवस्था स्थापना

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

मत्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः। तैः शिष्टैश्चरितो धर्मः सम्यगेव युगे युगे ।।३५।।
त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमस्तथा। शिष्टैराचर्यते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः ।।
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ।।३६।।
दानं सत्यं तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनौ दया। अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ।।३७।।
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै। मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ।।३८।।
विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त उच्यते। इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ।।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ।।३९।।
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति। यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ।।४०।।
ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च। इत्येतत्तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासदम् ।।४१।।
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा। ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते ।।४२।।
आत्मवत्सर्वभूतेषु या हितायाहिताय च। समा प्रवर्तते दृष्टिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ।।४३।।
आक्रुष्टोऽभिहतो वाऽपि नाऽऽक्रोशेद्यो न हन्ति वा। ताङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ।।४४।।
स्वामिनाऽरक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानां च सत्सु च। परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते।।४५।।

के लिए शेष रह जाती है, उन्हें ही वास्तव में शिष्ट कहा जाता है। मनु प्रभृति जिन शिष्ट महानुभावों का वर्णन मैं अभी-अभी थोड़ी देर पहले कर चुका हूँ, उन्हीं लोगों द्वारा प्रत्येक युगों में भली तरह आचरण किया गया धर्म श्रौत तथा स्मार्त के नाम से प्रसिद्ध है ।।३३-३५।। त्रयीवार्ता, दण्डनीति, यज्ञाराधन, वर्णाश्रम व्यवस्था-इन सबका यतः मनु और पूर्वकालीन शिष्ट ऋषिगण आचरण करते हैं और बहुत दिनों से उनकी परम्परा अक्षुण्ण चली आती है, अतः वही शाश्वत (सर्वदा वर्तमान रहनेवाला) शिष्टाचार है। दान, सत्य, तपस्या, लोभनिवृत्ति, विद्याध्ययन, यज्ञाराधन, सन्तानोत्पत्ति और दया-ये आठ शिष्टों के आचरण शिष्टाचार के लक्षण हैं। यतः सभी मन्वन्तरों में मनु, सप्तर्षि तथा शिष्ट लोग इन धर्मों का पालन करते हैं अतः इन्हें शिष्टाचार कहते हैं। इन धर्मों को श्रवण (सुनने) द्वारा ज्ञात होने के कारण श्रौत और स्मरण द्वारा ज्ञात होने के कारण स्मार्त जानना चाहिए। इनमें यज्ञाराधन वेदाध्ययन प्रभृति धर्म कार्यों को श्रौत और ब्राह्मणादि चारों वर्ण एवं गृहस्थाश्रम प्रभृति चारों आश्रमों के अनुकूल किये जानेवाले धर्म कार्यों को स्मार्त जानना चाहिए। अब मैं धर्म के प्रत्येक अंगों के लक्षण एवं उनकी व्याख्या कर रहा हूँ ।।३६-३९।। जो व्यक्ति घटित घटना को देखकर पूछे जाने पर कुछ भी नहीं छिपाता और वास्तविक बात को ज्यों-का-त्यों प्रकट कर देता है, उसके इस व्यवहार को सत्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य, जप, मौन और निराहार-ये अति कठिन तथा दुर्लभ तपस्या के मूल हैं। पशु, द्रव्य, हवनीय पदार्थ, ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्र, पुरोहित और दक्षिणा-इन सबके संयोग का नाम यज्ञ कहा जाता है। हित एवं अहित करनेवाले सभी प्रकार के जीवों में अपने समान दृष्टि रखना दया का लक्षण कहा गया है ।।४०-४३।। जो दूसरों द्वारा गाली-फटकार पाने पर अथवा मारपीट खा जाने पर भी अपकर्त्ता को गाली-फटकार नहीं देता अथवा उसे नहीं मारता तथा मनसा, वाचा, कर्मणा उन सब अपकारों को सहन कर लेता है, उसके इस व्यवहार का नाम क्षमा कहा

मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् । निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ।।४६।।
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै । न मिथ्या संप्रवर्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम् ।।४७।।
दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे । न क्रुध्येत्तु प्रतिहतः स जितात्मा विभाष्यते ।।४८।।
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतं च यत् । तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ।।४९।।
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् । तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ।।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ।।५०।।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः । शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसङ्गतः ।।५१।।
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् । प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ।।५२।।
संन्यासः कर्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह । कुशलाकुशलानां च प्रहाणं त्याग उच्यते ।।५३।।
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने । चेतनाऽचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते ।।५४।।
प्रत्यङ्गानां तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् । ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वे स्वायंभुवेऽन्तरे ।।५५।।
अत्र वो वर्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः । इतरेतरवर्णस्य चतुर्वर्णस्य चैव हि ।।
प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते ।।५६।।

गया है। स्वामी द्वारा न रखायी जानेवाली एवं छोड़ी गयी या पड़ी हुई परकीय वस्तु को ग्रहण न करना निर्लोभता के लक्षण कहे गये हैं। मैथुन (स्त्री-पुरुष संयोग) का व्यवहार न करना, मन से भी उसकी चिन्तना एवं कल्पना न करना तथा भोग-विलास विषयक अन्य वस्तुओं से सच्ची निवृत्ति प्राप्त कर लेना ब्रह्मचर्य कहा गया है। और उसका पूर्ण रूपेण पालन करना दम है ।।४४-४६।। अपने लिए अथवा पराये के लिए जिसकी इन्द्रियाँ मिथ्या विषयों में अभिनिविष्ट नहीं होतीं उसके इस व्यवहार का नाम शम है। जो व्यक्ति दसों प्रकार के ऐन्द्रियक विषयों एवं आठ प्रकार के लक्षणों में फँसकर या प्रतिहत होकर भी क्रोध नहीं प्रकट करता वह जितात्मा कहा जाता है। जो अपने को अति प्रिय लगनेवाली वस्तु हो तथा जिसकी प्राप्ति न्याय मार्ग से हुई हो, उसे गुणवानों को समर्पित करना दान का लक्षण है ।।४७-४९।। दान तीन प्रकार के होते हैं—कनिष्ठ, ज्येष्ठ और मध्यम। उनमें निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए किया गया दान ज्येष्ठ और स्वार्थसिद्धि के लिए किया गया दान कनिष्ठ कहलाता है। सभी जीवों तथा अपने बन्धु-बान्धवों में करुणावश दिया गया दान मध्यम कहलाता है। श्रुतियों एवं स्मृतियों से अनुमोदित, वर्णाश्रम सम्बन्धी शिष्टाचारानुमत, सत्पुरुषों एवं साधुओं द्वारा आचरित सत्कर्म का नाम धर्म है। अनिष्ट विषयों एवं पदार्थों से द्वेषाभाव, इष्ट में आनन्द का अभाव, प्रसन्नता, सन्ताप एवं विषादों से भली-भाँति छुटकारा प्राप्त कर लेना विरागियों का धर्म है। अपने द्वारा किये गये और न किये गये सभी प्रकार के कर्मों का एवं शुभाशुभ का सर्वथा परित्याग कर देना ही त्याग कहा जाता है ।।५०-५३।। अव्यक्त एवं अविशेष से अचेतन में जो चेतनात्मक विकार प्रादुर्भूत होते हैं, उनके चेतनत्व, अचेतनत्व एवं अनन्यत्व के सम्यक् ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान कहते हैं। धर्म के प्रत्येक अंगों का यही लक्षण पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर में वर्तमान धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले ऋषियों ने बतलाया है ।।५४-५५।। अब इसके उपरान्त आप लोगों को मैं मन्वन्तर की विधि बतला रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि उसमें चारों वर्णों के अपने-अपने तथा परस्पर एक-दूसरे के साथ

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम्। आभूतसंप्लवस्थायि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम् ।।५७।।
विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्संप्रवर्तते। द्रव्यं स्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।।
चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ।।५८।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये। प्रवर्तयति तेषां वै ब्रह्मा स्तोत्रं चतुर्विधम् ।।
एवं मन्त्रगुणानां च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ।।५९।।
अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक्पृथक्। ऋषीणां तप्यतामुग्रं तपः परमदुश्चरम् ।।६०।।
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह। परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ।।६१।।
ऋषीणां तपः कात्स्न्र्येन दर्शनेन यदृच्छया। ऋषीणां यदृषित्वं ह्रि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ।।६२।।
अतीतानागतानां तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते। अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य स समुद्भवम् ।।६३।।
गुणसाम्ये वर्तमाने सर्वसंप्रलये तदा। अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यथा ।।६४।।
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्तते। तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ।।६५।।
वर्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभौ। चेतनाधिष्ठिते तत्त्वं प्रवर्तति गुणात्मना ।।६६।।
कारणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्तते। विषये विषयित्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ।।६७।।
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः। संसिध्यन्ति तदा व्यक्ताः क्रमेण महदादयः ।।६८।।

कैसे व्यवहार होते रहे हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में समस्त श्रुतियों का विभिन्न ढंग से विधान होता है। शतरुद्रिय को छोड़कर ऋक्, यजु, साम, देवता, स्तोत्र, विधि, हवन—ये सभी पहले ही की तरह प्रवर्तित होते हैं। द्रव्यस्तोत्र, गुणस्तोत्र, कर्मस्तोत्र और आभिजनिक स्तोत्र—ये चार प्रकार के स्तोत्र कहे गये हैं ।।५६-५८।। प्रत्येक मन्वन्तरों में जिस प्रकार के देवगण विद्यमान रहते हैं, उन्हीं के अनुकूल भगवान् ब्रह्मा उपर्युक्त चार प्रकार के स्तोत्रों का प्रवर्तन करते हैं—इस प्रकार अथर्व, यजुष् और सामवेद में पृथक्-पृथक् विविध गुणसम्पन्न मंत्रों की चार प्रकार की उत्पत्ति होती है। पूर्व मन्वन्तरों में विद्यमान रहनेवाले अति घोर तपस्या में निरत ऋषियों के अन्तःकरण में ईश्वरेच्छावश तारकादि दर्शन से परितोष, भय, दुःख, सुख एवं शोक—इन पाँच कारणों से सभी मंत्रों की उत्पत्ति हुई है। अब इसके बाद मैं अतीत एवं भविष्यत्कालीन ऋषियों के ऋषित्व का लक्षण बतला रहा हूँ ।।५९-६२।। वे ऋषिगण पाँच प्रकार के कहे गये हैं। उन ऋषियों के आर्ष धर्म की उत्पत्ति के बारे में बतला रहा हूँ। सभी चराचर जगत् के विनाश हो जाने पर जबकि सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणों की साम्यावस्था हो जाती है, देवताओं के अस्तित्व का भी कोई पता नहीं रहता, उन दोनों का एक रूप अतिदेश हो जाता है, उस समय उस प्रधान तत्त्व में बिना बुद्धि व्यापार के किये ही (स्वतः) चेतना की स्फुरणा होती है। जिस प्रकार मत्स्य और उसका अधिष्ठान जल एक ही रूप में रहता हुआ भी परस्पर भिन्न-भिन्न है उसी प्रकार वे प्रधान एवं अप्रधान तत्त्व परस्पर एक रूप में वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार चेतनाधिष्ठित प्रधानतत्त्व में गुणों की विषमता प्राप्त होती है तब उसके कारण होने से कार्य की प्रवृत्ति होती है। विषय में विषयित्व और अर्थ में अर्थित्व की कारणता से काल के द्वारा क्रमशः महदादि को व्यक्त होने का अवसर प्राप्त होता है ।।६३-६८।। उस महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति

महतश्चाप्यहंकारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च । भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।।
संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्तते ।।६९।।
यथोल्मुकस्त्रुटन्नूर्ध्वमेककालं प्रवर्तते । तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मणा ।।७०।।
यथाऽन्धकारे खद्योतः सहसा संप्रदृश्यते । तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात्खद्योत इव चाल्बणः ।।७१।।
स महान्सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थितः । तत्रैव संस्थितो विद्वान्द्वारशालामुखे स्थितः ।।७२।।
महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते । तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ।।७३।।
बुद्धिर्विवर्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ।।७४।।
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै । महतः सशरीरस्य वैवर्त्यात्सिद्धिरुच्यते ।।७५।।
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा । पुरीशत्वाच्च पुरुषः क्षेत्रज्ञानात्समुच्यते ।।७६।।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्भगवान्मतिरुच्यते । यस्माद्बुद्ध्याऽनु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ।।
संसिद्धये परिगतं व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ।।७७।।
एवं निवृत्तिः क्षेत्रजा क्षेत्रज्ञेनाभिसंहिता । क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातो भोग्योऽयं विषयस्त्विवति ।।७८।।

होती है और अहङ्कार से पंच तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है। उस पंचतन्मात्रा से स्थूल पंचभूतों का आविर्भाव होता है। संसिद्धिकारण[1] शीघ्र ही कार्यरूप में विवर्तित[2] हो जाता है। जिस प्रकार जलता हुआ काष्ठ का लुआठा ऊपर से गिरते हुए एक ही समय में सभी दिशाओं में अपना प्रकाश विकीर्ण कर देता है उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ कालकर्म द्वारा विवर्तित होकर एक ही समय में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। निविड़ अन्धकार में खद्योत की चमक के समान अव्यक्त में महत्तत्त्व का विवर्तन अतिशीघ्र परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण ज्ञान का आधार वह महान् शरीर समेत जहाँ पर पूर्व में व्यवस्थित था, वहीं पर महागृह के द्वार देश में वह स्थित रहता है। वह महान् तमोराशि के पार व्यवस्थित रहकर उसकी अपेक्षा अपनी विलक्षण ज्योति के कारण इस रूप में प्रकट होता है। सर्वज्ञानाधार महान् की स्थिति वहीं अन्धकार के अवसान स्थल पर है–ऐसी श्रुति है ।।६९–७३।। महान् के विवर्तित होने पर ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म–ये चार प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हुई। उसकी यह बुद्धि स्वाभाविक तथा सर्वाधिक प्रभावशालिनी होती है। शरीरयुक्त महत्तत्त्व के विवर्त से ही सिद्धि प्राप्त होती कही जाती है जो अव्यक्त नाम से प्रसिद्ध उस पुरी में शयन करता है तथा उस पुरी का स्वामी है एवं जिसको उस क्षेत्र का सम्यक् ज्ञान है उसे पुरुष कहते हैं। क्षेत्र के सम्यक् ज्ञान होने के कारण ही उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। मनन करने के कारण वह भगवान् एवं अखण्ड बुद्धि के साथ संयुक्त रहने के कारण बोधात्मक कहा जाता है। वह अचेतन प्रकृति के स्वाभाविक गुण एवं परिमाणवश व्यक्ताव्यक्त सभी पदार्थों में संसिद्धि (लोक–सिद्धि) के लिए परिगत (व्याप्त) रहता है ।।७४–७७।। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित क्षेत्रज्ञ शक्ति इस प्रकार स्वयं निष्क्रिय रहकर क्षेत्रज्ञ द्वारा भोग्यविषय रूप में परिज्ञात होती है ।।७८।। ऋष् धातु गमन, मोक्ष–प्राप्ति, ज्ञान, श्रुति, सत्य एवं तपस्या–इन अर्थों

---

[1] स्वभाव से ही सिद्ध होनेवाला कारण।

[2] कारण द्वारा अन्य स्वरूप में उत्पन्न हुआ कार्य।

ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ । एतत्संनियतस्तस्मिन्ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ।।७९।।
निवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याऽऽव्यक्तमृषिः स्वयम् । परं हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः ।।८०।।
गत्यर्थादृषतेर्द्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः । यस्मादेष स्वयंभूतस्तस्माच्च ऋषिता स्मृता ।।
ईश्वराः स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः ।।८१।।
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान्परिगतः पुरः । (*यस्माऽदृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः ।।
तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः) ।।८२।।
ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसा औरसाश्च ते । अहंकारं तपश्चैव त्यक्त्वा च ऋषितां गताः ।।८३।।
तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः । ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसंभवाः ।।८४।।
तन्मात्राणि च सत्यं य ऋषन्ते ते महौजसः । सप्तर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ।।८५।।
ऋषीणां च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः । ऋषन्ति वै श्रुतं तस्माद्विशेषां चैव तत्त्वतः ।।
तस्माच्छुतर्षयस्तेपि श्रुतस्य परिदर्शनात् ।।८६।।
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहंकारात्मा तथैव च । भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते ।।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ।।८७।।

में प्रयुक्त होता है, जो इन अर्थों से समन्वित होकर परब्रह्म में निरत रहता है वह ऋषि कहा जाता है ।।७९।। जो ऋषि सांसारिक विषयों से निवृत्ति प्राप्त करते समय उस अव्यक्त परम तत्त्व में निवेश करता है वह परम (महा) ऋषि कहा गया है। गमन अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले ऋष् धातु से ऋषि शब्द की निष्पत्ति होती है, सृष्टि के आदि काल में यतः स्वयमेव समुत्पन्न हुए थे अतः इनको भी ऋषि कहते हैं। परम ऐश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा के मानस पुत्र ऋषिगण आदिकाल में स्वयमेव उत्पन्न हुए थे। जो किसी मान (परिमाण) द्वारा नापा नहीं जा सकता अर्थात् जिसके परिमाण की कोई सीमा नहीं है, वही महान् कहा जाता है। जो बुद्धि के पारदर्शी (परम बुद्धिमान्) तथा धैर्यशाली विद्वान्गण, सभी ओर से सभी गुणों में महान् का अवलम्बन करते हैं अथवा उस (महान्) के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं, वे महर्षि कहे जाते हैं ।।८०-८२।। उन परम ऐश्वर्यशाली महर्षियों के औरस तथा मानस पुत्रों ने भी अहङ्कार एवं अज्ञान का परित्यागकर ऋषित्व की प्राप्ति की ।।८३।। इस प्रकार सभी चराचर जीवों में तत्त्व के दर्शन करनेवाले ऋषि कहलाये और उन ऋषियों के मैथुन द्वारा गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पुत्रगण ऋषीक कहलाये। जो सत्य के परम पुजारी एवं महातेजस्वी ऋषिगण पंचतन्मात्राओं एवं सत्य पर निर्भर रहनेवाले हैं, वे सप्तर्षि कहलाते हैं। ऋषियों के पुत्रगण, जो कि ऋषीकों के नाम से विख्यात हैं, शास्त्रों के तत्त्व पर विशेष अधिकार रखते हैं, अतः श्रुत ज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) के सम्यक् विश्लेषण करने के कारण वे श्रुतर्षि नाम से विख्यात हैं ।।८४-८६।। अव्यक्तात्मा, महात्मा, अहङ्कारात्मा, भूतात्मा तथा इन्द्रियात्मा-ये ऋषिगण पाँच प्रकार के ज्ञान का अनुशीलन करते कहे जाते हैं। ऋषियों की यह जाति पाँच प्रकार की है, जिनको

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः । मनुर्दक्षो वशिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ।।
ब्रह्मणो मानसा ह्येत उद्भूताः स्वयमीश्वराः ।।८८।।
प्रवर्तत ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः । ईश्वराणां सुतस्त्वेत ऋषयस्तान्निबोधत ।।८९।।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा । उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चौशिजस्तथा ।।९०।।
कर्दमो विश्रवाः शक्तिर्बालखिल्यस्तथा धराः । इत्येत ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषितां गताः ।।९१।।
ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत । वत्सरो नग्रहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ।।९२।।
बृहदुत्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा । ऋषिदीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थ शरद्वतः ।।९३।।
वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरायणः । दधीचः शङ्खमांश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।।
इत्येत ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषितां गताः ।।९४।।
ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृता । एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ।।९५।।
भृगुः काव्यः प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि । और्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा ।।९६।।
अद्विषेणो ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः । वैन्यः पृथुर्दिवोदासः पश्वास्योगृत्समान्नभः ।।
एकोनविंशदित्येत ऋषयो मन्त्रवादिनः ।।९७।।
अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलिः । तथाऽमृतस्तथा गार्ग्यः शेनी संहतिरेव च ।।९८।।

नाम सहित बतला रहा हूँ, सुनिये। भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वशिष्ठ और पुलस्त्य–ये दस ऋषिगण अति ऐश्वर्यशाली एवं ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे गये, जो सृष्टि के आदिकाल में स्वयमेव आविर्भूत हुए थे। यह महान् स्वयमेव उन समस्त ऋषियों के रूप में परिणत होकर आविर्भूत होता है अतः उन्हें महर्षि कहते हैं, इन परमैश्वर्य सम्पन्न ऋषियों के पुत्र अन्य ऋषियों के बारे में बतला रहा हूँ, सुनिये ।।८७–८९।। काव्य, बृहस्पति, कश्यप, उशना, उतथ्य, वामदेव, अयोज्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, बालखिल्य, धरा ये समस्त ऋषिगण अपने ज्ञान बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए कहे जाते हैं। ऋषि के पुत्र ऋषीकों को गर्भ से उत्पन्न हुआ समझिये। वत्सर, नग्रहु, भारद्वाज, बृहदुत्थ, शरद्वान्, अगस्त्य, औशिज, दीर्घतमा, बृहदुक्थ, शरद्वत्, वाजश्रवा, सुवित्त, सुवाक्, वेष परायण? दधीचि, शङ्खमान्, राजा वैश्रवण–ये समस्त ऋषीकगण अपने सत्य के बल पर ऋषित्व को प्राप्त हुए कहे जाते हैं। इन समस्त ऋषिपुत्र ऋषीकों के अतिरिक्त अन्य जो ऐश्वर्यवान् ऋषिगण कहे गये हैं, वे भी मन्त्रों के निर्माण करनेवाले हैं, उन सबको मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।।९०–९५।। भृगु, काव्य, प्रचेता, दधीचि, आत्मवान्, और्व, जमदग्नि, विद, सारस्वत, अद्विषेण, अरूप, वीतहव्य, सुमेधस, वैन्य, पृथु, दिवोदास, पश्वास्य, गृत्समान् और नभ–ये उन्नीस मंत्रवादी ऋषि कहे गये हैं ।।९६–९७।। अंगिरा, वेधस, भारद्वाज, बाष्कलि, अमृत, गार्ग्य, शेनी, संहति, पुरुकुत्स, मान्धाता, अम्बरीष, युवनाश्व, पौरुकुत्स, त्रसदस्यु, सदस्युमान्, अहार्य, अजमीढ़, ऋषभ, बलि, पृषदश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, उतथ्य, भरद्वाज, वाजश्रवा, आयाप्य, सुवित्ति, वामदेव, औगज, बृहदुक्थ, दीर्घतपा और कक्षीवान्–ये तैंतीस अंगिर वंशीय श्रेष्ठ

पुरुकुत्सोऽथ मांधाता अम्बरीषस्तथैव च। युवनाश्वः पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः सदस्युमान् ।।९९।।
आहार्योऽथाजमीढश्च ऋषभो बलिरेव च। पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुद्गलः ।।१००।।
उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि। आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ।।१०१।।
औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिदीर्घतपस्तथा। कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृता अङ्गिरसो वराः ।।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ।।१०२।।
कस्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च। असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ।।१०३।।
अत्रिरर्चिसनश्चैव श्यामावांश्चाथ निष्ठुरः। वल्गूतको मुनिर्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः ।।
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ।।१०४।।
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः। चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ।।१०५।।
षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा। * एते सप्तर्षयो विप्रा ब्रह्मक्षेत्रनिवासिनः ।।१०६।।
ब्रह्मक्षेत्रं महातीर्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। +कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे पितामहनिषेविते ।।१०७।।
देवानां च ऋषीणां च मुनीनां तत्र सङ्गमः। ब्रह्मणा च कृतं प्रश्नं क्व दृष्टा वायुदेवता ।।१०८।।
ऋषिगणैस्तदा प्रोक्तं न दृष्टो (ष्टा) वायुदेवता। इति चिन्तयतां तेषामणुमात्रस्तु दृष्टवान् ।।१०९।।
दृष्टं पुरं च तत्राऽऽसीद्वायोर्नाम्ना पुरं परम्। (×अष्टादशसहस्त्राणि द्विजाः संस्थापितास्तदा ।।११०।।

ऋषि हैं, जो सब–के–सब मंत्रकर्त्ता हैं। अब कश्यपवंशीय ऋषियों को सुनिये ।।९८–१०२।। कश्यप, वत्सार, विभ्रम, रैभ्य, असित और देवल ये छह कश्यपवंशीय ब्रह्मवादी ऋषि हैं। अत्रि, अर्चिसन, श्यामावान्, निष्ठुर, बुद्धिमान् वल्गूतक तथा पूर्वातिथि–ये अत्रिवंशीय मंत्रकर्त्ता महर्षि कहे गये हैं। हे ऋषिगण! वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, इन्द्रप्रमति, भरद्वसु, मैत्रावरुण और कुण्डिन–ये सात ऋषि ब्रह्मक्षेत्र के निवासी कहे गये हैं। यह[१] “ब्रह्मक्षेत्र तीर्थलोक पितामह ब्रह्मा द्वारा सेवित परम पवित्र कुरुक्षेत्र में अवस्थित है, प्राचीनकाल में स्वयं ब्रह्मा जी ने इस महातीर्थ का निर्माण किया था ।।१०३–१०७।। उस परम पवित्र तीर्थ में एक बार देवताओं, ऋषियों तथा मुनियों का विराट् समागम था। उस अवसर पर ब्रह्मा जी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि वायु देवता कहाँ देखे जाते हैं? आप लोग बतलाइये। ऋषियों ने कहा, हम लोगों ने तो वायु देवता का दर्शन नहीं किया है। इस प्रकार की बातचीत चल रही थी कि इसी बीच एक अणु दिखलायी पड़ा। वह अणु एक पुर के रूप में परिणत दिखायी पड़ने लगा जिसका वायुपुर नाम पड़ा। उस समय उस

---

* एते सप्तर्षय इत्यारभ्य विधेया ब्राह्मणस्य त्वित्यन्तग्रन्थः क. ग. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

+ इदमर्धं नास्ति घः पुस्तके।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

१. यहाँ से अगले पृष्ठ पर “ ” चिह्न तक का पाठ कई मूल पुस्तकों में नहीं है।

शूद्रास्तद्द्विगुणास्तत्र स्थापिता मातरिश्वना। तानुवाच ततो देवो मातरिश्वा महाविभुः ।।१११।।
यूयं मद्भक्तिकर्तारो मन्नाम्ना ख्यातिमाप्नुथ। द्वयं दूतं नु प्रत्येकं द्विजान्भजत भो द्विजाः ।।११२।।
भवतां तु भविष्यन्ति गोत्राह्ये(ण्ये)कादशैव हि। विवाहकालोऽभिमतश्चत्वरस्नपनादरः ।।११३।।
तत्रोत्कोसासिहस्तास्तु रक्ष्याः सुबलिनो नराः। तत्र स्नानं न पश्यन्ति यथाऽन्ये स विधिः शुभः ।।११४।।
गोत्रजायाश्च नैवेद्यं तथाकार्यं पृथक्पृथक्। चतस्त्रः सुभगास्तत्र कुर्युः कुण्डनमादरात् ।।११५।।
एवमेष कुलाचारो भवतां कथितः कियान्। मज्जनेन च वापीयं भवज्वरविनाशिनी ।।११६।।
अस्यां नान्याधिकारोऽस्ति मज्जने मर्त्यपुङ्गवाः। षट्स्थानानि च मन्नाम्ना दृष्ट्वा पूतो भवेन्नरः।) ।।११७।।
तत्तीर्थं भुवि विख्यातं हनुमान्यत्र जीवितः। तत्र वै स्थापिता विप्रा वायुना ब्रह्मवादिना ।।११८।।
देवत्रयाणामादेशाद्धर्मसंरक्षणाय च। यत्र रुद्रः स्थिरश्चाऽऽसीद्दिक्षु सर्वासु मूर्तिमान् ।।११९।।
वाडादित्यश्च देवेशः स्थापितो वायुना तदा। कामदः सर्वदः सूर्यो प्रभुरीशः प्रतापवान् ।।१२०।।
सहस्त्रकरसंयुक्तः सर्वायुधविभूषितः। रत्नादेवीयुतः श्रीमांस्त्रयाधारस्त्रयीमयः ।।१२१।।

विस्तृत वायुपुर में अठारह सहस्र ब्राह्मणों का निवास-स्थान निर्मित हुआ था। परम प्रभावशाली वायु देवता ने ब्राह्मणों की संख्या से द्विगुणित संख्या में शूद्रों की स्थापना की और उन सबसे कहा कि तुम सब लोग मेरे भक्त हो और मेरे ही नाम से तुम सब ख्याति प्राप्त करोगे, अतः तुम प्रत्येक दो व्यक्ति ब्राह्मणों की अनुचर वृत्ति स्वीकार कर उनकी सेवा करते जाओ ।।१०८-११२।। आप लोगों का गोत्र ग्यारह शाखाओं में विभक्त होगा और विवाह के अवसर पर आप लोगों के यहाँ चबूतरे के ऊपर मंगल स्नान सम्पन्न होगा। उस स्नान के अवसर पर म्यान-रहित नंगी तलवारें हाथ में लेकर बलवान् मनुष्यों को बाहर रखवाली के कार्य पर नियुक्त करना चाहिए, जिससे इस मांगलिक विधि को अन्य लोग न देख सकें। उस अवसर पर अपने गोत्र में उत्पन्न स्त्रियों को अलग-अलग नैवेद्य से पूजित करे तथा चार अन्य सुन्दरियों द्वारा आदरपूर्वक कुण्डन (कुंडनिर्माण) कार्य सम्पन्न कराये ।।११३-११५।। आप लोगों के कुलाचार के सम्बन्ध में ये कुछ बातें मैंने आप लोगों को बतलायी हैं। यह बावली स्नान करने पर सांसारिक सन्तापों को शान्त करनेवाली है। हे नरपुङ्गव वृन्द! इस बावली में स्नान करने का अधिकार किसी अन्य को नहीं है। मेरे नाम से प्रसिद्ध छह स्थानों का दर्शन करके मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। वह पावन तीर्थ समस्त पृथ्वीमण्डल में विख्यात है, जहाँ पर हनुमान् ने जीवन ग्रहण किया था। ब्रह्मवादी वायु देवता ने उस स्थान पर धर्म की रक्षा के लिए तीन देवताओं के आदेश से उन ब्राह्मणों की स्थापना की थी ।।११६-११८।। उसी स्थान पर भगवान् रुद्र स्थायी रूप से सभी दिशाओं में मूर्तिमान रहते हुए अवस्थित रहते हैं। वायु ने उसी अवसर पर वहाँ देवताओं में ऐश्वर्यशाली वाडादित्य की प्रतिष्ठा की थी। वे परम प्रतापशाली भगवान् सूर्य सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, सर्वदायी, ऐश्वर्ययुक्त एवं परम प्रभु हैं। सभी प्रकार के शस्त्रात्रों से विभूषित, सहस्र किरणवाले, रत्नादेवी से संयुक्त वे श्रीमान् भगवान् सूर्य त्रयीमय (सत्त्व, रज, तमोगुणयुक्त) तथा समस्त त्रिलोकी के आधारभूत हैं। उसी परम पुनीत स्थल में ऐसे भगवान् सूर्य का एक कुण्ड है, उसी के समीप ब्रह्मकुण्ड

सूर्यकुण्डं च तत्राऽऽसीद्ब्रह्मकुण्डमतः परम् । रुद्रकुण्डं हरेः कुण्डमेतत्कुण्डचतुष्टयम् ।।१२२।।
(*नव दुर्गाः स्थितास्तत्र क्षेत्रसंरक्षणाय च । हरिद्वयं त्रिगुण्येशं तथा यज्ञचतुष्टयम्) ।।१२३।।
विवाहव्रतचूडासु करं तेषां प्रदीयते । आचारा विविधाः प्रोक्ता वाडवानां प्रयत्नतः ।।१२४।।
तावन्तो द्विगुणाः शूद्रा यावन्तो ब्राह्मणाः स्मृताः । कुशरूपा द्विजाः पूर्वं मूर्तिमन्तस्ततः स्थिताः ।।१२५।।
मन्त्रैर्मन्त्रविदां श्रेष्ठैः कृता वै शास्त्रकोविदैः । वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।।१२६।।
धर्मशालाऽपि बहुला वायुस्थाने महापुरे । रत्नावती स्वर्गमयी गङ्गा चामृतवाहिनी ।।१२७।।
कलौ दृषद्वती नाम महापातकनाशिनी । वायुना स्थापितं ह्येतच्छासनं पापनाशनम् ।।१२८।।
सुवन्दनं वनं तत्र रम्यं राजर्षिसेवितम् । एतत्स्थानं मया प्रोक्तं सर्वेषां च समासतः ।।१२९।।
निरू(रु)पमाश्च ते विप्रा वायुना स्थापिताश्च ये । उपमा चैव देवेशि विधेया ब्राह्मणस्य तु) ।।१३०।।
(+सुद्युम्नाश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पतिः । दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ।।१३१।।
एते चैव हि कर्तारो विधर्मध्वंसकारिणः) । लक्षणं ब्रह्मणश्चैतद्विहितं सर्वशाश्विनाम् ।।१३२।।

तथा विष्णुकुण्ड, रुद्रकुण्ड भी हैं, इस प्रकार ये चार कुण्ड वहाँ विराजमान हैं ।।११९-१२२।। उस पावन क्षेत्र की रक्षा के लिए वहाँ नव दुर्गा स्थित हैं, उनमें से विष्णु की दो, रुद्र की तीन और ब्रह्मा की चार हैं। विवाह कार्य, व्रत एवं चूडा संस्कार में उनको कर दिया जाता है। वहाँ के निवासी उन वाडवों के लिए प्रयत्नसाध्य अनेक आचार कहे गये हैं। शूद्रगण उन ब्राह्मणों के द्विगुणित क्या उतने भी नहीं रह गये जितनी संख्या ब्राह्मणों की थी। पहले ब्राह्मण लोग कुश रूप में थे, उसके अनन्तर वे शरीर धारणकर रहने लगे ।।१२३-१२५।। शास्त्रों के पारगामी एवं मंत्रकर्त्ताओं में श्रेष्ठ उन ब्राह्मणों ने अपने अमोघ मंत्रों द्वारा वहाँ अनेक बावली, कूप, तडाग, देवमन्दिर आदि का निर्माण किया। वायु के उस महान् पुर में धर्मशालाओं की भरमार थी, उसमें सुवर्ण एवं रत्नों से पूर्ण अमृत जलवाहिनी गंगा की धारा बहा करती थी। उस पुनीत गंगा का नाम कलियुग में दृषद्वती हुआ, जो घोर पाप-समूहों का नाश करनेवाली है। पापों को विनष्ट करनेवाले उस परम पुनीत क्षेत्र की स्थापना इस प्रकार वायु देवता ने की थी। उसी क्षेत्र में राजर्षियों द्वारा सेवित अति रमणीक सुवन्दन नामक वन है। इस प्रकार उस स्थान के विविध तीर्थों का परिचय मैंने संक्षेप में कह दिया ।।१२६-१२९।। वायु द्वारा स्थापित उन ब्राह्मणों की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती। हे देवेशि! केवल उन्हीं ब्राह्मणों से ही उनकी उपमा दी जा सकती है, अर्थात् उनके समान वे स्वयं हैं,[१] अन्य कोई नहीं।" उन मंत्रकर्त्ता ऋषियों में सुद्युम्न आठवें, बृहस्पति नवें तथा भरद्वाज दसवें ऋषि हैं, जो सब-के-सब मंत्र एवं ब्राह्मण भाग की रचना करनेवाले तथा दूसरे विधर्म के विध्वंस करनेवाले हैं। सब शास्त्रों के मर्मज्ञ मनीषियों ने ब्राह्मण के यही लक्षण कहे हैं ।।१३०-१३२।। हि धातु से हेतु शब्द

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

[१] कई मूल पुस्तकों में " " चिह्नों से अंङ्कित तक का पाठ नहीं है, जो समुचित प्रतीत होता है। क्योंकि ऋषियों की सातवीं संख्या के बीच में इस कथा का कोई सम्बन्ध ठीक-सा नहीं जँचता। पर अधिकांश पुस्तकों के पाठ के अनुरोध पर मैंने इस असम्बद्ध अंश का भी अनुवाद कर दिया है।-अनुवादक।

हेतुर्हितेः स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितं परैः । अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मणः ।।१३३।।
तथा निर्वचनं ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् । निन्दां तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वचः ।।१३४।।
प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातोः प्रशंसा गुणवत्तया । इदं त्विदमिदं नेदमित्यनिश्चित्य संशयः ।।१३५।।
इदमेव विधातव्यमिमित्ययं विधिरुच्यते । अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद्बुधाः परकृतिः स्मृता ।।१३६।।
यो ह्यत्यन्तपुरोक्तश्च पुराकल्पः स उच्यते । पुरा विक्रान्तवाचित्वात्पुराकल्पस्य कल्पना ।।१३७।।
मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः । अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ।।१३८।।
यथा हीदं तथा तद्वै इदं वाऽपि तथैव तत् । इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ।।१३९।।
इत्येतद्ब्राह्मणस्याऽदौ विहितं लक्षणं बुधैः । तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याऽप्यनुपदं द्विजैः ।।१४०।।
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु । मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ।।१४१।।
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।१४२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ऋषिलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

की निष्पत्ति कही जाती है, जिसका अर्थ है, दूसरे के व्यक्त किये गये मत का प्रतिवाद या खण्डन करना अथवा एक दूसरे हि धातु से, जिसका अर्थ गमन करना है, हेतु शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसके द्वारा दूसरे के व्यक्त किये गये मत में दोषारोपण करके अपने मत का निश्चय किया जाय, वह हेतु है। आचार्य लोग केवल दोष प्रदर्शनपूर्वक दूसरे के वाक्य की भर्त्सना या स्पष्ट शब्दों में निन्दा करने को निन्दा कहते हैं। प्र उपसर्गपूर्वक शंस् धातु से प्रशंसा शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है गुणवत्ता प्रकट करना। यह वस्तु यह है, यह वस्तु यह नहीं है, इस प्रकार का अनिश्चय करना संशय कहा जाता है। यही करना चाहिए–इस प्रकार के निश्चयात्मक वाक्य को विधि कहते हैं। किसी दूसरे द्वारा उक्त होने के कारण उसको (उस विधि को) विद्वानों ने परकृति कहा है ।।१३३–१३६।। जो अत्यन्त प्राचीनकाल व्यतीत हो चुका है, उसे पुराकल्प कहते हैं, पुरा शब्द के प्राचीन अर्थ के द्योतक होने के कारण पुराकल्प शब्द की निष्पत्ति हुई। उस पुराकल्प में घटित होनेवाली घटनाएँ शुद्ध, सुविस्तृत मंत्र ब्राह्मणकल्प निगम आदि द्वारा निश्चित नहीं होतीं, केवल अनिश्चय भाव से ही उनके निश्चय की कल्पना की जाती है। जिस प्रकार इस (वर्तमान) कल्प में घटित हो रहा है, उसी प्रकार वह प्राचीन कल्प भी है, और जैसा कल्प था वैसा ही यह भी है–यह ब्राह्मण का दसवाँ उपदेश है ।।१३७–१३९।। प्राचीनकाल में बुद्धिमानों ने ब्राह्मण का यही लक्षण बतलाया है और पीछे से ब्राह्मणों ने उसकी व्याख्या भी वृत्ति रूप में कल्पित की। इसके अतिरिक्त उन्हीं ब्राह्मणों ने विधिपूर्वक सम्पन्न होनेवाले कर्मों में मंत्रों की कल्पना की। मंत्र धातु से मंत्र शब्द की निष्पत्ति होती है, ब्रह्मा के आदेशों को पालन करने के कारण ब्राह्मण नाम पड़ा। थोड़े से अक्षरों में सन्देहरहित व्यर्थ के आडम्बरों एवं दोषों से शून्य विस्तृत सार अर्थ को प्रकट करनेवाले वाक्य को सूत्रवेत्ता लोग सूत्र कहते हैं ।।१४०–१४२।।

इति श्री वायुमहापुराण में ऋषि लक्षण नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त।।५९।।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

महास्थानतीर्थवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम्। कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ।।१।।

सूत उवाच

द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे। ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ।।२।।
परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः। संवृत्ता युगदोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम् ।।३।।
भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते। दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम् ।।४।।
वीर्यं तेजो बलं वाक्यं सर्वं चैव प्रणश्यति। वेदवेदा हि कार्याः स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ।।५।।
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति। यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ।।६।।
आद्यो वेदचतुष्पादः शतसाहस्रसंज्ञितः। पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ।।७।।

अध्याय ६०

ऋषियों ने कहा[१]–इस प्रकार की बातें सुनने के उपरान्त ऋषियों ने परमज्ञानी सूत जी से पूछा कि हे महामते! प्राचीनकाल में वेदों के विभाग किस प्रकार हुए–वह वृत्तान्त हम लोगों को बतलाइये ।।१।।

सूत ने कहा–परम बुद्धिमान् ऋषिवृन्द! स्वायंभुव मन्वन्तर में द्वापर युग में इसी वृत्तांत को ब्रह्मा ने मनु से कहा था, उसे ही बतला रहे हैं। (ब्रह्मा ने मनु से कहा–) हे तात! युग–परिवर्तन होने पर ब्राह्मणों का पराक्रम एवं तेज अल्प हो जाता है, क्योंकि युग–दोष के कारण सभी ब्राह्मणादि वर्ण क्रमशः पराक्रमी तथा अल्प तेजस्वी हो जाते हैं और इस प्रकार एक युग की अपेक्षा दूसरे युग में और दूसरे युग की अपेक्षा तीसरे युग में क्रमशः अल्प होते–होते उनके वे पराक्रमादि अन्तिम युग में तो बहुत ही अल्प परिमाण में शेष रह जाते हैं ।।२–४।। इस प्रकार सतयुग की अपेक्षा लोगों के पराक्रम, तेज, बल और वाक्य–ये सभी दस सहस्रवें भाग में शेष रहते हैं, और अन्त में तो एकदम से विनष्ट हो जाते हैं। अतः वेदों का विनाश जिस प्रकार न हो उसके लिए एक वेद का अनेक भागों में विभाग होना चाहिए। क्योंकि वेदों के विनष्ट हो जाने पर यज्ञ–विनाश हो जायगा और यज्ञों के विनष्ट होने पर देवताओं का विनाश हो जायगा–जिससे सभी का विनाश हो जायगा ।।५–६।। पहले यह वेद चार पादों तथा एक लाख सूक्तों में पूर्ण कहा जाता था, उसके बाद सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले यज्ञों के लिए उन सब की दस गुनी वृद्धि हुई ।।७।। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर लोकहित में निरत

---

[१] यह अयुक्त है।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः । वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ।।८।।
ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया । तदिदं वर्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ।।९।।
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् । प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ।।१०।।
अस्मिन्युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परंतपः । द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ।।११।।
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन्वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे । अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ।।१२।।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च । पैलं तेषां चतुर्थ तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ।।१३।।
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह विधिवद्द्विजम् । यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ।।१४।।
जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत । तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ।।१५।।
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि । मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ।।१६।।
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पत् । चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ।।१७।।
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च । उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ।।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ।।१८।।
ततः स ऋतमुद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्पयत् । होतृकं कल्प्यते तेन यज्ञवाहं जगद्धितम् ।।१९।।

भगवान् मनु ने 'वैसा ही होगा' कहकर उस चार पादवाले एक वेद को चार भागों में विभक्त किया ।।८।। इस प्रकार आप लोगों के सामने जो वेद-समूह विद्यमान हैं, उसे ब्रह्मा के कथनानुसार लोक-कल्याण की भावना से मनु जी ने चार भागों में विभक्त किया। इसी मन्वन्तर द्वारा जिसे बतला रहा हूँ, अन्यान्य मन्वन्तरों के बारे में भी वेद विभाग एवं उनके कर्त्ताओं को जानना चाहिए। इस युग में परमतपस्वी पराशर के पुत्र द्वैपायन व्यास जी ने, जो भगवान् विष्णु के अंश कहे गये हैं, ब्रह्मा के अनुरोध पर इस वेद का विभाग किया। व्यास ने वेद का प्रचार करने के लिए अपने प्रमुख चार शिष्य बनाये, जिनके नाम हैं, जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल। इन शिष्यों के अतिरिक्त लोमहर्षण नामक एक पाँचवाँ शिष्य भी था ।।९-१३।। परम तेजस्वी भगवान् वेद व्यास ने द्विजवर्य पैल को ऋग्वेद का व्याख्याता, वैशम्पायन को यजुर्वेद का, जैमिनि को सामवेद का तथा ऋषिवर्य्य सुमन्तु को अथर्ववेद का अंगीकार किया। इतिहास और पुराण की व्याख्या के लिए उन्होंने मुझे नियुक्त किया। पहले यजुर्वेद एक ही था, उसे पीछ चलकर चार भागों में विभक्त किया गया, इस प्रकार उसमें चतुर्होत्र की कल्पना हुई, जिससे यज्ञों का प्रचलन किया ।।१४-१७।। यजुर्वेद के मन्त्रों से आध्वर्यव, ऋग्वेद के मन्त्रों से हवन, सामवेद के मंत्रों से उद्गात्र और अथर्ववेद के मन्त्रों से ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार यज्ञों में जितने ब्रह्मकार्य हैं वे अथर्ववेद द्वारा प्रतिष्ठित हैं। तदनन्तर उन्होंने ऋचाओं का उद्धार करके ऋग्वेद का सम्पादन किया। जिसके द्वारा जगत् के कल्याण करनेवाले, हवनीय पदार्थों के वाहक होताओं की कल्पना हुई। साम के स्फुट मन्त्रों के संग्रह से सामवेद का संग्रह एवं सम्पादन किया, जो उद्गात्रों (सामवेद के गान

सामभिः सामवेदं च तेनोद्गात्रमरोचयत् । राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ।।२०।।
आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कुलकर्मभिः । पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।२१।।
यच्छिष्टं तु यजुर्वेद तेन यज्ञमथायुजत् । युञ्जानः स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः ।।२२।।
पदानामुद्धतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै । स तेनोद्धतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते तु सः ।।२३।।
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः । द्विः कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददात्प्रभुः ।।२४।।
इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च । चतस्त्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान्हितान् ।।२५।।
बोध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् । पराशरं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यमथापराम् ।।२६।।
इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितां द्विजसत्तमः । अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ।।२७।।
सत्यश्रवसमग्रयं तु पुत्रं स तु महायशाः । सत्याश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विजः ।।२८।।
सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयद्विभुः । सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ।।२९।।
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः । सत्यश्रियस्तु विद्वांसः शास्त्रग्रहणतत्पराः ।।३०।।

करनेवाले वटु समूह) को विशेष रुचिकर हुआ, अथर्ववेद द्वारा राजाओं के परमावश्यक समस्त कर्मकाण्डों का विधान कराया। इसी प्रकार पुराणों के तात्पर्य को भलीभाँति समझनेवाले द्वैपायन ने आख्यान, उपाख्यान, गाथाओं एवं कुलाचार की परम्परा द्वारा पुराणों की विस्तृत कथाओं की रचना की ।।१८-२१।। यजुर्वेद में जो भाग शेष रहा उससे यज्ञों का विधान किया। जिसके द्वारा यज्ञों की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, वही यजुर्वेद है, शास्त्रों का यही निचोड़ है। वेदों के पारगामी अन्यान्य विद्वान् ऋषियों के संसर्ग से स्फुट यजुर्वेद के मन्त्र एवं पद समूहों को एकत्र संगृहीत किया और उनका विधिवत् संकलन किया। उन्हीं यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रचलन हुआ। परम तेजस्वी पैल ऋषि ने ऋक् समूहों को एकत्र संगृहीत कर दो भागों में विभक्त किया, और उनमें से एक-एक भाग को दो शिष्यों को सौंपा, एक इन्द्रप्रमति को दूसरा बाष्कल को। द्विजश्रेष्ठ बाष्कलि ने सेवा में निरन्तर निरत रहनेवाले, कल्याण भाजन अपने चार शिष्यों की, उसका चार संहिताओं में विभाग करके पढ़ाया ।।२२-२५।। जिनमें से पहली शाखा की बोध्य को, दूसरी शाखा की अग्निमाठर को, तीसरी शाखा की पाराशर को और चौथी शाखा की याज्ञवल्क्य को शिक्षा दी। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इन्द्रप्रमति ने एक संहिता का सम्पादन कर परम यशस्वी और भाग्यशाली मार्कण्डेय मुनि को उसकी शिक्षा दी। महान् यशस्वी मार्कण्डेय मुनि ने उसे सत्यश्रवा नामक अपने ज्येष्ठ पुत्र को और सत्यश्रवा ने सत्यहित नामक शिष्य को उसकी शिक्षा दी ।।२६-२८।। परम ऐश्वर्यशाली सत्यहित ने अपने पुत्र सत्यतर (सत्यरत) को और सत्यतर ने सत्यपरायण धर्मश्रेष्ठ महात्मा सत्यश्री को उसकी शिक्षा दी। विद्वान् सत्यश्री के शास्त्राभ्यास में तत्पर रहनेवाले परम तेजस्वी तीन शिष्य हुए

शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथान्तरः। बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ।।३१।।
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहंकारगर्वितः। जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्द्विजः ।।३२।।

शांशपायन उवाच

कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः। जनकस्याश्वमेधेन कथं वादो बभूव ह ।।३३।।
किमर्थं चाभवद्वादः केन सार्धमथापि वा। सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितं तव ।।
ऋषीणां तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ।।३४।।

सूत उवाच

जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः। ऋषीणां तु सहस्त्राणि तत्राऽऽजग्मुरनेकशः ।।
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः ।।३५।।
आगतान्ब्राह्मणान्दृष्ट्वा जिज्ञासाऽस्याभवत्ततः। को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत् ।।
इति निश्चित्य मनसा बुद्धिं चक्रे जनाधिपः ।।३६।।
गवां सहस्त्रमादाय सुवर्णमधिकं ततः। ग्रामान्रत्नानि दासांश्च मुनीन्प्राह नराधिपः ।।
सर्वानहं प्रसन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ।।३७।।

जिनमें से प्रथम का नाम शाकल्य, दूसरे का नाम रथान्तर और तीसरे का नाम बाष्कल का पुत्र भरद्वाज था। ये ही ऋषिगण वेद की शाखाओं के प्रवर्तक कहे गये हैं। अपने ज्ञान के अहंकार से गर्वित होकर शाकल्य देवमित्र नामक द्विज राजा जनक के यज्ञ में विनाश को प्राप्त हुए ।।२९-३२।।

शांशपायन ने कहा-सूत जी! ज्ञान के गर्व से गर्वित वे मुनि किस प्रकार विनाश को प्राप्त हुए, राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ में क्योंकर वाद-विवाद उठा था ? किस लिए वह बेकार का वाद-विवाद बढ़ा था और किसके साथ हुआ था? ये सभी बातें आपको विस्तारपूर्वक ज्ञात हैं, हमें बतलाइये। सूत ने ऋषियों की बातें सुनने के बाद कहा ।।३३-३४।।

सूत ने कहा-ऋषिवृन्द! राजर्षि जनक के उस अश्वमेध यज्ञ में महान् जनसमागम एकत्र हुआ था, विविध देशों एवं स्थानों से यज्ञ के दर्शनार्थी ऋषिगण सहस्त्रों की संख्या में आ-आकर उसमें सम्मिलित हुए थे। समागत विशाल ब्राह्मण समुदाय को देखकर राजा जनक के मन में यह स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इन तमाम ब्राह्मणों में कौन सर्वश्रेष्ठ है-इसका निश्चय मुझको किस प्रकार होगा? राजा ने ऐसा मन में विचारकर एक युक्ति का सहारा लिया। एक सहस्त्र गौएँ, एक सहस्त्र से अधिक सुवर्ण, अनेक ग्राम, बहुमूल्य रत्न और दास-दासियों के समूह को साथ लेकर मुनियों से राजा ने कहा-परमभाग्यशाली ऋषिवृन्द! आप सब लोगों को मैं सिर झुकाकर नमस्कार कर रहा हूँ ।।३५-३७।। आप लोगों में से जो मुनि सर्वश्रेष्ठ हों, वे मेरे इस लाये हुए द्रव्यादि समूह को ग्रहण करें, क्योंकि श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग एकमात्र

यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत् । तस्मै तदुपनीतं हि विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः ।।३८।।
जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः । दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिघृक्षवः ।।
आह्वयांचक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्वणाः ।।३९।।
मनसा गतचित्तास्ते ममेदं धनमित्युत । ममैवैतन्नवेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते ।।
इत्येव धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ।।४०।।
तथाऽन्यस्तत्र वै विद्वान्ब्रह्मवाहसुतः कविः । याज्ञवल्क्यो महातेजास्तपस्वी ब्रह्मवित्तमः ।।४१।।
ब्रह्मणोऽङ्गात्समुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम् । शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्गृहाण भोः ।।४२।।
नयस्व च गृहंवत्स ममैतन्नात्र संशयः । सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चित्तु मत्समः ।।
यो वा न प्रीयते विप्रः स मे ह्वयतु मा चिरम् ।।४३।।
ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव संप्लवे । तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ।।४४।।
क्रोधं मा कार्षुर्विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः । वदामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्तः परस्परम् ।।४५।।
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा जग्मुरनेकशः । सहस्रधा शुभैरर्थैः सूक्ष्मदर्शनसंभवैः ।।४६।।

विद्या के धनी होते हैं, अर्थात् उनकी श्रेष्ठता का परिचय विद्या से होता है। राजर्षि जनक की ये बातें सुनकर वेद विशारद उन मुनियों ने उस बहुमूल्य धनराशि को अपनाने की अभिलाषा से अपने-अपने वेद ज्ञान के मद से उन्मत्त होकर एक-दूसरे को वाद-विवाद के लिए ललकारा। उस समय अनेक के मन में यह भाव उठ रहे थे कि यह सब धन हमारा है, कोई-कोई यह सोच रहे थे कि सब कुछ मेरे ही लिये है। कोई अपने दूसरे साथी से पूछ रहा था कि बोलो यह हमारे ही लिये है न, अथवा किसी दूसरे के लिए। बोलो, क्या विकल्प कर रहे हो। इस प्रकार उन ऋषियों में उस धनराशि के लोभ के कारण अनेक तरह के वाद-विवाद उठ खड़े हुए ।।३८-४०।। ठीक इसी अवसर पर वहाँ ब्रह्मवाहसुत, कवि, परमतेजस्वी, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, महान् तपस्वी याज्ञवल्क्य नामक एक दूसरे ऋषि जो ब्रह्मा के अंग से समुत्पन्न हुए थे, अपने शिष्यों से उच्च स्वर में बोले-अरे जी ! जाकर इन धनराशि को उठा लो ।।४१-४२।। वत्स ! जाओ सबको उठाकर घर ले चलो, अरे, यह सब हमारे ही हैं, इसमें सन्देह मत करो। सभी वेदों में मैं ही एकमात्र अधिकारी प्रवक्ता हूँ, मेरे समान वेदों पर अधिकार रखनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जिस किसी ब्राह्मण को मेरी यह बात अच्छी न लगती हो वह सामने आ जाय, विलम्ब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। याज्ञवल्क्य की बातें सुनकर ब्राह्मण समुदाय प्रलयकालीन समुद्र की भाँति क्षुब्ध हो गया; पर स्वस्थ मनोवृत्ति सम्पन्न मुनिवर याज्ञवल्क्य हँसते हुए-से बोलते रहे। वे फिर बोले-विद्वद्वृन्द ! आप लोग हमारे ऊपर क्रुद्ध न हों, आप सभी सत्यवादी हैं। मैं सच कह रहा हूँ, आप लोग परस्पर विचारकर इसका निश्चय करें ।।४३-४५।। तदनन्तर वहाँ पर उनमें परस्पर अनेक वाद-विवाद करने लगे, धन लोभ से युक्त उन महात्मा ऋषियों में लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर सूक्ष्म दर्शन (अनुभूति) जनित सहस्रों कल्याणकारी अर्थों के नवीन-नवीन आविष्कार से युक्त विवाद होने लगे, उस समय कोई किसी की बुद्धि की निन्दा कर रहे थे तो कोई किसी की

लोके वेदे तथाऽध्यात्मे विद्यास्थानैरलंकृताः । शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौधपरिवर्जनाः ।।
वादा समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ।।४७।।
ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः । सर्वे तु मुनयस्तेन याज्ञवल्क्येन धीमता ।।
एकैकशस्ततः पृष्टा नैवोत्तरमथाब्रुवन् ।।४८।।
तान्विजित्य मुनीन्सर्वान्ब्रह्मराशिर्महाद्युतिः । शाकल्यमिति होवाच वादकर्तारमञ्जसा ।।४९।।
शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे । पूर्णस्त्वं जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ।।५०।।
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः । प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं परुषं मुनिसंनिधौ ।।५१।।
त्वमस्मांस्तृणवत्कृत्वा तथैवेमान्द्विजोत्तमान् । विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि ।५२।।
शाकल्येनैवमुक्तः स याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् । ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम् ।।५३।।
कामश्चार्थेन संबद्धस्तेनार्थं कामयामहे । कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नान्वदामहे ।।५४।।
पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मान्नीतं धनं मया । एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः ।।
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थवद्वचः ।।५५।।
ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान्कामप्रश्नान्यथार्थतः । ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ।।५६।।

युक्ति की उत्तम गुणों से प्रशंसा कर रहे थे। वे विस्तृत वाद-विवाद राजाओं के समूह को नष्ट करनेवाले थे। उस महान् वाद-विवाद में एक ओर सब-के-सब ऋषि सम्मिलित हुए थे और दूसरी ओर अकेले याज्ञवल्क्य थे। उन सभी ऋषियों से एक-एक करके याज्ञवल्क्य ने प्रश्न किये किन्तु किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया ।।४६-४८।। तदुपरान्त ब्रह्मराशि, परम शोभासम्पन्न याज्ञवल्क्य ने उन सभी ऋषियों को पराजित कर विवाद करने में प्रमुख भाग लेनेवाले शाकल्य नामक ऋषि से शीघ्रतापूर्वक कहा-शाकल्य! क्या विचार कर रहे हो, अपनी जड़ता के कारण तुम वायु से भरी हुई भाथी की तरह अभिमान से फूले हुए हो, बोलो, चुप क्यों बैठे हो। याज्ञवल्क्य द्वारा इस प्रकार अपमानित होने पर शाकल्य का मुख और नेत्र क्रोध से लाल हो गये। सभी ऋषियों के समीप में ही उन्होंने कठोर वाणी में कहा, याज्ञवल्क्य! तुम हमें और इन श्रेष्ठ ऋषियों को तृण की भाँति जीतकर इस अतिमूल्यवान् विद्याधन को अकेले अपने ही लेना चाहते हो ।।४९-५२।। शाकल्य के ऐसा कहने पर याज्ञवल्क्य ने सभी मुनियों के सामने कहा, अच्छे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण का बल उनका विद्या का तत्त्वार्थ ज्ञान समझो, यतः काम (इच्छा) का सम्बन्ध अर्थ (धन) से पड़ता है, इसीलिए मैं भी धन की कामना करता हूँ। ब्राह्मण लोग इच्छानुकूल प्रश्न करनेवाले होते हैं, मैंने भी अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल प्रश्न आप लोगों से किया। राजर्षि जनक का प्रण भी यही था कि जो विप्र विद्या आदि में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो, वही पूज्य है, इसीलिए मैंने इस धनराशि को ग्रहण किया। याज्ञवल्क्य की ऐसी बातें सुनकर शाकल्य मुनि ने क्रोध से मूर्च्छित होकर अपनी इच्छा के अनुरूप उनसे प्रश्न किया ।।५३-५५।। अब मेरे पूछे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर बोलो। तदनन्तर उन दोनों ब्रह्मज्ञानी ऋषियों में महान् विवाद हुआ। शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से एक सहस्र प्रश्न किये, जिनका उसी अवसर

साग्रं प्रश्नसहस्त्रं तु शाकल्यस्तमचूचुदत् । याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वानृषीणां शृण्वतां तदा ।।५७।।
शाकल्ये चापि निर्वादे याज्ञवल्क्यस्तमब्रवीत् । प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य कामिकम् ।।
शापः पणोऽस्य वादस्य अब्रुवन्मृत्युमाव्रजेत् ।।५८।।
अथो सन्नोदितं प्रश्नं याज्ञवल्क्येन धीमता । शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ।।५९।।
एवं स्मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः । एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषां धनार्थिनाम् ।।
ऋषीणां मुनिभिः सार्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ।।६०।।
सर्वैः पृष्टांस्तु संप्रश्नाञ्शतशोऽथ सहस्त्रशः । व्याख्याय वै मुने तेषां प्रश्नसारं महागतिः ।।६१।।
याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याप्य चाऽऽत्मनः । जगाम वै गृहं स्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ।।६२।।
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः । चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान्पदवित्तमः ।।६३।।
तच्छिष्या अभवन्तञ्च मुद्‌गलो गोलकस्तथा । खलीयश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः ।।६४।।
प्रोवाच संहितास्तिस्त्रः शाकपूर्णरथीतरः । निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ।।६५।।
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा । *धर्मशर्मा देवशर्मा सर्वे व्रतधरा द्विजाः ।।६६।।
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे । तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।।६७।।

पर याज्ञवल्क्य ने सभी ऋषियों को सुनते हुए उत्तर दिया। इस प्रकार प्रश्न कर चुकने पर जब शाकल्य चुप हो गये तब याज्ञवल्क्य ने कहा, शाकल्य! अब तुम मेरे केवल एक अभीष्ट प्रश्न का उत्तर दो, किन्तु इस शास्त्रार्थ में एक बाजी यह रहेगी कि यदि प्रश्न का उत्तर न दे सकोगे तो मृत्यु को प्राप्त होगे। परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य के प्रश्न का तात्पर्य शाकल्य की बुद्धि में नहीं आया, परिणामस्वरूप वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। याज्ञवल्क्य के प्रश्न और व्याख्यान से पीड़ित होकर शाकल्य मुनि की मृत्यु हुई थी। इस प्रकार उस धनराशि के चाहनेवाले ऋषियों एवं मुनियों के साथ याज्ञवल्क्य का महान् विवाद हुआ था। उस अवसर पर उन सभी मुनियों के सैकड़ों क्या सहस्रों जटिल प्रश्नों की भली-भाँति व्याख्या करके महाबुद्धिमान् जितेन्द्रिय याज्ञवल्क्य ने समुचित उत्तर दिया था और अपने यश का विस्तारकर सभी शिष्यों के साथ उस धनराशि को लेकर प्रसन्न मन से अपने निवास की ओर प्रस्थान किया था। परम बुद्धिमान्, पदों के अर्थों को जाननेवाले मुनियों में सर्वश्रेष्ठ विप्रवर्य्य देवमित्र शाकल्य ने पाँच संहिताओं का प्रणयन किया था, उनके मुद्‌गल, गोलक, खलीय, मत्स्य और शैशिरेय नामक पाँच शिष्य थे ।।५६-६४।। द्विजश्रेष्ठ शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिताओं का उपदेश किया था और फिर निरुक्त का प्रणयन किया, जो उनकी चौथी रचना थी। उनके केतव, दालिक, धर्मशर्मा और देवशर्मा नामक चार द्विज शिष्य थे, जो सब-के-सब तपस्वी एवं विद्याव्रती थे ।।६५-६६।। शाकल्य की मृत्यु के उपरान्त सभी ऋषियों को ब्रह्महत्या का पाप लगा, जिससे अति चिन्तित होकर वे ब्रह्मा के समीप गये। मन

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. ङ. पुस्तके नास्ति।

ताञ्ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे। तत्र गच्छत यूयं वः सद्यः पापं प्रणश्यति ।।६८।।
द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम्। एकादश तथा रुद्रान्वायुपुत्रं विशेषतः ।।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ।।६९।।
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागतः। स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ।।७०।।
उत्तरेश्वरं नमस्कृत्य वाडवानां प्रसादतः। सर्वे पापविनिर्मुक्ता गतास्ते सूर्यमण्डलम् ।।७१।।
तदा प्रभृति तत्तीर्थं जातं पातकनाशनम्। वायोः पुरं पवित्रं च वायुना निर्मितं पुरा ।।७२।।
अञ्जनीगर्भसंभूतो हनुमान्पवनात्मजः। यदा जातो महादेव हनुमान्सत्यविक्रमः ।।
तदैव निर्मितं तीर्थं वायुना ब्रह्मयोनिना ।।७३।।
उर्व्यां जातास्तु ये शूद्रा ब्राह्मणानां निवेदिताः। वृत्त्यर्थं ब्रह्मयज्ञार्थं करस्तेषु कृतो महान् ।।७४।।
अनेन विधिना जातं विप्राणां शासनं महत्। गोघ्नो वाऽपि कृतघ्नो वा सुरापी गुरुतल्पगः ।।
वाडादित्यं नमस्कृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।७५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते महास्थानतीर्थवेदशाखाप्रणयवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

से ही उन सबों की अभिलाषाओं को समझकर ब्रह्मा ने उन्हें पवनपुर को भेज दिया और कहा, तुम लोग वहाँ जाओ, वहाँ जाने से शीघ्र ही तुम सबों का पाप नष्ट हो जायगा। वहाँ पर बारहों सूर्य, बालुकेश्वर, ग्यारह रुद्र, विशेषतया वायुपुत्र को नमस्कार करके तथा चारों कुण्डों में स्नानकर ब्रह्महत्या से तुम लोग मुक्त हो जाओगे। ब्रह्मा की बातें सुन ऋषिगण वायुपुर के लिए प्रस्थित हुए और वहाँ जाकर उन्होंने विधिपूर्वक स्नान एवं देवताओं के दर्शन किये। वाडवों की कृपा से उत्तरेश्वर को नमस्कार करके वे सभी पापमुक्त हो गये और सूर्यमण्डल को चले गये। तभी से वह वायुपुर नामक पावन तीर्थ पापों का विनाश करनेवाला हो गया, जिसका पूर्वकाल में वायु ने निर्माण किया था। जिस समय अञ्जनी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पवनपुत्र हनुमान्, जिनका पराक्रम कभी मिथ्या (व्यर्थ) नहीं होता, उत्पन्न हुए थे, उसी समय ब्रह्मयोनि वायु ने उस पावन तीर्थ का निर्माण किया था ।।६७-७३।। पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले, ब्राह्मणों के सेवक जो शूद्रगण उस पुर में उत्पन्न हुए थे, उनके ऊपर ब्राह्मणों ने अपने जीवन निर्वाह तथा ब्रह्मयज्ञ को सम्पन्न करने के लिए महान् कर लगाया था। इस प्रकार उस पुर में ब्राह्मणों की महती शासन व्यवस्था प्रचलित हुई थी, गोहत्या करनेवाला, कृतघ्न, मद्यप अथवा गुरुस्त्रीगामी ऐसे कठोर पाप करनेवाले भी वाडादित्य को नमस्कार करके सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।७४-७५।।

श्री वायुमहापुराण में महास्थान-तीर्थ-वेदशाखा-प्रणयन वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ।।६०।।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

प्रजापतिवंशानुकीर्तनम्

ऋषय ऊचुः

भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गालकिः शालकिस्तथा)। धीमाञ्शतवलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तमः ।।१।।
बाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिस्त्रः प्रोवाच संहिताः। रथीतरो निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थकम् ।।२।।
त्रयस्तस्याभवञ्शिष्या महात्मानो गुणान्विताः। श्रीमान्नन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।।
तृतीयाश्चाऽऽर्यवस्ते च तपसा संशितव्रताः ।।३।।
वीतरागा * महातेजाः संहिताज्ञानपारगाः। इत्येते बह्वृचः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्तिताः ।।४।।
वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत्। षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः ।।५।।
शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्ते विधानतः। एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपाः ।।
षडशीतिश्च तस्यापि संहितानां विकल्पकाः ।।६।।
सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदाः प्रकीर्तिताः। त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे ।।७।।
उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः। श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानः संबभूव ह ।।८।।
मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणिः प्रथमः स्मृतः। आलम्बिरादिः प्राच्यानां त्रयोदश्यादयस्तु ते ।।९।।

अध्याय ६१

ऋषियों ने कहा–भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गालकि, शालकि, बुद्धिमान् शतबलाक, ब्राह्मण श्रेष्ठ नैगम और बाष्कल के पुत्र भारद्वाज इन लोगों ने तीन संहिताओं का निर्माण किया था। रथीतर ने पुनः जिस निरुक्त की रचना की थी, वह चतुर्थ था ।।१–२।। उसके महान् सर्वगुणसम्पन्न तीन शिष्य हुए जिनमें से परम बुद्धिमान् नन्दायनीय प्रथम, पन्नगारि द्वितीय और परम तपस्वी आर्यव नामक तृतीय शिष्य था ।।३।। ये तीनों शिष्य वीतराग, महातेजस्वी तथा संहिताओं के पारगामी विद्वान् थे, यतः इन्होंने संहिताओं का विस्तारपूर्वक प्रवर्तन किया था। अतः बह्वृच के नाम से भी विख्यात हैं। यजुर्वेद की परम कल्याणप्रद छियासी संहिताओं का प्रणयन करनेवाले वैशम्पायन जी यजुर्वेद के उद्धारक कहे गये हैं ।।४–५।। वैशम्पायन ने उन संहिताओं की शिक्षा अपने समस्त शिष्यों को दी और उन लोगों ने विधिपूर्वक उन्हें ग्रहण किया, महातपस्वी मुनिवर याज्ञवल्क्य ही केवल एकमात्र उनकी शिक्षा से बच रहे। वे भी यजुर्वेद की छियासी संहिताओं की रचना करनेवाले हुए। इसके अतिरिक्त उनके सभी शिष्यगणों में भी तीन भेद कहे जाते हैं। इस प्रकार नव भेद युक्त संहिता के उदीच्य (उत्तरी) मध्यदेशीय और प्राच्य (पूर्वीय) ये तीन प्रमुख भेद कहे गये हैं। उनमें से उत्तर देशवासियों में श्यामायनि, मध्यदेशवासियों में आरुणि और त्रयोदश्यादि, पूर्वी देशवासियों में आलम्बि प्रधान माने गये हैं ।।६–९।। वे

---

* आर्षत्वादेकवचनम्।

इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहितावादिनो द्विजाः। ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतं जिज्ञासवोऽब्रुवन् ।।१०।।
चरकाध्वर्यवः केन कारणं ब्रूहि तत्त्वतः। किं चीर्णं कस्य हेतोश्च चरकत्वं च भेजिरे ।।
इत्युक्तः प्राह तेषां स चरकावमभूद्यथा ।।११।।

सूत उवाच

कार्यमासीदृषीणां च किंचिद्ब्राह्मणसत्तमाः। मेरुपृष्ठं तदा गत्वा सम्पत्त्यर्थं तु मन्त्रितम् ।।१२।।
यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नाऽगच्छेद्द्विजसत्तमाः। स कुर्याद्ब्रह्मवध्यां वै समयो नः प्रकीर्तितः ।।१३।।
ततस्ते सगणाः सर्वे वैशम्पायनवर्जिताः। प्रययुः सप्तरात्रेण यत्र संधिः कृतोऽभवत् ।।१४।।
ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्मवध्यां चकार सः। शिष्यानथ समानीय स वैशम्पायनोऽब्रवीत् ।।१५।।
ब्रह्मवध्यां चरध्वं वै मत्कृते द्विजसत्तमाः। सर्वे यूयं समागम्य ब्रूत मैतद्धितं वचः ।।१६।।

याज्ञवल्क्य उवाच

अहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्विमे। बलं चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावितः ।।१७।।
एवमुक्तस्ततः क्रुद्धो याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत्। उवाच यत्त्वयाऽधीतं सर्वं प्रत्यर्पयस्व मे ।।१८।।
एवमुक्तः स रूपाणि यजूंषि प्रददौ गुरोः। रुधिरेण तथाक्तानि छर्दित्वा ब्रह्मवित्तमाः ।।१९।।

सभी संहिताओं के जाननेवाले द्विजगण चरक नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषियों ने इस प्रकार सूत की बातें सुनकर जिज्ञासा प्रकट की कि ये अध्वर्युगण किस कारण चरक नाम से पुकारे जाते हैं। इसका वास्तविक कारण हमें बतलाइये कि इन्होंने ऐसे कौन से आचरण किये थे, जिसके कारण चरकत्व की प्राप्ति हुई। ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत ने वह कथा बतलायी जिस प्रकार उन्हें चरकत्व की प्राप्ति हुई थी ।।१०-११।।

सूत ने कहा–ब्राह्मणश्रेष्ठवृन्द! प्राचीनकाल में एक समय ऋषियों को कोई ऐसा कार्य आ पड़ा जिसमें सुमेरु पर्वत पर जाकर वे सब सम्पत्ति के लिए उपस्थित हुए थे। उस समय उन्होंने यह प्रण किया था कि जो ब्राह्मण सात रात के बीच में हमारी इस मन्त्रणा में सहयोग देने के लिए नहीं आ जाता है वह ब्रह्महत्या का पाप ग्रहण करेगा, ऐसी हम लोगों की प्रतिज्ञा है। ऋषियों की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर सभी ऋषि-मुनि अपने-अपने शिष्यादि को साथ ले-लेकर वहीं उपस्थित हुए, जहाँ पहुँचने के लिए प्रतिज्ञा की गयी थी, केवल वैशम्पायन ऋषि वहाँ नहीं गये ।।१२-१४।। और इस प्रकार समान ब्राह्मणों के वचनानुसार वे ब्रह्महत्या के भागी हुए। वैशम्पायन ने उस अवसर पर अपने शिष्यों को बुलाकर कहा–द्विजवर्यवृन्द! तुम सब लोग मेरे लिये इस ब्रह्महत्या के पाप का भोग करो, कहो, क्या यह मेरी बात हितकर नहीं है ।।१५-१६।।

याज्ञवल्क्य बोले–"मैं इस ब्रह्महत्या का अनुभव करूँगा, ये मुनिगण आपके साथ ही रहें। अपनी तपस्या द्वारा पराक्रम संचय करके मैं उसका अनुभव करने में समर्थ होऊँगा।" याज्ञवल्क्य के ऐसा कहने पर वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर उनसे कहा–तुमने जो कुछ मुझसे अध्ययन किया है वह सब लौटा दो ।।१७-१८।। वैशम्पायन के इस प्रकार

ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजाः। सूर्यब्रह्म यदुच्छिन्नं खं गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०॥
ततो यानि गतान्यूर्ध्वं यजूंष्यादित्यमण्डलम्। तानि तस्मै ददौ तुष्टः सूर्यो वै ब्रह्मरातये॥
अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥२१॥
यजूंष्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च। अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ॥२२॥
ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः। वैशम्पायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥२३॥
इत्येते चरकाः प्रोक्ता वाजिनस्तान्निबोधत। याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिनः ॥२४॥
मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दलः। ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैषिरी॥
आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायणः ॥२५॥
इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दश पञ्च च संस्मृताः। शतमेकाधिकं कृत्स्नं यजुषां वै विकल्पकाः ॥२६॥
पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनिः। सुमन्तुश्चापि सुत्वानं पुत्रमध्यापयत्प्रभुः॥
+सुकर्माणं सुतं सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ॥२७॥
स सहस्रमधीत्याऽऽशु सुकर्माऽप्यथ संहिताः। प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः ॥२८॥
अनध्यायेष्वधीयानांस्ताञ्जघान शतक्रतुः। प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात् ॥२९॥

कहने पर ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ मुनिवर याज्ञवल्क्य ने वमन द्वारा रुधिर से भीगे हुए समस्त यजुर्वेद को मूर्त रूप में गुरु के सम्मुख प्रत्यर्पण कर दिया। द्विजवृन्द! तदनन्तर याज्ञवल्क्य मुनि ने ध्यान लगाकर सूर्य की आराधना की, उस समय आकाशमण्डल में जितने ऊपर जाकर सूर्य रूप ब्रह्म प्रतिष्ठित था उतने ही ऊपर उठ-उठकर वह समस्त यजुर्वेद सूर्यमण्डल में आश्रय लेने लगा। जिससे सन्तुष्ट होकर मार्तण्ड सूर्यदेव ने सभी यजुर्वेद को अश्वरूप धारण करनेवाले, ब्रह्मज्ञानी परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य को प्रदान किया ॥१९-२१॥ अश्वरूप धारण करनेवाले याज्ञवल्क्य को दिये गये उस यजुर्वेद का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण अश्वरूपधारी हुए। जिन वैशम्पायन के शिष्यों ने उनके साथ ब्रह्महत्या का अनुभव किया था, वे चरण (अनुभव करने) के कारण चरक नाम से प्रसिद्ध हुए। चरकों का वृतान्त वर्णन कर चुका, अब याज्ञवल्क्य के शिष्यों का जो अश्वरूपधारी थे, वृत्तान्त सुनिये। कण्व, वैधेयशाली, मध्यन्दिन, शापेयी, विदिग्ध, आप्य, उद्दल, ताम्रायण, वात्स्य, गालव, शैषिरी, आटवी, पर्णी, वीरणी और सपरायण-ये पन्द्रह वाजि (अश्वरूपधारी) जन कहे गये हैं। समस्त यजुर्वेद में एक सौ एक विकल्पक (संहिता भाग) देखे जाते हैं ॥२२-२६॥ जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को समस्त यजुर्वेद का अध्ययन कराया था। परम ऐश्वर्यशाली सुमन्तु ने अपने पुत्र सुत्वा को उसे पढ़ाया। प्रभु सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को उसकी शिक्षा दी। सुकर्मा ने इन सहस्र संहिताओं का अल्प समय में अध्ययनकर सूर्य के समान तेजस्वी अपने एक सहस्र शिष्यों को उसका अध्ययन कराया। किन्तु अनध्याय के दिन अध्ययन करने के कारण इन्द्र ने उन सभी शिष्यों का संहार कर डाला, जिससे दुःखी होकर शिष्यों के लिए सुकर्मा प्रायोपवेश[१] करने

+ इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः।

[१] किसी घोर पाप का प्रायश्चित्त पूर्वकाल में बिना कुछ खाये-पीये एक स्थान पर बैठकर प्राण त्याग करके किया जाता था, उसी को प्रायोपवेश कहा जाता है।

क्रुद्धं दृष्ट्वा ततः शक्रो वरमस्मै ददौ पुनः । भाविनौ ते महावीर्यौ शिष्यावनलवर्चसौ ।।३०।।
अधीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्रं संहितावुभौ । एतौ सुरौ महाभागौ मा क्रुध्य द्विजसत्तम ।।३१।।
इत्युक्त्वा वासवः श्रीमान्सुकर्माणं यशस्विनम् । शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।३२।।
तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमाः । हिरण्यनाभः कौशिल्यो द्वितीयोऽभून्नराधिपः ।।३३।।
अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रार्धं तु संहिताः । ते नाम्नोदीच्यसामान्याः शिष्याः पौष्यञ्जिनः शुभाः ।।३४।।
शतानि पञ्च कौशिल्यः संहितानां च वीर्यवान् । शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगाः ।।३५।।
लोकाक्षी कुथुमिश्चैव कुशीती लाङ्गलिस्तथा । पौष्यञ्जिशिष्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत ।।३६।।
राणायनीयः सहितण्डितपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् ।।
सकैतिपुत्रः सहसात्यपुत्र एतान्भेदान्वित्त लोकाक्षिणस्तु ।।३७।।
त्रयस्तु कुथुमेः पुत्रा औरसो रसपासरः । भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधाः कौथुमाः स्मृताः ।।३८।।
शौरिद्युः शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ चरितव्रतौ । राणायनीयः सौमित्रिः सामवेदविशारदौ ।।३९।।
प्रोवाच संहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रो महातपाः । चैलः प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमाः ।।४०।।
प्रोवाच संहिताः षट् तु पाराशर्यस्तु कौथुमः । आसुरायणवैशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ ।।४१।।

पर उतारू हो गये। सुकर्मा को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर इन्द्र ने उन्हें फिर वरदान दिया कि तुम्हारे अग्नि के समान परम तेजस्वी एवं महान् पराक्रमी दो शिष्य होंगे ।।२७-३०।। हे द्विजसत्तम! वे आपके दोनों महाभाग्यशाली शिष्य महान् पण्डित होंगे और इन सहस्र संहिताओं का विधिवत् अध्ययन करेंगे, आप क्रोध न करें। परम यशस्वी द्विजश्रेष्ठ से ऐसी बातें कहकर और उनके क्रोध को शान्त देखकर श्रीमान् इन्द्र वहीं पर अन्तर्धान हो गये। हे द्विजवर्यवृन्द! उन सुकर्मा के परम बुद्धिमान् पौष्यञ्जी नामक प्रथम और हिरण्यनाभ राजा कौशिल्य नामक द्वितीय शिष्य हुआ ।।३१-३३।। जिनमें से पौष्यञ्जी ने पाँच सौ संहिताओं को अपने शिष्यों को पढ़ाया। पौष्यञ्जी के वे कल्याणभाजन शिष्य सामान्यतः उदीच्य के नाम से विख्यात थे। पराक्रमी कौशिल्य ने भी पाँच सौ संहिताओं की शिक्षा अपने शिष्यों को दी। हिरण्यनाभ नराधिप कौशिल्य के शिष्यगण प्राच्य सामग के नाम से विख्यात हुए। अब पौष्यञ्जी के लोकाक्षी, कुथुमि, कुशीती और लाङ्गलि नामक जो चार शिष्य हो गये हैं, उनके भेदों को सुनिये ।।३४-३६।। तण्डिपुत्र, राणायनीय, सुविद्वान् मूलचारी, कैतिपुत्र और सात्यपुत्र–ये सभी लोकाक्षी के शिष्यों के नाम हैं। कुथुमि के औरस, रसपासर और तेजस्वी भागवित्ति नामक तीन पुत्र थे, जो तीनों कौथुम नाम से प्रसिद्ध थे। शौरद्यु और शृङ्गिपुत्र ये दो परम तपस्वी एवं व्रतपरायण थे, राणायनीय और सौमित्रि ये दो सामवेद के विशारद थे ।।३७-३९।। महान् तपस्वी शृङ्गिपुत्र ये दो परम तपस्वी एवं व्रतपरायण थे, राणायनीय और सौमित्रि ये दो सामवेद के विशारद थे ।।३७-३९।। महान् तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन संहिताओं का उपदेश किया। हे द्विजसत्तम! चैल, प्राचीन योग, सुराल और कुथुमि के शिष्य पाराशर्य ने छह संहिताओं का उपदेश किया।

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमांश्च पतञ्जलिः। कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य षट् स्मृताः ।।
लाङ्गलिः शालिहोत्रश्च षट्षट् प्रोवाच संहिताः ।।४२।।
भालुकिः कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिनिः। कण्डुश्च कीहलश्चैव षडेते लाङ्गलाः स्मृताः ।।
एते लाङ्गलिनः शिष्याः संहिता यैः प्रसाधिताः ।।४३।।
ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मजः। सोऽकरोच्च चतुर्विंशत्संहिता द्विपदां वरः ।।
प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्तांश्च निबोधत ।।४४।।
राडश्च महवीर्यश्च पञ्चमो वाहनस्तथा। तालकः पाण्डकश्चैव कालिको राजिकस्तथा ।।
गौतमश्चाजबस्तश्च सोमराजाऽपतत्ततः ।।४५।।
पृष्ठघ्नः परिकृष्टश्च उलूखलक एव च। यवीयसश्च वैशालो अङ्गुलीयश्च कौशिकः ।।४६।।
सालिमञ्जरिसत्यश्च कापीयः कानिकश्च यः। पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगाः ।।४७।।
सामगानां तु सर्वेषां श्रेष्ठौ द्वौ तु प्रकीर्तितौ। पौष्यञ्जिश्च कृतिश्चैव संहितानां विकल्पकौ ।।४८।।
अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददाद्द्विजाः। कबन्धाय गुरुः कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ।।४९।।
कबन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकं पुनर्ददौ। द्वितीयं वेदस्पर्शाय स चतुर्धाऽकरोत्पुनः ।।५०।।
मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च। शौष्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः ।।
वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रताः ।।५१।।

आसुरायण, वैशाख्य, वेदवृद्धपरायण, प्राचीन योगपुत्र, बुद्धिमान् पतञ्जलि ये कुथुमि के शिष्य पाराशर्य के छह भेद कहे गये हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छह-छह संहिताओं का उपदेश किया ।।४०-४२।। भालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायिनि, कण्डु और कीहल-ये छह लाङ्गल नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये सब-के-सब लाङ्गलि के शिष्य हैं जिन्होंने संहिताओं का प्रचार किया। हिरण्यनाभ ने, जो राजा का पुत्र एवं अति उत्तम प्रकृति का मनुष्य था-चौबीस संहिताओं का प्रणयन किया और उन सबको अपने जिन शिष्यों को पढ़ाया, उन्हें सुनिये। राड, महवीर्य, पञ्चम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, आजवस्त, सोमराज, पृष्ठघ्न, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अङ्गुलीय, कौशिक, सालिमञ्जरि, सत्य, कापीय, कानिक और धर्मात्मा पराशर, ये सभी अतीतकालीन ऋषिगण सामवेद के उपदेशक थे ।।४२-४७।। समस्त सामवेदीय ऋषियों में पौष्यञ्जि और कृति ये दो श्रेष्ठ कहे गये हैं जो विविध संहिताओं के प्रवर्तक थे। विप्रवृन्द! आचार्य सुमन्तु ने अथर्ववेद के दो विभाग कर सब की कबन्ध नामक शिष्य को शिक्षा दी, अब क्रमशः उसका वर्णन सुनिये। कबन्ध ने पुनः उसके दो विभाग किये, जिनमें से एक को पथ्य नामक शिष्य को तथा दूसरे को वेदस्पर्श नामक शिष्य को उपदेश दिया। तदनन्तर वेदस्पर्श ने उसके चार भाग किये ।।४८-५०।। मोद, ब्रह्मबल, पिप्पलाद तथा धर्मज्ञ शौष्कायनि-ये चार वेदस्पर्श के सुप्रसिद्ध शिष्य हैं जो सभी दृढ़ व्रतधारी थे। पथ्य के

पुनश्च त्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् । जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः ।।५२।।
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकं तु बभ्रवे । द्वितीयां संहितां धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते ।।५३।।
सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः । नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः ।।
चतुर्थोऽङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।।५४।।
श्रेष्ठास्त्वथर्वणो ह्येते संहितानां विकल्पनाः । षट्शः कृत्वा मयाऽप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ।।५५।।
आत्रेयः सुमतिर्धीमान्काश्यपो ह्यकृतव्रणः । भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च यः ।।
सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः ।।५६।।
एते शिष्या मम ब्रह्मन्पुराणेषु दृढव्रताः । त्रिभिस्तिस्त्रः कृतास्तिस्त्रः संहिताः पुनरेव हि ।।५७।।
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः । सामिका च चतुर्थी स्यात्सा चैषा पूर्वसंहिता ।।५८।।
सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः । पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ।।
चतुःसाहस्त्रिकाः सर्वाः शांशपायनिकामृते ।।५९।।
लोमहर्षणिका मूलास्ततः काश्यपिकाः पराः । सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजूर्वाक्यार्थपण्डिताः ।।६०।।
शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिताः । सहस्त्राणि ऋचामष्टौ षट्शतानि तथैव च ।।६१।।
एताः पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा । बालखिल्याः सहप्रैषाः ससावर्णाः प्रकीर्तिताः ।।६२।।

उत्तम शिष्यों की संख्या तीन जानिये उनके जाजलि, कुमुदादि और शौनक नाम प्रसिद्ध हैं। विद्वान् शौनक ने दो विभाग कर एक संहिता को बभ्रु को दिया और दूसरी को सैन्धवायन नामक शिष्य को समर्पित किया। सैन्धव ने मुञ्जकेश को उपदेश दिया, जिसके द्वारा वह पुनः दो भागों में विभक्त हुई। प्रथम नक्षत्रकल्प, द्वितीय वैतान, तृतीय संहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प तथा पंचम शान्तिकल्प हैं ।।५१-५४।। अथर्ववेद की संहिताओं के ये विकल्प श्रेष्ठ माने गये हैं। हे ऋषिवर्य्यवृन्द! मैंने भी पुराणों का छह प्रकार के विभागों में उपदेश किया है। अत्रि गोत्रोत्पन्न बुद्धिमान् सुमति, कश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, अग्नि के समान तेजस्वी भरद्वाज, वशिष्ठ, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति और सुशर्मा शांशपायन हैं। हे विप्रवृन्द! ये हमारे पुराणों में शिष्य हैं, जो सब-के-सब दृढ़ व्रतधारी हैं। इनमें से तीन शिष्यों ने संहिता के तीन विभागकर पुनः तीन भाग किये, जो संहिताकर्त्ता काश्यप, सावर्णि और शांशपायन के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामिका नामक चौथी संहिता है जो पूर्व संहिता के नाम से विख्यात है ।।५५-५८।। ये सभी संहिताएँ चार-चार पादोंवाली एवं एक अर्थ की वाचिका हैं। वेद शाखाओं की भाँति पाठान्तर में भिन्न-भिन्न हैं। शांशपायन की संहिता को छोड़कर इन सबकी संख्या चार सहस्र है। इन समस्त वेद शाखाओं में लोमहर्षण की शाखा ही मुख्य है, उसके बाद कश्यप की शाखा की महत्ता मानी गयी है, सावर्णिक शाखा का तृतीय स्थान है, ये शाखाएँ यजुर्वेद की हैं जिन्हें उसके पण्डित लोग जानते हैं ।।५९-६०।। इनके अतिरिक्त जो शांशपायन की शाखा है वह प्रेरणात्मक अर्थ से विभूषित है, उसकी ऋचाओं की संख्या आठ सहस्र छह सौ है। ये समस्त संहिताएँ, इसके अतिरिक्त पन्द्रह यथा दस-दस संहिताएँ जो बालखिल्य, सहप्रैष

अष्टौ साम सहस्राणि सामानि च चतुर्दश। आरण्यकं सहोमं च एतद्गायन्ति सामगाः ॥६३॥
द्वादशैव सहस्राणि छन्द आर्ध्वयवं स्मृतम्। यजुषां ब्राह्मणानां च तथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४॥
सग्राम्यारण्यकं तत्स्यात्समन्त्रकरणं तथा। अतः परं कथानां तु पूर्वा इति विशेषणम् ॥६५॥
ग्राम्यारण्यं समन्त्रं च ऋग्ब्राह्मणयजुः स्मृतम्। तथा हारिद्रवीयाणां खिलान्युपखिलानि च ॥
तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम् ॥६६॥
द्वे सहस्रे शते न्यूने वेदे वाजसनेयके। ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणं तु चतुर्गुणम् ॥६७॥
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टावशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः ॥
एतत्प्रमाणं यजुषामृचां च सशुक्रियं साखिलयाज्ञवल्क्यम् ॥६८॥
तथा चरणविद्यानां प्रमाणं संहितां शृणु। षट्साहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशतिः पुनः ॥
एतावदधिकं तेषां यजुः कामं विवक्ष्यति ॥६९॥
एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तराः। ऋचां दश सहस्राणि अशीतित्रिशतानि च ॥७०॥
सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः। एतावद्भृगुविस्तारमन्यच्चाथर्विकं बहु ॥७१॥
ऋचामथर्वणां पञ्च सहस्राणि विनिश्चयः। सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशतिं विना ॥७२॥
एतदङ्गिरसा प्रोक्तं तेषामारण्यकं पुनः। इति संख्या प्रसंख्याता शाखाभेदास्तथैव च ॥७३॥

एवं सावर्णि की संहिताओं के नाम से कही गयी हैं, आठ सहस्र साम, चौदह सहस्र साममंत्र, हवनमंत्र समेत आरण्यक– इन सबको साम के गायन करनेवाले ऋषि लोग गाते हैं। इसके अतिरिक्त व्यासदेव ने यजुः और ब्राह्मण के बारह सहस्र छन्दों का विभाग किया, जो ग्राम्य एवं आरण्यक संहिताओं एवं मंत्रकरण के साथ आध्वर्यव के नाम से स्मरण किये जाते हैं। इसके उपरान्त कथाओं का पूर्वा यह विशेषण कहा जाता है ॥६१–६५॥ ऋक्, ब्राह्मण और यजु ये तीन मंत्रों के साथ ग्राम्य और आरण्य के नाम से स्मरण किये जाते हैं। हारिद्रवीय के खिल, उपखिल तथा तैत्तिरीय के पर और क्षुद्र भाग भी दो–दो प्रकार के स्मरण किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दो सहस्र में एक सौ कम वाजसनेयी संहिता की ऋचाओं को तथा उसके चतुर्गुणित ब्राह्मण को परिगणित किया। आठ सहस्र आठ सौ अस्सी यजु और ऋक् की संख्याएँ कही गयी हैं। इसके उपरान्त चरणविद्या की संहिता तथा उसके प्रमाण को सुनिये। इस चरणविद्या की कथाओं की संख्या छह सहस्र छब्बीस है। अब इसके उपरान्त यजुः के विषय में विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ ॥६६–६९॥ ग्यारह सहस्र बीस यजुर्वेद की ऋक् संख्या है, दस सहस्र तीन सौ अस्सी ऋचाओं की तथा एक सहस्र मन्त्रों की ऋक् संख्या का प्रमाण है। इतनी ही भृगु द्वारा विस्तारित बहुतेरी अथर्व की संहिताएँ हैं। अथर्व की ऋक् संख्या पाँच सहस्र निश्चित हुई है, एक सहस्र में बीस कम अन्य ऋचाओं की संख्या ऋषि लोग और बतलाते हैं। यह अंगिरा ऋषि के कहे हुए अथर्व के मंत्रों की तथा आरण्यक की संख्या है। इस प्रकार वेदों के मंत्रों एवं ऋचाओं की संख्या, शाखा भेद, शाखाओं

कर्तारश्चैव शाखानां भेदे हेतुस्तथैव च। सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदाः समाः स्मृताः ।।७४।।
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः। अनित्यभावाद्देवानां मन्त्रोत्पत्तिः पुनः पुनः ।।७५।।
मन्वन्तराणां क्रियते सुराणां नामनिश्चयः। द्वापरेषु पुनर्भेदाः श्रुतीनां परिकीर्तिताः ।।७६।।
एवं वेदं तदा न्यस्य भगवानृषिसत्तमः। शिष्येभ्यश्च पुनर्दत्त्वा तपस्तप्तुं गतो वनम् ।।
तस्य शिष्यप्रशिष्यैस्तु शाखाभेदास्त्विमे कृताः ।।७७।।
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्यास्त्वेताश्चतुर्दश ।।७८।।
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्यास्त्वष्टादशैव तु ।।७९।।
ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः। राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ।।
तेभ्य ऋषिप्रकृतयो मुनिभिः संशितव्रतैः ।।८०।।
कश्यपेषु वसिष्ठेषु तथा भृग्वङ्गिरोऽत्रिषु। पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिनः ।।
यस्मादृषन्ति ब्रह्माणं तेन ब्रह्मर्षयः स्मृताः ।।८१।।
धर्मस्याथ पुलस्त्यस्य क्रतोश्च पुलहस्य च। प्रत्यूषस्य प्रभासस्य कश्यपस्य तथा पुनः ।।८२।।
देवर्षयः सुतास्तेषां नामतस्तान्निबोधत। देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ ।।८३।।
बालखिल्यः क्रतोः पुत्राः कर्दमः पुलहस्य तु। कुबेरश्चैव पौलस्त्यः प्रत्यूषस्याचलः स्मृतः ।।८४।।

के कर्त्ता एवं उनके पारस्परिक भेद के कारण आदि को मैं बतला चुका। सभी मन्वन्तरों में वेदों के शाखाविभाग एक समान स्मरण किये गये हैं ।।७०-७४।। प्रजापति की श्रुति नित्य है, उसके विकल्प ये ही कहे जाते हैं। देवताओं के अनित्य (विनश्वर) होने के कारण पुनः-पुनः मंत्रोत्पत्ति होती है, मन्वन्तरों के भेद से देवताओं के नाम का निश्चय होता है। ये जो ऊपर श्रुति के भेद बतलाये गये हैं, वे प्रत्येक द्वापर युग में कहे गये हैं। उस द्वापर युग में इस प्रकार वेदों का विभाग करके ऋषिश्रेष्ठ व्यास अपने शिष्यों को उसे सौंपने के बाद तपस्या करने के लिए जङ्गल को प्रस्थित हुए। उनके शिष्यों तथा शिष्यों के शिष्यों ने इन उपुर्यक्त वैदिक शाखाओं का इस प्रकार विभाग किया। छहो वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) चारों वेद (ऋक्, साम, यजु और अथर्व), मीमांस, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद एवं अर्थशास्त्र इन चारों को मिलाकर विद्याओं की संख्या अठारह होती है ।।७५-७९।। सर्वप्रथम ब्रह्मर्षियों को जानना चाहिए, उनसे देवर्षियों को तथा देवर्षियों से राजर्षियों को जानना चाहिए, ये तीन ऋषियों के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। इन्हीं से समस्त ऋषिगणों की उत्पत्ति होती है। जो भली-भाँति नियमों का पालन करनेवाले ऋषियों की संतानें हैं। कश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अंगिरा और अत्रि इन पाँचों गोत्रों में ब्रह्मवादी ऋषियों की उत्पत्ति होती है। यतः वे ब्रह्म तक पहुँचनेवाले हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं, अतः ब्रह्मर्षि नाम से स्मरण किये जाते हैं ।।८०-८१।। धर्म, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह, प्रत्यूष, प्रभास और कश्यप—इनके पुत्रों को देवर्षि कहा जाता है, अब उनके नाम सुनिये। धर्म के दो पुत्र राजर्षि नर और नारायण हैं। बालखिल्यगण क्रतु के पुत्र हैं, पुलह के पुत्र

पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ । ऋषन्ति देवान्यस्मात्ते तस्माद्देवर्षयः स्मृताः ।।८५।।
मानवे वैषये वंशे ऐडवंशे च ये नृपाः । ऐडा ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते ।।८६।।
ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्प्रजा राजर्षयस्ततः । ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मताः ।।८७।।
देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षयः शुभाः । इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः ।।८८।।
आभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणैस्तथा । एवं ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या राजर्षयस्तु ये ।।८९।।
देवर्षयस्तथाऽन्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् । भूतभव्यभवज्ञानं सत्याभिव्याहृतं तथा ।।९०।।
संबुद्धास्तु स्वयं ये तु संबद्धा ये च वै स्वयम् । तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रनो (णो) दितम् ।।९१।।
मन्त्रव्याहरिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये । इत्येत ऋषिभिर्युक्ता देवद्विजनृपास्तु ये ।।९२।।
एतान्भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः । सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ।।९३।।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः । बुद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकाश्च ये ।।९४।।
षट्कर्माभिरता नित्यं शालिनो गृहमेधिनः । तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टैः कर्महेतुभिः ।।९५।।
अग्राम्यैर्वर्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयंकृतैः । कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिनः ।।९६।।

का नाम कर्दम है। पुलस्त्य के पुत्र कुबेर हैं, प्रत्यूष के अचल हैं, पर्वत और नारद—ये दोनों कश्यप के पुत्र हैं। यतः ये देवताओं तक पहुँचते हैं, अतः देवर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं ।।८२–८५।। मनु द्वारा प्रवर्तित वैषय एवं ऐड वंश में होनेवाले ऐड, ऐक्ष्वाक और नाभाग—इनको राजर्षि जानना चाहिए। यतः वे प्रजाओं का रंजन करते हुए उनकी बुद्धि एवं भावनाओं तक पहुँचनेवाले होते हैं, अतः राजर्षि नाम से प्रसिद्ध हैं। जो लोग ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं वे ब्रह्मर्षि माने जाते हैं। कल्याणकारी, देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले, ऋषिगण देवर्षि नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्द्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले सभी ऋषि राजर्षि नाम से विख्यात हैं ।।८६–८८।। उत्तम कुल में उत्पत्ति, तपस्या और मंत्रों की व्याख्या अथवा उपदेश करने से दिव्यगुणसम्पन्न राजर्षिगण भी ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो अन्य देवर्षि कहे गये हैं, उनके लक्षण बतला रहा हूँ। अतीत, भविष्यत् एवं वर्तमान—तीनों कालों के ज्ञाता, सत्यभाषी, स्वयं को जाननेवाले तथा अपने में सम्बद्ध, तपस्या से इन्द्रलोक में प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले, गर्भावस्था में ही अज्ञानांधकार के नष्ट हो जाने से जिनके ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, ऐसे मंत्रवेत्ता एवं अपने ऐश्वर्य से सर्वत्र समान गति रखनेवाले देवता, द्विज एवं राजा लोग भी देवर्षि नाम से प्रसिद्ध होते हैं ।।८९–९२।। इन उपर्युक्त विषयों के अध्ययन करनेवाले अर्थात् उनसे सम्पन्न ऋषि माने गये हैं। दीर्घायुसम्पन्न मंत्रकर्त्ता, ऐश्वर्यशाली, दिव्य दृष्टिसम्पन्न, ज्ञानी, प्रत्यक्ष धर्मपरायण एवं गोत्रप्रवर्त्तक—जो ये सात ऋषिगण हैं, वे अपने इन सातों गुणों से ऋषि कहे जाते हैं ।।९३–९४।। वे ऋषिगण नित्य षट्कर्मों[1] में प्रवृत्त रहनेवाले, समृद्ध, गृहस्थाश्रमी, कर्मफल रूप अदृष्ट को माननेवाले एवं तदनुरूप व्यवहार करनेवाले, शिष्ट व्यवहार द्वारा जीवनयापन करनेवाले, आत्मज्ञान रस में परिपुष्ट होनेवाले, कुटुम्बी, सम्पत्तिशाली एवं बाह्य तथा आभ्यन्तर में निवास

---

[1] १. यज्ञ करना, यज्ञ कराना, पढ़ना, पढ़ाना, दान देना और दान लेना-ये छह ब्राह्मणों के कर्म कहे गये हैं।

कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः । वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियन्ते प्रथमं तु वै ।।९७।।
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुनः सप्तर्षयस्विह । प्रवर्तयन्ति ये वर्णानामाश्रमांश्चैव सर्वशः ।।
तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुनः पुनः ।।९८।।
जायमाने पिता पुत्रे पुत्रः पितरि चैव हि । एवं समेत्याविच्छेदाद्वर्तयन्त्यायुगक्षयात् ।।
अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ।।९९।।
अर्यम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाणं समाश्रिताः । दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतवः स्मृताः ।।१००।।
गृहमेधिनां च संख्येयाः श्मशानान्याश्रयन्ति ते । अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ।।१०१।।
ये श्रूयन्ते दिवं प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्ध्वरेतसः । मन्त्रब्राह्मणकर्तारो जायन्ते हि युगक्षये ।।१०२।।
एवमावर्तमानास्ते द्वापरेषु पुनः पुनः । कल्पनां भाष्यविद्यानां नानाशास्त्रकृतः क्षये ।।
+क्रियते तैर्विवरणं त्रेतादौ संयुगे प्रभुः ।।१०३।।
भविष्ये द्वापरे चैव द्रौणिर्द्वैपायनः पुनः । वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन्भविता सुमहातपाः ।।१०४।।
भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु । तस्मै तद्ब्रह्मणा ब्रह्मा तपसा व्याप्तमव्ययम् ।।१०५।।

करनेवाले होते हैं। सतयुग आदि समस्त युगों में सर्वप्रथम ये ऋषिगण पुनः-पुनः वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था सम्पादित करते हैं ।।९५-९७।। पुनः त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर वे ही सप्तर्षिगण इस पृथ्वी पर अशेष रूप से वर्णाश्रम धर्म का पुनः प्रवर्तन करते हैं। उन्हीं ऋषियों के वंशों में वीरगण पुनः-पुनः उत्पन्न होते हैं। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता और पिता के उत्पन्न होने पर पुत्र-(अर्थात् पुत्र पिता से और पिता पुत्र से जन्म ग्रहण करता है) इस प्रकार बिना विच्छेद (काल व्यवधान) के वे ऋषिगण युगक्षयपर्यन्त वर्तमान रहते हैं। गृहस्थाश्रम में रहनेवाले मुनियों की संख्या अठासी सहस्र कही गयी है ।।९८-९९।। सूर्य के उत्तरायण होने पर जो मुनिगण पितृयाण (पितरों का मार्ग) का आश्रय लेते हैं एवं स्त्री के साथ सम्बन्ध करते तथा अग्निहोत्र के उपासक होते हैं, वे सन्तानोत्पत्ति के लिए कहे गये हैं। ये गृहस्थाश्रमियों के भीतर गिने जाने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त जो सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण त्यागकर श्मशान का आश्रय लेते हैं, उन मुनियों की संख्या अठासी सहस्र है। जो ऊध्वरिता (अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतपरायण) ऋषिगण उत्तरायण में मृत्यु प्राप्तकर स्वर्ग को प्राप्त करते सुने जाते हैं वे युग-समाप्ति के अवसर पर मंत्र एवं ब्राह्मण भाग के कर्त्ता के रूप में पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। इस प्रकार द्वापर युग में चक्राकार करते हुए वे विविध शास्त्रकर्त्ता ऋषिगण बारम्बार जन्म ग्रहणकर भाष्य विद्या आदि का प्रवर्तन करते हैं एवं त्रेतादि युगों में उन विद्याओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं ।।१००-१०३।। भविष्य द्वापर युग में परमतपस्वी द्रौणि द्वैपायन वेदव्यास उत्पन्न होंगे, उनके द्वारा भविष्य में वेदों की विभिन्न शाखाओं का प्रणयन होगा। उन्हें परम तपस्या द्वारा अविनाशी ब्रह्मपद की प्राप्ति होगी। तपस्या द्वारा कर्म की

+ इदमर्धं नास्ति क. घ. पुस्तकयोः।

तपसा कर्म संप्राप्तं कर्मणा हि ततो यशः । यशसा प्राप्य सत्यं हि सत्येनाप्तो हि चाव्ययः ।।१०६।।
अव्ययादमृतं शुक्रममृतात्सर्वमेव हि । ध्रुवमेकाक्षरमिदं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ।।
बृहत्त्वाद्बृंहणाच्चैव तदब्रह्मेत्यभिधीयते ।।१०७।।
प्रणवावस्थितं भूयो भूर्भुवः स्वरिति स्मृतम् । ऋग्यजुः सामाथर्वाणं यत्तस्मै ब्रह्मणे नमः ।।१०८।।
+जगतः प्रणयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम् । महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः ।।१०९।।
अगाधपारमक्षय्यं जगत्संमोहनालयम् । सप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ।।११०।।
सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिः संगदमात्मनः । यत्तदव्यक्तममृतं प्रकृतिब्रह्म शाश्वतम् ।।१११।।
प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्यं सत्त्वं च शब्द्यते । अविभागस्तथा शुक्रमक्षरं बहुवाचकम् ।।
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ।।११२।।
कृते पुनः क्रिया नास्ति कृत एवाकृतक्रिया । सकृदेव कृतं सर्वं यद्वै लोके कृताकृतम् ।।११३।।
श्रोतव्यं वै श्रुतं वाऽपि तथैवासाधुसाधुताम् । ज्ञातव्यं चाथ मन्तव्यं स्प्रष्टव्यं भोज्यमेव च ।।
द्रष्टव्यं चाथ श्रोतव्यं ज्ञातव्यं वाऽथ किंचन ।।११४।।

प्राप्ति होती है, कर्मों से यश मिलता है, यश से सत्य की प्राप्तिकर सत्य द्वारा अव्यय शाश्वत पद की प्राप्ति होती है, इस अव्यय पद से अमृत, अमृत से शुक्र अथवा समस्त पदार्थों की प्राप्ति होती है। एकमात्र अक्षर ब्रह्म ही अपनी अन्तरात्मा में व्यवस्थित रूप से विद्यमान है, वह अति बृहत् होने एवं समस्त चराचर जगत् का पालन करने के कारण ब्रह्म कहलाता है ।।१०४–१०७।। वह ब्रह्म सर्वप्रथम प्रणव 'ओंकार' में अवस्थित रहता है, पश्चात् 'भूर्भुवः स्वः' भी वही स्मरण किया जाता है। ऋक्, यजु, साम और अथर्व भी उसके विकसित स्वरूप हैं, ऐसे उसे हम नमस्कार करते हैं। इस चराचर जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का जिसे कारण बतलाया जाता है, उस महान् से भी महत्तम एवं परम गुह्य सुब्रह्म को हमारा नमस्कार है। जिसका पार कोई नहीं पाता, जो कभी विनष्ट नहीं होता, जिसका अवसान कोई नहीं देखता, जो समस्त जगत् का सम्मोहन करनेवाला है, जिसके प्रकाश और प्रवृत्ति से पुरुषार्थ का प्रयोजन सिद्ध होता है, जो सांख्य ज्ञानशालियों की निष्ठा एवं गति का आश्रय है, जो अपना संग देनेवाला है, जो अव्यक्त, अमृत, प्रकृति, ब्रह्म, शाश्वत, प्रधान, स्वयंभू, परमगुह्य एवं सत्त्वगुणमय है, जिसका विभाग नहीं है, उस शुक्र, अविनाशी, बहुवाचक परमब्रह्म को हमारा नित्य बारम्बार नमस्कार है ।।१०८–११२।। सतयुग में किसी प्रकार के कर्म करने की कोई प्रवृत्ति नहीं थी, अकार्य के करने की प्रवृत्ति तब किस प्रकार से हो सकती थी, लोक में जो कुछ भी कृताकृत अच्छे या बुरे कार्यकलाप हैं उन सबको एक बार में ही उस परब्रह्म ने किया। सुनने योग्य, सुना हुआ, साधुत्व, असाधुत्व, जानने योग्य, मानने योग्य, स्पर्श करने योग्य, भोजन करने योग्य, देखने योग्य, सुनने योग्य, जानने योग्य आदि-आदि जितने भी कृताकृत

+ नास्त्ययं श्लोकः ख. घ. पुस्तकयोः।

दर्शितं यदनेनैव ज्ञानं तद्वै सुरर्षिणाम् । यद्वै दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति ।।
सर्वाणि सर्वान्सर्वाश्च भगवानेव सोऽब्रवीत् ।।११५।।
यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमन्यते । * येनेदं क्रियते पूर्वं तदन्येन विभावितम् ।।११६।।
यदा तु क्रियते किंचित्केन चिद्वाङ्मयं क्वचित् । तेनैव तत्कृतं पूर्व कर्तृणां प्रतिभाति वै ।।११७।।
विरक्तं चातिरिक्तं च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये । धर्माधर्मौ सुखं दुःखं मृत्युश्चामृतमेव च ।।
ऊर्ध्वं तिर्यगधोभागस्तस्यैवादृष्टकारणम् ।।११८।।
स्वायंभुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रत्येकविधं भवति त्रेतास्विह पुनः पुनः ।।११९।।
व्यस्यते ह्येकविद्यं तदद्वापरेषु पुनः पुनः । ब्रह्मा चैतदुवाचाऽऽदौ तस्मिन्वैवस्वतेऽन्तरे ।।१२०।।
आवर्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः । कुर्वन्ति संहिता ह्येते जायमानाः परस्परम् ।।१२१।।
अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणां स्मृतानि वै । ता एव संहिता ह्येत आवर्तन्ते पुनः पुनः ।।१२२।।
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे । युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुनः पुनः ।।१२३।।
द्वापरेष्विह सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः । तेषां गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुनः ।।
ताः शाखास्तत्र कर्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ।।१२४।।

कार्यकलाप इस जगत् में हैं, वे सभी उस परब्रह्म के किये हुए हैं। भगवान् ने सब प्रकार के ज्ञान, सभी वेद एवं सम्पूर्ण संहिताओं का उपदेश एवं देवताओं और ऋषियों को जो ज्ञान प्रदर्शित किये हैं, जो कुछ दिखलाया है उसका अनुसन्धान दूसरा कौन कर सकता है ? इसके अतिरिक्त जब-जब अन्यान्य शास्त्रवेत्तागण जिन-जिन ज्ञानों एवं पदार्थों का तत्त्व चिन्तन करते हैं, वे सब भी उसी अव्यय ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित हुए हैं। जो लोग कहीं पर किसी समय में जिस किसी वाङ्मय के ज्ञानपथ का आविष्कार करते हैं, वे सब भी उसी ब्रह्म के द्वारा विरचित हैं। वास्तव में सभी कर्त्ताओं का वही आदिकर्त्ता है ।।११३-११७।। विरक्त, अतिरिक्त, ज्ञान, अज्ञान, प्रिय, अप्रिय, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, मृत्यु, अमरता, ऊर्ध्व, तिर्यक् और अधोभाग-ये सभी उस ब्रह्म के अदृष्ट कारण से सम्बद्ध हैं। इस पृथ्वीतल पर प्रत्येक त्रेतायुग में सर्वप्रथम विधाता परमेष्ठी पितामह के पुत्र स्वायंभुव मनु ही एकमात्र समस्त विद्याओं के ज्ञाता होकर द्वापर युग में उस एक विद्या का विभाग करते हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में सर्वप्रथम ब्रह्मा ही इस समस्त विद्या का उपदेश करते हैं। तदनन्तर प्रत्येक युग में पिता से पुत्र एवं पुत्र से पिता इस प्रकार परस्पर उत्पन्न होने पर बारम्बार संहिताओं का प्रवर्तन करते हैं ।।११८-१२१।। जिन अट्ठासी सहस्र वेदज्ञ ऋषियों की चर्चा ऊपर स्मरण की गयी है, वे ही इन संहिताओं का प्रत्येक युग में प्रवर्तन करते हैं। दक्षिणायन में सूर्य के अवस्थित होने पर जो श्मशान वास करनेवाले मुनिगण हैं वे ही प्रत्येक युग में उन शाखाओं का विभाग करते हैं। इस प्रकार सभी द्वापर युगों में श्रुतिज्ञाता ऋषियों द्वारा संहिताओं की रचना होती है, उन्हीं के गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले वेद की शाखाओं का पुनः-पुनः विभाजन करते हैं। वेद की वे शाखाएँ तथा उनके रचयितागण युगक्षय होने पर भी विद्यमान रहते हैं ।।१२२-१२४।। अतीत एवं भविष्यत्कालीन सभी मन्वन्तरों

+ इदमर्धस्थाने भयेदं क्रियते पूर्वं नैतदन्येन भाषितमिति ख. घ. ङ. पुस्तकेषु।

एवमेव तु विज्ञेयं व्यतीतानागतेष्विह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ।।१२५।।
अतीतेषु अतीतानि वर्तन्ते सांप्रतेषु च । भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ।।१२६।।
पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं वर्तमानेन चोभयम् । एतेन क्रमयोगेन (ण) मन्वन्तरविनिश्चयः ।।१२७।।
एवं देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये । मन्त्रैः सहोर्ध्वं गच्छन्ति ह्यावर्तन्ते च तैः सह ।।१२८।।
जनलोकात्सुराः सर्वे पशुकल्पात्पुनः पुनः । पर्याप्तकाले संप्राप्ते संभूता नैव (ध) नस्य तु ।।१२९।।
अवश्यंभाविनाऽर्थेन संबध्यन्ते तदा तु ते । ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्वकम् ।।१३०।।
निवर्तते तदा वृतिस्तेषामादोषदर्शनात् । एवं देवयुगानीह दश कृत्वा विवर्तते ।।१३१।।
जनलोकात्तपोलोकं गच्छन्तीहानिवर्तनम् । एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ।।
निधनं ब्रह्मलोके वै गतानि मुनिभिः सह ।।१३२।।
न शक्यमानुपूर्वेण तेषां वक्तुं सविस्तरान् । अनादित्वाच्च कालस्य असंख्यानाच्च सर्वशः ।।१३३।।
मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्पैः पुरा सह । पितृभिर्मुनिभिर्देवैः सार्धं सप्तर्षिभिश्च वै ।।
कालेन प्रतिसृष्टानां युगानां च निवर्तनम् ।।१३४।।
एतेन क्रमयोगेन (ण) कल्पमन्वन्तराणि तु । सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ।।१३५।।

में इसी प्रकार वैदिक शाखाओं का प्रणयन होता है। अतीतकाल में जो ऋषिगण होते हैं वे वर्तमान काल में भी वर्तमान रहते हैं एवं भविष्यत्काल में जो ऋषिगण उत्पन्न होंगे वे भी वर्तमानकाल में वर्णित होते हैं। अतीत द्वारा भविष्यत्काल की घटनाओं को जान लेना चाहिए इसी प्रकार वर्तमान द्वारा अतीत तथा भविष्य–दोनों की जानकारी होनी चाहिए–इसी क्रम द्वारा मन्वन्तरों का निश्चय करना चाहिए ।।१२५–१२७।। देवता, पितर, ऋषि और मनुगण सभी मंत्रों के साथ ऊर्ध्वलोक को गमन करते हैं, और उन्हीं मंत्रों के साथ पुनः इहलोक में वापस आते हैं। सभी देवगण इस मर्त्यलोक से पशुकल्पपर्यन्त पुनः पर्याप्त समय व्यतीत होने पर जन्म ग्रहण करते हैं,...............(?)। अवश्य घटित होनेवाले विधि के विधान से सम्बन्ध रख वे रागादिवश हो दोषपूर्ण जन्म का दर्शन करते हैं, अर्थात् विधिवश उन्हें भी पापयोनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है ।।१२८–१३०।। उनकी यह परिपाटी अपने पापों के फलों का अनुभव कर लेने पर निवृत्त हो जाती है और इस प्रकार दस देवयुगों तक उन पापयोनियों में भ्रमण कर वे निवृत्त होते हैं। जनलोक से वे तपोलोक को जाते हैं, जहाँ से पुनः नहीं लौटते। इस प्रकार सहस्रों देवयुग इस पृथ्वी पर व्यतीत हो चुके हैं। मुनियों के साथ मृत्युलाभ कर वहाँ से वे ब्रह्मलोक को जाते हैं। विस्तारपूर्वक उनका क्रमिक वर्णन काल के अनादि एवं असंख्य होने के कारण नहीं किया जा सकता। जो मन्वन्तर, प्राचीनकाल में कल्प तथा युगादि अपने समय में होनेवाले पितरों, मुनियों, देवताओं एवं सप्तर्षियों के साथ काल की महिमावश व्यतीत हो चुके हैं, उसी प्रकार एवं उसी क्रम से अपने समय में होनेवाली प्रजाओं के साथ सैकड़ों, सहस्रों अन्य कल्प तथा मन्वन्तर भी व्यतीत हो चुके हैं ।।१३१–१३५।। एक मन्वन्तर की समाप्ति पर सबका संहार हो जाता है, और संहार के बाद फिर देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनु सबकी

मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः। देवतानामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च ।।१३६।।
न शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि। विस्तरस्तु निसर्गस्य संहारस्य च सर्वशः ।।
मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत ।।१३७।।
देवतानामृषीणां च संख्यानार्थविशारदैः। त्रिंशत्कोट्यस्तु संपूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विजैः ।।१३८।।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतानि च संख्यया। विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं सांधिकाद्विना ।।१३९।।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता। वत्सरेणैव दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः ।।१४०।।
अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम्। द्विपञ्चाशत्तथाऽन्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।।१४१।।
चतुर्दशगुणो ह्येष काल आभूतसंप्लवः। पूर्णं युगसहस्रं स्यात्तदहर्ब्रह्मणः स्मृतम् ।।१४२।।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः। ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहदेवर्षिदानवैः ।।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवदेवं महेश्वरम् ।।१४३।।
स स्रष्टा सर्वभूतानि कल्पादिषु पुनः पुनः। इत्येष स्थितिकालो वै मनोर्देवर्षिभिः सह ।।१४४।।
सर्वमन्वन्तराणां वै प्रतिसंधिं निबोधत। युगाख्या या समुद्दिष्टा प्रागेवास्मिन्मयाऽनघाः ।।१४५।।
कृतत्रेतादिसंयुक्तं चतुर्युगमिति स्मृतम्। तदेकसप्ततिगुणं परिवृत्तं तु साधिकम् ।।
मनोरेतमधीकारं प्रोवाच भगवान्प्रभुः ।।१४६।।

पुनः सृष्टि (उत्पत्ति) होती है। इन संहार एवं सृष्टि का विस्तारपूर्वक समग्र क्रमबद्ध वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता। मन्वन्तर की संख्या मनुष्य के वर्षों से बतला रहा हूँ, सुनिये ।।१३६-१३७।। देवताओं तथा ऋषियों की संख्या को भली-भाँति जाननेवाले द्विजगण मन्वन्तर के वर्ष की संख्या इस प्रकार बतलाते हैं। तीस करोड़, सड़सठ नियुत (एक नियुत को दस लाख माना गया है) बीस सहस्र वर्ष संधिकाल के बिना एक मन्वन्तर की अवधि मानी गयी है ।।१३८-१३९।। मन्वन्तर की यह संख्या मानव परिमाणों से बतलायी गयी है, अब दिव्य (देवताओं के) वर्षों से मन्वन्तर का प्रमाण बतला रहा हूँ। आठ लाख बावन सहस्र दिव्य वर्ष की संख्या स्मरण की जाती है। इस कालावधि का चौदह गुना काल महाप्रलय का है। जबकि एक सहस्र युग बीत जाते हैं-इसे ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है ।।१४०-१४२।। उस समय सभी जीव-समूह सूर्य की किरणों से जब भस्म होने लगते हैं तब देवताओं, ऋषियों और दानवों के साथ ब्रह्मा को आगे कर सुरश्रेष्ठ देवदेव महादेव के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। वे देवदेव महेश्वर प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में सभी जीव-समूहों की पुनः-पुनः सृष्टि करते हैं। देवताओं और ऋषियों के साथ मनु की स्थिति की वह कालावधि मैं बतला चुका, अब सभी मन्वन्तरों में होनेवाली प्रतिसंधि को सुनिये। निष्पाप ऋषिगण, उस प्रतिसंधि को सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के नाम से पहले ही मैं इसी प्रसंग में बतला रहा चुका हूँ! सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग-ये चार युग स्मरण किये गये हैं-इसका इकहत्तर गुना काल एक मनु का अधिकार-काल भगवान् ने बतलाया है ।।१४३-१४६।। इसी प्रकार

एवं मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम्। अतीतानागतानां वै वर्तमानेन कीर्तितम् ।।१४७।।
इत्येष कीर्तितः सर्गो मनोः स्वायंभुवस्य ह। प्रतिसंधिं तु वक्ष्यामि तस्य चैवापरस्य तु ।।१४८।।
मन्वन्तरं यथा पूर्वमृषिभिर्दैवतैः सह। अवश्यंभाविनाऽर्थेन यथा तद्वै निवर्तते ।।१४९।।
अस्मिन्मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये। सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो मनवस्तथा।।
मन्वन्तरस्य काले तु संपूर्णे साधकास्तथा ।।१५०।।
क्षीणाधिकाराः संवृत्ता बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः। महर्लोकाय ते सर्वे उन्मुखा दधिरे गतिम् ।।१५१।।
ततो मन्वन्तरे तस्मिन्प्रक्षीणा देवतास्तु ताः। संपूर्णे स्थितिकाले तु तिष्ठन्त्येकं कृतं युगम् ।।१५२।।
उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वराः। देवताः पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ।।१५३।।
मन्वन्तरे तु संपूर्णे यद्यन्यद्वै कलौ युगे। संपद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा ।।१५४।।
पथा कृतस्य संतानः कलिपूर्वः स्मृतो बुधैः। तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिर्मन्वन्तरस्य च ।।१५५।।
क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे प्रवृत्ते चापरे पुनः। मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ।।१५६।।
सप्तर्षयो मनुश्चैव कालावेक्षास्तु ये स्थिताः। मन्वन्तरं प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिताः ।।१५७।।
मन्वन्तरव्यवस्थार्थं संतत्यर्थं च सर्वशः। पूर्ववत्संप्रवर्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ।।१५८।।

सभी मन्वन्तरों के लक्षण बतलाये गये हैं, वर्तमान द्वारा अतीत एवं भविष्य में होनेवाले मन्वन्तरों का वर्णन भी हो चुका। स्वायंभुव मनु का सृष्टिक्रम इस प्रकार कहा जा चुका। अब उस स्वायंभुव मन्वन्तर तथा अन्यान्य मन्वन्तरों की प्रतिसन्धि का वर्णन कर रहा हूँ। अवश्य घटित होनेवाली विधि की इच्छा (भवितव्यता) से प्रेरित ऋषियों और देवताओं के साथ पूर्वकाल में जिस प्रकार मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं उसी प्रकार भविष्य में भी होंगे। प्राचीनकाल में इस मन्वन्तर में समस्त त्रैलोक्य के ऐश्वर्यशाली जो सप्तर्षि, देवगण, पितर तथा मनुगण रहते हैं वे मन्वन्तर के समस्त काल में सृष्टि व्यापार के साधक होते हैं, तदनन्तर अपने समय का दूसरा पक्ष आया जान अधिकार से च्युत हो महर्लोक की ओर गमन करते हैं ।।१४७–१५१।। मन्वन्तर में अधिकारच्युत होनेवाले वे देवगण सम्पूर्ण स्थितिकाल में एक सतयुग तक विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य मन्वन्तरों में होनेवाले ऐश्वर्यशाली जितने देवता, पितर, ऋषि और मानवगण हैं, वे भी उत्पन्न होंगे। सभी मन्वन्तरों में कलियुग में उत्पन्न होनेवाली उन शेष प्रजाओं में ही सतयुग की प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार बुद्धिमान् लोग सत्ययुग की प्रजाओं के पूर्व कलियुग की प्रजाओं का अस्तित्व मानते हैं, उसी प्रकार एक मन्वन्तर के पूर्व दूसरे मन्वन्तर की सृष्टि का अस्तित्व रहता है ।।१५२–१५५।। पूर्व मन्वन्तर की समाप्ति होने पर जबकि पिछला मन्वन्तर प्रारम्भ होता है, सत्ययुग के प्रारम्भ में जो कलियुग के शेष सप्तर्षिगण तथा मनु मन्वन्तर की व्यवस्था तथा सृष्टि के विस्तार के लिए काल की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहते हैं तथा तपस्या में निरत हो अगले मन्वन्तर की प्रतीक्षा में अपना कालयापन करते हैं ।।१५६–१५८।। उस समय पहले की तरह सृष्टि हो जाने पर जब ओषधियाँ

द्वन्द्वेषु संप्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वोषधीषु च। प्रजासु च निकेतासु संस्थितासु क्वचित्क्वचित् ।।१५९।।
वार्तायां तु प्रवृत्तायां सद्धर्म ऋषिभाविते। निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।१६०।।
अग्रामनगरे चैव वर्णाश्रमविवर्जिते। पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिकाः ।।
सप्तर्षयो मनुश्चैव संतानार्थं व्यवस्थिताः ।।१६१।।
प्रजार्थं तपसां तेषां तपः परमदुश्चरम्। उत्पद्यन्तीह सर्वेषां निधनेष्विह सर्वशः ।।१६२।।
देवासुराः पितृगणा मुनयो मनवस्तथा। सर्पा भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ।।१६३।।
ततस्तेषां तु ये शिष्टाः शिष्टाचारान्प्रचक्षते। सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।।
प्रारभन्ते च कर्माणि मनुष्या दैवतैः सह ।।१६४।।
मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुखे ततः। पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिते धर्मे तु सर्वशः ।।१६५।।
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण गत्वाऽनृत्यं तु वै ततः। पितॄणां प्रजया चैव देवानामिज्यया तथा ।।१६६।।
शतं वर्षसहस्राणि धर्मे वर्णात्मके स्थिताः। त्रयीं वार्तां दण्डनीतिं धर्मान्वर्णाश्रमांस्तथा ।।
स्थापयित्वाऽऽश्रमांश्चैव स्वर्गाय दधिरे मतीः ।।१६७।।
पूर्वं देवेषु तेष्वेव स्वर्गाय प्रमुखेषु च। पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मेण कृत्स्नशः ।।१६८।।
मन्वन्तरे परावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वशः। मन्त्रैः सहोर्ध्वं गच्छन्ति महर्लोकमनामयम् ।।१६९।।

पृथ्वी पर उत्पन्न हो जाती हैं, स्त्री-पुरुष अपने-अपने कर्मों में पूर्ववत् प्रवृत्त हो जाते हैं, कहीं-कहीं पर प्रजाएँ अपना-अपना निवास-स्थान बनाकर निवास करने लगती हैं, जीविका का प्रशन चलने लगता है, स्थावर-जङ्गम जगत् के नष्ट हो जाने पर सब लोग आनन्दरहित जीवन बिताने लगते हैं, वर्णाश्रम की व्यवस्था नहीं रह जाती, ग्राम एवं नगरों का अस्तित्व नहीं रह जाता, तब पूर्व मन्वन्तर के बचे हुए परम धार्मिक प्रवृत्तिवाले सप्तर्षि तथा मनु सन्तानोत्पत्ति के लिए उद्यमशील होते हैं और इसके लिए परम कठोर तप करते हैं। सबका विनाश हो जाने पर इस पृथ्वी पर देवता, असुर, पितर, मुनि, मनुष्य, सर्प, भूत, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादि की उत्पत्ति होती है ।।१५९-१६३।। इस प्रकार उस समय मन्वन्तर के प्रारम्भ में उन बची हुई प्रजाओं में जो शेष रह जाते हैं वे शिष्टाचार का उपदेश करते हैं तथा सातों ऋषिगण, मनु और मनुष्यगण देवताओं के साथ सृष्टि का कार्य प्रारम्भ करते हैं। तदनन्तर त्रेता युग के प्रारम्भ होने पर जब चारों ओर धर्म की प्रतिष्ठा हो चुकती है, सर्वप्रथम देवगण तदनन्तर वे अवशिष्ट मानवगण ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा ऋषियों के ऋण से, सन्तानोत्पत्ति करके पितरों के ऋण से और यज्ञ द्वारा देवताओं के ऋण से मुक्त होते हैं। उन लोगों ने इस प्रकार एक लाख वर्ष तक वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था में व्यवस्थित रह त्रयी, वार्ता, दण्डनीति, वर्णाश्रम धर्म आदि की प्रतिष्ठा कर तथा चारों आश्रमों की विधिवत् स्थापना कर स्वर्ग गमन के लिए विचार किया ।।१६४-१६७।। पूर्वकाल में उन्हीं प्रमुख देवताओं के स्वर्गलोक के लिए प्रस्थित हो जाने पर पहले देवगण तदनन्तर वे लोग धर्म के साथ पूर्णतः संयुक्त हुए। मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर वे सब लोग अपना स्थान छोड़कर मंत्रों के साथ अनामय महर्लोक को प्रस्थित हो जाते हैं। विकार-

विनिवृत्तविकारास्ते मानसीं सिद्धिमास्थिताः। अवेक्ष्यमाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ।।१७०।।
ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा। शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वशः ।।
उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ।।१७१।।
ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै। सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ।।१७२।।
सप्तर्षीणां मनोश्चैव देवानां पितृभिः सह। निधनानीह पूर्वेषामादिना च भविष्यताम् ।।१७३।।
तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात्। एवं पूर्वानुपूर्वेण स्थितिरेषाऽनवस्थिता ।।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् ।।१७४।।
एवं मन्वन्तराणां तु प्रतिसंधानलक्षणम्। अतीतानागतानां तु प्रोक्तं स्वायंभुवेन तु ।।१७५।।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणां तु साधनम्। एवमत्यन्तविच्छिन्नं भवत्याभूतसंप्लवात् ।।१७६।।
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि एकान्ततस्तानि महर्गतानि ।।
महर्जनं चैव जनं तपश्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ।।१७७।।
तद्भाविनां तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ।।
सत्ये स्थितानीह तदा तु तानि प्राप्ते विकारे प्रतिसर्गकाले ।।१७८।।
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि मुञ्चन्ति सत्यं तु ततोऽपरान्ते ।।
ततोऽभियोगाद्विषमप्रमाणं विशन्ति नारायणमेव देवम् ।।१७९।।

विहीन मानसिक सिद्धियों से सम्पन्न, जितेन्द्रिय वे लोग इस प्रकार महाप्रलयपर्यन्त अवस्थित रहकर मन्वन्तर का परिवर्तन देखते हैं। तदनन्तर उन सभी देवताओं के विगत हो जाने पर त्रैलोक्य में सभी देवताओं के स्थान शून्य में परिणत हो जाते हैं तब उनमें अन्य जो स्वर्गवासी देवगण हैं वे उपस्थित होते हैं ।।१६८-१७१।। और अपने सत्य, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान तथा तपस्या के बल पर उन शून्य स्थानों की पूर्ति करते हैं। सातों ऋषि, मनु, देवगण और पितरगण इनमें से पूर्वकाल में जो हो चुके हैं, वे भी भविष्य में होनेवालों के साथ ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। उन सबों का अत्यन्त विच्छेद इस लोक में एक मन्वन्तर के व्यतीत होने पर घटित होता है। मन्वन्तरों में इस प्रकार पूर्व के मन्वन्तरों के समान प्रलयकाल-पर्यन्त निश्चित परिवर्तन के साथ सृष्टि की स्थिति होती है। इस प्रकार व्यतीत एवं भविष्य में आनेवाले मन्वन्तरों के प्रतिसंधान का लक्षण स्वायंभुव ने बतलाया है ।।१७२-१७५।। बीते हुए मन्वन्तरों में भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का साधन इस प्रकार महाप्रलयपर्यन्त अत्यन्त विच्छिन्न होता है। मन्वन्तरों के परिवर्तन होने पर सभी महर्लोक को प्राप्त होते हैं, फिर महर्लोक के बाद क्रमशः जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक में प्राप्त होते हैं ।।१७६-१७७।। उनके नानात्व दर्शन एवं प्रत्यय के कारण मन्वन्तरों के परिवर्तन के उपरान्त वे उस सत्यलोक को छोड़ देते हैं और तदनन्तर प्रमाणरहित (अप्रमेय) नारायण भगवान् के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। विधि की इच्छा से चिरकाल से प्रवृत्त मन्वन्तरों के इन परिवर्तनों में विनाश और उत्पत्ति द्वारा बँधा हुआ परिवर्तनशील जीवसमूह एक क्षण भी कहीं पर स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार ऋषियों

मन्वन्तराणां परिवर्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात् ।।
क्षणं रसं तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवन्दमानः ।।१८०।।
इत्युत्तराण्येवमृषिस्तुतानां धर्मात्मनां दिव्यदृशां मनूनाम् ।।
वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्यं दिव्यौजसा व्याससमासयोगैः ।।१८१।।
सर्वाणि राजर्षिसुरर्षिमन्ति ब्रह्मर्षिदेवोरगवन्ति चैव ।।
सुरेशसप्तर्षिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक्परिवर्तनानि ।।१८२।।
उदारवंशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेधाभिसमेधितानाम् ।।
कीर्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम् ।।१८३।।
स्वर्गीयमेतत्परमं पवित्रं पुत्रीयमेतच्च परं रहस्यम् ।।
जप्यं महत्पर्वसु चैतदग्र्यं दुःस्वप्नशान्तिः परमायुषेयम् ।।१८४।।
प्रजेशदेवर्षिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूतिं प्रथितामजस्य ।।
ममापि विख्यापनसंयमाय सिद्धिं जुषध्वं सुमहेशतत्त्वम् ।।१८५।।
इत्येतदन्तरं प्रोक्तं मनोः स्वायंभुवस्य तु । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।१८६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रजापतिवंशानुकीर्तनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

द्वारा सम्मानित, दिव्यदृष्टिसम्पन्न धर्मात्मा मनुगण के जीवन विवरण को, जिसका वायु ने वर्णन किया है, कहीं पर व्यास (विस्तारपूर्वक) और समास (संक्षेप) शैली में वर्णन किया जा चुका, इसे दिव्य बल से लोग देख सकते हैं। ये सारे विवरण राजर्षियों, देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवताओं तथा सर्पों के कथानक से संयुक्त हैं, सुरेश्वर इन्द्र सातों ऋषि, पितरों, प्रजापतियों एवं भली तरह होनेवाले परिवर्तनों से युक्त हैं ।।१७८-१८२।। अति उदार वंश एवं कुल में उत्पन्न होनेवाले, परम कान्ति, सूक्ष्म बुद्धि, सत् कीर्ति, द्युति, ख्याति आदि से सम्पन्न ऐश्वर्यशाली महापुरुषों का यशोगान अति पुण्यप्रद है। अति गोपनीय परम पवित्र, स्वर्ग प्रदान करनेवाले, पुत्रप्रद एवं सर्वश्रेष्ठ इस चरित्र को बड़े-बड़े पर्वों के अवसरों पर जपना चाहिए, ऐसा करने से दुःस्वप्नों की शान्ति एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्रजापति, मनु, देवर्षिगण एवं अजन्मा ब्रह्मा की पुण्यप्रद सुप्रसिद्ध सन्तानों के उत्पत्ति-विवरण से संयुक्त, महेश्वर के तत्त्वपूर्ण आख्यान से संवलित, हमारे यश को बढ़ानेवाले इस महापुराण के श्रवण से आप लोग सिद्धियाँ प्राप्त करें। स्वायंभुव मन्वन्तर का वृत्तान्त इस प्रकार क्रमशः विस्तारपूर्वक कहा जा चुका, अब इसके बाद क्या वर्णन करूँ? ।।१८३-१८६।।

श्री वायुमहापुराण में प्रजापति वंशानुकीर्तन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६१।।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

पृथिवीदोहनम्

शांशपायन उवाच

क्रमं मन्वन्तराणां तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः। दैवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरे मनोः ।।१।।

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युरतीतानागतानि ह। समासाद्विस्तराच्चैव ब्रुवतो वै निबोधत ।।२।।
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा। औत्तमस्तामसश्चैव तथा रैवतचाक्षुषौ ।।
षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ।।३।।
सावर्णाः पञ्चरौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा। वक्ष्याम्येतात्पुरस्तात्तु मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।४।।
मनवः पञ्च येऽतीता मानवांस्तान्निबोधत। मन्वन्तरं मया चोक्तं क्रान्तं स्वायंभुवस्य ह ।।५।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य च। प्रजासर्गं समासेन द्वितीयस्य महात्मनः ।।६।।
*आसन्वै तुषिता देवा मनुस्वारोचिषेऽन्तरे। पारावताश्च विद्वांसो द्वावेव तु गणौ स्मृतौ ।।७।।
तुषितायां समुत्पन्नः ऋतोः पुत्राः स्वरोचिषः। पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशौ तौ गणौ स्मृतौ ।।
छन्दजाश्च चतुर्विंशदेवास्ते वै तदा स्मृताः ।।८।।

अध्याय ६२

शांशपायन ने कहा–अब मैं मन्वन्तरों का क्रम एवं उन मन्वन्तरों में होनेवाले समान देवताओं के विषय में जानना चाहता हूँ ।।१।।

सूत ने कहा–अतीत एवं भविष्यत्काल में होनेवाले जितने मन्वन्तर हैं, उनका यथासम्भव संक्षेप और विस्तारपूर्वक मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। मनुओं में सर्वप्रथम स्वायंभुव मनु हैं, तदनन्तर स्वारोचिष मनु का कार्यकाल आता है, इसी प्रकार उनके बाद औत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष मनु के कार्यकाल ये छह अतीतकालीन मनु हैं, आठ भविष्यत्कालीन मनुओं के बारे में बतला रहा हूँ ।।२–३।। सावर्ण, पञ्चरौच्य, भौत्य और वैवस्वत–इन चार मन्वन्तरों का विवरण वैवस्वत मनु के वर्णन के साथ करूँगा। पूर्व वर्णित उन पाँच मनुओं का वर्णन सुनिये, जो व्यतीत हो चुके हैं। उनमें से सर्वप्रथम स्वायंभुव मनु का वर्णन कर रहा हूँ जो दूसरे मनु हैं ।।४–६।। उस स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित तथा विद्वान् पारावत नामक देवगण थे–ये दो गण उक्त मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं। तुषित के गर्भ से समुत्पन्न स्वारोचिष क्रतु के पुत्र पारावत और शिष्ट हैं, जो बारह–बारह के गण रूप में कहे गये हैं, छन्दज देवगण स्वारोचिष मन्वन्तर में चौबीस स्मरण किये गये ।।७–८।। धैवस्यस, वामान्य, गोप, देवायत, देव भगवान्,

---

+ इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

धैवस्यशोऽथ वामान्यो गोपा देवायतस्तथा। अजश्च भगवान्देत्रा दुरोणश्च महाबलः ।।९।।
आपश्चापि महाबाहुर्महौजाश्चापि वीर्यवान्। चिकित्वान्निभृतो यश्च अंशो यश्चैव पठ्यते ।।१०।।
×अजश्च द्वादशस्तेषां तुषिताः परिकीर्तिताः। इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदाऽऽसन्सोमपायिनः ।।११।।
प्रचेताश्चैव यो देवो विश्वदेवास्तथैव च। समञ्जो विश्रुतो यश्च अजिह्मश्चारिमर्दनः ।।१२।।
अजिह्मानमहीयानौ विद्यावन्तौ तथैव च। अजोषौ च महाभागौ यवीयश्च महाबलः ।।१३।।
होता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ताः परावताः। इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेऽन्तरे ।।१४।।
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः। तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्वैधश्च लोकविश्रुतः ।।१५।।
ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च। भार्गवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ।।१६।।
(÷पौलस्त्यश्चैव दत्तात्रिरात्रेया निश्चलस्तथा। पौलहस्य च धावांस्तु एते सप्तर्षयः स्मृताः) ।।१७।।
चैत्रः कविरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः। बृहद्गुहो नवश्चैव शुभाश्चैते नव स्मृताः ।।१८।।
मनोः स्वारोचिषस्यैते पुत्रा वंशकराः स्मृताः। पुराणे परिसंख्याता द्वितीयं चैतदन्तरम् ।।१९।।
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम्। मूलं मन्वन्तरस्यैते तेषां चैवान्तरे प्रजाः ।।२०।।
ऋषीणां देवताः पुत्राः पितरो देवसूनवः। ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चयः ।।२१।।
मनोः क्षत्रं विशश्चैव सप्तर्षिभ्यो द्विजातयः। एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं समासान्न तु विस्तरात् ।।२२।।

अज, महाबलवान् दुरोण, महाबाहु आप, महापराक्रमी महौजा, चिकित्वान्, निभृत एवं अंश ये बारह तुषित नाम से पुकारे जाते हैं, इनमें अज बारहवें हैं। ये सभी क्रतु के पुत्र स्वारोचिष मन्वन्तर में सोमपान करते थे ।।९–११।। प्रचेता, विश्वदेव, समञ्ज, विश्रुत, अजिह्म, अरिमर्दन, विद्वान् अजिह्मान और महीयान, महाभाग्यशाली अज, उष, महाबलवान् यवीय, होता एवं यज्वा–ये परम पराक्रमी पारावतगण हैं। ये स्वारोचिष मन्वन्तर के देव समूह थे। ये उपर्युक्त चौबीस देवता उस समय सोमपान करनेवाले थे। लोकप्रसिद्ध वैध देवताओं का इन्द्र (स्वामी) था ।।१२–१५।। वसिष्ठ के पुत्र ऊर्ज, कश्यप के पुत्र स्तम्भ, भृगु के पुत्र द्रोण, अंगिरा के पुत्र ऋषभ, पुलस्त्य के पुत्र दत्तात्रि, अत्रि के पुत्र निश्चल तथा पुलह के पुत्र धावान् ये सात ऋषि कहे गये हैं ।।१६–१७।। चैत्र, कविरुत, कृतान्त, विभृत, रवि, बृह, गुह, नव और शुभ ये नव स्वारोचिष मनु के वंश वृद्धि करनेवाले पुत्र पुराणों में परिगणित कहे जाते हैं, यह द्वितीय मन्वन्तर का वृत्तान्त है। सातों ऋषि, मनु, देवगण और पितर–ये चार प्रत्येक मन्वन्तर के मूल माने गये हैं, इनके अतिरिक्त जो प्रजाएँ हैं, वे सब इन्हीं के अवान्तरभूत हैं। देवगण ऋषियों के, पितरगण देवताओं के तथा ऋषिगण देवताओं के पुत्र कहे गये हैं–ऐसा शास्त्रों का निश्चय है ।।१८–२१।। मनु से क्षत्रिय और वैश्यों की तथा सातों ऋषियों से द्विजातियों की उत्पत्ति कही गयी है–यही मन्वन्तर का विस्तृत नहीं प्रत्युत संक्षिप्त विवरण समझना चाहिए। स्वायंभुव

× इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

स्वायंभुवेन विस्तारा ज्ञेयः स्वारोचिषस्य तु । न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वर्षशतैरपि ।।
पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजानां वै कुले कुले ।।२३।।
तृतीयस्त्वथ पर्याय औत्तमस्यान्तरे मनोः । पञ्च देवगणाः प्रोक्तास्तान्वक्ष्यामि निबोधत ।।
सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्तिनः । प्रतर्दनाः शिवाः सत्त्वा गणा द्वादश वै स्मृताः ।।२४।।
सत्यो धृतिर्दमो दान्तः क्षमः क्षामो धृतिः शुचिः । ईषोर्ज्जाश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्मांश्चैव द्वादश ।।
इत्येते नामभिः क्रान्ताः सुधामानस्तु द्वादश ।।२५।।
सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्वसुः । विश्वधा विश्वकर्मा च मनस्वन्तो विराड्यशाः ।।२६।।
ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्तिमान्वंशकारिणः । अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसुः ।।२७।।
दिनक्रतुः सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विनः । केतुमांश्चैव इत्येते कीर्तितास्तु प्रमर्दनाः ।।२८।।
हंसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ । सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ ।।२९।।
यत्तु वाहयतिश्चैव सुवित्तसुनयस्तथा । शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापराः ।।३०।।
सत्त्वानामपि नामानि निबोधत यथामतम् । दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्वः शंभुस्तथैव च ।।३१।।
स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वर्चोधा मुह्यसर्वशः । वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च ।।३२।।
सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापराः । इत्येता देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनोः ।।३३।।
अजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौषधिर्नयः । देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा ।।३४।।

मनु द्वारा जिस प्रकार सृष्टि विस्तार हुआ है, उसी प्रकार स्वारोचिष मनु द्वारा भी सृष्टि विस्तार समझना चाहिए। प्रत्येक कुलों में प्रजाओं के उत्पन्न होने के कारण तथा एक ही प्रकार के नाम पड़ने के कारण विस्तारपूर्वक उसका वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता ।।२२-२३।। अब इसके उपरान्त तृतीय मनु औत्तम की कार्यविधि का वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तर में पाँच देवगण कहे गये हैं, सुनिये। सुधामा, देव, प्रतर्दन, शिव और सत्त्व ये पाँच देवगण कहे गये हैं, जिनमें प्रत्येक की संख्या बारह है। सत्य, धृति, दम, दान्त, क्षम, क्षाम, धृति, शुचि, ईष, ऊर्ज्ज, ज्येष्ठ और वपुष्मान्-ये बारह सुधामा नामक देवगण कहे गये हैं ।।२४-२५।। सहस्रधार, विश्वात्मा, शतधार (शमितार), बृहत्, वसु, विश्वकर्मा, मनस्वन्त, विराट्, यश, ज्योति, विभाव्य और कीर्तिमान् ये वंश की वृद्धि करनेवाले हैं। अन्य, अनाराधित, देव, वसु, धिष्णु, विवस्वसु, दिन, क्रतु, सुधर्मा, धृतवर्मा, यशस्वी और केतुमान्-ये प्रतर्दन गण नाम से कहे गये हैं ।।२६-२८।। हंस, स्वर, अहिहा, प्रतर्दन, यशस्कर, सुदान, वसुदान, सुमञ्जस, विष, हव्यवाह, सुवित्त और सुनय-इन्हें शिव के नाम से जानना चाहिए। यज्ञिय बारह दूसरे हैं। अब सत्य के अनुगामियों के नाम सुनिये, दिक्पति, वाक्पति, विश्व, शम्भु, स्वमृडीक, अधिप, वर्चोधा, मुह्य, वासव, सदाश्व, क्षेम और आनन्द-ये बारह सत्यगण के नाम से विख्यात हैं। यज्ञिय बारह दूसरे हैं। ये उपर्युक्त देवगण औत्तम मनु की कार्यावधि में कहे गये हैं ।।२९-३३।। अज, परशु, दिव्य, दिव्यौषधि, नय, अनुपम वीर देवानुज, महोत्साह, औशिज, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल और शुचि-

विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः। औत्तमस्य मनोः पुत्रास्त्रयोदश महात्मनः।।
एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीयं चैतदन्तरम् ।।३५।।
औत्तमो परिसंख्यातः सर्गः स्वारोचिषेण तु। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च तामसांस्तान्निबोधत।।३६।।
चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनोः। (*सत्याः स्वरूपाः सुधियो हरयश्चतुरो गणाः।।३७।।
पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनोः) । गणस्तु तेषां देवानामेकैकः पञ्चविंशकः।।३८।।
इन्द्रियाणां शतं यद्धि मुनयः प्रतिजानते। सत्यप्राणास्तु शीर्षण्यास्तमश्चैवाष्टमस्तथा।।
इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः ।।३९।।
तेषां च प्रभुदेवानां शिविरिन्द्रः प्रतापवान्। सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमाः।।४०।।
काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यपः पृथुरेव च। आत्रेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गवः।।४१।।
पौलहो वनपीठश्च गोत्रवासिष्ठ एव च। चैत्रस्तथाऽपि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे।।४२।।
जनुघण्टस्तथा शान्तिर्नरः ख्यातिर्भयस्तथा। प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्ठलोढो दृढोद्यतः।।
ऋतश्च ऋतबन्धुश्च तामसस्य मनोः सुताः ।।४३।।
पञ्चमे त्वथ पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे। गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत।।४४।।

ये तेरह महात्मा औत्तम मनु के पुत्र कहे गये हैं, जो क्षत्रियवंश की वृद्धि करनेवाले थे–यह तृतीय मन्वन्तर का संक्षिप्त विवरण है। स्वारोचिष मनु की कार्यावधि में जिस प्रकार सृष्टिविस्तार हुआ था उसी प्रकार औत्तम मनु की सृष्टि का भी विस्तार हुआ कहा गया है। अब इसके उपरान्त तामस मनु की सृष्टि का विवरण विस्तारपूर्वक क्रमशः सुनिये। चतुर्थ तामस नामक मन्वन्तर में सत्य, स्वरूप, सुधी और हरि, इन चार नामोंवाले देवगण थे। इनमें से एक–एक गण में पचीस देवता थे।।३४–३८।। इस तामस मनु की कार्यावधि में पुलस्त्य पुत्र के पुत्रों का प्रादुर्भाव हुआ था। सत्यप्राण, परम श्रेष्ठ मुनिगण जिन एक सौ इन्द्रियों को तथा आठवें तम को स्वीकार करते हैं, उनमें से वे ही इन्द्रिय समूह उस मन्वन्तर के देवगण स्मरण किये गये हैं। और जो उनका प्रभु प्रतापशाली शिवि था वही उस मन्वन्तर का इन्द्र था। हे सत्तम! इसके अनन्तर उस मन्वन्तर के सप्त ऋषियों को सुनिये।।३९–४०।। कवि के पुत्र हर्ष, कश्यप के पुत्र पृथु, अत्रि के पुत्र अग्नि, भृगु के पुत्र ज्योतिर्धामा, पुलह के पुत्र वनपीठ, गोत्र वासिष्ठ और पुलस्त्य के पुत्र चैत्र–ये तामस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं। हे ऋषिगण! जनघण्ट, शान्ति, नर, ख्याति, भय, प्रियभृत्य, अवक्षि, दृढ़ और उद्यमशील पृष्ठलोढ, ऋत और ऋतबन्धु–ये तामस मनु के पुत्र कहे गये हैं। अब पाँचवें पर्याय क्रम से आगत चरिष्णु नामक मन्वन्तर में होनेवाले सुप्रसिद्ध देवताओं के गणों को सुनिये।।४१–४४।। उस चरिष्णु नामक वसिष्ठ

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अमृतात्माभूतरजोविकुण्ठाः ससुमेधसः। चरिष्णोस्तु शुभाः पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापतेः।।
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषां तु भास्वराः ।।४५।।
स्वप्नविप्रोऽग्निभासश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा। सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोदःस्रवास्तथा ।।४६।।
प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश। अमृताभाः स्मृताः ह्येते देवाश्चारिष्णवेऽन्तरे ।।४७।।
मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यौ तथैव च। आवृतिर्विवृतिश्चैव मदो विनय एव च ।।४८।।
जेता जिष्णुः सहश्चैव द्युतिमाञ्श्रवसस्तथा। इत्येतानीह नामानि आभूतरजसां विदुः ।।४९।।
वृषभेत्ता जयो भीमः शुचिर्दान्तो यशो दमः। नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा।।
कीर्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधांस्तु निबोधत ।।५०।।
मेधा मेधातिथिश्चैव सत्यमेधास्तथैव च। पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयोमेधादयः प्रभुः ।।५१।।
दीप्तिमेधा यशोमेधा स्थिरमेधास्तथैव च। सर्वमेधाश्वमेधाश्च मतिमेधाश्च यः स्मृतः।।
मेधावान्मेधहर्ता च कीर्तितास्तु सुमेधसः ।।५२।।
विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौरुषः। पौलस्त्यो वेदबाहुश्च यजुर्नामा च काश्यपः ।।५३।।
हिरण्यरोमाङ्गिरसौ वेदश्रीश्चैव भार्गवः। ऊर्ध्वबाहुश्च वासिष्ठः पर्जन्यः पौलहस्तथा।।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेया ऋषयो रैवतान्तरे ।।५४।।
महापुराणसंभाव्यः प्रत्यङ्गपरहा शुचिः। बलबन्धुर्निरामित्रः केतुभृङ्गो दृढव्रतः।।
चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमं चैतदन्तरम् ।।५५।।

प्रजापति के अमृतात्मा, आभूतरज, विकुण्ठ और सुमेधा नाम से विख्यात चार सुपुत्रगण थे। इन चारों सुप्रसिद्ध गणों में से एक-एक की संख्या चौदह थी। ये भास्कर नाम से भी ख्यात हैं। स्वप्न, विप्र, अग्नि, भास, प्रत्येतिष्ठ, अमृत, सुमति, वाविराव, वाचिन, उदःस्रवा, प्रविराशी, वाद और प्राश–ये देवगण चारिष्ण नामक मन्वन्तर में अमृता नाम से विख्यात थे। मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद, विनय, जेता, जिष्णु, सह, द्युतिमान् और श्रव–ये नाम आभूतरज नामक गण के विख्यात हैं। वृषभेत्ता, जय, भीम, शुचि, दान्त, यश, दम, नाथ, विद्वान्, अजेय, कृश, गौर और ध्रुव, ये विकुण्ठ नामक देवगण हैं, अब सुमेधागण को सुनिये ।।४५–५०।। मेधा, मेधातिथि, सत्यमेधा, पृश्निमेधा, अल्पमेधा, भूयोमेधा प्रभृति ऐश्वर्यशाली, दीप्तिमेधा, यशोमेधा, स्थिरमेधा, सर्वमेधा, अश्वमेधा, मतिमेधा, मेधावान् और मेधहर्त्ता ये चौदह सुमेधा नाम से पुकारे जाते हैं। उन पाँचवें मन्वन्तर में उन देवगणों में परम पराक्रमी तथा पुरुषार्थी विभु नामक इन्द्र था। पुलस्त्यपुत्र वेदबाहु, कश्यपपुत्र यजु, अंगिरापुत्र हिरण्यरोमा, भृगुपुत्र वेदश्री, वसिष्ठपुत्र ऊर्ध्वबाहु, पुलहपुत्र पर्जन्य तथा अत्रिपुत्र सत्यनेत्र–ये सात ऋषि उस रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तर में थे। महापुराण संभाव्य–प्रत्यङ्गपरहा, शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृङ्ग, दृढ़व्रत–ये चरिष्णव के पुत्र थे–पाँचवें मन्वन्तर के वृत्तान्त का वर्णन कर चुका ।।५१–५५।। स्वारोचिष, औत्तम, तामस और रैवत–ये चार मनु प्रियव्रत के वंश में

स्वारोचिषोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा । प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ।।५६।।
षष्ठे खल्वथ पर्याये देवा ये चाक्षुषेऽन्तरे । आद्याः प्रसूता भाव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः ।।
महानुभावा लेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ।।५७।।
दिवौकसः सर्ग एष प्रोच्यते मातृनामभिः । अत्रेः पुत्रस्य नप्तार आरण्यस्य प्रजापतेः ।।
गणश्च तेषां देवानामेकको ह्यष्टकः स्मृताः ।।५८।।
अन्तरीक्षो वसुहयो ह्यतिथिश्च प्रियव्रतः । श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्तिताः ।।५९।।
श्येनभद्रस्तथा पश्यः पथ्यनेत्रो महायशाः । सुमनाश्च सुवेताश्च रेवतः सुप्रचेतसः ।।
द्युतिश्चैव महासत्त्वः प्रसूत्याः परिकीर्तिताः ।।६०।।
विजयः सुजयश्चैव मनोद्यानौ तथैव च । सुमतिः सुपरिश्चैव विज्ञातोऽर्थपतिश्च यः ।।
भाव्या ह्येते स्मृता देवाः पृथुकांस्तु निबोधत ।।६१।।
अजिष्टः शाक्यनो देवो वानपृष्ठस्तथैव च । शांकरः सत्यधृष्णुश्च विष्णुश्च विजयस्तथा ।।
अजितश्च महाभागः पृथुकास्ते दिवौकसः ।।६२।।
लेखांस्तथा प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत । मनोजवः प्रघासस्तु प्रचेतास्तु महायशाः ।।६३।।
वातो ध्रुवक्षितिश्चैव अद्भुतश्चैव वीर्यवान् । अवनो बृहस्पतिश्चैव लेखाः संपरिकीर्तिताः ।।६४।।
मनोजवो महावीर्यस्तेषामिन्द्रस्तदाऽभवत् । उन्नतो भार्गवश्चैव हविध्मानङ्गिरासुतः ।।६५।।
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजस्तथा । अतिमानश्च पौलस्त्यः सहिष्णुः पौलहस्तथा ।।
मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेऽन्तरे ।।६६।।

उत्पन्न हुए हैं। अब पर्याय क्रम से छठे चाक्षुष नामक मन्वन्तर में जो देवगण हो गये हैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। आद्य, प्रसूता भाव्य, पृथुक और लेख ये पाँच महानुभाव देवगण उस मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं। देवताओं की यह सृष्टि माताओं के नाम से पुकारी जाती है। प्रजापति अत्रि के पुत्र आरण्य ऋषि के ये समस्त देवगण नाती माने गये हैं। उन देवताओं के पाँचों गणों में एक-एक गण के अन्तर्गत आठ देवता स्मरण किये गये हैं ।।५६-५८।। अन्तरिक्ष, वसु, हय, अतिथि, प्रियव्रत, श्रोता, मन्ता और सुमन्ता–ये आद्य के नाम से विख्यात हैं। श्येनभद्र, पश्य, महायशस्वी पथ्यनेत्र, सुमना, सुवेता, रेवत, सुप्रचेता और महाबलवान् द्युति–ये प्रसूति के पुत्रगण कहे गये हैं ।।५९-६०।। विजय, सुजय, मन, उद्यान, सुमति, सुपरि, विज्ञात और अर्थपति–ये भाव्य नामक देवगण के नाम से विख्यात हैं, अब पृथुकों को सुनिये। अजिष्ट, शाक्यन, वानपृष्ठ, शांकर, सत्यधृष्णु, विष्णु, विजय तथा महाभाग्यवान् अजित ये पृथुक नामक देवगण हैं ।।६१-६२।। अब लेख नामक देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। मनोजव, प्रघास, महायशस्वी प्रचेता, वात, ध्रुवक्षिति, पराक्रमी अद्भुत, अवन और बृहस्पति–ये लेख नाम से पुकारे जाते हैं। उस छठे मन्वन्तर में उन देवगणों का स्वामी इन्द्र महापराक्रमी मनोजव था। भृगु गोत्रोत्पन्न उन्नत, अंगिरापुत्र हविध्मान, कश्यपपुत्र सुधामा, वशिष्ठगोत्रोत्पन्न विरज, पुलस्त्यगोत्रीय अतिमान; पुलहगोत्रोत्पन्न सहिष्णु और अत्रिगोत्रोत्पन्न मधु–ये चाक्षुष मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ।।६३-६६।। उरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कृति, अग्निष्णुत्, अतिरात्र

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कृतिः । अग्निष्णुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।।६७।।
अभिमन्युश्च दशमो नाड्वलेया मनोः सुताः । चक्षुषस्य सुता ह्येते षष्ठं चैव तदन्तरम् ।।६८।।
वैवस्वतेन संख्यातस्तस्य सर्गो महात्मनः । विस्तरेणाऽनुपूर्व्या च कथितं वै मया द्विजाः ।।६९।।

ऋषय ऊचुः

चाक्षुषस्य तु दायादः संभूतः कश्यपान्वये । तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तन्नो ब्रूहि यथातथम् ।।७०।।

सूत उवाच

चाक्षुषस्य निसर्गं तु समासाच्छ्रोतुमर्हथ । तस्मान्ववाये संभूतः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।।७१।।
प्रजानां पतयश्चान्ये दक्षः प्राचेतसस्तथा । उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।।७२।।
दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत्प्रजापतेः । स्वायंभुवेन मनुना दत्तोऽत्रेः कारणं प्रति ।।७३।।
मन्वन्तरमथाऽऽसाद्य भविष्यं चाक्षुषस्य ह । षष्ठं तदनुवक्ष्यामि उपोद्घातेन वै द्विजाः ।।७४।।
उत्तानपादाच्चतुरा सूनृता वित्तभाविनी । *धर्मस्य कन्या धर्मज्ञा सूनृता नाम विश्रुता ।।७५।।
उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा । धर्मस्य पत्न्यां लक्ष्म्यां वै उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ।।७६।।

और सुद्युम्न ये नव तथा दसवें अभिमन्यु—ये चाक्षुष मनु के दस पुत्र हैं जो नाड्वलेय नाम से भी विख्यात हैं, छठवें मन्वन्तर का यही विवरण है। इस महात्मा चाक्षुष मनु का सृष्टिक्रम वैवस्वत मनु की भाँति कहा जाता है। द्विजगण! उसका विस्तृत वृत्तान्त मैं क्रमशः आप लोगों को सुना चुका ।।६७-६९।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी! चाक्षुष मनु के उत्तराधिकारी कश्यप के गोत्र में उत्पन्न हुए, उसके गोत्र में जो अन्य लोग उत्पन्न हुए, उन्हें यथार्थतः बतलाइये ।।७०।।

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! चाक्षुष मनु का वंश वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। उसके वंश में वेन का पुत्र प्रतापी पृथु नामक एक सम्राट् उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रजापतिगण प्रादुर्भूत हुए, जिनमें प्राचेतस दक्ष नामक प्रजापति थे। प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद नामक पुत्र को ग्रहण किया। इस दक्ष प्रजापति का पुत्र राजा था। स्वायंभुव मनु ने उसे अत्रि के लिए दिया था। हे द्विजगण! चाक्षुष नामक भविष्यत्कालीन मन्वन्तर का, जो कि छठा मन्वन्तर माना गया है, मैं विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन कर रहा हूँ ।।७१-७४।। धर्म की विख्यात धर्मज्ञा सूनृता नामक जो कन्या थी, उस परम चतुर, वित्तभाविनी सूनृता के संयोग से राजा उत्तानपांद को ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह सुनृता परम धार्मिक तथा ध्रुव की कल्याणी माता थी, वह सुन्दर हँसनेवाली धर्म की लक्ष्मी नामक पत्नी में उत्पन्न हुई थी। राजा उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान्, अयस्मान् तथा वसु नामक पुत्रों को तथा दो परम सुन्दरी मनस्विनी और स्वरा नामक कन्याओं को

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च अयस्मन्तं वसुं तथा । उत्तानपादोऽजनयत्कन्ये द्वे च शुचिस्मिते ।।
मनस्विनी स्वरां चैव तयोः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।७७।।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान् । तपस्तेपे निराहारः प्रार्थयन्विपुलं यशः ।।७८।।
त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्रः स्वायंभुवस्य सः । आत्मानं धारयन्योगात्प्रार्थयन्सुमहद्यशः ।।७९।।
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषां स्थानमुत्तमम् । आभूतसंप्लवं हृद्यमस्तोदयविवर्जितम् ।।८०।।
तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य ह । दैत्यासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ।।८१।।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो हुतम् । स्थिताः सप्तर्षयः कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।।
ध्रुवे दिवं समासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः ।।८२।।
ध्रुवात्पुष्टिं च भव्यं च भूमिः सा सुषुवे नृपौ । स्वां छायामाह वै पुष्टिर्भव नारी तु तां विभुः ।।८३।।
सत्याभिव्याहृते तस्य सद्यः स्त्री साऽभवत्तदा । दिव्यसंहननच्छाया दिव्याभरणभूषिता ।।८४।।
छायायां पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् । प्राचीनगर्भं वृषकं वृकं च वृकलं धृतिम् ।।८५।।
पत्नी प्राचीनगर्भस्य सुवर्चा सुषुवे नृपम् । नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो यः पूर्वजन्मनि ।।८६।।
संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् । एवं मन्वन्तरं युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान्विभुः ।।८७।।

उत्पन्न किया–जिनके पुत्रों का वर्णन पहले किया जा चुका है ।।७५–७७।। परम पराक्रमी ध्रुव ने देवताओं के दस सहस्र वर्षों तक विपुल यश की कामना से निराहार रहकर घोर तप किया। स्वायंभुव मनु के पौत्र ध्रुव प्रथम त्रेता युग में योगबल से आत्मा को स्ववश रख महान् यश की लिप्सा से परम कठोर तप में जब निरत थे, तब प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उन्हें ज्योतिर्गणों का परम श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया, जो महाप्रलयपर्यन्त स्थायी, हृदय को हरनेवाला तथा अस्त एवं उदय से विवर्जित है। ध्रुव की इस परम उन्नति, सम्पत्ति एवं महिमा को देख समस्त असुर तथा दानवों के आचार्य शुक्र ने उनका यशोगान किया ।।७८–८१।। अहो ध्रुव की परम कठोर तपस्या और पराक्रम धन्य है, इसके शास्त्रज्ञान एवं इसके हवनादि सत्कार्य धन्य हैं, जिनके कारण सातों ऋषियों के ऊपर निश्चल पद इसने प्राप्त किया है। परम ऐश्वर्यशाली दिनपति भगवान् भास्कर भी आकाशमण्डल में इस ध्रुव का आश्रय ग्रहण करते हैं। भूमि ने ध्रुव के संयोग से पुष्टि और भव्य नामक दो नरपतियों को उत्पन्न किया। परम ऐश्वर्यशाली पुष्टि ने अपनी छाया (परछाईं) से कहा कि तू स्त्री हो जा ।।८२–८३।। उस समय पुष्टि के इस प्रकार के सत्य एवं आग्रहपूर्ण आदेश पर छाया शीघ्र ही दिव्य आभूषणों से विभूषित तथा दिव्य अङ्गावयवों से सुशोभित स्त्री के रूप में परिणत हो गयी। पुष्टि ने अपनी उस छाया नामक पत्नी में प्राचीनगर्भ, वृषक, वृक, वृकल और धृति नामक पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सब-के-सब निष्पाप थे। प्राचीनगर्भ की सुवर्चा नामक पत्नी ने राजा उदारधी नामक पुत्र को समुत्पन्न किया, जो पूर्व जन्म में इन्द्र के पद पर अभिषिक्त था। उस परम प्रतापी तथा ऐश्वर्यसम्पन्न राजा ने एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर केवल एक बार भोजन कर एक मन्वन्तरपर्यन्त इन्द्र पद की

उदारधेः सुतं भद्राऽजनयत्सा दिवंजयम्। रिपुं रिपुंजयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवंजयात् ।।८८।।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम्। ÷तस्य पुत्रो मनुर्विद्वान्ब्रह्मक्षत्रप्रवर्तकः ।।८९।।
व्यजीजनत्पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषं मनुम्। प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ।।९०।।
+चाक्षुषं नाम विख्यातं मनुं धर्मार्थकोविदम्। मनोरजायन्त दश नड्वलायां शुभाः सुताः ।।
कन्यायां वै महाभाग वैराजस्य प्रजापतेः ।।९१।।
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः। अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ।।
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः ।।९२।।
ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान्। अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम् ।।९३।।
अङ्गात्सुनीथाऽपत्यं वै वेनमेकं व्यजायत। अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ।।९४।।
प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्। वेनस्य प्राणौ मथिते संबूभव महान्नृपः ।।
*वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्तितः ।।९५।।
स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव। पृथुर्वैन्यः सर्वलोकानरक्ष क्षत्रपूर्वजः ।।९६।।

प्राप्ति की थी। भद्रा ने उदारधी के संयोग से दिवंजय नामक पुत्र को उत्पन्न किया। दिवंजय के संयोग से वराङ्गी ने शत्रुओं को जीतनेवाले रिपु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। बृहती ने रिपु के संयोग से परम तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उस चाक्षुष का पुत्र परम विद्वान् मनु हुआ जो ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का प्रवर्तक हुआ ।।८४–८९।। उस रिपु ने धर्मार्थ के जाननेवाले परम प्रसिद्ध उस चाक्षुष मनु को वरुण की पुत्री पुष्करिणी में उत्पन्न किया था। हे महाभाग्यशालियो ! वैराज नामक प्रजापति महात्मा अरण्य की नड्वला नामक कन्या में उस चाक्षुष मनु के संयोग से दस शुभकारी पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम उरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु ये दस पुत्र नड्वला में मनु से उत्पन्न हुए थे। उरु की पत्नी आग्नेयी ने उरु के संयोग से अतिशय तेजस्वी छह पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम अङ्ग, सुमनस्, स्वाति, क्रतु, अंगिरा और शिव थे। अङ्ग की पत्नी सुनीथा ने अङ्ग के संयोग से एकमात्र वेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जब वेन के अत्याचारों से प्रजावर्ग में घोर असन्तोष फैल गया तब ऋषियों ने सन्तानोत्पत्ति के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। उस समय वेन के हाथों के मंथन पर परम प्रतापी पृथु नाम से विख्यात सम्राट् उत्पन्न हुआ ।।९०–९५।। क्षत्रियों का अग्रज वेन का पुत्र पृथु अपने असह्य तेज से जलते हुए की भाँति धनुष और कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था और अपने अपार साहस से समस्त लोक की रक्षा की थी। राजसूय यज्ञ

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

* एतदर्धस्थानेऽयं श्लोकः–"जनयित्वा सुतं तस्य पृथुं प्रथितपौरुषम्। अब्रुवैस्त्वेष वै राजन्मुनयो मुदिताः प्रजाः" इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तके।

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः। तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ।।९७।।
तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता। प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह ।।९८।।
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः। सर्वैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ।।९९।।
तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा। प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत् ।।१००।।

ऋषय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्तयस्व महामते। यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुंधरा ।।१०१।।
यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह। यथा यक्षैः सगन्धर्वैरप्सरोभिर्यथा पुरा ।।
+यथायथा च तैर्दुग्धा विधिना येन येन च ।।१०२।।
तेषां पात्रविशेषांश्च दोग्धारं क्षीरमेव च। तथा वत्सविशेषांश्च तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।१०३।।
यस्मिंश्च कारणे पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा। क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वं तत्सर्वं कथयस्व नः ।।१०४।।

सूत उवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्राः पृथोर्वैनस्य संभवम्। एकाग्राः प्रयताश्चैव शुश्रूषध्वं द्विजोत्तमाः ।।१०५।।
नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च। वर्णयेयमिमं पुण्यं नाव्रताय कथंचन ।।१०६।।

से अभिषिक्त राजाओं में समस्त वसुधा का स्वामी वह पृथु ही सर्वप्रथम था, उसकी स्तुति करने के लिए दो निपुण सूत और मागध और उत्पन्न हुए थे। परम बुद्धिमान् उस महाराज पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी प्रजाओं के लिए ऋषियों, देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों के साथ गौ रूप धारिणी पृथ्वी से अन्नराशियों का दोहन किया। दोहन के समय पृथक्-पृथक् पात्रों में दुही गयी वसुन्धरा ने दुहनेवाले को यथाभिलषित क्षीर प्रदान किया, जिसके द्वारा समस्त लोकों की रक्षा हुई ।।९६-१००।।

ऋषियों ने कहा-महामते सूत जी! आप पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिये और वह समस्त वृत्तान्त बतलाइये जिस तरह उस महात्मा ने प्राचीनकाल में वसुन्धरा का दोहन किया। देवताओं, नागों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ जिस प्रकार एवं विधान से पृथ्वी का दोहन किया गया, उनके जो-जो विशेष पात्र रहे, उन-उन समूहों में जो प्रमुख दोग्धा (दुहनेवाला) रहा, जिस प्रकार का क्षीर हुआ, जो-जो वत्स (बछड़े) बने सबका वर्णन हमें बतलाइये, जानने की इच्छा है। जिस कारण से प्राचीनकाल में राजा वेन का हाथ मथा गया तथा क्रुद्ध महर्षियों ने जिस कारणवश उसे मृत्यु का शाप दिया-वह सब हम लोगों को बतलाइये ।।१०१-१०४।।

सूत जी बोले-विप्रवृन्द! वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन मैं कर रहा हूँ, द्विजोत्तमगण! आप लोग एकाग्र और शान्तचित्त हो सुनिये। यह पवित्र जीवन-चरित कभी किसी अपवित्रात्मा, अशिष्य, अहितकारी एवं व्रतादि

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुयाद्योऽनसूयकः ।।१०७।।
यश्चेमं श्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्य संभवम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ।।
गोप्ता धर्मस्य राजाऽसौ बभूवात्रिसमः प्रभुः ।।१०८।।
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापतिः। यस्य पुत्रो भवेद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ।।१०९।।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः। स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ।।११०।।
स धर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभे ह्यवर्तत। स्थापनं स्थापयामास धर्मोपेतं स पार्थिवः ।।१११।।
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत्। निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ।।
आसन्नं च पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ।।११२।।
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ।।११३।।
अहमिज्यश्च पूज्यश्च सर्वयज्ञे द्विजातिभिः। मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ।।११४।।
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसांप्रतम्। ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ।।११५।।

से उन्मुख रहनेवाले व्यक्ति को नहीं बतलाऊँगा। ऋषियों द्वारा वर्णित यह पवित्र वृत्तान्त स्वर्ग प्रदान करनेवाला, यशोवर्द्धक, आयुप्रद, वेदसम्मत एवं परमगोपनीय है, जो अनसूयक (कभी किसी की निन्दा न करनेवाला तथा गुण को गुण रूप में स्वीकारकर उसकी प्रशंसा करनेवाला) इसे सुनता है अथवा जो मनुष्य वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त को ब्राह्मणों को नमस्कारकर किसी को सुनाता है, उसे अपने कृताकृत (पुण्य-पाप अथवा जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है) का सोच नहीं करना पड़ता। अत्रि के समान परमप्रभावशाली वह राजा धर्म का सर्वतोभावेन रक्षक तथा परमऐश्वर्यशाली था ।।१०५-१०८।। महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न अंग नामक एक प्रजापति हुए, जिसका पुत्र वेन हुआ। वेन परम धार्मिक राजा नहीं था। वेन मृत्यु की पुत्री सुनीथा में उत्पन्न हुआ था अतः अपने नाना के दोषों के कारण वह क्रूर प्रकृति का था। धर्म को पीछे रखकर कामनाओं से घिरकर वह लोभी हो गया और धर्म विरुद्ध मतों की उसने स्थापना की। वेदशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन कर अधर्म में रत हो गया। उस विधर्मी राजा के शासनकाल में प्रजाएँ स्वाध्याय एवं वषट्कार से विहीन हो गयीं। देवता यज्ञों में होमे गये हवनीय द्रव्यों का भक्षण एवं सोम रस का पान करने को तरस उठे ।।१०९-११२।। उस प्रजापति वेन के राजत्वकाल में विनाश का अवसर उपस्थित होने पर यह क्रूर प्रतिज्ञा हुई कि कोई भी प्रजा न तो यज्ञ कर सकती है-न हवन कर सकती है। यह भी प्रतिज्ञा उसकी थी कि ब्राह्मण लोग सभी प्रकार के यज्ञों में एकमात्र मेरी पूजा करें, मेरा सम्मान करें, मेरे ही उद्देश्य से यज्ञों की क्रियाएँ सम्पन्न करें, मेरे ही उद्देश्य से हवनादि करें। इस प्रकार प्राचीन मर्यादा के अतिक्रमण करनेवाले, अनुचित ढंग से पूजा आदि ग्रहण करनेवाले अत्याचारी वेन से मरीचि आदि प्रमुख महर्षियों ने कहा-हे वेन! हम लोग अनेक सौ वर्षों तक तुम्हें धर्म का उपदेश तथा दीक्षा देंगे अतः तुम अब अधर्म मत करो, जो तुम करते हो वह सनातन धर्म नहीं है, तुम निश्चय यह

वयं दीक्षां प्रवक्ष्यामः संवत्सरशतान्बहून्। माऽधर्मं वेन कार्षीस्त्वं नैष धर्मः सनातनः।।
निधने च प्रसूतोऽसि प्रजापतिरसंशयः ।।११६।।
पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम्। तांस्तथा वादिनः सर्वान्ब्रह्मर्षीनब्रवीत्तदा ।।११७।।
स प्रहस्य तु दुर्बुद्धिरिदं वचनकोविदः। स्त्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया ।।११८।।
वीर्यश्रुततपः सत्यैर्मया वा कः समो भुवि। महात्मानमनूनं मां यूयं जानीत तत्त्वतः ।।११९।।
प्रभवः सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः। इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा।।
सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा ।।१२०।।
यदा न शक्यते स्तम्भान्मानाच्च भृशमोहितः। अनुनेतुं नृपो वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ।।१२१।।
निगृह्य तं महाबाहुं विस्फुरन्तं यथाऽनलम्। ततोऽस्य वामहस्तं ते ममन्थुर्भृशकोपिताः ।।१२२।।
तस्मात्प्रमथ्यमानाद्वै जज्ञे पूर्वमभिश्रुतः। ह्रस्वोऽतिमात्रं पुरुषः कृष्णश्चापि तथा द्विजाः ।।१२३।।
स भीतः प्राञ्जलिश्चैव स्थितवान्व्याकुलेन्द्रियः। तमार्तं विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन्किल ।।१२४।।
निषादवंशकर्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः। धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसंभवान् ।।१२५।।
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरां स्तुवराः खसाः। अधर्मरुचयश्चापि संभूता वेनकल्मषात् ।।१२६।।

मान लो कि अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न हुए हो। तुम पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके हो कि 'मैं प्रजाओं का पालन करूँगा ।।११३–११६$\frac{1}{2}$।। इस प्रकार की बातें करनेवाले सभी ब्रह्मर्षियों से उस समय उस परम दुर्बुद्धि एवं बातें करने में निपुण वेन ने हँसकर कहा, धर्म का बनानेवाला मेरे सिवा इस जगत् में दूसरा कौन है ? मैं किसकी बातें सुनूँ। अथवा इस संसार में पराक्रम, शास्त्रज्ञान, तपस्या तथा सैन्य आदि साधनों में मेरे समान भला इस पृथ्वी पर कौन है। तुम लोग मुझे यथार्थतः सभी साधनों से परिपूर्ण तथा महात्मा जानो। मुझे सभी लोगों का तथा विशेषकर सभी प्रकार के धर्मों का उत्पत्ति–कर्ता समझो। मैं अपनी इच्छा मात्र से इस सारी पृथ्वी को चाहूँ तो जला दूँ या इसकी अभिनव सृष्टि कर दूँ या निगल जाऊँ इसमें तनिक भी सन्देह मत करो ।।११७–१२०।। इस प्रकार जब अनेक बार के समझाने–बुझाने पर भी दम्भ एवं अभिमान के कारण मोहित वेन ठीक मार्ग पर नहीं लाया जा सका तब क्रुद्ध होकर महर्षियों ने अग्नि की लपटों की तरह फड़कते हुए उस महाबाहु को पकड़कर उसके बायें हाथ का अत्यन्त कुपित हो मन्थन किया। हे द्विजगण ! मन्थन करते समय उसके बायें हाथ से एक अति अल्पकाय, कृष्णवर्ण एवं दीन–हीन चेष्टावाला पुरुष पहले उत्पन्न हुआ। अति भयभीत दशा में वह हाथ जोड़े हुए स्थित था। सभी इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। उसे इस प्रकार आर्त दशा में देख मुनियों ने कहा निषीद, बैठ जाओ। फलस्वरूप अनन्त विक्रमसम्पन्न वह पुरुष निषाद वंश का कर्त्ता हुआ और वेन के पापों से उत्पन्न होनेवाले धीवरों को उत्पन्न किया ।।१२२–१२५।। जो विन्ध्यपर्वत पर निवास करनेवाले, तुम्बुर, खस, स्तुवर जातिवाले अधर्मी लोग हैं, उसी वेन के पाप से उत्पन्न हुए हैं। तदनन्तर पुनः महर्षियों ने वेन के दाहिने हाथ का अतिशय

पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् । अरणीमिव संरम्भान्ममन्थुर्जातमन्यवः ।।१२७।।
पृथुस्तस्मात्समुत्पन्नः करास्फालनतेजसः । पृथोः करतलाद्वाऽपि यस्माज्जातः पृथुस्ततः ।।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ।।१२८।।
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् । शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ।।१२९।।
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः । समुत्पन्ने महाराज्ञि वेनश्च त्रिदिवं गतः ।।१३०।।
समुत्पन्नेन राजर्षिः स सत्पुत्रेण धीमता । *त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा ।।१३१।।
तं नद्यश्च समुद्रांश्च रत्नान्यादाय सर्वशः । अभिषेकाय तोयं च सर्व एवोपतस्थिरे ।।१३२।।
पितामहश्च भगवानङ्गिरोभिः सहामरैः । स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ।।१३३।।
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् । महता राजराज्येन महाराजं महाद्युतिम् ।।१३४।।
सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरङ्गिरसः सुतैः । आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।।१३५।।
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः । ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ।।१३६।।
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः । पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ।।१३७।।

कुपित हो वेगपूर्वक अरणी की भाँति मन्थन किया। तब हाथों के शीघ्रतापूर्वक घर्षण के कारण समुत्पन्न तेज से पूर्ण उस दाहिने हाथ से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु के 'करतल' अर्थ होते हैं, उसी करतल से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम भी पृथु पड़ा। वह अपने शरीर की अनुपम कान्ति से साक्षात् अग्नि की तरह देदीप्यमान हो रहा था। सर्वप्रथम उसने प्रचण्ड ध्वनि करनेवाले, आजगव नामक महाधनुष को तथा बाणों को प्रजा के रक्षार्थ ग्रहणकर अतिशय द्युति से दमकते हुए कवच को धारण किया। उसके उत्पन्न होने पर सभी जीवसमूह अतिहर्षित हुए। महाराज पृथु के उत्पन्न होने पर वेन का स्वर्गवास हो गया ।।१२६–१३०।। इस प्रकार परम बुद्धिमान् एवं सच्चरित्र पुत्र पृथु के उत्पन्न होने के कारण पुरुषव्याघ्र राजर्षि वेन पुम् नामक नरक में जाने से बच गया। सभी नदी तथा समुद्रगण सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नादि तथा पवित्र जल को ले-लेकर अभिषेक के लिए पृथु के समीप उपस्थित हुए। तदनन्तर सभी देवताओं तथा अंगिरा आदि मुनियों के साथ भगवान् ब्रह्मा ने विपुल राजकीय समग्रियों द्वारा आकर वेनपुत्र राजा पृथु का अभिषेक किया। इसी प्रकार सभी स्थावर-जङ्गम जीवों ने भी उस अमित तेजस्वी कान्तिमान् राजाधिराज पृथु का अभिषेचन किया। देवताओं और अंगिरा के पुत्रों द्वारा अभिषेक किये जाने पर वेनपुत्र आदिराज महाराज पृथु का प्रताप अधिक बढ़ गया। पिता से अप्रसन्न रहनेवाली प्रजाओं को उसने अतिप्रसन्न किया, जिससे प्रजा के ऊपर अधिक अनुराग रखने के कारण उसका 'राजा' यह नाम पड़ा ।।१३१–१३६।। समुद्र पर अभियान (आक्रमण) करते समय जलसमूह स्तम्भित हो जाते थे, पर्वतसमूह विशीर्ण हो जाते थे। कभी ध्वजाओं का भंग नहीं होता था। पृथ्वी बिना किसी कष्ट के ही केवल निन्तनमात्र

---

* एतदर्धस्थाने–''पुरुषव्याघ्रः पुंनाम्नो नरकात्त्रायते ततः'' इति क. पुस्तके।

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया। सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ।।१३८।।
एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ।।
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।।१३९।।
(*सामगेषु तु गायत्सु स्रुग्भाण्डे वैश्वदेवके। सामगाने समुत्पन्नस्तस्मान्मागध उच्यते)
ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतिः। जुहावेन्द्राय देवेन ततः सूतो व्यजायत ।।१४०।।
प्रमादस्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु। शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ।।१४१।।
यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्यं हीनयोनितः। सूतः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मः प्रकीर्तितः ।।१४२।।
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम्। रथनागाश्च चरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ।।१४३।।
पृथोस्तवार्थं तौ तत्र तमाहूतौ सुरर्षिभिः। तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।।
कर्मैतदनुरूपं वा पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ।।१४४।।
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ। आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ।।१४५।।

से प्रचुर परिमाण में अन्न उत्पन्न करती थी। गौएँ सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली थीं, पत्रों के प्रत्येक पुटकों में मधु मिलता था। ठीक इसी समय पितामह के पवित्र महायज्ञ का प्रारम्भ हुआ था जिसमें उसी दिन सूती के गर्भ से परम बुद्धिमान् सूत उत्पन्न हुए। उसी महायज्ञ में बुद्धिमान् मगध भी उत्पन्न हुए। जिस समय सामवेद का गायन हो रहा था उस समय असावधानी के कारण विश्ववेद के स्रुक् और पात्र में इन्द्र की हवि के साथ बृहस्पति की हवि मिल गयी और देवताओं ने उस हवि को इन्द्र के लिए हवन किया जिससे सूत उत्पत्ति हुई ।।१३७–१४०।। सामगान के अवसर पर उत्पन्न होने के कारण वे लोग मागध कहे गये। इस प्रकार की असावधानी से शिष्य की हवि के साथ गुरु की हवि मिल जाने के कारण वह तिरस्कृत हुई और नीच–ऊँच के पारस्परिक संयोग से पापाचरण समझा गया, जिससे सूत और मागधों के वर्णों में विकार आ गया। हीन योनि क्षत्रियों की हवि के साथ ब्राह्मण की हवि का यतः संयोग हुआ था। अतः पूर्व (ब्राह्मण) जाति के साधर्म्य के कारण सूत उसी के तुल्य धर्मवाले कहे जाते हैं। सूत का मध्यम धर्म क्षत्रियों के समान जीविका अर्जन करना हुआ, रथ और हाथियों का परिचालन और ओषधि आदि का निन्द्य कामों को भी वे करने लगे। देवताओं और ऋषियों ने राजाधिराज पृथु के लिए उन दोनों सूत और मागधों को बुलाया और उनसे कहा कि राजा की स्तुति करो और इसके अनुरूप जो भी कार्य करने पड़ें करो, यह तुम्हारी स्तुति करने के सर्वथा योग्य हैं। ऐसा कहने पर सूत और मागध ने वहाँ समुपस्थित सभी ऋषियों से कहा, हम दोनों अपने–अपने कार्यों से सभी देवताओं और ऋषियों को प्रसन्न रखेंगे ।।१४१–१४५।। द्विजगण! किन्तु हम लोग महाराज के कार्यों को कुछ भी नहीं

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो क. पुस्तके नास्ति।

न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः । स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ।।१४६।।
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति । दानधर्मरतो नित्यं सत्यवाक्संजितेन्द्रियः ।।
ज्ञानशीलो वदान्यस्तु संग्रामेष्वपराजितः ।।१४७।।
यानि कर्माणि कृतवान्पृथुश्चापि महाबलः । तानि शीलेन बद्धानि स्तुवद्भिः सूतमागधैः ।।१४८।।
ततस्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः । अनूपदेशं सूताय मागधान्मागधाय च ।।१४९।।
तदा वै पृथिवीपालाः स्तूयन्ते सूतमागधैः । आशीर्वादैः प्रबोध्यन्ते सूतमागधबन्दिभिः ।।१५०।।
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजा ऊचुर्महर्षयः । एष वो वृत्तिदो वैन्यो भवत्विति नराधिपः ।।१५१।।
ततो वैन्यं महाभागे प्रजाः समभिदुद्रुवुः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षेर्वचनात्तदा ।।
सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।।१५२।।
धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधामार्दयद्बली । अस्यार्दनभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।।१५३।।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत । स लोकान्ब्रह्मलोकादीन्गत्वा वैन्यभयात्तदा ।।
ददर्श चाग्रतो वैन्यं कार्मुकोद्यतधारिणम् ।।१५४।।
ज्वलद्भिर्विशिखैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् । महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ।।१५५।।

जानते, न इनके लक्षणों का ही हमें ज्ञान है, न उनके यश के बारे में ही हमको कुछ मालूम है, जिससे ऐसे तेजस्वी राजा की स्तुति कर सकूँ। ऋषियों ने उनसे कहा कि इसके द्वारा भविष्यत्काल में होनेवाले जो कार्यकलाप हैं, उनका गान करते हुए स्तुति करो। यह राजा नित्य दान तथा धर्म में रत रहनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानशील परम दाता तथा संग्राम भूमि में विजयी होनेवाला है। परम बलवान् इस पृथु ने भूतकाल में जिन कामों को किया है वे सभी शील, सदाचार से सम्बद्ध हैं, उन्हीं का वर्णन करते हुए इसकी स्तुति करो। सूत और मागधों ने इस प्रकार राजा पृथु की स्तुति की। स्तुति करने के बाद प्रजेश्वर महाराज पृथु ने परम प्रसन्न होकर सूत के लिए अनूप (जलतटवर्ती प्रान्त) तथा मागधों को मगध प्रदेश दान दिया। तभी से पृथ्वीपति राजाओं की ये सूत तथा मागधगण स्तुति किया करते हैं, और तभी से वे लोग सूतों, मागधों एवं बन्दियों के आशीर्वादों द्वारा प्रातःकाल नींद से जगाये जाते हैं ।।१४६-१५०।। राजा पृथु को देखकर परम प्रसन्न महर्षियों ने प्रजाओं से कहा-यह पृथु तुम लोगों को वृत्ति देनेवाला है और यही नराधिप होगा। महर्षियों की ऐसी बातें सुन सारी प्रजाएँ उस महाभाग्यशाली वेनपुत्र पृथु की ओर दौड़ पड़ीं और कहने लगीं कि महर्षियों के कथनानुसार तुम हम लोगों की जीविका का प्रबन्ध करो। प्रजाओं के इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक दौड़कर अपने समीप आने पर उस बलवान् ने उनकी हितकामना से धनुष और बाणों को लेकर वसुधा को अतिशय पीड़ित किया। उसके पीड़न से संत्रस्त होकर पृथ्वी गौ का रूप धारणकर बड़े जोरों से भगने लगी। भागती हुई उस गौ रूप धारिणी पृथ्वी के पीछे राजा पृथु भी धनुष-बाण लेकर दौड़े। पृथु के भय से संत्रस्त होकर पृथ्वी ब्रह्मलोक प्रभृति लोकों में घूम आयी तब आगे उद्यत धनुष को धारण किये हुए पृथु को देखा। उस समय पृथु जलते हुए अति तीक्ष्ण बाणों की चमक से अतिशय तेजोमय हो रहा था। तब अपने त्राण का कोई अन्य उपाय न देख देवताओं से भी पराजित न होनेवाले, परमयोगी अपने कर्त्तव्यपथ से च्युत न होनेवाले पृथु की ही शरण में वह गयी ।।१५२-१५५½।। तीनों लोकों द्वारा सर्वथा पूजित पृथ्वी

अलभन्ती तदा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत। कृताञ्जलिपुटा देवी पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ।।१५६।।
उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि। कथं धारयिता चापि प्रजा राजन्मया विना ।।१५७।।
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदं धार्यते जगत्। मदृते च विनश्येयुः प्रजाः पार्थिवसत्तम ।।१५८।।
न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ।।१५९।।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः। हत्वाऽपि मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पालने नृप ।।१६०।।
अन्नभूता भविष्यामि जहि कोपं महाद्युते। अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिशतेष्वपि ।।
मत्वैवं पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ।।१६१।।
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः। क्रोधं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ।।१६२।।
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा। एकं प्राणं बहून्वाऽपि कामं तस्यास्ति पातकम् ।।१६३।।
यस्मिंस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहवः सुखम्। तस्मिन्हते शुभे नास्ति पातकं चोपपातकम् ।।१६४।।
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां वधिष्यामि वसुंधरे। यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ।।१६५।।
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम्। आत्मानं प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजाः ।।१६६।।
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृतां वरे। संजीवय प्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न संशयः ।।१६७।।

ने अंजलि बाँधकर वेनपुत्र पृथु से कहा, हे राजन्! क्या तुम एक स्त्री के वध करने में पाप नहीं समझ रहे हो ? मेरे बिना तुम प्रजाओं का पालन किस प्रकार कर सकोगे। हे राजन्! मुझमें ही समस्त लोक स्थित हैं, मैंने ही समस्त जगत् को धारण किया है। हे नृपसत्तम! मेरे बिना सभी प्रजाएँ विनष्ट हो जायँगी, यदि तुम अपनी प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मत मारो, मेरी बातें सुनो। उपाय द्वारा आरम्भ किये जाने पर सभी अध्यवसाय सिद्ध होते हैं, हे राजन्! मुझे मारकर भी तुम प्रजाओं के पालन में किसी प्रकार समर्थ नहीं हो सकते ।।१५६-१६०।। हे अतिशय शोभासम्पन्न राजन्! मैं अन्न रूप में परिणत हो जाऊँगी। तुम अपना क्रोध दूर करो। हे पृथ्वीपाल! ऋषिगण, पशु, कीट, पतङ्ग आदि सैकड़ों तिर्यक् योनियों में भी स्त्री के वध का निषेध करते हैं, ऐसा मानकर तुम धर्म से च्युत न हो। पृथ्वी की अनेक प्रकार की बातें सुनकर महामनस्वी धर्मात्मा राजा पृथु ने अपने क्रोध को वश में किया और पृथ्वी से कहा, जो अकेले एक व्यक्ति के लिए, वह चाहे अपने लिये हो अथवा किसी दूसरे के लिए हो, किसी एक का अथवा अनेक लोगों के प्राणों का हरण करता है, हे भद्रे! उसे घोर पातक सहन करने पड़ते हैं। किन्तु हे शुभे! यदि एक व्यक्ति के मारे जाने पर बहुतेरे लोगों को सुख मिलता है, उसके मारे जाने पर क्या थोड़ा भी पातक नहीं लगता। हे वसुन्धरे! सो मैं तो इतनी सारी प्रजाओं के कल्याणार्थ तुम्हारा वध कर रहा हूँ, यदि जगत् के हित में तत्पर मेरी बातों को तू नहीं मानती तो अपने शासन से विमुख रहनेवाली तुझको बाणों से मारकर यहाँ अपने शरीर का विस्तार कर सारी प्रजाओं का पालन करूँगा ।।१६१-१६६।। हे धार्मिकों में श्रेष्ठ! अतः तू मेरी बातों को स्वीकारकर प्रजाओं का नित्य पालन कर, तू उनके

दुहितृत्वं च मे गच्छ एवमेतं महद्वरम् । नियच्छे त्वां तु धर्मार्थं प्रयुक्तं घोरदर्शने ।।१६८।।
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही । एवमेतदहं राजन्विधास्यामि न संशयः ।।१६९।।
वत्सं तु मम तं यच्छ क्षरेयं येन वत्सला । समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर ।।
यथा विष्यन्दमानं च क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ।।१७०।।
तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वशः । धनुष्कोट्या ततो वैन्यस्तेन शैला विवर्धिताः ।।१७१।।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमाऽऽसीद्वसुंधरा । स्वभावेनाभवंस्तस्याः समानि विषमाणि च ।।१७२।।
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले । प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वाऽपि विद्यते ।।१७३।।
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः । चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमेतदासीत्पुरा किल ।।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः ।।१७४।।
समत्वं यत्र यत्राऽऽसीद्भूपस्तस्मिंस्तदेव हि । तत्र तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति स्म सर्वदा ।।१७५।।
आहारफलमूलं तु प्रजानामभवत्किल । *कृच्छ्रेणैव तदा तासामित्येवमनुशुश्रुम ।।
वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः ।।१७६।।
+कृच्छ्रेण महता साऽपि प्रनष्टास्वोषधीषु वै । स कल्पयित्वा वत्सं तु चाक्षुषं मनुमीश्वरः ।।
पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वतले पृथिवीं ततः ।।१७७।।

पालन करने में सशक्त है—इसमें सन्देह नहीं। तू मेरी कन्या बनने को स्वीकार कर ले—यही महान् वरदान तेरे लिए है। हे कठोर दिखायी पड़नेवाली ! मैं तुम्हें धर्म कार्यों में नियुक्त करने के लिए ऐसा कर रहा हूँ। वेनपुत्र पृथु के ऐसा कहने पर साध्वी पृथ्वी ने कहा—हे राजन् ! आप जैसा कह रहे हैं मैं वैसा ही करूँगी—इसमें सन्देह नहीं, मुझे एक बछड़ा दीजिये जिसके वात्सल्य स्नेह से मैं क्षीर-प्रस्रवण करूँ। हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! मुझे चारों ओर से बराबर करो, जिससे बहता हुआ मेरा क्षीर चारों ओर समरूप में प्रवाहित हो ।।१६७-१७०।। तदनन्तर वेनपुत्र राजा पृथु ने अपने धनुष की छोर से पृथ्वी पर फैले हुए पर्वतों को चारों ओर से हटाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में रख दिया, जिससे उन-उन स्थानों पर पर्वतों की ऊँचाई अधिक हो गयी। बीते हुए मन्वन्तरों में पृथ्वी अत्यन्त दुर्गम तथा स्वाभाविक ढङ्ग पर कहीं समान, कहीं विषम थी। इस प्रकार के विषम पृथ्वीतल पर पूर्व सृष्टि काल में पुरों और ग्रामों का कोई विभाग नहीं था, न अन्न पैदा होते थे, न पशुपालन, न कृषि अथवा वाणिज्य आदि व्यवसाय ही था। चाक्षुष मन्वन्तर में पृथ्वी की यही दशा थी। वैवस्वत मन्वन्तर में इन सभी कार्यों का प्रचलन हुआ। जहाँ-जहाँ पर पृथ्वी समान रही वहाँ-वहाँ पर प्रजावर्ग आ-आकर अपना निवास बनाकर रहते थे। आहार, फल, मूल आदि थे, बड़ी कठिनाई से उनका जीवन चलता था—ऐसा हमने सुना है। किन्तु पृथु के कार्यकाल से इस पृथ्वी लोक में सभी वस्तुएँ उत्पन्न होने लगीं ।।१७१-१७६।। पृथ्वी तल से नष्ट होकर लुप्त होनेवाली ओषधियों की बड़ी कठिनाई से उसने पुनः रक्षा की। फिर उस परम ऐश्वर्यशाली पृथु ने चाक्षुष मनु

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

+ इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

सस्यानि तेन दुग्धानि (वै) वैन्येन तु वसुंधरा। मनुं च चाक्षुषं कृत्वा वत्सं पात्रे च भूमये ।।
तेनान्नेन तदा ता वै वर्तयन्ते प्रजाः सदा ।।१७८।।
ऋषिभिः स्तूयते वाऽपि पुनर्दुग्धा वसुंधरा। वत्सः सोमस्त्वभूत्तेषां दोग्धा चापि बृहस्पतिः ।।१७९।।
पात्रमासीत्तु च्छन्दांसि गायत्र्यादीनि सर्वशः। क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ।।१८०।।
पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरंदरपुरोगमैः। सौवर्ण पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ।।
तेनैव वर्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमाः ।।१८१।।
नागैश्च स्तूयते दुग्धा विषं क्षीरं तदा मही। तेषां च वासुकिर्दोग्धा काद्रवेया महोजसः ।।१८२।।
नागानां वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणां चैव सर्वशः। तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया महोल्बणाः ।।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु तदाश्रयाः ।।१८३।।
आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्धानमियं मही। वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यज्ञैः पुण्यजनैस्तथा ।।१८४।।
दोग्धा च जतुनाभस्तु पिता मणिवरस्य सः। यक्षात्मजो महातेजा वशी स सुमहाबलः ।।
तेन ते वर्तयन्तीह परमर्षिरुवाच ह ।।१८५।।
राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुंधरा। ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुबेरकः ।।१८६।।

को बछड़ा बनाकर अपने करतल में अन्न राशि को पृथ्वी से दोहन किया। इस प्रकार वेनपुत्र राजा पृथु ने गौ रूप धारिणी पृथ्वी से चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी के पात्र में अन्नों का दोहन किया और उसी अन्न से उस समय की सभी प्रजाओं की जीविका चलायी। सुना जाता है कि इसके बाद ऋषियों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया, उनके समूह के बछड़े चन्द्रमा तथा दुहनेवाले बृहस्पति बने थे, दुहने का पात्र गायत्री आदि सभी प्रकार के छन्दसमूह थे, उन ऋषियों का क्षीर शाश्वत ब्रह्म एवं तप था ।।१७७-१८०।। तदनन्तर इन्द्र आदि प्रमुख देवगणों ने वसुन्धरा की प्रार्थना कर सुवर्णमय पात्र लेकर पृथ्वी से अमृत का दोहन किया, उसी अमृत के भरोसे इन्द्रादि देवगण विद्यमान रहते हैं। नागों ने स्तुतिकर विष रूप क्षीर पृथ्वी से दुहा, उनमें दुहनेवाले वासुकि थे तथा उनके साथ कद्रू के सभी तेजस्वी पुत्रगण थे। हे द्विजश्रेष्ठ! सभी नागों एवं सर्पों में परम तेजस्वी, जो विशालकाय अतितीक्ष्ण विषवाले सर्पगण हैं, वे उसी विष से वर्तमान रहते हैं। उसी का आहार करते हैं, उसी के अनुरूप आचार करते हैं, उसी के भरोसे पराक्रमशाली तथा उसी के आश्रय में आश्रित हैं। तदनन्तर पुनः पुण्यकर्त्ता यक्षों द्वारा अन्तर्धान होकर पृथ्वी का दोहन कच्चे पात्र में किया गया, जिसमें बछड़ा वैश्रवण नामक यक्ष था, दुहनेवाला जतुनाभ था, जो मणिवर नामक यक्ष का पिता था ।।१८१-१८४$\frac{१}{२}$।। वह यक्षपुत्र महान् तेजस्वी, जितेन्द्रिय तथा महाबलवान् था। उसी क्षीर द्वारा वे लोग जीविका चलाते हैं। तदनन्तर राक्षसों और पिशाचों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया। उनमें दुहनेवाला ब्रह्ममानी कुबेरक, बछड़ा सुमाली नामक बलवान् राक्षस तथा क्षीर के स्थान पर रक्त हुआ। राक्षसों ने कपाल में अन्तर्धान होकर पृथ्वी का दोहन किया था। उसी क्षीर पर आज भी राक्षसगण

रक्षः सुमाली बलवान्क्षीरं रुधिरमेव च । कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्धानं च राक्षसैः ।।
तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्तयन्तीह सर्वशः ।।१८७।।
(*राजतं पात्रमादाय पितृभिः स्तूयते मही । स्वधामृतं च पितॄणामासीद्दोग्धाऽर्यमा तथा ।।
यमो वत्सोऽभवत्तेषां मासो(सं)तृप्तिस्तु सर्वदा) ।।१८८।।
पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणैः । वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीगन्धांस्तथैव च ।।१८९।।
तेषां विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुनेः शुचिः । गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ।।१९०।।
शैलैश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुंधरा । तत्रोषधीर्मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ।।१९१।।
वत्सस्तु हिमवांस्तेषां मेरुर्दोग्धा महागिरिः । पात्रं तु शैलमेवाऽऽसीत्तेन शैलः प्रतिष्ठितः ।।१९२।।
स्तूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुंधरा । पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नमरोहणम् ।।१९३।।
कामधुक्पुष्पितः शैलः पक्षो वत्सो यशस्विनी । सर्वकामदुधा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ।।१९४।।
सैषा धात्री विधात्रा च बारणी च वसुंधरा । दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति वः श्रुतम् ।।
चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।।१९५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पृथिवीदोहनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

सब ओर अपनी जीविका निर्वाहित करते हैं ।।१८५–१८७।। पितरों ने चाँदी के पात्र में पृथ्वी की स्तुतिकर दोहन किया, उनका अमृत स्वधा हुआ, दुहनेवाले अर्यमा नामक पितर हुए, बछड़ा यमराज बने। उस स्वधा रूप क्षीर से उन देवताओं की महीने भर की तृप्ति होती है। गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों ने कमल के पात्र में चित्ररथ को तथा शुचि गन्धों को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया, उनमें मुनि का पुत्र परम पवित्रात्मा, गन्धर्वराज, महात्मा सूर्य के समान तेजस्वी विश्वावसु दुहनेवाला था। तदनन्तर वसुन्धरा देवी का दोहन पर्वतों ने किया, उस दोहन कार्य में मूर्तिमती ओषधियाँ तथा विविध रत्न क्षीर रूप में थे। उन पर्वतों में बछड़ा हिमालय तथा दुहनेवाला महागिरि सुमेरु था, दोहन का पात्र तो पर्वत ही था, उन ओषधियों से पर्वत की प्रतिष्ठा हुई ।।१८८–१९२।। तदनन्तर वृक्षों और लताओं ने पलाश के पत्तों को लेकर प्ररोहों के तोड़ देने पर गिरनेवाले दुग्ध का दोहन किया, जिसमें दुहनेवाला पुष्पित पर्वत तथा वत्स पर्वत का पक्ष हुआ। सभी मनोरथों को पूर्ण रखनेवाली, भूतभाविनी (जीवसमूहों को उत्पन्न करनेवाली), यशस्विनी वसुन्धरा सबको धारण करनेवाली, पालन करनेवाली तथा सभी प्रकार का विधान करनेवाली है, उस पृथ्वी का दोहन लोकहित के लिए राजा पृथु ने किया—ऐसा हमने सुना है। वह पृथ्वी सभी चराचर जीवों की आश्रयभूत तथा उत्पन्न करनेवाली है ।।१९३–१९५।।

श्री वायुमहापुराण का पृथ्वीदोहन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।६२।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पृथुवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ।।१।।
मधुकैटभयोः पूर्वं मेदसा संपरिप्लुता। ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैनस्य धीमतः ।।२।।
इयं चाऽसीत्समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते ततः ।।३।।
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुंधरा। सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमालिनी ।।
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ।।४।।
एवं प्रभावो राजाऽऽसीद्वैन्यः स नृपसत्तमः। नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामेण सर्वशः ।।५।।
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ।।६।।
पार्थिवैश्च महाभागैः प्रार्थयद्भिर्महद्यशः। आदिराजा नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।।७।।
योधैरपि च सङ्ग्रामे प्रार्थयानैर्जयं युधि। आदिकर्ता नराणां वै नमस्यः पृथुरेव हि ।।८।।
यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम्। स घोररूपे सङ्ग्रामे क्षेमी तरति कीर्तिमान् ।।९।।

अध्याय ६३

सूत जी बोले–यह समुद्रपर्यन्त फैली हुई वसुन्धरा मेदिनी (मेद–चर्बी से उत्पन्न होनेवाली) इस नाम से विख्यात है एवं वसु, धन अथवा अन्न धारण करने के कारण यह वसुधा नाम से भी पुकारी जाती है ।।१।। पूर्वकाल में यह मधु तथा कैटभ नामक दानवों की चर्बी से आकीर्ण थी। यही कारण है कि समुद्रपर्यन्त फैली हुई यह पृथ्वी मेदिनी नाम से विख्यात हुई। राजा पृथु की पुत्री होने के कारण उसे पृथ्वी नाम से भी लोग पुकारते हैं। उस परम बुद्धिमान् राजा द्वारा वह वसुन्धरा प्रसिद्ध की गयी, अनेक भागों में विभक्त की गयी, शोभित की गयी, विविध प्रकार के अन्नों और आकरों (खानि) से समन्वित की गयी, बड़े–बड़े नगरसमूहों से संयुक्त की गयी, ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोगों से आकीर्ण की गयी तथा रक्षित हुई ।।२–४।। राजाओं में श्रेष्ठ, वेनपुत्र राजा पृथु इस प्रकार का अमित प्रभावशाली सम्राट् था। सभी जीव–समूह उसे नमस्कार करते थे, पूजा करते थे। वेदों एवं वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् एवं महाभाग्यशाली ब्राह्मणों द्वारा नमस्कार करने योग्य एकमात्र राजा पृथु ही था क्योंकि वह ब्रह्म से समुद्भूत था, तथा उसका प्रभाव कभी नष्ट होनेवाला नहीं था। उस प्रतापशाली आदि राजा वेनपुत्र पृथु की परमभाग्यशाली नृपसमूहों द्वारा प्रार्थना की जाती थी। वास्तव में वह सर्वथा नमस्कार के योग्य था। संग्राम–भूमि में उस महाराज पृथु की विजय की प्रार्थना बड़े–बड़े योद्धा लोग करते थे और वह वास्तव में विजय प्राप्त करता था, मनुष्यों का सर्वप्रथम पालक वह पृथु ही नमस्कार का पात्र था। जो वीर पुरुष राजा पृथु के यशों का कीर्त्तनकर रणभूमि को जाता है वह कल्याणभाजन यशस्वी योद्धा विकट संग्राम में भी विजय लाभ करता है ।।५–९।। वैश्य वृत्ति (व्यापार) करनेवालों का भी वह महायशस्वी राजर्षि

वैश्यैरपि च राजर्षिवैंश्यवृत्तिसमास्थितैः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ।।१०।।
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च । पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ।।११।।
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना । वायुं कृत्वा तदा वत्सं बीजानि वसुधातले ।।१२।।
ततः स्वायंभुवे पूर्वं तदा मन्वन्तरे पुनः । वत्सं स्वायंभुवं कृत्वा दुग्धाऽऽग्नीध्रेण वै मही ।।१३।।
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता । (* मनुं स्वारोचिषं कृत्वा वत्सं सस्यानि वै पुरा ।।१४।।
उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु । मनुं कृत्वोत्तमं वत्सं सर्वसस्यानि धीमता) ।।१५।।
पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनोः । दुग्धेयं तामसं वत्सं कृत्वा तु बलबन्धुना ।।१६।।
चारिष्णवस्य देवस्य संप्राप्ते चान्तरे मनोः । दुग्धा मही पुराणेन वत्सं चारिष्णवं प्रति ।।१७।।
चाक्षुषेऽपि च संप्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुनः । दुग्धा मही पुराणेन वत्सं कृत्वा तु चाक्षुषम् ।।१८।।
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः । वैन्येनेयं मही दुग्धा तथा ते कीर्तितं मया ।।१९।।
एतैर्दुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु वै । देवादिभिर्मनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च यः ।।२०।।
(+एवं सर्वेषु विज्ञेया ह्यतीतानागतेष्विह । देवा मन्वन्तरेष्वस्य पृथोस्तु शृणुत प्रजाः ।।२१।।
पुथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालिनौ । शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत ।।२२।।

पृथु नमस्कार का पात्र था, क्योंकि उन्हें भी वह वृत्ति देता था। पृथ्वी दोहन करने के समय ऊपर कहे गये बछड़े, दुहनेवाले, दुग्ध, पात्रादि सभी का वर्णन मैं क्रमशः सुना चुका ।।१०–११।। प्राचीनकाल में सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्मा ने पृथ्वी का दोहन किया था, उस समय वायु को बछड़ा बनाकर पृथ्वीतल पर बीजों को दुहा गया था। उसके बाद पुनः स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर आग्नीध्र ने पृथ्वी का दोहन किया था। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् चैत्र ने स्वारोचिष मनु को बछड़ा बनाकर अन्नों का दोहन किया था। उत्तम मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् सर्वश्रेष्ठ देवभुज ने उत्तम मनु को बछड़ा बनाकर सभी प्रकार के अन्नों का दोहन किया था ।।१२–१५।। पुनः पाँचवें तामस नामक मन्वन्तर में बलबन्धु से तामस मनु को बछड़ा बनाकर यह पृथ्वी दुही गयी थी। तदनन्तर पुनः चरिष्णव नामक मन्वन्तर में भी पुराण ने चारिष्णव को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। पुनः चाक्षुष नामक मन्वन्तर में पुराण ने चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। चाक्षुष नामक मन्वन्तर के बीत जाने पर जब पुनः वैवस्वत नामक मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ तब वेनपुत्र राजा पृथु ने जिस प्रकार इस पृथ्वी का दोहन किया था, उसका वर्णन मैं कर चुका ।।१६–१९।। बीते हुए मन्वन्तरों में इन्हीं उपर्युक्त देवताओं, मनुष्यों तथा भूतादि ने पृथ्वी का दोहन किया था। व्यतीत एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में इसी प्रकार उन्हीं देवताओं को जान लेना चाहिए जिनका वर्णन मैं कर चुका। अब इस प्रकार राजा पृथु की प्रजाओं के विषय में मुझसे सुनिये। उस राजा पृथु के अन्तर्धि और पाली नामक दो महान् बलशाली पुत्र हुए, जिनमें अन्तर्धान से शिखण्डिनी ने हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया ।।२०–२२।। आग्नेयी धिषणा ने हविर्धान के संयोग से

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।
+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयुयुत्सुतान् । प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ।।२३।।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः । बलश्रुततपोवीर्यैः पृथिव्यामेकराडसौ ।।
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्ह्यसौ ।।२४।।
समुद्रतनयायां तु कृतदारः स वै प्रभुः । महतस्तमसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ।।
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः) ।।२५।।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः । अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।।
दश वर्षसहस्त्राणि समुद्रसलिलेशयाः ।।२६।।
तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेतःसु महीरुहाः । अरक्ष्यमाणाः खं वब्रुर्वभूवाथ प्रजाक्षयः ।।२७।।
प्रत्याहते तदा तस्मिंश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ।।
दश वर्षसहस्त्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ।।२८।।
तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ताः प्रचेतसः । मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ।।२९।।
उन्मूलानथ तान्वृक्षान्कृत्वा वायुरशोषयत् । तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ।।३०।।
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छेशेषु शाखिषु । उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रचेतसः ।।३१।।

प्राचीनबर्हिस्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामक छह पुत्रों को उत्पन्न किया। परम ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हिस् एक महान् प्रजापति था। वह अपने बल, शास्त्र ज्ञान, तपस्या और पराक्रम से समस्त पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था। यज्ञादि कार्यों में उसके कुशों के अग्र भाग पुराने पड़ जाते थे अतः प्राचीनबर्हिस् नाम से वह प्रसिद्ध हुआ। महान् अज्ञानान्धकार से पार हो जाने पर उस प्रजापति एवं सम्राट् ने समुद्र-पुत्री सवर्णा से विवाह संस्कार किया। समुद्र-कन्या सवर्णा ने उसके संयोग से दस पुत्रों को जन्म दिया जो सब-के-सब प्रचेता के नाम से विख्यात होकर धनुर्वेद में पारंगत थे। एक ही प्रकार के धर्माचरण करनेवाले उन प्रचेताओं ने दस सहस्त्र वर्षों तक समुद्र के जल में शयनकर परम कठोर तप किया ।।२३-२६।। जिस समय प्रचेतागण तप कर रहे थे उस समय बिना रखवाली तथा काट-छाँट के वृक्षों ने समस्त पृथ्वीमण्डल पर बढ़-बढ़कर आकाश तक छेंक लिया, जिससे प्रजाओं का विनाश होने लगा। उस चाक्षुष मन्वन्तर में इस प्रकार प्रजाओं के ऊपर घोर विपत्ति आ गयी, सारा आकाशमण्डल वृक्षों से घिर उठा और दस सहस्त्र वर्ष तक प्रजाएँ निश्चेष्ट पड़ी रहीं अर्थात् उन बेतरतीब बढ़े हुए वृक्षों के काटने-छाँटने का साहस उन्हें नहीं हुआ। तपोबल द्वारा प्रजाओं की इस घोर विपत्ति की चर्चा सुनकर सभी प्रचेताओं ने अति क्रुद्ध होकर अपने-अपने मुख से एक ही साथ वायु और अग्नि को छोड़ा ।।२७-२९।। वायु ने उन सभी वृक्षों को उखाड़कर सुखा दिया और तब अग्नि ने उन सबको भस्म कर दिया-इस प्रकार उन वृक्षों का विनाश हो गया। उन बढ़े हुए वृक्षों के विनाश हो जाने पर जब कहीं-कहीं थोड़ी संख्या में कुछ वृक्ष शेष रह गये तब उन प्रचेताओं के समीप जाकर राजा सोम ने कहा-"प्रचेतागण! लोगों को

दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्वं लोकसंतानकारणात्। कोपं त्यजत राजानः सर्वं प्राचीनबर्हिषः ।।३२।।
वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमारुतौ। रत्नभूता तु कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।।३३।।
भविष्यं जानता ह्येषा मया गोभिर्विवर्धिता। मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता ।।
भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविवर्धिता ।।३४।।
युष्माकं तेजसोऽर्धेन मम चार्धेन तेजसः। अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान्दक्षो नाम प्रजापतिः ।।३५।।
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै। अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्धयिष्यसि ।।३६।।
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः। संहत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ।।३७।।
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः। दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।।३८।।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान्। असृजन्मनसा चाऽऽदौ प्रजा दक्षो न मैथुनात् ।।३९।।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः। विसृज्य मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ।।४०।।
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ।।४१।।
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्त्रोऽरिष्टनेमिने। द्वे चैव बाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।।
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं निबोधत ।।४२।।

उत्पन्न होनेवाली संततियों के नित्य आनेवाले सभी प्रयोजनों को देखकर आप लोग क्रोध छोड़ दें, क्योंकि आप सब राजा हैं और बर्हिस् के पुत्र हैं ।।३०-३२।। पृथ्वी पर शेष बचे हुए ये वृक्ष अब नये वृक्षों को उत्पन्न करेंगे। अतः अग्नि और वायु को अब आप लोग शान्त कर दें। यह परम सुन्दर दिखायी पड़नेवाली रत्नभूत कन्या वृक्षों की है, भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं को जानकर मैंने अपने किरणों द्वारा इसको बढ़ाया है, इसका नाम मारिषा है, वृक्षों ने ही इसको उत्पन्न किया है। सोम के (मेरे) गर्भ में बढ़नेवाली यह सुन्दरी कन्या तुम सबों की स्त्री होगी। तुम लोगों के आधे तेज से तथा मेरे आधे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न होगा। तुम सबों के तेजबल के कारण एवं अग्नि द्वारा अग्नि के समान परम तेजस्वी हो वह इस जलकर नष्ट हुई वसुधा का तथा सारी प्रजाओं का पालन-पोषण करेगा ।।३३-३६।। चन्द्रमा के ऐसा कहने पर प्रचेताओं ने वृक्षों पर से अपना क्रोध हटा लिया और धर्मपूर्वक मारिषा को पत्नी रूप में वरण किया। तदनन्तर उन सबों ने मानसिक संकल्प से मारिषा में गर्भाधान किया। उन दस प्रचेताओं के अंश से मारिषा में दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए, जो चन्द्रमा के अंश के कारण परम पराक्रमी तथा महान् तेजस्वी थे। प्राचीनकाल में सर्वप्रथम उन दक्ष ने केवल मानसिक संकल्प से प्रजा सृष्टि की, स्त्री-पुरुष सम्भोग द्वारा नहीं ।।३७-३९।। उन दक्ष ने पहले अचरों को, चरों को, द्विपदों (मनुष्यों) को तथा चतुष्पदों को मानसिक संकल्प द्वारा उत्पन्नकर तदनन्तर स्त्रियों की सृष्टि की। उनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को तथा समय के विभाजन में नियुक्त सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा को दिया। इन सबको देने के बाद चार कन्याओं को अरिष्टनेमि को, दो बाहुपुत्र को, दो अङ्गिरा को तथा एक कृशाश्व को दिया। अब उनके पुत्र-पौत्रादिकों का विवरण सुनिये ।।४०-४२।। इस अवधि में छठवाँ चाक्षुष नामक

अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनोः षष्ठं तु हीयते। मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः ।।४३।।
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ।।४४।।

ऋषय ऊचुः

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसंभवाः। संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।।४५।।
देवानां दानवानां च देवर्षीणां च ते शुभः। संभवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ।।४६।।
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया। कथं प्राचेतसत्वं च पुनर्लेभे महातपाः ।।४७।।
एतं नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि। स दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ।।४८।।

सूत उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ।।४९।।
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजाः। पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ।।५०।।
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमाः। तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ।।५१।।
इमां विसृष्टिं यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम्। प्रजानामायुरुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ।।५२।।

मन्वन्तर व्यतीत हो गया और सातवें प्रजापति वैवस्वत मनु का भी कार्यकाल समाप्त हुआ। उन दक्ष की कन्याओं में देवता, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सराएँ एवं अन्यान्य जातियाँ उत्पन्न हुईं। इसके उपरान्त इस पृथ्वीलोक में प्रजाएँ सम्भोग के द्वारा उत्पन्न होने लगीं। उनके पूर्व उत्पन्न होनेवालों की सृष्टि संकल्प, दर्शन एवं स्पर्श से होती कही जाती है ।।४३-४५।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी! देवताओं, दानवों तथा देवर्षियों की उत्पत्ति तुमने महात्मा दक्ष की उत्पत्ति के पूर्व बतलायी है और प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बतलाया है, उस महातपस्वी ने फिर किस प्रकार प्रचेताओं के पुत्र होने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया—हम लोगों के इस सन्देह को तुम दूर करो तथा यह भी बतलाओ कि वह चन्द्रमा का दौहित्र (नाती) होकर फिर उसका श्वसुर कैसे हुआ ।।४६-४८।।

सूत ने कहा—ऋषिवर्यवृन्द! यह जन्म और निरोध (विनाश वा निवृत्ति) सर्वदा सर्वसामान्य जीवों में हुआ करते हैं, ऋषिगण तथा विद्वान् लोग इस विषय में कभी मोह को नहीं प्राप्त होते। हे द्विजगण! ये दक्षादि प्रजापतिगण प्रत्येक युग में उत्पन्न होते रहते हैं और फिर से वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं—इस विषय में विद्वानों को मोह नहीं होता। हे द्विजोत्तमवृन्द! पूर्वकाल में इन सबों में ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भाव नहीं रहा है, केवल तपस्या ही इनकी महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी तथा इनके व्यक्तिगत प्रभाव ही इनकी महत्ता के कारण होते रहे। चाक्षुष मनु की इस चराचर सृष्टि-वृत्तान्त को जो व्यक्ति भली-भाँति जानता है वह अपनी सारी आयु सुखपूर्वक समाप्तकर अन्त में स्वर्गलोक में पूजित होता है ।।४९-५२।। चाक्षुष

एष सर्गः समाख्यातश्चाक्षुषस्य समासतः। इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मकाः ।।
स्वायंभुवाद्याः संक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ।।५३।।
एते सर्गाः प्रजाप्रज्ञं प्रोक्ता वै द्विजसत्तमाः। वैवस्वतविसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ।।५४।।
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वतः। आरोग्यायुः प्रमाणेन धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।
एतानेव गुणानेति यः पठत्यनसूयकः ।।५५।।
वैवस्वतस्य वक्ष्यामि सांप्रतस्य महात्मनः। समासाद्व्यासतः सर्गं ब्रुवतो मे निबोधत ।।५६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पृथुवंशानुकीर्तनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

वैवस्वतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तमे त्वथ पर्यायये मनोर्वैवस्वतस्य ह। मारीचात्कश्यपाद्देवा जज्ञिरे परमर्षयः ।।१।।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः। भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ।।२।।

मन्वन्तर की सृष्टि का संक्षेप में वर्णन कर चुका। इन उपर्युक्त छह मन्वन्तरों का, जो स्वायंभुव मनु से आरम्भकर चाक्षुष मनु के अन्त तक चलते हैं, संक्षेप में क्रमिक वर्णन किया जा चुका। हे द्विजवर्यवृन्द! इन सृष्टि वृत्तान्तों को अपनी जानकारी के अनुसार मैं आप लोगों को बतला चुका, इनका विस्तारपूर्वक वर्णन वैवस्वत मन्वन्तर के समान जान लेना चाहिए। वैवस्वत मनु के सभी सृष्टि कार्य आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम सभी दृष्टियों से अनन्त तथा दूसरे सर्गों के समान ही हैं, जो असूया (गुणों में दोषारोपण करने की प्रवृत्ति) भाव को छोड़कर इसको पढ़ता है वह आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम इन सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। अब सम्प्रति वर्तमान महात्मा वैवस्वत के सृष्टिक्रम का यथावसर और संक्षेप विस्तार में वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।५३-५६।।

श्री वायुमहापुराण में पृथु-वंशानुकीर्तन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।।६३।।

अध्याय ६४

वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन

सूत जी ने कहा-ऋषिवृन्द! सातवें वैवस्वत नामक मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से देवताओं एवं महर्षियों की उत्पत्ति हुई ।।१।। उसमें आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेदेवगण, मरुद्गण, भृगुपुत्र एवं अंगिरापुत्र-ये आठ देवगण स्मरण किये जाते हैं ।।२।। इनमें आदित्यगण, मरुद्गण और रुद्रगण-ये कश्यप के पुत्र हैं। साध्यगण,

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः। साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः ।।३।।
भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरसः सुतः। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्नित्यं ते छन्दजाः सुराः ।।
*एतेऽपि च गमिष्यन्ति महतः कालपर्ययात् ।।४।।
एष मार्गस्तु मारीचो विज्ञेयः सांप्रतः शुभः। तेजस्वी सांप्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबलः ।।५।।
अतीतानागता ये च वर्तन्ते ये च सांप्रतम्। सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।।६।।
भूतभव्यभवन्नाथाः सहस्राक्षाः पुरंदराः। मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः ।।
सर्वैः ऋतुशतेनेष्टं पृथक्शतगुणेन तु ।।७।।
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्त्यबलानि च। अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यैः कारणैरपि ।।८।।
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः। भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः ।।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ।।९।।
भूतं भव्यं भविष्यं तत्स्मृतं लोकत्रयं द्विजैः। भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवं स्मृतम् ।।
भव्यं स्मृतं दिनं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम् ।।१०।।
ध्यायता पुत्रकामेण ब्रह्मणाऽग्रे विभाषितम्। भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ।।११।।

वसुगण एवं विश्वेदेवगण–ये तीन गण धर्म के पुत्र कहे गये हैं। भृगु के भार्गव एवं अंगिरा के अंगिरसगण पुत्र हैं, इस वैवस्वत मन्वन्तर में ये सुरगण छन्दों से उत्पन्न होनेवाले कहे गये हैं। महाप्रलयपर्यन्त ये लोग भी सृष्टि के कार्यों के साथ चलेंगे अर्थात् महाप्रलयपर्यन्त इनकी भी सत्ता विद्यमान रहेगी ।।३–४।। यह शुभ वर्तमान देव–पद्धति मरीचिनन्दन कश्यप के वंशधरों का जानना चाहिए, इन सबों का स्वामी इन्द्र साम्प्रत नामक महाबलशाली है। अतीत, भविष्यत् तथा वर्तमानकालीन जो मन्वन्तरों के इन्द्रगण हैं, वे सभी लक्षणों में एक समान हैं। वे सब–के–सब भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के स्वामी हैं, सहस्र आँखोंवाले तथा पुरन्दर हैं, मघवान् हैं, शृङ्गी हैं तथा वज्र धारण करनेवाले हैं। सभी सौ यज्ञों को पूर्ण करनेवाले तथा व्यक्तिगत सैकड़ों गुण–समूहों से उत्पन्न हैं ।।५–७।। तीनों लोकों में जितने भी शक्तिशाली, गतिमान् अथवा निर्बल प्राणी हैं, इन्द्र उन सबों से–धर्मादि कार्यों में भी–बढ़े–चढ़े रहते हैं। तेज से, तप से, बुद्धि से, बल, शास्त्रीय ज्ञान तथा पराक्रम से वे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हैं। वे जिस प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान के स्वामी होते हैं, उन सबका वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये ।।८–९।। ब्राह्मणों ने भूत, भव्य एवं भविष्य–ये तीन लोक बताये हैं। भूलोक यह पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष (आकाशमण्डल) भुवलोक स्मरण किया गया है। स्वर्गलोक भव्य नाम से स्मरण किया गया है, उनके लक्षणों को बतला रहा हूँ। पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से ब्रह्मा ने ध्यानावस्थित होकर सर्वप्रथम 'भूः' इस अक्षर का उच्चारण किया, उसी समय यह भूलोक

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

भूसत्तायां स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदर्शने । भूतत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः ।।
अतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूर्द्विजैः स्मृतः ।।१२।।
भूतेऽस्मिन्भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः । भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ।।१३।।
भवनात्तु भुवर्लोको निरुक्तज्ञैर्निरुच्यते । अन्तरिक्षं भुवस्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते ।।१४।।
उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीयं ब्रह्मणा पुनः । भव्येति व्याहृतं यस्माद्भव्यो लोकस्तदाऽभवत् ।।१५।।
अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते । तस्माद्भव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिवं स्मृतम् ।।१६।।
स्वरित्युक्तं तृतीयोऽन्यो भाव्यो लोकस्तदाऽभवत् । भाव्य इत्येष धातुर्वै भाव्ये काले विभाव्यते ।।१७।।
भूरितीयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं भवं स्मृतम् । दिव्यं स्मृतं तथा भाव्यं त्रैलोक्यस्यैष संग्रहः ।।१८।।
त्रैलोक्ययुक्तैर्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन् । नाथ इत्येष धातुर्वै धातुज्ञैः पालने स्मृतः ।।१९।।
यस्माद्भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा । लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजैः स्मृताः ।।२०।।
प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च । मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ।।२१।।

हुआ। भू धातु का सत्ता अर्थात् विद्यमान रहने अर्थ में प्रयोग होता है तथा लोक-दर्शन (लोगों के देखने योग्य) अर्थ में भी उसकी प्रसिद्धि है, विद्यमान रहने एवं लोगों के दृष्टिगोचर होने के कारण यह भूमि भूलोक नाम से प्रसिद्ध हुई। यही कारण है कि ब्राह्मणों ने इसे विद्यमान होने के कारण प्रथम लोक माना है ।।१०-१२।। इस भूलोक के आविर्भाव हो जाने पर ब्रह्मा ने फिर 'भवत्' ऐसा दूसरा उच्चारण किया। उत्पन्न (उच्चारित) होनेवाले इस भवत् शब्द के द्वारा वर्तमानकाल में होनेवाले का अवगम (बोध) होता है, निरुक्त[1] के जाननेवाले लोग भवन (होनेवाले) इस शब्द से भुवर्लोक की निरुक्ति करते हैं। अतः अन्तरिक्ष द्वितीय भुवर्लोक के नाम से कहा जाता है ।।१३-१४।। भुवर्लोक के आविर्भूत हो जाने पर ब्रह्मा ने 'भव्य' इस तृतीय शब्द का उच्चारण किया, जिससे भव्यलोक का आविर्भाव हुआ। यह भव्य शब्द भविष्यत्काल के अर्थ में आता है, इसी से यह लोक भव्य लोक हुआ, नाम से यह दिव (स्वर्ग) लोक से स्मरण किया जाता है। तदनन्तर ब्रह्मा ने अन्य तीसरे 'स्वः' इस शब्द का उच्चारण किया, जिससे भाव्य लोक का प्रादुर्भाव हुआ। भाव्य इस धातु का भविष्यत्काल के अर्थ में प्रयोग होता है। यह भूमि भूलोक के अर्थ में, अन्तरिक्ष भुवलोक के अर्ध में तथा स्वर्गलोक भाव्यलोक के अर्थ में कहे गये हैं-यही तीनों लोकों के समूह हैं ।।१५-१८।। इन्हीं तीनों लोकों के संयुक्त उच्चारणों से तीनों (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियाँ हुईं। धातु के जाननेवाले लोग नाथ धातु को पालन करने अर्थ में स्मरण करते हैं। यतः वे इन्द्रगण भूतलोक, भव्यलोक एवं भवत्लोक-इन तीनों लोकों के पालक हैं अतः ब्राह्मणगण उन्हें भूत, भव्य और भवत् तीनों का नाथ कहते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में जो देवगण यज्ञ भाग के भोक्ता होते हैं, उन सबों में ये इन्द्र प्रधान तथा गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ होते हैं। सभी यक्ष,

---

[1] प्रकृति-प्रत्यय आदि अवयवों के अर्थ को निचोड़कर एक अर्थ को प्रतिपादन करनेवाला वेद का एक अङ्ग अथवा व्याकरण।

यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः । महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणां तु सर्वशः ।।२२।।
देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते । रक्षन्तीमाः प्रजाः सर्वा धर्मेणेह सुरोत्तमाः ।।२३।।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः । सप्तर्षीन्संप्रवक्ष्यामि सांप्रतं ये दिवि स्थिताः ।।२४।।
गाधिजः कौशिको धीमान्विश्वामित्रो महातपः । भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुत्रः प्रतापवान् ।।२५।।
बृहस्पतिसुतश्चापि भारद्वाजो महातपाः । औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्शरद्वान्नाम धार्मिकः ।।२६।।
स्वायंभुवोऽत्रिर्भगवान्ब्रह्मकोशस्तु पञ्चमः । षष्ठो वशिष्ठपुत्रस्तु वसुमांल्लोकविश्रुतः ।।२७।।
वत्सारः काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसंमताः । एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्तन्ते सांप्रतेऽन्तरे ।।२८।।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाम उद्दिष्ट एव च ।।२९।।
करुषश्च पृषध्रश्च वसुमान्नवमः स्मृतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।
कीर्तिता वै मया ह्येते सप्तमं चैतदन्तरम् ।।३०।।
इत्येष वै मया पादो द्वितीयः कथिता द्विजाः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।३१।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतसर्गवर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।।६४।।

गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, सर्प तथा दानवगण इन्हीं देवेन्द्रों की महिमास्वरूप कहे जाते हैं। वे इन्द्र देवताओं के स्वामी, गुरु, नाथ, राजा एवं पितर–सब कुछ हैं, वे सुरोत्तम धर्मपूर्वक सभी प्रजाओं का पालन करते हैं ।।१९–२३।। देवेन्द्रों का यह संक्षिप्त लक्षण मैं बतला चुका, अब उन सातों ऋषियों का लक्षण बतला रहा हूँ, जो सम्प्रति स्वर्गलोक में अवस्थित हैं। इन सातों में परम बुद्धिमान्, कुशिकगोत्रीय, गाधि के पुत्र विश्वामित्र महान् तपस्वी हैं। भृगुगोत्रीय प्रतापशाली उरु पुत्र जमदग्नि हैं। बृहस्पति के पुत्र परम तपस्वी भारद्वाज हैं, परम धार्मिक एवं उतथ्य के पुत्र गौतम शरद्वान् हैं, स्वयंभू ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मपरायण भगवान् अत्रि इन ऋषियों में पाँचवें ऋषि हैं, छठे वसिष्ठ के पुत्र लोक-विख्यात वसुमान् नामक ऋषि हैं ।।२४–२७।। सातवें कश्यपगोत्रीय वत्सार हैं–ये सत्पुरुषों द्वारा सम्माननीय इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सिद्ध सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभ, उद्दिष्ट, करुष, पृषध्र और वसुमान् ये नव* वैवस्वत मनु के पुत्र कहे गये हैं। सातवें मन्वन्तर का वृत्तान्त वर्णन मैं कर चुका। हे द्विजगण! द्वितीय चरण का मैं विस्तारपूर्वक क्रमिक वर्णन कर चुका, अब आगे किस विषय का वर्णन करूँ? ।।२८–३१।।

श्री वायुमहापुराण में वैवस्वतसर्गवर्णन नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त।।६४।।

[द्वितीय अनुषङ्ग (सम्बन्ध) पाद समाप्त।]

---

* गणना से यहाँ पुत्रों की संख्या दस हो रही है। वास्तव में वैवस्वत के दस पुत्र थे, जैसा कि अन्य पुराणों में वर्णित है। अतः यहाँ नव की जगह दस होना चाहिए। 'नवमः स्मृतः' के स्थान पर 'दशमः स्मृतः' होना चाहिए।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

प्रजापतिवंशानुकीर्तनम्

ऋषय ऊचुः

श्रुत्वा पादं द्वितीयं तु क्रान्तं सूतेन धीमता। अतस्तृतीयं पप्रच्छ पादं वै शांशपायनः ॥१॥
पादः क्रान्तोऽद्वितीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया। तृतीयं विस्तरात्पादं सोपोद्घातं प्रकीर्तय ॥
एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२॥

सूत उवाच

कीर्तयिष्ये तृतीयं च सोपोद्घातं सविस्तरम्। पादं समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत ॥३॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः ॥४॥
चतुर्युगैकसप्तत्या संख्यातः पूर्वमेव तु। सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैः सह ॥५॥
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा। मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्थावरैः सह ॥६॥
मन्वादिकं भविष्यान्तमाख्यानैर्बहुविस्तरम्। वक्ष्ये वैवस्वतं सर्गं नमस्कृत्य विवस्वते ॥७॥

[तृतीय उपोद्घात पाद]

अध्याय ६५

प्रजापति के वंश का वर्णन

ऋषियों ने कहा–परम बुद्धिमान् सूत के मुख से दूसरे पाद को सुन लेने के बाद शांशपायन ने तीसरे पाद के विषय में पूछा। शांशपायन ने कहा, सूत जी! आपके मुख से अनुषङ्ग नामक द्वितीय पाद को हम सुन चुके, अब तीसरे उपोद्घात नामक पाद को विस्तारपूर्वक हमें सुनाइये। शांशपायन के ऐसा कहने पर अन्तरात्मा से अतिशय हर्षित होकर सूत बोले ॥१–२॥

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! अब मैं उपोद्घात नामक तीसरे पाद का वर्णन विस्तारपूर्वक कर रहा हूँ, उसे अविकल रूप से सुनिये। महात्मा वैवस्वत मनु के इस सृष्टिक्रम का विस्तारपूर्वक क्रमशः वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। पहले ही इस बात का वर्णन कर चुका हूँ कि मन्वन्तर का कार्यकाल इकहत्तर बार चारों युगों के बीत जाने पर समाप्त होता है। देवगणों, ऋषियों, दानवों, पितरों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, भूतों, मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों एवं स्थावरों के साथ इस वैवस्वत मन्वन्तर के सृष्टिक्रम का विस्तृत वर्णन एवं भविष्यत्काल में घटित होनेवाले अनेक आख्यानों को मैं विवस्वान् को प्रणामकर कह रहा हूँ ॥३–७॥ प्रथम स्वायंभुव नामक मन्वन्तर में जो सृष्टिकार्य के प्रवर्तक

आद्ये मन्वन्तरेऽतीताः सर्गाः प्रावर्तकाश्च ये। स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्णं सप्ताऽऽसन्ये महर्षयः।।
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः ।।८।।
दक्षस्य च ऋषीणां च भृग्वादीनां महौजसाम्। शापान्महेश्वरस्याऽसीत्प्रादुर्भावो महात्मनाम् ।।९।।
भूयः सप्तर्षयस्ते च उत्पन्नाः सप्त मानसाः। पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव स्वयमेव स्वयंभुवा ।।१०।।
प्रजासंतानकृद्भिस्तैरुत्पद्यद्भिर्महात्मभिः। पुनः प्रवर्तितः सर्गो यथापूर्वं यथाक्रमम् ।।११।।
तेषां प्रसूतिं वक्ष्यामि विशुद्धज्ञानकर्मणाम्। समासव्यासयोगाभ्यां यथावदनुपूर्वशः ।।१२।।
येषामन्वयसंभूतैर्लोकोऽयं सचराचरः। पुनः स पूरितः सर्गो ग्रहनक्षत्रमण्डितः ।।१३।।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनीनां संशयोऽभवत्। ततस्तं संशयाविष्टाः सूतं संशयनिश्चये।।
सत्कृत्य परिपप्रच्छुर्मुनयः संशितव्रताः ।।१४।।

ऋषय ऊचुः

कथं सप्तर्षयः पूर्वमुत्पन्नाः सप्त मानसाः। पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव तन्नो निगद सत्तम।।
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सूतः पौराणिकः शुभम् ।।१५।।

सूत उवाच

कथं सप्तर्षयः सिद्धा ये वै स्वायंभुवेऽन्तरे। मन्वन्तरं समासाद्य पुनर्वैवस्वतं किल ।।१६।।
भवाभिशापात्संविद्धा ह्यप्राप्तास्ते तदा तपः। उपपन्ना जने लोके सकृदागामिनस्तु ते ।।१७।।

सात ऋषि वर्तमान थे, चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है, उस काल में भी महेश्वर के शापवश पुनः प्रादुर्भूत होते हैं। दक्ष प्रजापति, भृगु प्रभृति परम तेजस्वी एवं महात्मा ऋषियों का भी प्रादुर्भाव होता है। वे ही सातों ऋषि पुनः ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं, स्वयं स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा ही उन्हें अपने पुत्र रूप में नियुक्त करते हैं। उत्पन्न होकर वे महात्मा सप्तर्षिगण विविध प्रजाओं एवं सन्ततियों की कामना से पुनः सृष्टि का कार्य उसी पुराने क्रम के अनुरूप प्रारम्भ करते हैं ।।८-११।। उन विशुद्ध ज्ञान एवं विशुद्ध कर्मवाले उन महात्माओं की सन्ततियों का क्रमशः वर्णन संक्षेप और विस्तारपूर्वक मैं कर रहा हूँ, जिसके वंश से उत्पन्न होनेवालों से ग्रहों एवं नक्षत्रों से विमण्डित इस चराचर जगत् की सृष्टि पुनः पूरित की जाती है। सूत की ऐसी बातों से जब मुनियों के मन में बहुत सन्देह हुआ तब संशय से युक्त सद्व्रतपरायण मुनियों ने सूत जी का अति सत्कारकर जिज्ञासा प्रकट की ।।१२-१४।।

ऋषियों ने पूछा—'हे सत्तम! पूर्वकाल में वे सप्तर्षिगण किस प्रकार मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए और किस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र माने गये—इस वृत्तान्त को हमें बतलाइये।' ऋषियों की ऐसी बातें सुनकर पुराणों के विशेषज्ञ महातेजस्वी सूत ने उस शुभ कथा को बतलाया ।।१५।।

सूत ने कहा—किस प्रकार स्वायंभुव मन्वन्तर में वे सप्तर्षिगण सिद्धि को प्राप्त हुए और फिर वैवस्वत मन्वन्तर में महादेव के शाप से अपनी सिद्धिदात्री तपस्या से च्युत हुए और मर्त्यलोक में आकर उत्पन्न हुए—इसका वर्णन मैं कर रहा

ऊचुः सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोकं महर्षयः। ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ।।१८।।
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। पितामहात्मजाः सर्वे ततः श्रेयो भविष्यति ।।१९।।
स्वायंभुवेऽन्तरे शप्ताः सत्यार्थं ते भवेन तु। जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकाद्दिवं गताः ।।२०।।
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं विभ्रतस्तनुम्। ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया।।
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम् ।।२१।।
भृगुरङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः ।।२२।।
तथाऽस्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागताः। यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ।।२३।।
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः। ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ।।२४।।
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओंकारवदनोज्ज्वलः। स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तसूक्तब्राह्मणमन्त्रवान् ।।२५।।
सामवेदश्च वृत्ताढ्यः सर्वगेयपुरःसरः। विश्वावस्वादिभिः सार्धं गन्धर्वैः संभृतोऽभवत् ।।२६।।
ब्रह्मदेवस्तथा घोरैः कृत्याविधिभिरन्वितः। प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत् ।।२७।।
लक्षणानि स्वरा स्तोमा निरुक्तस्वरभक्तयः। आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहंप्रग्रहावपि ।।२८।।
दीप्ता दीप्तिरिला देवी दिशः प्रदिशईश्वरा। देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ।।२९।।

हूँ। वे सप्तर्षिगण जनलोक में एक बार जन्म धारण करते हैं। जनलोक में आकर उन महाभाग्यशाली सप्तर्षियों ने आपस में यह सलाह की और एक-दूसरे से कहा कि वरुण यज्ञ के समाप्त हो जाने पर चाक्षुष मन्वन्तर में चलकर हम सभी पितामह ब्रह्मा जी के आत्मज होंगे तब फिर हमारा कल्याण होगा ।।१६-१९।। स्वायंभुव मन्वन्तर में सत्य आचरण के लिए वे महर्षिगण शिव द्वारा अभिशप्त किये गये थे। और पुनः जन्म धारणकर जनलोक से स्वर्गलोक को गये थे। देव के महान् यज्ञ में वरुण का शरीर धारणकर सन्तानोत्पत्ति की कामना से अपने वीर्य को अग्नि में हवन करते समय ब्रह्मा से ऋषियों का द्वितीय बार प्रादुर्भाव हुआ-यह हम लोगों ने सुना है। भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ।।२०-२२।। वरुण के उस विशाल यज्ञ में सभी देवता सम्मिलित हुए थे, यज्ञ के सभी अंग एवं वषट्कार मूर्ति धारणकर उपस्थित थे। सहस्रों साम एवं यजुर्वेद के मूर्त स्वरूप थे, पदक्रम से विभूषित ऋग्वेद भी वहाँ पर मूर्तमान था। ओंकार रूप मुख से उज्ज्वल, यज्ञ कार्य में प्रयुक्त होनेवाले सूक्त, ब्राह्मण एवं मन्त्र भाग से संयुक्त वृत्त से संवलित यजुर्वेद वहाँ अति शोभा पा रहा था। सभी गेय पदों को पुरःसर कर विश्वावसु आदि गन्धर्वों के साथ वृत्त से संवलित सामवेद अपने सभी उपकरणों से संयुक्त शोभित हो रहा था ।।२३-२६।। अतिघोर कृत्या (हत्या) आदि विधियों से तथा प्रत्यङ्गिरस आदि आभिचारिक प्रयोगों से युक्त होकर एक ही सिर में शरीर धारणकर उपस्थित था। इन सबों के अतिरिक्त लक्षण, स्वर, स्तोम[१], निरुक्त, स्वरों की भक्ति,[२] आश्रयस्वरूप वषट्कार, निग्रह, प्रग्रह आदि भी उपस्थित थे। दीप्ता, दीप्त, इला, देवी, सभी दिशाएँ, विदिशाएँ, दिक्पालगण, देवकन्याएँ, देवपत्नियाँ,

---

[१] गान के स्वर को पूरा करने के लिए शब्द-विशेष का प्रयोग किया जाता है, जिसका कोई विशेष अर्थ नहीं होता, जैसे सामवेद में 'इडा' 'होई' आदि।

[२] विभाजन की प्रणाली।

आयुः सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे । मूर्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृतः ।।३०।।
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि । ब्रह्मर्षेर्भावभूतस्य विधानाच्च न संशयः ।।३१।।
कृत्वा जुहाव स्रुग्भ्यां च स्रुवेण परिगृह्य च । आज्यवज्जुहु (हं) वांचक्रे मन्त्रवच्च पितामहः ।।३२।।
ततः स जनयामास भूतग्रामं प्रजापतिः । तस्यार्वाक्तेजसस्तस्य यज्ञे लोकेषु तैजसम् ।।
तमसा भावव्याप्यत्वं तथा सत्त्वं तथा रजः ।।३३।।
सगुणात्तेजसो नित्यं आकाशे तमसि स्थितम् । तमसस्तेजसत्वाच्च सर्वभूतानि जज्ञिरे ।।३४।।
यदा तस्मिन्नजायन्त काले पुत्रास्तु कर्मजाः । आज्यस्थाल्यामुपादाय स्वशुक्रं हुतवांश्च ह ।।३५।।
शुक्रे हुतेऽथ तस्मिंस्तु प्रादुर्भूता महर्षयः । ज्वलन्तो वपुषा युक्ताः सप्त वै प्रसवैर्गुणैः ।।३६।।
हुते चाग्नौ सकृच्छुक्रे ज्वालाया निःसृतः कविः । हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा ज्वालां भित्त्वा विनिःसृतम् ।।
भृगुस्त्वमिति होवाच यस्मात्तस्मात्स वै भृगुः ।।३७।।
महादेवस्तथोद्भूतं दृष्ट्वा ब्रह्माणमब्रवीत् । ममैष पुत्रकामस्य दीक्षितस्य त्वयं प्रभोः ।।
विजज्ञेऽथ भृगुर्देवो मम पुत्रो भवत्वयम् ।।३८।।
तथेति समनुज्ञातो महादेवः स्वयंभुवा । पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।।
वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यं स च प्रभुः ।।३९।।

मातृकाएँ तथा आयु–ये सब भी स्वरूप धारणकर वरुण का रूप धारण करनेवाले देव के अग्नि मुख में हवन करते समय उपस्थित रहे ।।२७–२९।। उन सब स्त्रियों को देखकर स्वयंभू ब्रह्म जी का वीर्य पृथ्वी पर स्खलित हो गया। ब्रह्मर्षि के भाव से प्रभावित निश्चित विधान के कारण पितामह ने पृथ्वी पर स्खलित अपने वीर्य को घृत की भाँति स्रुवा पर रखकर मन्त्रों का विधिवत् उच्चारणकर हवन कर दिया। प्रजापति ने इस प्रकार अनेक जीव–समूहों की सृष्टि की। लोक में परम तेजोमय, किन्तु पृथ्वी पर गिर पड़ने के कारण कुछ क्षीण तेजवाले उस वीर्य से सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुणमय सृष्टि उत्पन्न हुई। इन उपर्युक्त तीनों गुणों से सम्पन्न वह तेज आकाशमण्डल में देदीप्यमान हुआ। तमोगुणमय तेजस्विता के कारण सभी जीवसमूह उत्पन्न हुए ।।३१–३४।। जिस समय ब्रह्मा ने घृत के पात्र में अपने वीर्य को लेकर अग्नि में हवन किया उस समय उनके कर्मज पुत्रों की उत्पत्ति हुई। अग्नि में वीर्य के हवन कर देने पर महर्षियों का प्रादुर्भाव हुआ, सातों ऋषियों के शरीर उज्ज्वल एवं देदीप्यमान थे, तथा बालकों के सभी गुण उनमें पाये जाते थे। पहली बार अग्नि में वीर्य के हवन करने पर लपटों से कवि (भृगु) निकले। इस प्रकार ज्वाला का भेदनकर निकलते हुए कवि को देखकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने कहा, यतः अग्नि ज्वाला से प्रकट होते समय तुमने 'भृगु' इस प्रकार का उच्चारण किया है, अतः तुम्हारा नाम भी भृगु हुआ ।।३५–३७।। इस प्रकार अग्नि ज्वाला का भेदनकर प्रादुर्भूत होनेवाले उस ब्रह्मर्षि को देखकर महादेव ने कहा, प्रभो! पुत्र–प्राप्ति की कामना से मैं दीक्षा ग्रहण कर इस यज्ञ को कर रहा था, अतः यह ब्रह्मर्षि मेरा पुत्र हो। जब 'यह भृगु मेरा ही पुत्र हो'। ऐसा शिव जी ने प्रकट किया। तदनन्तर स्वयंभू ने कहा कि 'ऐसा

द्वितीयं तु ततः शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभुः । अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि संहितानि ततोऽङ्गिराः ।।४०।।
संभूतिं तस्य तां दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् । रेतोधास्तुभ्यमेवाहं द्वितीयोऽयं ममास्त्विति ।।४१।।
एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पतिः । तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति नः श्रुतम् ।।४२।।
षट्कृत्वस्तु पुनः शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा । हुते समभवंस्तत्र षड्ब्रह्माण इति श्रुतिः ।।४३।।
मरीचिः प्रथमस्तत्र मरीचिभ्यः समुत्थितः । क्रतौ तस्मिन्सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतुः ।।४४।।
अहं तृतीयं इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते । केशैश्च निशितैर्भूतः पुलस्त्यस्तेन स स्मृतः ।।४५।।
केशलम्बैः समुद्भूतस्तस्मात्तु पुलहः स्मृतः । वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान्वसुधाश्रयः ।।४६।।
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः । इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः मानसाः षण्महर्षयः ।।४७।।
लोकस्य संस्थानकरास्तैरिमा वर्धिताः प्रजाः । प्रजापतय इत्येवं पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः ।।४८।।
अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः । उत्पादिता ऋषिगणाः सप्त लोकेषु विश्रुताः ।।४९।।
मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे । पौलस्त्याः पौलहाश्चैव वाशिष्ठाश्चैव विश्रुताः ।।
आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ताः पितॄणां लोकविश्रुताः ।।५०।।

ही होगा।' तब शिव ने भृगु को अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया। इसी कारणवश भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाले वरुण–वंशीय कहलाते हैं, वे प्रभु भृगु भगवान् शिव की सन्तान हुए। तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने पुनः द्वितीय बार वीर्य को यज्ञाग्नि के अंगार के ऊपर आहुति डाला जिससे उन अंगारों पर अङ्गों–प्रत्यङ्गों समेत अंगिरा ऋषि प्रादुर्भूत हुए ।।३८–४०।। ब्रह्मा की इस अभिनव सम्भूति को प्रकट हुआ देख अग्नि ने कहा, ब्रह्मन्! मैंने तुम्हारे दिये हुए वीर्य को धारण किया था, अतः यह दूसरा पुत्र मेरा हो। सभा में प्रधान के पद पर समासीन ब्रह्मा ने अग्नि की प्रार्थना का अनुमोदन किया कि ऐसा ही हो। यही कारण है कि अंगिरा गोत्रवाले अग्निगोत्रीय भी कहे जाते हैं–ऐसा हमने सुना है। तदनन्तर लोकसृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने छह बार अग्नि में अपने वीर्य की आहुति दी, जिससे छह ब्राह्मण उत्पन्न हुए–ऐसा सुना जाता है। जिससे सर्वप्रथम अग्नि की मरीचियों से मरीचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यतः उस क्रतु (यज्ञ) में एक अन्य चौथा पुत्र भी उत्पन्न हुआ अतः उसका नाम क्रतु रखा गया। मैं तृतीय हूँ–ऐसा कहते हुए यतः एक अन्य पाँचवें पुत्र की उत्पत्ति हुई अतः वह अत्रि[१] नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक अन्य पुत्र अपने तीक्ष्ण केशों के कारण पुलस्त्य नाम से स्मरण किया गया ।।४१–४५।। लम्बे केशों के साथ उत्पन्न होने के कारण पुलह नाम प्रसिद्ध हुआ। वसु (अनादि सामग्री) के मध्य से यतः उत्पन्न हुआ अतः समस्त वसुधा का आश्रयभूत वसुमान् नाम रखा गया। तत्त्वों के जाननेवाले ब्रह्मवादी लोग उसे वशिष्ठ नाम से पुकारते हैं। ये ब्रह्मा के छह मानसिक पुत्र महर्षि कहे गये हैं। ये सब–के–सब लोक की सन्तान वृद्धि करनेवाले हैं, और इन्हीं लोगों ने प्रजाओं की वृद्धि की है। इसी कारण ब्रह्मा के ये पुत्रगण प्रजापति कहकर पुकारे जाते हैं। इन्हीं महर्षियों द्वारा दूसरे पितर नामक लोकविख्यात ऋषिगण भी उत्पन्न हुए ।।४६–४८।। वे लोकप्रसिद्ध सात पितरगण मारीच, भार्गव, आङ्गिरस, पौलस्त्य, पौलह, वाशिष्ठ और आत्रेय के नाम से विख्यात हैं। हे तात! संक्षेप में इन पितरगणों का वर्णन कर चुका, ये तीनों गुणों के विकार से समुत्पन्न, मूर्तिरहित, स्वयं प्रकाशमान्, ज्योतिष्मान् एवं विख्यात हैं ।।४९–५१।। उन

---

[१] पीछे उत्पन्न होनेवाले छह पुत्रों में अत्रि की क्रम संख्या तीसरी ही थी।

एते समासतस्तात पुरैव तु गुणास्त्रयः। अमूर्ताश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुताः ।।५१।।
तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहतकल्मषः। अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्शृणुध्वमतन्द्रिताः ।।५२।।
कर्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा। बहुपुत्रः कुमारश्च विवस्वान्सशुचिश्रवाः ।।५३।।
प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापतिः। इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः ।।५४।।
कुशोच्चया बालखिल्याः संभूताः परमर्षयः। मनोजवाः सर्वगताः सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ।।५५।।
जाता भस्मव्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसंमताः। वैखानसा मुनिगणास्तपःश्रुतपरायणाः ।।५६।।
श्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपसंमितौ। विदुर्जन्माक्षरजसो विमला नेत्रसंभवाः ।।५७।।
ज्येष्ठाः प्रजानां पतयः श्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे। ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवाः ।।५८।।
दारुणा हि रुते मासा निर्यासाः पक्षसंधयः। वत्सरा ये त्वहोरात्राः पित्रं(त्र्यं)ज्योतिश्च दारुणम् ।।५९।।
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितं कनकं स्मृतम्। तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमश्च पशवः स्मृताः ।।६०।।
येऽर्चिषस्तस्य ते रुद्रास्तथाऽऽदित्याः समुद्भवाः। अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषाः ।।६१।।
आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भवः। सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ।।६२।।
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैः संप्रसीदति। इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वराः ।।६३।।
सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चापि तपस्विनः। तत्प्रसादादिमाँल्लोकान्धारयेयुरिमाः क्रियाः ।।६४।।
द्वंद्वं संवर्धयामास तव तेजो विवर्धनम्। देवेषु वेदविद्वांसः सर्वे राजर्षयस्तथा ।।६५।।

पितरों के राजा यम नामक देव हैं, जिनके पाप तपस्या द्वारा नष्ट हो चुके हैं। अब आप लोग सावधानीपूर्वक अन्य प्रजापतियों के विषय में सुनिये। कर्दम, कश्यप, शेष, विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र, कुमार, विवस्वान्, शुचिश्रवा, प्रचेतस, अरिष्टनेमि एवं बहुल नामक प्रजापतियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे प्रजापति हो गये हैं ।।५२-५४।। उनमें कुशोच्चय एवं बालखिल्यगण परम ऋषि हो गये हैं, जो सब-के-सब मन के समान वेगशाली, सर्वगामी तथा सार्वभौम थे ।।५५।। ब्रह्मर्षियों द्वारा सम्माननीय, तपस्या एवं शास्त्राभ्यास में निरत रहनेवाले वैखानस मुनिगण यज्ञ के भस्म से प्रादुर्भूत हुए। उस (ब्रह्मा) के कानों से अति रूपवान् दो अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। नेत्र से उत्पन्न होनेवाले निष्पाप, जन्म से इन्द्रिय को स्ववश रखनेवाले तथा सात्त्विक प्रकृतिवाले ऋषिगण इस वृत्तान्त को जानते हैं। उसके कानों से अन्यान्य श्रेष्ठ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई, रोमछिद्रों से अन्यान्य ऋषियों की उत्पत्ति हुई, इसी प्रकार स्वेद एवं मल से भी कुछ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई ।।५६-५८।। उसके स्वर से दारुण मास, निर्यास (?), पक्षों की संधियाँ, वत्सर, दिन-रात एवं पितरगणों की दारुण ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ। रौद्र को लोहित कहा जाता है, लोहित को कनक नाम से भी स्मरण किया गया है, उसी को मैत्र भी जानना चाहिए, धूम पशु माने गये हैं ।।५९-६०।। उसकी देहद्युति से रुद्र तथा आदित्यगणों का समुद्भव हुआ। अङ्गारों से दिव्य एवं मानुष ज्योतियों का उद्भव हुआ। इस प्रकार ब्रह्म से समुद्भूत भगवान् ब्रह्मा इस लोकसृष्टि के आदिमकर्त्ता एवं मूल पुरुष माने गये हैं। उनको सब मनोरथों का देनेवाला कहा जाता है। उस महायज्ञ के अवसर पर कन्या की बातचीत के सिलसिले में ऋषियों और ब्रह्मा से इस प्रकार वार्त्तालाप हुआ। मरीचि ऋषि को अगुआ बनाकर सभी ऋषियों एवं देवताओं ने एक साथ सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा के पास जाकर इस तरह निवेदन किया, हे प्रभो! ये प्रजापतिगण सभी प्रजाओं की सृष्टि का कार्य सम्पन्न करेंगे, आपकी कृपा से ये सभी प्रजापति तथा परम तपस्वी हैं और सभी लोकों

वेदमन्त्रपराः सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवाः । अनन्तं ब्रह्म सत्यं च तपश्च परमं भुवि ।।६६।।
सर्वे हि वयमेते च तथैव प्रसवः प्रभो । ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचराः ।।६७।।
मरीचिमादितः कृत्वा देवाश्च ऋषिभिः सह । अपत्यानीह संचिन्त्य तेऽपत्यं कामयामहे ।।६८।।
तस्मिन्यज्ञे महाभागा देवाश्च ऋषिभिः सह । एतद्वंशसमुद्भूताः स्थानकालाभिमानिनः ।।६९।।
न च तेनैव रूपेग स्थापयेयुरिमाः प्रजाः । युगादिनिधनाश्चैव स्थापयेयुरिमाः प्रजाः ।।७०।।
ततोऽब्रवील्लोकगुरुः परमित्यविचारयन् । एवं देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न संशयः ।।
भवतां वंशसंभूताः पुनरेते महर्षयः ।।७१।।
तेषां भृगोः कीर्तयिष्ये वंशं पूर्वं महात्मनः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापतेः ।।७२।।
भार्ये भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे । हिरण्यकशिपोः कन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।।
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वरवर्णिनी ।।७३।।
भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्यं वेदविदां वरम् । देवासुराणामाचार्यं शुक्रं कविसुतं ग्रहम् ।।७४।।
स शुक्रश्चोशना ख्यातः स्मृतः काव्योऽपि नामतः । पितॄणां मानसी कन्या सोमपानां यशस्विनी ।।
शुक्रस्य भार्या गोनाम विजज्ञे चतुरः सुतान् ।।७५।।
ब्राह्मेण तेजसा युक्तः स जातो ब्रह्मवित्तमः । तस्यामेव तु चत्वारः पुत्राः शुक्रस्य जज्ञिरे ।।७६।।
त्वष्टा वरूत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ । ते तदाऽऽदित्यसंकाशा ब्रह्मकल्पाः प्रभावतः ।।७७।।

को धारण (पालन) करने में सक्षम तथा क्रियानिष्ठ हैं ।।६१–६४।। तुम्हारे तेज की अभिवृद्धि करनेवाले द्वन्द्वात्मक भाव की वृद्धि हो गयी। देवताओं में वेदों के जाननेवाले ये राजर्षिगण, वैदिकमंत्रपरायण एवं प्रजापति के समस्त गुणों से समलंकृत हैं। इस पृथ्वीतल पर एक ब्रह्म ही अनन्त, सत्य एवं परम तप साध्य है। ये और हम सभी तुम्हारी ही सन्तानें हैं, इस जगत् में ब्रह्म, ब्राह्मण एवं चराचर लोक सब कुछ तुमसे प्रादुर्भूत हुए हैं, हम सभी सन्तान की कामना करते हैं ।।६५–६८।। इस प्रकार उस महायज्ञ में महाभाग्यशाली देवगणों ने ऋषियों के साथ ब्रह्मा से प्रार्थना की। इन्हीं उपर्युक्त ऋषियों एवं देवताओं के वंश में स्थान एवं काल का निर्धारण करनेवाली सन्तानें उत्पन्न हुईं। उन लोगों ने फिर कहा, ये प्रजापतिगण इसी अपने रूप में (बिना स्त्री के) प्रजाओं का विस्तार तो कर नहीं सकते, इनकी प्रजाएँ युगारम्भ से लेकर युगान्त तक स्थित रहनेवाली होंगी। ऐसी बातें सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने बिना कुछ विशेष विचार किये ही उत्तर दिया, निस्संदेह इन्हीं सब बातों का निश्चय करके मैंने पहले देवताओं की सृष्टि की है। ये महर्षिगण जो आप लोगों के वंश में उत्पन्न होनेवाले हैं, उनमें से सर्वप्रथम महात्मा भृगु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रमशः कर रहा हूँ, जो कि प्रथम प्रजापति हैं। उन महात्मा भृगु की दो सत्कुलोत्पन्न कल्याणी स्त्रियाँ थीं, जिनमें एक हिरण्यकशिपु की कन्या थी जिसका दिव्या नाम विख्यात है, दूसरी परमसुन्दरी प्रलोप की कन्या थी, जिसका पौलोमी नाम था ।।६९–७३।। दिव्या ने भृगु के संयोग से वेदज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, देवताओं एवं असुरों के आचार्य, कविपुत्र, सुप्रसिद्ध ग्रह शुक्र को उत्पन्न किया। वे शुक्र उशना एवं काव्य नाम से भी विख्यात हैं। शुक्र की पत्नी एवं सोम पान करनेवाले पितरों की यशस्विनी गो नामक कन्या ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया ।।७४–७६।। वे शुक्राचार्य ब्रह्मतेज से समलंकृत एवं ब्रह्मज्ञानियों

रञ्जनः पृथुरश्मिश्च विद्वान्यस्य बृहद्गिराः । वरूत्रिणः सता ह्येते ब्रह्मिष्ठाः सुरयाजकाः ।।७८।।
इज्याधर्मविनाशार्थं मनुमेत्याभ्ययोजयन् । निरस्यमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ।।७९।।
एतैरेव तु कामं त्वां प्रापयिष्यामि याजनम् । श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्यं तस्माद्देशादपाक्रमत् ।।८०।।
तिरोभूतेषु तेष्विन्द्रो धर्मपत्नीं च चेतनाम् । ग्रहेण मोचयित्वा तु ततः सोऽनुससार ताम् ।।८१।।
तत इन्द्रविनाशाय यतमानान्यतींस्तु तान् । तत्राऽऽगतान्पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्रः प्रहन्य(ण्य) तु ।।
सुष्वाप देवदेवस्य वेद्यां वै दक्षिणे ततः ।।८२।।
तेषां तु भक्ष्यमाणानां तत्र शालावृकैः सह । शीर्षाणि न्यपतंस्तानि खर्जूराण्यभवंस्ततः ।।८३।।
एवं वरूत्रिणः पुत्रा इन्द्रेण निहताः पुरा । यजन्यां देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ।।८४।।
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टुः पुत्रोऽभवन्महान् । *यशोधरायामुत्पन्नो वैरोचन्यां महाशयाः ।।
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यमः स्मृतः ।।८५।।
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशाऽऽत्मजाः । देव्यां तान्सुषुवे सर्वान्काव्यश्चैवाऽऽत्मजान्प्रभुः ।।८६।।
भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा । क्रतुः श्रवाश्च मूर्धा च व्यजयो व्यश्रुषश्च यः ।।
प्रसवश्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपतिः स्मृतः ।।८७।।

में श्रेष्ठ थे। उस पत्नी में शुक्र के चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो त्वष्टा और वरूत्री तथा शण्ड एवं अमर्क के नाम से विख्यात हैं। शुक्र के प्रभाव से वे पुत्र ब्रह्म के समान तेजस्वी तथा आदित्य के समान थे। तिनमें से वरूत्री के रञ्जन, पृथुरश्मि और विद्वान् बृहद्गिरा नामक ब्रह्मपरायण पुत्र हुए, जो सभी देवताओं के पुरोहित हुए। एक बार यज्ञ एवं धर्म के विनाश के लिए इन शुक्रपुत्रों ने मनु से अपने तर्कपूर्ण मतों को निवेदित किया। धर्म को नष्ट होते देख इन्द्र ने मनु से कहा कि मैं इन्हीं लोगों के द्वारा तुमसे यज्ञ करवाऊँगा। इन्द्र की बातें सुनकर वे लोग वहाँ से पलायन कर गये ।।७७-८०।। उन लोगों के छिप जाने पर उनकी धर्मपत्नी चेतना को पुरस्कारों से प्रलोभितकर इन्द्र ने अनुगमन किया। तदनन्तर इन्द्र के विनाशार्थ यत्न करते हुए वे यति (संन्यासी) वेश में उसी स्थान पर पुनः आये, वहाँ पर उन दुरात्माओं को आया देख इन्द्र ने संहार कर दिया और स्वयं देवदेव के यज्ञ की दक्षिण वेदी पर शयन किया। वहाँ पर शाला में रहनेवाले गीदड़ों और कुत्तों द्वारा भक्षण करते समय उन वरूत्रीपुत्रों के सिर गिरकर खजूर के रूप में परिणत हुए। इस प्रकार प्राचीनकाल में वरूत्री के पुत्रों का इन्द्र द्वारा संहार किया गया। यजनी (जयन्ती) नामक पत्नी में शुक्र की पुत्री देवयानी की उत्पत्ति हुई ।।८१-८४।। विरोचन की कन्या यशोधरा में त्वष्टा के तीन सिरवाले विश्वरूप एवं उनके अनुज महान् यशस्वी विश्वकर्मा की यमज (जुड़वाँ) उत्पत्ति हुई। भृगु के बारह पुत्र उत्पन्न हुए, जो भृगुगणदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान् काव्य ने देवी में उन सभी आत्मजों को उत्पन्न किया। जिनके नाम भुवन, भावन, अन्य, अन्यायत, क्रतु, श्रवा, मूर्धा, व्यजय, व्यश्रुष, प्रसव, अज एवं अधिपति स्मरण किये गये हैं। ये बारह भृगुपुत्र बारह याज्ञिक देवगणों के नाम से विख्यात

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

इत्येते भृगवो देवाः स्मृता द्वादश याज्ञिकाः । पौलोम्यजनयत्पुत्रं ब्रह्मिष्ठं वसिनं विभुम् ।।८८।।
व्याधितः सोऽष्टमे मासि गर्भः क्रूरेण कर्मणा । च्यवनाच्च्यवनः सोऽथ चेतनस्तु प्रचेतसः ।।
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधादध्वानं पुरुषादजः ।।८९।।
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायां च भार्गवः । आत्मवानं दधीचं च तावुभौ साधुसंमतौ ।।९०।।
सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचाच्चोपपद्यते । रुची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहुषी ।।९१।।
तस्य तूर्वोर्ऋषिर्जज्ञे ऊरू भित्वा महायशाः । और्वश्चाऽऽसीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभः ।।९२।।
जमदग्निर्ऋचीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत । भृगोश्च चरुपर्यासे रौद्रवैष्णवयोस्तथा ।।९३।।
जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत । रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम् ।।
ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् ।।९४।।
और्वस्याऽऽसीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् । तेषां पुत्रसहस्राणि भार्गवाणां परस्परात् ।।९५।।
ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवाः स्मृताः । वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्यः सशौनकः ।।
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ।।९६।।
शृणुताङ्गिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः । यस्यान्ववाये संभूता भारद्वाजाः सगौतमाः ।।
देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महौजसः ।।९७।।

हैं ।।८५-८७$\frac{1}{2}$।। पुलोमा की पुत्री पौलोमी ने ब्रह्मनिष्ठ जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली पुत्र को उत्पन्न किया। किसी कठोर कर्म के कारण पौलोमी का वह गर्भ आठवें मास में व्याधिग्रस्त होकर गिर पड़ा, अतः च्यवन (गिर जाने) के कारण उसका च्यवन नाम पड़ा और प्रचेतस से चेतन हुआ। प्राचेतस च्यवन के क्रोध से पुरुषादज ने अध्वाको.......(?) उन भृगु पुत्र च्यवन ने सुकन्या नामक अपनी धर्मपत्नी में सत्पुरुषों द्वारा परम सम्माननीय आत्मवान् और दधीच नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। सरस्वती में दधीच के संयोग से सारस्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। नहुष की पुत्री महाभाग्यशालिनी रुची आत्मवान् की पत्नी थी ।।८८-९१।। आत्मवान् के ऋषि उरु नामक महायशस्वी पुत्र जंघाओं को फाड़कर उत्पन्न हुआ। उस उर्व का पुत्र ऋचीक हुआ जो प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी था। ऋचीक मुनि की सत्यवती नामक स्त्री में जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए। भृगु कृत रुद्र और विष्णु के चरु में विपर्यय हो जाने के कारण वैष्णव अग्नि के रुद्र अंश के भक्षण के कारण जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए। जमदग्नि के संयोग से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रमी, परम तेजस्वी, ब्रह्मबल से संयुक्त परशुराम को उत्पन्न किया। उर्व के पुत्र ऋचीक के एक सौ पुत्र थे, जिनमें जमदग्नि सबसे बड़े थे। उन सौ पुत्रों के एक सहस्र पुत्र हुए। उन सभी भृगुवंशीय ऋषियों के वंशज परस्पर अन्यान्य ऋषियों के वंशजों से बाह्य विवाहादि कार्यों में योग्य माने गये हैं। वत्स, विश्व, अश्विषेण, पाण्ड, पथ्य और शौनक–इन सात गोत्रों में भार्गवगण विभक्त माने जाते हैं ।।९२-९६।। अब अग्नि के पुत्र परम बुद्धिमान् अंगिरा के वंश का वृत्तान्त सुनिये, जिसके

सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट् । पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्यास्त्वथर्वणः ।।
इत्येताऽङ्गिरसः पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि संततिम् ।।९८।।
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाताः कुलोद्वहाः । उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ।।९९।।
बृहस्पतिः सुरूपाया गौतमः सुषुवे स्वराट् । अवन्ध्यं वामदेवं च उतथ्यमुशिजं तथा ।।१००।।
धिष्णुः पुत्रस्तु पथ्यायां संवर्तश्चैव मानसः । विचित्तश्च तथा यस्य शरद्वांश्चाप्युतथ्यजः ।।१०१।।
उशिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वामदेवजः । धिष्णोः पुत्रः सुधन्वान ऋषयश्च सुधन्वनः ।।१०२।।
रथकारः स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुताः । बृहस्पतेर्यवीयांसो विश्रुतैः सुमहायशाः ।।१०३।।
अङ्गिरसस्तु संवर्तो देवानङ्गिरसः शृणु । बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा ह्याङ्गिरसः स्मृताः ।।१०४।।
औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे । औदार्यायुर्दनुर्दक्षो दर्भः प्राणस्तथैव च ।।
हविष्मांश्च हविष्णुश्च क्रतुः सत्यश्च ते दश ।।१०५।।
अयस्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोसिजः । भारद्वाजाः शांकृतिका गार्ग्यकाण्वरथीतराः ।।१०६।।
मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा । तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्षभाः किंभयास्तथा ।।१०७।।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षा विज्ञेया दश पञ्च च । ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवोऽङ्गिरसः स्मृताः ।।१०८।।

गोत्र में परम तेजस्वी भारद्वाज, गौतम एवं इषुमान् नामक मुख्य देवगण उत्पन्न हुए हैं। आङ्गिरस अथर्वा की मरीचि नन्दिनी सुरूपा, कर्दम पुत्री स्वराट् तथा मनुकन्या पथ्या नामक तीन स्त्रियाँ थीं, उनमें होनेवाली सन्ततियों का विवरण बतला रहा हूँ, अथर्वा के वंशोद्धारक उन उत्तराधिकारियों का, जो परम पूजनीय अंगिरा की परम तपस्या के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे, वर्णन कर रहा हूँ, सुरूपा में बृहस्पति का जन्म हुआ, स्वराट् ने गौतम को जन्म दिया ।।९७–९९$\frac{१}{२}$।। अवन्ध्य, वामदेव, उशिज, उतथ्य और धिष्ण ये पथ्या में उत्पन्न हुए, और संवर्त तथा विचित्त उसके मानस पुत्र हुए। उतथ्य के पुत्र शरद्वान् हुए। उशिज के पुत्र दीर्घतमा तथा वामदेव के पुत्र बृहदुत्थ हुए। धिष्णु के पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र ऋषय हुआ। और ऋषय के रथकार नामक देवगण तथा परम विख्यात ऋषिगण पुत्र रूप में हुए। बृहस्पति के पुत्र महान् यशस्वी एवं परम विख्यात भारद्वाज हुए ।।१००–१०३।। आङ्गिरस के संवर्त नामक जो पुत्र थे उनकी संततियाँ देवगणों में परिगणित हैं, उन आंगिरसगोत्रीय देवताओं का विवरण सुनिये। बृहस्पति के छोटे भाई वे आंगिरसगोत्रीय देवगण माने जाते हैं। वे आंगिरसगोत्रीय देवगण सुरूपा के औरस पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। उनकी संख्या दस है तथा उनके नाम औदार्य, आयु, दनु, दक्ष, दर्भ, प्राण, हविष्मान्, हविष्णु, क्रतु और सत्य है। अयस्य, उतथ्य, वामदेव, उसिज, भारद्वाजगोत्रीय शांकृतिक, गार्ग्य, काण्व, रथीतर, मुद्गल, विष्णुवृद्ध, हरित, वायव, भारद्वाजगोत्रीय भाक्ष, आर्षभ और किंभय—ये पन्द्रह अंगिरा के गोत्रीय हैं, जो अन्यान्य ऋषियों के गोत्रों से विवाहादि सम्बन्धों में अंगीकार किये गये हैं। अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होनेवालों की संख्या बहुत अधिक बतलायी गयी है ।।१०४–१०८।। उत्तम पुरुषोंवाले मरीचि-पुत्रों के

मारीचं परिवक्ष्यामि वंशमुत्तमपूरुषम् । यस्यान्ववाये संभूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।१०९।।
मरीचिरापश्चकमे ताभिर्ध्यायन्प्रजेप्सया । पुत्रः सर्वगुणोपेतः प्रजावान्सुरुचिर्दितिः ।।
संपूज्यते प्रशस्तायां मनसा भाविता प्रभुः ।।११०।।
आहूताश्च ततः सर्वा आपः समवसत्प्रभुः । तासु प्रणिहितात्मानमेकः सोऽजनयत्प्रभुः ।।१११।।
पुत्रमप्रतिमन्नाम्नाऽरिष्टनेमिः प्रजापतिः । पुत्रं मरीचं सूर्याभं वधौ वेशो व्यजीजनत् ।।११२।।
प्रध्यायन्हि सतां वाचं पुत्रार्थी सलिले स्थितः । सप्त वर्षसहस्राणि ततः सोऽप्रतिमोऽभवत् ।।११३।।
कश्यपः सवितुर्विद्वांस्तेन स ब्रह्मणः समः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्रह्मणांऽशेन जायते ।।११४।।
कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिताः प्रजाः । अपिबत्स तदा कश्यं कश्यं मद्यमिहोच्यते ।।११५।।
*हाश्चेकसा हि विज्ञेया वाङ्मनः कश्य उच्यते । कश्यं मद्यं स्मृतं विप्रैः कश्यपानात्तु कश्यपः ।।११६।।
करोति नाम यद्वाचो वाचं क्रूरमुदाहृतम् । दक्षाभिशप्तः कुपितः कश्यपस्तेन सोऽभवत् ।।११७।।
तस्माच्च कश्यपेनोक्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना । +तस्माद्दक्षः कश्यपाय कन्यास्ताः प्रत्यपद्यत ।।
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वास्ता लोकमातरः ।।११८।।

वंश का वर्णन अब मैं कर रहा हूँ जिसके वंश में समस्त स्थावर-जंगम जगत् की उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम मरीचि ने जल की कामना की ओर सन्तति की इच्छा से उसी के द्वारा ध्यानमगन हुए। 'सभी सद्गुणों से सम्पन्न सन्ततिवान् शुभ-रुचिवाले पुत्र की उत्पत्ति से लोक में प्रतिष्ठा बढ़ती है' इस प्रकार की भावना प्रभु मरीचि के मन में हुई ।।१०९-११०।। तदनन्तर मरीचि के आवाहन करने पर सभी जल-समूह उनके समीप उपस्थित हुए। भगवान् मरीचि ने उस जलराशि में निवास किया। उसमें स्थित हो परम ऐश्वर्यशाली मरीचि ने पुत्र की कामना कर जितेन्द्रिय एवं अनुपम तेजस्वी अरिष्टनेमि नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो प्रजापति हुआ। मरीचि का वह पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी..........(?) उत्पन्न हुआ। जलराशि में स्थित होकर सज्जनों की कल्याणदायिनी वाणी का विशेष ध्यान करते हुए मरीचि सात सहस्र वर्ष तक स्थित रहे जिससे उनका वह पुत्र अनुपम हुआ। (उसी अरिष्टनेमि का दूसरा नाम कश्यप था।) कश्यप सविता के जनक थे। अतः उनकी महत्ता ब्रह्मा के समान थी। सभी मन्वन्तरों में वे ब्रह्म के अंश से अवतीर्ण होते हैं ।।१११-११४।। दक्ष ने कन्या के लिए जब सभी प्रजाओं को अप्रसन्न और कुपित कर दिया तब उन्होंने (अरिष्टनेमि) कश्य (मद्य) का पान किया। कश्य मद्य को कहते हैं। हाश्चेकसा (?) भी कश्य कहा जाता है। वचन और मन को कश्य कहते हैं। ब्राह्मणों ने कश्य मद्य को कहा है और उसी कश्य (मद्य) के पीने के कारण कश्यप नाम पड़ा। कन्या के लिए दक्ष द्वारा तिरस्कृत होकर उन्होंने कुपित होकर कठोर वाक्यों का प्रयोग किया था अतः कश्यप नाम से विख्यात हुए। परमेष्ठी ब्रह्मा के अनुरोध पर एवं कश्यप की प्रार्थना पर दक्ष ने अपनी कन्याएँ कश्यप को सौप दीं, वे दक्ष-कन्याएँ ब्रह्मवादिनी एवं लोकमाता

---

* इदमर्धं नास्ति ङ. पुस्तके।
+ इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

इत्येतमृषिसर्गं तु पुण्यं यो वेद वारुणम्। आयुष्मान्पुण्यवाञ्शुद्धः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्।।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।११९।।
अथाब्रुवन्पुनः सर्वे मुनयो रोमहर्षणम्। विनिवृत्ते प्रजासर्गे षष्ठे वै चाक्षुषस्य ह।।
निसर्गः संप्रवृत्तोऽयं मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।१२०।।

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः स्वयं दक्षः स्वयंभुवा। ससर्ज दक्षो भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।।
उपस्थितेऽन्तरे ह्यस्मिन्मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।१२१।।
ततः प्रवृत्तो दक्षस्तु प्रजाः स्त्रष्टुं चतुर्विधाः। जरायुजाण्डजाश्चैव उद्भिज्जाः स्वेदजास्तथा ।।१२२।।
दश वर्षसहस्राणि तप्त्वा घोरं महत्तपः। संभावितो योगबलैरणिमाद्यैर्विशेषतः ।।१२३।।
आत्मानं व्यभजच्छ्रीमान्मनुष्योरगराक्षसान्। * देवासुरसगन्धर्वान्दिव्यसंहननप्रजान्।।
ईश्वरानात्मनस्तुल्यान्रूपद्रविणतेजसा ।।१२४।।
तथैवान्यानि मुदितो गतिमन्ति ध्रुवाणि च। मानसान्येव भूतानि सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।।१२५।।
ऋषीन्देवान्सगन्धर्वान्मनुष्योरगराक्षसान्। यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुमृगांस्तथा ।।१२६।।
यदाऽस्य मनसा सृष्टा न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः। अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ।।१२७।।

थीं ।।११५-११८।। इस परम पवित्र पुण्यदायी वारुण सृष्टि के वृत्तान्त को जो जानता है वह दीर्घायु-सम्पन्न, पुण्यवान्, पवित्रात्मा परमानन्द को प्राप्त करता है। इस वृत्तान्त को धारण करनेवाले तथा सुननेवाले सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। तदनन्तर उन ऋषियों ने रोमहर्षण सूत जी से पुनः पूछा, हे सूत जी! छठवें चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर यह वैवस्वत मन्वन्तर किस भाँति प्रवृत्त होता है? इसे बताइये ।।११९-१२०।।

सूत ने कहा-इस वैवस्वत मन्वन्तर के उपस्थित होने पर 'प्रजाओं की सृष्टि करो'-स्वयंभू ब्रह्मा की इस आज्ञा पर दक्ष प्रजापति ने चर-अचर सभी प्रकार के जीव-समूहों की सृष्टि की। उस समय वे जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज चारों प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि के लिए प्रवृत्त हुए ।।१२१-१२२।। और दस सहस्र वर्ष तक अति घोर तपस्या में निरत रह अणिमा आदि सिद्धियों तथा योगबल से समुत्पन्न होकर उन्होंने अपने शरीर को मनुष्य, सर्प, राक्षस, देव, असुर, गन्धर्व प्रभृति दिव्य प्रजाओं तथा सम्पत्ति, सौन्दर्य एवं तेज में अपने ही समान परम ऐश्वर्यशाली विभूतियों के रूप में विभक्त किया। इस प्रकार उस समय अति प्रमुदित होकर इन सबों के अतिरिक्त विविध प्रजाओं की सृष्टि की अभिलाषा में अन्यान्य चराचर जीव-जन्तुओं को मानसिक संकल्पों द्वारा उत्पन्नकर ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, मनुष्यों, सर्पों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, पक्षियों, पशुओं तथा मृगादिकों को भी उत्पन्न किया ।।१२३-१२६।। किन्तु मानसिक संकल्प द्वारा सृष्टिकर्म करने पर जब प्रजाओं की यथेष्ट वृद्धि नहीं हुई तब परम बुद्धिमान् भगवान् महादेव

---

* एतदर्धस्थानेऽयं श्लोकः-देवासुरगन्धर्वान्मनुष्योरगराक्षसान्। समानवानेतान्सर्वान्दिव्यसंहननप्रजान्। इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । असिक्नीं चावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ।।१२८।।
सुतां सुमहता युक्तां तपसा लोकधारिणीम् । यया धृतमिदं सर्वे जगत्स्थावरजङ्गमम् ।।१२९।।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ प्राचेतसे प्रति । दक्षस्योद्वहतो भार्यामसिक्नीं वीरणीं पराम् ।।१३०।।
कूपानां नियुतं दक्षः सर्पिणां साभिमानिनाम् । नदीगिरीषु सर्पंस्ताः पृष्ठतोऽनुययौ प्रभुः ।।१३१।।
तं दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्तं प्रतिष्ठास्यति वै प्रजाः । प्रथमाऽत्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापतेः ।।१३२।।
तथाऽगच्छद्यथाकालं कूपानां नियुते तु सः । असिक्नीं वैरिणीं यत्र दक्षः प्राचेतसोऽवहत् ।।१३३।।
अथ पुत्रसहस्रं स वैरिण्याममितौजसा । असिक्न्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसः प्रभुः ।।१३४।।
तांस्तु दृष्ट्वा महातेजाः स विवर्धयिषून्प्रजाः । देवर्षिः प्रियसंवादो नारदो ब्रह्मणः सुतः ।।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवाऽऽत्मनोऽब्रवीत् ।।१३५।।
यः स वै प्रोच्यते विप्रः कश्यपस्येति कृत्रिमः । दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेन कर्मणा ।।१३६।।
यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत । मानसः कश्यपस्येह दक्षशापभयात्पुनः ।।१३७।।
तस्मात्स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् । स हि पूर्वसमुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।।१३८।।
येन दक्षस्य पुत्रास्ते हर्यश्वा इति विश्रुताः । निन्दार्थं नाशिताः सर्वे विनष्टाश्च न संशयः ।।१३९।।

के बुरा-भला कहने पर सम्भोग कर्म द्वारा विविध प्रजाओं की सृष्टि का विचार किया और इसके लिए वीरण नामक प्रजापति की पुत्री असिक्नी को पत्नी के रूप में अंगीकार किया, वह असिक्नी अपनी घोर तपस्या के बल से समस्त लोक का पालन करनेवाली तथा समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगन्मण्डल को धारण करनेवाली थी ।।१२७-१२९।। इस विषय में लोग प्राचेतस दक्ष के लिए इन दो श्लोकों (छन्दों) को कहा करते हैं, जिनका आरोप इस प्रकार है। परम श्रेष्ठ वीरण की पुत्री असिक्नी को उद्वाहित करते (ब्याहते) समय दक्ष ने दस लक्ष गमनशील अभिमानी कूपों का निर्माण किया, जो नदियों और पर्वतों में लीन हुए, ऐश्वर्यशाली दक्ष ने उन सबों का अनुसरण किया। दक्ष को इस प्रकार परम ऐश्वर्यसम्पन्न देखकर ऋषियों ने कहा कि इसके द्वारा प्रजाओं की प्रतिष्ठा होगी। इस प्रकार प्रजापति दक्ष की प्रथम सृष्टि सन्तति रूप में तथा द्वितीय प्रजा में परिणत हुई। इस प्रकार दस लक्ष कूपों का निर्माणकर यथासमय वीरण पुत्री असिक्नी को दक्ष ने वरण किया। अमित तेजस्वी प्राचेतस दक्ष ने उस वीरण पुत्री असिक्नी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया। प्रजाओं की वृद्धि की इच्छा रखनेवाले उन दक्ष पुत्रों को देखकर ब्रह्मा के पुत्र कलहप्रिय देवर्षि नारद ने उनके विनाशार्थ एवं अपने शाप के लिए उनसे दुष्ट परामर्शपूर्ण बातें कीं ।।१३०-१३५।। विप्रवर्य नारद जी, जिस कारण कश्यप के पुत्र कहे जाते हैं, उसका मूल कारण उनकी यही करतूत है। उस परामर्श रूप निन्द्य कार्य के कारण दक्ष के शाप से भयभीत होकर ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षि नारद कश्यप सुत के रूप में अवतीर्ण हुए। फिर दक्ष-शाप के भय से कश्यप के यहाँ मानसपुत्र रूप में अवतीर्ण होना उनका द्वितीय जन्म था। ये नारद जी सर्वप्रथम परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नाम से विख्यात समस्त पुत्रों को निन्दा के लिए इन्होंने नष्ट किया था, इसमें सन्देह नहीं ।।१३६-१३९।। अपने

तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धो नाशाय वै प्रभुः। ब्रह्मर्षीन्वै पुरस्कृत्य याचितः परमेष्ठिना ।।१४०।।
ततोऽभिसंधितं चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना। कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवत्विति ।।१४१।।
ततो दक्षः सुतां प्रादात्प्रियां वै परमेष्ठिने। तस्मात्स नारदो जज्ञे भूयः शान्तो भयादृषिः ।।१४२।।
तदुपश्रुत्य प्रियास्ते जातकौतूहलाः पुनः। अपृच्छन्वदता श्रेष्ठं सूतं तत्त्वार्थदर्शिनम् ।।१४३।।

ऋषय ऊचुः

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महात्मना। प्रजापतिसुतास्ते वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ।।१४४।।
स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासंभवं शुभम्। प्रोवाच मधुरं वाक्यं तेषां सर्वगुणान्वितम् ।।१४५।।
दक्षपुत्राश्च हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः। समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ।।१४६।।
ब्रालिशा बत यूयं वै न प्रजानीथ भूतलम्। अन्तमूर्ध्वमधश्चैव कथं स्त्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।।१४७।।
किं प्रमाणं तु मेदिन्याः स्त्रष्टव्यानि तथैव च। अविज्ञायेह स्त्रष्टव्यं अन्यथा किं तु स्त्रक्ष्यथ।।
अल्पं वाऽपि बहुर्वाऽ (वाऽ) पि तत्र दोषस्तु दृश्यते ।।१४८।।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम्। वायुं तु समनुप्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ।।१४९।।
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिश्रिताः। एवं वायुपथं प्राप्य भ्रमन्ते ते महर्षयः ।।१५०।।

पुत्रों का विनाश देख नारद का नाश करने के लिए जब प्रभु दक्ष उद्यत हुए तो समस्त ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेष्ठी पितामह ने दक्ष से इनके लिए याचना की। उस समय दक्ष के साथ पितामह की यह शर्त तय हुई कि 'मेरे उद्देश्य से दी गयी कन्या में नारद तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या परमेष्ठी को दी, जिसके गर्भ से पुनः भयभीत नारद जी शान्त रूप में उत्पन्न हुए। ऐसी बातें सुन उन ऋषियों को बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने तत्त्वार्थदर्शी, व्याख्याताओं में सर्वश्रेष्ठ सूत से पूछा ।।१४०-१४३।।

ऋषियों ने कहा-सूत जी ! महात्मा नारद ने किस लिए प्राचेतस दक्ष प्रजापति के उन पुत्रों एवं प्रजाओं का विनाश किया ? ऋषियों की ऐसी जिज्ञासाभरी कल्याणपूर्ण बातें सुन सूत ने उनसे सर्वगुणसम्पन्न यह मधुर बातें कहीं। महाबलवान् दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नामक प्रजा-सृष्टि की वृद्धि के इच्छुक पुत्रों को अपने पास आया देख नारद ने कहा-'दक्ष के मूर्ख पुत्रो ! तुम लोग भूगोल के तत्त्व को बिल्कुल नहीं जानते, इसके ऊपर क्या है ? नीचे क्या है ? इसका अन्त कहाँ होता है ? इन सब बातों को बिना जाने-बूझे किस तरह प्रजाओं की सृष्टि करोगे? तुम्हें यह तो मालूम नहीं है कि इस पृथ्वी का क्या परिमाण है और इसमें कितनी प्रजाओं की सृष्टि करनी चाहिए। बिना जाने यदि सृष्टि कर्म करोगे तो या अल्पता के अथवा अधिकता के अपराधी होओगे। इसके अतिरिक्त बिना जाने-बूझे और क्या कर ही सकते हो ।।१४४-१४८।। नारद की ऐसी बातें सुनकर वे दक्षपुत्रगण सभी दिशाओं की ओर चले गये और वहाँ वायुमण्डल को प्राप्त होकर एकदम शिथिल एवं पराभूत हो गये। वायुमण्डल में पहुँचकर वे बेचारे वायु के साथ घूमते हुए आज तक नहीं लौट सके। इस प्रकार नारद की कूटपूर्ण बातों में आकर वे महर्षिगण वायुमण्डल में भ्रमण करते हैं। अपने उन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने पुनः वैरिणी में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। प्रजाओं की वृद्धि के इच्छुक

स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः । वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।।१५१।।
प्रजा विवर्धयिषवः शबलाश्वाः पुनस्तु ते । पूर्वमुक्तं वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ।।१५२।।
तच्छ्रुत्वा वचनं सर्वे कुमारास्ते महौजसः । अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृषिः ।।
भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ।।१५३।।
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः । ×तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवाऽऽपगाः ।।१५४।।
ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः । प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्यं विजानता ।।१५५।।
नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽभवद्विभुः । नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ।।१५६।।
तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किल । षष्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिण्यामेव विश्रुताः ।।१५७।।
तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यपः प्रभुः । धर्मः सोमस्तु भगवांस्तथैवान्ये महर्षयः ।।१५८।।
इमां विसृष्टिं दक्षस्य कृत्स्नां यो वेद तत्त्वतः । आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ।।१५९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रजापतिवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।।६५।।

शबलाश्व नाम से विख्यात इन पुत्रों से भी नारद ने पुनः अपनी वही पुरानी बातें सुनायीं। जिसे सुनकर उन परमतेजस्वी कुमारों ने एक-दूसरे से सम्मति की कि महर्षि नारद का कहना ठीक है। अपने पूर्वज उन बड़े भाइयों की राह पर हम लोगों को बिना किसी सन्देह के चलना चाहिए ।।१४९-१५३।। और इस पृथ्वीमण्डल का प्रमाण आदि समझ-बूझकर तब हम लोग सुखपूर्वक प्रजाओं की सृष्टि करेंगे। ऐसा निश्चय कर वे लोग भी विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और आज तक वहाँ से समुद्र में गयी हुई नदियों की भाँति लौट नहीं सके। तभी से यदि बड़े भाई को खोजने के लिए छोटा भाई प्रवृत्त होता है तो वह भी नष्ट हो जाता हैं, बुद्धिमानों को ऐसा नहीं करना चाहिए ।।१५४-१५५।। शबलाश्व नामक अपने दूसरे पुत्र-समूहों के नष्ट हो जाने पर परमऐश्वर्यशाली दक्ष प्रजापति ने नारद को शाप दिया कि 'तू नष्ट हो जा, अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो और गर्भवास का कष्ट अनुभव कर।' इस प्रकार उन शबलाश्व नामक महात्मा पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचीनकाल में यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि दक्ष ने उसी वैरिणी के संयोग से साठ परम प्रसिद्ध कन्याओं को उत्पन्न किया। और उन दक्ष-पुत्रियों को प्रभु कश्यप, चन्द्रमा तथा अन्यान्य महर्षियों ने अंगीकार किया। दक्षप्रजापति के इस सृष्टि विस्तार की सम्पूर्ण कथा को जो सत्यरूप में जानता है वह दीघार्यु-सम्पन्न, यशस्वी, धनधान्यादि-सम्पन्न एवं पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त रहता है ।।१५६-१५९।।

श्री वायुमहापुराण में प्रजापतिवंशानुकीर्तन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६५।।

× इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च दैत्यानां चैव सर्वशः। उत्पत्तिं विस्तरेणेह ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे ।।१।।

सूत उवाच

धर्मस्य तावद्वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत। अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।।२।।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा तथैव च। धर्मपत्न्यो दश त्वेता दक्षः प्राचेतसो ददौ ।।३।।
साध्या पुत्रांस्तु धर्मस्य साध्यान्द्वादश जज्ञिरे। साध्या नाम महाभागाश्छन्दजा यज्ञभागिनः ।।
देवेभ्यस्तान्परान्देवान्देवज्ञाः परिचक्षते ।।४।।
ब्रह्मणो वै मुखात्सृष्टा जया देवाः प्रजेप्सया। सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह ।।५।।
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथंतरम्। चित्तिश्चैव विचित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च ।।६।।
विज्ञाता चैव विज्ञातो मनो यज्ञश्च ते स्मृताः। नामान्येतानि तेषां वै जयानां प्रथितानि च ।।७।।

अध्याय ६६

कश्यप के सन्तानों की सृष्टिकथा

ऋषियों ने कहा–सूत जी! अब हम लोगों से वैवस्वत मन्वन्तर में होनेवाले देवताओं, दानवों एवं दैत्यों की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ।।१।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! सर्वप्रथम धर्म की प्रजाओं का सृष्टि–क्रम बतला रहा हूँ, सुनिये। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा–ये दस धर्म की पत्नियाँ थीं, जिन्हें प्राचेतस दक्ष ने उनके लिए दिया था। साध्या ने धर्म के संयोग से बारह पुत्रों को जन्म दिया, जो साध्यगणों के नाम से प्रख्यात हैं। ये महाभाग्यशाली साध्य नामक देवगण छन्दों से उत्पन्न होनेवाले एवं यज्ञ में भाग पानेवाले कहे जाते हैं, देवताओं के वास्तविक महत्त्व को जाननेवाले लोग उन्हें देवताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं पूजनीय बतलाते हैं ।।२–४।। ब्रह्मा ने सन्तति उत्पन्न करने की कामना से अपने मुख द्वारा जय नामक देवगणों की उत्पत्ति की, जो मन्वन्तर में सब–के–सब मंत्रमय शरीरवाले कहे गये हैं। उन जय नामक देवगणों के नाम इस प्रकार हैं। दर्श, पौर्णमास, बृहत्, रथन्तर, चित्ति, विचित्ति, आकूति, कूति, विज्ञाता, विज्ञात, मन और यज्ञ। ये ही उन जय देवगणों के नाम हैं। वे जय नामक

ब्रह्मशापेन ते जाताः पुनः स्वायंभुवे जिताः। स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः ॥८॥
तामसे हरयो नाम वैकुण्ठा रैवतान्तरे। साध्याश्च चाक्षुषे नाम्ना छन्दजा जज्ञिरे सुराः ॥९॥
धर्मपुत्रा महाभागाः साध्या ये द्वादशामराः। पूर्वं स्म अनुसूयन्ते चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥१०॥
स्वारोचिषेऽन्तरेऽतीता देवा ये वै महौजसः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥११॥
किंचिच्छिष्टे तदा तस्मिन्देवा वै तुषिताऽब्रुवन्। इतरेतरं महाभागान्वयं साध्यान्प्रविश्य वै ॥
मन्वन्तरे भविष्यामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥१२॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। तस्माद्द्वादश संभूता धर्मात्स्वायंभुवात्पुनः ॥१३॥
नरनारायणौ तत्र जज्ञाते पुनरेव हि। विपश्चिदिन्द्रो यश्चाऽऽसीत्तथा सत्यो हरिश्च तौ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वमास्तां तौ तुषितौ सुरौ ॥१४॥
तुषितानां तु साध्यत्वे नामान्येतानि वक्ष्यते। मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान् ॥१५॥
चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा। प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे ॥१६॥
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ततः स्वारोचिषे पुनः। नामान्यासन्पुनस्तानि तुषितानां निबोधत ॥१७॥
प्राणोऽपानस्तथोदानः समानो व्यान एव च। चक्षुः श्रोत्रं तथा प्राणः स्पर्शो बुद्धिर्मनस्तथा ॥१८॥

देवगण ब्रह्मशाप के कारण पुनः स्वायंभुव मन्वन्तर में जित नाम से उत्पन्न होते हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नाम से तथा उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से वे पुनः आविर्भूत होते हैं ॥५-८॥ तामस मन्वन्तर में वे हरि तथा रैवत मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध होते हैं। इसी प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर में वे छन्दोज देवगण साध्य नाम से उत्पन्न होते हैं। महाभाग्यशाली धर्म के पुत्र वे बारह देवगण चाक्षुष मन्वन्तर के पूर्वकाल में उत्पन्न हुए। स्वारोचिष मन्वन्तर में उत्पन्न होनेवाले उन अतीतकालीन तुषित नामक महान् तेजस्वी देवगणों ने उस समय जब कि स्वारोचिष मन्वन्तर की अवधि थोड़ी शेष रह गयी थी, आपस में यह परामर्श किया कि हम लोग परस्पर एक में सन्निहित होकर आगामी चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से जन्म ग्रहण करेंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा ॥९-१२॥ आपस में ऐसा परामर्श निश्चित कर वे पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में स्वयंभू के पुत्र धर्म के यहाँ बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। उस स्वारोचिष मन्वन्तर में नर और नारायण भी पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। उनमें विपश्चित् नाम से इन्द्र तथा सत्य नाम से हरि की प्रसिद्धि होती है। उक्त मन्वन्तर में वे दोनों तुषित नामक देवगणों में सम्मिलित थे। उन तुषित नामक देवगणों का साध्य नाम से जन्म ग्रहण करने पर जो-जो नाम विख्यात हुआ, उसका वर्णन कर रहा हूँ। मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, यान, चित्ति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव तथा विभु-ये बारह देवगण साध्य नाम से उत्पन्न हुए थे ॥१३-१६॥ पूर्वकालीन स्वायंभुव मन्वन्तर में तथा पुनः स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही देवगण जब तुषित नाम से विख्यात होते हैं उस समय के उनके नाम बतला रहा हूँ, सुनिये। उनके नाम प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान,

प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च। नामान्येतानि पूर्वं नु तुषितानां स्मृतानि ह ।।१९।।
वसोस्तु वसवः पुत्राः साध्यानां मनुजाः स्मृताः। धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलोऽनिलः ।।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।।२०।।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा। ध्रुवपुत्रो भवो नाम्ना कालो लोकप्रकालनः ।।२१।।
सोमस्य भगवान्वर्चा बुधश्च ग्रहबोधनः। रोहिण्यां तौ समुत्पन्नौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।।२२।।
धारोर्मिकलिलाश्चैव त्रयश्चन्द्रमसः सुताः। आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः शमः शान्तस्थैव च ।।२३।।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च जज्ञे पादेन तेजसः। अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ।।२४।।
अनिलस्य शिया भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः। अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ।।२५।।
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्र ऋषिर्नाम्ना तु देवलः। द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।।२६।।
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी। योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत ।।२७।।
प्रभासस्य तु या भार्या वसूनामष्टमस्य ह। विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पिप्रजापतिः ।।२८।।

चक्षु, श्रोत्र, रसन,[1] घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन हैं। पूर्व काल में उन तुषितों के नाम प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ही था ।।१७-१९।। वसु के धर्म के संयोग से वसुगण उत्पन्न हुए जो साध्यों के अनुज[2] रूप में स्मरण किये जाते हैं। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास–ये आठ वसुगण के नाम से विख्यात हैं ।।२०।। घर के द्रविण और हुतहव्यवाह नामक पुत्र हुए। ध्रुव के पुत्र का नाम भव हुआ जो समस्त लोक के संहारक काल नाम से प्रसिद्ध हुए। सोम के पुत्र परमऐश्वर्यशाली वर्चा और बुध हुए, जिनमें बुध नव ग्रहों में परिगणित हुए। सोम के ये दोनों त्रैलोक्य विख्यात पुत्र रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन दोनों के अतिरिक्त धारा, उर्मि और कलिल (?) नामक तीन अन्य पुत्र भी चन्द्रमा के थे। आप के पुत्र वैतण्ड्य, शम और शान्त थे। अग्नि के कुमार नामक पुत्र का जन्म सरपतों के समूह में हुआ, उनका दूसरा नाम स्कन्द हुआ। ये स्कन्द और सनत्कुमार अग्नि के चतुर्थांश तेज से उत्पन्न हुए थे। इनके शाख, विशाख और नैगमेय नामक कनिष्ठ भाई हुए ।।२१-२४।। अनिल की स्त्री का नाम शिया था, जिसके संयोग से मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्र अनिल के हुए। प्रत्यूष के पुत्र का नाम देवल ऋषि लोग जानते हैं। देवल के क्षमावान् और मनीषी नामक दो पुत्र हुए। बृहस्पति की भगिनी परमयोगसिद्ध, ब्रह्मचारिणी वरस्त्री थी जो समस्त जगत् में बिना किसी आसक्ति के विचरण करती थी ।।२५-२७।। वह वरस्त्री आठवें वसु प्रभास की स्त्री थी उसका पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो समस्त शिल्पियों का प्रजापति था। वह विश्वकर्मा

---

[1] आनन्दाश्रम की प्रति में 'चक्षुः श्रोत्रं तथा प्राणः' यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि 'प्राणोऽपानस्तथोदानः' में 'प्राण' की गणना हो जाती है। अतएव 'चक्षुः श्रोत्रं रसो घ्राणः' यह पाठ शुद्ध है जो बँगला प्रति में मिलता है। आनन्दाश्रम के पाठ से देवताओं की संख्या भी ग्यारह ही होती है, जबकि बारह होनी चाहिए।

[2] आनन्दाश्रम की प्रति में 'मनुज' यह पाठ अति भ्रामक है।

स कर्ता सर्वशिल्पानां त्रिदशानां च वर्धकिः । भूषणानां च सर्वेषां कर्ता कारयिता च सः ।।२९।।
सर्वेषां च विमानानि देवतानां करोति सः । मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पानि शिल्पिनः ।।३०।।
विश्वे (श्व) देवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः । क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो धुनिस्तथा ।।३१।।
कुरुवान्प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश । धर्मपुत्राः स्मृता ह्येते विश्वायां जज्ञिरे शुभाः ।।३२।।
मरुत्वत्यां तु मरुतो भानवो भानुजाः स्मृताः । मुहूर्ताश्च मुहूर्तायां घोषं जम्बा व्यजायत ।।३३।।
संकल्पायां तु संजज्ञे विद्वान्संकल्प एव च । नागवीथ्यस्तु जाम्यां च पथत्रयसमाश्रिताः ।।३४।।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत । एष सर्गः समाख्यातो विद्वान्धर्मस्य शाश्वतः ।।३५।।
मुहूर्ताश्चैव तिथ्यश्च पतिभिः सह सुव्रताः । नामतः संप्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ।।३६।।
अहोरात्रविभागश्च नक्षत्राणि समासतः । मुहूर्ताः सर्वनक्षत्रा अहोरात्रविदस्तथा ।।३७।।
अहोरात्रकलानां तु षट्शतीत्यधिका स्मृता । रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु ऋतुमिच्छतः ।।३८।।
ततो वेदविदश्चैतां तिथिमिच्छन्ति पर्वसु । अविशेषेषु कालेषु योज्यः स पितृदानतः ।।३९।।
रौद्रः सार्वस्तथा मैत्रः पिण्ड्यवासव एव च । आप्योऽथ वैश्वदेवश्च ब्राह्मो मध्याह्नसंश्रिताः ।।४०।।
प्राजापत्यस्तथा ऐन्द्रस्तथेन्द्रो निर्ऋतिस्तथा । वारुणश्च तथाऽर्यम्णो भागाश्चापि दिनाश्रिताः ।।४१।।

समस्त शिल्पकर्मों का निर्माता तथा देवताओं का बढ़ई था। सभी प्रकार के आभूषणों का वह कर्त्ता तथा निर्देशक था। सभी देवताओं के विमानों को वह स्वयं बनाता था, शिल्पजीवी मानव-समूह आज भी उसके शिल्पकर्म के द्वारा जीविका अर्जन करते हैं। धर्म की विश्वा नामक पत्नी के दस विख्यात पुत्र हुए जो विश्वेदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके नाम क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, धुनि, कुरुवान्, प्रभवान् और रोचमान हैं। ये मंगल कार्यसाधक धर्मपुत्र विश्वा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।।२८-३२।। इसी प्रकार मरुत्वती में मरुद्गण तथा भानु में भानुगण नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। मुहूर्ता ने मुहूर्त नामक पुत्रों को तथा जम्बा ने घोष नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया। संकल्पा नामक धर्म की पत्नी में परमविद्वान् संकल्प नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। तीन पथों में समाश्रित नागवीथियाँ यामी नामक धर्मपत्नी में उत्पन्न हुईं ।।३३-३४।। इनके अतिरिक्त पृथ्वी के अन्यान्य जीवगण अरुन्धती से उत्पन्न हुए। परमविद्वान् धर्म की सृष्टि के इस सनातन क्रम को मैं भली-भाँति कह चुका। अब इसके उपरान्त सभी प्रकार के मुहूर्तों, शुभव्रत की तिथियों एवं उनके स्वामियों का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।३५-३६।। उसी के प्रसंग में दिन और रात के विभाग, सभी नक्षत्रों के विस्तार एवं उनकी गति एवं दिन-रात में आनेवाले मुहूर्त आदि का भी संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ। एक दिन और रात के भीतर छह सौ से अधिक कलाएँ मानी गयी हैं। सूर्य की गति की विशेषता के आधार पर ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है, और उन्हीं ऋतुओं में सभी प्रकार के मुहूर्तों की स्थिति है। वेदों के तत्त्वों के जाननेवाले उन्हीं मुहूर्तों एवं पर्वों के आधार पर तिथियों एवं नक्षत्रों की कल्पना करते हैं एवं तिथि आदि के भेद के अनुसार विभिन्न-विभिन्न कालों में पितृदान आदि की व्यवस्था करते हैं, रौद्र, सार्व, मैत्र, पिण्ड्य, वासव, आप्य, वैश्वदेव, ब्राह्म, मध्याह्न, प्राजापत्य, ऐन्द्र, इन्द्र, निर्ऋति, वारुण, आर्यम्ण एवं भाग-ये दिवस काल

एते दिनमुहूर्ताश्च दिवाकरविनिर्मिताः । शंकुच्छायाविशेषेण वेदितव्याः प्रमाणतः ।।४२।।
अजास्तथाऽहिर्बुध्नश्च पूषा हि यमदेवताः । आग्नेयश्चापि विज्ञेयः प्राजापत्यस्तथैव च ।।४३।।
ब्रह्मसौम्यस्तथाऽऽदित्यो बार्हस्पत्योऽथ वैष्णवः । सावित्रोऽथ तथा त्वष्ट्रो वायव्यश्चेति संग्रहः ।।४४।।
एकरात्रिमुहूर्ताः स्युः क्रमोक्ता दश पञ्च च । इन्दोर्गत्युदया ज्ञेया नालिकाः पादिकास्तथा ।।
कालावस्थास्त्विमास्त्वेते मुहूर्ता देवताः स्मृताः ।।४५।।
सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि विहितानि च । दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद्यथाक्रमम् ।।४६।।
स्थानं जारद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ।।४७।।
अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथिरिति स्मृता । पुष्योऽश्लेषापुनर्वसू वीथिरैरावती मता ।।
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरो मार्ग उच्यते ।।४८।।
पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यौ च मघा चैवार्यमी स्मृता । हस्तचित्रे तथा स्वाती गोवीथीत्यभिशब्दिता ।।४९।।
ज्येष्ठा विशाखाऽनुराधा वीथि जारद्गवी स्मृता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ।।५०।।
मूलं चाऽऽषाढे द्वे चापि अजवीथ्यभिशब्दिषा । श्रवणं च धनिष्ठा च गार्गी शतभिषस्तथा ।।५१।।
वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता । स्मृता वीथ्यस्तु तिस्रस्ता मार्गो वै दक्षिणो बुधैः ।।५२।।

पर आश्रित रहनेवाले मुहूर्त हैं। ये (दिवसकालीन मुहूर्त) सूर्य द्वारा निर्मित होते हैं। शंकु (कील) आदि गाड़कर उसकी छाया से इन सबों का प्रमाण देखा जा सकता है ।।३७–४२।। अज, अहि, बुध्न, पूषा, यमदेवता, आग्नेय, प्राजापत्य, ब्रह्म, सौम्य, आदित्य, बार्हस्पत्य, वैष्णव, सावित्र, त्वष्ट्रा और वायव्य ये पन्द्रह क्रम से एक रात्रि में वर्तमान रहनेवाले मुहूर्त हैं। चन्द्रमा की गति से इनका उदय एवं इनके अंशों का ज्ञान होता है। ये मुहूर्त समय की विशेष अवस्था के मापक मात्र हैं और ये देवता रूप में स्मरण किये गये हैं ।।४३–४५।। सभी ग्रहों के तीन स्थान माने गये हैं, दक्षिण, उत्तर और मध्य–उन्हें क्रमानुसार इस प्रकार जानिये। मध्य मार्ग में जारद्गव नामक स्थान है, उत्तर में ऐरावत नामक स्थान है, इसी प्रकार दक्षिण में वैश्वानर नामक स्थान की सत्ता निश्चित की गयी है। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका–ये तीन नागवीथी के नाम से स्मरण किये गये हैं। पुनर्वसु, पुष्य और श्लेषा–ये ऐरावती वीथी माने गये हैं। ये तीन[१] वीथियाँ हैं, जिनका उत्तर मार्ग कहा जाता है ।।४६–४८।। मघा, पूर्वफाल्गुनी इनकी आर्यमी वीथी है, हस्त, चित्रा और स्वाती की गोवीथी कही गयी है। विशाखा, ज्येष्ठा और अनुराधा की जारद्गवी वीथी है–इन तीन वीथियों का मध्यम मार्ग कहा गया है ।।४९–५०।। मूल पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ की अजवीथी संज्ञा दी गयी है, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष् की गार्गी वीथी है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती की वैश्वानरी वीथी कही गयी है। इन तीन वीथियों का पण्डितों ने दक्षिण मार्ग बतलाया है ।।५१–५२।। ये सत्ताईस जो दक्ष की कन्याएँ थीं

---

[१] ऊपर दो वीथियों का परिचय दिया गया है। परन्तु लिखते तीन हैं, इससे मालूम होता है कि रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा-इन तीन नक्षत्रों की एक और वीथी है।

सप्तविंशत्तु याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ । सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे चैव कीर्तिताः ।।
तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसा ।।५३।।
यास्तु शेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः । चतुर्दश महाभागाः सर्वास्ता लोकमातरः ।।५४।।
अदितिर्दितिर्दनुः काला अरिष्टा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।।
कद्रूर्मुनिश्च धर्मज्ञः प्रजास्तासां निबोधत ।।५५।।
चारिष्णवेऽन्तरेऽतीते ये द्वादश पुरोगमाः । वैकुण्ठा नाम ते साध्या बभूवुश्चाक्षुषेऽन्तरे ।।५६।।
उपस्थितेऽन्तरे ह्यस्मिन्पुनर्वैवस्वतस्य ह । आराधिता ह्यदित्या ते समेत्याऽऽहुः परस्परम् ।।५७।।
एतामेव महाभागामदितिं संप्रविश्य वै । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्योगादर्धेन तेजसः ।।५८।।
गच्छामः पुत्रातामस्यास्तन्नः श्रेयो भविष्यति । अदित्यास्तु प्रसूतानामादित्यत्वं भविष्यति ।।५९।।
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्याऽन्तरे मनोः । जज्ञिरे द्वादशाऽऽदित्या मारीचात्कश्यपात्पुनः ।।६०।।
शतक्रतुश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्नरनारायणौ सुरौ ।।६१।।
तेषामपि हि देवानां निधनोत्पत्तिरुच्यते । यथा सूर्यस्य लोकोऽस्मिन्नुदयास्तमयावुभौ ।।
प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः ।।६२।।
श्रेष्ठानुश्रविके यस्माच्छक्ताः शब्दादिलक्षणे । अष्टात्मकेऽणिमाद्ये च तस्मात्ते जज्ञिरे सुराः ।।६३।।

उन्हें दक्ष ने चन्द्रमा को समर्पित किया। वे सभी नक्षत्र नामवाली एवं ज्योतिष शास्त्र में सुप्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली हैं। इन दक्ष कन्याओं में अमित तेजस्वी सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं। इन नक्षत्र संज्ञक कन्याओं के अतिरिक्त जो परम भाग्यशालिनी चौदह कन्याएँ दक्ष की शेष बचीं उन्हें कश्यप ने अङ्गीकार किया, वे सब-की-सब लोकमाताएँ थीं ।।५३-५४।। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, काला, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि। इन्हें धर्मज्ञ कश्यप ने ग्रहण किया था। इनकी सन्ततियों का विवरण सुनिये। चारिष्णव मन्वन्तर में जो पुरोगामी वैकुण्ठ नामक देवगण थे वे चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से विख्यात हुए ।।५५-५६।। वैवस्वत मन्वन्तर में वे देवगण अदिति द्वारा आराधित हुए जिससे एकत्र होकर उन्होंने आपस में यह परामर्श किया कि वैवस्वत मन्वन्तर में हम लोग योगाभ्यास के बल से इस अदिति के गर्भ में अपने अर्ध तेजोबल से संयुक्त हो प्रविष्ट होकर पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा। अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हम लोग आदित्य नाम से प्रख्यात होंगे ।।५७-५९।। इस प्रकार परस्पर परामर्श निश्चित कर वे देवगण पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप के संयोग से बारह आदित्यगणों के रूप में प्रादुर्भूत हुए। शतक्रतु इन्द्र और विष्णु—ये दो देवश्रेष्ठ इस वैवस्वत मन्वन्तर में नर-नारायण रूप में उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन देवताओं का भी जन्म-मरण कहा जाता है। जैसे इस लोक में सूर्य का उदय और अस्त होता है उसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु एवं महात्मा शंकर का आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है। शब्दादि प्रधान विषय-

इत्येष विषये रागः संभूत्याः कारणं स्मृतम् । ब्रह्मशापेन संभूता जयाः स्वायंभुवे जिताः ।।६४।।
स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः । तामसे हरयो देवा जाताश्चारिष्णवे तु वै ।।
वैकुण्ठाश्चाक्षुषे साध्या आदित्याः सांप्रते पुनः ।।६५।।
धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा । इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ।।६६।।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्योऽजघन्यजः । इत्येते द्वादशाऽऽदित्याः कश्यपस्य सुताः स्मृताः ।।६७।।
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञिरे । महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।।६८।।
अङ्गारकं तथा सर्पं निर्ऋतिं सदसस्पतिम् । अजैकपादहिर्बुध्नमूर्ध्वकेतुं ज्वरं तथा ।।६९।।
भुवनं चेश्वरं मृत्युं कपालं चैव विश्रुतम् । देवानेकादशैतांस्तु रुद्रांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।।
तपसा तेन महता सुरभी तानजीजनत् ।।७०।।
ततो दुहितरावन्ये सुरभी द्वे व्यजायत । रोहिणी चैव रुद्राभा गान्धारी च यशस्विनी ।।७१।।
रोहिण्यां जज्ञिरे कन्याश्चतस्रो लोकविश्रुताः । सुरूपा हंसकीला च भद्रा कामदुघा तथा ।।
सुषुवे कामदुघा तु सुरूपा तनयद्वयम् ।।७२।।
हंसकीला नृमहिषा भद्रायास्तु व्यजायत । विश्रुतास्तु महाभागा गन्धर्वा वाजिनः सुताः ।।७३।।

समूहों में एवं अणिमा आदि अष्ट प्रकार की ऐश्वर्यमयी विभूतियों में समर्थ देवगण इसीलिए जन्म धारण करते हैं। विषयों में अनुराग का रखना ही सम्भूति (जन्म का कारण) माना गया है, स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मशाप के कारण जय नामक देवगण जित नाम से उत्पन्न हुए ।।६०–६४।। वे ही स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित और उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से आविर्भूत हुए। तामस मन्वन्तर में हरि गणों के नाम से तथा चारिष्णव मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई, चाक्षुष मन्वन्तर में उनकी ख्याति साध्य नाम से तथा इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य नाम से हुई। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और सबसे छोटे विष्णु। इनमें विष्णु सबसे छोटे होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। बारह आदित्यगण कश्यप के पुत्र कहे गये हैं ।।६५–६७।। सती सुरभी ने अपनी परमतपस्या द्वारा महादेव को प्रसन्नकर कश्यप के संयोग से ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम अङ्गारक, सर्प, निर्ऋति, सदसस्पति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न, ऊर्ध्वकेतु, ज्वर, भुवन, ईश्वर, मृत्यु और कपाल हैं, इन त्रिभुवन में परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रों को अपनी कठोर तपस्या द्वारा सुरभी ने उत्पन्न किया ।।६८–७०।। इन सन्ततियों के अतिरिक्त दो कन्याओं को भी सुरभी ने उत्पन्न किया, जिनमें एक रुद्र के समान कान्तिमती रोहिणी थी और दूसरी परम यशस्विनी गान्धारी थी। रोहिणी में लोकविख्यात चार कन्याएँ हुईं, जिनके नाम सुरूपा, हंसकीला, भद्रा तथा कामदुघा थे। तिनमें सुरूपा और कामदुघा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया ।।७१–७२।। हंसकीला ने कुछ मनुष्यों और महिष आदि को उत्पन्न किया, भद्रा के गर्भ से महाभाग्यशाली सुविख्यात अश्वों के पुत्र गन्धर्व उत्पन्न हुए। जो मन के समान द्रुतगामी, आकाश में भी चलनेवाले उच्चैःश्रवा प्रभृति श्वेत, शोंण, पिशङ्ग, सारंग, हरित, अर्जुन एवं रुद्र वर्ण के थे। ये हय गन्धर्व योनि में उत्पन्न हुए और देवताओं के वाहन का कार्य सम्पन्न किया। तदनन्तर सुरभी

उच्चैःश्रवास्तदा जाताः खेचरास्ते मनोजवाः । श्वेताः शोणाः पिशङ्गाश्च सारङ्गा हरितार्जुनाः ।।
रुद्रा देवोपवाह्यास्ते गन्धर्वयोनयो हयाः ।।७४।।
भूयो जज्ञे सुरभ्यास्तु श्रीमांश्चन्द्राभसुप्रभः । *वृषो दक्ष इति ख्यातः कण्ठेमणिदलप्रभः ।।७५।।
स्रग्वी ककुद्मी द्युतिमानमृतालयसंभवः । सुरभ्यनुमते दत्तो ध्वजो माहेश्वरस्तु सः ।।७६।।
इत्येते कश्यपसुता रुद्रादित्याः प्रकीर्तिताः । धर्मपुत्राः स्मृताः साध्या विश्वे च वसवस्तथा ।।७७।।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश । बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।।
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।।७८।।
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः । एते यगुसहस्रान्ते जयान्ते पुनरेव हि ।।७९।।
सर्वे देवगणा विप्रास्त्रयस्त्रिंशत्तु च्छन्दजाः । एतेषामपि देवानां निरोधोत्पत्तिरुच्यते ।।८०।।
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमयावुभौ । एते देवनिकायास्ते संभवन्ति युगे युगे ।।८१।।

ऋषय ऊचुः

साध्याश्च वसवो विश्वे रुद्रादित्यास्तथैव च । आभिजात्या प्रभावैश्च कर्मभिश्चैव विश्रुताः ।।८२।।
प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः । अन्तरं ज्ञातुमिच्छामो यश्च यस्माद्विशिष्यते ।।८३।।

के गर्भ से श्रीमान्, चन्द्रमा की कान्ति के समान निर्मल, कण्ठ में नीलमणि के बने हुए शुभ पत्र की शोभा से समन्वित, दक्ष नाम का एक वृषभ उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर माला से सुशोभित, बहुत बड़े डीलोंवाला, परम कान्तिमान् था। अमृत के आगार से समुत्पन्न वह वृषभ सुरभी की अनुमति से महादेव के वाहन पद पर प्रतिष्ठित हुआ ।।७३–७६।। कश्यप के पुत्रों का वर्णन कर चुका, आदित्य और रुद्रगणों का परिचय दे चुका, ये साध्यगण, विश्वेदेवगण तथा वसुगण– सभी धर्म के पुत्र कहे गये हैं। अरिष्टनेमि की स्त्रियों की सोलह संततियाँ उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्र की चार सन्ततियाँ हुईं। जो विद्युत् नाम से स्मरण की जाती हैं। ब्रह्मर्षियों द्वारा सत्कार पानेवाली श्रेष्ठ ऋचाएँ प्रत्यंगिरसजात हैं। देवर्षि कृशाश्व के पुत्रगण देवप्रहरण के नाम से स्मरण किये गये हैं। वे प्रति एक सहस्र युग के व्यतीत होने पर पुनः उत्पन्न होते हैं। विप्रवृन्द! ये तैंतीस गणों में विभक्त देवगण छन्दोजात माने गये हैं। इन देवताओं की भी उत्पत्ति एवं विनाश कहा जाता है। जिस प्रकार लोक में प्रतिदिन सूर्य का उदय एवं अस्त होता है उसी प्रकार ये देवगण भी प्रत्येक युगों में उत्पन्न होते हैं ।।७७–८१।।

ऋषियों ने कहा–साध्य, वसु, विश्व, रुद्र और आदित्य ये सब देवगण किस प्रभाव एवं कर्म के द्वारा सत्कुलीन तथा विख्यात हुए ? महान् प्रभावशाली भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और भवदेव में परस्पर क्या अन्तर है ? इसे जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन किस कारणवश विशेष माना जाता है ? इनमें जो जिससे आविर्भूत होता हो, जो जिसमें प्रतिष्ठित हो, इसे हम जानना चाहते हैं। इन तीनों में जो सर्वश्रेष्ठ हो, जो मध्यम हो, जो कनिष्ठ हो, हमें बताइये। इनमे जो सर्वप्रधान

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

यश्च यस्मात्प्रभवति यश्च यस्मिन्प्रतिष्ठितः। ज्यायान्यो मध्यमश्चैव कनीयान्यश्च तेषु वै ।।८४।।
प्रधानभूतो यस्तेषां गुणभूतश्च तेषु यः। कर्मभिश्चाभिजात्या प्रभावेण च यो महान्।।
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं त्वं हि वेत्थ यथायथम् ।।८५।।

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्येऽहमन्तरं तेषु यत्स्मृतम्। यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शृणुध्वं मे विवक्षतः ।।८६।।
राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव ताः स्मृताः। तन्वः स्वयंभुवः प्रोक्ता काले काले भवन्ति याः ।।८७।।
एतासामन्तरं वक्तुं नैव शक्यं द्विजोत्तमाः। गुणवृद्धिनिबद्धत्वाद्द्विधानुग्रहबन्धतः ।।८८।।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च गुणवृद्धिमिह द्विजः। यथाशक्त्या प्रवक्ष्यामि तनूनां तन्निबोधत ।।८९।।
(*ब्राह्मी तु राजसी तेषां कालाख्या तामसी स्मृता। सात्त्विकी पौरुषी चैव कर्म तासां निबोधत) ।।९०।।
एका तु कुरुते तासां राजसी सर्वतः प्रजाः। एका चैवार्णवस्था तु साऽनुगृह्णाति सात्त्विकी।।
एका सा क्षिपते काले तामसी ग्रसते प्रजाः ।।९१।।
रजसा तु समुद्रिक्तो ब्रह्मा संभवते यदा। पुरुषाख्या तदा तस्य सात्त्विकी विनिवर्तते ।।९२।।
यदा भवति कालात्मा उद्रेकात्तमसस्तु सः। ब्रह्माख्या सा तदा त्वस्य राजसी विनिवर्तते ।।९३।।

हो, जो सर्वश्रेष्ठ गुणी हो, कर्म एवं प्रभाव के कारण जो सबसे अधिक आभिजात्य एवं महान् हो, इन सबका मुझे भेद बतलाइये क्योंकि इन सब बातों के आप ही यथार्थतः जानकर हैं ।।८२-८५।।

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! उन ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र में परस्पर जो अन्तर माना गया है, उसे मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ, सुनिये। राजस गुणमयी, तामस गुणमयी एवं सात्त्विक गुणमयी ये तीन स्वयंभू की मूर्तियाँ कही गयी हैं, समय-समय पर आविर्भूत होती हैं। हे द्विजोत्तम वृन्द! इनके पारस्परिक अन्तर नहीं बतलाये जा सकते। क्योंकि इनमें पारस्परिक इन तीनों गुणों का ह्रास एवं वृद्धि के कारण विग्रह और अनुग्रह—दो प्रकार के बन्धन रहते हैं। हे द्विजगण! वे बन्धन क्रमशः निवृत्ति और प्रवृत्ति के हैं। मैं अपनी शक्ति के अनुसार उन मूर्तियों की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।८६-८९।। उन त्रिमूर्तियों में ब्रह्मा की मूर्ति रजोगुण सम्पन्न, काल (रुद्र) की मूर्ति तमोगुण सम्पन्न एवं पौरुषी (विराट् पुरुष, विष्णु की) मूर्ति सत्त्वगुण सम्पन्न कही गयी है, उनके कर्मों को सुनिये। उन त्रिमूर्तियों में एक पहली जो मूर्ति है वह रजोगुण सम्पन्न होकर प्रजाओं को उत्पन्न करती है, दूसरी एक सत्त्वगुण सम्पन्न जो पौरुषी (विष्णु की) मूर्ति है वह समुद्र में स्थिर रहकर सभी प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह बुद्धि से पालन करती है, एक तीसरी जो तमोगुण सम्पन्न मूर्ति है वह उस समय उपस्थित होने पर सभी प्रजाओं को विनष्ट करती है। जिस समय रजोगुण के उद्रेक से संयुक्त होकर ब्रह्मा की मूर्ति आविर्भूत होती है उस समय सत्त्वगुणमयी पुरुष की मूर्ति तिरोभूत (निवृत्त) हो जाती है। इसी प्रकार जिस समय तमोगुण के आधिक्य से संयुक्त होकर काल की मूर्ति प्रकट होती है उस समय रजोगुण सम्पन्न ब्रह्मा की मूर्ति निवर्तित हो जाती है ।।९०-९३।। एवं सत्त्वगुण के उद्रेक से जिस समय भगवान् की पुरुष मूर्ति प्रकट

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

सत्त्वोद्रेकात्तु पुरुषो यदा भवति स प्रभुः। कालाख्या सा तदा तस्य पुनर्न भवतीति वै ।।९४।।
क्रमात्तस्य निवर्तन्ते रूपं नाम च कर्म च। त्रैलोक्ये वर्तमानस्य सर्गानुग्रहनिग्रहैः ।।९५।।
यदा भवति ब्रह्मा च तदा चान्तरमुच्यते। यदा च पुरुषो ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः ।।९६।।
(+यदा च पुरुषो भवति ब्रह्मा न भवते तदा। यदा भक्षद्भवति हि तदा न पुरुषस्तु सः ।।९७।।
यदा भद्रो भवेद्भूयो ब्रह्मा न भवते तदा। यदा न भवति ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः) ।।९८।।
मणिर्विभजते वर्णान्विचित्रान्स्फटिके यथा। वैमल्यादाश्रयवशात्तद्वर्णः स्यात्तदञ्जनः ।।९९।।
तदा गुणवशात्तस्य स्वयंभोरनुरञ्जनम्। एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ।।१००।।
एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते। रूपतो वर्णतश्चैव तथा गुणावशात्तु सः ।।१०१।।
भवत्येको द्विधा चैव त्रिधा मूर्तिविनाशनात्। एको ब्रह्माऽन्तकृच्चैव पुरुषश्चेति ये त्रयः ।।१०२।।
एकस्यैताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः। ब्राह्मी च पौरुषी चैव अन्तकारी च ते त्रयः ।।१०३।।
तत्र या राजसी तस्य तनुः सा वै प्रजाकरी। या तामसी तु कालाख्या प्रजाक्षयकरी तु सा ।।
सात्त्विकी पौरुषी या तु सानुग्रहकरी स्मृता ।।१०४।।
राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्यपोऽभवत्। तामसी चान्तकृद्या तु तदंशेनाभवद्भवः ।।१०५।।

होती है उस समय उनकी काल संज्ञक मूर्ति आविर्भूत नहीं होती। इस प्रकार इस त्रैलोक्य में वर्तमान उन भगवान् के नाम, कर्म एवं रूप क्रमशः सृष्टि के अनुग्रह (पालन) एवं निग्रह (संहार) के बन्धनों के कारण निवर्तित होते रहते हैं। जिस समय ब्रह्मा की सत्ता रहती है उस समय पुरुषमूर्ति या रुद्रमूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता, इसी प्रकार जिस समय पुरुष की सत्ता रहती है, उस समय ब्रह्ममूर्ति तथा रुद्रमूर्ति की सत्ता नहीं रहती तथा जिस समय रुद्रमूर्ति विद्यमान रहती है उस समय ब्रह्ममूर्ति तथा पुरुषमूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता ।।९४-९८।। निर्मल स्फटिक मणि में जिस प्रकार आश्रय भेद एवं निर्मलता के कारण विविध प्रकार के रंग अनुरंजित होकर रक्त पीतादि विविध रूपों में लक्षित होते हैं, उसी प्रकार भगवान् स्वयंभू सत्त्व, रजस् एवं तमोगुण के कारण विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र में प्रकट होते हैं। उनके एक रूप एवं भिन्न-भिन्न रूप होने के सम्बन्ध में यह निदर्शन (उदाहरण) मैं बतला रहा हूँ ।।९९-१००।। जिस प्रकार एक ही मेघ रूप एवं वर्ण की विभिन्नता के कारण पृथक्-पृथक् दिखायी पड़ता है उसी प्रकार उन सत्त्व, रजस् एवं तमोगुणों के कारण वह स्वयंभू एक होकर भी पृथक्-पृथक् रूपों में दिखायी पड़ता है। वह एक ही स्वयंभू ब्रह्मा, पुरुष व काल रूप इन तीन आकारों में व्याप्त है। उस एक स्वयंभू की ही ये तीन मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक ब्राह्मी, दूसरी पौरुषी और तीसरी अन्तकारी-(काल की) मूर्ति है। इन तीनों मूर्तियों में जो रजोगुण सम्पन्न है वह प्रजाओं को उत्पन्न करनेवाली है, जो तमोगुण सम्पन्न है वह कालमूर्ति के नाम से विख्यात है, उसका कार्य प्रजाओं का विनाश करना है। तीसरी सत्त्वगुणमयी जो पौरुषीमूर्ति है वह प्रजाओं का पालन करनेवाली मानी गयी है ।।१०१-१०४।। उस रजोगुणमयी मूर्ति से ब्रह्मा के अंश द्वारा मरीचि और कश्यप की उत्पत्ति हुई। सृष्टि का विनाश करनेवाली जो तमोगुणमयी मूर्ति है उससे भव (रुद्र) की उत्पत्ति हुई, सत्त्वगुणमयी जो पौरुषी मूर्ति है उससे विष्णु का आविर्भाव कहा जाता है। इस प्रकार त्रैलोक्य में स्वयंभू की ये तीन मूर्तियाँ स्मरण की

सात्त्विकी पौरुषी या सा तस्यांशो विष्णुरुच्यते । त्रैलोक्ये ताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः ।।१०६।।
नानाप्रयोजनार्था हि कालोऽवस्थां करोति यः । ब्रह्मत्वेन प्रजाः सृष्ट्वा विष्णुत्वेनानुगृह्य च ।।
वैष्णव्याऽनुगृहीतास्ता रौद्र्याऽनुग्रसते पुनः ।।१०७।।
एकः स्वयंभुवः कालस्त्रिभिस्त्रीन्वै करोति सः । सृजते चानुगृह्णाति प्रजाः संहरते तथा ।।१०८।।
इत्येताः कथितास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः । प्राजापत्या च रौद्री च वैष्णवी चैव ताः स्मृताः ।।१०९।।
एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रे पुरातने । सांख्ययोगपरैर्वीरैः पृथक्त्वैकत्वदर्शिभिः ।।
अभिजातप्रभावज्ञैर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।११०।।
एकत्वे च पृथक्त्वे च तासु भिन्नाः प्रजास्त्विह । इदं परमिदं नेति ब्रुवन्तो भिन्नदर्शनाः ।।१११।।
ब्रह्माणं कारणं केचित्केचित्प्राहुः प्रजापतिम् । केचिच्छिवं परत्वेन प्राहुर्विष्णुं तथाऽपरे ।।
अविज्ञानेन संसक्ता सक्ता रत्यादिचेतसा ।।११२।।
तत्त्वं कालं च देशं च कार्याण्यावेक्ष्य तत्त्वतः । कारणं च स्मृता ह्येताः नानार्थेष्विहः देवताः ।।११३।।
एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति । एकं प्रशंसमानस्तु सर्वानेव प्रशंसति ।।
*एक निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति । एकं यो वेत्ति पुरुषं तमाहुर्ब्रह्मवादिनम् ।।११४।।

गयी हैं। ये मूर्तियाँ समय के अनुरूप प्रजावर्ग के विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करनेवाली हैं, सर्वप्रथम ब्रह्मबल का आश्रय ले समस्त प्रजाओं की सृष्टिकर विष्णु के अंश का आश्रय ग्रहणकर विधिवत् पालनकर, रुद्र के अंश से पुनः उनका विनाश करती हैं। कालस्वरूप एकमात्र स्वयंभू ही अपनी इन तीनों मूर्तियों के द्वारा तीनों कार्यों को सम्पन्न करता है, अर्थात् प्रजाओं की सृष्टि करता है, उनका पालन करता है एवं विनाश भी करता है ।।१०५-१०८।। स्वयंभू की उन तीनों मूर्तियों का वर्णन कर चुका जो ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री के नाम से विख्यात हैं। सांख्य एवं योग के अभ्यास करनेवाले, स्वयंभू के पृथक्त्व एवं एकत्व के देखनेवाले, उनकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा के प्रभाव को जाननेवाले तत्त्वदर्शी ऋषियों ने स्वयंभू की केवल एक मूर्ति वेदों में तथा प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में निरूपित की है। स्वयंभू के इस एकत्व एवं पृथक्त्व को लेकर प्रजाओं में भिन्न-भिन्न मत हैं, वे भिन्न-भिन्न मत रखनेवाले "यह सर्वश्रेष्ठ है, यह नहीं" ऐसा निःसार मत रखते हैं ।।१०९-१११।। इनमें से कोई तो प्रजापति ब्रह्मा को आदि कारण मानते हैं, कोई शिव को श्रेष्ठ मानते हैं, कोई विष्णु को मानते हैं। वे सभी अवैज्ञानिक एवं राग-द्वेषादि दुर्गुणों में अनुरक्त होने के कारण ऐसा मानते हैं। जगत् के नाना कार्यों में देश, काल एवं कर्म कारणस्वरूप वे स्वयंभू ही विविध देवताओं के रूप में स्मरण किये जाते हैं। इसलिए उन तीनों महान् विभूतियों में किसी एक की जो निन्दा करता है वह सबों की निन्दा करता है और किसी एक की जो प्रशंसा करता है वह सबकी प्रशंसा करता है। (एक की उनमें जो निन्दा करता है वह सबकी निन्दा करता है) इस तरह की भावना रखकर जो उन तीनों मूर्तियों को एक रूप में मानता है वही ब्रह्मवादी कहा गया है ।।११२-११४।। इसलिए विद्वान् पुरुष

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

अद्वेषस्तु सदा कार्यो देवतासु विजानता। न शक्यमीश्वरं ज्ञातुमैश्वर्येण व्यवस्थितम् ।।११५।।
एकात्मा स त्रिधा भूत्वा संमोहयति यः प्रजाः। एतेषां च त्रयाणां तु विचरन्त्यन्तरं जनाः ।।११६।।
जिज्ञासन्तः परीक्षन्तः सक्ता रूपाविचेतसः। इदं परमिदं नेति वदन्ति भिन्नदर्शिनः ।।११७।।
यातुधानान्विशन्त्येताः पिशाचांश्चैव तान्नरान्। एकत्वेन पृथक्त्वेन स्वयंभूर्व्यवतिष्ठते ।।११८।।
गुणमात्रात्मिकाभिस्तु तनुभिर्मोहयन्प्रजाः। तेष्वेकं यजते यस्तु स तदा यजते त्रयम् ।।११९।।
तस्माद्देवास्त्रयो ह्येते नैरन्तर्ये व्यवस्थिताः। तस्मात्पृथक्त्वमेकत्वसंख्या संख्यागतागतम् ।।
एकत्वं वा बहुत्वं वा तेषु को ज्ञातुमर्हति ।।१२०।।
यस्मात्सृष्ट्वाऽनुगृह्णीते ग्रसते चैव ते प्रजाः। गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते ।।१२१।।
रुद्रं ब्रह्माणमिन्द्रं च लोकपालानृषीन्दनून्। देवं तमेकं बहुधा प्राहुर्नारायणं द्विजाः ।।१२२।।
प्राजापत्या तनुर्या च तनुर्या चैव वैष्णवी। मन्वन्तरे च कल्पे च आवर्तन्ते पुनः पुनः ।।१२३।।
* क्षेत्रज्ञो अ (ह्य) पि चाऽऽनेष्य विभजेदित्यनुग्रहात्। तेजसा यशसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ।।
जायन्ते तत्समाश्चैव तानपीह निबोधत ।।१२४।।

को चाहिए कि वह देवताओं में द्वेष की भावना न रखे। उस परमऐश्वर्य समन्वित ईश्वर को कोई अच्छी तरह जानने में समर्थ नहीं हो सकता, वस्तुतः वह एकात्म होकर तीनों रूपों में विभक्त होकर प्रजाओं को सम्मोहित करता है। इन तीनों स्वरूपों के ऊँच-नीच के भाव की जिज्ञासा करते हुए अल्पज्ञ जन यथाशक्ति परीक्षा करते हैं और भिन्न-भिन्न ज्ञान एवं दर्शन के कारण "यह प्रधान है, यह अप्रधान है" ऐसी बातें करते हैं ।।११५-११७।। किन्तु ये शक्तियाँ मनुष्य, राक्षस, पिशाचादि सभी में एक-सी प्रविष्ट होती हैं, और इस प्रकार स्वयंभू एक रूप और भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिष्ठित होता है। सत्त्व, रजस् एवं तमोगुणों में से एक-एक गुणवाली अपनी तीनों मूर्तियों द्वारा प्रजाओं को सम्मोहित करता है। उन तीनों में से जो एक की पूजा करता है वह तीनों की पूजा करता है। इस कारण से इन तीनों देवताओं में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। और न इनमें एकत्व एवं पृथक्त्व आदि का भी तारतम्य है। इस प्रकार उनके एक होने का अथवा अनेक होने का भेद कौन जान सकता है ।।११८-१२०।। यतः तीनों कालों में गुण भेद के वश होकर वे सभी प्रजाओं की सृष्टि कर उनका पालन करते हैं, और स्वयमेव संहार भी करते हैं अतः एक ही कहे जाते हैं। अर्थात् वे स्वयंभू ही एक बार रजोगुणमय हो प्रजाओं की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुण सम्पन्न हो पालन करते हैं और तमोगुणमय सम्पन्न हो संहार करते हैं, कोई दूसरा यह सब नहीं करता अतः एक कहे जाते हैं ।।१२१।। द्विजगण! उस एक आदि देव को ही रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपालगण, ऋषिवृन्द, दानव, नारायण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। उसकी प्रजापति (ब्रह्मा) की और विष्णु की मूर्ति प्रत्येक मन्वन्तर एवं प्रत्येक कल्प में पुनः-पुनः आवर्तित होती है। वह क्षेत्रज्ञ स्वयंभू अनुग्रहवश अपने तेज, यश, बुद्धि, शास्त्रज्ञान एवं पराक्रमादि गुणों से सम्पन्न होकर अपने तुल्य विविध प्रजाओं के रूप में उत्पन्न होता है, ऐसे जो लोग उत्पन्न होते हैं उन्हें सुनिये ।।१२२-१२४।। रजोगुणमयी राजसी मूर्ति में ब्रह्मा के अंश से मरीचि

---

* नास्तीदमर्धं क. पुस्तके।

राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्यपोऽभवत् । तामस्यास्तस्य चांशेन कालात्मा रुद्र उच्यते ।।
सात्त्विक्या पुरुषांशेन यज्ञे विष्णुरभूत्तदा ।।१२५।।
त्रिषु कालेषु तस्यैता ब्रह्मणस्तवोंऽशजाः । कालो भूत्वा पुनश्चासौ रुद्रः संहरते प्रजाः ।।१२६।।
संप्राप्ते चैव कल्पान्ते सप्तरश्मिर्दिवाकरः । भूत्वा संवर्तकादित्यो लोकांस्त्रीन्स तदा दहन् ।।१२७।।
विष्णुः प्रजाऽनुगृह्णाति नामरूपविपर्ययैः । तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तदुत्पाद्य कारणम् ।।१२८।।
सत्त्वोद्रिक्ता तु या प्रोक्ता ब्रह्मणः पौरुषी तनुः । तस्यांशेन विजज्ञे स इह स्वायंभुवेऽन्तरे ।।
आकूत्यां मनसो देव उत्पन्नः प्रथमे विभुः ।।१२९।।
ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे । तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सह ।।१३०।।
औत्तमे चान्तरे चैव तुषितस्तु विदुः स वै । वशवर्तिभिरुत्पन्नो वशवर्ती हरिः पुनः ।।१३१।।
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैः सह सुरोत्तमैः । तामसस्यान्तरे चापि संप्राप्ते पुनरेव हि ।।
भार्यायां हरिभिः सार्धं हरिरेव बभूव हि ।।१३२।।
चारिष्णवेऽन्तरे चापि हरिर्देवः पुनस्तु सः । विकुण्ठायामजो जज्ञे ह्याभूतरजसैः सह ।।
वैकुण्ठः स पुनर्देवः संप्राप्ते चाक्षुषेऽन्तरे ।।१३३।।

और कश्यप की उत्पत्ति हुई। तमोगुणमयी तामसी मूर्ति में उसी ब्रह्मा के अंश से कालात्मा रुद्र की उत्पत्ति कही जाती है। सत्त्वगुणमयी सात्त्विकी मूर्ति में पुरुष के अंश से यज्ञ में विष्णु की उत्पत्ति हुई। तीनों कालों में उस ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होनेवाली ये तीन मूर्तियाँ हैं। काल होकर पुनः वे ही रुद्र स्वरूप में प्रजाओं का संहार करते हैं, कल्पांत के अवसर पर वह सप्तरश्मि दिवाकर की मूर्ति धारणकर संवर्तक नामक आदित्य हो तीनों लोकों को भस्म करता है ।।१२५–१२७।। विष्णु समय-समय पर विविध नाम एवं स्वरूप धारणकर उन-उन कारणों को उत्पन्न कर प्रजावर्ग के प्रति अनुग्रह का भाव रखते हैं। सत्त्वगुणमयी जो ब्रह्मा की पौरुषी मूर्ति कही गयी है, उसके अंश से इस स्वायंभुव मन्वन्तर में वे विभु सर्वप्रथम आकूति के गर्भ द्वारा मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए ।।१२८–१२९।। तदनन्तर पुनः वे अजित देव स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित देवगणों के साथ तुषिता के गर्भ से उत्पन्न हुए। औत्तम मन्वन्तर में वे तुषित नाम से जाने गये हैं। वशवर्ती देवताओं के साथ उत्पन्न होकर वे हरि वशवर्ती रूप से प्रसिद्ध होते हैं। पुनः वे सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवगणों के साथ सत्य नाम से उत्पन्न होते हैं, तामस मन्वन्तर के आने पर वे हरि पुनः हर्य्या के गर्भ से हरि नामक देवगणों के साथ हरि रूप में ही आविर्भूत होते हैं ।।१३०–१३२।। चारिष्णव मन्वन्तर के आने पर वे अजन्मा हरिदेव पुनः विकुण्ठा के गर्भ से आभूतरजस् नामक देवगणों के साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न होते हैं। चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर वे धर्म रूप नारायण देव साध्य देवगणों के साथ साध्यरूप में उत्पन्न होते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर वे साध्य नारायण भगवान् मरीचिपुत्र कश्यप के संयोग से अदिति के गर्भ द्वारा (वामन रूप में) उत्पन्न होते हैं और अपने केवल तीन पगों द्वारा उन्होंने समस्त लोकों को जीतकर समस्त देवताओं के साथ इन्द्र को अर्पित किया। व्यतीत हुए सात मन्वन्तरों

धर्मो नारायणः साध्यः साध्यैः सह सुरैरभूत् । स तु नारायणः साध्यः प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।।१३४।।
मारीचात्कश्यपाद्विष्णुरदित्यां संबूभव ह । त्रिभिः क्रमैरिमांल्लोकाञ्जित्वा विष्णुरुरुक्रमम् ।।१३५।।
प्रत्यपादयदिन्द्राय देवेभ्यश्चैव स प्रभुः । इत्येतास्तनवस्तस्य व्यतीताः सप्त सप्तसु ।।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु याभिः संरक्षिताः प्रजाः ।।१३६।।
यस्माद्विष्टमिदं सर्वं वामनेनेह जायता । तस्मात्स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ।।१३७।।
इत्येतद्ब्रह्मणश्चैव वामनस्य महात्मनः । एकत्वं च पृथक्त्वं च विशिष्टत्वं च कीर्तितम् ।।१३८।।
देवतानामिहांशेन जायन्ते यास्तु देवताः । तासां तास्तेजसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ।।
जायन्ते तत्समाश्चैव ता वै तेषामनुग्रहात् ।।१३९।।
यद्यद्विभूतिमतत्सर्व श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छध्वं विष्णोस्तेजोंऽशसंभवम् ।।१४०।।
स एवं जायतेंऽशेन केचिदिच्छन्ति मानवाः । ततोऽपरे ब्रुवन्तीममन्योन्यांशेन जायते ।।१४१।।
एवं विवदमानास्ते दृष्ट्वा तान्वै ब्रुवन्ति ह । यस्मान्न विद्यते भेदो मनसश्चेतसश्च ह ।।
तस्मादनुग्रहास्तेषां क्षेत्रज्ञास्ते भवन्त्युत ।।१४२।।
एकस्तु प्रभुशक्त्या वै बहुधा भवतीश्वरः । भूत्वा यस्माच्च बहुधा भवत्येकः पुनस्तु सः ।।१४३।।

में उस स्वयंभू की वे सात मूर्तियाँ आविर्भूत हुईं, जिनके द्वारा प्रजावर्ग की रक्षा हुई ।।१३३-१३६।। यतः उत्पन्न होकर वामन अपने शरीर द्वारा इस समस्त जगत् में विष्ट (प्रविष्ट) हो गये थे अतः प्रवेश अर्थवाले विश् धातु के अर्थ के अनुरूप वे विष्णु नाम से स्मरण किये जाते हैं। स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा, महात्मा वामन एवं उनके एकत्व, पृथक्त्व और विशिष्टत्व का वर्णन इस प्रकार कर चुका। इस पृथ्वीलोक में जिन-जिन देवता आदि के अंशों से जो-जो देवता उत्पन्न होते हैं वे अनुग्रहवश तेज, बुद्धि, शास्त्रज्ञान एवं बल में समान होकर उत्पन्न होते हैं ।।१३७-१३९।। इस जगत् में जो-जो ऐश्वर्यशाली, श्रीमान् अथवा प्रभावशाली जीव या पदार्थ दिखायी पड़ते हैं उन सबको भगवान् विष्णु के तेज एवं अंश से प्रादुर्भूत हुआ समझो। वही अपने अंश रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है। कुछ मनुष्य ऐसी इच्छा करते हैं। कुछ अन्य प्रकार के लोग हैं जो कहते हैं कि अन्य-अन्य अंशों से वह उत्पन्न होता है। उन उत्पन्न होनेवालों को देखकर इस प्रकार लोग मीमांसा करते हैं यतः मन और चित्त में कोई भेद नहीं है अतः वह सब उत्पत्तिकार्य उसी के अनुग्रह से सम्पन्न होता है-ऐसा जो लोग समझते हैं वे क्षेत्रज्ञ होते हैं ।।१४०-१४२।। एक ही ईश्वर अपनी महामहिमामयी प्रभु शक्ति से अनेक रूपों में हो जाता है और अनेक रूपों में होकर भी पुनः वह एक हो जाता है। इसलिए उसी आदि देव स्वयंभू के तेजोभेद से सभी मन्वन्तरों में अच्छे मनवाली स्थावर-जंगम सभी प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, और सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होकर महाप्रलयपर्यन्त अपनी सत्ता रखती हैं। प्रत्येक बार कल्पांत के आने पर रुद्र प्रजाओं का संहार करते हैं। ऐश्वर्यशाली क्षेत्रज्ञगण योगमाया से अन्यान्य सर्वसामान्य जनों को मोहित करते हुए उत्पन्न होते हैं और अपने ऐश्वर्य

तस्मात्सुमनसो भेदाज्जायन्ते तेजसश्च ह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ।।
सर्गादौ सकृदुत्पन्नास्तिष्ठन्तीह प्रशंसया ।।१४४।।
प्राप्ते प्राप्ते तु कल्पान्ते रुद्रः संहरति प्रजाः । जायन्ते मोहयन्तोऽन्यानीश्वरा योगमायया ।।१४५।।
ऐश्वर्येण चरन्तस्ते मोहयन्ति ह्यनीश्वराः । तस्माद्दोषप्रचारेषु युक्तायुक्तं न विद्यते ।।१४६।।
भूतापवादिनो दुष्टा मध्यस्था भूतभाविनः । भूतापनादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ।।१४७।।
* परीक्ष्य यो न गृह्णाति गृह्णाति न विपर्ययात् । दृढपूर्वश्रुतत्वाच्च प्रवादाच्चैव लौकिकात् ।।
चतुर्भिः कारणैरेभिर्यथातत्त्वं न विन्दति ।।१४८।।
पूर्वमर्थान्तरे न्यस्ताः कालान्तरगता अपि । तेनान्यत्सन्तमप्यर्यं द्वेषान्न प्रतिपद्यते (?) ।।१४९।।
दशानां द्रव्यभूतो यो गुणभूतस्तु तेषु यः । कर्मणां महतां कर्ता अभिजात्या च यो महान् ।।
श्रुतज्ञैः कारणैरेतैश्चतुर्भिः परिकीर्त्यते ।।१५०।।
अशक्तरुष्टो जानाति देवताः प्रविभागशः । इमौ चोदाहरन्त्यत्र श्लोकौ योगेश्वरं प्रति ।।१५१।।
आत्मनः प्रतिरूपाणि परेषां च सहस्रशः । कुर्याद्योगबलं प्राप्य तैश्च सर्वैः सहाऽचरेत् ।।१५२।।
प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव तथैवोग्रतपश्चरन् । संहरेच्च पुनः सर्वान्सूर्यतेजो गुणानिव ।।१५३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गुणनैरन्तर्ये कश्यपीयप्रजासर्गो नाम पट्षष्टितमोऽध्यायः ।।६६।।

के साथ विचरण करते हैं, उनके सामने ऐश्वर्यविहीन प्राणी मोहित होते हैं। इस कारण उन ऐश्वर्यशालियों के दोषयुक्त व्यवहार में युक्त-अयुक्त का विचार नहीं रखा जाता ।।१४३-१४६।। भूतों (?) के अपवाद करनेवाले दुष्ट, भूतों को अपने अनुकूल बनानेवाले मध्यस्थ, भूतों का विरोध करनेवाले शक्त (समर्थ) ये तीन प्रवादपटु जनों की श्रेणियाँ हैं (?) बिना परीक्षा किये ही ग्रहण करता है, उलटा अर्थ अंगीकार करता है, पहले सुने हुए अशुद्ध अर्थ पर ही विश्वास रखकर दृढ़ निश्चय कर लेता है, अथवा लौकिक प्रवाद पर विश्वास रखता है–इन चार कारणों से यथार्थ तत्त्व को प्राप्त नहीं करता। पहले किसी दूसरे अर्थ में न्यस्त था, कालान्तर में उसकी प्रसिद्धि किसी अन्य अर्थ में हो गयी, उस नवीन अर्थ के रहने पर भी द्वेष बुद्धि से उसे ग्रहण नहीं करता (?)। जो दसो प्रकार के द्रव्यों में तद्रूप विद्यमान रहता है, और उन-उन द्रव्यों में आश्रित गुण समूहों में गुणभूत है। महदादि कार्य-कलापों का कर्त्ता है, जो सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है वही ईश्वर है, श्रुतियों के तत्त्वों को जाननेवाले इन उपर्युक्त चार कारणों द्वारा उसकी ईश्वरता का कीर्त्तन करते हैं ।।१४७-१५०।। असमर्थ एवं रुष्ट मनुष्य देवताओं को यथार्थतः विभागों समेत जानते हैं, योगेश्वर के प्रति लोग इन दो श्लोकों को कहते हैं। जिनका आशय इस प्रकार है। वह योगेश्वर (भगवान्) अपने योगबल द्वारा सूर्य तेज द्वारा गुणों की भाँति अपने एवं अन्यान्य के सहस्रों प्रतिरूपों (प्रतिमूर्तियों) का निर्माणकर उनके साथ व्यवहार करता है एवं उग्र तपस्या करते हुए सभी भोगों को प्राप्त होता है और पुनः उन सब का संहार (समापन) करता है ।।१५१-१५३।।

श्री वायुमहापुराण में गुणनैरन्तर्यवर्णन में कश्यपीय प्रजासर्ग नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।।६६।।

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

ऋषय ऊचुः

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नैमिषेयास्तपस्विनः। पप्रच्छुर्ऋषयः श्रेष्ठं वचनस्य यथाक्रमम् ।।१।।
सप्तस्विह कथं देवा जाता मन्वन्तरेष्विह। इन्द्रविष्णुप्रधानास्ते आदित्यास्तु महौजसः ।।
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्ताराद्रोमहर्षण ।।२।।
एवमुक्तस्तदा सूतो विनयी ब्रह्मवादिभिः। उवाच वदतां श्रेष्ठो यथा पृष्टो महर्षिभिः ।।३।।

सूत उवाच

ब्रह्मणो वै मुखात्सृष्टा यथा देवाः प्रजेप्सया। सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह ।।४।।
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथन्तरम्। आकूतः प्रथमस्तेषां ततस्त्वाकूतिरेव च ।।५।।
वित्तिश्चैव सुवित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च। अधीष्टस्तु ततो ज्ञेयः अधीतिश्चैव तत्त्वतः ।।
विज्ञातिश्चैव विज्ञातो मनवो ये च द्वादश ।।६।।
* ज्ञेयो द्वादशपुत्रश्च यश्चाब्देन समाजयेत्। तं दृष्ट्वा चाब्रवीद्ब्रह्मा जया देवानसूयत ।।७।।

अध्याय ६७

कश्यप की प्रजाओं की सृष्टि

ऋषियों ने कहा—नैमिषारण्य निवासी सभी तपस्वी ऋषियों ने सूत की ये बातें सुनकर क्रमशः इन निम्नलिखित श्रेष्ठ बातों के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। 'हे रोमहर्षण! सातों मन्वन्तरों में इन्द्र, विष्णु प्रभृति देवगण तथा महातेजस्वी आदित्यगण किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसे विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये। ब्रह्मवादी ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर बोलनेवालों में श्रेष्ठ, सूत ने उस विषय को सविनय कहा जिसे महर्षियों ने पूछा था ।।१-३।।

सूत ने कहा—सभी मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि करने की इच्छ से ब्रह्मा के मुख से जिन देवताओं की सृष्टि हुई वे सब मन्त्रमय शरीर कहे जाते हैं। (१) दर्श (२) पौर्णमास (३) बृहत् (४) रथन्तर, इनमें सर्वप्रथम (५) आकूत की गणना की जाती है, तदनन्तर (६) आकूति की। (७) वित्ति (८) सुवित्ति आकूति (ऊपर नाम आ चुका है) (९) कूति, (१०) अधीष्ट (११) अधीति और (१२) विज्ञाति ये बारह मनु हैं ।।४-६।। ये बारह ब्रह्मा के पुत्र जाने गये हैं, जो वर्षों के समूह सूचक हैं। उन बारह पुत्रों को देखकर ब्रह्मा ने कहा—हे जयगण! तुम लोग अन्यान्य देवताओं को उत्पन्न करो। स्त्री परिग्रह, अग्निहोत्र एवं यज्ञाराधन आदि कार्यों को सम्पन्न करो, उनसे ऐसी बातें कर ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये। किन्तु उन सबों ने परमेष्ठी की इस आज्ञा का अभिनन्दन नहीं किया और सांसारिक कर्मों में अनेक दोष देखकर मनसा, वाचा, कर्मणा सिद्ध होनेवाले कर्मजाल को छोड़कर यम नियमादि से अपना नाता जोड़ा। सभी सांसारिक कर्मों

---

* एतदर्धस्थान इदमर्धम्-ज्ञेयो दशपुत्रः पश्चाब्देन सामाजयेत्यजेदिति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

दाराग्निहोत्रसंयोगमिज्यामारभतेति च। एवमुक्त्वा तु तं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।।८।।
ततस्ते नाभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं परमेष्ठिनः। संन्यस्येह तु कर्माणि वाङ्मनःकर्मजानि तु ।।९।।
यमेष्वेवावतिष्ठन्ते दोषं दृष्ट्वा तु कर्मसु। क्षयातिशययुक्तं तु ते दृष्ट्वा कर्मणां फलम् ।।१०।।
जुगुप्सन्तः प्रसूतिं च निस्तन्द्रा निर्ममाऽभवन्। अजस्त्वं काङ्क्षमाणास्ते विरक्ता दोषदर्शिनः ।।११।।
अर्थं धर्मं च कामं च हित्वा ते वै व्यवस्थिताः। पौरुषं ज्ञानमास्थाय तेजः संक्षिप्य चाऽऽस्थिताः ।।१२।।
तेषां च तमभिप्रायं ज्ञात्वा ब्रह्मा चुकोप ह। तानब्रवीत्तदा ब्रह्मा निरुत्साहान्सुरानथ ।।१३।।
प्रजार्थमिह यूयं वै प्रजास्त्रष्टाऽस्मि नान्यथा। प्रसूयध्वं यजध्वं चेत्युक्तवानस्मि यत्पुरा ।।१४।।
यस्माद्वाक्यमनादृत्य मम वैराग्यमास्थिताः। जुगुप्समानाः स्वं जन्म संततिं नाभिनन्दथ ।।१५।।
(+कर्मणां च कृतो न्यासो ह्यमृतत्वाभिकाङ्क्षया। तस्माद्यूयमनादृत्य सप्तकृत्वस्तु यास्यथ) ।।१६।।
ते शप्ता ब्रह्मणा देवा जयास्तं वै प्रसादयन्। क्षमास्माकं महादेव यदज्ञानात्कृतं विभो ।।१७।।
प्रणिपत्य सानुनयं ब्रह्मा तानब्रवीत्पुनः। लोके मयाऽननुज्ञातः कः स्वातन्त्र्यमिहार्हति ।।१८।।
मया परिगतं सर्वं कथमच्छन्दतो मम। प्रतिपत्स्यन्ति भूतानि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।।१९।।
लोके यदस्ति किंचिद्वै सच्चासच्च व्यवस्थितम्। बुद्ध्यात्मना मया व्याप्तं को मां लोकेऽतिसंधयेत् ।।२०।।

के फलों को अति विनश्वर एवं अस्थायी देख वे सन्तानों की निन्दा करते हुए ममता तथा आलस्य से रहित हो गये और मुक्ति की अभिलाषा से विरक्त होकर धर्म, अर्थ, काम में दोष देखकर इन सबका परित्याग किया। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान का आश्रय ले वे अपने वास्तविक तेजोबल का संचय कर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हुए ।।७–१२।। उन सबों के ऐसे अभिप्राय को जानकर ब्रह्मा को क्रोध उत्पन्न हुआ और तब उन निरुत्साही देवताओं से उन्होंने कहा–'प्रजाओं की सृष्टि के लिए ही मैंने तुम लोगों को उत्पन्न किया था, किसी अन्य प्रयोजन से नहीं और उस समय मैंने यह आज्ञा भी दी थी कि तुम लोग जाकर सन्तति उत्पन्न करो और यज्ञाराधन करो। किन्तु हमारी बातों पर कोई ध्यान तुम लोगों ने नहीं दिया। यतः मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर तुम लोग वैराग्य-पथ पर अग्रसर हो रहे हो और अपने जन्म की निन्दा करते हुए सन्ततियों का अभिनन्दन नहीं कर रहे हो। प्रत्युत अमरत्व की आकांक्षा से सांसारिक कर्मों को एकदम छोड़ रहे हो, अतः मैं तुम लोगों का अनादर करते हुए यह शाप देता हूँ कि तुम सब सात बार उत्पन्न होगे' ।।१३–१६।। ब्रह्मा के इस प्रकार शाप दे देने पर वे जय नामक देवगण उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए बोले, 'हे देवाधिराज! विभो! हम सबों के अपराधों को क्षमा करें वस्तुतः अज्ञानवश हमने ऐसा किया है।' देवताओं के अति विनय एवं प्रणामपूर्वक निवेदन करने पर ब्रह्मा ने पुनः कहा–इस लोक में बिना मेरी आज्ञा के कौन स्वन्त्रतापूर्वक व्यवहार कर सकता है, इस समस्त चराचर जगत् में मैं परिव्याप्त हूँ, मेरी बिना इच्छा के कौन ऐसा प्राणी है जो शुभ अथवा अशुभ फलों को प्राप्त हो। इस जगत् में जो कुछ सत् अथवा असत् पदार्थ पाये जाते हैं उन सब में मैं आत्मा एवं बुद्धि द्वारा व्याप्त हूँ। इस लोक में मुझको भला कौन छल सकता है ? ।।१७–२०।। इस जगत् के जीव-समूह जो कुछ निश्चित

+ नास्त्ययं श्लोको घ. पुस्तके।

भूतानां तर्कितं यच्च यच्चाप्येषां विधारितम् । तथा विचारितं यच्च तत्सर्वं विदितं मम ।।२१।।
मया स्थितमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । आशामयेन तत्त्वेन कथं छेत्तुमिहोत्सहे ।।२२।।
यस्माच्चाहं विवृत्तो वै सर्गार्थमिह नान्यथा । इह कर्माण्यनारभ्य को मे छन्दाद्विमोक्ष्यते ।।२३।।
परिभाष्य ततो देवाञ्जयान्वै नष्टचेतसः । अब्रवीत्स पुनस्तान्वै धृतान्दण्डे प्रजापतिः ।।२४।।
यस्मान्मामभिसंधाय संन्यासो वः कृतः पुरा । यस्मात्स विफलो यत्नो ह्यपारस्त्वेष यः कृतः ।।
भविताऽतः सुखोदर्को देवा भावेषु जायताम् ।।२५।।
आत्मच्छन्देन वो जन्म भविष्यति सुरोत्तमाः । मन्वन्तरेषु संमूढाः षट्सु सर्वे गमिष्यथ ।।२६।।
वैवस्वतान्तेषु सुरास्तथा स्वायंभुवादिषु । ताञ्ज्ञात्वा ब्रह्मणा तत्र श्लोको गीतः पुरातनः ।।२७।।
त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रसूतिं श्राद्धमेव च । यज्ञं चैव तु दानं च एषामेव तु कुर्वताम् ।।
स हि स्म विरजा भूत्वा वसतेऽन्यप्रशंसया ।।२८।।
स एवं श्लोकमुक्त्वा तु जयान्देवानथाब्रवीत् । वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते मत्समीपमिहेष्यथ ।।२९।।
ततो यूयं मया सार्धं सिद्धिं प्राप्स्यथ शाश्वतीम् । एवमुक्त्वा तु तान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।।३०।।

करते हैं, तथा जो कुछ विचारते हैं, वह सब हमें विदित रहता है। यह समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् मेरे द्वारा बनाये गये आशामय तत्त्व में स्थित है, उसे तोड़ देने का साहस किस प्रकार हो सकता है। मैंने सृष्टि-विस्तार के लिए ही यह सब कार्य प्रारम्भ किया था, किसी अन्य अभिप्राय से नहीं अतः इस जगत् में कार्यों को न करके हमारी इच्छा के प्रतिकूल आचरण कौन कर सकता है ? प्रजापति ब्रह्मा ने उन शाप रूप दण्ड ग्रहण करनेवाले नष्टचेता जय नामक देवगणों से इस प्रकार की बातें कर पुनः उनसे कहा, देवगण! यतः पहले मेरे साथ प्रपंचमय व्यवहार करके इस जगत् के कार्य-समूह से तुम लोगों ने संन्यास ले लिया था और उसी भावना से जो अपार प्रयत्न किया था वह नष्ट भी हो गया अतः इसका परिणाम सुखदायी होगा, तुम लोगों के लिए वे मंगलकारी होंगे ।।२१-२५।। हे देवश्रेष्ठगण! तुम लोगों की वह उत्पत्ति स्वाधीन होगी, और स्वायंभुव से लेकर वैवस्वत तक छह मन्वन्तरों में तुम सभी अविद्या एवं मोह से आवृत होकर जन्म लाभ करोगे। उन जय नामक देवगणों से इस प्रकार की बातें कर ब्रह्मा ने एक पुराना श्लोक कहा, जिसका आशय इस प्रकार है। 'त्रयी (तीनों वेद) विद्या, ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्राद्ध, यज्ञ तथा दान—इन समस्त सत्कर्मों के करनेवाले रजोगुणविहीन होकर (सत्त्वगुण युक्त होकर) दूसरों द्वारा प्रशंसित जीवन बिताते हुए निवास करते थे' ।।२६-२८।। ब्रह्मा ने इस आशय के श्लोक का उच्चारण कर उन जय नामक देवगणों से पुनः कहा—'देववृन्द! उस अन्तिम वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर तुम लोग हमारे समीप यहाँ पुनः आओगे। और तभी हमारे साथ तुम्हें शाश्वती सिद्धि प्राप्त होगी।' देवताओं से ऐसी बातें कर ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये ।।२९-३०।। तदनन्तर ईश्वर (ब्रह्मा) के अन्तर्हित होने पर देवगण निर्भय हो गये और अणिमा आदि से संयुक्त होकर योगबल का आश्रय ले योगाभ्यास

ततो देवास्तिरोभूत ईश्वरे ह्यकुतोभयाः। प्रपन्ना अणिमाद्यैश्च युक्ता योगबलान्विताः ।।३१।।
ततस्तेषां तु यास्तन्वस्ताऽभवन्द्वादश ह्रदाः। जया इति समाख्याता जाताश्चोदधिसंनिभाः ।।३२।।
ततः स्वायंभुवे तस्मिन्सर्गे ते जज्ञिरे सुराः। अजितायां रुचे पुत्रा अजिता द्वादशात्मकाः ।।३३।।
विधिश्च मुनयश्चैव क्षेमो नन्दोऽव्ययस्तथा। प्राणोऽपानः सुधामा च क्रतुशक्तिध्रुवस्थिताः ।।
इत्येते मानसाः सर्वे अजिता द्वादश स्मृताः ।।३४।।
ये च यज्ञे सुरैः सार्धं यज्ञभाजस्तदा स्मृताः। स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ततः स्वारोचिषे पुनः ।।३५।।
तुषिता नाम मे ह्यासन्प्राणाख्या यज्ञियाः सुराः। पुनस्ते तुषिता देवा उत्तमे त्वन्तरे स्वयम् ।।
तुषितायां समुत्पन्नाः पुनः पुत्राः स्वरोचिषः ।।३६।।
उत्तमस्य तु ते पुत्राः सत्यायां जज्ञिरे शुभाः। ततः सत्याः स्मृता देवा उत्तमे चान्तरे तदा ।।३७।।
अभवन्यज्ञभाजस्ते तृतीये द्वापरान्तरे। ते तु सत्याः पुनर्देवाः संप्राप्ते तामसेऽन्तरे ।।३८।।
हर्षा ये तमसः पुत्रा जज्ञिरे द्वादशैव तु। हरयो नाम ते देवा यज्ञभाजस्तथाऽभवन् ।।३९।।
ततस्ये हरयो देवाः प्राप्ते चारिष्णवेऽन्तरे। विकुण्ठायां ततस्ते वै चरिष्णोर्जज्ञिरे सुराः ।।
वैकुण्ठा नाम ते देवाः पञ्चमस्यान्तरे मनोः ।।४०।।
ततस्ते वै पुनर्देवा वैकुण्ठाः प्राप्य चाक्षुषम्। साध्यायां द्वादश सुता जज्ञिरे धर्मसूनवः ।।४१।।

में दत्तचित्त हुए। जिससे उन सबों के शरीर समुद्र के समान विशाल बारह सरोवरों के रूप में परिणत हो गये जो जय नाम से विख्यात हुए ।।३१–३२।। तदनन्तर स्वायंभुव नामक उस मन्वन्तर में वे देवगण अजिता के गर्भ से रुचि के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए, जो अजित गण के नाम से विख्यात हुए ।।३३।। विधि, मुनय (?), क्षेम, नन्द, अव्यय, प्राण, अपान, सुधामा, क्रतु, शक्ति, ध्रुव और स्थिति से बारह अजित देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में स्मरण किये गये हैं ।।३४।। ये देवगण उस स्वायंभुव मन्वन्तर में यज्ञ में अन्यान्य देवताओं के साथ यज्ञ भाग के अधिकारी माने गये। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में पुनः वे तुषिता के गर्भ से स्वारोचिष मनु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, उस समय वे तुषित और प्राण–इन दो नामों से विख्यात हुए, यज्ञ में इन्हें भाग पाने का अधिकार दिया गया। पुनः औत्तम मन्वन्तर में वे शुभदायी देवगण सत्या के गर्भ से उत्तम मनु पुत्र रूप में उत्पन्न हुए और उक्त मन्वन्तर में उसकी सत्य नाम से ख्याति हुई, तृतीय मन्वन्तर के द्वापर युग में वे देवगण यज्ञ भाग के अधिकारी हुए। वे सत्य नामक देवगण पुनः तामस नामक मन्वन्तर में तामस की हर्षा नामक पत्नी में हरि नाम से उत्पन्न हुए और यज्ञ भाग के भोक्ता बने ।।३५–३९।। तदनन्तर चारिष्णव नामक मन्वन्तर में वे हरि नामक देवगण चरिष्णु मनु की विकुण्ठा नामक पत्नी में उत्पन्न हुए। इस पाँचवें मन्वन्तर में वे देवगण वैकुण्ठ नाम से विख्यात हुए और यज्ञों में भाग के अधिकारी हुए। तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर में आकर वे वैकुण्ठ नामक देवगण साध्या के गर्भ से धर्म के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति होने पर जब वैवस्वत मनु की कार्यावधि प्रारम्भ हुई तो वे साध्य देवगण पहले त्रेता युग के प्रारम्भिक काल

ततस्ते वै पुनः साध्याः संक्षीणे चाक्षुषेऽन्तरे । उपस्थिते मनोः सर्गे पुनर्वैवस्वतस्य ह ।।४२।।
आद्ये त्रेतायुगमुखे प्राप्ते वैवस्वतस्य तु । अंशेन साध्यास्तेऽदित्यां मारीचात्कश्यपात्पुनः ।।४३।।
जज्ञिरे द्वादशाऽऽदित्या वर्तमानेऽन्तरे पुनः । यदा त्वेते समुत्पन्नाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।।४४।।
ततः स्वायंभुवे साध्या जज्ञिरे द्वादशामराः । एवमाद्या जयास्ते वै शापात्समभवस्तदा ।।४५।।
य इमां सप्तसंभूतिं देवानां देवशासनात् । पठेद्यः श्रद्धया युक्तः प्रत्यवायं न गच्छति ।।४६।।
इत्येता भूतयः सप्त जयानां सप्तलक्षणाः । परिक्रान्ता मया चाद्य किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ।।४७।।

ऋषय ऊचुः

दैत्यानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सर्पभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम् ।।
उत्पत्तिं निधनं चैव विस्तरात्कथयस्व नः ।।४८।।
एवमुक्तस्तदा सूत उवाच ऋषिसत्तमान् । दितेः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।।४९।।
कश्यपस्याऽऽत्मजौ तौ वै सर्वेभ्यः पूर्वजौ स्मृतौ । सौत्येऽहन्यतिरात्रस्य कश्यपस्याऽऽश्वमेधिके ।।५०।।
हिरण्यकशिपुर्नाम प्रथमं ह्यृत्विगासनम् । दित्या गर्भाद्विनिःसृत्य तत्राऽऽसीनो*च्चसंसदि ।।
हिरण्यकशिपुस्तस्मात्कर्मणा तेन स स्मृतः ।।५१।।

में अंश भाग से अदिति में मरीचि-पुत्र कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए ।।४०-४३।। और इस प्रकार इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्यों के नाम से इसकी प्रसिद्धि हुई। स्वायंभुव मन्वन्तर में जय नाम से विख्यात जो आदि देवगण थे वे ही चाक्षुष मन्वन्तर में शापवश साध्य नाम से विख्यात हुए और वे ही वैवस्वत मन्वन्तर में शापवश आदित्य नाम से भी विख्यात हुए। ब्रह्मा के शाप से होनेवाली देवताओं की इन सात उत्पत्तियों का वृत्तान्त जो श्रद्धापूर्वक पढ़ता है वह पाप से लिप्त नहीं होता। जय नामक देवगणों की इन सात उत्पत्तियों को मैं कह चुका, अब इसके बाद क्या सुनना चाहते हो ।।४४-४७।।

ऋषियों ने कहा-सूत जी! अब हम लोग दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग (सर्प राक्षस, सर्प भूत, पिशाच, पशु, पक्षी, एवं लता-वृक्षादि) की उत्पत्ति तथा विनाश का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं, विस्तारपूर्वक बतलाइये ।।४८।। ऋषियों के ऐसा पूछने पर उन सर्वश्रेष्ठ ऋषियों से सूत ने कहा, ऋषिवृन्द! कश्यप के संयोग से दिति को दो पुत्र उत्पन्न हुए-ऐसा हमने सुना है। कश्यप के वे दोनों आत्मज उनके अन्यान्य सन्तानों में सबसे ज्येष्ठ थे। कश्यप के अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत अतिरात्र याम के सौत्य दिवस के अवसर पर वह प्रथम पुत्र दिति के गर्भ से निकलकर सभामण्डप में लगे हुए सर्वोच्च सिंहासन पर, जो पुरोहित के लिए निर्दिष्ट था, समासीन हो गया। अपने इसी अद्‌भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से स्मरण किया गया ।।४९-५१।।

---

* अत्र संधिरार्षः।

ऋषय ऊचुः

हिरण्यकशिपोर्नाम जन्म चैव महात्मनः । प्रभावं चैव दैत्यस्य विस्तराद्ब्रूहि नः प्रभो ।।५२।।

सूत उवाच

कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत्पुण्यो वै पुष्करे पुरा । ऋषिभिर्देवताभिश्च गन्धर्वैरुपशोभितः ।।५३।।
उत्कृष्टेनैव विधिना आख्यानादौ यथाविधि । आसनान्युपक्लृप्तानि काञ्चनानि तु पञ्च वै ।।५४।।
कुशपूतानि त्रीण्यत्र कूर्चः फलकमेव च । मुख्यर्त्विजश्च चत्वारस्तेषां तान्युपकल्पयेत् ।।५५।।
शुभं तत्राऽऽसनं यत्तु होतुरर्थे प्रकल्पितम् । हिरण्ययं तथा दिव्यं दिव्यास्तरणसंस्तृतम् ।।५६।।
अन्तर्वत्नी दितिश्चैव पत्नीत्वं समुपागता । दश वर्षसहस्राणि गर्भस्तस्या अवर्तत ।।५७।।
स तु गर्भो विनिःसृत्य मातुर्वै उदरात्तदा । उपक्लृप्तासनं यत्तु होतुरर्थे हिरण्ययम् ।।
निषसाद स गर्भोऽत्र तत्राऽसीनः शशंस च ।।५८।।
आख्यानपञ्चमान्वेदान्महर्षिः काश्यपो यथा । तं दृष्ट्वा मुनयस्तस्य नामाकुर्वंस्तु तद्विधम् ।।५९।।
हिरण्यकशिपुस्तस्मात्कर्मणा तेन विश्रुतः । हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य सिंहिका तस्य चानुजा ।।
राहोः सा जननी देवी विप्रचित्तेः परिग्रहः ।।६०।।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चचार परमं तपः । शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधःशिराः ।।६१।।

ऋषियों ने कहा–प्रभो ! दैत्यपति महात्मा हिरण्यकशिपु का जन्म वृत्तान्त एवं प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन हमसे कीजिये ।।५२।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द ! प्राचीनकाल में पुष्कर क्षेत्र में कश्यप का एक अश्वमेध यज्ञ हुआ था, जिसमें ऋषि, देवताओं एवं गन्धर्वों के समूह आकर उस यज्ञ की शोभावृद्धि कर रहे थे। उस महान् यज्ञ में शास्त्रीय विधिसम्मत आख्यान आदि के लिए पाँच सुवर्ण निर्मित आसन स्थापित किये गये थे ।।५३–५४।। कुश से पवित्रित तीन आसन थे, एक पर कूर्च (कुश की मुट्ठी) और पाँचवें पर फलक स्थापित था। चार मुख्य पुरोहितों के लिए उन चार की स्थापना की गयी थी। उनमें एक पाँचवाँ जो सर्वश्रेष्ठ आसन था वह होता के लिए निर्दिष्ट किया गया था। वह दिव्य आसन नीचे से ऊपर तक सब सुवर्णमय था एवं बिछावन से सुशोभित हो रहा था। गर्भवती दिति, कश्यप की पत्नी के रूप में बगल में बैठी थी, उसके उदर में दस सहस्र वर्ष का गर्भ था ।।५५–५७।। ठीक उसी समय वह गर्भ माता के उदर से निकलकर उस पाँचवें सुशोभित आसन पर, जो होता के लिए निर्दिष्ट था, बैठ गया और अपने पिता महर्षि कश्यप की भाँति वहीं से वेद एवं आख्यानात्मक पाँचवें वेद का व्याख्यान देने लगा। उस बालक को इस प्रकार देखकर सभी ऋषियों के तदनुकूल नामकरण किया। अपने उक्त अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात हुआ। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष था और सिंहिका छोटी बहन थी। वह सिंहिका देवी विप्रचित्त की पत्नी तथा राहु की माता हुई। दैत्यवर हिरण्यकशिपु ने परम कठोर तपस्या की। एक लाख वर्षों तक निराहार रहकर वह सिर को नीचे करके तपस्या में लीन रहा ।।५८–६१।। हे विप्रवर्यवृन्द !

तं ब्रह्मा छन्दयामास दैत्यं तुष्टो वरेण तु। सर्वामरत्वं विप्रेशाः सर्वभूतेभ्य एव च।।
योगादेवान्विनिर्जित्य सर्वदेवत्वमास्थितः ।।६२।।
दानवाश्चासुराश्चैव देवाः समा भवन्तु वै। मारुतेर्यन्महैश्वर्यमेष मे दीयतां वरः ।।६३।।
एवमुक्तोऽथ ब्रह्मा तु तस्मै दत्त्वा यथेप्सितम्। दत्त्वा तस्मै वरान्दिव्यांस्तत्रैवान्तरधीयत।।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः श्लोकैर्गीतः पुरातनैः ।।६४।।
राजा हिरण्यकशिपुर्यां यामाशां निषेवते। तस्यै तस्यै दिशे देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः ।।६५।।
एवंप्रभावो दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुर्द्विजाः। तस्याऽऽसीन्नरसिंहः स विष्णुर्मृत्युः पुरा किल।।
नखैस्तु तेन निर्भिन्नानार्द्रशुष्का नखाः स्मृताः ।।६६।।
हिरण्याक्षसुताः पञ्च विक्रान्ताः सुमहाबलाः। उत्कुरः शकुनिश्चैव कालनाभस्तथैव च ।।६७।।
महानाभश्च विक्रान्तो भूतसंतापनस्तथा। हिरण्याक्षसुता ह्येते देवैरपि दुरासदाः ।।६८।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वाडेयः स गणः स्मृतः। शतं तानि सहस्त्राणि निहतास्तारकामये ।।६९।।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारस्तु महाबलाः। प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथैव च।।
संह्लादश्च ह्रदश्चैव ह्रदपुत्रान्निबोधत ।।७०।।

दैत्य हिरण्यकशिपु की इस घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने अपने वरदान से उसे प्रसन्न किया, जिससे उसने सभी जीवों द्वारा मृत्यु को न प्राप्त करने, अपने योगबल से देवताओं को भी पराजित कर देने तथा अमरो (देवताओं) के सभी धर्मों को प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उसने यह वरदान याचना की कि सभी दानव एवं असुर भी देवताओं के समान ऐश्वर्यशाली हो जायँ और मारुत (वायु) में जो महान् ऐश्वर्य है वह हमें प्राप्त हो। हिरण्यकशिपु की ऐसी वरदान याचना को सुनकर ब्रह्मा ने उसकी मनःकामना पूर्ण की और उन दिव्य वरदानों को देने के उपरान्त वे वहीं अन्तर्हित हो गये। उस परमप्रभावशाली दैत्य हिरण्यकशिपु की प्रशंसा पुराने लोग श्लोकों में गाया करते थे, जिसका आशय इस प्रकार है ।।६२-६४।। 'वह राजा हिरण्यकशिपु जिस-जिस दिशा को जाता था उस-उस दिशा के लिए महर्षियों समेत देवगण नमस्कार करते थे।' हे विप्रवृन्द! वह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु सचमुच ऐसा ही प्रभावशाली था। यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि प्राचीनकाल में उस हिरण्यकशिपु के मृत्युस्वरूप नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु स्वयमेव हुए। उन्होंने अपने नखों से उस दैत्यराज की छाती फाड़ डाली थी, किन्तु उनके[१] नख न तो गीले हुए न सूखे ही रहे, ऐसा कहा जाता है। हिरण्याक्ष के पाँच महाबलवान् एवं विक्रमशाली पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कुर, शकुनि, कालनाभ, महानाभ तथा भूतसन्तापन थे। हिरण्याक्ष के ये पुत्र देवताओं द्वारा भी पराजित नहीं किये जा सकते थे ।।६५-६८।। उन पुत्रों को जो पुत्र-पौत्रादि हुए वे वाडेयगणों के नाम से विख्यात हुए, उनकी संख्या एक लाख की थी, जो सब-के-सब तारकामय नामक संग्राम में नष्ट हुए। हिरण्यकशिपु के चार महाबलवान् पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े का नाम प्रह्लाद हुआ, प्रह्लाद से छोटे भाई का नाम अनुह्लाद था, दो उससे भी छोटे हुए, जिनके नाम संह्लाद और ह्रद थे। अब ह्रद के पुत्रों को सुनिये ।।६९-७०।।

---

[१] हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से यह भी वरदान याचना की थी कि उसकी मृत्यु न गीली वस्तु के द्वारा हो न सूखी। इसी से भगवान् के नख न गीले हुए न सूखे।

ह्रादो निसुन्दश्च तथा ह्रदपुत्रौ बभूवतुः। सुन्दोपसुन्दौ विक्रान्तौ निसुन्दतनयावुभौ ।।७१।।
ब्रह्मघ्नस्तु महावीर्यो मूकस्तु ह्रददायिनः। मारीचः सुन्दपुत्रस्तु ताडकामुपपद्यते ।।७२।।
ताडका निहता साऽथ राघवेण बलीयसा। मूको विनिहतश्चापि किराते सव्यसाचिना ।।७३।।
उत्पन्ना महता चैव तपसा भाविताः स्वयम्। तिस्रः कोट्यस्तु तेषां वै मणिवर्तनिवासिनाम् ।।
अवध्या देवतानां वै निहताः सव्यसाचिना ।।७४।।
अनुह्रादसुतो वायुः सिनीवाली तथैव च। तेषां तु शतसाहस्रो गणो हालाहलः स्मृतः ।।७५।।
विरोचनस्तु प्राह्लादिः पञ्च तस्याऽऽत्मजाः स्मृताः। गवेष्ठी कालनेमिश्च जम्भो बाष्कल एव च ।।
शंभुस्तु अनुजस्तेषां स्मृताः प्रह्लादसूनवः ।।७६।।
यथाप्रधानं वक्ष्यामि तेषां पुत्रान्दुरासदान्। शुम्भश्चैव निशुम्भश्च विष्वक्सेनो महौजसः ।।७७।।
गवेष्ठिनः सुता ह्येते जम्भस्य शतदुन्दुभिः। (*तथा दक्षश्च खण्डश्च चत्वारो जम्भसूनवः ।।७८।।
विरोधश्च मनुश्चैव वृक्षायुः कुशलीमुखः। बाष्कलस्य सुता ह्येते कालनेमिसुताञ्शृणु ।।७९।।
ब्रह्मजित्क्षत्रजिच्चैव देवान्तकनरान्तकौ। कालनेमिसुता ह्येते शंभोस्तु शृणुत प्रजाः ।।८०।।

ह्रद के ह्राद और निसुन्द नामक दो पुत्र हुए। तिनमें निसुन्द के सुन्द और उपसुन्द दो पुत्र हुए। ह्रद के उत्तराधिकारी सुन्द के पुत्र महाबलशाली ब्रह्मघ्न, मूक और मारीच हुए जो ताड़का से उत्पन्न हुए थे। वह ताड़का बलवान् रामचन्द्र के हाथों मारी गयी, मूक को किरातयुद्ध में सव्यसाची अर्जुन ने मारा था। इन मणिवर्त निवासी दैत्यों के वंशधर तीन कोटि तक पहुँच गये, जो अपनी-अपनी घोर तपस्या से परम तेजस्वी तथा देवताओं से अवध्य थे, उन सबका संहार भी सव्यसाची ने किया था ।।७१-७४।। अनुह्राद के पुत्र वायु और सिनीवाली हुए, इनके पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या लाखों तक पहुँच गयी, जो सब-के-सब हालाहलगण के नाम से स्मरण किये जाते हैं ।।७५।। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन[1] हुआ, उसके पाँच छोटे भाई कहे जाते हैं, जिनके नाम गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बाष्कल और शम्भु हैं—ये पाँच प्रह्लाद के पुत्र कहे गये हैं ।।७६।। उन दुर्धर्ष दैत्य पुत्रों की चर्चा केवल मुख्य-मुख्य की गणना करते हुए कर रहा हूँ, उनमें से परमतेजस्वी शुम्भ, निशुम्भ और विष्वक्सेन—ये तीन गवेष्ठी के पुत्र हुए, जम्भ का पुत्र शतदुन्दुभि हुआ। शतदुन्दुभि, दक्ष और खण्ड—ये चार जम्भ के पुत्र हुए। विरोध, मनु, वृक्षायु और कुशलीमुख—ये चार बाष्कल के पुत्र कहे गये हैं, अब कालनेमि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। कालनेमि के ब्रह्मजित्, क्षत्रजित्, देवान्तक और नरान्तक नामक पुत्र थे, शम्भु के पुत्रों को सुनिये ।।७७-८०।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

[1] किसी-किसी प्रति में 'आत्मजाः' पाठ भी है, जिसके अनुसार 'पाँच पुत्र' अर्थ होगा। किन्तु नामों के अन्त में 'प्रह्लादसूनवः' पाठ से इसकी असंगति होती है, क्योंकि ये पाँचों तो विरोचन के पुत्र हुए, और प्रह्लाद के पौत्र हुए। अतः 'अनुजाः' पाठ कुछ समीचीन मालूम पड़ता है। आगे चलकर विरोचन के केवल एक पुत्र होने की चर्चा आती है, इससे और भी पुष्टि मिलती है।

धनुको ह्यसिलोमा च नाबलश्च सगोमुखः । गवाक्षश्चैव गोमांश्च शंभोः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।८१।।
विरोचनस्य पुत्रस्तु बलिरेकः प्रतापवान्) । बलेः पुत्रशतं जज्ञे राजानः सर्व एव ते ।।८२।।
तेषां प्रधानाश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः । सहस्रबाहुर्ज्येष्ठस्तु बाणो द्रविणसंमतः ।।
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुशिरित्येवमादयः ।।८३।।
शकुनी पूतना चैव कन्ये द्वे तु बलेः सुते । बलेः पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।।८४।।
बलिर्यो नामविख्यातो गणो विक्रान्तपौरुषः । +बाणस्य चेन्द्रमनसो लौहित्यमुपपद्यते ।।८५।।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् । स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ।।८६।।
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः । स तु तस्यै वरं प्रादात्प्रार्थितं भगवान्प्रभुः ।।
किमिच्छसीति चाप्युग्रो मारीचस्तामभाषत ।।८७।।
मारीचं कश्यपं तुष्टं भर्तारं प्राञ्जलिस्तथा । हतपुत्राऽस्मि भगवन्नादित्यैस्तव सूनुभिः ।।८८।।
शक्रहन्तारमिच्छेयं पुत्रं दीर्घतपोन्वितम् । अहं तपश्चरिष्यामि गर्भमाधातुमर्हसि ।।८९।।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तथा । प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ।।९०।।
एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने । जनयिष्यति सत्पुत्रं शक्रहन्तारमाहवे ।।९१।।

धनुक, असिलोमा, नाबल, सगोमुख, गवाक्ष और गोमान्, ये शुम्भ के पुत्र कहे गये हैं। विरोचन का केवल एक पुत्र हुआ बलि, जो परम प्रतापी था। उस बलि के सौ पुत्र हुए, जो सब-के-सब राजा हुए। उन सौ पुत्रों में चार अत्यन्त प्रबल तथा विक्रमी हुए, जिनमें सबसे ज्येष्ठ सहस्रबाहु बाण था, बाण परम समृद्ध दैत्य था, अन्य तीन कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुशि थे, इनके अतिरिक्त अन्य भी थे ।।८१-८३।। बलि की शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थीं। बलि के पुत्र-पौत्रों की संख्या सैकड़ों क्या सहस्रों तक पहुँच गयी थी। जिनके नाम बलिगण थे, वे सब परम विक्रमशील थे। इन्द्र के समान मनस्वी बाण की राजधानी लौहित्यपुर थी। पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दिति ने सेवा द्वारा कश्यप को सन्तुष्ट किया। दिति की भली-भाँति सेवा करने पर प्रसन्न होकर कश्यप ने वरदान से उसे प्रसन्न किया। दिति ने उनसे वरदान माँगा और भगवान् कश्यप ने उसके अभिलषित वरदान को दिया। मरीचि पुत्र उग्रतेजा महर्षि कश्यप ने दिति से पूछा कि 'तू क्या चाहती है' ।।८४-८७।। अपने पतिदेव मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप को सुप्रसन्न देख दिति ने हाथ जोड़कर कहा, 'भगवन्! आपके पुत्र आदित्यों (अदिति के पुत्रों) द्वारा मेरे सभी पुत्रों का विनाश हो गया, अब मैं परम तपस्वी एवं इन्द्र को मारने में समर्थ एक पुत्र को प्राप्त करने की इच्छा करती हूँ। ऐसे प्रभावशाली पुत्र को प्राप्त करने के लिए मैं तपश्चर्या कर रही हूँ, आप गर्भाधान करें।' ऐसी बातें सुन महान् तेजस्वी मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप ने परम दुःखिनी दिति से कहा, 'हे तपोधने! ऐसा ही होगा। तेरा कल्याण होगा, तू पवित्र आचरण कर। अवश्य ही युद्धस्थल में इन्द्र के

+ तस्मिन्बाणे हते देवैर्विक्रान्ते दुर्जयेऽमरैरित्यधिकं ख. पुस्तके।

पूर्णं वर्षशतं तावच्छुचिर्यदि भविष्यसि। पुत्रं त्रिलोकप्रवरमथ त्वं जनयिष्यसि ।।९२।।
एवमुक्त्वा महातेजास्तया समवसत्प्रभुः। तामालिङ्ग्य त्रिभुवनं जगाम भगवानृषिः ।।९३।।
गते भर्तरि सा देवी दितिः परमहर्षिता। कुशलं वनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ।।९४।।
तपस्तस्यां तु कुर्वंत्यां परिचर्या चकार ह। सहस्राक्षः सुरश्रेष्ठः परया गुणसंपदा ।।९५।।
अग्निं समित्कुशं काष्ठं फलं मूलं तथैव च। न्यवेदयत्सहस्राक्षो यच्चान्यदपि किंचन ।।९६।।
गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा। शक्रः सर्वेषु लोकेषु दितिं परिचचार ह ।।
एवमाराधिता शक्रमुवाचाथ दितिस्तथा ।।९७।।

दितिरुवाच

प्रीता तेऽहं सुरश्रेष्ठ दश वर्षाणि पुत्रक। अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः ।।९८।।
जयलिप्सुं समाधास्ये लब्ध्वाऽहं तादृशं सुतम्। त्रैलोक्यविजयं पुत्र प्राप्स्यामि सह तेन वै ।।९९।।
एवमुक्त्वा दितिः शक्रं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे। निद्रायाऽपहता देवी जान्वोः कृत्वा शिरस्तदा ।।१००।।
दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पादयोर्गतमूर्धजाम्। तस्यास्तदन्तरं लब्ध्वा जहास च मुमोद च ।।१०१।।
तस्याः शरीरं विवृतं विवेशाथ पुरंदरः। प्रविश्य चामितं दृष्ट्वा गर्भमिन्द्रो महौजसम् ।।
अभिनत्सप्तधा तं तु कुलिशेन महायशाः ।।१०२।।

संहार करनेवाले सुपुत्र को तू उत्पन्न करेगी ।।८८-९१।। यदि तू पूरे सौ वर्ष तक पवित्र रहेगी तो त्रैलोक्यविजयी पुत्र को उत्पन्न करेगी।' ऐसी बातें दिति से कर महातेजस्वी महर्षि कश्यप ने उसके साथ सहवास किया और उसका आलिंगनकर त्रिभुवन भ्रमण के निमित्त गमन किया। पतिदेव कश्यप के चले जाने पर परम हर्षित हो देवी दिति ने कुशल वन में परम कठोर तप किया ।।९२-९४।। उस घोर तपस्या में लीन दिति की उस सहस्रनेत्र देवराज इन्द्र ने अनेक प्रकार की सेवाएँ कीं। अग्नि, समिधा, कुश, काष्ठ, फल, मूल आदि तथा अन्यान्य पूजोपयोगी वस्तुओं को सहस्रनेत्र इन्द्र ला-लाकर देता था और परिश्रम के खेद को दूर करने के लिए गात्र संवाहन (मर्दन, पैर, सिर आदि का दबाना) करता था। सभी लोगों को देखते हुए इन्द्र ने दिति की विधिवत् परिचर्या की। इस प्रकार इन्द्र द्वारा भली-भाँति सत्कार एवं शूश्रूषा पाकर दिति ने कहा ।।९५-९७।।

दिति ने कहा-'हे सुरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। हे बेटे! तुम्हारे कल्याण के दस वर्ष और रह गये हैं, जब तुम अपने भाई को देखोगे। जय की अभिलाषा से युक्त परम पराक्रमशील पुत्र को प्राप्तकर मेरी सारी आपत्तियाँ दूर हो जायँगी। हे पुत्र! उसी के साथ समस्त त्रैलोक्य विजय का मैं सुख अनुभव करूँगी।' इन्द्र से ऐसी बातें कर दिति मध्याह्न के अवसर पर, जिस समय सूर्य आकाश के मध्य में विराजमान था, निद्रा से अभिभूत हो इन्द्र के दोनों जंघों पर सिर रखकर सो गयी। दोनों पैरों पर बाल बिखरने के कारण अपवित्र अवस्था में दिति को देखकर और अपने स्वार्थ साधन का उत्तम अवसर देखकर इन्द्र परम मुदित होकर हँसने लगे ।।९८-१०१।। तदनन्तर महायशस्वी पुरन्दर ने दिति के फैले हुए शरीर में प्रवेश किया और प्रविष्ट होकर वहाँ महान् तेजस्वी एवं अपरिमित उस गर्भ शिशु को देख अपने

भिद्यमानस्तदा गर्भो वज्रेण शतपर्वणा। रुरोद सस्वरं भीमं वेपमानः पुनः पुनः।।
मा रोदीरिति तं गर्भं शक्रः पुनरभाषत ।।१०३।।
तं गर्भं सप्तधा कृत्वा ह्येकैकं सप्तधा पुनः। कुलिशेन विभेदेन्द्रस्ततो दितिरबुध्यत ।।१०४।।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इत्येवं दितिरब्रवीत्। निष्पपातोदराद्वज्री मातुर्वचनगौरवात् ।।
प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दिति शक्रोऽभ्यभाषत ।।१०५।।
अशुचिर्देवि सुप्ताऽसि पादयोर्गतमूर्धजा। तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे ।।
भिन्नवान्गर्भमेतं ते बहुधा क्षन्तुमर्हसि ।।१०६।।
तस्मिंस्तु विफले गर्भे दितिः परमदुःखिता। सहस्राक्षं ततो वाक्यं सा सानुनयमब्रवीत् ।।१०७।।
ममापराधाद्गर्भोऽयं यदि ते विफलीकृतः। नापराधोऽस्ति देवेश ऋषिपुत्र महाबल ।।१०८।।
शत्रोर्वधे न दोषोऽस्ति तेन त्वां न शपामि भोः। प्रियं तु कर्तुमिच्छामि श्रेयो गर्भस्य मे कुरु ।।१०९।।
भवन्तु मम पुत्राणां सप्त स्थानानि वै दिवि। वातस्कन्धानिमान्सप्त चरन्तु मम पुत्रकाः ।।
मरुतश्चेति विख्याता गणास्ते सप्त सप्तकाः ।।११०।।
पृथिव्यां प्रथमस्कन्धो द्वितीयश्चैव भास्करे। सोमे तृतीयो विज्ञेयश्चतुर्थो ज्योतिषां गणे ।।१११।।
ग्रहेषु पञ्चमश्चैव षष्ठः सप्तर्षिमण्डले। ध्रुवे तु सप्तमश्चैव वातस्कन्धः परस्तु सः ।।११२।।

वज्र से सात भागों में काट डाला। इन्द्र द्वारा वज्र से काटते समय वह गर्भ डर के मारे काँपने लगा और बारम्बार भयानक स्वर में रोदन करने लगा। इन्द्र ने उस गर्भ से कहा कि मत रोओ। और ऐसा कहकर उसे सात टुकड़ों में काटकर फिर से एक-एक टुकड़े को सात-सात भागों में वज्र से काट दिया तब तक दिति जग गयी। और ऐसा कहने लगी, 'मत मारो, मत मारो।' माता की आज्ञा का गौरव रखने के लिए इन्द्र वज्र समेत उदर से बाहर निकले और हाथ जोड़कर दिति से बोले, हे देवि! तुम अपवित्र अवस्था में सो गयी थी, तुम्हारे केश दोनों पैरों पर बिखरे हुए थे, ऐसे अवसर को पाकर मैंने युद्ध में इन्द्र का (मेरा) संहार करनेवाले इस गर्भस्थ शिशु को अनेक टुकड़ों में काट डाला, मुझे क्षमा करो।।१०२-१०६।। उस गर्भ के निष्फल हो जाने पर दिति को बड़ा दुःख हुआ और उसने अनुनयपूर्वक सहस्र नेत्र इन्द्र से कहा, देवेश! यदि मेरे ही अपराध से यह मेरा गर्भ निष्फल हुआ है तो हे ऋषिपुत्र! महाबलवान्! इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि शत्रु का वध करने में कोई दोष नहीं है, इसीलिए मैं तुम्हें शाप नहीं दे रही हूँ प्रत्युत तुम्हारा मंगल करने की मेरी इच्छा है, मेरे इस गर्भ का कल्याण करो ।।१०७-१०९।। स्वर्ग में मेरे इन पुत्रों का सात स्थान प्राप्त हों, मेरे ये पुत्र वायु के सात स्कन्धों में मरुत् नाम से विचरण करें, उनके एक-एक गण में सात-सात मरुत् हों। इनका पहला स्कन्ध पृथ्वी तल पर हो, दूसरा सूर्यमण्डल में हो, तीसरा चन्द्रमा में और चौथा ज्योतिगणों में हो, पाँचवाँ स्कन्ध ग्रहों में और छठवाँ सप्तर्षिमण्डल में हो, सबसे आखिरी स्कन्ध जो सातवाँ होगा वह ध्रुवमण्डल में होगा। इस प्रकार उन मण्डलों में ये मेरे पुत्रगण समय-समय पर विचरण करते रहें।।११०-११३।। पृथ्वीतल से लेकर मेघमण्डलपर्यन्त प्रथम

तानेते विचरन्त्वद्य काले काले ममाऽऽत्मजाः । वातस्कन्धानिमान्भूत्वा चरन्तु मम पुत्रकाः ।।११३।।
पृथिव्यां प्रथमस्कन्ध आमेघेभ्यो य आवहः । चरन्तु मम पुत्रास्ते सप्तमे प्रथमे गणे ।।११४।।
द्वितीयश्चापि मेघ्येभ्य आसूर्यात्प्रवहस्तु यः । वातस्कन्धं द्वितीयं तु द्वितीयश्चरतां गणः ।।११५।।
सूर्योर्ध्वं तु ततः सोमादुद्वहो यस्तु वै स्मृतः । वातस्कन्धं तु तं प्राहुस्तृतीयश्चरतां गणः ।।११६।।
(*सोमादूर्ध्वं तथर्क्षेभ्यश्चतुर्थः सुवहस्तु यः । चतुर्थो मम पुत्राणां गणस्तु चरतां विभो ।।११७।।
यक्षेभ्यश्च तथैवोर्ध्वमाग्रहाद्विवहस्तु यः । पञ्चमं पञ्चमः सौम्यः स्कन्धस्तु चरतां गणः) ।।११८।।
ऊर्ध्वं ग्रहादृषिभ्यस्तु षष्ठो यो वै पराहतः । चरन्तु मम पुत्रास्तु तत्र षष्ठे गणे तु ये ।।११९।।
सप्तर्षयस्तथैवोर्ध्वमाध्रुवात्सप्तमस्तु यः । वातस्कन्धः परिवहस्तत्र तिष्ठन्तु मे सुताः ।।१२०।।
एतत्सर्वं चरन्त्येते काले काले ममाऽऽत्मजाः । त्वत्कृतेन च नाम्ना वै भवन्तु मरुतस्त्विमे ।।१२१।।
ततस्तेषां तु नामानि मातापुत्रौ प्रचक्रतुः । तत्कृते कर्मभिश्चैव मरुतो वै पृथक्पृथक् ।।१२२।।
सत्त्वज्योतिस्तथाऽऽदित्यः सत्यज्योतिस्तथाऽपरः । तिर्यग्ज्योतिश्च सज्योतिर्ज्योतिष्मानपरस्तथा ।।१२३।।
प्रथमस्तु गणः प्रोक्तो द्वितीयं मे निबोधत । ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ।।१२४।।
सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च हरिमित्रस्तथाऽपरः । गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं मे निबोधत ।।१२५।।
ऋतः सत्यो ध्रुवो धर्ता विधर्ताऽथ विधारयः । ध्वान्तश्चैव धुनिश्चैव ह्युग्रो भीमस्तथैव च ।।
अभियुः साक्षिपश्चैवमाह्वयश्च गणः स्मृतः ।।१२६।।

स्कन्ध जो आवह नामक है, उसमें मेरे सातों गणों में से प्रथम गण के सात पुत्र विचरण करें। द्वितीय प्रवह नामक स्कन्ध जो कि मेघमण्डल से लेकर सूर्यमण्डलपर्यन्त है, उसमें हमारे पुत्रों का द्वितीय गण विचरण करे। सूर्यमण्डल से ऊपर चन्द्रमण्डल तक जो उद्वह नामक वातस्कन्ध कहा गया है उसमें हमारे पुत्रों का तीसरा गण विचरण करे। चन्द्रमा से ऊपर नक्षत्रमण्डलपर्यन्त चौथा सुवह नामक जो वातस्कन्ध है, हे विभो! उनमें उन सबों का चौथा गण विचरण करे।।११४–११७।। नक्षत्रमण्डल के ऊपर से लेकर ग्रहों के मण्डल तक जो पाँचवाँ विवह नामक स्कन्ध है उसमें उनका पाँचवाँ सुन्दर गण विचरण करे। उक्त ग्रहमण्डल से ऊपर सप्तर्षिमण्डलपर्यन्त छठवाँ पराहत नामक जो स्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों के छठवें गणों में रहनेवाले विचरण करें।।११८–११९।। और इसी प्रकार सप्तर्षिमण्डल से ऊपर ध्रुवमण्डलपर्यन्त जो सातवाँ परिवह नामक वायुस्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों का सातवाँ गण निवास करे। ये मेरे आत्मज-गण समय-समय पर उक्त स्कन्धों में विचरण करते रहें। और तुम्हारे रखे गये 'मरुत्' नाम से विख्यात हों। इस प्रकार बातें करने के उपरान्त माता और पुत्र ने उन सबों का नामकरण संस्कार किया। इन्द्र के (मा रोदी) (मत रोओ) इस कथन को लेकर उन सबों का नाम मरुत् गण पड़ा, उनके पृथक्-पृथक् नाम इस प्रकार हैं।।१२०–१२२।। सत्त्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्योति और ज्योतिष्मान्–प्रथम गण के मरुत् कहे गये हैं। अब दूसरे गणों की नामावली सुनिये, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र और हरिमित्र–ये द्वितीय गण के मरुत् हैं, तृतीय गण को सुनिये।।१२३–१२५।। ऋत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, आह्वय, ये दो गणों के मरुत् हैं। ईदृक्, अन्यादृक्, प्रतिकृत्, यादृक्, ऋक्, समिति, संरम्भ ये पाँचवें गण के मरुत् हैं।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

ईदृक्चैव तथाऽन्यादृग्यादृक्च प्रतिकृत्तथा । ऋक्तथा समितिश्चैव संरम्भश्च तथा गणः ।।१२७।।
ईदृक्च पुरुषश्चैव अन्यादृक्षाच्च चेतसः । समितासमिवृक्षाच्च प्रतिदृक्षाच्च वै गणाः ।।१२८।।
(*मरुतिद्सरतश्चैव तथा देवो दिशोऽपरः । यजुश्चैवानुदृक्सामस्तथाऽन्यो मानुषीविशः ।।
दैत्या देवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तका गणाः ।।१२९।।
एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतो नामतः स्मृताः । प्रसंख्यातास्तथा ताभ्यां दित्या चेन्द्रेण चैव हि ।।१३०।।
कृत्वा तेषां तु नामानि दितिरिन्द्रमुवाच ह । वातस्कन्धं चरन्त्वेते मम पुत्राश्च पुत्रक ।।
विचरन्तु च भद्रं ते देवैः सह ममाऽऽत्मजाः ।।१३१।।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरंदरः । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा मातर्भवतु तत्तथा ।।१३२।।
सर्वतेमद्यथोक्तं ते भविष्यन्ति न संशयः । देवभूता महात्मानः कुमारा देवसंमताः ।।
देवैः सह भविष्यन्ति यज्ञभाजस्तवाऽऽत्मजाः ।।१३३।।
तस्मात्ते मरुतो देवाः सर्वे चेन्द्रानुजामराः । विज्ञेयाश्चामराः सर्वे दितिपुत्रास्तपस्विनः ।।१३४।।
एवं तौ निश्चयं कृत्वा मातापुत्रौ तपोधनौ । जग्मतुस्त्रिदिवं हृष्टौ शक्रोऽपि त्रिदिवं गतः ।।१३५।।
मरुतां हि शुभं जन्म शृणुयाद्यः पठेत वा । नावृष्टिभयमाप्नोति बह्वायुश्च भवत्युत ।।१३६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।६७।।

ईदक्, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस्, समिता, समिवृक्ष और प्रतिदृक्ष ये एक गण के मरुत् हैं। मरुतिद्, सरत, दिश, यजु, अनुदृक्, साम, मानुषीविश, दैत्य, देव ये सात-सात के एक-एक गण हैं।।१२६-१२९।। ये उपर्युक्त उनचास मरुत् गण के नाम से विख्यात हैं। इन्द्र और दिति ने इनकी गणना और नामकरण किया। इस प्रकार इन सबों के नामकरण हो जाने पर दिति ने इन्द्र से कहा, पुत्र! ये पुत्रगण उपर्युक्त वायु स्कन्धों में विचरण करें, तुम ऐसा ही करो कि देवताओं के साथ ये मेरे पुत्रगण सुखपूर्वक विचरण करें। दिति की बातें सुनकर सहस्रनेत्र पुरन्दर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, हे मातः! आपकी जैसी आज्ञा है वैसा ही होगा। इसमें तनिक भी सन्देह मत करो, जैसी आपकी इच्छा है वैसा ही मैं करूँगा। ये तुम्हारे महात्मा पुत्रगण देव तुल्य हैं, यहीं नहीं देवताओं से भी सम्माननीय हैं, देवताओं के साथ ये भी यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी होंगे ।।१३०-१३३।। (सूत ने कहा) ऋषिवृन्द! यही कारण है कि वे मरुत् गण देवताओं में परिगणित हुए, इन्द्र के अनुज के रूप में उन सबों को अमरत्व की भी प्राप्ति हुई, वे परम तपस्वी दिति के पुत्र होकर भी अमर माने गये। इस प्रकार का निश्चय कर वे तपस्वी माता पुत्र परम हर्षित हुए, दिति अपने निवास-स्थान को और इन्द्र स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए। जो कोई मरुत् गणों के मंगलकारी जन्म वृत्तान्त को सुनता है अथवा पढ़ता है उसे दीघार्यु की प्राप्ति होती है और वह कभी अनावृष्टि के कारण कष्ट नहीं अनुभव करता ।।१३४-१३६।।

श्री वायुमहापुराण में कश्यपीयप्रजासर्गवर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ग. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

अथाष्टषष्टितमोऽध्याय:

कश्यपीयप्रजासर्ग:

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दनुपुत्रान्निबोधत। अभवन्दनुपुत्रास्तु वंशे ख्याता महासुरा: ।।१।।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते शतं तीव्रपराक्रमा:। सर्वे लब्धवराश्चैव सुतप्ततपसस्तथा ।।२।।
सत्यसंधा: पराक्रान्ता: क्रूरा मायाविनश्च ते। महाबला अयज्वानो ह्यब्रह्मण्याश्च दानवा: ।।
कीर्त्यमानान्मया सर्वान्प्राधान्येन निबोधत ।।३।।
द्विमूर्धा शङ्कुकर्णश्च तथा शङ्कुनिरामय:। शङ्कुकर्णो महाविश्वो गवेष्ठिर्दुन्दुभिस्तथा ।।४।।
अजामुखोऽथ भगवाञ्शिलो वामनसस्तथा। मरीचिरक्षकश्चैव महागार्ग्योऽङ्गिरावृत: ।।५।।
विक्षोभ्यश्च सुकेतुश्च सुवीर्य: सुहृदस्तथा। इन्द्रजिद्विश्वजिच्चैव तथा सुरविमर्दन: ।।६।।
एकचक्र: सुवाहश्च तारकश्च महाबल:। वैश्वानर: पुलोमा च प्रवीणोऽथ महाशिरा: ।।७।।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च मुण्डकश्च महासुर:। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्र इन्द्रश्च तापिन: ।।८।।
सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरि:। असिलोमा सुकेशश्च सदश्च बलको दश ।।९।।

अध्याय ६८

कश्यप की सन्ततियों की सृष्टि

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त मैं दनु के पुत्रों का वृत्तान्त कह रहा हूँ, सुनिये। वे दनु के पुत्र अपने वंश में परम विख्यात एवं महान् असुर थे ।।१।। उनमें सबका प्रधान विप्रचित्ति था, उनकी संख्या सैकड़ों की थी। जो सब-के-सब परमपराक्रमी थे। उन सभी को वरदान मिले हुए थे, वे सब-के-सब परमतपस्वी थे। इतना होने पर भी वे दृढ़प्रतिज्ञ थे, परमविक्रमशील थे, क्रूर थे, मायावी थे। महाबलवान् थे, यज्ञादि में उनकी निष्ठा नहीं थी, ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे। उन्हें दानव नाम से लोग जानते हैं। उन सबों में जो प्रधान-प्रधान दानव हो गये हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।२-३।। द्विमूर्धा, शङ्कुकर्ण, शङ्कुनिरामय, शंकुकर्ण, महाविश्व, गवेष्ठि, दुन्दुभि, अजामुख, ऐश्वर्यशाली शिल, वामनस, मरीचि, रक्षक, महागार्ग्य अङ्गिरावृत, विक्षोभ्य, सुकेतु, सुवीर्य, सुहृद, इन्द्रजित्, विश्वजित्, सुरविमर्दन, एकचक्र, सुवाह, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, प्रवीण, महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाअसुर मुण्डक, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, तापिन्, सूक्ष्म, निचन्द्र, ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा, सुकेश, सद, बलक, गगनमूर्धा, कुम्भनाभ, महोदर, प्रमोदाह, कुपथ, पराक्रमी हयग्रीव, असुर विरूपाक्ष, महासुर सुपथ, अज, हिरण्मय, शतमायु, शम्बर, शरभ

तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महोदरः। प्रमोदाहश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।।१०।।
असुरश्च विरूपाक्षः सुपथोऽथ महासुरः। अजो हिरण्मयश्चैव शतमायुश्च शम्बरः ।।११।।
शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसावुभौ। असुराणां सुरावेतौ सुराणां सांप्रताविमौ ।।१२।।
इति पुत्रा दनोर्वंशे प्रधानाः परिकीर्तिताः। तेषामपरिसंख्येयं पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ।।१३।।
इत्येते त्वसुराः प्रोक्ता दैतेया दानवाश्च ये। स्वर्भानुस्तु स्मृतो दैत्यो ह्यनुभानुर्दनोः सुतः ।।
इमे तु वंशानुगता दनोः पुत्रास्तु ये स्मृताः ।।१४।।
एकाक्ष ऋषभोऽरिष्टः प्रलम्बनरकावपि। इन्द्रबाधनकेशी च मेरुः शंबोऽथ धेनुकः ।।१५।।
गवेष्ठिश्च गवाक्षश्च तालकेतुश्च वीर्यवान्। एते मनुष्यधर्मास्तु दनोः पुत्रा मया स्मृताः ।।१६।।
दैत्यदानवसंघर्षे जाता भीमपराक्रमाः। सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्त्विमे ।।१७।।
सैंहिकेया इति ख्याताश्चतुर्दश महासुराः। शतगालश्च बलवान्यासः शाम्बस्तथैव च ।।१८।।
+अनुलोमः शुचिश्चैव वातापिश्च सितांशुकः। हरकल्पः कालनाभो भौमश्च नरकस्तथा ।।१९।।
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रतर्दनः। इत्येते सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः ।।२०।।
दारुणाभिजनाः क्रूराः सर्वे ब्रह्मद्विषश्च ते। दशान्यानि सहस्त्राणि सैंहिकेयो गणः स्मृतः ।।२१।।

और शलभ ये प्रमुख दानवगण कहे गये हैं। सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों पहले असुरों के देवता थे, इस समय ये देवताओं के देवता हैं ।।४–१२।। दनु के वंश में उत्पन्न ये प्रधान दानव कहे जाते हैं, इन सबों के पुत्र–पौत्रादि की संख्या असंख्य है, अनन्त है। दिति और दनु के पुत्रगणों का, जो सब असुर नाम से विख्यात हैं, परिचय कह चुका। स्वर्भानु (राहु) दिति का पुत्र कहा गया है, अनुभानु दनु का पुत्र होने के कारण दानव कहा गया है ।।१३–१४।। ये उपर्युक्त वंश परम्परागत दनु के पुत्र स्मरण किये जाते हैं। एकाक्ष, ऋषभ, अरिष्ट, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रबाधन, केशी, मेरु, शंब, धेनुक, गवेष्ठि, गवाक्ष, पराक्रमी तालकेतु ये दनु के पुत्र मनुष्यों के धर्म–कर्म का आचरण करनेवाले हैं—ऐसा मैं जानता हूँ। विप्रचित्ति के भयानक पराक्रमशाली चौदह पुत्र दैत्यों और दानवों के संघर्ष में सिंहिका के संयोग से उत्पन्न हुए थे, इस कारणवश वे चौदहों महान् असुर सैंहिकेय के नाम से प्रसिद्ध हुए। जिनके नाम शतगाल, बलवान् न्यास, शाम्ब, अनुलोम, शुचि, वातापि, सितांशुक, हर, कल्प, कालनाभ, भौम और नरक, इनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम राहु था, जो चन्द्रमा और सूर्य को कष्ट देनेवाला था। ये सिंहिका के पुत्रगण देवताओं से भी अजेय थे और वे सब–के–सब परम दारुण चित्तवृत्तिवाले, क्रूर तथा ब्रह्मण द्वेषी थे। इनके अतिरिक्त अन्य दस सहस्त्र राक्षसों का समूह था, जो सैंहिकेय नाम से स्मरण किया जाता था ।।१५–२१।। उसका संहार बलवान् भृगु वंशोद्भव जामदग्न्य परशुराम ने किया था। स्वर्भानु की

+ एतदर्धस्थाने इदमर्धं ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु 'इल्वला नमुचिश्चैव वातापी दसृयाजकः' इति।

निहतो जामदग्न्येन भार्गवेण बलीयसा । स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नोऽथ शची सुता ।।२२।।
उपदानवीमयस्यापि शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।।२३।।
प्रभाया नहुषः पुत्रो जयन्तश्च शचीसुतः । पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी ।।२४।।
वैश्वानरसुते ह्येते पुलोमाकालिके उभे । उभे ह्यपि तु ते कन्ये मारीचस्य परिग्रहे ।।२५।।
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवपुङ्गवाः । चतुर्दश तथाऽऽन्यानि हिरण्यपुरवासिनाम् ।।२६।।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवाः सुमहाबलाः । अवध्या देवतानां ते निहताः सव्यसाचिना ।।२७।।
मयस्य जाता ये पुत्राः सर्वे वीरपराक्रमाः । मायावी दुन्दुभिश्चैव वृषश्च महिषस्तथा ।।२८।।
बालिको वज्रकर्णश्च कन्या मन्दोदरी तथा । दैत्यानां दानवानां च सर्ग एष प्रकीर्तितः ।।२९।।
दनायुषायाः पुत्रास्तु स्मृताः पञ्च महाबलाः । अरूरुर्बलिजन्मौ च विरक्षश्च विषस्तथा ।।३०।।
अरूरोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम महासुरः । निहतः कुवलाश्वेन उत्तङ्कवचनात्किल ।।३१।।
बलेः पुत्रौ महावीर्यौ तेजसाऽप्रतिमावुभौ । कुम्भिलश्चक्रवर्मा च स कर्णः पूर्वजन्मनि ।।३२।।
विरक्षस्यापि पुत्रौ द्वौ कालकश्च वरश्च तौ । विषस्य त्वभवन्पुत्राश्चत्वारः क्रूरकर्णिकः ।।
श्राद्धहा यज्ञहा चैव ब्रह्महा पशुहा तथा ।।३३।।
क्रान्ता दनायुषापुत्रा वृत्रस्यापि निबोधत । जज्ञिरे श्वसनाद्घोराद्वृत्रस्येन्द्रेण युध्यतः ।।३४।।
भर्तारो मनसा ख्याता राक्षसाः सुमहाबलाः । शतं तानि सहस्राणि महेन्द्रानुचराः स्मृताः ।।३५।।

कन्या का नाम प्रभा था, पुलोमा की पुत्री शची थी। मय की पुत्री उपदानवी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। पुलोमा और कालिका ये दोनों वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं। तिनमें से प्रभा का पुत्र नहुष और शची का पुत्र जयन्त हुआ, शर्मिष्ठा ने पुरु को और उपदानवी ने दुष्यन्त को उत्पन्न किया। वैश्वानर की दोनों पुत्रियाँ, प्रलोमा और कालिका जो थीं, वे दोनों ही मरीचिपुत्र कश्यप की स्त्रियाँ हुईं ।।२२-२५।। उन दोनों से एक सहस्र प्रमुख दानव पुत्र उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त चौदह सहस्र अन्य दानव थे जो हिरण्यपुर निवासी थे। पुलोमा और कालिका से उत्पन्न होनेवाले वे पौलोम और कालकेय नामक दानवगण महाबलवान् थे, देवता भी उनका वध नहीं कर सकते थे, उन सबका संहार सव्यसाची अर्जुन ने किया। मय के जो पुत्र हुए वे सब-के-सब बड़े वीर और पराक्रमी थे, उनके नाम मायावी, दुन्दुभि, वृष, महिष, बालिक और वज्रकर्ण थे, मय की कन्या मन्दोदरी थी। दैत्यों और दानवों की सृष्टि की यह कथा आप लोगों को बतला चुका ।।२६-२९।। दनायुषा के पाँच महाबलवान् पुत्र कहे जाते थे, जिनके नाम अरुण, बलि, जन्म, विरक्ष और विष थे। अरुण का पुत्र धुन्धु नामक महान् असुर था, जो क्रूर प्रकृति का था, उसका संहार उत्तङ्क के कहने पर कुवलाश्व ने किया था। बलि के दो अनुपम तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र हुए कुम्भिल और चक्रवर्मा, यह बलि पूर्व जन्म में कर्ण था। विरक्ष के भी काल और वर नामक दो पुत्र थे। विष के अतिक्रूरकर्मा चार पुत्र हुए, जो श्राद्धहा, यज्ञहा, ब्रह्महा और पशुहा के नाम से विख्यात थे ।।३०-३३।। दनायुषा के चार पुत्रों का विवरण कह चुका, अब वृत्र के वृत्तान्त को सुनिये। इन्द्र के साथ युद्ध करते समय वृत्र के घोर श्वास से अतिबलवान्, भरण-पोषण करनेवाले, मानस नाम से विख्यात राक्षसों की

सर्वे ब्रह्मविदः सौम्या धार्मिकाः सूक्ष्ममूर्तयः । प्रजास्वन्तर्गताः सर्वे निवसन्ति सुधार्मिकाः ।।३६।।
दैत्यानां दानवानां स सर्ग एष प्रकीर्तितः । प्रवाह्यजनयत्पुत्रान्यज्ञै वै गायनोत्तमान् ।।३७।।
सत्त्वः सत्त्वात्मकश्चैव कलापश्चैव वीर्यवान् । कृतवीर्यो ब्रह्मचारी सुपाण्डुश्चैव सप्तमः ।।३८।।
पनश्चैव तरण्यश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा । इत्येते देवगन्धर्वा विज्ञेयाः परिकीर्तिताः ।।३९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

अथ नवषष्टितमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

सूत उवाच

गन्धर्वाप्सरसः पुण्या मौनेयाः परिकीर्तिताः । चित्रसेनोग्रसेनश्च ऊर्णायुरनघस्तथा ।।१।।
धृतराष्ट्रः पुलोमा च सूर्यवर्चास्तथैव च । युगपत्तृणपत्कालिदितिश्चित्ररथस्तथा ।।२।।
त्रयोदशो भ्रमिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः । कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चैव षोडशः ।।
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ।।३।।

उत्पत्ति हुई, तिनमें से एक लक्ष महेन्द्र (शिव जी) के अनुचर कहे जाते हैं। वे शिव के अनुचर राक्षसगण, सब-के-सब ब्रह्मज्ञानी, सौम्य, धार्मिक एवं सूक्ष्ममूर्तिधारी हैं, वे प्रकृति से परमधार्मिक एवं प्रजावर्ग में निवास करनेवाले हैं। दैत्यों एवं दानवों की यह सृष्टि-कथा कह चुका। प्रवाही ने यज्ञ क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गायक पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम ये हैं। सत्त्व, सत्त्वात्मक, कलाप, वीर्यवान्, कृतवीर्य, ब्रह्मचारी, सुपाण्डु, पन, तरण्य और सुचन्द्र। इन दसों पुत्रों को देवताओं का गन्धर्व जानना चाहिए, जिनका वर्णन मैं कर चुका ।।३४-३९।।

श्री वायुमहापुराण में पृथु-वंशानुकीर्तन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।।६८।।

अध्याय ६९

कश्यप की प्रजा-सृष्टि

सूत ने कहा-ऋषिवृन्द! पुण्यात्मा गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्ततियाँ कही गयी हैं। चित्रसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, धृतराष्ट्र, पुलोमा, सूर्यवर्चा, युगपत्, तृणपत्, कालि, दिति, चित्ररथ, भ्रमिशिरा, पर्जन्य, कलि और नारद ये सोलह मुनि के पुत्रदेव गन्धर्व कहे गये हैं ।।१-३।। इन सबों से छोटी चौंतीस कल्याणी अप्सराएँ हैं। जिनके नाम

चतुस्त्रिंशद्यवीयस्यस्तेषामप्सरसः शुभाः। अन्तरा दारवत्या च प्रियमुख्या सुरोत्तमा ।।४।।
मिश्रकेशी तथा चाशी वर्णिनी वाऽप्यलम्बुषा। मारीची पुत्रिका चैव विद्युद्वर्णा तिलोत्तमा ।।५।।
अद्रिका लक्षणा चैव देवी रम्भा मनोरमा। सुवरा च सुबाहुश्च पुर्णिता सुप्रतिष्ठिता ।।६।।
पुण्डरीका सुगन्धा च सुदन्ता सुरसा तथा। हेमा शारद्वती चैव सुवृत्ता कमला च या ।।७।।
सुभुजा हंसपादा च लौकिक्योऽप्सरसस्तथा। गन्धर्वाप्सरसो ह्येता मौनेयाः परिकीर्तिताः ।।८।।
गन्धर्वाणां दुहितरो मया याः परिकीर्तिताः। (*तासां नामानि सर्वासां कीर्त्यमानानि मे शृणु ।।९।।
सुयशा प्रथमा तासां गान्धर्वी तदनन्तरम्। विद्यावती चारुमुखी सुमुखी च वरानना) ।।१०।।
तत्रेमे सुयशापुत्रा महाबलपराक्रमाः। प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु ।।११।।
कम्बलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा। मेघमाली तु यक्षाणां गण एष उदाहृतः ।।१२।।
सुवशाया दुहितरश्चतस्त्रोऽप्सरसः स्मृताः। तासां नामानि वै सम्यग्ब्रुवतो मे निबोधत ।।१३।।
लोहेयी त्वभवज्ज्येष्ठा भरता तदनन्तरम्। कृशाङ्गी च विशाला च रूपेणाप्रतिमा तथा ।।१४।।
ताभ्योऽपरे यक्षगणाश्चत्वारः परिकीर्तिताः। उत्पादिता विशालेन विक्रान्तेन महात्मना ।।१५।।
लोहेया भरतेयाश्च कृशाङ्गेयाश्च विश्रुताः। विशालेयाश्च यक्षाणां पुराणे प्रथिता गणाः ।।१६।।

हैं अन्तरा, दारवत्या, प्रियमुख्या, सुरोत्तमा, मिश्रकेशी, चाशी, वर्णिनी, अलम्बुषा, मारीची, पुत्रिका, विद्युद्वर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, देवी, रम्भा, मनोरमा, सुवरा, सुबाहु, पुर्णिता, सुप्रतिष्ठिता, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुदन्ता, सुरसा, हेमा, शारद्वती, सुवृत्ता, कमला, सुभुजा और हंसपादा।[१] ये लौकिक अप्सराएँ हैं। ये उपर्युक्त गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्तान कही गयी हैं ।।४–८।। गन्धर्वों की जिन पुत्रियों की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ, उन सबों का भी मैं नाम बतला रहा हूँ, सुनो। उनमें सबसे प्रथम सुयशा है, उनके बाद गान्धर्वी है, इनके अतिरिक्त विद्यावती, चारुमुखी, सुमुखी और वरानना नामक हैं। उनमें से सुयशा के पुत्र महाबलवान् एवं पराक्रमी यक्षगण हुए जो प्रचेता के संयोग से उत्पन्न हुए, उनके नाम सुनो।।९–११।। कम्बल, हरिकेश, कपिल, काञ्चन और मेघमाली–यक्षों के इस समूह को सुना चुका। सुयशा की चार अप्सरा कन्याएँ कही गयी हैं, उनके नामों को मैं भलीभाँति जानता हूँ, बतला रहा हूँ, सुनो। उनमें सबसे बड़ी लोहेयी थी, उससे जो छोटी थी उसका नाम था भरता। उसके बाद जो दो थीं उनके नाम कृशाङ्गी और विशाला थे–ये दोनों अनुपम सुंदरी अप्सराएँ थीं। इन चारों कन्याओं से महाबलवान् पराक्रमी विशाल ने अन्य चार यक्षगणों को उत्पन्न किया, जो लोहेय, भरतेय, कृशाङ्गेय और विशालेय नाम से यक्षों के कथा-प्रसङ्ग में पुराणों में सुप्रसिद्ध हैं ।।१२–१६।। हे

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

[१] संख्या इकतीस होती है। अतः यहाँ पाठभेद प्रतीत होता है। 'चतुस्त्रिंशत्' के स्थान पर 'एक त्रिंशत्' होना चाहिए।

इत्येतैरसुरैर्घोरैर्महाबलपराक्रमैः । नैकैर्यक्षगणैर्व्याप्ता लोका लोकविदां वराः ।।१७।।
गन्धर्वाश्चाथ वालेया विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महागन्धर्वनायकाः ।।१८।।
विक्रमौदार्यसंपन्ना महाबलपराक्रमाः । तेषां नामानि वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।१९।।
चित्राङ्गदो महावीर्यश्चित्रवर्मा तथैव च । चित्रकेतुर्महाभागः सोमदत्तोऽथ वीर्यवान् ।।
तिस्रो दुहितरश्चैव तासां नामानि वक्ष्यते (मे शृणु) ।।२०।।
प्रथमा त्वग्निका नाम कम्बला तदनन्तरम् । तथा वसुमती नाम रूपेणाप्रतिमौजसः ।।२१।।
ताभ्यः परे कुमारेण गणा उत्पादितास्त्विमे । त्रयो गन्धर्वमुख्यानां (णां) विक्रान्ता युद्धदुर्मदाः ।।२२।।
आग्नेयाः काम्बलेयाश्च तथा वसुमतीसुताः । तैर्गणैर्विविधैर्व्याप्तमिमं लोकं चराचरम् ।।२३।।
विद्यावन्तश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महाभागा रूपविद्याधनेश्वराः ।।२४।।
तेषामुदीर्णवीर्याणां गन्धर्वाणां महात्मनाम् । नामानि कीर्त्यमानानि शृणुध्वं मे विवक्षतः ।।२५।।
हिरण्यरोमा कपिलः सुलोमा मागधस्तथा । चन्द्रकेतुश्च वै गाङ्गो मोदश्चैव महाबलः ।।२६।।
महविद्यावदातानां विक्रांतानां तपस्विनाम् । इत्येवमादिर्हि गणो द्वे चान्ये च सुलोचने ।।२७।।
शिवा च सुमनाश्चैव ताभ्यामपि महात्मना । उत्पादिता विश्रवसा विद्याचरणगोचराः ।।२८।।

समस्त लोक की वार्ता जाननेवालों में श्रेष्ठ मुनिगण! इन महाबलशाली, घोर पराक्रमी, अनेक यक्षगणों एवं असुरों से समस्त लोक व्याप्त हो गये। महात्मा विक्रान्त ने परम पराक्रमशील, श्रेष्ठ गन्धर्वों के नायक वालेय नामक गन्धर्वों को उत्पन्न किया, जो विक्रम एवं औदार्य गुण से सम्पन्न, महाबलवान् एवं परम पराक्रमी थे, उनकी यथाक्रम नामावली मैं बतला रहा हूँ। वे महावीर चित्राङ्गद, चित्रवर्मा, महाभाग्यशाली चित्रकेतु एवं बलवान् सोमदत्त के नाम से विख्यात थे। तीन कन्याएँ थीं, जिनके नाम मुझसे सुनो ।।१७-२०।। पहली कन्या अग्निका नामक थी, उससे छोटी का नाम कम्बला था, तीसरी-वसुमती नामक थी-ये तीनों अनुपम रूपवती एवं तेजस्विनी थीं। इन तीनों कन्याओं से कुमार नामक गन्धर्व ने अन्य तीन गन्धर्वगणों को उत्पन्न किया, जो प्रमुख गन्धर्व माने गये, वे परम वीर तथा संग्राम भूमि में भयानक युद्धकौशल दिखानेवाले थे ।।२१-२२।। आग्नेय, काम्बलेय और वसुमती सुतों के नाम से उनकी ख्याति हुई। इन विविध गन्धर्वगणों से यह समस्त चराचर लोक व्याप्त हो गया। उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने अन्यान्य महाभाग्यशाली, विद्यावान्, रूप, विद्या एवं सम्पत्ति-सबसे समृद्ध गन्धर्वों को भी उत्पन्न किया था। उन महात्मा, परमपराक्रमी गन्धर्वों के नामों को बतला रहा हूँ, तुम लोग सुनो ।।२३-२५।। उनके नाम हिरण्यरोमा, कपिल, सुलोमा, मागध, चंद्रकेतु, गांग एवं महाबलवान् मोद थे। ये सब गन्धर्वगण महाविद्वान्, परमतपस्वी एवं विक्रम सम्पन्न थे। इनके अतिरिक्त दो अन्य सुंदर नेत्रोंवाली शिवा और सुमना नामक दो कन्याएँ थीं, जिनमें महात्मा विश्रवा ने शैवेय, विक्रान्त और सौमनस नामक गणों को उत्पन्न किया, जो परमविद्यावान् थे। इन तीनों विद्याधरों से यह लोक व्याप्त हो गया। इन सबों से अनेक सौ आकाशचारी विद्याधर

शैवेयाश्चैव विक्रान्तास्तथा सौमनसा गणाः। एतैर्व्याप्तमिमं लोकं विद्याधरगणैस्त्रिभिः ।।२९।।
एभ्योऽनेकानि जातानि अम्बरान्तरचारिणाम्। लोके गणशतान्येव विद्याधरविचेष्टितात् ।।३०।।
अश्वमुख्याश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना। उत्पादिता ह्यश्वमुखाः किंनरांस्तान्निबोधत ।।३१।।
समुद्रसेनः कालिन्दो महानेत्रो महाबलः। सुवर्णघोषः सुग्रीवो महाघोषश्च वीर्यवान् ।।३२।।
इत्येवमादिर्हि गणः किंनराणां महात्मनाम्। हयाननानां विद्वद्भिर्विस्तीर्णः परिकीर्त्यते ।।३३।।
तथा समुत्थितेनैव विक्रान्तेन महात्मना। उत्पादिता नरमुखाः किंनराः शांशपायनाः ।।३४।।
हरिषेणः सुषेणश्च वारिषेणश्च वीर्यवान्। रुद्रदत्तेन्द्रदत्तौ च चन्द्रद्रुममहाद्रुमौ ।।३५।।
बिन्दुश्च बिन्दुसारश्च चन्द्रवंशाश्च किंनराः। इत्येते किंनराः श्रेष्ठा लोके ख्याताः सुशोभनाः ।।३६।।
नृत्यगीतप्रगल्भानामेतेषां द्विजसत्तमाः। लोके गणशतान्येव किंनराणां महात्मनाम् ।।३७।।
यक्षा यक्षोपशान्तश्च लौहेया रूपशालिनी। दुहिता सुरविन्देति प्रकाशा सिद्धसंमता ।।३८।।
उपायाकेतनस्याहि स्वयमुत्पादितो गणः। करालकेन भूतानां तेषां नामानि मे शृणु ।।३९।।
भूता भूतगणैर्ज्ञेया आवेशकनिवेशकाः। * सुतारः कालभवनानिर्देशकविदेशकाः ।।
इत्येवमादिर्हि गणो भूमिगोजरकः स्मृतः ।।४०।।
विज्ञेय इह लोकेऽस्मिन्भूतानां भूतनायकः। ये तूत्कृष्टा भवन्त्येषामम्बरान्तरचारिणान् ।।
वृक्षाग्रमात्रमाकाशं ते चरन्ति न संशयः ।।४१।।

गण लोक में उत्पन्न हुए, जो विद्याधरों की चेष्टा के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए थे। उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने ही अश्व मुखधारी जिन किन्नरों को उत्पन्न किया, उन्हें सुनिये। समुद्रसेन, कालिन्द, महानेत्र, महाबल, सुवर्णघोष, सुग्रीव, पराक्रमी महाघोष आदि महात्मा किन्नरों के गण हैं, जो अश्वमुखधारी नाम से प्रसिद्ध हैं, विद्वान् लोग इन किन्नरों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ।।२६-३३।। हे शांशपायन आदि प्रमुख ऋषिगण! उन्हीं महात्मा विक्रान्त के संयोग से मनुष्यमुखधारी किन्नरों की भी उत्पत्ति हुई। जिनके नाम हरिषेण, सुषेण, बलवान् वारिषेण, रुद्रदत्त, इन्द्रदत्त, चन्द्रद्रुम, महाद्रुम, विन्दु, और विन्दुसार-ये चन्द्रवंशीय किन्नर हैं, ये सुन्दर एवं श्रेष्ठ किन्नरगण लोक में प्रसिद्ध हैं ।।३४-३६।। हे द्विजवर्यवृन्द! नृत्य एवं गीत में प्रवीण इन महात्मा किन्नरों के गण सैकड़ों की संख्या में उत्पन्न हुए। यक्षोपशान्त (?) यक्षगण लौहेय नाम से प्रसिद्ध हुए। सुन्दरी सुरविन्दा नामक कन्या, जो सिद्धों की सम्माननीय एवं प्रकाशयुक्त थी। करालक ने उपायाकेतन (?) नामक भूतों के गणों को स्वयं उत्पन्न किया था, उनके नामों को मुझसे सुनिये। वे भूतगण आवेशक, निवेशक, सुतार, कालभवन, निर्देशक और विदेशक आदि नामों से पृथ्वी पर दिखायी पड़नेवाले माने जाते हैं। इन आकाश के मध्य में विचरण करनेवाले भूतगणों में जो श्रेष्ठ होते हैं, उन्हें इस लोक में भूतनायक नाम से जानना चाहिए, वे वृक्षों के शिखर पर्यन्त आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं-इसमें सन्देह नहीं ।।३७-४१।। इस प्रसङ्ग में प्रायः देवताओं

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

तत्रेमे देवगन्धर्वाः प्रायेण कथिता मया। देवोपस्थाननिरता विज्ञेयास्ते यशस्विनः ।।४२।।
नारायणं सुरगुरुं विरजं पुष्करेक्षणम्। हिरण्यगर्भं च तथा चतुर्वक्त्रं स्वयंभुवम् ।।४३।।
शंकरं च महादेवमीशानं च जगत्प्रभुम्। इन्द्रपूर्वास्तथाऽऽदित्यान्रुद्रांश्च वसुभिः सह ।।४४।।
उपतस्थुः सगन्धर्वा नृत्यगीतविशारदाः। त्रिदशाः सर्वलोकस्था निपुणा गीतवादिनः ।।४५।।
हंसो ज्येष्ठः कनिष्ठोऽन्यो मध्यमौ च हहा हुहुः। चतुर्थो धिषणश्चैव ततो वासिरुचिस्तथा ।।४६।।
षष्ठस्तु तुम्बुरुस्तेषां ततो विश्वावसुः स्मृतः। इमाश्चाप्सरसो दिव्या विहिताः पुण्यलक्षणाः ।।४७।।
सुषुवेऽष्टौ महाभागा वरिष्ठा देवपूजिताः। अनवद्यामनवशामन्वतां मदनप्रियाम् ।।
अरूपां सुभगां भासीमरिष्टाऽष्टौ व्यजायत ।।४८।।
मनोवती सुकेशा च तुम्बुरोस्तु सुते उभे। पञ्चचूडास्त्विमा दिव्या दैविक्योऽप्सरसो दश ।।४९।।
मेनका सहजन्या च पर्णिनी पुञ्जिकस्थला। घृतस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचीत्यपि ।।
प्रम्लोचेत्यभित्रिख्याताऽनुम्लोचन्ती तथैव च ।।५०।।
अनादिनिधनस्याथ जज्ञे नारायणस्य या। उरोः सर्वानवद्याङ्गी उर्वश्येकादशी स्मृता ।।५१।।
मेनस्य मेनका कन्या ब्रह्मणो हृष्टचेतसः। सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यो महायोगाश्च ताः स्मृताः ।।५२।।

के गन्धर्वों का विवरण मैं कह चुका, उन देवगन्धर्वों को परमयशस्वी एवं देवताओं की पूजा में सर्वदा रत रहनेवाला समझिये। नृत्य एवं गीत में सुनिपुण, सभी लोकों में निवास करनेवाले, व्यवहारकुशल देवगण इन गन्धर्वों के साथ सुरगुरु, कमलनेत्र, सत्त्वगुणमय भगवान् नारायण, स्वयं उत्पन्न होनेवाले चतुर्मुख हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, चराचर जगत् के प्रभु एवं कल्याणकर्त्ता ईशान महादेव, इन्द्र, आदित्यगण, रुद्रगण एवं वसुगण—इन सबकी उपासना करते थे। महाभाग्यशालिनी देवताओं द्वारा पूजित वरिष्ठा ने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनमें सबसे श्रेष्ठ का नाम हंस था, कनिष्ठ का नाम अन्य (?) था, हहा हूहू ये दोनों मँझले थे, धिषण चौथा था, इसके बाद वासिरुचि की उत्पत्ति हुई, इनमें तुम्बुरु छठवाँ पुत्र था, इसके बाद विश्वावसु नामक पुत्र हुआ। निम्नलिखित पुण्यलक्षणों से समन्वित दिव्य अप्सराएँ इनकी अर्धाङ्गिनी के रूप में थीं, जिनके नाम वरिष्ठा, अनवद्या, अनवशा, अन्वता, मदनप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी इन सबको अरिष्टा ने उत्पन्न किया ।।४२–४८।। तुम्बुरु की मनोवती और सुकेशा नामक दो पुत्रियाँ हुईं। इनके अतिरिक्त ये निम्नलिखित पंचचूड एवं दैविकी नाम से विख्यात दस दिव्यगुण युक्त स्वर्गीय अप्सराएँ हैं, जिनके नाम हैं मेनका, सहजन्या, पर्णिनी, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वची, प्रम्लोचा और अनुम्लोचन्ती। इन दसों दिव्य अप्सराओं के अतिरिक्त अनादिनिधन (जिनका कभी जन्म–मरण नहीं होता) भगवान् नारायण के ऊरुभाग से सभी अंगों से निर्दोष एवं अनुपम सुन्दरी उर्वशी नामक जो एक अप्सरा उत्पन्न हुई वह स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा कही जाती है। ब्रह्मज्ञानपरायण, प्रसन्नचित्त रहनेवाले मेन की कन्या मेनका थी—ये सभी अप्सराएँ ब्रह्मावादिनी एवं योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाली

गणा अप्सरसां ख्याताः पुण्यास्ते वै चतुर्दश । +आहूताः शोभयन्तश्च गणा ह्येते चतुर्दश ।।५३।।
ब्रह्मणो मानसाः कन्याः शोभयन्त्यो मनोः सुताः । वेगवन्तस्त्वरिष्टाया ऊर्जायाश्चाग्निसंभवा ।।५४।।
(×आयुष्मत्यश्च सूर्यस्य रश्मिजाताः सुभास्वराः । गर्भस्तेजश्च सोमस्य ज्ञेयास्ते कुरवः शुभाः ।।५५।।
यज्ञोत्पन्नाः शुभा नाम ऋक्सामान्यास्तु वह्नयः) । वारिजा ह्यमृतोत्पन्ना अमृता नामतः स्मृताः ।।५६।।
वायूत्पन्ना सुदा नाम भूमिजाता भवास्तु वै । विद्युतश्च रुचो नाम मृत्योः कन्याश्च भैरवाः ।।५७।।
शोभयन्त्यश्च कामस्य गणाः प्रोक्ताश्चतुर्दश । सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरगणै रूपातिशयनिर्मिताः ।।५८।।
धनुरूपा महाभागा दिव्या नारी तिलोत्तमा । ब्रह्मणश्चाग्निकुण्डाच्च देवनारी प्रभावती ।।
रूपयौवनसंपन्ना उत्पन्ना लोकविश्रुता ।।५९।।
वेदीतलसमुत्पन्ना चतुर्वक्त्रस्य धीमतः । नाम्ना वेदवती नाम सुरनारी महाप्रभा ।।६०।।
तथा यमस्य दुहिता रूपयौवनशालिनौ । वरहेमनिभा हेमा देवनारी सुलोचना ।।६१।।

कही जाती हैं ।।४९-५२।। उन अप्सराओं के चौदह पवित्र गण (समूह) प्रसिद्ध हैं। उन चौदह में से दो गणों के नाम (१) आहूत और (२) शोभयन्त हैं। (आहूत गण की अप्सराएँ) ब्रह्मा की मानस कन्याएँ हैं, शोभयन्त मनु की कन्याएँ हैं। (३) वेगवन्त नामक गण की अप्सराएँ अरिष्टा से उत्पन्न हुई हैं। ऊर्जा के संयोग से (४) अग्निसम्भव नामक गण की उत्पत्ति हुई। सूर्य की किरणों से उत्पन्न होनेवाली (५) आयुष्मती नामक अप्सराएँ अति प्रकाशमान शरीरवाली थीं। चन्द्रमा का तेज जो गर्भ में आहित हुआ, उससे कल्याणप्रदायिनी (६) कुरु नामक अप्सराओं को उत्पन्न हुआ समझिये। यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (७) भाग शुभा नामक हैं, ऋक् एवं साम से उत्पन्न होनेवाली अन्य अप्सराओं के गण (८) वह्नि नाम से प्रसिद्ध हुए। अमृत से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (९) वारिजा नाम से विख्यात हैं, उन्हें अमृत नाम से भी स्मरण किया जाता है ।।५३-५६।। वायु से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१०) सुदा नामक हैं, भूमि से उत्पन्न होनेवाली को (११) भवा नाम से जानते हैं। विद्युत् से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१२) रुचा नामक हैं, मृत्यु की कन्याएँ जो अप्सरा हुईं, उनकी (१३) भैरवा नाम से ख्याति हुई। काम की कन्याएँ जो अप्सरा हुईं, उन्हें (१४) शोभयन्ती नाम से जानते हैं—अप्सराओं के ये चौदह गण कहे जाते हैं। इन्द्र, विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों ने इन अप्सराओं को स्वरूप की अतिशयता प्रदान कर निर्मित किया है ।।५७-५८।। इन सब में महाभाग्यशालिनी सुर-नारी तिलोत्तमा परम सुन्दर कही जाती है। स्वरूप एवं यौवन से सुसमृद्ध लोकविख्यात देवनारी प्रभावती ब्रह्मा के अग्निकुण्ड से उत्पन्न कही जाती है। परमकान्तियुक्त सुरनारी वेदवती बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्मा जी के वेदी तल से उत्पन्न हुई। स्वरूप एवं यौवन से दोनों सुसम्पन्न हेमा नामक सुन्दरी जिसके शरीर की आभा तपाये हुए सुवर्ण के समान मनोहर थी एवं जिसकी आँखें अति सुन्दर थीं, यम की पुत्री थी। इस प्रकार की अनेक सहस्र तेजस्विनी अप्सराओं के समूह हुए, जो विविध देवताओं एवं

+ एतदर्धस्थानेऽयं ग्रन्थः-आहूताः शोभयन्त्यश्च वेगवत्यस्तथैवच। दुर्मयाश्च युवत्यश्च तथा भेकुरयः शुभाः। वह्नयोत्यमृतास्त्रेदा भुवश्च रुचयस्तथा। भैरवाः शोभयन्त्यश्च गणा ह्येते चतुर्दश' इति-ख. घ. पुस्तकयोः।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

इत्येते बहुसाहस्त्रं भास्वरा ह्यप्सरोगणाः । देवतानामृषीणां च पत्न्यस्ता मातरश्च ह ।।६२।।
सुगन्धाश्चम्पवर्णाश्च सर्वाश्चाप्सरसः समाः । संप्रयोगे तु कान्तेन माद्यन्ति मदिरां विना ।।
तासामाप्यायते स्पर्शादानन्दश्च विवर्धते ।।६३।।
(*पर्वते नारदे पूर्वं रेतः स्कन्नं प्रजापतेः । पर्वतस्तत्र संभूतो नारदश्चैव तावुभौ ।।६४।।
तयोर्यवीयसी चैव तृतीयाऽरुन्धती स्मृता । देवरुख्यो (?) सूर्यजन्म तस्मिन्नारदपर्वतौ) ।।६५।।
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणा गरुडश्च ह । षट्त्रिंशत्तु स्वसारश्च यवीयस्यस्तु ताः स्मृताः ।।६६।।
गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि सौपर्णेयाश्च पक्षिणः । हव्यवाहानि सर्वाणि दिक्षु संनिहितानि च ।।६७।।
कण्डूर्नागसहस्त्रं वै चराचरमजीजनत् । अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ।।
बहुधा नामधेयानां प्रायशस्तु निबोधत ।।६८।।
तेषां प्रधाननागाश्च शेषवासुकितक्षकाः । सकर्णीरश्च जम्भश्च अञ्जनो वामनस्तथा ।।६९।।
ऐरावतमहापद्मौ कम्बलाश्वतरावुभौ । ऐलपत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनंजयौ ।।७०।।
महाकर्णो महानीलो धृतराष्ट्रबलाहकौ । कुमारः पुष्पदन्तश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।।७१।।
शिलीमुखो दधिमुखः कालीयः शालिपिण्डकः । बिन्दुपादः पुण्डरीको नागश्चापूरणस्तथा ।।७२।।

ऋषियों की पत्नी एवं माता हुईं। ये सभी अप्सराएँ एक समान चम्पा के पुष्प की भाँति गौरवर्ण की एवं सुगन्धित शरीरवाली थीं, बिना मद्यपान किये ही ये अपने प्रियतम के सहवास में मदोन्मत्त की भाँति हो जाती हैं। इनके स्पर्श करने से प्रियजन सन्तुष्ट होकर आनन्द से विभोर हो उठते हैं ।।५९–६३।। प्राचीनकाल में नारद नामक पर्वत पर प्रजापति ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ, जिससे वहाँ नारद और पर्वत नाम के दो ऋषि उत्पन्न हुए। इन दोनों भाइयों की छोटी बहन अरुन्धती के नाम से स्मरण की जाती है, जो ब्रह्मा की तीसरी सन्तति के रूप में उत्पन्न हुई ।।६४$\frac{१}{२}$।। उसी पर्वत पर देवरुख्य (?) सूर्य नारद और पर्वत पर इन सब का जन्म हुआ था। विनता के वरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए। इन दोनों की सहोदरा छत्तीस छोटी बहनें भी कही जाती हैं। गायत्री आदि छन्द, पंख से उड़नेवाले समस्त पक्षीगण, विभिन्न दिशाओं में सन्निहित सभी हव्यवाहगण–ये सब भी विनता ही के गर्भ से प्रादुर्भूत हुए। कद्रू ने चलनेवाले एवं न चलनेवाले सहस्रों नागों को उत्पन्न किया। उन महात्मा आकाशगामी, अनेक सिरोंवाले नागों में से प्रायः कुछ के नामों को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।।६५–६८।। उनमें से प्रधान नाग जो थे, वे शेष, वासुकि, तक्षक, सकर्णी, जम्भ, अञ्जन, वामन, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, ऐलपत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महाकर्ण, महानील, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुमार, पुष्पदन्त, सुमुख, दुर्मुख, शिलीमुख, दधिमुख, कालीय, शालि–पिण्डक, बिन्दुपाद, पुण्डरीक, आपूरण, कपिल, अम्बरीष, धृतपाद,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

कपिलश्चाम्बरीषश्च धृतपादश्च कच्छपः। प्रह्लादः पद्मचित्रश्च गन्धर्वोऽथ मनस्विकः ।।७३।।
नहुषः खररोमा च मणिरित्येवमादयः। काद्रवेया मया ख्याताः खशायास्तु निबोधत ।।७४।।
खशा विजज्ञे पुत्रौ द्वौ विश्रुतौ पुरुषादकौ। ज्येष्ठं पश्चिमसंख्यायां पूर्वस्यां मनुजास्तथा ।।७५।।
विलोहितं विकर्णं च पूर्वं साऽऽजनयत्सुतम्। चतुर्भुजं, चतुष्पादं द्विमूर्धानं द्विधागतिम् ।।७६।।
सर्वाङ्गकेशं स्थूलाङ्गं तुङ्गनासं महोदरम्। स्थूलशीर्षं महाकर्णं मुञ्जकेशं मनोरथम् ।।७७।।
हस्त्योष्ठं दीर्घजङ्घं च अश्वदंष्ट्रं महाहनुम्। रक्तजिह्वं जटाक्षं च स्थूलास्यं दीर्घनासिकम् ।।७८।।
गुह्यकं शितिकर्णं च महानन्दं महामुखम्। एवंविधं खशा पुत्रं विजज्ञे साऽतिभीषणम् ।।७९।।
तस्यानुजं द्वितीयं तु खशा चैव व्यजायत। त्रिशीर्षं च त्रिपादं च त्रिहस्तं कृष्णलोचनम् ।।८०।।
ऊर्ध्वकेशं हरिच्छ्मश्रुं शिलासंहननं दृढम्। ह्रस्वकायं सुबाहुं च महाकायं महाबलम् ।।८१।।
आकर्णदारितास्यं च लम्बभ्रुं स्थूलनासिकम्। स्थूलोष्ठमष्टदंष्ट्रं च द्विजिह्वं शङ्कुकर्णकम् ।।८२।।
पिङ्गलोद्वृत्तनयनं जटिलं पिङ्गलं तथा। महाकर्णं महोरस्कं कटिहीनं कुशोदरम् ।।
नखिनं लोहितग्रीवं सा कनिष्ठं प्रसूयते ।।८३।।

कच्छप, प्रह्लाद, पद्मचित्र, गन्धर्व, मनस्विक, नहुष, खररोमा और मणि आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। कद्रू के पुत्रों का वर्णन तो मैं कर चुका, अब खशा के पुत्रों का विवरण सुनिये ।।६९–७४।। खशा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दो के दोनों पुरुषादक (मनुष्य का भक्षण करनेवाले) थे। पश्चिम संख्या में ज्येष्ठ और पूर्व संख्या में मनुजों की उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम खशा ने विलोहित, विकर्ण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो चतुर्भुज, चतुष्पाद, द्विमूर्धा, द्विधागति (दो प्रकार से चलनेवाला), सर्वाङ्गकेश (सभी अंगों में केश संयुक्त), स्थूलाङ्ग (मोटे अंगोंवाला), तुङ्गनास (ऊँची नासिकावाला), महोदर, स्थूलशीर्ष, महाकर्ण, मुञ्जकेश (मूँज की तरह पीले वर्ण के केशोंवाला), मनोरथ, हस्त्योष्ठ (हाथी के समान ओंठवाला), दीर्घजंघ, अश्वदंष्ट्र (घोड़ों के समान दाढ़ोंवाला), महाहनु (लम्बी दाढ़ीवाला), रक्तजिह्व, जटाक्ष, स्थूलास्य (मोटे मुखवाला), दीर्घनासिक, गुह्यक (बुरा शब्द करनेवाला), शितिकर्ण (काले या चितकबरे रंग के कानोंवाला), महानन्द एवं महामुख था। इस प्रकार के अति भयानक पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया ।।७५–७९।। इसके उपरान्त इसके सहोदर छोटे भाई को भी खशा ने उत्पन्न किया! जो त्रिशीर्ष (तीन शिरोंवाला), त्रिपाद, त्रिहस्त, कृष्णलोचन, ऊर्ध्वकेश, हरिच्छ्मश्रु (हरे वर्ण की दाढ़ीवाला) दृढ़ एवं शिलासंहनन (शिला के समान पुष्ट शरीरवाला), ह्रस्वकाय (छोटे कद का), सुबाहु, महाकाय, महाबलिष्ठ, कानपर्यन्त फटे हुए भयानक मुखवाला, लम्बी भौंहोंवाला, स्थूल नासिकावाला, स्थूल ओष्ठवाला, आठ दाढ़ोंवाला, दो जीभवाला, शंकु (कील) के समान कानोंवाला, पिंगल वर्ण के उठे हुए नेत्रोंवाला, जटाधारी, पीले शरीरवाला, महाकर्ण, महान् वक्षःस्थल, कटिरहित, कृश उदरयुत, नखधारी लालवर्ण के कंधोवाला था। ऐसे महाभीषण कनिष्ठ पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया ।।८०–८३।। ये दोनों पुत्र उत्पन्न होते ही अपने प्रमाण से बहुत

सद्यः प्रसूतमात्रौ तु विवृद्धौ च प्रमाणतः। उपभोगसमर्थाभ्यां शरीराभ्यामुपस्थितौ ।।
सद्योजातविवृद्धाङ्गौ मातरं पर्यभूषताम् ।।८४।।
ज्यायांस्तयोस्तु यः क्रूरो मातरं सोऽभ्यकर्षत। अब्रवीन्मातरायाहि भक्षार्थे क्षुधयार्दितः ।।८५।।
न्यषेधयत्पुनर्ह्येनं ज्यायांसं तु कनिष्ठकः। अब्रवीत्सोऽसकृत्तं वै रक्षेमां मातरं खशाम् ।।
बाहुभ्यां परिगृह्यैनं मातरं तां व्यमोचयत् ।।८६।।
एतस्मिन्नेव काले तु प्रादुर्भूतस्तयोः पिता। तौ दृष्ट्वा विकृताचारौ वसतां हीत्यभाषत ।।८७।।
तौ तु तं पितरं दृष्ट्वा बलवन्तौ त्वरान्वितौ। मातुरेव पुनश्चाङ्के प्रलपेतां स्वमायया ।।८८।।
अथाब्रवीदृषिर्भार्यामावाभ्यामुक्तवत्यसि। पूर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन तथैवाऽऽभ्यां व्यतिक्रमम् ।।८९।।
मातुलं भजते पुत्रः पितॄन्भजति कन्यका। यथाशीला भवेन्माता तथाशीलो भवेत्सुतः ।।९०।।
यद्वर्णा तु भवेद्भूमिस्तद्वर्णं सलिलं ध्रुवम्। मातॄणां शीलदोषेण तथा शीलगुणैः पुनः ।।
विभिन्नास्तु प्रजाः सर्वास्तथा ख्यातिवशेन च ।।९१।।
बलशीलादिभिस्तासामदितिर्धर्मतत्परा। *गन्धशीला दितिश्चैव प्रवाध्र्ययनशालिनी ।।
धर्मशीलादिभिश्चैव प्रबोधबलशालिनी ।।९२।।

अधिक बढ़ गये, और तुरन्त ही उपभोग में समर्थ शरीर से सम्पन्न होकर उपस्थित हुए। इस प्रकार अति शीघ्र लम्बे शरीर एवं अंगोंवाले उन दोनों ने अपनी माता को अलंकृत किया। इन दोनों पुत्रों में जो ज्येष्ठ था, वह बड़ी क्रूर प्रकृति का था। उसने अपनी माता को ही घसीटना प्रारम्भ किया और बोला, मातः! मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ, मेरे भक्षण के लिए तुम यहाँ आओ। अपने ज्येष्ठ भाई के इस दुर्व्यवहार को देखकर छोटे भाई ने निषेध किया, और अनेक बार कहा कि अरे, मेरी माता खशा को तू छोड़ दे। इस प्रकार की बातें करते हुए उसने अपनी दोनों बाहुओं से पकड़कर अपनी माता को छुड़ा दिया ।।८४-८६।। ठीक इसी अवसर पर उन दोनों के पिता (कश्यप) वहाँ उपस्थित हो गये, और उनकी यह करतूत देख बोले, हे दुराचारी पुत्रो! ठहरो! इस प्रकार उन दोनों बलवानों ने पिता को आया देख अपनी माया के बल से (अल्पकाय हो) शीघ्र ही माता की गोद में पुनः लिपट गये ।।८७-८८।। तब ऋषि अपनी पत्नी से बोले, 'हमें सबसे पहले यह सच-सच बतलाओ कि तुम्हारे इन दोनों पुत्रों ने तुमसे क्या दुर्व्यवहार अथवा कैसी अनीतिपूर्ण बातें की हैं, और तुमने इन्हें क्या उत्तर दिया है।' पुत्र अपने मामा के स्वभाव एवं गुणों का अनुसरण करता है, कन्या अपने पिता के स्वभाव एवं गुणादि को प्राप्त करती है, जिस प्रकार की माता होती है, उसका पुत्र भी उसी प्रकार का होता है, क्योंकि जैसा पृथ्वी का रंग होता है उस पर रहनेवाला जल निश्चय ही उसी रंग का होता है। माता के शील-सदाचारगत अवगुणों के तथा गुणों के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार की सन्ततियाँ उत्पन्न होती हैं, प्रशंसा के वश होकर भी लोगों के स्वभाव में कुछ अन्तर हो जाता है ।।८९-९१।। हमारी सभी पत्नियों में अदिति बल, शील आदि सद्गुणों से युक्त तथा धर्म में सर्वदा निरत रहनेवाली है। गन्धयुक्त दिति भी नित्य तपस्या एवं अध्ययन आदि में निरत रहती है, धर्म शीलादि सद्गुणों से

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

गीतशीला तथाऽरिष्टा मायाशीला दनुः स्मृताः । विनता तु पुनर्देवी वैहायसगतिप्रिया ।।९३।।
तपोमयेन शीलेन सुरभिः समलंकृता । क्रोधशीला तथा कद्रूः क्रोधेनासुखशीलका ।।९४।।
दनायुषायाः शीलं वै वैरानुग्रहलक्षणम् । त्वं च देवि महाभागे क्रोधशीला मताऽसि मे ।।९५।।
इत्येतानि स्वशीलानि स्वभावालोकनान्नृणां । कर्मतो यत्नतो बुद्ध्या रूपतो बलतस्तथा ।।
क्षमातश्चैव भिन्नानि भावितार्थबलेन च ।।९६।।
रजःसत्त्वतमोवृत्तेर्विश्वरूपाः स्वभावतः । मातुलं त्वनुयातास्ते पुत्रका गुणवृत्तिभिः ।।९७।।
इत्येवमुक्त्वा भगवान्खशामप्रतिमां तदा । पुत्रावाहूय साम्ना वै चक्रे सोममभीतयः (?) ।।९८।।
ताभ्यां च यत्कृतं तस्यास्तदाचष्ट तदा खशा । मात्रा यथा समाख्यातं कर्म ताभ्यां पृथक्पृथक् ।।
तेन धात्वर्थयोगेन तत्त्वदर्शी चकार ह ।।९९।।
यक्ष इत्येष धातुर्वै खादने कृषणे च सः । यक्षयत्युक्तवान्यस्माश्वस्मायक्षो भवत्ययम् ।।१००।।
रक्ष इत्येष धातुर्यः पालने स विभाव्यते । उक्तवांश्चैव यस्मात्तु रक्ष मे मातरं खशाम् ।।
नाम्नाऽयं राक्षसस्तस्माद्भविष्यति तवाऽऽत्मजः ।।१०१।।
स तदा तद्विधान्दृष्ट्वा विज्ञाय तु तयोः पिता । तथा भाविनमर्थं च बुद्ध्वा मातृकृतं तयोः ।।१०२।।

उसका ज्ञान एवं पराक्रम—दोनों बहुत बढ़े-चढ़े हैं। अरिष्टा गीतों को भली-भाँति जानती है, दनु को लोग माया छल आदि की भी जानकार बतलाते हैं, देवी विनता आकाश में उड़ने को बहुत पसन्द करती है, सुरभि अपने तपोमय जीवन से बहुत अधिक शोभा पाती है, कद्रू बड़ी क्रोध करनेवाली है, उसे क्रोध करने में ही सुख मिलता है। दनायुषा का आचरण वैर एवं अनुग्रह दोनों प्रकार के विपरीत स्वभावों से संयुक्त है, अर्थात् समय-समय पर वह क्रोध एवं दया—दोनों का व्यवहार करती है, किन्तु हे देवि! महाभाग्यशालिनि! तू तो मेरी राय में अधिक क्रोध करनेवाली हो ।।९२-९५।। ये अपने आचरण मनुष्यों के विविध स्वभावों के देखने से, कर्म से, यत्न करने से, बुद्धि से, रूप से, बल से, क्षमा से एवं भवितव्यता के वश होकर भिन्न हो जाते हैं, विश्व के प्राणियों के स्वभाव राजसिक, सात्त्विक एवं तामसिक प्रकृति के होते हैं। तेरे पुत्रगण गुणों एवं आचरणों में अपने मामा के अनुगामी हैं।' भगवान् कश्यप ने अनुपम सुन्दरी खशा से इस प्रकार की बातें कर सान्त्वना भरे स्वर से दोनों पुत्रों को बुलाया और उन्हें भयरहित किया (?) तदनन्तर खशा ने अपने साथ उन दोनों पुत्रों ने जैसा व्यवहार किया था, सब कह सुनाया। माता ने उनके व्यवहारों को पृथक्-पृथक् जैसा बतलाया उसी के अनुरूप धातु के अर्थ का आश्रय लेकर तत्त्वदर्शी कश्यप ने उनका नामकरण किया ।।९६-९९।। 'यक्ष' यह धातु भक्षण करने तथा कर्षण (खींचने) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यतः इस (ज्येष्ठ पुत्र) ने यक्षयति (भक्षण करता है अथवा खींचता है) का उच्चारण किया था अतएव यह यक्ष के नाम से विख्यात हो। 'रक्ष' यह जो धातु है वह पालन करने के अर्थ में प्रयुक्त एवं प्रसिद्ध है, यतः तुम्हारे दूसरे पुत्र ने 'मेरी माता खशा की रक्षा करो, ऐसा कहा था, अतः इसका नाम राक्षस होगा।' इस प्रकार उन दोनों बालकों के पिता कश्यप ने उस समय नामकरण करने के बाद उन्हें भूखा जान, माता के साथ किये गये उनके व्यवहारों को सोच-समझकर एवं भवितव्यता को वैसी ही जानकर

तावुभौ क्षुधितौ दृष्ट्वा विस्मितः परिमृग्य च। तयोः प्रादिशदाहारं प्रजापतिरसृग्वसे ।।१०३।।
पिता तौ क्षुधितौ दृष्ट्वा वरं चेमं तयोर्ददौ। युवयोर्हस्तसंस्पर्शो नक्तमेव तु सर्वशः ।।१०४।।
नक्ताहारविहारौ च दिवास्वप्नोपभोगिनौ। नक्तं चैव बलीयांसौ दिवास्वप्नावुभौ युवाम् ।।१०५।।
मातरं रक्षतं चैव धर्मश्चैवानुशिष्यताम्। इत्युक्त्वा कश्यपः पुत्रौ तत्रैवान्तरधीयत ।।१०६।।
गते पितरि तौ वीरौ निसर्गादेव दारुणौ। विपर्ययेण वर्तन्तौ किंभक्षौ प्राणिहिंसकौ ।।१०७।।
महाबलौ महासत्त्वौ महाकायौ दुरासदौ। मायाविनौ च दृश्यौ तावन्तर्धानगतावुभौ ।।१०८।।
तौ कामरूपिणौ घोरौ विकृतिज्ञौ स्वभावतः। रूपानुरूपैराहारैः प्रभवेतामुभावपि ।।१०९।।
देवासुरानृषीश्चैव गन्धर्वान्किंनरानपि। पिशाचांश्च मनुष्यांश्च पन्नगान्पक्षिणः पशून् ।।११०।।
भक्षार्थमपि लिप्सन्तौ सर्वतस्तौ निशाचरौ। इन्द्रेण तु वरौ चैव धृतौ दत्त्वा त्ववध्यताम् ।।१११।।
यक्षस्तु न कदाचिद्वै निशीथे ह्येककश्चिरम्। आहारं स परीप्सन्वै शब्देनानुचचार ह ।।११२।।
आससाद पिशाचौ द्वौ जनुचण्डौ च तावुभौ। पिङ्गाक्षावूर्ध्वरोमाणौ वृत्ताक्षौ तु सुदारुणौ ।।११३।।

तदनुकूल कार्य किया ।।१००-१०२।। उन दोनों को क्षुधा से पीड़ित देख उनकी मनोभावनाओं का पता पाकर प्रजापति कश्यप जी परम विस्मित हुए और आहार के लिए रक्त और चर्बी को भक्षण करने का उन्हें आदेश दिया। इसके अतिरिक्त पिता (कश्यप) ने उन्हें बहुत क्षुधा पीड़ित देख यह वरदान भी दिया कि रात्रि के समय तुम दोनों के हाथों में सभी वस्तुओं का स्पर्श हो सकेगा, अर्थात् रात्रि में ही तुम्हें सब वस्तुएँ मिल सकती हैं। तुम दोनों रात में आहार-विहार करनेवाले होगे, दिन भर शयन करोगे, रात में तुम दोनों बहुत बलवान् हो जाओगे और दिन भर सोते रहोगे। अब से माता की दोनों मिलकर रक्षा करो और धर्म की मर्यादा का पालन करो, धर्म का अनुशासन मानो।' पुत्रों से ऐसी बातें कर कश्यप जी वहीं पर अन्तर्हित हो गये ।।१०३-१०६।। पिता के चले जाने पर स्वभाव से ही दारुण प्रकृतिवाले उन दोनों महावीरों ने प्राणियों की हिंसा में तत्पर रहकर कुत्सित एवं अखाद्य वस्तुओं का भोजन करना प्रारम्भ किया और पिता ने जिस प्रकार धर्म के अनुशासन में रहकर जीवनयापन का उपदेश किया था ठीक उसके विपरीत आचरण करना प्रारम्भ किया। वे दोनों महाबलवान् थे, महान् पराक्रमी थे, उनके शरीर विशाल थे, कठिनाई से उन्हें कोई अपने वश में कर सकता था, इतने मायावी थे कि एक क्षण यदि दिखायी पड़ते थे तो दूसरे ही क्षण अन्तर्धान भी हो जाते थे। स्वभाव से ही क्रूर प्रकृतिवाले वे भीषण आकृति से युक्त तथा इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले थे, अपने भीषण आकार के अनुरूप आहार भी उनका बहुत अधिक और भीषण था। देवताओं, असुरों, ऋषियों, गन्धर्वों, किन्नरों, पिशाचों, मनुष्यों, सर्पों, पक्षियों और पशुओं को खाने के लिए वे जहाँ कहीं पाते थे पकड़ने की इच्छा करते थे। इस प्रकार एक बार उन निशाचरों ने खाने के लिए इन्द्र को पकड़ा और उनको न मारकर दो वरदान प्राप्त किया ।।१०७-१११।। कभी एक बार यक्ष खोजते समय रात में अकेले थोड़ी देर तक घूमता रहा। कुछ देर के बाद उसे शब्द सुनायी पड़े और वह उस शब्द के पीछे-पीछे चला। आगे चलकर उसने दो प्रचण्ड जानुवाले पिशाचों को देखा, जो पीली आँखोंवाले थे, जिनके रोम ऊपर की ओर खड़े थे, आँखें गोलाकार थीं, और देखने में परम भयानक लग रहे थे। वे रक्त, मांस और चर्बी का आहार करते

अत्तृङ्मांसवसाहारौ पुरुषादौ महाबलौ । कन्याभ्यां सहितौ तौ तु ताभ्यां प्रियचिकीर्षया ।।११४।।
द्वे कन्ये कामरूपिण्यौ तदाचारे च ते शुभे । आहारार्थमटन्तौ तौ कन्याभ्यां सहितावुभौ ।।११५।।
तेऽपश्यन्राक्षसं तत्र कामरूपं महाबलम् । सहसा संनिपाते तु दृष्ट्वा चैव परस्परम् ।।११६।।
रक्षमाणौ ततोऽन्योन्यं परस्परजिघृक्षवः । पितरावूचतुः कन्ये युवामानयतं द्रुतम् ।।११७।।
जीवग्राहे विगृह्यैनं विस्फुरन्तं पदे पदे । ततः समभिसृत्यैनं कन्ये जगृहतुस्तदा ।।
गृहीत्वा हस्तयोस्ताभ्यामानीते पितृसंसदि ।।११८।।
ताभ्यां करे गृहीतं तं पिशाचावथ राक्षसम् । पृच्छतां कोऽसि कस्य त्वं स च सर्वमभाषत ।।११९।।
तस्य कर्माभिविज्ञातं ज्ञात्वा तौ राक्षसर्षभौ । अजस्य खण्डं तस्यैते प्रत्यपादयतां सुते ।।१२०।।
तौ तुष्टौ कर्मणा तस्य कन्ये द्वे ददतुस्तु ते ।।१२१।।
पैशाचेन विवाहेन सुदत्या बुद्धवाहनः । अजः खण्डश्च ताभ्यां तौ तदाश्रावयतां धनम् ।।१२२।।
इयं ब्रह्मधना नाम मम कन्या ह्यलोमिका । ब्रह्मसत्त्वधनाहारा इति खण्डोऽभ्यभाषत ।।१२३।।
इयं जन्तुधना नाम कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी । जन्तवोऽस्या धनाहारास्तावश्रावयतां धनम् ।।१२४।।
सर्वाङ्गकेशी नाम्ना च कन्या जन्तुधना तथा । अकर्णान्ताऽप्यरोमा च कन्या ब्रह्मधना तु या ।।१२५।।

थे, मनुष्यों को खा जाते थे। उन महाबलवानों के साथ दो कन्याएँ थीं। वे कन्याएँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थीं और वे दोनों भी उन पिशाचों के समान आचरण करनेवाली थीं किन्तु उनका स्वरूप मनोरमा था। उन दोनों कन्याओं के साथ वे पिशाच आहार के लिए रात में घूम रहे थे ।।११२–११५।। उन सबों ने वहाँ महाबलवान् एवं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस को देखा। एकाएक एक–दूसरे को आमने–सामने देखकर वे पिशाचगण और राक्षस अपनी–अपनी जान बचाने की चिन्ता में लगे और एक–दूसरे को पकड़ना भी चाहा। इसी बीच दोनों पिता अपनी–अपनी कन्याओं से बोले–तुम दोनों शीघ्र इसे जीते जी पकड़ लाओ, जो पग–पग पर फड़कते हुए चल रहा है। पिता के कथनानुसार उन दोनों कन्याओं ने समीप जाकर उसको (राक्षस को) पकड़ लिया और हाथ से पकड़कर पिता की सभा में लाकर उपस्थित किया। कन्याओं द्वारा हाथ में पकड़े हुए राक्षस से उन दोनों पिशाचों ने कहा, बोलो तुम कौन हो ? किसके (पुत्र) हो, राक्षस ने सब बातें बतलायीं ।।११६–११९।। उसके कार्य एवं विचारों को सुनकर उन बलवान् अज और खण्ड (?) नामक पिशाचों ने सन्तुष्ट होकर दोनों कन्याओं को उसे सौंप दिया ।।१२०–१२१।। पैशाचिक विवाह विधि के अनुसार उस सुन्दर दाँतवाली कन्या का विवाह बुद्धवाहन (?) अज और खण्ड ने उसके साथ सम्पन्न किया और पुत्री के गुण, स्वभाव एवं धन का परिचय स्वयं सुनाया। खण्ड ने कहा, यह मेरी ब्रह्मधना नाम कन्या है, इसके शरीर में रोम नहीं है, यह सात्त्विक उपायों द्वारा अर्जित किये धन का आहार करती है, और ब्रह्म की आराधना में तत्पर रहती है। और यह दूसरी जन्तुधना नाम की सर्वांग सुन्दरी कन्या है, जन्तुओं का यह आहार करती है, इस प्रकार उन दोनों ने कन्याओं के धन का परिचय कराया और आगे कहा कि यह दूसरी जन्तुधना नाम की कन्या जो है इसके समस्त

ब्रह्मधनं प्रसूता सा तत्त्वलां चैव कन्यका । एवं पिशाचकन्ये ते मिथुने द्वे प्रसूयताम् ।।
तयोः प्रजाविसर्गं च ब्रुवतो मे निबोधत ।।१२६।।
हेतृप्रहेतृरुग्रश्च (?) पौरुषेयो वधस्तथा । विस्फूर्जिश्चैव वातश्च आपो व्याघ्रस्थैव च ।।१२७।।
सर्पश्च राक्षसा ह्येते यातुधानात्मजा दश । सूर्यस्यानुचरा ह्येते सह तेन भ्रमन्ति च ।।१२८।।
हेतुपुत्रस्तथा लङ्कुर्लङ्कोर्द्वाविव चात्मजौ । माल्यवांश्च सुमाली च प्रहेतृतनयाञ्शृणु ।।
प्रहेतृतनयः श्रीमान्पुलोमा नामविश्रुतः ।।१२९।।
वधपुत्रौ दुराचारौ विघ्नश्च शमनश्च ह । विद्युत्पुत्रो दुराचारो रुमनो नाम राक्षसः ।।
स्फूर्जपुत्रा निकुम्भश्च क्रूरो वै ब्रह्मराक्षसः । वातपुत्रौ विरागस्तु आपपुत्रस्तु जम्बुकः ।।१३०।।
व्याघ्रपुत्रो निरानन्दो जन्तूनां विघ्नकारकः । इत्येते वै पराक्रान्ताः क्रूराः सर्वे तु राक्षसाः ।।१३१।।
कीर्तिता यातुधानास्तु ब्रह्मधानान्निबोधत । यज्ञः पिता धुनिः क्षेमो ब्रह्मा पापोऽथ यज्ञहा ।।१३२।।
स्वाकोटकः कलिः सर्पो ब्रह्मधानात्मजा दश । स्वसारो ब्रह्मराक्षस्यस्तेषां चेमाः सुदारुणाः ।।१३३।।
रक्तकर्णा महाजिह्वाऽक्षया चैवोपहारिणी । एतेषामन्वये जाताः पृथिव्यां ब्रह्मराक्षसाः ।।१३४।।
श्लेष्मातकतरुष्वेते प्रायशस्तु कृतालयाः । इत्येते राक्षसाः क्रान्ता यक्षस्यापि निबोधत ।।१३५।।

अंगों में बाल हैं, और ब्रह्मधना नाम की जो कन्या है, उनके कान के ऊपर तक रोम हैं, शेष अंगों में रोम नहीं हैं। उस ब्रह्मधना ने ब्रह्मधन नामक पुत्र और तत्त्वला नाम की कन्या को जन्म दिया। इस प्रकार उन दोनों पिशाच कन्याओं ने दो-दो सन्ततियाँ उत्पन्न कीं। अब उनके द्वारा होनेवाली प्रजाओं (सन्तानों) का सृष्टि-क्रम सुनिये, मैं कह रहा हूँ ।।१२२–१२६।। हेतृ, प्रहेतृ, उग्र, पौरुषेय, वध, विस्फूर्जित, वात, आप, व्याघ्र और सर्प–ये दस राक्षस यातुधान के आत्मज और सूर्य के अनुचर हैं, सूर्य के साथ ही ये भी भ्रमण करते हैं। इनमें हेतृ का पुत्र लंकु हुआ। लंकु के माल्यवान् और सुमाली नामक दो पुत्र हुए। अब प्रहेतृ के पुत्रों को सुनिये, उस प्रहेतृ का पुत्र पुलोमा हुआ जो अपने समय में परम विख्यात था ।।१२७–१२९।। वध के दो दुराचारी पुत्र विघ्न और शमन थे। विद्युत् का पुत्र परम दुराचारी रुमन नामक राक्षस हुआ। स्फूर्ज का पुत्र निकुम्भ था जो उग्र प्रकृतिवाला एवं ब्रह्मराक्षस था, वात का पुत्र विराग और आप का जम्बुक हुआ। व्याघ्र का पुत्र निरानंद नामक हुआ, जो जन्तुओं को विघ्न पहुँचानेवाला था। ये सब-के-सब परम पराक्रमशील राक्षस क्रूर प्रकृति के थे। यातुधानों का वर्णन तो मैं कर चुका, अब ब्रह्मधान के पुत्रों को सुनिये। यज्ञ, पिता, धुनि, क्षेम, ब्रह्मा, पाप, यज्ञहा, स्वाकोटक, कलि और सर्प–ये दस ब्रह्मधान के पुत्र हैं ।।१३०–१३२$\frac{१}{२}$।। उन दसों की बहनें ब्रह्मराक्षसी थीं, जिनमें ये निम्नलिखित परम दारुण स्वभाववाली थीं, रक्तकर्णा, महाजिह्वा, अक्षया और उपहारिणी–इन ब्रह्मराक्षसियों के गर्भ से समस्त पृथ्वी पर निवास करनेवाले ब्रह्मराक्षसों के जन्म हुए। ये ब्रह्मराक्षसगण श्लेष्मातक (लसोढ़े) के वृक्षों पर प्रायः आश्रय करते हैं। इन राक्षस के पुत्रों की चर्चा की जा चुकी, अब यक्ष के पुत्रों को सुनिये ।।१३३–१३५।। यक्ष

चकमेऽप्सरसं यक्षः पञ्चस्थूलां क्रतुस्थलीम् । तां लिप्सुश्चिन्तयानश्च नन्दनं स चचार ह ।।१३६।।
वैभ्राजं सुरभिं चैव तथा चैत्ररथं च यत् । दृष्टवान्नन्दने तस्मिन्नप्सरोभिः सहासतीम् ।।१३७।।
नोपायं विन्दते तत्र तस्या लाभाय चिन्तयन् । दूषितः स्वेन रूपेण कर्मणा तेन दूषितः ।।१३८।।
ममोद्विजन्ते भूतानि भयावृत्तस्य सर्वशः । तत्कथं नाम चार्वङ्गी प्राप्नुयामहमङ्गनाम् ।।१३९।।
दृष्टोपायं ततः सोऽथ शीघ्रकारी व्यवर्तत । कृत्वा रूपं वसुरुचेर्गन्धर्वस्य तु गुह्यकः ।।
ततः सोऽप्सरसां मध्ये तां जग्राह क्रतुस्थलीम् ।।१४०।।
बुद्ध्वा वसुरुचिं तं सा भावनैवाभ्यवर्तत । संवृतः स तया सार्धं दृश्यमानोऽप्सरोगणैः ।।१४१।।
तत्र संसिद्धकरणः सद्यो जातः सुतोऽस्य वै । परिणाहोच्छ्रयैर्युक्तः सद्यो वृद्धो ज्वलञ्श्रिया ।।१४२।।
राजाऽहमिति नाभिर्हि पितरं सोऽभ्यभाषत । तवात्र जाते न भीतिः पिता तं प्रत्युवाच ह ।।१४३।।
मात्राऽनुरूपो रूपेण पितुर्वीर्येण जायते । जाते स तस्मिन्हर्षेण स्वरूपं प्रत्यपद्यत ।।१४४।।
स्वभावं प्रतिपद्यन्ते बृहन्तो यक्षराक्षसाः । म्रियमाणाः प्रसुप्ताश्च क्रुद्धा भीताः प्रहर्षिताः ।।१४५।।
ततोऽब्रवीदप्सरसं स्मयमानः स गुह्यकः । गृहं मे गच्छ सुश्रोणि सपुत्रा वरवर्णिनी ।।१४६।।

ने अपने मन में क्रतुस्थली नामक पाँच अवयवों से स्थूल अंगोंवाली अप्सरा को पाने की कामना की। उसको प्राप्त करने की चिन्ता में वह नन्दनवन में विचरण करता रहा। इसके अतिरिक्त सुन्दर वैभ्राज (?) और चैत्ररथ नामक वनों में भी वह चक्कर लगाता रहा। अन्ततः नन्दनवन में अन्यान्य अप्सराओं के साथ विहार करती हुई उस असती को उसने देखा; किन्तु उसके प्राप्त करने का कोई उपाय चिन्तन करने पर बुद्धि में न आया। अपनी कुरूपता एवं कुकर्म से दूषित होने के कारण उसने अपने मन में सोचा कि भयभीत होने के कारण मेरे द्वारा सभी जीवगण उद्विग्न हो जाते हैं तो फिर इस सुन्दर अंगोंवाली को किस प्रकार मैं प्राप्त कर सकता हूँ? तदनन्तर उसने एक उपाय विचारा और शीघ्र उसका उपयोग किया, तदनुसार उसने वसुरुचि नामक गन्धर्व का मनोहर रूप बनाकर उन अप्सराओं के बीच से उस क्रतुस्थली को जाकर पकड़ा ।।१३६-१४०।। अप्सरा ने वसुरुचि को जानकर उस यक्ष के साथ पूर्ण मनोयोग एवं सद्भाव के साथ व्यवहार किया। फलतः सब अप्सराओं के सामने ही उसने क्रतुस्थली के साथ समागम किया, और उसी समय उसी स्थान पर उसके फलस्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो लम्बाई और चौड़ाई में विशाल था, जन्मते ही वह शोभा से युक्त हो गया। उत्पन्न होते ही उसने अपने पिता से कहा, 'मैं राजा हूँ, मेरा नाम नाभि है।' पिता ने पुत्र से कहा, तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हो जाने पर कोई डर नहीं है। वह यक्ष पुत्र नाभि स्वरूप में माता के समान सुन्दर और पराक्रम में पिता के समान वीर हुआ। ऐसे पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वह यक्ष अपने स्वाभाविक वेश में आ गया ।।१४१-१४४।। प्रायः बड़े-बड़े यक्ष और राक्षस मृत्यु के समान घोर संकट पड़ने पर, सो जाने पर, क्रुद्ध होने पर, भयभीत होने पर तथा अति प्रसन्नता के अवसर पर अपने स्वाभाविक स्वरूप पर आ जाते हैं। इस स्वाभाविक नियम के अनुसार वह यक्ष उस क्रतुस्थली अप्सरा को विस्मित करता हुआ बोला, हे सुन्दर कटिवाली! सुन्दरी! अब अपने पुत्र को साथ लेकर मेरे घर चलो। यक्ष के ऐसा कहने पर एवं सहसा अपने वास्तविक यक्ष रूप में उपस्थित देखकर सभी अप्सराएँ क्रोध के मारे भ्रान्त

इत्युक्ता सहसा तं च दृष्ट्वा स्वं रूपमास्थितम् । विभ्रान्ताः प्राद्रवन्भीताः क्रोधमानाप्सरोगणाः ।।१४७।।
गच्छन्तीरन्वगच्छद्या पुत्रस्तां सान्त्वयन्गिरा । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये तां नीत्वा स न्यवर्तत ।।१४८।।
तां च दृष्ट्वा समुत्पत्तिं यक्षस्याप्सरसां गणाः । यक्षाणां त्वं जनित्रीति प्रोचुस्तां वै क्रतुस्थलीम् ।।१४९।।
जगाम स ह पुत्रेण ततो यक्षः स्वमालयम् । न्यग्रोधरोहिणं नाम गुह्यका यत्र शेरते ।।
तस्मिन्निवासो यक्षाणां न्यग्रोधः सर्वतः प्रियः ।।१५०।।
यक्षो रजतनाभस्तु गुह्यकानां पितामहः । अनुह्लादस्य दैत्यस्य भद्रामतिवरां सुताम् ।।
उपयेमे स भद्रायां यस्यां मणिवरो वशी ।।१५१।।
जज्ञे सा मणिभद्रं च शक्रतुल्यपराक्रमम् । तयोः पत्न्यौ भगिन्यौ तु क्रतुस्थल्यात्मजे शुभे ।।१५२।।
नाम्ना पुण्यजनी चैव तथा देवजनी च या । विजज्ञे मणिभद्रात्तु पुत्रान्पुण्यजनी शुभान् ।।१५३।।
सिद्धार्थं सूर्यतेजं च सुमन्तं नन्दनं तथा । कन्यकं यविकं चैव मणिदत्तं वसुं तथा ।।१५४।।
सर्वानुभूतं शङ्खं च पिङ्गाक्षं भीरुमेव च । तथा मन्दरशोभिं च पद्मं चन्द्रप्रभं तथा ।।१५५।।
मेघपूर्णं सुभद्रं च प्रद्योतं च महौजसम् । द्युतिमत्केतुमन्तौ च मित्रं मौलिसुदर्शनौ ।।१५६।।
चत्वारो विंशतिश्चैव पुत्राः पुण्यजनाः शुभाः । जज्ञिरे मणिभद्रस्य ते सर्वे पुण्यलक्षणाः ।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः ।।१५७।।

बुद्धि हो गयीं और भयभीत होकर भाग चलीं। भागती हुई अपनी सखियों के पीछे-पीछे क्रतुस्थली भी चली और उसके पुत्र ने वाणी से सान्त्वना देते हुए उसे गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूह में ले जाकर पहुँचाया। पहुँचाने के बाद स्वयं लौट आया ।।१४५-१४८।। अप्सराओं ने यक्ष द्वारा उसके गर्भ से पुत्रोत्पत्ति होते देखा था अतः उन्होंने एक स्वर से क्रतुस्थली से कहा कि तू यक्षों की माता है। तदनन्तर यक्ष पुत्र के साथ अपने घर को चला गया जहाँ बरगद के वृक्ष पर निवास करनेवाले यक्षगण शयन करते थे। बरगद के वृक्ष में यक्षों का निवास-स्थान है, यह बरगद का वृक्ष उन्हें सभी प्रकार से प्रिय है। यक्ष रजतनाभ गुह्यकों का पितामह था, उसने अनुह्लाद नामक दैत्य की परम सुन्दरी कन्या भद्रा के साथ अपना विवाह किया था, उस भद्रा में जितेन्द्रिय मणिवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ।।१४९-१५१।। भद्रा ने एक दूसरे पुत्र मणिभद्र को भी उत्पन्न किया, जो इन्द्र के समान पराक्रमी था। उन दोनों की पत्नी सगी बहनें थीं, जो क्रतुस्थली की दो पुत्रियाँ थीं, उनका नाम पुण्यजनी और देवजनी था। पुण्यजनी ने मणिभद्र के संयोग से जिन शुभाचारी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमन्त, नन्दन, कन्यक, यविक, मणिदत्त, वसु, सर्वानुभूत, शंख, पिंगाक्ष, भीरु, मन्दरशोभि, पद्म, चन्द्रप्रभ, मेघपूर्ण, सुभद्र, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान्, केतुमान्, मित्र, मौलि और सुदर्शन थे। ये चौबीस पुत्र सदाचारी और पुण्यात्मा थे। मणिप्रभ के संयोग से इन पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। इनके पुत्र-पौत्रादि जो यक्ष हुए वे भी पुण्यकार्य करनेवाले एवं सदाचारी थे ।।१५२-१५७।। देवजननी ने मणिवर के संयोग से

विजज्ञे देवजननी पुत्रान्मणिवरात्मजात्। पूर्णभद्रं हेमरथं मणिमन्नन्दिवर्धनी ।।१५८।।
कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं स्थूलकर्णं महाजयम्। श्वेतं च विपुलं चैव पुष्पवन्तं भयावहम् ।।१५९।।
पद्मवर्णं सुनेत्रं च पक्षं बालं बकं तथा। कुमुदं क्षेमकं चैव वर्धमानं तथा दमम् ।।१६०।।
पद्मनाभं वराङ्गं च सुवीरं विजयं कृतिम्। पूर्णमासं हिरण्याक्षं सुरूपं चैवमादयः ।।१६१।।
पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाः स्मृताः। सुरूपाश्च विरूपाश्च स्रग्विणः प्रियदर्शनाः ।।१६२।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।।१६३।।
खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाः कामरूपिणः। तेषां यथा प्रधानान्वै वर्ण्यमानान्निबोधत ।।१६४।।
लालाविः कुथनो भीमः सुमाली मधुरेव च। विस्फूर्जितो विद्युज्जिह्वो मातङ्गो धूम्रितस्तथा ।।१६५।।
चन्द्रार्कः सुकरो बुध्नः कपिलोमः प्रहासकः। क्रीडः परशुनाभश्च चक्राक्षश्च निशाचरः ।।१६६।।
त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुण्डकेशश्च राक्षसः। यक्षश्चाकम्पनश्चैव दुर्मुखश्च शिलीमुखः ।।१६७।।
इत्येते राक्षसवरा विक्रान्ता गणरूपिणः। सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः ।।१६८।।
सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम्। तासां च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः ।।१६९।।
आलम्बा उत्कचा कृष्णा निर्ऋता कपिला शिवा। केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः ।।१७०।।
ताभ्यो लोकामिषादश्च हन्तारो युद्धदुर्मदाः। उदीर्णा राक्षसगणा इमे उत्पादिताः शुभाः ।।१७१।।

जिन पुत्रों को जन्म दिया उनके नाम पूर्णभद्र, हेमरथ, मणिमत्, नन्दिवर्धन, कुस्तुम्बुरु, पिशङ्गाभ, स्थूलकर्ण, महाजय, श्वेत, विपुल, पुष्पवान्, भयावह, पद्मवर्ण, सुनेत्र, यक्ष, बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभ, वराङ्ग, सुवीर, विजय, कृति, पूर्णमास, हिरण्याक्ष, सुरूप आदि थे। मणिवर के ये पुत्रगण गुह्यक के नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये सब पुत्रगण सुन्दर स्वरूपवाले—कुछ कुरूप भी माला धारण करनेवाले तथा देखने में प्रिय लगनेवाले थे। इनके पुत्र-पौत्रादि की संख्या सैकड़ों से सहस्रों तक थी। खशा के अन्य पुत्रगण जो हुए वे इच्छानुसार रूप बदलनेवाले राक्षस थे, उनमें जो प्रधान-प्रधान थे, उनका वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये ।।१५८-१६४।। उनके नाम थे लालावि, कुथन, भीम, सुमाली, मधु, विस्फूर्जित, विद्युज्जिह्व, मातङ्ग, धूम्रित, चन्द्रार्क, सुकर, बुध्न, कपिलोम, प्रहासक, क्रीड, परशुनाभ, चक्राक्ष, निशाचर, त्रिशिरा, शतदंष्ट्र, राक्षस तुण्डकेश, यक्ष, अकम्पन, दुर्मुख और शिलीमुख ये सभी श्रेष्ठ राक्षस परम पराक्रमी तथा गणरूपी थे, अर्थात् उनमें से एक-एक राक्षस वीरता आदि में एक-एक समूह का सामना करने में समर्थ था। वे देवताओं के समान सभी लोकों में विचरण किया करते थे ।।१६५-१६८।। इनके अतिरिक्त सात अन्य कन्याएँ भी थीं, उन्हें क्रमानुसार सुनिये। साथ ही उन कन्याओं द्वारा जिन प्रजाओं की सृष्टि हुई, और उनसे जिन गणों की उत्पत्ति हुई, उसे भी सुनिये। उन कन्याओं के नाम आलम्बा, उत्कचा, कृष्णा, निर्ऋता, कपिला, शिवा और महाभाग्यशालिनी केशिनी थे, ये सात उक्त राक्षसों की बहनें कही जाती हैं ।।१६९-१७०।। उन्हीं कन्याओं द्वारा लोक में मांस खानेवाले जीवहिंसक, युद्ध में उत्कट पराक्रम दिखलानेवाले, महान् राक्षसगणों की उत्पत्ति हुई, इनमें से कुछ शुभ कार्य करनेवाले

आलम्बेयो गणः क्रूर उत्कचेयो गणस्तथा । तथा कार्ष्णेयशैवेया राक्षसा ह्युत्तमा गणाः ।।१७२।।
तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह । उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु ।।१७३।।
*उत्पादिता बलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । विक्रान्ताः शौर्यसंपन्ना नैर्ऋता देवराक्षसाः ।।
येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः ।।१७४।।
तेषां गणशतानेका उद्धतानां महात्मनाम् । प्रायेणानुचरन्त्येते शंकरं जगतः प्रभुम् ।।१७५।।
दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महाबलपराक्रमाः ।।१७६।।
कापिलेया महावीर्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः । कम्पनेन च यक्षेण केशिन्यास्ते परे जनाः ।।१७७।।
उत्पादिता बलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । केशिनीदुहितुश्चैव नीलायाः क्षुद्रमानसाः ।।१७८।।
आलम्बेयेन जनिता नैकाः सुरसिकेन हि । नैला इति समाख्याता दुर्जया घोरविक्रमाः ।।१७९।।
चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः । बहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषां वक्तुं न शक्यते ।।१८०।।
तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी । दुहिता स्वभावविकचा मन्दसत्त्वपराक्रमा ।।१८१।।
तस्या अपि विरूपेण नैर्ऋतेनेह च प्रजाः । उत्पादिताः सुरा(?)घोराः शृणु तांस्त्वनुपूर्वशः ।।१८२।।
दंष्ट्राकरालविकृता महाकर्णा महोदराः । हारका भीषकाश्चैव तथैव क्रामकाः परे ।।१८३।।

भी थे। आलम्बा से उत्पन्न होनेवाले आलम्बेय नामक राक्षसगण क्रूर प्रकृति के थे, उत्कचेय गण भी उसी प्रकार के क्रूरकर्मा थे। कार्ष्णेय और शैवेय नामक राक्षसगण उत्तम गुणवाले थे। इसी प्रकार महादेव जी के अनुचर गणेश्वरों के चर ने नैर्ऋत नामक प्रजाओं की सृष्टि की। उस बलवान् ने महान् यक्षों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो परम पराक्रमी, शौर्यसम्पन्न नैर्ऋत नाम से विख्यात हुए, उन्हें देवराक्षस कहते हैं। उन सबों का अधिपति विरूपक नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१७१-१७४।। नैर्ऋत नामक उद्धत स्वभाववाले उन महात्मा देवराक्षसों के सैकड़ों गण प्रायः जगत् स्वामी शंकर भगवान् के अनुचर हुए। महात्मा दैत्यराज कुम्भ ने महाबलवान्, महापराक्रमी, परम साहसी एवं विशालकाय कापिलेय नामक दैत्यों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो अपने पराक्रम से सचमुच महान् थे। बलवान् कम्पन नामक यक्ष के द्वारा केशिनी के गर्भ से दूसरे महाबलवान् यक्षों और राक्षसों की उत्पत्ति हुई, जो महान् थे। केशिनी की कन्या नीला के संयोग से आलम्बेय गण के सुरसिक नामक राक्षस के द्वारा अनेक क्षुद्र चित्तवाले राक्षसों का जन्म हुआ, जो नैल नाम से विख्यात हुए। ये नैल नामक राक्षसगण दुर्जेय और घोर पराक्रमी थे ।।१७५-१७९।। दैविक एवं लौकिक-दोनों प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न वे राक्षसगण सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल का भ्रमण करते थे। उनके वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का विस्तार बहुत अधिक है, अतः कहा नहीं जा सकता ।।१८०।। उस नीला की भी एक पुत्री थी, जिसका नाम विकचा राक्षसी था, स्वभाव से वह परम क्रूर और मध्यम पराक्रमवाली थी। उस विकचा के भी कुरूप निर्ऋत द्वारा अतिघोर स्वभाववाले सुरों (असुरों) की उत्पत्ति हुई, उनका क्रमानुसार वर्णन सुनिये। वे घोर असुरगण विकराल दाढ़ोंवाले, कुरूप, लम्बे

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

वैनकाश्च पिशाचाश्च वाहकाः प्राशकाः परे । भूमिराक्षसका ह्येते मन्दाः पुरुषविक्रमाः ।।१८४।।
चरन्त्यदृष्टपूर्वाश्च नानाकारा ह्यनेकशः । उत्कृष्टबलसत्त्वा ये ते च वै खेचराः स्मृताः ।।१८५।।
लक्षमात्रेण चाऽऽकाशं स्वल्पाः स्वल्पं चरन्ति वै । एतैर्व्याप्तमिमं लोकं शतशोऽथ सहस्रशः ।।१८६।।
भूमिराक्षसकैः सर्वैरनेकैः क्षुद्रराक्षसैः । नानाप्रकारैराक्रान्ता नानादेशाः समन्ततः ।।१८७।।
समासाभिहताश्चैव ह्यष्टो राक्षसमातरः । अष्टौ विभागा ह्येषां हि विख्याता अनुपूर्वशः ।।१८८।।
भद्रका निकराः केचिद्यज्ञनिष्पत्तिहेतुकाः (?)। सहस्रशतसंख्याता मर्त्यलोकविचारिणः ।।१८९।।
पूतना मातृसामान्यास्तथा भूतभयंकराः । बालानां मानुषे लोके ग्रहा वैमानहेतुकाः ।।१९०।।
स्कन्दग्रहादयश्चैव आपकास्त्रासकादयः । कौमारास्ते तु विज्ञेया बालानां ग्रहवृत्तयः ।।१९१।।
स्कन्दग्रहविशेषाणां मायिकानां तथैव च । पूतनानामभूतानां ये च लोकविनायकाः ।।१९२।।
सहस्रशतसंख्यानां मर्त्यलोकविचारिणाम् । एवं गणशतान्येव चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।।१९३।।
यक्षाः पुण्यजना नाम तथा गे केऽपि गुह्यकाः । यक्षा देवजनाश्चैव तथा पुण्यजनाश्च ये ।।१९४।।
गुह्यकानां च सर्वेषामगस्त्या ये च राक्षसाः । पौलस्त्या राक्षसा ये च विश्वामित्राश्च ये स्मृताः ।।१९५।।

कानोंवाले तथा विशाल पेटवाले थे, उनके नाम हारक, भीषक, क्रामक, वैनक, पिशाच, वाहक और प्राशक थे—ये सब भूमिराक्षस थे, मन्द स्वभाववाले इन राक्षसों का पराक्रम पुरुषों के समान था। ये विविध प्रकार के स्वरूप धारणकर इतने विकराल दिखलायी पड़ते थे जितने भीषण स्वरूप को कोई नहीं देख सका था। इन भूमिराक्षसों में जो अधिक बलवान् एवं पराक्रमी होते हैं वे आकाशगामी कहे जाते हैं ।।१८१–१८५।। ये क्षुद्र राक्षसगण देखने में अति लघुकाय होने पर भी थोड़ी दूर तक आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं। ये सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में इस लोक को छेंके हुए हैं। इन सब विविध प्रकार के भूमिराक्षसों और अन्यान्य क्षुद्र राक्षसों ने मिलकर चारों ओर से प्रायः सभी देशों को आक्रान्त कर लिया है। संक्षेप में इन सब क्षुद्र राक्षसों की आठ माताएँ हैं, और उसी के अनुरूप इनके आठ विभाग कहे जाते थे, जिन्हें क्रमानुसार कहा गया है ।।१८६–१८८।। इनमें से एक का नाम भद्रका और गण का नाम निकर है, जिनमें कुछ ज्ञानोत्पत्ति के कारण हैं (?) मर्त्यलोक के विचरण करनेवाले इस गण में सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में राक्षसगण विद्यमान हैं। दूसरी माता पूतना है, और गण का नाम मातृ सामान्य है, जो भयंकर भूत हैं। यह पूतना मानवलोक में बच्चों को पकड़नेवाली एवं कष्ट देकर बहुत परेशान करनेवाली है। स्कन्दग्रह आदि आपक, त्रासक आदि और कौमारगण इन सबको बालकों को ग्रहों के समान कष्ट देनेवाले जानने चाहिए। माया करनेवाले मायिक नामक ग्रहों, स्कन्द नामक ग्रहों तथा पूतना नामक अभूत (?) ग्रह-विशेष में से जो लोक में विविध विघ्नों के करनेवाले हैं, वे लाखों की संख्या में मर्त्यलोक में विचरण करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य भूतों एवं ग्रहों के सैकड़ों गण इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं ।।१८९–१९३।। पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष एवं देवजन नामक यक्ष—ये सभी गुह्यकों के अन्तर्गत हैं। अगस्त्य नामक जो राक्षसगण हैं, पौलस्त्य नामक जो राक्षसगण हैं, विश्वामित्र के गोत्र में जो राक्षसगण उत्पन्न हुए हैं, यक्षों एवं राक्षसों के वंश में उत्पन्न होनेवाले पौलस्त्य एवं अगस्त्य नामक जो यक्ष राक्षस हैं, उन सबों के राजा महाराज

यक्षाणां राक्षसानां च पौलस्त्यागस्तयश्च ये। तेषां राजा महाराजः कुबेरो ह्यलकाधिपः ॥१९६॥
यक्षा दृष्ट्वा पिबन्तीह नृणां मांसमसृग्वसाम्। रक्षांस्यनुप्रवेशेन पिशाचाः परिपीडनैः ॥१९७॥
सर्वलक्षणसंपन्नाः समक्षेत्राश्च दैवतैः। भास्वरा बलवन्तश्च ईश्वराः कामरूपिणः ॥१९८॥
अनाभिभाष्या विक्रान्ताः सर्वलोकनमस्कृताः। सूक्ष्मास्त्वौजस्विनो मेध्या वरदा यज्ञियाश्च ये ॥१९९॥
देवानां तुल्यधर्माणां ह्यसुराः सर्वशः स्मृताः। त्रिभिः पादैस्तु गन्धर्वा देवैर्हीनाः प्रभावतः ॥२००॥
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना वै सर्वगुह्यकाः। प्रभावतुल्या यक्षाणां विज्ञेयाः सर्वराक्षसाः ॥
ऐश्वर्यहीना यक्षेभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः ॥२०१॥
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च। धर्मैश्वर्येण बुद्ध्या च तपःश्रुतपराक्रमैः ॥२०२॥
देवासुरेभ्यो हीयन्ते त्रीन्पादान्वै परस्परम्। गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रो देवयोनयः ॥२०३॥

सूत उवाच

अतः शृणुत भद्रं वः प्रजाः क्रोधवशात्मकाः। क्रोधायां कन्यका जज्ञे द्वादश ह्यात्मसंभवाः ॥
या भार्याः पुलहस्याऽऽसन्नामतस्ता निबोधत ॥२०४॥
मृगी च मृगमन्दा च हरिभद्रा इरावती। भूता च कपिशा दंष्ट्रा निशा तिर्या तथैव च ॥
श्वेता चैव स्वरा चैव सुरसा चेति विश्रुताः ॥२०५॥

कुबेर हैं, जो अलका नामक नगरी के अधीश्वर हैं। ये यक्षगण केवल आँखों से देखकर मनुष्य के रक्त, मांस एवं चर्बी को पी जाते हैं, राक्षसगण शरीर के भीतर प्रवेश करके पी जाते हैं और पिशाचगण बुरी तरह पीड़ित करके पी जाते हैं। जो सभी प्रकार के लक्षणों से सम्पन्न एवं देवताओं के समान अधिकारी, तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यमय एवं इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले, अनुपम शक्तिशाली, विक्रमी, सभी लोकों द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करनेवाले, तेजस्वी, यज्ञादि के योग्य, वरदान देनेवाले, यज्ञपरायण एवं देवताओं के समान धर्मात्मा होते हैं, ये सब असुर नाम से स्मरण किये जाते हैं ॥१९४-१९९$\frac{१}{२}$॥ गन्धर्व लोग प्रभाव में देवताओं की अपेक्षा तीन पादों से (तीन चौथाई $\frac{३}{४}$) हीन होते हैं। सभी गुह्य (यक्ष) गन्धर्वों की अपेक्षा प्रभाव आदि में तीन पदों से हीन होते हैं, इन्हीं यक्षों के समान प्रभावशाली सब राक्षस होते हैं। इन यक्षों से गुण में तीन गुने हीन पिशाच होते हैं। इस प्रकार धन से, रूप से, आयु से, बल से, धर्म से, ऐश्वर्य से, बुद्धि से, तपस्या से, शस्त्र बल से एवं पराक्रम से गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच—ये चार देवयोनियों में उत्पन्न होनेवाले देवताओं और असुरों की अपेक्षा परस्पर हीन होते हैं ॥२००-२०३॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त आप लोग क्रोध के वश में रहनेवाली प्रजाओं का विवरण सुनिये, इससे आप लोगों का कल्याण होगा। क्रोधा में बारह स्वयं उत्पन्न होनेवाली कन्याएँ उत्पन्न हुईं और वे सब पुलह ऋषि की पत्नियाँ हुईं, उनके नाम सुनिये ॥२०४॥ मृगी, मृगमन्दा, हरिभद्रा, इरावती, भूता, कपिशा, दंष्ट्रा, निशा, तिर्या, श्वेता, स्वरा और सुरसा—नाम से विख्यात हैं। तिनमें से मृगी के पुत्र हरिण हुए, अन्यान्य मृग, शश (खरगोश), न्यंकु

मृग्यास्तु हरिणाः पुत्राः मृगाश्चान्याः शशस्तथा । न्यङ्कवः शरभा ये च रुरवः पृषताश्च ये ।।२०६।।
मृगराजा मृगमन्दाया गवयाश्चापरे तथा । महिषोष्ट्रवराहाश्च खड्गगौरमुखास्तथा ।।२०७।।
हरेस्तु हरयः पुत्रा गोलाङ्गूलतरक्षवः । वानराः किंनराश्चैव व्याघ्राः किंपुरुषास्तथा ।।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि इरावत्या निबोधत ।।२०८।।
* सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय तु भौवनः । हस्ताभ्यां परिगृह्याथ रथंतरमगायत ।।२०९।।
साम्ना प्रसूयमानेन सद्य एव गजोऽभवत् । स प्रागच्छदिरावत्यै पुत्रार्थे स तु भौवनः ।।२१०।।
इरावत्याः सुतो यस्मात्तस्मादैरावतः स्मृतः । देवराजोपवाह्यत्वात्प्रथमः स मतङ्गराट् ।।
शुभ्राभ्राभश्चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः ।।२११।।
अप्सुजस्यैकमूलस्य सुवर्णाभस्य हस्तिजः । षड्दन्तस्य हि भद्रस्य औपवाह्यश्च वै बलः ।।२१२।।
तस्य पुत्रोऽञ्जनश्चैव सुप्रतीकोऽथ वामनः । पद्मश्चैव चतुर्थोऽभूद्धस्तिनी चाभ्रमुस्तथा ।।२१३।।
दिग्गजांस्तांश्च चत्वा (तु) रः श्वेताऽजनयताऽऽशुगान् । भद्रं मृगं च मन्दं च संकीर्णं चतुरः सुतान् ।।२१४।।
संकीर्णोऽप्यञ्जनो यस्तु उपवाह्यो यमस्य तु । भद्रो यः सुप्रतीकस्तु हरितः स ह्यपांपतेः ।।२१५।।
पद्मो मन्दस्तु यो गौरो द्विपो ह्यैलविलस्य सः । मृगः श्यामस्तु यो हस्ती उपवाह्यः स पावकैः ।।२१६।।

(बारहसिंगा), शरभ, रुरु और पृषत् नामक पशु उसी से उत्पन्न हुए। मृगमन्दा के गर्भ से मृगराजों (सिंहों) की उत्पत्ति हुई, अन्यान्य गवय (नीलगाय), महिष, ऊँट, वराह, खड्ग (गैंडा) तथा गौरमुख नामक वन्य पशु भी उसी से उत्पन्न हुए ।।२०६–२०७।। हरि के गर्भ से बन्दरों की उत्पत्ति हुई तथा लङ्गूली बन्दर, तरक्षु (भेड़िया), अन्यान्य छोटी जातियों के बन्दर, किन्नर, बाघ, किंपुरुष आदि वन्यजीवों की भी उत्पत्ति उसी से हुई, इसके बाद इरावती के पुत्रों को सुनिये ।।२०८।। एक बार भौवन ने सूर्य के दो अण्ड कपालों को लाकर अपने दोनों हाथों से उसे पकड़कर रथन्तर का गान किया था, उस समय सामवेद के रथन्तर की स्तुति करते समय शीघ्र ही एक हस्ती प्रादुर्भूत हुआ। भौवन ने वैसे पुत्र की कामना से इरावती के साथ समागम किया था, यतः वह इरावती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था अतः ऐरावत नाम से प्रसिद्ध हुआ। देवराज इन्द्र के वाहन होने के कारण वह मतङ्गों का प्रथम राजा हुआ, वह ऐरावत श्वेत बादल के समान शुभ्र वर्ण का, चार दाँतोंवाला, अतिशय शोभासम्पन्न गजराज है।।२०९–२११।। एक ही मूल से उत्पन्न हुए, जल सम्भूत, छह दाँतोंवाले सुवर्ण के समान कान्तिमान्, भद्र नामक हस्ती पर सवार होनेवाला बल था, जो हस्तिज (?) था। उस ऐरावत के अञ्जन, सुप्रतीक, वामन और पद्म ये चार पुत्र थे, हस्तिनी का नाम अभ्रमु था। श्वेता ने उन चार दिग्गजों को उत्पन्न किया, जो अति शीघ्र गमन करनेवाले थे, उन चारों पुत्रों के नाम भद्र, मृग, मन्द और संकीर्ण थे। इनमें से संकीर्ण और अञ्जन–ये यमराज के वाहन हैं, भद्र और सुप्रतीक, जो कि हरित वर्ण का है, जल के स्वामी वरुण के वाहन हैं ।।२१२–२१५।। पद्म और मन्द जो कि गौर (श्वेत) वर्ण का है, ऐलविल (कुबेर) के हस्ती हैं। मृग

---

* इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके। एतदर्धस्थान इदमर्धं पवमाना तयोश्चापि प्रथिताः पुरुजः सुतौ' इति ख. घ. ङ. पुस्तकेषु।

पद्मोत्तरस्तु यः पद्मो गजो वै वरुणो गणः । उपलेपनमेषश्च तस्याष्टौ जज्ञिरे सुताः ।।२१७।।
उदग्रभावेनोपेता जायन्ते तस्य चान्वये । श्वेतबालनखाः पिङ्गा वर्ष्मवन्तो मतङ्गजाः ।।
मतङ्गजान्प्रवक्ष्यामि नागानन्यानपि क्रमात् ।।२१८।।
कपिलः पुण्डरौकश्च सुमनाभो रथान्तरः । जातौ नाम्ना सुतौ ताभ्यां सुप्रतिष्ठप्रमर्दनौ ।।२१९।।
शूलाः स्थूलाः शिरोदान्ताः शुद्धबालनखास्तथा । बलिनः शक्तिनश्चैव मृतास्त्वाकुलिका गजाः ।।२२०।।
पुष्पदन्तो बृहत्सामा षड्दन्तो दन्तपुष्पवान् । ताम्रवर्णी च तत्पुत्रः सहचारिविषाणितः ।।२२१।।
अन्वये चास्य जायन्ते लम्बोष्ठाश्चारुदर्शिनः । श्यामा सुदर्शनाश्चण्डा नानापीडायताननाः ।।२२२।।
वामदेवोऽञ्जनश्यामः साम्नो जज्ञेऽथ वामनः । भार्या चैवाङ्गदा तस्य नीलवल्लक्षणौ सुतौ ।।२२३।।
चण्डाश्चारुशिरोग्रीवा व्यूढोरस्कास्तरस्विनः । नरैर्बद्धाः कुले तेषां जायन्ते विकृता गजाः ।।२२४।।
सुप्रतीकस्तु रूपेण नास्त्यस्य सदृशो गजः । तस्य प्रहारी संपाती पृथुश्चित्तिसुतास्त्रयः ।।२२५।।
पशवो दीर्घताल्वोष्ठाः सुविभक्तशिरोदराः । जायन्ते मृदुसंभूता वंशे तस्य मतङ्गजाः ।।२२६।।
अञ्जनादञ्जना साम्नो विजज्ञे चाञ्जनावती । एवं माता तयोश्चापि प्रथितायुरजः सुतौ ।।२२७।।

नामक श्याम वर्ण का जो हस्ती है वह अग्नियों का वाहन है। पद्मोत्तर पद्म नामक जो गज है वह वरुण के वाहन गणों में से है, और वह उपलेपन (?) भी कहा जाता है। उसके आठ पुत्र उत्पन्न हुए। जो सब उग्र स्वभाववाले थे। उनके वंश में श्वेत बाल और नखवाले, पीले वर्ण के शरीरवाले मतंगज उत्पन्न हुए। उन सबों को तथा अन्यान्य नागों को भी क्रमशः सुना रहा हूँ ।।२१६-२१८।। पुण्डरीक नामक गज कपिल (भूरे) वर्ण का तथा रथान्तर पुष्प के रंग के समान शोभावाला गज है, उन दोनों से सुप्रतिष्ठ औंर प्रमर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त शूल, स्थूल प्रभृति उच्च सिरवाले, शुद्ध बाल और नखवाले बलवान्, शक्तिशाली गज हुए, जो अकुलिक नाम से स्मरण किये गये। इनके वंश में पुष्पदन्त, बृहत्सामा, षड्दन्त, दन्तपुष्पवान्, ताम्रवर्णी प्रभृति गज उत्पन्न हुए। इनके हस्तिनियों के सहगमन से पुत्र उत्पन्न हुए। इनके वंश में लंबे ओंठोंवाले, सुन्दर दिखायी पड़नेवाले, श्यामवर्ण के उग्र स्वभाववाले, लंबे मुँहवाले और अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करने में सशक्त गज उत्पन्न होते हैं। वामदेव नामक हस्ती अंजन के समान श्यामल वर्ण का है, साम से वामन नामक गज उत्पन्न हुआ जिसकी स्त्री अंगदा थी, उसके नीलवत् और लक्षण नामक दो पुत्र थे ।।२१९-२२३।। ये सब गज अत्यन्त उग्र स्वभाववाले थे, इनके शिरोभाग और कन्धे देखने में सुन्दर थे, वक्षःस्थल अत्यन्त विशाल और चलने में वे वेगशाली थे। इन गजों के वंश में जो विकृत गज उत्पन्न होते हैं, वे मनुष्यों द्वारा बन्धन में डाले जाते हैं। सुप्रतीक के समान सुन्दर आकारवाला गज दूसरा नहीं है, उसके प्रहारी, संपाती और पृथुश्चित्ति नामक तीन पुत्र थे ।।२२४-२२५।। इनके वंश में मत्तगज पशुगण (?) लम्बी तालु, बड़े होंठ और विभक्त सिर तथा उदर भाग एवं मनोहर अंगोंवाले उत्पन्न होते हैं। अञ्जन से अञ्जना और साम से अञ्जनावती का जन्म हुआ। इन दोनों की माता भी आयुरज (?) की[1] पुत्री कही गयी है। इनके वंश में उत्पन्न होनेवाले गज अत्यन्त विभक्त सिरवाले, जल से पूर्ण

---

[1] यहाँ पुँल्लिग 'सुतौ' पाठ है, जिसकी कोई संगति नहीं बैठती।

महाविभक्तशिरसः स्निग्धजीमूतसंनिभाः । सुदर्शनाः सुवर्ष्माः पद्माभा परिमण्डलाः ।।
शूनाः पीतायतमुखा गजास्तस्यान्वयेऽभवन् ।।२२८।।
जज्ञे चन्द्रमसः साम्नः पिङ्गला कुमुदद्युतिः । पिङ्गलायाः सुतौ तस्य महापद्मोर्मिमालिनौ ।।२२९।।
समायवरदांश्चण्डान्प्रवृद्धबलिनोदरान् । हस्तियुद्धे प्रियान्नागान्विद्धि तस्य कुलोद्भवान् ।।२३०।।
एतान्देवासुरे युद्धे जयार्थे जगृहुः सुराः । कृतार्थैश्च विसृष्टास्ते पूर्वोक्ताः प्रययुर्दिशः ।।२३१।।
एतेषामन्वये जायान्विनीतांस्त्रिदशा ददुः । अङ्गाय लोमपादाय सूत्रकाराय वै द्विपान् ।।२३२।।
द्विरदो द्विरदाभ्यां च हस्ताद्धस्ती करात्करी । वरणाद्वारणो दन्ती दन्ताभ्यां गर्जनाद्गजः ।।२३३।।
कुञ्जरः कुञ्जचारित्वान्नागो नगविरोधतः । मत्वा यातीति मातङ्गो द्विपो द्वाभ्यां पिबन्स्मृतः ।।
सामजः सामजातत्वादिति निर्वचनक्रमः ।।२३४।।
एषां जिह्वापरावृत्तिरि(र)वाक्त्वं ह्यग्निशापजम् । बलस्यानवतो या तु या चैषां गूढमुष्कता ।।
उभयं दन्तिनामेतत्स्वयंभूसुरशापजम् ।।२३५।।

बादल के समान काले वर्ण के, देखने में अति सुन्दर शरीरवाले, कमल के समान परिमण्डलवाले, मोटे ताजे, और पीले चौड़े मुखवाले होते थे ।।२२६–२२८।। चन्द्रमा और साम से पिंगला, कुमुदद्युति की उत्पत्ति हुई। उस पिंगला के महापद्म और उर्मिमाली नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसके कुल में उत्पन्न नागों को अत्यन्त उग्र स्वभाववाले, बलशाली, लम्बे पेटवाले, विशाल दाँतोंवाले तथा हस्तियुद्ध में रुचि रखनेवाले समझिये। देवासुर संग्राम में देवताओं ने इन्हीं हस्तियों को विजय लाभार्थ अपने पास रखा और कार्य में सफलता प्राप्त कर लेने के उपरान्त उन्हें छोड़ दिया, जिससे उपर्युक्त सभी हस्ती विभिन्न दिशाओं को चले गये। इन्हीं के वंश में उत्पन्न, विनम्र स्वभाववाले हस्तियों ने अंग, लोमपाद, सूत्रकार को दिया। दो रद (दाँत) होने के कारण इनका द्विरद नाम पड़ा, हस्त (शुण्ड) के कारण हस्ती और कर (शुण्ड) के कारण करी कहते हैं। वरण (पूजन) होने के कारण इन्हें वारण, दो दाँतों के कारण दन्ती, गर्जन (चिग्घाड़ने) के कारण गज, कुञ्जों में विचरण करने के कारण कुञ्जर, नगों[१] (पर्वतों और वृक्षों) से विरोध करने के कारण नाग, मतङ्ग[२] से उत्पन्न होने के कारण मातंग, दोनों (मुख और शुण्ड) से पान करने के कारण द्विप तथा सामवेद के गान से उत्पन्न होने के कारण ये सामज नाम से स्मरण किये जाते हैं, यह इनकी निरुक्ति का क्रम है ।।२२९–२३४।। इन हस्तियों की जिह्वा जो पीछे की ओर लौटी रहती है, और बोलने की शक्ति इनमें नहीं पायी जाती, वह अग्नि के शाप के कारण है।

---

[१] हाथी पर्वतों की चट्टानों एवं वृक्षों की शाखाओं आदि के तोड़ने-फोड़ने में प्रसिद्ध ही हैं।

[२] आनन्दाश्रम की प्रति में 'मत्वा यातीति मातङ्गः' जिसके अनुसार यह अर्थ होगा कि मानकर चलता है, इसलिए मातंग नाम हैं, पर अन्य प्रतियों के 'मतंगादिति मातंगः' पाठ से ऊपर का अर्थ निकलता है जो अन्य कथाओं से मिलती-जुलती है। और इस सम्बन्ध से मातंग नाम की निरुक्ति भी समीचीन एवं सर्वसम्मत होती है। अतः 'मतंगादिति मातंगः' पाठ युक्तियुक्त प्रतीत हो रहा है।

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । कन्यासु जाता दिङ्नागैर्नानासत्त्वास्ततो गजाः ।।२३६।।
संभूतिश्च प्रभूतिश्च नामनिर्वचनं तथा । एतद्गजानां विज्ञेयं येषां राजा विभावसुः ।।२३७।।
कौशिकाद्याः समुद्रात्तु गङ्गायास्तदनन्तरम् । अञ्जनस्यैकमूलस्य प्राच्यान्नागवनं तु तत् ।।२३८।।
उत्तरा तस्य विन्ध्यस्य गङ्गाया दक्षिणं च यत् । गङ्गोद्भेदात्करूषेभ्यः सुप्रतीकस्य तद्वनम् ।।२३९।।
अपरेणोत्कलाच्चैव ह्यावेदिभ्यश्च पञ्चमम् । एकभूतात्मजस्यैतद्वामनस्य वनं स्मृतम् ।।२४०।।
अपरेण तु लौहित्यमासिन्धोः पश्चिमेन तु । यमस्यैतद्वनं प्रोक्तमनुपर्वतमेव तत् ।।२४१।।
भूतिर्विजज्ञे भूतांश्च रुद्रस्यानुचरान्प्रभो । स्थूलान्कृशांश्च दीर्घांश्च वामनान्ह्रस्वकान्समान् ।।२४२।।
लम्बकर्णान्प्रलम्बोष्ठाल्लम्बजिह्वांस्तनोदरान् । एकरूपान्विरूपांश्च लम्बस्फिक्स्थूलपिण्डकान् ।।२४३।।
सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनवासिनः । कृष्णान्गौरांश्च नीलांश्च श्वेतांश्च लोहितारुणान् ।।२४४।।
बभ्रून्वै शबलान्धूम्रान्कद्रून्राक्षसदारुणान् । मुञ्जकेशान्हृषीकेशान्सर्पयज्ञोपवीतिनः ।।२४५।।

और हस्तियों के जो बल की अनूतनता (स्फूर्ति का अभाव) तथा इनके लिंग एवं अण्डकोष का छिपा रहना—ये दोनों भी स्वयंभू ब्रह्मा एवं सुरगणों के शाप के कारण हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प एवं राक्षस—ये सब जिन कन्याओं में उत्पन्न हुए उन्हीं में दिग्गजों के संयोग से हस्तियों की उत्पत्ति हुई जिससे वे विपुल पराक्रमी हुए। इन गजों की उत्पत्ति, प्रभाव, अनेक नाम पड़ने के कारण आदि की कथा यही जाननी चाहिए (जिसे ऊपर कह चुका)। इन सबका राजा विभावसु है। पूर्व दिशा में कौशकी से लेकर समुद्रपर्यन्त एवं उसके उपरान्त समुद्र तट से गंगा तक जो जंगल है; वह एकमात्र अञ्जन नामक हस्ती एवं उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले का है ।।२३५–२३८।। विन्ध्य गिरि के उत्तर से लेकर गङ्गा के दक्षिण ओर तक; तथा गङ्गा के उद्‌गम स्थल से लेकर करुष देश तक सुप्रतीक नामक गज का जंगल है। उत्कल (उड़ीसा) प्रान्त के पश्चिमी छोर से लेकर वेदि (?) देश पर्यन्त, जो पाँचवाँ जंगल है, वह एकमात्र (?) वामन नामक हस्ती के वंशजों का जंगल कहा जाता है। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के दूसरे तट से पश्चिम, समुद्र तट के पर्वत के समीप तक यम का वन कहा गया है ।।२३९–२४१।। हे प्रभो! भूति ने रुद्र के अनुचर भूतों को उत्पन्न किया जिनमें से कुछ बहुत मोटे, कुछ बहुत पतले, कुछ विशालकाय, कुछ बौने, कुछ बहुत ही छोटे, कुछ समान आकारवाले थे, इसी प्रकार लम्बे कानवाले, लम्बे होंठोंवाले, लम्बी जीभवाले, लम्बे स्तन और लम्बे पेटवाले थे। कुछ एक ही तरह के रूपवाले थे तो कुछ एकदम कुरूप थे, कुछ स्फिक् (नितंब, चूतड़) बहुत लम्बे थे, कुछ के मोटे पिण्डाकार पेट निकले हुए थे। ये भूतगण सरोवर, समुद्र, नदी आदि जलाशयों के तट पर निवास करनेवाले थे। इनमें से कुछ काले वर्ण के, कुछ गोरे वर्ण के, कुछ नीले वर्ण के, कुछ श्वेत वर्ण के, कुछ लोहित और अरुण वर्ण के थे ।।२४२–२४४।। इसी प्रकार कुछ गहरे पीले वर्ण के, कुछ चितकबरे रंग के, कुछ धुएँ के वर्ण के तथा कुछ हल्के पीले रंग के थे, ये सभी भूतगण दारुण राक्षसों के समान उग्र स्वभाववाले थे। इनमें से कोई मुंजकेश;[1] कोई हृषीकेश तथा कोई सर्प का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले थे। किसी की आँखें फूटी हुई थीं, किसी की आँखें अतिशय कुरूप थीं, किसी की आँखें बहुत बैठी हुई थीं तथा किसी की एक आँख ही फूटी हुई थी। कोई अनेक सिरवाले थे, कोई सिरोविहीन थे, कोई एक सिरवाले थे, किसी

---

१. मूँज के समान केशवाले।

विसृष्टाक्षान्विरूपाक्षान्कृशाक्षानेकलोचनान् । बहुशीर्षान्विशीर्षांश्च एकशीर्षानशीर्षकान् ।।२४६।।
चण्डांश्च विकटांश्चैव विरोमान्रोमशांस्तथा । अन्धांश्च जटिलांश्चैव कुब्जान्हेषकवामनान् ।।२४७।।
सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनसेविनः । एककर्णान्महाकर्णाञ्शङ्कुकर्णानकर्णिकान् ।।२४८।।
दंष्ट्रिणो नखिनश्चैव निर्दन्तांश्च द्विजिह्वकान् । एकहस्तान्द्विहस्तांश्च त्रिहस्तांश्चाप्यहस्तकान् ।।२४९।।
एकपादान्द्विपादांश्च त्रिपादान्बहुपादकान् । महायोगान्महासत्त्वान्सुतपक्वान्महाबलान् ।।२५०।।
सर्वत्रगानप्रतिघान्ब्रह्मज्ञान्कामरूपिणः । घोरान्क्रूरांश्च मेध्यांश्च शिवान्पुण्यान्सवादिनः ।।२५१।।
कुशहस्तान्महाजिह्वान्महाकर्णान्महाननान् । हस्तादांश्च सुखादांश्च शिरोदांश्च कपालिनः ।।२५२।।
धन्विनो मुद्गरधरानसिशूलधरांस्तथा । दीप्तास्यान्दीप्तनेत्रांश्च चित्रमाल्यानुलेपनान् ।।२५३।।
अन्नादान्पिशितादांश्च बहुरूपान्सुरूपकान् । रात्रिसंध्याचरान्घोरान्कांश्चित्सौम्यान्दिवाचरान् ।।
नक्तंचरान्सुदुःप्रेक्ष्यान्घोरांस्तान्वै निशाचरान् ।।२५४।।

के सिर था ही नहीं। कोई अतिशय उग्र स्वभाववाले थे, कोई अत्यन्त विकट स्वभाववाले थे, कोई रोमावली विहीन थे, कोई बहुत रोमवाले थे, कोई अन्धे थे, कोई लंबी-लंबी जटाओंवाले थे, कोई कुबड़े थे, कोई चिग्घाड़नेवाले तथा बौने थे। ये सब-के-सब सरोवर, समुद्र, नदी तट पर निवास करते थे ।।२४५-२४७½।। इनमें किसी-किसी के एक कान था, कोई-कोई बहुत बड़े कानवाले थे, किसी-किसी के कान शंकु (खूँटे) के समान थे, कोई-कोई कानविहीन थे। किसी-किसी के दाँत बहुत बड़े थे, किसी-किसी के नख बढ़े हुए थे, किसी-किसी के एक भी दाँत नहीं थे, कोई-कोई दो जिह्वावाले थे। किसी-किसी के एक हाथ थे तो कोई-कोई दो हाथोंवाले थे, किसी-किसी के तीन हाथ थे, और ऐसे भी थे, जिन्हें एक हाथ भी नहीं था। इसी प्रकार कोई-कोई एक पादवाले, कोई-कोई दो पादवाले, कोई-कोई तीन पादवाले तथा कोई-कोई इससे भी अधिक अनेक पादोंवाले थे। उनमें से कितने महान् पराक्रमी थे, कितने महान् योगाभ्यासी थे, कितने सुतपक्व (?) थे, कितने महाबलवान् थे। कितने ऐसे थे जो सर्वत्र जा सकते थे, कितने निष्क्रोधी थे, कितने इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करनेवाले थे ।।२४८-२५०½।। और ऐसे भी कितने थे जो परम घोर तथा क्रूर स्वभाववाले थे, कितने परम पवित्र, कल्याणकारी, पुण्यकर्त्ता एवं प्रिय बोलनेवाले थे। कुछ हाथों में कुश लिये रहते थे, किसी की जिह्वाएँ बहुत बड़ी थीं, किसी के कान बहुत लम्बे थे, किसी के मुख बहुत भीषण थे। कोई हाथों से खानेवाले थे, कोई मुख से खानेवाले थे, कोई सिर से खानेवाले थे, कोई-कोई मुण्डमाला पहने हुए थे। कोई-कोई हाथों में धनुष धारण किये हुए थे, कोई-कोई मुद्गर धारण किये थे, कोई-कोई तलवार तथा शूल धारण किये थे, कितनों के नेत्र उद्दीप्त हो रहे थे, कितनों के मुख उद्दीप्त हो रहे थे, कितने विचित्र ढंग की मालाएँ धारण किये थे तो कितने विचित्र चन्दनादि का लेप किये थे। उनमें से कुछ अन्नाहार करनेवाले थे, कुछ मांसाहारी थे, कितने अनेक स्वरूप धारण करनेवाले थे, कितने अति सुन्दर स्वरूपवाले थे। उनमें से कितने रात्रि तथा संध्या में गमन करनेवाले थे, कितने अति घोर दिखायी पड़नेवाले थे, कितने अति सौम्य दिखायी पड़नेवाले थे। कितने केवल दिन को चलनेवाले थे, कितने रात्रि को चलनेवाले थे, कितने अति कठिनाई से देखे जानेवाले थे (अर्थात् इतने घोर स्वरूपवाले थे कि लोगों का उनकी ओर देखने का साहस ही नहीं होता था)। इस प्रकार उन निशिचरों को भूति ने उत्पन्न किया। वे सब भूति के पुत्रगण

परत्वे च भवं देवं सर्वे ते गतमानसाः । नैषां भार्याऽऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।।२५५।।
शतं तानि सहस्राणि भूतानागात्मयोगिनाम् । एते सर्वे महात्मानो भूत्याः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।२५६।।
कपिशा जज्ञे कूष्माण्डी कूष्माण्डाञ्जज्ञिरे पुनः । मिथुनानि पिशाचानां वर्णेन कपिशेन च ।।
कपिशत्वात्पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशनाः ।।२५७।।
युग्मानि षोडशान्यानि वर्तमानास्तदन्वयाः । नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि पुरुषादांस्तदन्वयान् ।।२५८।।
छगलश्छगली चैव वक्रो वक्रमुखी तथा । षोडशानां गणा चैव सूची सूचीमुखस्तथा ।।२५९।।
कुम्भपात्रश्च कुम्भी च वज्रदंष्ट्रश्च दुन्दुभिः । उपचारोपचारश्च उलूखल उलूखली ।।२६०।।
अनर्कश्च अनर्का च कुखण्डश्च कुखण्डिका । पाणिपात्रा पाणिपात्री पांशुः पांशुमती तथा ।।२६१।।
नितुण्डश्च नितुण्डी च निपुणा निपुणस्तथा । छलादोच्छेषणा चैव प्रस्कन्दः स्कन्दिका तथा ।।
षोडशानां पिशाचानां गणाः प्रोक्तास्तु षोडश ।।२६२।।
अजामुखा बकमुखाः पूरिणः स्कन्दिनस्तथा । विषादाङ्गारिकाश्चैव कुम्भपात्राः प्रकुन्दकाः ।।२६३।।
उपचारोलूखलिका ह्यनर्काश्च कुखण्डिकाः । पाणिपात्राश्च नैतुण्डा ऊर्णाशा निपुणास्तथा ।।२६४।।
सूचीमुखोच्छेषणादाः कूलान्येतानि षोडश । इत्येता ह्यभिजातास्तु कूष्माण्डानां प्रकीर्तिताः ।।२६५।।

एकमात्र महादेव में चित्त लगानेवाले थे। इन सबों के न तो स्त्री थी न पुत्र थे, सब-के-सब ब्रह्मचारी थे। इन आत्मयोगी भूतों की संख्या एक लाख थी, भूति के इन सब महात्मा पुत्रों की चर्चा कर चुका ।।२५१-२५६।। कपिशा कुष्माण्डी ने कुष्माण्ड के संयोग से पिशाच दम्पतियों को जन्म दिया जो सब कपिश (भूरे या मटमैले) रंग के थे। कपिश वर्ण होने के कारण वे पिशाच कहलाये। ये सब मांसाहारी थे। अन्य सोलह पिशाच दम्पति हैं, जिनके वंशज वर्तमान हैं। उनके वंशधरों का नाम बतला रहा हूँ, वे सब मनुष्य का भक्षण करनेवाले थे। छगल और छगली, वक्र और वक्रमुखी, सूचीमुख और सूची, कुम्भपात्र और कुम्भी, वज्रदंष्ट्र और दुन्दुभि, उपचार और अपचार, उलूखल और उलूखली, अनर्क और अनर्का, कुखण्ड और कुखण्डिका, पाणिपात्र और पाणिपात्री, पांशु और पांशुमती, नितुण्ड और नितुण्डी, निपुण और निपुणा, छलाद और उच्छेषणा तथा प्रस्कन्द और स्कन्दिका—ये सोलह (?)[१] पिशाच दम्पतियों के गण कहे गये हैं ।।२५७-२६२।। अजामुख, बकमुख, पूरी, स्कन्दी, विषाद, अङ्गारिक, कुम्भपात्र, प्रकुन्दक, उपचार, उलूखलिक, अनर्क, कुखण्डिक, पाणिपात्र, नैतुण्ड, ऊर्णाश, निपुण, सूचीमुख और उच्छेषणाद कहे जानेवाले सोलह (?)[२] कुल हैं। कुष्माण्ड के कुल में उत्पन्न होनेवाले इन कुलीनों का वर्णन किया गया। इन्हीं के कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पिशाचों को जानना चाहिए। इनके पुत्र-पौत्रादि की संख्या अनन्त है, सब अति वीभत्स आकृतिवाले तथा निन्द्य कर्म

---

[१] संख्या पन्द्रह ही होती है।

[२] संख्या अठारह हो जाती है, अतः इन नामों में से कोई विशेषण है। पर प्रमाणाभाव से हमने अनुवाद यथातथ्य कर दिया है।

पिशाचास्ते तु विज्ञेयाः सुकुल्या इति जज्ञिरे । वीभत्सं विकृताचारं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।।
अतस्तेषां पिशाचानां लक्षणं च निबोधत ।।२६६।।
सर्वाङ्गकेशा वृत्ताख्या दंष्ट्रिणो नखिनस्तथा । तिर्यङ्गाः पुरुषादाश्च पिशाचास्ते ह्यधोमुखाः ।।२६७।।
अकेशका ह्यरोमाणस्त्वग्वसाश्चर्मवाससः । कूष्माण्डिकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः सदामिषाः ।।२६८।।
वक्राङ्गहस्तपादाश्च वक्रशीलागतास्तथा । ज्ञेया वक्रपिशाचास्ते वक्रगाः कामरूपिणः ।।२६९।।
लम्बोदरास्तुण्डनाशा ह्रस्वकायशिरोभुजाः । नितुन्दकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः प्रियश्रवाः ।।२७०।।
वामनाकृतयश्चैव वाचालाः प्लुतगामिनः । पिशाचानर्कमर्कास्ते वृक्षवासादनप्रियाः ।।२७१।।
ऊर्ध्वबाहूर्ध्वरोमाण उद्वृत्ताश्च तथालयाः । मुञ्चन्ति पांशूनङ्गेभ्यः पिशाचाः पांशवश्च ते ।।२७२।।
धमनीमन्तकाः शुष्काः श्मश्रुलाश्चीरवाससः । उपवीराः पिशाचाश्च श्मशानायतनास्तथा ।।२७३।।
विष्टब्धाक्षा महाजिह्वा लेलिहाना ह्युलूखलाः । हस्त्युष्ट्रस्थूलशिरसो विरता बद्धपिण्डकाः ।।२७४।।
पिशाचाः कुम्भपात्रास्ते अदृष्टान्नानि भुञ्जते । सूक्ष्मास्तु रोमशाः पिङ्गा दृष्टादृष्टाश्चरन्ति वै ।।२७५।।
आयुक्तांश्च विशन्तीह निपुणास्ते पिशाचकाः । आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ।।२७६।।

करनेवाले थे, अतः उन पिशाचों के लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये ।।२६३–२६६।। पिशाचों के सभी अंगों में केश होते हैं, आँखें गोली होती हैं, बड़े बड़े दाँत तथा नख होते हैं, अंग टेढ़े–मेढ़े रहते हैं, मनुष्य का भक्षण करते हैं, उनके मुख नीचे की ओर झुके रहते हैं। कुष्मांडिक कहलानेवाले पिशाचगण बिना केशों के होते हैं, शरीर पर रोम भी नहीं रहते, चमड़े, चर्बी आदि को वस्त्र के स्थान पर लपेटे रहते हैं, वे सर्वदा मांस तथा तिल का आहार करनेवाले हैं।।२६७–२६८।। वक्र नामक पिशाचों के सभी अंग, हाथ, पैर सब टेढ़े होते हैं, वे चलते समय भी टेढ़ी–मेढ़ी चाल चलते हैं, सर्वदा टेढ़े बने रहते हैं, इच्छानुसार स्वरूप धारण करते हैं तथा वक्रगामी हैं ।।२६९।। नितुन्दक नामक पिशाच लंबे पेटवाले, उँची उठी हुई नासिकावाले, छोटे शरीरवाले, सिर और छोटे हाथवाले, तिल भक्षण करनेवाले तथा सुन्दर कानवाले हैं। अनर्क मर्क (?) नामक पिशाचगण बौने के समान आकृतिवाले, बहुत बोलनेवाले, उछल–उछलकर चलनेवाले, वृक्षों पर निवास करने तथा वृक्षों पर आहार पसन्द करनेवाले हैं। पांशु कहे जानेवाले पिशाचगण ऊर्ध्व बाहुधारी होते हैं, उनके रोम ऊपर की ओर उठे हुए रहते हैं, उनके आवास–स्थान भी ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं, वे अपने अंगों से धूल गिराते चलते हैं। उपवीर नामक पिशाचगण अपनी धमनियों को जाननेवाले, सूखे हुए, मूँछ–दाढ़ी रखे हुए, चीर धारण करनेवाले तथा श्मशानों में निवास करनेवाले होते हैं। उलूखल नामक पिशाचगण निश्चल आँखोंवाले, लंबी जीभवाले, सर्वदा जीभ से होंठ चाटनेवाले, हाथी और ऊँट की तरह मोटे सिरवाले, विरत तथा समूह बाँधकर चलनेवाले होते हैं ।।२७०–२७४।। वे कुम्भपात्र नाम से विख्यात पिशाच हैं, जो बिना देखे हुए अन्न का भोजन करते हैं। ये बहुत सूक्ष्म आकृतिवाले, सारे शरीर पर रोमावली युक्त, पीले वर्ण तथा कहीं पर दिखायी पड़नेवाले और कहीं पर न दिखायी पड़नेवाले होते हैं। वे निपुण नामक पिशाचगण हैं, जो इस भूलोक में अकेले पाने पर मनुष्यों में आविष्ट होते हैं, उनके मुख कानों तक फैले हुए रहते हैं, भौंहें लंबी होती हैं, और नाक मोटी होती है। वे पूरण नामक

*शून्यागाराश्रयाः स्थूलाः पिशाचाः पूरणास्तु ते । हस्तपादाक्रान्तगणा ह्रस्वकाः क्षितिदृष्टयः ।।
बालादास्ते पिशाचा वै सूतिकागृहसेविनः ।।२७७।।
पृष्ठतःपाणिपादाश्च ह्रस्वका वातरंहसः । पिशितादाः पिशाचास्ते सङ्ग्रामे रुधिराशिनः ।।२७८।।
नग्नका ह्यनिकेताश्च लम्बकेशाश्च पिण्डकाः । पिशाचाः स्कन्दिनस्ते वै अन्या उच्छेषणाशिनः ।।
षोडश जातयस्तेषां पिशाचानां प्रकीर्तिताः ।।२७९।।
एवंविधान्पिशाचांस्तु दीनान्दृष्ट्वाऽनुकम्पया । तेभ्यो ब्रह्मा वरं प्रादात्कारुण्यादल्पचेतसः ।।
अन्तर्धानं प्रजास्तेषां कामरूपत्वमेव च ।।२८०।।
उभयोः संध्ययोश्चारं स्थानान्यजीवमेव च । गृहाणि यानि भग्नानि शून्यान्यल्पजनानि च ।।२८१।।
विध्वस्तानि च यानि स्युरनाचारोषितानि च । असंस्पृष्टोपलिप्तानि संस्कारैर्वर्जितानि च ।।२८२।।
राजमार्गोपरथ्याश्च निष्कुटाश्चत्वराणि च । द्वाराण्यट्टालकाश्चैव निर्ममान्संक्रमांस्तथा ।।२८३।।
पथो नद्योऽथ तीर्थानि चैत्यवृक्षान्महापथान् । पिशाचा विनिविष्टा वै स्थानेष्वेतेषु सर्वशः ।।२८४।।
अधार्मिका जनास्ते वै आजीवा विहिताः सुरैः । वर्णाश्रमाः संकरिकाः कारुशिल्पिजनास्तथा ।।२८५।।

पिशाचगण हैं, जो शून्य भवनों में निवास करते हैं, उनके शरीर होते हैं, उनके हाथ और पैर बहुत छोटे-छोटे होते हैं और आँखें पृथ्वी पर लगी रहती हैं, ये पिशाचगण बालकों का भक्षण करनेवाले हैं और सर्वदा सूतिका गृहों का सेवन करते हैं ।।२७५-२७७।। मांस भक्षण करनेवाले पिशाचों के हाथ और पैर पीछे की ओर होते हैं, कद के छोटे होते हैं, वायु के समान वेगवान् होते हैं, ये संग्राम भूमि में जाकर रक्त का आहार करते हैं। स्कन्दी कहे जानेवाले पिशाचगण नग्न रहते हैं, उनके रहने का कोई नियत स्थान नहीं रहता, केश लंबे होते हैं, पिण्डाकार दिखायी पड़ते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य पिशाचगण उच्छेषणाशी (जूठा खानेवाले) होते हैं। इन पिशाचों की सोलह (?) जातियों का वर्णन किया जा चुका ।।२७८-२७९।। इस प्रकार अपनी प्रजाओं में विभिन्न आकृति एवं गुण-दोषवाले इन पिशाचों को अल्पबुद्धियुक्त एवं दीन अवस्था में देख ब्रह्मा ने अनुग्रहपूर्वक अन्तर्धान होने तथा इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करने का वरदान दिया। ये पिशाचगण दोनों सन्ध्याओं (प्रातः एवं सायं) के अवसर पर विचरण करते हैं, उनकी जीविका एवं रहने के स्थानों को बतला रहा हूँ। जो भवन टूटे-फूटे रहते हैं, थोड़े आदमी निवास करते हैं, विध्वस्त हो जाते हैं, अत्याचारों समेत निवास किया जाता है, असंस्कृत अथवा बिना लिपे-पुते रहते हैं, स्पर्श नहीं किये जाते उनमें ये निवास करते हैं ।।२८०-२८२।। इसके अतिरिक्त राजमार्ग (सड़क), गलियाँ, घर के समीप के उपवन, चबूतरे या चौराहे, द्वारदेश, निर्मम अट्टालक, एकान्त आवास, पथ, नदियाँ, तीर्थ, देवी-देवताओं के कल्पित निवास वृक्ष और महापथ (श्मशान मार्ग) इन स्थानों में सर्वत्र पिशाचगण निवास करते हैं। जो अधार्मिक जन हैं वर्णाश्रम की मर्यादा से बहिर्भूत हैं, वर्णसंकर

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

अमृतोपमसत्त्वानां चौरविश्वासघातिनाम्। एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्जितैर्धनैः ।।
आरभन्ते क्रिया यास्तु पिशाचास्तत्र देवताः ।।२८६।।
मधुमांसौदनैर्दध्ना तिलचूर्णसुरासवैः। धूपैर्हारिद्रकृशरैस्तैलभद्रगुडौदनैः ।।२८७।।
कृष्णानि चैव वासांसि धूपाः सुमनसस्तथा। एवं युक्ताः सुबलयस्तेषां वै पर्वसंधिषु ।।
पिशाचानामनुज्ञाय ब्रह्मा सोऽधिपतिर्ददौ ।।२८८।।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्। दंष्ट्रा त्वजनयत्पुत्रान्व्याघ्रान्सिंहांश्च भामिनी ।।२८९।।
द्विपिनश्च सुतास्तस्य व्यालेयाश्चाऽऽमिषाशिनः। ऋषायाश्चापि कार्त्स्न्येन प्रजासर्गं निबोधत ।।
तस्य दुहितरः पञ्च तासां नामानि मे शृणु ।।२९०।।
मीना माता तथा वृत्ता परिवृत्ता तथैव च। अनुवृत्ता तु विज्ञेया तासां वै शृणुत प्रजाः ।।२९१।।
सहस्रदन्ता मकराः पाठीनास्तिमिरोहिताः। इत्येवमादिर्हि गणा मैनो विस्तीर्ण उच्यते ।।२९२।।
ग्राहाश्चतुर्विधा ज्ञेया तथाऽनुज्येष्ठका अपि। निष्कांश्च शिशुमारांश्च मीना व्यजनयत्प्रजाः ।।२९३।।
वृत्ता कूर्मविकाराणि नैकानि जलचारिणाम्। तथा शङ्खविकाराणि जनयामास नैकशः ।।२९४।।
गण्डूकानां विकाराणि अनुवृत्ता व्यजायत। ऐणेयानां विकाराणि शम्बूकानां तथैव च ।।२९५।।

हैं, कारीगरी या शिल्पकर्म करनेवाले हैं देवताओं ने उनको ही इन पिशाचों की आजीविका बनायी है। चोरी, विश्वासघात, अमृत (?) तुल्य जीवों एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य कुत्सित उपायों द्वारा उपार्जित धन से जो क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं, उनमें देवता पिशाच होते हैं ।।२८३-२८६।। मधु, मांस, भात, दही, तिलचूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हरिद्रा, खिचड़ी, तेल, मोथा, गुड़ और भात (एक में), काले वस्त्र, धूप और पुष्प–इन सब सामग्रियों समेत पर्वों की संधियों के अवसर पर पिशाचों की बलि देनी चाहिए। ऐसी आज्ञा ब्रह्मा ने उन पिशाचों को दी और शूलपाणि महेश्वर को उन सभी भूतों एवं पिशाचों का स्वामी नियत किया ।।२८७-२८८।। सुन्दरी दंष्ट्रा ने व्याघ्रों और सिंहों को पुत्ररूप में उत्पन्न किया। इनके अतिरिक्त चीते, अन्य प्रकार के बाघ और शेर तथा अन्यान्य मांसभक्षी वन्य पशुओं को उसने उत्पन्न किया। अब इसके उपरान्त ऋषा की सम्पूर्ण प्रजाओं का विस्तार क्रम सुनिये। उसकी पाँच कन्याएँ थीं, जिनके नाम मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। मीना, माता, वृत्ता, परिवृत्ता तथा अनुवृत्ता–ये पाँच उनकी कन्याएँ थीं, इनके पुत्रादिकों का वर्णन सुनिये। सहस्र दाँतवाले मकर, पाठीन (जलजन्तु), तिमि (मछली-विशेष), रोहित (रोहू)–ये सब मीनों के भेद मीना की सन्तानों में कहे गये हैं ।।२८९-२९२।। इसके अतिरिक्त छोटे और बड़े, चार प्रकार के ग्राह, निष्क और शिशुमार–इन सबको[1] मीना (माता) ने उत्पन्न किया। वृत्ता ने जल में विचरण करनेवाले सभी प्रकार के कच्छपो (कछुओं) को तथा सभी प्रकार के शंखों को अगणित संख्या में उत्पन्न किया। अनुवृत्ता ने मेढकों के सभी भेदों एवं उपभेदों को तथा ऐणेय (?) और शम्बूक

---

[1] १. आनन्दाश्रम की प्रति में मीना पाठ यहाँ पर भी है, जो अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि पाँचों कन्याओं में मीना के बाद माता का नाम आता है।

तथा शुक्तिविकाराणि वराटककृतानि च । तथा शङ्खविकाराणि परिवृत्ता व्यजायत ।।२९६।।
कालकूटविकाराणि जलौकविहितानि च । इत्येष हि ऋषेर्वंशः पञ्च शाखाः प्रकीर्तिताः ।।२९७।।
तिर्यग्घेतुकमाद्याहुर्बहुलं (?) वंशविस्तरम् । संस्वेदजविकाराणि यथा येभ्यो भवन्ति ह ।।२९८।।
स्वस्तिपिकशरीरेभ्यो जायन्त्युत्पादका द्विजाः । मनुष्याः स्वेदमलजा उशना नाम जन्तवः ।।२९९।।
(*तथा शिरसि चैले च यूकाः संस्वेदजाः स्मृताः । चन्द्रादित्याग्नितप्तायां पृश्चिव्यां संभवन्ति ये ।।३००।।
तृणमेघप्रसिक्तायाः स्मृताः संस्वेदजन्तवः) । नानापिपीलिकगणाः कीटका बद्धपादकाः ।।३०१।।
शङ्खोपलविकाराणि कीलकाचारकाणि च । इत्येवमादिबहुलाः स्वेदजाः पार्थिवा गणाः ।।३०२।।
तथा घर्मादितप्ताभ्यस्त्वद्भ्यो वृष्टिभ्य एव च । नैका मृगशरीरेभ्यो जायन्ते जन्तवस्त्विमे ।।३०३।।
मीनकाः पिप्पला दंशास्तथा तित्तिरपुत्रिकाः । नीलचित्राश्च जायन्ते ह्यलर्का बहुविस्तराः ।।३०४।।
जलजाः स्वेदजाश्चैव जायन्ते जन्तवस्त्विमे । काशतोयञ्ज(ज)काः कीटानलदा बषुपादकाः ।।३०५।।
सिंहला रोमलाश्चैव पिच्छलाः परिकीर्तिताः । इत्येवमादिर्हि गणो जलजः स्वेदजः स्मृतः ।।३०६।।
सर्पिर्भ्यो माषमुद्गानां जायन्ते क्रमशस्तथा । बिल्वजम्बाम्रपूगेभ्यः फलेभ्यश्चैव जन्तवः ।।३०७।।

(घोंघा) के सभी भेदोपभेदों को उत्पन्न किया। परिवृत्ता ने शुक्ति (सुतुही), वराटिका (कौड़ी) तथा शङ्ख के सभी भेदोभेद को उत्पन्न किया। इनके अतिरिक्त कालकूट और जलौका (जोंक) के सभी भेदों को भी उसने उत्पन्न किया। यह ऋषि के वंश का वर्णन किया जा चुका, जिसकी उपर्युक्त पाँच शाखाएँ कही गयी हैं ।।२९३-२९७।। इन निरर्थक योनि में उत्पन्न होनेवाले जन्तुओं का वंश विस्तार बहुत कहा जाता है। स्वेद से उत्पन्न होनेवाले जीवों के भेदोपभेदों की चर्चा कर रहा हूँ जो जिनके स्वेद से जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं। हे द्विजगण! इन स्वेदज जन्तुओं के उत्पादक मनुष्य हैं ये स्वेदज जन्तु स्वस्तिपिक (?) शरीरों से उत्पन्न होते हैं। स्वेद और मल से उत्पन्न होनेवाले जन्तुगण उशना नाम से प्रसिद्ध हैं ।।२९८-२९९।। सिर के बालों में तथा वस्त्र में स्वेद से उत्पन्न होनेवाले जन्तु यूका नाम से स्मरण किये जाते हैं। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि से तपी हुई पृथ्वी में जो जन्तु उत्पन्न होते हैं, बादलों की वृष्टि से भीगे हुए तृणों में जो जन्तु उत्पन्न होते हैं, वे स्वेदज जन्तु कहे जाते हैं। विविध प्रकार के चींटी जाति के जन्तु एवं कीट, जो श्रेणीबद्ध होकर चलते हैं, शंख और रत्नों के विविध प्रकार के जीव एवं कील का चारक (?) तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे जन्तु पार्थिव (पृथ्वी के) स्वेदज कहे जाते हैं ।।३००-३०२।। घाम (धूप) आदि से तपे हुए जल से, वृष्टि से तथा मृगों (पशुओं) के शरीरों से ये अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं। मीनक, पिप्पल, दंश (डँसे), तित्तिरपुत्रक, नीलचित्र, अलर्क–प्रभृति जन्तुओं की संख्या बहुत अधिक है। ये जन्तु जलज एवं स्वेदज कहे जाते हैं। ये जलज और स्वेदज जन्तु काशतोयञ्जक (?), नलद, बषुपादक, सिंहल, रोमल, पिच्छल आदि नामों से पुकारे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुतेरे भी हैं। घृत से, उड़द से, मूँग से भी ये जन्तु

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति।

मुद्गेभ्य पनसेभ्यश्च तण्डुलेभ्यस्तथैव च । तथा कोटरशुष्केभ्यो निहितेभ्यो भवन्ति हि ।।३०८।।
अन्येभ्योऽपि च जायन्ते न हि तेभ्यश्चिरं सदा । जन्तवस्तुरगादिभ्यो विषादिभ्यस्तथैव च ।।३०९।।
बहून्यहानि निक्षिप्ते संभवन्ति च गोमये । जायन्ते कृमये विप्राः काष्ठेभ्यश्च घुणादयः ।।३१०।।
कृमा द्रुमाणां जायन्ते विविधा नीलमक्षिकाः । तथा शुष्कविकारेभ्यः पुत्रिकाः प्रभवन्ति च ।।३११।।
कालिका शतिकेभ्यश्च सर्पा जयन्ति सर्वशः । संस्वेदजाश्च जायन्ते वृश्चिकाः शुष्कगोमयात् ।।३१२।।
(*गोभ्यो हि महिषेभ्यश्च जायन्ते जन्तवः प्रभो । मत्स्यादयश्च विविधा अण्डकुक्षौ विशेषतः ।।३१३।।
चैवीरिकाश्च जायन्ते तथा गोजाकुलानि च । तथाऽन्यानि च सूक्ष्माणि जलौकादीनि जातयः ।।३१४।।
[+कपोतकुररादिभ्यः सूक्ष्मा यूकास्तथैव च । ×तथैवान्येऽपि संख्याता अष्टापदकुलीरकाः] ।।३१५।।
मक्षिकाणां विकाराणि जायन्ते जातयोऽपरे) । प्रायेण तु वसन्त्यस्मिन्नुच्छिष्टोदककर्दमे ।।३१६।।
मशकानां विकाराणि भ्रमराणां तथैव च । तृणेभ्यः समजायन्त पुत्रिकाः पुत्रसप्तकाः ।।३१७।।
मणिच्छेदास्तथा व्यालाः पोतजाः परिकीर्तिताः । शतवेरिविकाराणि करीषेभ्यो भवन्ति हि ।।३१८।।
एवमादिरसंख्यातो गणः संस्वेदजो मया । समासाभिहितो ह्येष प्राक्कर्मवशजः स्मृतः ।।३१९।।

उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार बेल, जामुन, आम, सुपारी आदि फलों से भी ये जन्तु उत्पन्न होते हैं। मूँग, कटहल, चावल, सूखे वृक्षों के कोटर एवं बहुत दिनों की रखी हुई वस्तुओं से भी ये कीट उत्पन्न होते हैं ।।३०३-३०८।। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत पदार्थों से इन कीटों की उत्पत्ति होती है; किन्तु उनसे सर्वदा चिरकाल तक नहीं उत्पन्न होते हैं। घोड़े आदि पशुओं तथा विष आदि पदार्थों से भी ये क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं। बहुत दिनों से रखे गये गोबर में ये जन्तु उत्पन्न होते हैं। हे द्विजगण! इसी प्रकार काष्ठादि वस्तुओं से घुन आदि क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं। वृक्षों से विविध प्रकार की नीली मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं, सब प्रकार की सूखी हुई वस्तुओं से पुत्रिका उत्पन्न होती हैं, शतिको (?) से सभी प्रकार के वर्षाकालीन सर्प उत्पन्न होते हैं। सूखे गोबरों से बिच्छुओं की उत्पत्ति होती है ।।३०९-३१२।। हे प्रभो! इसी प्रकार गौओं और भैंसों के शरीर से भी स्वेदज जन्तुओं की उत्पत्ति होती है। मत्स्य आदि विविध जन्तु अण्डे से उत्पन्न होते हैं। चैवीरिक, गोजा एवं अन्यान्य प्रकार के जोंक आदि क्षुद्र जलजन्तुओं की उत्पत्ति भी अण्डों से होती है। इसी प्रकार कबूतर, कुरर आदि पक्षी अण्डों से उत्पन्न होते हैं। अति सूक्ष्म यूक (जूँ) आदि जन्तु भी अण्डों से उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार आठ पैरोंवाले कुलीरक (केकड़ा) भी अंडे से उत्पन्न होनेवाले जन्तुओं में गिने गये हैं ।।३१३-३१५।। सभी प्रकार की मक्खियों की जातियों में जितने अन्यान्य भेदोपभेद पाये जाते हैं, वे भी अंडों से उत्पन्न होते हैं। कुछ मक्खियाँ उच्छिष्ट वस्तुओं पर, जल में तथा कीचड़ में निवास करती हैं। सभी प्रकार के मशकों के भदोपभेद, भ्रमरों के भेदोपभेद, पुत्रिका

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।
+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।
× इदमर्धं नास्ति ङ पुस्तके।

तथाऽन्ये नैर्ऋता सत्त्वास्ते स्मृता उपसर्गजाः । पूतास्तु योनिजाः केचित्केचिदौत्पत्तिकाः स्मृताः ।।३२०।।
प्रायेण देवाः सर्वे वै विज्ञेया ह्युपपत्तिजाः । केचित्तु योनिजा देवाः केचिद्देवानिमित्ततः ।।३२१।।
तूलालाघश्च कोलश्च शिवा कन्या तथैव च । अपत्यं सरमायास्तु गणा वै सरमादयः ।।३२२।।
श्यामश्च शबलश्चैव अर्जुनौ हरितस्तथा । कृष्णो धूम्रारुणश्चैव तूलालाबूश्च कद्रुकाः ।।३२३।।
सुरसाऽथ विजज्ञे तु शतमेकं शिरोमृतम् । सर्पाणां तक्षको राजा नागानां चापि वासुकिः ।।
तमोबहुल इत्येष गणः क्रोधवशात्मकः ।।३२४।।
पुलहस्याऽऽत्मजासर्गस्ताम्रायास्तन्निबोधत । बह्वन्यास्त्वभिविख्यातास्ताम्रायाश्च विजज्ञिरे ।।३२५।।
श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा । अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ।।
संपातिं च जटायुं च प्रसूता पक्षिसत्तमौ ।।३२६।।
संपातिरजनयत्पुत्रं कन्यामेकां तथैव च । जटायुषश्च ये पुत्राः काकगृध्राश्वकर्णिनः ।।३२७।।
भार्या गरुत्मतश्चापि भासी क्रौञ्ची तथा शुकी । धृतराष्ट्री च भद्रा च तास्वपत्यानि वक्ष्यते (च्म्यहम्) ।।३२८।।
शुकी गरुत्मतः पुत्रान्सुषुवे षट् परिश्रुतान् । त्रिशिरं सुसुखं चैव बलं पृष्ठं महाबलम् ।।३२९।।
त्रिशङ्कुनेत्रं सुसुखं सुरूपं सुरसं बलम् । एषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडानां महात्मनाम् ।।३३०।।

तथा पुत्र सप्तक आदि क्षुद्र जन्तु तृणों से उत्पन्न होते हैं। मणिच्छेद तथा व्याल ये पोतज नाम से प्रसिद्ध हैं (?), शतवेरि के जितने भेदोपभेद हैं वे करीषों (करषे) से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के अन्यान्य स्वेदज क्षुद्र जन्तुओं की संख्या अगणित है। केवल संक्षेप में मैंने इनका वर्णन किया है, ये सब जन्म प्राक्तन कर्म के अधीन कहे जाते हैं ।।३१६-३१९।। इन सबों के अतिरिक्त जो नैर्ऋत प्राणी हैं, वे उपसर्गज कहे जाते हैं। कोई जन्म ग्रहण करनेवाले प्राणी पूत और कोई औत्पत्तिक कहे जाते हैं। प्रायः सभी देवगणों को औत्पत्तिक जानना चाहिए। कुछ देवता योनिजात हैं और कुछ बिना किसी कारण के ही उत्पन्न होनेवाले हैं। सरमा के तुलालाघ और कोल ये दो पुत्र और शिवा नाम की तीसरी कन्या हुई। ये सरमादिगण के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्याम, शबल, अर्जुन, हरित, कृष्ण, धूम्र, अरुण और तूलालाबू ये कद्रु को सन्ततियाँ हैं। सुरसा ने एक सौ शिरोमृत सर्पों को उत्पन्न किया। सर्पों का राजा तक्षक और नागों का राजा वासुकि है। ये प्रधानतया तमोगुणवाले प्रजागण क्रोधवशात्मक कहे गये हैं ।।३२०-३२४।। पुलह के पुत्र के संयोग से ताम्रा में जो प्रजा सृष्टि हुई, उसे सुनिये, ताम्रा से अन्यान्य बहुत-सी संततियाँ उत्पन्न हुईं जो सुप्रसिद्ध हैं। जैसे, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री और शुकी। इनमें श्येनी अरुण की स्त्री हुई, और उसने सम्पाति और जटायु नामक महाबलवान् एवं पराक्रमी श्रेष्ठ पक्षियों को उत्पन्न किया। सम्पाति ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। जटायु के जो पुत्र उत्पन्न हुए, वे काक, गृध्र और अश्वकर्णी हैं ।।३२५-३२७।। गरुत्मान् (गरुड़) की स्त्री भासी, क्रौञ्ची, शुकी, धृतराष्ट्री और भद्रा थीं, उनमें जो सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं, उन्हें बतला रहा हूँ। इन पत्नियों में से शुकी ने गरुत्मान् के संयोग से छह सुविख्यात पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम त्रिशिर, सुसुख,

चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पन्नगाशिनाम्। पुत्रपौत्रविसर्गाच्च तेषां वै वंशविस्तरः ।।३३१।।
व्याप्तानि यानि देशानि (स्थानानि) तानि वक्ष्ये यथाक्रमम्। शाल्मलिद्वीपमखिलं देवकूटं च पर्वतम् ।।३३२।।
मणिमन्तं च शैलेन्द्रं सहस्रशिखरं तथा। पर्णमालं सुकेशं च शतशृङ्गं तथाऽचलम् ।।३३३।।
कौरजं पञ्चशिखरं हेमकूटं च पर्वतम्। प्रचण्डवायुप्रभवैर्दीपितैः पद्मरागिभिः ।।३३४।।
शैलजालानि व्याप्तानि गारुडैस्तैर्महात्मभिः। भासीपुत्राः स्मृता भासा उलूकाः काककुक्कुटाः ।।३३५।।
मयूराः कलविङ्काश्च कपोता लावतित्तिराः। *क्रौञ्ची वार्धीणसाञ्श्येनी कुररान्सारसान्बकान् ।।३३६।।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि कव्यादा ये च पक्षिणः। धृतराष्ट्री च हंसाश्च कलहंसाश्च भामिनी ।।३३७।।
चक्रवाकांश्च विन्द्धग्रान्सर्वांश्चैवादकाजिहान्। एतानेव विजज्ञेऽथ पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।।३३८।।
गरुडस्याऽऽत्मजाः प्रोक्ता इरायाः शृणुत प्रजाः। इरा प्रजज्ञे कन्या वै तिस्रः कमललोचनाः ।।३३९।।
वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः। लता चैवाथ वल्ली च वीरुधा चेति तास्तु वै ।।३४०।।

बल, महाबलवान् पृष्ठ, सुन्दर मुखवाला त्रिशंखनेत्र और महाबलशाली स्वरूपवान् सुरस थे। इन महाबलशाली, क्रूरकर्मा, सर्पभक्षी गरुड़ों के पुत्रों एवं पौत्रों की संख्या चौदह सहस्र थी। उनके पुत्रों, पौत्रों से ही पक्षियों की सृष्टि का विस्तार हुआ ।।३२८–३३१।। उन पक्षियों ने जिन देशों को व्याप्त किया है, अर्थात् वे जिन-जिन देशों में अपना स्थान बनाकर निवास करते हैं, उन्हें क्रमशः बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण शाल्मलि द्वीप, सारा देवकूट पर्वत, पर्वतराज मणिमान् और सहस्र शिखर, पर्णमाल, सुकेश, शतशृंग, कौरज, पञ्चशिखर, हेमकूट प्रभृति पर्वतों पर निवास करते हैं। प्रचण्डवायु[1] उत्पन्न होनेवाले अति कान्तिमान्; पद्म के समान रंगवाले, उन महाबलशाली गरुड़ नामक पक्षियों से इन पर्वतों के शिखरजाल भरे पड़े हैं। भासी के पुत्र भास नाम से विख्यात हुए। उलूक, काक, कुक्कुट (मुर्गे), मयूर, कलविंक (गवरा, गौरैया), कपोत, लवा, तीतर प्रभृति पक्षी भासी की सन्तति स्मरण किये गये हैं ।।३३२–३३५$\frac{१}{२}$।। क्रौञ्ची ने वार्धीणस[1] नामक पक्षियों को उत्पन्न किया। कुरर, सारस, बगले आदि अन्यान्य जो मांसभक्षी पक्षी हैं, उन्हें श्येनी ने उत्पन्न किया। सुन्दरी धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस, चक्रवाक तथा अन्य सभी प्रकार के हिंसक पक्षियों को जन्म दिया। इन सबों के इन पुत्रों के पुत्र, पौत्रों की संख्या असंख्य हुई ।।३३६–३३८।। गरुड़ की सन्ततियों का विवरण कह चुका, अब इरा की सन्ततियों को सुनिये। इरा ने कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली तीन कन्याओं को जन्म दिया, जो सभी प्रकार की वनस्पतियों,

---

* एतदर्धस्थाने 'क्रौञ्चा बाघ्रीणसाः श्येनाः कुरराः सारसा बकाः' इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

[1] अथवा, प्रचण्डवायु के समान प्रभावशाली।

[2] एक विशेष पक्षी, जिसका पैर, सिर और आँखें लाल तथा शेष अंग काले रंग के हों। मार्कण्डेय पुराण में उसका लक्षण उस प्रकार लिखा गया है। 'रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचक्षुर्विहंगमः, कृष्णवर्णेन च तथा पक्षी वार्धीणसो मतः'।। इसके अतिरिक्त ''नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः। वार्धीणसः स्यात् पक्षीसो मम विष्णोरतिप्रियः'' यह एक दूसरा लक्षण भी मिलता है।

लता वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान्पुलिनस्थितान् । युक्तान्पुष्पफलैर्वृक्षाँल्लता वै संप्रसूयते ।।३४१।।
अथ वल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः । वीरुधा तदपत्यानि वंशश्चात्र समाप्यते ।।३४२।।
एते कश्यपदायादा व्याख्याताः स्थाणुजङ्गमाः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यैरिदं पूरितं जगत् ।।३४३।।
सर्गैकदेशस्य कीर्तितोऽवयवो मया । मारीचोऽयं प्रजासर्गः समासेन प्रकीर्तितः ।।
न शक्यं व्यासतो वक्तुमपि वर्षशतैर्द्विजाः ।।३४४।।
अदितिर्धर्मशीला तु बलशीला दितिः स्मृता । तपःशीला तु सुरभिर्मायाशीला दनुः स्मृता ।।३४५।।
(+मुनिश्च गन्धशीला वै प्राबाध्ययनशालिनी । गीतशीला त्वरिष्टाऽथ क्रोधशीला खशा स्मृता)
क्रूरशीला तथा कद्रुः कौञ्च्यथ श्रुतिशालिनी । इराऽनुग्रहशीला तु दनायुर्भक्षणे रता ।।३४६।।
वाहशीला तु विनता ताम्रा वै पाशशालिनी । स्वभावा लोकमातॄणां शीलान्येतानि सर्वशः ।।३४७।।
धर्मतः शीलतो बुद्ध्या क्षमया बलरूपतः । रजःसत्त्वतमोवृत्ता धार्मिकाधार्मिकास्तु वै ।।३४८।।

वृक्षों और लताओं की माता थीं। उनके नाम थे लता, वल्ली और वीरुधा। जिनमें लता ने नदी आदि के तट प्रदेश में स्थित रहनेवाले, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया, इसके अतिरिक्त पुष्पों और फलों से संयुक्त वृक्षों को लता ने जन्म दिया। वल्ली ने गुल्मों को जन्म दिया, समस्त तृण जाति एवं त्वक् सार (जिनके चमड़े में ही सार हो, बाँस) आदि को भी वल्ली ने उत्पन्न किया। वीरुधा की सन्ततियाँ वीरुध[१] के नाम से विख्यात हुईं। यह वंश-परिचय की कथा यहाँ समाप्त की जाती है। कश्यप के वंश में उत्पन्न होनेवाले स्थावर-जंगम जीव-निकाय की सृष्टि को मैं सुना चुका, इनके पुत्रों एवं पौत्रों का परिचय सुना चुका, जो इस समस्त जगन्मण्डल को छेंके हुए हैं। इस विस्तृत प्रजा सृष्टि के एक अंश का लघु परिचय मैं आप लोगों को करा चुका। मरीचि पुत्र कश्यप की प्रजाओं का सृष्टि-विस्तार इस प्रकार संक्षेप में कहा जा चुका। द्विजगण! इस सृष्टि-क्रम को विस्तार के साथ सैकड़ों वर्षों में नहीं कहा जा सकता ।।३३९-३४३।। कश्यप की स्त्रियों में अदिति धर्मशील एवं दिति बलशील कही जाती है। इसी प्रकार सुरभि तपस्या में निरत रहनेवाली तथा दनु मायाविनी कही गयी है। मुनि अध्ययन करनेवाली तथा गन्धशीला है। अरिष्टा गान करनेवाली तथा खशा क्रोध करनेवाली कही जाती है।।३४४-३४५।। कद्रु परम क्रूर प्रकृति की तथा क्रौञ्ची वेदों का अध्ययन करनेवाली अथवा बहुत अधिक सुननेवाली कही जाती है। इसी प्रकार इरा को लोग अनुग्रह करनेवाली तथा दनायु को भक्षण करनेवाली बतलाते हैं। विनता भार वहन करनेवाली और ताम्रा पाश धारण करनेवाली कही जाती है। लोकमाताओं के यही स्वभाव हैं, उनके शील-सदाचारादि का समष्टि में यही परिचय है। इन सबों के धर्म, शील, सदाचारादि, बुद्धि, क्षमा, बल एवं स्वरूप से राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी प्रवृत्तियाँ उनमें पायी जाती हैं, और इस प्रकार वे धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकार के विचारोंवाली कही जाती हैं ।।३४६-३४८।। कश्यप की ये समस्त प्रजाएँ अपनी-अपनी माताओं के समान

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

[१] विस्तार के साथ फैलनेवाली लताएँ।

मातृतुल्याश्चाभिजाता: कश्यपस्याऽऽत्मजा: प्रजा: । देवतासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा: ।।
पिशाचा: पशवश्चैव मृगा: पतगवीरुध: ।।३४९।।
यस्माद्दाक्षयणीष्वेते जज्ञिरे मानुषीष्विह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु तस्माच्छ्रेष्ठास्तु मानुषा: ।।३५०।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां मानुषा: साधुकास्तु वै । ततोऽध:श्रोतसस्ते वै उत्पद्यन्ते सुरासुरा: ।।३५१।।
जायन्ते कार्यसिद्ध्यर्थं मानुषेषु पुन: पुन: । इत्येव वंशप्रभव: प्रसंख्यातस्तपस्विनाम् ।।३५२।।
सुराणामसुराणां च गन्धर्वाप्सरसां तथा । यक्षरक्ष:पिशाचानां सुपर्णोरगपक्षिणाम् ।।३५३।।
व्यालानां शिखिनां चैव ओषधीनां च सर्वश: । कृमिकीटपतङ्गानां क्षुद्राणां जलजाश्च ये ।।
पशूनां ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यलक्षण: ।।३५४।।
आयुष्यश्चैव धन्यश्च श्रीमान्हितसुखावह: । श्रोतव्यश्चैव सततं ग्राह्यश्चैवानसूयता ।।३५५।।
इमं तु वंशं नियमेन य: पठेन्महात्मनां ब्राह्मणवैद्यसंसदि ।।
अपत्यलाभं हि लभेत पुष्कलं श्रियं धनं प्रेत्य च शोभनां गतिम् ।।३५६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम नवषष्टितमोऽध्याय: ।।६९।।

स्वभाववाली तथा कुलीन थीं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, पशु, मृग, पक्षी और लता, वल्ली आदि सभी प्रजाएँ इस प्रकार की कही जाती हैं। यत: ये प्रजाएँ दक्ष की मानुषी कन्याओं में उत्पन्न हुईं अत: मन्वन्तरों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माने गये ।।३४९-३५०।। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधक मनुष्य ही हैं। उनके इस लोक (मर्त्यलोक) में सुर, असुरगण कार्य सिद्धि के लिए बारम्बार निम्नश्रोत के रूप में उत्पन्न होते हैं। तपस्वियों के वंश में उत्पन्न होनेवाले देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, पक्षियों, सर्पों, विहंगमों, व्यालों, शिखियों, सभी प्रकार की ओषधियों, कृमि, कीट-पतंगों, क्षुद्र जलजन्तुओं, पशुओं, ब्राह्मणों एवं श्रीमानों के पुण्यदायी लक्षण एवं वंश-विस्तार को मैं बतला चुका। यही उनका वर्णन है। यह वर्णन आयु प्रदान करनेवाला, धन्य, श्रीसम्पन्न, कल्याणदायी एवं सुख का साधन देनेवाला है, इसको सर्वदा निन्दा न करते हुए सुनना तथा धारण करना चाहिए। इस सृष्टि-विस्तार के वर्णन का जो मनुष्य नियमपूर्वक, महात्माओं, पण्डितों एवं ब्राह्मणों की सभा में पाठ करता है, वह सन्तति लाभ करता है, प्रचुर धन-सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा इस लोक के बाद परलोक में सुन्दर गति प्राप्त करता है ।।३५१-३५६।।

श्री वायुमहापुराण में कश्यपीयप्रजासर्ग नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।६९।।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

ऋषिवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना। प्रतिष्ठितासु सर्वासु स्थावरासु चरासु च ।।१।।
अभिषिच्याधिपत्येषु(?)तेषां मुख्यः प्रजापतिः। ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ।।२।।
द्विजातीनां वीरुधां च नक्षत्राणां ग्रहैः सह। यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।।३।।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम्। भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ।।४।।
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम्। प्रजापतीनां दक्षं च मरुतामथ वासवम् ।।५।।
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम्। नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ।।६।।
विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथाऽऽदिशत्। अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञो वैश्रवणं पतिम् ।।
यक्षाणां राक्षसानां पार्थिवानां धनस्य च ।।७।।
वैवस्वतं पितॄणां च च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्। सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ।।८।।
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्। गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा ।।९।।

अध्याय ७०

ऋषियों के वंशों का अनुकीर्तन

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! इस प्रकार महात्मा कश्यप द्वारा सभी स्थावर-जंगमात्मक प्रजाओं की सृष्टि सम्पन्न हो जाने पर एवं उनके भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाने पर सबके प्रमुख प्रजापति ब्रह्मा ने उन सबके आधिपत्य पर क्रमशः भिन्न-भिन्न को नियुक्त करने का उपक्रम किया ।।१-२।। समस्त द्विजातियों (ब्राह्मणों), वीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यक्षों एवं तपस्याओं के राजा के पद पर सोम (चन्द्रमा) को अभिषिक्त किया। सभी अंगिरा के वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया। भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद काव्य (शुक्र) को दिया। इसी प्रकार आदित्यों का राज्यपद विष्णु को, मरुतों का वासव को दिया। दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को बनाया, इसी प्रकार साध्यों का राजा नारायण को, रुद्रों का राजा वृषभध्वज (शंकर) को तथा दानवों का राजा विप्रचित्ति को नियुक्त किया। जल का राज्यपद वरुण को, राजाओं, यक्षों, राक्षसों, भूपतियों तथा धन-सम्पत्ति का स्वामित्व विश्रवा के पुत्र कुबेर को समर्पित किया। पितरों के राज्यपद पर सूर्यपुत्र यमराज को अभिषिक्त किया। सभी भूतों एवं पिशाचों का स्वामित्व शूलपाणि शंकर को समर्पित किया ।।३-८।। पर्वतों का राज्यपद हिमवान् को, नदियों का सागर को तथा गन्धर्वों का चित्ररथ को दिया। अश्वों के राज्यपद पर उच्चैःश्रवा को अभिषिक्त किया, मृगों एवं गौ,

उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानं चाभ्यषेचयत्। मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च चतुष्पदाम् ।।१०।।
पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम्। गन्धानां मारुतं चैव भूतानामशरीरिणाम् ।।११।।
शब्दाकाशबलानां च वायुं बलवतां वरम्। सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम् ।।१२।।
सरीसृपाणां सर्पाणां नागानां चैव तक्षकम्। सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षितस्य च ।।
आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ।।१३।।
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवं तथैव च। ऋतूनामथ मासानामार्तवानां तथैव च ।।१४।।
पक्षाणां च विपक्षाणां मुहूर्तानां च पर्वणाम्। कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ।।
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ।।१५।।
प्रजापतिर्वै रजसः पूर्वस्यां दिशि विश्रुतम्। पुत्रं नाम्ना सुधामानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।।१६।।
पश्चिमस्यां (मायां) दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्। केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।।१७।।
मनुष्याणामधिपतिं चक्रे वैवस्वतं मनुम्। तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ।।१८।।
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः। नृपा ह्येतेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ।।१९।।

बैल तथा अन्य चतुष्पदों का राजा सिंह को बनाया। सभी प्रकार के पक्षियों का स्वामी पक्षधारियों में श्रेष्ठ गरुड़ को नियत किया। अशरीरी भूतों एवं गन्धों का स्वामी मारुत को बनाया। शब्द, आकाश एवं बल का स्वामी बलवानों में श्रेष्ठ वायु को नियत किया। समस्त दंष्ट्राधारी सर्पों का स्वामित्व शेष को तथा नागों का स्वामी वासुकि को बनाया। सरीसृप, सर्प एवं नागों का स्वामी तक्षक को बनाया। समस्त सागरों, नदियों, मेघों, वर्षा तथा आदित्य के स्वामित्व पर अन्यतम पर्जन्य को अभिषिक्त किया ।।९-१३।। सभी अप्सरावृन्दों का स्वामी कामदेव को बनाया। ऋतुओं, मास, ऋतुओं में होनेवाले कार्य-विशेष पक्ष, विपक्ष, (?) मुहूर्त, पर्वों, कला, काष्ठा आदि के प्रमाण, दोनों अयनों की गणित एवं योग का स्वामी संवत्सर को बनाया। तदनन्तर प्रजापति ने पूर्व दिशा में सुविख्यात रज के पुत्र सुधामा को राजा बनाया। पश्चिम दिशा में रज के पुत्र महात्मा केतुमान अच्युत को राजा के पद पर अभिषिक्त किया। तदनन्तर मनुष्यों का अधिपति सूर्यपुत्र मनु को बनाया। आज भी ये अधिपतिगण इन सातों द्वीपों एवं नगरादि से समन्वित समस्त पृथ्वीमण्डल में अपने-अपने प्रदेशों में धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हैं ।।१४-१८।। पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा ने इस सबों को राज्यपद पर अभिषिक्त किया था, प्रत्येक मन्वन्तरों में जो मनु होते हैं, वे ही राज्यपद पर अभिषिक्त होते हैं। इन व्यतीत मन्वन्तरों में कितने राजागण बीत चुके हैं। इसी प्रकार भावी मन्वन्तरों के आने पर अन्यान्य अभिषिक्त किये जायँगे। जितने भूतकालीन एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में होनेवाले राजा लोग हैं, वे सब मन्वन्तरों के अधीश्वर कहे जाते हैं। इन्हीं नरपतियों ने प्रतापशाली राजा पृथु को वेदविहित विधि से राजसूय यज्ञ

मन्वन्तरेष्वतीतेषु मता ह्येतेषु पार्थिवाः । एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुनः ।।
अतीतानागताः सर्वे स्मृता मन्वन्तरेश्वराः ।।२०।।
राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः । वेददृष्टेन विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ।।२१।।
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात् । पुनरेव महाभागः प्रजानां पतिरीश्वरः ।।२२।।
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परमं तपः । पुत्रो गोत्रकरो मह्यं भवेतामित्यचिन्तयत् ।।२३।।
तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः । ब्रह्मणोंऽशौ सुतौ पश्चात्प्रादुर्भूतौ महौजसौ ।।२४।।
वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ । वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः ।।२५।।
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत । च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधाः समपद्यत ।।२६।।
निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् । असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ।।२७।।
शाण्डिल्यानां वचः श्रुत्वा देवलः सुमहायशाः । निध्रुवाः शण्डिला रैभ्ययास्त्रः पश्चात्तु कश्यपाः ।।२८।।
वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्विमाः । चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनोर्ह्येकादशे प्रजाः ।।
अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तते ।।२९।।
मानसस्य च रिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दमः किल । मानसस्तस्य दायादस्तृणबिन्दुरिति श्रुतः ।।३०।।

के अवसर पर राजा के पद पर अभिषिक्त किया। समस्त प्रजाओं के स्वामी परम ऐश्वर्यवान् कश्यप ने प्रजावृद्धि के लिए इन पुत्रों को उत्पन्न कर पुनः पुत्र कामना से परम कठोर तप करना प्रारम्भ किया और यह चिन्तन किया कि मेरे दो गोत्रवृद्धि करनेवाले पुत्र उत्पन्न हों ।।१९–२३।। इस प्रकार कश्यप के विशेष मनोयोगपूर्वक ध्यानावस्थित होने पर महात्मा कश्यप के ब्रह्मा के अंशभूत दो महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम वत्सार और असित थे, दो के दोनों ही ब्रह्मचिन्तन में लीन रहनेवाले थे। वत्सार से निध्रुव एवं महान् यशस्वी रैभ्य का जन्म हुआ, रैभ्य की सन्ततियों को रैभ्यगण नाम से जानना चाहिए, निध्रुव की सन्ततियों का विवरण सुनिये। च्यवन से सुकन्या में सुमेधा की उत्पत्ति हुई ।।२४–२६।। निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायिगणों की माता थी। असित से एकपर्णा नामक पत्नी में ब्रह्मिष्ठ का जन्म हुआ। शांडिल्यों की बातें सुनकर देवल परमयशस्वी हुए। निध्रुवगण, शाण्डिल्यगण और रैभ्यगण–ये तीनों कश्यपगोत्रीय थे। ये वर प्रभृति देवगण देवल की सन्ततियाँ हैं। ''मनु[१] के ग्यारहवें चतुर्युग के व्यतीत हो जाने पर अर्थात् ग्यारह बार चारों युगों के व्यतीत हो जाने पर, जब द्वापर युग शेष रह जाता है, तब उसमें इन प्रजाओं (?) की सृष्टि हुई'' ।।२७–२९।। मानस के पुत्र रिष्यन्त हुए और उनके पुत्र दम नाम से विख्यात हुए। उनके भी पुत्र मानस कहे गये, जो तृणबिन्दु नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में वह राज्यपद

---

[१] यह अप्रासंगिक अंश प्रक्षिप्त जान पड़ता है, बँगला प्रति में इसका पाठ नहीं है। पर आनन्दाश्रम की प्रति ही यतः हमारे सामने आदर्श रूप में थी, अतः शाब्दिक अनुवाद मात्र कर दिया गया; पर संगति नहीं बैठती।

त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह। तस्य कन्या त्विडिविला रूपेणाप्रतिमाऽभवत्।।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ।।३१।।
ऋषिरिडिविलायां तु विश्रवाः समपद्यत। तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः।।३२।।
बृहस्पतेबृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्य कीर्तिता। कन्यां तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम्।।३३।।
पुष्पोत्कटां च वाकां च सूते माल्यवतः स्थिते। कैकसीं मालिनः कन्यां तासां तु शृणुत प्रजाः।।३४।।
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी। दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च।।
राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ।।३५।।
त्रिपादं सुमहाकायं स्थूलशीर्षं महातनुम्। अष्टदंष्ट्रं हरिच्छ्मश्रुं शङ्कुकर्णावलेहितम्।।३६।।
ह्रस्वबाहुं प्रबाहुं च पिङ्गलं सुविभीषणम्। वैवर्तज्ञानसंपन्नं संबुद्धं ज्ञानसंपदा।।३७।।
एवंविधं सुतं दृष्ट्वा विश्वरूपधरं तथा। पिता दृष्ट्वाऽब्रवीत्तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम्।।३८।।
कुत्सायां क्वितिशब्दोऽयं शरीरं बेरमुच्यते। कुबेरः कुशरीरत्वान्नाम्ना तेन च सोऽङ्कितः।।३९।।
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव। तस्माद्वैश्रणो नाम नाम्ना लोके भविष्यति।।४०।।
ऋद्ध्यां कुबेरोऽजनयद्विश्रुतं नलकूबरम्। रावणं कुम्भकर्णं च कन्यां शूर्पणखां तथा।।
बिभीषणचतुर्थांस्तान्कैकस्यजनयत्सुताम् ।।४१।।

पर प्रतिष्ठित था। उसकी कन्या इडिविला अपने सौन्दर्य में अनुपम थी। राजर्षि ने अपनी उस कन्या को पुलस्त्य को समर्पित किया ।।३०–३१।। इडिविला में ऋषि विश्रवा की उत्पत्ति हुई। उनकी चार पत्नियाँ थीं जो पुलस्त्य वंश में उत्पन्न होनेवाले ऋषियों की वंश वृद्धि करनेवाली हुईं। देवाचार्य बृहस्पति की एक परम यशस्विनी कन्या थी, उसका नाम था देववर्णिनी। बृहस्पति की उस कन्या के साथ उसने (विश्रवा ने) विवाह किया। माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका नामक कन्याओं के साथ भी उसने विवाह किया तथा माली की कैकसी नामक कन्या को भी विवाहा। उन सबों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं को सुनिये। सबसे ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर) को देववर्णिनी ने उत्पन्न किया ।।३२–३४$\frac{१}{२}$।। उसका विधान देवताओं का था, श्रुतिज्ञान ऋषियों का था, रूप राक्षसों का था, बल असुरों का था, तीन चरण थे, विशाल शरीर था, सिर बहुत बड़ा था, आठ दाँत थे, दाढ़ी हरे वर्ण की थी, कान खूँटे की तरह थे, लाल वर्ण था, एक बाहु छोटा और एक बहुत बड़ा था। देखने में पीले वर्ण का तथा परमभयानक लगता था। उसे जगत् की माया आदि का पूर्ण ज्ञान था, ज्ञान सम्पत्ति से पूर्ण समृद्ध था, इस प्रकार के विश्वरूपधारी पुत्र को देखकर पिता ने कहा, यह स्वयं कुबेर है, कुशब्द कुत्सित अर्थ का वाची है, अर्थात् कु के अर्थ होते हैं भद्दा, और बेर शरीर को कहते हैं, यतः इसका बेर (शरीर) कुत्सित (देखने में भद्दा) है अतः कुबेर नाम से यह अभिहित किया गया। यतः यह विश्रवा का पुत्र है और उसकी आकृति भी विश्रवा ही के समान है, अतः लोक में वैश्रवण के नाम से इसकी ख्याति होगी ।।३५–४०।। कुबेर ने ऋद्धि नामक पत्नी में नलकूबर को उत्पन्न किया, जो परम विख्यात हुआ। इसके

शङ्कुकर्णो दशग्रीवः पिङ्गलो रक्तमूर्धजः । चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबलः ।।४२।।
जात्याऽञ्जननिभो दंष्ट्री लोहितग्रीव एव च । राजसेनो यथा युक्तो रूपेण च बलेन च ।।४३।।
सत्यबुद्धिर्दृढतनू राक्षसैरेव रावणः । निसर्गाद्दारुणः क्रूरो रावणाद्रावणस्तु सः ।।४४।।
हिरण्यकशिपुस्त्वासीत्स राजा पूर्वजन्मनि । चतुर्युगानि (णि) राजाऽत्र त्रयोदश स राक्षसः ।।४५।।
ताः पञ्च कोट्यो वर्षाणामाख्याताः संख्यया द्विजैः । नियुतान्येकषष्टिश्च संख्याविद्भिरुदाहृता ।।४६।।
षष्टिं शतसहस्राणि वर्षाणां तु स रावणः । देवतानामृषीणां च घोरं कृत्वा प्रजागरम् ।।४७।।
त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् । रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयिवान् ।।४८।।
महोदरः प्रहस्तश्च महापांशुः खरस्तथा । पुष्पोत्कटायाः पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ।।४९।।
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः । कन्या ह्यसलिका चैव वाकायाः प्रसवाः स्मृताः ।।५०।।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश । दारुणाभिजनाः सर्वे देवैरपि दुरासदाः ।।५१।।
सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विताः । यक्षाणां चैव सर्वेषां पौलस्त्या ये च राक्षसाः ।।५२।।
आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम् । वेदाध्ययनशीलानां तपोव्रतनिषेविणाम् ।।५३।।
तेषामैडविलो राजा पौलस्त्यः सव्यपिङ्गलः । इतरे वै यज्ञमुखास्तेन रक्षोगणास्त्रयः ।।५४।।

अतिरिक्त कैकसी ने रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण–इन चार सन्ततियों को जन्म दिया। उस रावण का कान खूँटे की भाँति था, दस उसके कण्ठ थे, पिंगल वर्ण का था, बाल लाल रंग के थे, जन्म से ही कज्जल के समान काला था, बड़े-बड़े दाँत थे, कण्ठ प्रदेश लाल रंग का था, रूप और बल से समन्वित था, उसकी सेना यथार्थतः बलवान् थी, सत्य बुद्धि था, शरीर दृढ़ था, सर्वदा राक्षसों से ही युक्त रहता था, स्वभाव से ही वह परम दारुण एवं क्रूर था, बहुत जोर से रव (शब्द) करने के कारण वह रावण नाम से विख्यात था ।।४१-४४।। पूर्व जन्म में वह हिरण्यकशिपु नाम से दैत्यों का राजा था। वह राक्षसराज चारों युगों तक राज्य करता रहा और राक्षसों के राजाओं में वह तेरहवाँ था (?) उसके राज्यकाल की अवधि संख्या जाननेवाले पण्डितों ने पाँच करोड़ इकसठ नियुत (?) बतलाया है। साठ लाख वर्षों तक वह रावण देवताओं और ऋषियों को खूब जगाकर अर्थात् अति कष्ट देकर चौबीसवें त्रेतायुग में अपनी तपस्या के नष्ट हो जाने पर दशरथपुत्र रामचन्द्र के हाथों सैन्य समेत विनष्ट हुआ ।।४५-४८।। पुष्पोत्कटा के महोदर, प्रहस्त, महापांशु और खर नामक पुत्र तथा कुम्भीनसी नामक कन्या उत्पन्न हुई। वाका की सन्ततियों में त्रिशिरा, दूषण, विद्युज्जिह्व, राक्षस नामक पुत्र तथा असलिका नामक कन्या सुप्रसिद्ध हैं। ये उपर्युक्त दस पुलस्त्य के वंश के क्रूरकर्म करनेवाले राक्षस जो घोर आवास स्थानों में निवास करनेवाले देवताओं से भी दुर्दम्य थे। इडविला के वंश में उत्पन्न होनेवाला महर्षि पुलस्त्य का गोत्रीय, बायें अंग में पिंगलवर्णवाला वह कुबेर सभी यक्षों का, पुलस्त्य गोत्र में उत्पन्न होनेवाले समस्त राक्षसों का तथा अगस्त्य और विश्वामित्र के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले वेदाध्यायी, तपस्या,

यातुधाना ब्रह्मधाना वार्ताश्चैव दिवाचराः। निशाचरगणास्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः ।।५५।।
पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा। इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः ।।५६।।
तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम्। वृत्ताक्षाः पिङ्गलाश्चैव महाकाया महोदराः ।।५७।।
अष्टदंष्ट्राः शङ्कुकर्णा ऊर्ध्वरोमाण एव च। आकर्णदारितास्याश्च मुञ्जधूमोर्ध्वमूर्धजाः ।।५८।।
स्थूलशीर्षाः सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रबाहुकाः। ताम्रास्या लम्बजिह्वोष्ठा लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ।।५९।।
नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा बिभीषणाः। महाघोरस्वराश्चैव विकटा बद्धपिण्डिकाः ।।६०।।
स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासंहनना दृढाः। दारुणाभिजनाः क्रूराः प्रायशः क्लिष्टकर्मिणः ।।६१।।
सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिणः। विचित्रवस्त्राभरणाश्चित्रस्त्रगनुलेपनाः ।।६२।।
अन्नादाः पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः। इत्येतद्रूपसाधर्म्यं राक्षसानां बुधैः स्मृतम् ।।
न समस्तबलं बुद्धं यतो मायाकृतं हि तत् ।।६३।।

व्रत आदि में निष्ठा रखनेवाले किन्तु क्रूरकर्मा ब्रह्मराक्षसों का राजा था। अन्य राक्षसगण यज्ञमुख हैं, इस प्रकार ये तीन प्रकार के कहे जाते हैं। यातुधान, ब्रह्मधान, और वार्ता–ये दिन में गमन करनेवाले हैं। कवियों ने इन तीनों के अतिरिक्त निशाचरगणों को चौथे राक्षसगणों में स्मरण किया है ।।४९–५५।। पुलस्त्य के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले नैर्ऋत अगस्त्य गोत्रीय तथा कौशिक विश्वामित्र गोत्रीय–ये सब सात प्रकार की राक्षसों की भिन्न-भिन्न जातियाँ कही गयी हैं। इन सबों के स्वभावगत स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ। ये राक्षसगण गोली आँखोंवाले, पिंगलवर्ण, महाकाय, विशाल उदर, आठ दाँत, शंकु के समान कानवाले एवं ऊर्ध्वरोमा थे। उनके मुख कान तक फटे हुए थे, किसी–किसी के बाल मूँज के समान तथा किसी–किसी के धुएँ के समान थे। सिर बहुत बड़े थे, देखने में किसी–किसी की शोभा श्वेतवर्ण की मालूम पड़ती थी। कोई–कोई बहुत छोटे थे और कोई बहुत बड़ी–बड़ी बाहुओंवाले थे। किसी के मुख ताँबे के समान लाल और जिह्वा तथा ओंठ लम्बे–लम्बे थे। भौंहें लम्बी और नाकें मोटी थीं ।।५६–५९।। किसी के अंग नील वर्ण के थे, किसी की ग्रीवा लाल वर्ण की थी, किसी की आँखें निश्चल तथा गंभीर थीं। देखने में परम भयानक थे। स्वर परम कठोर एवं दारुण थे। परम विकट तथा समूह बाँधकर चलनेवाले थे। कोई–कोई परम स्थूलकाय, उठी हुई नासिकावाले, शिला के समान कठोर शरीरवाले एवं दृढ़ थे। ये सब राक्षसगण प्रायः अति दारुण निवास-स्थल में रहनेवाले तथा कठोर कर्मी थे। कुण्डल, अंगद तथा माला पहनते थे। मुकुट और पगड़ी बाँधते थे। विचित्र रंग के उनके वस्त्र थे, इसी प्रकार आभूषण, माला, चन्दनादि सब कुछ विचित्र थे। वे राक्षसगण अन्न भक्षण करते थे। मांस भी खाते थे यहाँ तक कि मनुष्यों तक को खा जाते थे–ऐसा लोग कहते हैं। पण्डित लोग उनके स्वरूप, शील, स्वभाव आदि के बारे में ऐसा ही स्मरण करते हैं। उनके समस्त बल एवं पराक्रम का मान किसी को नहीं मालूम है, क्योंकि वे सब–के–सब मायावी हैं ।।६०–६३।। पुलह के पुत्र सभी प्रकार के मृग, व्याल एवं दंष्ट्राधारी

पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः । भूताः पिशाचाः सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिनस्तथा ।।६४।।
वानराः किंनराश्चैव मयूकिंपुरुषास्तथा । * येऽन्ये चैव परिक्रान्ता मायाक्रोधवशानुगाः ।।६५।।
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन्स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे । न तस्य पुत्रः पौत्रो वा तेजः संक्षिप्य वा स्थितः ।।६६।।
अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः । तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्यो दशैवाऽऽसन्पतिव्रताः ।।६७।।
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः । भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा ।।६८।।
वेला खला च सप्तैता या च गोचपला स्मृता । तथा मानरसा चैव रत्नकूटा च ता दश ।।६९।।
आत्रेयवंशकृत्तासां भर्ता नाम्ना प्रभाकरः । भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम् ।।७०।।
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् । तमोभिभूते लोकेऽस्मिन्प्रभा येन प्रवर्तिता ।।७१।।
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तः स पतन्निह दिवाकरः । ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम् ।।७२।।
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः । यज्ञेष्वत्रिघनश्चैव सूरैर्यश्च प्रवर्तितः (?) ।।७३।।
सता स्वजनयत्पुत्रानात्मतुल्याननामकान् । दश तास्वेव महता तपसा भावितप्रभाः ।।७४।।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः । तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ ।।७५।।

जीव हुए। इनके अतिरिक्त भूत, पिशाच, सर्प, भ्रमर, हस्ती, वानर, किन्नर, मयूर, किंपुरुष तथा अन्यान्य मायावी एवं सर्वदा क्रोध के वश में रहनेवाले जीव निकाय उत्पन्न हुए–वे सब पुलह की सन्तति हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में महर्षि क्रतु को ही कोई संतति नहीं थी। न तो कोई पुत्र था, न पौत्र, अपने तेज (बल ब्रह्मचर्य) को समेटकर वे अपने आपमें अवस्थित थे, अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे ।।६४–६६।। अब तृतीय प्रजापति अत्रि के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी दस स्त्रियाँ थी, जो सब परम सुन्दरी एवं पतिव्रता थीं। घृताची नामक अप्सरा में भद्राश्व को दस सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं। जिनके नाम थे, भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, बेला, खला–ये सात तथा आठवीं गोचपला के नाम से विख्यात हुई। मानरसा नवीं और रत्नकूटा दसवीं सन्तति थी। इन सबों का स्वामी एवं अत्रि के वंश में उत्पन्न होनेवालों का गोत्रकर्त्ता प्रभाकर नाम से विख्यात था, उसने भद्रा में परम यशस्वी पुत्र सोम को उत्पन्न किया ।।६७–७०।। एक बार राहु द्वारा आहत होकर जब सूर्य आकाश से पृथ्वी की ओर गिरने लगे और यह समस्त भूलोक अन्धकार में आच्छन्न हो गया उस समय जिसने प्रकाश दान किया वह यही सोम थे। आकाशमण्डल से इस पृथ्वी तल पर गिरते हुए दिवाकर को महर्षि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। उनके इस आशीर्वचन से वे आकाश से पृथ्वी पर नहीं गिरे। महातपस्वी अत्रि ने जिन श्रेष्ठ गोत्रों का प्रवर्तन किया, (उन्हें बता रहा हूँ) देवताओं द्वारा जो प्रवर्तित होना है–ऐसे यक्षों में? (वे भाग प्राप्त करते हैं) (?) उन दसों स्त्रियों में उसने अपने ही समान दस पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम नहीं थे। उन दसों स्त्रियों में उत्पन्न होनेवाले वे दस पुत्रगण अपनी महान् तपस्या के कारण परम

---

* एतदर्धस्थानोऽपाठः–प्रायोऽन्योयः परिक्रान्तो मयाक्रोश वशान्वय इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः। यवीयसी सुता तस्यामबला ब्रह्मवादिनी ।।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिकाः पुरा ।।७६।।
अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम्। दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।।७७।।
तस्य गोत्रान्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि। श्यामाश्च मुद्गलाश्चैव बलारकगविष्ठिराः ।।
एते नृणां तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसाम् ।।७८।।
कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा। जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तान्निबोधत सत्तमाः ।।७९।।
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत्। ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः ।।८०।।
पुरा देवासुरे तस्मिन्सङ्ग्रामे तारकामये। अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रे सुरैः सह ।।
वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः ।।८१।।
अन्नौषधं मूलफलमोषधीश्च प्रवर्तयन्। तास्तेन जीवयामास कारुण्यादौषधेन तु ।।८२।।
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयद्द्विजाः। सागरं जनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम्? ।।८३।।
काला पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्। द्वैपायनादरण्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः ।।८४।।
उत्पद्यन्ते च पीवर्यां षडिमे शुकसूनवः। भूरिश्रवा प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ।।८५।।

कान्तिमान् थे, वेदों के पारगामी विद्वान् थे, कल्याणदायी, अत्रि वंशोत्पन्न ऋषियों के रूप में विख्यात थे। उनके परम विख्यात यशस्वी, ब्रह्मवादी, महातेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ज्येष्ठ दत्तात्रेय थे और दुर्वासा उनके अनुज थे। उसमें एक कनिष्ठ अबला नामक ब्रह्मवादिनी पुत्री थी। प्राचीन काल से पुराणों के जाननेवाले इस गौरव गाथा का गान करते आये हैं कि अत्रि के निष्पाप, शान्तचित्त, महात्मा पुत्र दत्तात्रेय भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं–ऐसा पुराणज्ञ लोग कहते हैं ।।७१–७७।। उनके गोत्र में उत्पन्न होनेवाले चार वंश पृथ्वी पर विख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनके नाम हैं, श्याम, मुद्गल, बलारक और गविष्ठिर। महान् तेजस्वी मनुष्यों के ये चार वंश गोत्र कर्त्ता हैं। कश्यप से नारद, पर्वत तथा अरुन्धती की उत्पत्ति हुई। हे पण्डितगण! अरुन्धती में उत्पन्न होनेवाली सन्ततियों का विवरण सुनिये। नारद ने अरुन्धती को वसिष्ठ को समर्पित किया। नारद महान् तेजस्वी एवं नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतपरायण थे। प्राचीनकाल में दक्ष के शाप के कारण जब देवताओं और असुरों में विख्यात तारकामय नामक संग्राम छिड़ा था, और अनावृष्टि के कारण समस्त लोक ध्वस्त हो गया था और देवताओं समेत देवराज इन्द्र व्याकुल हो गये थे, उस समय परम बुद्धिमान् वसिष्ठ ने अपने तपोबल से प्रजाओं की रक्षा की थी ।।७८–८१।। उस समय उन्होंने अन्न, ओषधि, मूल, फल आदि की रचना की और अति करुणावश उन्हीं ओषधियों द्वारा प्रजावर्ग को जीवित रखा था। द्विजवृन्द! वसिष्ठ ने अरुन्धती में शक्ति को उत्पन्न किया। अदृश्यन्ती (?) ने शक्ति के संयोग से पराशर को जन्म दिया। काली ने पराशर के संयोग से परम ऐश्वर्यशाली कृष्णद्वैपायन को उत्पन्न किया। द्वैपायन के संयोग से अरणी में परम गुणवान् शुक की उत्पत्ति

कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता दृढव्रता । जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सात्वगुहस्य च ।।८६।।
श्वेताः कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्राः समूलिकाः । ऊष्मपा द्वारकाश्चैव नीलाश्चैव पराशराः ।।
पाराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम् ।।८७।।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसंभवम् । वसिष्ठस्य कपिञ्जल्यां घृताच्यां समपद्यत ।।
कुशीतिया समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ।।८८।।
पृथोः सुतायाः संभूतः पुत्रस्तस्याभवद्वसुः । उपमन्युः सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यवः ।।८९।।
मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुताः । एकार्षेयास्यथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुताः ।।
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता एकादशैव तु ।।९०।।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुताः । भ्रातरः सुमहाभागा येषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ।।९१।।
त्रींल्लोकान्धारयन्तीमान्देवर्षिगणसंकुलान् । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्त्रशः ।।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ।।९२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपाद ऋषिवंशानुकीर्तनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।।७०।।

हुई। पीवरी में शुक के ये छह पुत्र उत्पन्न हुए, भूरिश्रवा, प्रभु, शंभु, कृष्ण और पाँचवें गौर ।।८२-८५।। कीर्तिमती नामक कन्या भी उत्पन्न हुई जो योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाली तथा दृढ़व्रत परायण थी। वह ब्रह्मदत्त की माता और सात्वगुह की स्त्री हुई। श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, धूम्र, समूलिक, ऊष्मपान करनेवाले द्वारक तथा नील-ये आठ पराशर गोत्र में उत्पन्न होनेवाले महापुरुषों के गोत्र कर्त्ता हैं। अब इसके उपरान्त इन्द्रप्रतिम के पुत्रों का विवरण सुनिये। कपिञ्जली घृताची में वशिष्ठ के कुशीति (क्रणति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इन्द्रप्रतिम नाम से प्रसिद्ध है ।।८६-८८।। पृथु की पुत्री में उनके वसु नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र उपमन्यु हुआ, जिनके वंश में उत्पन्न होनेवाले ये उपमन्यु गोत्रीय हैं। मित्रावरुण के वंश में उत्पन्न होनेवाले जो कुण्डी नाम से विख्यात वंशधर हैं, वे एक ही मूल ऋषि के वंशधर हैं और अन्य वशिष्ठ नाम से विख्यात हैं। वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होनेवालों के ग्यारह गोत्र कर्त्ता हैं। ये उपर्युक्त आठ ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में विख्यात हैं और ये सब लोग महाभाग्यशाली हैं, इनके वंश आज तक भूमण्डल पर प्रतिष्ठित हैं। देवताओं तथा ऋषि वृन्दों से संकुलित इन तीनों लोकों को ये धारण करते हैं। उनके उन पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या सैकड़ों ही नहीं सहस्त्रों तक है, जिन्होंने सूर्य की किरणों की भाँति समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर रखा है ।।८९-९२।।

श्रीवायुमहापुराण में ऋषिवंशानुकीर्तन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७०।।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धप्रक्रियारम्भः

* एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य विदितात्मनः। उत्तरं परिपप्रच्छुः सूतसूत्रं द्विजातयः ।।१।।

शांशपायन उवाच

कथं द्वितीयमुत्पन्ना भवानी प्राक्सती तु या। आसीद्दाक्षायणी पूर्वमुमा कथमजायत ।।२।।
मेनायां पितृकन्यायां जनयामास शैलराट्। के चैते पितरश्चैव येषां मेना तु मानसी ।।३।।
मैनाकश्चैव दौहित्रो दौहित्री च तथा ह्युमा। एकपर्णा तथा चैव तथा या चैकपाटला ।।४।।
गङ्गा चैव सरिच्छ्रेष्ठा सर्वासां पूर्वजा तथा। पूर्वमेव मयोद्दिष्टं शृणुत्वं मम सर्वशः ।।५।।
क एते पितरश्चैव वर्तन्ते क्व च वा पुनः। श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते श्राद्धस्य च परं विधिम् ।।६।।
पुत्राश्च ते स्मृताः केषां कथं च पितरस्तु ते। पितरः कथमुत्पन्नाः कस्य पुत्राः किमात्मकाः ।।७।।
स्वर्गे तु पितरोऽन्ये ये देवानामपि देवताः। एवं वै श्रोतुमिच्छामि पितॄणां सर्वमुत्तमम् ।।
यथावद्दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ।।८।।

अध्याय ७१

श्राद्ध की प्रक्रिया

तदनन्तर आत्मज्ञानी सूत की ये बातें सुन ब्राह्मणों ने (सूत) से पूछा ।।१।।

शांशपायन ने कहा–सूत जी! भव (महादेव) की प्रिया, जो पहले सती रूप में थीं, द्वितीय बार किस प्रकार उत्पन्न हुईं। पूर्व जन्म में वे दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं, बाद में वे उमा रूप में कैसे उत्पन्न हुईं। शैलराज हिमवान् ने उन्हें पितरों की कन्या मेना में उत्पन्न किया–ऐसी प्रसिद्धि है। वे पितरगण कौन हैं, जिनकी मानसी कन्या मेना हैं ? मैनाक उनका दौहित्र है, तपस्या के समय एक पर्ण पर जीवन रेखनवाली उमा उनकी दौहित्री है, सबों की पूर्वज समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ सुरसरि उनकी सबसे बड़ी सन्तति है,–इन सब बातों को तो हम लोग बहुत पहले ही से सुन चुके हैं। पर हमारी यह जिज्ञासा आप सुनिये कि ये पितरगण कौन हैं ? कहाँ निवास करते हैं ? इनके श्राद्धादि की विधियाँ क्या हैं–इन सब बातों को हम जानना चाहते हैं, आपका कल्याण हो ।।२–६।। ये किसके पुत्र हैं, और किस कारण वंश पितर नाम से विख्यात हैं ? ये लोग कैसे उत्पन्न हुए ? किसके पुत्र हैं ? कैसा इनका स्वरूप है ? स्वर्ग में जो पितर निवास करते हैं, वे देवताओं के भी देवता (पूज्य) कहे जाते हैं, वे कौन हैं ? इन सब पितरों की सृष्टि (उत्पत्ति) सम्बन्धी कल्याणदायिनी उत्तम बातें हम लोग सुनना चाहते हैं। हम लोग श्रद्धा एवं विधिपूर्वक उन पितरों को जो कुछ अर्पित करते हैं, वह वस्तुएँ उन्हें (पितरों) प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखती हैं। वे लोग दृष्टिगोचर नहीं होते–इसका क्या कारण प्रसिद्ध है ।।७–८$\frac{1}{2}$।। कौन

---

* एतस्मात्पूर्वं सूत उवोचेति ख. पुस्तके।

यदर्थं ते न दृश्यन्ते तत्र किं कारणं स्मृतम्। स्वर्गे हि के तु वर्तन्ते पितरो नरके तु के ।।९।।
अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा। पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नामतः ।।१०।।
कानि श्राद्धानि देयानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन्। कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः ।।११।।
के चेह पितरो नाम कान्यजामो वयं पुनः। देवा अपि पितॄन्स्वर्गे यजन्तीति हि नः श्रुतम् ।।१२।।
एतदिच्छामि वै श्रोतुं विस्तरेण बहुश्रुत। स्पष्टाभिधानमर्थं वै तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।१३।।
ऋषीणां तु वचः श्रुत्वा सूतस्तत्त्वार्थदर्शिवान्। आचचक्षे यथाप्रश्नं ऋषीणां मानसं ततः ।।१४।।

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्। मन्वन्तरेषु जायन्ते पितरो देवसूनवः ।।१५।।
अतीतानागते ज्येष्ठाः कनिष्ठा क्रमशस्तु ते। देवैः सार्धं पुराऽतीताः पितरो येऽन्तरेषु वै ।।
वर्तन्ते सांप्रतं ये तु तान्वै वक्ष्यामि निश्चयात् ।।१६।।
श्राद्धं चैषां मनुष्याणां श्राद्धमेव प्रवर्तते। देवानसृजत ब्रह्मा नायक्षन्निति वै पुनः ।।
तमुत्सृज्य तदात्मानससृजंस्ते फलार्थिनः ।।१७।।
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ। न स्म किंचिद्विजानन्ति ततो लोको ह्यमुह्यत ।।१८।।

से पितरगण स्वर्ग में निवास करनेवाले हैं और कौन से नरक में। पिता को, पिता के पिंता को, पिता के पितामह को तीनों पिण्डदानों में नामोच्चारणपूर्वक विधिसमेत कौन-कौन से श्राद्ध देने चाहिए, अर्थात् किन-किन श्राद्धों में पितामह तथा प्रपितामह का नाम लेकर तीन पिण्डदान किये जाते हैं। ये श्राद्धादि में दी गयी वस्तुएँ पितरों को किस प्रकार प्राप्त होती हैं और जो स्वयमेव नरक में निवास करते हैं, वे किस प्रकार फलप्रदान में समर्थ हो सकते हैं ? ये पितर नामधारी कौन हैं ? किनकी हम पूजा करें। हमने ऐसा सुना है कि स्वर्ग लोक में देवगण भी पितरों की पूजा तथा श्राद्धादि किया करते हैं। हे बहुश्रुत! इस विषय को हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं ? इस सबों का स्पष्ट अभिप्राय आप बतलाइये। ऋषियों की ऐसी बातें सुन तत्त्वार्थदर्शी उन ऋषियों के प्रश्नगत एवं मनोगत जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए बोले ।।९-१४।।

सूत ने कहा-ऋषिवृन्द! आप लोगों की पूछी हुई बातों का उत्तर अपनी बुद्धि एवं श्रुति के आधार पर दे रहा हूँ। प्रत्येक मन्वन्तरों में ये क्रमशः ज्येष्ठ और कनिष्ठ रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। व्यतीत मन्वन्तरों के जो पितरगण, देवताओं के साथ उत्पन्न हुए थे और अतीत हो चुके, उन्हें तथा सम्प्रति जो पितरगण विद्यमान हैं, उन दोनों को निश्चयपूर्वक बतला रहा हूँ। मनुष्यों द्वारा श्रद्धापूर्वक दी गयी वस्तुएँ ही श्राद्ध कही जाती हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने देवताओं की सृष्टि की तो उन लोगों ने पूजा आदि कुछ भी नहीं किया और उनको छोड़कर स्वार्थ में लिप्त हो अपने ही सृष्टि-विस्तार में लग गये। तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि मूढ़ो! तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम लोग कुछ भी नहीं जानते। ब्रह्मा के ऐसे शाप दे देने के उपरान्त समस्त लोक मोहवश हो गया। वे सब पुनः विनम्र हुए और पितामह से याचना करने लगे। प्रभु ब्रह्मा ने लोक पर अनुग्रह करने की भावना से उन देवताओं से पुनः कहा ।।१५-१८।। तुम लोगों ने महान्

ते भूयः प्रणताः सर्वे याचन्ति स्म पितामहम् । अनुग्रहाय लोकानां पुनस्तानब्रवीत्प्रभुः ।।१९।।
प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः । पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ।।२०।।
ततस्ते स्वान्सुतांश्चैव प्रायश्चित्तजिघृक्षवः । अपृच्छसंयतात्मानो विधिवच्च मिथो मिथः ।।२१।।
तेभ्यस्ते नियतात्मानः प्रशशंसुरनेकधा । प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि तु ।।२२।।
ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धासंज्ञा दिवौकसः । यूयं वै पितरोऽस्माकं ये वयं प्रतिबोधिताः ।।
धर्मज्ञानं च कामश्च को वरो वः प्रदीयताम् ।।२३।।
पुनस्तानब्रवीद्ब्रह्मायूयं वै सत्यवादिनः । तस्माद्यद्युक्तं युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा ।।२४।।
उक्तं च पितरोऽस्माकमिति वै तनया स्वकाः । पितरस्ते भविष्यन्ति तेभ्योऽयं दीयतां वरः ।।२५।।
तेनैव वचसा पुत्रा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः ।।२६।।
तस्मात्ते पितरः पुत्राः पितृत्वं तेषु तत्स्मृतम् । एवं स्मृत्वा पितॄन्पुत्रान्पुत्राश्च पितरस्तथा ।।
व्याजहार पुनर्ब्रह्मा पितॄनात्मविवृद्धये ।।२७।।
यो ह्यनिष्ट्वा पितॄञ्श्राद्धे क्रियां कांचित्करिष्यति । राक्षसा दानवाश्चैव फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ।।२८।।
श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् । आप्यायमाना युस्माभिर्वर्धयिष्यन्ति नित्यशः ।।२९।।

पाप एवं अत्याचार किया है, उसका प्रायश्चित्त करो और उसका विधान अपने-अपने पुत्रों से पूछो। तब तुम लोगों को ज्ञान-प्राप्ति होगी। तब प्रायश्चित्त करने को इच्छुक उन देवताओं ने आत्मा को स्ववश रख अपने पुत्रों से प्रायश्चित्त की विधियाँ बारम्बार पूछीं। धर्मज्ञ एवं जितेन्द्रिय देवपुत्रों ने उन देवताओं को मनसा, वाचा, कर्मणा सम्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान बतलाया। पुत्रों द्वारा प्रायश्चित्तों की शिक्षा प्राप्तकर उन देवताओं को पुनः चेतना प्राप्त हुई और उन्होंने अपने पुत्रों से निवेदन किया कि तुम लोग ही हम सबों के पिता हो, क्योंकि तुम्हीं द्वारा हमें ज्ञान एवं चेतना की प्राप्ति हुई। तुम लोगों को धर्म, ज्ञान एवं काम-किस वस्तु का वरदान हम लोग दें, बतलाओ ।।२०-२३।। देवताओं के ऐसे मनोभावों को देखकर ब्रह्मा ने पुनः उनसे कहा, तुम लोग सत्यवादी हो अतः जो कुछ तुम्हारे मुख से निकला है वह सब कुछ घटित होगा, कुछ भी अन्यथा न होगा। यतः तुम लोगों ने स्वयं अपने पुत्रों को अपना पिता कहा है, अतः वे तुम्हारे पिता हों-यही वर उन्हें दो ।।२४-२५।। परमेष्ठी पितामह की उसी बात से वे देवपुत्रगण पितृकोटि में आ गये और उनके पितृगण पुत्रकोटि में आ गये। इसी कारणवश वे पितरगण पुत्र (देवपुत्र) कहे जाते हैं, और उनमें पुत्र होने पर भी पितृत्व कहा जाता है। इस प्रकार पितरों को पुत्र रूप में और पुत्रों को पितररूप में स्मरण कर पितामह ब्रह्मा ने अपने वंश की वृद्धि के लिए पुनः पितरों से कहा ।।२६-२७।। श्राद्ध कर्म में जो पितरों की पूजा बिना किये ही अन्य क्रिया का अनुष्ठान करता है, उसकी उस क्रिया का फल राक्षस तथा दानवों को प्राप्त होता है। श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट किये गये पितरगण अव्यय सोम को सन्तुष्ट करते हैं। तुम लोगों से सन्तुष्टि प्राप्तकर वे सर्वदा तुम्हें बढ़ायेंगे।

श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति। कृत्स्नं सपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम् ।।३०।।
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः। तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ।।३१।।
श्राद्धे येभ्यः प्रदास्यन्ति त्रीन्पिण्डान्नामगोत्रतः। सर्वत्र वर्तमानास्ते पितरः प्रपितामहम् ।।
तेष्यामाप्याययिष्यन्ति श्राद्धदानेन वै प्रजाः ।।३२।।
एवमाज्ञा कृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना। तेनैतत्सर्वथा सिद्धं दानमध्ययनं तपः ।।३३।।
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः। इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ।।
अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ।।३४।।
एतद्ब्रह्मवचः श्रुत्वा सूतस्य विहितात्मनः। पप्रच्छुर्मुनयो भूयः सूतं तस्माद्यदुत्तरम् ।।३५।।

ऋषय ऊचुः

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिन्काले च ते गणाः। वर्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्धनाः ।।३६।।

सूत उवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि पितृसर्गमनुत्तमम्। शंयुः पप्रच्छ यत्पूर्वं पितरं वै बृहस्पतिम् ।।३७।।
बृहस्पतिमुपासीनं सर्वज्ञानार्थकोविदम्। पुनः शंयुरिमं प्रश्नं पप्रच्छ विनयान्वितः ।।३८।।

श्राद्धादि कर्मों में इस प्रकार पितरों द्वारा संतुष्ट किया गया सोम समस्त पर्वत, वन व चराचर जगत् सबको सन्तुष्ट करेगा। जो मनुष्य लोक के पोषण की दृष्टि से श्राद्धादि करेंगे, उन्हें पितरगण सर्वदा पुष्टि एवं सन्तति देंगे। श्राद्धकर्म में अपने प्रपितामह तक नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर जिन पितरों को कुछ दे दिया जायगा वे पितरगण उस श्राद्धदान से अति सन्तुष्ट होकर देनेवाले की सन्ततियों को सन्तुष्ट रखेंगे ।।२८–३२।। परमेष्ठी ब्रह्मा ने इस प्रकार की आज्ञा पूर्वकाल में दी है। उन्हीं पितरों की कृपा से दान, अध्ययन, तपस्या–सबसे सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वे पितरगण ही हम सबको ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। इस प्रकार वे पितरगण देवता हैं, और देवगण पितर हैं, और परस्पर एक दूसरे के पितर और देवता–दोनों हैं। आत्मज्ञानी सूत की ऐसी बातें सुनने के उपरान्त मुनियों ने उनसे शेष प्रश्न के बारे में पुनः पूछा ।।३३–३५।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! पितरों के समूह कितने हैं ? देवताओं के परमपूज्य एवं चन्द्रमा के पुष्टिकर्त्ता वे पितरगण किस समय वर्तमान रहते हैं ।।३६।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! मैं आप लोगों से पितरों के उस श्रेष्ठ वंश के विवरण को बता रहा हूँ, जिसको पूर्वकाल में शंयु ने अपने पिता बृहस्पति से पूछा था। एक बार समीप में बैठे हुए तत्त्वज्ञान विशारद, सर्वज्ञ बृहस्पति से उनके पुत्र शंयु ने यह प्रश्न विनयपूर्वक पूछा था कि ये पितरगण कौन हैं ? कितने हैं ? इनके नाम क्या हैं ? ये किस प्रकार उत्पन्न हुए और पितृत्व इन्हें किस प्रकार प्राप्त हुआ ? क्या कारण है जो यज्ञों में नित्य सर्वप्रथम पितरों की

क एते पितरो नाम कियन्तः के च नामतः। समुद्भूताः कथं चैते पितृत्वं समुपागताः ।।३९।।
कस्माच्च पितरं पूर्वं यज्ञेऽयुज्यन्त नित्यशः। क्रियाश्च सर्वा वर्तन्ते श्राद्धपर्वा महात्मनाम् ।।४०।।
कस्मै श्राद्धानि देयानि किं च दत्तं महाफलम्। केषु वाऽप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च ।।४१।।
केषु वै सर्वमाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः। कश्च कालो भवेच्छ्राद्धे विधिः कश्चानुवर्तते ।।४२।।
एतदिच्छामि भगवन्विस्तरेण यथातथम्। व्याख्यातुमानुपूर्व्येण यत्र चोदाहृतं मया ।।४३।।
बृहस्पतिरिदं सम्यगेवं पृष्टो महामतिः। व्याजहाराऽऽनुपूर्व्येण प्रश्नं प्रश्नविदां वरः ।।४४।।

बृहस्पतिरुवाच

कथयिष्यामि ते तात यन्मां त्वं परिपृच्छसे। विनयेन यथान्यायं गम्भीरं प्रश्नमुत्तमम् ।।४५।।
द्यौरन्तरीक्षं पृथिवी नक्षत्राणि दिशस्तथा। सूर्याचन्द्रमसौ चैव तथाऽहोरात्रमेव च ।।४६।।
न बभूवुस्तदा तात तमोभूतमिदं जगत्। ब्रह्मैको दुश्चरं तत्र चचार परमं तपः ।।४७।।
शंयुस्तमब्रवीद्भूयः पितरं ब्रह्मवित्तमम्। सर्वदैव व्रतस्नातं सर्वज्ञानविदां वरम् ।।४८।।
कीदृशं सर्वभूतेशस्तपस्तेपे प्रजापतिः। एवमुक्तो बृहत्तेजा बृहस्पतिरुवाच तम् ।।४९।।
सर्वेषां तपसां युक्तिस्तपोयोगमनुत्तमम्। ध्यायंस्तदा तद्भगवांस्तेन लोकानवासृजत् ।।५०।।

पूजा की जाती है ? और महात्मा पुरुषों की सभी क्रियाएँ पितरों के श्राद्धादि के उपरान्त सम्पन्न होती हैं ।।३७-४०।। ये श्राद्धादि क्रियाएँ किसके उद्देश्य से करनी चाहिए, और क्या देने से प्रचुर फल की प्राप्ति होती है, किन तीर्थों अथवा नदियों में करने से श्राद्धों का फल अक्षय हो जाता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण किन-किन पर्वत क्षेत्रों में श्राद्ध का विधान सम्पन्न कर अपने सभी मनोरथों को प्राप्त करता है, श्राद्ध के लिए कौन-सा समय उपयुक्त है, श्राद्ध की विधि क्या है ? हे भगवन्! इन सब बातों को हम यथार्थरूप में विस्तारपूर्वक जानना चाहते हैं जिन-जिन बातों को मैंने निवेदित किया है, उन्हें-उन्हें क्रमशः मुझे बतलाइये। शंयु के इस प्रकार अच्छी तरह पूछने पर प्रश्न के तत्त्वों को जाननेवालों में श्रेष्ठ महामति बृहस्पति ने क्रमशः उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।४१-४४।।

बृहस्पति ने कहा-प्रियवर! जो बातें तुमने मुझसे पूछी हैं, उन्हें बतला रहा हूँ! तुम्हारा यह प्रश्न विनय, न्याय, गम्भीरता एवं श्रेष्ठता आदि सद्गुणों से पूर्ण है। हे प्रिय! जिस समय यह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात-ये कुछ भी नहीं थे और सारे जगत् में अन्धकार-ही-अन्धकार छाया हुआ था, उस समय अकेले ब्रह्मा कठोर तप में प्रवृत्त थे।' पिता बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर शंयु ने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, सर्वदा व्रत आदि सदनुष्ठानों में प्रवृत्त रहनेवाले सभी प्रकार के ज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने पिता बृहस्पति से फिर पूछा-पिता जी! ऐसी परिस्थिति में सभी भूतों के स्वामी प्रजापति ब्रह्मा किस प्रकार तपस्या में प्रवृत्त थे ? पुत्र के ऐसा पूछने पर परम तेजस्वी बृहस्पति ने उससे कहा ।।४५-४९।। पुत्र! सब प्रकार की तपस्याओं में योग श्रेष्ठ है। उस समय भगवान् ब्रह्मा ने उसी का आश्रय लेकर

भूतभव्यानि ज्ञानानि लोकान्वेदांश्च कृत्स्नशः । योगमाविश्य तत्सृष्टं ब्रह्मणा योगचक्षुषा ।।५१।।
लोकाः सांतानिका नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः । ते वैराजा इति ख्याता देवानां दिवि देवताः ।।५२।।
योगेन तपसा युक्तः पूर्वमेव तदा प्रभुः । देवानसृजत ब्रह्मा योगं युक्त्वा सनातनम् ।।५३।।
आदिदेवा इति ख्याता महासत्त्वा महौजसः । सर्वकामप्रदाः पूज्या देवदानवमानवैः ।।५४।।
तेषां सप्त समाख्याता गणास्त्रैलोक्यपूजिताः । अमूर्तयस्त्रयस्तेषां चत्वारस्तु सुमूर्तयः ।।५५।।
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां वर्तन्ते भावमूर्तयः । तेषामधस्ताद्वर्तन्ते चत्वारः सूक्ष्ममूर्तयः ।।५६।।
ततो देवास्ततो भूमिरेषा लोकपरम्परा । लोकं वर्तन्ति ते ह्यस्मिंस्तेभ्यः पर्जन्यसंभवः ।।
वृष्टिर्भवति तैर्वृष्ट्या लोकानां संभवः पुनः ।।५७।।
आप्याययन्ति ते यस्मात्सोमं चान्नं च योगतः । ऊचुस्तान्वै पितृंस्तस्माल्लोकानां लोकसत्तमाः ।।५८।।
मनोजवाः स्वधाभक्षाः सर्वकामपरिच्छदाः । लोभमोहभयापेता निश्चिताः शोकवर्जिताः ।।५९।।
एते योगं परित्यज्य प्राप्ता लोकान्सुदर्शनान् । दिव्याः पुण्या महात्मानो विपाप्मानो भवन्त्युत ।।६०।।

ध्यानमग्न हो समस्त लोकों की सृष्टि की थी। योगाभ्यासी प्रजापति ब्रह्मा ने अपने योगदृष्टि से, सभी अतीत एवं अनागत काल में होनेवाली ज्ञान राशि, समस्त लोक एवं सम्पूर्ण वेदों की रचना उसी योग का अवलम्बन लेकर ही की है। जहाँ परम भास्वर (कान्तिमान्) सांतानिक नामक लोकों की स्थिति है उसी स्वर्ग लोक में वे देवताओं के भी देवता वैराज नाम से विख्यात पितरगण निवास करते हैं ।।५०-५२।। सृष्टि के आदिकाल में सनातन योग एवं तपस्या में निरत रहकर भगवान् पितामह ने उन देवताओं की सृष्टि की थी। वे देवगण आदिदेव के नाम से विख्यात हैं ? महान् पराक्रमशील एवं परमतेजस्वी हैं, देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों–सबके पूज्य तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं। उन त्रैलोक्य पूजित देवताओं के सात गण विख्यात हैं, जिनमें तीन गण निराकार तथा चार सुन्दर आकृतिवाले हैं। वे भावमूर्ति (निराकार) तीन देवगण सबसे ऊपर निवास करते हैं, उनके नीचे वे चार गण निवास करते हैं, जो सूक्ष्म मूर्तियोंवाले हैं। उनके बाद सामान्य देवताओं का निवास-स्थल है, उसके नीचे पृथ्वी की स्थिति है, यही लोकों की स्थिति की परम्परा है। वे देवगण इसी लोक में निवास करनेवाले हैं, उन्हीं से बादलों की उत्पत्ति होती है। उन्हीं बादलों से वृष्टि होती है, वृष्टि से सभी लोकों (वस्तुओं) की पुनः उत्पत्ति होती है ।।५३-५७।। यतः वे (पितर) लोग अपने योगबल से सोम एवं अन्न दोनों को सन्तुष्ट एवं प्रफुल्लित रखते हैं, अतः श्रेष्ठजन उन्हें समस्त लोकों का पितर कहते हैं। ये पितरगण मन के समान वेगशाली स्वधा का भक्षण करनेवाले, सभी इच्छाओं एवं सुविधाओं को देनेवाले, लोभ, मोह तथा भय से विमुक्त एवं निश्चय ही शोकविहीन हैं ।।५८-५९।। ये योगाभ्यास को छोड़कर सुन्दर दिखायी पड़नेवाले लोकों को प्राप्त हुए हैं। ये दिव्यगुण युक्त, पुण्यशाली, महात्मा तथा निष्पाप हैं। एक सहस्र

ततो युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः। प्रतिलभ्य पुनर्योगं मोक्षं गच्छन्त्यमूर्तयः ।।६१।।
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन वा। नश्यन्त्युल्केव गगने क्षीणविद्युत्प्रभेव च ।।६२।।
उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च। निराख्योपाख्यतां यान्ति सरितः सागरे यथा ।।६३।।
क्रियया गुरुपूजाभिर्योगं कुर्वन्ति नित्यशः। ताभिराप्याययन्त्येते पितरो योगवर्धनाः ।।६४।।
श्राद्धे प्रीताः पुनः सोमं पितरो योगमास्थिताः। आप्याययन्ति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति ।।६५।।
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा। पितॄणां हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्तते ।।६६।।
सहस्रशस्तु विप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान्। एकस्तु योगवित्प्रीतः सर्वानर्हति तच्छृणु ।।६७।।
कल्पितानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च। योगाचार्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात् ।।६८।।
गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च। ब्रह्मचारिसहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते ।।६९।।
नास्तिको वा विकर्मा वा संकीर्णस्तस्करोऽपि वा। नान्यत्र कारणं दानं योगेष्वाह प्रजापतिः ।।७०।।

युग के उपरान्त ये ब्रह्मवादी हो जाते हैं, और पुनः योग की प्राप्ति कर शरीर को छोड़ मोह के अधिकारी होते हैं। महान् योगबल का आश्रय लेकर वे व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर को छोड़कर आकाश में उल्का एवं क्षीण विद्युत् प्रभा की तरह विनाश को प्राप्त होते हैं, महान् योगबल से देह प्रभृति ऐहिक उपादानों को छोड़कर वे समुद्र में मिलनेवाली सरिताओं की भाँति आख्या (संज्ञा नाम) रहित हो जाते हैं। वे नित्यप्रति गुरुपूजा प्रभृति सत्क्रियाओं में निरत रह योगाभ्यास में लगे रहते हैं। योगमार्ग में वे विख्यात पितरगण इस प्रकार सबको तृप्त रखते हैं। श्राद्ध के अवसर पर प्रसन्न हुए वे योगाभ्यास में निरत रहनेवाले पितरगण अपने योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं, जिससे त्रैलोक्य को जीवन प्राप्त होता है ।।६०-६५।। इसलिए योग की मर्यादा जाननेवालों को सर्वदा यत्नपूर्वक श्राद्धादि का दान करना चाहिए। क्योंकि पितरों का बलयोग है और योगबल से ही चन्द्रमा प्रवर्तित होता है ।।६६।। श्राद्ध के अवसर पर अभ्यागत (आये हुए) सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, योग में निपुण एक ही ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर उक्त सहस्र ब्राह्मण भोजन का फल देता हैं, इसको सुनिये। सहस्र सामान्य ब्राह्मण, स्नातक अथवा एक योगाचार्य– इनमें से किसी एक के द्वारा जो भोजन किया जाता है वह महान् भय (नरक) से छुटकारा दिलाता है। एक सहस्र गृहस्थ, सौ वानप्रस्थ अथवा एक सहस्र ब्रह्मचारी–इन सबों से एक योगी (योगाभ्यासी) बढ़कर है ।।६७-६९।। वह चाहे नास्तिक हो चाहे दुष्कर्मी हो, चाहे संकीर्ण विचारोंवाला हो अथवा चोर ही क्यों न हो। प्रजापति ने योगमार्ग में ऐसी व्यवस्था बतलायी है कि अन्यत्र (योगी को छोड़कर) दान नहीं करना चाहिए। जिस व्यक्ति का पुत्र अथवा पौत्र ध्यान में निमग्न रहनेवाले किसी योगाभ्यासी को श्राद्ध के अवसर पर भोजन करायेगा, उसके पितरगण अच्छी वृष्टि होने से किसानों की तरह परम सन्तुष्ट होंगे। यदि श्राद्ध के अवसर पर कोई योगाभ्यासी ध्यानपरायण भिक्षु न मिले तो दो ब्रह्मचारियों को भोजन कराना चाहिए, वे भी न मिलें तो किसी उदासीन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए

पितरस्तस्य तुष्यन्ति सुवृष्टेनेव कर्षकाः । पुत्रो वाऽप्यथ वा पौत्रो ध्यानिनं भोजयिष्यति ।।७१।।
अलाभे ध्यानिभिक्षूणां भोजयेद्ब्रह्मचारिणौ । तदलाभेऽप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत् ।।७२।।
यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतं समाः । ध्यानयोगी परस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम् ।।७३।।
सिद्धा हि विप्ररूपेण चरन्ति पृथिवीमिमाम् । तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः ।।७४।।
पूजयेच्चार्घ्यपाद्येन वेश्मना भोजनेन च । उर्वीं सागरपर्यन्तां देवा योगेश्वराः सदा ।।
नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ।।७५।।
तस्माद्दद्याच्चैव दानं विप्रायातिथये नरः । प्रदानानि प्रवक्ष्यामि फलं चैषां तथैव च ।।७६।।
अश्वमेधसहस्त्रेण राजसूयशतेन च । पुण्डरीकसहस्त्रेण योविष्वावसथो वरम् ।।७७।।
आद्य एष गणः प्रोक्तः पितृणाममितौजसाम् । भावयन्सप्त कालान्वै स्थित एष गणः सदा ।।७८।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वान्पितृगणान्पुनः । संततिं संस्थितिं चैव भावनां च यथाक्रमम् ।।७९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे श्राद्धप्रक्रियारम्भो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

जो सांसारिक विषयों से विरक्त हो। उसके न मिलने पर गृहस्थ को भी भोजन करा देना चाहिए ।।७०–७२।। जो व्यक्ति सौ वर्षों तक केवल एक पैर पर खड़े होकर वायु का आहार करके स्थित रहता है, उससे भी बढ़कर ध्यानी एवं योगी हैं ऐसी ब्रह्मा की आज्ञा है। सिद्ध लोग ब्राह्मण का वेश धारणकर इस पृथ्वी पर भ्रमण किया करते हैं अतः किसी अतिथि के आ जाने पर मनुष्य को चाहिए कि उसकी अगवानी के लिए हाथ जोड़कर जाय, अर्घ्य–पाद्यादि से उसकी पूजा करे, रहने के लिए सुन्दर स्थान दे और भोजन की व्यवस्था करे। समुद्रपर्यन्त विस्तृत इस भूमण्डल पर ये योगेश्वर देवगण विविध रूप धारणकर धर्मपूर्वक प्रजावर्ग की पालना करते हुए सर्वदा विचरण किया करते हैं, अतः मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वार पर आये हुए अतिथि ब्राह्मण को विधिपूर्वक दानादि दे। आगे चलकर मैं उन विविध दानादिकों को तथा उनके फलों को बतला रहा हूँ ।।७३–७६।। सहस्त्र अश्वमेध, सौ राजसूय, सहस्त्र पुण्डरीक नामक यज्ञों से बढ़कर फल योगियों के मध्य में निवास–स्थान बनाने से प्राप्त होता है। उन अमित तेजस्वी पितरों के साथ गणों में से यह प्रथम गण (समूह) कहा जा चुका, पितरों का यह गण सभी कालों की भावना करते हुए सर्वदा अवस्थित है। अब इसके उपरान्त मैं पुनः समस्त पितरों का वर्णन कर रहा हूँ, उनकी सन्तति, अवस्थिति एवं भावनाओं के विषय में भी क्रमशः कह रहा हूँ ।।७७–७९।।

श्री वायुमहापुराण में उपोद्घातपाद में श्राद्धप्रक्रियारम्भ नामक एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७१।।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

सूत उवाच

सप्त मेधावतां श्रेष्ठाः स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः । चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः ।।
तेषां लोकविसर्गं तु कीर्तयिष्ये निबोधत ।।१।।
या वै दुहितरस्तेषां दौहित्राश्चैव ये स्मृताः । धर्ममूर्तिधरास्तेषां ये त्रयः परमा गणाः ।।२।।
नामानि लोकसर्गं च तेषां वक्ष्ये समासतः । लोका विरजसो नाम्ना यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ।।३।।
अमूर्तयः पितृगणाः पुत्रास्ते वै प्रजापतेः । विरजस्य द्विजाः श्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुताः ।।
एष वै प्रथमः कल्पो वैराजानां प्रकीर्तितः ।।४।।
तेषां तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः । पत्नी हिमवतः शुभ्रा यस्यां मैनाक उच्यते ।।५।।
जातः सर्वौषधिधरः सर्वरत्नाकरात्मवान् । पर्वतः प्रवरः पुण्यः क्रौञ्चस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् ।।६।।
तिस्त्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् । अपर्णामेकपर्णा च तृतीयामेकपाटलाम् ।।७।।

अध्याय ७२

श्राद्धकल्प

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! परम बुद्धिमान् पितरों के सात गण कहे गये हैं, जिनमें चार तो मूर्तिमान हैं और शेष तीन अमूर्त हैं। मैं उनके द्वारा होनेवाली लोकसृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। उनकी जो-जो पुत्रियाँ हैं, एवं जो-जो दौहित्र हुए हैं, उन सबका भी वर्णन कर रहा हूँ। जो तीन धर्ममूर्ति परमश्रेष्ठ गण कहे गये हैं, सर्वप्रथम मैं उनके नाम एवं उनके द्वारा होनेवाली लोकसृष्टि का वर्णन संक्षेप में कर रहा हूँ। जहाँ परम कान्तिमय विरजस नाम से विख्यात लोकों की अवस्थिति है, वहीं पर प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र अमूर्त पितरगण निवास करते हैं। हे द्विजगण! वे पितरगण विरज के निवासी हैं, अतः वैराज नाम से प्रसिद्ध हैं। वैराज नामक पितरों के इस पहले गण को आप लोगों को सुना चुका ।।२-४।। इन्हीं वैराजों की मानसी पुत्री मेना थी, जो महागिरि हिमवान् की सुन्दरी पत्नी थी जिसमें मैनाक की उत्पत्ति हुई। यह पर्वतश्रेष्ठ मैनाक सभी प्रकार के रत्नादिकों से परिपूर्ण, समस्त ओषधियों का आगार एवं पुण्यशाली उत्पन्न हुआ, इसका पुत्र क्रौञ्च हुआ ।।५-६।। पर्वतराज ने मेना से तीन कन्याओं को भी जन्म दिया जिनके नाम अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला थे। इन तीनों कन्याओं में से दो ने आश्रय ग्रहण किया, केवल अपर्णा ने कोई आश्रय नहीं बनाया, बिना घर-द्वार के ही वह तपस्या में दत्तचित्त रही। एकपर्णा ने एक न्यग्रोध (बरगद) का तथा एकपाटला ने एक पाटला वृक्ष

आश्रिते द्वे ह्यपर्णा तु अनिकेता तपोऽचरत्। न्यग्रोधमेकपर्णी तु पाटलामेकपाटला ।।
शतं वर्षसहस्राणि दुश्चरं देवदानवैः ।।८।।
आहारमेकपर्णेन एकपर्णी समाचरत्। पाटलेनैव चैकेन विदध्यादेकपाटला ।।९।।
पूर्णे पूर्णे सहस्रे द्वे आहारं वै प्रचक्रतुः। एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यभाषत ।।१०।।
निषेधयन्ती ह्युमेति माता स्नेहेन दुःखिता। सा तथोक्ता तया देवी मात्रा दुश्चरचारिणी ।।११।।
उमेति सा महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता। तथेति नाम्ना तेनासौ निरुक्ता कर्मणा शुभा ।।१२।।
एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थास्यति शाश्वतम्। एतासां तपसा दृप्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति ।।१३।।
तपः शरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो योगबलान्विताः। देव्यस्ताः सुमहाभागाः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ।।१४।।
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः। उमा तासां वरिष्ठा च श्रेष्ठा च वरवर्णिनी ।।१५।।
महायोगवलोपेता महादेवमुपास्थिता। दन्तकाण्वोशनास्तस्याः पुत्रौ वै भृगुनन्दनः ।।१६।।
असितस्यैकपर्णी तु पत्नी साध्वी दृढव्रता। दत्ता हिमवता तस्मै योगाचार्याय धीमते ।।
देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं मानसं सुतम् ।।१७।।
या चैतासां कुमारीणां तृतीया त्वेकपाटला। पुत्रं शतशिलाकस्य जैगीषव्यमुपस्थिता ।।१८।।

का अवलम्ब लिया था। इस प्रकार तीनों कन्याओं ने एक सहस्र वर्षों तक कठोर तप किया, जिसे देवता अथवा दानव—कोई भी करने में असमर्थ थे ।।७–८।। एकपर्णा एक पत्ते का आहार करती थी एकपाटला एक पाटल पर अपना जीवन निर्भर किये थी, इस प्रकार इन दोनों बहनों ने दो सहस्र वर्ष बीत जाने पर आहार स्वीकार कर लिया; परन्तु तीसरी कन्या अपर्णा बिना किसी आहार के उस समय भी तपस्या में लीन रही। माता ने स्नेह से अति दुःखित हो तपस्या से विरत करने के लिए निषेध के स्वर में उससे 'उ' 'मा' ऐसा कहा। महाभाग्यशालिनी अत्यन्त दुष्कर तप करनेवाली वह देवी अपनी माता के ऐसा कहने पर उमा नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुई और अपने उस कठोर कर्म के कारण अपर्णा इस शुभ नाम से भी उसकी ख्याति हुई। इस जगत् की सत्ता जब तक रहेगी, जब तक स्थिर रहेगी, तब तक इन तीनों कुमारियों के नाम एवं उनकी घोर तपस्याओं के यशोगान जीवित रहेंगे ।।९–१३।। योगबल से संयुक्त, तपोमय शशीरवाली वे तीनों कन्याएँ समस्त दिव्यगुणों से सम्पन्न, महाभाग्यशालिनी एवं स्थिर यौवनवाली हैं। उन सब-की-सब ब्रह्मवादिनी एवं ब्रह्मचारिणी कन्याओं में उमा परमश्रेष्ठ, सर्वगुणान्वित तथा सुन्दरी थी। उसका योगबल परम महान् था, और उसने महादेव को पति रूप में प्राप्त किया। उसके पुत्र दन्त, कण्व, उशना और भृगुनन्दन हुए। एकपर्णी असित की पत्नी हुई, वह परम साध्वी तथा कठोर व्रतों का अनुष्ठान करनेवाली थी। हिमवान् ने ही एकपर्णी को योगाचार्य परम बुद्धिमान् असित समर्पित किया था। एकपर्णी ने ब्रह्मनिष्ठ देवल को मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न किया ।।१४–१७।। इन तीनों कुमारियों में तीसरी एकपाटला नामक जो कुमारी थी, उसने शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य को पतिरूप में स्वीकार

तस्यापि शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ। इत्येता वै महाभागाः कन्या हिमवतः शुभा ।।१९।।
रुद्राणी सा तु प्रवरा स्वगुणैरतिरिच्यते। अन्योन्यप्रीतिरनयोरुमाशंकरयोरथ ।।२०।।
श्लेषं संसक्तयोर्ज्ञात्वा शङ्कितः किल वृत्रहा। ताभ्यां मैथुनसक्ताभ्यामपत्योद्भवभीरुणा ।।
तयोः सकाशमिन्द्रेण प्रेषितो हव्यवाहनः ।।२१।।
अनयो रतिविघ्नं च त्वमाचर हुताशन। सर्वत्र गत एव त्वं न दोषो विद्यते तदा ।।२२।।
इत्येवमुक्ते तु तथा वह्निना च तथा कृतम्। उमादेहं समुत्सृज्य शुक्रं भूमौ विसर्जितम् ।।२३।।
ततो रुषितया देव्या शप्तोऽग्निः शांशपायन। इदं चोक्तवती वह्निं रोषगद्गदया गिरा ।।२४।।
यस्मान्मय्यवितृप्तायां रतिविघ्नं हुताशन। कृतवानस्य कर्तव्यं तस्मात्त्वमसि दुर्मतिः ।।२५।।
यदेवं बिभृतं गर्भं रौद्रं शुक्रं महाप्रभम्। गर्भं त्वं धारयस्वैवमेषा ते दण्डधारणा ।।२६।।
स शापरोषाद्रुद्राण्या अन्तर्गर्भो हुताशनः। बहून्वर्षगणान्गर्भं धारयामास वै द्विजाः ।।२७।।
स गङ्गामुपगम्याऽऽह श्रूयतां सरिदुत्तमे। सुमहान्परिखेदो मे गर्भधारणकारणात् ।।२८।।
मद्धितार्थमिमं गर्भमतो धारय निम्नगे। मत्प्रसादाच्च खेदो वै मन्दस्तव भविष्यति ।।२९।।
तथेत्युक्त्वा तदा सा तु संप्रहृष्टा महानदी। तं गर्भं धारयामास दह्यमानेन तेजसा ।।३०।।

किया था, उसके भी शंख और लिखित नामक दो पुत्र हुए, जिनकी उत्पत्ति योनि से नहीं हुई थी। ये ही तीन महाभाग्यशालिनी हिमवान् की कल्याणदायिनी कन्याएँ हैं। इनमें रुद्राणी उमा अपने गुणों के कारण सबसे बढ़-चढ़कर थीं। उमा और शंकर के पारस्परिक सम्बन्ध और प्रेम को देखकर वृत्रहा (इन्द्र) को सन्देह हुआ। दाम्पत्य प्रेम में अनुरक्त उन दोनों से होनेवाली संतति के भय से आतङ्कित होकर इन्द्र ने उसके पास अग्नि को भेजा और कहा, हे हुताशन! तुम इन दोनों के रतिकर्म में जाकर विघ्न पहुँचाओ, तुम तो सर्वत्र जा सकते हो। अतः तुम्हारे वहाँ जाने पर कोई दोष न होगा ।।१८-२१।। इन्द्र के कहने पर अग्नि ने वैसा ही किया जिसका परिणाम यह हुआ कि शंकर ने अपना वीर्य उमा के शरीर में न छोड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। शांशपायन! इस घटना के घटित होने पर उमा को क्रोध आया और उन्होंने अग्नि को शाप दिया कि हे अग्नि! यतः तुमने मेरी तृप्ति के बिना हुए ही इस रतिक्रीड़ा में विघ्न डाल दिया है, अतः तुम निश्चय ही बड़े कुबुद्धि हो, और यह जो मेरे गर्भ-द्वार से बहिर्गत रुद्र का महान् तेजोमय वीर्य है उसे तुम गर्भरूप में वहन करो, यही मैं तुझे दण्ड दे रही हूँ ।।२२-२६।। ऋषिवृन्द! रुद्राणी उमा के रोषज शाप के कारण हुताशन को वह गर्भ धारण करना पड़ा और उस गर्भ को उसने बहुत वर्षों तक वहन किया। बहुत दिनों के बाद गंगा के तट पर आकर अग्नि ने निवेदन किया, हे उत्तम सरिते! मेरी यह प्रार्थना श्रवण करो। इस गर्भ भार के वहन करने में मुझ महान् खेद हो रहा है, हे निम्नगे! मेरे लिए तुम इस गर्भ को आज से धारण कर लो, मेरे आशीर्वाद से तुम्हें इसके वहन करने में बहुत अल्पखेद होगा ।।२७-२९।। महानदी गंगा ने अग्नि की विनयपूर्ण बातें सुनकर स्वीकार कर लिया, और

साऽपि कृच्छ्रेण महता खिद्यमाना महानदी । कालं प्रकृष्टं सुमहद्गर्भधारणतत्परा ।।३१।।
तया परिगतं गर्भं कुक्षौ हिमवतः शुभे । शुभं शरवणं नाम चित्रं पुष्पितपादपम् ।।
तत्र तं व्यसृजद्गर्भं दीप्यमानमिवानलम् ।।३२।।
रुद्राग्निगङ्गातनयस्तत्र जातोऽरुणप्रभः । आदित्यशतसंकाशो महातेजाः प्रतापवान् ।।३३।।
तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते । विमानयानैराकाशं पतत्रिभितिरिवावृतम् ।।३४।।
देवदुन्दुभयो नेदुराकाशे मधुरस्वराः । मुमुचुः पुष्पवर्षं च खेचराः सिद्धचारणाः ।।३५।।
जपुर्गन्धर्वमुख्याश्च सर्वशस्तत्र तत्र ह । यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किंनराश्चैव सर्वशः ।।३६।।
महाभागसहस्राणि प्रवराश्च पतत्रिणः । उपतस्थुर्महाभागमाग्नेयं शंकरात्मजम् ।।
प्रभावेण हतास्तेन दैत्यदानवराक्षसाः ।।३७।।
सह सप्तर्षिभार्याभिरादावेदाग्निसंभवः । अभिषेकप्रयाताभिर्दृष्टो वर्ज्य त्वरुन्धतीम् ।।३८।।
ताभिः स बालार्कनिभो रौद्रः परिवृतः प्रभुः । स्निह्यमानाभिरत्यर्थं स्वकाभिरिव मातृभिः ।।३९।।
युगपत्सर्वदेवीर्हि दिदृक्षुर्जाह्नवीसुतः । षण्मुखान्यसृजच्छ्रीमांस्तासां प्रीत्या महाद्युतिः ।।४०।।
श्रीमान्कमलपत्राक्षस्तरुणादित्यसंनिभः । येन जातेन लोकानामाक्षेपस्तेजसा कृतः ।।४१।।

बड़े आनन्द से उस गर्भ को धारण किया, अपने तेज से जलते हुए गर्भ को वहन करने में वे महानदी भी बहुत परेशान हुईं, फिर भी बहुत दिनों तक तत्परता के साथ अनेक कठिनाइयों की उपेक्षा कर वे गर्भ को धारण किये रहीं। हिमवान् पर्वत के मनोहर कुक्षि प्रदेश (घाटी) में शरवण नामक एक विचित्र सुन्दर वन था जिसमें वृक्ष खूब फूले हुए थे, वहीं पर जाकर गंगा ने अनुपम तेज से जलते हुए अग्नि की भाँति उस गर्भ का विमोचन किया ।।३०–३२।। रुद्र, अग्नि और गंगा का वह शिशु अरुण के समान कान्तिमान् हुआ, सैकड़ों सूर्य के समान तेजस्वी और प्रतापी था। जाह्नवी के गर्भ से उस कुमार के समुत्पन्न होने पर सारा आकाशमण्डल देवताओं के सुन्दर विमानों और यानों से इस प्रकार आवृत हो गया मानो पक्षियों के समूह घेरे हुए हों ।।३३–३४।। देवगण आकाशमण्डल में मधुरस्वर से दुन्दुभि बजाने लगे। आकाश में उड़नेवाले सिद्ध और चारणों के वृन्द पुष्पों की वृष्टि करने लगे। चारों ओर से मुख्य–मुख्य गन्धर्व लोग गान करने लगे, विद्याधरों, सिद्धों तथा किन्नरों के समूह सम्मिलित होकर उत्सव मनाने लगे। सहस्रों विशालकाय नाग एवं पक्षियों के प्रमुख गण उस शंकरात्मज अग्निसम्भव कुमार की उपासना करने लगे। उस परम तेजस्वी कुमार ने अपने अनुपम प्रभाव से ही दैत्यों, दानवों तथा राक्षसों को हतप्रभ कर दिया ।।३५–३७।। अभिषेक के लिए आयी हुई सप्तर्षियों की स्त्रियों में से अरुन्धती को छोड़कर सब ने सर्वप्रथम ही उस अग्निसम्भव कुमार का दर्शन किया। रुद्र के उस महान् तेजस्वी, परम ऐश्वर्यशाली, बालसूर्य के समान कान्तिमान् पुत्र को उन ऋषि पत्नियों ने चारों ओर से घेर लिया, और अपनी माता के समान परम स्नेह युक्त नेत्रों से देखने लगीं। उन सबों को प्रसन्न करने के लिए तथा एक ही साथ सबको देखने की इच्छा से जाह्नवी सुत ने छह मुखों की सृष्टि कर ली और उस समय उनकी महान् शोभा हुई। कमलनयन,

३९

तेन जातेन महता देवानामसहिष्णवः । स्कन्दिता दानवगणास्तस्मात्स्कन्दः प्रतापवान् ।।४२।।
कृत्तिकाभिस्तु यस्मात्स वर्धितः स पुरातनः । कार्तिकेय इति ख्यातस्तस्मादसुरसूदनः ।।४३।।
जृम्भतस्तस्य दैत्यारेर्ज्वालामालाकुलात्तदा । मुखाद्विनिर्गता तस्य स्वशक्तिरपराजिता ।।४४।।
क्रीडार्थं चैव स्कन्दस्य विष्णुना प्रभविष्णुना । गरुडादति सृष्टौ हि पक्षिणौ हि प्रभद्रकौ ।।४५।।
मयूरः कुक्कुटश्चैव पताका चैव वायुना । यस्य दत्ता सरस्वत्या महावीणा महास्वना ।।
अजः स्वयंभुवा दत्तो मेषो दत्तश्च शंभुना ।।४६।।
मायाविहरणे विप्रा गिरौ क्रौञ्चे निपातिते । तारके चासुरवरे समुदीर्णे निपातिते ।।४७।।
सेन्द्रोपेन्द्रैर्महाभागैर्देवैरग्निसुतः प्रभुः । सैनापत्येन दैत्यारिरभिषिक्तः प्रतापवान् ।।४८।।
देवसेनापतिस्त्वेवं पठ्यते नरनायक । देवारिस्कन्दनः स्कन्दः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।।४९।।
प्रमथैर्विविधैर्देवैस्तथा भूतगणैरपि । मातृभिर्विविधाभिश्च विनायकगणैस्तथा ।।५०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सेनान्युत्पत्तिकथनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।७२।।

मध्याह्न के सूर्य के समान कान्तिशाली श्रीमान् अग्निसम्भव ने समस्त लोकों को अपने तेज से तेजोविहीन कर दिया। उस महान् तेजस्वी के जन्म लेते ही देवताओं की श्री सम्पत्ति को न सहन करनेवाले दानवगण स्कन्दित (व्यथित) हो गये अतः उस प्रतापशाली की स्कन्द नाम से प्रसिद्ध हुई ।।३८–४२।। असुरों का विनाशक वह पुरातन पुरुष यतः कृत्तिकाओं द्वारा पुष्ट हुआ था अतः कार्तिकेय नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। उस दैत्य विनाशक के जँभुआई लेते समय मुख अग्नि की ज्वालाओं की माला से पूर्ण हो गया और उससे उसकी अपराजिता नामक शक्ति बाहर हुई ।।४३–४४।। महान् प्रभावशाली भगवान् विष्णु ने स्कन्द की क्रीड़ा के लिए गरुड़ से भी अतिशय बलशाली तथा प्रभावशाली दो प्रभद्रक नामक मयूर और कुक्कुट पक्षियों की सृष्टि की। वायु ने पताका दी, सरस्वती ने उसे महान् शब्द करनेवाली एक बहुत बड़ी वीणा अर्पित की, स्वयंभू ब्रह्मा ने एक अज (बकरा) दिया, शंकर ने एक मेढ़ा दिया। द्विजवृन्द! क्रौञ्चगिरि पर असुरश्रेष्ठ तारकासुर की समस्त माया का उन्मूलनकर अग्नि कुमार ने जब उसका समस्त सेना के साथ संहार कर दिया, उस समय महाभाग्यशाली इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) प्रभृति देवताओं ने दैत्यों के इस प्रबल प्रतापी शत्रु तथा विनायकों के समूहों ने इसका नरनायक, देव सेनापति, देवारिस्कन्दन (देवताओं के शत्रु को व्यथित करनेवाला), स्कन्द, सर्वलोकेश्वर एवं प्रभु आदि नामों से स्तवन किया ।।४५–५०।।

श्री वायुमहापुराण में सेनान्युत्पत्ति कथन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७२।।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

(*बृहस्पतिरुवाच)

लोकाः सोमपदा नाम मारीचेर्यत्र वै सुताः । पितरो दिवि वर्तन्ते देवास्तान्भावयन्ति वै ।।१।।
अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः । एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ।।२।।
अच्छोदं नाम तद्दिव्यं सरो यस्याः समुच्छ्रितम् । अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमानैर्धिष्ठितं दिवि ।।३।।
अमूर्तिमतश्च पितन्ददृशे सा तु विस्मिता । पीडिताऽनेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ।।४।।
सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसूनामन्तरिक्षगम् । अनावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम् ।।५।।
सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामचारिणी । पतिकामा तदा सा च योगभ्रष्टा पपात ह) ।।६।।
सा त्वपश्यद्विमानानि पतन्ती सा दिवश्च्युता । त्रसरेणुप्रमाणानि तेष्वपश्यच्च तान्पितॄन ।।७।।
सुसूक्ष्मानपरित्यक्तानग्नीनग्नीष्विवाऽऽहितान् । त्रायध्वमित्युवाचाथ पतन्ती तानवाक्शिराः ।।८।।
तैरुक्ता सा तु मा भैषीरित्युक्ताऽधिष्ठिताऽभवत् । ततः प्रासादयत्सा वै पितॄंस्तान्दीनया गिरा ।।९।।

अध्याय ७३

श्राद्धकल्प

बृहस्पति बोले–स्वर्ग में सोमपद नामक लोक है, जहाँ मरीचि के पुत्र पितरगण वर्तमान हैं, देवगण वहाँ उनकी पूजा करते हैं। वे पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं, और सब-के-सब अमित तेजस्वी हैं। इन पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा नामक नदी है। जिससे निकला हुआ अच्छोद नामक दिव्य सरोवर भी वहाँ विराजमान है। स्वर्ग लोक में एक बार उसी सरोवर के पास अद्रिका नामक अप्सरा के साथ आकाश में देवताओं के विमान सुशोभित हो रहे थे ।।१–३।। वहाँ मूर्तिरहित पितरों को देखकर वह परम विस्मित हुई, और इसी दुःख से वह सुन्दरी बहुत काम-पीड़ित हुई। आकाश में विचरण करते हुए वसुओं के पिता आयु के परम यशस्वी पुत्र अमावसु नामक पितर को देखकर उसने मानसिक वरण किया। उस मानसिक व्यभिचार के कारण, पति के रूप में अमावसु को वरण करने की इच्छुक वह कामचारिणी योगभ्रष्ट हो गयी और स्वर्ग से पतित हो गयी ।।४–६।। स्वर्ग लोक से पतित होकर गिरते समय उसने उन देव विमानों को देखा और वहाँ त्रसरेणु के समान परम सूक्ष्म उन पितरों को देखा। वे परम सूक्ष्म थे और ज्वलन्त अग्नि के समान देदीप्यमान और तेजस्वी थे। आकाश से गिरते हुए उसने रक्षा कीजिये, इस प्रकार की आरत वाणी बिना सिर और स्पष्ट स्वर के ही कही। पितरों ने उससे कहा, 'मत डरो' और उनके ऐसा कहने पर वह सुस्थिर हो गयी। वहाँ

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात्। भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ।।१०।।
यैः क्रियन्ते च कर्माणि शरीरैरिह दैवतैः। तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ।।११।।
सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे। तस्मादमावसौ (सुं) पत्यं (तिं) त्वं प्रेत्य माप्स्यसे फलम् ।।१२।।
इत्युक्त्या वै पितरः पुनस्ते तु प्रसादिताः। ध्यात्वा प्रसादं संचक्रुस्तस्तयास्ते त्वनुकम्पया ।।१३।।
अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा ह्यर्थमूचुस्ततः सुराः। सोमपाः पितरः कन्यां राज्ञश्चैव ह्यमावसोः ।।१४।।
उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषत्वे महात्मनः। कन्या भूत्वा त्विमाँल्लोकान्पुनः प्राप्स्यसि स्वानिति ।।१५।।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा। अस्यैव राज्ञो दुहिता अद्रिकायां ह्यमावसोः ।।१६।।
पराशरस्य दायादमृषेस्त्वं जनयिष्यसि। स वेदमेकं विप्रर्षिश्चतुर्धा वै करिष्यति ।।१७।।
महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शंतनोः कीर्तिवर्धनौ। विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं त्वमेवोत्पादयिष्यसि ।।१८।।
चित्राङ्गदं च राजानं तेजोबलगुणान्वितम्। एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ।।१९।।
व्यतिक्रमात्पितॄणां त्वं प्राप्स्यसे जन्म कुत्सितम्। तस्यैव राज्ञस्त्वं कन्या अद्रिकायां भविष्यसि ।।२०।।
कन्या भूत्वा ततश्च त्वमिमाँल्लोकानवाप्स्यसि। एवमुक्ता तु दासेयी जाता सत्यवती तु सा ।।२१।।

स्थिर हो उसने अति दीन वाणी से पितरों को प्रसन्न किया। मानसिक भावों के व्यतिक्रम से दुष्ट होने के कारण भ्रष्ट ऐश्वर्यशाली उस कन्या को देखकर पितरों ने कहा–हे सुन्दर हँसनेवाली! अपने ही दोषों से तू अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर गिर रही हो ।।७–१०।। इस लोक में देवगण अपने जिस शरीर से कर्मों को करते हैं, उसी से उसका फल प्राप्त करते हैं। देवयोनि में कर्मों का फल तुरन्त प्राप्त होता है और मनुष्य योनि में परलोक (अन्य जन्म) में प्राप्त होता है, इस कारण तुम दूसरे जन्म में अमावसु को पितर[१] (पति ?) रूप में प्राप्त करोगी। ऐसा कहने के उपरान्त उसने पितरों को पुनः प्रार्थना आदि से प्रसन्न किया। प्रार्थना करने पर पितरों ने उसके ऊपर बड़ी अनुकम्पा कर प्रसन्नता प्रकट की। ध्यानमग्न होकर देवताओं ने भविष्य में अवश्यमेव घटित होनेवाली घटना को देखकर उससे बोले। सोम का पान करनेवाले उन पितरों ने राजा रूप में अमावसु और उसकी कन्या के बारे में ये बातें कीं ।।११–१४।। पृथ्वीतल पर मनुष्य योनि में उत्पन्न महात्मा अमावसु की कन्या होकर तुम पुनः इन अपने लोकों को प्राप्त करोगी। अट्ठाईसवें द्वापर युग में तुम्हारी उत्पत्ति मत्स्य की योनि से होगी और इसी राजा अमावसु से अद्रिका में तुम कन्या रूप में उत्पन्न होगी। और पराशर ऋषि के सुपुत्र वेदव्यास को उत्पन्न करोगी। वह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा और एक वेद को चार भागों में विभक्त करेगा ।।१५–१७।। महाभिष शन्तनु के कीर्तिवर्द्धक धर्मज्ञ विचित्रवीर्य और परम तेजस्वी, बलवान्, गुणशील राजा चित्रांगद इन दो पुत्रों को तुम्हीं उत्पन्न करोगी। इन पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद तुम पुनः इन लोकों को प्राप्त करोगी। पितरों के साथ पति भावना करके तुमने बहुत बड़ा व्यतिक्रम कर दिया है और उसी से ऐसी कुत्सित योनि में जन्म प्राप्त करना पड़ेगा। किन्तु उस योनि में भी तुम अद्रिका के गर्भ में उसी राजा के वीर्य से उत्पन्न होगी ।।१८–२०।। उसी कन्या के होने के बाद तू इन लोकों को निश्चय ही प्राप्त करोगी। पितरों के ऐसा कहने पर वह दासों की पुत्री सत्यवती

---

[१] आनन्दाश्रम की प्रति में यहाँ पर मूल पाठ को सन्देह में डाल दिया है। जिससे 'पति रूप में' प्राप्त करेगी–ऐसा अर्थ निकलता है, परन्तु आगे चलकर पिता रूप में प्राप्त करने का उल्लेख है।

अद्रिकायां सुता मत्स्यां सुता जाता ह्यमावसोः । अद्रिकामत्स्यसंभूता गङ्गायमुनसंगमे ।।२२।।
तस्य राज्ञो हि सा कन्या राज्ञो वीर्ये सदैव हि । विरजा नाम ते लोका दिवि रोचन्ति ते गणाः ।।२३।।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तत्र पितरो भास्वरप्रभाः । तान्दानवगणा यक्षा रक्षोगन्धर्वकिंनराः ।।२४।।
भूतसर्पपिशाचाश्च भावयन्ति फलार्थिनः । एते पुत्राः समाख्याताः पुलहस्य प्रजापतेः ।।२५।।
त्रय एते गणाः प्रोक्ता धर्ममूर्तिधराः शुभाः । एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता ।।२६।।
योगिनी योगपत्नी च योगमाता तथैव च । भविता द्वापरं प्राप्य अष्टाविंशं तदैव तु ।।२७।।
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः । श्रीमान्योगी महायोगी योगस्तस्माद्द्विजोत्तमाः ।।२८।।
व्यासादरण्यां संभूतो विधूम इव पावकः । स तस्यां पितृकन्यायां योगाचार्यान्परिश्रुतान् ।।२९।।
कृष्णं गौरं प्रभुं शंभुं तथा भूरिश्रुतं च वै । कन्या कीर्तिमतीं चैव योगिनीं योगमातरम् ।।३०।।
ब्रह्मदत्तस्य जननी महिषी त्वणुहस्य तु । एतानुत्पाद्य धर्मात्मा पुत्रान्योगमवाप्य च ।।३१।।
महायोगतपाश्चैव अपरावर्तिनीं मतिम् । आदित्यकिरणोपेतं त्वपुनर्भावमास्थितः ।।३२।।
सर्वव्यापी विनिर्मुक्तो भविष्यति महामुनिः । अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरास्तु ये ।।३३।।
त्रय एते गणास्तेषां चत्वारोऽन्ये निबोधत । यान्वक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठा मूर्तिमन्तो महाप्रभाः ।।३४।।

के रूप में उत्पन्न हुई। अमावसु के संयोग से अद्रिका नामक मछली की पुत्री के रूप में उसका जन्म हुआ, गङ्गा–यमुना के संगम पर अद्रिका मछली के पेट से उसकी उत्पत्ति हुई, वह उसी राजा अमावसु के वीर्य से उत्पन्न हुई थी अतः उसकी कन्या थी। स्वर्ग में विरज नाम पितरों से वे लोक शोभायमान हैं ।।२१–२३।। वहाँ विद्यमान रहनेवाले पितरगण सूर्य के समान कान्तिमान् हैं, वे 'अग्निष्वात्त' नाम से विख्यात हैं। उन पितरगणों की समस्त दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, भूत, सर्प एवं पिशाचों के गण उत्तम फल की प्राप्ति की इच्छा से पूजा करते हैं। पुलह प्रजापति के इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका। धर्ममूर्ति इन पितरों के तीन गण कहे गये हैं। इनकी मानसी कन्या पीवरी नाम से विख्यात है, वह पीवरी योगिनी, योगपत्नी एवं योगमाता के रूप में भी विख्यात थी। हे द्विजवर्यवृन्द! अट्ठाईसवें द्वापर युग के आने पर पराशर के कुल में शुक नामक महान् तपस्वी, श्रीमान्, योगी एवं महान् योगाभ्यासी की उत्पत्ति होगी, उन्हीं से पृथ्वी पर योग का विस्तार होगा ।।२४–२८।। वे शुक व्यास के संयोग से अरणी में धूमरहित अग्नि के समान तेजोमय रूप में उत्पन्न होंगे और पितरों की मानसी कन्या उस पीवरी में सुविख्यात योगाचार्य कृष्ण, गौर, प्रभु, शंभु तथा भूरिश्रुत नामक पुत्रों को तथा परम योगिनी योगमाता कीर्तिमती नामक कन्या को वे उत्पन्न करेंगे। वह कीर्तिमती अणुह की पत्नी और ब्रह्मदत्त की माता होगी। धर्मात्मा शुक्र अपने महान् तप एवं योग से इन पुत्रों की उत्पत्ति करने के बाद उस परम गति को प्राप्त होंगे, जिसको प्राप्तकर पुनरावर्तन नहीं होता। सूर्य की किरणों के समान परम तेज को प्राप्त होकर वे पुनर्जन्म को न प्राप्त होंगे। इस प्रकार वे महामुनि समस्त चराचर जगत् में व्याप्त होकर सांसारिक बन्धनों से विनिर्मुक्त हो जायँगे। धर्म मूर्ति धारण करनेवाले जो पितरगण हैं वे अमूर्त हैं, इनके तीन गण हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, अब मैं उन अन्य चार पितरों के बारे में बतला रहा हूँ, जो परम कान्तिमान् स्वरूपधारी हैं, उन्हें सुनिये ।।२९–३४।। वे पितरगण कवि

उत्पन्नास्ते स्वधायास्तु कन्या ह्यग्नेः कवेः सुताः । पितरो देवलोकेषु ज्योतिर्भासिषु भास्वराः ।।३५।।
सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयन्त्युत । एतेषां मानसी कन्या गौर्नाम दिवि विश्रुता ।।३६।।
दत्ता सनत्कुमारेण शुक्रस्य महिषी प्रिया । एकत्रिंशच्च विख्याता भृगूणां कीर्तिवर्धनाः ।।३७।।
मरीचिगर्भास्ते लोकाः समावृत्य दिवि श्रुताः । एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः सह विवर्धिताः ।।३८।।
उपहूताः मृतास्ते तु पितरो भास्वरा दिवि । तान्क्षत्रियगणांदृष्ट्वा भावयन्ति फलार्थिनः ।।३९।।
एतेषां मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता । पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै विश्वशर्मणः ।।४०।।
राजर्षेर्जननी देवी खट्वाङ्गस्य महात्मनः । यस्य यज्ञे पुरा गीता गाथा दिव्यैर्महर्षिभिः ।।४१।।
अग्नेर्जन्म तथा दृष्ट्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः । यजमानं दिलीपं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः ।।४२।।
सत्यव्रतं महात्मानं ते स्वर्गेजयिनोऽमराः । आज्यपा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः ।।४३।।
समुत्पन्नस्य पुलहादुत्पन्नास्तस्य वै पुनः । लोकेष्वेतेषु वर्तन्ते कामगेषु विहंगमाः ।।४४।।
एतान्वैश्यगणाः श्राद्धे भावयन्ति फलार्थिनः । एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता ।।४५।।
ययातेर्जननी साध्वी पत्नी सा नहुषस्य तु । सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः ।।४६।।

अग्नि की पुत्री स्वधा से उत्पन्न हुए हैं, और ज्योतिर्भास नामक देवलोकों में उनका निवास-स्थान है, स्वयमेव ये पितरगण बहुत तेजोमय हैं। सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले उन ज्योतिर्मय लोकों में विराजमान पितरों की द्विजगण इसी प्रकार से भावना करते हैं। इनकी मानसी कन्या गौ है, जो स्वर्ग लोक में विख्यात है। सनत्कुमार[१] ने गौ को शुक्र को सौंपा था जहाँ पर वह शुक्र की प्रिया स्त्री हुई। भृगुवंश में उत्पन्न होनेवाले परम यशस्वी इकतीस पितरगण बहुत विख्यात हुए। उनके लोक मरीचिगर्भ के नाम से विख्यात हुए, जो समस्त स्वर्ग लोक को आवृत करके स्थित हैं, ऐसा उनके विषय में सुना गया है ।।३५-३७$\frac{१}{२}$।। ये अंगिरा के पुत्र कहे जानेवाले पितरगण साध्यों के साथ वृद्धि को प्राप्त हुए। स्वर्ग लोक में परम तेजोमय उपहूत नामक पितरगण विराजमान हैं उन क्षत्रियों के पितरगणों की शुभ फल की प्राप्ति के इच्छुक प्राणी भावना, ध्यान या पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या यशोदा नाम से विख्यात है, जो विश्वमहत की पत्नी, विश्वशर्मा की पुत्रवधू और उस महात्मा राजर्षि खट्वाङ्ग की माता थी। प्राचीनकाल में जिसके यज्ञ में दिव्य गुण सम्पन्न महर्षियों ने गाथाओं का गान किया था ।।३८-४१।। स्वर्ग के जीतनेवाले समाहित चित्तवृत्ति सम्पन्न वे पितरगण यज्ञ में अग्नि का जन्म देखने के उपरान्त महात्मा शाण्डिल्य के सत्यव्रतपरायण एवं महात्मा यजमान दिलीप का दर्शन करते हैं जिनके नाम आज्यपा हैं, ये प्रजापति कर्दम के पितरगण हैं जिनकी उत्पत्ति पुलह से हुई थी, उन्हीं के यहाँ इनकी पुनः उत्पत्ति हुई, इन लोकों में ये आकाशचारी पितरगण अपने इच्छानुरूप भ्रमण करते हैं। शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक वैश्यगण श्राद्धों में इनकी भावना करते हैं। इनकी मानसी कन्या विरजा नाम से विख्यात है, जो ययाति की माता और नहुष की पतिव्रता पत्नी थी ।।४२-४५$\frac{१}{२}$। प्रजापति वशिष्ठ के सुकाल नामक पितरगण हैं, जो हिरण्यगर्भ के पुत्र हैं। इन पितरों की भावना शूद्र लोग करते हैं। स्वर्ग में मानस नामक लोक हैं, जिनमें ये निवास करते हैं। इनकी मानसी कन्या

---

[१] आनन्दाश्रम की प्रति में जो पाठ है, उससे यह अर्थ भिन्न है।

हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान्भावयन्त्युत । मानसा नाम ते लोका बहन्ते यत्र ते दिवि ।।४७।।
एतेषां मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा । सा भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी ।।४८।।
जननी त्रसदस्योर्हि पुरुकुत्सपरिग्रहः । एतेषामभ्युपगमान्मनुर्मन्वन्तरेश्वरः ।।४९।।
मन्वन्तरादौ श्राद्धानि प्रवर्तयति सर्वशः । पितॄणामानुपूर्व्येण सर्वेषां द्विजसत्तमाः ।।५०।।
तस्मादिह स्वधर्मेण श्राद्धं देयं तु श्रद्धया । सर्वेषां राजतैः पात्रैरपि वा रजतान्वितैः ।।५१।।
दत्तं स्वधां पुरोधाय तथा प्रीणाति वै पितॄन् । सोमस्याऽऽप्यायनं कृत्वा ह्यग्नेर्वैवस्वतस्य च ।।५२।।
उदगायनं चाग्नौ च अश्वमेधं तदाप्नुयात् । पितॄन्प्रीणाति वै भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम् ।।५३।।
पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः । पुष्टिं प्रजा च स्वर्गं च प्रयच्छन्ति न संशयः ।।५४।।
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते । देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ।।५५।।
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणामपि तृप्तयः । तपसा हि प्रसिद्धेन दृश्यन्ते मांसचक्षुषा ।।५६।।
इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरश्च वै । दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ता ये भावयन्ति तान् ।।५७।।
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः । तेभ्यः श्राद्धानि सत्कृत्य देवाः कुर्वन्ति यत्नतः ।।५८।।
भक्ताः प्राञ्जलयः सर्वे सेन्द्रास्तद्गतमानसाः । विश्वे च सिकताश्चैव पृश्निजाः शृङ्गिन (ण) स्तथा ।।५९।।

नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा है, (भारतभूमि) के दक्षिणापथ में बहती हुई वह सभी जीवों को पवित्र करती है। वह नर्मदा त्रसदस्यु की माता और पुरुकुत्स की पत्नी थी। इन्हीं उपर्युक्त पितरों के कारण मनु मन्वन्तर के अधीश्वर हैं ।।४६–४९।। और मन्वन्तर के आदिमकाल में वे सब प्रकार के श्राद्धों का प्रवर्तन करते हैं। द्विजवर्यवृन्द, समस्त पितरों का वर्णन क्रमशः आप लोगों को सुना चुका। इन सब कारणों से मनुष्य को इस लोक में आकर अपने धर्म के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्धादि कर्म करने चाहिए, इन सब में चाँदी के बने हुए अथवा मिश्रित चाँदी के बने हुए पात्रों में रखकर पितरों के उद्देश्य से पुरोहित को दी गयी स्वधा पितरों को प्रसन्न करती है। सोम, अग्नि एवं सूर्यपुत्र मनु को स्वधादि से खूब सन्तुष्ट करके तथा सूर्य के उत्तरायण के अवसर पर अग्नि में हवनादि करके अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक पितरों को श्राद्धादि से प्रसन्न करता है, उसे पितरगण भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करते हैं ।।५०–५३।। पुष्टि (वृद्धि) अथवा प्रजा (पुत्र-पौत्रादि) की कामना करनेवालों के पितरगण पुष्टि, प्रजा एवं स्वर्ग को प्रदान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले श्राद्धादि कार्य देवताओं के उद्देश्य से किये जानेवाले यज्ञादि कार्यों से भी अधिक फलदायी हैं। देवताओं से पहले पितरों को सन्तुष्ट करना चाहिए–ऐसा प्रसिद्ध है। पितरों की यह सूक्ष्म योग गति और तृप्ति मांस के नेत्र से नहीं देखी जा सकती, तपस्या द्वारा विशेष सिद्धि प्राप्त करने पर ही उनकी इस गति एवं तृप्ति का दर्शन हो सकता है। इन उपर्युक्त पितरगणों, उनके लोक, उनकी कथाएँ, उनके दौहित्र, उनके यजमान एवं उनकी भावना करनेवाले सबका वर्णन कर चुका। इनमें (जैसा कि ऊपर भी कई बार कह चुके हैं) चार मूर्तिधारी हैं, और तीन अमूर्त हैं। देवगण प्रत्येक यत्न से सत्कारपूर्वक उन सबका श्राद्ध करते हैं ।।५४–५८।। इन्द्र समेत वे समस्त देवगण इन पितरों में मन लगाकर, हाथ जोड़कर उनके श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करते हैं। इनके साथ समस्त विश्वेदेवगण, सिकता, पृश्निज, शृङ्गिन, कृष्ण, श्वेत, अज आदि भी इन पितरों की विधिवत् पूजा करते हैं। वातरशन, दिवाकीर्त्य नामक प्रजाएँ; लेख, मरुत्, ब्रह्मा आदि देवगण, अत्रि, भृगु, अंगिरा आदि समस्त ऋषिगण, यक्ष, नाग, सुपर्ण, किन्नर एवं राक्षस, ये सभी

कृष्णाः श्वेतास्त्वजाश्चैव विधिवत्पूजयन्त्युत । प्रजास्ता वातरशना दिवाकीर्त्यास्तथैव च ।।६०।।
लेखाश्च मरुतश्चैव ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः । अत्रिभृग्वङ्गिराद्याश्च ऋषयः सर्व एव च ।।६१।।
यक्षा नागाः सुपर्णाश्च किंनरा राक्षसैः सह । पितृंस्त्वपूजयन्सर्वे नित्यमेव फलार्थिनः ।।६२।।
एवमेते महात्मानः श्राद्धे सत्कृत्य पूजिताः । सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति शतशोऽथ सहस्त्रशः ।।६३।।
हित्वा त्रैलोक्यसंसारं जरामृत्युभयं तथा । मोक्षं योगमथैश्वर्यं प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।६४।।
मोक्षोपायमथैश्वर्यं सूक्ष्मदेहाश्च देवताः । कृत्स्नं वैराग्यमानन्त्यं प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।६५।।
ऐश्वर्यं विहितं योगमैश्वर्यं वित्तमुत्तमम् । यौगैश्वर्यादृते मोक्षः कथंचिन्नोपपद्यते ।।६६।।
अपक्षस्यैव गमनं गमने पक्षिणो यथा । वरिष्ठः सर्वधर्माणां मोक्षधर्मः सनातनः ।।६७।।
विमानायां सहस्त्राणि युक्तान्यप्सरसां गणैः । सर्वकामप्रसिद्धानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।६८।।
प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमेव च । पितॄणां हि प्रसादेन प्राप्यते सुमहात्मनाम् ।।६९।।
मुक्तावैदूर्यवासांसि वाजिनागायुतानि च । कोटिशश्चापि रत्नानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।७०।।
हंसबर्हिणयुक्तानि मुक्तावैदूर्यवन्ति च । किङ्किणीजालनद्धानि सदापुष्पफलानि च ।।
प्रीत्या नित्यं प्रयच्छन्ति मनुष्याणां पितामहाः ।।७१।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।।७३।।

शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक होकर नित्य ही इन पितरों की पूजा करते हैं ।।५९-६२।। श्राद्धादि में सत्कारपूर्वक पूजित ये महात्मा पितरगण सैकड़ों सहस्त्रों की संख्या में मनुष्य के समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं। तीनों लोक, संसार, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय को छोड़कर पितामहगण मोक्ष, योग-प्राप्ति एवं प्रचुर ऐश्वर्य-इन सबको प्रदान करते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी ये पितामह नामक देवगण (पितरगण) मोक्ष को प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य, समस्त जागतिक वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाले अनन्त वैराग्य को प्रदान करते हैं। अनुष्ठित (किया हुआ) योग ही ऐश्वर्य है, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भी ऐश्वर्य है। योग एवं ऐश्वर्य के बिना मोक्ष की प्राप्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं ।।६३-६६।। जिस प्रकार बिना पंखे के आकाश में पक्षियों का उड़ना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार योग एवं ऐश्वर्य के बिना मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। सभी धर्मों में मोक्ष का साधनभूत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वदा विद्यमान रहनेवाला है। ये पितामहगण अप्सराओं के समूहों से घिरे हुए ऐसे सहस्त्रों विमानों को प्रदान करते हैं, जो समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं। महात्मागण, बुद्धि, पुष्टि, स्मणशक्ति, मेधा (धारणाशक्ति), राज्य, आरोग्य इन सबको पितरों के आशीर्वाद से प्राप्त करते हैं। पितामहगण मुक्ता, वैदूर्य, विविध वस्त्र, सहस्त्रों अश्व, नाग, करोड़ों रत्न आदि भी प्रदान करते हैं। ये पितामह (पितर) गण हंस और वर्हियों से युक्त, मुक्ता और वैदूर्य से समन्वित, किंकिणी के जालों से गुथे हुए सर्वदा पुष्प और फलों से संयुक्त (रथ को) प्रसन्न होकर नित्य प्रदान करते हैं ।।६७-७१।।

श्री वायुमहापुराण में उपोद्घात में श्राद्धकल्प नामक तिहत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ।।७३।।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

सौवर्णं राजतं ताम्रं पितॄणां पात्रमुच्यते। रजतं रजताक्तं वा पितॄणां पात्रमुच्यते ।।१।।
रजतस्य कथा वाऽपि दर्शनं दानमेव च। अनन्तमक्षयं स्वर्ग्यं पितॄणां दानमुच्यते ।।
पितॄनेतेन दानेन सत्पुत्रास्तारयन्त्युत ।।२।।
राजते हि स्वधा दुग्धा पात्रेऽस्मिन्पितृभिः पुरा। स्वधादायार्थिभिस्तात तस्मिन्दत्ते तदक्षयम् ।।३।।
कृष्णाजिनस्य सांनिध्यं दर्शनं दानमेव वा। रक्षोघ्नं ब्रह्मवर्चस्यं पितॄंस्तत्तद्वितारयेत् ।।४।।
काञ्चनं राजतं ताम्रं दौहित्रं कुतपस्तिलाः। वस्त्रं च पावनीयानि त्रिदण्डी योग एव च ।।५।।

अध्याय ७४

श्राद्धकल्प

बृहस्पति ने कहा–सुवर्ण, चाँदी और ताँबे के निर्मित पात्र पितरों के लिए कहे गये हैं, चाँदी अथवा चाँदी से मढ़ा हुआ पात्र भी पितरों के लिए कहा गया है। चाँदी का दान, अभाव में उसका दर्शन अथवा उसका नाम ले लेना भी पितरों को अनन्त अक्षय एवं स्वर्ग देनेवाला दान कहा जाता है। योग्य पुत्रगण इस चाँदी के दान से पितरों को तारते हैं ।।१–२।। हे तात! प्राचीनकाल में स्वधा देनेवाले पितरों ने चाँदी के पात्र में स्वधा का दोहन किया था, यही कारण है कि उसका दान अथवा उसके बने हुए पात्र में दान करने पर अक्षय फल की प्राप्ति होती है। काले मृगचर्म का सान्निध्य, दर्शन अथवा दान भी राक्षसों का विनाश करनेवाला (अथवा राक्षसों का विनाशक एवं ब्राह्मतेज का वर्द्धक मंत्र) एवं ब्राह्मतेज को प्रदान करनेवाला है, पितरों के कार्य में इसका वितरण करना चाहिए ।।३–४।। सुवर्णनिर्मित, चाँदीनिर्मित, ताम्रनिर्मित वस्तु, दौहित्र, कुतप[1], तिल, वस्त्र, अन्यान्य पवित्र वस्तुएँ, त्रिदण्डी योग (वचन, मन एवं कर्म का योग) ये सब वस्तुएँ श्रेष्ठ कही गयी हैं। श्राद्ध कर्म में यह सर्वश्रेष्ठ विधि सनातन से प्रचलित है–यह बाह्य नियम है। इन उपर्युक्त वस्तुओं के द्वारा विधिपूर्वक किया गया श्राद्धविधान श्राद्धकर्त्ता को आयु, कीर्ति, प्रजा, बुद्धि, संतति आदि सब–कुछ बढ़ानेवाला है; दक्षिण और पूर्व की दिशा में, विशेषतया विदिक् (कोण) में

---

[1] दिन ही के दूसरे प्रहर की पिछली घड़ी से लेकर तीसरे प्रहर की पहली घड़ी तक का समय, नेपाल देश का कम्बल, कुश का तृण आदि श्राद्ध कर्म की उपयोगी कई वस्तुओं का नाम कुतप है। परन्तु यहाँ पर समय से, नेपाली कम्बल से तथा कुश से तात्पर्य है।

श्राद्धकर्मण्ययं श्रेष्ठो विधिर्बाह्यः सनातनः। आयुः कीर्तिः प्रजाश्चैव प्रज्ञासंततिवर्धनः ।।६।।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां विदिक्स्थानं विशेषतः। सर्वतोऽरत्निमात्रं तु चतुरस्रं सुसंहितम् ।।७।।
वक्ष्यामि विधिवत्स्थानं पितॄणामनुशासनात्। धान्यमारोग्यमायुष्यं बलवर्णविवर्धनम् ।।८।।
तत्र गर्तास्त्रयः कार्यास्त्रयो दण्डाश्च खादिराः। रत्निमात्रास्तु ते कार्या रजतेन विभूषिताः ।।
ते वितस्त्यायताः कार्याः सर्वतश्चतुरङ्गुलाः ।।९।।
प्राग्दक्षिणमुखान्भूमौ स्थितानसुषिरांस्तथा। अद्भिः पवित्रपूताभिः प्लावयेत्सततं शुचिः ।।१०।।
पयसा ह्यजगव्येन शोधनं वार्भिरेव तु। तर्पणात्सततं ह्येवं तृप्तिर्भवति शाश्वती ।।११।।
इह चामुत्र च श्रीमान्सर्वकर्मसमन्वितः। एवं त्रिषवणस्नातो योऽर्चयेत् पितॄन्सदा ।।
यत्नेन विधिवत्सम्यगश्वमेधफलं लभेत् ।।१२।।
तत्स्थापयेदमावास्यां (?) गर्ते भूचतुरङ्गुले। त्रिःसप्तसंज्ञास्ते यज्ञास्त्रैलोक्यं धार्यते तु वै ।।१३।।
तस्य पुष्टिरथैश्वर्यमायुः संततिरेव च। विचित्रा भजते लक्ष्मीर्मोक्षं च लभते क्रमात् ।।१४।।

श्राद्धकर्म का विधान है। सर्वत्र अरत्नि[1] मात्र परिमाण का, चौकोर सुन्दर स्थान होना चाहिए। पितरों के कार्य में जो आदेश शास्त्रों के हैं, उनके अनुसार स्थान के विषय में विधिवत् कह रहा हूँ, जो धन देनेवाला, आरोग्य साधक, दीर्घायुप्रदाता तथा बल और वर्ण की वृद्धि करनेवाला है ।।५-८।। पितरों के उपर्युक्त श्राद्धस्थल में तीन गड्ढे बनाने चाहिए, जो परिमाण में रत्निमात्र[2] लम्बे और चाँदी से विभूषित हों, इसके अतिरिक्त खदिर के डण्डे भी होने चाहिए, जो बित्ते भर लम्बे हों उनके चारों ओर चार अंगुल मान के वेष्ठन बने हों। पूर्व और दक्षिण के मुख भाग की ओर से पृथ्वी पर रखे गये, छिद्ररहित, उन डण्डों को परमपवित्र जल से नहलाये ।।९-१०।। बकरी के अथवा गाय के दूध अथवा जल से उसको पुनः शुद्ध करे, इस प्रकार विधिपूर्वक तर्पण करने से सार्वकालिक तृप्ति होती है ।।११।। इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्धकर्म का अनुष्ठान करनेवाला प्राणी ऐहिक-पारलौकिक विभूतियों से सुसमृद्ध तथा सर्व-कर्म-समन्वित होता है। इसी प्रकार तीन बार सवन स्नान करके जो विधिपूर्वक मंत्रादि का उच्चारण कर भलीभाँति सर्वदा पितरों की पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।।१२।। अमावस्या तिथि को पृथ्वीतल पर चार अंगुल के गढ़े में श्राद्धोपयोगी वस्तुओं की स्थापना करनी चाहिए। ये त्रिःसप्तयज्ञ के नाम से विख्यात हैं, इन्हीं पर त्रैलोक्य की स्थिति है। जो व्यक्ति इसका अनुष्ठान करता है, उसको पुष्टि, ऐश्वर्य, दीर्घायु, संतति, प्रचुर लक्ष्मी तथा मोक्ष की क्रमशः प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों से सत्कारपूर्वक पूजित यह एक मंत्र समस्त पापों को दूर करनेवाला, परमपवित्र तथा अश्वमेध यज्ञ की फलप्राप्ति करानेवाला है, इसको बतला रहा हूँ, इस मंत्र की रचना ब्रह्मा ने की थी, यह अमृत

---

[1] कनिष्ठिका अँगुली फैलाकर केहुनी तक की लम्बाई।

[2] मुट्ठी बँधे हुए हाथ का परिमाण।

पापापहं पावनीयमश्वमेधफलं तथा। अश्वमेधफल ह्येतद्द्विजैः सत्कृत्य पूजितम्।।
मन्त्रं वक्ष्याम्यहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्मितम् ।।१५।।
देवाताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत ।।१६।।
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावर्तं जपेत्सदा। पिण्डनिर्वपणे चैव जपेदेतत्समाहितः ।।
पितृणः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च ।।१७।।
पितृस्तत्त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं तारयत्युत। पठ्यमानः सदा श्राद्धे नियतं ब्रह्मवादिभिः ।।१८।।
राज्यकामो जपेदेवं सदा मन्त्रमतन्द्रितः। वीर्यशौचार्थसत्त्वं च श्रीरायुर्बलवर्धनम् ।।१९।।
प्रीयन्ते पितरो येन जप्येन नियमेन च। सप्तार्चिषं प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ।।२०।।
अमूर्तानां समूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेभ्यो ध्यानिभ्यो योगचक्षुषः ।।२१।।
इन्द्रादीनां जनयितारो भृगुमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणां पितृणां च तान्नमस्यामि कामदान् ।।२२।।
मन्वादीनां सुरेशानां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा। तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितृन्कुशलदायकान् ।।२३।।

मंत्र है ।।१३-१५।। "देवाताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत" अर्थात् समस्त देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वधा एवं स्वाहा–सबको हम नमस्कार करते हैं, ये सब नित्य (शाश्वत) फल प्रदान करनेवाले हैं। सर्वदा श्राद्ध के प्रारम्भ, अवसान तथा पिण्डदान के समय इस मंत्र का समाहित (सावधान) चित्त होकर तीन बार पाठ करना चाहिए। इससे पितरगण शीघ्र ही वहाँ आ जाते हैं और राक्षसगण तुरत वहाँ से पलायन कर जाते हैं ।।१६-१७।। ब्राह्मणों द्वारा श्राद्ध के अवसर पर पढ़े जाने पर यह मन्त्र तीनों लोकों में पितरों का उद्धार करता है। राज्यप्राप्ति का अभिलाषी इस मन्त्र का आलस्यरहित होकर सर्वदा पाठ करे। यह वीर्य, पवित्रता, धन, सात्त्विक बल, लक्ष्मी, दीघायु, बल आदि को बढ़ानेवाला मन्त्र है। जिसके नियमपूर्वक जप करने से पिरतगण प्रसन्न हो जाते हैं–ऐसे सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, शुभ फलदायी नामक मन्त्र को बतला रहा हूँ ।।१८-२०।। "अमूर्तानां समूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्, नमस्यामि सदा तेभ्यो ध्यानिभ्यो योगचक्षुषः। इन्द्रादीनां जनयितारो भृगु मारीचयोस्तथा, सप्तर्षीणां, पितृणां च तान्नमस्यामि कामदान्, मन्वादीनां सुरेशानां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा, तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितृन्कुशलदायकान्। नक्षत्राणां चरादीनां पितृनथ पितामहान्। द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः। देवर्षीणां जनयितृंश्च सर्वलोक नमस्कृतान्, अभयस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृताञ्जलिः। प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च, योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः। पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे।" अमूर्त समूर्त सभी परमतेजस्वी योगनेत्र, ध्यानपरायण पितरों को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ, इन्द्र प्रभृति देवगण, भृगु, कश्यप प्रभृति ऋषियों के जनयिता (पिता) पितरों एवं सप्तर्षियों को नमस्कार करता हूँ, जो सभी मनोरथों के पूर्ण करनेवाले हैं। मनु प्रभृति सुरेशों एवं सूर्य, चन्द्रमा को मङ्गल प्रदान करनेवाले समस्त पितरों

नक्षत्राणां चरादीनां पितॄनथ पितामहान्। द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ।।२४।।
देवर्षीणां जनयितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्। अभयस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ।।२५।।
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च। योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः ।।२६।।
पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे ।।२७।।
एतदुक्तं ससप्तर्षिब्रह्मर्षिगणपूजितम्। पवित्रं परमं ह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम् ।।२८।।
अनेन विधिना युक्तस्त्रीन्वरांल्लभते नरः। अन्नमायुः सुतांश्चैव ददते पितरो भुवि ।।२९।।
भक्त्या परमया युक्तःश्रद्दधानो जितेन्द्रियः। सप्तार्चिषं जपेद्यस्तु नित्यमेव समाहितः ।।
सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यामेकराड्भवेत् ।।३०।।
यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव च। अनिवेद्य न भोक्तव्यं तस्मिन्नायतने सदा ।।३१।।
क्रमशः कीर्तयिष्यामि बलिपात्राण्यतः परम्। येषु यच्च फलं प्रोक्तं तन्मे निगदतः शृणु ।।३२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।।७४।।

को नमस्कार करके नक्षत्रों, समस्त चराचर पदार्थों एवं आकाश तथा पृथ्वी के जनयिता पितामह पितरों को अंजलि बाँधकर नमस्कार करता हूँ। सपूर्ण लोकों के नमस्करणीय देवताओं तथा ऋषियों के जनयिता, सर्वदा अभय प्रदान करनेवाले पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, चन्द्रमा, वरुण तथा योगयोगेश्वर पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। सातों लोकों में निवास करनेवाले पितरों के सातों गणों को, योगनेत्र स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है।" सातों ऋषियों एवं ब्रह्मर्षियों द्वारा पूजित परम पवित्र, श्रीसम्पन्न, राक्षसों के विनाशक इस स्तोत्र को आप लोगों को सुना चुका ।।२१-२८।। इस उपर्युक्त विधि समेत श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति तीन पदार्थों का वरदान प्राप्त करता है, अन्न, दीर्घायु एवं पुत्र–इन तीन वरदानों को पृथ्वीतल पर निवास करनेवालों को पितरगण प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति परमभक्ति एवं श्राद्ध समेत जितेन्द्रिय एवं समाहित चित्त होकर इस सप्तार्चिष नामक स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह सातों द्वीपों एवं समुद्रों समेत पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र राजा होता है। अपने गृह में मनुष्य भक्ष्य भोज्य जो कुछ भी पदार्थ पकाता है, उसे पितरों को बिना निवेदित किये कभी न खाना चाहिए। अब इसके उपरान्त मैं बलि कर्म के उपयोगी पात्रों के विषय में वर्णन करूँगा, जिन-जिन पात्रों में बलिकर्म करने से जो-जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये ।।२९-३२।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७४।।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

पालाशं ब्रह्मवर्चस्यमश्वत्थे राज्यभावना। सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे निन्ययुदाहृतम् ।।१।।
(*पुष्टिकामं च न्यग्रोधं बुद्धिं प्रज्ञां धृतिं स्मृतिम्। रक्षोघ्नं च यशस्यं च काश्मर्यं पात्रमुच्यते ।।२।।
सौभाग्यमुत्तमं लोके मधुके समुदाहृतम्)। फल्गुपात्रे च कुर्वाणः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।३।।
परा द्युतिरथो कर्तुः प्राकाश्यं च विशेषतः। विल्वे लक्ष्मीस्तथा मेधा नित्यमायुष्यमेव च ।।४।।
क्षेत्रारामतडागेषु सर्वसस्येषु चैव हि। वर्षेदजस्रं पर्जन्यो वेणुपात्रेषु कुर्वतः ।।५।।
एतेष्वेव सुपात्रेषु ये चैवाऽऽग्रयणं दद्युः। सकृदप्यत्र यज्ञानां सर्वेषां फलमुच्यते ।।६।।
पितृभ्यो यस्तु माल्यानि सुगन्धीनि च सर्वशः। सदा दद्याच्छ्रिया युक्तः स विभाति दिवाकरः ।।७।।

अध्याय ७५

श्राद्धकल्प

बृहस्पति बोले—पलाश के पत्तों से बने हुए पात्र में बलिकर्म करने से ब्राह्मण तेज की प्राप्ति होती है, अश्वत्थ (पीपल) के पत्तों से बने हुए पात्र में राज्य की भावना की जाती है, इसी प्रकार प्लक्ष (पाकड़) के पत्तों से बने पात्र में सभी जीवों का आधिपत्य प्राप्त होना बतलाया जाता है। यह सर्वदा का नियम है। पुष्टि, बुद्धि, प्रज्ञा एवं स्मरणशक्ति की कामना से बरगद के पत्तों के पात्र में बलिकर्म करना चाहिए। काश्मीरी (खम्भारी) के पत्तों से बने हुए पात्र राक्षसों के विनाशक एवं यशोवर्द्धक कहे गये हैं ।।१-२।। मधूक (महुए) के पत्तों से निर्मित पात्र में कृत बलिकर्म इस लोक में उत्तम सौभाग्य प्रदान करता कहा जाता है। फल्गु[1] (कठूमर) के पत्तों से बने हुए पात्र में श्राद्ध करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं, एवं परमकान्ति तथा प्रकाश की प्राप्ति श्राद्धकर्त्ता को होती है। विल्व के पात्र से लक्ष्मी, धारणाशक्ति तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।।२-४।। वेणु (वेणु) के पात्र में श्राद्ध करनेवाले के खेत, बगीचे और जलाशयों में मेघ नित्य वृष्टि करता है। इन उपर्युक्त पात्रों में जो लोग श्राद्ध के अवसर पर पितरों को एक बार भी बलि देते हैं वे सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति पितरों को भक्तिपूर्वक सुन्दर पुष्प, माला, सुगन्धित द्रव्य आदि नित्य देता है वह श्रीसम्पन्न होकर सूर्य के समान तेजस्वी होकर शोभा पाता है ।।५-७।। गुग्गुल आदि से धूप द्रव्यों को मधु और घृत

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तकेषु नास्ति।

[1] कठूमर। इसके पेड़ बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इस पर फूल नहीं आते। इसकी डालियों से फल पैदा होते हैं, इसके पत्ते गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं। पत्तों के स्पर्श करने से हाथों में खुजली होने लगती है। पत्तों से दूध निकलता है।

गुग्गुलादींस्तथा धूपान्पितृभ्यो यः प्रयच्छति । संयुक्तान्मधुसर्पिभ्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।८।।
धूपं गन्धगुणोपेतं कान्तं पितृपरायणम् । लभते स्त्रीष्वपत्यानि इह चामुत्र चोभयोः ।।
दद्यादेव पितृभ्यस्तु नित्यमेव ह्यतन्द्रितः ।।९।।
दीपं पितृभ्यः प्रयतः सदा वस्तु प्रयच्छति । स लोकेऽप्रतिभं चक्षुः सदा च लभते शुभम् ।।१०।।
तेजसा यशसा चैव कान्त्या चैव वलेन च । भुवि प्रकाशो भवति भ्राजते च त्रिविष्टपे ।।
अप्सरोभिः परिवृतो विमानाग्रे स मोदते ।।११।।
गन्धपुष्पाणि धूपांश्च दद्यादाज्याहुतीश्च वै । फलमूलनमस्कारैः पितृणां प्रयतः शुचिः ।।१२।।
श्राद्धकाले तु सततं वायुभूताः पितामहाः । आविशन्ति द्विजान्दृष्ट्वा तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ।।१३।।
वस्त्रैरन्नैः प्रदानैस्तैर्भक्ष्यपेयैस्तथैव च । गोभिरश्वैस्तथा ग्रामैः पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।।१४।।
भवन्ति पितरः प्रीताः पूजितेषु द्विजातिषु । तस्मादन्नेन विधिवत्पूजयेद्द्विजसत्तमान् ।।१५।।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्यादुल्लेखनं द्विजः । मोक्षणं च तथा कुर्याच्छ्राद्धकर्मण्यतन्द्रितः ।।१६।।
दर्भान्पिण्डांस्तथा भक्ष्यान्पुष्पाणि विविधानि च । गन्धदानमलंकारमेकैकं निर्वपेद्बुधः ।।१७।।
पोषयित्वा जनं सम्यग्वैश्वः स्यादुत्तरो द्विजः । अभ्यङ्गदर्भपिञ्जूलैस्त्रिभिः कुर्याद्यथाविधि ।।१८।।

के समेत जो पितरों के उद्देश्य से समर्पित करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। पितरों के उद्देश्य से जो मनोहर सुगंधियुक्त धूप दान करता है वह अपनी स्त्री में इस लोक तथा परलोक मे उत्तम सन्तान प्राप्त करता है। अतः बिना आलस्य किये नित्य पितरों को धूपदान करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सर्वदा पितरों के उद्देश्य से दीपदान करता है, वह लोक में परम सुन्दर अनुपम नेत्र प्राप्त करता है ।।८-१०।। अपने तेज, यश, कान्ति तथा बल से पृथ्वीतल में विख्यात होता है और अन्तकाल में स्वर्ग में शोभा पाता है। वहाँ पर अप्सराओं से घिरा हुआ, विमान पर अवस्थित हो आनन्द का अनुभव करता है। जितेन्द्रिय एवं पवित्र हो पितरों को गन्ध, पुष्प, धूप, घृत, आहुति, फल, मूल एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिए, पितरों को प्रथमतः तृप्त करके उसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार अन्न सम्पत्ति से ब्राह्मणों को पूजा करनी चाहिए। सर्वदा श्राद्ध के अवसर पर पितामहगण (पितृगण) वायुरूप धारण कर उनको देखकर, उन्हीं में आविष्ट हो जाते हैं—इसीलिए मैं तत्पश्चात् उनके भोजन कराने की बात कह रहा हूँ। वस्त्र, अन्न, विशेष दान, भक्ष्य, पेय, गौ, अश्व तथा ग्रामादि का दान देकर उत्तम ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। द्विजों के सत्कृत होने पर पितरगण प्रसन्न होते हैं। अतः अन्न द्वारा ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ।।११-१५।। विद्वान् ब्राह्मण सर्वप्रथम श्राद्धकर्म में बिना आलस्य के बायें और दाहिने हाथों से उल्लेख करे और उसी प्रकार प्रोक्षण (सिंचन) करे। तदुपरान्त कुश, पिण्ड, विविध प्रकार के भक्ष्य, पुष्प, गन्धदान, अलंकार आदि वस्तुओं में से एक-एक का निर्वपन करे। श्राद्धकर्म में ब्राह्मण को चाहिए कि भली तरह उपस्थित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके वैश्वदेव कर्म के उपरान्त अभ्यङ्ग (तैलमर्दन), कुश एवं पिञ्जल (?) इन तीनों से विधिवत् क्रियाएँ सम्पन्न कर ।।१६-१८।। फिर अपसव्य होकर पितरों के उद्देश्य

अपसव्यं पितृभ्यश्च दद्यादन्नमनुत्तमम् । तानुच्चार्याथ सर्वेषां वस्त्रार्थं सूत्रमेव च ।।१९।।
खण्डनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनं तथा । सकृदेव हि देवानां पितॄणां त्रिभिरुच्यते ।।२०।।
एकं पवित्रं हस्तेन पितॄन्सर्वान्सकृत्सकृत् । चैलमन्त्रेण पिण्डेभ्यो दत्त्वा दर्शनजं हितम् ।।२१।।
सदा सर्पिस्तिलैर्युक्तांस्त्रीन्पिण्डान्निर्वपेद्भुवि । जानुं कृत्वा तथा सव्यं भूमौ पितृपरायणः ।।२२।।
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । आहूय च पितॄन्प्राञ्चान्पितृतीर्थेन यत्नतः ।।
पिण्डान्परिक्षिपेत्सम्यगपसव्यमतन्द्रितः ।।२३।।
अन्नेनाद्भिश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैश्चैव पृथग्विधैः । पृथङ्मातामहानां तु केचिदिच्छन्ति मानवाः ।।२४।।
त्रीन्पिण्डानानुपूर्व्येण साङ्गुष्ठान्पुष्टिवर्धनान् । जान्वन्तराभ्यां यत्नेन पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ।।२५।।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे मन्त्रे च पर्ययः । नमो वः पितरः शुष्मै सदा ह्येवमतन्द्रितः ।।२६।।
दक्षिणस्यां तु पाणिभ्यां प्रथमं पिण्डमुत्सृजेत् । नमो वः पितरः सौम्याः पठन्नित्यमतवन्द्रितः ।।२७।।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे सर्वमतन्द्रितः । उलूखलस्य लेखायामुदपात्राच्च सेवनम् ।।२८।।
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छोणं कार्पासिकं तथा । पत्रोर्णं पितृसूत्रं च कौशेयं परिवर्जयेत् ।।२९।।
वर्जयेत्तद्दशां यज्ञे यदप्यहतवस्त्रजाम् । न प्रीणन्ति तथैतानि दातुराप्यायतो भवेत् ।।३०।।

से उत्तम अन्न दे, उन सबों का नामोच्चारण करके वस्त्र के लिए सूत्रदान करे ।।१९।। देवताओं के लिए खण्डन, पेषण और उल्लेखन–इनका एक बार का विधान है, और पितरों के लिए तीन बार कहा गया है ।।२०।। हाथ से एक पवित्र लेकर सभी पितरों को अलग–अलग से वस्त्रदान के मन्त्र द्वारा पिण्डों के ऊपर देकर दर्शन करने का कल्याण प्राप्त किया जाता है ।।२१।। सभी श्राद्धकार्यों में घृत, तिल–युक्त पिण्डों का निर्वपन भूमि पर करना यत्नपूर्वक पितरों के जल से पिता, पितामह, प्रपितामह एवं पुराने पितरों का आवाहन कर पिण्डों को नीचे रखे। कुछ लोग अन्न, जल, पुष्प, भिन्न–भिन्न प्रकार के भक्ष्य आदि पदार्थों से मातामह (नाना आदि मातृपक्ष के पितरों को) आदि के लिए पिण्डदान का अलग विधान मानते हैं ।।२२–२४।। क्रमशः अँगूठे समेत पुष्टिवृद्धि करनेवाले तीन पिण्डों को, घुटने को पृथ्वी पर टेककर 'नमो वः पितरः शुष्मै' ऐसा मन्त्र उच्चारण करके बायें हाथ से प्रदान करे। सर्वदा इसी प्रकार सावधान चित्त होकर करना चाहिए। तदनन्तर सावधान होकर 'नमो वः पितरः सौम्यः' ऐसा मन्त्रोच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में प्रथम पिण्डदान करे ।।२५–२७।। तदुपरान्त बायें, दाहिने हाथों से बिना आलस्य किये उलूखल में परिष्कृत तन्दुल (चावल), जलपात्र से जल, (?) नवीन क्षौम[1], सूत्र, कपास का सूत, शोणसूत (लाल रंग का सूत?) पितरों के उद्देश्य से दान करे। किन्तु ऊन, पत्ते या रेशम का सूत पितरों के उद्देश्य से नहीं देना चाहिए ।।२८–२९।। इसी प्रकार यज्ञ में वस्त्र के अंचल भाग को, भले ही वह नवीन वस्त्र का हो, भी वर्जित रखना चाहिए। ये उपर्युक्त निषिद्ध वस्तुएँ पितरों को प्रसन्न नहीं करतीं, अतः इनके देनेवाले भी सन्तुष्ट नहीं होते। पितृकार्य में त्रिककुद एवं अञ्जन को श्रेष्ठ बतलाया गया है। इसी प्रकार

---

[1] अलसी के अथवा पाट की खाल से बना हुआ सूत।

श्रेष्ठमाहुस्त्रिककुदमञ्जनं नित्यमेव च। कृष्णेभ्यश्च तिलेभ्यश्च यत्तैलं परिरक्षितम्॥३१॥
चन्दनागुरुणी चोभे तमालोशीरपद्मकम्। धूपं च गुग्गुलं श्रेष्ठं तुरुष्कं धूपमेव च॥३२॥
शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च। गन्धवन्त्युपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः॥३३॥
जपासुमनसो भण्डीरूपकामकुरण्डकाः। पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः॥३४॥
यानि गन्धादपेतानि उग्रगन्धीनि यानि च। वर्जनीयानि पुष्पाणि भूतिमन्विच्छता तदा॥३५॥
द्विजातयस्तथाऽन्विष्टा नियताः स्युरुदङ्मुखाः। पूजयेद्यजमानस्तु विधिवद्दक्षिणामुखः॥३६॥
तेषामभिमुखो दद्याद्दर्भान्पिण्डांश्च यत्नतः। अनेन विधिना साक्षादर्चयेत्स्वान्पितामहान्॥३७॥
हरिता वै सपिञ्जूल्यः पुष्पस्निग्धाः समाहिताः। रत्निमात्रप्रदानेन पितृतीर्थेन संस्थिताः॥३८॥
उपमूले तथा नीलाः प्रस्तराद्यकुलोद्यमाः। तथा श्यामाकनीवारा दुर्वाराः समुदाहृताः॥३९॥
पूर्वं कीर्तितवाञ्श्रेष्ठो बभूवाथ प्रजापतिः। तस्य बाला निपतिता भूमौ चरऽऽकाशमार्गतः॥४०॥
तस्मान्मेध्याः सदा काशाः श्राद्धकर्मणि पूजिताः। पिण्डनिर्वपणं तेषु कर्तव्यं भूमिमिच्छता॥४१॥
प्रजापुष्टिर्द्युतिः कीर्तिः प्रज्ञाकान्तिमसन्विता। भवन्ति रुचिरा नित्यं विपाप्मानोऽघविवर्जिताः॥४२॥

काले तिल से निकला हुआ जो तेल है वह भी प्रशस्त है॥३०-३१॥ चन्दन, अगुरु (अगर), तमाल, उशीर, पद्मक (पद्माख), धूप, गुग्गुल, श्रेष्ठ तुरुष्क[1] का धूप, श्वेत पुष्प—ये सब वस्तुएँ पितृकार्य में श्रेष्ठ हैं। पद्म, उत्पल एवं अन्यान्य जितनी सुगन्धित वस्तुएँ हैं—वे सब भी शुभ हैं। जपा, भण्डीर, रूपकाम एवं कुरण्डक के पुष्पों को श्राद्धकर्म में सर्वदा वर्जित रखने चाहिए। कल्याण की कामना करनेवाले व्यक्ति को, निर्गन्ध अथवा अति तीक्ष्ण गन्धवाले पुष्पों को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। श्राद्धकर्म में यजमान को चाहिए कि वह दक्षिणाभिमुख होकर विधिपूर्वक आमन्त्रित उत्तराभिमुख बैठे हुए जितेन्द्रिय ब्राह्मणों की पूजा करे॥३२-३६॥ तदनन्तर उनके सामने यत्नपूर्वक पिण्डों को और कुशों को दे, इस विधि से अपने पितामहों की पूजा करे। पुष्पों से संयुक्त, सरल सीधी हरी पिञ्जूलियाँ (?) वहाँ रखे, पितरों के तीर्थ से संयुक्त उसके रत्निमात्र दान देने से पितर लोग संतुष्टि लाभ करते हैं॥३७-३८॥ मूल के समीप में नीले वर्ण की, पत्थर आदि के टुकड़ों से रहित साँवाँ और नीवार—ये दो वस्तुएँ भी पितृकार्य में दुष्प्राप्य कही गयी हैं। पूर्वकाल में इसकी कथा इस प्रकार कही जाती है। प्रजापति के केश आकाशमार्ग से पृथ्वी पर जो गिरे वे काश[2] के रूप में परिणत हुए। यही कारण है कि श्राद्धादि कार्यों में काश सर्वदा परम पवित्र मानी गयी है। विभव की इच्छा करनेवाले व्यक्ति उन पर पिण्डदान करें॥३९-४१॥ पिण्डदान करने से प्रजा (सन्तति) की पुष्टि, शरीर की कान्ति, यश, बुद्धि, शोभा आदि की वृद्धि होती है, पापरहित होने से शरीर अत्यन्त मनोहर हो जाता है। श्राद्धकर्म में दक्षिणाभिमुख होकर केवल

---

[1] लोबान का धूप। यह एक वृक्ष का सुगंधित गोंद है।

[2] कुश की तरह एक तृण। इसका पुष्प श्वेत वर्ण का होता है।

सकृदेवाऽऽस्तरेद्दर्भान्पिण्डार्थं दक्षिणामुखः। प्राग्दक्षिणाग्रनियतो विधिं चाप्यनुवक्ष्यति ।।४३।।
न दीनो वाऽपि वा क्रुद्धो न चैवान्यमना नरः। एकाग्रमाधाय मनः श्राद्धं कुर्यात्सदा बुधः ।।४४।।
निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धाश्च सर्वेऽसुरदानवा मया ।।
रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा हता मया यातुधानाश्च सर्वे ।।४५।।
*एतेन मन्त्रेण सुसंयतात्मा तां वै वेदीं सकृदुल्लिख्य धीरः ।।
भूतिं शिवां हि ध्रुवमिच्छमानः क्षिपेद्द्विजातिर्दिशमुत्तरां गतः ।।४६।।
एवं पित्रे दृष्टमन्नं हि यस्य तस्यासुरा वर्जयन्तीह सर्वे ।।
यस्मिन्देशे पठ्यते एष मन्त्रस्तं वै देशं राक्षसा वर्जयन्ति ।।४७।।
(+अन्नप्रकारान्नाशुचिः साधु वीक्षन्नचैवान्नं संस्पृशंश्चापि दद्यात् ।।
पवित्रपाणिश्च भवेत्तथा हि सहस्रकृत्तस्य फलं समश्नुते) ।।४८।।
अनेन विधिना नित्यं श्राद्धं कुर्याद्द्विजः सदा। मनसा काङ्क्षितं यद्यत्तत्तद्दद्युः पितामहाः ।।४९।।
पितरो हृष्टमनसो रक्षांसि विमनांसि च। भवन्त्येवं कृते श्राद्धे नित्यमेव प्रयत्नतः ।।५०।।

एक बार पिण्डदान के लिए कुशों को पृथ्वी पर बिछाये, पूर्व दक्षिण की ओर अग्रभाग करके उस विधि को सम्पन्न करे, जो बतलायी जायगी ।।४२-४३।। बुद्धिमान् पुरुष कभी दीन, क्रुद्ध अथवा अन्यमनस्क होकर श्राद्ध न करे, सर्वदा एकाग्रचित्त होकर श्राद्ध करना चाहिए ।।४४।। (वह मन में ऐसी भावना करे कि) जो कुछ भी अपवित्र अथवा अनियमित वस्तुएँ हैं, मैं उन सबको निवारित कर रहा हूँ, सभी विघ्न डालनेवाले असुर एवं दानवों को भी मैं मार चुका। सब राक्षस, यक्ष, पिशाच एवं यातुधानों के समूह मुझसे मारे जा चुके हैं ।।४५।। मन्त्र–निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धाश्च सर्वेऽ-सुरदानवाः मया, रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा हता मया यातुधानाश्च सर्वे।' इस मन्त्र द्वारा संयतात्मा धीर यजमान उस वेदी को (कुश द्वारा) एक बार लिखकर कल्याणदायिनी विभूति की इच्छा करता हुआ उत्तर दिशा में जाकर उसे (कुश को) फेंक दे। इस प्रकार की विधि से जो व्यक्ति पितृकार्य में अन्नदान करता है उसके श्राद्धकार्यों में असुरगण वर्जित हो जाते हैं। जिस देश में यह मन्त्र पढ़ा जाता है, उस देश को राक्षस लोग छोड़ देते हैं ।।४६-४७।। अशुचि व्यक्ति श्राद्धकार्यों में अन्न प्रदान करना तो दूर रहा, दिये जानेवाले अन्न का दर्शन अथवा स्पर्श तक न करे, पवित्र पाणि होकर जो अन्नदान करता है वह दान का सहस्र गुना अधिक फल प्राप्त करता है ।।४८।। सर्वदा इसी विधि से ब्राह्मण श्राद्धकर्म सम्पन्न करे, ऐसा करने से जो कुछ भी मनोगत अभिलाषाएँ होती हैं उन सबको पितामहगण पूर्ण करते हैं। ऐसी विधियों से श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से पितर लोग हृदय से प्रसन्न होते हैं और राक्षस लोग निरादृत और बहिष्कृत होते हैं। अतः

---

* नास्त्ययं श्लोकः क. पुस्तके।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

शूद्राः श्राद्धे क्षीरचाशु (?) बल्वजास्तरवस्तथा । वारणाश्च लवाश्चैव लववर्षाश्च नित्यशः ।।
एवमादीन्यथान्यानि तृणानि परिवर्जयेत् ।।५१।।
अञ्जनाभ्यञ्जनागन्धामानुप्रलयनं (?) तथा । काशैः पुनर्भवैः कार्य सर्वमेव फलं भवेत् ।।५२।।
काशाः पुनर्भवा ये च बर्हणा उपबर्हणाः । अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ।।५३।।
पुष्पगन्धादिधूपानामेष मन्त्र उदाहृतः । आहृत्य दक्षिणायां तु होमार्थे विप्र यत्नतः ।।५४।।
अस्वर्ग्यं लौकिकं वाऽपि जुहुयात्कर्मसिद्धये । अन्तराधाय समिधं तथा होमो विधीयते ।।
समाहितेन मनसा प्रयताग्निः प्रयत्नतः ।।५५।।
अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः । सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः ।।
यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नम इति ब्रुवन् ।।५६।।
इत्येते वै होममन्त्रा मन्त्राणामनुपूर्वशः । दक्षिणातोऽग्नये नित्यं सोमायान्तरतस्तथा ।।५७।।
एतयोरन्तरं नित्यं जुहुयाद्वै विवस्वते । उपचारं स्वधाकारं तथैवोल्लेखनं च यत् ।।५८।।
होमजप्ये नमस्कारः प्रोक्षणं च विशेषतः । अञ्जनाभ्यञ्जने चैव पिण्डसंवपनं तथा ।।५९।।

नित्य प्रयत्नपूर्वक उपर्युक्त विधि से श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। श्राद्धकर्म में शूद्र, क्षीरचाशु (?) बल्वज तरु, वारण, लव, लववर्ष–ये तथा अन्यान्य तृणों को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए ।।४९–५१।। अञ्जन, अभ्यञ्जन, गन्धमानुप्रलयन (?) ये सब भी वर्जित हैं। पुनः उत्पन्न हुए काशों से सभी कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए–इसमें सभी फलों की प्राप्ति होती है ।।५२।। जो पुनः उत्पन्न होनेवाले काश तृण हैं वे तथा बर्हण और उपबर्हण–ये भी उसी प्रकार श्राद्धकर्म में उपयोगी हैं। 'अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः' अर्थात् पितरगण देवस्वरूप हैं, और देवगण ही पितरस्वरूप हैं। यह पुष्प सुगंधित द्रव्य, धूपादि के दान के समय का कहा गया है। हवन के लिए रखी गयी सामग्री को दक्षिणदिशा में खींचकर यत्नपूर्वक अस्वर्ग्य अथवा लौकिक विधियों से कर्मसिद्धि के लिए हवन करे। समिध को भीतर रखकर हवन करना चाहिए। अग्नि की उपासना करनेवाला यजमान प्रयत्नपूर्वक समाहित चित्त हो मनोयोगपूर्वक हवन करे ।।५३–५५।। "अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः, सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः। यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नमः।" अर्थात् पितरों के उद्देश्य से ही जानेवाली वस्तुओं को उन तक वाहन करनेवाले कव्यवाह अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है, पितृमान सोम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है, यम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है। ये हवन करने के मन्त्र हैं। इन मन्त्रों के क्रम से नित्य दक्षिण दिशा से अग्नि के तदनन्तर सोम के इन दिनों के मध्य भाग्य में विवस्वान् (यम) के उद्देश्य से हवन करे ।।५६–५७½।। उपचार, स्वधाकार, उल्लेखन, हवन, जप, नमस्कार, प्रोक्षण, अञ्जन, अभ्यञ्जन, पिण्डनिर्वपन–ये सब कार्य–कलाप मन्त्रोच्चारणपूर्वक करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करनेवाले स्मरण किये गये हैं। जैसी विधि के साथ श्राद्धक्रियाएँ बतायी गयी हैं, वैसी ही प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। अग्नि में विशेषतया खूब प्रज्वलित हो जाने पर अधिक हवि डालनी चाहिए, कर्मसिद्धि के लिए दहकती हुई निर्धूम

अश्वमेधफलेनैव तत्स्मृतं मन्त्रपूर्वकम् । क्रियाः सर्वा यथोद्दिष्टाः प्रयत्नेन समाचरेत् ।।६०।।
बहुहव्यत्वमेवाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः । विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ।।६१।।
अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने । यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम् ।।६२।।
अल्पेन्धनो वा रूक्षो वा विस्फुलिङ्गश्च सर्वशः । ज्वालाधूमोऽपसव्यश्च स तु वह्निर्न सिद्धये ।।६३।।
दुर्गन्धश्चैव नीलश्च कृष्णश्चैव विशेषतः । भूमिं विगाहते यत्र तत्र विद्यात्पराभवम् ।।६४।।
अर्चिष्मान्पिण्डितशिखः सर्पिष्काञ्चनसंभवः । स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात्कार्यसिद्धये ।।६५।।
नरनारीगणेभ्यश्च पूजां प्राप्नोति शाश्वतीम् । अक्षयाः पूजितास्तेन भवन्ति पितरोऽव्ययाः ।।६६।।
स्थाल्युदुम्बरपात्राणि फलानि समिधस्तथा । श्राद्धे चातिपवित्राणि मेध्यानीति विशेषतः ।।६७।।
पवित्रं वा द्विजश्रेष्ठ शुद्धये जन्मकर्मसु । पात्रेषु फलमुद्दिष्टं यन्मया श्राद्धकर्मणि ।।६८।।
तदेव कृत्स्नं विज्ञेयं समित्सु च यथाक्रमम् । कृत्वा समाहितं चित्तमग्नये वै करोम्यहम् ।।६९।।
अनुज्ञातः कुरुष्वेति तथैव द्विजसत्तमैः । पत्नीमादाय पुत्रांश्च जुहुयाद्धव्यवाहनम् ।।७०।।
समानप्लक्षन्यग्रोधप्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः । उदुम्बरास्तथा बिल्वचन्दना यज्ञियाश्च ते ।।७१।।
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा । समिदर्थं प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ।।७२।।

अग्नि में हवि डालनी चाहिए ।।५८–६१।। जो यजमान धूमयुक्त अथवा बिना प्रज्वलित अग्नि में हवन करता है वह अन्धा एवं पुत्रविहीन होता है–ऐसा हमने सुना है ।।६२।। थोड़े इन्धनोंवाली रूखी, चारों ओर से चिनगारियोंवाली, ज्वालाओं और धूम से व्याप्त अग्नि सिद्धि के लिए नहीं है ।।६३।। जो अग्नि दुर्गन्धियों से भरी, नीली, विशेषतया काली है और जिसके प्रज्वलित होने पर पृथ्वी फट जाय, उसमें हवन करने से पराभव जानना चाहिए ।।६४।। किरणों से सुशोभित, ज्वालाओं को एक पिण्डरूप में प्रकट करनेवाली, घृत और सुवर्ण से उत्पन्न होनेवाली (पीली) स्निग्ध और प्रदक्षिणा करती हुई–सी अग्नि सिद्धि देनेवाली है ।।६५।। यह अग्नि इस लोक में नर–नारी दोनों समुदायों से सर्वदा से प्रचलित पूजा प्राप्त करती है। उनके द्वारा पूजित होकर पितरगण अक्षय एवं अनन्त तुष्टि प्राप्त करते हैं। श्राद्धकर्म में स्थाली, उदुम्बर के पात्र (गूलर के पत्तों से बने हुए पात्र), उदुम्बर के फल और उसी की समिधा ये वस्तुएँ विशेष पवित्र एवं पुण्यप्रद मानी गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! श्राद्धकर्म में जिन–जिन पात्रों में जो–जो फल मैंने बतलाये हैं वे सब जातकर्म में शुद्धि के अवसर पर भी पवित्र एवं फलदायी होते हैं। समिधा के लिए भी क्रमशः यही नियम जानना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता चित्त को सावधान करके ब्राह्मणों से यह निवेदन करे कि मैं अग्नि में पितरों के उद्देश्य से हवन कर रहा हूँ। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा 'करो' ऐसी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर अपनी पत्नी और पुत्रों को साथ लेकर अग्नि में हवन करे ।।६६–७०।। समान (?) प्लक्ष (पाकड़), न्यग्रोध (वरगद), अश्वत्थ (पीपल), विकंकत, उदुम्बर (गूलर), बिल्व, चन्दन–ये वृक्ष यज्ञ कार्य के लिए उपयोगी हैं। सरल, देवदारु, शाल, खदिर–विशेषतया ये वृक्ष भी यज्ञ की समिधा के लिए प्रशस्त माने गये हैं ।।७१–७२।। ग्रामों में उत्पन्न होनेवाले कण्टकी के वृक्ष भी यज्ञ

ग्राम्याः कण्टकिनश्चैव यज्ञिया येन केन च। पूजिताः समिदर्थे तु पितॄणां वचनं तथा ।।७३।।
समिद्भिः कल्कलेयाभिर्जुहुयाद्यो हुताशनम्। फलं यत्कर्मणस्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ।।७४।।
आयसं सर्वकामीयमश्वमेधफलं हि तत्। श्लेष्मान्तको नक्तमालः कपित्थः शाल्मलिस्तथा ।।७५।।
नीपो विभीतकश्चैव वल्लीभिश्च तथैव च। शकुनानां निवासश्च वर्जयेच्च महीरुहान्।।
अयज्ञियाः स्मृता ये च वृक्षांश्चैव वर्जयेत् ।।७६।।
स्वधेति चैव मन्त्रान्ते पितॄणां वचनं तथा। स्वाहेति चैव देवानां यज्ञकर्मण्युदाहृतम् ।।७७।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५।।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

सूत उवाच

देवाश्च पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये पितरस्तथा। आथर्वणविधिर्ह्येव प्रत्युवाच बृहस्पतिः ।।१।।
पूजयेच्च पितॄन्पूर्वं देवांश्चापि विशेषतः। देवेभ्योऽपि पितॄन्पूर्वमर्चयन्तीह यत्नतः ।।२।।

के कार्यों में यत्र कुत्र समिधा के लिए पूजित–व्यवहार में आते हैं–ऐसी पितरों की आज्ञा है ।।७३।। कल्कल की समिधाओं द्वारा जो अग्नि में हवन करता है, उसके इस कर्म से जो फलप्राप्ति होती है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।।७४।। आयस की समिधा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली तथा अश्वमेध यज्ञ का फल देनेवाली है। श्लेष्मान्तक, नक्तमाल, कपित्थ (कैथा), शाल्मलि (सेमर), नीप (कदम्ब), विभीतक (बहेड़ा), बल्लियाँ तथा वे वृक्ष, जिन पर पक्षियों का निवास हो, यज्ञ कार्य में वर्जित रखने चाहिए। इनके अतिरिक्त वे अन्यान्य वृक्ष जो यज्ञकार्य में निषिद्ध माने गये हैं, वर्जित रखने चाहिए। पितरों के उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वधा का और देवताओं के यज्ञों में उनके उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिए–ऐसा नियम बतलाया गया है ।।७५–७७।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७५।।

अध्याय ७६

श्राद्धकल्प

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! बृहस्पति जी ने अथर्ववेद के अनुसार यह विधि बतलायी है कि जो देवगण पितरों के नाम से विख्यात हैं, उनके अतिरिक्त अन्य भी पितरगण हैं। पितरों की विशेष तथा पहले और देवताओं की बाद में पूजा करनी चाहिए। इस लोक में ऐसी प्रथा है कि यत्नपूर्वक देवताओं से भी प्रथम पितरों की पूजा लोग करते हैं ।।१–२।। हे धर्मज्ञ,

दक्षस्य दुहिता ख्याता लोके विश्वेति नामतः । विधिना सा तु धर्मज्ञ दत्ता धर्माय धर्मतः ।।
तस्याः पुत्रा महात्मानो विश्वे देवा इति श्रुतिः ।।३।।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृताः । समस्तास्ते महात्मानश्चेरुरुग्रं महत्तपः ।।४।।
हिमवच्छिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते । सर्वाप्सरोभिश्चरितं देवगन्धर्वसेवितम् ।।५।।
शुद्धेन मनसा प्रीताः पितरस्तानथाब्रुवन् । वरं वृणीध्वं प्रीताः स्म कं कामं करवामहे ।।६।।
एवमुक्तं तु पितृभिस्तदा त्रैलोक्यभावनः । प्रजानामधिपो ब्रह्मा विश्वानितीदमब्रवीत् ।।७।।

ब्रह्मोवाच

महातेजा महादेवस्तपसा तैस्तु तापितः । तपसा तेन सुप्रीतः कं कामं विदधामि वः ।।८।।
एवमुक्तास्तदा विश्वे ब्रह्मणा लोककर्तृणा । ऊचुस्ते सहिताः सर्वे ब्रह्माणं लोकभाविनम् ।।९।।
श्राद्धेऽस्माकं भवेदंशो ह्येषे नः काङ्क्षितो वरः । प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तान्वै त्रिदिवपूजितान् ।।१०।।
भविष्यत्येवमेवेति काङ्क्षितो वो वरस्तु यः । पितृभिस्तु तथेत्युक्त्वा एवमेतन्न संशयः ।।११।।
सहास्माभिस्तु वो भाव्यं यत्किंचित्क्रियते त्विह । अस्माकं कल्पिते श्राद्धे युष्मानग्रासनं ह वै ।।१२।।
भविष्यति मनुष्येषु सत्यमेतद्ब्रवीमि ते । माल्यैर्गन्धैस्तथाऽन्नेन युष्मानाग्रेऽर्चयिष्यति ।।१३।।

प्राचीनकाल में दक्ष की एक विश्वा नाम की पुत्री थी, जो लोक प्रसिद्ध थी, विधि एवं धर्मपूर्वक उसे दक्ष ने धर्म को समर्पित की थी। उससे उत्पन्न होनेवाले महात्मा पुत्रगण विश्वेदेवा के नाम से प्रसिद्ध हुए–ऐसा सुना जाता है ।।३।। वे विश्वेदेवागण सभी लोगों के नमस्करणीय एवं त्रैलोक्य विख्यात हैं। सब–के–सब उन महात्मा विश्वेदेवों ने देवताओं और गन्धर्वों से सुसेवित हिमवान् के मनोहर शिखर पर सम्पूर्ण अप्सराओं, देवताओं और गन्धर्वों द्वारा पालन किये गये परम कठोर तप को किया। उनके उस महान् तप से परम प्रसन्न होकर पितरगण शुद्ध मन से बोले, विश्वेदेवगण! हम आप लोगों से परम प्रसन्न हैं, वरदान माँगिये, हम आपके कौन–से मनोरथ पूर्ण करें। पितरों के ऐसा कहने पर त्रैलोक्य की उत्पत्ति करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने विश्वेदेवों से कहा ।।४–७।।

ब्रह्मा ने कहा–उन लोगों की (आप लोगों की) इस परम कठोर तपस्या से महातेजस्वी महादेव जी पर माँ प्रसन्न हो गयी हैं, हम भी बहुत प्रसन्न हैं, बोलिये, आपके किस मनोरथ को पूर्ण करें। लोक के रचयिता भगवान् ब्रह्मा के ऐसा कहने पर सब विश्वेदेवगण एक साथ ही लोकेश ब्रह्मा से बोले, हम लोगों की आकाङ्क्षा यह है कि श्राद्ध में हम लोगों को अंश मिले। विश्वेदेवों के ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने उन स्वर्गपूजित विश्वेदेवों से कहा, आप लोग जो वर चाहते हैं, वह सफल होगा। अनन्तर पितरों ने विश्वेदेवों से कहा, ब्रह्मा जी ने जैसा आप लोगों के लिए कहा है, वह सत्य होगा इसमें सन्देह नहीं ।।८–११।। इस लोक में जो कुछ भी हम लोगों के लिए किया जाता है, उन सब में हमारे साथ तुम लोग रहोगे। हम लोगों के लिए जानेवाले मनुष्यों द्वारा विहित श्राद्ध कर्म में तुम लोगों का आगे आसन होगा– यह सच कह रहे हैं ।।१२।। मनुष्य लोग उस श्राद्ध कर्म में विविध प्रकार के कुतपों, मालाओं से सुगंधित द्रव्यों तथा अन्नादि भक्षणीय वस्तुओं से तुम लोगों को प्रथम पूजित करेंगे। इसी प्रकार जो कुछ भी वस्तुएँ दी जायँगी, वह तुम

प्रदाता चेति युष्माकमस्माकं दास्यते ततः । विसर्जनमथास्माकं पूर्वं पश्चात्तु देवताः ।।१४।।
रक्षणं चैव श्राद्धस्य आतिथ्यं च विधिद्वयम् । भूतानां देवतानां च पितृणां श्राद्धकर्मणि ।।
एवं विधिकृतः (तं) सम्यक्सर्वमेतद्भविष्यति ।।१५।।
एवं दत्त्वा वरं तेषां ब्रह्मा पितृगणैः सह । भूतानुग्रहकृद्देवः संचचार यथासुखम् ।।१६।।
वेदे पञ्च महायज्ञा नराणां समुदाहृताः । एतान्पञ्च महायज्ञान्निर्वपेत्सततं नरः ।।१७।।
यत्र यास्यन्ति दातारः संस्थानं वै निबोधत । निर्भयं निरहंकारं निःशोकं निर्व्यथक्लमम् ।।
ब्रह्मस्थानमवाप्नोति सर्वकामपुरस्कृतम् ।।१८।।
शूद्रेणापि प्रकर्तव्याः पंचैते मन्त्रवर्जिताः । अनोऽन्यथा तु यो भुङ्क्ते स ऋणं नित्यमश्नुते ।।१९।।
ऋणं च भुङ्क्ते पापात्मा यः पचेदात्मकारणात् । तस्मान्निर्वर्तयेत्पञ्च महायज्ञान्सदा बुधः ।।२०।।
नैवेद्यं केचिदिच्छन्ति जीवत्यपि प्रयत्नतः । उदक्पूर्वं बलिं कुर्यादुदकुंभं तथैव च ।।२१।।
बलिं सुविदितं कुर्यादुच्चादुच्चतरं क्षिपेत् । परशृङ्गगवां पूर्वं बलिं सूक्ष्मं समुत्क्षिपेत् ।।२२।।
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितृणां यस्तु जीवति । इष्टेनान्नेन भक्ष्यैश्च भोजयेत् यथाविधिः ।।
विधानं वेदविहितमेतद्वक्ष्यामि यत्नतः ।।२३।।

लोगों को पहले और हम लोगों को बाद में दी जायँगी। विसर्जन में हम लोगों का प्रथम स्थान रहेगा, देवता (आप लोग) गण हम लोगों के पश्चात् विसर्जित किये जायँगे ।।१३-१४।। समस्त भूतों, देवताओं और पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले श्राद्धकर्म में श्राद्ध की सर्वतोभावेन रक्षा और आतिथ्य सत्कार–ये दो विधान हैं। इन दोनों के भलीभाँति सम्पन्न हो जाने पर श्राद्ध को सुचारु रूप से सम्पन्न समझना चाहिए। हम लोगों ने जो बातें तुम लोगों से कही हैं–ये सब सत्य होंगी। पितरगणों के साथ सभी जीवों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् ब्रह्मा विश्वेदेवों को इस प्रकार वरदान देकर आनन्दपूर्वक अभीष्ट स्थान को चले गये ।।१५-१६।। वेद में मनुष्यों के लिए पाँच महायज्ञों की चर्चा की गयी है–इन पाँचों महायज्ञों का मनुष्य सर्वदा अनुष्ठान करे। इन (पाँचों महायज्ञों) के देनेवाले (अनुष्ठान करनेवाले) जिस स्थान को जाते हैं, उसे सुनिये। भयरहित, अहंकार से सर्वदा विहीन, शोकरहित, परिश्रम को दूर करनेवाले, सभी मनोरथों को पुरस्कृत करनेवाले ब्रह्मा के स्थान को वे प्राप्त करते हैं। ये पाँचों महायज्ञ–केवल मंत्रोच्चारण को छोड़कर–शूद्रों को भी करने चाहिए। इनके बिना जो भोजन करता है वह नित्य ऋण का भक्षण करता है ।।१७-१९।। जो केवल अपने लिये भोजन बनाता है वह पापात्मा है और ऋण का भोजन करता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन पाँचों महायज्ञों का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिए ।।२०।। कुछ लोग पितरों के जीवित रहते समय भी नैवेद्य करने की इच्छा करते हैं। तदनन्तर उसके लिए जल दान पूर्वक बलि देनी चाहिए, जल का कलश भी देना चाहिए ।।२१।। ऊँचे से भी ऊँचे स्थान पर से भली प्रकार विहित बलि देनी चाहिए। सूक्ष्म (स्वल्प) मात्रा में बलि को लेकर सींगोवाली गौओं के ऊपर छोड़नी चाहिए ।।२२।। जीवित पितरों के लिए पिण्डदान नहीं है। उन्हें केवल विधिपूर्वक सुन्दर पसन्द आनेवाले अन्नों एवं अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों को खिलाना चाहिए। यह वेदों से सम्मत विधान है, अतः इसे यत्नपूर्वक बतला रहा

देवदेवा महात्मानो ह्येतेऽपि पितरो ह्यत । इच्छन्ति केचिदाचार्याः पश्चात्पिण्डनिवेदनम् ।।२४।।
पूजनं चैव विप्राणां पूर्वमेव हि नित्यशः । तद्विधधर्मार्थकुशलानित्युवाच बृहस्पतिः ।।२५।।
पूर्वं निवेदयेत्पिण्डं पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत् । योगात्मानो महात्मानः पितरो योगसंभवाः ।।
सोममाप्याययन्त्येते पितरो योगमास्थिताः ।।२६।।
तस्माद्दद्याच्छुचिः पिण्डान्योगिभ्यस्तत्परायणः । पितॄणां हि भवेदेतत्साक्षादिव हुतं हविः ।।२७।।
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी चाग्रासने यदि । यजमानं च भोक्तॄंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ।।२८।।
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना । दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ।।२९।।
हित्वाऽऽगमं सधर्माणं बालिशं यत्र भोजयेत् । आदिकर्म समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ।।३०।।
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी तु प्रयत्नतः । प्रजार्थी योषिते दद्यान्मध्यमं तत्र पूर्वकम् ।।३१।।
उत्तमां द्युतिमान्विच्छन्गोषु नित्यं प्रयच्छति । प्रज्ञां पूजां यशः कीर्तिं गोषु नित्यं प्रयच्छति ।।३२।।
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । सौकुमार्यमथान्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ।।३३।।
एवमेतत्समुद्दिष्टं पिण्डनिर्वपणात्फलम् । आकाशं शमयेद्वाऽपि स्थितोऽप्सु दक्षिणामुखः ।।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिग्भवेत् ।।३४।।

हूँ ।।२३।। ये पितरगण देवताओं के देवता एवं परम महात्मा हैं। कुछ आचार्य लोग श्राद्धकर्म में सर्वप्रथम ब्राह्मणों का पूजन तदनन्तर पिण्डदान के विधान की इच्छा करते हैं ।।२४।। इस प्रक्रिया के माननेवाले धर्मार्थ में कुशल आचार्यों से बृहस्पति कहते हैं। महात्मा पितरगण परम योगाभ्यासपरायण, योगसम्भव एवं योगिराट् हैं, ये लोग चन्द्रमा को भी सन्तुष्ट करनेवाले पितर हैं, अतः सर्वप्रथम इन्हें पिण्डदान करना चाहिए, पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इसीलिए पितरों में श्रद्धा एवं भक्ति रखनेवाले व्यक्ति पवित्र होकर उन परम योगी पितरों को सर्वप्रथम पिण्डदान दें यह पिण्डदान ही पितरों के लिए साक्षात् अग्नि में हुनी गयी हवि के समान है ।।२५-२७।। श्राद्ध के अवसर पर सहस्रों ब्राह्मणों में से यदि एक भी योगाभ्यासी अग्रासन पर बिठाया गया है तो वह अकेला ही जल में नाव की तरह यजमान और अन्य भोक्ता—सबका उद्धार करता है ।।२८।। जिस स्थान पर असत्पुरुषों का विशेष सम्मान एवं सत्पुरुषों का अपमान होता है, वहाँ अति दारुण देवदण्ड शीघ्र ही गिरता है ।।२९।। जिस स्थान पर धर्माचरण में रत रहनेवाले एवं अतिथि रूप में समागत ब्राह्मण को छोड़कर किसी धूर्त अथवा मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वहाँ वह दाता अपने पूर्व जन्म के भोग्य कर्मों के रहते हुए भी विनाश को प्राप्त होता है ।।३०।। भोग की इच्छा करनेवाला प्रयत्नपूर्वक सर्वदा अग्नि में पिण्डदान करे। सन्तति का अभिलाषी स्त्रियों को सर्वदा पिण्ड दें, किन्तु ऐसे समय भी पिण्डदान की अन्य क्रियाएँ उससे पूर्व ही कर लेनी चाहिए ।।३१।। उत्तम कान्ति की अभिलाषा करनेवाला नित्य गौओं को पिण्डदान करता है। इसी प्रकार उत्तम बुद्धि, पूजा (सम्मान), यश, कीर्ति का अभिलाषी भी नित्य गौओं को पिण्ड देता है ।।३२।। दीर्घायु की प्रार्थना करनेवाला नित्य प्रति कौओं के लिए बलि दान करता है। सुकुमारता का इच्छुक व्यक्ति मुर्गों को नित्य बलि दान देता है ।।३३।। पिण्डदान के फल का वर्णन कर चुका। अथवा जल में दक्षिणाभिमुख स्थित होकर आकाश को बलि दे क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दिशा दक्षिण मानी गयी है ।।३४।। ब्राह्मण लोग श्राद्धकर्म में एक पिण्डोद्धार

एकं विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः । अनुज्ञाते तु तैर्विप्रैर्वानमुद्वि(द्धि)यतामिति (?) ।।३५।।
पुष्पाणां च फलानां च भक्ष्याणामन्नतस्तथा । अग्रमुद्धृत्य सर्वेषां जुहुयाज्जातवेदसि ।।३६।।
भक्ष्यमन्नं तथा पेयमनुत्तमफलानि च । हुत्वा चाग्नौ ततः पिण्डान्निर्वपेद्दक्षिणामुखः ।।३७।।
(* वैवस्वताय सोमाय हुत्वा पिण्डं निवेद्य सः । उदकानयनं कृत्वा पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत् ।।
आनुपूर्व्यात्तथा विप्रान्भक्ष्यैरन्नैश्च शक्तितः ।।३८।।
स्निग्धैर्भक्ष्यैः सुगन्धैश्च तर्पयेत रसैस्तथा । एकाग्रः पर्युपासीत प्रयतः प्राञ्जलिःस्थितः ।।
तत्परः श्रद्दधानश्च कामानाप्नोति मानवः ।।३९।।
अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं दाक्षिण्यं सत्कृतं च यत् । ततो यज्ञं च दानं च प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।४०।।
अतः परं विधिं सौम्यं भुक्तवत्सु द्विजातिषु । आनुपूर्व्येण विहितं तन्मे निगदतः शृणु ।।४१।।
प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य पूर्वं पितृपरायणः । ततोऽत्र विकिरं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा ।।४२।।
स्वधां वाच्य ततो विप्रा विधिवद्भूरिदक्षिणान् । अन्नशेषमनुज्ञाप्य सत्कृत्य द्विजसत्तमान् ।।
प्राञ्जलिः प्रयतश्चैव अनुगम्य विसर्जयेत् ।।४३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।७६।।

की प्रक्रिया आगे बतलाते हैं, उन विप्रों की पिण्डों का उद्धार कीजिये,–ऐसी आज्ञा (?) प्राप्त हो जाने पर यह विधि करनी चाहिए। पुष्प, फल भक्ष्य, अन्न इन सबके अग्र भाग को नोचकर सर्वप्रथम अग्नि में हवन कर देना चाहिए। पिण्डदान करनेवाले व्यक्ति दक्षिण ओर मुख करके विविध खाद्य सामग्रियाँ, अन्न, पीने की सामग्रियाँ, अत्युत्तम फल–इन सब वस्तुओं को अग्नि में हवन करने के उपरान्त पिण्डदान करें ।।३५–३७।। वैवस्वत (यम) और सोम को पिण्ड निवेदन करने के उपरान्त जलानयन कर लेने पर पीछे ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। उन्हें विविध खाद्य पदार्थों एवं अन्नादि द्वारा अपनी शक्ति भर वस्तुओं का क्रमशः भोजन कराना चाहिए। चिकने खाद्य पदार्थ, सुगंधित खाद्य पदार्थ से सन्तुष्ट करके विविध रसों द्वारा तृप्त करे। तदनन्तर अकेले एकान्तचित्त होकर हाथ जोड़े हुए उनकी विधिवत् पूजा करे। इस श्राद्धकर्म में तत्पर एवं श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है ।।३८–३९।। पितामहगण उसे अक्षुद्रता (महत्त्व), कृतज्ञता, चतुरता, सत्कार, यज्ञ, दान आदि की शक्ति देते हैं। ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर जो-जो क्रियाएँ श्राद्धकर्म में होती हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।।४०–४१।। सबसे पहले पितरों में भक्ति रखनेवाला भूमि का सिंचन एवं उसका परिष्कार करके विधान के अनुसार विकिरण[1] करे। तदनन्तर ब्राह्मणों से स्वधा वाचन कराकर प्रचुर दक्षिणा प्राप्त उत्तम ब्राह्मणों का विधिवत् सत्कार कर शेष अन्न की आज्ञा प्राप्त कर, हाथ जोड़, मन एवं इन्द्रियों को स्ववश रख कुछ दूर तक उनको पहुँचाकर विसर्जन करे ।।४२–४३।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७६।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

[1] विघ्नों को दूर करने के लिए फेंकी गयी श्वेत सरसों आदि वस्तुएँ।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

सकृदभ्यर्चिताः प्रीता भवन्ति पितरोऽव्ययाः । योगात्मानो महात्मानो विपाप्मानो महौजसः ।।१।।
प्रेत्य च स्वर्गलाभाय कावेश्वर्यं सुविस्तरम् । येषां चाप्यनुगृह्णन्ति मोक्षप्राप्तिक्रमेण तु ।।२।।
तानि वक्ष्याम्यहं सौम्याः सरांसि सरितस्तथा । तीर्थानि चैव पुण्यानि देशाञ्शैलांस्तथाऽश्रमान् ।।३।।
पुण्यो यस्त्रिषु लोकेष्वमरकण्टकपर्वतः । पर्वतप्रवरः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।।४।।
यत्र वर्षसहस्राणि प्रयुतान्यर्बदानि च । तपः सुदुश्चरं तेपे भगवानङ्गिराः पुरा ।।५।।
यत्र मृत्योर्गतिर्नास्ति तथैवासुररक्षसाम् । न भयं चैव वाऽलक्ष्मीर्यावद्भूमिर्धरिष्यति ।।६।।
तेजसा यशसा चैव भ्राजते स नगोत्तमः । शृङ्गमाल्यवतो नित्यं वह्निः संवर्तको यथा ।।७।।
मृदवश्च सुगन्धाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः । शान्ताः कुशा इति ख्याताः पिबन्दक्षिणनर्मदाम् ।।८।।
दृष्ट्वान्स्वर्गसोपानं भगवानङ्गिराः पुरा । अग्निहोत्रे महातेजाः प्रस्तरार्थकुशोत्तमान् ।।९।।

अध्याय ७७

श्राद्धकल्प

बृहस्पति जी बोले–सौम्यगण! ये पितरगण केवल एक बार पूजा प्राप्त कर लेने पर परम प्रसन्न हो जाते हैं, ये कभी नष्ट होनेवाले नहीं हैं, योगी हैं, महात्मा हैं, पापरहित हैं, महान् तेजस्वी हैं ।।१।। अब मैं इस जन्म के उपरान्त स्वर्ग लाभ करानेवाले, विस्तृत मनोरथ एवं ऐश्वर्य को देनेवाले, मोक्ष-प्राप्ति के सहायक उन सरोवरों, सरिताओं, पुण्यप्रद तीर्थों, देशों एवं पवतों का वर्णन कर रहा हूँ, जिन पर (पितरगण) अनुग्रह करते हैं। जो तीनों लोकों में पुण्यप्रद है वह अमरकण्टक सभी पर्वतों में श्रेष्ठ, पुण्यदायी तथा सिद्ध और चारणों द्वारा सेवित है ।।२–४।। जिन पर सहस्रों क्या करोड़ों अरबों वर्षों तक प्राचीनकाल में भगवान् अंगिरा ने परम कठोर तपस्या की थी ।।५।। जहाँ पर मृत्यु की भी गति नहीं है, असुर एवं राक्षसों से भी भय नहीं है तथा जब तक भूमि स्थित रहेगी तब तक लक्ष्मी का अभाव नहीं रहेगा, वह उत्तम नगराज अपने परम तेज एवं यश से सुशोभित है। उसके परम उच्च शिखर के वृक्षों पर खिले हुए पुष्पों से उसकी शोभा संवर्तक अग्नि की तरह है ।।६–७।। इस पर्वतराज पर उगनेवाले कुश अति मृदु, सुगन्धित, सुवर्ण के समान कान्तिवाले, देखने में मनोहर तथा शान्ति उत्पन्न करनेवाले प्रसिद्ध हैं। प्राचीनकाल में महान् तेजस्वी भगवान् अंगिरा ने अग्निहोत्र में पृथ्वी पर बिछाने के लिए इन उत्तम कुशों का उपयोग किया था, दक्षिण भाग में नर्मदा के जल का पान

तेषु दर्भेषु पिण्डान्योऽमरकण्टकपर्वते । दद्यात्सकृदपि प्राज्ञस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ।।१०।।
तद्भवत्यक्षयं श्राद्धं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अन्तर्धानं च गच्छन्ति क्षेत्रमासाद्य तत्सदा ।।११।।
तत्र ज्वालासरः पुण्यो दृश्यतेऽद्यापि सर्वशः । सशल्यानां च सत्त्वानां विशल्यकरणी नदी ।।१२।।
प्राग्दक्षिणा तु सावर्ता वापी सा पर्वतोत्तमे । कलिङ्गदेशपार्श्वार्धे पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ।।१३।।
सिद्धक्षेत्रमृषिश्रेष्ठा यदुक्तं परमं भुवि । संमतो देवदैत्यानां श्लोकमप्युशना जगौ ।।१४।।
धन्यास्ते पुरुषा लोके ये प्राप्यामरकण्टकम् । पितॄन्संतर्पयिष्यन्ति श्राद्धे पितृपरायणाः ।।१५।।
अल्पेन तपसा सिद्धिं गमिष्यन्ति न संशयः । सकृदेवार्चितास्तत्र स्वर्गममरकण्टके ।।१६।।
महेन्द्रपर्वते रम्ये पुण्यं शक्रनिषेवितम् । तत्राऽऽरुह्य भवेत्प्रीतिः श्राद्धं चैव महत्फलम् ।।१७।।
बिल्वाधः शिखरे युक्ता दिव्यं चक्षुः प्रवर्तते । अदृश्यं चैव भूतानां देववच्चरते महीम् ।।१८।।
सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने । अश्वमेधफलं तत्र स्नात्वा च लभते नरः ।।१९।।
धूतपापस्थलं प्राप्य पूतः स्नात्वा भवेन्नरः । रुद्रस्तत्र तपस्तेपे देवदेवो महेश्वरः ।।२०।।
गोकर्णे वर्णितं विप्रैर्नास्तिकानां निदर्शनम् । अब्राह्मणस्य सावित्री पठतः संप्रणश्यति ।।२१।।

किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें स्वर्ग के सोपान दिखायी पड़े थे। जो बुद्धिमान् व्यक्ति पवित्र अमरकण्टक पर्वत पर उन्हीं कुशों पर एक बार भी पिण्डदान करता है, उसके फल को बतला रहा हूँ। उसका किया हुआ वह श्राद्ध पितरों को परम प्रसन्न करनेवाला एवं अक्षय फलप्रदायी है। सर्वदा इस पवित्र क्षेत्र को प्राप्त होकर वे अन्तर्हित हो जाते हैं ।।८–११।। आज भी उस पवित्र पर्वत पर ज्वाला सरोवर (?) सम्पूर्ण रूप में दिखायी पड़ता है, हड्डीवाले जीवों को रोग मुक्त करनेवाली विशल्यकरणी नामक नदी है ।।१२।। उस पर्वतराज अमरकण्टक के पृष्ठभाग पर पूर्व दक्षिण दिशा में फैली हुई वह पवित्र बावली है। कलिङ्गदेव के पार्श्वभाग में पितरों को अति प्रसन्न करनेवाला सिद्धक्षेत्र है, हे ऋषिश्रेष्ठगण! वह स्थान पृथ्वीतल पर पवित्र कहा जाता है। देवता और दैत्य–दोनों ही को वह सम्माननीय है। उनकी प्रशंसा शुक्राचार्य भी इस रूप में करते हैं कि इस लोक में वे पुरुष धन्य हैं, जो अमरकण्टक पर्वत पर जाकर अपने पितरों में श्रद्धा भाव रखकर श्राद्ध में उनको सन्तुष्ट करेंगे। उस पर्वतराज अमरकण्टक पर अल्प तपस्या द्वारा ही लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि एक ही बार पूजित होकर पितरगण वहाँ पर स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।।१३–१६।। परम रमणीय महेन्द्र पर्वत पर इन्द्र द्वारा सेवित एक पुण्यप्रद स्थान है, वहाँ पर आरोहण करने से पितरगणों को परम प्रसन्नता होती है और श्राद्ध का महान् फल होता है।।१७।। बिल्वाध (?) शिखर पर जाने से दिव्य नेत्र की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्यों से अदृश्य होकर देवताओं की भाँति पृथ्वी पर विचरण करता है ।।१८।। सप्त गोदावर तथा गोकर्ण नामक तपोवन में स्नानकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।।१९।। धूतपाप नामक स्थान पर जाकर स्नान करनेवाला मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, वहाँ पर देव–देव महेश्वर शंकर जी ने परम कठोर तपश्चर्या की थी ।।२०।। उस गोकर्ण नामक स्थान के विषय में ब्राह्मण लोग नास्तिकों के लिए एक प्रधान लक्षण यह बतलाते हैं कि जो लोग ब्राह्मण न होकर वहाँ गायत्री का पाठ करते हैं, उसकी सावित्री नाश को प्राप्त होती है ।।२१।। सिद्धों और

देवर्षिभवने शृङ्गे सिद्धचारणसेविते । आरुह्य तं तु नियमात्ततो यान्ति त्रिविष्टपम् ।।२२।।
दिव्यैश्चन्दनवृक्षैश्च पादपैरुपशोभितम् । आपश्चन्दनसंपृक्ता वहन्ति सततं यतः ।।२३।।
नदी प्रवर्तते ताभ्यस्ताम्रपर्णीति नामतः । योषेव समदाखेदा दक्षिणं याति सागरम् ।।२४।।
नद्यास्तस्यास्तु या आपो मूर्च्छमाना महोदधौ । शङ्खा भवन्ति मुक्ताश्च जायन्ते शङ्खमुक्तिकाः ।।२५।।
उदकानयनं कृत्वा शङ्खमौक्तिकसंयुतम् । आधिभिर्व्याधिभिश्चैव मुक्ता यान्त्यमरावतीम् ।।२६।।
चन्दनेभ्यः प्रयुक्तानां शङ्खानां मौक्तिकस्य च । तापकर्तृनपि पितृंस्तारयन्ति यथाश्रुति ।।२७।।
*चन्द्रतीर्थे वरे पुण्ये पुण्यकृद्भिर्निषेविते । चन्द्रतीर्थे कुमार्यां तु कावेर्यां प्रभवेऽक्षये ।।
श्रीपर्वतस्य तीर्थेषु वैकृते च तथा गिरौ ।।२८।।
एकस्था यत्र दृश्यन्ते वृक्षा ह्यौशिरपर्वते । पालाशाः खादिरा बिल्वा प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ।।२९।।
एतद्धि मण्डलं सिद्धं यज्ञियं द्विजसत्तमाः । अस्मिन्मुक्त्वा जनोऽङ्गानि क्षिप्रं यात्यमरावतीम् ।।३०।।
कर्माणि स्वप्रयुक्तानि सिध्यन्ति प्रभवात्यये । दुष्प्रसक्तानि पितृषु प्रयुक्तानि भवन्त्युत ।।३१।।
पितृणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा । तत्र श्राद्धानि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत ।।३२।।

चारणों से सेवित देवर्षि के भवनवाले शिखर पर नियमपूर्वक आरोहण करनेवाले मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। क्योंकि उस परम रमणीय शिखर प्रदेश में दिव्य चन्दनादि के वृक्ष परम शोभा बढ़ाते हैं और चन्दन मिश्रित जल की शीतल धारा निरंतर प्रवाहित होती है ।।२२–२३।। उन जल धाराओं से ताम्रपर्णी नामक नदी प्रवाहित होती है, जो उस पर्वतराज की मदोन्मत्त एवं खेद से थकी हुई बाला की तरह शनैः–शनैः दक्षिण के समुद्र में जाकर मिलती है ।।२४।। उस ताम्रपर्णी की जलराशि महासमुद्र में मिलकर शङ्खमुक्ता और शङ्खमुक्तिका रूप में उत्पन्न होती है ।।२५।। जो मनुष्य शङ्ख और मुक्ताओं के समेत उसके जल को लाते हैं, वे समस्त आधि–व्याधियों से मुक्त होकर अमरावती को प्राप्त करते हैं ।।२६।। चन्दनों से संयुक्त शंखों और मुक्ताओं के दान करने से वहाँ पर लोग अपने पाप करनेवाले पितरों का भी उद्धार कर देते हैं–ऐसी श्रुति है ।।२७।। पुण्यात्मा जनों द्वारा सुसेवित चन्द्र नामक पुण्यप्रद तीर्थ में, कुमारी में, कावेरी में, अक्षय प्रभव में, श्रीपर्वत के तीर्थ में, वैकृत नामक पर्वत पर, औशिर नामक पर्वत पर भी, जहाँ पर कि पलाश, खदिर, बेल, पाकड़, पीपल, विकङ्कत आदि के पेड़ एक ही स्थान पर दिखायी पड़ते हैं, पितरों का लोग उद्धार करते हैं। हे द्विजवर्यगण! यह तीर्थों का समूह यज्ञ करने के लिए समुचित तथा सिद्धि देनेवाला है, इनमें अपने अंगों (शरीर) को छोड़ देनेवाला मनुष्य अमरावती को प्राप्त करता है ।।२८–३०।। इन पवित्र तीर्थों में किये गये स्वकर्मों के फल अन्य जन्म में मिलते हैं, एवं पितरों के उद्देश्य से अल्प रूप में भी कठिनाई से किये गये कर्म अच्छी तरह से किये गये कर्मों का फल प्रदान करते हैं। पितरों की कन्या नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ एवं पुण्यप्रदायिनी है, उसके तट पर किये गये श्राद्धादि कर्म अक्षय फलदायी होते हैं ।।३१–३२।। सिद्धों और चारणों से सुसेवित माठर के पवित्र वन में वे अन्तर्हित

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

माठरस्य वने पुण्ये सिद्धचारणसेवितम् । अन्तर्धानं न गच्छन्ति सक्तास्तस्तस्मिन्महागिरौ ।।३३।।
विन्ध्ये चैव गिरौ पुण्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् । पापधारां न पश्यन्ति धारां पश्यन्ति साधवः ।।३४।।
तस्यां तु दृश्यते पापं केषांचित्पापकर्मणाम् । स्पष्टा भवति सा धारा प्रायशः शुभकर्मणाम् ।।३५।।
कोशलायां मतङ्गस्य वापी पापनिषूदनी । स्नातास्तस्यां दिवं यान्ति कामचारविहंगमाः ।।३६।।
कुमारकोशलातीर्थे पर्वते पालपञ्जरे । पाण्डुकूले समुद्रान्ते पण्डारकवने तथा ।।३७।।
विमले च विपापे च सत्कृत्य प्रभवेऽभयम् । श्रीवृक्षे गृध्रकूटे च जम्बूमार्गे च नित्यशः ।।३८।।
असितस्य गुरोः पुण्ये योगाचार्यस्य धीमतः । तत्रापि श्राद्धमानन्त्यमसितायां च नित्यशः ।।३९।।
पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम् । महोदधौ प्रभासे च तस्मादेवं विनिर्दिशेत् ।।४०।।
देविकायां वृषो नाम कूपः सिद्धनिषेवितः । समुत्पतन्ति तस्याऽऽपो गवां शब्देन नित्यशः ।।४१।।
योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापबहिष्कृतैः । दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ।।४२।।
अक्षयं सर्वकामीयं श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् । जातवेदः शिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनी ।।४३।।
यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र नाकपृष्ठे स मोदते । अग्निः शान्तः पुनर्जातस्तस्मिन्दत्तं तदक्षयम् ।।४४।।
दशाश्वमेधिके तीर्थे तीर्थे पञ्चाश्वमेधिके । यथोद्दिष्टं फलं तेषां क्रतूनां नात्र संशयः ।।४५।।

नहीं होते, क्योंकि उस महान् गिरि में उनकी आसक्ति है ।।३३।। पवित्र विन्ध्य गिरि में धर्मी एवं अधर्मी की पहचान के लिए यह देखा जाता है कि जो पापात्मा हैं वे धारा को नहीं देख पाते, केवल साधुगण उसका दर्शन करते हैं ।।३४।। उस धारा में किन्हीं पापकर्मियों के पाप दिखायी पड़ते हैं। प्रायः शुभ कर्म करनेवालों को ही वह धारा स्पष्ट दिखायी पड़ती है ।।३५।। कोशला में मतंग के पापों को दूर करनेवाली पापनिषूदिनी नामक बावली है, उसमें स्नानकर स्वेच्छा से गमन करनेवाले पक्षीगण भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।।३६।। कुमारकोशला तीर्थ में, पालपञ्जर नामक पर्वत पर, समुद्रान्त पाण्डुकूल नामक तीर्थ में, पण्डारक नामक वन में, अतिनिर्मल पापरहित प्रभव अभय नामक तीर्थ में सत्कारकर श्रीवृक्ष, गृध्रकूट, जम्बूमार्ग, परम बुद्धिमान् योगाचार्य गुरुवर असित के असिता नामक पवित्र तीर्थ में नित्य श्राद्ध करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।।३७–३९।। पुष्कर तीर्थ में श्राद्ध का अक्षय फल होता है, तपस्या महान् फलदायिनी होती है। महासमुद्र में प्रभास नामक तीर्थ में भी ऐसी फलप्राप्ति होती है, इसीलिए ऐसा कहा गया है ।।४०।। देविका में सिद्धों द्वारा सुसेवित वृष नामक एक कूप है, जिसका जल नित्यप्रति गौओं के शब्द से ऊपर उछलता है। सभी पापों से बहिष्कृत रहनेवाले योगेश्वरों से सुसेवित उस कूप पर जो श्राद्ध करता है, उसके उस श्राद्ध का फल बतला रहा हूँ, वह श्राद्ध सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है, तथा पितरों को प्रसन्न करता है। वहाँ पर साक्षात् अग्नि की सनातन काल से प्रतिष्ठित जातवेद नामक शिला है ।।४१–४३।। वहाँ जो कोई व्यक्ति उस अग्नि में प्रवेश करता है वह स्वर्गलोक में आनन्द का अनुभव करता है एवं अग्नि शान्त होने पर पुनर्जन्म धारण करता है। उस परम पवित्र तीर्थ में दिया हुआ श्राद्धादि का दान अक्षय फलदायी होता है ।।४४।। दशाश्वमेध तीर्थ में एवं पञ्चाश्वमेध तीर्थ में श्राद्ध करने पर दस एवं पाँच अश्वमेध यज्ञों का फल सचमुच प्राप्त होता है इसमें सन्देह नही करना चाहिए ।।४५।। हयशिर नामक

ख्यातं हयशिरो नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम् । श्राद्धं तत्र तदाऽक्षय्यं दत्त्वा स्वर्गे च मोदते ।।४६।।
श्राद्धं कुम्भे विमुञ्चन्ति ज्ञेयं पापनिषूदनम् । श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जप्यहोमतपांसि च ।।४७।।
अजतुङ्गे शुभे तीर्थे तर्पयेत्सततं पितॄन् । दृश्यते पर्वसु च्छायां यत्र नित्यं दिवौकसाम् ।।
पृथिव्यामक्षयं दत्तं नीरुजा यत्र पाण्डवाः ।।४८।।
योगेश्वरैः सदा जुष्टं सर्वपापबहिष्कृतैः । दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ।।४९।।
अर्चितास्तेन वै साक्षाद्भवन्ती पितरः सदा । अस्मिल्लोके वशी यः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे स मोदते ।।५०।।
प्रायशः प्रवरः पुण्यः शिवो नाम ह्रदस्तथा । तत्र व्याससरः पुण्यं दिव्यं ब्रह्मसरस्तथा ।।५१।।
उज्जन्तः पर्वतः पुण्यो यस्मिन्योगेश्वरालयः । तत्रैव चाऽऽश्रमः पुण्यो वसिष्ठस्य महात्मनः ।।५२।।
ऋग्यजुःसामशिरसः कापोतः पुष्पसाह्वयः । आख्यातः पञ्चमो वेदो सृष्ट्वा ह्येतुषु ब्रह्मणा ।।५३।।
गत्वैतान्मुच्यते पापाद्द्विजो वह्निः सनातनः । श्राद्धं चाऽऽनन्त्यमेतेषु जप्यहोमतपांसि च ।।५४।।
पुण्डरीके महातीर्थे पुण्डरीकसमं फलम् । ब्रह्मतीर्थे महातीर्थे अश्वमेधफलं लभेत् ।।५५।।

पवित्र एवं प्रख्यात तीर्थ शीघ्र वरदान देनेवाला है, वहाँ पर श्राद्धकर्म अक्षय फलदायी होता है एवं श्राद्धकर्त्ता स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ।।४६।। कुम्भतीर्थ में जाकर लोग श्राद्धादि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उस पवित्र तीर्थ को पाप विनाशक समझना चाहिए, वहाँ पर किये गये श्राद्ध को अक्षय फलदायी कहा गया है, इसी प्रकार जप, हवन एवं तपस्या के बारे में भी कहा गया है। अजतुंग नामक कल्याणदायी पवित्रतीर्थ में सर्वदा पितरों का तर्पण करना चाहिए, जहाँ पर पर्वों के अवसर पर देवताओं की छाया दिखलायी पड़ती है। समस्त पृथ्वीमण्डल में इस पवित्र तीर्थ का दान अक्षय बतलाया जाता है। पाण्डवगण यहीं पर रोगमुक्त हुए थे ।।४७–४८।। सभी प्रकार के पापपूर्ण कर्मों से विरक्त रहनेवाले योगेश्वरों द्वारा सुसेवित उस परम पवित्र तीर्थ में जो लोग श्राद्ध करते हैं, उसका फल बतला रहा हूँ। उस परम पवित्र तीर्थ में साक्षात् पूजित होकर पितरगण सर्वदा प्रसन्न रहते हैं, इस लोक में जो इन्द्रियों को स्ववश रखनेवाला है वह मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ।।४९–५०।। परम पवित्र शिव नाम का एक ह्रद है, वहीं पर दिव्यगुण युक्त व्याससर एवं ब्रह्मसर नामक दो सरोवरों की भी स्थिति है। उज्जन्त नामक पुण्यप्रद पर्वत भी वहीं है, जिसमें बड़े–बड़े योगीश्वर लोग निवास करते हैं। महात्मा वसिष्ठ का पुण्य आश्रम भी वहीं है ।।५१–५२।। इन्हीं तीर्थों के मध्य भाग में ऋक्, यजु, सामवेद का सिर स्वरूप (?) कापोत अथवा पुष्प (?) नामक तीर्थ की रचना भगवान् ब्रह्मा ने की है, जो पाँचवें वेद के नाम से विख्यात है। इन पवित्र तीर्थों की यात्रा कर ब्राह्मण सनातन अग्नि की ही भाँति तेजस्वी होकर पापमुक्त हो जाता है, इसमें श्राद्ध का अनन्त माहात्म्य वर्णित किया गया है, जप, हवन एवं तपस्या के लिए भी अनन्त फल कहा गया है ।।५३–५४।। पुण्डरीक नामक महातीर्थ में श्राद्ध का पुण्डरीक (कमल) के समान मनोहर फल होता है। ब्रह्मतीर्थ नामक महातीर्थ में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।।५५।। सिन्धुसागर सम्भेद

सिन्धुसागरसंभेदे तथा पञ्चनदेऽक्षयम् । कीरकात्मा ततः पुण्यो पण्डवायां च पर्वते ।।५६।।
देयं सप्तरदे श्राद्धं मानसे च विशेषतः । महाकूटे च वन्दे च गिरौ त्रिककुदे तथा ।।५७।।
संध्यायां च महावेद्यां दृश्यते महदद्भुतम् । अश्रद्दधानान्नाभ्येति साऽभ्येति च धृतव्रतान् ।।५८।।
जातवेदःशिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनी । श्राद्धानि चाग्निकार्यं च तत्र कुर्यात्सदाऽक्षयम् ।।५९।।
संश्रयित्वैकमेकेन सायाह्नं प्रति नित्यशः । *तस्मिन्देयं सदा श्राद्धं पितृणामक्षयार्थिना ।।६०।।
कृतात्मा वाऽकृतात्मा वा यत्र विज्ञायते नरः । स्वर्ग्यमार्गप्रदं नाम तीर्थं सद्योवरप्रदम् ।।६१।।
वैराण्युत्सृज्य तस्मिंस्तु दिवं सप्तर्षयो गताः
अद्यापि तानि दृश्यन्ते वैराण्येव गतानि तु । स्नात्वा स्वर्गमवाप्नोति तस्मिंस्तीर्थोत्तमे नरः ।।६२।।
ख्यातमायतनं तत्र नन्दिसिद्धनिषेवितम् । नन्दीश्वरस्य यो मूर्तिर्दुराचारैर्न दृश्यन्ते ।।६३।।
दृश्यन्ते काञ्चना यूपाः संचिप्ये (दृष्टे) भास्करोदये । कृत्वा प्रदक्षिण तांस्तु गच्छत्यन्तर्हिता दिवम् ।।
सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं च विशेषतः । पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः ।।
कीर्त्यते च तिलान्दत्त्वा पितृणां वै सदाऽक्षयम् ।।६४।।

तथा पंचनद तीर्थ में अक्षय फल की प्राप्ति होती है, कीरकात्मा नामक पुण्य तीर्थ भी है, पर्वत पर अवस्थित पण्डवा तीर्थ में भी अक्षय फलप्राप्ति होती है। सप्तरद तीर्थ में विशेषतया मानसतीर्थ में श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिए। महाकूट, वन्द एवं त्रिककुद पर्वत पर भी श्राद्धकर्म करना चाहिए ।।५६–५७।। महावेदी में सन्ध्या के अवसर पर महान् आश्चर्य दिखायी पड़ता है, किन्तु वह अश्रद्धा रखनेवाले नास्तिकों को नहीं प्राप्त होती, केवल व्रतपरायण श्रद्धालु ही को प्राप्त होती है। वहाँ पर जातवेद नामक अग्नि की सनातन काल से चली आनेवाली एक शिला है, उस पर श्राद्धादि एवं अग्निहोत्रादि कार्य सर्वदा करने चाहिए, क्योंकि उनका अक्षय फल होता है ।।५८–५९।। पितरों को अक्षयरूप में श्राद्ध देने के इच्छुक व्यक्ति को इन तीर्थों में सर्वदा सायंकाल के समय श्राद्ध करना चाहिए। यहाँ पर कृतात्मा (पुण्यात्मा) और अकृतात्मा (पापात्मा) जन मालूम पड़ जाते हैं। वहाँ स्वर्ग्यमार्गप्रद नामक शीघ्र वर प्रदान करनेवाला सरोवर है जिसमें अपने पारस्परिक वैर भावों में छोड़कर सप्तर्षिगण स्वर्गगामी हुए थे ।।६०–६१।। आज भी उनके विगत वैरभाव के चिह्न वहाँ दिखायी पड़ते हैं। उस उत्तम तीर्थ में स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ।।६२।। वहीं पर नन्दिकेश्वर एवं सिद्धगणों द्वारा सुसेवित प्रसिद्ध आयतन (स्थान) है। वहाँ नन्दिकेश्वर की जो मूर्ति है, वह दुराचारियों को नहीं दिखायी पड़ती ।।६३।। भास्कर के उदय होने के अवसर पर वहाँ सुवर्ण के यूप (यज्ञ के खंभे) दिखलायी पड़ते हैं। उनकी प्रदक्षिणा करके लोग अन्तर्हित होकर स्वर्गलोक को चले जाते हैं। योगपरायण महात्मा सनत्कुमार का पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर तिलों का दान करके पितरों को सर्वदा

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठः ख. पुस्तके–'तस्मिन्देशे तथा श्राद्धे पितृणामज्ञक्षयार्थिनाम्' इति।

ओजसे चाक्षयं श्राद्धं धर्मराजनिवेशने । श्राद्धं दत्तममावस्यां विधिना च यथाक्रमम् ।।६५।।
पुनः संनिहितानां वै कुरुक्षेत्रे विशेषतः । अर्चयेद्वा पितॄंस्तत्र सत्पुत्रस्त्वनृणो भवेत् ।।६६।।
विनशने सरस्वत्यां प्लक्षप्रश्रवणे तथा । व्यासतीर्थे सरस्वत्यां त्रिप्लक्षे च विशेषतः ।।६७।।
देयमोङ्कारपवने श्राद्धमक्षयमिच्छता । सर्वतश्चैव गङ्गायां मैनाके च नगोत्तमे ।।६८।।
यमुनाप्रभवे चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते । अत्युष्णाश्चातिशीताश्च आपस्तत्र निदर्शनम् ।।६९।।
यमस्य भगिनी पुण्या मार्तण्डदुहिता तथा । तत्राक्षयं तदा श्राद्धं पितृभिः पूर्वकीर्तितम् ।।७०।।
ब्रह्मतुङ्गह्रदे स्नात्वा सद्यो भवति ब्राह्मणः । तस्मिन्हि श्राद्धमानन्त्यं जपहोमतपांसि च ।।७१।।
स्थाणुभूतश्चरंस्तत्र वसिष्ठो वै महातपाः । अद्यापि यत्र दृश्यन्ते पादपा मणिचर्चिताः ।।७२।।
तुला तु दृश्यते यत्र धर्माधर्मप्रदर्शिनी । यथा वै तुलितं विप्रैस्तीर्थानां फलमुत्तमम् ।।७३।।
पितॄणां दुहिता योगा गन्धकालीति विश्रुता । चतुर्थो ब्रह्मणश्चांशः पराशरकुलोद्वहः ।।७४।।
व्यासस्त्वेकं चतुर्धा सु वेदं धीमान्महामुनिः । महायोगं महात्मानं यो व्यासं जनयिष्यति ।।७५।।
अच्छोदकं नाम सरो यत्राच्छोदा समुच्छ्रिता । मत्स्ययोनौ पुनर्जाता नियोगाद्वारणेन तु ।।७६।।

के लिए अक्षय तृप्ति दी जाती है ।।६४।। धर्मराज युधिष्ठिर के निवास-स्थान पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी एवं कीर्ति देनेवाला है। अमावस्या के अवसर पर विधिपूर्वक क्रमानुसार किया गया श्राद्ध तथोक्त फलदायी होता है। विशेषतया कुरुक्षेत्र के समीप निवास करनेवालों के लिए तो वह परम पवित्र है। सत्पुत्र अपने पितरों की वहाँ पूजा करके ऋणरहित हो जाता है ।।६५-६६।। विनशन, सरस्वती के प्लक्षप्रश्रवण, सरस्वती के व्यासतीर्थ एवं ओंकारपवन में अक्षय श्राद्ध की इच्छा करनेवाले श्राद्ध करें। गंगा में सर्वत्र श्राद्ध करना चाहिए, पर्वतश्रेष्ठ मैनाक पर श्राद्ध करने का विधान है ।।६७-६८।। यमुना प्रभवतीर्थ में श्राद्ध करके मनुष्य समस्त पापों से निवृत्त हो जाता है। उसके अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल जल ही इस तीर्थ के प्रमाणस्वरूप हैं। यह परम पवित्र यमुना यम की भगिनी और मार्तण्ड की पुत्री हैं, उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी होता है-ऐसे पूर्वकाल से पितरों के वचन हैं ।।६९-७०।। ब्रह्मतुङ्ग नामक सरोवर में स्नानकर इतर जातिवाले शीघ्र ही ब्राह्मणों की भाँति निष्पाप एवं पुण्यात्मा हो जाते हैं, उसमें श्राद्ध, जप एवं हवनादि करने का अनन्त फल है ।।७१।। महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ स्थाणुरूप में वहाँ विचरण करते हैं, और आज भी वहाँ मणियों से चित्रित वृक्षों की पंक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। वहाँ पर धर्म एवं अधर्म को दिखानेवाली एक तुला (तराजू) दिखायी पड़ती है, जिस प्रकार तुलकर ब्राह्मणों के कथनानुसार उत्तम फल की प्राप्ति होती है ।।७२-७३।। पितरों की योगपरायण कन्या जो गन्धकाली नाम से विख्यात है, वहाँ निवास करती है। भगवान् ब्रह्मा के चतुर्थ अंशस्वरूप, महर्षि पराशर के कुल में समुत्पन्न परम बुद्धिमान् महामुनि व्यासदेव हैं, जिन्होंने एक वेद का विस्तार कर चार भागों में विभाजन किया है, ऐसे परम योगीश्वर महात्मा व्यासदेव को वह उत्पन्न करेगी ।।७४-७५।। वहाँ पर अच्छोदक नामक सरोवर है, जिसमें अच्छोदा नदी के रूप में वह प्रादुर्भूत हुई। पुनः वारण के नियोगवश वह मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। उसका

तस्यां यत्राऽऽश्रयः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः । सकृदत्तं तु वै श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् ।।
तस्यां योगसमाधाने दत्तं युगपदुद्भवेत् ।।७७।।
कुबेरतुङ्गे व्यामोच्चे व्यासतीर्थे तथैव च । पुण्यः स ब्राह्मणो दद्याच्छ्राद्धमानन्त्यमक्षयम् ।।७८।।
सिद्धैस्तु सेविता नित्यं दृश्यते नाकृतात्मभिः । अनिवर्तनं तु नन्दायां वेद्यां प्रागुत्तरे (?) दिशि ।।७९।।
सिद्धक्षेत्रं तु वै जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्तते । महालये पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ।।८०।।
देवालये तपस्तप्त्वा एकपादेन ईश्वरः । नीहारश्च युगं दिव्यमुमातुङ्गे स्थितं जलम् ।।८१।।
उमातुङ्गे भृगोस्तुङ्गे ब्रह्मतुङ्गे महालये । काद्रवत्यां च शाण्डिल्यां गुहायां वामनस्य च ।।८२।।
गत्वा चैतानि पूतः स्याच्छ्राद्धमक्षयमेव च । जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किंचित्सुकृतं भवेत् ।।८३।।
ब्रह्मचर्यं यजन्ते वै गुरुभक्ताः शतं समाः । एवमादीनि सद्यस्तां स्नात्वा प्राप्नोति सत्फलम् ।।८४।।
कुमारधारा तत्रैव दृष्टा पापप्रणाशनी । यानासनं च तत्रैव सद्यः स्याद्यत्प्रदृश्यते ।।८५।।
शैलकीर्तिपुराभ्यासे कामानाप्नोति पुष्कलान् । अदृश्यः सर्वभूतानां देववच्चरते महीम् ।।८६।।
काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम् । तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यमक्षयमिच्छता ।।८७।।

जहाँ पर पवित्र आसन है, वहाँ पुण्यकर्त्ता जन सर्वदा निवास करते हैं। उस पवित्र स्थान पर एक बार का दिया हुआ श्राद्ध अक्षय माना गया है। उस अच्छोदा में श्राद्धदान करने से योग एवं समाधि की एक साथ उद्भावना होती है ।।७६–७७।। कुबेरतुङ्ग व्यामोच्च एवं व्यासतीर्थ में जो श्राद्धदान करता है, वह पुण्यकर्त्ता ब्राह्मण है, उसका श्राद्ध अनन्त एवं अक्षय फलदायी है ।।७८।। उस स्थान से पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर नन्दा नाम की वेदी है, जो पुनर्जन्म को रोकनेवाली है, अर्थात् वहाँ पर पिण्डदानादि करने से पुनर्जन्म नहीं होता। सिद्धजन उसका नित्य सेवन करते हैं, किन्तु अकृतात्माजन (पापीजन) उसे नहीं देख पाते। परम बुद्धिमान् महादेव ने जहाँ पर अपना चरणन्यास किया है, वह सिद्धों का क्षेत्र है, वहाँ पहुँचकर पुनर्जन्म नहीं होता। देवी के उस पवित्र आयतन में ईश्वर (महादेव) ने एक चरण पर स्थिर होकर कठोर तपस्या की थी। वहाँ पर उमातुङ्ग में नीहार (बरफ) और जल एक देवयुग से स्थित हैं ।।७९–८१।। उस उमातुङ्ग, भृगुतुङ्ग, ब्रह्मतुङ्ग, महालय, काद्रवती, शांडिलीगुफा, वामनगुफा आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा कर मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, इन सब तीर्थों में किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है, जप, हवन, ध्यान अथवा जो कुछ भी सत्कर्म यहाँ किये जाते हैं, सब अक्षय फलदायी होते हैं ।।८२–८३।। वहाँ पर ब्रह्मचर्य में निरत रहनेवाले गुरुभक्त विद्यार्थीगण सैकड़ों वर्षों तक यज्ञादि का अनुष्ठान करते रहते हैं। उस पवित्र तीर्थ में स्नान करके ये उपर्युक्त फल शीघ्र ही प्राप्त किये जा सकते हैं। वहीं पर पापों को नष्ट करनेवाली कुमारधारा का दर्शन होता है, वहाँ यान (वाहन) एवं आसन का लाभ करते हुए शीघ्र ही देखा जाता है ।।८४–८५।। शैलकीर्ति नामक पवित्र तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। सभी प्राणियों से अदृश्य होकर वह देवताओं की तरह पृथ्वी पर विचरण करता है ।।८६।। काश्यप का परम प्रसिद्ध कालसर्पि नामक महान् तीर्थ सुना गया है, अक्षय श्राद्ध के इच्छुक मनुष्यों को वहाँ नित्य श्राद्धदान

अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं शालग्रामसमन्ततः। दृष्ट्या न दृश्यते तत्र प्रत्यक्षमकृतात्मनाम् ।।८८।।
प्रत्यादेशो ह्यशिष्टानां शिष्टानां च निवेशनम्। तत्र चैव ह्रदे पुण्य दिव्यो वै नागराद्यतः ।।८९।।
पिण्डं गृह्णाति हि सतां न गृह्णात्यसतां हि सः। अतिप्रदीप्तैर्भुजगैर्भोक्तुमन्नं न शक्यते (?) ।।९०।।
प्रत्यक्षं दृश्यते धर्मस्तीर्थयारमेनयोर्द्धयोर्द्धयोः। देवदारुवने चापि चारयेस्तं निदर्शनम् ।।९१।।
विधूतानि तु पापानि दृश्यन्ते सुकृतात्मनाम्। भागीरथ्यां प्रयागे च नित्यमक्षयमुच्यते ।।९२।।
कालञ्जरे दशार्णायां नैमिषे कुरुजाङ्गले। वाराणस्यां नगर्यां तु देयं श्राद्धं तु यत्नतः ।।९३।।
तस्यां योगेश्वरो नित्यं तत्तस्यां दत्तमक्षयम्। दत्त्वा चैतेषु पूतः स्याच्छ्राद्धमानन्त्यमेव च ।।९४।।
जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किंचित्सुत्सुकृत भवेत्। लौहित्ये वैतरण्यां वै स्वर्णवेद्यां तथैव च ।।९५।।
सकृदेव समुद्रान्ते दृश्यते पुण्यकर्मभिः। गङ्गायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ।।९६।।
गयायां गृध्रकूटे च श्राद्धं दत्तं महाफलम्। हिमं च *पतते तत्र समन्तात्पञ्चयोजनम् ।।९७।।
भरतस्याऽऽश्रमे पुण्येऽरण्यं पुण्यतमं स्मृतम्। मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते मांसचक्षुषा ।।९८।।

करना चाहिए। शालग्राम के चारों ओर किया गया श्राद्धकर्म अक्षय रूप में प्राप्त होता है, किन्तु पापात्माओं को वह परम पवित्र तीर्थ प्रत्यक्ष होने पर भी आँखों से नहीं दिखायी पड़ता ।।८७–८८।। उस पवित्र तीर्थ में अशिष्ट लोगों का जाना वर्जित है, केवल शिष्टजन ही उसमें प्रवेश पा सकते हैं। वहाँ के पुण्य सरोवर में निवास करनेवाला नागराज केवल सत्पुरुषों द्वारा दिये गये पिण्डों का भक्षण करता है, और असत्पुरुषों द्वारा दिये गये पिण्डों का भक्षण नहीं करता। वह अपने साथ रहनेवाले असंख्य प्रचण्ड सर्पों समेत भी उस पापात्मा के अन्न का भक्षण करने में अशक्त रह जाता है। इन उपर्युक्त दोनों पवित्र तीर्थों में धर्म को प्रत्यक्ष देखा जाता है, देवदारु वन में भी यह निदर्शन पाया जाता है, सुकृती जनों के पाप तो यहाँ दूर होते दिखायी पड़ते हैं। भागीरथी और प्रयाग में भी श्राद्ध का अक्षय फल कहा गया है ।।८९–९२।। कालंजर, दशार्ण, नैमिष, कुरुजाङ्गल तथा वाराणसी नगरी–इन पवित्र तीर्थों में मनुष्य को प्रयत्न करके श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। वाराणसी नगरी में योगेश्वर शंकर का नित्य निवास रहता है, अतः उसमें पिण्डदान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। इन पवित्र तीर्थों में पिण्डदान करके मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, उसका श्राद्ध अनन्त फलदायी होता है। इसी प्रकार जप, हवन एवं अन्यान्य सत्कर्मों का भी अक्षयफल वहाँ होता है। लौहित्य वैतरणी एवं स्वर्ण वेदी में भी श्राद्धकर्म के यही फल कहे गये हैं ।।९३–९५।। पुण्यकर्म परायणों ने समुद्रान्त में केवल एक श्राद्ध करने का विधान देखा है! गङ्गा, धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर, गया, गृध्रकूट, प्रभृति तीर्थों में श्राद्धदान का महान् फल है , उसके चारों ओर पाँच योजन तक बरफ गिरता है। भरत के पवित्र, पुण्यप्रद आश्रम में जो अरण्य है, वह परम पुण्यदायी कहा गया है। उस पवित्र अरण्य में मांस नेत्रधारी मनुष्य को भी मतंग ऋषि का आश्रम दिखायी पड़ता है ।।९६–९८।। यह परम पवित्र

---

* अत्राऽऽत्मनेपदमार्षम्।

ख्यापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनम् । एवं पञ्चवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।।
यस्मिन्पाण्डुविशालेति तीर्थं सद्यो निदर्शनम् ।।९९।।
तुलामानैस्तथा चापैः शास्त्रैश्च विविधैस्तथा । उन्मज्जन्ति तथा लग्ने ये वै पापकृतो जनाः ।।१००।।
तृतीयायां तथा पादे निःस्वरे पावमण्डले (?) । महाह्रदे वै कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम् ।।१०१।।
मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता । बहून्देवयुगांस्तप्त्वा तपस्तीव्रं सुदुश्चरम् ।।१०२।।
अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्मपरायणः । पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णत्वचमिवोरगः ।।१०३।।
सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयंकरैः । लेलिहानैर्महाभोगै रक्षितं तु दिवानिशम् ।।१०४।।
नाम्ना कनकनन्दीति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम् ।।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति कामचारा विहंगमाः ।।१०५।।
दत्तं चापि तथा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् । ऋणैस्त्रिभिस्तदा स्नात्वा निक्षिणोति नरोत्तमः ।।१०६।।
तीरे तु सरसस्तत्र देवस्याऽऽयतनं महत् । आरुह्य तज्जपंस्तत्र सिद्धो याति दिवं ततः ।।१०७।।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठं दृश्यते महदद्भुतम् ।।१०८।।
तस्मिन्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् । कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायं च नित्यशः ।।१०९।।

तीर्थ धर्म सर्वस्व के रूप में प्रसिद्ध किया गया है, एवं इस लोक का धर्म निदर्शक है। इसी प्रकार पञ्चवन नामक पुण्यप्रद तीर्थ भी पुण्यात्माओं द्वारा सुसेवित है। उस पञ्चवन तीर्थ में पाण्डुविशाला नामक तीर्थ धर्म का प्रत्यक्ष निदर्शन है ।।९९।। जो पाप करनेवाले मनुष्य होते हैं, वे वहाँ तुलामान चाप और विविध शस्त्रों समेत लग्न आने पर डुबकी लगाते हैं। तृतीया में पद, निःस्वर, पावमण्डल (?), महाह्रद तथा कौशिकी में दिया गया श्राद्ध महाफल देनेवाला होता है ।।१००–१०१।। परम बुद्धिमान् महादेव ने मुण्डपृष्ठ में अपना पदन्यास किया था, अनेक देव युगों तक परम कठोर एवं दुर्गम तपस्या उन्होंने वहाँ की थी। धर्म में आस्था रखनेवाला मनुष्य बहुत थोड़े समय में ही वहाँ अपने समस्त पापकर्मों को सर्प की केंचुल की भाँति छोड़ देता है ।।१०२–१०३।। वह परम पुनीत तीर्थ सिद्ध जनों के लिए प्रीतिकारी, पापात्माओं के लिए परम भयंकर एवं अपनी विशाल दाढ़ों को लपलपानेवाले महान् सर्पों से रात-दिन सुरक्षित है। उस मुण्डपृष्ठ तीर्थ के उत्तर देवताओं और ऋषियों के समूहों से सुसेवित तीनों लोकों में परम विख्यात कनकनन्दी नामक तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके इच्छानुरूप विचरण करनेवाले विहंगम स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ।।१०४–१०५।। वहाँ पर दिया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है। उत्तम मनुष्य उस पुनीत तीर्थ में स्नान करके तीनों ऋणों से मुक्त होते हैं। सरोवर के तीर पर देव का विशाल मन्दिर है, उस पर आरूढ़ होकर मन्त्र जप करने से सिद्ध होता है तदनन्तर स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।१०६–१०७।। उत्तर और मानस तीर्थ की यात्रा करने से परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। वहाँ जाने से सुरश्रेष्ठ का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जो अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। वहाँ जाकर अपनी शक्ति एवं पराक्रम के अनुसार श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए, जो ऐसा करता है वह दिव्य मनोरथों की प्राप्ति करता है एवं मोक्ष का उपाय

मानसे सरसि श्रेष्ठे दृश्यते महदद्भुतम् । दिवश्च्च्युता महाभागा ह्यन्तरिक्षे विराजते ।।११०।।
गङ्गा त्रिपथगा देवी सोमपाद्वाच्युता भुवि । आकाशे दृश्यते तत्र तोरणं सूर्यसंनिभम् ।।१११।।
जाम्बूनदमयं दिव्यं स्वर्गद्वारमिवाऽऽयतम् । यतः प्रवर्तते भूयः पूर्वसागरमन्तिमम् ।।११२।।
पावनी सर्वभूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः । चन्द्रभागा च सिन्धुश्च उभे मानससंनिभे ।।
सागरं पश्चिमं याति दिव्यसिन्धुर्नदीवरः ।।११३।।
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः । योजनानां सहस्राणि आयतोऽशीतिरुच्यते ।।११४।।
सिद्धचारणसंकीर्णः सिद्धचारणसेवितः । तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम विश्रुता ।।११५।।
दश वर्ष सहस्राणि तत्र जातस्तु जीवति । श्राद्धं भवति चाऽऽनन्त्यं तस्यां दत्तं महोदयम् ।।
तारयेच्च यदा श्राद्धं दशपूर्वान्दशापरान् ।।११६।।
सर्वं पुण्यं हिमवतो गङ्गा पुण्या च सर्वतः । समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ।।११७।।
एवमादिषु सर्वेषु श्राद्धं निर्वर्तयेद्बुधः । पूतो भवति स्नात्वा नु दत्त्वा दत्त्वा तथैव च ।।११८।।
शैलसानुषु तुङ्गेषु कन्दरेषु गुहासु च । उपह्वरनितम्बेषु तथा प्रश्रवणेषु च ।।११९।।
पुलिनेष्वापगानां च तथैव प्रभवे युगे । महोदधौ गवां गोष्ठे संगमेषु वनेषु च ।।१२०।।

सुलभ करता है ।।१०८–१०९।। परम श्रेष्ठ उस मानस सरोवर में एक महान् आश्चर्य दिखायी पड़ता है, वहाँ पर महाभाग्यशालिनी त्रिपथगामिनी गङ्गा देवी आकाशमार्ग से च्युत होकर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। वह देवी वहीं पर चन्द्रमण्डल से पृथ्वीतल पर गिरी हैं। वहाँ आकाशमण्डल में सूर्य के समान परम तेजोमय तोरण दिखायी पड़ता है, जो सुवर्णमय तथा स्वर्ण के द्वार की भाँति विस्तृत है। वहीं से जीवों की–विशेषतया धर्म के मर्म को जाननेवालों की–उद्धार करनेवाली चन्द्रभागा नामक नदी निकलकर पूर्व के समुद्र में गिरती है ।।११०–१११।। चन्द्रभागा और सिन्धु ये दोनों नदियाँ मानस सरोवर की भाँति पुण्यदायी एवं पवित्र हैं, नदियों में श्रेष्ठ दिव्य गुणयुक्त सिन्धु पश्चिम के समुद्र में गिरती है, विविध प्रकार के धातुओं से विभूषित हिमवान् नामक पर्वत है, जो अस्सी सहस्र योजन विस्तृत कहा जाता है, सिद्धों एवं चारणों के समूहों से वह पर्वतराज भरा पड़ा है। उसमें सुषुम्ना नामक एक परम मनोहर पुष्करिणी है, उसमें जन्म लेनेवाला प्राणी दस सहस्र वर्ष जीवित रहता है, उसमें दिया हुआ श्राद्ध महान् उन्नति करनेवाला तथा अनन्तफलदायी होता है, उसमें श्राद्ध करके मनुष्य अपनी दस अगली और दस पिछली पीढ़ियों को तारता है ।।११३–११६।। हिमवान् पर्वत का प्रत्येक स्थल पुण्यदायी है, गंगा में सर्वत्र पुण्य है। इसी प्रकार समुद्र में गिरनेवाली अन्यान्य नदियाँ तथा स्वयं समुद्र भी सर्वत्र श्राद्धकर्मों में पुण्यदायी कहा गया है। बुद्धिमान् पुरुष इन उपर्युक्त एवं अन्यान्य पवित्र तीर्थों में श्राद्धक्रिया सम्पन्न करे। पवित्र तीर्थों में स्नान एवं दान करके मनुष्य पवित्र हो जाता है ।।११७–११८।। उच्च गिरिशिखर पर, कन्दरा एवं गुफाओं में पर्वतों उपत्यकाओं एवं झरनों के समीप, नदियों के तटों पर, युगारम्भ की तिथियों,

असंसृष्ठोपलिप्तासु हृद्यासु सुरभीषु च। गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु गृहेषु च ।।१२१।।
कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि। प्रदक्षिणं दिशं गत्वा सर्वकामचिकीर्षकः ।।१२२।।
एवमेतेषु सर्वेषु श्राद्धं कुर्यातदन्द्रितः। एवमेव तु मेधावा ब्राह्मीं सिद्धिमवाप्नुयात् ।।१२३।।
त्रैवर्ण्ये विहिते स्थाने धर्मवर्णाश्रमे तथा। कोपस्थानस्य संत्यागात्प्राप्यते पितृपूजनम् ।।१२४।।
तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। कृतपापश्च शुध्येत किं पुनः शुभकर्मकृत् ।।१२५।।
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च कुदेशे न च जायते। स्वर्गी भवति वै विप्रो मोक्षोपायं च विन्दति ।।१२६।।
अश्रद्दधानाः पाप्मानो नास्तिकाः स्थितसंशयाः। हेतुद्रष्टा च पञ्चैते न तीर्थफलमश्नुते ।।१२७।।
गुरुतीर्थे परा सिद्धिस्तीर्थानां परमं पदम्। ध्यानं तीर्थपरं तस्माद्ब्रह्मतीर्थं सनातनम् ।।१२८।।
उपवासात्परं ध्यानमिन्द्रियाणां निवर्तनम्। उपवासनिबद्धा हि प्राणैरिह पुनः पुनः ।।१२९।।
प्राणापानौ समौ कृत्वा विषयाणीन्द्रियाणि च। बुद्धिं मनसि संयम्य सर्वेषां तु निवर्तनम् ।।१३०।।
प्रत्याहारं पुनर्विद्धि मोक्षोपायमसंशयम्। इन्द्रियाणां मनो घोरं बुद्ध्यादीनां प्रवर्तनम् ।।१३१।।

महासमुद्र के तट पर, गौओं की शाला में, नदियों के संगम पर, वनों में, स्वच्छ लिपी-पुती मनोहग पृथ्वी पर, गोबर से लिपे हुए एकान्त घर में नित्य ही विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। सभी मनोरथों की प्राप्ति का इच्छुक मनुष्य इन स्थानों पर श्राद्ध एवं प्रदक्षिणा कर सफल होता है ।।११९-१२२।। सर्वदा इन्हीं स्थानों में आलस्यादि छोड़कर सावधान मन से श्राद्ध करना चाहिए। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मत्व की सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।।१२३।। क्रोधादि को सर्वथा छोड़ने पर तीनों उच्च वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) से किये धर्म एवं वर्णाश्रम की मर्यादा से अनुमोदित विधि के अनुसार दान करने पर पितरों की पूजा का फल प्राप्त होता है ।।१२४।। पापात्मा भी इन उपर्युक्त पवित्र तीर्थों की यात्रा धैर्य एवं श्रद्धापूर्वक इन्द्रियों को स्ववश रख यदि करे तो शुद्ध हो जाता है, शुभ कर्म करनेवालों के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। इन तीर्थों की यात्रा करनेवाला पाप करनेवाला भी विप्र तिर्यक् योनि में कभी जन्म नहीं लेता और न बुरे स्थानों में ही उसका जन्म होता है, प्रत्युत वह स्वर्ग प्राप्त करता है, मोक्ष के उपाय उसे सुलभ हो जाते हैं ।।१२५-१२६।। श्रद्धा न करनेवाले, पापात्मा, परलोक न माननेवाले अथवा वेदों के निन्दक, स्थिति में सन्देह रखनेवाले संशयात्मा एवं सभी पुण्य कार्यों में किसी कारण का अन्वेषण करनेवाले कुतर्की—इन पाँचों को इन पवित्र तीर्थों का फल नहीं प्राप्त होता। गुरु रूपी तीर्थ में परम सिद्धि प्राप्त होती है, वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। उससे भी श्रेष्ठ तीर्थ ध्यान है, यह ध्यान साक्षात् ब्रह्म तीर्थ है, इसका कभी विनाश नहीं होता ।।१२७-१२८।। उपवास से भी यह ध्यान श्रेष्ठ है, यह सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत्त करनेवाला है, उपवास से बँधे रहनेवाले व्यक्तिगण प्राणों से विमुक्त होकर इस लोक में पुनः-पुनः जन्म धारण करते हैं ।।१२९।। प्राण एवं अपान वायु—इन दोनों को समान करके इन्द्रियों, उनके विषयों और बुद्धि को मन में बाँधने पर सब की निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष के साधनभूत प्रत्याहार (इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग रखना) को पुनः सुनिये। समस्त इन्द्रियों में मन परम चञ्चल और घोर है, बुद्धि आदि सबको यही परिचालित करता

अनाहारात्क्षयं याति विद्यादनशनं तपः । निग्रहाद्बुद्धिमनसो रम्या बुद्धिस्तु जायते ।।१३२।।
क्षीणेषु सर्वपापेषु क्षीणेष्वेवेन्द्रियेषु च । परिनिर्वाति शुद्धात्मा यथा वह्निर्निरिन्धनः ।।१३३।।
कारणेभ्यो गुणेभ्योऽथ व्यक्ताव्यक्तस्य कृत्स्नशः । वियोजयति क्षेत्रज्ञं तेभ्यो योगेन योगवित् ।।१३४।।
तस्य नास्ति गतिस्थानं व्यक्ताव्यक्तं न संशयः । *नासन्न सदसच्चैव नैव किंचित्स्थितेरिति ।।१३५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च । श्राद्धकर्मणि मेध्यानि वर्जनीयानि यानि च ।।१।।
हिमप्रपतने कुर्यादाहरेद्वा हिमं ततः । अग्निहोत्रमतः पुण्यं परमं हि ततः स्मृतम् ।।२।।

है ।।१३०-१३१।। निराहार रहने से मन की चञ्चलता और कठोरता नष्ट हो जाती है, अतः अनशन को परम तप जानना चाहिए। चंचल बुद्धि और मन इन दोनों को वश में रखने से सुन्दर बुद्धि उत्पन्न होती है। समस्त पापकर्मों के क्षीण हो जाने पर एवं इन्द्रियों के क्षीण हो जाने पर (वश में आ जाने पर) आत्मा शुद्ध होकर इन्धनरहित अग्नि की तरह निर्वाण प्राप्त करती है। समस्त व्यक्त-अव्यक्त वस्तुओं के कारण एवं गुणों से योगीजन अपनी आत्मा को वियुक्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप इस जन्म के उपरान्त उनकी न कोई गति होती है, न कोई स्थान रहता है, निश्चय ही वे व्यक्त एवं अव्यक्त किसी में नहीं रहते। न वे सत् हैं न असत्, उनकी स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।।१३२-१३५।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प में तीर्थयात्रा नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७७।।

अध्याय ७८

श्राद्धकल्प

बृहस्पति बोले-अब इसके उपरान्त मैं श्राद्धकर्म में दिये जानेवाले दान एवं उनसे मिलनेवाले फलों के बारे में बतला रहा हूँ, यह भी बतला रहा हूँ कि श्राद्ध में कौन-सी वस्तुएँ पवित्र और कौन-सी वर्जित रखी हैं ।।१।। हिम गिरते समय हिम का भक्षण (?) करना चाहिए, तदनन्तर अर्थात् वसन्त ग्रीष्म आदि में अग्निहोत्र करना चाहिए यह विधि

---

* एतदर्धस्थाने 'आसन्नः सदसन्नैव किंचित्स्थितः' इति क. पुस्तके।

नक्तं तु वर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्र दर्शनात् । सर्वस्वेनापि कर्तव्यं क्षिप्रं वै राहुदर्शने ।।३।।
उपरागे न कुर्याद्यः पङ्के गौरिव सीदति । कुर्वाणस्तूद्धरेत्पापान्मज्जनैरिव सागरे ।।४।।
विश्वदेवं च सौम्यं च बहुमांसपरं हविः । विषाणं वर्जयेत्खाड्गमसूयानाशनाय वै ।।५।।
त्वष्टा वै वार्यमाणस्तु देवेशेन महात्मना । पिबञ्शचीपतेः सोमं पृथिव्यामपतत्पुरा ।।६।।
शामाकास्तु तथोत्पन्नाः पित्रर्थमपि पूजिताः । विप्रुषस्तस्य नासाभ्यामसक्ताभ्यां तथेक्षवः ।।७।।
श्लेष्माणः शीतला हृद्या मधुराश्च तथेक्षवः । श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सार्वकामिकम् ।।
कुर्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात् ।।८।।
श्यामाका हस्तिनामा च पटोलं बृहतीफलम् । अगस्त्यस्य शिखा तीव्रा कषायाः सर्व एव च ।।९।।
एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च । नागरं चात्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च ।।१०।।
वंशीकरीराः सुरसाः सर्जकं भूस्तृणानि च । वर्जनीयानि वक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ।।११।।
(+लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् । करम्भाद्यानि चान्यानि हीनानि रसगन्धतः ।।१२।।
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि कारणं चात्र वक्ष्यते । पुरा दे (दै) वासरे युद्धे निर्जितस्य बलेः सुरैः ।।१३।।

परम पुण्यप्रद कही जाती है। रात्रि के समय श्राद्धकर्म वर्जित रखना चाहिए। रात्रि के बिना अन्य अवसर पर राहु के दर्शन के समय सर्वस्व व्यय करके शीघ्र ही श्राद्धकर्म करना चाहिए। जो व्यक्ति ग्रहण के अवसर पर श्राद्धकर्म नहीं करता है वह कीचड़ में फँसी गौ की तरह यातना सहता है। और जो करता है वह अपने पापों से सागर में नाव[१] की तरह उद्धार पा जाता है ।।२-४।। विश्वदेव, सौम्य और प्रचुर मांस युक्त हवि, गैंड़े का सींग पितरों की असूया (द्वेष) नष्ट करने के लिए वर्जित रखना चाहिए ।।५।। प्राचीनकाल में महात्मा देवेश के निषेध करने पर भी त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने शचीपति (इन्द्र) का सोमरस पान किया था, उनके पीते समय पृथ्वी पर वह गिर पड़ा, जो साँवाँ के रूप में उत्पन्न हुआ। पितरों के लिए वह पूजित माना गया है। उसी समय पीते हुए त्वष्टा के अशक्त नासिका के छिद्रों से उस सोमरस के बूँद भी पृथ्वी पर गिरे, जो ईख के रूप में उत्पन्न हुए। इसी कारण ईखें शीतलता प्रदान करनेवाली, रुचिकर, मधुर और कफकारक होती हैं। इन साँवाँ और ईखों से पितरों की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो इन दोनों वस्तुओं को श्राद्धकर्म में निवेदित करता है वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करता है ।।६-८।। साँवाँ, हस्तिनाम, पटोल, बृहतीफल, अगस्त्य की तीखी शिखाएँ, ये सभी कषाय स्वादुवाले हैं। इसी प्रकार अन्यान्य सुस्वादु एवं मधुर द्रव्य पितरों को प्रिय हैं। श्राद्धकर्म में नागर और दीर्घमूलक भी देना चाहिए ।।९-१०।। इसी प्रकार वंशी, करीर, सुरसा, सर्जक और भूस्तृण भी देने चाहिए। श्राद्धकर्म में सर्वदा जो वर्जित वस्तुएँ हैं, उन्हें बतला रहा हूँ ।।११।। लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूलक, करम्भ आदि वस्तुएँ, जो रस और गन्ध से निन्द्य हैं, श्राद्धकर्म में वर्जित रखनी चाहिए, इनका कारण बतला रहा हूँ। प्राचीनकाल में देवताओं और राक्षसों के युद्ध में देवताओं द्वारा पराजित बलि के शरीर में जो घाव थे, उनसे रक्त के

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

[१] आनन्दाश्रम की प्रति का मूल गत पाठ भ्रामक समझकर यहाँ छोड़ दिया गया है। –अनुवादक

व्रणेभ्यो विस्फुरन्तो वै पतिता रक्तबिन्दवः । तत एतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः) ।।१४।।
अथ वेदोक्तनिर्यासाल्लँवणान्यूषणानि च । श्राद्धकर्माणि वर्ज्यानि याश्च नार्यो रजस्वलाः ।।१५।।
दुर्गन्धं फेनिलं चैव तथा वै पल्वलोदकम् । न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव गृह्यते ।।१६।।
आविकं मार्गमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् । माहिषं चामरं चैव पयो वर्ज्यं विजानता ।।१७।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्ज्यान्देशान्प्रयत्नतः । न द्रष्टव्यं च यैः श्राद्धं शौचाशौचं च कृत्स्नशः ।।१८।।
वन्यमूलफलाहारैः श्राद्धं कुर्यात्तु श्रद्धया । राष्ट्रमिष्टमवाप्नोति स्वर्गं मोक्षं यशस्करम् ।।१९।।
अनिष्टशब्दसंकीर्णं जन्तुव्याप्तमथापि वा । पूतिगन्धां तथा भूमिं श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ।।२०।।
नद्यः सागरपर्यन्ता द्वारं दक्षिणपूर्वतः । त्रिशङ्कुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् ।।२१।।
उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च कैकटात् । देशस्त्रैशङ्कवो नाम वर्जितः श्राद्धकर्मणि ।।२२।।
कारस्कराः कलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेव च । प्रनष्टश्रमधर्माश्च वर्ज्या देशाः प्रयत्नतः ।।२३।।
नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धमेवं व्यवस्थितम् । गच्छन्ति तैस्तैर्दृष्टानि न पितॄन्न पितामहान् ।।२४।।

शंयुरुवाच

नग्नादीन्भगवन्सम्यङ्ममाद्य परिपृच्छतः । कथय द्विजमुख्याग्र्य विस्तरेण यथातथम् ।।२५।।

विन्दु निकलकर पृथ्वी पर गिरे, वे ही इन वस्तुओं के रूप में हुए, अतः श्राद्धकर्म में इनको सर्वदा वर्जित रखना चाहिए ।।१२-१४।। वेद में गिनाये गये समस्त निर्यास (गोंद), द्रव्य, लवण एवं ऊषण (पिप्पलीमूल, चीता) ये वस्तुएँ भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखी जायँ। इसी प्रकार जो रजस्वला स्त्रियाँ हों, वे भी श्राद्धकर्म में प्रवृत्त न हों। दुर्गन्धियुक्त, फेनों से व्याप्त, छोटे गड्ढों का जिसमें गौओं की तृप्ति नहीं होती, जो रात में ग्रहण किया गया हो, भेंड़, मृग, बकरी, ऊँट एवं अन्य एक खुरवाले पशुओं से पीकर दूषित किया गया, महिष, चमर आदि अन्य पशुओं द्वारा गँदला किया गया जल, श्राद्धकर्म में विद्वान् पुरुष वर्जित रखें ।।१५-१७।। अब इसके उपरान्त उन स्थानों को बतलाने की चेष्टा करूँगा, जिन्हें भरसक श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन लोगों को भी बतला रहा हूँ जिन्हें श्राद्धकर्म देखना भी नहीं चाहिए। इस प्रकार सभी प्रकार की पवित्रता एवं अपवित्रता के बारे में बतला रहा हूँ। श्रद्धापूर्वक वन में उत्पन्न होनेवाले मूल एवं फलों के आहारों से श्राद्धकर्म सम्पन्न करने चाहिए। ऐसे करनेवाले को राष्ट्र मित्र की भाँति सम्मान देता है और यश की वृद्धि होती है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।।१८-१९।। अनिष्टकारी शब्दों से एवं जीव-जन्तुओं से व्याप्त, दुर्गन्धियुक्त भूमि को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। सागर तक जानेवाली समस्त नदियाँ, दक्षिण-पूर्व के द्वार एवं त्रिशङ्कु देश इनको बारह योजन से छोड़ देना चाहिए। यह त्रिशंकु देश महानदी के उत्तर, कैकट देश से दक्षिण फैला हुआ है, यह श्राद्धकर्म में वर्जित है ।।२०-२२।। कारस्कर, कलिङ्ग, सिन्धु के उत्तरवर्ती देश एवं वे देश जहाँ पर वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका है, प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध में वर्जित रखने चाहिए। नंगे आदि असंस्कृत लोग श्राद्धकर्म न देखें— ऐसी व्यवस्था है। उन लोगों द्वारा देखे जाने पर श्राद्ध की वस्तुएँ पितामहादि पितरों को नहीं प्राप्त होतीं ।।२३-२४।।

शंयु ने कहा—'हे भगवन्! वे नंगे आदि कौन हैं ? हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों में पूज्य! मैं उनके बारे में जानना चाहता हूँ, विस्तारपूर्वक उनका यथातथ्य वर्णन कीजिये' ।।२५।। शंयु के इस प्रकार पूछने पर महातेजस्वी बृहस्पति ने उनसे

एवमुक्तो महातेजा बृहस्पतिरुवाच तम्। सर्वेषामेव भूतानां त्रयी संवरणं स्मृतम् ।।२६।।
परित्यजति यो मोहात्ते वै नग्नादयो जनाः। प्रलीयते नरो यस्मान्निरालम्बश्च यो वृषः ।।२७।।
वृषं यश्च परित्यज्य मोक्षमन्यत्र मार्गति। वृथा वेदाश्रमास्तस्मिन्यो वै सम्यङ्न पश्यति ।।२८।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या वृषलाश्चैव सर्वशः। पुरा दे (दै) वासुरे युद्धे निर्जितैरसुरैस्तदा ।।२९।।
पाषण्डवैकृतास्तात नैषा सृष्टिः स्वयंभुवः। *यद्विश्राद्धकनिर्गन्थाः शक्त्या जीवन्ति कर्पटाः ।।३०।।
ये धर्मं नानुवर्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः। वृथाजटी वृथामुण्डी वृथानग्नश्च यो द्विजः ।।३१।।
वृथाव्रती वृथाजापी ते वै नग्नादयो जनाः। कुलंधमा निकाशाश्च तथा पुष्टिकलंशकाः ।।३२।।
कृतकर्माक्षितास्त्वेते कुपथाः परिकीर्तिताः। एभिर्निर्वृत्तं वा श्राद्धं वृथा गच्छति मानवान् ।।३३।।
ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च नास्तिका गुरुतल्पगाः। दस्यवश्च नृशंसाश्च दर्शनेनैव वर्जिताः ।।३४।।
ये चान्ये पापकर्माणः सर्वांस्तान्परिवर्जयेत्। देवदेवर्षिनिंदायां रताश्चैव विशेषतः ।।३५।।
असुरान्यातुधानांश्च दृष्टमेभिर्व्रजन्त्युत। ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं स्मृतम् ।।
वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ।।३६।।

कहा। संसार के समस्त जीवों (मनुष्यों) के लिए तीनों वेद आच्छादान करनेवाले (शान्ति देनेवाले) कहे गये हैं जो लोग अज्ञानवश उन्हें छोड़ देते हैं, वे नंगे हैं। मनुष्य जब वेद से पराङ्मुख हो जाता है तब वह वेद रूप वृष निरवलम्ब हो जाता है ।।२६।। जो इस धर्म रूप वृष को छोड़कर अन्यत्र मोक्ष का मार्ग ढूँढ़ता है, उसका वेदादि के अध्ययन का श्रम व्यर्थ है, क्योंकि वह इन वेदों में दिये हुए मोक्ष के स्वरूप को भलीभाँति नहीं देखता है ।।२७।। प्राचीनकाल में देवताओं और असुरों के युद्ध में पराजित हुए असुरों द्वारा सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पाषण्डी होकर विकृत (पतित) हो गये, तात! वह स्वयंभू की वह सृष्टि नहीं रह गयी। जो लोग श्राद्धादि कार्यों के विरोध करनेवाले सद्ग्रन्थों के विरोधी, अपनी इच्छा एवं शक्ति के भरोसे जीवन यापन करते हैं, जो धर्म का आचरण नहीं करते, वे नंगे लोग हैं। व्यर्थ में जटा बढ़ानेवाले, व्यर्थ में मुण्डित सिर रहनेवाले, व्यर्थ में नग्न रहनेवाले जो द्विजाति हैं, वे सब भी नंगे लोग हैं ।।२८-३१।। व्यर्थ व्रत रखनेवाले, व्यर्थ में जप करनेवाले, कुल को पीड़ा पहुँचानेवाले निषाद, पुष्टि विनाशक एवं किये गये सत्कर्मों पर आक्षेप करनेवाले कुमार्गी कहे गये हैं। ऐसे लोगों द्वारा सम्पन्न श्राद्धकर्म पितरों के लिए व्यर्थ हो जाते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले, कृतघ्न, नास्तिक, गुरुपत्नीगामी, दस्यु, नृशंस, आत्मतत्त्वज्ञान से वंचित, गर्व अन्यान्य जो पापकर्म परायण लोग हैं, उन्हें सबको श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए ।।३२-३४।। विशेषतया देवताओं एवं देवर्षियों की निन्दा में निरत रहनेवाले जो लोग हों, उन्हें भी वर्जित रखना चाहिए। इसी प्रकार असुरों एवं यातुधानों को भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। इन उपर्युक्त लोगों द्वारा देखा गया श्राद्धकर्म निष्फल हो जाता है। सतयुग को ब्राह्मणों का युग कहा गया है, त्रेता क्षत्रियों का युग कहा जाता है, द्वापर वैश्यों का युग है, इसी प्रकार कलियुग शूद्रों का युग कहा गया है ।।३५-३६।।

---

* एतदर्धस्थानेऽयं पाठः–द्विश्राद्धकश्च निर्ग्रन्थाः शाक्या पुष्टिकलशंकाः' इति क. पुस्तके।

पितर ऊचुः

वैदाः कृतयुगे पूज्यास्त्रेतायां तु सुरास्तथा । युद्धानि द्वापरे नित्यं पाषण्डाश्च कलौ युगे ।।३७।।
अपमानापवित्रश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः । श्वा चैव दर्शनादेव हन्ति श्राद्धं न संशयः ।।३८।।
शावसूतकसंसृष्टो दीर्घरोगिभिरेव च । मलिनैः पतितैश्चैव न द्रष्टव्यं कथंचन ।।३९।।
अन्नं पश्येयुरेते वै नैतत्स्याद्धव्यकव्ययोः । तत्संस्पृष्टं प्रधानार्थं संस्कारश्वापदो भवेत् ।।४०।।
हविषां संहतानां तु पूर्वमेव विवर्जनम् । मृत्संयुक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणं च विधीयते ।।४१।।
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्यं वाऽप्यवकीरणम् । गुरुसूर्याग्निवस्तूनां दर्शनं वाऽपि यत्नतः ।।४२।।
आसनारूढमानेषु पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जङ्गमैर्दृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ।।४३।।
अशितं परिदुष्टं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकेशपाषाणैः कीटैर्यच्चाप्युपद्रुतम् ।।४४।।
पिण्याकयथितं चैव तथा तिलयवादिषु । सिद्धाक्षताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः ।।४५।।
वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि । सन्ति वेदविरोधेन केचिद्विज्ञानमानिनः ।।४६।।
अयज्ञपतयो नाम ते श्राद्धस्य यथा रजः । दधि शाकं तथाऽभक्ष्याः शुक्लं चौषं विवर्जितम् ।।४७।।
वार्ताकं वर्जयेद्दद्यात्सर्वानभिषवानपि । सैन्धवं लवणं यच्च तथा मानससंभवम् ।।४८।।

पितरगण बोले–सतयुग में वेदों की पूजा होती थी, त्रेतायुग में देवगण पूज्य माने जाते थे। द्वापर में लोगों को युद्ध प्रिय था, कलियुग में लोगों की पाषण्ड में सर्वदा रुचि रहती है ।।३७।। अपमानित एवं अपवित्र लोग, कुक्कुट (मुर्गे), ग्राम्य सुअर और कुत्ता–इनके तो केवल दर्शन से श्राद्ध नष्ट हो जाता है–इसमें सन्देह नहीं ।।३८।। बच्चों का सूतक जिनके घर में हो, दीर्घकाल से जो रोगग्रस्त हो, मलिन एवं पतित विचारोंवाला हो, इनको किसी प्रकार भी श्राद्धकर्म नहीं देखना चाहिए ।।३९।। यदि ये लोग श्राद्ध के अन्न को देख लेते हैं तो वह अन्न भी हव्य के लिए उपयुक्त नहीं है, इनके द्वारा स्पर्श किये गये श्राद्धादि संस्कार अपवित्र हो जाते हैं। जमे हुए घृत को प्रथमतः वर्जित रखना चाहिए। श्राद्धकर्म में मिट्टी से मिले हुए जल से सिंचन करना चाहिए ।।४०–४१।। पीले सरसों से अथवा काले तिल से अवकीरण (विकीरण, पृथ्वी पर छींटना) करना चाहिए। यत्नपूर्वक गुरु, सूर्य और अग्नि की वस्तुओं का दर्शन करना चाहिए ।।४२।। आसनासीन (?), पैरों द्वारा मर्दित किये गये, अपवित्र प्राणियों द्वारा देखे गये, शुष्क एवं बासी, उच्छिष्ट, दोषपूर्ण, जीभ से चाटी हुई, शक्कर (बालुका), केश और पत्थर से दूषित, कीड़ों से गन्दगी की गयी वस्तुएँ श्राद्धकर्म में वर्जित हैं ।।४३–४४।। तिल और जव में, तिलों के चूरे न मिले हों, बनाये गये जो अक्षत खाने के लिए रखे गये हों तथा जिनमें नमक का अंश मिला हुअ हो, इसी प्रकार वस्त्र से जो स्पर्श किया गया हो, वे सब अन्नादि पदार्थ श्राद्धकर्म में दूषित माने गये हैं। कुछ विज्ञान के माननेवाले वेदों का विरोध करते हैं, वे यज्ञ के अनधिकारी हैं, और श्राद्ध के धूल की तरह (विनाशक) हैं, उन्हें भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। इसी प्रकार दही, न खाये जानेवाले शाक तथा श्वेत वर्ण का चोष्य (चूसा जानेवाला) पदार्थ–ये सब भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं ।।४५–४७।। भाँटे को भी श्राद्ध में वर्जित रखे। सभी प्रकार के अभिषवों (मद्य अथवा आसव) को वर्जित कर देना चाहिए (?) जो समुद्र से निकला हुआ लवण

पवित्रं परमं ह्येतत्प्रत्यक्षमपि वर्तते। अग्नौ निक्षिप्य गृह्णीयाद्धस्तौ प्रक्षिप्य यत्नतः ।।४९।।
गमयेन्मस्तकं चैव ब्रह्मतीर्थं हि तत्स्मृतम्। द्रव्याणां प्रोक्षणं कार्यं तथैवाऽऽवपनं पुनः ।।५०।।
निधाय चाद्भिः सिञ्चेत तथैवाप्सु निवेशनम्। अरिष्टतुमुले बिल्वं त्विङ्गुदश्वदनान्यपि ।।५१।।
विदलानां च सर्वेषां चर्मवच्छौचमिष्यते। तथा दन्तास्थिदारूणां शृङ्णां चावलेखनम् ।।५२।।
सर्वेषां मृण्मयानां तु पुनर्दाह उदाहृतः। मणिवज्रप्रवालानां मुक्ताशङ्खमणेस्तथा ।।५३।।
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः। स्याच्छौचं सर्वबालानामाविकानां च सर्वशः ।।५४।।
आविकानां च सर्वेषां मृद्भिरद्भिर्विधीयते। आद्यन्तयोस्तु शौचानामद्भिः प्रक्षालनं पुनः ।।५५।।
तथा कार्पासिकानां च भस्मना समुदाहृतम्। फलपुष्पशलाकानां प्लावनं चाद्भिरिष्यते ।।५६।।
संमार्जनं प्रोक्षणं च भूमेश्चैवोपलोपनम्। निष्क्रम्य बाह्यतो ग्रामाद्वायुपूता वसुंधरा ।।५७।।
धनुष्मत्पक्षिणां चैव मृद्भिः शौचं विधीयते। एवमेष समुद्दिष्टः शौचानां विधिरुत्तमः ।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।।५८।।
प्रातर्गृहात्पश्चिमदक्षिणेन इषुक्षेपं चाक्षमात्रं पदं च ।।
कुर्यात्पुरीषं च शिरोऽवगुण्ठ्य न च स्पृशेत्तत्र शिरः करेण ।।५९।।

है, तथा मानस से उत्पन्न हुआ लवण है, वह परम पवित्र माना गया है, ये दोनों लवण होने पर भी निषिद्ध नहीं हैं। उन्हें आग में छोड़कर पुनः दोनों हाथों से यत्नपूर्वक निकाल ले और अपने मस्तक पर लगा ले, मस्तक ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है। समस्त श्राद्धीय द्रव्यों को सर्वप्रथम जल से सिंचित करना चाहिए पुनः उनके ऊपर लगी हुई मैल आदि को छुड़ा देना चाहिए ।।४८–५०।। फिर रखकर जल से पुनः सिंचन करना चाहिए, पुनः जल में छोड़ देना चाहिए। अरिष्ट, तुमुल, बिल्व, इंगुद, श्वदन और विदल इन सभी वस्तुओं की श्राद्धादि में चर्म की तरह विधिवत् शुद्धि करनी चाहिए। इसी प्रकार दाँत, अस्थि (हड्डी), काष्ठ एवं शृंग (सींग) आदि को विधिवत् स्वच्छ और पवित्र कर लेना चाहिए ।।५१–५२।। सभी प्रकार के मृत्तिका के बने हुए पदार्थों को पुनः जला लेना कहा गया है। इसी प्रकार सभी प्रकार के मणि, हीरे, प्रवाल, मुक्ता, शंख आदि के लिए पीली सरसों अथवा काले तिल का कल्क बनाकर शुद्धि करनी चाहिए। केशों की भी शुद्धि इसी प्रकार करनी चाहिए ।।५३–५४।। भेंड़ के बाल की अथवा सभी प्रकार के भेंड़ों के बालों की शुद्धि मिट्टी और जल से हो जाती है, पवित्र करने के पहले और अन्त में–दोनों बार पुनः जल द्वारा धो लेना चाहिए। कपास के बने हुए पदार्थों की शुद्धि भस्म द्वारा कही गयी है। फल, पुष्प एवं शलाका की शुद्धि जल में डुबोने से हो जाती है ।।५५–५६।। पृथ्वी की शुद्धि प्रथम बटोरकर, जल से सिंचितकर फिर लीपने से हो जाती है। ग्राम से बाहर निकलने पर पृथ्वी वायु द्वारा शुद्ध रहती है। अर्थात् बस्ती की पृथ्वी के लिए बटोरने, जल छिड़कने और लीपने की आवश्यकता है, ग्राम से बाहर की पृथ्वी वायु से ही पवित्र रहती है। धनुर्धारी और पक्षियों की शुद्धि मिट्टी से की जाती है, शुद्धि के लिए यह उत्तम क्रम कहा गया है। इसके उपरान्त शौच की कुछ अन्य विधियाँ बतला रहा हूँ, सुनो ।।५७–५८।। प्रातःकाल अपने घर से पश्चिम या दक्षिण दिशा की ओर एक बाण की जहाँ तक गति हो उतनी दूर पर या अक्षमात्र दूर स्थान पर

शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पत्रैर्वेणुदलेन वा । मृण्मयैर्भाजनैर्वाऽपि तिरोधाय वसुंधराम् ।।६०।।
उद्धृतोदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः । दिवा उदङ्मुखः कुर्याद्रात्रौ वै दक्षिणामुखः ।।६१।।
दक्षिणेन च हस्तेन गृह्णीयाद्वै कमण्डलुम् । शौचं च वामहस्तेन गुदे तिस्रस्तु मृत्तिकाः ।।६२।।
दश चापि पुनर्दद्याद्वामहस्तक्रमेण तु । द्वाभ्यां वाऽपि पुनर्दद्याद्धस्तानां पञ्च मृत्तिकाः ।।६३।।
मृदा प्रक्षाल्य पादौ च आचम्य च यथाविधि । आपस्त्याज्यास्त्रयश्चैव सूर्याग्निपवनाम्भसाम् ।।६४।।
कुर्यात्संनिहितं नित्यं प्राज्ञस्तीर्थे कमण्डलुम् । असत्कार्ये कार्यमेतैर्यथावत्पादधावनम् ।।६५।।
आचमनं द्वितीयेन देवकार्यं ततः परम् । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टहस्ते ह्युदाहृतः ।।६६।।
विप्रकृष्टेन कृच्छ्रेण प्रायश्चित्तमुदाहृतम् । स्पृष्ट्वा श्वानं श्वपाकं वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।।६७।।
मानुषास्थीनि संस्पृश्य उपोष्यं शुद्धिकारणम् । त्रिरात्रमुक्तं सन्नेहमेकरात्रमतोऽन्यथा ।।६८।।
कारस्कराः पुलिन्दाश्च तथाऽऽन्ध्रशबरादयः । पीत्वा चापो भूतिलये गत्वा चैव युगंधराम् ।।६९।।
सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम् । पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः ।।७०।।
शिष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते ।।७१।।
मनोव्यक्तिरथाग्निश्च काले चैवोपलेपनम् । विख्यापनं च शौचानां नित्यमज्ञानमेव च ।।७२।।

मलत्याग करना चाहिए। उस समय सिर को वस्त्रादि से ढँक लेना चाहिए, हाथ से सिर का स्पर्श नहीं करना चाहिए ।।५९।। सूखे हुए तृण से, काष्ठ से, पत्तों से, बाँस के पत्तों से अथवा मिट्टी के बरतन से उस समय पृथ्वी को ढँक देना चाहिए ।।६०।। पुनः चुप रहकर मिट्टी और ऊपर उठाये गये जल से शुद्धि करनी चाहिए। दिन में उत्तरमुख और रात्रि में दक्षिणमुख होकर मलत्याग करना चाहिए ।।६१।। दाहिने हाथ से कमंडलु (जलपात्र) ग्रहण करना चाहिए। मलद्वार को बायें हाथ से तीन बार मिट्टी लगाकर शुद्ध करना चाहिए ।।६२।। बायें हाथ में दस बार मृत्तिका लगाकर अथवा दोनों हाथों में पाँच बार मृत्तिका लगानी चाहिए। पुनः मिट्टी लगाकर पैरों को भलीभाँति स्वच्छकर विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः सूर्य, अग्नि और पवन के उद्देश्य से तीन बार जल त्याग करे ।।६३–६४।। बुद्धिमान् पुरुष को तीर्थ के समीप में सर्वदा कमंडलु रखना चाहिए। इस कमंडलु के जल से पादप्रक्षालन–आदि छोटे–छोटे कार्य भी करने चाहिए। पादप्रक्षालन के उपरान्त आचमन करना चाहिए तदुपरान्त देवकार्य करना चाहिए। अपवित्र हाथ से आचमन और देवकार्य करने पर तीन रात का उपवास कहा गया है ।।६५–६६।। उपवास न करने पर अतिशय कष्ट द्वारा प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। श्वान अथवा चाण्डाल का स्पर्श करके तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिए ।।६७।। मनुष्य की अस्थियों का स्पर्श करने पर उपवास ही शुद्धि का कारण है। स्नेहपूर्वक यह उपवास तीन रात अथवा एक रात का कहा गया है ।।६८।। कारस्कर, पुलिन्द, आन्ध्र, शबर, प्रभृति अपवित्र देशों की यात्रा कर, भूतिलय (स्थान–विशेष) में जलपान कर तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा कर, सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश, दिव्यन्तर के शत नामक देश एवं अन्यान्य पापियों के प्रदेशों की, जहाँ जाने के लिए वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं अथवा जहाँ ऐसे लोगों का सर्वथा अभाव रहता है तथा जहाँ जाने से पाप की वृद्धि होती है, यात्रा करने पर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है ।।६९–७१।। मनोव्यक्ति, अग्नि, समयवश किया हुआ उपलेपन, शौच के लिए निषिद्ध समय, इनके अतिरिक्त जो

अतोऽन्यथा तु यः कुर्यान्मोहाच्छौचस्य संकरम् । पिशाचान्यातुधानांश्च फलं गच्छत्यसंशयम् ।।७३।।
शौचमश्रद्दधानस्य म्लेच्छजातिषु जायते । अयज्ञाश्चैव पापो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ।।७४।।
शौचेन मोक्षं कुर्वाणः स्वर्गवासी भवेन्नरः । शुचिकामा हि देवा वै देवैरेतदुदाहृतम् ।।७५।।
वीभत्समशुचिं चैव वर्जयन्ति सुराः सदा । त्रीणि शौचानि कुर्वन्ति न्यायतः शुभकर्मणः ।।७६।।
ब्राह्मण्यायाऽऽतिथेयाय शौचायुक्ताय धीमते । पितृभक्ताय दान्ताय सानुक्रोशाय च द्विजाः ।।७७।।
तैस्तैः प्रीताः प्रयच्छन्ति पितरो योगवर्धनाः । मनसा काङ्क्षितान्कामांस्त्रैलोक्यप्रभवानिति ।।७८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

अथ नवसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

ऋषय ऊचुः

अहो धीमंस्त्वया सूत श्राद्धकल्पस्तु कीर्तितः । श्रुतो नः श्राद्धकल्पो वै ऋषिभिः परिकीर्तितः ।।१।।
अतीव विस्तरो यस्य विशेषेण प्रकीर्तितः । वद शेषं महाप्राज्ञ ऋषेस्तस्य यथामतम् ।।२।।

अज्ञानवश शौच संस्कार में व्यतिक्रम करते हैं उनके फल पिशाचों और यातुधानों को प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।७२-७३।। जो शौच के आचारों एवं नियमों में अश्रद्धा रखते हैं, वे म्लेच्छ जाति में उत्पन्न होते हैं। जो यज्ञादि को नहीं करते, सर्वदा पाप कर्म में निरत रहते हैं, अथवा तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं, वे भी शौच द्वारा अपने पापों से मुक्त हो स्वर्गवासी होते हैं। देवता लोग पवित्रता के इच्छुक रहते हैं, देवताओं ने ही शौच के ये आचार बतलाये हैं ।।७४-७५।। देवगण सर्वदा वीभत्स आचरण करनेवाले, अपवित्र लोगों को वर्जित रखते हैं। सत्कर्मपरायण लोग न्यायतः सर्वदा तीन शुद्धि करते हैं। हे ऋषिवृन्द ब्राह्मणादि की रक्षा करनेवाले, अतिथिपरायण, पवित्रात्मा, बुद्धिमान् पितरों में भक्ति रखनेवाले, शान्त एवं कृपालु लोगों के योगवर्द्धक पितरगण उनके किये गये सत्कर्मों से प्रसन्न होकर मन से अभिलषित, त्रैलोक्य में प्राप्त होनेवाले समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं ।।७६-७८।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।७८।।

अध्याय ७९

श्राद्धकल्प

ऋषियों ने कहा-परम बुद्धिमान् सूत जी ! ऋषियों द्वारा कहे गये श्राद्धकल्प का वर्णन विशेषतया अति विस्तारपूर्वक तुम कर चुके और हम लोग उसे सुन भी चुके। हे महामति! अब श्राद्ध के विषय में जो कुछ उन ऋषि की शेष बातें हों, उन्हें बतलाइये ।।१-२।।

सूत उवाच

कर्तयिष्यामि ते विप्रा ऋषेस्तस्य मतं तु यत्। श्राद्धं प्रति महाभागास्तन्मे शुणृत विस्तरात् ।।३।।
उक्तं श्राद्धं मया पूर्वं विधिश्च श्राद्धकर्मणि। परिशिष्टं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणानां यथाक्रमम् ।।४।।
न मीमांस्याः सदा विप्राः (*पवित्रं ह्येतदुत्तमम्। दैवे पित्र्ये च सततं श्रूयते वै परीक्षणम् ।।५।।
यस्मिन्दोषाः प्रपश्येरन्सद्भिर्वा वर्जितस्तु यः। जानीयाद्वापि संवासाद्वर्जयेत्तं प्रयत्नतः ।।६।।
अविज्ञातं द्विजं श्राद्धे परीक्षेत सदा बुधः। सिद्धा हि विप्ररूपेण चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।।७।।
तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः) । पूजयेच्चापि पाद्येन पादाभ्यञ्जनभोजनैः ।।८।।
उर्वीं सागरपर्यन्तां देवा योगेश्वरास्तथा। नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ।।९।।
अर्चयित्वा ततो दद्याद्विप्रायातिथये नरः। व्यञ्जनानि च भक्ष्याणि फलं तेषां तथैव च ।।१०।।
अग्निष्टोमं तु पयसा प्राप्नुयाद्वै तथा श्रुतम्। सर्पिषा तु शुभं चक्षुः षोडशाहफलं लभेत् ।।
मधुना त्वतिरात्रस्य फलं च समवाप्नुयात् ।।११।।
तत्प्राप्नुयाच्छ्रद्दधानो नरो वै सर्वैः कामैर्भोजयेद्यस्तु विप्रान् ।।
सर्वार्थदां सर्वविप्रातिथेयः फलं भुङ्क्ते सर्वमेधस्य नित्यम् ।।१२।।

सूत जी ने कहा–हे विप्रगण ! उन ऋषि का श्राद्ध के विषय में जो मत है, उसे बतला रहा हूँ। हे महाभाग्यशालियो ! विस्तारपूर्वक उसे सुनिये ।।३।। पूर्व प्रसंग में श्राद्धकर्म में की जानेवाली श्राद्धीय विधियों का वर्णन मैं कर चुका हूँ, अब ब्राह्मणादि के बारे में जो शेष नियमादि हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ। ब्राह्मण लोग मीमांसा के परे होते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों के विषय में मीमांसा नहीं करनी चाहिए। वे परम पवित्र तथा सभी जातियों में उत्तम हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी देवताओं और पितरों के कार्य में ब्राह्मणों की परीक्षा सर्वदा होती सुनी गयी है ।।४–५।। जिसमें लोग दोष देखते हैं, अथवा सज्जन जिसे अपने समाज से बहिष्कृत रखते हैं, अथवा संसर्ग से जिसके लिए यह मालूम पड़े कि वह कुसंगी है, ऐसे लोगों को प्रयत्नपूर्वक वर्जित रखना चाहिए ।।६।। बुद्धिमान् पुरुष बिना जाने–सुने ब्राह्मण की श्राद्धकर्म में सर्वदा परीक्षा कर ले। सिद्ध लोग ब्राह्मवेश धारणकर इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं, इसलिए द्वार पर अतिथिरूप में आने पर हाथ जोड़कर अगवानी करनी चाहिए। फिर पैर धोने के लिए जल आदि समर्पित कर विधिवत् भोजनादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिए ।।७–८।। योगपरायण देवगण समुद्रपर्यन्त फैली हुई इस विशाल पृथ्वी पर विविधवेश धारणकर धर्मपूर्वक प्रजाओं का पालन करते हुए विचरण करते रहते हैं। विधिवत् पूजा कर लेने के उपरान्त बुद्धिमान् पुरुष अतिथिरूप में आये हुए ब्राह्मण के भोजन के लिए विविध व्यञ्जन एवं फल समर्पित करें ।।९–१०।। ऐसा सुना जाता है कि केवल जल (दूध) देने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है। घृत देने से सुन्दर नेत्र मिलते हैं, और सोलह दिन में सम्पन्न होनेवाले यज्ञ का फल मिलता है। मधु के देने से अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।।११।। जो श्रद्धालु व्यक्ति अपने सभी प्राप्त साधनों द्वारा भक्तिपूर्वक समागत ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सर्वदा समस्त यज्ञों के फल का उपभोग करता है, क्योंकि अतिथिरूप में आये हुए विप्रों का अतिथि–सत्कार सभी मनोरथों को देनेवाला है ।।१२।। जो

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

यस्तु श्राद्धेऽतिथिं प्राप्य दैवे वाऽप्यवमन्यते। तं वै देवा निरस्यंति होता यद्वत्परां वसुम् (?) ।।१३।।
देवाश्च पितरश्चैव वह्निश्चैव हि तान्द्विजान्। आविश्य भुञ्जते तद्वै लोकानुग्रहकारणात् ।।१४।।
अपूजिता दहन्त्येते दद्युः कामांश्च पूजिताः। सर्वस्वेनापि तस्माद्वै पूजयेदतिथीन्सदा ।।१५।।
वानप्रस्थो गृहस्थश्च गृहमभ्यागतोऽथवा। बालाः खिन्ना यतिश्चैव जानीयादतिथीन्सदा ।।१६।।
अभ्यागतो याचकः स्यादतिथिः स्यादयाचकः। अतिथेरतिथिः श्रेष्ठः सोऽतिथिर्योग उच्यते ।।१७।।
न घोरो नापि संकीर्णो नाविद्यो न विशेषवित्। न च संतानसमृद्धो न सेवी नाचरोऽतिथिः ।।१८।।
पिपासिताय श्रान्ताय भ्रान्तायातिबुभुक्षते। तस्मै सत्कृत्य दातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता ।।१९।।
आरुह्य भृगुतुङ्गे तु गत्वा पुण्यां सरस्वतीम्। आपगां तु नदीं पुण्यां गङ्गां देवीं महानदीम् ।।२०।।
हिमवत्प्रभवा नद्यो याश्चान्या ऋषिपूजिताः। +सरस्तीर्थाभिसंवेद्या नदी नववहास्तथा ।।२१।।
गत्वैतान्मुच्यते पापैः स्वर्गे नित्यं महीयते। दशरात्रमशौचं तु प्रोक्तं वै मृतसूतके ।।२२।।
ब्राह्मणस्य विशेषेण क्षत्रिये द्वादशं स्मृतम्। अर्धमासं तु वैश्यस्य मासाच्छूद्रस्तु शुध्यति ।।२३।।

व्यक्ति श्राद्धकर्म में अथवा किसी देवकार्य में आये हुए अतिथि की अवहेलना करता है, उसे देवगण इस प्रकार छोड़ देते हैं, (वंचित रखते हैं) जैसे हवन करनेवाला परावसु (नीचे गिरी हुई आहुति ?) को ।।१३।। लोक के ऊपर अनुग्रह करने के तात्पर्य से देवगण, पितरगण और अग्निदेव इन ब्राह्मणों में आविष्ट होकर श्राद्धादि में भोजन करते हैं ।।१४।। ये अतिथि लोग श्राद्धादि में अपूजित होकर जला देते हैं और पूजित होकर सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं। अतः सर्वदा द्वार पर समागत इन अतिथियों की सर्वस्व लगाकर भी पूजा करनी चाहिए ।।१५।। वानप्रस्थ में रहनेवाले, गृहस्थाश्रम में रहनेवाले, अपने घर पर आनेवाले बालकगण, लोक से उदास रहनेवाले विरागीगण एवं यति इन सबको सर्वदा अतिथि जानना चाहिए ।।१६।। जो किसी वस्तु की याचना करने के लिए अपने द्वार पर आता है वह अभ्यागत है, जो बिना किसी प्रयोजन के आता है वही अतिथि है, अतिथि का अतिथि श्रेष्ठ अतिथि है, वह योगी के समान परम पुण्यदायी कहा जाता है ।।१७।। घोर हृदयवाला न हो, संकीर्ण विचारोंवाला न हो, विद्याविहीन न हो, विशेष जाननेवाला न हो, अधिक संततियों से समन्वित न हो, सेवक न हो, जड़ हो, वही सच्चा अतिथि है ।।१८।। यज्ञ के फल की अभिलाषा करनेवाले को चाहिए कि पिपासाकुलित, थके हुए, भूल-भटके और भूखे अतिथि को सत्कारपूर्वक भोजनादि दें ।।१९।। भृगुतुंग पर अरोहणकर पुण्यसलिला सरस्वती की यात्राकर, परम-पुण्यमयी देवनदी गंगा तथा महानदी की यात्राकर एवं अन्यान्य हिमालय से निकलनेवाली नदियाँ, जिनकी पूजा ऋषि लोग भी किया करते हैं तथा अन्य जितने सरोवर, तीर्थ एवं पुण्यप्रद नदियाँ हैं, उन सब की यात्राकर मनुष्य अपने पाप कर्मों से छुटकारा पाते हैं और सर्वदा स्वर्गलोक में पूजित होते हैं ।।२०-२१।। किसी की मृत्यु हो जाने पर विशेषतया ब्राह्मण को दस रात का अशौच लगता है। क्षत्रिय को बारह रात का कहा जाता है, वैश्य पन्द्रह दिनों तक तथा शूद्र एक मास तक शुद्ध होता है। सभी जातिवालों की ऋतुमती स्त्रियाँ तीन रात में शुद्ध होती हैं। ऋतुमती, सूतिका, श्वान, चाण्डाल, नंगे एवं मुर्दों के ढोनेवालों को स्पर्शकर शुद्धि करनी चाहिए।

+ नास्तीदमर्धं घ. पुस्तके।

उदक्या सर्ववर्णानां त्रिरात्रेण तु शुध्यति । उदक्यां सूतिकां चैव श्वानमन्त्यावसायिनम् ।।२४।।
नग्नादीन्मृतहारांश्च स्पृष्ट्वाऽशौचं विधीयते । स्नात्वा सचैलो मृद्भिस्तु द्वादशभिस्तु शुध्यति ।।२५।।
एतदेव भवेच्छौचं मैथुने वमने तथा । मृदा प्रक्षाल्य हस्तौ तु कुर्याच्छौचविधिं नरः ।।२६।।
प्रक्षाल्य चाद्भिर्हस्तौ च स्नात्वा चैव मृदा पुनः । मृदं गुह्ये ततो द्विस्तु पुनरेव मृदं बुधः ।।२७।।
एवं शौचविधिर्दुष्टः सर्ववर्णेषु नित्यदा । परिदद्यान्मृदस्तिस्त्रो हस्तपादावसेचनम् ।।२८।।
आरण्यं शौचमेतत्तु ग्राम्यं वक्ष्याम्यतः परम् । मृदस्तिस्त्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्त्र एव च ।।२९।।
मृदः पञ्चदशामेध्ये हस्तादीनां विभागशः । अनिर्णिक्ते मृदं दद्यान्मृदन्ते त्वद्भिरेव तु ।।३०।।
कण्ठं शिरो वा प्रावृत्य रथ्यापादगतस्तु वा । अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ।।३१।।
प्रक्षाल्य पात्रं निक्षिप्य आचम्याभ्युक्षणं पुनः । द्रव्यस्यान्यस्य तु तथा कुर्यादभ्युक्षणं पुनः ।।३२।।
पुष्पादीनां तृणानां च प्रोक्षणं हविषां तथा । पराहतानां द्रव्याणां निधायाभ्युक्षणं तथा ।।३३।।
नाप्रोक्षितं हरेत्किंचिच्छ्राद्धे दैवे तथा पुनः । उत्तरेणाऽऽहरेद्वेद्यां दक्षिणेन विसर्जयेत् ।।३४।।
*विच्छिन्नं स्याद्विपर्यासे दैवे पित्र्ये तथैव च । दक्षिणेन तु हस्तेन दक्षिणां वेदिमालिखेत् ।।३५।।

मृत्तिका से वस्त्रों समेत बारह बार स्नान करने से शुद्धि होती है ।।२२–२५।। यही विधि मैथुन और वमन के उपरान्त भी विहित है। मिट्टी से दोनों हाथों को धोकर मनुष्य को शौच करना चाहिए ।।२६।। बुद्धिमान् पुरुष जल से दोनों हाथों को धोकर पुनः मिट्टी से स्नान करे, फिर दो बार गुह्य (गोपनीय) स्थान पर मृत्तिका लगाकर फिर एक बार मृत्तिका लगावे। सभी जातियों के लिए शौच के वही नियम सर्वदा देखे गये हैं। तीन बार मृत्तिका लेकर हाथ और पैर को धोना चाहिए। यही नियम वानप्रस्थियों के लिए है, अब इसके उपरान्त ग्राम्य (गृहस्थाश्रमी) लोगों के लिए जो शौच के नियम हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। तीन बार दोनों पैरों में तथा तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी चाहिए ।।२७–२९।। हाथ आदि अपवित्र स्थानों में विभाग करके पन्द्रह बार मृत्तिका लगानी चाहिए। अपवित्र स्थानों में मिट्टी लगाकर शुद्धि करने के उपरान्त जल से सफाई करनी चाहिए ।।३०।। कण्ठ और सिर को आवृतकर सड़क पर पैदल चलने पर भी पैरों को पवित्र करना चाहिए। बिना पैर धोकर जल का आचमन करनेवाला भी अशुचि रहता है ।।३१।। हाथ, पैर आदि धोकर जलपात्र रखकर पुनः आचमन करे फिर श्राद्ध सम्बन्धी या यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं के ऊपर जल का छींटा दे ।।३२।। पुष्प, तृण एवं हवनीय द्रव्यादि जितनी भी वस्तुएँ हों, उन सबका सिंचन करे। इसी प्रकार दूसरों द्वारा लाये गये द्रव्यों को रखकर उनके ऊपर भी जल छिड़कना चाहिए। श्राद्ध कर्म में तथा दैवकार्य में बिना जल से सेवन किये कोई भी वस्तु काम में न लानी चाहिए। वेदी में उत्तर दिशा की ओर से वस्तुएँ लानी चाहिए और दक्षिण दिशा में विसर्जन करना चाहिए ।।३३–३४।। दैवकार्य एवं पितरकार्य में परस्पर समानता नहीं होती, उसमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहता। दक्षिण वेदी को दाहिने हाथ से रेखाङ्कित करना चाहिए। देवताओं और पितरों–दोनों के यज्ञादि कार्यों में दोनों हाथों से विकिरण (छीटना) करना कल्याणदायी कहा गया है। क्षुधा से तथा नींद से पीड़ित, मूत्र एवं मल त्याग करनेवाले,

---

* इदमर्धं नास्ति ख. ग. पुस्तकयोः।

कराभ्यामेव देवानां पितृणां विकरं (?) शुभम्। क्षुभितस्वप्नयोश्चैव तथा मूत्रपुरीषयोः ।।३६।।
निष्ठीविते तथा व्यक्ते भुक्त्वा विपरिधाय च। उच्छिष्टस्य च संस्पर्शे तथा पादावसेचने ।।३७।।
उत्सृष्टस्य सुसंभाषे ह्यशुचिं (?) प्रयतस्य च। संदेहेषु च सर्वेषु शिखां मुक्त्वा तथैव च ।।३८।।
विना यज्ञोपवीतेन मोहात्तु यद्युपस्पृशेत्। ओष्ठस्य दन्तसंस्पर्शे दर्शने चान्त्यवासिनाम् ।।३९।।
जिह्वया चैव संस्पृश्य दन्तासक्तं तथैव च। सशब्दमङ्गुलीभिश्च प्रणतश्चावलोकयन् ।।४०।।
यश्चाधर्मे स्थितो मोहादाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्। उपविश्य शुचौ देशे प्रणतः प्रागुदङ्मुखः ।।४१।।
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ तु अन्तर्जानुरुपस्पृशेत्। प्रसन्नास्त्रिः पिबेच्चापः प्रयतः सुसमाहितः ।।४२।।
द्विरेव मार्जनं कुर्यात्सकृदभ्युक्षणं ततः। खानि मूर्धानमात्मानं हस्तौ पादौ तथैव च ।।४३।।
अभ्युक्षणं तथा तस्य यद्यमीमांसितं भवेत्। एवमाचमनं तस्य वेदा यज्ञास्तपांसि च ।।४४।।
दानानि ब्रह्मचर्यं च भवन्ति सफलास्तथा। क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः ।।४५।।
भवन्ति च वृथा तस्य क्रिया ह्येता न संशयः। वाग्भावशुद्धनिर्णिक्तमदुष्टं वाऽप्यनिन्दितम् ।।४६।।
मेध्यान्येतानि ज्ञेयानि दुष्टमेभ्यो विपर्ययः। न वक्तव्यः सदा विप्रः क्षुधितो नास्ति किंचन ।।४७।।
तस्मै सत्कृत्य यो दद्यादयूपो यज्ञ उच्यते। अप्लुष्टान्नं शृतान्नं तु कृशवृत्तिमयाचकम् ।।४८।।

थूकनेवाले–ये सभी अपवित्र रहते हैं। इसी प्रकार भोजनकर, वस्त्रादि धारणकर, जूठे पदार्थ को स्पर्शकर, पैर को अच्छी तरह न धोकर, अज्ञानवश बिना यज्ञोपवीत के ही कुछ भोजनादि वस्तुओं का स्पर्शकर, दाँत से होंठों का स्पर्शकर, चाण्डालादि का दर्शनकर, दाँत में लगी हुई वस्तुओं का जीभ से स्पर्शकर, शब्द करती हुई उँगलियों से तथा ताकते हुए प्रणामकर, अज्ञानवश किसी अधर्म भावना में निरत रहकर आचमन करने पर भी अपवित्र रहता है, अतएव उसे चाहिए कि किसी पवित्र स्थान पर बैठकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुखकर विनम्र होकर हाथों और पैरों को धोकर घुटनों के बीच में हाथों को रखकर स्वस्थ चित्त हो बैठे और तब यज्ञादि की वस्तुओं का स्पर्श करे। उस समय इन्द्रियों को वश में रख सावधान होकर तीन घूँट निर्मल जल पान करे, दो बार मार्जनकर एक बार वस्तुओं का सेचन करे। फिर अपने खानि–आँख, कान, सिर, हाथ, पैर आदि का जल से सेचन करे ।।३५–४३।। इसी प्रकार उन अन्यान्य अंगों का भी सेचन करना चाहिए, जिनकी पवित्रता के विषय में कोई मीमांसा न हो। तदुपरान्त आचमन करना चाहिए, जो इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करते हैं, उनके वेदाध्ययन, यज्ञ, तपस्या, दान, ब्रह्मचर्य–सभी सफल होते हैं। जो नास्तिक व्यक्ति बिना आचमन किये सत्क्रियाओं को करने लगते हैं, उनकी सारी क्रिया नष्ट हो जाती है–इसमें सन्देह नहीं। वचन से शुद्ध, पुनीत अथवा सभी विधियों से सुसम्पन्न, दोषादि रहित एवं अनिन्दित जो क्रियाएँ होती हैं वे पवित्र मानी गयी हैं, जो इनके विपरीत हैं, वे अपवित्र तथा दोषपूर्ण हैं ।।४४–४६$\frac{१}{२}$।। क्षुधा से पीड़ित ब्राह्मण को कभी कुछ न कहना चाहिए, उसे सत्कारपूर्वक उस अवस्था में जो कुछ दे दिया जाता है वह बिना यज्ञ स्तम्भ के ही एक यज्ञ है, अर्थात् वह भी एक यज्ञ के समान फलदायी है। श्राद्धादि में सर्वदा कठिनता से जीविका उपार्जित करनेवाले, किन्तु अयाचक, एकान्त प्रेमी, लज्जावान् ब्राह्मण को खूब पके हुए अन्न का भोजन कराना चाहिए, वह अन्न सड़ा हुआ अथवा जला-

एकान्तशीलं ह्रीमन्तं सदा श्राद्धेषु भोजयेत् । यो ददात्यन्तिमेभ्यश्च स ब्रह्मघ्नो दुरात्मवान् ।।४९।।
अपि जातिशतं गत्वा न स मुच्येत किल्विषात् । विषमं भोजयेद्विप्रानेकपङ्क्त्यां च यो नरः ।।५०।।
नियुक्तो वाऽनियुक्तो वा पङ्क्त्या हरति दुष्कृतम् । पापेन गृह्यते क्षिप्रमिष्टापूर्तं च नश्यति ।।५१।।
यतिस्तु सर्वविप्राणां सर्वेषामग्रय उत्सवे । इतिहासपञ्चमान्वेदान्यः पठेत्तु द्विजोत्तमः ।।५२।।
अनन्तरं यथायोग्यं नियोक्तव्यो विजानता । त्रिवेदोऽनन्तरस्तस्य द्विवेदस्तदनन्तरः ।।५३।।
एकवेदस्तथा पश्चान्न्यायाध्यायी ततः परम् । पावना ये च पङ्क्त्या वै तान्प्रवक्ष्ये निबोधत ।।५४।।
य एते पूर्वनिर्दिष्टाः सर्वे ते ह्यनुपूर्वशः । षडङ्गी विनयी योगी सर्वतन्त्रस्तथैव च ।।५५।।
यायावरश्च पञ्चैते विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । अष्टादशानां विद्यानामेकः स्यात्पारगोऽपि यः ।।५६।।
यथावद्वर्तमानश्च सर्वे ते पङ्क्तिपावनाः । त्रिनाचिकेतस्त्रैविद्यो यश्च धर्मान्पठेद्द्विजः ।।५७।।
बार्हस्पत्ये तथा शास्त्रे पारं यश्च द्विजो गतः । सर्वे ते पावना विप्राः पङ्क्तीनां समुदाहृताः ।।५८।।
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे योषितं सेवते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं तस्य रेतसि शेरते ।।५९।।

भुना हुआ न हो। जो व्यक्ति श्राद्धादि कार्यों में चाण्डाल आदि अन्त्यज जातियों को भोजन कराता है, वह ब्रह्महत्यारा एवं दुरात्मा है, सैकड़ों जन्म लेने पर भी वह पाप से छुटकारा नहीं पाता। जो मनुष्य एक ही पाँत में कुछ उच्च एवं कुछ नीच ब्राह्मणों को बिठाकर भोजन कराता है, वह चाहे उस कर्म के लिए नियुक्त हो अथवा न नियुक्त हो, पाप का भागी होता है, उसके बावली, कूप, तड़ाग, बगीचे आदि लगाने के पुण्य इस पंक्ति पाप से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।।४७–५१।। सभी कामों में वीतराग संन्यासी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कहे गये हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण चारों वेद तथा पाँचवें वेद रूप इतिहास (महाभारत) का पाठ करता है उसे संन्यासी के बाद पण्डितों को चाहिए कि श्राद्धादि में यथायोग्य स्थान पर नियुक्त करें। इसके उपरान्त तीन वेदों के अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को नियुक्त करे। उसके बाद दो वेदों के अध्यायी को नियुक्त करे ।।५२–५३।। उसके बाद एक वेद के अभ्यासी को, सबके बाद न्याय (तर्कशास्त्र) के अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण को श्राद्धादि में नियुक्त करना चाहिए। अब पंक्ति से पवित्र पंक्तिपावन जो ब्राह्मण कहे गये हैं, उनके बारे में बतला रहा हूँ, सुनिये ।।५४।। जो ये पूर्व प्रसंग में कहे गये ब्राह्मण हैं, वे क्रमशः श्राद्धादि के लिए जानने चाहिए। वेद के छहों अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) के अध्ययन करनेवाले, विनयी, योगपरायण, सभी शास्त्रों में स्वतन्त्र विचार रखनेवाले एवं सर्वदा गमन करनेवाले अर्थात् किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर निवास न करनेवाले–इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों को पंक्तिपावन समझना चाहिए। अठारहों विद्याओं में से, जो एक में भी पारङ्गत हो, वह भी पंक्तिपावन है ।।५५–५६।। इसके उपरान्त ये सब भी पंक्तिपावन हैं, जैसे त्रिनाचिकेत (नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्ययन करनेवाले), तीनों विद्याओं के जाननेवाले, धर्मशास्त्र के अध्ययन करनेवाले द्विज भी पंक्तिपावन कहे गये हैं ।।५७।। इसके अतिरिक्त बृहस्पति के शास्त्र में जो पारंगत विद्वान् हैं, वे भी पंक्तिपावन हैं–इस प्रकार ये उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन कहे गये हैं ।।५८।। जो ब्राह्मण किसी के श्राद्धकर्म में आमंत्रित होकर स्त्री के साथ समागम करता है, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उनके वीर्य पर शयन करते हैं ।।५९।। श्राद्ध देकर तथा श्राद्ध में भोजन कर जो ब्राह्मण मैथुन कर्म करते हैं, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उसी वीर्य पर अवस्थित होते हैं–

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं यो निषेवते। पितरस्तस्य तं मासं रेतःस्था नात्र संशयः ।।६०।।
तस्मादतिथये देयं भोजयेद्ब्रह्मचारिणम्। ध्याननिष्ठाय दातव्यं सानुक्रोशाय धार्मिकम् ।।६१।।
यतिं वा बालखिल्यान्वा भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि। वानप्रस्तोपकुर्वाणः पूजामात्रेण तोषितः ।।६२।।
गृहस्थं भोजयेद्यस्तु विश्वेदेवास्तु पूजिताः। वानप्रस्थेन ऋषयो बालखिल्यैः पुरंदरः ।।६३।।
यतीनां पूजने चापि साक्षाद्ब्रह्मा तु पूजितः। आश्रमाः पावनाः पञ्च उपधाभिरनाश्रमाः ।।६४।।
चत्वार आश्रमाः पूज्याः श्राद्धे दैवे तथैव च। चतुराश्रमबाह्येभ्यः श्राद्धं नैव प्रदापयेत् ।।६५।।
स तिष्ठेद्वा बुभुक्षुस्तु चतुराश्रमबाह्यतः। अयतिर्मोक्षवादी च उभौ तौ पङ्क्तिदूषकौ ।।६६।।
वृथामुण्डाश्च जटिलाः सर्वे कार्पटिकास्तथा। निर्घृणान्भिन्नवृत्तांश्च सर्वभक्षान्विवर्जयेत् ।।६७।।
कारुकादीननाचारान्सर्ववेदबहिष्कृतान्। गायनान्देववृत्तांश्च हव्यकव्येषु वर्जयेत् ।।६८।।

इसमें सन्देह नहीं ।।६०।। इसीलिए श्राद्धकर्त्ता को चाहिए कि श्राद्धादि में दान अतिथि को दे, भोजन ब्रह्मचारी ब्राह्मण को कराये, इसके अतिरिक्त जो ध्यानपरायण (योगाभ्यासी) तथा दयालु हो उसे धर्म की मर्यादा रक्षा के लिए दान करे ।।६१।। श्राद्धकर्म में वीतराग संन्यासियों को अथवा बालखिल्यों (जो नये अन्न के प्राप्त कर लेने पर पूर्व संचित का त्याग कर देते हैं, अर्थात् जिन्हें जीविका आदि के लिए कोई चिन्ता नहीं रहती) को खिलाना चाहिए। वानप्रस्थ में रहनेवाला केवल पूजा मात्र में सन्तुष्ट और उपकृत होता है ।।६२।। जो श्राद्धकर्म में किसी गृहस्थ आश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसने मानो विश्वेदेवों की पूजा की है। इसी प्रकार वानप्रस्थ में रहनेवाले के सन्तुष्ट होने पर ऋषियों को सन्तुष्ट समझना चाहिए। बालखिल्यों के सन्तुष्ट होने पर इन्द्र को सन्तुष्ट समझना चाहिए ।।६३।। यतियों के पूजित होने पर तो मानो साक्षात् भगवान् ब्रह्मा पूजित होते हैं। अपनी-अपनी उपाधियों से पाँच आश्रम पवित्र माने गये हैं, इनके अतिरिक्त कोई अन्य आश्रम नहीं है ।।६४।। पितरों के श्राद्ध कार्य में तथा देवकार्यों में केवल चार आश्रमों की पूजा होती है। इन चारों आश्रमों से बहिर्भूत जो हों, उन्हें श्राद्धादि में कुछ भी नहीं देना चाहिए ।।६५।। जो इन चारों आश्रमों से बहिष्कृत हो, वह भले भूख से मरे, किन्तु श्राद्धादि कर्मों से बाहर ही रहे। जो यति नहीं है, और जो केवल मोक्ष की चर्चा करता है, वे दोनों पंक्तिदूषक हैं ।।६६।। व्यर्थ में लोगों को भ्रम में डालने के लिए जटा रखानेवाले, भाँति-भाँति के चिथड़े-गुदड़ी आदि लपेटकर साधुता प्रदर्शित करनेवाले, निर्मम, भिन्न-भिन्न आचार-विचारवाले तथा सर्वभक्षी (भक्ष्याभक्ष्य में कोई विवेक न रखनेवाले)-इन सबको श्राद्धादि में वर्जित रखना चाहिए ।।६७।। शिल्पकर्म (कारीगरी) आदि नीच वृत्ति द्वारा जीविका निर्वासित करनेवाले, अनाचारी (आचारविहीन), सभी वेदों से बहिष्कृत, गायन-वादन आदि द्वारा जीविका चलानेवाले, देवताओं के चरित्र का अनुकरण (रामलीला आदि में राम-लक्ष्मण आदि का अभिनय) करनेवाले ब्राह्मणों को हवन एवं श्राद्ध आदि में विवर्जित रखना चाहिए। द्विजों में भी नित्य श्राद्ध आदि में भोजन करनेवाले को भी-श्राद्ध में वर्जित रखना चाहिए। जो नित्य श्राद्धादि में भोजन करके ही जीविका चलाता है वह श्यामल वर्ण का हो जाता है; इसी प्रकार जो शूद्र के साथ भोजन करता है वह नीच है-ये ऊपर कहे गये ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं ।।६८-

*द्विजेष्वपि कृतं नित्यं श्राद्धकर्माणि वर्जयेत् । एतेषु वर्तते यश्च कृष्णवर्णं स गच्छति ।।
योऽश्नाति सह शूद्रेण सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ।।६९।।
व्यापादनं शक्तिनिबर्हणं कृषिर्वाणिज्यकार्यं पशुपालनं च ।।
शुश्रूषणं वाऽप्यगुरोरहो वा कार्यं नैतद्विद्यते ब्रह्मणस्य ।।७०।।
ये तु विप्राः स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा । मिथ्यासंकल्पिनः सर्वे दुर्वृत्ता वा द्विजातयः ।।७१।।
मिथ्यातत्त्वविदो वर्ज्यास्तथा दाम्भिकसूचकाः । उपपातकसंयुक्ताः पातकैश्च विशेषतः ।।७२।।
वेदे नियोगदातारो लोभमोहफलार्थिनः । ब्रह्मविक्रयिणश्चैव श्राद्धकर्मणि वर्जिताः ।।७३।।
न नियोगोऽस्ति वेदानां यो नियुङ्क्ते स पापकृत् । भोक्ता वेदफलाद्भ्रश्येद्दाता दानफलात्तथा ।।७४।।
भृतोऽध्यापयते यस्तु भृतकाध्यापितस्तु यः । नार्हतस्तावपि श्राद्धं ब्राह्मणः क्रयविक्रयी ।।७५।।
क्रयविक्रयिणौ चैव जीवितार्थं विगर्हितौ । वृत्तिरेषा तु वैश्यस्य ब्राह्मणस्य तु पातकम् ।।७६।।
प्राहुर्वेदान्वेदविदो वेदान्यश्चोपजीवति । उभौ तौ नार्हतः श्राद्धं पुत्रिकापतिरेव च ।।७७।।

६९।। जीवहिंसा, बलवान् होकर केवल जीव मारने आदि में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना, कृषिकर्म, वाणिज्य, पशुपालन, बिना गुरु के किसी अन्य की शुश्रूषा आदि करना–ये सब कार्य ब्राह्मण के लिए नहीं हैं ।।७०।। जो नित्य ज्ञान एवं ध्यान में रहकर अपने जीवन बिताते हैं वे ही ब्राह्मण हैं। इनके विपरीत जो मिथ्या संकल्प करनेवाले, दुर्व्यवहार करनेवाले, मिथ्या तत्त्वों के जाननेवाले, दम्भी, चुगुलखोर, छोटे-मोटे पापकर्मों में लगे रहनेवाले अथवा महान् पातकी ब्राह्मण हैं, वे श्राद्धादि में वर्जित हैं ।।७१-७२।। वेदवाक्यों में अपनी आज्ञा देनेवाले अर्थात् वेदवाक्यों में मनमानी करनेवाले, लोभ और अज्ञानवश फल की आशा करनेवाले, ब्रह्म (विद्या) का विक्रय करनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं ।।७३।। वेदवाक्यों में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है, जो उनमें अपनी आज्ञा लगाता है, वह पातकी है। ऐसे लोगों को श्राद्धकर्म में जो दान करता है वह दान के फल से भ्रष्ट (वंचित) रहता है। और जो भोजन करता है वह वेदाध्ययन के फल से भ्रष्ट (वंचित) रहता है। जो जीविका (रुपया आदि) लेकर किसी को पढ़ाता है और जो जीविका आदि लेकर पढ़ानेवाले अध्यापक से पढ़ता है–ये दोनों भी श्राद्धादि कर्म में प्रवेश पाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ही विद्या के क्रय और विक्रय करने रूप अपराध के अपराधी हैं। जीविका के लिए विद्या का क्रय-विक्रय करना गर्हित है, यह वैश्यों की वृत्ति है, ब्राह्मण के लिए तो यह पातक है ।।७४-७६।। जो सामान्य कथाओं की भाँति वेदवाक्यों को कहता है और जो वेदों का जाननेवाला, जीविका के लिए वेदों का पाठ आदि करता है–वे दोनों ही श्राद्धकर्म के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार पुत्री का पति अर्थात् जामाता भी श्राद्धकर्म में नियुक्त करने योग्य नहीं है ।।७७।। जो व्यर्थ में स्त्री के साथ समागम करता है, और जो व्यर्थ में ही यज्ञ में हवन करता है, वे दोनों भी श्राद्ध

---

* इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकेषु।

वृथा दारांश्च यो गच्छेद्यो यजेत वृथाऽध्वरे। नार्हतस्तावपि श्राद्धं द्विजो यश्चैव नास्तिकः ।।७८।।
आत्मार्थं यः पचेदन्नं न देवातिथिकारकम्। नार्हतस्तावपि श्राद्धं पतितौ ब्रह्मराक्षसौ ।।७९।।
स्त्रियो नक्तपरा येषां परदाररताश्च ये। अर्थकामरताश्चैव न ताञ्श्राद्धेषु भोजयेत् ।।८०।।
वर्णाश्रमाणां धर्मेषु विरुद्धाः श्राद्धकर्माणि। स्तेनश्च सर्वयाजी च सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ।।८१।।
यश्च शूकरवद्भुङ्क्ते यश्च पाणितले द्विजः। न तदश्नन्ति पितरो यश्च वामं समश्नुते ।।८२।।
स्त्रीशूद्रायानुपेताय श्रद्धोच्छिष्टं न दापयेत्। यो दद्याद्रागमोहात्तु न तद्गच्छेत्पितृन्सदा ।।८३।।
तस्मान्न देयमुच्छिष्टमन्नाद्यं श्राद्धकर्मणि। अन्यत्र दधिसर्पिर्भ्यां शिष्ये पुत्राय नान्यथा ।।८४।।
अनुच्छिष्टं तु दातव्यं अन्नाद्यं वै विशेषतः। पुष्पमूलफलैर्वाऽपि तुष्टिं गच्छन्ति चान्नतः ।।८५।।
यावन्त्यन्नानि पूतानि यावदुष्णं न मुञ्चति। तावदश्नन्ति पितरो यावदश्नन्ति वाग्यताः ।।८६।।
दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च। साङ्गुष्ठेन तथा कार्यं नासुरेभ्यो यथा भवेत् ।।८७।।
एतान्येव च सर्वाणि दानादीनि विशेषतः। अन्तर्जान्वविशेषेण तद्वदाचमनं भवेत् ।।८८।।
मुण्डाञ्जटिलकाषायाञ्श्राद्धकालेऽपि वर्जयेत्। शिखिभ्यो वा त्रिदण्डिभ्यः श्राद्धं यत्नात्प्रदापयेत् ।।८९।।

के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार नास्तिक द्विज भी श्राद्ध का अधिकारी नहीं हैं ।।७८।। जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है, और जो देवताओं और अतिथियों के लिए कुछ भी नहीं रखता, वे दोनों ही श्राद्ध के लिए अनुपयुक्त हैं, ऐसे ब्राह्मण पतित और ब्रह्मराक्षस हैं। जिनकी स्त्रियाँ रात्रि में पर पुरुषों के साथ व्यभिचार करती हैं, अथवा जो दूसरे की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं, जो अर्थ एवं काम में सर्वथा लोलुप रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में भोजन नहीं करना चाहिए ।।७९।। वर्णाश्रम की मर्यादा, धर्म एवं श्राद्धकर्म के विरोधी, चोरी करनेवाले, सब किसी से यज्ञ करानेवाले, या बिना विचार के सब कुछ यज्ञ में करनेवाले ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं ।।८०-८१।। जो ब्राह्मण सुअर की तरह भोजन करता है, हथेली पर खाता है, अथवा बायें हाथ से खाता है, उसका दिया हुआ पितरगण नहीं खाते। श्राद्ध से बची हुई भोजनादि वस्तुएँ स्त्री को तथा ऐसे शूद्र को, जो अनुचर न हो, नहीं देनी चाहिए। जो अज्ञानवश इन्हें दे देता है, उसका दिया हुआ श्राद्ध पितरों को नहीं प्राप्त होता। इसलिए श्राद्धकर्म में जूठे बचे हुए अन्नादि पदार्थों को किसी को नहीं देना चाहिए। दूसरे कार्यों में दही और घृत को मिश्रित कर शिष्य और पुत्र को देना चाहिए अन्यथा नहीं ।।८२-८४।। विशेषतया बिना जूठे हुए अन्नादि को देना चाहिए। पुष्प, मूल और फलों से जिस प्रकार पितरगण तृप्त होते हैं उसी प्रकार अन्न से भी तृप्त होते हैं। जब तक अन्न उष्ण रहता है, तभी तक वह पवित्र रहता है अर्थात् ठंडा हो जाने पर अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मण लोग जब तक चुपचाप इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करते हैं तभी तक पितरगण भोजन करते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों को चुपचाप सावधानीपूर्वक इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करना चाहिए ।।८५-८६।। दान, दान का अंगीकार, हवन, भोजन, बलि-इन सबको अँगूठे के साथ सम्पन्न करना चाहिए, जिससे असुरों के लिए वह न हो जाय। श्राद्ध कर्म में विशेषतया ये उपर्युक्त दानादि करने चाहिए। साधारणतया घुटनों के भीतर हाथ करके आचमन करना चाहिए ।।८७-८८।। श्राद्ध काल में भी मुण्डित सिरवाले, जटा रखनेवाले काषायवस्त्रधारी को वर्जित रखना चाहिए। यत्नपूर्वक शिखारी और त्रिदण्डी (मन, वचन और शरीर के दंड को धारण करनेवाला, एक प्रकार का संन्यासी) को श्राद्ध प्रदान करना चाहिए। जो ब्राह्मण नित्य व्रतपरायण रहते हैं, ज्ञानार्जन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास

ये तु व्रते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा। देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शनादपि ।।९०।।
सर्वं योगेश्वरैर्व्याप्तं त्रैलोक्यं वै निरन्तरम्। तस्मात्पश्यन्ति ते सर्वं यत्किंचिज्जगतीगतम् ।।९१।।
व्यक्ताव्यक्तं वशीकृत्य सर्वस्यापि च यत्परम्। सदसच्चेति यैर्दृष्टं सदसच्च महात्मनाम् ।।९२।।
सर्वज्ञानानि दृष्टानि मोक्षादीनि महात्मनाम्। तस्मात्तेषु सदा सक्तः प्राप्नोत्यनुपमं शुभम् ।।९३।।
ऋचो हि यो वेद स वेद वेदान्यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ।।
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मानसं वेद स वेद सर्वम् ।।९४।।
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे ब्रह्मणपरीक्षणं नाम नवसप्ततितमोऽध्यायः ।।७९।।

अथाशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे दानफलम्

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च। तारणं सर्वभूतानां स्वर्गमार्गं सुखावहम् ।।१।।
लोके श्रेष्ठतमं स्वर्ग्यमात्मनश्चापि यत्प्रियम्। सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना ।।२।।

में निरत रहते हैं, देवता में भक्ति रखते हैं, आत्मा से महान् होते हैं–वे दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ।।८९–९०।। यह समस्त चराचर जगत् योगपरायण महात्माओं से निरन्तर व्याप्त रहता है, इसीलिए वे इस जगतीतल में जो कुछ होता है, उसे देखते हैं। व्यक्त, अव्यक्त, सबसे परे जो कुछ पदार्थ हैं उन सबको वे वश में रखते हैं। सत् असत् जो कुछ भी भाव या पदार्थ हैं उनके देखे हुए हैं, महात्मा पुरुषों के लिए सत् असत् सभी पदार्थ वशीकृत हैं ।।९१–९२।। महात्माओं के लिए निश्चित मोक्षादि एवं समस्त ज्ञान उनके अधिकृत रहते हैं। इसलिए उन योगपरायण महापुरुषों में आसक्ति (प्रेम) रखनेवाला परम कल्याण का भाजन होता है। जो ऋग्वेद को जानता है, वह सभी वेदों को जानता है, जो यजुर्वेद को जानता है वह समस्त यज्ञों का जाननेवाला है, जो सामवेद जानता है, वह पूर्णब्रह्मज्ञानी है, जो मानस (?) जानता है वह सब कुछ जानता है ।।९३–९४।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प में ब्राह्मण परीक्षा नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।७९।।

अध्याय ८०

श्राद्ध में दान के फल

बृहस्पति ने कहा–अब इसके उपरान्त पुनः दान और उसके फलों को बतला रहा हूँ। सभी जीवों के उद्धार करनेवाले, स्वर्गमार्ग में सुख देनेवाले, लोक में सर्वश्रेष्ठ, स्वर्ग प्रदान करनेवाले, अपने को विशेष प्रिय लगनेवाले पदार्थों को अक्षय तृप्ति के लिए उन पितरों को देना चाहिए ।।१–२।। श्राद्धादि में अन्न का दान करनेवाला मनुष्य सुवर्ण के बने

जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् । दिव्याप्सरोभिः संकीर्णमन्नदो लभते फलम् ।।३।।
आच्छादनं तु यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि । आयुः प्रकाममैश्वर्यं रूपं च लभते सुतम् ।।४।।
उपवीतं तु यो दद्याच्छ्राद्धकालेषु धर्मवित् । पानं च सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य यत्फलम् ।।५।।
कृतं विप्रेषु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् । मधुक्षीरस्त्रवा धेनुर्दातारमुपतिष्ठति ।।६।।
चक्राविद्धं तु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् । धेनुं स लभते दिव्यां पयोदां काम्यदोहिनीम् ।।७।।
पूर्णशय्यां तु यो दद्यात्पुष्पमालाविभूषिताम् । प्रासादो ह्युत्तमो भूत्वा गच्छन्तमनुगच्छति ।।८।।
भवनं रत्नसंपूर्णं सशय्यासनभोजनम् । श्राद्धे दत्त्वा यतिभ्यस्तु नाकपृष्ठे स मोदते ।।९।।
मुक्तावैदूर्यवासांसि रत्नानि विविधानि च । वाहनानि च दिव्यानि अयुतान्यर्बुदानि च ।।१०।।
सुमहज्ज्वलनप्रख्यं रत्नकामसमन्वितम् । सूर्यचन्द्रनिभं दिव्यं विमानं लभतेऽक्षयम् ।।११।।
अप्सरोभिः परिवृतं कामगं तु मनोजवम् । वसते स विमानाग्र्ये स्तूयमानः समन्ततः ।।१२।।
*दिव्यैर्गन्धैः प्रसिञ्चन्ति पुष्पवृष्टिभिरेव च । गन्धर्वाप्सरसस्तत्र गायन्ते वादयन्ति च ।।१३।।
कन्या युवतयो मुख्याः सहिताश्चाप्सरोगणैः । सुस्वरैस्ते विबुध्यन्ते सततं हि मनोरमैः ।।१४।।

हुए, सूर्य के समान चमकते हुए, दिव्य सौन्दर्यशालिनी अप्सराओं से भरे हुए दिव्य विमान को प्राप्त करता है ।।३।। जो मनुष्य श्राद्धकर्म में बिना फटा हुआ ओढ़ने का वस्त्र प्रदान करता है, वह दीर्घायु, ऐश्वर्य, सुन्दरता तथा पुत्र की प्राप्ति करता है ।।४।। जो धर्मात्मा मनुष्य श्राद्धकर्म में यज्ञोपवीत का दान करता है तथा सभी समागत ब्राह्मणों को सुन्दर जलपान कराता है उसे ब्रह्म (विद्या) दान का फल प्राप्त होता है ।।५।। जो मनुष्य श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों के लिए सुन्दर कमण्डलु का दान करता है, उस दाता के लिए मधु के समान मीठा दूध देनेवाली गौ नियुक्त रहती है ।।६।। जो श्राद्धकाल में चक्राकार चिह्न से चिह्नित कमण्डलु प्रदान करता है, वह सभी मनोरथों को प्रदान करनेवाली, दिव्यगुणसम्पन्न, दूध देनेवाली गौ प्राप्त करता है ।।७।। जो पुष्प की मालाओं से विभूषित, सभी सामग्रियों से समन्वित सुन्दर शय्या का दान करता है, उसकी वह शय्या उत्तम प्रासाद (राजमहल) के रूप में उसके पीछे–पीछे (परलोक में) चलती है ।।८।। श्राद्ध के अवसर पर रत्नादि से युक्त शय्या एवं आसनादि से अलंकृत भवन को यतियों के लिए दान करनेवाला मनुष्य स्वर्ग में आनन्द की प्राप्ति करता है। मोती, वैदूर्य, विविधवस्त्र, रत्न, करोड़ों अरबों की संख्या में दिव्य वाहन तथा अतिप्रकाशमान, रत्नादि से विभूषित, चन्द्रमा और सूर्य के समान एक दिव्यवाहन प्राप्त करता है, उस दिव्य विमान का कभी विनाश नहीं होता ।।९–११।। इच्छानुसार गमन करनेवाला, मन के समान वेगशाली वह रथ चारों ओर से अप्सराओं द्वारा घिरा रहता है। उस श्रेष्ठ विमान में चारों ओर से उसकी स्तुति की जाती है। गन्धर्व और अप्सराओं के वृन्द दिव्य सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्प की वृष्टियों से उसे आच्छादित करते हैं। मनोहर गायन और वादन द्वारा उसका मनोरंजन करते हैं। परम सुन्दरी अप्सराओं के साथ मुख्य–मुख्य युवती कन्याएँ मनोरम संगीतमय स्वरों से उन्हें सर्वदा जगाती हैं ।।१२–१४।। एक सहस्र अश्वों के दान करने से, एक सौ रथों के दान करने से तथा एक सहस्र हाथियों के दान करने से मनुष्य

---

* एतदर्थस्थान इदमर्धं 'दिव्यैः पुष्पैः प्रसिञ्चन्ति पूर्णवृष्टिभिरेव च' इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अश्वदानसहस्रेण रथदानशतेन च। दन्तिनां च सहस्रेण योगिन्या वसते नरः ।।१५।।
दद्यात्पितृभ्यो योगिभ्यो यस्तूज्ज्वलनमम्भसि। अथ निष्कसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।।१६।।
जीवितस्य प्रदानाद्धि नान्यद्दानं विशिष्यते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देयं प्राणाभिरक्षणम् ।।१७।।
अहिंसा सर्वदेवेभ्यः पवित्रा सर्वदायिनी। दानं हि जीवितस्याऽऽहुः प्राणिनां परमं बुधाः ।।१८।।
लक्षणानि सुवर्णानि श्राद्धे पात्राणि दापयेत्। रसास्तमुपतिष्ठन्ति भक्ष्याः सौभाग्यमेव च ।।१९।।
पात्रं वै तैजसं दद्यान्मनोज्ञं श्राद्धभोजने। पात्रं भवति कामानां रूपस्य च धनस्य च ।।२०।।
(*राजतं काञ्चनं वाऽपि दद्याच्छ्राद्धे तु कर्माणि। दत्त्वा तु लभते दाता प्रकामं धर्ममेव च) ।।२१।।
धेनुं श्राद्धे तु यो दद्याद्गृष्टिं कुम्भोपदोहनीम्। गावस्तमुपतिष्ठन्ति गवां पुष्टिस्तथैव च ।।२२।।
शिशिरेषु तथा त्वग्निं बहुकाष्ठं तथैव च। + इन्धनानि तु यो दद्याद्द्विजेभ्यः शिशिरागमे ।।२३।।
नित्यं जयति सङ्ग्रामे श्रिया युक्तश्च दीप्यते। सुरभीणि च माल्यानि गन्धवन्ति तथैव च ।।२४।।
पूजयित्वा तु पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत्। गन्धवाहा महानद्यः सुखानि विविधानि च ।।२५।।

योगिनी के साथ निवास करता है ।।१५।। जो व्यक्ति योगपरायण पितरों के उद्देश्य से जल में दीपदान करता है, उसे एक सहस्र निष्कों के दान का फल प्राप्त होता है ।।१६।। जीवनदान के समान विशेषता किसी अन्य दान की नहीं है, इसलिए सब प्रयत्न करके प्राणों की रक्षा का दान करना चाहिए ।।१७।। अहिंसा देवताओं की अपेक्षा पवित्र एवं सब कुछ देनेवाली है, प्राणियों को जीवन का दान करना सभी दानों से श्रेष्ठ है—ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं ।।१८।। श्राद्ध में सभी लक्षणों से युक्त सुवर्ण के पात्रों का दान करना चाहिए। जो लोग श्राद्ध में इस प्रकार के सुवर्ण निर्मित पात्रों का दान करते हैं, उन्हें विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, रस एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है ।।१९।। श्राद्धकाल में भोजन के अवसर पर सुन्दर बने हुए तैजस (चाँदी के) पात्रों का दान करना चाहिए, वह पात्र दाता के स्वरूप, धन-सम्पत्ति और सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला होता है (श्राद्धकर्म में सुवर्ण अथवा चाँदी के बने हुए पात्रों को जो दाता देते हैं, वे परम धर्म की प्राप्ति करते हैं।), जो व्यक्ति श्राद्ध में दोहन पात्र के साथ एक बार की ब्याई हुई गौ का दान करता है, उसे अनेक गौएँ प्राप्त होती हैं और सर्वदा पुष्टि रहती है ।।२०-२२।। शिशिर ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर जो अग्नि एवं प्रचुर परिमाण में ईंधन का दान करता है, अथवा शिशिर ऋतु के आ जाने पर जो ब्राह्मणों के लिए ईंधन दान करता है, वह संग्राम में सर्वदा विजयी होता है और शोभासम्पन्न होकर परम तेजस्वी होता है। श्राद्ध के अवसर पर सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ तथा सुन्दर पात्रों को सत्कारपूर्वक दान करना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसे महानदियाँ सुगन्धि से युक्त होकर परम सुख पहुँचाती हैं, विविध सुखों की प्राप्ति होती है ।।२३-२५।। मनोरम युवती स्त्रियाँ उस दाता के पास

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ इत उत्तरमेतदर्धमधिकम् 'कायाग्निदीप्तिः प्राकाश्ये रूपं सौभाग्यमेव च' इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

दातारमुपतिष्ठन्ति युवत्यश्च मनोरमाः । शयनासनानि रम्याणि भूमयो वाहनानि च ।।२६।।
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यादश्वमेधफलं लभेत् । श्राद्धकाले निवेद्यं च दर्शश्राद्ध उपस्थिते ।।२७।।
विप्राणां गुणयुक्तानां स्मृतिं मेधां च विन्दति । सर्पिष्पूर्णानि पात्राणि श्रद्धे सत्कृत्य दापयेत् ।।२८।।
×कुम्भदोहनधेनूनां बह्वीनां च फलं लभेत् । अस्मिंस्तु मोदते लोके स्यन्दनैश्च सुवाहनैः ।।२९।।
श्राद्धे यथेप्सितं दत्त्वा पुण्डरीकस्य यत्फलम् । रम्यमावसथं दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् ।।३०।।
वनं पुष्पफलोपेतं दत्त्वा सौरभमश्नुते । कूपारामतडागानि क्षेत्रघोषगृहाणि च ।।३१।।
दत्त्वेतान्मोदते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम् । आस्तीर्णशयनं दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् ।।३२।।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति स्वर्गं चाऽऽनन्त्यमश्नुते । राजभिः पूज्यते चापि धनधान्यैश्च वर्धते ।।३३।।
ऊर्णाकौशेयवस्त्राणि तथा प्रवरकम्बलौ । अजिनं काञ्चनं पट्टं प्रवेणीमृगलोमकम् ।।३४।।
दानान्येतानि विप्रेभ्यो भोजयित्वा यथाविधि । प्राप्नोति श्रद्दधानस्तु वाजपेयशतं फलम् ।।३५।।
बह्व्यो नार्यः सुरूपास्तु पुत्रा भृत्याश्च किंकराः । वशे तिष्ठन्ति भूतानि अस्मिँल्लोके त्वनामयम् ।।३६।।
कौशेयं क्षौम्कार्पासं दुकूलमहतं तथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति पुष्कलान् ।।३७।।
अलक्ष्मीं विनुदत्याशु तमः सूर्योदये यथा । भ्राजते स विमानाग्र्ये नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः ।।३८।।

उपस्थित होती हैं। विविध प्रकार की शय्या, मनोहर आसन, प्रचुर भूमि एवं विविध वाहन–इन सबको जो श्राद्ध के अवसर पर देता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। सामान्य श्राद्धों के अवसर पर अथवा दर्श श्राद्धों के अवसर पर जो इन वस्तुओं का दान सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणों को करता है, वह सुन्दर स्मरण शक्ति और बुद्धि को प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर घृत से भरे हुए अनेक पात्रों का सत्कारपूर्वक दान करना चाहिए, जो ऐसा करता है, वह दोहन कलश समेत अनेक गौओं के दान का फल प्राप्त करता है। इस लोक में सुन्दर वाहनों एवं रथों का आनन्द प्राप्त करता है ।।२६–२९।। श्राद्ध के अवसर पर याचक की मनचाही वस्तु का दान करने से पुण्डरीक यज्ञ का एवं सुन्दर निवास–स्थल का दान करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। एवं फलों से समन्वित वन का दान करने से सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति होती है। कूपों, बगीचों, तड़ागों, क्षेत्रों, गोशालाओं और गृहों के दान करने से दाता स्वर्गलोक में तब तक निवास करता है, जब तक चन्द्रमा और तारागण विद्यमान रहते हैं। श्राद्ध काल में जो रत्नजटित बिछावन और शय्या का दान करता है, उसके पितरगण सन्तुष्ट होते हैं, और दाता अनन्त काल तक स्वर्ग में निवास करता है। राजाओं द्वारा वह पूजित होता है, उसके धन–धान्यादि की वृद्धि होती है ।।३०–३३।। ऊनी, रेशमी वस्त्र, श्रेष्ठ कम्बल, चर्म, सुवर्ण निर्मित पट्ट और मृगलोम इन सब वस्तुओं को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को देना चाहिए। इन दानों पर श्रद्धा रखनेवाले सौ वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं ।।३४–३५।। इस लोक में बहुतेरी सुन्दरी स्त्रियाँ, पुत्र एवं सेवकगण उसके वश में रहते हैं, बहुत से लोग उसके अधीन रहते हैं, और वह सर्वदा नीरोग रहता है। जो व्यक्ति नवीन रेशमी वस्त्र, सूक्ष्म सूती वस्त्र, सुन्दर साड़ियों को श्राद्धों के अवसर पर दान करता है, वह अपने समस्त मनोरथों को प्राप्त करता है। उसकी सारी विपत्तियाँ इस प्रकार दूर हो जाती हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार। नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान देवविमानों

× एतदर्धस्थानेऽयं पाठः 'कुम्भदोदोहधेनूनां वह्वीनां फलमश्नुते' इति ख. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

सर्वदेवमयं वासो सर्वदेवैस्त्वभिष्टुतम् । वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च ।।३९।।
तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः । तानि सर्वाण्यवाप्नोति यज्ञवेदतपांसि च ।।४०।।
नित्यं श्राद्धेषु यो दद्यात्प्रयतस्तत्परायणः । सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं राज्यं तथैव च ।।४१।।
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते । भक्ष्यान्धानाः करम्भांश्च पिष्टकान्घृतशर्कराः ।।४२।।
कृशरान्मधुपर्कं च पयः पायसमेव च । स्निग्धांश्च पूपान्यो दद्यादग्निष्टोमस्य यत्फलम् ।।४३।।
दधि गव्यमसंसृष्टं भक्ष्यान्नानाविधांस्तथा । तदन्नं शोचति श्राद्धे वर्षासु च मघासु च ।।४४।।
घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं भूमौ समुत्सृजेत् । गयायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धे न शोचति ।।४५।।
ओदनं वायसं सर्पिर्मधुमूलफलानि च । भक्ष्यांश्च विविधान्दत्त्वा प्रेत्य चेह च मोदते ।।४६।।
शर्कराक्षीरसंयुक्तं पृथुकं नित्यमक्षयम् । स्युश्च संवत्सरं प्रीताः कृशरैर्मसुरेण च ।।४७।।
सक्तुलाजास्तथा पूपाः कुल्माषव्यञ्जनैस्तथा । सर्पिःस्निग्धानि हृद्यानि दध्ना सक्तूंस्तु भोजयेत् ।।
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्पद्मानि लभते निधिम् ।।४८।।

में वह अग्रसर होकर सुशोभित होता है ।।३६-३८।। वस्त्र सभी देवताओं द्वारा प्रशंसित तथा सर्व देवमय है, उस सर्वश्रेष्ठ वस्त्र के अभाव में कोई क्रिया सम्पन्न नहीं होती, न तो यह सम्पन्न होता है और न तपस्या ही सफल होती है। इसलिए श्राद्ध के अवसर पर विशेष रूप से वस्त्रों का दान करना चाहिए। ऐसा करनेवाला समस्त यज्ञों, वेदों और तपस्याओं का फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर इन्द्रियों को वश में रखकर वस्त्रों का दान करता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है, स्वर्ग और राज्य प्राप्त करता है ।।३९-४१।। सभी कामनाओं से सम्पन्न यज्ञ का फल प्राप्त करता है। विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, धान्य, करम्भ (दही मिश्रित सत्तू), पेठ, घृत और शक्कर, खिचड़ी, मधुपर्क, दुग्ध, दुग्ध से बने हुए पदार्थ, सुन्दर पूआ-इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर जो व्यक्ति दान करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।।४२-४३।। वर्षा ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर विशेषतया मघा नक्षत्र में-पितरगण दही, शुद्ध गोरस, विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ की चिन्ता करते हैं अर्थात् मघानक्षत्र में श्राद्ध करते समय इन पदार्थों को देना चाहिए। श्राद्ध करते समय घृत के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, भूमि पर घृत छोड़ना चाहिए, गया तीर्थ में हाथी दान करके पितरों के विषय में चिन्ता छूट जाती है ।।४४-४५।। भात, दुग्ध में बने हुए पदार्थ, घृत, मधु, मूल, फल, विविध प्रकार की भोजन सामग्री-इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर दान करने से इहलोक तथा परलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है। दूध मिश्रित शक्कर और चिउड़ा का दान कभी नष्ट होनेवाला नहीं है। मसूर और खिचड़ी के दान से पितरगण एक वर्ष तक सन्तुष्ट रहते हैं। इसी प्रकार सत्तू, धान के लावे, पूआ और कुल्माष (कुल्थी के बने हुए व्यंजनों) से भी एक वर्ष तक पितरगण तृप्त रहते हैं। घृत, मनोहर और हृदय को लुभानेवाली अन्यान्य खाद्य सामग्री तथा दही के साथ सत्तू का भोजन श्राद्ध के अवसर पर देना चाहिए। जो व्यक्ति इन सब वस्तुओं को श्राद्ध

नवसस्यानि यो दद्याच्छ्राद्धं सत्कृत्य यत्नतः। सर्वभोगानवाप्नोति पूज्यते च दिवं गतः।।४९।।
भक्ष्यभोज्यानि चोष्णाणि पेयलेह्यवराणि च। सर्वश्रेष्ठानि यो दद्यात्सर्वश्रेष्ठो भवेन्नरः।।५०।।
वैश्वदेवं च सौम्यं च खाड्गमांसं परं हवि। विषाणं वर्जयेत्खाड्गं असूयां नाशयामहे।।५१।।
भोजनेऽग्र्यासनं दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः। सर्वयज्ञक्रियाणां स फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।।५२।।
क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं दद्याच्चान्नं बुभुक्षते। व्यञ्जनं च तथा स्निग्धं भक्त्या सत्कृत्य यत्नतः।।५३।।
तरुणादित्यसंकाशं विमानं हंसवाहनम्। अन्नदो लभते तिस्रः कन्याकोटीस्तथैव च।।५४।।
अन्नदानात्परं दानं विद्यते नेह किंचन। अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः।।५५।।
जीवादानात्परं दानं न किंचिदिह विद्यते। अन्नैर्जीवन्ति त्रैलोक्यमन्नस्यैव हि तत्फलम्।।५६।।
अन्ने लोकाः प्रतिष्ठन्ति लोकदानस्य तत्फलम्। अन्नं प्रजापतिः साक्षात्तेन सर्वमिदं ततम्।।
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ।।५७।।
यानि रत्नानि मेदिन्यां वाहनानि स्त्रियस्तथा। क्षिप्रं प्राप्नोति तत्सर्वं पितृभक्तो हि मानवः।।५८।।
प्रतिश्रयं सदा दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः। देवास्ते संप्रतीक्षन्ते दिव्यातिथ्यैः सहस्रशः।।५९।।

के अवसर पर दान करता है, वह कई पद्म का खजाना प्राप्त करता है ।।४६–४८।। जो सत्कार एवं यत्नपूर्वक श्राद्ध के अवसर पर नवीन अन्न का दान करता है, वह सभी प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है, पूजित होता है तथा स्वर्ग प्राप्त करता है ।।४९।। जो मनुष्य विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, भक्ष्य सामग्रियाँ तथा पीने और चाटने की श्रेष्ठ सामग्रियाँ श्राद्धकाल में देता है, वह सर्वश्रेष्ठ होता है। इस श्राद्ध में वैश्वदेव और सोम को उनका भाग देना चाहिए, गैंडे के मांस की आहुति देनी चाहिए–वही सर्वश्रेष्ठ हवि है। केवल गैंडे की सींग छोड़ देनी चाहिए–इसे वर्जित कर हम पितरों की घृणा को नष्ट करते हैं। अर्थात् गैंड़े की सींग को पितरगण घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हाथ जोड़कर अतिथियों को भोजन कराते समय आगे आसन देना चाहिए, जो ऐसा करता है वह सभी यज्ञों एवं सत्क्रियाओं का फल प्राप्त करता है ।।५०–५२।। जो भूखा अतिथि हो, उसे अति शीघ्रतापूर्वक खूब पकी हुई गरमागरम भोजन सामग्री देनी चाहिए। यत्नपूर्वक भक्ति एवं सत्कार के साथ उसे चिकना स्निग्ध भोजन देना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसे मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी हंसों के वाहनों से समन्वित विमान की प्राप्ति होती है। श्राद्ध के अवसर पर अन्न दान करनेवाला तीन करोड़ सुन्दरी कन्याओं को प्राप्त करता है ।।५३–५४।। इस मर्त्यलोक में अन्न दान से बढ़कर कोई अन्य दान नहीं है। इसमें किसी को सन्देह न होगा कि अन्न से ही समस्त जीव पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं और जीवन चलाते हैं। उसी प्रकार इस मर्त्यलोक में जीव दान के समान कोई अन्य दान नहीं है। अन्नों द्वारा यह त्रैलोक्य जीवित है, यह सारा विश्वप्रपंच अन्न का ही परिणाम है। अन्न में ही समस्त लोकों की स्थिति और प्रतिष्ठा है, अन्न दान से ही वे वर्तमान हैं, अन्न ही साक्षात् प्रजापति है उसी से यह सारा त्रैलोक्य व्याप्त है। इस कारण अन्न दान के समान कोई अन्य दान न तो जगत् में था और न भविष्यत्काल में कभी होगा ।।५५–५७।। इस पृथ्वी में जितने भी वाहन हैं, जितनी भी सुन्दर स्त्रियाँ हैं,

सर्वाण्येतानि यो दद्यात्पृथिव्यामेकराड्भवेत्। त्रिभिर्द्वाभ्यामथैकेन दानेन तु सुखी भवेत् ।।६०।।
दानानि परमो धर्मः सद्भिः सत्कृत्य पूजितः। त्रैलोक्यस्याऽऽधिपत्यं हि दानादेव व्यवस्थितम् ।।६१।।
राजा तु लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्। क्षीणायुर्लभते चाऽऽयुः पितृभक्तः सदा नरः ।।
यान्कामान्मनसाऽर्थेत तांस्तस्य पितरो ददुः ।।६२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे दानफलं नामाशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलम्

बृहस्पतिरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि पूजितम्। काम्यनैमित्तिकाजस्रं श्राद्धकर्मणि नित्यशः ।।१।।
पुत्रदा धनमूलाः स्युरष्टकास्तिस्त्र एव च। पूर्वपक्षो वरिष्ठो हि पूर्वा चित्री उदाहृता ।।२।।
प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदैविकी। आद्या पूपैः सदा कार्या मांसैरन्या भवेत्सदा ।।३।।

उन सबको पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य शीघ्र ही प्राप्त करता है इसलिए उसे सर्वदा हाथ जोड़कर अतिथियों को आश्रय देना चाहिए। सहस्त्रों देवगण दिव्य (मनोरम) आतिथ्य प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं। जो व्यक्ति ऊपर कही गयी समस्त वस्तुओं को श्राद्ध में दान करता है वह पृथ्वी का एकच्छत्र सम्राट् होता है, अथवा इनमें से तीन, दो या एक ही का दान करता है वह भी सुखी होता है ।।५८-६०।। ये दान परमधर्म हैं, सत्पुरुषों ने इनका सर्वदा सत्कार और पूजन किया है। समस्त त्रैलोक्य का आधिपत्य दान से ही व्यवस्थित है। राजा लोग राज्य प्राप्त करते हैं, निर्धन लोग उत्तम धन प्राप्त करते हैं, क्षीणायु दीर्घायु प्राप्त करते हैं, पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य मन से भी जिन अभिलाषाओं का चिन्तन करता है, उनको पितरगण पूर्ण करते हैं ।।६१-६२।।

श्रीवायुमहापुराण में श्राद्धकल्प में दानफल नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।।८०।।

अध्याय ८१

विशेष तिथियों में श्राद्ध के किये जाने का फल

बृहस्पति ने कहा-अब इसके बाद मैं नित्य, नैमित्तिक और काम्य श्राद्धों का विवरण बतला रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि श्राद्धकर्म पूजनादि किस प्रकार सम्पन्न होते हैं ।।१।। तीनों अष्टकाएँ पुत्र को देनेवाली और धन सम्पत्ति आदि की कारणीभूत हैं। इस श्राद्धकर्म में पूर्वपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष श्रेष्ठ माना गया है। तीनों अष्टकाओं में प्रथम चित्री कही गयी है। दूसरी प्राजापत्य और तीसरी वैश्वदेवी है। इन तीनों में पहली को पूओं द्वारा, दूसरी को मांसों द्वारा

(*शाकैरन्या तृतीया स्यादेवं द्रव्यगवो विधिः। अन्वष्टका पितॄणां वै नित्यमेव विधीयते ।।४।।
यद्यन्या च चतुर्थी स्यात्तां च कुर्याद्विशेषतः। नासु श्राद्धं बुधः कुर्यात्सर्वस्वेनापि नित्यशः ।।५।।
परत्रेह च सर्वेषु नित्यमेव सुखीभवेत्। पूजकानां सदोत्कर्षो नास्तिकानामधोगतिः ।।६।।
पितरः पर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः। सर्वे पुरुषमायान्ति निपानमिव धेनवः ।।७।।
मा स्म ते प्रतिगच्छेयुरष्टकाः सूरपूजिताः। मोघस्तस्य भवेल्लोको लब्धं चास्य विनश्यति ।।८।।
देवांस्तु दायिनो यान्ति तिर्यग्गच्छन्त्यदायिनः। प्रज्ञां पुष्टिं स्मृतिं मेधां पुत्रानैश्वर्यमेव च ।।९।।
कुर्वाणः पौर्णमास्यां च पूर्वं पूर्णं समश्नुते। प्रतिपद्धनलाभाय लब्धं चास्य न नश्यति ।।१०।।
द्वितीयायां तु यः कुर्याद्द्विपदाधिपतिर्भवेत्)। वरार्थिनां तृतीया तु शत्रुघ्नी पापनाशिनी ।।११।।
चतुर्थ्यां कुरुते श्राद्धं शत्रोश्छिद्राणि पश्यति। पञ्चम्यां वै प्रकुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियम् ।।१२।।
षष्ठ्यां श्राद्धानि कुर्वाणं द्विजास्तं पूजयन्त्युत। कुरुते यस्तु सप्तम्यां श्राद्धानि सततं नरः ।।१३।।

तथा तीसरी को शाकों द्वारा करना चाहिए। यह इन तीनों अष्टकाओं के लिए पदार्थों का नियम है। पितरों के लिए अन्वष्टका श्राद्ध सर्वत्र करना चाहिए ।।२–४।। यदि कोई अन्य चौथी अष्टका मिले तो उसे भी विधिपूर्वक सम्पन्न करे। बुद्धिमान् पुरुष को इन सब अष्टकाओं में सर्वस्व व्यय करके भी श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा करनेवाला प्राणी इहलोक तथा परलोक– दोनों में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है। पूजा आदि करनेवालों की सदा उन्नति होती है और जो नास्तिक विचारवाले होते हैं, उनकी सर्वदा अधोगति होती है ।।५–६।। पितरगण पर्व के अवसरों पर तथा देवगण विशेष–विशेष तिथियों पर श्राद्धादि एवं पूजा आदि करनेवाले पुरुष के पास इस प्रकार उपस्थित होते हैं जैसे गौएँ जलाशय के समीप पानी पीने के लिए आती हैं ।।७।। वे पितरगण देवताओं द्वारा पूजित इन अष्टकाओं के समीप नहीं जाते। जो व्यक्ति इन अष्टकाओं में पितरों की पूजा आदि नहीं करते, उनका यह लोक (जन्म) व्यर्थ हो जाता है और जो कुछ प्राप्त हुआ रहता है वह नष्ट हो जाता है ।।८।। जो इन अवसरों पर श्राद्धादि का दान करते हैं वे देवताओं के समीप अर्थात् स्वर्गलोक को जाते हैं और जो नहीं देते वे तिर्यक् (अधम, पक्षी आदि) योनियों में जाते हैं। उसकी बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, पुत्र–पौत्रादि एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती है, जो पूर्णमासी के अवसर पर श्राद्धादि करता है, इस प्रकार वह पूर्ण पर्व का फल भोगता है। इसी प्रकार प्रतिपदा धन–सम्पत्ति के लाभ के लिए होती है, एवं करनेवाले की प्राप्त वस्तु नष्ट नहीं होती ।।९–१०।। द्वितीया तिथि को जो पितरों के उद्देश्य से श्राद्धादि करता है, वह दो पादवालों (मनुष्यों) का राजा होता है। उत्तम अर्थ की प्राप्ति के अभिलाषी व्यक्ति के लिए श्राद्धादि में तृतीया विहित है, यह तृतीया शत्रुओं का नाश करनेवाली तथा पापनाशिनी है। जो चतुर्थी तिथि को श्राद्ध करता है वह शत्रुओं का छिद्र देखता है, अर्थात् उसे शत्रु की समस्त कूट चालों का ज्ञान हो जाता है। पञ्चमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति करता है ।।११–१२।। जो षष्ठी तिथि को श्राद्धादि कर्मों को सम्पन्न करते हैं, उनकी पूजा देवता लोग करते हैं। जो मनुष्य सर्वदा सप्तमी तिथि को श्राद्धादि कार्य करते हैं, वे महान् यज्ञों के पुण्यफल प्राप्त करते हैं और गणों के स्वामी होते हैं। जो मनुष्य

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ग. पुस्तके नास्ति।

महासत्रमवाप्नोति गणानामधिपो भवेत्। संपूर्णामृद्धिमाप्नोति योऽष्टम्यां कुरुते नरः ।।१४।।
श्राद्धं नवम्यां कुर्वाणं ऐश्वर्यं काङ्क्षितां स्त्रियम्। कुर्वन्दशम्यां तु नरो ब्राह्मीं श्रियमवाप्नुयात् ।।१५।।
वेदांश्चैवाऽऽप्नुयात्सर्वान्प्रणाशमेनसस्तथा । एकादश्यां परं दानमैश्वर्यं सततं तथा ।।
द्वादश्यां राष्ट्रलाभं तु जयामाहुर्वसूनि च ।।१६।।
प्रजां बुद्धिं पशून्मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम्। दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ।।१७।।
युवानश्च मृता यस्य गृहे तेषां प्रदापयेत्। शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां दद्याच्चतुर्दशीम् ।।१८।।
तथा विषमजातानां यमलानां तु सर्वशः। अमावास्यां प्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याच्छुचिः सदा ।।१९।।
सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गमानन्त्यमश्नुते। ऋतं दद्यादमावास्यां सोममाप्यायनं महत् ।।२०।।
एवमाप्यायितः सोमस्त्रींल्लोकान्धारयिष्यति। सिद्धचारणगन्धर्वैः स्तूयमानस्तु नित्यशः ।।२१।।
स्तवैः पुष्पैर्मनोज्ञैश्च सर्वकामपरिच्छदैः। नृत्यवादित्रगीतैश्च अप्सरोभिः सहस्रशः ।।२२।।
उपक्रीडैर्विमानैस्तु पितृभक्तं दृढव्रतम्। स्तुवन्ति देवगन्धर्वाः सिद्धसंघाश्च तं सदा ।।२३।।

अष्टमी को श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त करता है। नवमी तिथि को श्राद्ध कर्म करनेवाले को प्रचुर ऐश्वर्य एवं मन के अनुसार चलनेवाली स्त्री की प्राप्ति होती है। दशमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मत्व की लक्ष्मी प्राप्त करता है ।।१३–१५।। एकादशी तिथि को श्राद्धादि का दान सर्वश्रेष्ठ दान है, जो उक्त तिथि को श्राद्धादि का दान करता है, वह समस्त वेदों को प्राप्त करता है, उसके सम्पूर्ण पापकर्मों का विनाश हो जाता है तथा निरन्तर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। द्वादशी तिथि को श्राद्ध करने से राष्ट्र का कल्याण तथा अन्नों की प्राप्ति होती कही गयी है। त्रयोदशी तिथि को श्राद्धादि कर्म करने से सन्तति, बुद्धि, पशु, धारणाशक्ति, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जिसके घर के जवान लोग मर गये हों, उसे चाहिए कि उन सबों के उद्देश्य से चतुर्दशी तिथि को श्राद्ध करे। इसी प्रकार हथियारों के द्वारा जिनकी मृत्यु हुई हो, उनके लिए भी चतुर्दशी को श्राद्धकर्म करे ।।१६–१८।। इसी प्रकार समस्त विषम उत्पन्न होनेवालों (अर्थात् तीन कन्याओं के बाद जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, अथवा तीन पुत्रों के बाद जो कन्याएँ उत्पन्न होती हैं) तथा जुड़वाँ उत्पन्न होनेवालों के लिए सर्वदा पवित्र होकर अमावस्या तिथि को प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। जो इस प्रकार श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं, वे समस्त मनोरथों को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल पर्यन्त स्वर्ग का उपभोग करते हैं। अमावस्या तिथि को ब्राह्मण को भोजन देना चाहिए, चन्द्रमा के लिए भी तर्पण करना चाहिए, इसका महान् फल होता है ।।१९–२०।। इस प्रकार तर्पित होकर सोमदेव तीनों लोकों को धारण करेंगे। दृढ़व्रत परायण, पितरों में भक्ति रखनेवाले व्यक्ति की सिद्ध, चारण और गन्धर्वगण नित्य स्तुति करते हैं ।।२१।। उनके साथ सहस्रों अप्सराएँ अपने नाच, गान, वाद्य, स्तुति, मनोहर पुष्प निचय एवं सभी प्रकार के अभिलषित वस्त्रादिकों से उसे प्रसन्न करती हैं। देवता, गन्धर्व एवं सिद्धों के समूह उनकी सर्वदा स्तुति करते रहते हैं, अनेक छोटे-छोटे क्रीडा के विमान उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य अमावस्या को सभी मनोरथ प्राप्त करता है क्योंकि

पितृभक्तस्त्वमावस्यां सर्वान्कामानवाप्नुयात् । प्रत्यक्षमर्चितास्तेन भवन्ति पितरः सदा ।।२४।।
पितृदेवा मघा यस्मात्तस्मात्तास्वक्षयं स्मृतम् । पित्र्यं कुर्वन्ति तस्यां तु विशेषेण विचक्षणाः ।।२५।।
तस्मान्मघां वै वाञ्छन्ति पितरो नित्यमेव हि । पितृदैवतभक्ता ये तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।२६।।
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।।८१।।

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलम्

बृहस्पतिरुवाच

यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शिवबिन्दवे । तानि मे शृणु कार्त्स्न्येन नक्षत्रेषु पृथक्पृथक् ।।१।।
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे करोति सततं नरः । अग्नीनाधाय सापत्यो जायते स गतज्वरः ।।२।।
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्येनौजस्विता भवेत् । प्रायशः क्रूरकर्मा तु चाऽऽर्द्रायां श्राद्धमाचरेत् ।।३।।
क्षेत्रभागी भवेत्पुत्री श्राद्धं कुर्वन्पुनर्वसौ । धनधान्यसमाकीर्णः पुत्रपौत्रसमाकुलः ।।४।।

सर्वदा उस तिथि को पितरगण उससे प्रत्यक्षतः पूजा प्राप्त करते हैं ।।२२-२४।। मघा नक्षत्र पितरों को अभीष्ट सिद्धि देनेवाला है, अतः उक्त नक्षत्र के दिन किया गया श्राद्ध अक्षय कहा जाता है। इसीलिए विवेकशील लोग विशेषतया उसी नक्षत्र में पितरों के श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं। यही कारण है कि पितरगण भी उसे सर्वदा अधिक पसन्द करते हैं। पितरों और देवताओं में जो केवल भक्ति रखते हैं, वे भी परमगति प्राप्त करते हैं ।।२५-२६।।

श्रीवायुमहापुराण के श्राद्धकल्प में तिथिविशेष सम्बन्धी श्राद्धफल वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८१।।

अध्याय ८२

विशेष नक्षत्रों में किये गये श्राद्धों के फल

बृहस्पति ने कहा—विशेष नक्षत्रों में पृथक्-पृथक् श्राद्ध के करने से क्या फल होते हैं—इस विषय में यमराज ने शिवविन्द से जो कुछ श्राद्धीय चर्चाएँ की हैं, उन सबको मैं बतला रहा हूँ, सुनो। जो मनुष्य सर्वदा कृत्तिका नक्षत्र के योग में श्राद्ध करता है और अग्नि की स्थापना करता है, वह अपनी सन्ततियों समेत चिन्ताओं एवं व्याधियों से मुक्त होता है ।।१-२।। सन्तान की कामना से रोहिणी में श्राद्ध करना चाहिए। मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से तेजस्विता का लाभ होता है। आर्द्रा में श्राद्धकार्य प्रायः क्रूरकर्म करनेवाले ही करते हैं। पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला क्षेत्र का अधिकारी और पुत्रवान् होता है। धनधान्यादि से समन्वित तथा पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त होता है ।।३-४।। सन्तोष लाभ की अभिलाषा

तुष्टिकामः पुनस्तिष्ये श्राद्धं कुर्वीत मानवः। आश्लेषासु पितॄनर्च्य वीरान्पुत्रानवाप्नुयात् ।।५।।
श्रेष्ठो भवति ज्ञातीनां मघासु श्राद्धमाचरन्। फाल्गुनीषु पितॄनर्च्य सौभाग्यं लभते नरः ।।६।।
प्रधानशीलः सापत्य उत्तरासु करोति यः। स सत्सु मुख्यो भवति हस्ते यस्तर्पयेत्पितॄन् ।।७।।
चित्रायां चैव यः कुर्यात्पश्येद्रूपवतः सुतान्। स्वातिना चैव यः कुर्याद्विद्वांल्लाभमवाप्नुयात् ।।८।।
पुत्रार्थं तु विशाखासु श्राद्धमीहेत मानवः। अनुराधासु कुर्वाणो नरश्चक्रं प्रवर्तयेत् ।।९।।
आधिपत्यं लभेच्छ्रैष्ठ्यं ज्येष्ठायां सततं तु यः। मूलेनाऽऽरोग्यमिच्छन्ति आषाढासु महद्यशः ।।१०।।
आषाढाभिश्चोत्तराभिर्वीतशोको भवेन्नरः। श्रवणेन तु लोकेषु प्राप्नुयात्परमां गतिम् ।।११।।
राजभाग्वै धनिष्ठासु प्राप्नुयाद्विपुलं धनम्। श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन्वेदान्साङ्गानवाप्नुयात् ।।१२।।
नक्षत्रे वारुणे कुर्वन्भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात्। पूर्वे प्रोष्ठपदे कुर्वन्विन्दतेऽजाविकं फलम् ।।१३।।
उत्तरास्वनतिक्रम्य विन्देद्गाश्च सहस्रशः। बहुरूपकृतं द्रव्यं विन्देत्कुर्वस्तु रेवतीम्।।
अश्वांश्चैवाश्विनीयुक्तो भरण्यामायुरुत्तमम् ।।१४।।
इमं श्राद्धविधिं कुर्वञ्शशबिन्दुर्महीमिमाम्। * कृत्स्नां तु लेभे स कृत्स्नां लब्ध्वा च प्रशशंस तम्।।१५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

से मनुष्य को पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए। अश्लेषा में पितरों की पूजा करके मनुष्य वीर पुत्रों का लाभ करता है। मघा में श्राद्ध करनेवाला अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होता है। फाल्गुनी नक्षत्रों में पितरों की पूजा कर मनुष्य सौभाग्य की प्राप्ति करता है ।।५-६।। उत्तरा नक्षत्रों में श्राद्ध करनेवाला अपने सन्तान समेत समाज का प्रमुख व्यक्ति होता है। जो हस्त नक्षत्र में पितरों की पूजा करता है वह सत्पुरुषों में अग्रगण्य होता है। जो चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह रूपवान् पुत्रों को देखता (प्राप्त करता) है। जो विद्वान् पुरुष स्वाती नक्षत्र में श्राद्ध करता है, वह लाभ प्राप्त करता है ।।७-८।। मनुष्य को पुत्र-प्राप्ति के लिए विशाखा नक्षत्र में श्राद्ध करने की अभिलाषा करनी चाहिए। अनुराधा में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य राज्य का विस्तार करता है। जो सर्वदा ज्येष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह उत्तम आधिपत्य प्राप्त करता है। मूल नक्षत्र से लोग आरोग्य की इच्छा करते हैं, आषाढ़ में महान् यश प्राप्त करते हैं, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य शोकरहित होता है। श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध करने से सभी लोकों में परम गति प्राप्त होती है ।।९-११।। धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला राज्य और विपुल धन प्राप्त करता है। अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला अंगों समेत समस्त वेदों का अधिकारी होता है। शतभिष् नक्षत्र में श्राद्ध करने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। पूर्व भाद्रपद में श्राद्ध करनेवाला अजाविक (?) फल प्राप्त करता है ।।१२-१३।। उत्तरा भाद्रपद में श्राद्ध कर्त्ता श्राद्ध करने के फलस्वरूप सहस्रों गौएँ प्राप्त करता है। रेवती में श्राद्ध करनेवाला बहुत-सा द्रव्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार अश्विनी में अश्व और भरणी में उत्तम आयु प्राप्त करता है। इस श्राद्ध विधि का विधिवत् पालन कर शशविन्दु ने इस समस्त पृथ्वी को प्राप्त किया था और उसकी प्रशंसा की थी ।।१४-१५।।

श्री वायुमहापुराण में नक्षत्र-विशेष में श्राद्धफल वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८२।।

---

* एतदर्धस्थान इदमर्धम्-कृत्स्नां सलभतोत्कृष्टां लब्ध्वा च प्रशशास ताम् इति' ङ. पुस्तके।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे भिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्यविशेषगयाश्राद्धादिफल-ब्राह्मणपरीक्षादिकथनम्

(* शंयुरुवाच

किंचिद्दत्तं पितृणां तु धिनोति वदतां वर। किं हि स्विच्चिररात्राय किं चाऽऽनन्त्याय कल्प्यते) ।।१।।

बृहस्पतिरुवाच

हवींषि श्राद्धकाले तु यानि श्राद्धविदो विदुः। तानि मे शृणु सर्वाणि फलं चैषां यथाबलम् ।।२।।
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन च। दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन तु पितामहाः ।।३।।
मत्स्यैः प्रीणन्ति द्वौ मासौ त्रीन्मासान्हारिणेन तु। शाशं तु चतुरो मासान्पञ्च प्रीणाति शाकुनम् ।।४।।
वाराहेण तु षण्मासांश्छागलं साप्तमासिकम्। आष्टमासिकमित्युक्तं यच्च पार्षतकं भवेत् ।।५।।
रौरवेण तु प्रीयन्ते नव मासान्पितामहाः। गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी ।।६।।
कूर्मस्य चैव मांसेन मासानेकादशैव तु। श्राद्धमेवं विजानीयाद्गव्यं संवत्सरं भवेत् ।।७।।

अध्याय ८३

श्राद्ध में भिन्न-भिन्न समय में तृप्ति के साधनभूत विशेष द्रव्य, गया में श्राद्ध के फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा आदि

शंयु ने कहा–हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! कौन-सी वस्तु पितरों को (थोड़े दिनों तक) तृप्ति देनेवाली है? कौन-सी वस्तु चिरकाल तक तृप्ति देती है? और कौन-सी वस्तु अनंत काल तक तृप्ति देती है? ।।१।।

बृहस्पति ने कहा–श्राद्ध के माहात्म्य को जाननेवाले श्राद्धादि में जिन हविष् द्रव्यों को उक्त फलदायी जानते हैं, उन सबकी क्या और कितनी सामर्थ्य है, इसे मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये ।।२।। श्राद्ध में तिल, जौ, उड़द, जल, मूल और फलों के दान करने से पितामह (पितर) लोग एक मास तक सन्तुष्ट रहते हैं। मछली से दो मास तक सन्तुष्ट रहते हैं, हरिण के मांस से तीन मास तक तृप्त रहते हैं, इसी प्रकार खरगोश के मांस से चार मास और पक्षी के मांस से पाँच मास तक सन्तुष्ट रहते हैं ।।३-४।। शूकर के मांस से छह मास, बकरे के मांस से सात मास और पृषत् (सफेद चित्तीवाला एक विशेष मृग) के मांस से आठ मास तक सन्तुष्ट रहते हैं–ऐसा बतलाया जाता है। रुरु (एक विशेष मृग जाति) के मांस से पितामहगण नव मास तक तृप्त रहते हैं। गवय के मांस से दस मास की तृप्ति होती है ।।५-६।। कछुए के मांस से ग्यारह मास की तृप्ति होती है। गोरस से एक वर्ष की तृप्ति होती है। मधु, घृत, दूध में बने हुए व्यंजन तथा अन्य गोरस से भी एक वर्ष की तृप्ति होती है। वध्रीणस के मांस से जो श्राद्ध किया जाता है, उससे

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

तथा गव्यसमायुक्तं पायसं मधुसर्पिषा। वध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥८॥
आनन्त्याय भवेद्युक्तं खाड्गमयांसैः पितृक्षये। कृष्णच्छागस्तथा गोधा अनन्त्यायैव कल्प्यते ॥९॥
अत्र गाथाः पितृगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः। तास्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावत्संनिबोधत ॥१०॥
अपि नः स्वकुले जायाद्योऽन्नं दद्यात्त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिभ्यां छायायां कुञ्जरस्य तु ॥११॥
आजेन सर्वलोहेन वर्षासु च मघासु च। एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
*गौरीं वाऽप्युद्वहेद्भार्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥१२॥

शंयुरुवाच

गयादीनां फलं तात प्रब्रूहि मम पृच्छतः। पितॄणां चैव यत्पुण्यं निखिलेन ब्रवीहि मे ॥१३॥

बृहस्पतिरुवाच

(+अब्दमध्ये गयाश्राद्धं यः करोति च मानवः। सर्वान्कामान्स लभते स्वर्गलोके महीयते ॥१४॥
यदि पुत्रो गयां गच्छेच्छ्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः। कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायं च विन्दति ॥१५॥
उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कर्पटीवेषं ग्राम्यस्यापि प्रदक्षिणम् ॥१६॥

बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है ॥७-८॥ पितरों के लिए गैंडे का मांस श्राद्ध में अनन्तकाल तक तृप्ति करता है। इसी प्रकार काले बकरे तथा गोह का मांस भी अनन्त काल तक तृप्ति करता है ॥९॥ अब इसके बाद प्राचीनकाल के वृत्तान्तों के जाननेवाले पितरों द्वारा गायी हुई गाथाओं का जो वर्णन लोग करते हैं, उन्हें आप लोगों से बतला रहा हूँ, यथावत् सुनिये। पितरगण ऐसा कहते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा सुपुत्र पैदा हो, जो हाथी की छाया में त्रयोदशी तिथि को मधु, घृत एवं दूध में बनाये हुए व्यंजनों तथा अन्नों का दान करे एवं वर्षा ऋतु में विशेषतया मघा नक्षत्र में सर्वलोह अज (बकरा) का मांस दे। बहुत पुत्रों की कामना करनी चाहिए, उसमें से एक भी गया चला जायगा, एक भी सुकुमारी गौर वर्ण की कन्या का विवाह कर देगा, अर्थात् कन्यादान कर देगा अथवा एक भी नीले बैल का (हम लोगों के उद्देश्य से) त्याग करेगा तो हम लोगों की मनः कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी ॥१०-१२॥

शंयु ने कहा—हे तात! गया आदि तीर्थों का माहात्म्य हम आपसे पूछ रहे हैं, बतलाइये, वहाँ पर पितरों के उद्देश्य से जो कुछ कार्य किया जाता है उससे क्या पुण्य प्राप्त होता है, आद्योपान्त बतलाइये ॥१३॥

बृहस्पति ने कहा— जो मनुष्य साल भर में गया जाकर श्राद्ध करता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥१४॥ यदि पुत्र गया की यात्रा करता है और वहाँ पर सावधानी से श्राद्ध करता है, वह समस्त मनोरथों को सुन्दर रूप में प्राप्त करता है और मोक्ष के उपायों को प्राप्त करता है। गया जाने के लिए उद्यत होकर सर्वप्रथम विधिपूर्वक श्राद्ध कर काषायवस्त्र धारणकर अपने ग्राम की भी प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥१५-

---

* इदमर्धं नास्ति घ. पुस्तके।

+ अब्दमध्य इत्यारभ्यः दद्याद्विचक्षण इत्यन्तग्रन्थ ख. पुस्तके वर्ततेऽत्रेव स्थले गयामाहात्म्यमीप तत्रिचत्वारिंशाध्यायादुपरितनं द्रष्टव्यम्।

ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्। कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ।।१७।।
केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न प्रशस्यते। अतो न कार्यं वपनं श्राद्धार्थी ना गयासदा (?) ।।१८।।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत गया श्राद्धे सदा नरः। वित्तशाठ्यं तु कुर्वाणो न तीर्थफलभाग्यवत् ।।१९।।
ब्रह्मकुण्डे प्रभासे च ब्रह्मवेद्यां तथैव च। प्रेतपर्वतमासाद्य श्राद्धं कुर्याद्विधानतः ।।२०।।
उत्तरे मानसे चैव यत्र मैनाकसंज्ञकाः। उदीच्यां कनखले चैव दक्षिणे मानसे तथा ।।२१।।
स्नात्वा कृत्वा तथा श्राद्धं पितृलोके समुद्धरेत्। स्वर्गपातालमर्त्येषु नास्ति तीर्थसमं भुवि ।।२२।।
तेषु श्राद्धं प्रकुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम्। धर्मारण्यं ततो गच्छेदाद्यं दृष्ट्वा गदाधरम् ।।२३।।
मतङ्गे स पुनर्दृष्ट्वा बुद्धा नारायणं तथा। श्राद्धं कृत्वा विधानेन कुलकोटीः समुद्धरेत् ।।२४।।
यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात्। तानेव भोजयेद्विप्रान्ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः ।।२५।।
अमानुषतया विप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः। तेषु तुष्टेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः ।।२६।।
न विचार्यं कुलं शीलं विद्यां च तप एव च। पूजितैस्तैस्तु राजेन्द्र मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ।।२७।।
ततः प्रवर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्तिबलाबलम्। कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायं च विन्दति ।।२८।।
सवर्णा जातयो मित्रा बान्धवाः सुहृदश्च ये। तेभ्यो भूप गयाकूपे पिण्डा देया विधानतः ।।२९।।

१६।। तदनन्तर दूसरे ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष बचे हुए का भोजन करे। प्रदक्षिणा कर बिना किसी का दान आदि लिये गमन करे। गया की यात्रा में केश, दाढ़ी, मूँछ आदि का मुण्डन प्रशंसनीय नहीं कहा गया है, अतएव श्राद्ध करनेवाले को चाहिए कि वह गया यात्रा के समय मुण्डन न कराये ।।१७–१८।। मनुष्य को चाहिए कि गया श्राद्ध के लिए कभी कंजूसी न करे, कंजूसी करने पर तीर्थ यात्रा का वास्तविक फल नहीं मिलता। ब्रह्मकुण्ड, प्रभास, ब्रह्मवेदी और प्रेतपर्वत पर विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए ।।१९–२०।। उत्तर मानस तीर्थ में भी श्राद्ध करना चाहिए, जहाँ मैनाक पर्वतों की श्रेणियाँ हैं। उत्तर दिशा में कनखल तथा दक्षिण दिशा में मानस स्थान पर स्नानकर श्राद्ध करने से पितरों का उद्धार हो जाता है। स्वर्गलोक, पाताललोक तथा मर्त्यलोक में इन तीर्थों के समान कोई दूसरा नहीं है ।।२१–२२।। यदि श्रेष्ठ गति प्राप्त करने की इच्छा है, तो तीर्थों में श्राद्ध करना चाहिए। सर्वप्रथम गदाधर का दर्शन कर धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिए। मतंग में पुनः गदाधर का दर्शनकर नारायण का स्मरण करना चाहिए। वहाँ पर विधिपूर्वक श्राद्ध करके कोटि कुलों का उद्धार किया जाता है ।।२३–२४।। यदि कालक्रमानुसार पुत्र गया की यात्रा करता है तो उसे उन्हीं ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए जिनके विषय में पहले ही से विचार किया गया हो। श्राद्ध के अवसर पर नियुक्त किये जाने के लिए जिन ब्राह्मणों के विषय में विचार किया जाता है, उन्हें मनुष्य रूप में नहीं जानना चाहिए। उनके सन्तुष्ट होने पर पितरों के साथ देवगण भी सन्तुष्ट हो जाते हैं ।।२५–२६।। हे राजेन्द्र! श्राद्ध में नियुक्त होनेवाले उन ब्राह्मणों के कुल, शील, विद्या अथवा तपस्या का विचार नहीं करना चाहिए, उनके सुपूजित होने पर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है ।।२७।। अपनी सामर्थ्य एवं बलाबल का विचारकर श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह अपने समस्त मनोरथों को प्राप्त करता है और मोक्ष के साधनों को हस्तगत करता है। हे राजन्। गयाकूप में अपने वर्ण के,

तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डदा इति नः श्रुतम् । अज्ञातनामगोत्राणां मन्त्र एष प्रकीर्तितः ।।३०।।
पितृवंशे समुत्पन्ना मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवास्तथा ।।३१।।
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।।३२।।
क्रियालोपगता ये चान्ये गर्भसंस्थिताः । तेभ्यो दत्तो मया पिण्डो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।३३।।
आत्मनस्तु महाबुद्धे गयायां तु तिलैर्विना । पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्तथा चान्येऽत्र गोत्रजाः ।।३४।।
पुत्रेभ्योऽपि दुहितृभ्य इष्टेभ्योऽपि च सर्वशः । दद्यात्पिण्डं प्रयत्नेन बुद्धिमान्सुसमाहितः ।।३५।।
त्रिदिवं यान्ति ते सर्वे पिण्डदा इति च श्रुतिः । ब्रह्महा च कृतघ्नश्च महापातकिनश्च ये ।।३६।।
ते सर्वे निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात् । ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य बालवृद्धगुरुद्रुहः ।।३७।।
नाशमायाति वै पापं गयायामनुयाति यः । यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ।।३८।।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु नास्ति तीर्थं गयासमम् । नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ।।३९।।
अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः । गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ।।४०।।
मकरे वर्तमाने तु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । प्रेतपक्षे च चैत्रे च दुर्लभं पिण्डपातनम् ।।४१।।

जाति के, मित्र, परिवार, वर्ग एवं सुहृद, जो भी हों सब के लिए विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए। इनको पिण्डदान करनेवाले सभी लोग स्वर्ग जाते हैं–ऐसा हमने सुना है। जिन लोगों के नाम अथवा गोत्र ज्ञात नहीं हैं, उनका मन्त्र इस प्रकार है ।।२८–३०।। "हमारे पिता के वंश में समुत्पन्न, हमारी माता के वंश में, हमारे गुरु, श्वसुर सब उनके भाई बिरादरी तथा अन्यान्य जो बान्धववर्ग हों, मेरे कुल में जिनकी पिण्ड प्राप्त करने की आशा नष्ट हो गयी हो, जो पुत्र, स्त्री आदि से विवर्जित थे, हमारे कुल में जो ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में उत्पन्न हुए थे, विरूप थे, रुग्ण थे, जिनकी सत्क्रियाएँ लुप्त हो गयी थीं, अर्थात् दुराचारी थे, अथवा गर्भावस्था में ही जिनका विनाश हो गया हो, उन सबों के उद्देश्य से दिया गया यह पिण्ड अक्षय तृप्ति प्रदान करे।" ।।३१–३३।। हे परम बुद्धिमान्! गया क्षेत्र में (?) तिल में बिना अपना (?) पिण्डदान करना चाहिए। अन्यान्य अपने गोत्र में उत्पन्न होनेवाले जो हों, उनके लिए भी यही विधान है। पुत्रों, कन्याओं एवं इष्टमित्रों सब के लिए सावधान होकर बुद्धिमान् पुरुष को प्रयत्नपूर्वक पिण्डदान करना चाहिए ।।३४–३५।। वे सभी पिण्डदान करनेवाले स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं ऐसा सुना जाता है। ब्रह्महत्या करनेवाले, कृतघ्न एवं महान् पाप कर्म करनेवाले, जो लोग हैं वे सब भी गया में पिण्डदान करने से निस्तार पा जाते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले, मदिरापान करनेवाले, बालक, वृद्ध एवं गुरु से द्रोह करनेवाले, इन सबों के भी पाप नष्ट हो जाते हैं, यदि वे गया की यात्रा करें। जिसका नाम लेकर पिण्डदान किया जाता है, वह शाश्वत ब्रह्म पद की प्राप्ति करता है ।।३६–३८।। तीनों लोकों में गया के समान दुर्लभ तीर्थ कोई नहीं है। उसके प्रभाव से नरक में रहनेवाले स्वर्ग जाते हैं और स्वर्ग में रहनेवाले मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।।३९।। मनुष्य अपने मन में यह शुभ कल्पना करते रहते हैं कि हमारे कुल में भी ऐसे सन्मार्गगामी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो गया की यात्राकर आदरपूर्वक हमें पिण्डदान करेंगे। मकर राशि में सूर्य के होने पर, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर, पितृपक्ष में और चैत्र मास में पिण्डदान दुर्लभ है, अर्थात् इन अवसरों पर गया में पिण्डदान का महान् फल

अधिमासे जन्मदिने चास्ते च गुरुशुक्रयोः। न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ।।
गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः) ।।४२।।
(*गयायामक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च। पितृक्षयाहे ते पुत्र तस्मात्तत्राक्षयं स्मृतम् ।।४३।।
पुनीयादेकविंशं तु गौर्यामुत्पादितः सुतः। मातामहांस्तु षड्भूय इति तस्य फलं स्मृतम् ।।४४।।
फलं वृषस्य वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत। वृषोत्स्रष्टा पुनात्येव दशातीतान्दशावरान् ।।४५।।
यत्किंचित्स्पृश्यते तोयैरुत्तीर्णेन जलान्महीम्। वृषोत्सर्गे पितॄणां तु अक्षयं समुदाहृतम् ।।४६।।
यद्यद्धि संस्पृशेत्तोयं लाङ्गूलादिभिरन्ततः। सर्वं तदक्षयं तस्य पितॄणां नात्र संशयः ।।४७।।
शृङ्गै खुरैर्वा यद्भूमिमुल्लिखत्यनिक्षं वृषः। मधुकुल्याः पितॄस्तस्य अक्षयास्ता भवन्ति वै ।।४८।।
(×सहस्रनल्वमात्रेण तडागेन यथा श्रुतिः। तृप्तिस्तृप्तिः पितॄणां वै तद्वृषस्याधिकोच्यते ।।४९।।
यो ददाति गुडैर्मिश्रांस्तिलान्वै श्राद्धकर्मणि। मधुना मधुमिश्रान्वा अक्षयं सर्वमेव तत् ।।५०।।

बृहस्पतिरुवाच

न ब्राह्मणान्परीक्षेत सदा देये तु मानवः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च श्रूयते वै परीक्षणम् ।।५१।।

है। अधिक मास में, जन्मदिन में, गुरु और शुक्र के अस्त होने पर, सिंह राशि में बृहस्पति के आने पर गया का श्राद्ध न छोड़ना चाहिए। बुद्धिमान् लोग तो सर्वदा गया में पिण्डदान करते हैं ।।४०-४२।। हे पुत्र! गया तीर्थ में पितरों की निधनतिथि के अवसर पर श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जप, हवन एवं तप का भी अक्षयफल कहा जाता है। गौरी पत्नी में समुत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ी को पवित्र करता है। इसके अतिरिक्त मामा के परिवार में छह को पवित्र करता है– ऐसा फल कहा गया है ।।४३-४४।। अब वृष का फल बतला रहा हूँ, सुनिये। वृषोत्सर्ग करनेवाला दस पूर्वजों और दस बाद में उत्पन्न होनेवाले पुरुषों को पवित्र करता है। जल से तैरकर पृथ्वी पर आनेवाले वृक्ष की पूँछ से गिरनेवाले जल विन्दुओं द्वारा वृषोत्सर्ग कर्म में जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, पितरों के लिए अक्षय फलदायिनी कही जाती हैं ।।४५-४६।। इस प्रकार अन्त तक वृष के लांगूल आदि से गिरनेवाले जल द्वारा जो-जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, वे सब पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाली हैं–इसमें सन्देह नहीं। वह वृष अपने सींगों तथा खुरों से जो भूमि खोदता है, वह भूमि अक्षय मधु की नहर के रूप में उसके (दाता के) पितरों को प्राप्त होती है। एक सहस्र नल्व (एक नल्व बराबर चार सौ हाथ के) में विस्तृत तड़ाग के खनाने से पितरों की जो तृप्ति सुनी जाती है, उससे अधिक तृप्ति वृषोत्सर्ग से होती है। गुड़मिश्रित तिलों, मधुमिश्रित तिलों से अथवा मधु से जो श्राद्धकर्म किया जाता है, वह सब अक्षय फलदायी होता है ।।४७-५०।।

बृहस्पति ने कहा–मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वदा दान कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे, दैव कर्म में तथा पितरों के कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा सुनी जाती है ।।५१।। सभी समस्त वेदों के व्रती अर्थात् वेदाभ्यासपरायण, वेदों

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

सर्ववेदव्रतस्नाताः पङ्क्तीनां पावना द्विजाः । ये च भाष्यविदो मुख्या ये च व्याकरणे रताः ।।५२।।
अधीयते पुराणं च धर्मशास्त्रं तथैव च । त्रिणाचिकेतपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।।५३।।
ब्रह्मदेयसुतश्चैव छन्दोगो ज्येष्ठसामगः । पुण्येषु येषु तीर्थेषु अभिषेककृतव्रताः ।।५४।।
मुख्येषु येषु सत्रेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः । ये च सद्योव्रता नित्यं स्वकर्मनिरताश्च ये ।।
अक्रोधनाः शान्तिपरास्तान्वै श्राद्धे निमन्त्रयेत् ।।५५।।
(+ये चापि नित्यं दशसु सुकृतेषु व्यवस्थिताः । *स्वकर्मनिरता नित्यं ताञ्श्राद्धेषु निमन्त्रयेत् ।।५६।।
एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पङ्क्तिपावनाः । श्रद्धया ब्राह्मणा ये तु योगधर्ममनुव्रताः ।।५७।।
धर्मा श्रमवरिष्ठास्ते हव्यकव्येषु ते वराः । त्रयोऽपि पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।५८।।
पितृभिः सह लोकाश्च यो ह्येतान्पूजयेन्नरः । पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।।५९।।
प्रथमः सर्वधर्माणां योगधर्मो निगद्यते । अपाङ्क्तेयांस्तु वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ।।६०।।
कितवो मद्यपो यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायनो वणिजस्तथा ।।६१।।
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । समुद्रयायी दुश्चर्मा तैलिकः कूटकारकः ।।६२।।

के पारगामी, पंक्तिपावन, भाष्य के जाननेवाले, मुख्यतः व्याकरणवेत्ता, पुराणों और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में निरत रहनेवाले, नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्येता, पंचाग्नि के उपासक, वेदों के छहों अंगों के जाननेवाले, त्रिसुपर्ण, ब्रह्मज्ञानियों का पुत्र, छन्दोग, ज्येष्ठसाम को जाननेवाले, जितने भी पुण्य तीर्थ हैं, उनमें व्रतोपरान्त अभिषेक करनेवाले, मुख्य-मुख्य यज्ञों में अवभृथ स्नान करनेवाले, शीघ्र ही किसी व्रत से निवृत्त होनेवाले, अपने-अपने कर्मों में निरत रहनेवाले, क्रोधरहित तथा शान्तिपरायण जो ब्राह्मण हों उन्हें श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए ।।५२-५५।। जो सर्वदा दसों शुभ कर्मों में व्यवस्थित रहकर जीवनयापन करनेवाले हैं तथा अपने कर्मों में निरत रहते हैं, उन्हें श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए ।।५६।। इन सत्पात्रों में दिया गया दान अक्षय फलदायी होता है-ये उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं। जो योगधर्म में अनुरक्ति एवं श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मण हैं, वे वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा माननेवाली सभी जातियों में श्रेष्ठ हैं, और हव्य कव्य-सभी कार्यों में श्रेष्ठ हैं। जिसने ऐसे ब्राह्मणों की पूजा की, उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश-तीनों देवताओं की पूजा की। जो मनुष्य ऐसे सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा करता है। योगधर्म सभी पवित्र पदार्थों से अधिक पवित्र एवं सभी मंगलदायी वस्तुओं से अधिक मंगलदायी है। सभी धर्मों में वह प्रथम कहा गया है। अब इसके उपरान्त जो अपंक्तिपावन ब्राह्मण हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनिये ।।५७-६०।। धूर्त, शराबी, यक्ष्मारोगग्रस्त, पशुओं की पालना करनेवाला, कुरूप, ग्राम में दूत या सेवक का काम करनेवाला, व्याज से जीविका चलानेवाला, गायक, व्यवसायी, किसी का स्थान जलानेवाला, विष देनेवाला, छिनाले से उत्पन्न होनेवालों का अन्न खानेवाला, सोमरस का विक्रय करनेवाला, समुद्र यात्रा करनेवाला, दुष्ट चमड़ेवाला, तेल का व्यवसायी,

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे। अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पैर्यश्चोपजीवति ।।६३।।
सूचकः पर्वकारी च यस्तु मित्रेषु द्रुह्यति। गणयाचनकश्चैव नास्तिको वेदवर्जितः ।।६४।।
उन्मत्तः पण्डकशठौ भ्रूणहा गुरुतल्पगः। भिषक्जीवः प्रैषणिकः परस्त्रीं यश्च गच्छति ।।६५।।
विक्रीणाति च यो ब्रह्म व्रतानि च तपांसि च। नष्टं स्यान्नास्तिके दत्तं कृतघ्ने चैव शंसके ।।६६।।
यच्च वाणिजके चैव नेह नामुत्र तद्भवेत्। निक्षेपहारिणे चैव कितवे वेदनिन्दके ।।६७।।
तथा वाणिजके चैव कारुके धर्मवर्जिते। निन्दन्क्रीणाति पण्यानि विक्रीणंश्च प्रशंसति ।।६८।।
अनृतस्य समावासो न वणिक्श्राद्धमर्हति। भस्मनीव हुतं हव्यं दत्तं पौनर्भवे द्विजे ।।६९।।
षष्टिं काणः शतं पण्डः श्वित्री यावत्प्रपश्यति। पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ।।७०।।
भ्रश्यते सत्फलात्तस्माद्दाता यस्य तु बालिशः। यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।।७१।।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते यच्च दद्यात्तिरस्कृतम्। सर्वं तदसुरेन्द्राणां ब्रह्मा भागमकल्पयत् ।।७२।।

कूटनीतिज्ञ, पिता के साथ विवाद करनेवाला, जिसके घर में कोई दूसरा गृहस्वामी हो, लम्पट, चोर, शिल्पजीवी, चुगुलखोर, धन के लोभ से बिना पर्व के ही अमावस्या आदि पर्वों के दिन सम्पन्न होनेवाली सत्क्रियाओं का अनुष्ठान करनेवाला, मित्रों के साथ द्रोह करनेवाला, समूह बनाकर याचना करनेवाला, नास्तिक, वेदविहीन, उन्मत्त, हिंजड़ा, दुष्ट प्रकृतिवाला, गर्भ हत्या करनेवाला, गुरु की शय्या पर शयन करनेवाला, वैद्यक से जीविका चलानेवाला, दूत का कर्म करनेवाला, परस्त्रीगामी, जो ब्रह्म (विद्या) व्रत एवं तपस्या को बेचता है, इन सबको दान करने से दान का समस्त फल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नास्तिक, कृतघ्न एवं निन्दक को दान करने से फल का नाश हो जाता है ।।६१–६६।। वाणिज्य व्यवसाय में लगे हुए ब्राह्मण को जो कुछ दिया जाता है वह न तो इस लोक में फल देता है न परलोक में। दूसरे के रखे हुए निक्षेप (गिरवी) को ले लेनेवाले धूर्त एवं वेदनिन्दक को दिये गये दान का भी यही फल होता है। वाणिज्य कर्म में प्रवृत्त, कारीगर, धर्महीन एवं ऐसे लोग जो दूसरे की अच्छी वस्तु को खरीदते समय निन्दा करते हों और अपनी खराब वस्तु की बेचते समय प्रशंसा करते हों–इन सबों को भी दान देने से यही फल होता है। इसी प्रकार मिथ्या भाषण करनेवाला वणिक्, व्यवसाय में प्रवृत्त द्विज भी श्राद्ध के योग्य नहीं है। पौनर्भव[१] ब्राह्मण को दिया गया दान भस्म (राख) पर दी गयी आहुति के समान व्यर्थ है ।।६७–६९।। काना व्यक्ति साठ, नपुंसक सौ, श्वेतकुष्ठ ग्रसित जितने भी कर्मों को देखता है, तथा पाप के कारण रोगी, एक सहस्र दाता के सत्कर्मों के फलों को नष्ट कर देता है। मूर्ख व्यक्ति को दान करनेवाला शुभ कर्मफलों से वंचित हो जाता है। जो सिर को बाँधकर भोजन करता है, जो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके भोजन करता है, जो जूता पहनकर भोजन करता है, जो तिरस्कारपूर्वक दान करता है, उनके समस्त कर्मों के फल को भगवान् ब्रह्मा असुरेन्द्रों के लिए कल्पित करते हैं ।।७०–७२।। श्राद्ध के सम्पन्न होते समय उसे श्वान और यातुधान किसी प्रकार भी न देखने पावें, इसके लिए चारों तरफ से ओट करने के लिए परदा लगा देना चाहिए और

---

[१] पति से परित्यक्त अथवा विधवा यदि अपनी इच्छा से परपुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न करती है तो वह पौनर्भव कहा जाता है।

श्वानश्च यातुधानाश्च नावेक्षेरन्कथंचन। तस्मात्परिवृतिं दद्यात्तिलैश्चान्ववकीरयन् ।।७३।।
राक्षसानां तिलाः प्रोक्ताः शुनां परिवृतिस्तथा। दर्शनात्सूकरो हन्ति पक्षपातेन कुक्कुटः ।।७४।।
न प्रीणाति पितृन्देवास्स्वर्गं न च स गच्छति ।।७५।।
नदीतीरेषु रम्येषु सरित्सु च सरस्सु च। विविक्तेषु च प्रीयन्ते दत्तेनेह पितामहाः ।।७६।।
न चाश्रु पातयेज्जातु न युक्तो वाचमीरयेत्। न च कुर्वीत भुञ्जानो ह्यन्योन्यं मत्सरं तदा ।।७७।।
अपसव्ये कृते तेन विधिवद्दर्भपाणिना। पित्र्यमानिधनं कार्यमेवं प्रीणाति वै पितृन् ।।७८।।
अनुमत्याऽऽदितो विप्रानग्नौ कुर्याद्यथाविधि। पितृणां निर्वपेद्भूमौ सूर्पे वा दर्भसंस्तरे ।।७९।।
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं न विलङ्घयेत् ।।८०।।
एवमेते महात्मानो महायोगा महौजसः। सदा वै पितरः पूज्या द्रष्टारो देशकालयोः ।।८१।।
पितृभक्तिरतो नित्यं योगं प्राप्नोत्यनुत्तमम्। ध्यानेन मोक्षं गच्छन्ति हित्वा कर्म शुभाशुभम् ।।८२।।
यज्ञहेतोर्यदुद्भृत्य मोहयित्वा जगत्तदा। गुहायां निहतं योगं कश्यपेन महात्मना ।।८३।।

चारों ओर तिलों का विकिरण करना चाहिए। राक्षसों को निवारित करने के लिए, तिल और कुत्तों को निवारित करने के लिए परदा या दूसरे किसी प्रकार घेरा बना देने की बात कही जाती है। शूकर केवल देख लेने से ही श्राद्ध के फल को नष्ट कर देता है, मुरगा अपने पंखों के फड़फड़ाने से उसके फल को नष्ट कर देता है, रजस्वला स्त्री के स्पर्श से तथा क्रोधपूर्वक दान करने से श्राद्ध के फलों का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने द्वारा किये जानेवाले श्राद्ध के कार्यों को अथवा हवनादि को मित्रों द्वारा सम्पन्न कराता है, उसके कार्य पितरों और देवताओं को सन्तुष्ट नहीं करते और वह स्वर्गलोक को नहीं जाता ।।७३-७५।। सुरम्य नदियों के किनारों पर छोटी-छोटी सरिताओं एवं सरोवरों के मनोहर एकान्त तट पर किये गये श्राद्धादि कार्य से पितामहगण तृप्त होते हैं ।।७६।। श्राद्ध करते समय न तो कभी आँसू गिराना चाहिए, न किसी साधारण बातचीत में सम्मिलित होना चाहिए, न भोजन करते हुए ही श्राद्ध करना चाहिए, एक-दूसरे के प्रति मत्सर अथवा ईर्ष्याभाव भी नहीं प्रकट करना चाहिए ।।७७।। अपसव्य होकर विधिपूर्वक हाथ में कुशा लेकर अपने जीवनपर्यन्त मनुष्य को पितरों का श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार श्राद्ध के करने से पितरगणों की तृप्ति होती है। सर्वप्रथम (गुरुजनों या ब्राह्मणों की) अनुमति प्राप्तकर अग्नि में विधिपूर्वक आहुति करे। पितरों के उद्देश्य से दिया जानेवाला पदार्थ पृथ्वी पर, सूप पर अथवा कुश के बिछावन पर रखना चाहिए ।।७८-७९।। बुद्धिमान् पुरुष शुक्लपक्ष में दिन के प्रथमार्ध में श्राद्ध सम्पन्न करे, और कृष्णपक्ष में उनके उत्तरार्द्ध में करे, रोहिणी[१] का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, देश और काल के देखनेवाले, महान् तेजस्वी, महान् योगी एवं परम महात्मा उन पितरों की सर्वदा पूजा करनी चाहिए ।।८०-८१।। पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य सर्वदा श्रेष्ठ योग की सिद्धि प्राप्त करता है। पितरों का ध्यान करने से वे अपने शुभाशुभ कर्म बन्धनों से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। महात्मा कश्यप ने जगत् को मोहित करके यज्ञ के लिए जिस योग का उद्धारकर गुफा में सुरक्षित रखा था, हे योग जाननेवालों में प्रवीण!

---

[१] पन्द्रह भागों में विभक्त दिन का नवाँ भाग।

अमृतं गुह्यमुद्धृत्य योगं योगविदांवर। प्रोक्तं सनत्कुमारेण महान्तं धर्मशाश्वतम् ।।८४।।
देवानां परमं गुह्यमृषीणां च परायणम्। पितृभक्त्या प्रयत्नेन पितृभक्तैश्च नित्यशः ।।८५।।
तं च योगं समासेन पितृभक्तस्तु कृत्स्नशः। प्रयत्नात्प्राप्नुयात्तत्र सर्वमेव न संशयः ।।८६।।
यस्मै श्राद्धानि देयानि यच्च दत्तं महाफलम्। येषु वाऽप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च ।।
येषु च स्वर्गमाप्नोति तत्ते प्रोक्तं ससंग्रहम् ।।८७।।

बृहस्पतिरुवाच

श्रुत्वैवं श्राद्धकल्पं तु योऽसूयां कुरुते नरः। स मज्जेन्नरके घोरे नास्तिकस्तमसाऽऽवृतः ।।८८।।
महारोगावसायस्तु स यः संयतमानसः। वेदाश्रमान्मुक्तचित्तः कुम्भीकानधिगच्छति ।।
जिह्वाछेदं स्तेनमेत्य प्राप्नुयुस्तेन चैव ह ।।८९।।
सीदन्ति ते सागरे लोष्टभूता योगद्विषः स्थास्यन्ते यावदुर्वी ।।
तस्माच्छ्राद्धे धर्म उद्दिष्ट एष नित्यं कार्यः श्रद्दधानेन पुंसा ।।९०।।
परिवादो न कर्तव्यो योगिनां च विशेषतः। परवादात्कृमिर्भूत्वा तत्रैव परिवर्तते ।।९१।।
योगं परिवदेद्यस्तु ध्वानिनां मोक्षकारणम्। स गच्छेन्नरकं घोरं श्रोता यश्च न संशयः ।।९२।।

उस अमरत्वपूर्ण, परमगोपनीय, चिरन्तन एवं परम महान् योगधर्म को उद्धृत करके सनत्कुमार ने प्रकाशित किया ।।८२-८४।। उस देवताओं की परमगोपनीय, ऋषियों की सर्वस्व योग सम्पत्ति को पितरों में भक्ति रखनेवाले मानव पितरों में भक्ति रखकर नित्य ही प्राप्त करते हैं। संक्षेप में उस योग की प्राप्ति पितृभक्त लोग अपने प्रयत्न से सर्वांशतः प्राप्त कर लेते हैं–इसमें सन्देह नहीं है। जिसे श्राद्ध देना चाहिए, जिस वस्तु के देने से महान् फल की प्राप्ति होती है, जिन तीर्थों अथवा नदियों में किये गये श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जिन तीर्थों में करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है–उन सबको मैं तुमसे संग्रहपूर्वक बतला चुका ।।८५-८७।।

बृहस्पति ने कहा–इस प्रकार श्राद्ध विषयक चर्चा एवं उसकी विधियों को सुनकर जो मनुष्य दोष दृष्टि से देखकर उनमें अश्रद्धा करता है, वह नास्तिक अन्धकार से चारों ओर घिरकर घोर नरक में गिरता है। जो मन को संयत रखकर श्राद्धकर्म सम्पन्न करते हैं, उनके भीषण रोगों का विनाश होता है। वेदों में वर्णित आश्रमों से मुक्त होकर मनमाने ढंग से जीवनयापन करनेवाले कुम्भीक नरक में जाते हैं। जिह्वा के छेदन एवं चौर्य कर्म को वे प्राप्त होते हैं ।।८८-८९।। जो योग से द्वेष करनेवाले हैं, वे समुद्र में ढेला होकर तब तक निवास करते हैं जब तक इस पृथ्वी की अवस्थिति रहती है। इसलिए श्राद्ध में ऊपर बतलाये गये इन श्राद्ध नियमों का श्रद्धापूर्वक मनुष्यों को सर्वदा पालन करना चाहिए ।।९०।। विशेषतया योगियों की निन्दा तो नहीं ही करनी चाहिए, योगियों की निन्दा करने से वहीं पर कृमि होकर जन्म धारण करना पड़ता है। ध्यानपरायण योगियों के अन्यतम लक्ष्य मोक्ष के मुख्य साधन की जो निन्दा करता है, वह

आवृतं तमसा सर्वं परमं घोरदर्शनम् । योगीश्वरपरीवादान्निश्चयं याति मानवः ।।९३।।
योगेश्वराणामाक्रोशं शृणुयाद्यो यतात्मनाम् । स हि कालं चिरं मज्जेत्कुम्भीपाके न संशयः ।।९४।।
मनसा कर्मणा वाचा द्वेषं योगिषु वर्जयेत् । प्रेत्यान्यं तत्फलं भुङ्क्ते इह चैव न संशयः ।।९५।।
न पारगो विन्दति पारमात्मनस्त्रिलोकमध्ये चरति स्वकर्मभिः ।।
ऋचो यजुः साम तदङ्गपारगो विकारमेवं ह्यनवाप्य सीदति ।।९६।।
विकारपारः प्रकृतेश्च पारगस्त्रयीगुणानां त्रिगुणान्तपारगः ।।
तत्त्वं चतुर्विंशतियोगपारगः स पारगो यस्त्वयनान्तपारगः ।।९७।।
कृत्स्नं यथा तत्त्वविसर्गमात्मनस्तथैव भूयः प्रलयं सदाऽऽत्मनः ।।
प्रत्याहरेद्योगबलेन योगवित्स सर्वपारक्रमयानगोचरः ।।९८।।
वेदस्य वेदिता यो वै वेद्यं विन्दति योगवित् । तं वै वेदविदं प्राहुस्तं प्राहुर्वेदपारगम् ।।९९।।
वेद्यं च वेदितव्यं च विदित्वा वै यथाविधि । एवं वेदविदं प्राहुस्ततोऽन्ये वेदचिन्तकाः ।।१००।।
यज्ञान्वेदांस्तथा कामाञ्ज्ञानानि विविधानि च । प्राप्नोत्यायुः प्रजाश्चैव पितृभक्तो धनानि च ।।१०१।।

घोर नरक में जाता है, उस निन्दा को सुननेवाला भी घोर नरक में जाता है–इसमें सन्देह नहीं ।।९१–९२।। योगपरायण योगेश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य चारों ओर से अन्धकार से आच्छन्न, परम घोर दिखायी पड़नेवाले नरक में निश्चय ही जाता है। आत्मा को वश में रखनेवाले योगेश्वरों की निन्दा जो मनुष्य सुनता है, वह चिरकालपर्यन्त कुम्भीपाक नरक में निवास करता है–इसमें सन्देह नही। योगियों के प्रति द्वेष की भावना मनसा, वाचा, कर्मणा–सर्वथा वर्जित रखनी चाहिए। इस सत्कर्म का फल वह दूसरे जन्म में भोगता है, और इस जन्म में भी भोगता है–इसमें सन्देह नहीं ।।९३–९५।। योग मार्ग के पारंगत आत्मा के पार को नहीं प्राप्त होते (?) अपने कर्म के अनुसार वे तीनों लोकों में विचरण करते हैं। ऋक्, यजु और सामवेद तथा इनके समस्त अंगों के पारंगत इस प्रकार विकारों को न प्राप्त होकर आनन्द का अनुभव करते हैं ।।९६।। समस्त विकारों के पार जानेवाले, प्रकृति के पारगामी, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के पारगामी वास्तव में तीनों गुणों के पारगामी हैं। जो योग मार्ग एवं चौबीस तत्त्वों के पारगामी हैं, वे ही वास्तव में इस जन्म–मरण रूप संसृति सम्बन्ध के पारगामी हैं। जिस प्रकार योगी निखिल योग तत्त्वों को अपने योगबल द्वारा विसर्जित करता है, उसी प्रकार सर्वदा अपना विनाश भी संघटित करता है, इस प्रकार योग के तत्त्वों को भलीभाँति जाननेवाला योगी, सबसे परे जिसकी गति है, ऐसे परम पुरुष के गोचर होता है, अर्थात् योगी योग का आश्रय लेकर शरीर त्याग करते हैं और आत्मसारूप्य प्राप्त करते हैं। योग के तत्त्वों को जाननेवाला जो पुरुष वेदों का सम्यक् अध्ययनकर वेदों के वेद्य (जानने योग्य) उस परम पुरुष को प्राप्त करता है, उसे ही वास्तव में वेदों का तत्त्ववेत्ता और वेदों का पारगामी कहा जाता है ।।९७–९९।। जो वेदों के चरम प्रतिपाद्य उस परम पुरुष को भलीभाँति जानता है, वही वास्तव में वेदों के तत्त्वों को जाननेवाला है, दूसरे सब वेद चिन्तक हैं ।।१००।। पितरों में भक्ति रखनेवाला समस्त यज्ञों, समस्त वेदों, समस्त मनोरथों, विविध ज्ञान–विज्ञान, दीर्घायु, प्रचुर सम्पत्ति एवं पुत्र–पौत्रादिकों सबको प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर जो मनुष्य इस

श्राद्धे यः श्राद्धकल्पं वै यस्त्विमं नियतं पठेत् । सर्वाण्येतान्यवाप्नोति तीर्थे दानफलानि च ।।१०२।।
स पङ्क्तिपावनश्चैव द्विजानामग्रभुग्भवेत् । अध्याप्य वा द्विजान्सर्वान्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।।१०३।।
यश्चैव शृणुयान्नित्यमानन्त्यं स्वर्गमश्नुते । अनसूयो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ।।१०४।।
तीर्थानां च फलं कृत्स्नं दानादीनां तथैव च । मोक्षोपायो ह्ययं श्रेष्ठः स्वर्गोपायो ह्ययं परः ।।
इह चापि परा तुष्टिस्तस्मात्कुर्वीत यत्नतः ।।१०५।।
इमं विधिं यो हि पठेदतन्द्रितः समाहितः संसदि पर्वसंधिषु ।।
अपत्यभाग्भवति परेण तेजसा दिवौकसां स व्रजते सलोकताम् ।।१०६।।
येन प्रोक्तोस्त्वयं कल्पो नमस्तस्मै स्वयंभुवे । महायोगेश्वरेभ्यश्च सदा च प्रणतो ह्यहम् ।।१०७।।
इत्येते पितरस्तात देवानामपि देवताः । सप्तस्वेतेषु ते नित्यं स्थानेषु पितरोऽव्यथाः ।।१०८।।
प्रजापतिसुता ह्येते सर्वे चैव महात्मनः । आद्यो गणस्तु योगानां स नित्यो योगवर्धनः ।।१०९।।
द्वितीयो देवतानां नु तृतीयो देवताऽऽरिणाम् । शेषास्तु वर्णिनां ज्ञेया इति सर्वे प्रकीर्तिताः ।।११०।।
देवास्त्वेतान्यजन्ते वै सर्वेष्वेतेष्ववस्थिताः । आश्रमास्तु यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाक्रमम् ।।१११।।
वर्णाश्चापि यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाविधि । तथा संकरजाताश्च म्लेच्छाश्चैव यजन्ति वै ।।११२।।

श्राद्धकल्प का सावधान चित्त होकर पाठ करता है, वह पूर्व कथित समस्त फलों को तथा तीर्थ में दिये गये दानों के फलों को प्राप्त करता है ।।१०१-१०२।। वह पवित्रात्मा पुरुष पंक्तिपावन तथा ब्राह्मण समाज में सर्वप्रथम भोजन करनेवाला होता है। अथवा समस्त ब्राह्मण समाज को विद्याहीन करके अपने समस्त मनोरथ को प्राप्त करता है ।।१०३।। जो मनुष्य इस श्राद्ध के माहात्म्य को नित्य श्रद्धाभाव से, क्रोध को वश में रख, लोभ आदि से रहित होकर श्रवण करता है वह अनन्त काल पर्यन्त स्वर्ग भोगता है। समस्त तीर्थों एवं दानों के फलों को वह प्राप्त करता है, यह मोक्ष का सबसे श्रेष्ठ उपाय है, स्वर्ग-प्राप्ति के लिए इससे बढ़कर सरल उपाय कोई दूसरा नहीं है। इस लोक में इसके द्वारा परम संतोष की प्राप्ति होती है-अतः यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिए ।।१०४-१०५।। आलस्यरहित होकर पर्व-सन्धियों में जो व्यक्ति इस श्राद्ध विधि का पाठ सावधानीपूर्वक सभा आदि में करता है, वह परम तेजस्वी मनुष्य संततिवान् होता है, और देवताओं के समान उसे पवित्र लोक की प्राप्ति होती है ।।१०६।। जिस अजन्मा भगवान् स्वयंभू ने श्राद्ध की पुनीत विधि बतलायी है, उसे हम नमस्कार करते हैं ।।१०७।। महान् योगेश्वरों के चरणों में हम सर्वदा प्रणाम करते हैं। हे तात! ये पितरगण देवताओं के भी देवता हैं, वे नाशहीन पितरगण इन सात स्थानों में नित्य निवास करते हैं। वे सब परम महात्मा तथा प्रजापति के पुत्र हैं, इनका सर्वप्रथम गण योगियों का है, अतः वे नित्य योगवर्धन के नाम से विख्यात हैं ।।१०८-१०९।। द्वितीय गण देवताओं का, तृतीय देवताओं के शत्रुओं का, शेष अन्य वर्णियों के हैं-इन सबों का वर्णन कर चुका। इन सब लोकों में अवस्थित रहकर देवगण इन सबों की पूजा करते हैं। चारों आश्रम में निवास करनेवाले क्रमपूर्वक इनकी पूजा करते हैं, चारों वर्ण के लोग भी इन सबों की विधिपूर्वक पूजा करते हैं,

पितॄंश्च यो यजेद्भक्त्या पितरः पूजयन्ति तम् । पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः ।।
पुष्टिं प्रजाश्च स्वर्गं च प्रयच्छन्ति पितामहाः ।।११३।।
देवकार्यादपि सूनो पितृकार्यं विशिष्यते । देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्वयम् ।।११४।।
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणां च परा गतिः । तपसा विप्रकृष्टेन दृश्यते मांसचक्षुषा ।।११५।।
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् । पावनं ह्युत्तमं प्रोक्तं देवानां पितृभिः सह ।।११६।।
येषां दास्यन्ति पिण्डांस्त्रीन्बान्धवा नामगोत्रतः । भूमौ कुशोत्तरायां च अपसव्यविधानतः ।।११७।।
सर्वत्र वर्तमानांस्ते पिण्डाः प्रीणन्ति वै पितॄन् । यदाहारो भवेज्जन्तुराहारः सोऽस्य जायते ।।११८।।
यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मातरम् । तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ।।११९।।
नाम गोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तम् । अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छति ।।१२०।।
एवमेषा स्थिता संस्था ब्रह्मणा परमेष्ठिना । पितॄणामादिसर्गस्तु लोकानामक्षयार्थिनाम् ।।१२१।।
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः । दौहित्रां यजमानाश्च प्रोक्ताश्चैव मयाऽनघाः ।।१२२।।
लोका दुहितरश्चैव दौहित्राश्च सुतास्तथा । दानानि सह शौचेन तीर्थानि च फलानि च ।।१२३।।
अक्षयत्वं द्विजाश्चैव यायावरविधिस्तथा । प्रोक्तं सर्वं यथान्यायं यथा ब्रह्माऽऽब्रवीत्पुरा ।।१२४।।

इसी प्रकार समस्त म्लेच्छ जातिवाले और संकरवर्ण भी उन सबों की पूजा करते हैं। जो भक्तिपूर्वक इन पितरों की पूजा करता है, उसकी पूजा पितरगण स्वयं करते हैं, पुष्टि एवं पूजा की कामना करनेवाले को ये पितामहादि पितरगण सब प्रकार से पुष्टि, प्रजाएँ और स्वर्ग प्रदान करते हैं ।।११०–११३।। पुत्र के लिए पितरों का कार्य देवकार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, देवताओं से पूर्व पितरों को सन्तुष्ट करने की बात कही जाती है। पितरों की परम सूक्ष्म योगगति उत्कृष्ट तपस्या के प्रभाव से वंचित मांस के नेत्रों से नहीं दिखायी पड़ती अर्थात् उसे देखने के लिए परम कठोर तप की आवश्यकता है। समस्त देवताओं और पितरों के लिए चाँदी का पात्र विहित है, अभाव में चाँदी से समन्वित (मढ़ा हुआ) होना चाहिए। ऐसे पात्र इनके कार्यों में परम पुनीत कहे जाते हैं। जिनके परिवार वर्ग के लोग नाम और गोत्र का उच्चारणकर विधिपूर्वक अपसव्य होकर कुश बिछी भूमि पर तीन पिण्डदान करते हैं, उनके वे तीनों पिण्ड सर्वत्र वर्तमान रहनेवाले पितरों को प्रसन्न करते हैं। जन्तु (मनुष्य) जो आहार करता है, वही आहार उसके पितर का होना चाहिए ।।११४–११७।। जिस प्रकार चारागाह में सकैड़ों गौओं में छिपी हुई अपनी माता को बछड़ा पा जाता है, उसी प्रकार श्राद्धकर्म में दिये गये पदार्थों को मंत्र वहाँ पर पहुँचा देता है, जहाँ वह जीव अवस्थित रहता है। पितरों के नाम, गोत्र और मंत्र श्राद्ध में दिये गये अन्न को उसके पास ले जाते हैं, चाहे वे सैकड़ों योनियों में क्यों न गये हों पर श्राद्ध के अन्नादि से उसकी तृप्ति होती है। परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा ने इसी प्रकार की श्राद्ध की मर्यादा स्थिर की है, अक्षय लाभ की प्राप्ति के अभिलाषी लोगों के लिए पितरों की यह आदि सृष्टि हुई ।।११८–१२१।। ये पितरगण ही देवस्वरूप हैं और देवगण ही पितरस्वरूप हैं। निष्पाप ऋषिगण, दौहित्र (नाती) गण उन पितरों के यजमान हैं। समस्त लोक उनकी पुत्री, नाती और पुत्र के रूप में है। श्राद्धकर्म में पवित्रता, दान, तीर्थ, फल, अक्षय फल–प्राप्ति, द्विजगण, पर्यटन विधि आदि सभी आवश्यक विषयों

बृहस्पतिरुवाच

इत्येतदङ्गिराः प्राह ऋषीणां शृण्वतां तदा। पृष्टस्तु संशयं सर्वं पितृणां प्राह संसदि ।।१२५।।
सत्रे वै वितते पूर्वं तदा वर्षसहस्रिके। यस्मिन्गृहपतिर्ह्यासीद्ब्रह्मा वै देवता प्रभुः ।।१२६।।
संवत्सरशतान्पञ्च तत्रोपेता इति श्रुतिः। श्लोकाश्चात्र पुरा गीता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।।१२७।।
दीक्षितस्य तदा सत्रे ब्रह्मणः परमात्मनः। तत्रैव जातमत्युग्रं पितृणामक्षयार्थिनाम् ।।
लोकानां च हितार्थाय ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।१२८।।

सूत उवाच

एवं बृहस्पतिः पूर्वं पृष्टः पुत्रेण धीमता। प्रोवाच पितृवंशं तु यत्तद्वै समुदाहृतम् ।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वरुणस्य निबोधत ।।१२९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

की चर्चा पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने जिस प्रकार की थी, उन सब विधियों को मैं आप लोगों से बतला चुका ।।१२२–१२४।।

बृहस्पति ने कहा–प्राचीनकाल में ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर महर्षि अंगिरा ने पितरों के विषय में समस्त संशयात्मक बातों की चर्चा एक सभा में की थी। ऐसा सुना जाता है कि पूर्व समय में एक सहस्र वर्ष तक चलनेवाला महायज्ञ सम्पन्न हुआ था, जिसमें गृहपति होकर भगवान् ब्रह्मा पाँच सौ वर्षों तक देवताओं पर प्रभुत्व स्थापित किये रहे। ब्रह्मवेत्तागण इस विषय में कुछ श्लोक गाते हैं (जिसका आशय निम्न प्रकार है)। उस महान् यज्ञ में परमात्मा परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा के दीक्षित होने पर उन्हीं से समस्त लोकों के कल्याणार्थ, अक्षय लाभ के प्रार्थी पितरों का उत्तम जन्म वहीं पर सम्पन्न हुआ ।।१२५–१२८।।

सूत बोले–अपने बुद्धिमान् पुत्र से पूछने पर इस प्रकार पूर्व काल में बृहस्पति ने पितरों के वंश का जो वर्णन किया था, वही मैंने आप लोगों को बतलाया। अब इसके उपरान्त मैं वरुण के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।१२९।।

श्री वायुमहापुराण में श्राद्धकल्प नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८३।।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे वरुणवंशवर्णनम्

ऋषयश्चैवमुक्तास्तु परं हर्षमुपागताः। परं शुश्रूषवो भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ।।१।।

ऋषय ऊचुः

वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम्। स्थितिं चैषां प्रभावं च ब्रूहि नः परिपृच्छताम् ।।२।।
एवमुक्तस्ततः सूतस्तथाऽसौ लोमहर्षणः। शुश्रूषामुत्तराख्याने ऋषीणां वाक्यकोविदः।।
आख्यानकुशलो भूयः परं वाक्यमुवाच ह ।।३।।

सूत उवाच

ब्रुवतो मे निबोधस्य ऋषिराह यथा मम ।।४।।
वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम्। स्थितिं चैव प्रभावं च ब्रुवतो मे निबोधत ।।५।।
वरुणस्य पत्नी सामुद्री शुनादेवीत्युदाहृता। तस्याः पुत्रौ कलिर्वैद्यः सुता च सुरसुन्दरी ।।६।।
कलिपुत्रौ महावीर्यौ जयश्च विजयश्च ह। वैद्यपुत्रौ घृणिश्चैव मुनिश्चैव महाबलौ ।।७।।
प्रजानामत्तुकामानामन्योन्यस्य प्रभक्षिणौ। भक्षयित्वा तावन्योन्यं विनाशं समवापतुः ।।८।।
कलिः सुरायां संजज्ञे तस्य पुत्रो मदः स्मृतः। त्वाष्ट्री हिंसा कलेर्भार्या ज्येष्ठा या निकृतिः स्मृता ।।९।।

अध्याय ८४

श्राद्ध विधि के प्रसंग में वरुण के वंश का वर्णन

सूत के ऐसा कहने पर ऋषिगण परम हर्षित हुए और पुनः जिज्ञासा भाव से उनसे पूछा ।।१।।

ऋषियों ने कहा–अमित तेजस्वी राजाओं के वंशों का क्रमपूर्वक वर्णन, उनकी स्थिति एवं उनके प्रभाव को हम लोग सुनना चाहते हैं, बतलाइये। लोमहर्षण सूत जी, जो समस्त श्रोता ऋषियों के उत्तर देने में परम प्रवीण सुन्दर वाक्यों के बोलने में सुनिपुण एवं प्राचीन आख्यानों के कुशल वक्ता थे, ऋषि के इस प्रकार पूछने पर पुनः बोले ।।२–३।।

सूत ने कहा–ऋषि ने इस विषय में जो कुछ मुझे बतलाया है उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। अमित तेजस्वी राजाओं के वंश, उनकी स्थिति एवं उनके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। वरुण की पत्नी सामुद्री थीं जो शुना देवी के नाम से पुकारी जाती हैं, उनके कलि और वैद्य नामक दो पुत्र हुए और एक पुत्री सुरसुन्दरी नामक हुई ।।४–६।। कलि के दो महाबलवान् पुत्र जय और विजय नामक हुए। वैद्य के घृणि और मुनि नामक दो महाबलवान् पुत्र हुए। प्रजाओं के भक्षण करने को उत्सुक वे दोनों एक–दूसरे को भक्षण करने को उद्यत हुए। और एक–दूसरे को भक्षणकर विनाश को भी प्राप्त हुए। सुरा (शुना ?) के गर्भ से कलि की उत्पत्ति हुई, उसके पुत्र का नाम मद कहा जाता है। त्वष्टा की पुत्री हिंसा कलि की स्त्री थी, जो ज्येष्ठ स्त्री थी, उसका नाम निकृति कहा जाता है ।।७–९।। उसने कलि के संयोग

असूतान्यान्कलेः पुत्रांश्चतुरः पुरुषादकान्। नाकं विघ्नं च विख्यातं सद्रमं विधमं तथा ।।१०।।
अशिरस्कस्तयोर्विघ्नो नाकश्चैवाशरीरवान्। सद्रमश्चैकहस्तोऽभूद्विधमश्चैकपात्स्मृतः ।।११।।
सद्रमस्य तथा पत्नी तामसी पूतना स्मृता। रेवती विधमस्यापि तयोः पुत्राः सहस्रशः ।।१२।।
नाकस्य शकुनिः पत्नी विघ्नस्य च अयोमुखी। राक्षसास्तु महाशीर्षाः संध्याद्वयविचारिणः ।।१३।।
रेवतीपूतनापुत्रा नैर्ऋता नामतः स्मृताः। ग्रहास्ते राक्षसाः सर्वे बालानां तु विशेषतः।।
स्कन्दस्तेषामधिपतिर्ब्रह्मणोऽनुमते प्रभुः ।।१४।।
बृहस्पतेर्या भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी। योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता चरते सदा ।।१५।।
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु। विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पिप्रजापतिः ।।१६।।
त्वष्टा विराजा रूपाणां धर्मपौत्र उदारधीः। कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वास्तुकृत् ।।१७।।
यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह। मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ।।१८।।
प्रह्लादी विश्रुता तस्य त्वष्टुः पत्नी विरोचना। विरोचनस्य भगिनी माता त्रिशिरसस्तु सा ।।१९।।
देवचार्यस्य महतो विश्वकर्माऽस्य धीमतः। विश्वकर्मात्मजश्चैव विश्वकर्मा मयः स्मृतः ।।२०।।
सुरेणुरिति विख्याता स्वसा तस्य यवीयसी। त्वाष्ट्री सा सवितुर्भार्या पुनः संज्ञेति विश्रुता ।।२१।।

से जिन चार मनुष्यभक्षी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम नाक, विघ्न, सद्रम और विधम थे। अगले दोनों पुत्रों में विघ्न नामक जो पुत्र था, वह सिरविहीन था, नाक अशरीरी था। सद्रम को केवल एक हाथ था और विधम एक पैरवाला कहा जाता था ।।१०-११।। सद्रम की पत्नी परम तमोगुणमयी पूतना नाम से विख्यात थी, विधम की पत्नी रेवती थी, इन दोनों के सहस्रों पुत्र थे। नाक की पत्नी का नाम शकुनि और विघ्न की पत्नी का नाम अयोमुखी था, जिनके बड़े-बड़े भीषण सिरवाले राक्षस उत्पन्न हुए, जो दोनों सन्ध्याओं में विचरण करते रहते थे। रेवती और पूतना के पुत्र नैर्ऋत नाम से विख्यात थे। ये समस्त राक्षस ग्रह रूप में लोगों को विशेषतया बालकों को कष्ट पहुँचाते थे। ब्रह्मा की आज्ञा से इन सबों के स्वामी स्कन्द (स्वामी कीर्तिकेय) हुए ।।१२-१४।। असक्त भाव से समस्त जगत् में सर्वदा विचरण करनेवाली ब्रह्मचारिणी एवं परम सुन्दरी योगसिद्धा नामक बृहस्पति की जो भगिनी थी, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या थी। उसके पुत्र शिल्पियों के प्रजापति (स्रष्टा) विश्वकर्मा हुए। धर्म के पौत्र उदार बुद्धि विश्वकर्मा परम सुन्दर आकृति से सुशोभित थे, देवताओं के सहस्रों शिल्पकर्मों के वे करनेवाले तथा वास्तु विज्ञान के वेत्ता थे। उन्होंने समस्त देवताओं के विमानों (उड़नेवाले रथों) की रचना की थी। उन्हीं परम महात्मा द्वारा प्रचालित शिल्पकर्म के आश्रय से मनुष्य लोग आज भी अपनी जीविका चलाते हैं ।।१५-१८।। उन विश्वकर्मा की पत्नी विरोचना थी, जो प्रह्लादी नाम से भी विख्यात थी, वह विरोचन की भगिनी और त्रिशिरा की माता थी। परम बुद्धिमान् विश्वकर्मा देवताओं में शिल्पकर्म के आचार्य थे, उनका पुत्र मय भी उसी प्रकार शिल्पकर्म में निपुण होने के कारण विश्वकर्मा नाम से विख्यात हुआ। उस मय की छोटी बहन, विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु नाम से विख्यात थी, जो संज्ञा नाम से सूर्य की पत्नी हुई। उसने अपने परम तपोबल द्वारा सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र मनु को उत्पन्न किया। तदनन्तर उसके यम नामक पुत्र और यमुना नाम की एक पुत्री-दोनों को

असूत तपसा सा तु मनुं ज्येष्ठं विवस्वतः। यमौ पुनरसूतासौ यमं च यमुनां च ह ॥२२॥
स तु गत्वा कुरून्देवी वडवारूपधारिणी। सवितुश्चाश्वरूपस्य नासिकाभ्यां तु तौ स्मृतौ ॥२३॥
असूत सा महाभागा त्वन्तरीक्षेऽश्विनौ किल। नासत्यं चैव दस्रं च मार्तण्डस्याऽऽत्मजावुभौ ॥२४॥

ऋषय ऊचुः

कस्मान्मार्तण्ड इत्येष विवस्वानुच्यते बुधैः। किमर्थं साऽश्वरूपा वै नासिकाभ्यामसूयत ॥
एतद्वेदितुमिच्छामस्तत्त्वं विब्रूहि पृच्छताम् ॥२५॥

सूत उवाच

चिरोत्पन्नमतिर्भिन्नमण्डं त्वष्ट्रा विदारितम्। दृष्ट्वा गर्भवधाद्भीतः कश्यपो दुःखितोऽभवत् ॥२६॥
अण्डे द्विधाकृते त्वण्डं दृष्ट्वा त्वष्टारमब्रवीत्। नैतदण्डं भवान्नूनं मार्तण्डस्त्वं भवानघ ॥२७॥
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहात्पिताऽब्रवीत्। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नामान्वर्थमुदाहरत् ॥२८॥
यन्मार्तण्डो भवेत्युक्तः पित्राऽण्डे वै द्विधा कृते। तस्माद्विवस्वान्मार्तण्डः पुराणज्ञैर्विभाष्यते ॥२९॥
ततः प्रजाः प्रवक्ष्यामि मार्तण्डस्य विवस्वतः। विजज्ञे सवितुः संज्ञाभार्यायां तु त्रयं पुरा ॥३०॥
मनुर्यवीयान्सावर्णिः संज्ञायां च तथाऽश्विनौ। शनैश्चरश्च सप्तैते मार्तण्डस्याऽऽत्मजाः स्मृताः ॥३१॥

जुड़वाँ उत्पन्न किया ॥१९–२२॥ फिर उस देवी ने कुरु देश में जाकर वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किया और अश्वरूप धारण करनेवाले सूर्य के संयोग से आकाश में अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा नासत्य और दस्र नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों मार्तण्डि (सूर्य के पुत्र) कहे जाते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है ॥२३–२४॥

ऋषियों ने पूछा–पण्डित लोग सूर्य को मार्तण्ड किस लिए कहा करते हैं, किस कारणवश संज्ञा ने बडवा का रूप धारण किया और किस प्रकार नासिका के छिद्रों से पुत्र उत्पन्न किया–इस बात को हम लोग सुनना चाहते हैं–विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥२५॥

सूत जी ने कहा–प्राचीनकाल में सूर्यदेव एक अण्डे के रूप में उत्पन्न हुए थे, बहुत दिनों तक जब वह अण्डा फूटा नहीं, तब उसे विश्वकर्मा ने फोड़ दिया। उस समय अण्डे को फोड़ते देख गर्भ हत्या के भय से भीत होकर कश्यप जी बहुत दुःखी हुए ॥२६॥ और उस अण्डे को दो भागों में फूटा देख विश्वकर्मा से बोले, यह सामान्य अण्डा नहीं है, फिर उस अण्डस्थ जीव से बोले–'हे निष्पाप! इस मरे हुए अण्डे से तुम पुनः उत्पन्न हो। निश्चय ही यह अण्डस्थ प्राणी मृत नहीं हुआ है'–इतनी सी बातें स्नेहपूर्वक पिता ने कही। कश्यप की इतनी बातें सुनकर मार्तण्ड (मरे हुए अण्डे से उत्पन्न होना) नाम की सार्थकता बतलायी जाती है। पिता ने अण्डे के दो भागों में विभक्त हो जाने पर भी 'मार्तण्ड हो जाओ'–ऐसी बातें कही थीं, उसी के आधार पर पुराणों के जाननेवाले सूर्य को मार्तण्ड कहते हैं ॥२७–२९॥ अब इसके बाद उस मृत अण्डे से उत्पन्न होनेवाले सूर्य की संततियों का वर्णन कर रहा हूँ। बहुत दिन बीते, उन सूर्य की संज्ञा नामक पत्नी में तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ संज्ञा में उक्त दोनों अश्विनी कुमार और उनसे छोटे सावर्णि मनु नामक पुत्र हुए थे। तदनन्तर शनैश्चर हुए, ये सात (?) मार्तण्ड के आत्मज कहे जाते हैं ॥३१॥ महान् यशस्वी विवस्वान्

विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां महायशाः । तस्य भार्याऽभवत्त्वाष्ट्री महादेवी विवस्वतः ।।
सुरेणुरिति विख्याता पुनः संज्ञेति विश्रुता ।।३२।।
सा तु भार्या भगवतो मार्तण्डस्यातितेजसः । नातुष्यद्भर्तृरूपेण रूपयौवनशालिनी ।।३३।।
आदित्यस्य हि तद्रूपं मार्तण्डस्य हि तेजसा । गात्रेषु प्रतिरुद्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ।।३४।।
न खल्वयं मृतो ह्यण्डे इति स्नेहात्तमब्रवीत् । अज्ञानः कश्यपः स्नेहान्मार्तण्ड इति चोच्यते ।।३५।।
तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः । येनापि तापयामास त्रीँल्लोकान्कश्यपात्मजः ।।३६।।
त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः । द्वौ सुतौ तु महावीर्यौ कन्यां कालिन्दिमेव च ।।३७।।
मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः । ततो यमो यमी चैव यमजौ संबभूवतुः ।।३८।।
शातवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः । असहन्ती स्वकां छायां सवर्णां निर्ममे पुनः ।।३९।।
महीमयी तु सा नारी तस्याश्छायासमुद्गता । प्राञ्जलिः प्रयता भूत्वा पुनः संज्ञामभाषत ।।४०।।
वदस्व किं मया कार्यं सा संज्ञा तामथाब्रवीत् । अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।।४१।।
त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया । इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ।।४२।।
भर्त्रे वै नैवमाख्येयमिदं भगवते त्वया । एवमुक्ताऽब्रवीत्संज्ञां संज्ञा या पार्थिवी तु सा ।।४३।।

दाक्षायणी में महर्षि कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नी विश्वकर्मा की पुत्री महादेवी सुरेणु थीं, जो संज्ञा नाम से भी विख्यात थीं ।।३२।। अमित तेजस्वी भगवान् मार्तण्ड की पत्नी परमरूपवती एवं यौवनवती सुरेणु देवी की सन्तुष्टि पतिरूप में उनसे नहीं होती थी। प्रचुर तेज से देदीप्यमान अदितिपुत्र मार्तण्ड के उस शरीर को अपने अंगों में वह नहीं सहन कर पाती थीं, अतः वह परम मनोहर नहीं लगते थे ।।३३–३४।। यतः कश्यप ने स्नेहपूर्वक बिना जाने-बूझे ही यह कहा था कि इस अण्डे में अवस्थित ये निश्चय ही मरे नहीं हैं, अतः उससे उत्पन्न होने के कारण वे मार्तण्ड नाम से पुकारे जाते हैं ।।३५।। उन कश्यपनन्दन मार्तण्ड का तेज नित्य अधिकाधिक बढ़ने लगा। जिसके द्वारा उन्होंने तीनों लोकों को खूब तपाया। उन्होंने संज्ञा नामक अपनी पत्नी से तीन सन्ततियाँ उत्पन्न कीं, जिनमें दो महाबलशाली पुत्र थे, तीसरी कालिन्दी नामक कन्या थी ।।३६–३७।। सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव प्रजापति मनु थे। उनसे छोटे यमराज और यमी–ये दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए। विवस्वान् (सूर्य) के उस परम तेजोमय रूप एवं चमकनेवाले वर्ण को देखकर संज्ञा उसे सहन करने में असमर्थ हुई और अपनी ही भाँति अपना एक प्रतिबिम्ब निर्माण किया। तदनन्तर मिट्टी की बनी हुई और उसी के समान सुन्दरी वह नारी हाथ जोड़कर विनम्रभाव से उसके सम्मुख उपस्थित हुई और फिर संज्ञा से बोली। 'बतलाइये मैं क्या करूँ?' संज्ञा ने उससे कहा, 'भद्रे! मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ, तुम बिना किसी शंका के मेरे इस घर में निवास करो ।।३८–४१½।। ये दो मेरे बालक और यह एक सुन्दरी कन्या है, (इनकी देख-रेख करना) इस भेद की बात को कभी भी हमारे तेजस्वी पतिदेव से मत कहना।' संज्ञा के ऐसा कहने पर उस मृण्मयी संज्ञा ने कहा, 'हे देवि! सिर के केशों के पकड़े जाने तक तो मैं इस तुम्हारे गुप्त भेद की चर्चा कभी भी किसी से नहीं करूँगी, तुम अपने अभीष्ट स्थान को जाओ।' इस प्रकार अपनी छाया रूपिणी नारी से ऐसी बातें कर अपने पिता विश्वकर्मा के पास

आकेशग्रहणाद्देवि आशयं नैव कर्हिचित् । आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि स्वमालयम् ।।४४।।
समाधाय च तां संज्ञा तथेत्युक्तां तया च सा । त्वष्टुः समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ।।४५।।
पिता तामागतां दृष्ट्वा क्रुद्धः संज्ञामथाब्रवीत् । भर्तुः समीपं गच्छ त्वं मा जुगुप्स दिवाकरम् ।।४६।।
सैवमुक्ता तदा पित्रा नियुक्ता च पुनः पुनः । वर्षाणां तु सहस्रं वै वसति स्म पितुर्गृहे ।।४७।।
भर्तुः समीपं गच्छ त्वं नियुक्ता च पुनः पुनः । अगमद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता ।।
उत्तरान्सा कुरून्गात्वा तृणान्यथ चचार सा ।।४८।।
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्त्यताम् । आदित्यो जनयामास पुत्रावादित्यवर्चसौ ।।४९।।
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन तु तौ प्रभुः । श्रुतश्रवं तु धर्मज्ञं श्रुतकर्माणमेव च ।।५०।।
श्रुतश्रवा मनुः सोऽपि सावर्णिर्वै भविष्यति । श्रुतकर्मा नु विज्ञेयो ग्रहो वै यः शनैश्चरः ।।५१।।
मनुरेवाभवत्स वै सावर्ण इति बुध्यते । संज्ञा तु पार्थिवी सा वै स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ।।५२।।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै । मनुस्तच्चाक्षमत्सर्वं यमस्तद्वै न चाक्षमत् ।।
बहुशो यस्य मानस्तु (अवमानितश्च बहुशः) सापत्न्याददतिदुःखितः ।।
तां वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।।५३।।

वह तपस्विनी बड़ी लज्जा के साथ प्रस्थित हुईं। अपने घर पर आयी हुई संज्ञा को देखकर पिता (विश्वकर्मा) परम क्रुद्ध होकर बोले, 'तुम अपने पति के पास जाओ, दिवाकर के प्रति अपने मन में किसी प्रकार की घृणित भावना मत करो ।।४२-४६।। पिता के ऐसा कहने पर, और बारम्बार आग्रहपूर्वक कहने पर भी वह एक सहस्र वर्षों तक अपने पिता के घर में ही निवास करती रही। 'तुम अपने पति के पास चली जाओ'—ऐसा बारम्बार कहने पर उस अनिन्दनीय चत्रिशालिनी ने अपने स्वरूप को छिपाने के लिए वडवा का रूप धारण किया और पिता के घर से प्रस्थान किया। उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर तृणों को चरकर जीविका चलाने लगी ।।४७-४८।। इधर उस नकली संज्ञा में सूर्य ने असली संज्ञा की भावना से दो अपने ही समान परम तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। वे दोनों पुत्र भी अपने बड़े भाई मनु के समान ही स्वरूपवान् थे, उनकी भी उसी प्रकार प्रभुता थी। उन दोनों पुत्रों के नाम श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा थे, जो परमधर्मज्ञ थे। इनमें श्रुतश्रवा नामक जो पुत्र था, वह भी भविष्य में सावर्णि मनु नाम से प्रसिद्ध होगा, श्रुतकर्मा नामक जो दूसरा पुत्र था, उसे शनैश्चर ग्रह नाम से जानिये ।।४९-५१।। वह भी मनु होगा और सावर्णि नाम से विख्यात होगा। वह मृण्मयी संज्ञा अपने पुत्र को बहुत अधिक स्नेह करती थी, उतना प्रेम भाव उन बड़ी सन्ततियों में नहीं रखती थी। उसके इस मनोभाव को मनु सब प्रकार से सहन कर लेते थे, पर यमराज को यह कतई नापसन्द था। सपत्नी (सौत) के पुत्र होने के कारण जब अपमान की मात्रा बहुत अधिक हो गयी तो वे अतिशय दुःखित हुए। एक दिन बालस्वभाववश अथवा भावीवश अतिशय क्रुद्ध होकर सूर्यपुत्र यमराज ने संज्ञा को अपने पैर से ठोकर लगा दी। समान वर्णवाली माता ने इस

पदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः। सा शशाप ततः क्रोधात्सवर्णा जननी यमम् ।।५४।।
पदा तर्जयसे यस्मात्पितृभार्यां यशस्विनीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ।।५५।।
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्मात्मा पितुः सर्वं न्यवेदयत् ।।५६।।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यैर्विनिर्जितः। बाल्याद्वा यदि वा मोहान्मां भवांस्त्रातुमर्हसि ।।५७।।
शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर। तत्र प्रसादो नस्त्रातु ह्येतस्मान्महतो भयात् ।।५८।।
विवस्वानेवमुक्तस्तु यमं प्रोवाच वै प्रभुः। असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ।।५९।।
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम्। न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातुर्वचस्तव ।।६०।।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीं तव। ततः पादं महाप्राज्ञ पुनः संप्राप्स्यसे सुखम् ।।६१।।
कृतमेवं वचः सत्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि ।।६२।।
आदित्यस्त्वब्रवीत्संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै। तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकस्मिन्क्रियते त्वया ।।६३।।
सा तत्परिहरन्ती वै नाऽऽचचक्षे विवस्वतः। आत्मना स समाधाय योगं तथ्यमपश्यत ।।६४।।
तां शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुपितः प्रभुः। सा तत्सर्वं यथातत्त्वमाचचक्षे विवस्वतः ।।६५।।
विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्ययात्। त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ।।६६।।

दुर्व्यवहार से अतिशय क्रुद्ध होकर यमराज को यह शाप दे दिया–'यतः अपने पिता की स्त्री (माता) को, जो अपने सात्त्विक बल से परम यशस्विनी है, पैर से ठोकर मार रहे हो, अतः तुम्हारा यह पैर गिर पड़ेगा–इसमें सन्देह नहीं' ।।५२–५५।। माता के इस शाप से मन में अतिशय दुःखित होकर धर्मात्मा यमराज बहुत क्षुब्ध हुए और मनु को साथ लेकर पिता से सारी बातें ज्यों–की–त्यों बतला दीं। कहा, हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ! लोकेश! संज्ञा (माता) की बातों से हम एकदम हतप्रभ हो गये हैं, उसके शाप के भय से हम सत्रस्त हैं, अपने लड़कपन के कारण अथवा अज्ञान के कारण हमने यह अपराध किया है, पर फिर भी आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए। हे तात! माता ने हमें ऐसा भीषण शाप दे दिया है, इस महान् भय से हमारी रक्षा केवल आपकी कृपा से ही हो सकती है ।।५६–५८।। यमराज के ऐसा कहने पर सूर्य बोले–हे पुत्र! इस दुर्घटना में अवश्य ही कोई महान् कारण है, जो तुम्हारे जैसे सत्यवादी एवं धर्मात्मा के मन में क्रोध का संचार हुआ, किन्तु तुम्हारी माता के इस शापवचन को निष्फल करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तुम्हारे मांस को लेकर जब कृमि पृथ्वीतल पर जायँगे, हे परमबुद्धिमान्! तब तुम पुनः अपने पैर को बिना अभ्यास के ही सुखपूर्वक प्राप्त करोगे ।।५९–६१।। ऐसा करने पर तुम्हारी माता के वचन भी सत्य रह जायँगे और शाप के परिहार हो जाने से तुम्हारी भी रक्षा हो जायगी ।।६२।। यमराज से ऐसा कहने के अनन्तर आदित्य ने संज्ञा से कहा, सभी पुत्रों के समान होने पर भी तुम एक पुत्र में बहुत अधिक स्नेह क्यों करती हो? संज्ञा ने उस गुप्त भेद को छिपाने की इच्छा से सूर्य की इन बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। तब सूर्य ने अपने योगबल एवं समाधि द्वारा वास्तविक स्थिति का पता लगाया। और सब बातें जानकर उन परम तेजस्वी भास्कर ने संज्ञा का विनाश करने के विचार से शाप देने का निश्चय किया, तब भयभीत होकर संज्ञा ने सूर्य से सारी बातें यथातथ्य रूप में प्रकट कर दीं ।।६३–६५।। उस मृण्मयी छाया द्वारा सारी

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै शनैः। तवातितेजसा युक्तमिदं रूपं न शोभते ।।६७।।
असहन्ती तु तत्संज्ञा वने चरति शाड्वले। द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम् ।।६८।।
श्लाघ्यां यौवनसंपन्नां योगमास्थाय गोपते। अनुकूलं भवेदेवं यदि स्यात्समयो मतः ।।६९।।
रूपं निवर्तयेऽयं ते आद्यं श्रेष्ठमरिंदम। रूपं विवस्वतस्त्वासीत्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।।७०।।
तेनासौ व्रीडितो देवो रूपेण तु दिवस्पतिः। तस्मात्त्वष्टा स चक्रं तु बहु मेने महातपाः ।।७१।।
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्टा रूपनिर्वर्तनाय तु। ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः ।।७२।।
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै। तत्तु निर्भासितं तेजस्तेजसाऽपहृतेन तु ।।७३।।
कान्तात्कान्ततरं द्रष्टुमशुभं शुशुभे ततः। ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां तथा ।।७४।।
अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च। अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखे समभावयत् ।।७५।।
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया। सा तन्निरधमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः ।।७६।।
देवौ तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ।।७७।।
मार्तण्डस्य सुतावेतावष्टमस्य प्रजापतेः। तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ।।७८।।

बातें अवगत कर सूर्य परम क्रुद्ध हुए और उसी क्रोधावेश में विश्वकर्मा के पास पहुँचे। विश्वकर्मा ने सूर्य का समुचित सत्कार एवं पूजन किया और क्रोध से भस्म करने को उद्यत भास्कर को धीरे-धीरे सान्त्वना देते हुए प्रकृतिस्थ किया। तब कहा, परम तेजोमय होने के कारण तुम्हारा यह रूप शोभा नहीं देता, इस प्रकार स्वरूप को सहन करने में अपने को असमर्थ पाकर संज्ञा अब हरे-भरे घास के मैदान में चर रही है। अपनी उस शुभमार्गगामिनी, स्वरूपवती, यौवनशालिनी, प्रशंसनीय गुणोंवाली पत्नी को आप आज देखेंगे, शर्त यही है कि आप हमारी सम्मति अंगीकार करें और जैसा हम कहें वैसा करें। हे शत्रुओं को वश में करनेवाले! तुम्हारे इस श्रेष्ठ तेजोमय पूर्वरूप को हम परिवर्तित करना चाहते हैं ।।६६–६९$\frac{१}{२}$।। उस समय सूर्य का तेजोमय स्वरूप तिरछा, ऊँचा और नीचा था, अर्थात् उनकी किरणें तिरछे, ऊँचे, नीचे सर्वत्र प्रखर तेजोमयी थीं। अपने उक्त रूप की चर्चा से दिनकर देव लज्जित हुए। अपने जिस प्रसिद्ध चक्र से सूर्य के रूप-परिवर्तन की चर्चा महातपस्वी विश्वकर्मा ने की थी, उस चक्र को बहुत सम्मान से देखा। सूर्य से रूप-परिवर्तन की आज्ञा प्राप्तकर विश्वकर्मा मार्तण्ड के सम्मुख सचक्र उपस्थित हुए और अपने उस चक्र (शान) पर रखकर उनके तेज को खराद दिया। चक्र द्वारा तेज की प्रखरता के खराद देने पर सूर्य का शेष तेज परम सुशोभित हुआ। और देखने में पहले जो अच्छा नहीं लगता था वही सुन्दर से भी सुन्दरतर दिखायी पड़ने लगा। तदनन्तर सूर्य ने योगबल द्वारा वडवारूपधारिणी अपनी स्त्री को देखा ।।७०–७४।। उस समय वह अपने तेज एवं नियमों के कारण सभी जीवों से अदृश्य थी। उसे देख मार्तण्ड ने अश्व का रूप धारण किया और मुख की ओर से काम-भावना प्रकट की। काम-चेष्ट करने पर संज्ञा ने पराये पुरुष की शंका से सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा बाहर गिरा दिया। उस बाहर गिराये हुए सूर्य के वीर्य से परम वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई, जो दिव्यगुणसम्पन्न थे। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नाम से विख्यात हैं ।।७५–७७।। ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र कहे जाते हैं। तदनन्तर अपने मनोहर स्वरूप को भास्कर ने संज्ञा को दिखाया, पत्नी संज्ञा अपने पति के इस परम सुन्दर

सा तं दृष्ट्वा तदा भार्यां तुतोष च मुमोह च। यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ।।७९।।
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराजस्ततस्तु सः। सोऽलभत्कर्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः ।।८०।।
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च। मनुः प्रजापतिस्त्वेवं सावर्णः स महायशाः ।।८१।।
भाव्यसौ नागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेऽन्तरे। मेरुपृष्ठे सुरम्ये वै अद्यापि चरते प्रभुः ।।८२।।
भ्राता शनैश्चरस्तत्र ग्रहत्वं स तु लब्धवान्। त्वष्टा तु तेन रूपेण विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ।।
महाप्रतिहतं युद्धे दानवप्रतिवारणे ।।८३।।
यवीयसी तयोर्या तु यमुना च यशस्विनी। अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ।।८४।।
यस्तु ज्येष्ठो महातेजाः सर्गो यस्य तु सांप्रतम्। विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ।।८५।।
इदं तु जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा। वैवस्वतस्य पुत्राणां सप्तानां तु महौजसाम् ।।
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ।।८६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।।८४।।

अभिनव स्वरूप को देखकर परम सन्तुष्ट और मोहित हुई। उधर मृण्मयी संज्ञा के उक्त शाप के कारण यमराज बहुत ही दुःखी और क्षुब्ध थे, किन्तु अपने धर्माचरण द्वारा उन्होंने सबको परम प्रसन्न किया, जिससे उनका नाम ही धर्मराज हुआ। अपने शुभकर्मों द्वारा यम ने परम सुन्दर कान्ति प्राप्त की ।।७८-८०।। यही नहीं, समस्त पितरों का आधिपत्य एवं लोकपालकत्व की पदवी भी उन्हें प्राप्त हुई। महान् यशस्वी सावर्णि मनु इस प्रकार सावर्णि मन्वन्तर में प्रजापति रूप में प्रतिष्ठित होंगे। वे प्रभु सुरम्य सुमेरु के पृष्ठभाग पर आज भी तपश्चर्या में निरत हैं ।।८१-८२।। उसी स्थान पर उनके भ्राता शनैश्चर ग्रह रूप में प्रतिष्ठित हुए। विश्वकर्मा ने सूर्य के उस खरादे हुए तेजोमयरूप से विष्णु के उस चक्र का निर्माण किया, जो युद्ध-स्थल में दानवों का विध्वंसक एवं महान् शक्तिशाली है ।।८३।। उन दोनों की छोटी यशस्विनी भगिनी जो थी, वह यमुना नाम से विख्यात हुई, जो लोक को पवित्र करनेवाली सरिताओं में श्रेष्ठ यमुना के रूप में परिणत हुई। सूर्य के उन दोनों पुत्रों में जो ज्येष्ठ पुत्र थे, उनका नाम मनु था, उन मनु का वंश आज भी पृथ्वीतल पर विद्यमान है, उसे विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ। महातेजस्वी सूर्य के इन सातों देवरूप पुत्रों के जन्म विषयक इस वृत्तान्त को, जो मनुष्य सुनता है अथवा पढ़ता है, वह आपत्तियों में फँसकर भी छुटकारा पा जाता है और महान् यश का भागी होता है ।।८४-८६।।

श्री वायुमहापुराण में वैवस्वतोत्पत्ति वर्णन नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८४।।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषे दैवतैः सह। वैवस्वताय महते पृथिवीराज्यमादिशत् ॥१॥
तस्य वैवस्वतो वक्ष्ये सांप्रतस्य महात्मनः। आनुपूर्व्येण वै विप्राः कीर्त्यमानं निबोधत ॥२॥
मनोर्वैवस्वतस्येह सर्वमादाय सांप्रतम्। मनोः प्रथमजस्याऽऽसन्नव पुत्रास्तु तत्समाः ॥३॥
इक्ष्वाकुर्नहुषश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च। नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागोऽरिष्ट एव च॥
करूशश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥४॥
ब्रह्मणा तु मनुः पूर्वं चोदिवस्तु निबोधत। स्रष्टुं प्रचक्रमे कामं निष्फलं समवर्तत ॥५॥
अथाकरोत्पुत्रकामः परामिष्टिं प्रजापतिः। मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावपत् ॥६॥
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता। दिव्यसंनहना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥७॥
तामिलेत्यथ होवाच मनुर्दण्डधरः स्मृतः। अनुगच्छामि भद्रं ते तमिला प्रत्युवाच ह ॥८॥

अध्याय ८५

श्राद्धीय प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

सूत ने कहा–हे विप्रवृन्द! तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर, जब देवगण भी व्यतीत हो गये, तब महान् प्रभावशाली सूर्य–पुत्र मनु समस्त पृथ्वी के सम्राट् पद के अधिकारी हुए ॥१॥ उन वर्तमान महात्मा सूर्यपुत्र मनु के वंश का वर्णन हम क्रमपूर्वक कर रहे हैं, आप लोग सुनिये। प्रथमतः उन्हीं वैवस्वत मनु के वंश को लेकर बतला रहा हूँ। सबसे बड़े मनु के उन्हीं के समान प्रभावशाली नव[1] पुत्र हुए। जिनके नाम इक्ष्वाकु, नहुष, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र थे, ये नव (?) मनु के पुत्रों के नाम से विख्यात हुए ॥२–४॥ सुनिये, प्राचीन काल में ब्रह्मा की प्रेरणा से मनु ने सृष्टि विस्तार का कर्म प्रारम्भ किया, पर निष्फल रहे। तदनन्तर पुत्र की कामना से प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया, और मित्रावरुण के लिए आहुति अग्नि में छोड़ी। ऐसा सुना जाता है कि उस यज्ञभूमि से परम दिव्य मनोहर वस्त्रों को धारण किये, दिव्य आभरण से विभूषित दिव्य अंगोंवाली इडा उत्पन्न हुई ॥५–७॥ दण्डधारण किये हुए मनु ने ऐसा कहा जाता है कि उसे 'इला' कहकर सम्बोधित किया। तब इला ने पुत्र के अभिलाषी प्रजापति मनु को यह धर्मयुक्त प्रत्युत्तर दिया, 'भद्र! मैं आपकी अनुगामिनी (आज्ञाकारिणी) हूँ, आपका कल्याण हो। बोलनेवालों में श्रेष्ठ! मैं मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ अतः उन्हीं के पास जा रही हूँ, जिससे हमारा

---

[1] गणना से पुत्रों की संख्या दस होती है।

धर्मयुक्तमिदं वाच्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् । मित्रावरुणयोरंशे जाताऽस्मि वदतां वर ।।९।।
तयोः सकाशं यास्यामि मानो धर्मो हतोऽवधीत् । सैवमुक्त्वा पुनर्देवी तयोरन्तिकमागतम् ।।१०।।
गत्वाऽन्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् । अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।।११।।
मनुनैवाहमुक्ताऽस्मि अनुगच्छस्व मामिति । तथा तु वदती साध्वीमिडामाश्रित्य तावुभौ ।।१२।।
देवौ च मित्रावरुणाविदं वचनमूचतुः । अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ।।१३।।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि । आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्या प्रयास्यसि ।।१४।।
सुद्युम्न इति विख्यातिस्त्रिषु लोकेषु पूजितः । जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः ।।१५।।
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्प्रभुः । सा तु देवी वरं लब्ध्वा निवृत्ता पितरं प्रति ।।१६।।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता । सोमपुत्राद्बुधाच्चास्या ऐलो जज्ञे पुरूरवाः ।।१७।।
बुधात्सा जनयित्वा तु सुद्युम्नं पुनरागता । सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।।१८।।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव घ । उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमम् ।।
दिक्ष्ववातस्य राजर्षेर्गयस्य तु गया पुरी ।।१९।।
प्रविसृष्टे मनौ तस्मिन्प्रजाः सृष्ट्वा दिवाकरः । दशधा तद्दधत्क्षेत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम् ।।२०।।

धर्म नष्ट न हो और हमारे विनाश का कारण न बने।' इसी बात को पुनः कहकर वह दिव्यगुणसम्पन्ना इडा मित्रावरुण के पास चली गयी ।।८-१०।। सुन्दरी उन दोनों के पास पहुँचकर हाथ जोड़ते हुए बोली, हे युगल देव! मेरा जन्म आप दोनों के अंश से हुआ है, अतः मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं आपका क्या उपकार करूँ? मनु ने मुझसे यह कहा था कि 'तुम मेरी अनुगामिनी बनो' इस पर आप लोगों की क्या आज्ञा है (?) उस परम चरित्रवती इडा के इस प्रकार कहने पर वे दोनों देवगण उसके समीप चले आये और उसे पकड़कर बोले, हे धर्म के महत्त्व को जाननेवाली! तुम्हारे इस सत्याचरण, इन्द्रिय दमन एवं प्रश्रय से हम लोग बहुत ही प्रसन्न हैं।११-१३। हे सुन्दर अंगोंवाली महाभाग्यशालिनी, तुम हम दोनों की कन्या के रूप में प्रतिष्ठित होगी। पुनः तीनों लोकों में पूजनीय, जगत् के प्रिय, धर्मशील, मनु के वंश के विस्तारक सुद्युम्न रूप में विख्यात होगे, वे सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप में परिणत हुए। देवी इला वरदान-प्राप्ति के बाद पिता के पास वापस आयी। उचित अवसर देखकर उसे बुध ने काम तृप्ति के लिए निमंत्रित किया। चन्द्रमा के पुत्र बुध से इला को पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।१४-१७।। बुध के संयोग से पुरूरवा को जन्म देकर वह पुनः सुद्युम्न रूप में परिणत हो गयी। सुद्युम्न के तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कल, गय और विनताश्व थे। उत्कल का राष्ट्र उत्कल प्रदेश, विनताश्व का पश्चिमी प्रदेश और राजर्षि दिक्ष्ववात (विनताश्व?) की गया नामक पुरी थी ।।१८-१९।। उस मन्वन्तर में मनुपुत्र सूर्य ने इस प्रकार सृष्टि का विस्तार कर समस्त पृथ्वीमण्डल को दस भागों में विभक्त किया। इक्ष्वाकु

इक्ष्वाकुरेव दायादानन्यान्दश समाप्नुयात्। कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैनं भागमवाप्नुयात् ।।२१।।
वशिष्ठवचनाच्चाऽऽसीत्प्रतिष्ठा नो महाद्युतिः। प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य महात्मनः ।।२२।।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राष्ट्रं प्राप्य महायशाः। मानवेभ्यो महाभागा स्त्रीपुंसोर्लक्षणं प्रति ।।
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्पुनः ।।२३।।
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम्। मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगत्मकथम् ।।२४।।

सूत उवाच

प्रोवाच वचनं देवी प्रियहेतोः प्रियं प्रिया। समे ममाऽऽश्रमे देव यः पुमान्संप्रवेक्ष्यति ।।
भविष्यति ध्रुवं नारी सा तुल्याप्सरसां शुभा ।।२५।।
तत्र सर्वाणि भूतानि पिशाचाः पशवश्च ये। स्त्रीभूताः सह रुद्रेण क्रीडन्त्यप्सरसो यथा ।।२६।।
उमावनं प्रविष्टस्तु स राजा मृगयां गतः। पिशाचैः सह भूतैस्तु रुद्रः स्त्रीभावमास्थिते ।।२७।।
तत्मात्स राजा सुद्युम्नः स्त्रीभावं लब्धवान्पुनः। महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२८।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनोः सृष्टिकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।८५।।

ने अन्य दस पुत्रों को प्राप्त किया, जो राज्य के उत्तराधिकारी थे, कन्या होने के कारण सुद्युम्न इस राज्य के उत्तराधिकार को नहीं प्राप्त कर सके। तब वसिष्ठ के आदेशानुसार धर्मराज महात्मा सुद्युम्न प्रतिष्ठान (?) के उत्तराधिकारी हुए। किन्तु परम यशस्वी मनु पुत्र सुद्युम्न राज्य प्राप्तकर फिर से स्त्री रूप में जब हो गये तब राज्य को पुरूरवा को दे दिया, मनुष्य में स्त्री-पुरुषों के चिह्न की सहज ही जानकारी रहती है। सूत की ऐसी बातें सुन ऋषियों ने पूछा, मनु-पुत्र सुद्युम्न पुरुष होकर स्त्री रूप में किस प्रकार परिणत हुए ।।२०-२४।।

सूत ने कहा-प्राचीनकाल की बात है एक बार देवी (पार्वती) ने देव से यह प्रिय निवेदन अपने हित की दृष्टि से किया था कि हे देव! मेरे इस आश्रम में जो कोई पुरुष प्रवेश करेगा वह निश्चय अप्सराओं के समान सुन्दरी स्त्री के रूप में परिणत हो जायगा। पार्वती के इस वचन के अनुसार उस आश्रम में भूत, पिशाच, पशु आदि जितने जीवगण थे सब स्त्री रूप धारणकर इन्द्र के साथ अप्सराओं के समान क्रीड़ा करने लगे। मृगया खेलते हुए राजा उमा के उस वन में प्रविष्ट हुए। वहाँ पिशाचों और भूतों के साथ रुद्र स्त्री रूप में विराजमान थे। इसी कारणवश राजा सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप को प्राप्त हुए, और महादेव की कृपा से गणों का आधिपत्य प्राप्त किया ।।२५-२८।।

श्री वायुमहापुराण में वैवस्वतमनु की सृष्टि कथन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८५।।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

तत्र वैवस्वतमनुवंशगान्धर्वमूर्च्छनाकथनम्

सूत उवाच

निसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत। पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरो*र्गावमभक्षयत् ।।१।।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः। करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।।२।।
सहस्रक्षत्रियगणविक्रान्तः संबभूव ह। नाभागोऽरिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलन्दनः ।।३।।
भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत्प्रांशुर्नाम महाबलः। प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजानिरिति विश्रुतः ।।४।।
प्रजानेरभवत्पुत्रः खनित्रो नाम वीर्यवान्। तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान्क्षुपो नाम महायशाः ।।५।।
क्षुपस्य विंशः पुत्रस्तु प्रतिमानं बभूव ह। विंशपुत्रस्तु कल्याणो विविंशो नाम धार्मिकः ।।६।।
विविंशपुत्रो धर्मात्मा खनिनेत्रः प्रतापवान्। करन्धमस्तस्यपुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ।।७।।
करन्धमसुतश्चापि आविक्षिन्नाम वीर्यवान्। आविक्षितो व्यतिक्रामत्पितरं गुणवत्तया ।।८।।
मनुत्तो नाम धर्मात्मा चक्रवर्तिसमो नृपः। संवर्तेन दिवं नीतः ससुहृत्सह बान्धवैः ।।९।।

अध्याय ८६

वैवस्वत मनु के वंश-प्रसंग में गन्धर्वों की मूर्च्छना का वर्णन

मनु के पुत्रों का सृष्टि-विवरण विस्तारपूर्वक सुनिये। मनु-पुत्र पृषध्र अपने गुरु महात्मा च्यवन की गौ को मारकर खा गये, जिसके कारण शापवश शूद्र वर्ण में प्राप्त हुए। करूष के कारूष नामक पुत्रगण संग्राम में दुर्दमनीय थे। नाभाग अरिष्ट का पुत्र भलन्दन परम विद्वान् और सहस्रों क्षत्रियों के समूहों में एकमात्र बलशाली हुआ ।।१-३।। भलन्दन का पुत्र महाबलवान् प्रांशु हुआ, उस प्रांशु को एक पुत्र हुआ जो प्रजानि नाम से विख्यात हुआ ।।४।। प्रजानि का खनित्र नामक वीर्यशाली पुत्र हुआ, उस खनित्र का पुत्र महायशस्वी क्षुप हुआ, जो परम शोभासम्पन्न था ।।५।। क्षुप के पुत्र विंश हुए, जिनके समान कोई नहीं हुआ। विंश के पुत्र धार्मिक विचारोंवाले, कल्याणकारी विविंश हुए ।।६।। विविंश के पुत्र प्रतापशाली, धर्मात्मा खनिनेत्र हुए, उनके पुत्र करन्धम हुए, जो त्रेतायुग के प्रारम्भ में वर्तमान थे ।।७।। करन्धम के आविक्षित् नामक प्रतापशाली पुत्र हुए। आविक्षित् ने अपने गुणों द्वारा अपने पिता का अतिक्रमण किया, उनके पुत्र परमधर्मात्मा, चक्रवर्तियों के समान प्रभावशाली राजा मनुत्त (महत्त) नामक हुए, जिन्होंने संवर्त नामक ऋषि की प्रेरणा से अपने मित्रों तथा परिवार वर्गवालों के साथ स्वर्ग प्राप्त किया। इस कार्य में संवर्त और

---

* अत्राऽऽर्षत्वादाकारैकादिशाभावः।

विवादोऽत्र महानासीत्संवर्तस्य बृहस्पतेः। ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः ।।१०।।
संवर्तेन हृते यज्ञे चुकोप सुभृशं तदा। लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ।।११।।
मनुत्तश्चक्रवर्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान्। नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ।।१२।।
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजाऽऽसीद्राष्ट्रवर्धनः। सुधृती तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतिनः सुतः ।।१३।।
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धमान्केवलात्मजः। अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृपः ।।१४।।
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिन्दुर्बुधात्मज। त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ।।१५।।
कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्रवसो हि सा। पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।।१६।।
विशालस्य समुत्पन्ना विशाला येन निर्मिता। विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ।।१७।।
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम्। सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ।।१८।।
धूम्राश्वतनयो विद्वान्सृञ्जयः समपद्यत। सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ।।१९।।
कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः। कृशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान् ।।२०।।
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूज्जनमेजयः। जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ।।२१।।
तृणंबिन्दुप्रसादेन सर्वे वैशालका नृपाः। दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकः ।।२२।।
शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः। पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ।।२३।।
आनर्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्यवान्। आनर्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ।।२४।।

बृहस्पति के बीच में महान् विवाद खड़ा हो गया। उस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति क्रुद्ध हुए ।।८–१०।। संवर्त के निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर देने पर तो वे बहुत क्रुद्ध हुए, समस्त लोकों के विनाश की सम्भावना देखकर देवताओं ने बृहस्पति को प्रसन्न किया। चक्रवर्ती राजा मनुत्त ने पुत्र रूप में नरिष्यन्त को प्राप्त किया, नरिष्यन्त का उत्तराधिकारी पुत्र दम हुआ, जो दण्ड देने में बड़ा कठोर था। उसका पुत्र राष्ट्रवर्धन पराक्रमी था। उसका पुत्र सुधृती और सुधृती का पुत्र नर हुआ ।।११–१३।। उसका पुत्र केवल हुआ, केवल का पुत्र बन्धुमान हुआ। बन्धुमान का पुत्र परम धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ। वेगवान् का पुत्र बुध और बुध का पुत्र तृणबिन्दु हुआ, यह राजा तृणविन्दु तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में विद्यमान था ।।१४–१५।। उस (तृणबिन्दु) की कन्या द्रविडा थी जो विश्रवा की माता थी। इसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ, इसी राजा विशाल ने विशाला नामक पुरी का निर्माण किया था, राजा विशाल के पुत्र महाबलवान् राजा हेमचन्द्र हुए। हेमचन्द्र के उपरान्त उनके पुत्र राजा सुचन्द्र की ख्याति हुई। राजा सुचन्द्र का पुत्र धूमाश्व नाम से विख्यात हुआ ।।१६–१८।। राजा धूमाश्व के पुत्र परम विद्वान् राजा सृञ्जय उत्पन्न हुए। सृञ्जय के पुत्र श्रीमान् परम प्रतापी सहदेव हुए। सहदेव के पुत्र कृशाश्व हुए, जो परम धार्मिक राजा थे। कृशाश्व के पुत्र परम प्रतापी महान् तेजस्वी राजा सोमदत्त हुए। राजर्षि सोमदत्त के पुत्र जनमेजय हुए। राजा जनमेजय के पुत्र प्रमति नाम से विख्यात हुए ।।१९–२१।। राजा तृणबिन्दु की कृपा से ये सभी विशाला पुरी के नृपतिगण दीर्घायुवाले, परम पराक्रमी, परम धार्मिक एवं महात्मा हुए। राजा शर्याति की दो सन्ततियाँ हुईं। पुत्र का नाम आनर्त और कन्या का नाम सुकन्या था, सुकन्या च्यवन की स्त्री हुई। राजा आनर्त का उत्तराधिकारी परम पराक्रमी रेव नामक राजा हुआ, आनर्त का समस्त राज्य और कुशस्थली पुरी पर उसका आधिपत्य था ।।२२–२४।। रेव का पुत्र परम धार्मिक रैवत

रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः। ज्येष्ठो भ्रातृशतस्याऽऽसीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ।।२५।।
कन्यया सह श्रुत्वा च गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके। मुहूर्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभोः ।।२६।।
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम्। कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।।२७।।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्ता वसुदेवपुरोगमैः। तां कथां रैवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदमः* ।।२८।।
+कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम्। दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।।२९।।
रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल। तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ।।३०।।

ऋषय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन। न जरां रेवती प्राप्ता पलितं च कुतः प्रभो ।।३१।।
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः संततिः कथम्। स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।३२।।
कियन्तो वा सुरगणा गन्धर्वास्तत्र कीदृशाः। यच्छ्रुत्वा रैवतः कालान्मुहूर्तमिव मन्यते ।।३३।।

सूत उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभयं ततः। न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ।।३४।।

हुआ, जो ककुद्मी नाम से भी विख्यात हुआ। ककुद्मी अपने अन्य सौ भाइयों में सबमें ज्येष्ठ थे, इन्होंने भी कुशस्थली पुरी में राज्य किया। एक बार अपनी कन्या के साथ यह ब्रह्मा के समीप संगीत सुनने के लिए गये थे, वहाँ देवाधिदेव ब्रह्मा के केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) भर इन्होंने अवस्थान किया था, किन्तु ब्रह्मा की वह दो घड़ी मानव वर्षमान से अनेक युगों की थी। वहाँ से राजा युवावस्था में ही अपनी पुरी को जब वापस लौटे तो उनकी वह पुरी यदुवंशियों से अधिकृत थी, उसके चारों ओर अनेक सुन्दर द्वार बने थे और अब वह कुशस्थली नाम से नहीं प्रत्युत द्वारवती नाम से प्रसिद्ध थी ।।२५-२७।। वसुदेव प्रभृति प्रमुख भोज, वृष्णि एवं अन्धक वंशों के लोग उसकी रक्षा कर रहे थे। शत्रुओं को वश में करनेवाले रैवत ने इस घटना को जानकर अपनी साध्वी व्रतपरायण कन्या रेवती को बलदेव को समर्पित कर दिया, और स्वयं मेरु के शिखर पर जाकर तपस्या में प्रवृत्त हुए। यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि बलराम जी ने रेवती के साथ दाम्पत्य सुख का अनुभव किया। (सूत से) ऐसी कथा सुनने के उपरान्त ऋषियों ने पूछा ।।२८-३०।।

ऋषियों ने पूछा–सूतनन्दन! यह कैसे सम्भव हुआ कि अनेक युगों के बीत जाने पर भी रेवती में वृद्धत्व का समागम नहीं हुआ और उसके अंगों में पलित का भी आभास नहीं हुआ और मेरु पर्वत पर तपस्यार्थ चले जाने पर राजा शर्याति को सन्तति प्राप्ति किस प्रकार हुई, जो आज भी पृथ्वी में उनके नाम से विख्यात है। इसको हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं। ब्रह्मा की उस सभा में कितने देवता निवास करते हैं ? वहाँ के गन्धर्व किस प्रकार के हैं, जिनके संगीत को सुनकर राजा रैवत ने इतने समय को दो घड़ी मान लिया ? ।।३१-३३।।

सूत ने कहा–ऋषिवृन्द! ब्रह्मलोक में जानेवाले प्राणी में न वृद्धता का समावेश होता है, न उसे भूख लगती है, न प्यास लगती है, न मृत्यु ही का भय सताता है, यही नहीं किसी प्रकार का रोग भी उस प्राणी को नहीं सताता। हे

---

* अत्रैवाध्यायसमाप्तिः ख. घ. पुस्तकयोः।

+ कन्यां तु बलदेवाय इत्यारभ्य सप्ताशीतितमाध्यायस्यसप्तसत्वस्वरं तु य इत्यन्तग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

गान्धर्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः । ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।।३५।।

सूत उवाच

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः । तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत्स्वरमण्डलम् ।।३६।।
षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा । धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् ।।३७।।
सौवीरी माध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च । स्यात्कलोपबलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमाः ।।३८।।
शार्ङ्गी च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् । मध्यमग्रामिकाः ख्याताः षड्जग्रामं निबोधत ।।३९।।
उत्तरमन्द्रा जननी तथा या चोत्तरायता । शुद्धषड्जा तथा चैव जानीयात्सप्तमीं च ताम् ।।४०।।
गांधारग्रामीकांश्चान्यान्कीर्त्यमानान्निबोधत । आग्निष्टोमिकमाद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ।।४१।।
तृतीयं पौण्ड्रकं प्रोक्तं चतुर्थं चाऽऽश्वमेधिकम् । पञ्चमं राजसूयं च षष्ठं चक्रसुवर्णकम् ।।४२।।
सप्तमं गोसवं नाम महावृष्टिकमष्टमम् । ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनन्तरम् ।।४३।।
नागपक्षाश्रयं विद्याद्गोतरं च तथैव च । हयक्रान्तं मृगक्रान्तं विष्णुक्रान्तं मनोहरम् ।।४४।।
सूर्यक्रान्तं वरेण्यं च मत्तकोकिलवादिनम् । सावित्रमर्धसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च ।।४५।।
सुवर्णं च सुतन्द्रं च विष्णुवैष्णुवरावुभौ । सागरं विजयं चैव सर्वभूतमनोहरम् ।।४६।।
हंसं ज्येष्ठं विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च । मनोहरमधात्र्यं च गन्धर्वानुगतश्च यः ।।४७।।
अलम्बुषेष्टश्च तथा नारदप्रिय एव च । कथितो भीमसेनेन नागराणां यथा प्रियः ।।४८।।

सद्व्रतपरायण! मुनिवर्यवृन्द! उस गान्धर्व विद्या (संगीत शास्त्र) के विषय में आप लोगों ने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसे जो कुछ जानता हूँ बतला रहा हूँ ।।३४-३५।।

सूत बोले-उस संगीतशास्त्र में सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएँ तथा उनचास ताल होते हैं-यही स्वरमण्डल कहा जाता है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद-ये सात स्वर हैं। सौवीरी, हरिणास्या, कलोपबला, शुद्धमध्यमा, शार्ङ्गी, पावनी और दृष्टाका ये मध्यमग्राम के नाम से विख्यात हैं-षड्जग्राम को सुनिये। उत्तरमन्द्रा, जननी, उत्तरायता (?), शुद्धषड्जा आदि षड्जग्राम में कही जाती हैं, इसे सातवीं जानना चाहिए ।।३६-४०।। अन्य गान्धारग्राम के विषय में बतला रहा हूँ, सुनिये। प्रथम आग्निष्टोमिक, द्वितीय वाजपेयिक, तृतीय पौण्ड्रक, चतुर्थ आश्वमेधिक, पञ्चम राजसूय, षष्ठ चक्रसुवर्ण, सप्तम गोसव, अष्टम महावृष्टिक, नवम ब्रह्मदान, तदनन्तर प्राजापत्य, नागपक्षाश्रय, गोतर, हयक्रान्त, मृगक्रान्त, मनोहर विष्णुक्रान्त, सर्वश्रेष्ठ सूर्यक्रान्त, मत्तकोकिलवादिन्, अर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णुवर, सागर, सभी जीवों के मन को हरनेवाला विजय, हंस को सर्वश्रेष्ठ हम लोग जानते हैं, तुम्बुरुप्रिय, मनोहर, अधात्र्य-जो सभी गन्धर्वों द्वारा प्रशंसित, विशेषतया अलम्बुष को अभिमत एवं नारद को परम प्रिय है, जिसकी प्रशंसा भीमसेन ने नागरों के पास की थी, जिसके कारण वह उनका प्रिय हुआ-विकल, उपनीत, विनस, भार्गवप्रिय, अभिरम्य, शुक्र, पुण्यप्रद, पुण्यारक-ये सब गान्धारग्राम के अन्तर्गत हैं। मध्यमग्राम बीस हैं, षड्जग्रामों की संख्या चौदह है, गान्धारग्राम को लोग पन्द्रह मानते हैं। भगवान् ब्रह्मा सौवीर के साथ गान्धारी का

विकलोपनीतविनसा श्रीराख्यो भार्गवप्रियः । *अभिरम्यश्च शुक्रश्च पुण्यः पुण्यारकः स्मृतः ।।
विंशतिर्मध्यग्रामः षड्जग्रामश्चतुर्दश ।।४९।।
तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् । ससौवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगीयते ।।५०।।
उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवताऽत्र च । हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।।
मूर्छना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदैवतम् ।।५१।।
करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले । सा कलोपनता तस्मान्मारुतश्चात्र दैवतम् ।।५२।।
मरुदेशसमुत्पन्ना मूर्छना शुद्धमध्यमा । मध्यमोऽत्र स्वरः शुद्धो गन्धर्वश्चात्र देवता ।।५३।।
मृगैः सह संचरते सिद्धानां मार्गदर्शने । यस्मात्तस्मात्स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता ।।५४।।
सा चाऽऽश्रमसमायुक्ता अनेकान्यौरवान्नवान् । मूर्छना योजना ह्येषा रजसा रजनी ततः ।।५५।।
ताल उत्तरमन्द्रांशः षड्जदैवतकां विदुः । तस्मादुत्तरतालं च प्रथमं स्वायतं विदुः ।।
तस्मादुत्तरमन्द्रोऽयं देवताऽस्य ध्रुवो ध्रुवम् ।।५६।।
आयामादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायणः । स्यादियं मूर्छना ह्येवं पितरः श्राद्धदेवताः ।।५७।।
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निं महर्षयः । उपतिष्ठन्ति तस्मात्तं जानीयाच्छुद्धषड्जिकम् ।।५८।।
यः सतां मूर्छनां कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् । यक्षीणां मूर्छना सा तु याक्षिका मूर्छना स्मृता ।।५९।।

गान करते हैं ।।४१–५०।। उत्तरादि स्वरों के अधिदेवता ब्रह्मा ही माने गये हैं, हरिदेश में उत्पन्न मूर्च्छना हरिणास्या के नाम से प्रसिद्ध है, इसके अधिदेवता इन्द्र हैं। समस्त स्वर मण्डल में मरुतों द्वारा प्रसारणपूर्वक ग्रहण किये जाने से कलोपनता के मारुत अधिदेवता माने गये हैं। मरुदेश में समुत्पन्न मूर्च्छना शुद्ध मध्यमा कही जाती है। इसमें शुद्ध स्वर मध्यम है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। सिद्धों का मार्ग दिखलाते समय मृगों के साथ विचरण करने के कारण मूर्च्छना मार्गी नाम से प्रसिद्ध हुई, इसके अधिदेवता मृगेन्द्र हैं ।।५१–५४।। यह मूर्च्छना अनेक स्वरों की आश्रयभूत होने के कारण अनेक पुरों में गाये जानेवाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। (?) यह रजनी नामक मूर्च्छना रजोगुण से संयुक्त करनी चाहिए। (?) उत्तर मन्द्रांश ताल का अधिदेवता षड्ज है। उसका उत्तरवर्ती ताल भी प्रथम का अनुयायी माना जाता है। इसीलिए उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है, उसके अधिदेवता ध्रुव हैं ।।५५–५६।। विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण धैवत की मूर्च्छना उत्तरायण है, इसके अधिदेवगण श्राद्ध में पूजित होनेवाले पितरगण हैं। महर्षियों ने शुद्ध षड्ज् स्वर द्वारा अग्नि की उपासना की थी, इसलिए उस स्वर को लोग शुद्ध षड्जिक नाम से जानते हैं ।।५७–५८।। पञ्चम स्वर की मूर्च्छना सत्पुरुषों के मन को भी मूर्च्छित कर देती है, यह यक्षों की पत्नियों की मूर्च्छना है, इसीलिए उसका नाम भी याक्षिकी मूर्च्छना प्रसिद्ध है ।।५९।। दृष्टि से ही विष विकीरित करनेवाले नागगण जिस मूर्च्छना को सुनकर चल-फिर नहीं सकते, और ब्रह्मा द्वारा मृतक के समान हो जाते हैं, वह अहिमूर्च्छना कही जाती है, उसके अधिदेवता वरुण

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

नागदृष्टिविषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्छनाम्। भवन्तीव हृता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवताः ।।६०।।
(*अहीनां मूर्छना ह्येषा वरुणश्चात्र देवता। +जलाधिपेन दृष्टा स्यादप्सु लीला तथैव च ।।६१।।
शकुन्तकानां कृत्वा च उपगायन्ति किंनराः। उत्तमा मूर्छना तस्मात्पक्षिराजोऽत्र देवता ।।६२।।
[×मनो मन्दयती तेषां मूर्छना मन्दनीत्यपि। ऋषीणां स्नातकानां च विश्वे देवात्र(स्तु) दैवतम्] ।।६३।।
अश्वा इवाक्रमन्ते वा रमन्ते वाऽत्र वाजिनः। अश्वक्रान्तेति नित्या वै अश्विनी वाऽत्र दैवतम्) ।।६४।।
÷गान्धाररागशब्देन गां धारयतेऽर्थतः। तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वश्चाधिदैवतम् ।।६५।।
गान्धारानन्तरं गत्वा सृष्टेयं मूर्छना यतः। तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवताः ।।६६।।
सेयं खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता। षड्जेयं मूर्छना तस्मात्स्मृता ह्यनलदेवता) ।।६७।।
दिव्येयं चाऽऽयता तेन मन्दषष्ठा च मूर्छने। निवृत्तगुणनामानं पञ्चमं चात्र दैवतम् ।।६८।।
पूर्णा सप्त स्वरा ह्येवं मूर्छनाः संप्रकीर्तिताः। नानासाधारणाश्चैव षडेवानुविदस्तथा ।।६९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनुवंशगान्धर्वमूर्छनालक्षणकथनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।।८६।।

हैं। जलराशि में अवस्थित इस मूर्च्छना को सर्वप्रथम जलाधिप वरुण ने देखा था ।।६०-६१।। किन्नरगण पक्षियों के स्वर का अनुकरण कर जिसका गान करते हैं, उस परमश्रेष्ठ मूर्च्छना के अधिदेवता पक्षिराज गरुड़ हैं। ऋषियों और विद्या में पारंगत स्नातकों के भी मन को जो मन्द कर देती है वह मन्दनी नामक मूर्च्छना है, उसके अधिदेवता विश्वेदेवगण हैं। अश्व के समान तीव्र गति से चलने अथवा जिसको सुनकर अश्वगण विहार (प्रसन्न होते हैं) करते हैं उस स्थिर मूर्च्छना का अश्वक्रान्ता नाम है, उसके अधिदेवता दोनों अश्विनीकुमार हैं ।।६२-६४।। गान्धार राग के शब्द से गौ (पृथ्वी) को धारण करते हैं, (अर्थात् इसकी स्वरमहिमा से पृथ्वी की स्थिति शक्ति की वृद्धि होती है) इस निरुक्ति से इस मूर्च्छना का नाम विशुद्ध गान्धारी कहा जाता है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। गान्धार के अनन्तर इस मूर्च्छना की सृष्टि हुई है, अतः इसे उत्तर गान्धारी कहते हैं, इसके अधिदेवता वसुगण हैं। षड्ज नामक यह मूर्च्छना सबसे प्रथम पितामह के समीप उपस्थित हुई अतः यह सबसे अधिक महत्त्वशालिनी है, इसके अधिदेवता अनल कहे जाते हैं ।।६५-६७।। यह मन्दषष्ठा नामक मूर्च्छना बहुत विस्तृत है, इसके प्रभाव दिव्य हैं, इसके गुणों की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, इसके अधिदेवता पञ्चम हैं। इस प्रकार सातों स्वरों, समस्त मूर्च्छनाओं (?) एवं उनके छह साधारण भेदों का वर्णन मैं कर चुका ।।६८-६९।।

श्री वायुमहापुराण में वैवस्वतमनुवंश गान्धर्व मूर्च्छना लक्षण कथन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८६।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

+ नास्तीदमर्धं क. पुस्तके।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

÷ एतदर्धस्थान इदमर्धं गांधारयते शब्देन गांधारेत्यथ वा पुनरिति ङ. पुस्तके।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

गीतालंकारनिर्देशः

पूर्वाचार्यमतं बुद्ध्वा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः। त्रिशतं वै अलंकारास्तान्मे निगदतः शृणु ।।१।।
अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः। संस्थानयोगैश्च तथा पदानां चान्ववेक्षया ।।२।।
वाक्यार्थपदयोगार्थैरलंकारस्य पूरणम्। पदानि गीतकस्याऽऽहुः पुरस्तात्पृष्ठतोऽथवा ।।३।।
स्थानानि त्रीणि जानीयादुरः कण्ठः शिरस्तथा। एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः ।।४।।
चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधः। विकल्पयष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ।।५।।
स्थायी वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम्। आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः ।।६।।
तत्रैकः संचरस्थायी सचरास्तु चरीभवन्। अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ।।७।।
आरोहणेन चाऽऽरोहवर्णं वर्णविदां विदुः। एतेषामेव वर्णानामलंकारान्निबोधत ।।८।।
अलंकारास्तु चत्वारः स्थापनी क्रमरेजिनः। प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।।९।।
विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः। आवर्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्ये परिणामतः ।।१०।।

अध्याय ८७

गीतों के अलंकारों का वर्णन

अब इसके उपरान्त पूर्ववर्ती आचार्यों के मतानुसार तीन सौ संगीत के अलंकारों का क्रमपूर्वक वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। अपने-अपने वर्णों एवं पद समूहों के विशेष संयोग से संगठित होने को ही अलंकार कहना चाहिए ।।१-२।। पद एवं वाक्य के योगार्थ के द्वारा अलंकार की पूर्ति होती है। गीत के पद समूह पूर्व अथवा पीछे दोनों स्थानों में विन्यस्त होते हैं-ऐसा लोग कहते हैं ।।३।। गीतों के स्थान तीन होते हैं, उरःथल, कण्ठ तथा सिर। इन्हीं तीन स्थानों में प्रारम्भ किया गया स्वर उत्तम होता है ।।४।। प्रकृतिगत वर्णों की संख्या चार है, इनका विचार भी चार प्रकार का होता है। विकल्प से आठ प्रकार कहे जाते हैं, देवगण इनकी संख्या सोलह बतलाते हैं ।।५।। वर्णों के तत्त्वज्ञ लोग स्थायी, संचारी, अवरोहण तथा आरोहण-ये चार वर्ण जानते हैं। एक ही प्रकार के भाव वर्ण में जिसका संचरण होता है वह स्थायी, विभिन्न प्रकार के भावों में जिसका संचरण होता है वह संचारी, निम्न गति जिसकी होती है वह अवरोहण तथा उन्नतिशील जो होता है वह आरोहण कहा जाता है-ऐसा वर्णवेत्ता लोग जानते हैं। इन्हीं चार प्रकार के वर्णों का अलंकार सुनिये ।।६-८।। मुख्यतः अलंकार चार प्रकार के होते हैं, स्थापनी, क्रमरेजित, प्रमाद और अप्रमाद, उनके लक्षणों को बतला रहा हूँ। उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं, उस आवर्त (चक्राकार घुमाव) की उत्पत्ति और उसका क्रम ये दोनों परिणाम के अनुरूप करना चाहिए ।।९-१०।। अन्य कुमार नामक स्वर को अत्यल्प विस्तार

कुमारमपरं विद्याद्विस्तरं वमनं गतम् । एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुमारेकः कलाधिकः ।।११।।
श्येनस्त्वेकान्तरे जातः कलामात्रन्तरे स्थितः । तस्मिंश्चैव स्वरे वृद्धिस्तिष्ठते तद्विलक्षणा ।।१२।।
श्येनस्तु अवरोहस्तु उत्तरः परिकीर्तितः । कलाकलप्रमाणाच्च सबिन्दुर्नाम जायते ।।१३।।
बिन्दुरेककला कार्या वर्णान्तस्थायिनी भवेत् । विपर्ययस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ।।१४।।
एकान्तरा तु वाद्यं तु षड्जतः परमः स्वरः । आक्षेपास्कन्दनं कार्यं काकस्येवोच्चपुष्कलम् ।।१५।।
संतारौ तौ तु संचार्यौ कार्यं वा कारणं तथा । आक्षिप्रमवरोह्याषि प्रोक्षमद्यस्तथैव च ।।१६।।
द्वादशं च कलास्थानमेकान्तरगतं ततः । (*प्रेङ्खोलितमलंकारमेवं स्वरसमन्वितम् ।।१७।।
स्वरसंक्रामकाच्चैव ततः प्रोक्तं तु पुष्कलम् । प्रक्षिप्तमेव कलया पादनीतरयो भवेत् ।।१८।।
द्विकलं वा यथा भूतं यत्तद्ग्रासितमुच्यते । उच्चाराद्विस्वरारूढा तथा चाष्टस्वरान्तरम् ।।१९।।
यस्तु स्यादवरोहो वा तारतो मन्द्रतोऽपि वा । एकान्तरहिता ह्येते तमेव स्वरमन्ततः ।।२०।।
मणिप्रच्छेदनो नाम चतुष्कलगणः स्मृतः । अलंकारा भवन्त्येते त्रिंशद्ये वै प्रकीर्तिताः ।।
वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः ।।२१।।
संस्थानं च प्रमाणं च विकारी लक्षणं तथा । चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम् ।।२२।।
यथाऽऽत्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः । वर्णमेवाप्यलं कर्तुं विषमं ह्यात्मसंभवात् ।।२३।।

करनेवाला जानना चाहिए। दूसरा अपाङ्ग नामक और मात्राधिक कुलारेक नामक अलङ्कार होता है ।।११।। श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है और कलामात्र के अन्तर में प्रतिष्ठित होता है। इसी स्वर में विलक्षण वृद्धि होती है ।।१२।। यही श्येन स्वर उत्तर अवरोह कहा जाता है। सविन्दु नामक स्वर कला-कला के परिणाम में उत्पन्न होता है। बिन्दु को एक कला की करनी चाहिए, यह एक ही वर्ण के अन्त में स्थिर रहनेवाली है। स्वरों का विपर्यय (उलटफेर) भी हो जाता है, जहाँ अनवधानता भी नहीं होती है। षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकान्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है। इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से उच्च पुष्कल स्वर होता है ।।१३-१५।। कार्य और कारण रूप से दोनों संतारों का संचारण करना चाहिए। इस प्रकार क्षिप्र गति तक अवरोह स्वर संचार करने से उसी प्रकार का प्रोक्षमद्य अलङ्कार होता है ।।१६।। तदनन्तर एकान्तर गत द्वादश कला स्थान है। इस प्रकार के स्वर संयुक्त एक प्रेंखोलित अलङ्कार होता है। पुनः कुछ अधिक स्वरों के संक्रमण होने के कारण ही वह पुष्कल कहा जाता है। मात्रा के प्रक्षेप और पाद संक्रमण होने से जो द्विकलात्मक अलङ्कार होता है वह ग्रासित कहा जाता है। स्वरोच्चार और विस्वर के संयोग से अष्टस्वर का अन्तर हो जाता है ।।१७-१९।। तार और मन्द्र के क्रम से जो स्वरावरोह होते हैं, वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त माने जाते हैं। मणिप्रच्छेदन नामक गण चार कलाओंवाला कहा जाता है। वर्ण, स्थान और प्रयोग-विशेष के अनुसार कलामात्र प्रमाण के अनुसार अलंकार निश्चित किये गये हैं। इस प्रकार कहे गये तीसों अलंकारों का वर्णन कर चुका। संस्थान, प्रमाण, विकार और लक्षण-ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिए ।।२०-२२।। जिस प्रकार मनुष्य के अपने अलंकार योग्य स्थान पर न पड़कर अथवा अति निम्न कोटि के होकर शरीर शोभा

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

नानाभरणसंयोगाद्यथा नार्या विभूषणम्। वर्णस्य चैवालंकारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः ।।२४।।
न पादे कुण्डले दृष्टे न कण्ठे रसना तथा। एवमेव ह्यलंकारो विपर्यस्तो विगर्हितः ।।२५।।
क्रियमाणोऽप्यलंकारो रागं यश्चैव दर्शयेत्। यथोद्दिष्टस्य मार्गस्य कर्तव्यस्य विधीयते ।।२६।।
लक्षणं पर्ययस्यापि वर्णिकाभिः प्रवर्तनम्। याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भवे ।।२७।।
त्रयोविंशत्यशीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः। षड्जपक्षोऽपि तत्त्वादौ मध्यौ हीनस्वरो भवेत् ।।२८।।
षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयोः पर्ययस्तथा। मानो योत्तरमन्द्रस्य षडेवात्राविकस्य च ।।२९।।
स्वरालंप्रत्ययश्चैव सर्वेषां प्रत्ययः स्मृतः। अनुगम्य वहिर्गीतिं विज्ञातं पञ्चदैवतम् ।।३०।।
गोरूपाणां पुरस्तात्तु मध्यमांशस्तु पर्ययः। तयोर्विभागो गीतानां लावण्यमार्गसंस्थितः ।।३१।।
अनुषङ्गं मयोद्दिष्टं स्वसारं च स्वरान्तरम्। पर्ययः संप्रवर्तेत सप्तस्वरपदक्रमम् ।।३२।।
गन्धारांशेन गीयन्ते चत्वारि मद्रकानि च। पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निषादजैः ।।
षड्जर्षभैश्च जानीमो भद्रकेष्वेव नान्तरे ।।३३।।
द्वे चापरान्तिके विद्याद्धयशुल्लाष्टकस्य तु। प्राकृते वैणवैश्चैव गान्धारांशे प्रयुज्यते ।।३४।।
पदस्य तु त्रयं रूपं सप्तरूपं तु कैशिकम्। गान्धारांशेन कार्त्स्न्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।।
एवं चैत्र क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशस्य मध्यमः ।।३५।।

की हानि करते हैं, वृद्धि नहीं करते उसी प्रकार ये संगीत के अलङ्कार भी अपने योग्य स्थान पर पड़कर तथा निकृष्ट कोटि के होकर वर्णों की शोभा बढ़ाने में सशक्त नहीं होते, इसलिए स्त्रियों के आभूषण की भाँति इन संगीतालंकारों का यथास्थान सन्निवेश करना आवश्यक होता है। जिस प्रकार विविध अलङ्कारों से अलंकृत होने पर स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार इन वर्णों के अलङ्कारों से अलंकृत होकर संगीत की शोभा बढ़ जाती है। इनके यथास्थान विभूषित न होने की बड़ी निन्दा की गयी है। जिस प्रकार पैर में बँधे हुए कुण्डल नहीं देखे जाते और कण्ठ में करधनी नहीं देखी जाती। अर्थात् ये निन्दित हैं उसी प्रकार अनुपयुक्त स्थान में पड़े अलङ्कार भी अत्यन्त गर्हित माने गये हैं ।।२३-२५।। जो गायक अलङ्कारों को यथास्थान सन्निविष्ट करके राग का प्रदर्शन करते हैं, वे संगीत के समुचित कर्त्तव्य का पालन करते हैं ।।२६।। अब इसके उपरान्त मैं पर्यय का लक्षण, वर्णिका के द्वारा उनका प्रवर्तन, मासोद्भव और मुखोद्भव को यथार्थ रूप में बतला रहा हूँ ।।२७।। षड्ज स्वर के तेईस प्रकार के अलंकार विपर्यय के द्वारा अस्सी प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज पक्ष भी तत्त्व के आदि में और हीन स्वर हो जाता है ।।२८।। षड्ज और मध्यम एवं दोनों ग्राम का पर्यय, उत्तर मन्द्र तथा अविक का मान छह प्रकार का होता है। स्वर, अलङ्कार और प्रत्यय सब के प्रत्यय होते हैं। बहिर्गीतों के विश्लेषण से ये भी पञ्च दैवत ही जाने गये हैं ।।२९-३०।। गोरूपों के आगे मध्यमांश का स्थापन ही पर्यय है। इन दोनों का विभाग गीतों की सौन्दर्यवृद्धि में सहायक होता है। मैंने स्वसार और स्वरान्तर का गौणरूप में वर्णन कर दिया। सप्त स्वर और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है। चारों मद्रक गान्धारों से गाये जाते हैं, पञ्चम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है। मद्रकों में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है इतर का नहीं ।।३१-३३।। हयशुल्लाष्टक के अपर और अन्तिम दो भेद होते हैं। गान्धारांश में और प्राकृत में वेणु सम्बन्धी रागों का प्रयोग होता है। पद के तीन रूप होते हैं, केशिक के सात। सम्पूर्ण गांधारांश से पर्यय विधि सम्पन्न की जाती है। इसी प्रकार मध्यमांश के मध्यम पद के भी क्रमिक

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः। तत्तु सप्तस्वरं कार्यं सप्तरूपं च कैशिकम् ।।३६।।
अङ्गदर्शनमित्याहुर्मानें द्वे समके तथा। द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ।।३७।।
उत्तरे च प्रकृत्येवं मात्रा तल्लीयते तथा। हन्तारः पिण्डको यत्र मात्रायां नातिवर्तते ।।३८।।
पादेनैकेन मात्रायां पादोनामतिवीरणा। संख्यायाश्चोपहननं तत्र यानमिति स्मृतम् ।।३९।।
द्वितीयं पादभङ्गं च ग्रहेणाभिप्रतिष्ठितम्। पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ।।४०।।
अर्थेन पादसाम्यस्य पादभागाच्च पञ्चके। पादभागं सपादं तु प्रकृत्यामपि संस्थितम् ।।४१।।
चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्या च मद्रके। मद्रके दक्षिणास्यापि यथोक्ता वर्तते कला ।।४२।।
पूर्वमेवानुयोगं तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते। पादौ चाऽऽहरणं चास्मत्पारं नात्र विधीयते ।।४३।।
एकत्वमुपयोगस्य द्वयोर्यद्धि द्विजोत्तम। अनेकसमवायस्तु पताकाहरिणं स्मृतम् ।।४४।।
तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा। अष्टौ सु समवायास्ते सौवेरी मूर्छना तथा ।।४५।।
कुशत्यनुत्तरः सत्यं सप्तसत्त्वस्वरं तु यः। *चित्रशाखासुतं तस्य धार्मिकस्य महात्मनः ।।४६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गीतालंकारनिर्देशो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

विधान का निर्देश किया गया है ।।३४-३५।। जिन गीतों का वर्णन विशेष रूप से रूप के साथ किया गया है उनको सप्त स्वरों से युक्त करना चाहिए और केशिक को सप्तरूप में। इस प्रकार अंगदर्शन, दो मान और समक को कहा गया है। द्वितीय भावाचरण मात्रा उपयुक्त नहीं होती। और स्वभावतः उत्तर (मन्द्र) में मात्रा लीन हो जाती है। जहाँ हन्तार पिण्डक मात्रा से अधिक नहीं होता, और जिस मात्रा में एक चरण और पौन चरण रहते हैं अर्थात् जो मात्रा पौने दो चरण की होती है उसको अतिवीरण कहते हैं और उसमें संख्या के संघर्ष होने पर यान नामक अलंकार की उत्पत्ति होती है ।।३६-३९।। द्वितीय पाद भंग को ग्रह नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। पहला, आठवाँ, तीसरा और दूसरा, अपर और अन्तिम, पाद साम्य के आधे भाग के साथ, पाँचों में पाद भाग और सपाद पाद भाग प्रकृति में स्थिर रहते हैं। उत्तर, मद्रवती, मद्रक में चौथी कला तथा मद्रक में दक्षिण की उक्त कला रहती है ।।४०-४२।। पहले ही अनुयोग को द्वितीय बुद्धि इष्ट रहती है। इसके बाद दो पादों के और कलाओं के आकलन का विधान आचार्यों ने नहीं बताया है। द्विजोत्तम! दोनों के उपयोग की एकता और अनेक कलाओं के एकत्र संगठन को पताकाहरिण कहते हैं। वृत्ति में तीन वृत्तियों की आवृत्ति दक्षिणा कही गयी है। सौवीर मूर्च्छना और वे आठ समवाय ये भी आवृत्त (दुहराना) होते हैं। जो सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति इन सात मूल स्वरों का भलीभाँति अध्ययन करता है, उस धार्मिक महात्मा की चित्रशाखासुत के समान कीर्ति फैलती है ।।४३-४६।।

श्री वायुमहापुराण में गीतालङ्कार निर्देश नामक सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८७।।

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके। अस्यार्धस्य न पूर्वापरसंगतिः।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह। हता पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः सा कुशस्थली ।।१।।
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्मिकस्य महात्मनः। निवध्यमाना रक्षोभिर्द्रिशः संप्राद्रवन्भयात् ।।२।।
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र हि। अन्ववायस्तु सुमहान्महांस्तत्र द्विजोत्तमाः ।।३।।
प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः। धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ।।४।।
त्रिसाहस्रं तु सगणं क्षत्रियाणां महात्मनाम्। नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ।।५।।
अम्बरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चाऽऽत्मजः। पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः ।।६।।
एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः। रथीतराणां प्रवराः क्षात्रोपेता द्विजातयः ।।७।।
क्षुवतस्तु मनोः पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः। तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ।।८।।
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिर्दण्डश्च ते त्रयः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पञ्चशतं तु ते ।।९।।

अध्याय ८८

वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

सूत बोले–ऋषिवृन्द! उपर्युक्त महाराज रैवत के, जिनका दूसरा नाम ककुद्मी भी था, मेरु शिखर पर चले जाने के उपरान्त यक्षों और राक्षसों ने मिलकर सारी कुशस्थली को विध्वस्त कर दिया। परम धार्मिक एवं महात्मा उस राजा ककुद्मी के अन्य सौ भाई लोग उन राक्षसों से अतिशय पीड़ित एवं भयभीत होकर इधर–उधर भाग गये ।।१–२।। और इस प्रकार उन राक्षसों से भयभीत क्षत्रियों के समूह इधर–उधर तितर–बितर हो गये। वहाँ पर भी कुछ वंशज गये जहाँ महान् प्रतापी राजा स्वयं निवास करता था। उस राजा के वे वंशज क्षत्रियगण सभी दिशाओं में धार्मिक विचारोंवाले तथा इन्द्रियों को वश में रखनेवाले विख्यात थे। इसी वंश में उत्पन्न होनेवाले धृष्ट के धार्ष्टक, क्षत्र, रणधृष्ट नामक पुत्र हुए ।।३–४।। जो परम बलवान् तीन सहस्र क्षत्रियों के समूह में प्रमुख थे। दूसरे उसी वंश में उत्पन्न होनेवाले नभग के उत्तराधिकारी परम बलवान् नाभाग नाम से प्रसिद्ध हुए। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, उन अम्बरीष के पुत्र विरूप हुए। विरूप के पृषदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम रथीतर हुआ। ये उपर्युक्त राजागण क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए और अंगिरा को गोत्रज रूप में विख्यात हुए। रथीतर के वंश में उत्पन्न होनेवालों के प्रवर क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों के हैं। प्राचीनकाल में मनु के छींकते समय इक्ष्वाकु नामक पुत्र निकल पड़े थे। वे परम दानशील थे, उनके एक सौ पुत्र हुए ।।५–८।। उन सभी पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ विकुक्षि नाम से विख्यात थे, उनके अतिरिक्त नेमि और दण्ड–को मिलाकर तीन पुत्र विख्यात

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षितः। चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च दक्षिणायां च ते दिशि ।।१०।।
विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथाऽऽदिशत् ।।११।।

राजोवाच

मांसमानय श्राद्धेयं मृगान्हत्वा महाबल। श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकायां न संशयः ।।१२।।
स गतस्तु मृगव्यां वै वचनात्तस्य धीमतः। मृगान्सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान् ।।
भक्षयच्छशकं तत्र विकुक्षिर्मृगयां गतः ।।१३।।
आगते स विकुक्षौ तु समांसे सहसैनिके। वसिष्ठं चोदयामास मांसं प्रोक्षय मन्त्रतः ।।१४।।
तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः। स दृष्ट्वोपहतं मांसं क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ।।१५।।
क्षुद्रेणोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव। शशभक्षादभोज्यं वै तव मांसं महाद्युते ।।१६।।
शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ। तेन मांसमिदं दुष्टं पितॄणां नृपसत्तम ।।१७।।
इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत्। पिर्तृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्वं मृगयां गतः ।।
शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः पूर्वमद्य नु ।।१८।।

थे, विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पाँच सौ पुत्र हुए। वे सभी उत्तराखण्ड के देशों के स्वामी हुए। अड़तालीस दक्षिण में हुए। जिनमें बीस प्रमुख थे, वे दक्षिण दिशा पथ के समस्त प्रदेशों की रक्षा में तत्पर रहनेवाले थे। एक बार अष्टकातिथि के अवसर पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को आदेश दिया ।।९-११।।

राजा ने कहा–हे महाबलवान्! मृगों को मारकर श्राद्ध करने योग्य मांस लाओ। आज अष्टकातिथि है, आज श्राद्ध करने का मेरा निश्चय है। परम बुद्धिमान् राजा इक्ष्वाकु की आज्ञा से विकुक्षि मृगों का वध करने के लिए वन को गये। वहाँ सहस्रों मृगों का वध करने के कारण विकुक्षि परम बलवान् होने पर भी बहुत थक से गये। और मृगया करते समय उन्होंने थकावट दूर करने के लिए वहीं पर एक खरगोश खा लिया ।।१२-१३।। सैनिकों के साथ मांस लेकर जब विकुक्षि राजधानी को वापस लौटे तब राजा ने महर्षि वसिष्ठ से 'मांस का मंत्रोच्चारणपूर्वक सिंचन संस्कार कर दीजिये' –ऐसा कहा। राजा के ऐसा कहने पर वसिष्ठ से 'बहुत अच्छा' कहकर विधिपूर्वक सिंचन संस्कार करने के लिए जब वहाँ उपस्थित हुए तब उस समस्त मांस राशि को अपवित्र देखकर परम क्रुद्ध होकर राजा से बोले ।।१४-१५।। राजन्! तुम्हारे इस नीच स्वभाववाले पुत्र विकुक्षि ने यह सब मांस अपवित्र कर दिया है। इसने पूर्व में ही खरगोश का मांस खा लिया है, अतः उसी के कारण यह सारा मांस अखाद्य हो गया है। हे निष्पाप! इस तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने वन में श्राद्ध के पूर्व ही एक खरगोश खा लिया है, हे नृपतिवर! इसी कारण से यह सारा मांस दूषित हो गया, अब यह पितरों के योग्य नहीं रह गया है ।।१६-१७।। वसिष्ठ की ऐसी बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु परम क्रुद्ध हुए और विकुक्षि से बोले–'मैंने तुम्हें पितृकर्म के योग्य मांस लाने के लिए आज्ञा की थी, और उसी के लिए तुम शिकार करने गये भी थे, किन्तु वहाँ पर तुमने कुछ भी उचित-अनुचित का विचार न कर श्राद्ध के पहले ही निर्ममतापूर्वक एक खरगोश खा लिया ।।१८।। इस गुरु अपराध

तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा। एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वशिष्ठवचनात्सुतः ।।१९।।
इक्ष्वाकौ संस्थिते तस्मिञ्शशास पृथिवीमिमाम्। प्राप्तः परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ।।२०।।
तदाऽकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदितः। ततस्तेनैनसा पूर्णो राज्यावस्थो महीपतिः ।।२१।।
कालेन गतवांस्तत्र स च न्यूनतरां गतिम्। ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं नाविधिर्भक्षयेत्तु वै ।।२२।।
मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।२३।।
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्। इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा ।।२४।।
पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृतः। अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः ।।२५।।
वृषदश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान्। आंध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२६।।
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता। श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ।।२७।।
बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुतिः। यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ।।२८।।

ऋषय ऊचुः

धुन्धेर्वाधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात्। यदर्थं कुवलाश्वः स धुन्धुमारत्वमागतः ।।२९।।

के कारण तुम्हें मैं त्याग कर रहा हूँ, अब तुम यहाँ से बाहर जहाँ मन कहे चले जाओ और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो।' वसिष्ठ के कहने पर इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया। उस राजा इक्ष्वाकु के परलोक गमन के अनन्तर परम धर्मात्मा विकुक्षि ने महर्षि वसिष्ठ के बहुत कहने-सुनने पर अयोध्या का राज्य भार अपने ऊपर ले लिया और समस्त पृथ्वी मण्डल का शासन किया। किन्तु राज्य भार ले लेने पर वह राजा विकुक्षि अपने उस पूर्व पाप के कारण उत्तरोत्तर गिरता गया, उसकी महिमा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी। इस आख्यान को जानकर लोगों को चाहिए कि बिना विधान के मांस को न खायँ ।।१९-२२।। बुद्धिमान् लोग मांस के विषय में यह कहा करते हैं कि "मैं इस लोक में जिसके मांस का भक्षण कर रहा हूँ वह परलोक में मेरे मांस का भक्षण करेगा-यही मांस भक्षण का नियम है।" शश भक्षण करनेवाले राजा विकुक्षि का उत्तराधिकारी परम बलवान् राजा ककुत्स्थ हुआ। प्राचीनकाल में इन्द्र के बैल का स्वरूप धारण करने पर यह राजा उनके ककुद (डील) पर सवार हुआ था, यह प्रसंग पूर्वकाल में होनेवाले आडीवक नामक युद्ध में घटित हुआ था, इसीलिए इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा। ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए, अनेना के पुत्र राजा पृथु हुए, पृथु के पुत्र वृषदश्व हुए, उनके परम बलशाली अन्ध्र नामक पुत्र हुआ। अन्ध्र के यवनाश्व नामक पुत्र हुआ, जिसके पुत्र का नाम श्रावस्त हुआ ।।२३-२६।। उसी राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण किया था। राजा श्रावस्त के पुत्र महान् यशस्वी राजा बृहदश्व हुए। बृहदश्व के पुत्र का नाम कुवलाश्व सुना जाता है। यही राजा कुवलाश्व धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार नाम से विख्यात हुए ।।२७-२८।।

ऋषियों ने कहा-हे परम बुद्धिमान् सूत जी! धुन्धु के वध का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिस कारणवश राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार की उपाधि मिली ।।२९।।

सूत उवाच

बृहदश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशतिः । सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ।।३०।।
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः । कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम् ।।३१।।
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्तं तस्मिन्राष्ट्रे नराधिपः । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ।।३२।।
बृहदश्वं महाराज शूरमुत्तमधार्मिकम् । प्रयातं तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यवारयत् ।।३३।।

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हति । निरुद्विग्नस्तपः कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ।।३४।।
ममाऽऽश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु । समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तत्र तिष्ठति भूपते ।।३५।।
देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः । अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।।३६।।
स मनोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुणः । शतं लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ।।३७।।
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं प्रमुञ्चति । यदा यदा मही तत्र चलति स्म सकानना ।।३८।।
तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् । आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ।।३९।।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं सधूममतिदारुणम् । तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्व आश्रमे ।।४०।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! राजा बृहदश्व के पुत्रों की संख्या इक्कीस सहस्र थी, वे सब-के-सब सभी विद्याओं में पारङ्गत, परम बलवान्, दुर्दमनीय, प्रचुरदक्षिणा देनेवाले, यज्ञकर्त्ता एवं धार्मिक विचारोंवाले थे। नराधिप बृहदश्व ने सबों में परम धार्मिक, शूरवीर एवं साहसी कुवलाश्व को अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अभिषिक्त किया और इस प्रकार योग्य पुत्र को राज्य भी समर्पित कर स्वयं वन को चले गये। ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने परम धार्मिक महाराज बृहदश्व को वन में जाते हुए निवारित किया ।।३०–३३।।

उत्तङ्क ने कहा–हे राजन्! आपको हम लोगों की रक्षा करनी चाहिए, अतः हमारी रक्षा कीजिये, उद्विग्न चित्त होने के कारण तपस्या करने में हम असमर्थ हो रहे हैं। भूपते! हमारे आश्रम के समीप ही इस समान मरुभूमि में बालू का समुद्र है। उसी में भूमि के अन्दर निवास बनाकर परम विकराल शरीरवाला, महाबलवान् धुन्धु रहता है, देवगण भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है। वह धुन्धु मनु का पुत्र है, फिर भी परम क्रूर और दारुण चित्तवृत्तिवाला है। लोकों का विनाश करने के लिए वह सौ वर्षों से दारुण तप कर रहा है ।।३४–३७।। एक वर्ष बीतने पर वह एक श्वास छोड़ता है, जिस समय वह श्वास छोड़ता है, उस समय जंगलों समेत सारी पृथ्वी हिलने लगती है। उसकी निःश्वास वायु से धूल का विकराल बवंडर उठ पड़ता है, जिससे सूर्य का मार्ग ही घिर जाता है, सात दिनों तक भूमि काँपती रहती है। चारों ओर अग्नि की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं, विकराल ज्वालाएँ निकलने लगती हैं। अतिदारुण धुएँ में सारी दिशाएँ आकीर्ण हो जाती हैं, हे राजन्! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी निवास नहीं कर पाते ।।३८–४०।। हे महाबाहु राजन्! लोकरक्षा के ध्यान से उसे उत्पात से निवारित कीजिये। तुम्हारे इस उपकार

तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया । तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाऽऽप्याययिष्यति ।।४१।।
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन्विनिहतेऽसुरे । त्वं हि तस्य वधायाद्य समर्थः पृथवीपते ।।४२।।
विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्वं ततोऽनघ । न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाऽल्पेन शक्यते ।।४३।।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह । वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ।।४४।।
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना । कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मिन्धुन्धुनिवारणे ।।४५।।
राजा संन्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ।।४६।।
स तं व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम् । जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ।।४७।।
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमास्थितः । सहस्रैरेकविंशत्या पुवाणां सह पार्थिवः ।।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ।।४८।।
तमाविशत्ततो विष्णुर्भगवान्स्वेन तेजसा । उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ।।४९।।
तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् । अद्यप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ।।५०।।
दिव्यैः पुष्पैश्च तं देवाः समसंमत अद्भुतम् । स गत्वा पुरुषव्याघ्रस्तनयैः सह वीर्यवान् ।।५१।।
समुद्रं खनयामास वालुकार्णवमव्ययम् । नारायणेन राजर्षिस्तेजसाऽऽप्यायितो हि सः ।।५२।।

कार्य में भगवान् विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सन्तुष्टि करेंगे अर्थात् सहायता करेंगे। उस महान् असुर के मारे जाने पर सभी लोक स्वस्थ हो जायँगे। हे पृथ्वीपति! तुम उस महान् असुर के मारने में आज समर्थ हो। हे निष्पाप! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान् धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता। अर्थात् इसे वश्य करने के लिए किसी महान् बलशाली की आवश्यकता है, हे पृथ्वीपाल! सैकड़ों वर्षों में भी इसे कोई पराजित नहीं कर सकता, उसका बल महान् है, देवगण भी उसे पराजित नहीं कर सकते ।।४१–४४।। महात्मा उत्तङ्क के ऐसा कहने पर राजर्षि बृहदश्व ने धुन्धु के उपद्रवों को निर्मूल करने के लिए उन्हें अपने पुत्र कुवलाश्व को समर्पित करते हुए बोले। महर्षे! मैं राजा हूँ, सभी का पालन करना हमारा धर्म है; परन्तु हम अस्त्र-शस्त्र छोड़ चुके हैं, हे द्विजश्रेष्ठ! यह हमारा पुत्र निस्सन्देह उस धुन्धु को मारने में समर्थ होगा। इस प्रकार धुन्धु को मारने के लिए सत्यप्रतिज्ञ राजा बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को नियुक्तकर स्वयं तपस्या के लिए पर्वत की ओर प्रस्थान किया। इधर पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर धर्मात्मा महाराज कुवलाश्व ने अपने इक्कीस सहस्र पुत्रों को तथा महर्षि उत्तङ्क को साथ लेकर उस धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया ।।४५–४८।। महर्षि उत्तङ्क के प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना आदि करने के कारण तथा लोकहित की भावना से भगवान् विष्णु स्वयं उस राजर्षि कुवलाश्व में अपने तेज सहित आविष्ट हुए। इस प्रकार, राजर्षि कुवलाश्व ने जिस समय धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया उस समय आकाश में चारों ओर से घोर शब्द होने लगे। और चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि आज यह राजा कुवलाश्व अवश्यमेव धुन्धु का संहार करेगा। देवतागण चारों ओर से स्वर्गीय पुष्पों की वृष्टि उसके ऊपर करने लगे। इस प्रकार अपने पुत्रों समेत प्रस्थान कर परम बलशाली नरव्याघ्र कुवलाश्व ने उस बालुकामय समुद्र को जिसका विनाश असम्भव था, खनना प्रारम्भ किया। उस समय वह राजर्षि भगवान्

बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थितः ।।५३।।
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च वालुकान्तर्हितस्तदा । धुन्धुरासादितस्तत्र दिशामाश्रित्य पश्चिमाम् ।।५४।।
मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव । वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये ।।५५।।
सोमस्य सोमपश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलो महान् । तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्तु राक्षसाः ।।५६।।
ततः स राजाऽतिबलो धुन्धुबन्धुनिबर्हणः । तस्य वारिमयं वेगमपिबत्स नराधिपः ।।५७।।
योगी योगेन वह्निं वा शमयामास वारिणा । निरस्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् ।।५८।।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः । उत्तङ्कश्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।।५९।।
अदात्तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् । धर्मे रतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् ।।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये रक्षसा हताः ।।६०।।
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते । भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ ।।६१।।
धौन्धुमारिदृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा ।।६२।।
संहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारदः । कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ।।६३।।

के तेज से समन्वित होकर महान् बलवान् हो गये थे, फिर भी महर्षि उत्तङ्क के वंश में वर्तमान थे ।।४९-५३।। उस समय जबकि उनके पुत्रगण उस बालुकामय समुद्र को खन रहे थे धुन्धु इधर पश्चिम दिशा की ओर दिखायी पड़ा। उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, मुख से अग्नि की विकराल ज्वालाएँ इस प्रकार उगल रहा था मानो समस्त लोकों को विनष्ट कर देना चाहता हो। फिर उसने योगबल का आश्रय लेकर इतना जल बरसाया कि चारों ओर जल का भीषण समुद्र उमड़ पड़ा। हे सोमपान करनेवाले ऋषियों में सर्वोपरि! उस समय वह जलराशि एवं तरंगें इस प्रकार ऊपर की ओर उमड़ने लगीं मानो चन्द्रमा का उदय हो गया हो। इस प्रकार राक्षसों ने राजा के समस्त पुत्रों को, केवल तीन पुत्रों को छोड़कर, भस्म कर दिया ।।५४-५६।। तब धुन्धु के परिवार वर्ग को नष्ट करने की चिन्ता से उस महाबलवान् राजा ने धुन्धु की उस समस्त जलराशि को पान कर लिया, और योगबल द्वारा जल से इस अग्नि को भी शान्त कर दिया। और उस प्रकार अपने अदम्य साहस से उस महाबलवान् जलवासी राक्षस धुन्धु को निरस्त कर दिया ।।५७-५८।। अपने कार्य में सफलता प्राप्तकर राजा महर्षि उत्तङ्क के समीप उपस्थित हुए। महर्षि ने उस महात्मा राजा को उत्तम वरदान दिये। उसे कभी नष्ट न होनेवाली अक्षय सम्पत्ति प्रदान की, शत्रुओं से उसे कभी पराजय न मिले, धर्म में प्रेम भावना की वृद्धि हो, स्वर्गलोक में निरन्तर वास हो—वहाँ से कभी पतन न हो—ऐसा वरदान दिया। इसके अतिरिक्त राक्षसों द्वारा उनके जिन पुत्रों का निधन हुआ था, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्रदान किया ।।५९-६०।। उस राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र शेष रह गये थे, उनमें सबसे बड़े का नाम दृढाश्व कहा जाता है, भद्राश्व और कपिलाश्व—ये दो छोटे कहे जाते हैं। धुन्धुमार के ज्येष्ठ पुत्र दृढ़ाश्व का जो पुत्र हुआ उसका नाम हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सर्वदा क्षत्रिय धर्म में निरत रहनेवाला था ।।६१-६२।। निकुम्भ का पुत्र संहताश्व रणभूमि में परम निपुण सुना जाता है। उसके कृशाश्व और अक्षयाश्व नामक दो पुत्र हुए। संहताश्व की एक पत्नी का नाम हेमवती था, जो सत्पुरुषों से सम्माननीय

तस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती । विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ।।६४।।
युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः । अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ।।६५।।
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता । तस्यास्तु गौरिकः पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह ।।६६।।
मांधाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः । अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ।।६७।।
यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्चस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ।।६८।।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं वंशविदो जनाः । यौवनाश्वं महात्मानं यज्वानममितौजसम् ।।
मांधाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।।६९।।
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् । साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ।।७०।।
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा । तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः ।।७१।।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च विश्रुतम् । अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ।।७२।।
हरितो युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः । एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ।।७३।।
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः । नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।७४।।
संभूतस्याऽऽत्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान् । रावणो निहतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ।।७५।।

थी, उसका दूसरा नाम मतिदृषद्वती था, तीनों लोकों में वह परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ ।।६३–६४।। प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व तीनों लोकों में परम कान्तिमान् था, उसके विचार परम धार्मिक थे, उसकी पतिव्रता भार्या गौरी थी। पति ने एक बार उसे शाप दे दिया, जिसके फलस्वरूप वह बाहुदा नामक नदी के रूप में परिणत हुई। उसका पुत्र गौरिक अपने समय का चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता त्रैलोक्य विजयी राजा था, उसके विषय में पुरानी कथाओं के जाननेवाले विप्रगण ये दो श्लोक बतलाते हैं, जिनका तात्पर्य यह है। जहाँ से सूर्य उदित होते हैं और जहाँ पर जाकर अस्त होते हैं, वह सब मान्धाता का क्षेत्र (राज्य) कहा जाता है। इस प्रसंग में राजवंशों के जाननेवाले लोग परम तेजस्वी, यज्ञपरायण महात्मा मान्धाता के विषय में यहाँ तक कहते हैं कि पुराणज्ञ लोग मान्धाता को भगवान् विष्णु का स्वरूप बतलाते हैं ।।६५–६९।। उस राजा मान्धाता की स्त्री शशबिन्दु की पुत्री चैत्ररथी थी। वह समस्त पृथ्वी में अपने रूप में अनुपम थी। उस परम पतिव्रता का अन्य नाम बिन्दुमती भी था। अपने दस सहस्र भाइयों में वह सबसे ज्येष्ठ थी, उसका पतिव्रता धर्म प्रशंसनीय था। ऐश्वर्यशाली मान्धाता ने उससे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द सुने जाते हैं। राजा अम्बरीष का उत्तराधिकारी दूसरा युवनाश्व हुआ, युवनाश्व के पुत्र हरित हुए, हरित के पुत्र शूरि नाम से विख्यात हुए। ये महर्षि अंगिरा के पुत्र क्षत्रिय धर्मपरायण द्विजाति कहे जाते थे, राजा पुरुकुत्स के उत्तराधिकारी महान् यशस्वी त्रसदस्यु हुए, जिनका जन्म नर्मदा में हुआ था, त्रसदस्यु के पुत्र सम्भूत हुए ।।७०–७४।। सम्भूत के पुत्र परम प्रतापशाली अनरण्य हुए। जिन्होंने प्राचीनकाल में त्रिलोकी विजय के प्रसङ्ग में रावण का निधन किया था। उन राजा अनरण्य के पुत्र त्रसदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम हर्यश्व था, उन राजा हर्यश्व

त्रसदधोऽनरण्यश्च हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमतो नृपः ।।७६।।
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिकः । आसीत्त्रैधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ।।७७।।
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमासेऽभून्महाबलः । तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकसान् ।।७८।।
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठां संप्रापितेष्विह । विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धा यतः स्मृताः ।।
एते ह्याङ्गिरस पुत्राः क्षात्त्रोपेताः समाश्रिताः ।।७९।।
कामाद्बलाच्च मोहाच्च संकर्षणबलेन च । भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत्कृतं तेन धीमता ।।८०।।
तमधर्मेण सयुक्तं पिता त्रय्यारुणोऽत्यजत् । अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः ।।८१।।
पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः । पिता चैनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ।।८२।।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन । इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनाद्विभो ।।८३।।
न चैनं धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः । स तु सत्यव्रतो धीमाञ्श्वपाकावसथान्तिकम् ।।
पित्रा मुक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ ।।८४।।
तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः । समा द्वादश संपूर्णास्तेनाधर्मेण वै तदा ।।८५।।
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः । संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ।।८६।।

से दृषद्वती में राजा वसुमत का जन्म हुआ। राजा वसुमत के पुत्र परम धार्मिक राजा त्रिधन्वा उत्पन्न हुए, राजा त्रिधन्वा के पुत्र परम विद्वान् एवं प्रभावशाली राजा त्रय्यारुण हुए ।।७५–७७।। उनके महाबलवान् पुत्र सत्यव्रत हुए उन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री को, विवाह के मंत्रों के उच्चारण करते समय, जब सारी क्रियाएँ समाप्त हो गयी थीं, समस्त देवताओं को पराजित कर, हरण किया था। उस परम बलवान् राजा के पुत्र विष्णुवृद्ध हुए, जिनसे उत्पन्न होनेवाले वंश के लोग विष्णुवृद्ध नाम से विख्यात हुए। अंगिरा के ये पुत्रगण भी क्षत्रिय मिश्रित द्विजाति वर्ण के हैं ।।७८–७९।। परम बुद्धिमान् सत्यव्रत ने अपनी इच्छा से, बल से अथवा बलवान् भावी (नियति) के वश होकर बलपूर्वक उक्त दुराचरण किया था, उसके इस अधर्माचरण से असन्तुष्ट होकर पिता त्रय्यारुण ने उसका परित्याग कर दिया। और परम क्रुद्ध होकर अनेक बार उससे कहा कि 'तुम हमारे घर से बाहर निकल जा।।' अपने पिता के एकमात्र पुत्र सत्यव्रत ने जब पिता से बारम्बार पूछा कि 'मैं कहाँ जाऊँ ?' तब पिता ने कहा कि चाण्डालों के साथ जाकर निवास कर, हे कुल में कलंक लगानेवाले ! तुम्हारे जैसे नालायक पुत्र से मैं पुत्रवान् नहीं होना चाहता।' हे परम प्रतापशाली ! पिता के इस प्रकार निरादरपूर्ण वचन कहे जाने पर सत्यव्रत नगर से बाहर निकल गये उस समय परम प्रभावशाली महर्षि वसिष्ठ ने भी उन्हें घर रहने के लिए नहीं रोका। इधर परम बुद्धिमान् एवं वीर सत्यव्रत पिता के परित्याग कर देने पर चाण्डालों की बस्ती के समीप जाकर बस गये और उधर उनके पिता वन को चले गये ।।८०–८४।। इस अधर्म से उस प्रान्त में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं की। उसी प्रान्त में महातपस्वी विश्वामित्र अपने स्त्री–पुत्रों को निराधार छोड़कर सागर के तटवर्ती प्रान्त में घोर तप कर रहे थे, उनकी पत्नी ने अपने मँझले पुत्र को गले में बाँधकर शेष पुत्रों के भरण–पोषण

तस्य पत्नी बले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शिष्टानां भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ।।८७।।
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीतं तं नरोत्तमः । महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सुव्रतः ।।८८।।
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाकरोत् । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।।८९।।
सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपाः । महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षितः ।।९०।।
तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया । विश्वामित्रकलत्रं च बभार विनये स्थितः ।।९१।।
हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्यासे तन्मांसपचत्ततः ।।९२।।
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् । पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते ।।९३।।
अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः । याज्योपाध्यायसंयोगाद्वशिष्ठः पर्यरक्षत ।।९४।।
सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै बलात् । वशिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना ।।९५।।
पित्रा रुदंस्तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम् । न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन वै ।।९६।।
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । एवं सत्यव्रतस्तान्वै हृतवान्सप्तमे पदे ।।९७।।
जानन्धर्मान्वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति । इति सत्यव्रते रोषं वसिष्ठो मनसाऽकरोत् ।।९८।।

के लिए सौ गौओं के बदले बेच दिया था। व्रतपरायण, धर्मात्मा नरपति सत्यव्रत ने महर्षिपुत्र विश्वामित्र के मँझले पुत्र को इस प्रकार गले में बँधा और विक्रीत देखकर उस संकट से छुड़ाया ।।८५–८८।। तदुपरान्त उस महाबुद्धिमान् राजा ने महर्षि विश्वामित्र को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उनके पुत्र का पालन–पोषण किया। गले में बँधने के कारण विश्वामित्र के उस महातपस्वी पुत्र का नाम गालव पड़ा। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का पुत्र उस बलवान् राजा के द्वारा बचाया गया। उसने अपनी व्रतपरायणता, भक्ति, कृपा, सत्यप्रतिज्ञा एवं विनय से विश्वामित्र की स्त्री का भरण–पोषण किया। विश्वामित्र के आश्रम के समीप मृगों, शूकरों, महिषों एवं अन्यान्य वन्य जन्तुओं को मारकर उनके मांस को वह पकाता था ।।८९–९२।। और मौनव्रत धारणकर पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में चाण्डालों के समीप निवास करने की दीक्षा ग्रहणकर निवास करता रहा। इधर पिता–पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में महर्षि वसिष्ठ पुरोहितों एवं उपाध्यायों के सहयोग से राजधानी अयोध्या, राज्य एवं अन्तःपुर की रक्षा करते रहे। कुमार सत्यव्रत अपने बाल्य स्वभाव के कारण तथा भावीवश महर्षि वसिष्ठ के ऊपर बहुत अधिक क्रुद्ध थे। क्योंकि पिता द्वारा घर से निकाले जाते समय जब वे रोते हुए राष्ट्र से बाहर निकल रहे थे तब महर्षि वसिष्ठ ने किसी कारण से उन्हें निवारित नहीं किया ।।९३–९६।। पाणिग्रहण अर्थात् विवाह संस्कार के मंत्रों की समाप्ति सातवें चरण में होती है (सप्तपदी के होने के बाद विवाह संस्कार सम्पन्न होता है) किन्तु उसी सप्तपदी के समाप्त होने के अवसर पर उस विदर्भ राजा की स्त्री को बलपूर्वक छीन लिया था। महर्षि वसिष्ठ धर्म की मर्यादा को जाननेवाले थे, अतः उन्होंने सत्यव्रत के उक्त कार्य का अनुमोदन नहीं किया, और मंत्रों की मर्यादा भ्रष्ट होने के भय से कुमार सत्यव्रत के ऊपर उन्होंने मन से क्रोध किया ।।९७–९८।। महर्षि वसिष्ठ

गुरुबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तदा । न तु सत्यव्रतोऽबुध्यदुपांशुव्रतमस्य वै ।।९९।।
तस्मिंश्चोपरते यो यत्पितुरासीन्महामनाः । तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ।।१००।।
तेन त्विदानीं बहुधा दीक्षां तां दुर्बलां भुवि । कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयं च भवेदिति ।।१०१।।
ततो वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् । अभिषेक्ष्याम्यहं राज्ये पश्चादेनमिति प्रभुः ।।१०२।।
स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहन्बली । अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ।।१०३।।
सर्वकामदुधां धेनुं स ददर्श नृपात्मजः । तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ।।१०४।।
दस्युधर्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिनां वरः । स तु मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चाऽऽत्मजान् ।।१०५।।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्तं तदाऽत्यजत् । प्रोवाच चैव भगवान्वसिष्ठस्तं नृपात्मजम् ।।१०६।।
पातये क्रूर हे क्रूर तव शङ्कुमयोमयम् । यदि ते त्रीणि शङ्कूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ।।१०७।।
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ।।१०८।।
एवं स त्रीणि शङ्कूनि दृष्ट्वा तस्य महातपाः । त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः ।।१०९।।

ने गुरु की मर्यादा रक्षा के ध्यान से सत्यव्रत के ऊपर वह कोप किया था, उधर कुमार सत्यव्रत उनके इस मौनावलम्बन का जो नगर से निकालते समय उन्होंने अपनाया था, तात्पर्य नहीं जान सके। महामनस्वी वसिष्ठ जी ने सोचा कि पिता की मृत्यु हो जाने के बाद इन्द्र ने बारह वर्षों तक अराजकता से अधर्म बढ़ जाने के कारण वृष्टि नहीं की, इधर सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में दीक्षा ग्रहण कर निवास कर रहा है, पृथ्वी पर लोगों की जीविका कष्टसाध्य हो गयी है, सत्यव्रत के आ जाने से उसके वंश का विस्तार तो हो ही जायगा ।।९९-१०१।। ऐसा विचारकर महर्षि वसिष्ठ ने उस समय पिता द्वारा निष्कासित किये गये सत्यव्रत को निवारित किया, और कहा कि तुम्हें राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ। उधर बलवान् राजकुमार सत्यव्रत पिता की आज्ञा से बारह वर्ष का व्रत लेकर जिस समय वन में निवास कर रहा था, उस समय एक दिन मांस का अभाव हो गया, तब उसने महात्मा वसिष्ठ की सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कामधेनु को देखा ।।१०२-१०३$\frac{१}{२}$।। क्रोध, मोह, क्षुधा एवं अत्यन्त थके-माँदे होने के कारण, उसने विचार किया कि मैं इन चाण्डालों के समीप निवास करता हूँ, उन्हीं के समान आचरण भी मुझे करना चाहिए, क्यों न इसी को मारकर क्षुधा शान्त करूँ। यह सोचकर उसने वसिष्ठ की उस कामधेनु को मार डाला। महाबलवान् राजकुमार सत्यव्रत ने इस प्रकार उस कामधेनु के मांस को स्वयं खाया और महर्षि के पुत्रादिकों को भी खिलाया। इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर परम तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने कुमार सत्यव्रत को छोड़ दिया और उससे कहा, हे क्रूरकर्मा! अब हम तुम्हें गिरा रहे हैं, हे पुरुषाधम! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु (महापाप रूप कील) न होते तो तुम्हारे ऊपर लोह का शंकु गिरता। पिता के असन्तुष्ट करने के कारण, गुरु की कामधेनु की हत्या करने के कारण, बिना संस्कार आदि किये मांस भक्षण करने के कारण तुमने तीन धार्मिक अपराध किये हैं ।।१०४-१०८।। महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत के इन तीन शंकु सदृश महान् अपराधों का विचारकर उसका त्रिशंकु नाम रख दिया, इसी कारण उसका त्रिशंकु नाम भी पड़ गया। इधर

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते। ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे ।।११०।।
छन्द्यमानो वरेणाथ गुरुं वव्रे नृपात्मजः। अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके ।।१११।।
अभिषिच्य तदा राज्ये याजयामास तं मुनिः। मिषतां दैवतानां च वशिष्ठस्य च कौशिकः ।।११२।।
+विन्ध्यपार्श्वे महापुण्या निम्नगा गिरिकानने। तस्य स्नानेन संभूता कर्मनाशा शुभा नदी ।।
सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयत्प्रभुः ।।११३।।
मिषतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत्। अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोको पौराणिका जनाः ।।११४।।
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशङ्कुर्दिवि राजते। देवैः सार्धं महातेजाऽनुग्रहात्तस्य धीमतः ।।११५।।
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता। अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशङ्कुग्रहभूषिता ।।११६।।
तस्य सत्यव्रता नाम भार्या केकयवंशजा। कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ।।११७।।
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः। आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुतः ।।११८।।
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान्। हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ।।११९।।

राजर्षि विश्वामित्र जब तपस्या से निवृत्त होकर आश्रम को लौटे और स्त्री-पुत्रादिकों के सत्यव्रत द्वारा भरण-पोषण किये जाने का वृत्तान्त सुना तो परम प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वरदान दिया। विश्वामित्र के वरदान देते समय राजकुमार सत्यव्रत ने सारा शाप वृत्तान्त निवेदन किया। कौशिक ने उस बारह वर्ष के अनावृष्टिजनित दुष्काल के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्यपद पर अभिषिक्त किया, और उसके द्वारा यज्ञादि शुभ कार्य सम्पन्न कराया, सभी देवगण तथा महर्षि वसिष्ठ देखते ही रह गये ।।१०९-११२।। यज्ञावसान में उस त्रिशंकु के स्नान करने से कर्मनाशा नामक नदी अवतीर्ण हुई जो विन्ध्याचल पर्वत के समीप जंगलों और पहाड़ियों में से बहती है। वह कर्मनाशा नदी महापुण्यदायिनी तथा मंगलकारी है। इस प्रकार महान् ऐश्वर्यशाली विश्वामित्र ने सत्यव्रत को स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया। महर्षि वसिष्ठ उनके इस अद्भुत कार्य को देखकर रह गये। पौराणिक लोग इस विषय में इन दो श्लोकों को उपस्थित करते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है ।।११३-११४।। 'महामुनि विश्वामित्र की कृपा से त्रिशंकु स्वर्ग में विराजमान है, उस परम बुद्धिमान् की कृपा से वह तेजस्वी होकर देवताओं के साथ शोभा पाता है, त्रिशंकु रूप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दरी एक मनोहर रमणी उसके पास धीरे-धीरे जाती है।' उस राजा त्रिशंकु की पत्नी केकयवंश में उत्पन्न सत्यव्रता नाम की थी ।।११५-११६$\frac{१}{२}$।। उसने हरिश्चन्द्र नामक परम धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया, वह राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के रूप में परम विख्यात था। उसने अपने समय में राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था, समस्त पृथ्वीमण्डल का वह एकच्छत्र सम्राट् था, ऐसा सुना जाता है। हरिश्चन्द्र का पुत्र परम बलवान् रोहित का पुत्र हरित हुआ, हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।११७-११९।। उस चंचु के विजय और सुदेव नामक दो पुत्र हुए।

+ नास्त्ययं श्लोकः क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः। जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः ।।१२०।।
रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्मार्थकोविदः। रुरुकाद्धृतकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान् ।।१२१।।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः। शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पल्हवैस्तथा ।।१२२।।
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत्स धर्म्ये सत्ययुगे तथा। सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ।।
मृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षितः ।।१२३।।
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात्सगरो नृपः। जघान पृथिवीं गत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ।।१२४।।
शकानां पल्हवानां च धर्मान्निरसदच्युतः। क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानां च धर्मवित् ।।१२५।।

ऋषय ऊचुः

कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान्। किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ।।
धर्मान्कुलोचितान्क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ।।१२६।।

सूत उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल। हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्धं समागतैः ।।१२७।।
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पल्हवास्तथा। हैहयार्थं पराक्रान्ता एते पञ्च गणास्तदा ।।१२८।।

विजय सभी क्षत्रियों का विजेता था, इसी कारण से उसका नाम भी विजय था। विजय का पुत्र रुरुक हुआ, जो अपने समय का परम धर्मार्थवेत्ता राजा था। रुरुक का पुत्र हृतक हुआ, और उसका बाहु उत्पन्न हुआ। हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होनेवालों ने परम व्यसनी राजा बाहु को परास्त कर दिया। उनके साथ शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवों के वंश में उत्पन्न होनेवाले भी थे। सत्ययुग का समय होने पर भी वह राजा बाहु परम धार्मिक नहीं था, उस राजा बाहु का पुत्र विष के साथ गर्भ से उत्पन्न हुआ, उसका नाम सगर पड़ा। पिता के शत्रुओं द्वारा की गयी दुरवस्था में भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा तुर्व ने की थी ।।१२०-१२३।। भार्गव से आग्नेय अस्त्र प्राप्तकर राजा सगर ने समस्त पृथ्वी पर घूम-घूमकर हैहय और तालजंघ के वंश में उत्पन्न होनेवालों में सबका संहार कर डाला। उस महाबलवान् राजा सगर ने शकों, पह्लवों, पारदों एवं अन्य क्षत्रियों को भी अपने पूर्वजों के अधिकार एवं धर्म से वंचित कर दिया ।।१२४-१२५।।

ऋषियों ने कहा—सूत जी! वे राजा सगर किस प्रकार विष के साथ उत्पन्न हुए, और किस लिए उस अच्युत ने महान् तेजस्वी शकों एवं क्षत्रियों के कुलोचित धर्मों को क्रुद्ध होकर निरत कर दिया ।।१२६।।

सूत बोले—ऋषिगण! ऐसी प्रसिद्धि है कि पूर्वकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने के कारण उनका राज्य हैहय, तालजंघ एवं शकों के साथ यवन, पारद, कम्बोज और पह्लवों ने आक्रमण करके सारा राज्य छीन लिया। उस समय इन पाँचों गणों ने हैहय के लिए यह आक्रमण किया। इन क्षत्रिय पुङ्गव बलवान् शत्रुओं द्वारा राज्य छीन लिये जाने पर धर्मात्मा राजा बाहु घर द्वार छोड़कर पत्नी के साथ वन को चले गये और वहाँ तपस्या करना प्रारंभ किया ।।१२७-

हृतं राज्यं बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवैः। हृतराज्यस्तदा बाहुः संन्यस्य नु तदा नृपः।।
बनं प्रविश्य धर्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ।।१२९।।
कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितो नृपः। वृद्धात्वाद्दुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च ।।१३०।।
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात्। सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ।।१३१।।
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्निं तं समरोहयत्। और्वस्तां भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्तयत् ।।१३२।।
तस्याश्रमे तु तं गर्भं सागरेण तदा सह। व्याजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम् ।।१३३।।
और्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मनः। अध्याप्य वेदशाखाणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ।।१३४।।
जामदग्न्यात्तदाग्नेयमसुरैरपि दुःसहम्। स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः।।
जघान हैहयान्क्रुद्धो रुद्रः पशुगणानिव ।।१३५।।
ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तथा। पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितो नृपः ।।१३६।।
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना। वसिष्ठं शरणं सर्वे प्रपन्नाः शरणैषिणः ।।१३७।।
वसिष्ठस्तांस्तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनिः। सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ।।१३८।।
सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च। धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ।।१३९।।

१२९।। कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गये, और अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल होने के कारण बीच मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी यादवी नामक पत्नी, जो उस समय गर्भवती थी, अनुगमन के लिए प्रस्तुत हुई, उसके गर्भ को मारने की नीयत से सपत्नी ने उसे विष दे दिया था। यादवी को पति की चिता बनाकर उसने बैठा दिया और आग भी लगा दी, उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहाँ आये और करुणावश उसे जलने से निवारित किया ।।१३०-१३२।। उन्हीं और्व ऋषि के आश्रम में यादवी ने सपत्नी के दिये गये विष के साथ महाबाहु सगर नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। मुनिवर और्व ने उस महातेजस्वी सगर का जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किया और वेद शास्त्रों का सम्पूर्ण अध्ययन कराकर अस्त्र विद्या भी दी। उसी समय जमदग्नि के पुत्र और्व मुनि से सगर ने उस आग्नेयास्त्र को प्राप्त किया, जिसे बड़े-बड़े राक्षस भी सहन करने में असमर्थ थे। उसी अस्त्र बल से तथा अपने शारीरिक बल से उस परम प्रतापी राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार कर डाला, जैसे रुद्र सृष्टि के अवसान में जीवसमूहों का संहार करते हैं ।।१३३-१३५।। हैहयों को मारने के उपरान्त राजा सगर ने शक, यवन, कम्बोज, पारद एवं पह्लवों को भी निर्जीव कर देने का इरादा किया। महाबलवान् एवं पराक्रमी सगर ने अत्यन्त पीड़ित एवं भयभीत होकर वे सब शरण खोजते हुए, जब महर्षि वसिष्ठ के पास पहुँचे तब महामुनि ने वचन देकर उनको अभयदान दिया और राजा सगर को इस संहार कार्य से निवारित किया। राजा सगर ने इधर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का, उधर गुरु के आदेश का विचार करके उन सबों के धर्मों को नष्ट कर दिया तथा वेश-भूषा आदि भी बदल दी ।।१३६-१३९।। शकों का उसने आधा सिर मुण्डित

अर्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्। यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ।।१४०।।
पारदा मुक्तकेशाश्च पल्हवाः श्मश्रुधारिणः। निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ।।१४१।।
शका यवनकाम्बोजाः पल्हवाः पारदैः सह। कलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोलाः खसास्तथा ।।१४२।।
सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ।।१४३।।
स धर्मविजयी राजा विजित्वेमां वसुंधराम्। अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ।।१४४।।
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे। वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ।।१४५।।
स तं देशं सुतैः सर्वैः खानयामास पार्थिवः। आसेदुश्च ततस्तस्मिंस्तदन्तस्ते महार्णवे ।।१४६।।
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्। विष्णुं कपिलरूपेण हंसं नारायणं प्रभुम् ।।१४७।।
तस्य चक्षुः समासाद्य तेजस्तत्प्रतिपद्यते। दग्धाः पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिताः ।।१४८।।
बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतश्च वः। शूरः पञ्चवनश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ।।१४९।।
प्रादाच्च तस्य भगवान्हरिर्नारायणो वरान्। अक्षतत्वं स्ववंशस्य वाजिमेधशतं तथा ।।
विभुं पुत्रं समुद्रं च स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् ।।१५०।।
स समुद्रोऽश्वमादाय ववन्दे सरितां पतिः। सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ।।१५१।।

कराकर छोड़ दिया, यवनों के पूरे सिर को मुंडित कराकर छोड़ दिया, कम्बोजों को भी पूरा सिर मुंडित कराकर छोड़ दिया, पारदों के केवल केश छोड़ दिये मूँछ-दाढ़ी सब मुण्डित करा दिये, पह्लवों की केवल दाढ़ी रखवाकर छोड़ दिया। उस महान् बलशाली ने इस सबको वेदाध्ययन, यज्ञ, हवनादि से सर्वथा वंचित कर दिया। ये शक, यवन, कम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श, माहिषिक, दार्व, चोल एवं खस जातिवाले सभी पहले क्षत्रिय वर्ण के थे, इनके धर्म को उस महाबलवान् राजा ने वसिष्ठ का वचन मानकर निराकृत कर दिया ।।१४०-१४३।। इस प्रकार उस धर्मविजयी राजा ने सारी पृथ्वी जीतकर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ग्रहणकर अश्व को भूमण्डल भर घुमाया। घुमाते समय उसका अश्वमेध यज्ञ का वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के तटवर्ती प्रान्त में अपहृत कर लिया गया और पृथ्वी के भीतर छिपा दिया गया ।।१४४-१४५।। तदनन्तर राजा सगर ने अपने सभी पुत्रों से समुद्र के तटवर्ती समस्त प्रान्तों को खनवा डाला, खनते समय उसके पुत्रगण उस महासमुद्र के अन्तिम छोर पर पहुँच गये और वहाँ पर आदि पुरुष, हरि, कृष्ण, प्रजापति, नारायण, प्रभु, हंस आदि अनेक नामों एवं रूपों से प्रकाशित होनेवाले भगवान् विष्णु को महर्षि कपिल के वेश (में उपस्थित देखा।) चोर जानकर उनके पास, ज्योंही उनकी आँख के सामने पहुँचे त्योंही परम तेज को न सहन कर भस्म हो गये, केवल चार पुत्र शेष रह गये।।१४६-१४८।। उनके नाम बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे, उस महान् ऐश्वर्यशाली राजा सगर के वंश को बढ़ानेवाले ये चार पुत्र कहे जाते हैं। भगवान् नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये। जिनसे उनको अपने वंश का अक्षयत्व, सौ अश्वमेध यज्ञों के सम्पन्न करने का सुअवसर, परम ऐश्वर्य सम्पन्न समुद्र का पुत्रत्व एवं स्वर्गलोक में अनन्त काल पर्यन्त निवास प्राप्त हुए ।।१४९-१५०।। समस्त सरिताओं का स्वामी समुद्र उस समय उनके समीप अश्व लेकर उपस्थित हुआ और नमस्कार किया। राजा के उसी

तं चाऽश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रात्प्राप्य पार्थिवः । आजहाराश्वमेधानां शतं चैव पुनः पुनः ।।१५२।।
षष्टिपुत्रसहस्राणि दग्धान्यश्वानुसारिणाम् । तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ।।
पुत्राणां तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम् ।।१५३।।

ऋषय ऊचुः

सगरस्याऽऽत्मजा राज्ञः कथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ।।१५४।।

सूत उवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्याऽऽस्तां तपसा दग्धकिल्बिषे । ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ।।१५५।।
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।।१५६।।
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तपसाऽऽराधितः प्रभुः । एका जनिष्यते पुत्रं वंशकर्तारमीप्सितम् ।।
षष्टिपुत्रसहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ।।१५७।।
मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् । वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि ।।१५८।।
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा । *महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ।।१५९।।
अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत । असमञ्ज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम् ।।१६०।।

महान् कर्म से उसे सागरत्व (सागर के पुत्रत्व) की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रकार समुद्र से उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को प्राप्तकर राजा सगर ने अन्य सौ अश्वमेध यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न किया। उसके उस प्रथम यज्ञ के पीछे-पीछे चलनेवाले जो साठ सहस्र पुत्र भस्म हुए थे वे सब-के-सब महाबलवान् पुत्रगण नारायण के तेज में तद्रूप होकर प्रविष्ट हो गये-ऐसा हमने सुना है ।।१५१-१५३।।

ऋषियों ने पूछा-सूत जी! राजा सगर के वे साठ सहस्र पुत्रगण, जो सब परम बलवान् एवं विजयी थे, किस प्रकार से अथवा किस विधि से उत्पन्न हुए-यह बतलाइये ।।१५४।।

सूत जी बोले-उस राजा सगर की दो स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा समस्त पापों को भस्म कर दिया था, बड़ी स्त्री विदर्भराज की कन्या केशिनी नाम से विख्यात थीं, उनकी छोटी परम धर्मिष्ठ पत्नी जो थीं, वे राजा अरिष्टनेमि की कन्या थीं, अपने रूप में सारे भूमण्डल में वे अकेली थीं ।।१५५-१५६।। (उनका नाम सुमति था) तपस्या द्वारा सन्तुष्ट किये गये महामुनि और्व ने उन्हें वरदान दिया कि इनमें से एक वंशकर्त्ता पुत्र को उत्पन्न करेगी और दूसरी साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न करेगी। राजसभा में मुनि के इन दोनों वरदानों में से केशिनी ने वंशकर्त्ता एक पुत्र की प्राप्ति का वरदान माँगा, सुपर्णभगिनी दूसरी रानी सुमति ने अपने मन के अनुकूल महामुनि से साठ सहस्र पुत्रों को प्राप्त करने का वरदान माँगा। तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को उत्पन्न किया, बाद में चलकर वह सगर पुत्र राजा असमञ्ज काकुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ ।।१५७-१६०।। यशस्विनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से

---

* एतदर्धस्थाने इदमर्धं 'महात्मा तु समहतो जग्राह सुमती तथा' इति ख. ग. घ. पुस्तकेषु।

सुमतिस्त्वपि जज्ञे वै गर्भं तुम्बं यशस्विनी । षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद्विनिःसृताः ।।१६१।।
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्गर्भान्यदधत्ततः । धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ।।१६२।।
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् । कुमारास्ते महाभागाः सगरप्रीतिवर्धनाः ।।१६३।।
कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे । षष्टिपुत्रसहस्राणि तेषामश्वानुसारिणाम् ।।१६४।।
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रः सगरस्याऽऽत्मसंभवः । असमञ्ज इति ख्यातो बर्हिकेतुर्महाबलः ।।१६५।।
पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरा । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ।।१६६।।
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः । दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथः ।।१६७।।
येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता । ईजानेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ।।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका जनाः ।।१६८।।
भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्मभिः । तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः ।।१६९।।
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह । नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः ।।१७०।।
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् । एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ।।१७१।।
नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता । बभूव वसुधाऽत्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ।।१७२।।

एक तुम्ब उत्पन्न किया जिसके बीच से साठ सहस्र पुत्र निकले। उत्पन्न होने के बाद वे गर्भ घृत से भरे हुए पात्रों में रखे गये, राजा ने उन पात्रों को साठ सहस्र धायों को पालने के लिए सौंपा। नव महीने बीत जाने पर उन पात्रों से सुखपूर्वक वे साठ सहस्र महाभाग्यशाली राजकुमार बाहर निकले, जिन्हें देखकर राजा सगर को परम सुख प्राप्त हुआ। बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर वे सब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुए। प्रथम अश्वमेध यज्ञ के अश्व के पीछे वे साठ सहस्र पुत्र गये थे ।।१६१–१६४।। राजा सगर के सबसे बड़े औरस पुत्र नरव्याघ्र असमञ्ज महाबलवान् थे, उनका दूसरा नाम बर्हिकेतु भी प्रसिद्ध था। पहले वे नगर निवासियों के अहितकर कार्यों में लगे रहते थे, इससे पिता ने उन्हें निर्वासित कर दिया था। असमञ्ज के परम बलवान् अंशुमान नामक पुत्र हुए। अंशुमान के परम धर्मात्मा दिलीप नाम से विख्यात पुत्र हुए। दिलीप से महान् तेजस्वी भगीरथ नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ ।।१६५–१६७।। इसी भगीरथ ने अपनी पूजा एवं क्रिया के बल से विमानों से सुशोभित, समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को पुत्री रूप में प्राप्त किया और समुद्रपर्यन्त उसकी पावनी धारा से पृथ्वी को सुशोभित किया। पुराणों के जाननेवाले आज भी इस श्लोक (यशोगाथा) का गान करते हैं कि 'राजा भगीरथ ने अपने कर्मों द्वारा गंगा जी को पृथ्वी पर उतारा था', राजवंशों के वृत्तान्त को जाननेवाले अर्थात् ऐतिहासिक लोग इसीलिए गंगा को भागीरथी कहते हैं। उस राजा भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम से विख्यात हुआ, उसका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ, जो सर्वदा अपने धर्म में तत्पर रहनेवाला था ।।१६८–१७०।। नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, और उसका पुत्र राजा सिन्धुद्वीप हुआ। पुरानी कथाओं के जाननेवाले लोग इस वंश का इतिहास इसी प्रकार सुनाते हैं–ऐसा हमने भी सुना है। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा नाभाग के पुत्र अम्बरीष की भुजाओं से पाली गयी पृथ्वी तीनों

आयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् । आयुतायोस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः ।।१७३।।
दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली । नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ।।१७४।।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः । ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सर्वकामो जनेश्वरः ।।१७५।।
सुदासस्तस्य तनयो राजा हंसमुखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ।।१७६।।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः । वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ।।
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवृद्धये ।।१७७।।
अश्मकस्योरकामस्तु मूलकस्तत्सुतोभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमं मूलकं वै नृपं प्रति ।।१७८।।
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत् । विवस्त्रस्त्राणमिच्छन्वै नारीकवचमीश्वरः ।।१७९।।
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः स्मृतः । तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडिविडो बली ।।१८०।।
असीत्त्वैडिविडः श्रीमान्कृतशर्मा प्रतापवान् । पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रिकस्य व्यजायत ।।१८१।।
दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वाङ्गद इति श्रुतिः । येन स्वर्गादिहाऽऽगम्य मूहूर्तं प्राप्य जीवितम् ।।
त्रयोऽभिसंहिता लोका बुध्या सत्येन चैव हि ।।१८२।।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तमादजायत । अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।।
राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।।१८३।।

तापों से सर्वदा के लिए विहीन हो गयी थी, अर्थात् उसके समय में प्रजाओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ, वह भी परम बलशाली राजा था। उस आयुतायु का उत्तराधिकारी महान् यशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुआ।१७१–१७३। यह ऋतुपर्ण राजा नल का परम सुहृद एवं बलवान् राजा था, दिव्य अक्ष विद्या में वह परम निपुण था। पुराणों में दो नल विख्यात हैं, वे दोनों ही परम साहसी एवं वीर हैं, उनमें एक नल राजा वीरसेन के पुत्र थे, दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे। राजा ऋतुपर्ण के पुत्र राजा सर्वकाम थे, उनके पुत्र का नाम सुदास था, इस सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था (अथवा उसका मुख हंस की तरह था)। उस सुदास के पुत्र राजा सौदास के नाम से कहे जाते हैं। इनका दूसरा नाम कल्माषपाद तथा मित्रसह भी विख्यात है ।।१७४–१७६$\frac{1}{2}$।। महान् तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने राजा कल्माषपाद के क्षेत्र में (स्त्री में) इक्ष्वाकु के वंश की वृद्धि के लिए अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ, उसका पुत्र मूलक था। उस राजा मूलक के विषय में आज भी लोग यह कहते हैं कि वह राजा मूलक राम (परशुराम) के भय से स्त्रियों के बीच में निवास करता था, समर्थ होते हुए भी वह वस्त्र–विहीन होकर अपनी रक्षा के लिए स्त्रियों को कवच बनाये हुए था। अथवा पुरुषों का वेश छोड़कर स्त्रियों का वेश धारण किये हुए था ।।१७७–१७९।। उस राजा मूलक के पुत्र परम धर्मात्मा राजा शतरथ कहे जाते हैं। उस राजा शतरथ से परम बलवान् राजा ऐडिविड उत्पन्न हुए। वे राजा ऐडिविड परम कान्तिशाली थे। उनके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुए, कृतशर्मा के विश्वमहत् नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।।१८०–१८१।। उनके पुत्र दिलीप हुए, जो खट्वांगद नाम से भी प्रसिद्ध थे। वे राजा दिलीप स्वर्गलोक से पृथ्वीलोक पर आकर दो घड़ी तक जीवित रहे। अपने सत्य, बुद्धि एवं बल से उन्होंने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था। उन राजा खट्वांगद के पुत्र दीर्घबाहु हुए, उनसे राजा रघु हुए, रघु के परम बलवान् अज उत्पन्न हुए। उन्हीं अज

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ।।१८४।।
माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत् । शत्रुघ्नेन पुरी तत्र मथुरा संनिवेशिता ।।१८५।।
सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ । पालयामासतुः सुतौ वैदेह्यौ मथुरां पुरीम् ।।१८६।।
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्याऽऽत्मजावुभौ । हिमवत्पर्वताभ्यासे स्फीतौ जनपदौ तयोः ।।१८७।।
अङ्गदस्यङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी । चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शुभा ।।१८८।।
भरतस्याऽऽत्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च । गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः ।।१८९।।
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी । पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ।।१९०।।
गाथां चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः । रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः ।।१९१।।
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः । आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।।१९२।।
दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् । ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महास्वनः ।।१९३।।
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति । जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः ।।१९४।।
तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः । सीतायाः पदन्विच्छन्निजघान महायशाः ।।१९५।।

से इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले परम बलशाली राजा दशरथ हुए ।।१८२–१८३।। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र परम धर्मज्ञ थे, समस्त लोक में उनकी धर्मज्ञता विख्यात थी। राम के अतिरिक्त भरत, लक्ष्मण और महाबलवान् शत्रुघ्न नामक उनके तीन पुत्र और थे। मधु के पुत्र लवणासुर का संहार कर, और मधुवन में प्रवेशकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नामक पुरी की प्रतिष्ठापना की थी। विदेह की राजकुमारी से उत्पन्न होनेवाले सुबाहु और शूरसेन नामक दोनों पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरापुरी का शासन एवं वहाँ की प्रजाओं का पालन–पोषण किया था। लक्ष्मण के अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र थे, उन दोनों के राज्य हिमवान् पर्वत के सीमावर्ती प्रान्तों में विस्तृत थे ।।१८४–१८७।। बड़े पुत्र अङ्गद की राजधानी कारपथ देश में अंगदीया नाम से विख्यात पुरी थी। मल्ल (बलवान्) चन्द्रकेतु की चन्द्रवक्त्रा नामक परम शोभायमान पुरी थी। भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर दोनों बड़े वीर थे। उन दोनों महान् बलशालियों की राजधानी गान्धार नामक सिद्ध देश में थी। तक्ष की परम विख्यात परम रमणीय तक्षशिला नामक पुरी थी। वीरवर पुष्कर की भी पुष्करावती नाम से विख्यात पुरी राजधानी थी। जो पुराणों के जाननेवाले लोग हैं, वे परम बुद्धिमान् राम के विषय में उनके माहात्म्य को प्रकट करनेवाली तत्त्वपूर्ण यशोगाथाएँ गाते हैं ।।१८८–१९१।। वे ऐसा कहते हैं कि राम श्यामलवर्ण के, लाल नेत्रोंवाले, तेज से देदीप्यमान मुखमण्डलवाले एवं मितभाषी युवा थे। उनका मुख परम सुन्दर था, उनकी दोनों बाहुएँ घुटनों को छूनेवाली थीं, सिंह के समान उनका विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड विशाल थे। राम ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। उनके राज्य में चारों ओर ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की सुन्दर मनोहारिणी ध्वनि सुनायी पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि परम कठोर थी ।।१९२–१९३।। उनके राष्ट्र में किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं था, लोगों में खूब दान करो, खूब खाओ, पीओ की धूम मची थी। उस राम ने जनस्थान में निवासकर देवताओं का एक परम आवश्यक कार्य सम्पन्न किया था। उन मनुज शिरोमणि महान् यशस्वी राम ने पुलस्त्य मुनि के वंश में उत्पन्न होनेवाले, पापात्मा रावण का संहार सीता को खोजते समय किया था। वे दशरथ पुत्र राम परम बलशाली,

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अति सूर्यं च वह्निं च रामो दाशरथिर्बभौ ।।१९६।।
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ।।१९७।।
श्रीरामस्याऽऽत्मजो जज्ञे कुश इत्यभिधीयते । लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशौ निबोधत ।।१९८।।
कुशस्य कोशला राज्यं पुरी वाऽपि कुशस्थली । रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ।।१९९।।
उत्तराकोशले राज्यं लवस्य च महात्मनः । श्रावस्ती लोकविख्याता कुशवंशं निबोधत* ।।२००।।
कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथिः सुप्रियातिथिः । अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिवः ।।२०१।।
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु । नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।।२०२।।
क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान् । आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ।।२०३।।
अहीनगोस्तु दायादः पारिपात्रो महायशाः । दलस्तस्याऽऽत्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृपः ।।२०४।।
औङ्को नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह । वज्रनाभसुतस्तस्य शङ्खनस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२०५।।
शङ्खनस्य सुतो विद्वान्ध्युषिताश्व इति श्रुतः । ध्युषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल ।।२०६।।
हिरण्यनाभकौशल्यो वशिष्ठस्तत्सुतोऽभवत् । पौत्रस्य जैमिनेः शिष्यः स्मृतः सर्वेषु शर्मसु ।।२०७।।

सर्वगुणसम्पन्न एवं अपने अनुपम तेज से देदीप्यमान थे। सूर्य एवं अग्नि को भी उन्होंने अपने तेज से अतिक्रान्त कर दिया था। परम प्रभावशाली महाबाहु इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले राम परिवार समेत रावण का विनाशकर इसी प्रकार स्वर्ग को चले गये ।।१९४-१९७।। श्रीराम के पुत्र जो उत्पन्न हुए वे कुश नाम से विख्यात हुए, लव नामक महाबलवान् एक पुत्र और था, उन दोनों के देशों को सुनिये। कुश का राज्य कोशला नाम से विख्यात था, उसकी राजधानी कुशस्थली नामक पुरी थी, कुश ने विन्ध्याचल के मनोहर पर्वत शिखर पर उसकी स्थापना की थी। महाबलवान् लव का राज्य उत्तर कोशला के नाम से विख्यात था। उसकी परम विख्यात श्रावस्ती पुरी राजधानी थी। कुश के वंश को सुनिये ।।१९८-२००।। कुश के पुत्र परम धर्मात्मा अतिथि थे, वे अतिथियों का विशेष सम्मान करते थे। अतिथि के पुत्र परम विख्यात राजा निषध हुए। निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुए। नभ के पुत्र पुण्डरीक हुए, पुण्डरीक के बाद उनके पुत्र क्षेमधन्वा का स्मरण किया जाता है। क्षेमधन्वा के पुत्र परम बलवान् राजा देवानीक हुए, देवानीक के पुत्र परम प्रभावशाली राजा अहीनगु हुए। अहीनगु के उत्तराधिकारी उनके पुत्र महान् यशस्वी राजा पारिपात्र हुए, उनके पुत्र दल और दल के पुत्र राजा बल उत्पन्न हुए। बल के पुत्र परम धर्मात्मा राजा औङ्क हुए, उनके पुत्र दल और दल के पुत्र राजा बल उत्पन्न हुए। बल के पुत्र परम धर्मात्मा राजा औङ्क हुए, उन औङ्क के पुत्र वज्रनाभ हुए जिनके पुत्र शङ्खन हुए। शङ्खन के परम विद्वान् ध्युषिताश्व नामक पुत्र सुने जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा ध्युषिताश्व के पुत्र राजा विश्वसह हुए। राजा विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभ कौशल्य के नाम से विख्यात हुए। उनके पुत्र वशिष्ठ हुए। वे जैमिनि के पौत्र के शिष्य रूप में प्रसिद्ध हैं, सभी मांगलिक कार्यों में उनकी सिद्धहस्तता प्रसिद्ध थी ।।२०१-२०७।। इन्होंने पाँच सौ

---

* कुशस्य कोशलाराज्यं लवस्य च महात्मन इत्यर्थं घ. पुस्तके।

शतानि संहितानां तु पञ्च योऽधीतवांस्ततः । तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ।।२०८।।
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान्ध्रुवसंधिश्च तत्सुतः । सुदर्शनस्तस्य सुतः अग्निवर्णः सुदर्शनात् ।।२०९।।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनुः स्मृतः । मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः ।।
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्तकः प्रभुः ।।२१०।।
प्रसुश्रुतो मनोः पुत्रः सुसंधिस्तस्य चाऽऽत्मजः । सुसंधेश्च तथा मर्षः सहस्वान्नाम नामतः ।।२११।।
आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति । तस्याऽऽसीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्वलः ।।२१२।।
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः । वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन्प्राधान्येन तु कीर्तिताः ।।२१३।।
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः । प्रजावानेति सायुज्यं मनोर्वैवस्वतस्य सः ।।२१४।।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च । विपाप्मा विरजश्चैव आयुष्मान्भवतेऽच्युतः ।।
+अपुत्रो लभते पुत्रं दीर्घायुः परमां गतिम् ।।२१५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते इक्ष्वाकुवंशानुकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।।८८।।

संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया था, परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने इन्हीं से योग की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा प्राप्त की थी, उनके पुत्र परम विद्वान् पुष्य हुए। पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि नाम से विख्यात हुए, उनके पुत्र सुदर्शन हुए, सुदर्शन से अग्निवर्ण की उत्पत्ति हुई। अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र नाम से विख्यात हुए, शीघ्रक के पुत्र मनु कहे जाते हैं। मनु योग मार्ग का अवलम्ब करके कलाप नामक ग्राम में निवास करते थे, परम ऐश्वर्यशाली ये मनु उन्नीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुए ।।२०८-२१०।। मनु के पुत्र प्रसुश्रुत थे। उनके पुत्र सुसंधि हुए। सुसंधि के मर्ष नामक पुत्र हुए, जिनका दूसरा नाम सहस्वान् भी था। सहस्वान् के पुत्र राजा विश्रुतवान् के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन राजा विश्रुतवान् के पुत्र राजा बृहद्वल हुए। इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होनेवाले प्रायः यही राजागण स्मरण किये जाते हैं, जो इस वंश के प्रमुख राजा थे, उनका वर्णन प्रधान रूप से कर दिया गया है। अदिति के पुत्र विवस्वान् की इस सृष्टि विवरण का जो भलीभाँति पाठ करता है, वह सन्ततिवाला होता है तथा विवस्वान् के पुत्र मनु का सान्निध्य प्राप्त करता है। प्रजाओं की पुष्टि देनेवाले श्राद्धों में पूजनीय पितरगण एवं देवगण का वह वृत्तान्त जो पढ़ता है, वह पापविहीन, रजोगुणरहित, अविनाशशील एवं दीर्घायुवाला होता है। यदि अपुत्री है तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है, दीर्घायु मिलती है और अन्त में परम गति की प्राप्ति होती है ।।२११-२१५।।

श्री वायुमहापुराण में इक्ष्वाकुवंशानुकीर्तन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८८।।

---

* नास्त्यर्धमिदं क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अथ नवाशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निबोधत। योऽसौ निवेशयामास परं देवपुरोपमम् ।।१।।
जयन्तमिति विख्यातं गौतमस्याऽऽश्रमाभितः। यस्यान्ववाये जज्ञे वै जनकादृषिसत्तमात् ।।२।।
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृतः। आसीत्पुत्रो महाराज्ञ* इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः ।।३।।
स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत। तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः ।।४।।
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः। नाम्ना मिथिरितिख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ।।५।।
+मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाऽभवत्। राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदावसुः ।।६।।
उदावसोः सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्धनः। नन्दिवर्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ।।७।।
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः। देवरातस्य धर्मात्मा वृहदुत्थ इति श्रुतिः ।।८।।
वृहदुत्थस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान्। महावीर्यस्य धृतिमान्सुधृतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।९।।

अध्याय ८९

वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

सूत बोले–ऋषिवृन्द! तदनन्तर विकुक्षि के अनुज राजा निमि के वंश का वर्णन सुनिये। इन राजा निमि ने गौतम के आश्रम के चारों ओर जयन्त नामक परम सुन्दर एक पुर की स्थापना की थी, जो देवपुर के समान मनोहर एवं रम्य था। उन्हीं निमि के वंश में ऋषि सत्तम जनक से नेमि नामक परम धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ, जो सभी द्वारा नमस्करणीय था ।।१–२$\frac{1}{2}$।। परम तेजस्वी महाराज इक्ष्वाकु से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह महर्षि के शाप से विदेह (शरीररहित) हो गया। विदेह के अरणी के तीन पर्वों के मंथन करने से महान् तेजस्वी मिथि नामक पुत्र हुए, मिथि नाम से ही उनकी ख्याति हुई, इस प्रकार के जनन (उत्पत्ति) होने के कारण उनका जनक नाम भी प्रसिद्ध हुआ। वे मिथि परम बलवान् राजा थे, उन्हीं के नाम पर मिथिलापुरी की ख्याति हुई। इसी राजा जनक से राजा उदावसु की उत्पत्ति हुई ।।३–६।। उदावसु से धर्मात्मा राजा नन्दिवर्धन की उत्पत्ति हुई। नन्दिवर्धन से वीर एवं धार्मिक सुकेत की उत्पत्ति हुई ।।७।। सुकेत के भी धर्मात्मा एवं महाबलवान् देवरात उत्पन्न हुए। उन देवरात से धर्मात्मा राजा वृहदुत्थ की उत्पत्ति सुनी जाती है। राजा वृहदुत्थ के पुत्र परम प्रतापी महावीर्य नाम से विख्यात थे, महावीर्य के पुत्र धृतिमान् थे, उनके पुत्र सुधृति थे। सुधृति के पुत्र

---

* अत्र समासान्ताभाव आर्षः।

+ इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकेषु।

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परंतपः । धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ।।१०।।
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतित्वकः । प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ।।११।।
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः । देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृतिः ।।१२।।
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिराजः प्रतापवान् । कीर्तिराजात्मजो विद्वान्महारोमेति विश्रुतः ।।१३।।
महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाऽभवन्नृपः ।।१४।।
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान्सीरध्वज इति श्रुतिः । उद्भिन्ना कृषता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ।।
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रताऽतिपतिव्रता ।।१५।।

शांशपायन उवाच

कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी । किमर्थं चाकृषद्राजा क्षेत्रं यस्मिन्बभूव सा ।।१६।।

सूत उवाच

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः । विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सा तु समुत्थिता ।।१७।।
सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिलः । भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्याधिपतिर्नृपः ।।१८।।
तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान् । मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः ।।१९।।
ऊर्जवाहात्सुतद्वाजः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः । स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः ।।२०।।

परम तपस्वी एवं धर्मात्मा धृष्टकेतु थे। धृष्टकेतु के पुत्र हर्यश्व भी परम विख्यात राजा थे ।।८-१०।। हर्यश्व के पुत्र मरु और मरु के पुत्र प्रतित्वक हुए। प्रतित्वक के परम धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ थे। राजा कीर्तिरथ के पुत्र देवमीढ़ नाम से प्रसिद्ध थे। देवमीढ़ के पुत्र विबुध और विबुध के पुत्र धृति हुए।११-१२। उस राजा महाधृति के पुत्र परम प्रतापशाली राजा कीर्तिराज हुए। कीर्तिराज के पुत्र परम विद्वान् राजा महारोमा नाम से विख्यात थे। राजा महारोमा के पुत्र स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमा के पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुए। ह्रस्वरोमा के पुत्र राजा सीरध्वज सुने जाते हैं। उन्हीं राजा सीरध्वज के पृथ्वी जोतते समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ–ऐसी प्रसिद्धि है। वे सीता रामचन्द्र की परम साध्वी, पतिव्रता, सद्व्रतपरायणा पत्नी थीं ।।१३-१५।।

शांशपायन बोले–सूत जी ! पृथ्वी जोतते समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? और राजा सीरध्वज किस प्रयोजनवश उस क्षेत्र को जोत रहे थे जिसमें सीता की उत्पत्ति हुई? ।।१६।।

सूत ने कहा–"अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर महाराज सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्निक्षेत्र का कर्षण किया, उसी से सीता का जन्म हुआ। उस राजा सीरध्वज से भानुमान् का जन्म हुआ, जो मैथिल नाम से विख्यात था। उसका भाई कुशध्वज था, जो काशी का राजा हुआ। उस राजा भानुमान् का पुत्र प्रतापशाली प्रद्युम्न हुआ, उसका पुत्र मुनि था, मुनि से ऊर्जवह की उत्पत्ति कही जाती है ।।१७-१९।। ऊर्जवाह से सुतद्वाज की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र शकुनि हुआ, उस शकुनि का पुत्र स्वागत हुआ, जिसका पुत्र सुवर्चा कहा जाता है। सुवर्चा का पुत्र श्रुत और श्रुत का पुत्र सुश्रुत हुआ।

श्रुतो यस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चाऽऽत्मजः। सुश्रुतस्य जयः पुत्रो जयस्य विजयः सुतः ॥२१॥
विजयस्य ऋतः पुत्र ऋतस्य सुनयः स्मृतः। सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः ॥२२॥
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुतः कृतिः। तस्मिन्संतिष्ठते वंशो जनकानां महात्मनाम् ॥
इत्येते मैथिलाः प्रोक्ताः सोमस्यापि निबोधत ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते मैथिलवंशानुकीर्तनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

तत्र सोमजन्मविवरणम्

सूत उवाच

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः। तत्रात्रिः सर्वलोकानां तस्थौ स्वेनमये धृतः ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन्। काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वमाहुर्महाद्युतिः ॥२॥
सुदुश्चरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥३॥

सुश्रुत का पुत्र जय और जय का पुत्र विजय हुआ ॥२०-२१॥ विजय का पुत्र ऋत और ऋत का पुत्र सुनय कहा जाता है, सुनय से वीतहव्य की उत्पत्ति हुई, वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ। धृति का पुत्र बहुलाश्व हुआ, बहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ। इसी राजा कृति तक महान् प्रतापी जनक नामधारी राजाओं का वंश प्रतिष्ठित माना जाता है। मैथिल नामधारी राजाओं का वर्णन किया जा चुका, अब चन्द्रमा के वंश का भी वर्णन सुनिये ॥"२२-२३॥

श्री वायुमहापुराण में मैथिलवंशानुकीर्तन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८९॥

अध्याय ९०

चन्द्रमा का जन्म वृत्तान्त

सूत बोले—"ऋषिवृन्द! चन्द्रमा के पिता परम तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली अत्रि ऋषि थे। वे समस्त लोकों के कल्याणार्थ तपस्या में निरत रहते थे ॥१॥ मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वदा शुभ कार्यों में ही वे तत्पर रहा करते थे। काष्ठ, भीत अथवा पत्थर की चट्टान की भाँति परम तेजस्वी वे महर्षि सर्वदा ऊपर बाहु किये हुए ऐसी तपस्या में—जिसका नाम ही दुश्चर था—निरत थे। ऐसा हम लोगों ने सुना है कि कठोर तपस्या में महर्षि अत्रि देवताओं के तीन सहस्र वर्ष तक लगे रहे ॥२-३॥ परम ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता महर्षि अत्रि ने इतनी लम्बी अवधि तक पलक मारने की इच्छा नहीं

तस्योर्ध्वरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहा । सोमत्वं तनुरापेदे महाबुद्धिः स वै द्विजः ।।४।।
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः । सोमः सुस्राव नेत्राभ्यां दश वा द्योतयन्दिशः ।।५।।
तं गर्भं विधिनाऽऽदिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा । समेत्य धारयामासुर्नच तास्तमशक्नुवन् ।।६।।
स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः । यथाऽवभासयल्लोकान्शीतांशुः सर्वभावनः ।।७।।
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ताः स्त्रियः । ततः स ताभिः शीतांशुर्निपपात वसुंधराम् ।।८।।
पतन्तं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः । रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ।।९।।
स हि देवमयो विप्रा धर्मार्थी सत्यसंगरः । युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ।।१०।।
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि । तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त विश्रुताः ।।११।।
तत्रैवाङ्गिरसस्तस्य भृगोश्चैवाऽऽत्मजस्तथा । ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुभिरथर्वाङ्गिरसैरपि ।।१२।।
ततः संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः । आप्यायमानं लोकांस्त्रीन्भावयामास सर्वशः ।।१३।।
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुंधराम् । त्रिःसप्तकृत्वो विपुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ।।१४।।
तस्य यच्चापि तत्तेजः पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा संज्वलन्त्युत ।।१५।।

की, अर्थात् निर्निमेष तपस्या में लगे ही रहे। इस परम कठोर तप के प्रभाव से द्विजवर्य महाबुद्धिमान् अत्रि का शरीर चन्द्रमा की भाँति निर्मल हो गया। आत्मा को वश में करनेवाले उन भगवान् अत्रि के सोमत्व ने ऊर्ध्व देश पर आक्रमण किया, अर्थात् उनके शिरोभाग की अतीव कान्ति बढ़ गयी, ठीक उसी समय दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे चू पड़ा ।।४–५।। ब्रह्मा के आदेशानुसार उस गर्भ को दसों देवियों (दिशाओं) ने धारण कर लिया, किन्तु एक साथ मिलकर धारण करने पर भी वे उस गर्भ को धारण करने में असमर्थ हो गयीं। परम तेजोमय वह गर्भ जब थोड़ी देर के लिए भी दिशाओं द्वारा धारण नहीं किया जा सका, और वे सब स्त्रियाँ अशक्त हो गयीं, तब समस्त लोकों का मनोभावन, शीतल किरणोंवाला वह गर्भ उनके उदर से निकलकर समस्त लोकों को प्रकाशमय करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। लोक पितामह ब्रह्मा जी ने इस प्रकार गिरते हुए सोम को लोक-कल्याणार्थ अपने रथ पर बिठा लिया ।।६–९।। विप्रगण! वह चन्द्रमा दिव्यगुण सम्पन्न हैं, धर्मार्थ में निरत रहनेवाले एवं सत्यप्रतिज्ञ हैं, हमने ऐसा सुना है कि वे एक सहस्र श्वेत घोड़ों के रथ पर विराजमान रहते हैं। अत्रि के पुत्र, परम तेजोमय चन्द्रमा के इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने पर देवताओं एवं ब्रह्मा के परम विख्यात सातों मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की। अंगिरा एवं भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं आंगिरस के मंत्रों से उनकी विधिवत् स्तुति की ।।१०–१२।। इन सबों से स्तुति किये जाते हुए परम तेजस्वी चन्द्रमा के तेज ने तीनों लोकों को सन्तुष्ट कर दिया, सबको अपने शान्त स्निग्ध प्रकाश से सुप्रसन्न कर दिया। महान् चन्द्रमा ने उस समय ब्रह्मा जी के उस रथ पर विराजमान होकर सागरपर्यन्त विस्तृत पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की ।।१३–१४।। चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा था, वह ओषधियों के रूप में परिणत हो गया, आज भी वे ओषधियाँ चन्द्रमा के तेज से जाज्वल्यमान रहती हैं। चन्द्रमा उन्हीं ओषधियों द्वारा समस्त लोकों

ताभिर्धार्यत्ययं लोकान्प्रजाश्चापि चतुर्विधाः । पोष्टा हि भगवान्सोमो जगतो हि द्विजोत्तमाः ।।१६।।
स लब्धतेजास्तपसा संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः । तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दशतीर्दश ।।१७।।
हिरण्यवर्मा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् । विभुस्तासां भवेत्सोमः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ।।१८।।
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । बीजौषधिषु विप्राणामपां च द्विजसत्तमाः ।।१९।।
सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् । लोकानां भावयामास स्वभावाश्चपतां वरः ।।२०।।
सप्तर्षिशतिरिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः । ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः ।।२१।।
स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां प्रभुः । समा जज्ञे राजसूयं सहस्त्रशतदक्षिणम् ।।२२।।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् । सदस्यस्तत्र भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ।।२३।।
दक्षिणामददात्सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यस्तु वै द्विजाः ।।२४।।
तं सिनी च कुहूश्चैव वपुः पुष्टिः प्रभा वसुः । कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ।।२५।।
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः । अतिराजातिराजेन्द्रो दशधाऽतापयद्दिशः ।।२६।।

एवं चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है, द्विजवर्यगण ! इस समस्त चराचर जगत् के पुष्टि देनेवाले परम ऐश्वर्यशाली भगवान् चन्द्रमा ही एकमात्र हैं। अत्रि के उस परम तपोबल से, देवताओं और ऋषियों की स्तुतियों से तथा अपने शुभ कर्मों द्वारा परम तेजोबल प्राप्तकर महाभाग्यशाली चन्द्रमा दस पद्म वर्षों तक घोर तपस्या में लगे रहे ।।१५–१७।। सुवर्ण के समान शुभ्र वर्णोंवाली जो देवियाँ अपने में इस समस्त चराचर जगत् को धारण करती हैं, उन्हीं के गर्भ से परम तेजस्वी एवं सर्वसमर्थ चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई और वे अपने कर्मों द्वारा प्रख्यात हुए। ऋषिवृन्द ! तदनन्तर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्रमा को समस्त बीजों, ओषधियों, ब्राह्मणों एवं जल जगत् का राज्यभार समर्पित किया। इस महान् दायित्वपूर्ण राज्य पद पर प्रतिष्ठित होने पर चन्द्रमा का प्रताप बहुत अधिक बढ़ गया, तपस्वियों में अग्रगण्य चन्द्रमा ने इस पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने सुन्दर स्वभाव से समस्त लोक को परम सन्तुष्ट रखा। प्रचेता के पुत्र दक्ष ने दाक्षायणी के गर्भ से उत्पन्न, परम तपोव्रत पालनेवाली सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को समर्पित कीं, जिन्हे लोग नक्षत्र नाम से जानते हैं ।।१८–२१।। ब्राह्मणों के स्वामी चन्द्रमा ने इतने बड़े राज्याधिकार की प्राप्ति के बाद एक विराट् राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें लाखों की दक्षिणा प्रदान की। उस विशाल राजसूय यज्ञ में भगवान् हिरण्यगर्भ उद्गाता के पद पर ब्रह्मा, ब्रह्मा के पद पर नारायण विष्णु सदस्य के स्थान पर, सनत्कुमार प्रभृति आद्य महर्षियों समेत विराजमान थे। द्विजवर्यवृन्द ! उस यज्ञ में चन्द्रमा ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों को तथा जो सदस्य बने हुए थे उन्हे दक्षिणा रूप में तीनों लोकों को समर्पित कर दिया–ऐसा हमने सुना है ।।२२–२४।। उस चन्द्रमा की सिनी, कुहू,वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति तथा लक्ष्मी–ये नवों देवियाँ सेवा कर रही थीं। उस राजसूय यज्ञ का अवभृथ स्नान कर चुकने के उपरान्त सभी देवताओं और ऋषियों से सत्कार प्राप्तकर चन्द्रमा जब निश्चिंत हो गये, तब अपने विशाल साम्राज्य के सिंहासन पर समासीन होकर, राजाधिराज बनकर दसों दिशाओं को दस प्रकार से तपाने लगे ।।२५–२६।। विप्रवृन्द ! ऋषि लोग जिसकी स्तुति करते थे–ऐसे

तदा तत्प्राप्य दुष्प्रापमैश्वर्यमृषिसंस्तुतम् । स विभ्रममतिर्विप्रा विनयोऽविनयाहतः ।।२७।।
बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम् । जहार सहसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान् ।।२८।।
स याचमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह । नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मायाङ्गिरसे तदा ।।२९।।
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसो द्विजाः । स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वं बृहस्पते ।।३०।।
तेन स्नेहेन भगवान्रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः । पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याऽऽजगवं धनुः ।।३१।।
तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः परमास्त्रं महात्मना । उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ।।३२।।
तत्र तद्युद्धमभवत्प्रत्यक्षं तारकामयम् । देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ।।३३।।
तत्र शिष्टास्त्रयो देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम् ।।३४।।
ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शंकरम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ।।३५।।
अन्तर्वत्नी च तां दृष्ट्वा तारां ताराधिपाननाम् । गर्भमुत्सृजसे न त्वं विप्रः प्राह बृहस्पतिः ।।३६।।
मदीयायां तनौ योनौ गर्भो धार्यः कथं च न । अथो नावसृजत्तं तु कुमारं दस्युहन्तमम् ।।३७।।
ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् । जातमात्रोऽथ भगवान्देवानामाक्षिपद्वपुः ।।३८।।
ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन्सुराः । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ।।३९।।

दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लेने के बाद चन्द्रमा की मति भ्रान्त हो गयी, उसके विनय पर अविनय ने अधिकार कर लिया (अर्थात् वह बड़ा कठोर एवं दम्भी हो गया)। बृहस्पति की तारा नामक पत्नी को जिनकी बड़ी (ख्याति) थी, वह अंगिरा के समस्त पुत्रों की कोई परवाह न कर, हर ले गया ।।२७–२८।। देवताओं और देवर्षियों के याचना करने पर भी वह तारा को लौटाने को राजी नहीं हुआ। इस प्रकार किसी प्रकार भी उसने बृहस्पति को तारा के लौटाने का इरादा नहीं किया। द्विजवृन्द! उस समय अंगिरा के पुत्र शुक्र उसके पिछलगू (सहायक) बने थे। महान् तेजस्वी उशना पहले बृहस्पति के पिता का शिष्य था। उसी स्नेह के कारण भगवान् रुद्रदेव उस बृहस्पति के सहायक हुए, और अपना अजगव नामक प्रचण्ड धनुष लेकर उपस्थित हुए ।।२९–३१।। महान् बलशाली रुद्रदेव ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों के तथा देवताओं के उद्देश्य से उस महान् अस्त्र का संधान किया, जिससे उसका यश नष्ट हो गया। प्रत्यक्ष तारकामय नामक युद्ध वहाँ मच गया, देवताओं तथा दानवों का वह घोर युद्ध महान् लोकक्षयकारी हुआ ।।३२–३३।। उस युद्ध में तुषित नाम से प्रसिद्ध तीन देवता शेष बच रहे, वे आदिदेव पितामह ब्रह्मा की शरण में गये। लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं शुक्र को एवं इस विनाश कर्म में प्रवृत्त शंकर को निवारित किया और तारा को बृहस्पति को वापस किया। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली तारा को गर्भवती देखकर विप्रवर्य बृहस्पति ने कहा, क्या तुम अब भी गर्भ त्याग नहीं कर रही हो? मेरी भूमि में तुम दूसरे वीर्य का किस प्रकार धारण कर सकती हो? तारा उस दस्युहन्तम कुमार को इस पर भी नहीं छोड़ सकी थी कि इसी बीच तृण राशि में जलते हुए अग्नि की तरह वह कुमार उत्पन्न हो गया और उत्पन्न होते ही उस परम ऐश्वर्यशाली ने देवताओं को हतश्री कर दिया। देवता लोग इससे सन्देह में पड़ गये और तारा से कहने लगे, सच–सच बतलाओ, यह पुत्र किसका है, चन्द्रमा अथवा बृहस्पति का ।।३२–३९।। देवताओं के इस प्रकार बारम्बार

ह्रियमाणा यदा देवानाऽऽह सा साध्वसाधु वा। तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ।।४०।।
तं निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य संशयः। यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ।।४१।।
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम्। सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् ।।४२।।
ततः सुतमुपाघ्राय सोमो दाता प्रजापतिः। बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।।४३।।
प्रतिपूर्वं च गमने समभ्युत्तिष्ठते बुधैः। उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका ।।४४।।
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः। उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट्सुमहौजसः ।।४५।।
प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा। ततो यक्ष्याभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ।।
जगाम शरणायाथ पितरं सोऽत्रिमेव तु ।।४६।।
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशाः। स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वशः ।।४७।।
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तितं द्विजसत्तमाः। वंशं तस्य द्विजश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत ।।४८।।
धनमारोग्यमायुष्यं पुण्यं कल्मषशोधनम्। सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सोमोत्पत्तिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।।९०।।

कहने पर भी जब तारा साधु-असाधु कुछ नहीं बोल सकी, तब दस्युहन्तम कुमार उसे शाप देने को उतारू हो गया। ब्रह्मा ने कुमार को निवारित कर पुनः तारा से पूछा-तारे! बतलाओ, इस विषय में सत्य क्या है? यह किसका पुत्र है, सच-सच बतलाओ, वरदायक, प्रभु ब्रह्मा से हाथ जोड़कर तारा बोली-यह महान् बलशाली दस्युहन्तम कुमार चन्द्रमा का है ।।४०-४२।। दाता प्रजापति ने सुत का सिर सूँघकर उस परम बुद्धिमान् का नाम बुध रखा। उस समय बुध पूर्व दिशा में गमन करने के लिए उठ खड़े हुए। राजपुत्री इला के संयोग से बुध ने एक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के उस परम तेजस्वी पुत्र का नाम पुरूरवा था, वह इला के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ऐल नाम से भी विख्यात था। उर्वशी में उस बुध पुत्र के छह परमतेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, राजयक्ष्या रोग ने जबरदस्ती आकर चन्द्रमा को विवश एवं परेशान कर दिया, यक्ष्मा से अतिशय पीड़ित होने पर जब चन्द्रमा का मण्डल क्षीण हो गया, तब वह पितामह ब्रह्मा एवं अत्रि की शरण में गये ।।४३-४६।। महान् यशस्वी अत्रि ने चन्द्रमा का पाप शमन किया, राज्यक्ष्मा से मुक्ति प्राप्तकर चन्द्रमा पुनः अपनी कान्ति से चारों ओर प्रकाशित हो उठे। द्विजवृन्द! यह चन्द्रमा के जन्म का वृत्तान्त आप लोगों को बतला चुका, अब उनके वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनते जाइये। चन्द्रमा के इस जन्म वृत्तान्त को सुनने पर धन, आरोग्य, आयु, पुण्य, एव पापशान्ति होती है। इसे सुनते ही मनुष्य समस्त पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है ।।४७-४९।।

श्री वायुमहापुराण में सोमोत्पत्ति कथन नामक नब्वेवाँ अध्याय समाप्त ।।९०।।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवाः। तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ।।१।।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः। आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनां च ददौ महीम् ।।२।।
सत्यवाक्कर्मबुद्धिश्च कान्तः संवृतमैथुनः। अतीव पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ।।३।।
तं ब्रह्मवादिनं दान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ।।४।।
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि चाष्ट च। सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ।।५।।
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ।।६।।
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे। उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य कलापग्राममेव च ।।७।।
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च। उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ।।८।।

ऋषय ऊचुः

गन्धर्वी चोर्वशी देवी राजानां मानुषं कथम्। देवानुत्सृज्य संप्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ।।९।।

अध्याय ९१

चन्द्रवंश का वर्णन

सूत बोले–"ऋषिवृन्द! चन्द्रमा के पुत्र बुध और बुध के पुत्र पुरूरवा हुए। राजा पुरूरवा परमतेजस्वी, दानी, यज्ञकर्त्ता एवं विपुल दक्षिणा देनेवाला था। वह ब्रह्मवेत्ता था, शत्रु लोग युद्ध में उसे किसी प्रकार भी नहीं जीत सकते थे, शत्रुओं का तो उसने विध्वंस कर डाला था। वह अग्निहोत्र का उपासक था, यज्ञ करनेवालों को उसने सारी पृथ्वी दान में दे दी थी ।।१–२।। वह सर्वदा सत्य वचन बोलता था, कर्मशील एवं परम बुद्धिमान् था, देखनें में परम सुन्दर था, वह गुप्त या उच्छृंखलतारहित मैथुनवाला था, लोक में वह एक अनुपम पुत्र था, सुन्दरता में वह बेजोड़ था! उस ब्रह्मवादी, क्षमाशील, दानपरायण, धर्मज्ञ एवं सत्यभाषी पुरूरवा को अपने रूप के लिए परम यश प्राप्त करनेवाली उर्वशी ने अपना मान छोड़कर पतिरूप में वरण किया ।।३–४।। उस उर्वशी के साथ परम बलवान् राजा पुरूरवा ने दस, आठ, सात, छह, सात, आठ, दस, आठ, कुल मिलाकर चौंसठ वर्षों तक सुखपूर्वक निवास किया। कभी मनोरम चैत्ररथ नामक वन में, कभी मन्दाकिनी के रमणीय तटवर्ती प्रान्त में, कभी अलकापुरी में, कभी विशालापुरी में, सर्वश्रेष्ठ वन में, कभी गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर, कभी नगराज सुमेरु की चीटियों पर, कभी उत्तर कुरु प्रदेश में, कभी कलाप ग्राम में इन प्रमुख वनों एवं देवताओं की क्रीड़ा भूमियों में वह राजा पुरूरवा परम आनन्द समेत उर्वशी के साथ विहार करता रहा ।।५–८।।

ऋषियों ने पूछा–बहुश्रुत सूत जी! गन्धर्व की कन्या दिव्यगुणयुक्त उर्वशी ने मनुष्य पुत्र राजा पुरूरवा को, समस्त देवताओं को छोड़कर, क्यों पतिरूप में वरण किया–इसे हमें बतलाइये ।।९।।

सूत उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता । ऐलं तु तं वरारोहा समयेन व्यवस्थिता ।।१०।।
आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु । अनग्नदर्शनं चैव अकामात्सह मैथुनम् ।।११।।
द्वौ मेषौ शयनाभ्यासे स तावद्व्यवतिष्ठते । घृतमात्रं तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव ।।१२।।
यद्येष समयो राजन्यावत्कालश्च ते दृढम् । तावत्कालं तु वत्स्यामि एष नः समयः कृतः ।।१३।।
तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत् । एवं सा चावसत्तस्मिन्पुरूरवसि भामिनी ।।१४।।
वर्षाण्यथ चतुःषष्ठिं तद्भक्त्या शापमोहिता । उर्वशी मानुषे प्राप्ता गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः ।।१५।।

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना । आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा ।।१६।।
ततो विश्वावसुर्नाम तत्राऽऽह वदतां वरः । तया तु समयस्तत्र क्रियमाणो मतोऽनघः ।।१७।।
समयव्युत्क्रमात्सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा । तदहं वच्मि वः सर्वं यथा त्यक्ष्यति सा नृपम् ।।१८।।
ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये । एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ।।१९।।
स निशायामथाऽऽगम्य मेषमेकं जहार वै । मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ।।२०।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! गन्धर्व पुत्री सुन्दरी उर्वशी ने ब्रह्मशाप के कारण मनुष्य को पतिरूप में वरण किया था, उसने प्रतिज्ञा करके इला पुत्र राजा पुरूरवा के साथ रहने की व्यवस्था की थी। शाप से मुक्ति पाने के लिए उसने नियम निश्चित किया था। उसने कहा था, "हे राजन्! मैथुन के अवसर को छोड़कर बिना कामासक्ति के, किसी भी समय मैं आपको नङ्गा नहीं देखूँगी, हमारी शय्या के समीप दो मेढ़े सर्वदा बँधे रहेंगे, और केवल एक समय घृत मात्र का आहार मैं करूँगी। हे राजन्! जब तक हमारे इन नियमों को दृढ़तापूर्वक आप अक्षुण्ण पालन करते रहेंगे, तब तक मैं निश्चय आपके साथ रहूँगी, यही हमारी प्रतिज्ञा है।" राजा पुरूरवा ने उर्वशी की इस प्रतिज्ञा का जब तक अक्षरशः पालन किया, तब तक सुन्दरी उर्वशी उसके साथ निवास करती रही। इस प्रकार ब्रह्मशाप से मोहित होकर उर्वशी चौंसठ वर्षों तक भक्तिपूर्वक मनुष्य योनि में उत्पन्न होनेवाले राजा पुरूरवा के साथ रही, उधर गन्धर्व लोग उसके वियोग से परम चिन्तित थे ।।१०-१५।।

गन्धर्वगण बोले–'हे महाभाग्यशालियो! स्वर्ग को विभूषित करनेवाली परम सुन्दरी उर्वशी जिस प्रकार देवताओं को पुनः प्राप्त हो–इस बात की चिन्ता करते जाइये।" उस समय बोलने में सबसे प्रवीण विश्वावसु नामक गन्धर्व बोला, निष्पाप! गन्धर्वगण! मेरी ऐसी धारणा है कि उर्वशी ने अवश्य कोई प्रतिज्ञा उस राजा के साथ की होगी, जिसके संग निवास कर रही है। उस प्रतिज्ञा के टूट जाने से वह जिस प्रकार उस राजा को छोड़ देगी, वह उपाय तुम लोगों को मैं बतला रहा हूँ। तुम लोगों की कार्यसिद्धि के लिए मैं सहायक के साथ उसके पास जा रहा हूँ। महान् यशस्वी विश्वावसु ने गन्धर्वों से ऐसी बातें करने के उपरान्त प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया ।।१६-१९।। रात के समय उसने शयनागार में प्रवेशकर एक मेढ़े को चुरा लिया, उन दोनों मेढ़ों पर सुन्दर हँसनेवाली उर्वशी माता के समान स्नेह रखती थी। शय्या

गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी । राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रो मेऽह्रियतेति वै ।।२१।।
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृपः । नग्नं द्रक्ष्यति मां देवी समयो वितथो भवेत् ।।२२।।
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः । द्वितीयेऽपहृते मेषे ऐलं देवी तमब्रवीत् ।।२३।।
पुत्रौ मम हृतौ राजन्ननाथाया इव प्रभो । एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ।।२४।।
मेषाभ्यां पदवीं राजन्गन्धर्वैर्व्युत्थितामथ । उत्पादिता तु महती माया तद्भवनं महत् ।।२५।।
प्रकाशिता तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा । नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ।।२६।।
तिरोभूतां तु तां ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र तावुभौ । मेषौ त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताऽभवन्* ।।२७।।
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजाऽऽगृह्याऽऽगतः प्रभुः । अपश्यंस्तां तु वै राजा विललाप सुदुःखितः ।।२८।।
चचार पृथिवीं चैव मार्गमाणस्ततस्ततः । (+भ्रममाणः सुदुःखेन विललाप जगत्पतिः ।।२९।।
वनेषु सरितां कूलेष्वालयेषु महेषु च । विचचार गिरिष्वेको निर्झरोपवनेषु च ।।३०।।
खेटखर्वटवाटीषु नगरे नगरे तथा । पप्रच्छ सकलान्सत्त्वान्विषीदन्निदमब्रवीत् ।।३१।।

पर लेटे-लेटे ही यशस्विनी उर्वशी को गन्धर्वों के आने का वृत्तान्त विदित हो गया और वह वहीं से राजा से केवल इतना बोली-मेरा एक पुत्र चुराया जा रहा है। उर्वशी इस बात को जिस समय राजा से कह रही थी, उस समय राजा नग्न पड़ा हुआ था, अतः उसने निश्चय किया कि यदि इस समय मैं उठ पड़ूँगा तो मुझे नंगे रूप में देवी देख लेगी और तब उसकी प्रतिज्ञा टूट जायगी ।।२०-२२।। इसी बीच में गन्धर्वों ने दूसरे मेढ़े को भी चुरा लिया। दूसरे को चुरा लेने पर उर्वशी ने राजा पुरूरवा से कहा, राजन्! प्रभो! मेरे दोनों पुत्र अनाथ के पुत्रों की तरह चुरा लिये गये। उर्वशी के ऐसा कहने पर राजा नग्न अवस्था ही में शय्या से उठकर दौड़ पड़ा और गन्धर्वों तथा दोनों मेढ़ों के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ा। गन्धर्वों ने इस अवसर पर एक बड़ी चाल चली, उन्होंने सारे राज्य भवन को शीघ्रता से प्रकाशयुक्त कर दिया, और उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया। इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाली अप्सरा उर्वशी राजा को नंगा देखते ही अन्तर्धान हो गयी ।।२३-२६।। उर्वशी को अन्तर्हित जान गन्धर्वों ने उन दोनों मेढ़ों को छोड़ दिया और स्वयं वहीं पर अन्तर्हित हो गये। छूटे हुए दोनों मेढ़ों को पकड़कर राजा शयनागार में आये और वहाँ पर उर्वशी को न देखकर बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगे। इधर-उधर उर्वशी को ढूँढ़ते हुए वह पृथ्वी भर घूम आये। जगत् के स्वामी होकर भी उर्वशी के वियोग में राजा परम दुःखित होकर जगत् भर घूमते रहे। वनों में, नदियों के तटों पर, भवनों में, पर्वतों में, निर्झरों और उपवनों में, शिकार खेलने के स्थानों पर, पर्वतों के समीपवर्ती ग्रामों में, बगीचों एवं वाटिकाओं में, नगर-नगर में घूम-घूमकर वह सभी जीवधारियों से पूछते हुए परम विषण्ण होकर यह कहता फिरता था ।।२७-३१।। अरे!

---

* अत्र संधिरार्षः।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके विद्यते।

किं न पश्यसि रे मूढं मदमूढं विरुध्य माम्। क्व गताऽसि वरारोहे धिक्ते(ङ्मे)जीवितमीदृशम् ।।
अथापश्यच्च तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ।।३२।।
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां विगाढेनाम्बुनाऽऽप्लुताम्। क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ।।३३।।
अपश्यत्सा ततः सुभ्रू राजानमविदूरतः। उर्वशी ताः सखीः प्राह अयं स पुरुषोत्तमः ।।३४।।
यस्मिन्नहमवासीति ? दर्शयामास तं नृपम्। तत आविर्बभूवुस्ताः पञ्चचूडाप्सरास्तु ताः ।।३५।।
दृष्ट्वा तु राजा तां प्रीतः प्रलापान्कुरुते बहुन्। आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ।।३६।।
एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत। उर्वशी त्वब्रवीच्चैलं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो ।।३७।।
संवत्सरात्कुमारस्ते भविता नैव संशयः। निशामेकां तु वै राजा अवसत्तु तया सह ।।३८।।
समहृष्टो जगामाथ स्वपुरं तु महायशाः। गते संवत्सरे राजा उर्वशीं पुनरागमत् ।।३९।।
उषित्वा तु तया सार्धमेकरात्रं महामनाः। कामार्तश्चाब्रवीद्दीनो भव नित्यं ममेति वै ।।४०।।
उर्वश्यथाब्रवीच्चैनं गन्धर्वास्ते वरं ददुः। तं वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतांस्त्वमेव हि ।।४१।।
वृणे नित्यं हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम्। तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथाऽस्त्विति ।।४२।।

मुझ दुःखिये को तू क्यों नहीं देख रही हो, हे सुन्दरी! मेरे साथ विरोध भाव ठानकर तू कहाँ चली गयी, हमारे ऐसे जीवन को धिक्कार है।' इस प्रकार विलाप करते हुए उस महाबलवान् राजा ने घूमते-घूमते कुरुक्षेत्र में उसे देखा। उस समय वह सुन्दरी प्लक्ष तीर्थ में एक पुष्करिणी के गहरे जल में पाँच अन्य सुन्दरी अप्सराओं के साथ क्रीड़ा कर रही थी ।।३२-३३।। सुन्दर भौंहोंवाली उर्वशी ने सन्निकट आने पर राजा पुरूरवा को देख लिया और अपनी सखियों से कहा, अरे! यह पुरुषश्रेष्ठ वही राजा है, जिसके साथ मैं निवास करती थी, ऐसा कहकर उसने राजा को दिखाया। उर्वशी के ऐसा कहने पर वे पाँचों सुन्दर अप्सराएँ जल से बाहर आ गयीं। राजा ने उर्वशी को देखकर बहुत विलाप किया। उसे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। वह कहने लगा, हे सुन्दरी! आओ। मन से मेरे इस कठोर हृदय में निवास करो ।।३४-३६।। अपनी पूर्व की बातों पर स्थित रहो। इस प्रकार सूक्ष्म बातें उन दोनों ने परस्पर कीं। अन्त में उर्वशी ने पुरूरवा से कहा, प्रभो! मैं आपके संयोग से गर्भवती हूँ, एक वर्ष में तुम्हारा पुत्र मुझसे उत्पन्न होगा-इसमें सन्देह नहीं। राजा ने वहाँ एक रात फिर उर्वशी के साथ निवास किया। महान् यशस्वी पुरूरवा दूसरे दिन अत्यन्त हर्षित होकर अपने पुर को वापस आया। एक वर्ष बीत जाने पर वह पुनः उर्वशी के पास गया। महामनस्वी पुरूरवा उस अवसर पर पुनः एक रात उर्वशी के साथ निवास करने के उपरान्त कामार्त होकर दीन भाव से बोला, तुम मेरे साथ सर्वदा निवास करो ।।३७-४०।। उर्वशी ने राजा को प्रत्युत्तर दिया कि हे महाराज! गन्धर्वगण तुम्हें ऐसा वरदान देंगे, उन्हीं से इस बात की याचना कीजिये, आप उनसे मिलकर यह कहिये कि महात्मा गन्धर्वों के लोक में मैं सर्वदा निवास करने का वरदान चाहता हूँ। उर्वशी की इस बात को राजा ने अंगीकार किया और गन्धर्वों से वरदान की याचना की। गन्धर्वों ने राजा की प्रार्थना पर यह कहा कि 'आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा।' उन लोगों ने स्थाली को आग से भरकर राजा से कहा, नराधिप! इसी अग्नि

स्थालीमग्नेः पूरयित्वा गन्धर्वांश्च तमब्रुवन् । अनेन इष्ट्वा लोकं तं प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ।।४३।।
तमादाय कुमारं तु नगरायोपचक्रमे । निक्षिप्य तमरण्यां च सपुत्रस्तु गृहान्ययौ ।।४४।।
पुनरादाय दृश्याग्निमश्वत्थं तत्र दृष्टवान् । समीपतस्तु तं दृष्ट्वा ह्यश्वत्थं तत्र विस्मितः ।।४५।।
गन्धर्वेभ्यस्तथाऽऽख्यातुमग्निना गां गतस्तु सः । श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणिं तु समादिशत् ।।४६।।
अश्वत्थादरणिं कृत्वा मथित्वाऽग्निं यथाविधि । तेनेष्ट्वा तु सलोकं नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ।।४७।।
मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वा ह्ययजत्स नराधिपः । इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ।।४८।।
वासाय च स गन्धर्वस्त्रेतायां स महारथः । एकोऽग्निः पूर्वमासीद्वै ऐलस्त्रींस्तानकल्पयत् ।।४९।।
एवंप्रभावो राजाऽऽसीदैलस्तु द्विजसत्तमाः । देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलंकृते ।।५०।।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः । उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ।।५१।।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः । गन्धर्वलोके विदिता आयुर्श्रीमानमावसुः ।।५२।।
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुताः । अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाऽथ विश्वजित् ।।५३।।
श्रीमान्भीमस्य दायादो राजाऽऽसीत्काञ्चनप्रभः । विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ।।५४।।

से हवन करने पर तुम्हें उक्त गन्धर्वलोक की प्राप्ति होगी ।।४१–४३।। तदनन्तर राजा पुरूरवा ने उर्वशी के गर्भ से समुत्पन्न कुमार को लेकर अपने नगर को चलने का उपक्रम किया। और उस अग्नि को अरणि में रखकर पुत्र के समेत अपने घर को प्रस्थान किया। वहाँ आने पर उन्होंने उस अग्नि को देखा, और उसे लेने पर अश्वत्थ के वृक्ष का भी उन्हें दर्शन हुआ। समीप में स्थित अश्वत्थ के वृक्ष को देखकर राजा को परम विस्मय हुआ। तब उन्होंने गन्धर्वों से इस वृत्तान्त को कहने का इरादा किया। पृथ्वी पर आये हुए राजा पुरूरवा ने इस अग्नि से यज्ञ करने के बारे में जब गन्धर्वों से जिज्ञासा प्रकट की तब उन लोगों ने सब बातें सुन लेने पर अरणि से मन्थन करने का आदेश दिया। उन्होंने कहा–हे नराधिप! इस अश्वत्थ वृक्ष से अरणि लेकर विधिवत् मन्थन करने पर जो अग्नि उत्पन्न हो, उसी से हवन करने पर तुम हम लोगों के लोक को प्राप्त करोगे ।।४४–४७।। गन्धर्वों के कथनानुसार नराधिप पुरूरवा ने अरणि का मन्थनकर अग्नि को तीन भागों में विभक्तकर यज्ञ का अनुष्ठान किया, और अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान समाप्तकर गन्धर्वों का लोक प्राप्त किया। वहाँ निवास के लिए उनसे गन्धर्वों के समान सुविधा प्राप्त की, त्रेतायुग में वह राजा पुरूरवा महारथी था, अग्नि पूर्व काल में केवल एक थे, उसने उनका तीन भाग किया। ऋषिवृन्द! इला का पुत्र वह राजा पुरूरवा इसी प्रकार का महान् प्रभावशाली एवं योद्धा था। महर्षियों से सुशोभित परम पुण्यप्रद प्रयाग तीर्थ में वह पृथ्वीपति राज्य करता था, उस महायशस्वी की राजधानी यमुना के पवित्र उत्तर तट पर अवस्थित प्रतिष्ठानपुर में थी ।।४८–५१।। उस राजा पुरूरवा के इन्द्र के समान महान् तेजस्वी छह पुत्र थे, गन्धर्वों के लोक में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा और ख्याति थी। उनके नाम थे आयु, श्रीमान्, अमावसु, विश्वायु, शतायु और गतायु–ये सब उवंशी के पुत्र थे। अमावसु के पुत्र राजा भीम हुए, जो विश्वविजयी थे। उस राजा भीम का उत्तराधिकारी परम कान्तिमान् राजा काञ्चनप्रभ हुआ। काञ्चनप्रभ का पुत्र महाबलवान् एवं परम विद्वान् राजा सुहोत्र हुआ ।।५२–५४। राजा सुहोत्र के पुत्र जह्नु हुए, ये राजा जह्नु, कौशिका के

सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः कौशिकागर्भसंभवः । प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्मणि ।।५५।।
प्लावयामास तं देशं भाविनोऽर्थस्य दर्शनात् । गङ्गया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ।।५६।।
सौहोत्रिर्वरदः क्रुद्धो गङ्गां संरक्तलोचनः । अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।।५७।।
एतत्ते विफलं सर्वं पीतमम्भः करोम्यहम् । राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा सुरर्षयः ।।५८।।
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् । यौवनाश्वस्य पौत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ।।५९।।
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गां येन विनिर्ममे । कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नुभार्यामनिन्दिताम् ।।६०।।
जह्नुश्च दयितं पुत्रं सुहोत्रं नाम धार्मिकम् । कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।६१।।
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशाः । बभूवुश्च गयः शीलः कुशस्तस्याऽऽत्मजः स्मृतः ।।६२।।
कुशपुत्रः बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः । कुशाश्वः कुशनाभश्च अमूर्तारयशो वसुः ।।६३।।
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थो राजसत्तमः । पूर्णे वर्षसहस्रे वै शतक्रतुमपश्यत ।।६४।।
सुदुर्गं तापसं दृष्ट्वा सहस्त्राक्षः पुरंदरः । समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ।।६५।।
पुत्रत्वं कल्पयामास स्वयमेव पुरंदरः । गाधिर्नामाभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः ।।६६।।

गर्भ से उत्पन्न हुए थे, इन राजा जह्नु ने एक बार पृथ्वी पर यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, समस्त यज्ञ सामग्रियाँ पृथ्वी पर विस्तृत थीं, भावीवश गंगा की धारा ने उस प्रान्त को अपने जल से प्लावित कर दिया। चारों ओर से यज्ञ भूमि को गंगा से प्लावित देखकर सुहोत्र के पुत्र राजा जह्नु को, जो परम दयालु और याचकों को मनचाहा देनेवाले थे, परम क्रोध आ गया, आँखें क्रोध से लाल हो गयीं, और उसी भावावेश में उन्होंने कहा—हे गङ्गे! इस घमंड का फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा, तुम्हारे इस सब जलराशि को पीकर मैं व्यर्थ किये देता हूँ ।।५५–५७$\frac{१}{२}$।। ऐसा कहकर राजर्षि जह्नु ने गंगा की समस्त जलराशि पी डाली। महाभाग्यशाली देवता और ऋषिगण गङ्गा के पीने को देखकर गङ्गा को उनकी कन्या के रूप में उपहारस्वरूप समर्पित कर दिया, तभी से गङ्गा का नाम जाह्नवी पड़ा। राजा यौवनाश्व की पौत्री कावेरी को जह्नु ने पत्नी रूप में अंगीकार किया था। युवनाश्व के शाप से उसने गङ्गा का निर्माण किया था। जह्नु की भार्या कावेरी सरिताओं में श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय गुणोंवाली है। जह्नु ने कावेरी में परम धार्मिक सुहोत्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उसका परम प्रिय था। उसका पुत्र अजक हुआ ।।५८–६१।। अजक का उत्तराधिकारी राजा बलाकाश्व परम यशस्वी राजा था। उसके गय, शील और कुश नामक पुत्र कहे जाते हैं। कुश के चार पुत्र हुए, जो वेद ज्ञान में यश प्राप्त करनेवाले थे, उनके नाम थे कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तरयश् और वसु। राजाओं में श्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या की, एक सहस्र वर्ष बीतने पर उसने इन्द्र का दर्शन किया ।।६२–६४।। सहस्रनेत्रवाले पुरन्दर ने परम कठोर तप में निरत राजा कुशस्तम्ब को देखकर स्वयमेव उनके पुत्र रूप में होने का निश्चय किया। इस प्रकार पुरन्दर ने स्वयमेव पुत्रत्व का निश्चय किया। पाकशासन इन्द्र राजा कुशस्तम्ब के रूप में गाधि नाम से ख्यात हुए, उनका एक दूसरा कौशिक

पौरुकुत्साऽभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत । पूर्वकन्यां महाभागां नाम्ना सत्यवतीं शुभाम् ।।
तां गाधिः पुत्रा काव्याय रुचीकय ददौ प्रभुः ।।६७।।
तस्यां पुत्रस्तु वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः । पुत्रार्थे साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च ।।६८।।
तथा चाऽऽहूय णिधृतिमृचीको भार्गवस्तदा । उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा च ते शुभे ।।६९।।
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः । अजेयः क्षत्रियैर्युद्धे क्षत्रियर्षभसूदनः ।।७०।।
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् । शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ।।७१।।
एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः । तपस्याभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ।।७२।।
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः ।।७३।।
चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती तदा । भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ।।७४।।
माता तु तस्यै देवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ । तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मनः सा चकार ह ।।७५।।
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं शुभम् । धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ।।७६।।
तमृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृश्य च । तदाऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ।।७७।।

नाम भी हुआ। राजा कुशस्तम्ब की पत्नी पौरुकुत्सा थी, जिसमें गाधि की उत्पत्ति हुई। महाभाग्यशालिनी, कल्याणदायिनी बड़ी कन्या सत्यवती को ऐश्वर्यशाली गाधि ने भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाले रुचीक को समर्पित किया ।।६५-६७।। उस सत्यवती में भृगुनन्दन, भृगुवंश शिरोमणि जमदग्नि उत्पन्न हुए। भृगुवंशोत्पन्न ऋषिवर्य रुचीक ने अपने और गाधि के पुत्र के लिए एक चरु बनाया। अपनी पत्नी णिधृति (सत्यवती) को बुलाकर उन्होंने कहा, 'कल्याणि! यह चरु तुम और तुम्हारी माता इस क्रम से खाना। इसके प्रभाव से तुम्हारी माता में क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठ, परमकान्तिमान् एक पुत्र उत्पन्न होगा, वह युद्धभूमि में अन्यान्य क्षत्रियों द्वारा पराजित नहीं होगा, बड़े-बड़े योद्धा क्षत्रियों का वह विनाश करनेवाला होगा। हे कल्याणि! तुम्हारा पुत्र भी परम शान्त, तपोमय, धैर्यशाली एवं बुद्धिमान् होगा। यह चरु उसे ब्राह्मण जाति में सर्वश्रेष्ठ बनायेगा, अर्थात् इसके प्रभाव से वह समस्त ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ गुणोंवाला होगा ।।६८-७१।।' भृगुवंशोत्पन्न ऋचीक अपनी स्त्री सत्यवती से ये बातें कर तपस्या के लिए जंगल की ओर चले गये, वे सर्वदा तपस्या ही में लगे रहते थे। संयोगतः उसी अवसर पर अपनी स्त्री समेत राजा गाधि ऋचीक के आश्रम पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमते-घूमते अपनी पुत्री को देखने को आ गये ।।७२-७३।। परम शान्तचित्त सत्यवती ने ऋषिवर्य ऋचीक के दिये हुए दोनों चरुओं को लेकर परम प्रसन्न मन से माता से उस वृत्तान्त को आद्यन्त बतलाया। भाग्यवश उनकी माता ने अपना चरु पुत्री सत्यवती को दिया और बिना उसका प्रभाव जाने ही सत्यवती के चरु को स्वयं ग्रहण किया। फलतः सत्यवती ने क्षत्रियों का विनाश करनेवाले परम तेजस्वी गर्भ को धारण किया। उस समय उसकी कान्ति बहुत बढ़ गयी, शरीर से वह भयानक दिखायी पड़ने लगी। द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ने अपनी सुन्दरी पत्नी की यह दशा देखकर योगबल से सारी स्थिति जान ली। वे बोले, 'भद्रे! माता ने

मात्राऽसि वञ्चिता भद्रे चरुवत्या सहेतुना। जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः ।।७८।।
माता जनिष्यते वाऽपि तथाभूतं तपोधनम्। विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ।।७९।।
एवमुक्त्वा महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा। प्रसादयामास पतिं सुतो मे नेदृशो भवेत् ।।
ब्राह्मणापसदस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ।।८०।।
नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथा त्वया। उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ।।८१।।
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाऽब्रवीदिदम्। इच्छल्लोँकानपि मुने सृजेथाः किंः पुनः सुतम् ।।८२।।
शमात्मकमृजुं भर्तः पुत्रं मे दातुमर्हसि। काममेवंविधः पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ।।८३।।
मय्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेव द्विजोत्तम। ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ।।८४।।
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि। त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ।।८५।।
तस्मात्सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्। तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ।।८६।।
भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा। जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।।८७।।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः। प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां जगाम ब्रह्मणा वृतः ।।८८।।

तुम्हें ठग लिया है, उसने विशेष कारण से तुम्हारे चरु को स्वयं ले लिया है, इसके फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र परम कठोर चित्तवाला एवं क्रूरकर्मा उत्पन्न होगा ।।७५-७८।। और तुम्हारी माता, परम तपस्वी पुत्र उत्पन्न करेगी, जैसा मैंने तुम्हें बतलाया था। मैंने तुम्हारे उस चरु में अपने तपोबल से समस्त ब्रह्मज्ञान को समर्पित किया था। पति के ऐसा कहने पर महाभाग्यशालिनी सत्यवती ने पति की बड़ी आराधना की और इस बात के लिए राजी किया कि मेरा पुत्र वैसा न हो जो नीच ब्राह्मण कहा जाय।' सत्यवती की इस प्रार्थना पर मुनिवर ऋचीक ने कहा; भद्रे! मैंने या तुमने विचार करके ऐसी इच्छा नहीं की थी कि हमारा पुत्र ऐसा क्रूरकर्मा हो अर्थात् यह दैव विधान है। प्रायः पिता और माता के कारण से पुत्र उग्र करनेवाले होते हैं ।।७९-८१।। ऋचीक के ऐसा कहने पर सत्यवती पुनः बोली, मुनिवर्य! आप इच्छा करें तो समस्त लोकों की सृष्टि कर सकते हैं, ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने की तो बात ही क्या है? हे पतिदेव! मुझे परम शान्त, सरल एवं सत्पुरुष पुत्र दीजिये। यह तो हो सकता है कि हमारा पौत्र उग्र एवं कठोर स्वभाववाला हो। हे प्रभो! द्विजोत्तम! अब मेरे लिये यह तो करना ही होगा। आप अन्यथा नहीं करेंगे-ऐसी विशेष प्रार्थना कर रही हूँ।' मुनिवर ऋचीक ने अपने तपोबल से उसकी मनःकामना पूर्ण कर प्रसन्न किया। वे बोले, सुन्दरि! मुझे पुत्र या पौत्र किसी में कोई विशेषता नहीं दिखायी पड़ती, किन्तु तुम्हारा यदि आग्रह ऐसा है तो मैं वैसा ही करूँगा, भद्रे! तुम्हारी बात सत्य होगी ।।८२-८५।। ऋचीक के वचनानुसार सत्यवती ने भार्गव जमदग्नि को उत्पन्न किया। वे परम शान्त, क्षमाशील एवं तपःपरायण थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में रुद्र एवं विष्णु के चरु में परिवर्तन हो जाने से विष्णु एवं अग्नि के तेज के जमन (भक्षण) किये जाने से भृगुवंश में जमदग्नि नामक ऋषि उत्पन्न हुए। इधर कुशिकनन्दन गाधि ने विश्वामित्र को पुत्र रूप में उत्पन्न किया, उन

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा । कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ।।८९।।
परिश्रुता महाभागा कौशिकी सरितां वरा । इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिवः ।।९०।।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका । रेणुकायां तु कामल्यां तपोधृतिसमन्वितः ।।
आर्चीको जनयामास जमदग्निः सुदारुणम् ।।९१।।
सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् । रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ।।९२।।
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामनाः । जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ।।
मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ।।९३।।
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः । जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्धनः ।।९४।।
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवन्मुनिः । हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियतः स वै ।।९५।।
*देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः । देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ।।९६।।
विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः । मधुच्छन्दो नयश्चैव कृतदेवौ ध्रुवाष्टकौ ।।९७।।
कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै । तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ।।९८।।
पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्षणाः । उदुम्बरा उदुम्लानास्तारका यममुञ्चताः ।।९९।।

विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षियों की समानता प्राप्तकर ब्राह्मणों समेत स्वर्ग को प्रस्थान किया। सत्यव्रत परायण वह सत्यवती परम पुण्यदायिनी महानदी कौशिकी के नाम से प्रवाहित हुई ।।८६–८९।। महाभाग्यशालिनी, नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी को परम ख्याति प्राप्त हुई। इक्ष्वाकु के वंश में सुवेणु नामक एक राजा थे। उनकी कन्या महाभाग्यशालिनी कामली थी, जिसका दूसरा नाम रेणुका भी था, उस कामली रेणुका में परम तपस्वी, धैर्यशाली, ऋचीक के पुत्र जमदग्नि ने परम कठोर स्वभाववाले परशुराम को उत्पन्न किया, वे परशुराम सभी विद्याओं में पारंगत, विशेषतया धनुर्वेद के परम जानकार, क्षत्रियों के विनाशक एवं अग्नि के समान परम तेजस्वी थे। उर्व के पुत्र ऋचीक के सत्यवती में ज्येष्ठ पुत्र महामनस्वी जमदग्नि हुए, उनके तपोबल से मध्यम पुत्र शुनःशेप हुए, जो परम ब्रह्मज्ञानी थे। शुनःपुच्छ ऋचीक के सबसे कनिष्ठ पुत्र थे ।।९०–९३।। धर्मात्मा विश्वामित्र विश्वरथ के नाम से प्रख्यात थे। महर्षि भृगु की कृपा से ये कौशिक के संयोग से उत्पन्न हुए थे, वे कौशिक वंश में सबसे अधिक प्रभावशाली थे। उन विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेप नामक मुनि हुए। वे शुनःशेप राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ कर्म में बलिदान देने के लिए नियुक्त हुए थे। देवताओं ने शुनःशेप को पुनः विश्वामित्र को वापस कर दिया। देवताओं के देने के कारण इनका बाद में देवरात नाम पड़ा। विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेप सबसे बड़े कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त मधुच्छन्द, नय, कृत, देव, ध्रुव, अष्टक, कच्छप और पूरण–ये सब भी विश्वामित्र के पुत्र हैं। इन सबों के गोत्र प्रायः महान् पराक्रमी कौशिकों के ही हैं ।।९४–९८।। पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य, समर्षण, उदुम्बर, उदुम्लान, तारक, यममुञ्चत, लोहिण्य, रेणव, कारीषु, बभ्रु, पाणिन, ध्यानजप्य,

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

लोहिण्या रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृताः । बभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ।।१००।।
शालावत्या हिरण्याक्षा स्यङ्कृता गालवाः स्मृताः । देवला यामदूताश्च सालङ्कायनबाष्कलाः ।।१०१।।
ददातिबादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः । ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिकाः स्मृताः ।।१०२।।
कौशिकाः सौश्रुताश्चैव तथाऽन्ये सैंधवायनाः । पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य तु ।।१०३।।
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः । अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नुगणो मया ।।१०४।।

ऋषय ऊचुः

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा । ब्राह्मण्यं समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ।।१०५।।
येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्यं क्षत्रिया गताः । विशेषं ज्ञातुमिच्छामस्तपसा दानतस्तथा ।।१०६।।
एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् । अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहूय द्विजसत्तमान् ।।
धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ।।१०७।।
धर्मं चैतं समाख्याय पापात्मा पुरुषाधमः । ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकानां दम्भकारणात् ।।१०८।।
जपं कृत्वा तथा तीव्रं धनलोभान्निरङ्कुशः । रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति यः ।।१०९।।

शालावत्य, हिरण्याक्ष, स्यङ्कृत, गालव, देवल, यामदूत, सालङ्कायन, बाष्कल, ददाति एवं बादर नाम से प्रसिद्ध वंशों में उत्पन्न होनेवालों का परम बुद्धिमान् विश्वामित्र का गोत्र है। बहुतेरे कौशिक गोत्र में उत्पन्न होनेवालों का विवाह अन्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होनेवालों के साथ कहा जाता है। कौशिक, सौश्रुत एवं सैंधवायन नाम से प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न होनेवाले, पुरूरवा के वंश में उत्पन्न पुण्यशाली ब्रह्मर्षि कौशिक के गोत्र में कहे जाते हैं। विश्वामित्र से दृषद्वती में उत्पन्न होनेवाले एक पुत्र का नाम अष्टक था, अष्टक के पुत्र जह्नुगण हुए जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है ।।९९–१०४।।

ऋषिवृन्द बोले–सूत जी! इस लोक में उत्पन्न होकर विश्वामित्र प्रभृति क्षत्रिय राजाओं ने किस प्रकार के धर्म, तपस्या अथवा ज्ञान द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की, जिन-जिन सत्कर्मों अथवा दान या तपस्या द्वारा क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुए, उन उनको विशेष रूप से हम लोग जानना चाहते हैं। ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत जी तात्पर्य से भरी हुई यह वाणी बोले–ऋषिवृन्द! अन्याय से उपार्जित किये गये द्रव्य द्वारा धर्म की आकांक्षा से अच्छे-अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर जो यज्ञादिक सत्कर्म करते हैं, वे धर्म का फल नहीं प्राप्त करते ।।१०५–१०७।। जो पापात्मा नीच पुरुष दम्भवश 'मैं यह धर्मकार्य कर रहा हूँ' इस प्रकार का प्रचार करके लोक में अपनी ख्याति प्राप्त करने के उद्देश्य से, ब्राह्मणों को दान देता है, अथवा जो निरंकुश व्यक्ति धन के लोभ से कठोर जप करता है, या राग मोहवश पहले पाप करके अन्त में पवित्र होने के उद्देश्य से दान करता है, उन सबके दानादि सत्कर्म निष्फल होते हैं। दुरात्मा वास्तव में हिंस्रभावना से धर्म में प्रवृत्त होते हैं ।।१०८–१०९।। इस प्रकार के अन्याय द्वारा धन प्राप्तकर मोहवश जो दुरात्मा, क्रूरकर्मा

तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत। तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः ।।११०।।
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्ददतो यजतश्च ह। संक्लिष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मनः ।।१११।।
न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे संप्रतिपादनम्। कामाननभिसंधाय यजते च ददानि च ।।११२।।
स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम्। दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ।।११३।।
तपसा तु सुगुप्तेन लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति। विष्टभ्य स तु तेजस्वी लोकेष्वानन्त्यमश्नुते ।।११४।।
दानाच्छ्रेयस्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः। संन्यास्तपसः श्रेयांस्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम् ।।११५।।
श्रूयन्ते हि तपः सिद्धाः क्षात्रोपेता द्विजातयः। विश्वामित्रो नरपतिर्मांधाता संकृतिः कपिः ।।११६।।
कपेश्च पुरुकुत्सश्च सत्यश्चानृहवानृथुः। आर्ष्टिषेणोऽजमीढश्च भागान्योऽन्यस्तथैव च ।।११७।।
कक्षीवश्चैव शिजयस्तथाऽन्ये च महारथाः। रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ।।११८।।
क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः। एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं समुहतीं गताः ।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आयोर्वंशं महात्मनः ।।११९।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते अमावसुवंशानुकीर्तनम् नामैकनवतितमोऽध्यायः ।।९१।।

दान करता है अथवा यज्ञ करता है, वह नष्ट हो जाता है, टिकता नहीं। इसलिए न्यायतः प्राप्त धन को उपयुक्त तीर्थ (पात्र) में जो दान करते हैं, अपने मनोरथों के लिए किसी प्रकार की अभिसंधि (षड्यंत्र) नहीं करते, अथवा बिना किसी कामना के यज्ञ दान करते हैं, वही दान के वास्तविक फल को प्राप्त करते हैं, और वही दान सुख, शान्ति एवं समृद्धि देनेवाला है ।।११०-१११$\frac{१}{२}$।। दान द्वारा मनुष्य विविध प्रकार के भोगों की प्राप्ति करता है, सत्य द्वारा स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है, तथा परम गोपनीय ढंग से की गयी तपस्या द्वारा समस्त लोक का अतिक्रमण कर स्थित होता है, अर्थात् गुप्त तपस्या द्वारा समस्त लोक से ऊपर होता है। इस प्रकार समस्त लोक का अतिक्रमण करनेवाला परम तेजस्वी तपस्वी सभी लोकों में अनन्त अक्षय सुख की प्राप्ति करता है। दान की अपेक्षा यज्ञ कल्याणकारी है, यज्ञ से बढ़कर कल्याणकारी तपस्या है, तपस्या से भी बढ़कर संन्यास की महत्ता है, और संन्यास से भी बढ़कर कल्याणदायी एवं महान् ज्ञान कहा गया है ।।११२-११५।। ऐसा सुना जाता है कि क्षत्रिय-गुण-कर्म-स्वभाववाले अनेक द्विजातियों ने तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त की। नरपति विश्वामित्र, मान्धाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, आनृहवान् ऋथु, आर्ष्टिषेण, अजमीढ, भागान्य (?) अन्य (?) कक्षीव, शिजय तथा अन्य महारथी रथीतर, रुन्द, विष्णुवृद्धादि राजाओं ने क्षत्रिय जाति में उत्पन्न होकर अपनी तपस्या द्वारा ऋषि पदवी प्राप्त की। इन सभी राजर्षियों ने अपनी महान् तपस्या द्वारा परम सिद्धि की प्राप्ति की। अब इसके उपरान्त महान् पराक्रमी राजा आयु (आयु) के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ।।११६-११९।।

श्री वायुमहापुराण में अमावसुवंशानुकीर्तन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९१।।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

एते पुत्रा महात्मानः पञ्चैवाऽसन्महाबलाः। स्वर्भानुतनया विप्राः प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ।।१।।
नहुषः प्रथमस्तेषां पुत्रधर्मा ततः स्मृतः। धर्मवृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशाः ।।२।।
सुतहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः। काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ।।३।।
पुत्रौ गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः। ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ।।४।।
एतस्य वंशे संभूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः। शलात्मजो ह्यार्ष्टिषेणश्चरन्तस्तस्य चात्मजः ।।५।।
शौनकाश्चाऽऽर्ष्टिषेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातयः। काशस्य काशयो राष्टः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।।६।।
धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिस्ततः। तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमतः।।
अथैनमृषयः प्रोचुः सूतं वाक्यमिदं पुनः ।।७।।

ऋषय ऊचुः

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्। एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रियं तथा ।।८।।

अध्याय ९२

चन्द्रवंश का वर्णन

सूत बोले–विप्रवृन्द! पाँच महान् पराक्रमी तथा परम बलवान् स्वर्भानु के पुत्र प्रभा नामक पत्नी में उत्पन्न हुए, जो सब राजा थे। उन सबों में प्रथम गणनीय राजा नहुष थे। उनके बाद पुत्रधर्मा कहे जाते हैं। तदनन्तर धर्मवृद्ध हुए, धर्मवृद्ध के पुत्र परम यशस्वी राजा सुतहोत्र हुए ।।१–२।। राजा सुतहोत्र के उत्तराधिकारी तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम काश, शल एवं गृत्समद थे। परम प्रभावशाली राजा गृत्समद के पुत्र शुनक थे, जिनके पुत्र शौनक हुए। द्विजवृन्द! इस वंश में उत्पन्न होनेवाली संततियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–चारों वर्णों में अपने विचित्र कर्मों द्वारा विभक्त हुईं। शल के पुत्र राजा आर्ष्टिषेण हुए, जिनके पुत्र चरन्त हुए ।।३–५।। शौनक और आर्ष्टिषेण के वंश में उत्पन्न होनेवाली सन्ततियाँ क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों वर्णों में हैं। काश के काशय, राष्ट और दीर्घतपा नामक पुत्र हुए। दीर्घतपा के पुत्र राजा धर्म हुए, धर्म से परम विद्वान् राजा धन्वन्तरि का जन्म हुआ। परम बुद्धिमान् राजा धर्म की वृद्धावस्था में उनकी तपस्या के कारण महान् तेजस्वी धन्वन्तरि का जन्म हुआ था। इस बात को सुनकर ऋषियों ने सूत से यह बात पूछी ।।६–७।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! देव धन्वन्तरि किस प्रकार मनुष्य लोक में उत्पन्न हुए, इस बात को हम लोग जानना चाहते हैं, हमारे इस प्रिय विषय को बतलाइये ।।८।।

सूत उवाच

धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः । स संभूतः समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ।।९।।
उत्पन्नः सकलात्पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः । सर्वसंसिद्धकायं तं दृष्ट्वा विष्टम्भितः स्थितः ।।
अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृतः ।।१०।।
अजः प्रोवाच विष्णुं तं तनयोऽस्मि तव प्रभो । विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरोत्तम ।।११।।
एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथ्यं प्रोवाच स प्रभुः । कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियैर्हि सुरैस्तथा ।।१२।।
वेदेषु विधियुक्तं च विधिहोत्रं महर्षिभिः । न शक्यमि (इ) ह होमो वै तुल्यं (ल्यः) कर्तुं कदाचन ।।१३।।
अर्वाक्सुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो । द्वितीयायां तु संभूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि ।।१४।।
अणिमादियुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति । तेनैव च शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसि प्रभो ।।
चरुमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्वक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।।१५।।
अथ च त्वं पुनश्चैव आयुर्वेदं विधास्यसि । अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयं प्राक्सृष्टस्त्वब्जयोनिना ।।१६।।
द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः । तस्मात्तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे ततः ।।१७।।
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः प्रकाशिराट् । पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ।।१८।।

सूत बोले–द्विजवृन्द ! धन्वन्तरि का जन्म–वृत्तान्त मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। प्राचीनकाल में समुद्र मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि का आविर्भाव हुआ था। वे सबसे पहले और सभी प्रकार की कान्तियों से समन्वित उत्पन्न हुए थे, इस प्रकार सब प्रकार के गुणों एवं कान्तियों से विभूषित उनके शरीर को देखकर देवगण भौचक्के रह गये और बोल उठे कि "तुम अज हो" इसी कारणवश वे अज नाम से विख्यात हुए। तदनन्तर अज ने विष्णु से कहा, प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ, सुरोत्तम ! लोक में हमारे लिये स्थान एवं यज्ञादि में हमारे लिये अंश की व्यवस्था कीजिये ।।९–११।। अज के ऐसा कहने पर प्रभु विष्णु ने अज की ओर देखकर ये तथ्यपूर्ण बातें कहीं, हे देव ! यज्ञ के विधान बनानेवाले देवताओं ने यज्ञादि में अंशों के विभाग आदि की व्यवस्था पहले ही से बना दी है, महर्षियों द्वारा वेदों में उनके लिए विधानयुक्त हवन करने की प्रक्रिया आदि भी निर्धारित हो चुकी है, तुम बाद में उत्पन्न होनेवाले पुत्र हो, अतः हवनादि में उन देवताओं के साथ, जिनके लिए अंश प्राप्त करने की व्यवस्था बँध चुकी है, तुम्हें समानता नहीं प्राप्त करा सकता। हे समर्थ ! तुम केवल नाम से ही मंत्र रूप हो। दूसरे जन्म में तुम लोक में ख्याति प्राप्त करोगे। गर्भ से ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होगी। परम प्रभावशालिन् ! उसी शरीर से तुम्हें देवगण की भी प्राप्ति होगी। उस समय द्विजातिगण चरु, मन्त्र, घृत, गन्ध आदि द्रव्यों से मन्त्रोचारणपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे ।।१२–१५।। उसके बाद तुम आयुर्वेद का उद्धार करोगे, यह सब बातें अवश्य घटित होंगी। इन्हीं के लिए पद्मयोनि ब्रह्मा जी ने तुम्हारी सृष्टि पूर्वकाल में की है। द्वितीय द्वापर युग में तुम आविर्भूत होगे–इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये ।।१६–१७।। द्वितीय द्वापर युग में काशिराज सुनहोत्र (सुतहोत्र) के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा दीर्घतपा ने पुत्र–

अजं देवं तु पुत्रार्थे ह्यारिराधयिषुर्नृपः। वरेण च्छन्दयामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृपम् ।।१९।।

नृप उवाच

भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे धृतिमान्भव। तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ।।२०।।
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ।।२१।।
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम्। तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ।।२२।।
धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो विप्रो भीमरथो नृपः ।।
दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ।।२३।।
एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा। शून्यां विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ।।२४।।
शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना। शून्या वर्षसहस्त्रं वै भवित्रीति पुनः पुनः ।।२५।।
तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः। विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ।।२६।।

ऋषय ऊचुः

वाराणसीं किमर्थं तां निकुम्भः शप्तवान्पुरा। निकुम्भश्चापि धर्मात्मा सिद्धक्षेत्रं शशाप यः ।।२७।।

प्राप्ति की कामना से तपस्या की थी। उस तपस्या में राजा ने पुत्र के लिए उन्हीं अज देव की आराधना की थी। प्रसन्न होकर धन्वन्तरि ने राजा दीर्घतपा को वरदान देने की बात कही ।।१८-१९।।

राजा बोले–भगवन्! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे धर्मशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न हों। देव धन्वन्तरि राजा की प्रार्थना स्वीकार कर वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वरदान के अनुसार द्वितीय द्वापर युग में देव धन्वन्तरि राजा दीर्घतपा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। बाद में चलकर वे महाराजाधिराज काशिराज सभी रोगों के विनाश करनेवाले हुए ।।२०-२१।। भरद्वाज ऋषि ने ओषधियों की समस्त प्रक्रियाओं के साथ आयुर्वेद का प्रणयन किया था, राजा ने उसी को पुनः आठ भागों में विभक्तकर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी थी। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान् नाम से विख्यात हुए, केतुमान् के पुत्र परम प्रतापशाली राजा भीमरथ हुए। वही राजा भीमरथ वाराणसी के परम प्रसिद्ध राजा दिवोदास के नाम से विख्यात हुए। प्राचीन काल में इसी राजा के राज्यकाल में वाराणसी पुरी सूनी हो गयी थी और उसमें क्षेमक नामक राक्षस घुस आया था ।।२२-२४।। प्राचीन काल में महान् पराक्रमशाली निकुम्भ ने वाराणसी पुरी को यह शाप दिया था कि यह वाराणसी एक सहस्र वर्ष तक सूनी रहेगी। ऐसी बात उसने बार-बार कही थी। उसके इस प्रकार के शाप देने पर नरपति दिवोदास ने इस वाराणसी पुरी को छोड़कर अपनी मनोहर राजधानी गोमती नदी के तट पर बसायी थी ।।२५-२६।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! प्राचीन काल में निकुंभ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था। परम धर्मात्मा होकर भी उसने सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को भला क्यों शाप दिया ? ।।२७।।

सूत उवाच

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः । वसते स महातेजाः स्फीतायां वै नराधिपः ।।२८।।
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः । देव्याः स प्रियकामस्तु वसानः श्वशुरान्तिके ।।२९।।
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधनाः । पूर्वोक्तं रूपविशेषैस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ।।३०।।
हृष्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु हृष्यति । जुगुप्सते सा नित्यं च देवं देवीं तथैव च ।।३१।।
मम पार्श्वं त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः । दरिद्रः सर्व एवेह अक्लिष्टं लडतेऽनघे ।।३२।।
मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्नचाक्षमत् । स्मितं कृत्वा तु वरदा हयपार्श्वमथागमत् ।।३३।।
विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत । नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निवेशनम् ।।३४।।
तथोक्तस्तु महादेवः सर्वाँल्लोकानवेक्ष्य ह । वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां तु द्विजोत्तमाः ।।
वाराणसीं महातेजाः सिद्धक्षेत्रं महेश्वरः ।।३५।।
दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः । पार्श्वस्थं स समाहूय गणेशं क्षेमकं *ब्रवीत् ।।३६।।
गणेश्वरपुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु । मृदुना चाभ्युपायेन अतिवीर्यः स पार्थिवः ।।३७।।

सूत बोले–राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरी में निवास करता था, उस मनोहर नगरी में वह अपने समय का एक महान् शासक एवं परमतेजस्वी राजा था ।।२८।। इसी अवधि में महेश्वर शिव ने पार्वती के साथ पत्नी सम्बन्ध स्थापित किया था और देवी को प्रसन्न करने की नीयत से वे श्वसुर हिमवान् के ही घर में निवास करते थे ।।२९।। महादेव की आज्ञा से उनके पार्षदगण, जो अनेक स्वरूप धारण करनेवाले, किन्तु महान् तेजस्वी थे, पूर्व में कहे गये विचित्र-विचित्र रूपों में धारणकर महेश्वरी को प्रसन्न किया करते थे। उनके इस व्यापार से महादेव जी प्रसन्न होते थे किन्तु मेना को इससे प्रसन्नता नहीं होती थी। महादेव और पार्वती दोनों की वह मन में सदा भर्त्सना किया करती थीं ।।३०-३१।। एक बार उन्होंने पार्वती से कहा भी, निष्पापे! तुम्हारे पति महेश्वर हमारे यहाँ नित्यप्रति अनाचार किया करते है। मेरी समझ में तो वे एक परम अकिंचन एवं व्यर्थ में नाच-गान में लगे हुए लम्पट प्रतीत होते हैं। माता मेना की ऐसी बातों को स्त्री स्वभाववश पार्वती सहन न कर सकीं। वरदान देनेवाली पार्वती मन्द हास्य करती हुई महादेव के समीप आयीं और वहाँ खिन्न मुख होकर महादेव से बोलीं–देव! अब मैं यहाँ पर निवास नहीं करूँगी, मुझे अपने यहाँ ले चलिये। देवी के ऐसा कहने पर महादेव ने तीनों लोकों में अपने योग्य स्थान देखा। द्विजवर्यवृन्द! समस्त भूमंडल भर में महान् तेजस्वी महेश्वर ने अपने निवास योग्य स्थान सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को ही पसन्द किया ।।३२-३५।। भव ने उक्त वाराणसी नगरी को उस समय राजा दिवोदास के अधीन जानकर अपने समीप रहनेवाले गणेश्वर क्षेमक को बुलाकर कहा। गणेश्वर! तुम वाराणसी पुरी को जाओ, और उसे खाली कराओ। देखना, मृदुल उपायों द्वारा उसे खाली कराना, क्योंकि वहाँ का राजा दिवोदास महान् पराक्रमी है ।।३६-३७।। इस प्रकार शिव की

---

* अत्राडभाव आर्षः।

ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं पुरा। स्वप्ने संदर्शयामास मङ्कनं नाम नापितम् ।।३८।।
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ। मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय ।।३९।।
तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्वं कारितवान्द्विजाः। नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानं तु यथाविधि ।।४०।।
पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते। गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ।।४१।।
अन्नप्रदानयुक्तैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत्। एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः ।।४२।।
ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति। पुत्रान्हिरण्यमायूंषि सर्वकामांस्तथैव च ।।४३।।
राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता। पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ।।४४।।
पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत। पुनः पुनरथाऽऽगम्य बहुशः पुत्रकारणात् ।।४५।।
न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुम्भः कारणेन तु। राजा यदि तु क्रुध्येत ततः किंचित्प्रवर्तते ।।४६।।
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्। भूतं त्विदं महाद्वारि नागराणां प्रयच्छति ।।४७।।
प्रीत्या वरांश्च शतशो न किंचिन्न प्रयच्छति। मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मम चैव तु ।।४८।।
तत्रार्चितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात्। न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नो बहुभोजनः ।।४९।।

आज्ञा से प्राचीन काल में निकुम्भ वाराणसी पुरी को प्रस्थित हुआ, और वहाँ जाकर उसने स्वयं को मङ्कन नामक नापित को स्वप्न में दिखाया, और उससे कहा, निष्पाप! मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा, मेरे लिए एक स्थान तू बना। इन नगरी के अन्तिम छोर पर मेरी प्रतिमा बनाकर स्थापित कर दे। द्विजवृन्द! मङ्कन ने स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को पूर्ण किया, राजा से आज्ञा प्राप्तकर उसने नगरी के प्रवेश-द्वार पर विधिपूर्वक निकुम्भ की प्रतिमा स्थापित की ।।३८-४०।। उस स्थान पर निकुम्भ की मूर्ति की नित्यप्रति बड़ी पूजा होने लगी। गन्ध, धूप, पुष्प, माला, अन्नादि वस्तुओं के देने से एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। इस प्रकार गणेश्वर की नित्यप्रति पूजा होती थी। गणेश्वर ने भी पूजा से सन्तुष्ट होकर नगर निवासियों के लिए सहस्रों वरदान प्रदान किये, पुत्र, सुवर्ण, दीर्घायु एवं अन्य सभी प्रकार के मनोरथों की पूर्ति की ।।४१-४३।। राजा दिवोदास की पटरानी का नाम सुयशा था जो परम साध्वी थीं। राजा की प्रेरणा से वह भी पुत्र-प्राप्ति की कामना से उपस्थित हुईं और विपुल पूजा करने के उपरान्त पुत्रों का वरदान माँगा। इसी प्रकार बारम्बार आकर उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिए पूजा और वरदान-याचना की ।।४४-४५।। किन्तु निकुम्भ ने उक्त कारणवश पुत्रों का वरदान नहीं दिया, उसने सोचा कि यदि रानी को मैं वरदान न दूँगा तो राजा क्रुद्ध हो जायगा और तब हमारा सब काम सध जायगा। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर राजा को क्रोध आ गया, वह सोचने लगा कि यह भूत हमारी इस नगरी के महान् द्वारदेश पर स्थित है, नगरवासियों के ऊपर प्रसन्न होकर सैकड़ों वरदान इसने प्रदान किये, किन्तु हमें कुछ भी नहीं देता, हमारी ही प्रजाओं द्वारा इसकी पूजा नित्य होती है, मेरी ही नगरी में इसका आवासस्थल है, देवी ने मेरे कहने से इसकी अनेक प्रकार से पूजाएँ भी कीं, किन्तु इस कृतघ्न को मेरे लिये एक भी पुत्र देने का अवसर नहीं मिला, यह बड़ा खब्बू है, अतः आज से इसकी पूजा नहीं करनी

अतो नार्हति पूजां तु मत्सकाशात्कथंचन । तस्मात्तु नाशयिष्यामि तस्य स्थानं दुरात्मनः ।।५०।।
एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्विषी । स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ।।५१।।
भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमगमत्प्रभुः । यस्मादनपराधं मे त्वया स्थानं विनाशितम् ।।५२।।
अकस्मात्तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिप । ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ।।५३।।
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् । शून्यां पुरीं महादेवो निर्ममे परमात्मना ।।५४।।
तुल्यां देवविभूत्यास्तु देव्याश्चैव महात्मनः । रमते तत्र वै देवी रममाणो महेश्वरः ।।५५।।
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् । देव्याः क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत् ।।५६।।
नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् । प्रहस्यैनामथोवाच अविमुक्तं हि मे गृहम् ।।५७।।
नाहं देवि गमिष्यामि गच्छस्वेह वसाम्यहम् । तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ।।५८।।
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् । यस्मिन्वसति वै देवाः सर्वदेवनमस्कृतः ।।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ।।५९।।
अन्तर्धानं कलौ यति तत्पुरं तु महात्मनः । अन्तर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसते पुनः ।।६०।।

चाहिए, मेरी ओर से इसकी पूजा किसी प्रकार भी नहीं होगी। इस दुरात्मा का स्थान नष्ट करा दूँगा ।।४६–५०।। इस प्रकार का निश्चयकर दुरात्मा एवं कुटिल राजा ने कुमतिवश होकर गणेश्वर निकुम्भ का स्थान नष्ट करा दिया। अपने आवासस्थल को नष्ट–भ्रष्ट देखकर परम प्रभावशाली गणपति निकुम्भ राजा के पास आये और बोले, तुमने यतः बिना किसी अपराध के ही हमारे स्थान को नष्ट करवा दिया है, इसलिए हे नराधिप! तुम्हारी यह नगरी बिना किसी कारण के ही सूनी हो जायगी। निकुम्भ के इसी शाप के कारण प्राचीनकाल में वाराणसी पुरी सूनी हुई थी। इस प्रकार वाराणसी को शाप देकर निकुम्भ ने वहाँ पर महादेव जी को बुलाया ।।५१–५४।। देवाधिदेव महादेव जी ने उस सूनी पुरी का दैविक विभूतियों द्वारा पुनर्निर्माण किया, उसमें महान् ऐश्वर्यशाली महादेव का तथा दिव्यगुणमयी पार्वती का नित्य विहार होने लगा। अपने भवन को देखकर पार्वती जी को परम विस्मय होता था, उन्हें कुछ दिन के बाद इसमें सन्तोष नहीं मिला, तब ईशानदेव ने देवी की क्रीड़ा के लिए उनसे यह बात कही, 'देवि, मैं अपने इस सुन्दर भवन का परित्याग नहीं करूँगा, मेरा यह गृह अविमुक्त है', इस प्रकार हँसते हुए महादेव जी ने पार्वती से फिर कहा कि मेरा यह भवन अविमुक्त है। मैं तो यहाँ से कहीं अन्यत्र नहीं जाऊँगा, तुम चाहो तो यहाँ से जा सकती हो, मैं तो यहीं पर रहूँगा। यतः महादेव जी ने स्वयं अपने मुख से इसे अविमुक्त कहा था, अतः उसका अविमुक्त नाम पड़ा ।।५५–५८।। इस प्रकार वाराणसी पुरी को जिस कारणवश शाप दिया गया था और उसका अविमुक्त नाम जिस कारण से पड़ा था, वह सब मैं कह चुका। उस वाराणसी नगरी में सभी देवताओं के नमस्करणीय धर्मात्मा महादेव जी पार्वती के साथ तीनों युगों में निवास करते हैं ।।५९।। केवल कलियुग में महात्मा शंकर का वह पुर अन्तर्हित हो जाता है। उसके अन्तर्हित हो जाने पर वाराणसी पुरी पुनः वहाँ प्रतिष्ठित होती है। इस प्रकार निकुम्भ के शाप से शापित वाराणसी

एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।।६१।।
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य राज्यं तु हृतं तेन बलीयसा ।।६२।।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ।।६३।।
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन पुत्रेन बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ।।६४।।
वैरस्यान्तं महाराज्ञा तदा तेन विधित्सता । प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो गर्गश्च विश्रुतः ।।६५।।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चाऽऽत्मजः । अलर्कं प्रति राजर्षिगीतश्लोकौ पुरातनौ ।।६६।।
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । युवा रूपेण संपन्नो ह्यलर्कः काशिसत्तमः ।।
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ।।६७।।
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यमावासयामास पुरीं वाराणसीं नृपः ।।६८।।
संनतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः । सुनीथस्य तु दायादः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ।।६९।।
सुकेतुतनयश्चापि धर्मकेतुरिति श्रुतिः । धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ।।७०।।
सत्यकेतसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः । सुविभुस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततः स्मृतः ।।७१।।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः स धार्मिकः । धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ।।७२।।

पुनः प्रतिष्ठित हुई। प्राचीनकाल में नरपति दिवोदास ने राजा भद्रश्रेण्य के परम धनुर्धारी सौ पुत्रों का निधन करके उसके पुर में प्रवेश किया और परम बलशाली उसने भद्रश्रेण्य के राज्य को भी छीन लिया था। भद्रश्रेण्य का एक पुत्र दुर्दम नामक था, राजा दिवोदास ने उसे निपट बालक समझकर, उसके जीतने का कोई महत्त्व न समझकर घृणा से छोड़ दिया था ।।६०–६३।। राजा दिवोदास से दृषद्वती नामक पत्नी में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, भद्रश्रेण्य के उस बालक पुत्र ने प्रतर्दन से छीना हुआ राज्य पुनः छीन लिया। उस राजाधिराज ने इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका लिया। प्रतर्दन के वत्स और गर्ग नामक दो पुत्र कहे जाते हैं। वत्स के पुत्र अलर्क हुए, जिनके पुत्र का नाम सन्नति हुआ। राजर्षि अलर्क के लिए ये पुराने दो श्लोक गाये जाते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है। साठ सहस्र साठ सौ वर्षों तक काशिराज अलर्क युवा था, लोपामुद्रा की कृपा से उसे इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई ।।६४–६७।। एक सहस्र वर्ष के शाप के व्यतीत हो जाने पर महाबाहु राजा अलर्क ने उस क्षेमक नामक राक्षस को मारकर पुनः मनोहर वाराणसी पुरी को बसाया। सन्नति का उत्तराधिकारी सुनीथ नामक धार्मिक राजा हुआ। सुनीथ का उत्तराधिकारी सुकेतु नामक धार्मिक विचारोंवाला राजा हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु नाम से सुना जाता है। धर्मकेतु का उत्तराधिकारी महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतु का पुत्र प्रजेश्वर विभु हुआ, विभु का पुत्र सुविभु और उससे सुकुमार नामक पुत्र की उत्पत्ति कही जाती है ।।६८–७१।। सुकुमार का पुत्र परम धार्मिक धृष्टकेतु हुआ, धृष्टकेतु का उत्तराधिकारी प्रजापालक वेणुहोत्र हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र गार्ग्य नाम से विख्यात हुआ। गार्ग्य का पुत्र गर्भभूमि और

वेणुहोत्रसुतश्चापि गार्ग्यो वै नाम विश्रुतः। गार्ग्यस्य गर्भभूमिस्तु वात्स्यो वत्सस्य धीमतः ।।७३।।
ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः। विक्रान्ता बलवन्तश्च सिंहतुल्यपराक्रमाः ।।७४।।
इत्येते काश (श्य) पाः प्रोक्ता रजेरपि निबोधत। रजेः पुत्रशतान्यासन्पञ्च वीर्यवतो भुवि ।।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ।।७५।।
तदा दैवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे। दैवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ।।७६।।
आवयोर्भगवन्युद्धे विजेता को भविष्यति। ब्रूहि नः सर्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।।७७।।

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय सङ्ग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ।।७८।।
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृतिः। यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ।।७९।।
तद्देवा दानवाः सर्वे ततः श्रुत्वा रजेर्जयम्। अभ्ययुर्जयमिच्छन्तः स्तुवन्तो राजसत्तमम् ।।८०।।
ते हृष्टमनसः सर्वे राजानं देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ।।८१।।

रजिरुवाच

अहं जेष्यामि वा युद्धे देवाञ्शक्रपुरोगमान्। इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि संयुगे ।।८२।।

बुद्धिमान् वत्स का पुत्र वात्स्य हुआ। इन दोनों राजाओं के पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णोंवाले हुए, जो परम उत्साही, बलशाली एवं सिंह के समान पराक्रमी थे। काशी के राजाओं का वर्णन कर चुका, अब रजि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। महाराज रजि के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पृथ्वी में परम बलवान् विख्यात थे। वे राजेय नाम से विख्यात थे, इन्द्र भी उनके क्षात्रबल से भय खाते थे ।।७२–७५।। उस समय देवताओं और राक्षसों में परम दारुण युद्ध मचा हुआ था, देवता और असुर दोनों दलवालों ने पितामह ब्रह्मा से पूछा, भगवन्! हम दोनों के वर्गों के इस घमासान युद्ध में कौन वर्ग विजयी होगा। समस्त लोकों के स्वामिन्! इस बात को हम लोग जानना चाहते हैं, बतलाइये ।।७६–७७।।

ब्रह्मा ने कहा–जिन लोगों के लिए महान् पराक्रमशाली महाराज रजि संग्राम भूमि में हथियार धारण करेंगे, वे तीन लोकों को जीत सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। जहाँ पर महाराज रजि हैं वहीं लक्ष्मी है, जहाँ पर लक्ष्मी का निवास है, वहीं पर वास्तविक धैर्य और शान्ति है, जहाँ धैर्य का निवास है, वहीं पर धर्म रहता है, और जहाँ पर धर्म रहता है, वहीं वास्तविक विजय है।' देवताओं और दानवों ने रजि द्वारा जय की बातें सुनकर अपने-अपने पक्ष की विजय आकांक्षा से राजाधिराज रजि की प्रार्थना की। अत्यन्त प्रसन्न मन से देवताओं और दानवों ने राजा रजि के पास जाकर यह निवेदन किया कि 'तुम हमारी विजय के लिए सुदृढ़ धनुष धारण करो' ।।७८–८१।।

रजि बोले–हम तुम सब को युद्ध में पराजित कर देंगे, इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों को भी हम पराजित कर देंगे, किन्तु हमीं धर्मात्मा इन्द्र होंगे, इसी शर्त पर हम युद्ध में धनुष धारण करेंगे ।।८२।।

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेया देवनोदिते ।।८३।।
स तयेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवैरपि निमन्त्रितः ।।८४।।
जघान दानवान्सर्वान्समक्षं वज्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ।।८५।।
निहत्य दानवान्सर्वानाजहार रजिः प्रभुः। तं तथा तु रजिं तत्र देवैः सह शतक्रतुः ।।८६।।
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि राजन्देवानां सर्वेषां नात्र संशयः।।
यस्याहमिन्द्र पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि शत्रुहन् ।।८७।।
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया। तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ।।८८।।
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ। दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारं तनया रजेः ।।८९।।
तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः। समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।।९०।।
ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः। हतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हतभागो बृहस्पतिम् ।।९१।।
बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे। ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितस्ततः ।।९२।।

दानवों ने कहा–हम लोगों के इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हीं के लिए विजय की आकांक्षा हम सबों को है, पर हे राजन्! देवता द्वारा प्रेरित इस प्रतिज्ञा से हम सभी सहमत हैं। दानवों की यह बात सुनकर महाराज रजि स्वीकारोक्ति दे ही रहे थे कि देवतागण भी बोल उठे। उन लोगों ने भी यह निमंत्रण दिया कि आप दानवों को पराजित कर हम सबके इन्द्र हो सकते हैं ।।८३-८४।। देवताओं के इस निमंत्रण को स्वीकार कर रजि ने वज्रपाणि देवराज इन्द्र के देखते-देखते सभी दानवों का संहार कर डाला, इस प्रकार उस जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली महाराज रजि ने देवताओं की विनष्ट राजलक्ष्मी का समस्त दानवों का संहार कर उद्धार किया। उस युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले महाराज रजि से देवताओं समेत शतक्रतु इन्द्र बोले, हे महाराज! मैं आपका पुत्र हूँ। पुनः इन्द्र ने कहा, राजन्! आप समस्त देवताओं के इन्द्र हैं, इसमें सन्देह नहीं। हे शत्रुविनाशक! मैं इन्द्र आपके पुत्र के रूप में विख्यात हूँगा ।।८५-८७।। शक्र की ऐसी बातें सुनकर और उसकी माया से ठगे जाकर महराज रजि ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छी बात है। उस देवतुल्य महाराज रजि के स्वर्गगामी हो जाने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र से उनका सम्पूर्ण उत्तराधिकार छीन लिया। इस प्रकार इन्द्र के स्थान पर महाराज रजि के सौ पुत्रों ने अपना अधिकार जमा लिया, और अनेक प्रकार से एक ही साथ सारे स्वर्ग लोक को आक्रान्त कर लिया ।।८८-९०।। बहुत दिवस बीत जाने पर महाबलशाली हतभाग्य इन्द्र राज्य छीन लिये जाने पर बृहस्पति के समीप गये और बोले, ब्रह्मर्षि! आप बैर के फल जितना बड़ा पुरोडाश (चरु) का अंश मेरे लिये बनाइये, जिससे टिक सकूँ, उसी के तेज से मेरी सन्तुष्टि हो सकेगी। ब्रह्मन्! क्योंकि इस समय मेरी स्थिति बहुत शोचनीय हो गयी है, मैं बहुत दुर्बल हो गया हूँ, मेरा मन नहीं लगता, मेरा राज्य-पाट छीन लिया गया है,

ब्रह्मन्कृशोऽयं विमना हृतराज्यो हृताशनः। हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे ।।९३।।

बृहस्पतिरुवाच

यद्येव चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि। नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थं नाकर्तव्यं ममानघ ।।९४।।
प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वद्धितार्थं महाद्युते। तथा भागं च राज्यं च अचिरात्प्रतिपत्स्यसे ।।९५।।
तथा शक्र गमिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं मनः। ततः कर्म चकारास्य तेजः संवर्धनं महत् ।।९६।।
तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्बुद्धिसत्तमः। ते यदा ससुता मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः ।।९७।।
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः। ततो लेभे सुरैश्वर्यमैन्द्रस्थानं तथोत्तमम् ।।९८।।
हत्वा रजिसुतान्सर्वान्कामक्रोधपरायणान्। य इदं पावनं स्थानं प्रतिष्ठानं शतक्रतोः ।।
शृणुयाद्वा रजेर्वाऽपि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ।।९९।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते रजियुद्धं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।।९२।।

भोजन भी छीन लिया गया है। मेरी सारी शक्ति नष्ट हो गयी है, शरीर भी दुर्बल हो गया है, मेरी बुद्धि भी मारी गयी है, रजि के पुत्रों से हमारी रक्षा कीजिये ।।९१–९३।।

बृहस्पति ने कहा–शक्र! यदि तुम पहले ही मुझसे अपनी स्थिति बतलाये होते तो तुम्हारी यह स्थिति न होती, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न होता, निष्पाप! तुम्हारे कल्याण के लिए मैं कुछ भी अकर्त्तव्य नहीं समझता अर्थात् तुम्हारे लिए सब कर सकता हूँ। हे महाकान्तिशालिन्! देवराज! तुम्हारे लिए मैं वही प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारा अंश और राज्य तुम्हें पुनः शीघ्र ही वापस मिल जाय ।।९४–९५।। हे शक्र! मैं वैसा करने जा रहा हूँ, तुम मन की विकलता छोड़ दो। इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर बृहस्पति ने इन्द्र की प्रताप–वृद्धि के लिए महान् अनुष्ठान किया। परम बुद्धिमान् बृहस्पति ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को मोहित कर दिया। जिससे उन सब की मति मारी गयी, पुत्रों के समेत वे विधर्म में निरत हो गये, परिणामतः रोगग्रस्त एवं उन्मत्त–से हो गये। ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे, सबके पराक्रम एवं बल का विनाश हो गया। ऐसी दशा में, जब कि वे सब–के–सब काम क्रोध मोह में लिप्त हो गये, इन्द्र ने उन रजि पुत्रों का संहार कर डाला, और अपना उत्तम देवताओं का स्वामित्व पद पुनः प्राप्त किया। जो व्यक्ति शतक्रतु इन्द्र की पुनः इन्द्र पद प्राप्त का एवं महाराज रजि का यह परम पवित्र वृत्तान्त पढ़ता या सुनता है, वह कभी दुर्गति में नहीं पड़ता ।।९६–९९।।

श्री वायुमहापुराण में रजियुद्ध नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९२।।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मरुत्तन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना। किंवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुत्तकन्यका: ।।१।।

सूत उवाच

आहवन्तं मरुत्सोममन्नकामः प्रजेश्वरम्। मासि मासि महातेजाः षष्टिसंवत्सरान्नृपः ।।२।।
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः। अक्षय्यान्नं ददुः प्रीताः सर्वकामपरिच्छदम् ।।३।।
अन्नं तस्य सकृत्पक्वमहोरात्रे न क्षीयते। कोटिशो दीयमानं च सूर्यस्योदयनादपि ।।४।।
मित्रज्योतिस्तु कन्यायां मरुत्तस्य च धीमतः। तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिनः ।।५।।
संन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्यं समुपस्थिताः। यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ते गताः ।।६।।
अनपायस्ततो जातस्तदा धर्मप्रदत्तवान् (?)। क्षत्रधर्मस्ततो जातः प्रतिपक्षो महातपाः ।।७।।
प्रतिपक्षसुतश्चापि संजयो नाम विश्रुतः। संजयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य जग्मिवान् ।।८।।

अध्याय ९३

चन्द्रवंश वर्णन

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! महान् पराक्रमी मरुत्त ने राजा को किस प्रकार अपनी कन्या प्रदान की थी? और मरुत्त की कन्या से उत्पन्न होनेवाले वे महान् बलशाली पुत्र कितने पराक्रमी हुए ।।१।।

सूत बोले–महान् तेजस्वी राजा ने अन्न की कामना से साठ वर्षों तक प्रत्येक मास में प्रजापति मरुत् एवं सोम का यज्ञ किया था। उसके उस मरुत्सोम यज्ञ से परम प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न प्रदान किये, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले थे ।।२–३।। एक बार का पकाया गया उसका अन्न दिन-रात भर में भी नष्ट नहीं होता था। और सूर्योदय से करोड़ों बार दिये जाने पर भी वह नहीं चुकता था। परम बुद्धिमान् मरुत्त की कन्या में मित्रज्योति का जन्म हुआ। उससे महान् पराक्रमी मोक्षदर्शी, धर्मज्ञ पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो गृहस्थाश्रम धर्म का परित्यागकर वैराग्य पथ के अनुगामी हुए, और अन्त में संन्यासियों का धर्म अपनाकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए ।।४–६।। तत्पश्चात् अनपाय की उत्पत्ति हुई, जिससे धर्मप्रदत्तवान् (?) की उत्पत्ति हुई, उससे क्षत्रधर्म की उत्पत्ति हुई। क्षत्रधर्म से महान् तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई। प्रतिपक्ष के पुत्र संजय नाम से विख्यात हुए। संजय के पुत्र जय हुए और जय से विजय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। विजय का पुत्र भी जय नाम से विख्यात हुआ, जय का पुत्र हर्यद्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ। हर्यद्वत के उपरान्त परम

विजयस्य जयः पुत्रस्तस्य हर्यद्वतः स्मृतः । हर्यद्वतस्ततो राजा सहदेवः प्रतापवान् ।।९।।
सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुतः । अदीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ संकृतिः ।।१०।।
संकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशाः । इत्येते क्षत्रधर्माणो नहुषस्य निबोधत ।।११।।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः । उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।।१२।।
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्च तु द्वयः (?) । यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः ।।१३।।
काकुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे पत्नीं यतिस्तदा । संयातिर्मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ।।१४।।
तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययातिः पृथिवीपतिः । देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप ह ।।१५।।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः । अजीजनन्महावीर्यान्सुतान्देवसुतोपमान् ।।१६।।
द्रुह्युं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी अजीजनन्महावीर्यान्सुतान्देवसुतोपमान् ।।१७।।
रथं तस्मै ददौ रुद्रः प्रीतः परमभास्वरम् । असङ्गं काञ्चनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ।।१८।।
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहन । स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम् ।।१९।।
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानवैः । पौरवाणां नृपाणां च सर्वेषां सोऽभवद्रथः ।।२०।।

प्रतापशाली राजा सहदेव हुए। सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अदीन नाम से प्रसिद्ध हुए। अदीन के पुत्र जयत्सेन हुए, जयत्सेन के पुत्र संकृति हुए। संकृति के पुत्र महान् यशस्वी एवं धर्मात्मा राजा कृतधर्मा हुए। ये सब राजागण क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाववाले थे। अब इसके उपरान्त राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनिये ।।७–११।। राजा नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छह पुत्र उत्पन्न हुए, वे महान् तेजस्वी नहुष पुत्र पितरों की कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे। उनके नाम थे यति, ययाति, संयाति, आयाति, पञ्च (?), द्वय (?)। इन सब पुत्रों में यति सबसे बड़े थे, ययाति उनसे छोटे थे। यति ने राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ को पत्नी रूप में वरण किया था। संयाति ने मोक्ष मार्ग का आश्रय लेकर मुनियों के समान ब्रह्म पद की प्राप्ति की ।।१२–१४।। इन पाँचों भाइयों में ययाति पृथ्वीपति (राजा) हुआ। उसने शुक्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया। असुरराज वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नामक कन्या को भी उसने पत्नी रूप में वरण किया था। देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार राजा ययाति ने इन देवताओं के समान सुन्दर एवं पराक्रमशाली, महाबलवान् पुत्रों को उत्पन्न किया ।।१५–१७।। महादेव जी ने प्रसन्न होकर उस राजा ययाति को परम सुन्दर, चमकनेवाला सुवर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया था, इसके अतिरिक्त दो कभी नष्ट न होनेवाले तरकश भी दिये थे। उस सुन्दर रथ में मन के समान वेगशाली घोड़े जुते हुए थे। उसी रथ पर चढ़कर शुक्र की पुत्री देवयानी को साथ लेकर राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीता था। वह राजा ययाति युद्धभूमि में देवताओं, दानवों, मनुष्यों–सबसे दुर्दमनीय था, समस्त पुरुवंशी राजाओं में महादेव जी का दिया गया वह

यावत्सुदेशप्रभवः कौरवो जनमेजयः। कुरोः पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारिक्षितस्य ह ।।
जगाम स रथो नाशं शापाद्गार्ग्यस्य धीमतः ।।२१।।
गार्ग्यस्य हि सुतं बालः स राजा जनमेजयः। दुर्बुद्धिर्हिंसयामास लोहगन्धं नराधिपम् ।।२२।।
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः। पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ।।२३।।
ततः स दुःखसंतप्तो नालभत्संविदं क्वचित्। शशाप हेतुकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा ।।२४।।
इन्द्रोतो नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः। याजयामास चेन्द्रोतः शौनको जनमेजयम् ।।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ।।२५।।
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्याऽऽवसथमेत्य ह। *स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ।।२६।।
ततः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ।।२७।।
स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः। पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ।।२८।।
जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः। काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।।२९।।

महान् रथ व्यवहार में लाया जाता था। जब कुरुवंश के राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासनारूढ़ हुए, उस समय भी वह सुन्दर रथ उनके अधीन था। बुद्धिमान् गार्ग्य के शाप से वह रथ नष्ट हुआ ।।१८-२१।। राजा जनमेजय ने कुबुद्धि में आकर गार्ग्य के पुत्र का संहार कर दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने नरपति जममेजय को लोहगंध (लोहे के समान दुर्गन्धवाला) होने का अभिशाप दे दिया था ।।२२।। राजर्षि जनमेजय लोहगंध होने पर इधर-उधर बहुत दौड़े पर कहीं उन्हें शान्ति नहीं मिली, ग्राम-निवासियों ने भी उनका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार अत्यन्त दुःखित हो जाने पर भी उनको जब कहीं शान्ति का स्थान नहीं मिल सका तो अनन्योपाय एवं परम दुःखी होकर शाप देनेवाले ऋषि की शरण में गये ।।२३-२४।। पर उदार बुद्धिवाले शुनक गोत्रोत्पन्न इन्द्रोत नामक परम विख्यात मुनि ने राजा जनमेजय को इस घोर पाप से छुड़ाने के लिए यज्ञ कराया। इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ इन्द्रोत् ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कराया, तब उन्हीं के निवास में राजा का लोहगन्धत्व दूर हुआ।[1] वह दिव्य रथ उसके अधिकार से (?) चेदि देशाधिपति राजा वसु के अधीन हुआ। वसु से इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर राजा बृहद्रथ को दिया। बृहद्रथ को मारकर उसे जरासंध ने छीना, इसके उपरान्त जरासंध से उस दिव्य रथ को भीम ने प्राप्त किया। कौरवनन्दन भीम ने प्रसन्नतापूर्वक उस रथ को वासुदेव को समर्पित किया ।।२५-२७।। नहुष पुत्र राजर्षि ययाति जब बहुत वृद्ध हो गये तब अपने सबसे बड़े और योग्य पुत्र यदु से यह बात बोले, पुत्र! यदु! शुक्राचार्य के शाप के कारण वृद्धता, चमड़े की सिकुड़न और पलितादि ने मुझे चारों ओर

---

* अत्रत्यग्रन्थस्य न पूर्वापरसंगतिः।

[1] यहाँ पर ग्रन्थ का मूल पाठ भ्रष्ट मालूम पड़ता है। पूर्व कथा से पर कथा की कोई संगति नहीं मिलती। जनमेजय भीम के बाद हुए थे। फिर जनमेजय के बाद भीम को रथ की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव हुई? -अनुवादक।

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। जरां मे प्रतिगृह्णीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह ।।३०।।
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता। सा च व्यायामसाध्या वै न ग्रहीष्यामि ते जराम् ।।३१।।
जराया बहवो दोषा पानभोजनकारिणः। तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे ।।३२।।
सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृतः। वलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलाकृतिः ।।३३।।
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने। महोपभीतिभिश्चैव तां जरां नाभिकामये ।।३४।।
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिगृह्णन्तु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ।।३५।।
स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वितः। उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं तं गर्हयन्सुतम् ।।३६।।
आश्रमः कश्च वाऽन्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव। मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदात्थ नवदेशिक ।।३७।।
एवमुक्त्वा यदुं राजा शशापैनं स मन्युमान्। यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।।३८।।
तस्मान्न राजभाग्मूढ प्रजा ते वै भविष्यति। तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।।३९।।

से घेर लिया, किन्तु मैं अभी तक यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका। तुम मेरी इस वृद्धता और पाप को ग्रहण कर लो।' ययाति की ऐसी बातें सुनकर यदु ने उत्तर दिया, तात! मैंने अनन्तकाल तक ब्राह्मण को भिक्षादान करने की प्रतिज्ञा ठान ली है, वह भिक्षा विशेष परिश्रम से साध्य होगी अतः तुम्हारी वृद्धता ग्रहण करने में मैं अशक्त हूँ ।।२८-३१।। राजन्! इस वृद्धता में भोजन पान आदि के बहुत बड़े दोष हो जाते हैं, अर्थात् बुढ़ापे में ठीक से अन्न नहीं पचता, पानी आदि भी बहुत सवाचकर (जाँचकर) पीना पड़ता है, खान-पान के थोड़े से ही असंयम से बड़ा कष्ट मिलता है। इसलिए भी आपकी इस वृद्धता को अंगीकार करने का उत्साह मुझमें नहीं हो रहा है। श्वेत बाल धारण करनेवालों को यह वृद्धता एकदम शिथिल कर देती है। शरीर में सिकुड़न आ जाती है, देखने में चेहरा भद्दा हो जाता है, प्रकृति दुर्बल हो जाती है, कोई कार्य करने की भी शक्ति नहीं रह जाती, यौवन के सुखों से वंचित एवं पराभूत होना पड़ता है। इस प्रकार की अनेक महान् विपत्तियों से घिरी हुई उस वृद्धता को मैं अंगीकार नहीं करूँगा ।।३२-३४।। नृपति! आपके अन्य पुत्र भी हैं, जो मुझसे भी अधिक प्रिय हैं, हे धर्मज्ञ! आप उन्हीं से इसका प्रस्ताव कीजिये, अन्य पुत्रों से ही इसकी याचना करना उचित है।' यदु के ऐसा कहने पर बोलनेवालों में प्रवीण राजा ययाति परम क्रुद्ध होकर अपने बड़े पुत्र यदु की भर्त्सना करते हुए बोले। दुर्बुद्धे! तुम्हारा कौन-सा आश्रम है? गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त क्या तुम्हारा कोई अन्य आश्रम धर्म है? तुम्हारे धर्म की विधि कौन-सी है? नये ढंग से उपदेश करनेवाले! कुमति! मेरा निरादर करके जिस धर्म का तुम पालन कर रहे हो, वह कौन-सा धर्म, आश्रम या विधि है ।।३५-३७।। इस प्रकार की क्रोधपूर्ण बातें कर परम क्रोध में भरे हुए राजा ययाति ने यदु को शाप दे दिया। 'जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी यौवन अवस्था नहीं दे रहे हो, सो हे मूढ़, तुम्हारी प्रजा और तुम कोई भी हमारे राज्य के उत्तराधिकारी न होगे।' इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने तुर्वसु नामक अपने पुत्र से कहा, तुर्वसु! मेरी वृद्धावस्था और मेरे पाप को तुम अंगीकार कर लो, पुत्र! तुम्हारी यौवनावस्था

(*यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक। पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम्।।
स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ।।४०।।

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्। जराया बहवो दोषाः पानभोजनकारिणः।।
तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे ।।४१।।

ययातिरुवाच

यत्स्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि। तत्समात्प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ।।४२।।
असंकीर्णा च धर्मेण प्रतिलोमवरेषु च। पिशिताशिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि ।।४३।।
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा। पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यसि न संशयः ।।४४।।

सूत उवाच

एवं तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः। शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ।।४५।।
द्रुह्यु त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम्। जरां वर्षसहस्रं वै यौवनं स्वं ददस्वं मे ।।४६।।
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम्। स्वं चाऽऽदास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ।।४७।।

से मैं विविध प्रकार के भोगों का उपभोग करना चाहता हूँ। एक सहस्र वर्ष बीतने पर तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूँगा, और निश्चय ही उस समय मैं अपने पाप और वृद्धावस्था को ले लूँगा ।।३८-४०।।

तुर्वसु ने कहा-तात! ऐच्छिक भोगों को नष्ट करनेवाली, विषयादि सुखों से वंचित करनेवाली तुम्हारी वृद्धता को मैं पसन्द नहीं कर सकता। राजेन्द्र! इस वृद्धता से तो भोजन पानादि में भी बड़ी अड़चनें पड़ती हैं। इसलिए उस वृद्धता के ग्रहण करने का उत्साह मुझमें नहीं है ।।४१।।

ययाति बोले-तुर्वसो! मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मेरे लिए अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो, अतः तुम्हारी सन्ततियाँ नाश को प्राप्त होंगी। प्रतिलोम रीति से वे संकरवर्ण की हो जायँगी। धर्म से च्युत मांसाहारी एवं अन्य दुराचारों में निरत रहनेवाली प्रजाओं के तुम राजा होगे। गुरु की स्त्री के साथ गमन करनेवाले, नीच योनियों में जन्म धारण करनेवाले पशु के समान अविवेकशील म्लेच्छों के देश के तुम राजा होगे-इसमें सन्देह नहीं है ।।४२-४४।।

सूत बोले-ऋषिवृन्द! राजा ययाति ने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देने के उपरान्त शर्मिष्ठा के बड़े पुत्र द्रुह्यु से यह बात कही, प्रिय पुत्र द्रुह्यु! वर्ण एवं रूप के विनाशक इस मेरी वृद्धता को तुम स्वीकार कर लो, एक सहस्र वर्ष के लिए अपनी यौवनावस्था मुझे प्रदान कर दो। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर तुम्हारी यौवनावस्था मैं तुम्हें वापस कर दूँगा और उसी समय समस्त पापकर्मों समेत अपनी वृद्धता तुमसे वापस ले लूँगा ।।४५-४७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति।

द्रुह्यु उवाच

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् । न सङ्गश्चास्य भवति न जरां तेन कामये ।।४८।।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तत्समाद्द्रुह्यु प्रियः कामो न ते संपत्स्यते क्वचित् ।।४९।।
नौप्लवोत्तरसंचारस्तत्र नित्यं भविष्यति । अराजभ्राजवंशस्त्वं तत्र नित्यं भविष्यसि ।।५०।।
अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । एवं वर्षसहस्त्रं तु चरेयं यौवनेन ते ।।५१।।

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरहं तात जरया ह्यशुचिः सदा । न भजामि महाराज तां जरां नाभिकामये ।।५२।।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्ते प्रतिपत्स्यते ।।५३।।
प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव । अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येव भविष्यसि ।।५४।।
पुरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।।५५।।

द्रुह्यु ने कहा–पिता जी! वृद्ध पुरुष न तो हाथी पर चढ़ सकता है, न घुड़सवारी का आनन्द लूट सकता है, न अच्छे सुस्वादु अन्न का ही भोग कर सकता है, न सुन्दरी स्त्री ही उसके लिए आनन्ददायिनी हो सकती है। कोई वृद्ध पुरुष के पास बैठना भी नहीं चाहता, इन कारणों से मैं तुम्हारी इस वृद्धता को पसन्द नहीं करता ।।४८।।

ययाति बोले–द्रुह्यु! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी अवस्था मुझे नहीं दे रहे हो। अतः तुम्हारा मनचाहा कभी नहीं और कहीं नहीं सम्पन्न होगा, जिस देश में लोग सर्वदा नाव और छोटी-छोटी नौकाओं तथा घन्नइयों द्वारा जा सकते हैं, जहाँ पर राजवंश का सर्वथा अभाव तथा सुन्दरता की नितान्त कमी रहेगी, वहाँ पर तुम्हें सर्वदा निवास करना पड़ेगा।' द्रुह्यु को इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने अनु से कहा, अनु! मेरी वृद्धावस्था तथा पापकर्मों को तुम ले लो, इस प्रकार एक सहस्त्र वर्ष तक तुम्हारी यौवनावस्था से मैं विषयों का उपभोग करना चाहता हूँ ।।४९-५१।।

अनु ने कहा–हे तात! आप बहुत वृद्ध हो गये हैं, मैं अभी बालक हूँ। आपकी वृद्धावस्था से मैं वृद्ध हो जाऊँगा, जिससे सर्वदा अपवित्र बना रहूँगा। हे महाराज! इसलिए मैं उस वृद्धावस्था को ग्रहण नहीं कर सकता, वह हमें पसन्द नहीं है ।।५२।।

ययाति बोले–तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी यौवनावस्था नहीं दे रहे हो, तो वृद्धावस्था का जो दोष तुमने बतलाया है, वह सब तुम्हें प्राप्त होगा, तुम्हारी प्रजाएँ यौवनावस्था को प्राप्त करते ही विनष्ट हो जायँगी। तुम भी अग्नि में गिरकर भस्म हो जाओगे।' अनु को ऐसा शाप देने के उपरान्त महाराज ययाति अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु से बोले, प्रिय पुत्र पुरु! तुम मेरे पापों के साथ मेरी इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो, मेरे अंगों में सिकुड़न आ गयी है, केश सफेद हो गये हैं, चारों ओर से बुढ़ापे ने आक्रान्त कर लिया है, किन्तु इतने पर भी मैं शुक्राचार्य के शाप के

काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने। कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव ।।५६।।
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम्। स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ।।५७।।

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पुत्रः पितरमञ्जसा। यथाऽनुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ।।५८।।
प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह। गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान् ।।५९।।
जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव। यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत् ।।६०।।

ययातिरुवाच

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते प्रीतश्चेदं ददामि ते। सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति+ ।।६१।।

सूत उवाच

पुरोरनुमतो राजा ययातिः स्वां जरां ततः। संक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ।।६२।।
यौवनेनाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः। प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान्स्वकान् ।।६३।।
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम्। धर्माविरोधाद्राजेन्द्रो यथाऽर्हति स एव हि ।।६४।।

कारण यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका हूँ, तुम्हारी यौवनावस्था प्राप्तकर मैं कुछ समय तक और विषयों का सेवन करना चाहता हूँ, एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर मैं तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूँगा, और उसी समय अपने समस्त पाप कर्मों समेत वृद्धता को तुमसे वापस कर लूँगा ।।५३–५७।।

सूत ने कहा–पिता ययाति के इस प्रकार कहने पर पुरु ने तुरन्त उत्तर दिया। तात! आपकी जैसी आज्ञा है, मैं वैसा ही करूँगा। राजन्! आपके पापकर्मों के साथ इस वृद्धता को मैं सहन करने के लिए तैयार हूँ, मेरी यौवनावस्था ग्रहणकर आप यथेप्सित विषय-भोगों का सेवन कर सकते हैं। मैं आपके स्वरूप और अवस्था–दोनों को धारणकर, स्वयं वृद्धावस्था में रहकर अपनी यौवनावस्था आपको समर्पित करूँगा और आप ही की तरह सब कार्य करूँगा ।।५८–६०।।

ययाति ने कहा–प्रिय पुरु! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें यह आशीर्वाद दे रहा हूँ कि तुम्हारे राज्य में प्रजाओं की सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी, वे सर्वदा समृद्ध रहेंगी ।।६१।।

सूत बोले–इस प्रकार पुरु की अनुमति प्राप्त हो जाने पर नहुष पुत्र नरश्रेठ महाराज ययाति ने अपनी वृद्धावस्था को शुक्राचार्य की कृपा से पुरु में सन्निविष्ट कर पुरु की यौवनावस्था को स्वयं ग्रहण किया और परम प्रसन्न होकर उस यौवनावस्था द्वारा अनेक विषय-भोगों का उपभोग किया। राजाधिराज ययाति ने पुत्र की यौवनावस्था द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार, उत्साह के अनुसार, समय के अनुसार, अधिकाधिक सुख-प्राप्ति के उद्देश्य से विषय-भोगों का सेवन किया, किन्तु ऐसा कोई आचरण नहीं किया, जिससे धर्म की मर्यादा नष्ट हो ।।६२–६४।। उसने यज्ञों द्वारा

+ अत्राध्यायसमाप्तिः ख. पुस्तके।

देवानतर्पयद्यज्ञैः पितृश्राद्धैस्तथैव च। दीनांश्चानुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ।।६५।।
अतिथीनन्नपानैश्च वैश्यांश्च परिपालनैः। आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च ।।६६।।
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन्। ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ।।६७।।
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः। अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ।।६८।।
स मार्गमाणः कामानामन्तदोषनिदर्शनात्। विश्वाच्या सहितो रेमे वैभ्राजे नन्दने वने ।।६९।।
अपश्यत्स यदा तां वै वर्धमानां नृपस्तदा। गत्वा पुरोः सकाशं वै स्वं जरां प्रत्यपद्यत ।।७०।।
स संप्राप्य तु तान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः। कालं वर्षसहस्रं वै सस्मार मनुजाधिपः ।।७१।।
परिसंख्याय कालं च कलाकाष्ठास्तथैव च। पूर्णं मत्वा ततः कालं पुरुं पुत्रमुवाच ह ।।७२।।
यथासुखं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम। सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ।।७३।।
पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाण त्वं स्वयौवनम्। राज्यं च त्वं गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ।।७४।।
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नहुषात्मजः। यौवनं प्रतिपेदे च पुरुः स्वं पुनरात्मनः ।।७५।।
अभिषेक्तुकामं च नृपं पुरुं पुत्रं कनीयसम्। ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ।।७६।।

देवताओं को सन्तुष्ट किया, श्राद्धों द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया, अनुग्रह द्वारा दीनों, गरीबों का हितचिन्तन किया, मनचाहे पदार्थों की पूर्ति से विद्वान् ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। अन्नपानादि द्वारा अतिथियों का समुचित सत्कार किया, व्यापार आदि में उपयुक्त सहायता देकर वैश्यों को सन्तुष्ट किया। अपनी कृपा एवं दया से शूद्रों को प्रसन्न किया, कड़े अनुशासन एवं दण्ड की व्यवस्था करके चारों को शान्त किया। इस प्रकार दूसरे इन्द्र की भाँति उस महाराज ययाति ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजाओं का पालन किया ।।६५–६७।। सिंह के समान विक्रमशाली, युवावस्था-सम्पन्न राजा ययाति ने धर्म की मर्यादा की रक्षा करते हुए विषयों का सेवन किया, उत्तम सुख का अनुभव किया। वैभ्राज और नन्दन वन में विश्वाची के साथ उसने काम क्रीड़ा की, अन्ततः कामादि विषयों के अन्त में दुःख एवं दोष देखकर उसे विरक्ति हुई, उस समय जब उसे अपनी इस यौवनावस्था का स्मरण हुआ, जो बहुत बढ़ चुकी थी। अर्थात् जिसकी अवधि पूरी हो रही थी तब वह पुरु के पास आया और अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की ।।६८–७०।। यौवनावस्था में अनुभव किये गये आनन्दों एवं विषयों से उसे तृप्ति तो अवश्य हुई थी, किन्तु खेद भी हुआ। सुखों का अनुभव करते समय नरपति ययाति को जब एक सहस्र वर्ष के समय का स्मरण हुआ तो उसने घटी पला तक की गणना की और जब देखा कि सचमुच वह अवधि समाप्त हो गयी है तो पुत्र पुरु से कहा, शत्रुओं को वश में करनेवाले! मैंने अपने मन और उत्साह भर इस एक सहस्र वर्ष में तुम्हारी यौवनावस्था लेकर विषयों का सेवन किया ।।७१–७३।। प्रिय पुरु! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। बेटा! आओ, और अपनी यौवनावस्था ग्रहण करो, लो, इस राज्य को भी ग्रहण करो, तुम्हीं हमारे एकमात्र शुभचिन्तक पुत्र हो।' इस प्रकार नहुषपुत्र राजा ययाति ने पुनः अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की और पुरु ने पुनः अपनी यौवनावस्था ग्रहण की ।।७४–७५।। राज्य पद पर सबसे छोटे पुत्र पुरु का अभिषेक करने की जब राजा ययाति ने इच्छा की तब ब्राह्मणादि

कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्या सुतं प्रभो । श्रेष्ठं यदुमतिक्रम्य पुरो राज्यं प्रदास्यसि ।।७७।।
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः । शर्मिष्ठाया सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पुरुरेव च ।।७८।।
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति । धर्मतो बोधयामि त्वां धर्मं समनुपालय ।।७९।।

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः । ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं वै कथंचन ।।८०।।
मातापित्रोर्वचनकृद्धितपुत्रः प्रशस्यते । मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।।८१।।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः । स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु ।।८२।।
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि च । द्रुह्येण चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ।।८३।।
पुरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः । कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम ।।
सर्वकामः सर्वकृतः पुरुणा पुत्रकारिणा ।।८४।।
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् । पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेत स राजा ते महामते ।।८५।।
भवतोऽनुमतोऽप्येवं पुरू राज्येऽभिषिच्यताम् । यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ।।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ।।८६।।

चारों वर्णों के लोग उससे यह बात बोले–'प्रभुवर! आप शुक्राचार्य के नाती, देवयानी के पुत्र और अपने सबसे बड़े सुपुत्र यदु को छोड़कर पुरु को क्यों राज्य प्रदान कर रहे हैं ? यदु आपके सबसे बड़े पुत्र हैं, उनसे छोटे तुर्वसु हैं, शर्मिष्ठा के पुत्रों में भी सबसे बड़े द्रुह्यु हैं, उनसे छोटे अनु हैं, तब पुरु हैं, तो फिर यह कैसा हो सकता है कि ज्येष्ठ को छोड़कर सबसे छोटे को राज्य प्रदान किया जाय। मैं धर्म की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ, आप राजा हैं, आपको धर्म का पालन करना चाहिए ।।७६–७९।।

ययाति ने कहा–ब्राह्मण प्रभृति वर्णों में उत्पन्न सभी को यह मेरी बात सुननी चाहिए कि मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को किसी प्रकार भी अपना राज्य नहीं देना चाहता। माता और पिता की आज्ञा पालन करनेवाला ही सच्चा पुत्र कहा जाता है, वही प्रशंसायोग्य पुत्र है, मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है। जो पुत्र पिता की आज्ञा के प्रतिकूल चलनेवाला होता है, उस पुत्र को सज्जन लोग नहीं पसन्द करते। पिता औा माता का अनुगमन करनेवाला ही सच्चा पुत्र है ।।८०–८२।। यदु ने मेरी अवज्ञा की है, इसी प्रकार तुर्वसु, द्रह्यु और अनु ने भी मेरी आज्ञा न मानकर अपमान किया है। पुरु ने मेरी आज्ञा ही केवल नहीं मानी है; प्रत्युत विशेष सम्मान भी किया है, वही सबसे छोटा होते हुए भी हमारे राज्य का उत्तराधिकारी है, क्योंकि उसी ने हमारी वृद्धावस्था को इतने दिनों तक वहन किया है। एक योग्य पुत्र की भाँति पुरु ने मेरी सभी अभिलाषाओं और आज्ञाओं की पूर्ति की है, वही हमारा सब–कुछ करने–धरनेवाला है ।।८३–८४।। स्वयं शुक्राचार्य जी ने ऐसा वरदान दे रखा है कि 'हे महामतिमन्। जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी एवं अनुगामी होगा, वही राजा होगा। मैं समझता हूँ, आप लोगों की भी अनुमति इस कार्य में होगी। पुरु का राज्याभिषेक करते जाइये।

अर्हः पुरुरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत्तव । वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ।।८७।।
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा । अभिषिच्य ततः पूरुं स्वराज्ये सुतमात्मनः ।।८८।।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् । दक्षिणापरतो राजा यदुं श्रेष्ठं न्यवेशयत् ।।८९।।
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च तावुभौ । सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ।।
व्यभजत्पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ।।९०।।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना । यथाप्रदेशं धर्मज्ञैर्धर्मेण प्रतिपाल्यते ।।९१।।
एवं विभज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा । पुत्रसंक्रमितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ।।९२।।
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यं चैव सुतेषु तु । प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ।।९३।।
अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना । योऽभिप्रत्याहरन्कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।।९४।।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।९५।।
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ।।९६।।

जो पुत्र गुणवान् है, माता और पिता के कल्याण में सर्वदा निरत रहनेवाला है, वह सबसे छोटा होकर भी कल्याण भाजन है और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है ।।८५-८६।। इस राज्य के योग्य पुरु ही है, जो तुम्हारा हितकारी है, प्रिय है, वही हम सबों को भी प्रिय है। ऐसा कहते हुए ब्राह्मणादिको ने राजा ययाति के मत का अनुमोदन किया, शुक्राचार्य के वरदान के कारण उन लोगों को प्रत्युत्तर करने का साहस नहीं हुआ।' राजा की बातों से सन्तुष्ट पुर नगरवासियों के इस प्रकार अनुमोदन कर देने पर नहुषपुत्र राजा ययाति ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु का अपने पद पर राज्याभिषेक किया, दक्षिण-पूर्व दिशा में तुर्वसु को अधिकारी बनाया। दक्षिण-पश्चिम दिशा में सबसे बड़े पुत्र यदु को स्थापित किया। उत्तर-पश्चिम दिशा का अधिकार द्रुह्यु और अनु को दिया। सागरपर्यन्त विस्तृत सप्तद्वीपों समेत सारी पृथ्वी को जीतकर नहुषपुत्र महाराज ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों में विभक्त कर दिया ।।८७-९०।। धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले उन पाँचों ययाति के पुत्रों ने सातों द्वीपों एवं नगरों समेत सारे पृथ्वीमण्डल का अपने-अपने प्रदेश तक धर्मपूर्वक प्रतिपालन किया। इस प्रकार अपने पुत्रों में राज्य का विभाग कर एवं अपनी सम्पत्ति एवं श्री को पुत्र में सन्निविष्ट कर नहुषपुत्र राजा ययाति परम प्रसन्न हुए ।।९१-९२।। अपने धनुष, बाण एवं राज्याधिकार को पुत्रों को सौंपकर एवं समस्त कार्यभार बन्धुवर्गों को देकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुए। इस विषय में महाराज ययाति ने प्राचीनकाल में पुत्रों से जो कुछ कहा था उसे बतला रहा हूँ। 'जो मनुष्य सभी प्रकार के कामनाओं को कछुए के अंगों की तरह समेटकर छिपा लेता है, (वही सच्चा मनुष्य है) कामनाएँ कभी इच्छित पदार्थों के उपभोग से शान्त नहीं होतीं प्रत्युत वे आग में घृत पड़ने के समान उपभोग करने से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं ।।९३-९५।। समस्त पृथ्वी में जितना अन्न, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब मिलकर भी एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं। ऐसा जो देखता है, वह अज्ञान में नहीं पड़ता। जब मनुष्य सभी जीवों के कर्म से,

यदा तु कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ।।९७।।
यदा परान्न बिभेति यदा त्वस्मान्न बिभ्यति। यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ।।९८।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। दोषः प्राणान्तिको राजस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ।।९९।।
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यति जीर्यतः। जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ।।१००।।
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलां नार्हति षोडशीम् ।।१०१।।
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम्। भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ।।
पालयित्वा व्रतशतं तत्रैव स्वर्गमा(प्तनान्)प्नुयात् ।।१०२।।
तस्य वंशास्तु पञ्चैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः। यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः ।।१०३।।
धन्यः प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः। ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्शुण्वन्द्विजोत्तमः ।।१०४।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ययातिप्रसवकीर्तनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ।।९३।।

मन से, वचन से, अग्नि की तरह समानता का व्यवहार करने लगता है, तब उसे ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है ।।९६-९७।। जब दूसरे से डर नहीं लगता, जब दूसरे लोग अपने से नहीं डरते, जब कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, जब किसी के प्रति द्वेषभाव का उदय नहीं होता, तब ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है ।।९८।। जो दुर्मतियों से नहीं छोड़ी जा सकती, जो वृद्ध होने पर भी नहीं बुढ़ाती, जो प्राणों का विनाश करनेवाले रोग एवं दोष की तरह भयानक है, उस तृष्णा को छोड़ देने पर ही सुख की प्राप्ति होती है ।।९९।। वृद्ध हो जाने पर केश वृद्ध (सफेद) हो जाते हैं, दाँत वृद्ध हो (टूट) जाते हैं, किन्तु जीवन की आशा और धन की आशा वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होती। कामनाओं की पूर्ति होने पर जो सुख मिलता है, दिव्य पदार्थों एवं वस्तुओं की प्राप्ति पर जो महान् सुख होता है वह सब सुख, उस सुख की सोलहवीं कला (अंश) की भी समानता नहीं कर सकता, जो तृष्णा के नाश हो जाने पर प्राप्त होता है ।।१००-१०१।।' इस प्रकार महायशस्वी राजर्षि ययाति ने पुत्रों को शिक्षा देकर स्त्रीसमेत वन को प्रस्थान किया और भृगुतुङ्ग नामक स्थान में तपस्याकर, वहीं पर सौ व्रतों का विधिवत् पालनकर स्वर्ग प्राप्त किया। उनके देवर्षियों द्वारा सत्कार पानेवाले ये पाँच वंश हैं जो सूर्य की किरणों के समान समस्त पृथ्वीमण्डल को व्याप्त किये हुए हैं। जो उत्तम द्विज महाराज ययाति के इस उत्तम चरित्र का समग्र पाठ करता अथवा सुनता है, धन धान्य, पूजा, दीर्घायु और कीर्ति प्राप्त करता है ।।१०२-१०४।।

श्री वायुमहापुराण में ययातिप्रसवकीर्तन नामक तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९३।।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणम्

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ।।१।।
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्त्रजिदथ श्रेष्ठः कोष्टुर्नीलो जितो लघुः ।।२।।
सहस्त्रजित्सुतः श्रीमाञ्शतजिन्नाम पार्थिवः । शतजित्सुता विख्यातास्त्रयः परमधार्मिकाः ।।३।।
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः । हैहयस्य तु दायादो धर्मतन्त्र इति श्रुतिः ।।४।।
धर्मतन्त्रस्य कीर्तिस्तु संज्ञेयस्तस्य चाऽऽत्मजः । संज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ।।५।।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् । वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्व एव हि ।।६।।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिवः । दुर्मदस्य ततो धीमान्कनको नाम विश्रुतः ।।७।।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः । कृतवीर्यः कार्तिवीर्यः कृतवर्मा तथैव च ।।८।।
कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः । जज्ञे बाहुसहस्त्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।।९।।
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् । दत्तामाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसंभवम् ।।१०।।

अध्याय ९४

कार्तवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति कथा

सूत बोले–अब मैं परम तेजस्वी ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रम से कर रहा हूँ, सुनिये। यदु के पाँच देवताओं के समान सुन्दर एवं प्रभावशाली पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम सहस्त्रजित् था, अन्य पुत्रों के नाम क्रोष्टु, नील, जित और लघु थे ।।१–२।। सहस्त्रजित् के पुत्र परम कान्तिमान् राजा शतजित् थे। शतजित् के तीन परम विख्यात एवं धार्मिक पुत्र हुए। जिनके नाम हैहय, हय और राजा वेणुहय थे। हैहय का उत्तराधिकारी धर्मतंत्र हुआ–ऐसा सुना जाता है। धर्मतंत्र के पुत्र कीर्ति हुए, कीर्ति के पुत्र संज्ञेय हुए। संज्ञेय के उत्तराधिकारी राजा महिष्मान् हुए ।।३–५।। महिष्मान् के पुत्र प्रतापशाली राजा भद्रश्रेण्य हुए, जो वाराणसी के अधिपति थे, इनके विषय में पहले ही कहा जा चुका है। भद्रश्रेण्य का उत्तराधिकारी राजा दुर्दम हुआ, दुर्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् राजा कनक नाम से विख्यात हुआ। कनक के चार उत्तराधिकारी लोक विख्यात हुए, जिनके नाम कृतवीर्य, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और कृत थे। कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई। वह राजा अर्जुन एक सहस्र बाहुओंवाला था तथा सातों द्वीपों का स्वामी था ।।६–९।। उस राजा कार्तवीर्यार्जुन ने दस सहस्र वर्षों तक परम कठोर तपस्या कर अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की; दत्त ने उसे परम महत्त्वपूर्ण चार वरदान प्रदान किये थे, जिनमें से उसने पहला

तस्मै दत्तो वरान्प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः। पूर्वं बाहुसहस्रं तु स बव्रे प्रथमं वरम् ।।११।।
अधर्मे दीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम्। धर्मेण पृथिवी जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ।।१२।।
सङ्ग्रामांस्तु बहूञ्जित्वा हत्वा चारीन्सहस्रशः। सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वधः स्यादधिकाद्रणे ।।१३।।
तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना। सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जनाः ।।१४।।
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल धीमतः। यौद्धो ध्वजो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ।।१५।।
दश यज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु। निरर्गलाः स्म निर्वृत्ताः श्रूयन्ते तस्य धीमतः ।।१६।।
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्याऽऽस्यासन्भूरितेजसः। सर्वे काञ्चनवेदीकाः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ।।१७।।
सर्वे देवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलंकृताः। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ।।१८।।
तस्य राज्ञो जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा। चरितं तस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य च ।।१९।।
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवाः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ।।२०।।
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरशरासनी। रथी राजाऽप्यनुचरोऽन्योऽगाच्चैवानुदृश्यते ।।२१।।
अनष्टद्रव्यश्चैवाऽऽसीन्न शोको न च विभ्रमः। प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः ।।२२।।
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः। स सप्तद्वीपवान्सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ।।२३।।

वरदान सहस्र बाहुओं का प्राप्त किया ।।१०–११।। दूसरे वरदान के अनुसार अधर्म में नष्ट होते हुए लोक को सदुपदेशों द्वारा निवारित करना, तृतीय वरदान के अनुसार धर्मपूर्वक पृथ्वी विजय करके धर्मपूर्वक पालन करना, चतुर्थ वरदान के अनुसार अनेक संग्रामों में विजय प्राप्तकर, सहस्रों शत्रुओं का विनाश कर रणभूमि में अपने से अधिक बलवाले के हाथ मृत्यु प्राप्त करना। इन वरदानों को प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुन ने नगरों एवं सातों द्वीपों समेत पृथ्वी को जीतकर, सातों समुद्रों तक फैली हुई वसुंधरा पर क्षत्रिय धर्म से अधिकार प्राप्त किया। उस परम चतुर महाराज के युद्ध करने के समय माया से एक सहस्र बाहु हो जाते थे, अनेक योद्धा, ध्वजा और रथ भी हो जाते थे। सुनते हैं उस परम चतुर राजा कीर्तवीर्य ने उन सातों द्वीपों में दस सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न किया था, और वे सब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त भी हो गये थे। परम तेजस्वी महाबाहु उस कार्तवीर्य के वे सब यज्ञ बड़े समारोह से सम्पन्न हुए थे, सब में सुवर्ण की वेदियाँ बनी थीं, और सुवर्ण के खम्भे गड़े थे ।।१२–१७।। सभी महाभाग्यशाली देवगण विमानों पर सुशोभित थे। नित्य गन्धर्व और अप्सराएँ आ-आकर उनकी शोभा बढ़ाते थे। उस महाराज की यशोगाथा का गन्धर्वगण गान करते थे। उस राजर्षि कार्तवीर्य की अपार महिमा एवं निर्मल चरित्र को देखकर देवर्षि नारद भी उसका इस प्रकार गुणगान किया करते थे कि 'यह निश्चय है कि मनुष्य योनि में पैदा होनेवाले कोई भी, उस महाराज कार्तवीर्य के यज्ञ, तपस्या, दान, पराक्रम, पाण्डित्य आदि में समानता नहीं प्राप्त कर सकते।' सातों द्वीपों में वह महाराज तलवार और सुन्दर धनुष, बाण धारण किये हुए रथ पर सवार, राजा होकर भी पीछे-पीछे चलनेवाला देखा जाता था। उसके राज्य में किसी का भी द्रव्य नष्ट नहीं होता था, न किसी को शोक था न सन्ताप था। उस महाराज के शासनकाल में धर्मपूर्वक प्रजाओं की रक्षा हुई। नरपति कार्तवीर्य इस प्रकार पचासी सहस्र वर्षों तक सातों द्वीपों का एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट् रहा ।।१८–२३।।

स एष पशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालस्तथैव च । स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ।।२४।।
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च । भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः ।।२५।।
स हि नागसहस्रेण महिष्मत्यां नराधिपः । कर्कोटकसभां जित्वा पुरीं तत्र न्यवेशयत् ।।२६।।
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालाम्बुजेक्षणः । क्रीडन्निव मुखोद्विग्नः प्रावृट्कालं चकार ह ।।२७।।
लुलिता क्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी । ऊर्मिभ्रूकुटिसंनादा शंङ्किताभ्येति नर्मदा ।।२८।।
पुरा स तामनुसरन्नवगाढो महार्णवम् । चकारोद्धृत्य वेलान्तं स कालं प्रावृषोद्घनम् ।।२९।।
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ । भवन्ति लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ।।३०।।
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहाविषाः । पतिता विद्धफेनौघमावर्तक्षिप्तदुस्सहम् ।।३१।।
चकार क्षोभयन्राजा दोःसहस्रेण सागरम् । देवासुरपरिक्षिप्तं क्षीरोदमिव सागरम् ।।३२।।
मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदकशङ्किताः । सहसोत्पादि(टि)ता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।।३३।।
नतनिश्चलमूर्धानो बभूवुश्च महोरगाः । सायाह्ने कदलीषण्डा निर्वातस्तिमिता इव ।।३४।।

अपने राज्य में वह स्वयं पशुओं का पालन करनेवाला था, स्वयं खेती की भी देखभाल रखता था, योगाभ्यासपरायण होने के कारण समय-समय पर वह कार्तवीर्यार्जुन वृष्टि करके मेघों का भी कार्य करता था, धनुष की डोरी खींचने से कड़े पड़े हुए एक सहस्र हाथों से सुशोभित वह महाराज शरत्कालीन सहस्र किरणोंवाले सूर्य की भाँति शोभायमान होता था। उस महाराज नराधिपति अर्जुन ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक सहस्र नागों समेत कर्कोटक नागराज की सभा को पराजित कर वहाँ पर अपनी पुरी बसायी थी ।।२४-२६।। वर्षाकालीन कमल के समान निर्मल सुन्दर नेत्रोंवाले उस महावीर अर्जुन ने खेल-ही-खेल में समुद्र का वेग रोककर असमय में ही वर्षाकाल का-सा समय कर दिया।[१] जल क्रीड़ा करते हुए उसके कंठ से सुवर्ण की माला खिसककर नर्मदा की धारा में गिर पड़ी थी, उससे सुशोभित एवं क्रीड़ा से आलोडित नर्मदा अपनी तरङ्गरूपी कातर भृकुटियों एवं तरंगों के शब्दों से शङ्किता के समान उनके अभिमुख गमन करती थी। प्राचीनकाल में एक बार नर्मदा का अनुसरण करते हुए उस महाराज अर्जुन ने महासमुद्र में जाकर उसका अवगाहन किया, अपने सहस्र बाहुओं से समुद्र के जल को आलोडितकर तटवर्ती वन प्रान्त को प्लावित कर दिया, इस प्रकार उस वन में उसने असमय में वर्षाकाल ला दिया ।।२७-२९।। इस प्रकार सहस्र बाहुओं द्वारा आलोडित होने पर जब महासमुद्र विक्षुब्ध हो गया, तब पाताल लोकवासी महाबलवान् असुरवृन्द कितने बेहोश हो गये और कितने इधर-उधर भय के मारे छिप गये। उसके सहस्र बाहुदण्डों से ताड़ित होकर महासमुद्र की भीषण तरंगें चूर्ण-चूर्ण हो गयीं, बड़े-बड़े मत्स्य एवं विषधरगण उसी में विलीन हो गये। जलराशि में फेनों के समूह तैरने लगे, महाभयानक भँवरें उठने लगीं। अपने सहस्र भुजदण्डों से उस महाराज अर्जुन ने समुद्र को इस प्रकार विक्षुब्ध कर दिया जैसे अमृत-मंथन के समय देवताओं और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर को विक्षुब्ध कर दिया था ।।३०-३२।। समुद्र में विराजमान उस भीमकाय नरपति अर्जुन को देखकर जलजन्तुओं को मन्दराचल द्वारा समुद्र-मंथन की आशंका हुई और वे अतिशीघ्र भयभीत एवं आतंकित हो गये। समुद्र में रहनेवाले भीषण विषधर

---

१. मूल प्रति में 'मुखोद्विग्नः' पाठ की कोई संगति नहीं बैठती।

स वै बद्ध्वा धनुर्यान उत्सिक्तः पञ्चभिः शतैः । लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।।
निर्जित्य बद्ध्या चाऽऽनीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ।।३५।।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुनं च प्रसादयत् । मुमोच राजा पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुपालितम् ।।३६।।
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः । युगान्तेऽम्बुदवृक्षस्य स्फुटितस्याशनेरिव ।।३७।।
अहो मृधे महावीर्यं भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् । मृधे सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा ।।३८।।
तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना । सप्त द्वीपांश्चित्रभानोः प्रादाद्भिक्षां विशां पतिः ।।३९।।
पुराणि घोषान्ग्रामांश्च पत्तनानि च सर्वशः । जज्वाल तस्य बाणेषु चित्रभानुर्दिधक्षया ।।४०।।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रतापेन महायशाः । ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चापि वनानि च ।।४१।।
स शून्यमाश्रमं सर्वं वरुणस्याऽऽत्मजस्य वै । ददाह सवनद्वीपांश्चित्रभानुः सहैहयः ।।४२।।
स लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्विनमुत्तमम् । वसिष्ठनामा स मुनिः ख्यातं आपव इत्युत ।।४३।।
तत्राऽऽपवस्तदा क्रोधादर्जुनं शप्तपान्विभुः । यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ।।४४।।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति । अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति (?) ।।४५।।
अर्जुन त्वां महावीर्यो रामः प्रहरतां वरः । छित्त्वा बाहुसहस्रं वै प्रमथ्य तरसा बली ।।४६।।

सर्प उस महावीर अर्जुन को देखकर इस प्रकार विनत और निश्चल मस्तकवाले बन गये जैसे सायंकाल की हवा के बन्द हो जाने पर केलों के पेड़ निश्चल और निस्तब्ध हो जाते हैं। गर्वपूर्वक लंकापुरी में जाकर उस महावीर ने अपने कठोर धनुष से पाँच सौ बाणों को छोड़कर सेना समेत रावण को बलपूर्वक मोहित कर लिया था, और इस प्रकार उसे पराजित कर बन्धन में डाल अपनी राजधानी माहिष्मती नगरी में लाकर बन्दी बनाया था ।।३३–३५।। जब महर्षि पुलस्त्य ने जाकर उसको प्रसन्न किया, तब उनके अनुरोध पर रावण को छोड़ा था। उसके सहस्र बाहुओं से उत्पन्न होनेवाले प्रत्यञ्चा के टंकोर युगान्त के समय बिजली गिरने और प्रलयंकर बादलों के भयावने शब्दों के समान होते थे। खेद है कि ऐसे महाबलशाली कार्तवीर्य की सहस्र बाहुओं को जमदग्नि–पुत्र परशुराम ने युद्ध क्षेत्र में हेमताल के वन की भाँति काट डाला। कभी एक बार तृष्णा से व्याकुल होकर आदित्य ने अर्जुन से भिक्षा की याचना की थी, नरपति ने सूर्य को सातों द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को दान कर दिया। राजा के बाणों में स्थित होकर आदित्य ने जलाने की इच्छा से पृथ्वी के समस्त पुरों, ग्रामों, पशुशालाओं एवं पत्तनों तक को भस्म कर दिया। उस पुरुषेन्द्र कार्तवीर्य के प्रभाव से महान् यशस्वी आदित्य ने पृथ्वी के समस्त पर्वतों और वनों को भी भस्म कर दिया ।।३६–४१।। हैहय कार्तवीर्य की सहायता से सूर्य ने इस प्रकार वनों एवं द्वीपों समेत पृथ्वी को भस्म करते हुए वरुण के आत्मज का एक शून्य आश्रम भी चारों ओर से भस्म कर दिया। वरुण ने अपने इस पुत्र को, जो परम तेजस्वी एवं उत्तम गुणोंवाला था, प्राचीनकाल में प्राप्त किया था, उनका वह पुत्र मुनिवर वसिष्ठ के नाम से तथा आपव के नाम से प्रसिद्ध था। सर्वसमर्थ आपव अपने आश्रम को भस्म देखकर बहुत क्रोधित हुए और अर्जुन को उन्होंने इस प्रकार शाप दिया, 'हैहय! तुमने मेरे वन को जो नहीं छोड़ा' सो तुम्हारे इस दुष्कर्म को भी कोई दूसरा नष्ट करेगा, वह होगा, कुन्तीपुत्र अर्जुन। वह राजा भी न होगा। अर्जुन! तुम्हारी इन सहस्र बाहुओं को, वीरों में श्रेष्ठ परम बलवान् परशुराम काट डालेंगे ।।४२–४६।।

तपस्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः। तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युः शापेन धीमतः ।।४७।।
राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृतः पुरा। तस्य पुत्रशतं ह्यासीत्पञ्च तत्र महारथाः ।।४८।।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः। शूरश्च शूरसेनश्च वृष्ट्याद्यं वृष एव च (?) ।।४९।।
जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशांपतेः। जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ।।५०।।
तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घाः इति श्रुतम्। तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ।।५१।।
वीरहोत्रा ह्यसंख्याता भोजश्चावर्तयस्तश्वा। तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ।।५२।।
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिवः। दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शनः ।।५३।।
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह। प्रभावेण महाराजः प्रजास्ताः पर्यपालयत् ।।५४।।
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत सः। कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ।।५५।।
वित्तवान्भवतेऽत्रैव धर्मश्चास्य विवर्धते। यथा त्वष्टा यथा दाता तथा स्वर्गे महीयते ।।५६।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणं नाम चतुर्नवतितमोध्यायः ।।९४।।

ब्राह्मण तपस्वी महाबलवान् परशुराम तुम्हें पराजित कर तुम्हारा संहार करेंगे।' परम बुद्धिमान् आपव के शापवश परशुराम ही उस कार्तवीर्य की मृत्यु के कारण बने। प्राचीनकाल में राजा ने इसी प्रकार का वरदान भी माँगा था कि मेरी मृत्यु उसके हाथों से हो, जो बल में मुझसे अधिक हो। उस राजा कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच महारथी थे। उनके नाम थे, शूर, शूरसेन, वृष्ट्याद्य, वृष और जयध्वज, ये सभी पुत्र शस्त्रास्त्र धारण करने में प्रवीण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा एवं यशस्वी थे। इन सबों ने अवन्ति देश में राज्य किया था। जयध्वज का पुत्र प्रतापशाली तालजंघ था, उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघगण के नाम से विख्यात हुए। महान् पराक्रमशाली उन हैहयवंश में उत्पन्न होनेवालों के पाँच गण विख्यात हैं, उनके नाम हैं, वीर होत्रगण, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, भोजगण, आवर्तिगण, तुण्डिकेरगण, जो परम बलशाली थे, तथा तालजंघ। वीरहोत्र का पुत्र राजा अनन्त हुआ, उसका पुत्र दुर्जय हुआ, दुर्जय से अमित्रदर्शन का जन्म हुआ ।।४७-५३।। जैसा कि पहले भी कह चुके हैं उस महाराज कार्तवीर्य अर्जुन के राज्य में लोगों का द्रव्य नष्ट नहीं होता था, वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समस्त प्रजाओं का पालन करता था। उस परम बुद्धिमान् महाराज कार्तवीयार्जुन का जन्म-वृत्तान्त इस लोक में जो कहता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट नहीं होती, यदि नष्ट हो गयी हो तो पुनः प्राप्त होती है, इस लोक में वह परम धनशाली होता है, धर्म की वृद्धि होती है, जिस प्रकार शुभ कर्मपरायण एवं दानशील लोग स्वर्ग में पूजित होते हैं, उसी प्रकार वह भी स्वर्ग में पूजित होता है ।।५४-५६।।

श्री वायुमहापुराण में कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति-विवरण नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९४।।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

ज्यामघवृत्तान्तकथनम्

ऋषय ऊचुः

किमर्थं भुवनं दग्धमापवस्य महात्मनः। कार्तवीर्येण विक्रम्य तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।१।।
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्। कथं स रक्षिता भूत्वाऽनाशयत्तत्तपोवनम् ।।२।।

सूत उवाच

आदित्यो विप्ररूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः। तृप्तिकामः प्रयच्छान्नमादित्योऽहं न संशयः ।।३।।

राजोवाच

भगवन्केन ते तुष्टिर्भवेद्ब्रूहि दिवाकर। कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ।।४।।

सूर्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर। तेन तृप्तो भवेयं वै न तुष्येऽन्येन पार्थिव ।।५।।

राजोवाच

न शक्यं स्थावरं सर्वं तेजसा मानुषेण तु। निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ।।६।।

अध्याय ९५

ज्यामघ का वृत्तान्त विवरण

ऋषिवृन्द बोले–सूत जी! कार्तवीर्य ने अपना पराक्रम दिखाते हुए महात्मा आपव के आश्रम को क्यों जला दिया? ऐसा सुना जाता है कि वह राजर्षि कार्तवीर्याजुन अपनी प्रजाओं का पालक था, सो रक्षक होकर उसने तपोवन को भला क्यों जलाया, इसे हम लोग आपसे पूछ रहे हैं, कृपया बतलाइये ।।१-२।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! आदित्य ब्राह्मणवेश धारणकर महाराज कार्तवीर्य के पास आये और बोले, राजन्! मैं भूखा हूँ, सन्तोष-प्राप्ति के लिए आपके पास आया हूँ, मुझे अन्नादि दीजिये, मैं आदित्य हूँ, इसमें सन्देह न करिये ।।३।।

राजा बोले–भगवन् दिवाकर! आपको किससे सन्तोष-प्राप्ति होगी, मैं किस प्रकार का भोजन आपको दूँ? आपका उत्तर सुनकर ही मैं कुछ प्रबन्ध कर सकूँगा ।।४।।

सूर्य बोले–दानिशिरोमणि राजन्! मुझे समस्त स्थावर जगत् प्रदान कीजिये, मैं उसी का भोजनकर सन्तोष प्राप्त करूँगा, अन्य भोजन द्वारा मेरी तृप्ति नहीं होगी ।।५।।

राजा बोले–हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ! मैं मानवतेज द्वारा समस्त स्थवर जगत् को जलाने में सर्वथा असमर्थ हूँ, अतः आपही को प्रणाम करता हूँ, ।।६।।

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान्दद्मि अक्षयान्सर्वतः सुखान्। प्रक्षिप्ताः प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ।।७।।
आदिष्टं तेजसा मेघसागरं शोषयिष्यति। शुष्कं भस्म करिष्यामि तेन प्रीतो नराधिप ।।८।।
ततः शरानथाऽऽदित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत। ततः संप्राप्य सुमहत्स्थावरं सर्वमेव हि ।।९।।
आश्रमानथ ग्रामांश्च घोषांश्च नगराणि च। तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ।।१०।।
एवं प्राचीनमदहत्ततः सूर्यप्रदक्षिणम्। निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा ।।११।।
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो नियमस्थितः। दशवर्षसहस्राणि जलवासा महानृषिः ।।१२।।
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः। सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महानृषिः ।।
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया ।।१३।।

सूत उवाच

क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरूषम्। अस्यान्ववाये संभूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वहः ।।१४।।
क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः। वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहावतां वरम् ।।१५।।
स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा रशादुर्ददतां वरः। सुतं प्रसूतमिच्छन्ति रशादोरग्र्यमात्मजम् ।।१६।।

आदित्य बोले—राजन्! मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हूँ, मैं तुम्हें ऐसे बाण दे रहा हूँ, जिनका कभी नाश नहीं होगा, जो तुम्हें सब प्रकार के सुख देनेवाले होंगे। मेरे तेज से समन्वित होकर ये बाण, फेंके जाने पर प्रज्वलित हो उठेंगे। हे नराधिप! मेरे तेज से सम्वलित होने पर वे आदेश दे देने पर मेघ और समुद्र को भी सुखा डालेंगे। और इस प्रकार पदार्थों के सूख जाने पर तो मैं उन्हें भस्म कर ही डालूँगा, तभी हमारी वास्तविक तृप्ति होगी।' ऐसी बातें करने के उपरान्त आदित्य ने राजा कार्तवीर्य को वे बाण प्रदान किये। उन बाणों को प्राप्तकर अर्जुन ने समस्त स्थावर पदार्थों को, जो विशाल भूमण्डल भर में व्याप्त थे, तथा आश्रम, ग्राम, गौओं के ठहरने के स्थान, नगर, तपोवन, सुरम्य वन, उपवन सब को भस्म कर दिया और तदनन्तर सूर्य की प्रदक्षिणा की। सूर्य के तेज से भस्म पृथ्वी वृक्षों और तृणों से विहीन हो गयी। इसी अवसर महर्षि आपव ने एक नियम किया था, जिसके अनुसार दस सहस्र वर्षों तक जल में निवास कर रहे थे। महान् तेजस्वी तपोधन आपव जब अपने नियम समाप्त कर जल से उठे और बाहर आये तो उन्होंने अपने आश्रम को अर्जुन द्वारा जलाया हुआ देखा। उस समय उन्होंने राजर्षि कार्तवीर्य को शाप दिया, उसे हम आप लोगों से बतला रहे हैं ।।७–१३।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! अब इसके बाद पुरुषरत्न राजर्षि क्रोष्टु के वंश का विवरण सुनिये, जिनके वंश में वृष्णिवंश के प्रवर्तक वृष्णि का प्रादुर्भाव हुआ था। क्रोष्टु के एकमात्र पुत्र महायशस्वी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान् के पुत्र स्वाहि को, जो स्वाहा करनेवालों (यज्ञकर्त्ताओं) में श्रेष्ठ थे, लोग बहुत चाहते हैं। स्वाहि के पुत्र राजा रशादु दानियों में अग्रगण्य थे। रशादु के ज्येष्ठ पुत्र प्रसूत को प्रजाएँ बहुत चाहती थीं, उसने ऐसे महान् यज्ञों का अनुष्ठान किया था, जिनमें प्रचुर

महाक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिणैः । चित्रश्चित्ररथस्तस्य पुत्रकर्मभिरन्वितः ।।१७।।
एवं चित्ररथो वीरो यज्ञान्विपुलदक्षिणान् । शशबिन्दुः परं वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठितः ।।१८।।
चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः । तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन्गीतः पुराविदैः ।।१९।।
शशबिन्दोऽस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् । धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ।।२०।।
तेषां षट् च प्रधानास्तु पृथुसाह्वा महाबलाः । पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुंजयः ।।२१।।
पृथुकीर्तिः पृथुदाता राजानः शशबिन्दवः । शंसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ।।
अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ।।२२।।
उशना सेतु धर्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् । आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ।।२३।।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठितः । वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः ।।२४।।
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः । निहत्य रुक्मकवचः पुरा कवचिनो रणे ।।२५।।
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधे महायशाः ।।२६।।
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहाः । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः ।।२७।।
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः । परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ।।२८।।

दक्षिणाएँ दी गयी थीं। विचित्र ढंग के पुत्र-प्राप्ति के कर्मों द्वारा उसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, चित्ररथ नाम से विख्यात हुआ। वीर चित्ररथ ने भी इसी प्रकार विपुलदक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था। तदनन्तर राजर्षियों द्वारा सम्मानित शशविन्दु राज्याधिकारी हुआ ।।१४-१८।। वह महाबलवान्, महान् पराक्रमी, अनेक पुत्रोंवाला तथा चक्रवर्ती शासक था। पुरानी कथाओं के जाननेवाले उसके विषय में श्लोक गाते हैं, जिसका आशय निम्न प्रकार है। राजा शशविन्दु के एक सौ विपुल अर्थबल सम्पन्न बुद्धिमान् एवं तेजस्वी पुत्र थे, जिनमें छह सबसे बड़े प्रमुख थे, जो सब पृथुगण के नाम से विख्यात थे, वे छह पुत्र महान् बलशाली थे। उनके नाम थे, पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्ति और पृथुदाता। ये सब-के-सब राजा थे और शशविन्दु के पुत्रों के नाम से विख्यात थे। सभी पुराण पृथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं, यही अन्तर प्राचीनकाल में यज्ञ का पुत्र था ।।१९-२२।। उसी धर्मात्मा ने उशना नाम से इस पृथ्वी को प्राप्त किया। परम धार्मिक विचारोंवाले उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। उसका पुत्र मरुत्त हुआ जिसे राजर्षिगण परम सम्मान देते हैं, मरुत्त का पुत्र वीर कम्बलबर्हि कहा जाता है, कम्बलबर्हि का पुत्र परम विद्वान् राजा रुक्मकवच हुआ। प्राचीनकाल में इस प्रकार राजा रुक्मकवच ने बहुतेरे धनुष, बाण, कवच धारण करनेवाले योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में अपने तीक्ष्णबाणों से मारकर उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति की थी। और अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को भूरि दक्षिणा दान कर महान् यश प्राप्त किया था। उस राजा रुक्मकवच से शत्रुओं के वीरों को नष्ट करनेवाले महान् बलवान्, महान् पराक्रमी पाँच वीर पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे, रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघि और हरि। पिता ने परिघि और हरि नामक पुत्रों को विदेह देश में स्थापित किया ।।२३-२८।। रुक्मेषु अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ,

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः । तेभ्यः प्रव्रजितो राज्याज्ज्यामेघोऽभवदाश्रमे ।।२९।।
प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनावबोधितः । जगाम धनुरादाय देशमध्यं रथो ध्वजी ।।३०।।
नर्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अपि । ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा शुक्तिमत्यामथाविशत् ।।३१।।
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैव्या बलवती भृशम् । अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विन्दति ।।३२।।
तस्याऽऽसीद्विजयो युद्धे ततः कन्यामवाप सः । भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वरः ।।३३।।
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं कस्येयं ते स्नुषेति सा । यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ।।३४।।
तस्य सा तपसोग्रेण शैव्या वैशं प्रसूयत । पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ।।३५।।
राजपुत्रौ तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ । पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ।।३६।।
लोमपादं तृतीयं तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकम् । लोमपादात्मजो वस्तुराहृतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।३७।।
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः । क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् ।।३८।।
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरो धृष्टः प्रतापवान् । धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ।।३९।।
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः । दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ।।४०।।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः । अथ भीमरथस्याऽऽसीत्पुत्रो रथवरः किल ।।४१।।

पृथुरुक्म उसके अधीन था। उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को निर्वासित कर दिया, जिससे उसने वन में अपना आश्रम बनाया। घोर वन्य प्रान्त में मुनिवृत्ति धारण करनेवाले ज्यामघ को एक ब्राह्मण ने प्रेरणा दी, जिससे प्रभावित होकर वह रथ पर चढ़ धनुष धारणकर मध्यदेश को प्रस्थित हुआ। वहाँ नर्मदा के तटवर्ती प्रान्त में अकेले घूमते हुए, वह मेकल पर्वत के शिखरों से ऋक्षवान् नामक पर्वत पर पहुँचा और वहाँ से शुक्तिमती में प्रविष्ट हुआ। ज्यामघ की पत्नी शैव्या परम शक्तिमती और साहसी थी। उससे कोई पुत्र यद्यपि नहीं था फिर भी राजा होकर उसने दूसरी स्त्री से ब्याह नहीं किया था ।।२९-३२।। एक युद्ध में राजा ज्यामघ की विजय हुई, जिसमें उसने एक कन्या प्राप्त की। नरपति ने उस कन्या को लाकर अपनी स्त्री से यह कहा कि 'यह तुम्हारी पुत्रवधू है।' राजा के ऐसा कहने पर शैव्या ने कहा, 'यह किसकी पुत्रवधू होगी।' राजा ने कहा, 'तुम्हें जो पुत्र उत्पन्न होगा यह कन्या उसी की स्त्री होगी।' राजा के इस वचन से शैव्या ने कठोर तपस्या की, जिससे उसे एक पुत्र हुआ। सुन्दरी साध्वी शैव्या ने वृद्धावस्था में इस प्रकार विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। उसकी पुत्रवधू में विदर्भ से क्रथ और कौशिक नामक दो राजपुत्र उत्पन्न हुए, जो परम विद्वान् शूरवीर और रणनिपुण थे ।।३३-३६।। उन दोनों पुत्रों के पीछे राजा विदर्भ ने एक तीसरे परम धार्मिक लोमपाद नामक पुत्र को उत्पन्न किया। लोमपाद के पुत्र राजा वस्तु हुए, उनके पुत्र आहृति हुए। कौशिक के पुत्र चिदि हुए, जिस चिदि से उत्पन्न होनेवाले राजा लोग चैद्य नाम से विख्यात हुए। विदर्भराज के पुत्र जो क्रथ थे, उनके आत्मज कुन्ति हुए। कुन्ति के पुत्र धृष्टसुत हुए, जो परम प्रतापशाली राजा थे। धृष्ट के पुत्र धर्मात्मा निर्वृति हुए, जो शत्रुओं के वीरों को नष्ट करनेवाले

दाता धर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः। तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः ।।४२।।
तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः। तस्मात्करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः ।।४३।।
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः। देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः ।।४४।।
देवनात्स मधुर्जज्ञे यस्य मेघार्थसम्भवः। मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवंशस्तथा ।।४५।।
नन्दनश्च महातेजा महापुरुवशस्तथा। आसीत्पुरुवशात्पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः ।।४६।।
जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः। ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ।।
सत्त्वात्सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतः कीर्तिवर्धनः ।।४७।।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः। प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ।।४८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्यामघवृत्तान्तकथनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।।९५।।

थे। निर्वृति के पुत्र महान् बलशाली एवं परम पराक्रमी राजा दशार्ह हुए, दशार्ह के पुत्र व्योमा हुए, व्योमा के बाद राजा जीमूत कहे जाते हैं ।।३७–४०।। जीमूत के पुत्र विकृति हुए, विकृति के पुत्र राजा भीमरथ कहे जाते हैं, तदनन्तर भीमरथ के पुत्र राजा रथवर प्रसिद्ध हुए जो सर्वदा सत्य वचन बोलनेवाले, शीलवान् एवं दान कर्म में तत्पर रहते थे। उन राजा रथवर के पुत्र नवरथ हुए, जिनके बाद दशरथ कहे जाते हैं। उन राजा दशरथ के एकादशरथ नामक पुत्र हुए। उनके पुत्र राजा शकुनि हुए। शकुनि के बाद धनुषधारी राजा करम्भ हुए, जिनके पुत्र देवरात हुए। देवरात का पुत्र महान् यशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्र का पुत्र क्षत्रनन्दन देवन उत्पन्न हुआ, देवन से मधु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसके पुत्र का नाम मेघार्थसम्भव था ।।४१–४४$\frac{१}{२}$।। उस मधु के महान् तेजस्वी मनु, मनुवंश, नन्दन और महानपुरुवश नामक पुत्र और हुए। पुरुवशा का पुत्र पुरुष श्रेष्ठ पुरुद्वान् हुआ, पुरुद्वान् का पुत्र पुरुद्वह भद्रवती नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ। उसकी स्त्री इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न थी, उसमें उसे सत्त्व नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। उस सत्त्व से सत्त्वगुणसम्पन्न कीर्तिशाली सात्त्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। महात्मा ज्यामघ के वंश विस्तार की इस कथा को जानकर मनुष्य संततियोंवाला होता है और परम बुद्धिमान् राजा चन्द्रमा का सायुज्य (सान्निध्य) प्राप्त करता है ।।४५–४८।।

श्री वायुमहापुराण में ज्यामघवृत्तान्तकथन नामक पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९५।।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

विष्णुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

सात्वती रूपसंपन्ना कौशल्या सुषुवे सुतान्। भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ।।१।।
अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्। तेषां हि सर्गाश्चत्वारः शृणुध्वं विस्तरेण वै ।।२।।
भजमानस्य शृञ्जय्यां बाह्यश्चोपरि बाह्यकः। शृञ्जयस्य सुते द्वे तु वाह्यकस्ते उदावहत् ।।३।।
तस्य भार्ये भगिन्यौ ते प्रसूतेति सुतान्बहून्। निमिश्च पणवश्चैव वृष्णिः परपुरंजयः ।।४।।
ये बाह्यकार्यशृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे। अयुतायुतसाहस्त्रशतजिदथ वामकः ।।५।।
बाह्यकार्याभगिन्यां ये भजमानाद्विजज्ञिरे। तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः ।।६।।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह। संयोज्याऽऽत्मानमेवं सा सवर्णा जलमस्पृशत् ।।७।।
सा चोपस्पर्शनात्तस्य चकार ऋषिमापगा। कल्याणं च नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ।।८।।
चिन्तयाऽभिपरीताङ्गी जगामाथ विनिश्चयम्। नाधिगच्छामि तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ।।९।।
भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देववृधस्य हि। तस्मादस्य स्वयं चाहं भवाम्यद्य सहव्रता ।।
जज्ञे तस्याः स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ।।१०।।

अध्याय ९६

विष्णु-वंश-वर्णन

सूत बोले–ऋषिवृन्द! रूपवती सात्वत की स्त्री कौशल्या ने भजिन, भजमान, राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज तथा यदुनन्दन, वृष्णि प्रभृति पुत्रों को उत्पन्न किया। इन सबों में चार वंशों का विवरण विस्तारपूर्वक सुनिये। भजमान के शृञ्जयी नामक पत्नी में वाह्य और उपरिवाह्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। शृञ्जय की दो पुत्रियाँ थीं, जिन्हें वाह्यक ने पत्नी रूप में स्वीकार किया। उन दोनों बहनों ने, वाह्यक की पत्नी होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये। जिनमें निमि, पणव एवं शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाले वृष्णि प्रमुख हुए–भजमान के पुत्र वाह्यक ने अपनी ज्येष्ठ रानी में इन पुत्रों को उत्पन्न किया। इसी प्रकार कनिष्ठ रानी में आंयुतायुतजित्, सहस्रजित्, शतजित् और वामक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इन सबों में राजा देवावृध ने परम तपस्या की ।।१-६।। उन्होंने यह संकल्प करके तपस्या की थी कि 'मुझे एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त हो।' इस प्रकार संकल्प कर राजा ने तपस्या करते समय योगबल से पर्णाशा नामक नदी के जल का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही नदी ने राजा की, कल्याण चिन्ता की नदियों में उत्तम पर्णाशा ने चिन्ता आतुर होकर यह विचार किया कि 'मेरी जानकारी में ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसमें राजा देवावृध के संकल्प के अनुसार सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हो, अतः अब मैं स्वयं ही इसकी सहधर्मिणी बन रही हूँ। राजा ने जिस प्रकार की भावना की थी उसी के अनुसार नदी से स्वयमेव हाथों का प्रादुर्भाव हुआ ।।८-१०।। तदनन्तर सावित्री कुमार होकर उसने सुन्दर शब्दों में राजा के प्रति अपनी

अथ भूत्वा कुमारी तु सावित्री परमं वचः। चिन्तयामास राजानं तामियेष स पार्थिवः ।।११।।
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः। अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा ।।१२।।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं यथा वेवावृधेप्सितः। तत्र वंशे पुराणज्ञा गाथां गायन्ति वै द्विजाः ।।१३।।
गुणान्देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः। यथैव शृणुते दूरात्संपश्यति तथाऽन्तिकात् ।।१४।।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः। पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्ततिः ।।
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रुर्देवावृधादपि ।।१५।।
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग्बुधः। कीर्तिमांश्च महाभागः सात्वतानां महारथः ।।१६।।
तस्यान्ववाये सुमहाभोजयेमार्तिकाबलाः। गान्धारी चैव माद्री च वृष्णेर्भार्ये बभूवतुः ।।१७।।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्। माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम् ।।१८।।
अनमित्रं सुतं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ। अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः ।।१९।।
प्रसेनश्च महाभागः शक्रजिच्च सुतावुभौ। तस्य शक्रजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ।।२०।।
स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः। तोयकूलादपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम् ।।२१।।
तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः। अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान्विभुः ।।२२।।

चिन्ता (अनुरक्ति) प्रकट की, राजा ने उसकी इच्छा पूर्ति की। उदारचेता राजा देवावृध ने उस कुमारी में एक तेजस्वी पुत्र का गर्भाधान किया। सरिताओं में श्रेष्ठ पर्णाशा ने नवें महीने में जिस प्रकार के पुत्र की इच्छा राजा देवावृध को थी उसी प्रकार का सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया। पुराणों की कथाओं के जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण लोग उस वंश के प्रसंग में महात्मा राजा देवावृध के गुणों और वंशों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह राजा देवावृध दूर से जैसा सुना जाता था वैसा ही समीप में जाने पर प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता था। राजा देवावृध देवताओं के समान गुणशाली था। बभ्रु मानव समाज में सर्वश्रेष्ठ था। इस वंश के पैंसठ सहस्र सत्तर मनुष्यों ने अमृतत्व की प्राप्ति की। ब्रभ्रु गुणों में देवावृध से भी बढ़ा-चढ़ा था ।।११-१५।। वह यज्ञ करनेवाला, दानियों का स्वामी, वीर, ब्राह्मणप्रतिपालक, बुद्धिमान्, सत्यवादी, कीर्तिमान्, महाभाग्यशाली एवं सात्वत के वंश में उत्पन्न होनेवालों में एकमात्र महारथी था। उसके वंश में महान् भोज (?) वंशीय एवं आर्तिकाबलों (?) की उत्पत्ति हुई थी। गान्धारी और माद्री—ये दो वृष्णि की स्त्रियाँ थीं। इनमें से गान्धारी ने सुमित्र, मित्रनन्दन और माद्री ने युधाजित्, देवमीढुष और अनमित्र नामक पुत्रों को उत्पन्न किया—वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ थे। अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ, निघ्न के दो पुत्र हुए, महाभाग्यशाली प्रसेन और शक्रजित्। उस शक्रजित् के सूर्य प्राणों के समान परम मित्र थे ।।१६-२०।। एक बार कभी प्रातःकाल के समय रथारोहियों में श्रेष्ठ वह शक्रजित् सूर्य की उपासना करने के लिए अपने लिये अपने रथ पर सवार होकर जलाशय के जल का स्पर्श करने निकला। जिस समय वह उपासना कर रहा था, उस समय अस्पष्ट रूप धारणकर अपने तेजोमण्डल से समन्वित होकर भगवान् सूर्यनारायण

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः। यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषां पते ।।२३।।
तेजोमण्डलिनं चैव तथैवाप्यग्रतः स्थितम्। को विशेषो विवस्वंस्ते सख्येनोपगतेन वै ।।२४।।
एतच्छ्रुत्वा स भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्। स्वकण्ठादवमुच्याथ बबन्ध नृपतेस्तदा ।।२५।।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा। प्रतिमामथ तां दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवांस्तथा ।।२६।।
तमतिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स शक्रजित्। प्रोवाचाग्निसवर्णात्वं येन लोकान्प्रयास्यति (सि)।।
तदेव मणिरत्नं तन्मां भवान्दातुमर्हति ।।२७।।
स्यमन्तकं नाम मणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः। स तमाबध्य नगरं प्रविवेश महीपतिः ।।२८।।
तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह। स तान्विस्मापयित्वाऽथ पुरीमन्तः पुरं तथा ।।२९।।
तं प्रसेनजिते दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा शक्रजिदुत्तमम् ।।३०।।
+स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत्। कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं तदा ।।३१।।
लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्नं स्यमन्तकम्। गोविन्दो न च तं लेभे शक्तोऽपि न जहार च ।।३२।।
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप्तः सुदारुणम् ।।३३।।

उसके आगे उपस्थित हुए। सूर्य के आगे उपस्थित देखकर राजा ने कहा, ज्योतिर्गणों के स्वामिन्! मैं आकाशमण्डल में आपको जिस प्रकार तेजोमय देखता हूँ, उसी प्रकार इस समय भी देख रहा हूँ, तो फिर भगवन्! आपके मित्र रूप में उपस्थित होने की विशेषता क्या है? शक्रजित् की यह बात सुनकर भगवान् सूर्य नारायण ने अपने कण्ठ से स्यमन्तक नामक उत्तम मणि को छोड़कर राजा के कण्ठ में बाँध दिया, उस समय राजा ने सूर्य नारायण को शरीर धारण किये हुए देखा। उस अनुपम तेजस्विनी प्रतिमा को उन्होंने एक मुहूर्त तक उसी प्रकार देखा ।।२१-२६।। तदनन्तर सूर्य को गमनोद्यत देखकर शक्रजित् ने कहा, 'भगवन्! आप अग्नि के समान परमतेजोमय हैं, जिस प्रकाशमान मणि से इतने प्रकाशयुक्त होकर आप समस्त लोकों में भ्रमण करते हैं, उसी सुन्दर मणि को मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' शक्रजित् की इस याचना पर भगवान् सूर्य नारायण ने अपना स्यमन्तक नामक मणि राजा को प्रदान कर दिया। महीपति ने उस सुन्दर मणि को बाँधकर अपने पुर में प्रवेश किया। लोग यह समझकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे कि यह सूर्य जा रहे हैं।' इस प्रकार नगरनिवासियों को तथा अन्तःपुर को उस मणि द्वारा विस्मय विमुग्ध कर राजा शक्रजित् ने दिव्य मणि को अपने भाई प्रसेनजित् को प्रेमपूर्वक प्रदान कर दिया ।।२७-३०।। उस स्यमन्तक मणि के विषय में यह प्रसिद्धि है कि वह जिस राष्ट्र में रहता है, वहाँ मेघ समय-समय पर वृष्टि करते हैं, और वहाँ व्याधियों का भय नहीं रहता। गोविन्द के मन में उस स्यमन्तक मणि को प्रसेनजित् से ले लेने की इच्छा हुई, किन्तु सामर्थ्य रखते हुए भी उन्होंने उसे प्रसेनजित् से छीना नहीं। एक बार कभी उस सुन्दर मणि से विभूषित होकर प्रसेनजित् शिकार के लिए वन को गये,

---

+ एतदर्धस्थान इमे अर्धे-स्यमन्तकमर्णिं रत्नं धृष्यकं स्वं निवेशने' इति ख. पुस्तके। 'स्यमन्तकमर्णि रत्नं दृश्यकस्तन्निवेशने' इति घ. पुस्तके।

जाम्बवानृक्षराजस्तु तं सिंहं निजघान वै। आदाय च मणिं दिव्यं स्वं बिलं प्रविवेश ह ।।३४।।
तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तराः। मणौ गृध्नुं तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ।।३५।।
मिथ्याभिशस्तिं तेभ्यस्तां बलवानरिसूदनः। अमृष्यमाणो भगवान्वनं स विचचार ह ।।३६।।
स तु प्रसेनो मृगयामचरतत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ।।३७।।
ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च नगमुत्तमम्। अन्वेषणपरिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ।।३८।।
साश्वं हतं प्रसेनं तं नाविन्दत्तत्र वै मणिम्। अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ।।३९।।
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षस्य सूचितः। पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादवः ।।४०।।
महत्यपि बिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्। धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ।।
प्रीतिमत्याऽथ मणिना मा रोदीरित्युदीरिताम् ।।४१।।

धात्र्युवाच

प्रसेनमवधीत्सिंहः सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।।४२।।
व्यक्तीकृतं च शब्दं तं तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम्। अपश्यच्च बिलाभ्यासे प्रसेनमवदारितम् ।।४३।।
प्रविश्य चापि भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा। ददर्श ऋक्षराजानं जाम्बवन्तमुदारधीः ।।४४।।

वहाँ उसी स्यमन्तक के कारण एक सिंह ने उनको मार डाला। रीछराज जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला, और स्यमन्तक को लेकर अपने बिल में प्रवेश किया। महान् वृष्णि अन्धकों के वंशजों ने इस हत्या कर्म की शंका कृष्ण के ऊपर की, 'उसी मणि की लालच से कृष्ण ने ऐसा किया' इस प्रकार की आशंकाएँ सबों के मन में हुईं। शत्रुमर्दन बलवान् भगवान् कृष्ण इस मिथ्या अपवाद को उन लोगों द्वारा सुनकर सहन न कर सके और तुरन्त वन को प्रस्थित हुए ।।३१–३६।। प्रसेनजित् जिस स्थान पर शिकार खेलने के लिए गये थे, उसी स्थान को प्रसेन के पदचिह्नों को जानकर लोगों से पता लगाकर अनुसरण करते हुए कृष्ण चले। और इस प्रकार ऋक्षवान् गिरिवर और पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल में घूमते-घूमते वे बहुत परेशान हो गये। वहाँ पर महामनस्वी कृष्ण ने घोड़े समेत प्रसेन को मरा हुआ पाया, पर मणि को नहीं पाया। उसी प्रसेन के शव से थोड़ी दूर सिंह को भी मरा हुआ पाया, वहाँ पर रीछ के पदचिह्नों से यह स्पष्ट पता चल रहा था कि रीछ ने सिंह को मारा। तदनन्तर यादव श्रीकृष्ण जी ने रीछ के उन्हीं पदचिह्नों से रीछ की गुफा का पता लगाया। उन्होंने उसकी विशाल बिल में स्त्री की आवाज सुनी। द्विजगण! जाम्बवान् की बिल में उसके लड़के को धाय प्रेमपूर्वक स्यमन्तक मणि को दिखलाकर यह कह रही थी कि 'बेटा मत रोओ' इसके अतिरिक्त वह इस प्रकार की बातें भी कह रही थी ।।३७–४१।।

धाय बोली–प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान् ने मारा, मेरे सुकुमार बेटे! तुम मत रोओ। यह स्यमन्तक मणि तुम्हारा है।' धाय की यह वाणी सुनते ही कृष्ण शीघ्रतापूर्वक उस बिल में प्रविष्ट हो गये, बिल के समीप ही वे प्रसेनजित् को मारा हुआ देखा चुके थे। बिल में शीघ्रतापूर्वक प्रविष्ट होकर परम तेजस्वी उदारबुद्धि भगवान् कृष्ण ने रीछराज जाम्बवान् को देखा। और उसी बिल में ही जाम्बवान् के साथ वासुदेव का युद्ध प्रारम्भ हो गया, बाहु द्वारा

युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह। बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ।।४५।।
प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वासुदेवपुरः सराः। पुनर्द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ।।४६।।
वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्। लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य संमताम् ।।४७।।
भगवत्तेजसा ग्रस्तो जाम्बवान्प्रसभं मणिम्। सुतां जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान् ।।४८।।
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहाऽऽत्मविशुद्धये। अनुनीय ऋक्षराजं निर्ययौ च तदा बिलात् ।।४९।।
एवं स मणिमादाय विशोध्याऽऽत्मानमात्मना। ददौ शक्रजिते तं वै मणिं सात्वतसंनिधौ ।।५०।।
कन्यां पुनर्जाम्बवतीमुवाह मधुसूदनः। तस्मान्मिथ्याभिशापात्स व्यमुच्यत जनार्दनः ।।५१।।
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम्। वेद मिथ्याभिशस्तेः स नाभिशस्यति कर्हिचित् ।।५२।।
दशस्वसृभ्यो भार्याभ्यः शत्रुजित्तः शतं सुताः। ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ।।५३।।
वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्व सुप्रियः ।।
अथ द्वारवती नाम भृङ्गकारस्य सुप्रजाः। सुषवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विताः ।।५४।।
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता। तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य तां ददौ ।।५५।।
यत्तच्छक्रजितो कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्। प्रादात्तद्धारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना ।।५६।।

ही गोविन्द ने इक्कीस दिनों तक युद्ध किया। उधर कृष्ण के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर जब देरी होने लगी तो उनके साथियों ने द्वारकापुरी में लौटकर यह बात बतलायी कि कृष्ण तो मारे गये। इधर वासुदेव ने महाबलशाली रीछराज जाम्बवान् को पराजितकर उसकी सम्मति से जाम्बवती नामक सुन्दरी कन्या को प्राप्त किया ।।४१-४७।। तेजोबल से अभिभूत होकर जाम्बवान् ने जबरदस्ती अपनी कन्या जाम्बवती को और स्यमन्तक मणि को विष्वक्सेन भगवान् कृष्ण को समर्पित कर दिया। भगवान् कृष्ण ने अपने ऊपर फैले हुए अपवादों की शुद्धि के लिए स्यमन्तक मणि को ऋक्षराज जाम्बवान् से ले लिया और उससे फिर अनुनय-विनय कर बिल से बाहर आये। इस प्रकार स्यमन्तक मणि को प्राप्तकर उन्होंने अपने पुरुषार्थ से अपना अपयश दूर किया और ले जाकर समस्त सात्वत वंशियों के समक्ष शक्रजित् को समर्पित किया। तदनन्तर भगवान् मधुसूदन कृष्ण ने जाम्बवती से अपना विवाह किया। इस प्रकार उस मिथ्या अपवाद से जनार्दन भगवान् कृष्ण की मुक्ति हुई ।।४८-५१।। भगवान् कृष्ण के ऊपर फैलायी गयी इस मिथ्या अपकीर्ति को दूर करने का वृत्तान्त जो व्यक्ति जानता है उसे कभी किसी प्रकार से इस प्रकार की मिथ्या अपकीर्ति का भाजन नहीं होना पड़ता। शत्रुजित् से उसकी दस पत्नियों में जो सब-की-सब सगी बहनें थीं, एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें तीन ख्यात हुए, उनमें सबसे बड़ा पुत्र भृङ्गकार था। अन्य दो पुत्रों के नाम बलवान् व्रतपति तथा सुप्रिय अपस्वान्त थे। भृङ्गकार की स्त्री द्वारवती सुन्दर सन्ततियोंवाली थी, उसने तीन सर्वगुणसम्पन्न कन्याओं को उत्पन्न किया था। जिनमें स्त्रियों में परम सुन्दर सत्यभामा परम दृढ़व्रतपरायण तथा तपस्विनी थी। पिता ने उसे कृष्ण को समर्पित करने की बात की थी। कृष्ण ने जिस स्यमन्तक नामक बहुमूल्य मणि को शक्रजित् को दिया था, उसे बभ्रु ने धारण किया था। भोज वंशीय शतधन्वा ने उससे उस मणि को छीनकर अक्रूर को दे दिया ।।५२-५६।। शतधन्वा ने परम सुन्दरी सत्यभामा की प्राप्ति के लिए अक्रूर से सहायता

तदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अक्रूरो रत्नमन्विछन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ।।५७।।
भद्रकारं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः। रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ।।५८।।
अक्रूरस्तु तदा रत्नमादाय स नरर्षभः। समयं कारणं चक्रे बोध्यो नान्यस्त्वयेत्युत ।।५९।।
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वं प्रधर्षितः। मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ।।६०।।
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ।।६१।।
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः। भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पार्श्वस्थाऽश्रूण्यवर्तयत् ।।६२।।
पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्। तुल्यार्थे चैव भ्रातृणां नियोजयति सात्यकिम् ।।६३।।
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः। पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ।।६४।।
हतः प्रसेनः सिंहेन शत्रुजिज्छतधन्वना। स्यमन्तकमहं मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ।।६५।।
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम्। स्यमन्तको महाबाहो तदाऽस्माकं भविष्यति ।।६६।।
ततः प्रवृत्ते रुद्धे तु तुमुले भोजकृष्णयोः। शतधन्वा न चाक्रूरमवैक्षत्सर्वतो दिशि ।।६७।।
अनष्टश्वावरोहं तु कृत्वा भोजजनार्दनौ। शक्तोऽपि साध्याद्धार्दिक्यो नाक्रूरोऽभ्युपपद्यत ।।६८।।
अपयाने ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः। योजनानां शतं साग्रं यथा च प्रत्यपद्यत ।।६९।।

की प्रार्थना की, अक्रूर ने उस मणिश्रेष्ठ स्यमन्तक की प्राप्ति की आशा से उससे सहायता की याचना की। जिस पर रात्रि के समय सोते हुए भद्रकार को महाबलवान् शतधन्वा ने मारकर उस बहुमूल्य मणि को अक्रूर को दे दिया। नरश्रेष्ठ अक्रूर ने मणि को लेते समय उससे प्रतिज्ञा करा लिया कि हमारे षड्यन्त्र को तुम्हें किसी से नहीं बतलाना होगा। कृष्ण जब तुम्हें पीड़ित करेंगे तो हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। इस समय सारी द्वारकापुरी हमारे वश में है। पिता के मारे जाने पर यशस्विनी सत्यभामा बहुत दुःखी हुई और रथ पर चढ़कर वारणावत नगर को गयी ।।५७–६१।। वहाँ पहुँचकर उसने भोजवंशीय शतधन्वा के इस दारुण कर्म को पति से निवेदन किया और परम कातर होकर उसके बगल में बैठकर आँसू गिराती रही। वारणावत में पाण्डवों को जल जाने पर हरि ने पिण्डादिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं और उस समय अपने भाइयों के स्थान पर सात्यकि को नियुक्त किया। भगवान् मधुसूदन ने तुरन्त द्वारकापुरी में जाकर अपने बड़े भाई हलधर से सभी बातें बतलाकर यह निवेदन किया, 'हे सर्व–शक्ति–सम्पन्न! जिस स्यमन्तक मणि के कारण सिंह ने प्रसेनजित् का निधन किया था, उसी के कारण शतधन्वा ने शत्रुजित् का निधन किया है, मैं उसी स्यमन्तक को चाहता हूँ, आप शतधन्वा का संहार करें। आप शीघ्र ही रथ पर सवार हों, हे महाबाहु! महाबलवान् भोज का संहार करने पर ही स्यमन्तक हम लोगों के हाथ लगेगा ।।६२–६६।। इस प्रकार परामर्श कर लेने के उपरान्त जब भगवान् कृष्ण और भोजवंशी शतधन्वा में तुमुल युद्ध छिड़ गया तब पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार शतधन्वा ने लड़ाई के मैदान में दसों दिशाओं में देखा पर अक्रूर का कहीं भी पता न लगा। रणक्षेत्र में भगवान् जनार्दन और शतधन्वा घोड़े पर सवार थे; उस समय हृदय से मित्र तथा सहायता में समर्थ होने पर भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिए नहीं आये। इससे शतधन्वा बहुत भयभीत हुआ और वहाँ

विज्ञातहृदया नाम शतयोजनगामिनी। भोजस्य वडवा दिव्या यया कृष्णमयोधयत्।।७०।।
प्रवृद्धवेगा वडवा त्वध्वनां शतयोजनम्। दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वानमर्हयत्।।७१।।
ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात्स्वेदाच्च वै द्विजाः। खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्।।७२।।
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया। पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम्।।७३।।
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः। मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित्।।७४।।
स्यमन्तकं न चापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्। निवृत्तं चाब्रवीत्कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली।।७५।।
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषाऽन्वितः। धिक्शब्दमसकृत्पूर्वं प्रत्युवाच जनार्दनम्।।७६।।
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्। कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः।।७७।।
प्रतिवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः। सर्वकामैरुपहतैमैथिलेनैव पूजितः।।७८।।
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः। नानारूपान्क्रतून्सर्वानाजहार निरर्गलान्।।७९।।
दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह। स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशाः।।८०।।
अर्थान्रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च। षष्टिवर्षगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत्।।८१।।

से भाग निकलने की बात सोचने लगा। शतधन्वा की विज्ञातहृदया नाम की घोड़ी थी, जिसके द्वारा विचार करते-ही-करते सौ योजन दूर पहुँच गया। उसी दिव्य गुणसम्पन्न घोड़ी पर चढ़कर वह भगवान् कृष्ण से युद्ध कर रहा था। उस तीव्रवेगशालिनी घोड़ी के वेग को सौ योजन देखकर, और उस पर चढ़कर शतधन्वा को भागते देखकर कृष्ण ने पीछा किया।।६७-७१।। द्विजवृन्द! भगवान् कृष्ण के पीछा करने पर अति परिश्रम से प्रचुर परिमाण में पसीना निकलने के कारण शतधन्वा की घोड़ी के जब प्राण निकल गये तब उन्होंने बलराम से कहा, हे महाबाहु! आप यहीं रहिये, मैं देख रहा हूँ, वह घोड़ी तो मर गयी है, अतः पैदल ही जाकर स्यमन्तक मणि को मैं शतधन्वा से छीन लाऊँगा। ऐसा कहकर परम अस्त्रवेत्ता भगवान् अच्युत ने पैदल ही जाकर मिथिलाधिपति-शतधन्वा का संहार किया, किन्तु उस महाबलशाली भोजवंशीय शतधन्वा के मार डालने पर भी स्यमन्तक को उसके पास नहीं देखा। वहाँ से शतधन्वा को मारकर जब भगवान् कृष्ण लौटे तब हलधर बलराम ने उनसे स्यमन्तक मणि माँगा।।७२-७५।। कृष्ण ने कहा कि मणि तो वहाँ पर नहीं मिली। उनकी इस बात से बलराम बहुत क्रुद्ध हुए और अनेक बार जनार्दन को धिक्कारा। बलराम ने आगे कहा, भाई के नाते तुम्हें मैं क्षमा प्रदान कर रहा हूँ, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो जा रहा हूँ, मेरा अब द्वारका से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न तुमसे तथा वृष्णिवंशियों से ही कोई प्रयोजन है। शत्रुओं के विनाश करनेवाले बलराम जी ने कृष्ण से ऐसी बातें कर मिथिलापुरी में प्रवेश किया, वहाँ पर मिथिलावासियों ने उन्हें सभी प्रकार के उपहार अर्पित किये और बड़ा सम्मान किया।।७६-७८।। इधर इसी अवधि में बुद्धिमानों में श्रेष्ठ प्रभु ने अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान बिना किसी विघ्न-बाधा के सम्पन्न किया। महायशस्वी गाधिपुत्र ने उसी स्यमन्तक के लिए अपनी रक्षा के हेतु एक दीक्षामय कवच भी पहन रखा था। इस साठ वर्ष की अवधि में उसने अपने इन यज्ञों में विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्न एवं द्रव्यादि लगाये थे। उस परम बुद्धिमान् महात्मा के ये यज्ञ अक्रूर यज्ञ के नाम से विख्यात हो चले थे। उनमें बहुत परिमाण में

सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ।।८२।।
अक्रूरयज्ञा इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वन्नदक्षिणाः
अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिलां प्रभुः । गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान् ।।८३।।
प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः । आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ।।८४।।
अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्धमुपायात्पुरुषर्षभः । युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्नं सह बन्धुमता बली ।।८५।।
स्वफल्कतनयायां तु नरायां नरसत्तमौ । भृङ्गकारस्य तनयौ विश्रुतौ सुमहाबलौ ।।८६।।
जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नो बन्धुमांश्च तौ । वधार्थं भृङ्गकारस्य कृष्णो न प्रीतिमान्भवेत् ।।८७।।
ज्ञातिभेदभयाद्भीतस्तमुपेक्षितवांस्तथा । अपयाते तथाऽक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ।।८८।।
अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवत्तद्वधोद्यतम् । ततः प्रासादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ।।८९।।
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दानपतौ तथा । प्रववर्ष सहस्राक्षः कुक्षौ जलनिधेस्ततः ।।९०।।
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसंमताम् । अक्रूरः प्रददौ श्रीमान्प्रीत्यर्थं यदुपुंगवः ।।९१।।
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् । सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ।।९२।।
यच्च रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो । तत्प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिमत्र मा कृथाः ।।९३।।
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा मम । सुसंरूढः सकृत्प्राप्तस्तकालाश्रित्य यो महान्(?) ।।९४।।

अन्न एवं दक्षिणा रूप में द्रव्य व्यय किया गया था, और वे सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले थे ।।७९–८२।। उसी अवधि में प्रभुवर्य्य कुरुपति दुर्योधन ने मिथिलापुरी में जाकर बलराम से गदा चलाने की दिव्य शिक्षा ग्रहण की थी। इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् कृष्ण के साथ वृष्णि और अंधकों ने बड़ी अनुनय-विनय कर बलराम को प्रसन्न किया और उन्हें द्वारकापुरी चलने के लिए बाध्य किया। बलवान् पुरुष में श्रेष्ठ अक्रूर युद्ध में बन्धुमान के साथ शत्रुघ्न का संहारकर अंधकों के साथ द्वारकापुरी से बाहर चले गये। ये दोनों महाबलवान् पुत्र भृङ्गकार के थे, स्वफल्क की पुत्री नरा में इन दोनों प्रख्यात पुरुषरत्नों का जन्म हुआ था। अंधकों के स्वामी भृङ्गकार के ये दोनों शत्रुघ्न और बन्धुमान नामक पुत्र परम बलवान् थे। भृङ्गकार की मृत्यु के कारण भगवान् कृष्ण अक्रूर से प्रसन्न नहीं रहते थे। जाति भेद के भय से तथा समाज उपेक्षित होकर अक्रूर द्वारकापुरी के बाहर चले गये थे। उनके चले जाने पर इन्द्र ने वृष्टि करना ही बन्द कर दिया ।।८३–८८।। अनावृष्टि के कारण समस्त राष्ट्र का विनाश उपस्थित हो गया, लोग परस्पर मारने-काटने को उद्यत हो गये। इस दुर्घटना से प्रभावित होकर कुकुर और अंधकों ने जाकर अक्रूर को प्रसन्न किया। दानशिरोमणि अक्रूर जब लौटकर द्वारकापुरी में आये तब सहस्र नेत्र इन्द्र ने विपुल वृष्टि की, यहाँ तक कि समुद्र में भी विपुल वृष्टि हुई। यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीमान् अक्रूर ने प्रसन्न करने के लिए अपनी सर्वगुणसम्पन्न शीलवती भगिनी को वासुदेव कृष्ण को समर्पित किया। भगवान् वासुदेव ने योगबल से अक्रूर के पास स्यमन्तक मणि का होना जान लिया और एक बार भरी सभा में उन्होंने अक्रूर से कहा, 'सम्माननीय! सर्वसमर्थ! अक्रूर जी! आपके पास जो सर्वश्रेष्ठ सुन्दर स्यमन्तक मणि है, उसे हमें दे दीजिये, इसमें इनकार न कीजिये ।।८९–९३।। इसके लिए साठ वर्ष से हमारा क्रोध आपकें ऊपर पैदा हुआ है, उस महान् क्रोध को प्रकाशित करने का अवसर मुझे एक बार मिला है। आज समय पड़ने

ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्वतसंसदि । प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ।।९५।।
तत आर्जवसंप्राप्तबभ्रुहस्तादरिंदमः । ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणिं बभ्रवे पुनः ।।९६।।
स कृष्णहस्तात्संप्राप्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् । आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ।।९७।।
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् । वेद मिथ्याभिशस्तिं स न व्रजेच्च कथंचन ।।९८।।
अनमित्राच्छिर्निर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् । सत्यवाक्सत्यसंपन्नः सत्यकस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।९९।।
सात्यकिर्युयुधानश्च तस्य भूतिः सुतोऽभवत् । भूतेर्युगंधरः पुत्र इति भौत्याः प्रकीर्तिताः ।।१००।।
*माद्र्यासुतस्य जज्ञे तु सुतः पृश्निर्युधाजितः । जज्ञाते तनयौ पृश्नेः स्व (श्व) फल्कश्चित्रकश्च यः ।।१०१।।
स्व (श्व) फल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते । नास्ति व्याधिभयं तत्र न चावृष्टिभयं तथा ।।१०२।।
कदाचित्काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमाः । त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ।।१०३।।
स तत्र वासयामास स्व (श्व) फल्कं परमार्चितम् । स्व (श्व) फल्क परिवासेन प्रावर्षत्पाकशासनः ।।१०४।।
स्व (श्व) फल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम् । गान्दिनीं नाम गां सा हि ददौ विप्राय नित्यशः ।।१०५।।

पर मैं उस मणि की याचना कर अपने उस पुराने क्रोध को शान्त करना चाहता हूँ। भगवान् कृष्ण के इस वचन को सुनकर परम बुद्धिमान् अक्रूर ने सात्वत वंशियों की भरी सभा में बिना किसी क्लेश के उस स्यमन्तक मणि को भगवान् वासुदेव को समर्पित किया। शत्रुओं को वश में करनेवाले भगवान् वासुदेव इस प्रकार सरलतापूर्वक अक्रूर के हाथ से उस महामणि के प्राप्त हो जाने पर पुनः प्रसन्न मन से अक्रूर को वह मणि वापस कर दिया। भगवान् कृष्ण के हाथ से उस मणिवर स्यमन्तक को प्राप्तकर गान्दिनीनन्दन अक्रूर ने उसे यथास्थान अलंकृत कर लिया और उस समय अंशुमान की तरह वे सुशोभित हुए ।।९४–९७।। भगवान् के ऊपर लगायी गयी इस मिथ्या अपवादमूलक वार्ता को, जो वास्तव में विशुद्धि और उत्तम शिक्षा देनेवाली है, जो व्यक्ति जानता है, वह कभी ऐसे मिथ्या अपवाद का भाजन नहीं हो सकता। कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि की उत्पत्ति हुई, उनके पुत्र परम सत्यवादी सत्याचरणपरायण सत्यक हुए। सत्यक के पुत्र सात्यकि हुए जिनका दूसरा नाम युयुधान भी था। सात्यकि के पुत्र भूति हुए। भूति के पुत्र युगन्धर हुए। इन सभी भौत्य के नाम से विख्यात वृष्णिवंशियों का विवरण कह चुका। माद्री के पुत्र युधाजित् के पृश्नि नाम से विख्यात पुत्र हुआ। पृश्नि के स्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज स्वफल्क परम धर्मात्मा थे, वे जहाँ पर विद्यमान रहते थे, वहाँ पर व्याधियों तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। द्विजवर्यवृन्द! एक बार कभी सर्वसमर्थ काशिराज के राज्य में इन्द्र ने तीन वर्ष तक लगातार वृष्टि ही नहीं की। काशिराज ने परम सम्माननीय महाराज स्वफल्क को अपने यहाँ बुलाकर निवास करवाया, स्वफल्क के वास करते ही इन्द्र ने वहाँ पर वृष्टि की। स्वफल्क ने काशिराज की परम सुन्दरी कन्या गान्दिनी के साथ अपना विवाह किया था, गान्दिनी प्रतिदिन ब्राह्मणों को गोदान करती थी ।।९८–१०५।। ऐसा कहा जाता है कि गान्दिनी अपनी माता के गर्भ में अनेक सौ वर्षों तक रही, उत्पन्न नहीं हुई, गर्भावस्था में अवस्थित

---

* नास्त्यर्धमिदं क. पुस्तके।

वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताऽब्रवीत् ।।१०६।।
सा मातुरुदरस्था वै बहुवर्षशतान्किल । प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गौर्दिने दिने ।।१०७।।
जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चापि तिष्ठसि । तथेत्युवाच तां तस्याः पिता काममपूपुरत् ।।१०८।।
यदि दत्ता तदा स्यां हि यदि स्वामीहतां पितः । तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः स्वः (श्व) फल्को भूरिदक्षिणः ।।१०९।।
दाता यज्वा च शूरश्च श्रूतवानतिथिप्रियः । गिरिरक्षस्ततो यक्षः शत्रुघ्नो वाऽरिमर्दनः ।।११०।।
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः । आवाहप्रतिवाहौ च वसुदेवा वराङ्गना ।।१११।।
धर्मभृच्च शृष्टचयो वर्गमोचस्तथाऽपरः । देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमितौ ।।११२।।
अक्रूरादुग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ । अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।।११३।।
चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ।।११४।।
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुवर्मा चर्मवर्मभृत् । ककुदं भजमानं च शमीकम्बलबर्हिषौ ।।११५।।
सत्यकात्काशिदुहिता लेभे सा चतुरः सुतान् । कपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मजः ।।११६।।
ककुदस्य सुतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयोऽभवत् । ख्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः ।।११७।।
तस्याऽऽसीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रोऽभवत्किल । अश्वमेधं तु पुत्रार्थं आजहार नरोत्तमः ।।११८।।
तस्माच्चाभिजितः पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसुः ।

उससे पिता ने कहा, गर्भस्थ सन्तान! तुम शीघ्र उत्पन्न हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम किस लिए गर्भ में निवास कर रहे हो।' राजा की ऐसी बातें सुनकर गर्भावस्था में ही कन्या ने उत्तर दिया, 'पिता जी! यदि आप प्रतिदिन गौओं का दान करें तब मैं उत्पन्न होऊँगी।' पिता ने 'बहुत अच्छा' कहकर कन्या की मनःकामना पूर्ण की! उसी गान्दिनी के स्वफल्क के संयोग से परम दानी, परम यज्ञकर्त्ता, शूरवीर, वेदज्ञ, अतिथिसेवक अक्रूर उत्पन्न हुए। महाराज स्वफल्क भी परम दानी थे। अक्रूर के अतिरिक्त स्वफल्क के अन्य पुत्र भी उत्पन्न हुए, जिनके नाम ये हैं—उपमंगु, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरक्ष, यक्ष, शत्रुघ्न अथवा अरिमर्दन, धर्मभृत्, शृष्टचय, वर्गमोच, आवाह तथा प्रतिवाह। इनके अतिरिक्त परमसुन्दरी वसुदेवा नाम की कन्या भी थी ।।१०६-१११।। अक्रूर के संयोग से उग्रसेनी में दो परिवार को आनन्द देनेवाले सुपुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे देव और अनुपदेव। ये दोनों पुत्र देवताओं के समान गुणशाली थे। चित्रक के जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे, पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुवर्मा, चर्मभृत्, वर्मभृत्, अभूमि और बहुभूमि। श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो स्त्रियाँ थीं। काशिराज की कन्या ने सत्यक के संयोग से चार पुत्रों को प्राप्त किया जिनके नाम थे ककुद, भजमान, शमी और कम्बलबर्हिष। ककुद के पुत्र वृष्टि थे, वृष्टि के पुत्र का नाम कपोतरोमा था। कपोतरोमा का पुत्र रेवत था। उस रेवत का पुत्र तुम्बुरुसखा हुआ, जो परम प्रसिद्ध विद्वान् था, इसी के नाम चन्दनोदकदुंदुभि भी ख्यात थे ।।११२-११७।। उसका पुत्र अभिजित् हुआ, उस अभिजित् से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने पुत्र-प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था, उस यज्ञ की वेदी के मध्य भाग से पुनर्वसु

तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितः । ततस्तु विद्वान्धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः ।।११९।।
तस्यापि पुत्रमिथुनं बाहुबाणाजितः किल । आहुकश्चाऽऽहुकी चैव ख्यातौ मतिमतां वरौ ।।१२०।।
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान्प्रति तमाहुकम् । सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ।।१२१।।
रथानां मेघघोषाणां सहस्त्राणि दशैव तु । नासत्यवादी त्वासीत्तु नायज्वा नासहस्त्रदः ।।१२२।।
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न कृशोऽभवत् । आहुकस्य धृतिः पुत्र इत्येवमनुशुश्रुम ।।१२३।।
श्वेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमान्हयान् । अशीतिमश्वनियुतान्याहुकप्रतिमोऽव्रजत् ।।१२४।।
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रतिमोऽभवत् । रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्त्राण्येकविंशतिः ।।१२५।।
तावन्त्येव सहस्त्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि । भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत्किङ्किणी किल ।।१२६।।
आहुकश्चाऽऽहुकान्धाय स्वसारं त्वाहुकी ददौ । आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ।।१२७।।
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ।।१२८।।
देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरञ्जिता । तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय तां ददौ ।।१२९।।
वृकदेवोपदेवा च तथाऽन्या देवरक्षिता । श्रीदेवा शान्तिदेवा च महादेवा तथाऽपरा ।।१३०।।
सप्तमी देवकी तासां सुनामा चारुदर्शना । नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः ।।१३१।।

का प्रादुर्भाव हुआ था जिसके कारण पुनर्वसु परम विद्वान्, धर्मज्ञ, दानशील, हवनकर्त्ता थे। उन पुनर्वसु के दो जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न हुए–ऐसी प्रसिद्धि है, जिनके नाम अपने बाहुबल तथा बाणों से कभी पराजित न होनेवाले आहुक तथा आहुकी थे–ये दो के दोनों बुद्धिमानों में अग्रगण्य थे। उस आहुक के लिए पुराने लोग कुछ श्लोकों का गान करते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है। वे महाराज आहुक मेघों के समान भीषण रव करनेवाले, समस्त रणसामग्रियों से सुसज्जित, प्रत्येक अवयवों से सुसंगठित, ध्वजाओं और कवचों से सुरक्षित, दस सहस्र रथों से तथा सुन्दर श्वेत वर्ण के परिच्छद से सुशोभित, किशोर अवस्थावाले, दस सहस्र अस्सी अश्वों से परिवेष्टित होकर रण में आक्रमण करते थे। उसके वंश में उत्पन्न होनेवालों में से कोई भी ऐसा नहीं हुआ, जो असत्यवादी हो, यज्ञादि का अनुष्ठान न करता हो, एक सहस्र से कम दान करनेवाला हो, अपवित्र हो, अधर्मी हो, मूर्ख हो अथवा दुर्बल शरीरवाला हो अर्थात् उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले सब उपर्युक्त सब अवगुणों से सर्वथा रहित थे। उस महाराज आहुक के पुत्र धृति हुए–ऐसा हम लोगों ने सुना है ।।११८–१२३।। आहुक ने पूर्व दिशा में सुवर्ण और चाँदी के आभूषणों से सुसज्जित इक्कीस सहस्र हाथियों की बलवान् सेना लेकर भोजराज की समानता की थी, इसी प्रकार उत्तर दिशा में भी उतनी ही सेनाएँ लेकर भोजराज के ऊपर आक्रमण किया था, जिसमें उसकी किंकणी (पैर के घुँघुरू) उठ पड़ी थी–ऐसी प्रसिद्धि है। उस महाराज आहुक ने अपनी बहन आहुकी को आहुकान्ध को समर्पित किया था, उसके संयोग से आहुकान्ध को एक पुत्री तथा दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों पुत्रों के नाम देवक तथा उग्रसेन थे, ये दोनों पुत्र देवताओं के गर्भ (बच्चों) के समान प्रभावशाली तथा सुन्दर थे ।।१२४–१२७$\frac{१}{२}$।। देवक के जो पुत्र उत्पन्न हुए वे देवताओं के समान प्रभावशाली, सुन्दर तथा शूरवीर थे, इनके नाम थे देवदेव, सुदेव और देवरञ्जिता। उनकी सात बहनें भी थीं जिन्हें उन्होंने वसुदेव को समर्पित किया था, उनके नाम थे, वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, महादेवा तथा देवकी। देवकी इन सबों में देखने में परम सुन्दरी थी। उग्रसेन के नव पुत्र थे जिनमें कंस सबसे बड़ा था ।।१२८–१३१।। उन सबों के नाम थे, न्यग्रोध,

न्यग्रोधश्च सुनामा च कद्वशंकुश्च भूमयः। सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धात्तुष्टः सुपुष्टिमान् ।।१३२।।
(*तेषां स्वसारः पञ्चैव कर्मधर्मवती तथा। शतांकूराष्ट्रपाला च कह्वा चैव वराङ्गना ।।१३३।।
उग्रसेनो महापत्यो विख्यातः कुकुरोद्भवः)। कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ।।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावांश्च भवेन्नरः ।।१३४।।
भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथः। राज्याधिदेवः शूरश्च विदूरश्च सुतोऽभवत् ।।१३५।।
तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलवत्तराः। वातश्चैव निवातश्च शोणितः श्वेतवाहनः ।।१३६।।
शमी च गदवर्मा च निदातः शक्रशक्रजित्। शमिपुत्रः प्रतिक्षिप्तः प्रतिक्षिप्तस्य चाऽऽत्मजः ।।१३७।।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदिकः संबभूव ह। हृदिकस्य सुतास्त्वासन्दश भीमपराक्रमाः ।।१३८।।
कृतवर्मा कृतस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः। देवार्हश्च वनार्हश्च भिषग्द्वैतरथश्च यः ।।१३९।।
सुदान्तश्च धियान्तश्च नाकवान्कनकोद्भवः। देवार्हश्च सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलबर्हिषः ।।१४०।।
असमौजाः सुतस्तस्य सुसमौजाश्च विश्रुतः। अजावपुत्राय ततः प्रददावसमौजसे ।।
सुदंष्ट्रं च सुरूपं च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः ।।१४१।।
×अन्धकानामिमं वंशं कीर्तयानस्तु नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः ।।१४२।।

सुनामा, कद्व, शंकु, भूमय, सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धात्तुष्ट और पुष्टिमान्। इन नवों भाइयों की पाँच बहनें भी थीं, जिनके नाम थे कर्मवती, धर्मवती, शतांकु, राष्ट्रपाला और सुन्दरी कह्वा। उग्रसेन महान् सन्ततियोंवाला विख्यात कुक्कुरवंशीय राजा थे। इन परम तेजस्वी कुक्कुरों के वंश विवरण को जो मनुष्य स्मरण रखता है, वह अपने विपुल वंश का पालन तथा उत्तम सन्तानोंवाला होता है ।।१३२-१३४।। भजमान के पुत्र रथारोहियों में श्रेष्ठ विदूरथ हुए, उनके राज्याधिदेव शूर और विदुर नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से शूर के महाबलशाली पुत्र हुए, जिनके नाम वात, निवात, शोणित, श्वेतवाहन, शमी, गदवर्मा, निदात और शक्रजित् थे। इनमें से शमी का पुत्र प्रतिक्षिप्त था, प्रतिक्षिप्त का पुत्र स्वयम्भोज हुआ। स्वयम्भोज से हृदिक नामक पुत्र हुआ, हृदिक के दस भयानक पराक्रमशाली पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम कृतवर्मा था, उससे मँझला शतधन्वा हुआ, अन्य पुत्रों के नाम देवार्ह, वनार्ह, भिषक्, द्वैतरथ, सुदान्त, धियान्त, नाकवान् और कनकोद्भव थे ।।१३५-१३९$\frac{१}{२}$।। इनमें देवार्ह का पुत्र परम विद्वान् कम्बलबर्हिष उत्पन्न हुआ, उसके असमौजा और सुसमौजा नामक पुत्र थे। इनमें असमौजा को कोई पुत्र नहीं था, कृष्ण ने उसे सुदंष्ट्र और सुरूप नामक दो पुत्र दिये थे—अन्धकों का वंश विवरण इतना कहा जाता है। अन्धकों के इस वंशविवरण का नित्य कीर्त्तन करनेवाला मनुष्य इस लोक में अपने वंश का विपुल विस्तारक होता है—इसमें सन्देह नहीं ।।१४०-१४२।। शूर ने अस्मकी में

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

× नास्तीदमर्धं घ. पुस्तके।

अस्मक्यां जनयामास शूरो वै देवमीढुषम् । भाष्यां तु जनयामास शूरो वै देवमाहुषम् ।।१४३।।
भाष्यां तु जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुरुषा दश । वासुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ।।१४४।।
जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभिः प्राणदद्दिवि । आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद्दिवि ।।१४५।।
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् । मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।।१४६।।
यस्याऽऽसीत्पुरुषाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा । वेदभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ।।१४७।।
अनादृष्टिकडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिनः । श्यामः शमीको गण्डूषश्चत्वारस्तु वराङ्गनाः ।।१४८।।
पृथा च श्रुतवेदा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवा । राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ।।१४९।।
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् । अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ ।।१५०।।
तस्मात्कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा तथा । कुरुवीरः पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ।।१५१।।
पृथा जज्ञे ततः पुत्रांस्त्रीनग्निसमतेजसः । लोकेऽप्रतिरथान्वीराञ्शक्रतुल्यपराक्रमान् ।।१५२।।
धर्माद्युधिष्ठिरं पुत्रं मारुताच्च वृकोदरम् । इन्द्राद्धनंजयं चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ।।१५३।।
माद्रवत्यां तु जनितवाश्विनाविति विश्रुतम् । नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ।।१५४।।
जज्ञे च श्रुतदेवायां तनयो वृद्धशर्मणः । करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ।।१५५।।

देवमीढुष को उत्पन्न किया। भाषी में देवमाहुष की उत्पत्ति हुई। भोजपुत्री भाषी ने उन्हीं शूर के संयोग से दस पुरुषों (पुत्रों) को जन्म दिया। इनमें वसुदेव महाबलशाली थे, इनकी ख्याति पूर्वकाल में आनकदुन्दुभि नाम से थी। जिस समय उनका जन्म हुआ था उस समय आकाश में दुन्दुभि और मृदंग की अति गम्भीर ध्वनि होने लगी थी, शूर के राजभवन में आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी थी। सम्पूर्ण मर्त्यलोक में वासुदेव के समान रूपवान् कोई दूसरा नहीं था। उस पुरुषरत्न वसुदेव की कीर्ति चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति लोकमनोरंजनी तथा विशद थी। वासुदेव के उपरान्त शूर के वेदभाग नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके बाद देवश्रवा नामक पुत्र का जन्म हुआ था। इनके अतिरिक्त अनादृष्टि, कड, नन्दन, भृञ्जिन, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र थे। चार सुन्दरी कन्याएँ थीं ।।१४३-१४८।। जिनके नाम पृथा, श्रुतवेदा, श्रुतकीर्ति और श्रुतश्रवा थे, इनके अतिरिक्त राजाधिदेवी नामक कन्या भी थी। ये पाँचों कन्याएँ वीर पुत्रों की माताएँ थीं। कुन्ति ने पृथा को अपनी कन्या बनाया था, और उसका पणिग्रहण पाण्डु ने किया था। निस्संतान राजा कुन्तिभोज को पिता ने पृथा को दे दिया था। कुन्तिभोज की पोषित पुत्री होने के कारण वह कुन्ती नाम से विख्यात हुई। कुरुवंशियों में वीर पाण्डु ने कुन्ती को स्त्री रूप में वरण किया था। पृथा ने उन पाण्डु के संयोग से अग्नि के समान परम तेजस्वी तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था। उन तीन पुत्रों की बराबरी करनेवाला कोई महारथी पृथ्वी में नहीं था, वे इन्द्र के समान महान् पराक्रमशाली एवं वीर थे। पृथा ने धर्म के अंश से युधिष्ठिर नामक पुत्र को मारुत के अंश से वृकोदर (भीम) नामक पुत्र को तथा इन्द्र के अंश से धनञ्जय (अर्जुन) नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। अश्विनीकुमारों के अंश से माद्रवती में नकुल और सहदेव नामक दो पुत्ररत्नों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों पुत्र परम स्वरूपवान् एवं सत्त्वगुणशाली थे ।।१४९-१५४।। वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवा में करूष देश के अधिपति वीर महाबलशाली दन्तवक्र को उत्पन्न किया। केकयदेश की

कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे संतर्दनः पुनः। चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ ।।१५६।।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव ह ।।१५७।।
दमघोषस्य राजर्षेः पुत्रो विख्यातपौरुषः। यः पुराऽऽसीद्दशग्रीवः संबभूवारिमर्दनः ।।१५८।।
पटुश्रवानुजस्तस्य रुजकन्यानुजास्तथा। पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः ।।१५९।।
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा। तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमी तथा ।।१६०।।
सुगन्धिर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके। रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्याऽऽत्मजाऽभवत् ।।१६१।।
ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयिताऽऽनकदुन्दुभेः। ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं निशवं तथा ।।१६२।।
दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारककुशीतकौ। चित्रां नाम कुमारीं च रौहिण्यष्टौ व्यजायत ।।१६३।।
पौत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञाता निशितोत्सुकौ। पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशुः सत्यधृतिस्तथा ।।१६४।।
मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिकौ गिर एव च। शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ।।१६५।।
कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत। अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ।।१६६।।
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमाः। भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च (*भद्रविद्यस्तथैव च ।।१६७।।
भद्रबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च। सुपार्श्वकः कीर्तिमांश्च) रोहिताश्वश्च भद्रजः ।।१६८।।

राजमहिषी श्रुतकीर्ति में सन्तर्दन नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उसके अतिरिक्त चेकितान और बृहत्क्षत्र नामक दो अन्य महाबलशाली पुत्र भी उसके उत्पन्न हुए! अवन्ति देश के अधीश्वर विन्द और अनुविन्द–ये दोनों भाई भी उसी के पुत्र थे। श्रुतश्रवा से चेदि देश का स्वामी शिशुपाल का जन्म हुआ ।।१५५–१५७।। वह शिशुपाल राजर्षि दमघोष का पुत्र था, उसके पौरुष की पर्याप्त प्रसिद्धि थी। वह पूर्व जन्म में शत्रुमर्दन दशग्रीव रावण के रूप में उत्पन्न हुआ था। पटुश्रवा अनुज और रुजकन्या अनुजा थी। वसुदेव की तेरह परम सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, उनके नाम थे, पौरवी, रोहिणी, अपरा, मदिरा, भद्रा, वैशाखी और देवकी। ये सात पटरानियाँ थीं। सुगन्धि और वनराजी ये दो परिचारिकाएँ थीं। रोहिणी और पौरवी–ये दोनों वाल्मीक की कन्याएँ थीं। सबसे बड़ी पत्नी रोहिणी महाभाग्यशालिनी आनकदुन्दुभि वसुदेव की परम प्रिया थीं, उनके संयोग से सबसे बड़े पुत्र बलराम को तथा अन्य सारण, निशव, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक, कुशीतक नामक आठ पुत्रों को एवं चित्रा नामक एक कुमारी को उत्पन्न किया ।।१५८–१६३।। बलराम के दो निशित और उत्सुक नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसुदेव के पौत्र थे। इनके अतिरिक्त पार्श्वी, पार्श्वनन्दी, शिशु, सत्यधृति, मन्दवाह्य, रामाण, गिरिक, गिर, शुक्लगुल्म, गुल्म, दरिद्रान्तक नामक पुत्र भी बलराम के थे। इनसे बड़ी पाँच कुमारियाँ भी थीं, उनके नाम सुनिये। अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतबला उनके नाम थे। ये पाँच परम बुद्धिमान् सारण की पुत्रियाँ थीं। भद्राश्व, भद्रगुप्ति, भद्रविद्य, भद्रबाहु, भद्ररथ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान्, रोहिताश्व, भद्रज, दुर्मद और अभिभूत–ये रोहिणी

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

दुर्मदश्चाभिभूतश्च रोहिण्याः कुलजाः स्मृताः । नन्दोपनन्दौ मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथा चलः ।।१६९।।
चित्रोपचित्रे कन्ये च स्थितः पुष्टिरथापरः । मदिरायाः सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे ।।१७०।।
उपबिम्बोऽथ बिम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसौ । चत्वार एते विख्याता भद्रपुत्रा महाबलाः ।।१७१।।
वैशाख्यां समदाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमुत्तमम् । देवक्यां जज्ञिरे शौरिः सुषेणः कीर्तिमानपि ।।१७२।।
तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चमः । षष्ठो भद्रविदेकस्य कंसः सर्वाञ्जघान तान् ।।१७३।।
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान्संबभूव ह । लोकनाथः पुनर्विष्णुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः ।।१७४।।
अनुजाताऽभवत्कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी । कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनंदिनी ।।१७५।।
सुभद्रायां रथी पार्थादाभिमन्युरजायत । वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ।।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ।।१७६।।
अतोऽस्य सहदेवायां शूरो जज्ञे मयासखः । शाङ्र्गदेवाऽजनत्तम्बुं शौरी जज्ञे कुलोद्वहम् ।।१७७।।
उपसङ्गं वसुं चापि तनयौ देवरक्षितौ । एवं दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत् ।।१७८।।
विजयं रोचनं चैव वर्धमानं तथैव च । एतान्सर्वान्महाभागानुपदेवा व्यजायत ।।१७९।।
+स्वगाहवं महात्मानं वृकदेवी त्वजायत । आगाही च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायिणी ।।१८०।।

से उत्पन्न होनेवाले पुत्र–पौत्रादिकों के नाम कहे गये हैं। नन्द, उपनन्द, मित्र, कुक्षिमित्र, चल, पुष्टि और सुदेव ये पुत्रगण तथा चित्रा और उपचित्रा, नामक दो कन्याएँ–मदिरा की सन्ततियाँ कही गयी हैं ।।१६४–१७०।। उपबिम्ब, बिम्ब, सत्त्वदन्त और महौजा–ये चार महाबलशाली एवं विख्यात पुत्र भद्रा के थे। वसुदेव ने वैशाखी में परम योग्य कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। देवकी में सुषेण, कीर्तिमान्, तदय, भद्रसेन, यजुदाय और भद्रविद् नामक छह पुत्रों को उत्पन्न किया था, इन सबको कंस ने मार डाला। ऐसी स्थिति में प्रजापति लोकनायक भगवान् विष्णु आयुष्मान् कृष्ण के रूप में सातवीं बार उत्पन्न हुए, उनके पश्चात् सुन्दर बोलनेवाली सुभद्रा उत्पन्न हुईं, इन्हीं वृष्णिनन्दिनी सुभद्रा का नाम बाद में कृष्णा विख्यात हुआ। कृष्णा के गर्भ से अर्जुन ने महान् वीर अभिमन्यु को उत्पन्न किया। वसुदेव की महाभाग्यशालिनी सातों स्त्रियों में अन्य जो शूर पुत्र हुए, उनके नाम सुनिये ।।१७१–१७६।। सहदेवा में वसुदेव के संयोग से परमवीर मयासख नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शार्ङ्गदेवा के गर्भ से तम्बु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शौरी ने कुलोद्वह को उत्पन्न किया। उपसङ्ग, वसु, देव, रक्षित, विजय, रोचन और वर्धमान नामक महाभाग्यशाली पुत्रों को उपदेवा ने उत्पन्न किया। वसुदेव के इन दस पुत्रों को भी कंस ने मार डाला था। वृकदवी ने महात्मा स्वगाहव को उत्पन्न किया। इसी वृकदेवी का नामान्तर आगाही, स्वसा, सुरूपा और शिशिरायिणी भी था ।।१७७–१८०।। सुन्दर नासिकावाली देवकी ने

---

* इदमर्धं नास्ति ख. घ. पुस्तकयोः ।

सप्तमं देवकीपुत्रं सुनासा सुषुवे भुवम् । गवेषणं महाभागं सङ्ग्रामे चित्रयोधिनम् ।।१८१।।
श्राद्धदेवं पुरा येन वनं विरचितं द्विजा । सैव्यायामददाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमव्ययम् ।।१८२।।
सुगन्धीव (न्धर्व) नराजी च शौरेरास्तां परिग्रहः । पुण्ड्रश्च कपिलेश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ ।।
तयोराजाऽभवत्पुण्ड्रः कपिलस्तु वनं ययौ ।।१८३।।
तस्यां समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो बली । राजा नाम निषादोऽसौ प्रथमः स धनुर्धरः ।।१८४।।
विख्यातो देवरातस्य महाभागः सुतोऽभवत् । पण्डितानां मतं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ।।१८५।।
अस्मक्यां लभते पुत्रमनादृष्टिं यशस्विनम् । निवर्तः शक्रशत्रुघ्नं श्राद्धदेवं महाबलम् ।।१८६।।
आजायत श्राद्धदेवो निषधादिर्यतः श्रुतः । एकलव्यो महावीर्यो निषादैः परिवर्धितः ।।१८७।।
गण्डूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददात्सुतौ । चारुदेष्णं च साम्बं च कृतास्त्रौ शस्तलक्षणौ ।।१८८।।
तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्रौ कनकस्य तु । *वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् ।।
सौतिर्ददौ सुतं वीरं शौरिं कौशिकमेव च ।।१८९।।
तपाश्च क्रोधनुश्चैव विरजाः श्यामसृञ्जिमौ । अनपत्योऽभवच्छ्यामः श्यामकस्तु वनं ययौ ।।
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्नुयात् ।।१९०।।

महाभाग्यशाली, संग्राम भूमि में विचित्र युद्ध करनेवाले गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उनके सातवें पुत्र ख्यात हुए। द्विजवृन्द! इन्हीं गवेषण ने पूर्वकाल में वनप्रान्त में श्राद्धदेव की रचना की थी। वसुदेव ने सैव्या नामक अपनी एक अन्य पत्नी में कौशिक नामक परम पराक्रमशाली पुत्र को उत्पन्न किया था। सुगन्धी और वनराजी नामक जो दो अन्य स्त्रियाँ वसुदेव की थीं उनसे पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। वसुदेव के इन दोनों पुत्रों में पुण्ड्र राजा हुए और कपिल वन को चले गये ।।१८१-१८३।। वसुदेव का एक परम बलवान् निषाद नामक पुत्र और था, जो धनुर्धारियों में अग्रगण्य एवं परम पुरुषार्थी राजा था। देवरात का पुत्र परम यशस्वी एवं महाभाग्यशाली था। पण्डित लोग उसे देवश्रवा के नाम से जानते हैं। निवर्त ने अस्मकी से परमयशस्वी अनादृष्टि नामक पुत्र को उत्पन्न किया। इसी प्रकार महाबलवान् श्राद्धदेव और शक्रशत्रुघ्न नामक दो पुत्र और हुए। यही श्राद्धदेव निषध जाति के मूल पुरुष थे और यही निषादों द्वारा पोषित महाबलशाली एकलव्य के नाम से भी विख्यात हुए। भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्ततिहीन गण्डूष को चारुदेष्ण और साम्ब नामक दो पुत्र प्रदान किये थे, जो शस्त्रास्त्रवेत्ता और प्रशंसनीय गुणोंवाले थे। कनक के तन्तिज और तन्तिमाल नामक दो पुत्र थे, प्रतापशाली वसुदेव ने इन दोनों पुत्रों को पुत्रविहीन वास्तावलि के हाथों समर्पित किया, सौति ने वीर पुत्र शौरि और कौशिक को उसे समर्पित किया था ।।१८४-१८९।। उसी वंश में तपा, क्रोधनु, विरजा, श्याम और सृञ्जिम नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, इनमें से श्याम को कोई सन्तान नहीं थी, जिससे वह वन को चला गया था।

---

* वस्तावनेरिति संप्रदानार्थे षष्ठी।

+य इदं जन्म कृष्णस्य पठेत नियतव्रतः। श्रावयेद्ब्राह्मणश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात् ।।१९१।।
देवदेवो महातेजाः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायणः प्रभुः ।।१९२।।
देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्बाहुस्तु संजज्ञे दिव्यरूपः श्रियाऽन्वितः ।।१९३।।
प्रकाशो भगवान्योगी कृष्णो मानुषमागतः। अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थः स एव भगवान्प्रभुः ।।१९४।।
नारायणो यतश्चक्रे प्रभवं चाव्ययो हि सः। देवो नारायणोभूत्वा हरिरासीत्सनातनः ।।१९५।।
योऽसृजच्चाऽऽदिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम्। अदितेरपि पुत्रत्वमेव यादवनन्दनः ।।
देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत् ।।१९६।।
प्रसादजं यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम्। वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवराक्षसाम् ।।१९७।।
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः। कुलं पुण्यं यतः कर्म भेजे नारायणः प्रभुः ।।१९८।।
सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः। जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ।।१९९।।
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः। ज्योतींष्यभ्यधिकं रेजुर्जायमाने जनार्दने ।।२००।।
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी। मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः ।।२०१।।

वह भोजत्व की निन्दा करता था, उसे राजर्षि की उपाधि प्राप्त हुई थी। जो ब्राह्मण नियमपूर्वक भगवान् कृष्ण के इस जन्मवृत्तान्त को दूसरे को सुनाता है अथवा पढ़ता है, वह महान् सुख की प्राप्ति करता है। प्रजापति, महान् तेजस्वी देवदेव प्रभु भगवान् नारायण विहार करने के लिए मनुष्य योनि में कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं। वे कमलनेत्र, दिव्यस्वरूप चतुर्भुज भगवान् अपनी समस्त कान्ति से समन्वित होकर वसुदेव की परम तपस्या के फलस्वरूप देवकी के गर्भ में उत्पन्न होते हैं ।।१९०–१९३।। वे परम प्रकाशमान भगवान् ही योगेश्वर कृष्ण रूप में प्रादुर्भूत होते हैं, वे परम प्रभु भगवान् अव्यक्त स्वरूपवाले निराधार एवं व्यक्त स्वरूपवाले साकार–दोनों ही हैं। वे नारायण भगवान् कृष्ण अव्ययात्मा एवं समस्त चराचर सृष्टि के विधायक हैं। वे ही नारायण रूप में (सर्वदा एकरूप) सर्वशक्तिसम्पन्न हरि हैं। जो सृष्टि के आदिमकाल में आदिपुरुष प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं। वे यादवनन्दन कृष्ण ही अदिति के पुत्र रूप में प्रादुर्भूत होकर देवदेव विष्णु एवं इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से भी विख्यात होते हैं। वे ही सर्वशक्तिमान् अपने अनुग्रह से देवताओं के शत्रु दैत्यों, दानवों और राक्षसों के विनाश के लिए अदिति के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं ।।१९४–१९७।। राजर्षि ययाति के वंश में समुत्पन्न परम बुद्धिमान् वसुदेव का कुल परम पवित्र हुआ जिसमें भगवान् नारायण स्वयं प्रादुर्भूत होकर लौकिक कर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए। जिस समय वे भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए, उस समय सागर काँपने लगे, पर्वत हिलने लगे, अग्निहोत्र स्वयमेव प्रज्वलित हो उठे, मङ्गलकारी शीतल मन्द सुगंध वायु बहने लगी, धूल का उड़ना शान्त हो गया, इसी प्रकार भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने पर सूर्य चन्द्रमा ग्रह–नक्षत्रादि ज्योतिष्पुञ्जों का प्रताप अधिक निखर उठा। जिस शुभ वेला में भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए उस समय अभिजित् नामक नक्षत्र था, जयन्ती नामक रात्रि थी और विजय नामक मुहूर्त था ।।१९८–२०१।। अव्यक्त, शाश्वत, प्रभु, नारायण, भगवान् हरि अपने

+ नायं श्लोको घ. पुस्तके।

अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिर्नारायणः प्रभुः। जायते स्मैव भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रजाः ॥२०२॥
आकाशात्पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वरः। गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहस्रशः ॥२०३॥
वसुदेवस्तु तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम्। श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा दिवि दिव्यैः सुलक्षणैः ॥
उवाच वसुदेवः स्वं रूपं संहर वै प्रभो ॥२०४॥
भीतोऽहं कंसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम्। मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शनाः ॥२०५॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहृतवान्प्रभुः। अनुज्ञातः पिता त्वेनं नन्दगोपगृहं गतः ॥
उग्रसेनमते तिष्ठन्यशोदायै तदा ददौ ॥२०६॥
तुल्यकालं तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा। यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपतेः ॥२०७॥
यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभुः। तामेव रजनी कन्यां यशोदाऽपि व्यजायत ॥२०८॥
तं जातं रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशः। प्रादात्पुत्रं यशोदायै कन्यां तु जगृहे स्वयम् ॥२०९॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत्। सुतस्ते सर्वकल्याणो यादवानां भविष्यति ॥
अयं स गर्भो देवक्या अस्मत्क्लेशान्हनिष्यति ॥२१०॥
उग्रसेनात्मजे तां च कन्यामानकदुन्दुभिः। निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११॥

सुन्दर नेत्रों से प्रजाओं को मोहित करते हुए जिस समय प्रादुर्भूत हुए उस समय इन्द्र ने आकाश से पुष्प की वृष्टि की और सहस्रों की संख्या में एकत्र हो-होकर गन्धर्वों और महर्षियों ने मांगलिक गानों से मधुसूदन की स्तुति की। वसुदेव ने रात्रि के समय श्रीवत्स चिह्न से विभूषित, अन्यान्य दिव्य लक्षणों से अलंकृत अधोक्षज (जिनके स्वरूप का साक्षात्कार इन्द्रियों से नहीं होता) भगवान् को पुत्र रूप में समुत्पन्न देखा और निवेदन किया कि हे प्रभो! आप अपने इस रूप को समाप्त कीजिये। हे तात! मैं कंस से बहुत भीत हूँ–यही इतना निवेदन आपसे कर रहा हूँ, मेरे ज्येष्ठ पुत्रों को जो देखने में अद्भुत सौन्दर्यशाली थे, उसने मार डाला है ॥२०२-२०५॥ वसुदेव की ऐसी बातें सुनकर महामहिमामय भगवान् ने अपने दिव्यस्वरूप को समेट लिया। पिता वसुदेव जी ने भगवान् की आज्ञा से उन्हें नन्दगोप के घर पहुँचाकर उग्रसेन की सम्मति से यशोदा की गोद में दे दिया। उस समय संयोगतः देवकी और यशोदा–दोनों गर्भवती थीं, यशोदा नन्दगोप की पत्नी थी। जिस रात्रि को वृष्णिकुलोद्धारक भगवान् कृष्ण प्रादुर्भूत हुए थे उसी रात में यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया था। महान् यशस्वी वसुदेव जी पुत्र रूप भगवान् को भलीभाँति गोदी में छिपाकर यशोदा को दे आये और उनकी कन्या को अपने घर उठा लाये ॥२०६-२०८॥ नन्दगोप को भगवान् कृष्ण को समर्पित कर वसुदेव ने कहा कि आप मेरी रक्षा करें, तुम्हारा यह पुत्र सबका कल्याण करनेवाला है एवं यदुवंशियों का उद्धारक होगा, यह देवकी का वह चिरअभिलषित गर्भ है, जो हम लोगों के समस्त क्लेशों को दूर करेगा।' इस प्रकार नन्दगोप के गृह से लौटकर आनकदुन्दुभि वसुदेव जी ने उग्रसेन के पुत्र कंस के हाथों में अर्पित करते हुए कहा कि यही शुभ लक्षण सम्पन्न कन्या उत्पन्न हुई है। अपनी बहन देवकी में कन्या की उत्पत्ति सुनकर दुष्टात्मा कंस ने कुछ भी नहीं ध्यान दिया, और अत्यन्त

+स्वसायां तनयां कंसो जातां नैवावधारयत् । अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदाऽन्वितः ।।२१२।।
हता वै या यदा कन्या जपत्येष वृथामतिः । कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता ।।२१३।।
पुत्रवत्परिपाल्यान्तो देवा देवान्यथा तदा (?) । तामेव विधिनोत्पन्नामाहुः कन्या प्रजापतिम् ।।२१४।।
एकादशा तु जज्ञे वै रक्षार्थं केशवस्य ह । तां वै सर्वे सुमनसः पूजयिष्यन्ति यादवाः ।।
देवदेवो दिव्यवपुः कृष्णः संरक्षितोऽनया ।।२१५।।

ऋषय ऊचुः

किमर्थं वसुदेवस्य भोजः कंसो नराधिपः । जघान पुत्रान्बालान्वै तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ।।२१६।।

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथा कंसः पुत्रानानकदुन्दुभेः । जाताञ्जाताञ्शिशून्सर्वान्निष्पिपेष वृथामतिः ।।२१७।।
भयाद्यथा महाबाहुर्जातः कृष्णो विवासितः । तथा च गोषु गोविन्दः संवृद्धः पुरुषोत्तमः ।।२१८।।
उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्य धीमतः । सारथ्यं कृतवान्कंसो युवराजस्तदाऽभवत् ।।२१९।।
ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् । कंसो यथा सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी ।।२२०।।
यामेतां वहसे कंस रथेन परकारणात् । अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति ।।२२१।।

प्रसन्न होकर उसे भी छोड़ दिया। वह मूढ़ यह कहने लगा कि यदि कन्या ही उत्पन्न हुई है तो उसे मरी ही समझना चाहिए ।।२०९-२१२$\frac{१}{२}$।। इस प्रकार कंस द्वारा छोड़ दिये जाने पर वह कन्या वृष्णिगृह में सत्कारपूर्वक जीवन बिताते हुए दिनानुदिन बढ़ने लगी। पुत्र की भाँति उसकी पालना होने लगी। देवगण अपने में उसकी उत्पत्ति की चर्चा करने लगे। उन्होंने प्रजापति ब्रह्मा से उस कन्या के बारे में विस्तारपूर्वक सब बातें बतलायीं और यह कहा कि केशव की रक्षा के लिए यह भगवती एकदशा स्वयं प्रादुर्भूत हुई हैं, उसकी यादवगण प्रसन्न मन से पूजा करेंगे। दिव्यदेहधारी देवदेव भगवान् कृष्ण इसी भगवती एकादशा द्वारा सुरक्षित हैं ।।२१३-२१५।।

ऋषिवृन्द बोले–सूत जी ! भोजवंशीय राजा कंस ने किस कारण से वसुदेव के छोटे-छोटे पुत्रों का संहार किया–इसे विस्तारपूर्वक हम लोगों से बतलाइये ।।२१६।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द ! जिस कारण से मूर्ख कंस आनकदुन्दुभि वसुदेव के उत्पन्न होनेवाले समस्त पुत्रों का तुरन्त संहार कर देता था और जिस भय के कारण महाबाहु भगवान् कृष्ण उत्पन्न होते ही दूसरी जगह पहुँचाये गये, और गौओं के बीच में जिस प्रकार पुरुषोत्तम गोविन्द का पालन-पोषण हुआ उस सारी कथा को हम आप लोगों से बतला रहे हैं, सुनिये। ऐसा कहा जाता कि जब कंस युवराज था, तब वसुदेव और देवकी का रथ हाँका करता था। एक बार जबकि वह रथ हाँक रहा था आकाश से एक ऐसी दैवी वाणी किसी भूत के मुख से सुनायी पड़ी, जिसके कारण कंस सदा भीत रहने लगा। वह दिव्य वाणी कठोर स्वर से सुनायी पड़ी थी, सभी लोगों ने उसे सुना था। वह दैवी वाणी इस प्रकार की थी, 'कंस ! जिसे प्रेमवश अथवा वसुदेव को प्रसन्न करने के लिए रथ पर चढ़ाकर घुमाते हो, उसी के सातवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी ।।२१७-२२१।। इस दैवी वाणी को सुनकर कंस को बहुत ही खेद हुआ और उस मूर्ख ने तुरन्त

+ अयं प्रयोगाश्चाऽऽर्षः।

तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः। निष्क्रम्य (ष्कृष्य) खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा ।।२२२।।
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान्। उग्रसेनात्मजं कंसं सौहृदात्प्रणयेन च ।।२२३।।
न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन। उपायः परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ।।२२४।।
योऽस्याः संभवते गर्भ सप्तमः पृथिवीपते। तमहं ते प्रयच्छामि तत्र कुर्यां यथाक्रमम् ।।२२५।।
त्वं त्विदानीं यथेष्टत्वं वर्तेथा भूरिदक्षिण। सर्वानस्यास्तु वै गर्भान्सत्यं नेष्यामि ते वशम् ।।२२६।।
एवं मिथ्या नरश्रेष्ठ वागेषा न भविष्यति। एवमुक्तोऽनुनीतः स जग्राह तनयांस्तदा ।।२२७।।
वसुदेवश्च तां भार्यामवाप्य मुदितोऽभवत्। कंसश्चास्यावधीत्पुत्रान्पापकर्मा वृथामतिः ।।२२८।।

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी। नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा व महायशाः ।।
यो विष्णुं जनयामास या चैनं चाभ्यवर्धयत् ।।२२९।।

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्याऽऽसन्नादित्यास्तु स्त्रियस्तथा। अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः समवर्धयत् ।।२३०।।
अचरत्स महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ।।२३१।।

म्यान से तलवार खींचकर देवकी को मारने की इच्छा प्रकट की। प्रतापशाली महाबाहु वसुदेव ने ऐसी स्थिति देख उग्रसेन के पुत्र कंस से परम सौहार्द तथा प्रेमपूर्वक इस प्रकार निवेदन किया, यादवनन्दन! क्षत्रिय कभी किसी स्त्री का संहार नहीं करते, इस कार्य के लिए मैं एक उपाय देख रहा हूँ! पृथ्वीपति कंस! इस तुम्हारी बहन देवकी के सातवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगा, उसे मैं तुम्हें दे दूँगा, उस समय उसका चाहे जो करना। हे विपुल दान करनेवाले! कंस! तुम इस समय भी जो चाहो कर सकते हो। इसके सातवें गर्भ की बात क्या मैं इसके समस्त गर्भों को तुम्हें दे दूँगा—इसे सच-सच समझो। हे नरश्रेष्ठ! मेरी यह बात कदापि मिथ्या न होगी।' वसुदेव द्वारा इस प्रकार अनुनय-विनयपूर्वक कहे जाने पर कंस ने देवकी के समस्त पुत्रों को मारने की बात स्वीकर कर ली और देवकी को छोड़ दिया। वसुदेव अपनी पत्नी देवकी को जीती प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। इसी कारण से पापात्मा मूर्ख कंस देवकी के समस्त पुत्रों का संहार करता था ।।२२२-२२८।।

ऋषिवृन्द बोले—सूत जी! ये वसुदेव और नन्दगोप कौन थे? जिन्होंने भगवान् विष्णु को जन्म दिया? यशस्विनी देवकी कौन थीं? और महान् यशस्विनी यशोदा कौन थीं? जिन्होंने भगवान् का पालन-पोषण किया—इसे हम लोग सुनना चाहते हैं ।।२२९।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! ये नन्दादि पुरुष कश्यप के और यशोदा आदि स्त्रियाँ आदिति की अंशभूत थीं। महाबाहु भगवान् कृष्ण ने देवकी के मनोरथों को पूर्ण किया था। ये देवाधिदेव योगात्मा भगवान् विष्णु अपनी योगमाया से संसार

नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम् । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।।२३२।।
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा । सात्राजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ।।२३३।।
सै(शै)व्या सुदेवी माद्री च सुशीला नाम चापरा । कालिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवासिनी ।।२३४।।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश । चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणाश्चाप्सरसां दिवि ।।
विचिन्त्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह मेषिताः ।।२३५।।
पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु । एताः पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुताः ।।२३६।।
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेष्णः शरभस्तथा । चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ।।२३७।।
चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्यां कन्या चारुमही तथा । सानुर्भानुस्तथाऽक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ।।२३८।।
जरान्धकस्ताम्रवक्षा भौमरिश्च जरन्धमः । चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात् ।।२३९।।
भानुर्भौमरिका चैव ताम्रपर्णी जरन्धमाः । सत्यभामासुतानेताञ्जाम्बवत्याः प्रजाः शृणु ।।२४०।।
भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्दुस्तथैव च । सप्तबाहुश्च विख्यातः कन्या भद्रावती तथा ।।
संबोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुताः ।।२४१।।
सङ्ग्रामजिच्च शतजित्तथैव च सहस्रजित् । एते पुत्राः सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिताः ।।२४२।।

के समस्त जीवों को मोहितकर धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वयमेव वृष्णि कुल में प्रादुर्भूत हुए थे। मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था एवं असुरों के विनाश के लिए अवतरित हुए थे। उत्पन्न होकर उन्होंने रुक्म की कन्या रुक्मिणी का हरण किया। नग्नजित् की कन्या सत्या, सत्राजित की कन्या सात्राजिती, सत्यभामा, जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती, रोहिणी, सैव्या, सुदेवी, माद्री, सुशीला, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, जालवासिनी आदि सोलह सहस्र देवियाँ उनकी स्त्री थीं। स्वर्ग में परम सुन्दरी अप्सराओं के जो चौदह गण कहे गये हैं, उन्हें देवताओं के साथ सम्मति कर इन्द्र ने मर्त्यलोक में भेज दिया था ।।२३०–२३५।। वासुदेव की पत्नी होने के लिए वे राजाओं के घर में उत्पन्न हुईं। विष्वक्सेन की ये महाभाग्यशालिनी पत्नियाँ परम प्रख्यात थीं। रुक्मिणी में प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, शरभ, चारु, चारुभद्र, भद्रचारु, चारुविन्ध्य नामक पुत्र तथा चारुमही नामक कन्या उत्पन्न हुई। सानु, भानु, अक्ष, रोहित, मन्त्रय, जरान्धक, ताम्रवक्षा, भौमरि, जरन्धम ये पुत्र तथा भानु, भौमरिका, ताम्रपर्णी और जरन्धमा नामक चार कन्याएँ गरुड़ध्वज भगवान् के संयोग से सत्यभामा में उत्पन्न हुईं। अब जाम्बवती की सन्ततियों का विवरण सुनिये। भद्र, भद्रगुप्त, भद्रबिन्दु, सप्तबाहु ये पुत्र तथा भद्रावती नामक एक कन्या जो संबोधिनी नाम से विख्यात थी, इन्हें जाम्बवती की सन्ततियाँ जानना चाहिए ।।२३६–२४१।। संग्रामजित्, शतजित् और सहस्रजित्–ये सुदेवी के पुत्र विष्वक्सेन के संयोग से उत्पन्न कहे जाते हैं। वृक, वृकश्व, वृकजित्, वृजिनी, सुराङ्गना, मित्रबाहु और सुनीथ ये नग्नजित् की पुत्री सत्या की सन्तानें हैं। इसी प्रकार भगवान् वासुदेव की पुत्रों की संख्या सहस्रों तक समझिये, कुछ लोग उनकी संख्या लाखों तक कहते हैं।

वृको वृकश्वो वृकजिद्वृजिनी च सुराङ्गना । मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजास्त्विह ।।२४३।।
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत । प्रयुतं तु समाख्यातं वासुदेवस्य ये सुताः ।।२४४।।
अयुतानि तथाऽष्टौ च शूरा रणविशारदाः । जनार्दनस्य वंशो वः कीर्तितोऽयं यथातथम् ।।२४५।।
बृहतो नर्तकोन्नेयी सुनये सङ्गता तथा । कन्या स बृहदुक्थस्य शौनेयस्य महात्मनः ।।२४६।।
तस्याः पुत्रास्तु विख्यातास्त्रयः समितिशोभनाः । अङ्गदः कुमुदः श्वेतः कन्या श्वेता तथैव च ।।२४७।।
अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्रवरश्च यः । चित्रसेनः सुतश्चास्य कन्या चित्रवती तथा ।।२४८।।
तुम्बश्च तुम्बबाणश्च जनस्तम्बस्य तावुभौ । उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्रारः क्षिप्र एव च ।।२४९।।
*भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषस्य सुतावुभौ । युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम विश्रुता ।।२५०।।
तस्यामश्वसुतो जज्ञे वज्रो नाम महायशाः । वज्रस्य प्रतिबाहुस्तु सुचारुस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२५१।।
काश्मा सुपार्श्वं तनयं जज्ञे साम्बा तरस्विनम् । तिस्रः कोट्यस्तु पुत्राणां यादवानां महात्मनाम् ।।२५२।।
षष्टिशतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः । देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः ।।२५३।।
दैवासुरे हता ये च असुरा वै महातपाः । इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान् ।।
तेषामुत्सादनार्थं तु उत्पन्ना यादवे कुले ।।२५४।।

इनमें दस सहस्र और आठ महान् शूरवीर तथा रणविशारद थे। भगवान् जनार्दन के वंश का विवरण जैसा मुझे ज्ञात था, आप लोगों से बतला चुका ।।२४२–२४५।। महान् पराक्रमी शिनिवंशीय राजा बृहदुक्थ की कन्या बृहती, जिसका नर्तकोन्नेयी दूसरा नाम है, सुनय के साथ विवाह सूत्र में सम्बद्ध हुई। उसके तीन पुत्र युद्धस्थल में परम प्रख्यात हुए, उनके नाम थे, अंगद, कुमुद और श्वेत। श्वेता नामकी एक कन्या भी थी। अवगाह, चित्र और शूर चित्रवर नामक जो वृष्णि वंशी थे, उनमें चित्रवर के पुत्र चित्रसेन हुए और उनकी कन्या चित्रवती हुई। तुम्ब और तुम्बवान् ये दो जनस्तम्ब के पुत्र थे। उपाङ्ग के वज्रार और क्षिप्र नामक दो पुत्र कहे जाते हैं। गवेष के भूरीन्द्रसेन और भूरि नामक दो पुत्र हुए। युधिष्ठिर की परम यशस्विनी सुतनु नामक जो कन्या थी, उसमें महान् यशस्वी अश्वसुतवज्र की उत्पत्ति हुई। वज्र के पुत्र प्रतिबाहु हुए, प्रतिबाहु के पुत्र सुचारु हुए ।।२४६–२५१।। काश्मा ने सुपार्श्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया और साम्बा ने तरस्वी नामक पुत्र को उत्पन्न किया'। इस प्रकार महाबलशाली यदुवंशियों के कुल में तीन करोड़ सन्तानें उत्पन्न हुईं। जिनमें साठ लाख परम बलशाली एवं पराक्रमी थे। वे सब-के-सब परम तेजस्वी यदुवंशी देवताओं के अंशभूत होकर इस मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए थे। पूर्व देवासुर संग्राम में जो असुरगण मारे गये थे, वे ही महान् तपस्या करके पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न हो-होकर सबको पीड़ित कर रहे थे, उन्हीं सबके विनाश के लिए ये लोग यादव कुल में उत्पन्न हुए। इन परम बलवान् यदुवंशियों के ग्यारह कुल कहे जाते हैं, किन्तु जिस कुल में भगवान् विष्णु प्रादुर्भूत हुए, उसी एक वंश का अनुवर्तन शेष सभी वंशोंवाले करते रहे। उन सभी वंशों में उत्पन्न होनेवाले यदुवंशियों के लिए एकमात्र प्रमाणस्वरूप एवं सर्वेसर्वा भगवान्

---

* इदमर्धं नास्ति ग. पुस्तके।

कुलानि दश चैकं च यादवानां महात्मनाम् । सर्वमेककुलं यद्वद्वर्तते वैष्णवे कुले ।।२५५।।
विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः । निदेशस्थायिभिस्तस्य बध्यन्ते सर्वमानुषाः ।।२५६।।
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः । कीर्तिता कीर्तनाच्चैव कीर्तिसिद्धिमभीप्सिताम् ।।२५७।।
+य इदं कृष्णवंशस्य सुचरित्रस्य धीमतः । स्वर्गापवर्गदं श्रेष्ठं महापातकनाशनम् ।।
अपुत्रो लभते पुत्रं वित्तार्थी वित्तमाप्नुयात् ।।२५८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुवंशानुकीर्तनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।।९६।।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्

×सूत उवाच

मनुष्यप्रकृतीन्देवान्कीर्त्यमानान्निबोधत । संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नः साम्ब एव च ।।१।।
अनिरुद्धश्च पञ्चैते वंशवीराः प्रकीर्तिताः । सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ।।२।।

विष्णु (कृष्ण) ही थे। उनकी आज्ञा में निरत रहकर इन सब यदुवंशियों ने उन समस्त पापात्मा मनुष्यों का, जो मानव समाज को उत्पीड़ित कर रहे थे, संहार किया। वृष्णिवंशियों की सन्तानों का यह विवरण कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार में मैं आप लोगों से बतला चुका। इसके संकीर्त्तन करने से अभीष्ट कीर्ति एवं सिद्धि की प्राप्ति होती है। जो परम बुद्धिशाली भगवान् कृष्ण के वंश का वह श्रेष्ठ विवरण, जो स्वर्गापवर्ग प्रदान करनेवाला तथा महान् पातकों का विनाशक है, पढ़ता है, वह यदि अपुत्र है तो पुत्र प्राप्त करता है और यदि धनहीन है तो उत्तम सम्पत्ति का लाभ करता है ।।२५२-२५८।।

श्री वायुमहापुराण में विष्णुवंशकीर्त्तन नामक छानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९६।।

अध्याय ९७

सूत बोले–ऋषिवृन्द! मनुष्य योनि में जन्म लेनेवाले देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। सङ्कर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब एवं अनिरुद्ध ये पाँच यदुवंश के प्रमुख वीर कहे गये हैं। सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, मणिवर, शालकी,

---

+ अयं सार्धश्लोकोऽधिकः ख. पुस्तके।
× सूत उवाचेति नास्ति क. ग. घ. पुस्तकेषु

शालकी बदरश्चैव विद्वान्धन्वन्तरिस्तथा । नन्दिनश्च महादेवः शालङ्कायन उच्यते ।।
आदिदेवस्तदा जिष्णुरेभिश्च सह दैवतैः ।।३।।

ऋषय ऊचुः

विष्णुः किमर्थं संभूतः स्मृताः संभूतयः कति । भविष्याः कति वाऽन्ये तु प्रादुर्भावा महात्मनः ।।४।।
ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु किमर्थमिह जायते । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।५।।
विस्तरेणैव सर्वाणि कर्माणि रिपुघातिनः । श्रोतुमिच्छामहे सम्यग्देहैः कृष्णस्य धीमतः ।।६।।
कर्मणामानुपूर्व्यं च प्राहुर्भावाश्च ये प्रभोः । या चास्य प्रकृतिः सूत तां चास्मान्वक्तुमर्हसि ।।७।।
कथं स भगवान्विष्णुः सुरेष्वरिनिषूदनः । वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः ।।८।।
अमरैः सूत किं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलं कृतम् । देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहाऽऽगतः ।।९।।
देवमानुषयोर्नेता भूर्भुवः प्रसवो हरिः । किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ।।१०।।
यश्चक्रं वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम् । मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ।।११।।
गोपायनं यः कुरुते जगतां सार्वलौकिकम् । स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः ।।१२।।
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह । श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः ।।१३।।

बदर, परमविद्वान् धन्वन्तरि, नन्दिन प्रभृति महादेव के अनुचर (?) शालङ्कायन आदि देवताओं के साथ आदिदेव जिष्णु ये सब देवात्मा हैं ।।१–३।।

ऋषियों ने कहा–सूत जी! भगवान् विष्णु किस लिए पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिए उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव योनि में किस लिए जन्म धारण करते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान् शत्रुसंहारकारी भगवान् के शरीरों से जो–जो कर्म सम्पन्न होते हैं–उन सबको हम भलीभाँति सुनना चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बतलाइये, उसी तरह उनके अवतारों के विषय में भी क्रमानुसार वर्णन कीजिये, उन सर्वव्यापी भगवान् की प्रवृत्ति के बारे में भी हमें जिज्ञासा है। कृपया हमसे बतलाइये। महामहिमामय परम बुद्धिमान् शत्रुसंहारकारी वे भगवान् विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं ।।४–८।। हे सूत जी! इस बात को जानने की भी हमें उत्कण्ठा हो रही है कि सर्वदा पुण्यकर्मों में निरत रहनेवाले देवताओं ने ऐसा कौन–सा पुण्य कर्म किया जिससे देवलोक को छोड़कर इस मर्त्यलोक में उन्हें आना पड़ा ।।९।। देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगानेवाले, भूर्भुवः आदि लोकों के उपत्तिकर्त्ता भगवान् हरि किस लिए दिव्यगुणसम्पन्न अपनी आत्मा को मानवयोनि में समाविष्ट करते हैं ।।१०।। चक्र धारण करनेवालों में श्रेष्ठ जो भगवान् अकेले ही संसार में मानवमात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई? सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले जो भगवान् विष्णु इस समस्त चराचर जगत् की सब प्रकार से सर्वत्र रक्षा करनेवाले हैं, वे किस लिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं? और किस लिए गौओं

येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया । स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रयः ।।१४।।
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः । लोकमेकार्णवे चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ।।१५।।
यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं वपुरास्थितः । ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः ।।१६।।
येन सैहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुनः । पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ।।१७।।
यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः । पातालस्थोऽर्णवगतः पपौ तोयमयं हविः ।।१८।।
सहस्रचरणं देवं सहस्रांशुं सहस्रशः । सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ।।१९।।
नाभ्यरण्यां समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम् । एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ।।२०।।
येन ते निहता दैत्याः सङ्ग्रामे तारकामये । सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः ।।२१।।
गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः । उत्तरांशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः ।।
यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ।।२२।।
पुरारणी गर्भमधत्त दिव्यं तपःप्रकर्षाददितिः पुरा यम् ।।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं गर्भावमानेन भृशं चकार ।।२३।।

का पालन करते हैं? जो भूतात्मा भगवान् संसार के समस्त महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि एवं वायु) को धारण करनेवाले तथा बनानेवाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जानेवाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में किस लिए आते हैं? जो देवताओं की इच्छा से अपने तीन पगों में तीन लोकों को जीतकर जगत् में उत्तम तीनों वर्गों धर्म, अर्थ एवं काम अथवा सत्त्व, रजस्, तमो गुणों की मर्यादा स्थिर करते हैं, जो अन्त काल में दृश्य और अदृश्य मार्गों से अपने जलमय शरीर द्वारा समस्त जगत् का पान कर लेने के उपरान्त समस्त लोकों को एक महासमुद्र के रूप में बदल देते हैं ।।११–१५।। जो देवसत्तम भगवान् पुराणों में पुराणात्मा के नाम से प्रशंसित हैं, जो सूकर का शरीर धारणकर इस पृथ्वी का उद्धारकर उसे देवताओं को समर्पित करते हैं, जो प्रभु सिंह का शरीर धारणकर और शरीर के दो भाग कर महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु का संहार करते हैं, जिन प्रभु ने प्राचीनकाल में ऊर्व ऋषि के क्रोध से समुत्पन्न होकर और्व संवर्तक नामक अग्नि का स्वरूप धारणकर पाताल में स्थिर होकर जलमय हवि का पान किया, जिन भगवान् का वर्णन प्रत्येक युगों में सहस्र चरणोंवाला, सहस्र नेत्रोंवाला, सहस्र सिरोंवाला एवं दिव्यगुणसम्पन्न कहा गया है ।।१६–१९।। सृष्टि के आदिमकाल में, जबकि समस्त लोक एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गये थे, जिस परमात्मा की नाभि रूप अरणी में पितामह ब्रह्मा जी का निवास-स्थान भूत पंकज (कमल) उद्भूत हुआ, जो वास्तव में पंक से जायमान नहीं था। तारकामय संग्राम में जिन भगवान् ने सर्वदेवमय शरीर धारणकर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन अत्याचारी दानवों का संहार किया, जो प्राणिमात्र को संकट में डाले हुए थे, जिन्होंने गरुड़ पर सवार होकर परम गर्वीले कालनेमि का संहार किया, जो शाश्वत योग का अवलम्बनकर अमृत के समुद्र क्षीरसागर के उत्तरी छोर पर शयन करते हैं, जो महान् अज्ञानान्धकार के विनाशक हैं ।।२०–२२।। प्राचीनकाल में जिन दिव्यगुणसम्पन्न भगवान् को अपनी कठोर तपस्या के बल पर देवताओं की माता अदिति ने गर्भ में धारण किया, दैत्यों के समूहों के

यदाऽनिलो लोकपदानि हृत्वा चकार दैत्यान्सलिलेशयांस्तान् ।।
कृत्वाऽऽदिदेवस्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ।।२४।।
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा । अग्निमाहवनीयं च वेदिं चैव कुशस्त्रुचम् ।।२५।।
प्रोक्षणीयं स्त्रुवं चैवं अवभृथ्यं तथैव च । अथ त्रीनिह यश्चक्रे हव्यभागप्रदान्मखे ।।२६।।
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे काव्यादांश्च पितॄनपि । भोगार्थं यज्ञविधिना यो यज्ञो यज्ञकर्मणि ।।२७।।
यूपान्समित्स्त्रुचं सोमं पवित्रं परिधीनपि । यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञियांश्च तथाऽनलान् ।।२८।।
सदस्यान्यजमानांश्च अश्वमेधान्क्रतूत्तमान् । विबभ्राज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।।२९।।
युगानुरूपं यः कृत्वा त्रींल्लोकान्हि यथाक्रमम् । क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ।।३०।।
मूहूर्तास्तिथयो मासा दिनसंवत्सरं तथा । ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं नृषु ।।३१।।
आयुः क्षेत्राण्युपचयं लक्षणं रूपसौष्ठवम् । मेधा वित्तं च शौर्यं च शास्त्रस्यैव च पारणम् ।।३२।।
त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः । त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणाः ।।३३।।
सृष्टा लोकाः सुराश्चैव येनाऽऽनन्त्येन कर्मणा । सर्वभूतगणाः सृष्टाः सर्वभूतगणात्मना ।।३४।।
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः । गतागतानां यो नेता सर्वत्र विविधेश्वरः ।।३५।।

चारों ओर घिरे हुए अत्यन्त परेशान इन्द्र की जिन्होंने बड़ी रक्षा की। जिस समय पवन ने अत्यन्त उग्र रूप धारणकर समस्त लोकों को अपने वश में कर उन उद्धत दानवों को जलशायी कर दिया था, उस समय जो आदिदेव भगवान् विष्णु स्वर्ग के आधिपत्य पर पुरुहूत इन्द्र को प्रतिष्ठित करते हैं ।।२३-२४।। जो आदिदेव गार्हपत्य विधि से, अन्वाहार्य कर्म से आहवनीय अग्नि को, वेदी को, कुशाओं को, स्त्रुच को, प्रोक्षणीपात्र को, स्त्रुवा को, अवभृथ स्नान के लिए मँगायी गयी, समस्त वस्तुओं को बनानेवाले हैं, जो यज्ञादि कार्यों में हव्य भाग देने के लिए तीन अधिकारियों की व्यवस्था करते हैं, जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता एवं पितरों को श्राद्धभोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभकार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में अपने परम स्वरूप में अवस्थित रहकर भी यज्ञस्तम्भों, समिधा, स्त्रुच, सोमरस, पवित्र, परिधि, यज्ञोपयोगी अन्यान्य सामग्रियों, यज्ञाग्नि, यज्ञ कार्य के सदस्य, यजमान, अश्वमेधादि प्रमुख उत्तम यज्ञों को सुशोभित किया ।।२५-२९।। जिसने युग के अनुरूप तीनों लोकों की क्रमानुसार रचनाकर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान–ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास, संवत्सर, ऋतु, काल, योग, मनुष्यों में प्रचलित तीन प्रकार के प्रमाण, आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप, सौन्दर्य, बुद्धि, वित्त, शूरता, शास्त्रों के पाठ, तीन वर्ण, तीनों लोक, तीनों विद्याएँ, तीनों अग्नि, तीनों काल, तीनों कर्म, तीनों माया, तीनों गुण, समस्त लोक एवं समस्त सुरगणों को अपने अनन्त कर्मों द्वारा रचना की है, जिसने सर्वजीवसमूहों में व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करता है, जो गत–आगत–सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत् में विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिए

यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।।३६।।
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः । दिगन्तरं नभो भूमिरापो वायुर्विभावसुः ।।३७।।
चन्द्रसूर्यद्वयं ज्योतिर्युगेशः क्षणदाचरः । यः परः श्रूयते देवो यः परं श्रूयते तपः ।।३८।।
यः परं तपसः प्राहुर्यः परंपरमात्मवान् । आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभुः ।।३९।।
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः । सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ।।४०।।
वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम् । सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ।।४१।।
मनुष्याणां मनोभूतस्तपस्वी च तपस्विनाम् । विनयो नयतृप्तानां तेजस्तेजस्विनामपि ।।४२।।
विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ।।४३।।
देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः । रसाच्छोणितसंभूतिः शोणितान्मांसमुच्यते ।।४४।।
मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरूप्यते । अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रसंभवः ।।४५।।
शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा । *तथापि प्रथमं चाऽऽपस्ताः सौम्यराशिरुच्यते ।।४६।।

दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारों वर्णों के उत्पत्तिकर्त्ता एवं चारों वर्णों के रक्षक हैं; जो चारों प्रकार की विद्याओं के जाननेवाले, चारों आश्रमों के आश्रयभूत, एवं दिक् दिगन्तर, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, अन्यान्य ज्योतिष्पिण्ड, युगपति, निशाचर–सबके स्वरूप हैं, जो देव सबसे श्रेष्ठ एवं परम तपःस्वरूप सुने जाते हैं, जो तपस्या से भी श्रेष्ठ सुने जाते हैं, जो परम परमात्मविशिष्ट कहे जाते हैं, जो देव आदित्यों में आदि हैं, और जो महामहिमामय दैत्यों के विनाशकारी हैं ।।३०–३९।। जो प्रभु युगान्त के अवसरों पर अन्तक स्वरूप हो जाते हैं, जो लोकों के विनाश करनेवाले यमराज के भी अन्तक हैं, जो लोकसेतु समूह के भी सेतुस्वरूप हैं, जो समस्त पवित्र कर्म समूहों से भी अधिक पवित्र हैं, वेद के जाननेवालों के लिए जो एकमात्र ज्ञातव्य हैं, परम ऐश्वर्यशालियों के भी जो प्रभु हैं, भूतगणों के मध्य में जो सोमस्वरूप हैं, अग्नि के समान तेजस्वियों में जो अग्निस्वरूप हैं, मनुष्यों के जो मनस्वरूप हैं, तपस्या में निरत रहनेवाले तपस्वियों के तपःस्वरूप हैं, नीतिनिपुण प्राणियों के जो विनयस्वरूप हैं, तेजस्वियों के तेजःस्वरूप हैं, विग्रह (शरीर) धारण करनेवालों के जो विग्रहस्वरूप हैं, गतिमान् प्राणियों के जो गतिरूप हैं। वायु का उत्पत्ति स्थान आकाश है, अग्नि का प्राणस्वरूप वायु है, देवगणों का प्राणस्वरूप अग्नि है, और अग्नि के प्राणस्वरूप मधुसूदन भगवान् विष्णु हैं। अर्थात् जगत् के सबके प्राणस्वरूप भगवान् मधुसूदन हैं। रस से रक्त की उत्पत्ति होती है, रक्त से मांस की उत्पत्ति कही जाती है, मांस से मेदा की उत्पत्ति होती है, मेदा से हड्डियों का निर्माण होता है, हड्डियों से मज्जा बनती है और मज्जा से वीर्य बनता है ।।४०–४५।। शुक्र से काममूलक कर्म द्वारा गर्भ की उत्पत्ति होती है। इस गर्भ क्रिया में रस अथवा जल को सौम्यराशि तथा गर्भगत उष्णता से उत्पन्न होनेवाले ऋतुशोणित को द्वितीय राशि जानना चाहिए। वीर्य को सोमात्मक

---

* एतदर्धस्थाने तत्रापां प्रथमा चापः स सौम्यो राशिरुच्यत इति घ. पुस्तके। ख. ग. ङ. पुस्तकेष्वेतत्सदृश एव पाठा वर्तन्ते तेऽस्पष्टा इति नोल्लिखिताः।

÷गर्भोष्मसंभवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते। शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं पावकात्मकम् ।।४७।।
भावौ रसानुगावेतौ वीर्ये च शशिपावकौ। कफवर्गेऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ।।४८।।
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्। देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम् ।।४९।।
नाभीकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः। मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ।।५०।।
पित्तमग्निः स्मृतावेतावग्नीषोमात्मकं जगत्। एवं प्रवर्तितो गर्भो वर्ततेऽम्बुदसंनिभः ।।५१।।
वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना। स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्धयेत्पुनः ।।५२।।
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च। प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्धयन्परिवर्तते ।।५३।।
अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वशरीरगः। व्यानो व्यानस्यते येन समानः सर्वसंधिषु ।।५४।।
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायते × न्द्रियगोचरा। पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।।५५।।
सर्वेन्द्रिया निविष्टास्तं स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे। पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ।।५६।।
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलाश्रावं प्रवर्तते। तेजश्चक्षुष्विता ज्योत्स्ना तेषां यन्नामतः स्मृतम् ।।
सङ्ग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः* ।।५७।।

और आर्तव को पावकात्मक जानना चाहिए। ये दोनों भाव रस के अनुगत होते हैं, शुक्र व शोणितात्मक आर्तव को चन्द्रमा और सूर्य कहा जाता है। कफवर्ग में शुक्र और पित्तवर्ग में शोणित की स्थिति रहती है। कफ का स्थान हृदय है, पित्त नाभि में स्थित रहता है। शरीर के मध्य भाग में अवस्थित हृदय मन का स्थान कहा जाता है। नाभिकोष्ठ के भीतरी प्रान्त में हुताशन देव का निवास है। मन को प्रजापति जानना चाहिए, कफ को चन्द्रमा और पित्त को अग्नि कहा जाता है– अग्नि और चन्द्रमा से समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। इस प्रकार से मेघ के आकार में प्रवर्तित गर्भ स्थित रहता है ।।४६–५१।। वायु इस गर्भ में प्रविष्ट होकर परमात्मसत्ता से संगत होती है, और पाँच भागों में विभक्त होकर शरीर में स्थित रहते हुए गर्भ की वृद्धि करती है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान–ये पाँच वायु हैं। इनमें से प्राणवायु परमात्मसत्ता की वृद्धि करते हुए परिवर्तित होता है। अपान वायु शरीर के निम्नभाग में और उदान वायु शरीर के उर्ध्व भाग में विद्यमान रहती है। व्यान वायु–सर्वशरीर व्यापी एवं समान–शरीर की समस्त सन्धियों में समान भाव से गतिशील रहनेवाली है। इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त हुए गर्भ को पंच महाभूतों की प्राप्ति होती है, जो इन्द्रियगोचर होता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और ज्योति (अग्नि) ये पाँच महाभूत हैं ।।५२–५५।। गर्भ की उस अवस्था में इन्द्रियाँ उसमें निविष्ट होती हैं और अपनी–अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती हैं। उस इन्द्रियग्राम (समूह) समन्वित प्राणात्मक पार्थिव शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार पण्डित लोग बतलाते हैं। प्राण को वायु कहते हैं। शरीरस्थ छिद्र समूह आकाश से उत्पन्न होते हैं, उनसे जल का स्राव होता है। ज्योत्स्ना आँख की तेजस्विनी ज्योति है, उन इन्द्रिय समूहों के जो नाम स्मरण किये जाते हैं। जिस परम शक्ति के प्रभाव से उन इन्द्रियों के संग्रामादि कठोर विषम प्रवर्तित होते हैं ।।५६–५७।। इन समस्त लोकों की सृष्टि करता

÷ अत्र संधिरार्षः।

× अत्र संधिरार्षः।

* अत्र स्थले ऋषय ऊचुरित्यधिकं ख. पुस्तके।

इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजंल्लोकान्सनातनः । नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः ।।५८।।
एष नः संशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् । कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम् ।।५९।।
श्रोतुमिच्छामहे विष्णोः कर्माणि च यथाक्रमम् । आश्चर्याणि परं विष्णुर्वेददेवैश्च कथ्यते ।।६०।।
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामते । एतदाश्चर्यमाख्यानं कथ्यतां वै सुखावहम् ।।६१।।
प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मनः । कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोः सत्त्वमिहोच्यताम् ।।६२।।

सूत उवाच

अहं वः कीर्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मनः । यथा स भगवाञ्जातो मानुषेषु महातपाः ।।६३।।
सप्तसप्ततयः प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे । जायते च युगान्तेषु देवकार्यार्थसिद्धये ।।६४।।
तस्य दिव्यतनुं विष्णोर्गदता मे निबोधत । युगधर्मे परावृत्ते काले च शिथिले प्रभुः ।।६५।।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तेन देवासुरकृतेन च ।।६६।।

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते अध्याहारमवाप्नुयात् । एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं दैवासुरं कथम् ।।६७।।

हुआ जो सनातन पुरुष प्रतिष्ठित है वह इस मर्त्यलोक में किस लिए मानव शरीर धारण करता है? परम बुद्धिमान् सूत जी! इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान् विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करनेवालों की गति है वह मनुष्य शरीर क्यों धारण करता है? भगवान् विष्णु के इन आश्चर्य में डालनेवाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं, वेद एवं देवगण उन भगवान् विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते! भगवान् विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये। उनका यह आख्यान आश्चर्यों से भरा हुआ एवं कहनेवालों को परम सुख देनेवाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान् हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बतलाइये ।।५८-६२।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! मैं उन महात्मा भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव का वर्णन अर्थात् जिस प्रकार वे परम तपोनिष्ठ भगवान् मानव योनि में अवतीर्ण हुए उसे आप लोगों से कह रहा हूँ। भृगु के शापवश भगवान् के सप्त सप्तति (७७) अवतार कहे जाते हैं। युगान्त के अवसर पर देवताओं के कार्यों को पूर्ण करने के लिए वे उत्पन्न होते हैं। भगवान् की उस दिव्य देह का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जब युगधर्म का ह्रास हो जाता है और उसके प्रभाव शिथिल हो जाते हैं, उस समय वे महामहिमामय भगवान् भृगु के शापवश देवासुरों के संघर्ष की शान्ति के लिए एवं धर्म की व्यवस्था के लिए इस मर्त्यलोक में उत्पन्न होते हैं ।।६३-६६।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! उस देवासुर संग्राम में भगवान् विष्णु ने किस प्रकार अवतार ग्रहण किया था और वह देवासुर संग्राम किस प्रकार संगठित हुआ था, इसे हम लोग जानना चाहते हैं ।।६७।।

सूत उवाच

देवासुरं यथा वृत्तं ब्रुवतस्तन्निबोधत । हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति ।।६८।।
बलिनाऽधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत्परं तेषां देवानामसुरैः सह ।।६९।।
युगं वै दशसंकीर्णमासीदव्याहतं जगत् । निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुरा+ऽभवन् ।।७०।।
बलवान्वै विवादोऽयं संप्रवृत्तः सुदारुणः । देवासुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान् ।।७१।।
तेषां दायनिमित्तं वै सङ्ग्रामा बहवोऽभवन् । वराहेऽस्मिन्दश द्वौ च षण्डामर्कान्तगाः स्मृताः ।।७२।।
नामतस्तु समासेन शृणुध्वं तान्विवक्षतः । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ।।७३।।
तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः । सङ्ग्रामः पञ्चमश्चैव सुघोरस्तारकामयः ।।७४।।
षष्ठो ह्याडीवकस्तेषां सप्तमस्त्रैपुरः स्मृतः । अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्च नवमः स्मृतः ।।७५।।
वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हालाहलः स्मृतः । स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरकोलाहलोऽपरः ।।७६।।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते ।।७७।।
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु दैवतैः । महाबलो महासत्त्वः सङ्ग्रामेष्वपराजितः ।।७८।।
दंष्ट्रायां तु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता । प्राह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने ।।७९।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द ! जिस प्रकार वह देवासुर सग्राम घटित हुआ था, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। प्राचीनकाल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु त्रैलोक्य का शासक था। उसके उपरान्त पुनः दैत्यराज बलि के हाथ त्रैलोक्य का भार आया। उस समय देवताओं और असुरों में परम मित्रता थी। इस प्रकार दस युगों तक यह जगत् बिना किसी उपद्रव के रहा। उसकी आज्ञा में उस समय देवता और असुर दोनों ही थे ।।६८–७०।। तदनन्तर उन देवताओं और असुरों में घोर विनाशकारी दारुण विवाद उपस्थित हो गया, वाराहकल्प में बारह युद्ध हुए, जिनमें षण्ड और अमर्क सभी युद्धों में सम्मिलित कहे जाते हैं। उन युद्धों का नामपूर्वक वर्णन मैं संक्षेप में कर रहा हूँ, सुनिये। इनमें प्रथम युद्ध नरसिंह का था, दूसरा वामन का, तीसरा वाराह का, चौथा अमृतमंथन का, पाँचवाँ परम दारुण तारकामय नामक संग्राम था, छठवाँ युद्ध आडीवक और सातवाँ त्रिपुर दहन का था। इन युद्धों में आठवाँ अन्धकार युद्ध एवं नवाँ ध्वज युद्ध कहा जाता है। दसवाँ युद्ध वार्त जानना चाहिए, ग्यारहवाँ हालाहल के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार बारहवें युद्ध का नाम घोर कोलाहल है। प्रथम युद्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नरसिंह के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ। द्वितीय युद्ध में तीनों लोकों पर आक्रमण करने पर दैत्यराज बलि को भगवान् वामन ने बाँधा। देवताओं के साथ संघर्ष उपस्थित होने पर उस युद्ध में हिरण्याक्ष का निधन हुआ। वह महान् बलवान्, महान् पराक्रमी तथा संग्राम में कभी पराजित होनेवाला नहीं था ।।७१–७८।। तीसरे अवतार में वाराह ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से निकालकर पृथ्वी का उद्धार किया था। अमृतमंथन के अवसर पर देवराज

+ अत्र संधिरार्षः।

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः । इन्द्रेणैव स विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥८०॥
भवादवध्यतां प्राप्य विशेषास्त्रादिभिस्तु यः । सङ्ग्रामे निहतः षष्ठे शक्राविष्टेन विष्णुना ॥८१॥
अशक्नुवन्तो देवेषु पुरं गोप्तुं त्रिदैवतम् । निहता दानवाः सर्वे त्रिपुरस्त्र्यम्बकेण तु ॥८२॥
अष्टमे त्वसुराश्चैव राक्षसाश्चान्धकारकाः । जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव संगतान् ॥८३॥
संवृतान्दानवांश्चैव संगतान्कृत्स्नशश्च तान् । तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निबर्हिताः ॥८४॥
हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाछन्नश्च योधयन् । ध्वजे लक्ष्यं समाविश्य विप्रचित्तिर्महाभुजः ॥८५॥
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संहतान्कृत्स्नशश्च तान् । रजिः कोलाहले सर्वान्देवैः परिवृतोऽजयत् ॥
यज्ञामृतेन विजितौ षण्डामर्कौ तु दैवतैः ॥८६॥
एते देवाः पुरा वृत्ताः सङ्ग्रामा द्वादशैव तु । देवासुरक्षयकराः प्रजानामशिवाय च ॥८७॥
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ । तथा शतसहस्राणि ह्यबिकानि द्विसप्ततिः ॥
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥८८॥
पर्याये तस्य राजाऽनु बलिर्वर्षार्बुदं पुनः । षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च ॥८९॥

इन्द्र के द्वारा दैत्यराज प्रह्लाद पराजित हुए थे। इससे प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नित्य ही इन्द्र के संहार के लिए प्रयत्नशील रहता था। अन्त में इन्द्र ने परम पराक्रम दिखलाकर तारकामय संग्राम में उसका संहार किया था। उस दैत्य ने शंकर जी की आराधना कर अमरत्व का–विशेषतया अस्त्र–शस्त्रादिकों से न मारे जाने का–वरदान प्राप्त किया था, अतः इन्द्र के शरीर में आविष्ट होकर संग्रामभूमि में भगवान् विष्णु ने उसका संहार किया था। यह छठवाँ देवासुर संग्राम था ॥७९–८१॥ असुरों के पास एक परम सुरक्षित दुर्ग था, उसकी रक्षा में तत्पर दानवगण देवताओं की प्रतिष्ठा को सहन नहीं करते थे, त्र्यम्बक शिव जी ने उस त्रिपुर का विध्वंसकर समस्त दानवों का संहार किया। अष्टम देवासुर संग्राम में अंधकारस्वरूप असुरगण एवं राक्षसों के साथ देवताओं का संग्राम हुआ था; उसमें देवताओं और मनुष्यों को पराजित करनेवाले पितरगण भी उनकी सहायता कर रहे थे। भगवान् विष्णु की सहायता प्राप्तकर महादेव ने उन समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों को समूल नष्ट किया। एक युद्ध महाबलशाली विप्रचित्ति के साथ हुआ था, उसमें वह मायारूप धारणकर युद्ध कर रहा था, महेन्द्र ने उसके रथ के ध्वज को लक्ष्यकर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करनेवाले समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों का संहार कर दिया। देवताओं समेत रजि ने महान् कोलाहल नामक समर के बीच समस्त असुरों को पराजित किया था। उसमें देवताओं ने यज्ञीय अमृत द्वारा असुरों के पुरोहित षण्ड और अमर्क को पराजित किया था ॥८२–८६॥ देवताओं और असुरों में ये ही बारह युद्ध प्राचीनकाल में हुए थे; जिनमें देवताओं और असुरों का महान् विनाश हुआ था और प्रजावर्ग का भी पर्याप्त अमंगल हुआ था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु एक अरब बहत्तर लाख अस्सी सहस्र वर्षों तक समस्त त्रैलोक्य के अधीश्वर पद पर सुशोभित था ॥८७–८८॥ उसके बाद पर्यायक्रम से बलि दैत्यों का राजा हुआ, वह एक अरब साठ सहस्र बीस नियुत[१] वर्ष तक राज्य पद का अधिकारी हुआ था। जितने

---

[१] एक नियुत बराबर है दस लाख के।

बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्कालं तदाऽसुरैः ।।९०।।
इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ।।९१।।
असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं दशयुगं पुरा। त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते ।।९२।।
प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात्। पर्यायेण च संप्राप्ते त्रैलोक्ये पाकशासनः ।।९३।।
ततोऽसुरान्परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन्। यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन् ।।९४।।
हतं नो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गताः। स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ।।९५।।
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान्विषण्णः सांत्वयन्गिरा। मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासुराः ।।९६।।
वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वसु च यद्वयम्। कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्तु पादस्तेषां सुरेषु वै ।।
युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ।।९७।।
ततो देवासुरान्दृष्ट्वा धृतान्काव्येन धीमता। अमन्त्रयंस्तदा ते वै संविग्ना विजिगीषया ।।९८।।
एष काव्य इदं सर्वं व्यवर्तयति नो बलात्। साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणानाप्याययस्व तान् ।।
प्रसह्य हत्वा शिष्टान्वै पातालं प्रापयामहे ।।९९।।

वर्षों तक बलि राज्य पद का स्वामी था, उतने ही वर्षों तक उसके प्रह्लाद ने असुरों के साथ राज्य भार ग्रहण किया था। समस्त असुरगणों में महाबलशाली पितामह हिरण्याक्ष, प्रह्लाद और बलि–ये तीन ही परम तेजस्वी, परम बलशाली एवं इन्द्र के समान प्रख्यात थे, ऐसी प्रसिद्धि है कि दैत्यों से यह समस्त जगत् दस युगों तक आक्रान्त था, उसके बाद दस युगों तक समस्त राष्ट्र निष्कण्टक रहा, महेन्द्र इस अवधि में त्रैलोक्य की रक्षा करते थे ।।८९–९२।। प्रह्लाद के अनन्तर यह त्रैलोक्य कालक्रम से पाकशासन इन्द्र के हाथ में आया, उस समय यक्षगण असुरों को छोड़कर देवताओं के पास आये, यक्षों के देवताओं के पास चले जाने पर असुरों ने शुक्राचार्य से जाकर कहा, आचार्य जी! हम लोगों के देखते-देखते हमारा समस्त राष्ट्र नष्ट हो गया, यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर पुनः देवताओं के पास चले गये, ऐसी स्थिति में हम लोग यहाँ ठहर नहीं सकते, रसातल को जा रहे हैं। असुरों के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य को बड़ा विषाद हुआ और मीठे वचन से सान्त्वना देते हुए बोले, असुरवृन्द! आप लोग भयभीत न हों, मैं अपने तेज से आप सबकी रक्षा करूँगा। वृष्टि, ओषधियाँ, पृथ्वी, अन्न एवं अन्यान्य रत्नादि जो कुछ भी वस्तुएँ हैं वे सब मेरे अधीन हैं उनका केवल चतुर्थांश देवताओं के पास है। उन सबको मैंने आप ही लोगों के लिए धारण किया है ।।९३–९७।। और आप सबके कल्याणार्थ उसे आज ही समर्पित भी कर दूँगा।' इस प्रकार परम बुद्धिशाली शुक्राचार्य द्वारा असुरों को सुरक्षित देखकर देवगण परम उद्विग्न हुए और विजय की इच्छा से सब ने आपस में मन्त्रणा की कि यह असुरों का गुरु शुक्राचार्य अपने पराक्रम से हम लोगों के किये-धरे को सब व्यर्थ कर देता है, अच्छा है, तब तक हम लोग शीघ्रतापूर्वक उन क्षीण असुरों के ऊपर आक्रमण करते हैं, जब तक कि वह उन्हें सबल नहीं बना देते, खूब पराक्रम दिखलाकर हम पहले तो सब को मार डालना चाहेंगे, जो नहीं मर सकेंगे, बच जायँगे, पाताल खदेड़कर छोड़ेंगे ।।९८–९९।। ऐसी सम्मति कर

ततो देवाः सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै । जघ्नुस्तैर्बध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवुः ।।१००।।
ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् । समरेऽस्त्रक्षततार्तांस्तान्देवेभ्यस्तान्दितेः सुतान् ।।१०१।।
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान्देवांस्तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् । तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ।।१०२।।
त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः । बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ।।१०३।।
महार्हेषु द्वादशसु सङ्ग्रामेषु सुरैर्हताः । तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता ये प्रधानतः ।।१०४।।
किंचिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धेष्वन्त्येषु वै स्वयम् । नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।।१०५।।
यास्याम्यहं महादेवं यथार्थे विजयाय वः । अग्निमाप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः ।।१०६।।
ततो यास्यामहं देवं मन्त्रार्थे नीललोहितम् । युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चादिहाऽऽगतः ।।१०७।।
यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने । न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम ।।१०८।।
अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान्देवात्प्राप्य महेश्वरात् । (*योत्स्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ।।१०९।।
ततस्त कृतसंवादा देवानुचुस्ततोऽसुराः । न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान्यूयं क्रमन्तु वै) ।।११०।।

देवगणों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दानवों पर आक्रमण किया और उनका खूब संहार किया, देवताओं द्वारा संत्रस्त होकर दानवगण शुक्राचार्य की शरण में भागे। शुक्राचार्य ने इस प्रकार देवताओं द्वारा खदेड़े गये, समर में उनके घोर शस्त्रास्त्रों की मार से क्षत-विक्षत शरीरवाले, परम दीन दिति के पुत्रों को शीघ्रतापूर्वक अपनी ओर दौड़े आते हुए देखा और वहीं समीप में खड़े हुए निठुर देवताओं को भी देखा। तदनन्तर ध्यान करके पूर्व घटित घटनाओं को स्मरणकर दैत्यों ने शुक्राचार्य से कहा–'वामन ने अपने तीन पगों से समस्त त्रैलोक्य को जीत लिया, बलवान् बलि बाँधा गया, परम बलवान् जम्भ एवं विरोचन का संहार हुआ, इस प्रकार पूर्वकाल में होनेवाले बारह घोर संग्रामों में देवताओं ने अपने सफल उपायों से प्रमुख-प्रमुख दैत्यों का संहार किया है ।।१००-१०४।। आप लोग थोड़ी संख्या में शेष रह गये हैं, अब इन अन्तिम युद्धों में आप सब भी विनष्ट हो रहे हैं, मैं स्वयं अब आप लोगों की विजय-प्राप्ति के लिए एक नीति (चाल) बतला रहा हूँ कि आप लोग कुछ समय की प्रतीक्षा करें। आप लोगों की विजय के लिए मैं किसी मन्त्र-प्राप्ति के उद्देश्य से महादेव जी के पास जा रहा हूँ। उधर देवपक्ष में उनके गुरु बृहस्पति मन्त्रों द्वारा अग्नि को सन्तुष्ट कर रहे हैं, अर्थात् हवन कर रहे हैं ।।१०५-१०६।। इसलिए हम भी मन्त्र-प्राप्ति के लिए भगवान् नीललोहित के पास जा रहे हैं, थोड़े दिन बाद जब मैं यहाँ आ जाऊँगा तब आप सब पर अनुग्रह करूँगा। आप लोग वन में वत्कल धारणकर तपस्या करें, इस प्रकार जब तक हम यहाँ न आ जायँ, तब तक आप लोग तपस्या में ही लगे रहें, इससे देवगण आप सबका संहार नहीं कर सकेंगे। महामहिमामय भगवान् महेश्वर से अनुकूल फल देनेवाले मन्त्रों को प्राप्तकर जब हम आ जायँगे तब देवताओं के साथ युद्ध छेड़ देंगे, और तभी हम सबों को विजय-प्राप्ति भी होगी।' शुक्राचार्य के दिये गये उपदेश का

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने । प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत् ।।१११।।
ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह । न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान्वै जग्मुर्यथाऽऽगतान् ।।११२।।
ततस्तानब्रवीत्काव्यः कंचित्कालमुपास्यताम् । निरुत्सुकेस्तपोयुक्तैः कालं कार्यार्थसाधकैः ।।
पितुर्ममाऽऽश्रमस्था वै सर्वे देवाः सवासवाः ।।११३।।
स संदिश्यासुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्य च । प्रणम्यैनमुवाचाथ जगत्प्रभवमीश्वरम् ।।११४।।
मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ । पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ।।११५।।
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छसि वै द्विज । व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः ।।११६।।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्छिराः । यदि पास्यसि भद्रं ते मत्तो मन्त्रमवाप्स्यसि ।।११७।।
तथोक्तो देवदेवेन स शुक्रस्तु महातपाः । पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभ्यभाषत ।।११८।।
व्रतं चराम्यहं शेषं यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो । ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ।।११९।।
असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्शुक्रे गते तदा । मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ।।१२०।।

असुरों ने पालन किया, देवताओं के युद्ध के लिए आह्वान करने पर उन्होंने कहा, 'हम सब लोग अब संसार की झंझटों से मुख्यतया विवाद आदि से मुक्त हो गये हैं, आप लोग जा-जाकर समस्त लोकों पर अपना अधिकार जमाइये। हम लोग तो वन में वल्कल धारणकर तपस्या करेंगे।' प्रह्लाद के इस प्रकार सत्य की तरह कहे गये वचन को सुनकर देवगणों ने युद्ध करना बन्द कर दिया, उन्हें परम प्रसन्नता एवं शान्ति मिली। दैत्यों के हथियार डाल देने पर देवगण जहाँ से जैसे आये थे, वहाँ से उसी प्रकार लौट गये ।।१०७-११२।। तदनन्तर शुक्राचार्य ने असुरों से कहा कि इसी प्रकार तुम लोग शान्तिपूर्वक कुछ समय बिताओ, उस अवधि तक बिना किसी उत्सुकता के तपस्या में लीन रहो जब तक कार्यसिद्धि नहीं हो जाती, क्योंकि इन्द्र समेत समस्त सुरगण हमारे पिता जी के आश्रम में विद्यमान हैं। इस प्रकार असुरों को सन्देश देकर शुक्राचार्य महादेव जी के पास आये और प्रणामकर जगत् के उत्पन्नकर्त्ता महेश्वर से इस प्रकार निवेदन किया- 'देव! मैं ऐसे मन्त्रों को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो बृहस्पति को नहीं ज्ञात हैं, देवताओं को पराजित करने के लिए और असुरों को भयरहित करने के लिए यह हमारा प्रयास है।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर महादेव जी बोले, 'द्विज! जिन मन्त्रों को प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा है, उनके लिए मेरे आदेशानुसार सावधानतापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का एक सहस्र वर्ष तक पालन करो, और सिर को नीचे करके कुण्ड के धूम का पान करो, यदि ऐसा नियम पालन करोगे तो मुझसे वैसे मन्त्रों की प्राप्ति होगी' ।।११३-११७।। देवदेव महादेव के ऐसा कहने पर महान् तपस्वी शुक्राचार्य ने उनके चरणों का स्पर्श किया, और कहा कि 'बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है। प्रभो! आप जैसा बतला रहे हैं, मैं वैसा ही नियमपूर्वक व्रत पालन करूँगा।' इस प्रकार महादेव जी की आज्ञा से शुक्राचार्य ने असुरों के कल्याणार्थ कुण्ड के धूम का पान करना प्रारम्भ किया। इधर शुक्र के दैत्यों के पास से जाकर मन्त्र के लिए शिव जी के कथनानुसार ब्रह्मचर्य पालन का भेद देवताओं को लग गया। और दैत्यों के इस तपस्याचरण एवं राज्य त्याग को एक चाल समझकर,

तद्बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्यं न्यस्तं तदाऽसुरैः । तस्मिंश्छिद्रे तदाऽमर्षाद्देवास्तान्समभिद्रवन्+ ।।
निशितात्तायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ।।१२१।।
दृष्ट्वाऽसुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुः सहसा सर्वे संत्रस्तास्ते ततोऽभवन् ।।१२२।।
न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते । संत्यज्य समयं देवास्ते सपत्नजिघांसवः ।।१२३।।
अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसि स्थिताः । चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ।।१२४।।
रणे विजेतुं देवान्वै न शक्ष्यामः कथंचन । अशुद्धेन (?) प्रपद्यामः शरणं काव्यमातरम् ।।१२५।।
ज्ञापयामः कृत्स्नमिदं यावदागमनं गुरोः । विनिवृत्ते ततः काव्ये योत्स्यामो युधि तान्सुरान् ।।१२६।।
एवमुक्त्वाऽसुरान्योन्यं शरणं काव्यमातरम् । प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चैव तदाऽभयम् ।।१२७।।
दत्तं तेषां तु भीतानां दैत्यानामभयार्थिनाम् । न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः ।।१२८।।
मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति । भयाच्चाप्यभिपत्नांस्तान्दृष्ट्वा देवासुरांस्तदा ।।१२९।।
अभिजघ्नुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् । तांस्त्रस्तान्वध्यमानांश्च देवैर्दृष्ट्वाऽसुरांस्तदा ।।१३०।।
देवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिन्द्रत्वं करोम्यहम् । संस्तभ्य शीघ्रं संरम्भादिन्द्रं साऽभ्यचरत्ततः ।।१३१।।

देवताओं को बड़ा अमर्ष हुआ और वे सब-के-सब तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र धारणकर बृहस्पति को आगे कर दैत्यों पर टूट पड़े ।।११८-१२१।। असुरगण इस प्रकार पुनर्वार देवताओं को शस्त्रास्त्र से सुसज्जित देखकर परम भयभीत हो उठे और तुरन्त भाग पड़े। उन सबों ने सोचा कि ऐसी स्थिति में जबकि हम लोगों ने रण में हथियार डाल दिया है, अपने मुख से ही उनको विजय दे दी है, हमारे आचार्य व्रत के अनुष्ठान में तत्पर हैं, देवगण युद्ध की प्रथा तोड़कर अपने सौतेले भाइयों (हम सबों) को मारने के लिए तत्पर हैं, इस समय हमारे आचार्य भी नहीं हैं, उनका कल्याण हो, हम लोग तो विश्वस्त होकर तपस्या में निरत हैं, इसीलिए चीर और वल्कल धारण किया है, कुछ कार्य आदि भी नहीं करते धरते, स्त्री एवं भृत्य आदि भी साथ में नहीं हैं। रण में किसी प्रकार भी देवताओं को हम जीत नहीं सकते—ऐसी संकट की स्थिति में शुक्राचार्य की माता की शरण में हम सब चलें। जब गुरु जी आ जायँगे तो उनसे यह सब वृत्तान्त बतलायेंगे, अपने आचार्य शुक्र के व्रतादि से निवृत्त होकर लौट आने पर इन देवताओं से हम फिर युद्ध करेंगे और तब इनसे पूछेंगे ।।१२२-१२६।। असुरों ने इस प्रकार आपस में सम्मति कर शुक्राचार्य की माता की शरण ली, उस समय वे परम आतंकित हो रहे थे, शरण में जाने पर भय दूर हो गया ।।१२७।। अभय की प्रार्थना करनेवाले परम भयभीत असुरों को इस प्रकार शरण में आया देख शुक्राचार्य की माता ने सान्त्वना देते हुए कहा, दानवगण! मत डरो, डरने की आवश्यकता नहीं है, भय छोड़ दीजिये। मेरे समीप में रहते जाइये, यहाँ पर भय करने की आवश्यकता नहीं है। वहाँ पर भय से रहित उन असुरों को देखकर देवताओं ने पराक्रम दिखलाकर बल-अबल का कुछ विचार न करके उनका खूब संहार किया। देवताओं द्वारा मारे जाते हुए उन असुरों को देखकर देवी शुक्राचार्य की माता परम क्रुद्ध हुईं और देवताओं से बोलीं कि मैं तुम सब को इन्द्र से विहीन कर रही हूँ, इस प्रकार कहकर बड़े क्रोध से देवी ने इन्द्र को स्तम्भित कर दिया और

+ अडभाव आर्षः।

ततः संस्तंभितं दृष्ट्वा शक्रं देवास्तु यूपवत् । व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्रं वशीकृतम् ।।१३२।।
गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत । मां त्वं प्रविश भद्रं ते नेष्यामि त्वां सुरेश्वर ।।१३३।।
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः । विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत् ।।१३४।।
एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवानिव (?) । मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम् ।।१३५।।
तथाऽभिभूतौ तौ देवाविन्द्राविष्णू जजल्पतुः । कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ।।१३६।।
इन्द्रोऽब्रवीज्जहीह्येनां यावन्नौ न दहेद्विभो । विशेषेणाभिभूतोऽहमतस्त्वं जहि मा चिरम् ।।१३७।।
ततः समीक्ष्य तां विष्णुः स्त्रीवधं कर्तुमास्थितः । अभिध्याय ततश्चक्रमापन्नः सत्वरं प्रभुः ।।१३८।।
तस्याः सत्वरमाणायाः शीघ्रकारी सुरारिहा । स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्याः क्रूरं बुद्ध्वा चिकीर्षितम् ।।
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविध्य शिरश्चिच्छेद माधवः ।।१३९।।
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुकोप भृगुरीश्वरः । ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा ।।१४०।।
यस्मात्ते जानता धर्मानवध्या स्त्री निषूदिता । तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो वै मानुषेषु प्रवत्स्यसि ।।१४१।।
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः । लोके सर्वहितार्थाय जायते मानुषेष्विह ।।१४२।।

स्वयं इधर-उधर घूमने लगीं। इन्द्र को यज्ञ के खम्भे की तरह स्तम्भित दशा में खड़ा देखकर और उन्हें परवश जानकर देवगण परम भयभीत हुए और भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा 'सुरेश्वर! तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हो जाओ, मैं तुझे यहाँ से अन्यत्र ले चलूँ ।।१२८-१३३।।' विष्णु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने उनके शरीर में प्रवेश कर लिया। इन्द्र को विष्णु द्वारा इस प्रकार सुरक्षित देखकर देवी पुनः परम कुपित हुईं और बोलीं, "मघवन्! मैं अब तुमको यहीं पर सभी लोगों को देखते-देखते विष्णु के साथ जला रही हूँ, मेरे तपोबल को देखो।' इस प्रकार शुक्राचार्य की माता द्वारा पराजित होकर उन दोनों देवताओं ने आपस में सम्मति की, विष्णु ने इन्द्र से कहा कि अब हम दोनों किस प्रकार बच सकते हैं। इन्द्र ने कहा, 'प्रभो! जब तक यह हम दोनों को जलाने जा रही है तब तक इसी का काम तमाम कर दीजिये। मैं तो इस समय बहुत ही असमर्थ और पराजित हो गया हूँ, अतः तुम्हीं इसको मारो, तनिक भी देर न करो' ।।१३४-१३७।। विष्णु उस देवी को इस प्रकार जलाने के लिए उद्यत देखकर स्त्री-वध करने के लिए उद्युत हुए। प्रभु ने इस आपत्तिपूर्ण दशा में अपने सुदर्शनचक्र का ध्यान किया, जिससे असुरों का संहारक, परम शीघ्रता से लक्ष्य को नष्ट करनेवाला वह चक्र इन्द्र और विष्णु को जलाने में शीघ्रता करनेवाली शुक्राचार्य की माता के सम्मुख उपस्थित हो गया। भगवान् विष्णु उस देवी को परम नृशंस कार्य करने के लिए समुद्यत जानकर परम क्रुद्ध हो गये थे अतः लक्ष्मीपति होकर भी उन्होंने स्त्री के सिर को अपने चक्र से काट डाला ।।१३८-१३९।। इस कठोर स्त्री-वध को देखकर परम ऐश्वर्यशाली महर्षि भृगु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उस समय उन्होंने अपनी स्त्री का निधन हो जाने पर विष्णु को इस प्रकार का शाप दिया-'यतः धर्म की महत्ता को भलीभाँति जानते हुए भी तुमने एक अबला की हत्या की, अतः तुम सात बार मनुष्य लोक में जन्म धारणकर निवास करोगे।' भृगु के इस शाप के वश होकर भगवान् विष्णु धर्म के नष्ट हो जाने पर सब प्रजावर्ग के कल्याण के लिए बारम्बार जन्म धारण करते हैं। तदनन्तर भृगु ने भगवान् विष्णु को इस प्रकार शाप

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम् । सामानीय ततः काये अपो गृह्येदमब्रवीत् ।।१४३।।
एष त्वां विष्णुना सत्ये हतां संजीवयाम्यहम् । यदि कृत्स्नो गया धर्मश्चारितो ज्ञायतेऽपि वा ।।
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ।।१४४।।
सत्याभिव्याहृता तस्य देवी संजीविता तदा । तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत् ।।१४५।।
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव । साधु साध्वित्यदृश्यानां वाचस्ताः सस्वनुर्दिशः ।।१४६।।
दृष्ट्वा संजीवितामेवं देवी तां भृगुणा तदा । मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ।।१४७।।
असंभ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां ततः । दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथ शर्म काव्यभयात्ततः ।।१४८।।
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मनः सुताम् । (*प्रोवाच मतिमान्वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः ।।१४९।।
एष काव्यो इन्द्राय चरते दारुणं तपः । तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो धृतिमता दृढम्) ।।१५०।।
गच्छ संभावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः । तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ।।१५१।।
देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी । युक्तध्यानं च शाम्यन्तं दुर्बलं धृतिमास्थितम् ।।१५२।।
पित्रा यथोक्तं काव्यं स काव्ये कृतवती तदा । गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ।।१५३।।

देकर स्वयमेव देवी का सिर लेकर उसे शरीर से संयुक्तकर और जल लेकर यह वचन बोले–'हे सत्ये! विष्णु के द्वारा मारी गयी तुझको मैं पुनः जीवित कर रहा हूँ, यदि मैंने धर्म के समस्त तत्त्वों की पूरी जानकारी प्राप्त की है तथा सर्वांशतः पालन किया है, तो हमारे उस सत्य से तुम जीवित हो जाओ। यदि मैं सर्वदा सत्य वचन बोलता रहा होऊँ तो तुम जीवित हो जाओ' ।।१४०–१४४।। महर्षि भृगु के इस प्रकार सत्य वचन बोलने पर जब देवी जीवित हो उठीं, तब उन्होंने शीतल जल से प्रोक्षित कर पुनः कहा, 'जी उठो।' तदनन्तर समस्त जीवों ने देवी को सोकर उठी हुई की तरह देखा, दसों दिशाओं से 'साधु–साधु' की अदृश्य ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। सभी लोगों के सामने महर्षि भृगु द्वारा देवी का इस प्रकार जीवित हो जाना एक अद्भुत घटना की तरह हुआ। परम सावधान चित्तवाले महर्षि भृगु द्वारा पत्नी को जीवित देखकर इन्द्र शुक्राचार्य के भय से परम भीत हो उठे, उनके मन में तनिक भी शान्ति नहीं रही। रात भर नींद नहीं आयी ।।१४५–१४८।। इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल होकर परम बुद्धिमान् पाकशासन इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा, बेटी! दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य मेरे विनाश के लिए परम कठोर तपस्या कर रहे हैं, वे परम धैर्यशाली हैं, इस कार्य के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय भी कर लिया है, उनके इस कर्म से मैं बहुत व्याकुल हूँ। तू जा और उनके कष्टों एवं कठिनाइयों को दूर करनेवाले अपने श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायी कार्यों से उन्हें प्रसन्न कर, उनके मन के अनुकूल रहकर विविध सेवाओं द्वारा उन्हें सावधानतापूर्वक प्रसन्न करने की चेष्टा कर। शुभ कर्म करनेवाली इन्द्र की पुत्री जयन्ती स्वभाव से देवी थी, उसने जाकर देखा तो शुक्राचार्य उस समय ध्यानमग्न थे, वे परम दुर्बल हो गये थे, फिर भी शान्त चित्त एवं धैर्यशाली दिखायी पड़ रहे थे ।।१४९–१५२।। पिता ने शुक्राचार्य के लिए जैसा बतलाया था, उस मृदुभाषिणी ने उनके लिए वैसा ही आचरण किया, कान को मीठी लगनेवाली सुन्दर वाणियों से उसने शुक्राचार्य की स्तुति की। समय–समय पर सुख पहुँचाने के

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

गात्रसंवाहनैः काले सेव्यमाना सुखावहैः। शुश्रूषन्त्यनुकूला च उवास बहुलाः समाः ॥१५४॥
पूर्णे धूम्रव्रते चापि घोरे वर्षसहस्त्रिके। वरेणच्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥१५५॥
एवं ब्रुवंस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित्। तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥१५६॥
तेजसा चापि विबुधान्सर्वानभिभविष्यसि। यच्च किंचिन्मम ब्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥
साङ्गं च सरहस्यं च यज्ञोपनिषदां तथा। प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चाऽऽद्यन्तं (?) न कस्यचित् ॥१५८॥
सर्वाभिभावी तेन त्वं द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि। एवं दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः ॥१५९॥
अजेयत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ। एतांल्लब्ध्वा वरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥१६०॥
हर्षात्प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम्। तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेवं तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१६१॥
नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरूपाय सुवर्चसे। रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२॥
कपर्दिने ह्यूर्ध्वरोम्णे हयाय करणाय च। संस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१६३॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे। वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे ॥१६४॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च। (*कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च) ॥१६५॥
गिरिशायार्कनेत्राय यतिने जाम्बवाय च। सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च) ॥१६६॥

लिए चरणादि का संवाहन किया, अत्यन्त अनुकूल आचरण करती हुई, सेवा में दिन-रात दत्तचित्त रहकर उसने बहुत वर्षों तक उपवास रखा। इस प्रकार उस परम घोर सहस्र वर्ष वाले धूम्रव्रत के समाप्त हो जाने पर महादेव जी शुक्राचार्य के ऊपर परम प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान देते हुए बोले, भृगुनन्दन! इस परम कठोर तप का अकेले तुम्हीं ने पालन किया है, किसी अन्य ने इसका पालन आज तक नहीं किया है, इसलिए तुम अपनी इस परम कठोर तपस्या, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, पराक्रम एवं तेज से समस्त देवताओं को पराजित करोगे, हे ब्राह्मण! यज्ञों एवं उपनिषदों की जो कुछ भी मन्त्रशक्ति मुझमें विद्यमान है, उनके जो भी विविध अंग, उपाङ्ग एवं गूढ़ रहस्य मुझे विदित हैं, वे सब तुम्हें सर्वांशतः प्राप्त होंगे, किसी दूसरे को वे नहीं प्राप्त होंगे। उन सब महान् प्रभाव से तुम सबको पराजित करनेवाले श्रेष्ठ द्विज होगे ॥१५३-१५८$\frac{१}{२}$॥ महादेव जी ने भृगुनन्दन शुक्राचार्य को यह वरदान देकर बारम्बार अजेय, धनेश और अवध्य होने का वरदान दिया। इन सब वरदानों को प्राप्तकर शुक्राचार्य परम आनन्दित हुए, मारे खुशी के उनको रोमाञ्च हो गया। इस हर्षातिरेक में नीचे सिर किये हुए उन्होंने नीललोहित भगवान् शंकर की निम्न स्तुति की, उसी समय यह महान् प्रभावशाली देवस्तोत्र उनके मुख से प्रकाशित हुआ ॥१५९-१६१॥ शितिकण्ठ को हमारा नमस्कार, सुरूप, सुवर्चस्, रिरिहाण, लोप, वत्सर, जगत्पति, ॥१६२॥ कपर्दी, उर्ध्वरोमा, हय, करण, संस्कृत, सुतीर्थ, देवदेव, रंहस् ॥१६३॥ उष्णीषी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, मीढुष, वसुरेता, रुद्र, तप, चीरवासा, ॥१६४॥ ह्रस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृद्ध, तक्षकक्रीडन, ॥१६५॥ गिरीश, अर्कनेत्र, यती, जाम्बव, सुवृत्त, सुहस्त, धन्वी, भार्गव, ॥१६६॥ सहस्रबाहु,

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ङ. पुस्तके नास्ति।

सहस्रबाहवे चैव सहस्रामलचक्षुषे । सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ।।१६७।।
सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे । भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ।।१६८।।
निषङ्गिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च । ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ।।१६९।।
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च । महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च ।।१७०।।
हिरण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च । + बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च ।।
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ।।१७१।।
दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा । मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषकाय च ।।१७२।।
बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च । कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ।।१७३।।
वास्तोष्पते पिनाकाय शंकराय शिवाय च । आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे ।।१७४।।
सांख्याय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च । अन्तर्हिताय शर्वाय मान्याय मालिने तथा ।।१७५।।
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च । रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ।।१७६।।
चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे शीघ्रगाय च । शिखण्डिने कपालाय (*दक्षिणे विश्वमेधसे ।।१७७।।
अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे । क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च ।।१७८।।
सौम्याय चैव पुण्याय) धार्मिकाय शुभाय च । अवध्यायामृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च ।।१७९।।
कट्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे । सोमपायाऽऽज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च ।।१८०।।
शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे । पिशिताशाय खर्वाय मेधाय वैद्युताय च ।।१८१।।

सहस्र अमलचक्षु, सहस्रकुक्ष, सहस्रचरण, सहस्रशिरा, बहुरूप, वेधा, भव, विश्वरूप, श्वेतपुरुष, निषङ्गी, कवची, सूक्ष्म, क्षपण, ताम्र, भीम, उग्र, शिव, वभ्रु, पिशंग, पिंगल, अरुण, महादेव, शर्व, विश्वरूप, शिव, ।।१६७–१७०।। हिरण्य, शिष्ट, श्रेष्ठ, मध्यम, वभ्रु, पिशङ्ग, पिंगल, अरुण, पिनाकी, इषुमान्, चित्र, रोहित, ।।१७१।। दुन्दुभ्य, एकपाद, अर्ह, बुद्धि, मृगव्याध, सर्प, स्थाणु, भीषण, बहुरूप, उग्र, त्रिनेत्र ईश्वर, कपिल, एकवीर, मृत्यु, त्र्यम्बक ।।१७२–१७३।। वास्तोष्पति, पिनाक, शंकर, शिव, आरण्य, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी, सांख्य, योग, ध्यानी, दीक्षित, अन्तर्हित, शर्व, मान्य, माली, ।।१७४–१७५।। बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, केवल, रोधा, चेकितान, ब्रह्मिष्ठ, महर्षि, चतुष्पाद, मेध्य, धर्मी, शीघ्रग, शिखण्डी, कपाल, दंष्ट्री, विश्वमेधा ।।१७६–१७७।। अप्रतीघात, दीप्त, भास्कर, सुमेधा, क्रूर, विकृत, वीभत्स, शिव, सौम्य, पुण्य, धार्मिक, शुभ, अवध्य, अमृताङ्ग, नित्य, शाश्वत, ।।१७८–१७९।। कट्य, शरभ, शूली, त्रिचक्षु, सोमपा, आज्यपा, धूमपा, ऊष्मपा, शुचि रेरिहाण, सद्योजात, मृत्यु, पिशिताश, खर्व, मेघ, वैद्युत, ।।१८०–१८१।। व्याश्रित,

---

+ नास्त्यर्धमिदं क. पुस्तके।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

व्याश्रिताय श्रविष्ठाय भारतायान्तरिक्षये । क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ।।१८२।।
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये ।।१८३।।
रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च । भोगिने युञ्जमानाय शान्तायैवोर्ध्वरेतसे ।।१८४।।
अघघ्नाय मखघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च । कृशानवे प्रचेताय बह्नये किशलाय च ।।१८५।।
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायैव चक्षुषे । क्षिप्रगवे सुधन्वाय प्रमेध्याय पिवाय च ।।१८६।।
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च । विभ्रान्ताय महान्ताय अन्तये दुर्गमाय च ।।१८७।।
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च । अनामयाय चोर्ध्वाय संहत्याधिष्ठिताय च ।।१८८।।
हिरण्यबाहवे चैव सत्याय शमनाय च । असिकल्पाय माघाय री (इ) रिण्यायैकचक्षुषे ।।१८९।।
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते । महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च ।।१९०।।
दृढधन्वने कवचिने रथिने न वरूथिने । भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ।।१९१।।
अघाय अघसंसाय (?) विप्रियाय प्रियाय च । दिग्वासः कृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ।।१९२।।
पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः । प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वधायै च सुधाय च ।।१९३।।
वषट्कारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नमः । स्त्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हर्त्रे च क्षपणाय च ।।१९४।।
भूतभव्यभवायैव तुभ्यं कालात्मने नमः । वसवे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ।।१९५।।

श्रविष्ठ, भारत, अन्तरिक्ष, क्षम, सहमान, सत्य, तपन, त्रिपुरघ्न, दीप्त, चक्र, रोमश, तिग्मायुध, मेध्य, सिद्ध, पुलस्ति, ।।१८२-१८३।। रोचमान, खण्ड, स्फीत, ऋषभ, भोगी, युञ्जमान, शान्त, ऊर्ध्वरिता, अघघ्न, मखघ्न, मृत्यु, यज्ञिय, कृशानु, प्रचेता, वह्नि, किशल, ।।१८४-१८५।। सिकत्य, प्रसन्न, वरेण्य, चक्षु, क्षिप्रगु, सुधन्व, प्रमेध्य, पिव, रक्षोघ्न, पशुघ्न, विघ्न, शयन, विभ्रान्त, महान्त, अन्ति, दुर्गम, ।।१८६-१८७।। दक्ष, जघन्य, लोकों के अधीश्वर, अनामय, ऊर्ध्व, संहत्याधिष्ठित (समूह में अर्थात् अपने अनुचरगणों में रहनेवाले अथवा भली तरह लोकों के विनाश कर्म में निरत रहनेवाले), हिरण्यबाहु, सत्य, शमन, असिकल्प, माघ, रीरिण्य, एकचक्षु, ।।१८८-१८९।। श्रेष्ठ, वामदेव, ईशान, महाकल्प, दीप्त, रोदन, हस, दृढ़धन्वा, कवची, रथी, वरूथी, भृगुनाथ, शुक्र, बह्निरिष्ट, धीमान्, ।।१९०-१९१।। अघ, अघसंस, विप्रिय, प्रिय, दिग्वासा, कृत्तिवासा, भगघ्न नामोंवाले भगवन्! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे पशुओं (सब को समान दृष्टि से देखनेवालो-देवताओं) के स्वामी, समस्त जीवों के रक्षक तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! आप ही प्रणव, ऋग्, यजु, साम तीनों वेद, स्वधा, सुधा, ।।१९२-१९३।। वषट्कारस्वरूप एवं अनन्तात्मा हैं, आपको हमारा नमस्कार है, स्त्रष्टा, धाता, होता, हर्ता, क्षपण, भूत, भव्य, भव नामोंवाले कालस्वरूप भगवन्! तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे वसु, सत्य, त्याग, शम, विश्वेदेव एवं मरुत् प्रभृति गण देवताओं के स्वरूप भगवन्!

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

विश्वाय मरुते चैव तुभ्यं देवात्मने नमः । अग्नीषोमर्त्विगिज्याय पशुमन्त्रौषधाय च ।।१९६।।
दक्षिणावभृथायैव तुभ्यं यज्ञात्मने नमः । तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ।।१९७।।
अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च । सर्वभूतात्मभूताय तुभ्यं लोकात्मने नमः ।।१९८।।
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च । जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ।।१९९।।
अव्यक्तायाथ महते भूतायैवेन्द्रियाय च । तन्मात्राय महान्ताय तुभ्यं तत्त्वात्मने नमः ।।२००।।
(*नित्याय चाथ लिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनाय च । शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं नित्यात्मने नमः) ।।२०१।।
नमस्ते त्रिषु लोकेषु स्वरन्तेषु भवादिषु । सत्यान्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ।।२०२।।
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन्सदसद्व्याहृतं विभो । मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वं तत्क्षन्तुमर्हसि ।।२०३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुमाहात्म्ये शंभुस्तवकीर्तनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।।९७।।

तुम्हें हमारा नमस्कार है। अग्नि, सोम, ऋत्विक, इज्य, पशु, मन्त्र, औषध ।।१९४-१९६।। दक्षिणा, अवभृथ एवं यज्ञस्वरूप तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। तप, सत्य, त्याग, शुभ, ।।१९७।। अहिंसा, अलोभ, सुवेश, अतिशय, सर्वभूतात्मभूत, लोकात्मन्! तुम्हें हमारा नमस्कार है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव, मह, जन, तप, सत्य प्रभृति लोकस्वरूप भगवन्! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। अव्यक्त, महान्, भूत, इन्द्रिय, तन्मात्र, महान्त प्रभृति तत्त्वस्वरूप भगवन्! तुम्हें नमस्कार है ।।१९८-२००।। नित्य, लिङ्ग, सूक्ष्म, चेतन, शुद्ध, विभु, नित्यात्मन्! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। स्वरन्त तीनों (भूः भुवः और स्वः) एवं सत्यान्त चारों (मह, जन, तप और सत्य) महान् लोकों में व्याप्त रहनेवाले भगवन्! तुम्हें नमस्कार है। विभो! इस स्तुति में मैंने जो कुछ सदसत् कहा है, उसे यह समझकर कि यह मेरा भक्त है, आप क्षमा कर दें। क्योंकि आप ब्राह्मणों के ऊपर कृपा करनेवाले हैं ।।२०१-२०३।।

श्री वायुमहापुराण में विष्णुमाहात्म्य में शम्भुस्तवकीर्तन नामक सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९७।।

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्

सूत उवाच

एवमाराध्य देवेशमीशानं नीललोहितम् । ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।।१।।
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान्भवः । निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।२।।
ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन्देवेशानुचरे तदा । तिष्ठन्तीं प्राञ्जलिर्भूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ।।३।।
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता । महता तपसा युक्तं किमर्थं मां* जुगोपसि ।।४।।
अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च । स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ।।५।।
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम् । तं ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ।।६।।
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि । चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम् ।।७।।
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा । माहेन्द्रो त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहाऽऽगता ।।८।।
मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि । अदृश्यं सर्वभूतेस्तु संप्रयोगमिहेच्छसि ।।९।।

अध्याय ९८

विष्णु-माहात्म्य-कीर्त्तन

सूत बोले-ऋषिवृन्द! शुक्राचार्य ने इस प्रकार नीललोहित देवेश भगवान् शङ्कर की आराधना कर पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए ब्रह्म का उच्चारण किया, प्रार्थना से परम प्रसन्न महादेव जी अपने हाथ से शुक्राचार्य के शरीर का स्पर्शकर एवं पर्याप्त दर्शन देकर वहीं अन्तर्हित हो गये ।।१-२।। देवेश के अन्तर्धान हो जाने पर हाथ जोड़कर सामने उपस्थित जयन्ती से शुक्राचार्य बोले-'सुन्दरि! तुम किसकी पुत्री हो, मेरे दुःख के समय दुःख उठानेवाली तुम कौन हो ? ऐसी महान् तपस्या में निरत रहकर तुम किस लिए मेरी रक्षा में दत्तचित्त रही हो। हे सुन्दर अंगोवाली, सुश्रोणि! तुम्हारी इस सर्वदा एक रूप रहनेवाली भक्ति, कष्टसहिष्णुता, प्रणय और स्नेह से मै बहुत प्रसन्न हूँ। हे सुन्दरि! तुम क्या चाहती हो, मैं तुम्हारी किस कामना की पूर्ति करूँ, तुम्हारी जो भी अभिलाषा होगी-चाहे वह अत्यन्त कठिन ही क्यों न होगी मैं आज पूर्ण करना चाहूँगा' ।।३-६।। शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा, 'ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मर्षे! मेरे मनोरथ को आप अपने तपोबल से जान सकते हैं, मेरी सारी अभिलाषाओं को आप जानते हैं।' जयन्ती के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा उसके मनोरथों को जानकर बोले, 'इन्द्रपुत्रि! सुन्दरि, तुम यहाँ मेरी रक्षा के लिए आयी हुई थी, हे भामिनि! सुश्रोणि! मेरे साथ दस वर्षों तक सभी प्राणियों से अदृश्य रहकर तुम निवास करना चाहती

---

* अयं प्रयोग आर्षः ।

देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने । इमं वृणीष्व कामं ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि ।।१०।।
एवं भवतु गच्छामो गृहान्वै मत्तकाशिनि । ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभुः ।।११।।
स तया संवसेद्देव्या दश वर्षाणि भागशः । अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतस्तदा ।।१२।।
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः । अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ।।१३।।
गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या संवृतं गुरुम् । दाक्षिण्यं तस्य तद्बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।।१४।।
बृहस्पतिस्तु संरुद्धं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह । पित्रर्थे दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ।।१५।।
बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽथ दैत्यानामिव चोदितः । काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरान्समभाषत ।।१६।।
ततः समागतान्दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् । स्वागतं मम याज्यानां संप्राप्तोऽस्मि हिताय च ।।१७।।
अहं वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा । ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ।।१८।।
पूर्वं काम्य (व्य) स्तदा तस्मिन्समये दशवार्षिके । ययौ च समकालं स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ।।१९।।
समयान्ते देवयानी सद्योजाता सुता तदा । बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्यानां प्रत्यवेक्षणे ।।२०।।

सूत उवाच

देवि गच्छामहे द्रष्टुं तव याज्याञ्शुचिस्मिते । विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने ।।२१।।

हो, देवेन्द्रपुत्रि! अग्नि के समान गौरवर्णवाली! सुन्दरि, सुलोचने! मृदुभाषिणि! अपने इस मनोरथ की मुझसे पूर्णता प्राप्त करोगी। तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मत्त चाल चलनेवाली! चलो, अब हम अपने निवास को चल रहे हैं।' इस प्रकार जयन्ती से बातें कर भगवान् शुक्राचार्य अपने निवास-स्थल पर आये और समस्त प्राणधारियों से अदृश्य होकर मायापूर्वक दस वर्षों तक उसके साथ निवास करने का निश्चय किया ।।७-१२।। इधर शुक्राचार्य को सफल मनोरथ होकर लौट आने का वृत्तान्त जब दैत्यों को विदित हुआ तो वे परम प्रसन्न हुए और देखने की इच्छा से उनके आश्रम पर गये। वहाँ जाने पर जयन्ती के साथ अज्ञातवास करते हुए अपने आचार्य को नहीं देख सके, और उनकी इस नीतिनिपुणता को जानकर परम मुदित हुए। उधर देवगुरु बृहस्पति ने जब यह सुना कि देवताओं की हितकारिणी जयन्ती ने अपने पिता की हितकामना से दस वर्षों के लिए शुक्राचार्य के पास गयी थी, शुक्राचार्य को एकान्तवास करते सुना तो एक अच्छा अवसर देखा ।।१३-१५½।। उन्होंने शुक्राचार्य का स्वरूप बनाकर, इस मुद्रा में मानो दैत्यों ने उन्हें ही तपस्या के लिए प्रेरित किया था, शुक्राचार्य के दर्शन करने के लिए आये हुए असुरों से कहा-'मेरे यजमानों का स्वागत है, तुम लोगों के हित के लिए मैं तपस्या से निवृत्त होकर आ गया। मैंने वह विद्या, जिसकी प्राप्ति के लिए इतना कठोर तप करना पड़ा, पा ली है, उसे तुम सबको पढ़ाऊँगा।' बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यगण बहुत प्रसन्न हुए और विद्याध्ययन के लिए वहाँ एकत्र हुए। जयन्ती के अनुरोधानुसार इस दस वर्ष की अवधि के पूर्ण होने पर शुक्राचार्य का मोह नष्ट हुआ और उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हुई, अवधि के अन्त में जयन्ती के संयोग से उनकी पुत्री देवयानी उत्पन्न हुई। तदनन्तर उन्होंने अपने यजमानों की देखभाल करने का विचार किया ।।१६-२०।।

शुक्र बोले- शुचिस्मिते! देवि! साध्वि! दीर्घनेत्रे! सुन्दर प्रेक्षणे! मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखने के लिए

एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी भज भक्तान्महाव्रत । एष ब्रह्मास्सतां धर्मो न धर्मं लोपयामि ते ।।२२।।

सूत उवाच

ततो गत्वाऽसुरान्दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता । वञ्चितान्काव्यरूपेण वेधसाऽसुरमब्रवीत् ।।२३।।
काव्यं मां तात जानीध्वमेष ह्याङ्गिरसो भुवि । वञ्चिता बत यूयं वै मयि शक्ते तु दानवाः ।।२४।।
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं संभ्रान्ता दितिजास्ततः ।।
प्रेक्षन्ते स्म ह्युभौ तत्र स्थिताः खिन्नाः शुचि(सुवि)स्मिताः ।।२५।।
संप्रमूढाः स्थिताः सर्वे प्रापद्यन्त न किंचन । ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान्पुनरब्रवीत् ।।२६।।
आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः । अनुगच्छत गां सर्वे त्यजतैनं बृहस्पतिम् ।।२७।।
एवमुक्ताऽसुराः सर्वे तावुभौ समवेक्ष्य च । तदासुरा विशेषं तु न व्यजानंस्तयोर्द्वयोः ।।२८।।
बृहस्पतिरुवाचैतानसंभ्रान्तोऽयमङ्गिराः । काव्योऽहं वो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ।।२९।।
स मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः । श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै संमन्त्र्यार्थवचोऽब्रवीत् ।।३०।।
अयं नो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः । एष वै गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विजः ।।३१।।

जाना चाहता हूँ।' शुक्राचार्य के ऐसा कहने पर जयन्ती ने कहा, महाव्रत! अपने भक्तों का कल्याण कीजिये, सत्पुरुषों का यही धर्म है, आपके धर्म को मै नष्ट नहीं करूँगी ।।२१-२२।।

सूत बोले–इस प्रकार जयन्ती से बातें कर शुक्राचार्य ने जाकर असुरों को देखा कि उन्हे परम बुद्धिमान् देवताओं के गुरु बृहस्पति ने मेरा स्वरूप धारणकर ठग लिया है। ऐसा देखकर वे परम विस्मित होकर असुरों से बोले, दानवो! शुक्राचार्य तो मैं हूँ, यह तो अंगिरा का पुत्र बृहस्पति है, मुझे खेद है कि मेरे रहते हुए भी तुम लोग ठगे गये। शुक्राचार्य को ऐसे कहते हुए देखकर दैत्यगण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, और वहीं पर परम खिन्न एवं विस्मित होकर दोनों गुरुओं की ओर देखने लगे। बड़ी देर तक इसी प्रकार से अज्ञान में पड़े रहे, किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। दैत्यों के किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर शुक्राचार्य ने पुनः उनसे कहा, 'अरे दानवो! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं ही हूँ, यह अंगिरा का पुत्र देवताओं का गुरु बृहस्पति है, मेरी आज्ञा मानो, इसके कहने मे न आओ, इसको छोड़ो।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर भी सब दानवगण दोनों आचार्यों की ओर देखते ही रह गये, उन्हें उन दोनों में कोई विशेषता नहीं जान पड़ी ।।२३-२८।। तदुपरान्त बिना किसी घबराहट के स्वाभाविक स्वर में बृहस्पति बोले, 'दैत्यो! तुम लोगों के गुरु शुक्राचार्य हमी हैं, यह मेरा स्वरूप धारणकर अंगिरा पुत्र बृहस्पति है। अरे असुरो! मेरा स्वरूप धारणकर यह तुम लोगों को मोहित कर रहा है।' बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यों ने आपस में सम्मति करके निश्चयपूर्वक यह वचन कहा–'परम ऐश्वर्यशाली यही हमें आज दस वर्षों से पढ़ाते आ रहे हैं अतः यही हमारे वास्तविक गुरु हैं, यह ब्राह्मण हम लोगों के भेद को जानने की इच्छा से यहाँ कृत्रिम वेश धारणकर आया हुआ है।' इस प्रकार कहकर चिरकाल के अभ्यास से मोह को प्राप्त होनेवाले उन समस्त असुरगणों ने पुनः बृहस्पति को ही शुक्राचार्य समझकर प्रणाम और अभिवादन किया और उन्हीं की बातें अंगीकार कीं। इतना ही नहीं, शुक्राचार्य के ऊपर वे

ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च । वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ।।३२।।
ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रुद्धा संरक्तलोचनाः । अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ।।३३।।
भार्गवोऽङ्गिरसो(?)वाऽयं भवत्वेणैव नो गुरुः । स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ।।३४।।
एवमुक्त्वाऽसुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् । यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तन्महद्धितम् ।।३५।।
चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा । बोधिताऽपि मया यस्मान्न मां भजत दानवाः ।।३६।।
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवं गमिष्यथ । इति व्याहृत्य तान्काव्यो जगामाथ यथागतम् ।।३७।।
ज्ञात्वाऽभिशस्तानसुरान्काव्येन तु बृहस्पतिः । कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत ।।
बुद्ध्वाऽसुरांस्तदा भ्रष्टान्कृतार्थोऽन्तरधीयत ।।३८।।
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा । अहो धिग्वञ्चितास्तेन परस्परमथाब्रुवन् ।।३९।।
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् । दग्धाश्चैवोपयोगाच्च स्वे स्वे चार्थेषु मायया ।।४०।।
ततोऽसुराः परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः । प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुगमं पुनः ।।४१।।
ततः काव्यं समासाद्य अभितस्थुरवाङ्मुखाः । तानागतान्पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ।।४२।।

परमक्रुद्ध हो गये, उनके नेत्र लाल हो आये, और वे आवेश में भरकर बोले, 'हमारे कल्याण के चाहनेवाले आचार्य यही हैं, तुम हमारे आचार्य नहीं हो, यहाँ से चले जाओ ।।२९–३३।। यह चाहे भृगु के पुत्र शुक्राचार्य हों या अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हों, यही अब हमारे गुरु हैं, हम सब अब इन्हीं के आदेश में स्थित हैं, तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो, इसी में तुम्हारी भलाई है।' ऐसा कहकर दैत्यगण बृहस्पति के समीप चले आये। इस प्रकार शुक्राचार्य की महान् कल्याणकारिणी बातों की अवज्ञाकर जब दैत्यगण उनके पास नहीं गये तब शुक्राचार्य उनके गर्व से परम कुपित हो उठे और बोले, 'अरे दानवो! मेरे बहुत समझाने पर भी तुम लोग मेरे कहने में नहीं आ रहे हो, अतः तुम सब की चेतना मारी जायगी और निश्चय ही तुम्हारी पराजय होगी।' दैत्यों को ऐसा शाप देकर शुक्राचार्य जहाँ से जैसे आये थे चले गये। इधर शुक्राचार्य द्वारा उन असुरों को दूषित एवं शापग्रस्त जानकर बृहस्पति अपने उद्देश्य में सफल हो गये, उन्हें परम प्रसन्नता प्राप्त हुई, और वे अपने वास्तविक स्वरूप में आ गये। जब उन्होंने समझ लिया कि असुरगण अपनी उद्देश्यसिद्धि में विफल हो चुके हैं, तब अपने को कृतार्थ समझकर अन्तर्हित हो गये ।।३४–३८।। इस प्रकार बृहस्पति के अन्तर्धान हो जाने पर दानवगण परम व्याकुल हो गये और आपस में कहने लगे कि 'हाय उसने हम लोगों को ठग लिया, हमें धिक्कार है ।।३९।। हम लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये, विधाता ने हमें पीछे से दण्ड दिया, अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए देवगुरु ने माया करके हमें छल लिया, इस तरह हम लोग नष्ट हो गये ।।४०।। ऐसी बातें परस्पर करते हुए असुरगण देवताओं से परम संत्रस्त होकर भाग खड़े हुए और प्रह्लाद को अगुआ बनाकर पुनः शुक्राचार्य के पीछे-पीछे दौड़े, और शुक्राचार्य के समीप जाकर नीचे मुख करके खड़े हो गये। शुक्राचार्य ने अपने यजमानों को पुनः अपनी शरण में आया हुआ देखकर उनसे कहा, दैत्यों! ठीक समय पर मैंने तुम लोगों को समझाया–

मयाऽपि बोधिताः काले यतो मां नाभिनन्दथ। ततस्तेनावलेपेन गता यूयं पराभवम् ।।४३।।
प्रह्लादस्तमथोवाच मानं स्वं त्यज भार्गव। स्वान्याज्यान्भजमानांश्च भक्ताश्चैव विशेषतः ।।४४।।
त्वया पृष्टा वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः। भक्तानर्हसि नस्त्रातुं ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ।।४५।।
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन। अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ।।४६।।

सूत उवाच

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्येनानुकम्पया। एवं शुक्रोऽनुनीतः स ततः कोपं न्ययच्छत ।।४७।।
उवाचेदं न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम्। अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयं प्राप्तो वो मयि जाग्रति ।।४८।।
न शक्यमन्यथाकर्तुमदृष्टं हि बलवत्तरम्। संज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिलप्स्यथ ।।४९।।
प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत। मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ।।५०।।
युगाख्या दश संपूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि। तावन्तमेवं कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ।।५१।।
सवर्णिके पुनस्तस्य राज्यं किल भविष्यति। लोकानामीश्वरो भावो पौत्रस्तव पुनर्बलिः ।।५२।।
एवं किलमहं प्रोक्तः पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम्। तथा हृतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत् ।।५३।।

बुझाया था; परन्तु तुम लोगों ने मेरी एक बात भी नहीं मानी, अतः उसी अभिमान के कारण तुम लोग पराजय को प्राप्त हो रहे हो ।।४१-४३।। शुक्राचार्य की ऐसी बातें सुनकर प्रह्लाद ने कहा, भृगुनन्दन! आप अमर्ष छोड़ दें, अपने यजमान विशेषतया परमभक्त एवं अनुगामी असुरों को बचाइये। आपने हम लोगों की समय-समय पर रक्षा की है, आप अपनी दिव्य दृष्टि से यह जान सकते हैं कि हमें देवाचार्य ने ठग लिया था, हम आपके भक्त हैं, हमारी रक्षा कीजिये। हे भृगुनन्दन! यदि आज आप हम लोगों की रक्षा नहीं करते, तो फिर से अपमानित होकर हम लोग रसातल को जा रहे हैं ।।४४-४६।।

सूत बोले-ऋषिवृन्द! दैत्यों एवं दानवों के इस प्रकार निवेदन करने पर शुक्राचार्य को सब बातें यथार्थतः ज्ञात हुईं, उनका क्रोध दूर हो गया, दैत्यों के ऊपर उन्हें बड़ी करुणा हुई, अनुकम्पा के स्वर में यह बोले, दैत्यो! डरो मत, रसातल मत जाओ। किन्तु अवश्य घटित होनेवाली यह घटना तो मेरे प्रयत्नशील रहने पर भी घटित होगी ।।४७-४८।। अदृष्ट महाबलवान् होता है, उसे हम टाल नहीं सकते। तुम लोगों की चेतना नष्ट होने का आज जो अभिशाप मैंने दिया है, उसे तो अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। ब्रह्मा ने यह कहा है, अर्थात् उनको यह अभीष्ट है कि तुम लोगों का यह अवनतिकाल प्रारम्भ हो, अतः वह अवनति का क्रम प्राप्त हो गया है। मेरे अनुग्रह से तुम लोगों ने त्रैलोक्य की समस्त समृद्धियों का उपभोग किया है ।।४९-५०।। देवताओं के सिर पर आक्रमण कर राज्य प्राप्त किये हुए तुम लोगों के दस युग व्यतीत हो चुके, उतने ही समय तक का राज्य ब्रह्मा ने तुम लोगों के लिए कहा है। सावर्णिक मन्वन्तर के आने पर तुम्हें पुनः निश्चय ही राज्य की प्राप्ति होगी। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि समस्त लोकों का अधीश्वर होगा ।।५१-५२।। इन सब बातों को मुझसे स्वयं ब्रह्मा ने कहा है, जो मैं कह रहा हूँ वे अवश्यमेव घटित होंगी, तुम्हारे पौत्र बलि से समस्त लोक छिन जायँगे। उसके तपोबल से कुछ न होगा तब

यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसंधिताः। तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेऽन्तरे ।।५४।।
देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत्। तस्माददृश्यो भूतानां कालकाङ्क्षी स तिष्ठति ।।५५।।
प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयंभुवा। तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सह माकुलः ।।५६।।
न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्षितुम्। ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोस्मि भविष्यं जानता प्रभो ।५७।।
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं तुल्यावेतौ बृहस्पतेः। दैवतैः सह संरब्धान्सर्वान्वो धारयिष्यतः ।।५८।।

सूत उवाच

एवमुक्तास्तु दैतेयाः काव्येनाक्लिष्टकर्मणा। ततस्ताभ्यां ययुः सार्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ।।५९।।
अवश्यंभावमर्थत्वं (?) श्रुत्वा शुक्राच्च दानवाः। सकृदाशंसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ।।६०।।
दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान्समाह्वयन्। अथ देवा*सुरान्दृष्ट्वा सङ्ग्रामे समुपस्थितान् ।।६१।।
ततः संवृत्तसंनाहा देवास्तान्समयोधयन्। दैत्यासुरे ततस्तस्मिन्वर्तमाने शतं समाः ।।
अजयन्नसुरा देवान्भग्ना देवा अमन्त्रयन् ।।६२।।

वह निष्काम भाव से तपस्या में निरत होगा, उसकी प्रवृत्तियाँ निःस्वार्थ होंगी, उस समय अजन्मा ब्रह्मा प्रसन्न होकर सावर्णिक मन्वन्तर में उसे अमरत्व प्रदान करेंगे ।।५३-५४।। देवताओं का समस्त वैभव एवं साम्राज्य बलि को प्राप्त होगा—ऐसा ब्रह्मा ने मुझसे कहा है। इसलिए सभी प्राणधारियों से अदृश्य होकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते हुए वह कालपायन करता है। इस समय किसी प्रकार की उत्सुकता एवं व्याकुलता के बिना काल के इस चक्र का सहन करो, मैं तुम्हारी इस समय के आने के पूर्व किसी प्रकार रक्षा नहीं कर सकता। हे सर्वसमर्थ! भविष्य की सब बातों को जाननेवाले स्वयं ब्रह्मा जी ने इस विषय में मुझे कुछ कहने से रोका है। बृहस्पति के शिष्य देवगण और हमारे शिष्य तुम लोग—दोनों ही हमारे लिए यद्यपि समान हो, तथापि देवताओं के साथ युद्धभूमि में विरुद्ध लड़नेवाले तुम सबकी हम और देवताओं की बृहस्पति रक्षा करेंगे ।।५५-५८।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! अपने यजमानों के उपकार में सर्वदा निरत रहनेवाले शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर प्रह्लाद प्रमुख दैत्यगण उन दोनों के साथ गये। अवश्य घटित होनेवाली घटना तो घटकर ही रहेगी—ऐसी शुक्राचार्य की बातें सुनकर दानवों ने यह वितर्क किया कि शुक्राचार्य ने तो हम लोगों को एक बार विजय-प्राप्ति की बात बतलायी ही है अतः युद्ध ही क्यों न किया जाय? ऐसा निश्चय कर उन सबों ने अस्त्र-शस्त्रादि धारणकर युद्ध के लिए देवताओं का आह्वान किया। देवताओं ने संग्राम के लिए असुरों को जब तैयार देखा तो कवच आदि धारणकर युद्ध करने के लिए आ गये और घोर युद्ध करने लगे। वह घोर देवासुर-संग्राम सौ वर्षों तक चलता रहा। अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त की। पराजित देवताओं ने आपस में सम्मति की ।।५९-६२।।

---

* अत्र संधिरार्षः।

देवा ऊचुः

षण्डामर्कप्रभावं न जानीमस्त्वसुरैर्वयम् । तस्माद्यज्ञं समुद्दिश्य कार्यं चाऽऽत्महितं च यत् ।।६३।।
तज्ज्ञानापहृतावेतौ कृत्वा जेष्यामहेऽसुरान् । अथोपामन्त्रयन्देवाः षण्डामर्कौ तु तावुभौ ।।६४।।
यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान्द्विजौ । ग्रहं तं वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ।।६५।।
एवं तत्यजतुस्तौ तु षण्डामर्कौ तदाऽसुरान् । ततो देवा जयं प्राप्ता दानवाश्च पराभवन् ।।६६।।
*देवाऽसुरान्पराभाव्य षण्डामर्कावुपाःगमन् । काव्यशापाभिभूताश्च अनाधाराश्च ते पुनः ।।६७।।
बध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातले । एवं निरुद्यमास्ते वै कृताः शक्रेण दानवाः ।।
ततः प्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ।।६८।।
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिले प्रभुः । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य च नाशनम् ।।६९।।
प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिताः । मनुष्यवध्यांस्तान्सर्वान्ब्रह्माऽनुव्याहरत्प्रभुः ।।७०।।
धर्मान्नारायणस्तस्मात्संभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे । यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ।।७१।।
प्रादुर्भावे तदाऽन्यस्य ब्रह्मैवाऽऽसीत्पुरोहितः । चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेष्वसुरेष्वथ ।।७२।।

देवगण बोले–हम लोग असुरों के सहायक षण्ड और अमर्क के प्रभाव को नहीं जानते। अतः अपने कल्याण के लिए हमें इस समय एक यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। उसमें इन्हें बुलाना चाहिए। उस यज्ञ में इनको बहकाकर हम असुरों को जीत लेंगे। देवताओं ने एकान्त में इस प्रकार की मन्त्रणा कर एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और उसमें षण्ड और अमर्क का आवाहन किया। यज्ञ में आने पर उनसे निवेदन किया–द्विजवर्य! हम इसी प्रकार बराबर यज्ञादि शुभकार्यों में आपको बुलाते रहेंगे, आप असुरों की संगति छोड़ दीजिये, दानवों को पराजित कर लेने के उपरान्त हम उन्हें फिर ग्रहण कर सकते हैं ।।६३–६६।। देवताओं ने जब इस प्रकार का अनुरोध किया तो षष्ड और अमर्क ने दानवों का संग छोड़ दिया, परिणामस्वरूप देवता लोग जीत गये, दानवों की पराजय हो गयी। देवतागण असुरों को पराजित कर लेने के उपरान्त पुनः षण्ड और अमर्क के पास आये। शुक्राचार्य के शाप से पराजित एवं निराश्रित दानव तब देवताओं द्वारा पीड़ित होकर रसातल को चले गये। इन्द्र ने इस प्रकार उन दानवों को अपनी बुद्धिमत्ता से अकर्मण्य बना दिया। तभी से महर्षि भृगु के उसी नैमित्तिक शाप के कारण जब-जब यज्ञादि का ह्रास होने लगता है धर्म की शिथिलता होने लगती है, तब-तब भगवान् विष्णु धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म के नाश के लिए जन्म धारण करते हैं ।।६७–६९।। चाक्षुष मन्वन्तर में असुरगण प्रह्लाद की आज्ञा में स्थित नहीं थे। मनुष्यों द्वारा मारे जा सकते थे, उन सबका विनाश करने के लिए भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार बतलाया है कि उनके विनाश एवं धर्म की रक्षा के लिए नारायण का जन्म हो जाता है। वैवस्वत मन्वन्तर में इसी प्रकार यज्ञों का प्रवर्तन हुआ। उनके उस प्रादुर्भाव में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे। चौथे युग में जबकि असुरगण बहुत अत्याचारी हो गये थे, वे समुद्र के मध्य भाग में प्रादुर्भूत हुए थे। तदनन्तर

---

* अत्र संधिरार्षः।

संभूतः स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे । द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुदः सुरपुरस्सरः ।।७३।।
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे । दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ।।७४।।
संक्षिप्याऽऽत्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् । यजमानं तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दनः ।।
द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनं पुरा ।।७५।।
त्रैलोक्यस्य भवान्राजा त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । दातुमर्हसि मे राजन्विक्रमांस्त्रीनिति प्रभुः ।।७६।।
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् । वामनं तं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ।।७७।।
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः । त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः ।।७८।।
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा । प्रकाशयन्दिशः सर्वाः प्रदिशश्च महायशाः ।।७९।।
शुशुभे स महाबाहुः सर्वलोकान्प्रकाशयन् । आसुरीं श्रीयमाहृत्य त्रींल्लोकांश्च जनार्दनः ।।
सपुत्रपौत्रानसुरान्पातालतलमानयत् ।।८०।।
नमुचिः शम्बरश्चैव प्रह्लादश्चैव विष्णुना । क्रूरा हता विनिर्धूता दिशा संप्रतिप्रेदिरे ।।८१।।
महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधवः । कालं च सकलं विप्रांस्तत्राद्भुतमदर्शयत् ।।८२।।

हिरण्यकशिपु के वध के लिए देवगणों के साथ भीषण नरसिंह रूप धारणकर उन्होंने द्वितीय अवतार धारण किया ।।७०-७३।। तदनन्तर सातवें त्रेता युग में, जिस समय दैत्यराज बलि समस्त लोकों का एकमात्र अधीश्वर था, तीनों लोक असुरों के भय से आतंकित थे, ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु ने वामन अवतार धारण किया। यह उनका तृतीय अवतार था। उस समय भगवान् ने अपने को अंगों में समेटकर छोटा बना लिया था। बृहस्पति को आगे कर अदिति के कुल को आनन्दित करनेवाले भगवान् यज्ञ के अनुष्ठान में निरत दैत्येन्द्र विरोचन के पुत्र बलि की यज्ञशाला में ब्राह्मण वेश धारणकर पहुँचे थे ।।७४-७५।। उपयुक्त शुभ समय देखकर उन्होंने निवेदन किया कि 'हे राजन्! आप इस समस्त त्रैलोक्य के राजा हैं, आपमें संसार की समस्त सिद्धियाँ विद्यमान हैं, आप सर्वसमर्थ एवं प्रजाओं के मन को आनन्दित करनेवाले हैं, अतः मुझे तीन पग भूमि का दान करें।' भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विरोचनपुत्र बलि ने उत्तर दिया कि आपको तीन पग भूमि मैं अवश्य दूँगा। उसने ब्राह्मणवेशधारी भगवान् को आकृति में अत्यन्त छोटा समझकर ऐसा कहा था, उसे इस दान में बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। ऋषिवृन्द! किन्तु उस वामन रूपधारी भगवान् ने अपने तीन पगों से स्वर्ग, आकाश एवं पृथ्वी-तीनों लोकों को नाप लिया, सर्वसमर्थ प्रभु ने केवल तीन पगों में इस समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया ।।७६-७८।। समस्त जीवों के पालक भूतात्मा भगवान् ने उस समय अपने तेजोबल से भास्कर का भी अतिरेक कर दिया था। अपने महान् प्रखरतेज से महान् यशस्वी भगवान् ने समस्त दिशाओं एवं विदिशाओं को प्रभासित कर दिया था। समस्त लोकों को प्रकाशित करनेवाले भगवान् की उस समय अपूर्व शोभा हुई थी। जनार्दन भगवान् ने इस प्रकार समस्त आसुरी सम्पत्ति एवं समृद्धि को छीनकर नमुचि, शम्बर, प्रह्लाद प्रभृति असुरों को पुत्र-पौत्रादिकों समेत पाताल लोक को पहुँचा दिया था ।।७९-८०$\frac{1}{2}$।। क्रूर प्रकृति दैत्यों को भगवान् विष्णु ने मार डाला था और कितनों को भय से कम्पित कर अन्यान्य दिशाओं में भगा दिया था। भूतात्मा, लक्ष्मीपति भगवान् ने इस प्रकार समस्त जीवों एवं पृथ्वी आकाशादि महाभूतों को भी सुखी कर दिया था, उस समय उन्होंने समस्त कालों में वर्तमान रहनेवाले अपने अद्भुत

तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति । न किंचिदस्ति लोकेषु यद्व्याप्तं महात्मना ।।८३।।
तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य देवदानवमानवाः । दृष्ट्वा संमुमुहुः सर्वे विष्णुतेजोविमोहिताः ।।८४।।
बलिः सितो महापाशैः सबन्धुः ससुहृद्गणः । विरोचनकुलं सर्वं पाताले संनिवेशितम् ।।८५।।
ततः सर्वामरैश्वर्यं दत्त्वेन्द्राय महात्मने । मानुषेषु महाबाहुः प्रादुरासीज्जनार्दनः ।।८६।।
एतास्तिस्त्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः संभूतयः शुभाः । मानुष्याः सप्त यास्तस्य शापजांस्तान्निबोधत ।।८७।।
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह । नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरःसरः ।।८८।।
(*पञ्चमः पञ्चदश्यां तु त्रेतायां संबभूव ह । मांधातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ तथ्यपुरःसरः ।।८९।।
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् । जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः) ।।९०।।
चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा । सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ।।९१।।
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् । वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुरःसरः ।।९२।।
+ तथैव नवमो विष्णुरदित्याः कश्यपात्मजः । देवक्या वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुरःसरः ।।९३।।

स्वरूप को ब्राह्मणों को दिखाया था। उन ब्राह्मणों ने जगदात्मा के उस शरीर में समस्त चराचर जगत् का दर्शन किया था, एवं अपने को भी उनमें स्थित देखा था। उन्होंने देखा कि जगत् में कोई ऐसी वस्तु की सत्ता नहीं है, जिसमें वह महान् आत्मा व्याप्त न हो। उस समय भगवान् विष्णु के उस महान् तेज से विमोहित देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों ने उपेन्द्र के उस अद्भुत रूप का दर्शन किया था और वे सब मोह को प्राप्त हो गये थे। सुहृद् एवं परिवार वर्ग के साथ बलि को पाश में बाँधकर विरोचन के समस्त कुल को पाताल लोक में प्रविष्ट करा दिया ।।८१–८६।। तदनन्तर संसार के समस्त ऐश्वर्य को महात्मा इन्द्र को प्रदान किया। महाबाहु जनार्दन मनुष्य योनि में भी उत्पन्न हुए थे। उनकी ये तीन सम्भूतियाँ कल्याणदायिनी देवयोनि की थीं। मनुष्य योनि में उनकी जो सात सम्भूतियाँ हैं, वे भी भृगु के शापवश हुई थीं, उन्हें सुनिये। दसवें त्रेतायुग में, जबकि धर्म का ह्रास हो रहा था, मार्कण्डेय के साथ दत्तात्रेय के रूप में उत्पन्न हुए थे, यह उनका चतुर्थ अवतार था। पन्द्रहवें त्रेतायुग में चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता के शासनकाल में तथ्य समेत उनका अवतार हुआ था, यह पाँचवाँ अवतार था ।।८७–८९।। फिर उन्नीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र के साथ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में समस्त क्षत्रियकुलसंहारक होकर उन्होंने छठवाँ अवतार धारण किया था। फिर चौबीसवें त्रेतायुग में पुरोहित वसिष्ठ के साथ रावण के विनाशार्थ दशरथ पुत्र रामचन्द्र के रूप में उन्होंने सातवीं बार जन्म ग्रहण किया। इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापरयुग में भगवान् विष्णु ने जातूकर्ण के साथ महर्षि पराशर के संयोग से वेदव्यास के रूप में आठवाँ अवतार धारण किया था। उसी प्रकार नवीं बार अदिति स्वरूप देवकी के गर्भ से कश्यप स्वरूप वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्मा और गार्ग्य के साथ विष्णु ने अवतार धारण किया था। उन भगवान् का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ अयं श्लोको न विद्यते घ. ङ. पुस्तकयोः।

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी। क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव ।।९४।।
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः। परं परममेतस्माद्विश्वरूपात्र विद्यते ।।९५।।
अष्टविंशतिमे तद्द्वापरस्वांशसंक्षये। नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ।।९६।।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्। मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ।।९७।।
प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम्। विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुरःसरम् ।।९८।।
यत्र कंसं च साल्वं च द्विविदं च महासुरम्। अरिष्टं वृषभं चैव पूतनां केशिनं हयम् ।।९९।।
नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम्। दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान् ।।१००।।
छिन्नं बाहुसहस्त्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः। नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ।।१०१।।
हतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा। दुराचाराश्च निहता पार्थिवा ये रसातले ।।१०२।।
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः। अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।।१०३।।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान्। दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ।।१०४।।
अनुकर्षन्सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम्। प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्त्रशः ।।१०५।।

जा सकता। वे भक्तों के उपकार करनेवाले हैं, इच्छानुरूप विचरण करनेवाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, लोक में भगवान् उसी तरह की क्रीड़ा करते हैं जैसे बालक खिलौनों से ।।९०-९४।। वे महाबाहु मधुसूदन शब्दों द्वारा प्रमाणित नहीं किये जा सकते। यह समस्त विश्व उन्हीं से व्याप्त है, वे इससे भी परे हैं, स्वरूप में इनके समान कोई नहीं है। अट्ठाईसवें द्वापरयुग के कुछ अंश व्यतीत हो जाने पर, जब धर्म नष्ट हो जाता है तो वे प्रभु विष्णु वृष्णिवंश में धर्म की संस्थापना एवं अधर्म के विनाश के लिए जन्म धारण करते हैं। योगात्मा अपनी योगमाया से समस्त जीवनिकायों को मोहितकर मनुष्य योनि में जन्म धारण करने पर भी प्रच्छन्न स्वरूप से समस्त पृथ्वी भर में विचरण करते हैं। उस अवतार में सान्दीपनि के साथ मानव समाज में अपनी लीला दिखाने के लिए वे भगवान् प्रादुर्भूत होते हैं ।।९५-९८।। उस अवतार में कंस, साल्व, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, केशी, नाग, कुवलयापीड, मल्लराज गृहाधिप प्रभृति असुरों का, जो मानवदेहधारी दैत्य थे, महाबलशाली भगवान् ने संहार किया। उसी अवतार में उन्होंने अद्भुत पराक्रमशाली बाणासुर की सहस्र बाहुओं को काट डाला था। युद्ध में महान् पराक्रमी नरकासुर एवं कालयवन का वध किया था। बड़े-बड़े राजाओं के समस्त बहुमूल्य रत्नों के आभूषणादि को उन्होंने अपने अनुपम तेज से छीन लिया था। उसी समय उन भगवान् ने रसातल निवासी अनेक पापाचारपरायण भूपतियों का भी संहार किया था ।।९९-१०२।। महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के ये अवतार लोक-रक्षा के लिए हुए थे। इसी कलियुग के सन्ध्यांश में जबकि इसकी समाप्ति हो जायगी, पराशर तनय प्रतापशाली विष्णुयशा, याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नामक अवतार धारण करेंगे। यह उनका दसवाँ अवतार होगा। ये अनेक प्रकार की सेना साथ लेकर, जिसमें हाथी, घोड़े और रथों की भरमार रहेगी, लाखों की संख्या में शस्त्रास्त्र से सुसज्जित विप्रगणों से संयुक्त होकर एक महान् विनाश उपस्थित करेंगे। उस समय जितने घोर अधार्मिक होंगे, धर्म से द्वेष करनेवाले होंगे, उत्तर दिग्वर्ती, मध्यदेशीय विन्ध्यगिरि के उस पार के रहनेवाले, सुदूर दक्षिणा दिशा के द्रविणादि, सिंहल देशीय, गान्धार,

नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् । उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ।।१०६।।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह । गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्शकान् ।।१०७।।
तुषारान्बर्बरांश्चैव पुलिन्दान्दरदान्खसान् । लम्पकानन्ध्रकान्रुद्रान्किरातांश्चैव स प्रभुः ।।१०८।।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृद्बली । अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ।।१०९।।
मानवः स तु संजज्ञे देवस्यांशेन धीमतः । पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ।।११०।।
गात्रेण वै चन्द्रसमः पूर्णे कलियुगेऽभवत् । इत्येतास्तस्य देवस्य दश संभूतयः स्मृताः ।।१११।।
तं तं कालं च कायं च तत्तदुद्दिश्य कारणम् । अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनीः प्रपत्स्यते ।।११२।।
पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः । विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ।।११३।।
कृत्वा बीजावशेषां तु महीं क्रूरेण कर्मणा । संशातयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान् ।११४।।
ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः । कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम् ।।११५।।
अकस्मात्कुपिताऽन्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः । क्षपयित्वा तु तान्सर्वान्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ।।११६।।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः । ततो व्यतीते कल्कौ तु सामान्यैः (त्यैः) सह सैनिकैः ।।११७।।

पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद, खस, लम्बक, अन्ध्रक, रुद्र, किरात प्रभृति सबको परम ऐश्वर्यशाली, बलवान्, म्लेच्छों को नष्ट करनेवाले भगवान् नष्ट कर देंगे और समस्त जीवों से अदृश्य रहकर पृथ्वी भर में विचरण करेंगे ।।१०३–१०९।। जो भगवान् विष्णु पूर्वजन्म में परमबलशाली प्रमिति के रूप में वर्तमान रहते हैं, वे ही देवांश भूत होकर मनुष्य योनि में जन्म धारण करते हैं। कलियुग के पूर्ण हो जाने पर चन्द्रमा के समान शरीर धारणकर वे ही उत्पन्न हुए थे। उन परम महिमामय भगवान् की ये दस सम्भूतियाँ (अवतार) कही गयी हैं। जो–जो समय, शरीर और कारण भगवान् के अवतारों के लिए ऊपर कहे गये हैं, उनकी परिस्थिति के अनुसार अंशावतार भगवान् विष्णु ने उन योनियों में जन्म धारण किया ।।११०–११२।। पचीसवाँ कल्प आने पर पचीस वर्ष जब व्यतीत हो जाता है, उस समय भगवान् समस्त जीवों का विनाश करते हुए मनुष्यों को सर्वांशतः नष्ट करते हुए अपने क्रूर कर्म द्वारा पृथ्वी को बीजावशेष कर देते हैं, ऊपर कहे गये उन परम अधार्मिक वृषलों का संहारकर सेनाओं के समेत अपने अवतार धारण को वे चरितार्थ (सफल) कर देते हैं। उस समय की प्रजाएँ अपने कर्मों द्वारा यद्यपि नाश को प्राप्त हो जाती हैं, फिर भी उन्हें पुनः स्वयमेव सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर अकस्मात् वे आपस में ही एक–दूसरे के ऊपर मोहवश कुपित हो जायँगी, भावीवश इस प्रकार के गृहकलह में निरत उन सारी प्रजाओं का विनाशकर अपने अनुचरों समेत वे भगवान् गङ्गा, यमुना के संगम पर अपने इस घोर कर्म की समाप्ति करेंगे ।।११३–११६$\frac{१}{२}$।। तदनन्तर कल्कि रूपधारी भगवान् के अवसान हो जाने पर, साधारण सैनिकों के साथ राजाओं के नष्ट हो जाने पर प्रजाएँ आश्रयविहीन हो जायँगी। अपनी रक्षा करने का भी उन्हें साहस नहीं रहेगा। आपस में युद्ध कर एक–दूसरे को मार–काट डालेंगे, परस्पर विश्वास कोई नहीं करेगा, उनके सारे उत्साह नष्ट हो जायँगे। इस प्रकार परम दुःखित होकर वे अपने पुरों एवं ग्रामों को छोड़कर

नृपष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः । रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे ।।११८।।
परस्पराहताश्वासा निराक्रन्दाः सुदुःखिताः। पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहाः ।।११९।।
प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा । ह्रस्वा अल्पायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः ।।१२०।।
सरित्पर्वतसेविन्यः पत्रमूलफलाशनाः । चीरपत्राजिनधराः संकरं वै रमास्थिताः ।।१२१।।
अल्पायुषो नष्टवार्ता बह्वाबाधाः सुदुःखिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा ।।१२२।।
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु । क्षीणे कलियुगे तस्मिन्प्रवृत्ते च कृते पुनः ।।१२३।।
प्रपत्स्यन्ते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा । इत्येतत्कीर्तितं सर्वं देवासुरविचेष्टितम् ।।१२४।।
यदुवंशप्रसङ्गेन महद्वो वैष्णवं यशः । तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योरनोस्तथा ।।१२५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुमाहात्म्यकथनं नामाष्टनवतितमोध्यायः ।।९८।।

साधनविहीन अवस्था में नदियों एवं पर्वतों को भाग जायँगे, वैदिक धर्म का उनमें सर्वथा विलोप हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। आकार में छोटे-छोटे होने लगेंगे, अल्प आयु हो जायगी, वन में निवास करने लगेंगे ।।११७-१२०।। वहाँ पर पत्र, मूल, फल खाकर जीवनयापन करेंगे। चीर, पत्र एवं मृगचर्म धारण करनेवाली वे प्रजाएँ घोर संकरवर्ण की हो जायँगी। अल्प आयुवाली उन प्रजाओं की जीविका आदि के साधन भी सब नष्ट हो जायँगे। अनेक प्रकार की बाधाओं में पिसकर वे परम (घार) कष्ट सहन करेंगी। कलियुग के उस सन्ध्यांश में प्रजाओं को इस प्रकार के विविध कष्ट सहन करने पड़ेंगे। कलियुग के साथ उसकी प्रजाएँ नष्ट हो जायँगी, इस प्रकार उस कलियुग के व्यतीत हो जाने पर पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, उस समय सारी वस्तुएँ फिर स्वाभाविक ढंग से अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त होंगी, किसी अन्य उपाय से नहीं। देवताओं और असुरों के संघर्ष का मैं यह विवरण बतला चुका, यदु के वंश के प्रसंग में भगवान् विष्णु के महान् यश का भी वर्णन कर दिया गया, अब आगे तुर्वसु, पुरु और द्रुह्यु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ।।१२१-१२५।।

श्री वायुमहापुराण में विष्णुमाहात्म्य कथन नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९८।।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

तुर्वस्वादिवंशवर्णनम्

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो बह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः । गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः ।।१।।
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्य तु चाऽऽत्मजः । अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा ।।२।।
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजाऽऽसीदिति श्रुतः । दुष्कृतं पौरवं चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन् ।।३।।
एवं ययातिशापेन जरायाः संक्रमेण तु । तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ।।४।।
दुष्कृतस्य तु दायादः शरूथो नाम पार्थिवः । शरूथात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चाऽत्मजाः ।।५।।
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च । तेषां जनपदाः कुल्याः पाण्ड्यश्चोलाः सकेरलाः ।।६।।
द्रुह्यस्य तनयो वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ । अरुद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुच्यते ।।७।।
यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतो बली । युद्धं सुमहदासीत्तु मासान्परि चतुर्दश ।।८।।
अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः । ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ।।९।।

अध्याय ९९

तुर्वसु आदि ययाति पुत्रों के वंश का वर्णन

सूत बोले—ययाति पुत्र तुर्वसु का पुत्र वह्नि था, वह्नि का पुत्र गोभानु हुआ, गोभानु का परम वीर त्रिसानु था, जो कभी पराजित नहीं हुआ। उस त्रिसानु का पुत्र राजा करन्धम हुआ, और उसका पुत्र मारुत हुआ। आविक्षित का पुत्र मरुत्त नामक एक अन्य राजा भी प्राचीनकाल में कहा जाता है। राजा मरुत्त के कोई सन्तान नहीं थी—ऐसा सुना जाता है, इसलिए सब लोगों ने पुरुवंशीय दुष्कृत को उसका पुत्र बनाया ।।१–३।। राजा ययाति ने वृद्धत्व को अंगीकार न करने के कारण जो शाप तुर्वसु को दिया था उसी के कारण तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया और ऐसी प्रसिद्धि है कि वह अन्त में पुरु वंश में मिल गया। उस दुष्कृत का उत्तराधिकारी राजा शरूथ हुआ, शरूथ से जनापीड की उत्पत्ति हुई, उसके चार पुत्र हुए, उनके नाम पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य थे। उन सबों के अपने–अपने जनपद थे, जो पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य के नाम से विख्यात हैं ।।४–६।। द्रुह्यु के दो वीर पुत्र थे, बभ्रु और सेतु, इनमें सेतु का पुत्र अरुद्ध हुआ और बभ्रु का पुत्र रिपु हुआ। युद्ध में इस बलशाली रिपु को परम कठोर स्वभाववाले यौवनाश्व ने मार डाला, वह महायुद्ध लगातार चौदह मास तक चलता रहा। अरुद्ध का उत्तराधिकारी राजा गान्धार हुआ, जिसके नाम से विशाल गान्धार नामक देश विख्यात है। उसी गान्धार देश में उत्पन्न होनेवाले अश्व बहुत अच्छे अश्व होते हैं। राजा गान्धार का पुत्र धर्म हुआ,

गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिनां वराः । गान्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्य सुतोऽभवत् ।।१०।।
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चाऽऽत्मजः । प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।।११।।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः । अनोः पुत्रा महात्मानस्त्रयः परमधार्मिकाः ।।१२।।
सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः ।।१३।।
*कालानलस्य धर्मात्मा सृञ्जयो नाम धार्मिकः । सृञ्जयस्याभवत्पुत्रो वीरो राजा पुरंजयः ।।१४।।
जनमेजयो महासत्त्वः पुरंजयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृपः ।।१५।।
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाः दिवि । महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ।।१६।।
÷सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः । महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ ।।१७।।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव धार्मिकम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ।।१८।।
मृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ।।
तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिकाः ।।१९।।
मृगायास्तु मृगः पुत्रो नवाया नव एव तु । कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः ।।२०।।
दृषद्वतीसुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजाः । शिबेः शिवपुरं ख्यातं यौधेयं तु मृगस्य तु ।।२१।।

उसका पुत्र धृत हुआ ।।७–१०।। धृत को दुर्दम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र प्रचेता हुआ। उस प्रचेता के सौ पुत्र हुए जो सब–के–सब राजा थे। वे सब उत्तर दिशा में म्लेच्छों के देश के शासक थे। अनु के तीन पुत्र हुए, जो परमबलशाली एवं धार्मिक थे। उनके नाम थे, सभानर, पक्ष और परपक्ष। इनमें सभानर का पुत्र परम विद्वान् राजा कालानल था। कालानल का पुत्र धर्मात्मा राजा सृञ्जय हुआ। सृञ्जय का पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुआ। पुरञ्जय का पुत्र महान् बलशाली राजा जनमेजय हुआ, राजर्षि जनमेजय का पुत्र राजा महाशाल हुआ ।।११–१५।। उस महाराज महाशाल का यश स्वर्ग में इन्द्र की भाँति प्रतिष्ठित था। उसका पुत्र परम धार्मिक राजा महामना हुआ। सातों द्वीपों का अधीश्वर महान् यशस्वी राजा महामना अपने समय का चक्रवर्ती सम्राट् था। उसने परम यशस्वी दो पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनमें एक धर्म के तत्त्वों के जाननेवाले राजा उशीनर थे, दूसरे परम धार्मिक राजा तितिक्षु थे। उस राजा उशीनर की राजर्षिवंश में उत्पन्न होनेवाली पाँच पत्नियाँ थीं, उनके नाम थे, मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती। उन पाँचों पतियों के संयोग से महाराज को पाँच कुलोद्धारक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो सब–के–सब परम तपस्वी, महात्मा एवं परम धार्मिक थे ।।१६–१९।। मृगा का पुत्र मृग, नवा का पुत्र नव था, कृमी का पुत्र कृमि था, दर्वा का परम धार्मिक सुव्रत था। ऋषिवृन्द! पाँचवीं पत्नी दृषद्वती का पुत्र महाराज शिबि था, जो औशीनर शिबि नाम से विख्यात है। उसी महाराज शिबि का पुर शिवपुर के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार मृग का यौधेयपुर, नव का नवराष्ट्र, कृमि की कृमिपुरी और सुव्रत की अम्बष्ठा नामक पुरी थी। अब

---

* एतदादिश्लोकद्वयं ग. पुस्तके नास्ति।

÷ अयं श्लोको न विद्यते ख. पुस्तके।

नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी। सुव्रतस्य तथाऽऽम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोधत ।।२२।।
शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकसंमताः। वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ।।२३।।
तेषां जनपदाः स्फीताः केकया माद्रकस्तथा। वृषदर्भाः सूचीदर्भास्तितिक्षोः शृणुत प्रजाः ।।२४।।
तैतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः। उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमः सुतोऽभवत् ।।२५।।
हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतयशा बली। जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणे वंशे प्रजेप्सया ।।२६।।
महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः स महामनाः। पुत्रानुत्पादयामास चातुर्वर्ण्यकरान्भुवि ।।२७।।
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च। पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ।।२८।।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ताः वराः प्रीतेन धर्मतः ।।२९।।
माहैयोगित्वमायुश्च कल्पायुः परिमाणकम्। सङ्ग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावना ।।३०।।
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा। बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।।३१।।
चतुरो नियतान्वर्णांस्त्वं वै स्थापयितेति च। इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ।।३२।।
कालेन महता विद्वान्स्वं वै स्थानमुपागतः। तेषां जनपदाः स्फीता वङ्गाङ्गसुह्मकास्तथा ।।३३।।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा तेषां वंशं निबोधत। तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिसंभवाः।।
संभूता दीर्घतमसः सुदेष्णायां महौजसः ।।३४।।

शिबि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। शिबि के चार पुत्र हुए, जिनका लोक में परम सम्मान था, वे सब शिविगण के नाम से विख्यात थे। उनके नाम थे, वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक ।।२०–२३।। उन चारों शिविपुत्रों के जनपद परम रमणीय केकय, माद्रक, वृषदर्भा और सूचीदर्भा के नाम से विख्यात हैं। अब तितिक्षु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये। उस राजा तितिक्षु का पुत्र महाबाहु उशद्रथ पूर्वदिशा का परम यशस्वी राजा सुना जाता है। उसका पुत्र राजा हेम हुआ ।।२४–२५।। हेम का पुत्र परम तपस्वी बलि हुआ। यह बलि महान् योगी दैत्यराज बलि ही थे, जिन्हें भगवान् वामन ने बाँधा था, सन्तति के अभाव में राजा हेम के वंश के विनाश उपस्थित होने पर इन्होंने मानवयोनि में हेम का पुत्र होकर जन्म धारण किया था। इस राजा बलि ने पृथ्वी में चारों वर्णों की सृष्टि करनेवाले पुत्रों को उत्पन्न किया था। उन्होंने अङ्ग, बङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र, कलिङ्ग नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। उस महाराज बलि के वंशज क्षत्रिय भी कहे जाते हैं और ब्राह्मण भी कहे जाते हैं ।।२६–२८।। बलि के परम धार्मिक कार्यों से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे महायोगी, एक कल्प की दीर्घायुवाला, संग्राम में अजेय एवं धर्म में परम निष्ठावान् होने का वरदान दिया था, इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कहा था, बले, तुम्हें समस्त त्रैलोक्य का दर्शन, सन्तानोत्पत्ति में प्रधानता, धर्मतत्त्व का चिन्तन एवं प्रतिद्वन्द्वी का सर्वथा अभाव रहेगा, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों की स्थापना करनेवाला होगा। भगवान् ब्रह्मा के इस वरदानात्मक वचन को सुनकर राजा बलि को परम शान्ति प्राप्ति हुई ।।२९–३२।। वरदान के अनुसार दीर्घकाल के अनन्तर वह परम विद्वान् राजा बलि पुनः अपने स्थान को प्राप्त हुआ। बलि के उन पुत्रों के परम रमणीय देश उन्हीं के नामों के अनुसार बङ्ग, अङ्ग, सुह्मक, पुण्ड्र और कलिंग के नाम से विख्यात हैं। अब उनके वंशजों का विवरण सुनिये। राजा के बलि के ये पुत्र मुनि के अंश से बलि क्षेत्रज पुत्र थे। महान् तेजस्वी दीर्घतमा ऋषि के संयोग से ये बलि की स्त्री सुदेष्णा में उत्पन्न हुए थे ।।३३–३४।।

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुताः पञ्च जनिताः क्षेत्रजाः प्रभो । ऋषिणा दीर्घतमसा एतन्नो ब्रूहि पृच्छताम् ।।३५।।

सूत उवाच

अशिजो नाम विख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा । भार्या वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ।।३६।।
अशिजस्य कनीयांस्तु पुरोधा यो दिवौकसाम् । बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतां सोऽभ्यपद्यत ।।३७।।
उवाच ममता तं तु बृहस्पतिमनिच्छती । अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्याष्टमिता इति* ।।३८।।
अयं हि मे महागर्भो रोचसेऽति बृहस्पते । अशिजं ब्रह्म चाभ्यस्य षडङ्गं वेदमुद्गिरन् ।।३९।।
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि । अस्मिन्नेव गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ।।४०।।
एवमुक्तस्तया सम्यग्बृहत्तेजा बृहस्पतिः । कामात्मानं महात्माऽपि नाऽऽत्मानं सोऽऽभ्यधारयत् ।।४१।।
संबभूवेव धर्मात्मा तथा सार्धं बृहस्पतिः । + (उत्सृजन्तं तदा रेतो गर्भस्थः सोऽभ्यभाषत ।।४२।।
नोस्नातक न्यसे (?) ह्यस्मिन्द्वयोर्नेहास्ति संभवः । अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहाऽऽगतः ।।४३।।
शशाप तं तदा क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः) । अशिजं तं सुतं भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ।।४४।।

ऋषियों ने पूछा–सूत जी! महाराज बलि के वे पाँचों पुत्र किस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के संयोग से उनके क्षेत्र (पत्नी) में उत्पन्न हुए, इसे हम लोग जानना चाहते हैं, बतलाइये ।।३५।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! प्राचीनकाल में एक अशिज नामक परम विद्वान् ऋषि विख्यात हो गये हैं। उन परम महात्मा ऋषि की पत्नी का नाम ममता था। अशिज के छोटे भाई देवताओं के पुरोहित परम तेजस्वी बृहस्पति थे, एक बार वे कामवश होकर ममता के पास गये। देवी ममता ने बृहस्पति के प्रति अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। वे बोलीं, मैं इस समय तुम्हारे ज्येष्ठ भाई के संयोग से गर्भवती हूँ, बृहस्पति! यह हमारा महान् गर्भ अपने तेज से परम प्रकाशित हो रहा है, यह गर्भावस्था में ही अशिज के अंशभूत होने के कारण षडंग वेदों का उच्चारण करता है एवं ब्रह्म का अभ्यास करता है ।।३६–३९।। तुम भी अमोघवीर्यवाले हो, इसलिए ऐसी स्थिति में मेरे साथ समागम नहीं कर सकते। हे सर्वसमर्थ! इस काल के व्यतीत हो जाने के उपरान्त तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करना। ममता के इस प्रकार कहने पर परम तेजस्वी बृहस्पति महात्मा होकर भी अपनी काम वशीभूत आत्मा को वश में न रख सके। परम धर्मात्मा होकर भी उन्होंने ममता से समागम किया, जिस समय वीर्याधान कर रहे थे, गर्भस्थ शिशु ने उनसे कहा–तात! आप अपना वीर्य यहाँ न निहित करें, क्योंकि इसमें दो प्राणियों का निवास सम्भव नहीं है। तुम भी अमोघवीर्यवाले हो, मैं यहाँ पहले ही से उपस्थित हूँ ।।४०–४३।। गर्भस्थ शिशु के इस वाक्य से बृहस्पति के वीर्याधान में बाधा पहुँची। परम तेजस्वी ऋषिवर बृहस्पति ने अप्रसन्न होकर अपने बड़े भाई अशिज के संयोग से समुत्पन्न गर्भस्थ शिशु को शाप दिया कि सभी प्राणधारियों के

---

* ज्येष्ठस्येत्यादिपादस्त्रुटितो ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

+ एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । मामेवमुक्तवान्मोहात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ।।४५।।
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत । अथाशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ।।४६।।
ऊर्ध्वरेतास्ततश्चापि न्यवसद्भ्रातुराश्रमे । गोधर्मं सौरभेयात्तु वृषभाच्छ्रुतवान्प्रभो ।।४७।।
तस्य भ्राता पितृव्यस्तु चकार भवनं तदा । तस्मिन्हि तत्र वसति यदृच्छाभ्यागतो वृषः ।।४८।।
दर्शार्थमाहृतान्दर्भांश्चचार सुरभीवृतः । जग्राह तं दीर्घतमा विस्फुरन्तं च शृङ्गयोः ।।४९।।
स तेन निगृहीतस्तु न चचाल पदात्पदम् । ततोऽब्रवीद्वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ।।५०।।
न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वद्विधः क्वचित् । त्र्यम्बकं वहता देवं यतो जातोऽऽस्मि (स) भूतले ।।५१।।
मुञ्च मां बलिनां श्रेष्ठ प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु । एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवंस्त्वं मे क्व यास्यसि ।।५२।।
तेन त्वाऽहं न मोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् । ततस्तं दीर्घतमसं स वृषः प्रत्युवाच ह ।।५३।।
नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव वा । भक्ष्याभक्ष्यं न जानीमः पेयापेयं च सर्वशः ।।५४।।
कार्याकार्यं न वै विद्मो गम्यागम्यं तथैव च । न पाप्मानो वयं विप्र धर्मो ह्येष गवां स्मृतः ।।५५।।

परम अभीष्ट ऐसे सुखमय अवसर में तुमने बाँधा पहुँचायी है, अज्ञानवश तुमने मुझको ऐसा कहा है, अतः महान् अंधकार को प्राप्त होगे। बृहस्पति के शाप के कारण वह शिशु दीर्घतमा ऋषि के नाम से विख्यात हुआ। ऋषिवर अशिज भी बृहस्पति के समान तेजस्वी एवं परम यशस्वी थे ।।४४–४६।। उनके पुत्र दीर्घतमा परम ब्रह्मचारी थे, और उनके भाई के आश्रम में निवास करते थे, सुरभी के पुत्र एक वृषभ से उन्होंने एक बार गोधर्म का श्रवण–ग्रहण किया था। अशिज के भ्राता एवं दीर्घतमा के पितृव्य बृहस्पति ने उनके निवासार्थ एक भवन का निर्माण किया था, उसी में निवास कर रहे थे, एक बार कहीं से घूमता हुआ एक वृषभ वहाँ पर आ गया, गौओं के साथ घूमते हुए उस वृषभ ने श्राद्ध के लिए लाये गये कुशों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। ऋषिवर दीर्घतमा ने फड़कते हुए उस वृषभ की दोनों सींगों को बलपूर्वक पकड़ लिया ।।४७–४९।। उनके पकड़े जाने पर जब वह एक पग से दूसरा पग भी नहीं रख सका तब असक्त होकर दीर्घतमा से बोला, बलवानों में श्रेष्ठ! मुझे आप छोड़ दें, तात! मैंने आपके समान बलवान् कहीं पर किसी अन्य को नहीं पाया, यद्यपि समस्त पृथ्वी भर का मैंने देवदेव महादेव जी को वहन करते हुए भ्रमण किया है। बलशालियों में श्रेष्ठ! मुझे छोड़ दीजिये, मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, मुझसे वर माँगिये।' वृषभ के ऐसा कहने पर दीर्घतमा ने कहा, वृषभ! मेरे हाथ से तू जीते हुए कहाँ जाओगे। तुम चार पैरवाले होकर भी दूसरे की वस्तु का भक्षण करते हो, अतः मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। दीर्घतमा के ऐसा कहने पर वृषभ ने पुनः उत्तर दिया, तात! मेरे लिये कोई पाप नहीं है, चोरी भी कुछ नहीं है। मैं क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, क्या पीना चाहिए, क्या नहीं पीना चाहिए–इसे नहीं जानता ।।५०–५४।। उसी प्रकार मुझे इसका भी ज्ञान नहीं है कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए और कहाँ न जाना चाहिए, ब्राह्मणदेव! हम पशुओं को पाप नहीं लगता, गौओं का तो यही धर्म कहा गया है। वृषभ के इस कथन में दीर्घतमा गौ का नाम सुनकर अचकचा गये, उन्होंने परम भक्ति तथा विनयपूर्ण चाटुकारी

गवां नाम सवै श्रुत्वा संभ्रान्तस्त्वनुमुच्य तम् । भक्त्या चाऽऽनुश्रविकया गोषु तं वै प्रसादयत् ।।५६।।
प्रसादिते गते तस्मिन्गोधर्मभक्तितस्तु तम् । मनसैव तदादत्ते तन्निष्ठस्तत्परायणः ।।५७।।
ततो यवीयसः पत्नीमोतथ्यस्याभ्यमन्यत । विचेष्टमानां रुदतीं दैवात्संमूढचेतनः ।।५८।।
अवलेपं तु तं मत्वा शरद्वांस्तस्य नाक्षमत् । गोधर्मं वै बलं कृत्वा स्नुषां स सममन्यत ।।५९।।
विपर्यय तु तं दृष्ट्वा शरद्वान्प्रत्यचिन्तयत् । भविष्यमर्थं ज्ञात्वा च महात्मा च न मृत्युताम् ।।६०।।
प्रोवाच दीर्घतमसं क्रोधात्संरक्तलोचनः । गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात्प्रार्थयन्स्नुषाम् ।।६१।।
दुर्वृत्तस्त्वं त्यजाम्येष गच्छ त्वं तेन कर्मणा । यस्मात्त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरनुष्ठितः ।।
तेनासि त्वं परित्यक्तो दुराचारोऽसि में मतिः ।।६२।।

सूत उवाच

कर्मण्यस्मिंस्ततः क्रूरे तस्य बुद्धिरजायत । निर्भर्त्स्यं चैव बहुशो बाहुभ्यां परिगृह्य च ।।
कोष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत् ।।६३।।
उह्यमानः समुद्रस्तु सप्ताहं स्रोतसा तदा । तं सस्त्रीको बलिर्नाम राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ।।
अपश्यन्मज्जमानं तु स्रोयसाऽभ्याशमागतम् ।।६४।।

के साथ वृषभ को प्रसन्न किया। इस प्रकार प्रसन्न होकर वृषभ के चले जाने पर उन्होंने भक्तिपूर्वक इस गौधर्म पर विचार किया, और मन से उसे ग्रहणकर सर्वदा उसी में निष्ठा रखकर पालन में भी तत्पर हो गये ।।५५–५७।। तदनन्तर देव की अकृपा से हतबुद्धि होकर उन्होंने अपने छोटे भाई औतथ्य की पत्नी को एक बार कामवश होकर छेड़ने का उपक्रम किया, उनके आनाकानी करने और रोने पर भी वे अपने इस निन्द्यकर्म से विरत नहीं हुए। दीघतमा का यह महान् गर्वमूलक अपराध ऋषि शरद्वान् को सहन नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि दीर्घतमा अपने बल के कारण छोटे भाई की स्त्री के साथ जो पुत्रवधू के समान है, समागम कर रहे हैं। इस महान् विपर्यय को देखकर महात्मा शरद्वान् को बड़ी चिन्ता हुई, किन्तु भविष्य में घटित होनेवाली घटना के प्रभाव को जानते हुए उन्होंने दीर्घतमा को मृत्यु का शाप नहीं दिया ।।५८–६०।। अत्यन्त क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये, आवेश में भरकर दीर्घतमा से बोले, अरे दुष्कर्मपरायण! तू गम्य–अगम्य कुछ नहीं जानता, पशुधर्म को प्रश्रय देकर पुत्रवधू के साथ समागम करना चाहता है। अब मैं तुझे छोड़ रहा हूँ, अपने इस नीच कर्म का फल भोग। अन्धे, वृद्ध एवं जीविका चलाने में असमर्थ होकर भी तुम इतना नीच कर्म कर रहे हो, जिसे कोई नहीं करता, अतः मैं तुम्हें एक महान् दुराचारी समझ रहा हूँ, और इसीलिए तुम घर से बाहर निकाले गये हो ।।६१–६२।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! इतना कहने के उपरान्त दीर्घतमा की प्रवृत्ति क्रूर कर्म में हो गयी। तब ऋषि शरद्वान् ने उनकी बहुत भर्त्सना करके अपने दोनों बाहुओं से पकड़कर एक बाक्स में बन्दकर समुद्र में बह जाने के लिए गंगाजल में डाल दिया ।।६३।। एक सप्ताह तक गंगा के स्रोतों में तैरते रहने के बाद दीर्घतमा को स्त्री समेत परम धार्मिक राजा बलि ने देखा। उस समय वे डूब रहे थे, किन्तु जल के प्रवाह से राजा के समीप पहुँच चुके थे। विरोचन पुत्र राजा बलि

तं गृहीत्वा स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनस्तदा। अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यैर्भोज्यैश्च तर्पयन् ।।६५।।
प्रीतः स वै वरेणाथ च्छन्दयामास वै बलिम्। स च तस्माद्वरं वव्रे पुत्रार्थी दानवर्षभः ।।६६।।

बलिरुवाच

संतानार्थं महाभाग भार्याया मम मानद। पुत्रान्धर्मार्थसंयुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ।।६७।।
एवमुक्तस्तु तेनर्षिस्तथाऽस्त्वित्युक्तवान्हितम्। सुदेष्णां नाम भार्यां स्वां राजाऽस्मै प्राहिणोत्तदा ।।६८।।
अन्धं वृद्धं च तं दृष्ट्वा न सा देवी जगाम ह। स्वां च धात्रेयकीं तस्मै भूषयित्वा व्यसर्जयत् ।।६९।।
कक्षीवचक्षुषौ तस्यां शूद्रयोन्यामृषिर्वशी। जनयामास धर्मात्मा पुत्रावेतौ महौजसौ ।।७०।।
कक्षीवचक्षुषौ तौ तु दृष्ट्वा राजा बलिस्तदा। प्राधीतौ विधिवत्सम्यगीश्वरौ ब्रह्मवादिनौ ।।७१।।
सिद्धौ प्रत्यक्षधर्माणौ बुद्धौ श्रेष्ठतमावपि। ममैताविति होवाच बलिर्वैरोचनस्त्वृषिम् ।।७२।।
नेत्युवाच ततस्तं तु ममैताविति चाब्रवीत्। उत्पन्नौ शूद्रयोनौ तु भवन्छद्मासुरोत्तमौ ।।७३।।
अन्धं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव। प्राहिणोदवमानाय शूद्रां धात्रेयकीं मम ।।७४।।
ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम्। बलिर्भार्यां सुदेष्णां च भर्त्सयामास वै प्रभुः ।।७५।।
पुनश्चैनामलंकृत्य ऋषये प्रत्यपादयत्। तां स दीर्घतमा देवीमब्रवीद्यदि मां शुभे ।।७६।।

ने दीर्घतमा को जलराशि से पकड़कर ऊपर खींचकर बचा लिया और अपने अन्तःपुर में ले जाकर विविध प्रकार के खान-पानादि से उन्हें सन्तुष्ट किया। बलि के इस व्यवहार से दीर्घतमा परम सन्तुष्ट हुए और वरदान देकर उसे प्रसन्न करना चाहा। दानवपति बलि ने पुत्र की कामना से दीर्घतमा से वरदान की याचना की ।।६४-६६।।

बलि ने कहा—मानियों के मान रक्षक! महाभाग्यशालिन्! मैं सन्तान-प्राप्ति की याचना आपसे कर रहा हूँ, आप धर्म, अर्थ, काम से समन्वित पुत्रों की उत्पत्ति मेरे लिये करें ।।६७।। बलि के इस प्रकार कहने पर दीर्घतमा ने कहा कि बहुत अच्छा, मुझे आपकी प्रार्थना स्वीकार है। राजा बलि ने अपनी सुदेष्णा नामक रानी को सन्तान के लिए दीर्घतमा के पास जाने के लिए कहा ।।६८।। दीर्घतमा को अन्धा और वृद्ध देखकर देवी सुदेष्णा उनके पास स्वयं नहीं गयी और अपनी धाय को विविध वस्त्राभूषणादि से विभूषित कर भेज दिया। उस शूद्रयोनि में जितेन्द्रिय वश्यात्मा दीर्घतमा ने कक्षीवान् और चाक्षुष नामक दो धर्मात्मा पुत्रों को उत्पन्न किया, जो महान् तेजस्वी थे ।।६९-७०।। उन कक्षीवान् और चाक्षुष नामक पुत्रों को, जो भलीभाँति पढ़-लिखकर ब्रह्मवेत्ता, योगपरायण, परमबुद्धिमान्, सिद्ध, धर्मतत्त्वों के विचारक एवं श्रेष्ठ हो चुके थे, देखकर विरोचन पुत्र राजा बलि ने कहा कि ये दोनों हमारे पुत्र हैं क्या? दीर्घतमा ने कहा, नहीं, ये तुम्हारे नहीं, हमारे पुत्र हैं; क्योंकि तुम्हारे छद्म से ये शूद्र योनि में उत्पन्न हुए हैं, ये असुरों में श्रेष्ठ होंगे (?) तुम्हारी रानी सुदेष्णा ने मुझे अन्धा और वृद्ध मानकर अपमान करने के लिए मेरे पास अपनी एक शूद्रवर्ण धाय को भेज दिया था ।।७१-७४।। दीर्घतमा की ऐसी बातें सुनकर राजा बलि ने उनकी पुनः-पुनः प्रार्थना की और किसी प्रकार उन्हें प्रसन्न किया। ऐश्वर्यशाली राजा बलि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा की भी बड़ी भर्त्सना की। और पुनः अलंकारादि से विभूषित

दध्ना लवणमिश्रेण स्व (सु) व्यक्तं नग्नकं तथा । लिहिष्यस्यजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् ।।७७।।
ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रांश्च मनसेप्सितान् । तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तथा ।।७८।।
अपानं च समासाद्य जुगुप्सन्ती न्यवर्जयत् । ताप्मुनुवाच ततः सर्षिर्यते परिहृतं शुभे ।।
विनाऽपानं कुमारं त्वं जनयिष्यसि पूर्वजम् ।।७९।।
ततस्तं दीर्घतमसं सा देवी प्रत्युवाच ह । नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं दातुं ममेदृशम् ।।८०।।

(*ऋषिरुवाच)

तवापराधो देव्येष नान्यथा भविता नु वै । देवीदानीं च ते पुत्रमहं दास्यामि सुव्रते ।।८१।।
तस्यापानं विना चैव योग्याभावो (?) भविष्यति) । तां स दीर्घतमाश्चैव कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ।।८२।।
प्राशितं दधि यत्तेऽद्य ममाङ्गाद्वै शुचिस्मिते । तेन ते पूरितो गर्भः पौर्णमास्यामिवोदधिः ।।८३।।
भविष्यन्ति कुमारास्ते पञ्च देवसुतोपमाः । तेजस्विनः पराक्रान्ता यज्वानो धार्मिकास्तथा ।।८४।।
ततोऽङ्गस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठपुत्रो व्यजायत । वङ्गस्तस्मात्कलिङ्गस्तु पुण्ड्रो ब्रह्मस्तथैव च ।।८५।।
वंशभाजस्तु पञ्चैते बलेः क्षेत्रेऽभवंस्तदा । +इत्येत दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुताः पुरा ।।८६।।

कर ऋषि के पास भेजा। दीर्घतमा ने सुदेष्णा से कहा, मङ्गले! यदि नमक मिश्रित दही मेरे नग्न और खुले हुए समस्त शरीर में लगाकर पैर से लेकर मस्तक तक बिना किसी घृणा या जुगुप्सा के अपनी जीभ से चाटोगी तब अपनी इच्छा के अनुसार पुत्रों को प्राप्त करोगी। देवी सुदेष्णा ने दीर्घतमा के इस आदेश का यद्यपि सर्वांशतः पालन किया ।।७५-७८।। पर उनके शरीर के मलमार्ग को चाटते उसे बड़ी घृणा हुई जिससे छोड़ दिया। ऐसा देखकर ऋषि दीर्घतमा ने सुदेष्णा से पुनः कहा, शुभे! तुम अपने ज्येष्ठ कुमार को बिना अपान (मलमार्ग) के उत्पन्न करोगी। दीर्घतमा की ऐसी बातें सुनकर देवी ने पुनः प्रार्थना की, महाभाग! ऐसे पुत्र देने की कृपा आप न करें ।।७९-८०।।

ऋषि ने कहा—देवि! यह तो तुम्हारा ही अपराध है, अब यह अन्यथा नहीं हो सकता। सद्व्रतपरायणे! देवि ऐसा ही है तो तुम्हारा पुत्र इस प्रकार का होगा। उसका अपानमार्ग के बिना भी सब कार्य होता रहेगा। ऐसा कहने के उपरान्त ऋषिवर दीर्घतमा ने देवी सुदेष्णा की कुक्षि का स्पर्श करते हुए पुनः कहा, देवि! सुन्दर हँसनेवाली! तूने मेरे समस्त अंगों में दधि का जो प्राशन कर लिया है, उसके फलस्वरूप तुम्हारा गर्भ पूर्णिमा तिथि के समुद्र की भाँति पूर्णता को प्राप्त हो गया है ।।८१-८३।। तुम्हारे गर्भ से देवताओं के समान परम सुन्दर एवं प्रभावशाली पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे, वे परम धार्मिक, यज्ञपरायण, परमपराक्रमशाली एवं तेजस्वी होंगे। ऋषिवर दीर्घतमा के इस वरदान के अनुसार देवी सुदेष्णा से राजा बलि का ज्येष्ठ पुत्र अङ्ग उत्पन्न हुआ। उसके बाद बङ्ग, फिर कलिङ्ग, फिर पुण्ड्र तथा सबसे बाद में ब्रह्म नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वंश की वृद्धि करनेवाले ये पुत्रगण राजा बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। प्राचीनकाल में ऋषिवर दीर्घतमा ने इन्हीं पाँचों पुत्रों को राजा बलि को प्रदान किया था ।।८४-८६।। भगवान् ब्रह्मा ने किसी कारणवश इस महात्मा को 'तुम्हें

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

+ इत्येत इत्यारभ्य संतानं चोभयोस्तयोरित्यन्तग्रन्थः ख. घ. पुस्तकयोर्नास्ति।

प्रजास्त्वपहतास्तस्य ब्रह्मणां कारणं प्रति। अपत्यमस्य दारेषु स्वेषु मा भून्महात्मनः ।।८७।।
ततो मनुष्ययोन्यां वै जनयामास स प्रजाः। सुरभिर्दीर्घतमसमथ प्रीतो वचोऽब्रवीत् ।।८८।।
विचार्य यस्माद्गोधर्मं त्वमेवं कृतवानसि। तेन न्यायेन मुमुचे अहं प्रीतोऽस्ति तेन ते ।।८९।।
तस्मात्तव तमो दीर्घं निस्तुदाम्यद्य पश्य वै। बार्हस्पत्यं च यत्तेऽन्यत्पापं संतिष्ठते तनौ ।।९०।।
जरामृत्युभयं चैव आघ्राय प्रणुदामि ते। आघ्रातमात्रः सोऽपश्यत्सद्यस्तमसि नाशिते ।।९१।।
आयुष्मांश्च युवा चैव चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्। गवा दीर्घतमाः सोऽथ गौतमः समपद्यत ।।९२।।
कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिप्रजाम्। यथोद्दिष्टं हि पित्रर्थे चचार विपुलं तपः ।।९३।।
ततः कालेन महता तपसा भावितः स वै। विधूय सानुजो दोषान्ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्प्रभुः ।।९४।।
ततोऽब्रवीत्पिता चैनं पुत्रवानस्म्यहं प्रभो। सत्पुत्रेण त्वया तात कृतार्थोऽस्मि यशस्विना ।।९५।।
युक्तात्मा हि ततः सोऽथ प्राप्तवान्ब्रह्मणः क्षयम्। ब्राह्मण्यं प्राप्य कक्षीवान्सहस्रमसृजत्सुतान् ।।९६।।
कृष्णाङ्गा गौतमास्ते वै स्मृताः कक्षीवतः सुताः। इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य वै ।।९७।।
समागमः समाख्यातः संतानं चोभयोस्तयोः। बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।।९८।।

अपनी स्त्रियों में सन्तति न होगी'—ऐसा अभिशाप दिया था। इसी से उन्हें अपनी पत्नी में कोई सन्तति न हुई, इसी कारणवश उन्होंने मनुष्य योनि में सन्ततियाँ उत्पन्न कीं। ऋषि के इस गौधर्म से परम प्रसन्न होकर वृष ने यह वचन कहा 'तुमने गौधर्म की मर्यादा पर भलीभाँति विचारकर पालन किया है, हे मुने! तुम्हारे इस आचरण से मैं परम प्रसन्न हूँ, देखो, आज महान् अन्धकार से मैं तुम्हारी मुक्ति कर रहा हूँ, तुम्हारे शरीर में बृहस्पति के शाप के कारण जो पाप चिरकाल से निबद्ध था, उसे भी तुमसे अलग कर रहा हूँ ।।८७–९०।। अपने नथुनों से सूँघकर तुम्हारे शरीर से वृद्धता एवं मृत्यु के शाप को भी मैं दूर कर रहा हूँ।' ऐसा कहने के उपरान्त वृषभ के सूँघते ही दीर्घतमा का चिरकालीन अन्धकार दूर हो गया, और वे देखने लगे। आशीर्वाद के फलस्वरूप वे दीर्घायुसम्पन्न युवा और नेत्रवान् हो गये। इस प्रकार गौ के आशीर्वाद से ऋषि दीर्घतमा गौतम—इन नये नाम से प्रख्यात हुए। तदनन्तर शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न कक्षीवान् ने पिता के साथ पर्वतीय प्रदेश को प्रस्थान किया और पिता के कल्याणार्थ ऐसी विपुल तपस्या की, जैसी तपस्या करने के लिए पिता ने उपदेश किया था। अपनी परम कठोर तपस्या के बल पर परमऐश्वर्यशाली कक्षीवान् ने बहुत दिनों के उपरान्त सिद्धि प्राप्त की, और अपने तथा अपने अनुज चाक्षुष के भी पापों को नष्टकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया ।।९१–९४।। कक्षीवान् के इस कर्म से पिता को परम प्रसन्नता हुई और वे बोले, 'सर्वसमर्थ पुत्र! तुम जैसे योग्य पुत्र से मैं पुत्रवान् हूँ, परम यशस्वी सत्पुत्र को प्राप्तकर मैं कृतार्थ हो गया।' ऐसा कहने के उपरान्त महात्मा गौतम ने योग की साधना की और ब्रह्म के पद को प्राप्त किया। इधर कक्षीवान् ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सहस्र पुत्रों की सृष्टि की। कक्षीवान् के वे पुत्र काले अंगोंवाले गौतम गोत्रीय कहे जाते हैं ।।९५–९६$\frac{१}{२}$।। विरोचन के पुत्र बलि की एवं दीर्घतमा की सन्ततियों का परस्पर समागम जिस प्रकार हुआ, उसे मैं आप लोगों को बतला चुका। महाराज बलि अपने उन पाँचों पुत्रों का राज्याभिषेक करने के उपरान्त कृतार्थ हो गया। योगात्मा परमऐश्वर्यशाली वह राजा बलि योग का आश्रय लेकर

कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य च प्रभुः । अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकाङ्क्षी चरत्युत ।।९९।।
तत्राङ्गस्य तु राजर्षे राजाऽऽसीद्दधिवाहनः । सापराधसुदेष्णाया अनपानोऽभवन्नृपः ।।१००।।
अनपानस्य पुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः । पुत्रो दिविरथस्याऽऽसीद्विद्वान्धर्मरथो नृपः ।।१०१।।
×स वै धर्मरथः श्रीमान्येन विष्णुपदे गिरौ । सोमः शक्रेण सह वै यज्ञे पीतो महात्मना ।।१०२।।
सुनुर्धर्मरथस्यापि राजा चित्ररथोऽभवत् । अथ चित्ररथस्यापि राजा दशरथोऽभवत् ।।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत् ।।१०३।।
(*स तु दाशथिर्वीरश्चतुरङ्गो महामनाः । ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञेऽथ कुलवर्धनः ।।१०४।।
चतुरङ्गश्च पुत्रस्तु पृथुलाश्च इति श्रुतः । पृथुलाश्वसुतश्चापि चम्पो नाम बभूव ह ।।
चम्पस्य तु पुरी रम्या रम्या या मालिनी भवत्) ।।१०५।।
+चम्पावती पुरी चम्पा चतुर्वर्णा च वै वसत् । षष्टिवर्षसहस्राणि चम्पावत्यां पुराऽवसत् ।।१०६।।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः सर्वे स्वेधर्मनुष्ठिते । सर्वे धर्म वै तपसा सर्वे विष्णुपरायणाः (?) ।।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ।।१०७।।

सभी जीवों से अदृश्य होकर काल की प्रतीक्षा करता हुआ तपस्या में अपना काल यापन करने लगा। बलि के उन पाँचों पुत्रों में राजर्षि अङ्गद का पुत्र दधिवाहन हुआ। देवी सुदेष्णा के अपराध के कारण दीर्घतमा के शापानुसार उसे मलमार्ग नहीं था। उस राजा दधिवाहन का दूसरा नाम अनपान भी था, अनपान का पुत्र राजा दिविरथ कहा जाता है। दिविरथ का पुत्र परम विद्वान् राजा धर्मरथ हुआ ।।९७–१०१।। इसी परमधार्मिक महाबलशाली श्रीसम्पन्न राजा धर्मरथ ने विष्णुपद नामक पर्वत पर इन्द्र के साथ एक यज्ञ में सोम रस का पान किया था। राजा धर्मरथ का पुत्र राजा चित्ररथ हुआ। उस चित्ररथ के पुत्र राजा दशरथ हुए। यही राजा दशरथ लोमपाद के नाम से विख्यात थे, जिनकी पुत्री शान्ता थी[1] ।।१०२–१०३।। राजा दशरथ का पुत्र महान् यशस्वी कुलोद्धारक परम वीर राजा चतुरङ्ग था, वह महात्मा ऋष्यशृङ्ग के अनुग्रह से उत्पन्न हुआ था। चतुरङ्ग का पुत्र राजा पृथुलाश्व सुना जाता है। पृथुलाश्व का चम्प नामक पुत्र हुआ। उस राजा चम्प की परम रमणीय मालिनी नामक नगरी थी। उसका दूसरा नाम चम्पावती भी था, उस मनोहर चम्पावती नगरी में चारों वर्णों के लोग निवास करते थे। उस चम्पावती नगरी में राजा चम्प ने साठ सहस्र वर्षों तक निवास किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी जातियों के लोग अपने-अपने धर्म पर रहते थे, सभी परम धार्मिक विचारोंवाले एवं भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। पूर्णभद्र की अनुकम्पा से उस राजा चम्प का पुत्र हर्यङ्ग हुआ ।।१०४–१०७।। उस राजा हर्यङ्ग के पास

× इत आरभ्य अन्त्यश्च भविता नृप इत्यन्तग्रन्थो न विद्यते ग. पुस्तके। (इदमर्धं न विद्यते क. घ. पुस्तकयोः।)

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. घ. ङ. पुस्तकेष्वेव।

+ एतच्छ्लोकद्वयं घ. ङ. पुस्तकयोर्न।

[1] भवभूति ने उत्तररामचरित में रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ की पुत्री को शान्ता माना है, और ऋष्यशृङ्ग को देने की बात भी लिखी है, अन्य स्थानों पर उक्त महाराज दशरथ के रामचन्द्रादि चार पुत्रों के होने की कथा आती है, शान्ता की नहीं। इससे मालूम होता है कि शान्ता को उक्त महाराज दशरथ की पुत्री भवभूति ने भ्रान्तिवश माना है। वह इसी दशरथ की पुत्री थी।

जज्ञे वै तण्डिकरतस्य वारणं शुक्रवारणम् । आनयामास स महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ।।१०८।।
हर्यङ्गगस्य तु राजा दायादो भद्ररथः किल । अथ भद्ररथस्याऽऽसीद्बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ।।१०९।।
बृहद्रथः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मनः । बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ।।११०।।
नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद्दृढरथो नृपः । आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयः ।।१११।।
दायादस्तस्य चाङ्गेभ्यो यस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः । कर्णस्य सुरसेनस्तु द्विजस्तस्याऽऽत्मजः स्मृतः ।।११२।।

ऋषय ऊचुः

सूतात्मजः कथं कर्णः कथं चाङ्गस्य वंशजः । एतदिच्छाम वै श्रोतुमत्यर्थं कुशलो ह्यसि ।।११३।।

सूत उवाच

बृहद्भानोः सुतो जज्ञे नाम्ना राजा बृहन्मनाः । तस्य पत्नीद्वयं चाऽऽसीच्चैद्यस्योभे च ते सुते ।।११४।।
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते । जयद्रथस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्यां व्यजायत ।।११५।।
ब्रह्मक्षत्रान्तरः सत्यविजयो नाम विश्रुतः । विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः ।।११६।।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः । सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ।।११७।।
स कर्णं परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः । एतद्वः कथितं सर्वं कर्णे यद्वै प्रचोदितम् ।।११८।।

तण्डिक नामक एक महान् बलशाली हाथी था जो पूर्व जन्म में इन्द्र का ऐरावत था, राजा अपने मन्त्र बल से उस वाहन रत्न को पृथ्वी पर बुलाया था। राजा हर्यङ्ग का उत्तराधिकारी राजा भद्ररथ हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा भद्ररथ का पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ ।।१०८–१०९।। बृहत्कर्मा का पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ, उससे बृहन्मना नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। राजेन्द्र बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे राजा दृढ़रथ की उत्पत्ति हुई। उस राजा दृढ़रथ का पुत्र विश्वविजयी राजा जनमेजय हुआ। उसके अङ्गों से राजा कर्ण हुआ है, जो उसका उत्तराधिकारी था। कर्ण का पुत्र सुरसेन हुआ, और उसका पुत्र द्विज (ध्वज) नाम से कहा जाता है ।।११०–११२।।

ऋषियों ने कहा–सूत जी! वे राजा कर्ण किस प्रकार सूत के पुत्र हुए? और किस प्रकार वे ही राजा अंग के वंशज हुए? आप इन प्राचीन कथाओं के परम कुशल ज्ञाता हैं अतः इसे हम लोग सुनना चाहते हैं ।।११३।।

सूत बोले–बृहद्भानु का पुत्र राजा बृहन्मना था। उस राजा बृहन्मना की दो पत्नियाँ थीं, जो दोनों चेदिनरेश की पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे, यशोदेवी और सत्या। इन्हीं दोनों पत्नियों से राजा का वंश अलग–अलग हो गया, राजाधिराज जयद्रथ यशोदेवी में उत्पन्न हुआ। दूसरी देवी सत्या से ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उद्धारक परम प्रख्यात राजा विजय हुआ। उस विजय का पुत्र धृति हुआ, जिसका पुत्र धृतव्रत नाम से प्रसिद्ध हुआ। धृतव्रत का पुत्र महान् यशस्वी राजा सत्यकर्मा हुआ, उसी सत्यकर्मा का पुत्र सूत अधिरथ हुआ, उसी ने कर्ण का पालन–पोषण किया था, इसी से कर्ण को सूत–पुत्र मानते हैं, कर्ण के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह सब मैं आपको बतला चुका। इस प्रकार अङ्ग के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजाओं का वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक क्रमशः कर दिया, अब इसके उपरान्त पुरु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये ।।११४–११९।।

एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च पुरोस्तु शृणुत प्रजाः ।।११९।।

सूत उवाच

पुरोः पुत्रो महाबाहुराजाऽऽसीज्जनमेजयः । अविद्धस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्दिशम् ।।१२०।।
अविद्धतः प्रवीरस्तु मनस्युरभवत्सुतः । राजाऽथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ।।१२१।।
(*दायादस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाम महीपतिः । धुन्धोर्बहुगवी पुत्रः संजातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।१२२।।
संजातेरथ रौद्राश्वस्तस्य पुत्रान्निबोधत) । रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ।।१२३।।
रजेयुश्च कृतेयुश्च कक्षेयुः स्थण्डिलेयु च । धृतेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तमः ।।१२४।।
धर्मेयुः संनतेयुश्च वनेयुर्दशमस्तु सः । रुद्रा शूद्रा च मद्रा च शुभा जामलजा तथा ।।१२५।।
तला खला च सप्तैता या च गोपजला स्मृता । तथा ताम्ररसा चैव रत्नकूटी च ता दश ।।१२६।।
आत्रेयो वंशतस्तासां भर्ता नाम्ना प्रभाकरः । अनादृष्टस्तु राजर्षी रिवेयुस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।१२७।।
रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा । यस्यां देव्यां स राजर्षी रन्तिं नाम ह्यजीजनत् ।।१२८।।
रन्तिर्नारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयच्छुभान् । त्रसुं तथाऽप्रतिरथं ध्रुवं चैवातिधार्मिकम् ।।१२९।।
गौरी कन्या च विख्याता मांधातुर्जननी शुभा । धुर्योऽप्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत्सुतः ।।१३०।।
मेघातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्ठायना द्विजाः । इतिनानुयम (?) स्याऽऽसीत्कन्या साऽजनयत्सुतान् ।।१३१।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! राजा पुरु का पुत्र महाबाहु जनमेजय हुआ, उसका पुत्र अविद्ध था, जिसने पूर्व दिशा को जीता था। अविद्ध से प्रवीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र मनस्यु था। उस मनस्यु का पुत्र राजा जयद हुआ। जयद का उत्तराधिकारी राजा धुन्धु था, धुन्धु का पुत्र वहुगवी था, जिसका पुत्र संजाति था। संजाति का पुत्र रौद्राश्व था, उसके पुत्रों का वर्णन सुनिये। उस रौद्राश्व के घृताची नामक अप्सरा में दस पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम रजेयु, कृतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, धृतेयु, जलेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और वनेयु थे। इन पुत्रों के अतिरिक्त रौद्राश्व की दस पुत्रियाँ भी थीं, जिनके नाम थे, रुद्रा, शूद्रा, मद्रा, शुभा, जामलजा, तला, खला, गोपजला, ताम्ररसा और रत्नकूटी ।।१२०–१२६।। इन दसों कन्याओं का एकमात्र स्वामी अत्रिवंशोत्पन्न प्रभाकर था। राजर्षि अनादृष्ट का पुत्र रिवेयु था। उस राजा रिवेयु की पत्नी ज्वलना तक्षक की पुत्री थी। राजर्षि रिवेयु ने ज्वलना में रन्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया। नरपति रन्ति ने सरस्वती नामक अपनी पत्नी में त्रसु, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक परम धार्मिक कल्याण कामनावाले पुत्रों को उत्पन्न किया। उसकी एक मङ्गलदायिनी कन्या गौरी थीं, जो राजा मान्धाता की माता हुईं। राजा अप्रतिरथ का पुत्र धुर्य हुआ, जिसका पुत्र कण्ठ हुआ ।।१२७–१३०।। उस कण्ठ का पुत्र मेधातिथि था, जिससे काण्ठायन नामक द्विजाति वर्ग की उत्पत्ति हुई। इस·····(?) की एक कन्या थी, जिसने अनेक पुत्रों को उत्पन्न

---

* एतश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

त्रसोः सुदयितं पुत्रं मलिनं ब्रह्मवादिनम् । उपदातं ततो लेभे चतुरस्त्वित साऽऽत्मजान् ।।१३२।।
सुष्मन्तमथ दुष्म (ष्य) न्तं प्रवीरमनघं तथा । चक्रवर्ती ततो जज्ञे दौष्म (ष्य) न्तिर्नृपसत्तमः ।।१३३।।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् । दुष्म (ष्य) न्तं राजानं प्रति वागुवाचाशरीरिणो ।।१३४।।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भर स्वपुत्रं दुष्यन्तं सत्यमाह शकुन्तला ।।१३५।।
रेतोधाः पुत्रं नयति नरदेव यमक्षयात् । त्वं चास्य धाता गर्भस्य माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ।।१३६।।
भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् । नाभ्यनन्दच्च तान्राजा नानुरूपान्ममेत्युत ।।१३७।।
ततस्ता मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम् । ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्म तत् ।।१३८।।
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ।।१३९।।
तत्रैवोदाहरन्तीदं भरद्वाजस्य धीमतः । जन्मसंक्रमणं चैव मरुद्भिर्भरताय वै ।।१४०।।
पत्न्यामासन्नगर्भायामसिजः संस्थितः किल । भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वाऽथ बृहस्पतिरुवाच ह ।।
अलंकृत्यो तनुं स्वां तु मैथुनं देहि मे शुभे ।।१४१।।
एवमुक्ताऽब्रवीदे (*नमन्तर्वत्नी ह्यहं विभो । गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा ।।१४२।।

किया था। राजा रन्ति के प्रथम पुत्र त्रसु का परमप्रिय पुत्र मलिन था, जो अच्छा ब्रह्मवेत्ता था। उससे उपदानवी ने चार पुत्रों की प्राप्ति की, जिनके नाम थे, सुष्मन्त, दुष्यन्त, प्रवीर और अनघ। इनमें दुष्यन्त का पुत्र नृपतिवर्य भरत चक्रवर्ती सम्राट् हुआ, वह राजा भरत शकुन्तला नामक पत्नी में उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम से भारतवर्ष की प्रसिद्धि है ।।१३१-१३३$\frac{१}{२}$।। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा दुष्यन्त की अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) हुई थी-'दुष्यन्त! पुत्र की माता उसकी केवल रक्षा करनेवाली है, पुत्र पिता का प्रतिनिधि है, पिता ही उसका सब-कुछ है, जिससे उसकी उत्पत्ति होती है, वही सब-कुछ है, तुम इस बालक के वही पिता हो। यह तुम्हारा ही पुत्र है, इसका पालन-पोषण करो, शकुन्तला ने तुमसे सत्य बात कही है। नरदेव! पिता अपने पुत्र की मृत्युभय आदि आपत्तियों से रक्षा करता है, तुम्हीं इस गर्भ का आधान करनेवाले हो, शकुन्तला का अपमान मत करो ।।१३४-१३६।। सम्राट् भरत ने अपनी तीनों पत्नियों में नव पुत्रों को उत्पन्न किया था; किन्तु उसने अपने उन समस्त पुत्रों का यह कह करके अभिनन्दन नहीं किया ये सब हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं हैं ।।१३७।। भरत की ऐसी बातों से पुत्रों की माताओं को बड़ा क्रोध हुआ और आवेश में आकर उन सबों को उन्होंने मार डाला, इस प्रकार राजाधिराज भरत की पुत्रोत्पत्ति निष्फल हो गयी। तदनन्तर मरुतों ने बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को लाकर राजा भरत को दे दिया। परम सामर्थ्यशाली भरद्वाज इस प्रकार यज्ञाधिपति मरुतों द्वारा सम्राट् भरत के वंश में संक्रामित हुए ।।१३८-१३९।। इसी वार्ता के प्रसङ्ग में लोग परम बुद्धिशाली भरद्वाज के जन्म-वृत्तान्त की चर्चा करते हैं कि इस प्रकार उनकी (उत्पत्ति में संधि हुई) और इस प्रकार वे मरुतों द्वारा लाकर भरत को समर्पित किये गये। यह प्रसिद्ध बात है कि प्राचीनकाल में ऋषिवर अशिज

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न।

अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मश्चैव विगर्हितः । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां) स्मयमानो बृहस्पतिः ।।१४३।।
विनयो नोपदेष्टव्यस्त्वया मम कथञ्चन । हर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे ।।१४४।।
ततो बृहस्पतिं गर्भो हर्षमाणमुवाच ह । संनिविष्टो ह्यहं पूर्वमिह तात बृहस्पते ।।१४५।।
अमोघरेताश्च भवान्नावकाशोऽस्ति च द्वयोः । एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह ।।१४६।।
यस्मान्मामीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । प्रतिषेधसि तत्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ।।१४७।।
पादाभ्यां तेन तच्छन्नं मातुर्द्वारं बृहस्पतेः । तद्रेतस्तुर्मध्येऽनिवार्यः शिशूकोऽभवत् ।।१४८।।
सद्योजातं कुमारं तं दृष्ट्वाथ ममताऽब्रवीत् । गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरद्वाजं बृहस्पते ।।१४९।।
एवमुक्त्वा गतायां स पुत्रं त्यजति तत्क्षणात् । भरस्व बाढमित्युक्तो भरद्वाजस्ततोऽभवत् ।।१५०।।
(+मातापितृभ्यां संत्यक्तं दृष्ट्वाऽथ मरुतः शिशुम् । गृहीत्वैनं भरद्वाजं जग्मुस्ते कृपया ततः ।।१५१।।
तस्मिन्काले तु भरतो मरुद्भिः क्रतुभिः क्रमात्) । काम्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजते पुत्रलिप्सया ।।१५२।।

की पत्नी ममता जब आसन्नगर्भा हुई तब वे तपस्या में निरत हो गये। एकान्त में अपने भाई की भार्या को देखकर बृहस्पति ने कहा–'मंगले! अपने शरीर को विधिवत् अलंकारादि से अलंकृत करके मुझे मैथुन का दान करो ।।१४०–१४१।। बृहस्पति के इस प्रकार कहने पर देवी ममता ने कहा, समर्थ! मैं सम्प्रति गर्भवती हूँ, यह गर्भ भी अब पूर्ण हो चुका है, ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करता है, तुम्हारा वीर्य भी निष्फल हो जानेवाला नहीं है, और प्रकार व्यभिचार करने पर धर्म की विगर्हणा होगी। ममता के ऐसा कहने पर बृहस्पति हँसते हुए बोले, सुन्दरि! मुझे तुम किसी प्रकार भी आचार की शिक्षा नहीं दे सकती, मैं सब-कुछ जानता हूँ। ऐसा कहकर बड़े आनन्द के साथ बृहस्पति ने साहसपूर्वक ममता के साथ मैथुन करने का उपक्रम किया ।।१४२–१४४।। रति कर्म में आनन्दविभोर बृहस्पति से गर्भस्थ शिशु ने कहा, तात! बृहस्पते! मैं यहाँ पहले ही से सन्निविष्ट हूँ, आपका वीर्य कदापि निष्फल होनेवाला नहीं है, इस संकीर्ण स्थली में दो व्यक्तियों के निवास की सम्भावना नहीं है। गर्भस्थ शिशु के ऐसा कहने पर बृहस्पति को बड़ा क्रोध हो गया। वे बोले, सभी प्राणियों के अभीष्टतम इस सुन्दर अवसर पर तुम मुझे निषेध कर रहे हो, इस कारण तुम महान् घोर अन्धकार में प्रवेश करोगे ।।१४५–१४७।। बृहस्पति के इस कथन के उपरान्त गर्भस्थ शिशु ने अपने दोनों पैरों से माता के योनिद्वार को आवृत कर दिया, किन्तु तिस पर भी बृहस्पति का वीर्य उसके दोनों पैरों के मध्यभाग से अनिवार्य होकर उदर के भीतर चला गया, और एक छोटे शिशु के रूप में उत्पन्न होकर बाहर निकल पड़ा। इस सद्योजात कुमार को देखकर देवी ममता ने कहा, बृहस्पते! मैं तो अपने निवास को जा रही हूँ इस द्वाज (जारज) पुत्र की पालना तुम्हें करनी होगी। ऐसा कहकर ममता के चले जाने पर बृहस्पति ने भी उसी क्षण उस पुत्र को छोड़ दिया। 'भर द्वाजम्' (इस जारज शिशु की रक्षा करो) इस कथन के अनुसार वह शिशु भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१४८–१५०।। माता और पिता द्वारा छोड़े गये इस छोटे शिशु भरद्वाज को जब मरुद्गणों ने देखा, तो उन्हें बड़ी दया आयी, वे उसे अपने साथ उठा ले गये। ठीक उसी समय पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा से सम्राट् भरत नैमित्तिक

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो न घ. पुस्तके।

यदा स यजमानो वै पुत्रान्नाऽऽसादयत्प्रभुः । यज्ञं ततो मरुत्सोमं पुत्रार्थे पुनराहरत् ।।१५३।।
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः । भारद्वाजं ततः पुत्रं बार्हस्पत्यं मनीषिणम् ।।१५४।।
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य तदाऽब्रवीत् । प्रजायां संहतायां वै कृतार्थोऽहं त्वया विभो ।।१५५।।
पूर्वं तु वितथं तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि । ततः स वितथो नाम भारद्वाजस्तथाऽभवत् ।।१५६।।
तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात्क्षत्रियोऽभवत् । द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितर (तृक) स्तु वै ।।१५७।।
ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ । वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्बभूव ह ।।१५८।।
महाभूतोपमाश्चाऽऽसंश्चत्वारो भुवमन्युजाः । बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गाग्रश्च वीर्यवान् ।।१५९।।
नरस्य सांकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ । गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च सांकृत्वाववरौ स्मृतौ ।।१६०।।
दायादाश्चापि गाग्रस्य शिनिद्बद्धाबभूव ह । स्मृताश्चैते ततो गाग्र्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः ।।१६१।।
महावीर्यसुतश्चापि भीमस्तस्मादुभक्षयः । तस्य भार्या विशाला तु सूषुवे वै सुतत्रयम् ।।१६२।।
त्र्य्यारुणिं पुष्करिणं तृतीयं सुषुवे कपिम् । कपेः क्षत्रवरा ह्येते तयोः प्रोक्ता महर्षयः ।।१६३।।
गाग्राः सांकृतयो वीर्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः । संश्चिताऽऽङ्गिरसं पक्षं बृहत्क्षत्रस्य वक्ष्यति ।।१६४।।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः । सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं नाम्ना वै हस्तिनापुरम् ।।१६५।।

एवं काम्य विविध यज्ञों का अनुष्ठान कर रहे थे, सर्वैश्वर्यशाली सम्राट् भरत को जब उन यज्ञों से भी पुत्र-प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होने पुत्र-प्राप्ति की कामना से पुनः मरुद्‌गणों का एवं सोम का यज्ञ प्रारम्भ किया ।।१५१-१५३।। उस मरुत्सोमात्मक यज्ञ से मरुद्‌गण परम प्रसन्न हुए, और बृहस्पति के वीर्य से समुत्पन्न मनीषी उस भरद्वाज नामक पुत्र को उन्होंने भरत को दे दिया। भरद्वाज को पुत्र रूप में प्राप्तकर सम्राट् भरत विनतस्वर में बोले, 'विभो, इस अवसर पर जबकि मेरी सारी सन्ततियाँ मृत्यु को प्राप्त हो गयी थीं, आपने पुत्रदानकर मुझे कृतार्थ कर दिया ।।१५४-१५५।। सम्राट् भरत की पहली सन्ततियों का जन्म वितथ (असफल) हो चुका था अतः भरद्वाज वितथ नाम से भी प्रसिद्ध हुए। सम्राट् भरत के पालन-पोषण के कारण दिव्य विभूति सम्पन्न भरद्वाज ब्राह्मणत्व से क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए। वे द्विमुख्यायन एवं द्विपितर नाम से भी प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार उत्तराधिकारी रूप में वितथ को प्राप्तकर सम्राट् भरत स्वर्गगामी हुए। वितथ के उत्तराधिकारी राजा भुवमन्यु हुए, उन भुवमन्यु के महाभूतों के समान महान् पराक्रमशाली चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे, बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गाग्र (गार्ग) ।।१५६-१५९।। इनमें नर के सांकृति नामक पुत्र हुए, जिनके गुरुवीर्य और त्रिदेव नामक महान् तेजस्वी पुत्र हुए—ये दोनों पुत्र सांकृत्य के नाम से विख्यात हैं। शिनिवद्ध……? गाग्र के उत्तराधिकारी गाग्र्य के नाम से विख्यात हुए—ये सब क्षत्रियोचित गुण धर्म समन्वित ब्राह्मण कहे जाते हैं। महावीर्य के पुत्र भीम थे, उनसे उपक्षय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उभक्षय की पुत्री विशाला थी, उसने त्र्य्यारुणि, पुष्करी और कपि नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया, कपि के वंशज केवल उत्तम क्षत्रिय हुए और उन दोनों के महर्षि हुए। गाग्र्य और सांकृति के वंशज परम बलशाली क्षत्रिय थे, वे सब आङ्गिरस बृहस्पति के वंश में मिल गये, अब बृहत्क्षत्र के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ।।१६०-१६४।। बृहत्क्षत्र का उत्तराधिकारी पुत्र परम धार्मिक सुहोत्र था, सुहोत्र का उत्तराधिकारी हस्ती नाम से प्रसिद्ध था। उसी ने प्राचीनकाल में हस्तिनापुर का निर्माण किया था। राजा हस्ती

हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधर्मिकाः । अजमीढो द्विजामीढः पुरुमीढस्तथैव च ।।१६६।।
*अजमीढस्य पत्न्यस्तु शुभाः कुरुकुलोद्वहाः । नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना ।।१६७।।
अजमीढस्य पुत्रास्तु तासु जाता कुलोद्वहाः । तपसोऽन्ते सुमहतो राज्ञो वृद्धस्य धार्मिकाः ।।१६८।।
भरद्वाजप्रसादेन शृणुध्वं तस्य विस्तरम् । अजमीढस्य केशिन्यां कण्ठः समभवत्किल ।।१६९।।
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्कण्ठायना द्विजाः । अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहद्वसुर्नृपः ।।१७०।।
बृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः । बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथः ।।१७१।।
विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चाऽऽत्मजः । अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।।१७२।।
रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढधनुस्तथा । वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सराः ।।१७३।।
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशाः । पृथुषेणस्य पारस्तु पारान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ।।१७४।।
यस्य चैकशतं चाऽऽसीत्पुत्राणामिति नः श्रुतम् । नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ।।१७५।।
तेषां वंशकरः श्रीमान्राजाऽऽसीत्कीर्तिवर्धनः । काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ।।१७६।।
समरस्य परः पारः सत्वदश्व इति त्रयः । पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्वभौ ।।१७७।।
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनेह कर्मणा । जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।१७८।।

के तीन परम धार्मिक उत्तराधिकारी पुत्र हुए, उनके नाम थे अजमीढ़, द्विजामीढ़ और पुरुमीढ़ ।।१६५–१६६।। अजमीढ़ की कुरुवंश का उद्धार करनेवाली परम सुन्दरी नीलिनी, केशिनी और धूमिनी नामक पत्नियाँ थीं, उन सबों से अजमीढ़ के वंशोद्धारक कई पुत्र उत्पन्न हुए। महान् तपस्या के उपरान्त राजा अजमीढ़ को वृद्धावस्था में भरद्वाज की अनुकम्पा से इन पुत्रों की प्राप्ति हुई थी। उनके वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनिये। ऐसी प्रसिद्धि है कि केशिनी में राजा अजमीढ़ के कण्ठ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।।१६७–१६९।। कण्ठा का पुत्र मेधातिथि था, उसके वंशज कण्ठायन नामक द्विज कहे जाते हैं। अजमीढ़ की दूसरी पत्नी धूमिनी में राजा बृहद्वसु का जन्म हुआ, बृहद्वसु का पुत्र बृहद्विष्णु हआ, उसका पुत्र महाबल था, महाबल का पुत्र बृहत्कर्मा था, बृहत्कर्मा का पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ। उसका पुत्र विश्वजित् था, विश्वजित् का पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित् के चार लोकविख्यात पुत्र हुए। उनके नाम थे, रुचिराश्व, काव्य, दृढ़ धनुर्धारी राम और अवन्तिदेशाधिपति वत्स। इसी राजा वत्स के नाम से सुप्रसिद्ध परिवत्सरों का प्रचलन हुआ ।।१७०–१७३।। रुचिराश्व का पुत्र महान् यशस्वी पृथुषेण था, पृथुषेण का पुत्र पार था, पार से नीप का जन्म हुआ। हमने सुना है कि उस राजा नीप के एक सौ पुत्र थे। सब-के-सब राजा थे, उन सबकी नीपगण नाम से ख्याति थी। उन समस्त नीपगणों में वंशोद्धारक परम यशस्वी समर नामक एक पुत्र था, उसने काम्पिल्य के युद्ध में विजय प्राप्त की थी। उस समर के पर, वार और सत्वदश्व–ये तीन पुत्र हुए, तीनों सर्वगुणसम्पन्न थे। इनमें पार का पुत्र वृषु हुआ, वृषु का पुत्र सुकृति नामक हुआ, उसके शुभ कर्मों से सर्वगुणसम्पन्न विभ्राज नामक एक पुत्र हुआ ।।१७४–१७८।।

---

* न विद्यतेऽयं श्लोकः क. पुस्तके।

विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिवः। बभूव शुकजामाता ऋचीभर्ता महायशाः ।।१७९।।
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपाः। योगसूनुः सुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवन्नृपः ।।१८०।।
विभ्राजपुत्रा राजानः सुकृतेनेह कर्मणा। विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।।१८१।।
भल्लाटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हतः। भल्लाटस्य तु दायादो राजाऽऽसीज्जनमेजयः ।।
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ।।१८२।।

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन्वंशे च कीर्त्यते। किमर्थं चैव नीपास्ते तेन सर्वे प्रणाशिताः ।।१८३।।

सूत उवाच

द्विमीढ़स्य तु दायादो विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः। धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः ।।१८४।।
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्। दृढनेमिसुतश्चापि सुवर्मा नाम पार्थिवः ।।१८५।।
आसीत्सुवर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रतापवान्। सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड्बभौ ।।१८६।।
तस्यान्वये च महति महत्पौरवनन्दनः। महत्पौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ।।१८७।।
अथ रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः। सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ।।१८८।।
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमान्प्रभुः। तस्याऽऽसीत्संनतिर्नाम कृतस्तस्य सुतोऽभवत् ।।१८९।।
शिष्यो हिरण्यनाभेस्तु कौथुमस्य महात्मनः। चतुर्विंशतिधा तेन प्रोक्तास्ताः सामसंहिताः ।।१९०।।

विभ्राज का उत्तराधिकारी राजा अणुह हुआ। वह परम यशस्वी राजा अणुह शुक का जामाता एवं ऋची का पति था। अणुह का उत्तराधिकारी महान् तपस्वी ब्रह्मदत्त हुआ। उस ब्रह्मदत्त का पुत्र योगसूनु और योगसूनु का पुत्र विष्वक्सेन हुआ। विभ्राज के वंश में होनेवाले ये नृपतिगण अपने सत्कर्मों से इस लोक में परम यश के भाजन हो गये हैं। उस राजा विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका उत्तराधिकारी भल्लाट हुआ, जिसने राजा का संहार कर दिया। भल्लाट का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय हुआ, इसी के वैर के कारण उग्रायुध ने समस्त नीपवंशियों का विध्वंस कर डाला था ।।१७९-१८२।।

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! यह उग्रायुध किसका पुत्र था ? किस वंश में इसकी उत्पत्ति कही जाती है ? इसने किसलिए समस्त नीपवंशी राजाओं का विध्वंस किया था ? ।।१८३।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! द्विमीढ़ का उत्तराधिकारी विद्वान् राजा यवीनर हुआ। उसका पुत्र धृतिमान् था। धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति था। सत्यधृति का पुत्र परम प्रतापशाली राजा दृढ़नेमि था। दृढ़नेमि का पुत्र राजा सुवर्मा था। सुवर्मा का पुत्र सार्वभौम परमप्रतापशाली राजा था, अपने समय का समस्त भूमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था ।।१८४-१८६।। उसकी ख्याति ही सार्वभौम नाम से थी। उस राजा सार्वभौम के महान् वंश में महत्पौरवनन्दन नामक एक राजा हुआ, जिसका पुत्र रुक्मरथ कहा जाता है। रुक्मरथ का पुत्र राजा सुपार्श्व हुआ, उस सुपार्श्व का परम धार्मिक पुत्र राजा सुमति था। सुमति का पुत्र धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् परम ऐश्वर्यशाली था। उसका संनति नामक एक पुत्र था, उस संनति का पुत्र कृत था, वह राजा कृत कौथुमीशाखाध्यायी महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्य था, यह चौबीस प्रकार की सामसंहिताओं का प्रवक्ता था ।।१८७-१९०।। उनके द्वारा निर्मित संहिताओं की ख्याति सामगान करनेवाले प्राच्य नाम से करते हैं। उसी

स्मृतास्ते प्राच्यनामानः कार्ता साम्नां तु सामगाः । कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः ।।१९१।।
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः । नीलो नाम महाबाहुः पञ्चालाधिपतिर्हतः ।।१९२।।
युग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः । क्षेमात्सुवीरः संजज्ञे सुवीरस्य नृपंजयः ।।
नृपंजयाद्वीररथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ।।१९३।।
अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः । नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरभ्यजायत ।।१९४।।
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु रिक्षस्तु पुरुजानुजः । *ततस्तु रिक्षदायादो भेदाच्च तनयास्त्विमे ।।१९५।।
मुद्गलः शृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा । यवीयांश्चापि विक्रान्तः काम्पिल्यश्चैव पञ्चमः ।।१९६।।
पञ्चानां रक्षणार्थाय पितैतानभ्यभाषत । पञ्चानां विद्धि पञ्चैतान्स्फीता जनपदा युताः ।।१९७।।
अलं संरक्षणे तेषां (+पञ्चाला इति विश्रुताः । मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षात्रोपेतद्विजातयः ।।१९८।।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षे संश्रिताः कण्ठमुद्गलाः । मुद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो) ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः ।।१९९।।
इन्द्रसेना यतो गर्भं वध्यश्वं प्रत्यपद्यत । वध्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनका इति नः श्रुतिः ।।२००।।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी । शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ।।२०१।।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः । पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।।२०२।।

राजा कृत का पुत्र उग्रायुध था, यह पुरुवंशियों को आनन्दित करनेवाला राजा उग्रायुध परम वीर था। इसी राजा उग्रायुध ने अपने विक्रम की ख्याति करते हुए पञ्चाल देशाधिपति राजा पृषत् के पितामह महाबाहु नील का संहार किया था। उग्रायुध का उत्तराधिकारी महान् यशस्वी राजा क्षेम हुआ। उस क्षेम से सुवीर नामक पुत्र का जन्म हुआ, सुवीर का पुत्र राजा नृपञ्जय हुआ। नृपञ्जय से वीररथ की उत्पत्ति हुई–यही सब पुरुवंशी राजा कहे गये हैं ।।१९१–१९३।। अजमीढ़ की नीलिनी नामक पत्नी में राजा नील की उत्पत्ति हुई, नील की विकट तपस्या के फलस्वरुप सुशान्ति नामक पुत्र का जन्म हुआ, सुशान्ति का पुत्र पुरुजानु हुआ, पुरुजानु का पुत्र रिक्ष था। उस रिक्ष के अनेक उत्तराधिकारी पुत्र हुए, उनके नाम थे, मुद्गल, शृञ्जय, बृहदिषु, यवीयान् और काम्पिल्य ।।१९४–१९६।। पाँचों पुत्रों की सुरक्षा के लिए पिता ने इनसे बतलाया था कि तुम पाँचों के लिए ये पाँच सुन्दर एवं उपजाऊ जनपद हैं, इन्हें जान लो, उन पाँचों पुत्रों के भरण–पोषण के लिए वे पाँच जनपद पर्याप्त थे। उन पाँचों जनपदों की कालान्तर में पञ्चाल नाम से ख्याति हुई। मुद्गल के वंशज क्षत्रिय गुणधर्म समन्वित द्विज हुए। ये सब कण्ठ और मुद्गल के वंशज आंगिरस गोत्र में सम्मिलित हो गये। मुद्गल का ज्येष्ठ पुत्र महान् यशस्वी ब्रह्मिष्ठ था ।।१९७–१९९।। उसके संयोग से इन्द्रसेना ने वध्यश्व नामक पुत्र को जन्म दिया। हमने ऐसा सुना है कि मेनका ने इसी राजा वध्यश्व के समागम से एक जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न की थीं। जिसमें एक राजर्षि दिवोदास थे, दूसरी परम यशस्विनी अहल्या थीं। अहल्या ने शारद्वत के संयोग से ऋषिवर शतानन्द को पुत्र रूप में प्राप्त किया। शतानन्द के महान् यशस्वी सत्यधृति नामक पुत्र हुआ जो धनुर्वेद में परम पारङ्गत था ।।२००–२०२।। एक

---

* नायं श्लोको घ. पुस्तके।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

अथ सत्यधृतेः शुक्रं दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः। प्रचस्कन्दे शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ।।२०३।।
कृपया तच्च जग्राह शंतनुर्मृगयां गतः। कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपी तथा ।।२०४।।
एते शारद्वताः प्रोक्ता ऋतथ्या गौतमान्वयाः। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम् ।।२०५।।
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः। मैत्रेयस्तु ततो जज्ञे स्मृता एतेऽपि संश्रिताः ।।२०६।।
एतेऽपि संश्रिताः पक्षं क्षात्त्रोपेतास्तु भार्गवाः। राजाऽपि च्यवनो विद्वांस्ततोऽप्रतिरथोऽभवत् ।।२०७।।
अथ वै च्यवनाद्धीमान्सुदासः समपद्यत। सौदासः सहदेवश्च सोमकस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२०८।।
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे स सोमकः। सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं विभो ।।२०९।।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वे महात्मनः। तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पिताऽभवत् ।।२१०।।
धृष्टद्युम्नः सुतस्तस्य धृष्टकेतुश्च सत्सुतः। महिषा चाजमीढस्य धूमिनी पुत्रगर्धिनी ।।२११।।
पुनर्भवे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम्। हुताग्न्यनिद्रा ह्यभवत्पवित्रमितभोजना ।।२१२।।
अहोरात्रं कुशेष्वेव सुष्वाप सुमहाव्रता। तस्यां वै धूम्रवर्णायामजमीढश्च वीर्यवान् ।।२१३।।
ऋक्षं सा जनयामास धूम्रवर्णं सिताग्रजम्। ऋक्षात्संवरणो जज्ञेः कुरुः संवरणादभूत् ।।२१४।।

बार सम्मुख आती हुई किसी अप्सरा को देखकर सत्यधृति का शुक्र सरपतों के गुल्म में गिर पड़ा, जिससे एक जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न हुईं। संयोगवश राजा शन्तनु मृगया खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उन्होंने कृपा करके उन बच्चों को उठा लिया और अपने घर लाकर उनका पालन-पोषण किया। इसी कारण उन दोनों के नाम कृपा व कृपी रखे गये, उसी कृपी का दूसरा नाम गौतमी भी था ।।२०३-२०४।। शारद्वत कहे जानेवाले गौतमवंशीय ऋतथ्यों का यह वंशवर्णन कर चुका। अब इसके उपरान्त दिवोदास की सन्ततियों का वर्णन कर रहा हूँ। दिवोदास का उत्तराधिकारी ब्रह्मपरायण राजा मित्रयु था। उससे मैत्रेय की उत्पत्ति हुई—मैत्रेय के वंश में उत्पन्न होनेवाले भी क्षत्रिय गुणधर्म समन्वित द्विजाति कहलाये—और उन सबों का गोत्र भार्गव रहा। तदनन्तर उसी वंश में विद्वान् राजा च्यवन का जन्म हुआ, जिसके रथ की समानता कोई अन्य राजा नहीं कर सकता था ।।२०५-२०७।। च्यवन से परम बुद्धिमान् राजा सुदासु की उत्पत्ति हुई, सुदासु का पुत्र सहदेव हुआ, सहदेव का पुत्र सोमक था। वंश के विनाश समुपस्थित होने पर राजा अजमीढ़ ही सोमक के रूप में उत्पन्न हुए थे। सोमक का पुत्र जन्तु था, उसके मारे जाने पर उस महान् पराक्रमशाली एवं धर्मात्मा सोमक रूपधारी राजा अजमीढ़ के अन्य सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सबसे छोटा पृषत् था, यह पृषत् राजा द्रुपद का पिता था। अर्थात् पृषत् का पुत्र द्रुपद था ।।२०८-२१०।। द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ, धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु था। राजा अजमीढ़ की तीसरी रानी धूमिनी को पहले कोई सन्तान नहीं थी, सन्तान की उत्कट आकांक्षा से उसने इस पुनर्जन्म में सौ वर्षों तक परम कठोर तपस्या की, हवन किया, रात भर जागरण किया, पवित्र कर्मों में निरत रहकर स्वल्पाहार किया, रात-दिन कुशासन पर बैठती रही—उसी पर सोती रही—इस प्रकार उसने महान् तपस्या की। तपस्या करते-करते वह काली पड़ गयी, उसमें परम वीर्यशाली राजा अजमीढ़ ने गर्भाधान किया, जिससे ऋक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ, यह ऋक्ष देखने में धुएँ के समान कृष्णवर्ण का था, इसका छोटा भाई सित भी था। ऋक्ष से संवरण की उत्पत्ति हुई, संवरण से कुरु उत्पन्न हुआ ।।१२१-२१४।। महान्

यः प्रयागं पदाऽऽक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह। कृष्ट्वैनं सुमहातेजा वर्षाणि सुबहून्यथ ।।२१५।।
कृष्यमाणे तदा शक्रस्तत्रास्य वरदो बभौ। पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।।२१६।।
तस्यान्ववायजाः ख्याताः कुरवो नृपसत्तमाः। कुरोस्तु दयिताः पुत्राः मुधन्वा जह्नुरेव च ।।२१७।।
परीक्षितो महाराजः पुत्रकश्चारिमर्दनः। सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमान्स्मृतः ।।२१८।।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः। च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्ट्वा यज्ञैर्महातपाः ।।२१९।।
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसखं नृपः। विद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम् ।।२२०।।
विद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त सूनवः। महारथो मगधराड्विश्रुतो यो बृहद्रथः ।।२२१।।
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम्। प्राथैल्यश्च ललित्थश्च मत्स्यकालस्य सप्तमः ।।२२२।।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः। कुशाग्रस्याऽऽत्मजश्चैव ऋषभो नाम वीर्यवान् ।।२२३।।
ऋषभस्यापि दायाद पुष्पवान्नाम धार्मिकः। विक्रान्तस्तस्य दायादो राजा सत्यहितः स्मृतः ।।२२४।।
तस्य पुत्रः सुधन्वा च तस्मादूर्जः प्रतापवान्। ऊर्जस्य नभसः पुत्रस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।।२२५।।
शकले द्वे स वै जातो जरया संधितस्तु सः। जरासंधो महाबाहुर्जरया संधितस्तु सः ।।२२६।।

तेजस्वी इस कुरु ने अपने चरणों से प्रयाग को आक्रान्त कर नवीन तीर्थ कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था। बहुत वर्षों तक उसने कुरुक्षेत्र को जोता था। कुरुक्षेत्र के जोतते समय इन्द्र ने वरदान दिया था कि तुम्हारा यह क्षेत्र परम रमणीय, पुण्यप्रद एवं धर्मात्माओं के निवास करने योग्य है। उस राजा कुरु के वंश में उत्पन्न होनेवाले कुरुगणों के नाम से ख्यात हुए, वे सब अपने समय के यशस्वी राजा थे। कुरु के परम प्रिय पुत्र सुधन्वा, जह्नु, परीक्षित, पुत्रक और अरिमर्दन थे। इनमें सुधन्वा के उत्तराधिकारी परम बुद्धिमान् सुहोत्र थे ।।२१५-२१८।। सुहोत्र का पुत्र धर्मार्थवेत्ता राजा च्यवन था, च्यवन का पुत्र कृत हुआ, यह कृत महान् तपस्वी राजा था, इसने विविध यज्ञों का अनुष्ठान करके इन्द्र के मित्र, परम विख्यात, आकाशचारी वसुनाम से विख्यात विद्योपरिचर नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उस विद्योपरिचर से गिरिका ने सात पुत्र उत्पन्न किये। जिनमें एक महारथी मगध सम्राट् राजा बृहद्रथ था ।।२१९-२२१।। उसके अतिरिक्त प्रत्यग्रह, कुश, मणिवाहन, प्राथैल्य, ललित्थ और मत्स्यकाल नामक अन्य छह पुत्र भी थे। बृहद्रथ का उत्तराधिकारी परम विख्यात राजा कुशाग्र हुआ। उस कुशाग्र का पुत्र परम बलवान् ऋषभ था। ऋषभ का उत्तराधिकारी परम धार्मिक पुष्पवान् था, जिसका योग्य उत्तराधिकारी विक्रमशाली राजा सत्यहित कहा जाता है ।।२२२-२२४।। उस राजा सत्यहित का पुत्र सुधन्वा था, उससे प्रतापशाली ऊर्ज का जन्म हुआ, ऊर्ज का पुत्र राजा नभस् था, उस नभस् से परमबलशाली उस राजा का जन्म हुआ, जिसके जन्म के पहले दो टुकड़े उत्पन्न हुए थे, जरा नामक राक्षसी ने उन दोनों टुकड़ों को आपस में जोड़ दिया, अर्थात् वह परमबलशाली पुत्र महाबाहु जरासंध था, जरा से संधित होने के कारण उसका यह नाम विख्यात था महाबलशाली यह राजा जरासन्ध अपने समय के समस्त क्षत्रियों को पराजित करनेवाला था। उस जरासंध का पुत्र

सर्वक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासंधो महाबलः । जरासंधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान् ।।२२७।।
सहदेवात्मजः श्रीमान्सोमाधिः सुमहातपाः । श्रुतश्रवास्तु सोमाधेर्मागधः परिकीर्तितः ।।२२८।।

सूत उवाच

परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजयः । *जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो नाम भूमिपः ।।
सुरथस्य तु दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ।।२२९।।
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् । सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः ।।२३०।।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुतिः । सार्वभौमाज्जयत्सेन आराधिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२३१।।
आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्ततः स्मृतः । अक्रोधनोऽयुतायोस्तु तस्माद्देवातिथिः स्मृतः ।।२३२।।
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह । भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्य चाऽऽत्मजः ।।२३३।।
दिलीपसूनुः प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः । देवापिः शंतनुश्चैव वाह्लीकश्चैव ते त्रयः ।।२३४।।
वाह्लीकस्य तु विज्ञेयः सप्तवाह्लीश्वरो नृपः । वाह्लीकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ।।२३५।।
दैवापिस्तु प्रवव्राजे वनं धर्मपरीप्सया । उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।।२३६।।

प्रतापशाली सहदेव था। सहदेव का पुत्र महान् तपस्वी श्रीमान् राजा सोमाधि था, उस सोमाधि का पुत्र श्रुतश्रवा हुआ– मगधवंशीय राजाओं का वर्णन कर चुका ।।२२५–२२८।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था। उस राजा जनमेजय का पुत्र पृथ्वीपति सुरथ हुआ। सुरथ का पुत्र भी भीमसेन नाम से विख्यात हुआ ।।२२९।। जह्नु ने भी एक सुरथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो अपने समय में पृथ्वीपति था। उस सुरथ का उत्तराधिकारी राजा विदूरथ जन्मा। विदूरथ का पुत्र भी सार्वभौम नाम से विख्यात हुआ। सार्वभौम से जत्यसेन की उत्पत्ति हुई, जयत्सेन का पुत्र आराधि हुआ। आराधि से महासत्त्व की उत्पत्ति हुई, महासत्त्व से अयुतायु ने जन्म धारण किया। अयुतायु का पुत्र राजा अक्रोधन हुआ, उससे राजा देवातिथि की उत्पत्ति सुनी जाती है ।।२३०–२३२।। देवातिथि का उत्तराधिकारी राजा ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से भीमसेन का जन्म हुआ, उस भीमसेन का पुत्र राजा दिलीप था। दिलीप का पुत्र प्रतिप था, उसके तीन पुत्र कहे जाते हैं। उनके नाम हैं, देवापि, शन्तनु और वाह्लीक। वाह्लीक का पुत्र राजा सप्तवाह्लीश्वर को जानना चाहिए, यह महान् यशस्वी सोमदत्त वाह्लीक का पुत्र था। सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई ।।२३३–२३५।। देवापि धर्मतत्त्व के अनुसंधान के लिए वन को चला गया था। वहाँ जाकर वह मुनिवेश धारणकर देवताओं का उपाध्याय हुआ। महात्मा देवापि के च्यवन और इष्टक नामक पुत्र हुए, शन्तनु परम विद्वान् एवं महाभिष (बहुत बड़े वैद्य) थे, वही राजा हुए। भिषक् शन्तनु के सम्बन्ध में लोग एक श्लोक कहा करते हैं, उसका आशय इस प्रकार है कि

---

* इदमर्धं न विद्यते क. ख. घ. पुस्तके।

च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः। शंतनुस्त्वभवद्राजा विद्वान्वै स महाभिषः ।।२३७।।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम्। यं यं राजा स्पृशति वै जीर्णं समयतो नरम् ।।२३८।।
पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शंतनुं विदुः। ततोऽस्य शंतनुत्वं वै प्रजास्विह परिश्रुतम् ।।
स तूपयेमे धर्मात्मा शंतनुर्जाह्नवीं नृपः ।।२३९।।
तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः। स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ।।२४०।।
काले विचित्रवीर्यं तु दासेय्यजनयत्सुतम्। शंतनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरं प्रभुम् ।।
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ।।२४१।।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरे चाप्यजीजनत्। धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवे शतम् ।।२४२।।
तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठः सर्वक्षत्रस्य स प्रभुः। माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ।।२४३।।
देवदत्ताः सुतास्ताभ्यां पाण्डोरर्थे विजज्ञिरे। धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः ।।२४४।।
इन्द्राद्धनंजयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः। अश्विभ्यां सहदेवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ ।।२४५।।
पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः। द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात् ।।२४६।।
हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम्। काश्या पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्ववृकं सुतम् ।।२४७।।

जिस-जिस वृद्ध मनुष्य का वह राजा स्पर्श करता था, वह पुनः युवा हो जाता था, इसी कारण से उसका नाम शन्तनु कहा जाता है। सर्वसाधारण प्रजा में वह शन्तनु नाम से ही विख्यात था। उस परम धर्मात्मा राजा शन्तनु ने जाह्नवी के साथ विवाह किया था ।।२३६-२३९।। परम ऐश्वर्यशाली शन्तनु ने जाह्नवी में देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया, वह देवव्रत भीष्म नाम से विख्यात हुए, समस्त पाण्डवों के वे पितामह थे। उसी समय राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी दासेयी ने विचित्रवीर्य नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो परम प्रभावशाली, प्रजा हितैषी एवं शन्तनु को परमप्रिय था। राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्र (पत्नी) में कृष्णद्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। इनमें धृतराष्ट्र के संयोग से गान्धारी ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया ।।२४०-२४२।। उन सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन था, अपने समय का वह समस्त क्षत्रिय जाति का स्वामी था। पाण्डु की माद्री और पृथा नामक दो स्त्रियाँ थीं। पाण्डु के लिए विभिन्न देवताओं से दिये गये पुत्र उन दोनों रानियों में उत्पन्न हुए। धर्म से युधिष्ठिर का जन्म हुआ, वायु से वृकोदर भीम की उत्पत्ति हुई, इन्द्र से धनंजय का जन्म हुआ, जो इन्द्र के समान ही पराक्रमशाली था, दोनों अश्विनीकुमारों के संयोग से माद्री के नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र हुए ।।२४३-२४५।। पाँच पाण्डुओं के संयोग से द्रौपदी में भी पाँच ही पुत्र उत्पन्न हुए। द्रौपदी ने सबसे बड़े पुत्र प्रतिविन्ध्य को युधिष्ठिर के संयोग से उत्पन्न किया था। हिडम्बा ने भीमसेन के संयोग से घटोत्कच नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। दूसरी पत्नी काश्या ने भीमसेन से सर्ववृक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। मद्र देश की राजकन्या विजया ने सुहोत्र नामक पुत्र को

सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत । कमेरत्यां तु वैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ।।२४८।।
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । उत्तरायां तु वैराट्यां परीक्षिदभिमन्युजः ।।२४९।।
परीक्षितस्तु दायादो राजाऽऽसीज्जनमेजयः । ब्राह्मणान्स्थापयामास स वै वाजसनेयिकान् ।।२५०।।
असपत्नं तदामर्षाद्वैशम्पायन एव तु । न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि ।।२५१।।
यावत्स्थास्याम्यहं लोके तावन्नैतत्प्रशस्यते । अभितः संस्थितश्चापि ततः स जनमेजयः ।।२५२।।
(*पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्ट्वा प्रजापतिम् । विज्ञाय संस्थितोऽपश्यत्तद्वधीष्टां (त्तदिष्टं) विभोर्मखे ।।२५३।।
परीक्षित्तनयश्चापि पौरवो जनमेजयः) । द्विरश्वमेधमाहत्य ततो वाजसनेयकम् ।।
प्रवर्तयित्वा तद्ब्रह्म त्रिखर्वी जनमेजयः ।।२५४।।
खर्वमश्वकमुख्यानां खर्वमङ्ग निवासिनाम् । खर्वं च मध्यदेशानां निखर्वी जनमेजयः ।।
विषदाद्ब्राह्मणैः सार्धमभिशस्तः क्षयं ययौ ।।२५५।।
तस्य पुत्रः शतानीको बलवान्सत्यविक्रमः । ततः सुतं शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयन् ।।२५६।।
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्यवान् । पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः पुरपरंजयः ।।२५७।।

उत्पन्न किया था। चेदिदेश की राजपुत्री कर्मरती ने नकुल से नरमित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया था ।।२४६-२४८।। पार्थ के संयोग से सुभद्रा में महारथी अभिमन्यु ने जन्म धारण किया था। विराट पुत्री उत्तरा में अभिमन्यु से परीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था। राजा जनमेजय ने वाजसनेय यज्ञ की प्रतिष्ठा करनेवाले ब्राह्मणों की मर्यादा स्थिर की थी ।।२४९-२५०।। वैशम्पायन ने उनके इस कार्य को सहन नहीं किया, और अमर्ष में भरकर बोले, दुर्बुद्धे! तुम्हारी यह मर्यादा पृथ्वी पर स्थिर न रह सकेगी, जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। चारों ओर से संकटापन्न होकर जनमेजय ने पौर्णमास नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया और उसमें प्रजापति देव को हवि देकर सन्तुष्ट किया, मख में सर्वैश्वर्यशाली प्रजापति के निमित्त यज्ञ करने पर भी उनकी स्थिति वैसी ही रही। यह देखकर पुनः पुरुवंशी परीक्षितपुत्र राजा जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया और उसमें अपने द्वारा प्रतिष्ठित वाजसनेय का प्रवर्तन किया, इसमें उन्हें तीन स्थानों पर पराजित होना पड़ा ।।२५१-२५४।। सर्वप्रथम अश्वक मुख्यों के यहाँ, फिर अङ्ग देशवासियों के यहाँ, फिर मध्यदेश निवासियों के यहाँ—इस प्रकार जनमेजय को तीन बार पराजित होना पड़ा। इससे उसे बड़ा विषाद हुआ। फलस्वरूप ब्राह्मणों के साथ निन्दा का पात्र होकर वह विनाश को प्राप्त हुआ ।।२५५।। राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमी था। ब्राह्मणों ने जनमेजय की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शतानीक का अभिषेक किया। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के दुर्गों को जीतनेवाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द! यही परम धर्मात्मा राजा सम्प्रप्ति राज्य कर रहा है। उसी के

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

अधिसामकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशाः । यस्मिन्प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम् ।।२५८।।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् । वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः+ ।।२५९।।

ऋषय ऊचुः

श्रोतुं भविष्यमिच्छामः प्रजानां वै महामते । सूत सार्धं नृपैर्भाव्यं व्यतीतं कीर्तितं त्वया ।।२६०।।
यत्तु संस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपाः । वर्षाग्रतोऽपि प्रब्रूहि नामतश्चैव तान्नृपान् ।।२६१।।
कालं युगप्रमाणं च गुणदोषान्भविष्यतः । सुखदुःखे प्रजानां च धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।२६२।।
एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि तत्त्वतः । स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमतां वरः ।।
आचचक्षे यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।।२६३।।

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं सर्वं व्यासेनाद्भुतकर्मणा । भाष्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि तु ।।२६४।।
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये ।।२६५।।
ऐलाश्चैव तयेक्ष्वाकून्सौद्युम्नाश्चैव पार्थिवान् । येषु संस्थाप्यते क्षत्रमैक्ष्वाकवमिदं शुभम् ।।२६६।।
तान्सर्वान्कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान्नृपान् । तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः ।।२६७।।

राज्यकाल में आप लोगों ने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलनेवाले दीर्घसत्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती के तट प्रान्त पर कुरुक्षेत्र में भी दो वर्षव्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है ।।२५६-२५९।।

ऋषिगण बोले—महामति सूत जी! आप भूतकालीन राजाओं का वर्णन तो कर चुके, अब हम लोग भविष्य में उत्पन्न होनेवाले राजाओं के साथ उनकी प्रजाओं का वर्णन सुनना चाहते हैं। भविष्य में उत्पन्न होकर वे लोग जिन नवीन विधाओं का प्रवर्तन करेंगे, उनके जो नाम होंगे, उन्हें उनके शासनकाल की गणना के साथ बतलाइये। उस समय से उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं के सुख-दुःख, गुण-दोष, युगप्रमाण उनके धर्मार्थ काम सम्बन्धी विचारों को हम लोग सुनना चाहते हैं, यथार्थतः बतलाइये। मुनियों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सूत जी ने इन प्रश्नों के विषय में जैसा कुछ देखा था, जैसा सुना था, कहना प्रारम्भ किया ।।२६०-२६३।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! अद्भुत कर्मशील व्यास जी ने इस विषय में मुझसे जो कुछ बतलाया है, उसे मैं बतला रहा हूँ। भविष्य में जिस प्रकार कलियुग आयेगा, जितने मन्वन्तर होंगे, जितने राजा लोग उत्पन्न होंगे, मैं उन सबका वर्णन अब कर रहा हूँ ।।२६४-२६५।। उन ऐलवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय तथा सौद्युम्नवंशीय राजाओं का वर्णन करूँगा, जिसके वंशजों पर इन सर्वकल्याणकारी इक्ष्वाकुवंशियों का एकमात्र प्रभाव होगा। भविष्य में कहे जानेवाले समस्त राजाओं का वर्णन करूँगा, अन्य सामान्य राजा लोग भी उत्पन्न होंगे, उन्हें भी बतलाऊँगा। उन सबके अतिरिक्त क्षत्र, पारशव, शूद्र, अन्यान्य

+ अत्राध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ख. पुस्तके।

क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः । अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह ।।२६८।।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः । वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ।।२६९।।
अधिसामकृष्णः सोऽयं सांप्रतं पौरवान्नृपः । तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ।।२७०।।
अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वक्त्रो भविता किल । गङ्गयाऽपहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ।।
त्यक्त्वा च तं सवासं च कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति ।।२७१।।
भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाच्चित्ररथः स्मृतः । शुचिद्रथश्चित्ररथाद्धृतिमांश्च शुचिद्रथात् ।।२७२।।
सुषेणो वै महावीर्यो भविष्यति महायशाः । तस्मात्सुषेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिवः ।।२७३।।
रुचः सुतीर्थाद्भविता त्रिचक्षो भविता ततः । त्रिचक्षस्य तु दायादो भविता वै सुखीबलः ।।२७४।।
सुखीबलसुतश्चापि भाव्यो राजा परिप्लुतः । परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयो नृपः ।।२७५।।
मेधावी सुनयस्याथ भविष्यति नराधिपः । मेधाविनः सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ।।२७६।।
दण्डपाणेर्निरामित्रो निरामित्राच्च क्षेमकः । पञ्चविंशनृपा ह्येते भविष्याः पूर्ववंशजाः ।।२७७।।
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुराविदैः । ब्रह्मन्क्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ।।२७८।।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ । इत्येष पौरवो वंशो यथावदनुकीर्तितः ।।२७९।।

द्विजातिवर्ग, अन्ध्र, शक, पुलिन्द, तूलिका, यवन, कैवर्त, आभीर, शबर प्रभृति अन्यान्य म्लेच्छ जातियों का वर्णन भी करूँगा, तथा उस समय में जो राजा लोग होंगे, उनके नाम एवं शासनकाल का भी वर्णन करूँगा ।।२६६-२६९।। सम्प्रति अधिसामकृष्ण नामक राजा राज्य कर रहा है, उसकी उत्पत्ति विख्यात पौरव वंश से है, उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले भविष्यत्कालीन राजाओं का वर्णन सर्वप्रथम कर रहा हूँ। इस राजा अधिसामकृष्ण का पुत्र[1] निर्वक्त्र होगा, गंगा द्वारा हस्तिनापुर (?) के डुबा देने पर वह उसे छोड़कर अपनी राजधानी कौशाम्बी में बनायेगा, और वहीं पर निवास करेगा ।।२७०-२७१।। राजा निर्वक्त्र को उष्ण नामक एक पुत्र होगा। उष्ण से चित्ररथ नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी। चित्ररथ से शुचिद्रथ की उत्पत्ति होगी। शुचिद्रथ से परम धैर्यशाली, महान् यशस्वी एवं बलशाली सुषेण की उत्पत्ति होगी। उस राजा सुषेण से सुतीर्थं नामक राजा का जन्म होगा। सुतीर्थ से रुच होगा, रुच से त्रिचक्ष होगा, त्रिचक्ष का उत्तराधिकारी राजा सुखीबल होगा ।।२७२-२७४।। सुखीबल का पुत्र राजा परिप्लुत होगा, परिप्लुत का पुत्र राजा सुनय होगा। सुनय का पुत्र नरपति मेधावी होगा, मेधावी का पुत्र दण्डपाणि होगा। दण्डपाणि से निरामित्र और निरामित्र से क्षेमक होगा। ये पचीस नृपतिगण भविष्यत्काल में इस वंश में उत्पन्न होंगे ।।२७५-२७७।। प्राचीन कथाओं के जाननेवाले ब्राह्मण लोग इस वंश के विषय में एक श्लोक का गान करते हैं। उसका तात्पर्य बतला रहा हूँ, जो वंश ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान था, जिस वंश का देवता तथा ऋषिगण सत्कार करते थे, वह पौरववंश कलियुग में क्षेमक नामक राजा के बाद समाप्त हो जायगा। पौरववंश का वृत्तान्त, जैसा कुछ कहा जाता है आप लोगों को बतला चुका ।।२७८-२७९।। पाण्डुपुत्र

---

[1] मत्स्यपुराण में इनका नाम विवक्षु रखा गया है।

धीमतः पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मनः। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।।२८०।।
बृहद्रथस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षयः। ततः क्षयः सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्ततः क्षयात् ।।२८१।।
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकरः। यश्च सांप्रतमध्यास्ते अयोध्यां नगरीं नृपः ।।२८२।।
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः। सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो भविष्यति ।।२८३।।
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीताश्वश्च तत्सुतः। प्रतीताश्वसुतश्चापि सुप्रतीतो भविष्यति ।।
सहदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रश्च तत्सुतः ।।२८४।।
किंनरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परंतपः। भविता चान्तरिक्षस्तु किंनरस्य सुतो महान् ।।२८५।।
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित्। पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः ।।२८६।।
पुत्रः कृतंजयो नाम धर्मिणः स भविष्यति। कृतंजयसुतो व्रातो तस्य पुत्रो रणंजयः ।।२८७।।
भविता संजयश्चापि वीरो राजा रणंजयात्। संजयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत् ।।२८८।।
शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुलः स्मृतः। प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः ।।२८९।।
क्षुद्रकात्क्षुलिको भाव्यः क्षुलिकात्सुरथः स्मृतः। सुमित्रः सुरथस्यापि अन्त्यश्च भवति नृपः ।।२९०।।
एत ऐक्ष्वाकवाः प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे। बृहद्बलान्वये जाता भवितारः कलौ युगे ।।
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः ।।२९१।।

महान् बलशाली अर्जुन का विख्यात पौरववंश समाप्त हो गया। अब इसके उपरान्त महान् बलशाली इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ। बृहद्रथ का उत्तराधिकारी वीर राजा बृहत्क्षय था। उसका पुत्र क्षय हुआ, क्षय से वत्सव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, वत्सव्यूह से प्रतिव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र दिवाकर हुआ। यह राजा दिवाकर सम्प्रति अयोध्या नगरी का राजा है ।।२८०-२८२।। दिवाकर पुत्र महान् यशस्वी सहदेव होगा, सहदेव का उत्तराधिकारी बृहदश्व होगा। बृहदश्व का पुत्र भानुरथ होगा। उसका पुत्र प्रतीताश्व होगा। प्रतीताश्व का पुत्र सुप्रतीत होगा। सुप्रतीत का पुत्र सहदेव होगा, उसका पुत्र सुनक्षत्र होगा। सुनक्षत्र से परम तपस्वी किन्नर नामक पुत्र होगा। किन्नर का पुत्र अन्तरिक्ष अपने समय का महान् राजा होगा ।।२८३-२८५।। अन्तरिक्ष से सुपर्ण और सुपर्ण से अमित्रजित् नामक पुत्र होगा। अमित्रजित् का पुत्र भरद्वाज होगा, उसका पुत्र धर्मी नाम से स्मरण किया जायगा। धर्मी का पुत्र कृतञ्जय होगा, कृतञ्जय का पुत्र व्रात और व्रात का पुत्र रणञ्जय होगा। रणञ्जय से परम वीर पुत्र सञ्जय की उत्पत्ति होगी। सञ्जय का पुत्र शाक्य और शाक्य से शुद्धोदन नामक पुत्र उत्पन्न होगा ।।२८६-२८८।। शाक्यवंश में शुद्धोदन का पुत्र राहुल होगा। राहुल से प्रसेनजित् और प्रसेनजित् से क्षुद्रक नामक पुत्र होगा। क्षुद्रक के क्षुलिक और क्षुलिक से सुरथ नामक पुत्र उत्पन्न होगा। सुरथ का पुत्र सुमित्र इस वंश का अन्तिम राजा होगा। कलियुग में ये उपर्युक्त इक्ष्वाकुवंशीय राजा लोग कहे गये हैं, बृहद्बल के वंश में कलियुग में इतने ही राजा उत्पन्न होंगे, ये सब शूरवीर, विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय राजा होंगे ।।२८९-२९१।। भविष्य की कथाओं के जाननेवाले विद्वान्गण

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृतः । इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ।।२९२।।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ । इत्येतन्मानवं क्षत्रमैलं च समुदाहृतम् ।।२९३।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान् । जरासंधस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः ।।२९४।।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः । प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ।।२९५।।
सङ्ग्रामे भारते तस्मिन्सहदेवो निपातितः । सोमाधिस्तस्य तनयो राजर्षिः स गिरिव्रजे ।।२९६।।
पञ्चाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत् । श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत् ।।२९७।।
अयुतायुस्तु षड्विंशं राज्यं वर्षाण्यकारयत् । समाः शतं निरामित्रो महीं भुक्त्वा दिवं गतः ।।२९८।।
पञ्चाशतं समाः षट् च सुकृत्तः प्राप्तवान्महीम् । त्रयोविंशं बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत् ।।२९९।।
सेनाजित्सांप्रतं चापि एता वै भोक्ष्यते समाः । श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ।।३००।।
महाबलो महाबाहुर्महाबुद्धिपराक्रमः । पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि महीं पालयिता नृपः ।।३०१।।
अष्टपञ्चाशतं चाब्दान्राज्ये स्थास्यति वै शुचिः । अष्टाविंशत्समाः पूर्णाः क्षेमो राजा भविष्यति ।।३०२।।
भुवतस्तु चतुःषष्टी राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान् । पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ।।३०३।।
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव अष्टपञ्चाशतं समाः । अष्टत्रिंशत्समा राज्यं सुव्रतस्य भविष्यति ।।३०४।।

इस इक्ष्वाकुवंश के विषय में एक श्लोक गाते हैं, इसका तात्पर्य इस प्रकार है, इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की परम्परा राजा सुमित्र तक चलेगी, कलियुग में सुमित्र राजा के अनन्तर इस वंश की समाप्ति हो जायगी। मनुपुत्र राजा इला के वंश में उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय राजाओं का वर्णन कर चुका ।।२९२-२९३।। अब इसके अनन्तर मगधदेशीय बृहद्रथ के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ। जरासंध एवं सहदेव के वंश में भूतकालीन, वर्तमानकालीन एवं भविष्यत्कालीन जो राजागण उत्पन्न हो गये हैं, वर्तमान हैं, एवं उत्पन्न होंगे, मुख्यतः उन सबों का वर्णन आप लोगों से कर रहा हूँ, सुनिये। उस विख्यात महाभारत में सहदेव का संहार हो गया था, उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि था, वह गिरिव्रज का शासक था ।।२९४-२९६।। उसने अट्ठावन वर्षों तक राज्य किया। उसका पुत्र श्रुतश्रवा था, जिसने चौंसठ वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर अयुतायु नामक राजा हुआ, जिसने छब्बीस वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद राजा निरामित्र हुआ, जो सौ वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करने के उपरान्त स्वर्गगामी हुआ ।।२९७-२९८।। तदनन्तर सुकृत्त ने छप्पन वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया, फिर बृहत्कर्मा नामक राजा हुआ, उसने तेईस वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया। इस समय उस वंश का सेनजित् नामक राजा राज्य कर रहा है, उसका पुत्र श्रुतञ्जय चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर महान् बलशाली, परम बुद्धिमान् पराक्रमशील महाबल नामक राजा होगा जो तैंतीस वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करेगा ।।२९६-३०१।। उसके उपरान्त शुचि नामक एक राजा अट्ठावन वर्षों तक राज्य पद पर प्रतिष्ठित होगा। फिर क्षेम नामक राजा अट्ठाईस वर्षों तक राजा होगा। तदनन्तर बलशाली भुवत नामक राजा चौंसठ वर्षों के लिए राजा होगा। फिर राजा धर्मनेत्र पाँच वर्षों के लिए होगा। तदुपरान्त नृपति अट्ठावन वर्ष के लिए पृथ्वी का उपभोग करेगा। फिर राजा सुव्रत का अड़तीस वर्ष के लिए राज्य होगा ।।३०२-३०४।। तदनन्तर राजा दृढ़सेन अट्ठावन

(*चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति । त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमतिः प्राप्स्यते ततः ।।३०५।।
द्वाविंशतिसमा राज्यं सुचलो भोक्ष्यते ततः) । चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते ततः ।।३०६।।
सत्यजित्पृथिवीराज्यं त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समाः । प्राप्येमां वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ।।३०७।।
अरिंजयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् । द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथात् ।।३०८।।
पूर्णं वर्षसहस्त्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति । बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रैषु वर्तिषु ।।३०९।।
मुनिकः स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति । मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतो मुनिको बलात् ।।३१०।।
स वै प्रणतसामन्तो भविष्येऽनयवर्जितः । त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ।।३११।।
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः । विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतीं समाः ।।३१२।।
एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति । भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्तिवर्धनः ।।३१३।।
अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्राद्योताः पञ्च ते सुताः । हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ।।३१४।।
वाराणस्यां सुतस्तस्य संप्राप्स्यति गिरिव्रजम् । शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ।।३१५।।
शकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति । ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ।।३१६।।

वर्षों तक राजा होगा। उसके बाद सुमति तैंतीस वर्ष के लिए राज्य पद प्राप्त करेगा। फिर सुचल नामक राजा बाईस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। उसके उपरान्त राजा सुनेत्र चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर सत्यजित् तिरासी वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। फिर राजा वीरजित् इस पृथ्वी पर आकर पैंतीस वर्षों तक राज्य करेगा ।।३०५-३०७।। तदुपरान्त राजा अरिञ्जय पचास वर्षों तक राज्य करेगा। बृहद्रथ के उपरान्त ये बाईस राजा लोग पृथ्वी पर राज्य करेंगे। उनका शासनकाल पूरे एक सहस्र वर्ष का होगा। बृहद्रथवंशीय राजाओं के राज्यकाल के उपरान्त वीतिहोत्रवंशीय राजाओं का राज्य जिस समय रहेगा, उस समय समस्त क्षत्रिय जाति के देखते-देखते मुनिक नामक एक राज्य-कर्मचारी प्रद्योत नामक अपने स्वामी का अपने पराक्रम से संहारकर पुत्र का राज्याभिषेक करेगा। वह नवीन राजा किसी प्रकार का अनैतिक कार्य नहीं करेगा। सभी सामन्त लोग उसके सम्मुख प्रणत होंगे। इस प्रकार वह नरश्रेष्ठ तेईस वर्षों तक राज्य करेगा ।।३०८-३११।। उसके बाद पालक नामक राजा चौबीस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर विशाखयूप नामक राजा होगा, वह पचास वर्षों तक राज्य करेगा। फिर अजक नामक राजा का इकतीस वर्षों तक राज्य होगा। तदनन्तर उसका पुत्र वर्तिवर्धन बीस वर्षों तक राज्य करेगा। प्रद्योत के उपर्युक्त पाँच वंशज राजा लोग इस प्रकार एक सौ अड़तीस (१३८) वर्षों तक राज्य करेंगे। तदनन्तर उन सबके यश को समूलतः नष्ट करके शिशुनाक नामक राजा होगा ।।३१२-३१४।। सर्वप्रथम यह गिरिव्रज प्रदेश का राजा होगा, तत्पश्चात् इसका पुत्र वाराणसी का राजा होगा। शिशुनाक चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र शकवर्ण छत्तीस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके उपरान्त राजा क्षेमवर्मा बीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद राजा अजातशत्रु पचीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदन्तर क्षत्रौजा नामक राजा चालीस वर्षों के लिए राज्य पद प्राप्त

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो न विद्यते ख. ग. पुस्तकयोः।

अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः । (*चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः ।।३१७।।
अष्टाविंशत्समा राजा विविसारो भविष्यति । पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ।।३१८।।
उदायी भविता यस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः । वै स पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ।।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ।।३१९।।
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः । चत्वारिंशत्त्रयं चैव महानन्दी भविष्यति ।।३२०।।
इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश । शतानि त्रीणि वर्षाणि द्विषष्ट्यभ्यधिकानि तु ।।३२१।।
शैशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबान्धवाः । एतैः सार्धं भविष्यन्ति तावत्कालं नृपाः परे ।।३२२।।
ऐक्षाकवाश्चतुर्विंशत्पञ्चालाः पञ्चविंशतिः । कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहयाः ।।३२३।।
द्वात्रिंशद्वै कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शकाः । (+कुरवश्चापि षद्त्रिंशदष्टाविंशतिमैथिलाः ।।३२४।।
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्व एव महीक्षितः) ।।३२५।।
महनन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कालसंवृतः । उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तरे नृपः ।।३२६।।
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः । एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति ।।३२७।।
अष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति । सर्वक्षत्रहरोद्धृत्य भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।।३२८।।

करेगा। उसके बाद राजा विविसार अट्ठाईस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर दर्शक नामक राजा पचीस वर्ष तक राज्य करेगा ।।३१५-३१८।। तदुपरान्त उदायी नामक राजा तैंतीस वर्ष तक राज्य करेगा। वह राजा उदायी पृथ्वीमण्डल में कुसुम नाम से विख्यात, परम रमणीय नगर में गंगा के दाहिने तट पर अपने शासनकाल के चतुर्थ वर्ष में अपना निवास-स्थान निर्मित करेगा। उसके बाद राजा नन्दिवर्धन बयालीस वर्षों तक राज्यपद का उपभोग करेगा। फिर महानन्दी नामक राजा पैंतालीस वर्षों तक राज्य करेगा ।।३१९-३२०।। ये उपर्युक्त दस राजा शिशुनाक वंश में उत्पन्न होंगे—ये सब कुल मिलाकर तीन सौ बासठ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन शिशुनाकवंशी राजाओं के राजत्वकाल में अन्यान्य क्षत्रिय जाति के राजा लोग भी होंगे। जिनमें इक्ष्वाकुवंशीय चौबीस, पंचालवंशीय पचीस, कालक चौबीस, हैहय चौबीस, कलिङ्ग-देशीय बत्तीस, शक पचीस, कुरुदेशीय छत्तीस, मिथिलादेशीय अट्ठाईस, शूरसेन के तेईस, वीतिहोत्र के बीस उल्लेखनीय हैं। इन सबका शासनकाल एक ही समय में होगा ।।३२१-३२५।। समस्त क्षत्रियवंशीय राजाओं के बाद महापद्म से शूद्रयोनि में उत्पन्न कन्या से उत्पन्न महापद्म नामक एक पुत्र होगा। उसी के राजत्वकाल में प्रायः सभी राजा लोग शूद्र योनि में उत्पन्न होनेवाले होंगे। वह महापद्म अपने समय का एकच्छत्र सम्राट् होगा। वह अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी का पालन करेगा। भवितव्यता की बलवत्ता से वह महापद्म समस्त क्षत्रिय राजाओं का गर्व हरण करनेवाला होगा ।।३२६-३२८।। उसके एक सहस्र पुत्र होंगे, जिनमें बारह राजा होंगे, उन सबका राजत्वकाल केवल आठ वर्षों

---

* इत आरभ्य पञ्चविंशत्समा नृप इत्यन्तः पाठो ङ् पुस्तके नास्ति।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः । महापद्मस्य पर्यायै भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ।।३२९।।
उद्धरिष्यति तान्सर्वान्कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः । भुक्त्वा महीं वर्षशतं नन्देन्दुः स भविष्यति ।।३३०।।
चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति । चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ।।३३१।।
भविता भद्रसारस्तु पञ्चविंशत्समा नृपः । षड्विंशत्तु समा राजा अशोको भविता नृषु ।।३३२।।
तस्य पुत्रः कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति । कुनालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ।।३३३।।
बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालितः । भविता सप्त वर्षाणि देववर्मा नराधिपः ।।३३४।।
राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति । बृहदश्वश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः ।।३३५।।
इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुंधराम् । सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान्गमिष्यति ।।३३६।।
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य वै बृहद्रथम् । कारयिष्यति वै राज्यं समाः षष्टिं सदैव तु ।।३३७।।
पुष्यमित्रसुताश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपाः । भविता चापि तज्ज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै ततः ।।३३८।।
वसुमित्रः सुतो भाव्यो दश वर्षाणि पार्थिवः । ततोऽन्ध्रकः समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै ।।३३९।।
भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दकाः । राजा घोषसुताश्चापि वर्षाणि भविता त्रयः (?) ।।३४०।।
ततो वै विक्रमित्रस्तु समा राजा ततः पुनः । द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृपः ।।३४१।।

का होगा। महापद्म के बाद वे सब क्रम-क्रम से शासनाधिरूढ़ होंगे। उन सबको कौटिल्य निर्मूल कर देंगे। महापद्मवंश का अन्तिम राजा सौ वर्षों तक पृथ्वी का शासन करेगा ।।३२९-३३०।। कौटिल्य उसे अपदस्थकर चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करेंगे। वह चन्द्रगुप्त चौबीस वर्षों के लिए राजा होगा। उसके बाद भद्रसार पचीस वर्ष तक राजा होगा। फिर अशोक नामक राजा मनुष्यों में छब्बीस वर्षों तक राज्य करेगा ।।३३१-३३२।। उसका पुत्र कुनाल आठ वर्ष राज्य करेगा। इन्द्रपालित कुनाल का पुत्र बन्धुपालित आठ वर्षों तक राज्यपद पर समासीन होगा। बन्धुपालित का उत्तराधिकारी दस वर्ष के लिए राजा होगा। फिर नराधिपति देववर्मा सात वर्ष के लिए राजा होगा। तदुपरान्त उसका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष राज्य करेगा। पश्चात् राजा बृहदश्व सात वर्ष राज्य करेगा ।।३३३-३३५।। ये नन्दवंश के नव राजा पृथ्वी का भोग करेंगे, उन सबका राजत्व-काल कुल मिलाकर एक सौ सैंतीस (?) वर्षों का होगा। इन नन्दवंशीय राजाओं के हाथ से शासन शुङ्गों के हाथ में चला जायगा। अन्तिम राजा बृहदश्व का सेनापति पुष्यमित्र उसको मारकर स्वयं साठ वर्षों तक राज्य करेगा। पुष्यमित्र के आठ पुत्र होंगे, जो सब-के-सब राजा होंगे। सबसे बड़ा पुत्र सात वर्षों तक राज्य-पद पर प्रतिष्ठित होगा।३३६-३३८। फिर वसुमित्र नामक पुत्र दस वर्ष के लिए राजा होगा। फिर अन्ध्रक नामक पुत्र दो वर्ष के लिए राजा होगा। फिर पुलिन्दक तीन वर्ष के लिए और घोषसुत भी तीन वर्ष के लिए राजा बनेगा। उसके बाद राजा विक्रमित्र भी तीन वर्ष के लिए राजा होगा। तदनन्तर भागवत नामक राजा होगा, जो बत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर उसका पुत्र क्षेमभूमि दस वर्ष तक राजा होगा। उपर्युक्त शुङ्गवंशीय दस राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे।

भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमिः समा दश । दशैते शुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम् ।।३४२।।
शतं पूर्णं दश द्वे च तेभ्यः किं वा गमिष्यति । अपार्थिवसुदेवं तु बाल्याद्व्यसनिनं नृपम् ।।३४३।।
देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्गेषु भविता नृपः । भविष्यति समा राजा नवकण्ठायनस्तु सः ।।३४४।।
भूतिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति । भविता द्वादश समा तस्मान्नारायणो नृपः ।।३४५।।
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश । चतु (त्वा) रस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजाः ।।३४६।।
भाव्याः प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च । तेषां पर्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ।।३४७।।
कण्ठायनमथोद्धृत्यसुशर्माणं प्रसह्य तम् । शुङ्गानां चापि यच्छिष्टं क्षपयित्वा बलं तदा ।।
सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम् ।।३४८।।
त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वथ । अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति (?) ।।३४९।।
श्रीशातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् । पञ्चाशतं समाः षट् च शातकर्णिर्भविष्यति* ।।३५०।।
आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति । चतुर्विंशत्तु वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ।।३५१।।
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् । ततः संवत्सरं पूर्णं हालो राजा भविष्यति ।।३५२।।
पञ्चसप्तकराजानो भविष्यन्ति महाबलाः । भाव्यः पुत्रिकषेणस्तु समाः सोऽप्येकविंशतिम् ।।३५३।।

उन सबका राजत्वकाल एक सौ बारह (?) वर्षों (?) का होगा ।।३३९–३४२$\frac{१}{२}$।। फिर बाल्यकाल से ही व्यसन में निरत रहनेवाले सुदेव राजा के हाथ में शासनशक्ति आयेगी। शृङ्गवंशियों में एक देवभूमि नामक अन्य राजा भी होगा, कण्ठायन नाम से नव वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र भूतिमित्र चौबीस वर्षों तक राज्यपद का अधिकारी होगा। उसके बाद राजा नारायण बारह वर्षों के लिए राजा होगा।।३४३–३४५।। फिर उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राजा होगा। द्विजवृन्द! ये उपर्युक्त कठोर कर्म करनेवाले चार राजा कण्ठायन नाम से प्रसिद्ध होंगे, इन कण्ठायन नाम से विख्यात राजाओं के राज्यकाल में सामन्तगण सर्वदा विनम्र रहेंगे, इनका शासनकाल कुल मिलाकर पैंतालीस वर्षों का होगा। इनके उपरान्त आन्ध्रवंशीय राजा होंगे। कण्ठायन उपाधिधारी राजाओं के अन्तिम नरपति सुशर्मा को तथा शुङ्गवंशीय राजाओं की सेनाओं को युद्धस्थल में पराजित कर अन्ध्रजातीय सिन्धुक नामक एक राजा इस पृथ्वी को प्राप्त करेगा। वह सिन्धुक तेईस वर्षों तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित होगा। उसके उपरान्त भात (?) नामक राजा अठारह वर्षों के लिए राजा होगा ।।३४६–३४९।। उसके बाद उसका पुत्र शातकर्णि अपने समय का महान् राजा होगा, वह छप्पन वर्षों तक शासन की बागडोर अपने हाथ में रखेगा। तदनन्तर शातकर्णि का पुत्र राजा आपादबद्ध होगा, वह दस, चौबीस और छह वर्षों तक राज्य करेगा (?) उसके बाद नेमिकृष्ण पचीस वर्ष के लिए राजा बनेगा। तदनन्तर हाल नामक राजा पूरे एक वर्ष के लिए शासनाधिरूढ़ होगा। इस वंश में पाँच–सात राजा महाबलवान् होंगे। हाल के बाद पुत्रिकषेण इक्कीस वर्षों तक

---

* इत उत्तरमेतदर्धमधिकम्–'आपीलवा द्वादश वै तस्य पुत्रो भविष्यति' इति ख. ङ. पुस्तकयोः।

सातकर्णिर्वर्षमेकं भविष्यति नराधिपः। +चकार शातकर्णिस्तु षण्मासान्वै नराधिपः ।।
अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ।।३५४।।
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशस्तमा नृषु। एकोनविंशतिं राजो यज्ञश्रीः सातकर्ण्यथ ।।३५५।।
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृपः। दण्डश्रीः सातकर्णी च तस्य पुत्रः समास्त्रयः?) ।।३५६।।
पुलोवाऽपि समाः सप्त अन्येषां च भविष्यति। इत्येते वै नृपास्त्रिंशदन्ध्रा भोक्ष्यन्ति ये महीम् ।।३५७।।
समाः शतानि चत्वारि पञ्च षड्वै तथैव च। अन्ध्राणां संस्थिताः पञ्च तेषां वंशाः समाः पुनः ।।३५८।।
सप्तैव तु भविष्यन्ति दशाऽऽभीरास्ततो नृपाः। सप्त गर्दमिनश्चापि ततोऽन्ये दश वै शकाः ।।३५९।।
भवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश। त्रयोदश मेनण्टाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु ।।३६०।।
अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं च वै। *शतानि त्रीण्यशीतिं च भोक्ष्यन्ति वसुधा शकाः ।।३६१।।
अशीतिं चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम्। (पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता ।।३६२।।
शतान्यर्धचतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश। मरुण्डा वृषलैः सार्धं भाव्याऽन्या म्लेच्छजातयः ।।३६३।।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु। तच्छन्नेन च कालेन ततः कोलिकिला नृपाः ।।३६४।।

राज्य करेगा। उसके बाद सातकर्णि नराधिपति होगा, जो पूरे एक वर्ष और छह मास तक राज्य करेगा। तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वामी नामक एक राजा होगा ।।३५०-३५४।। फिर गौतमीपुत्र मनुष्यों में इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर सातकर्णी वंशोत्पन्न राजा यज्ञश्री उन्नीस वर्षों के लिए राजा होगा। उसके बाद विजय नामक राजा छह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र सातकर्णी दण्डश्री तीन वर्ष तक राज्य करेगा। फिर पुलोवा नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। इन राजाओं के अतिरिक्त अन्यान्य राजाओं का भी पृथ्वी पर राज्य होगा। उपर्युक्त अन्ध्रवंशीय तेईस राजा होंगे, जो पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उन सबका राजत्वकाल कुल मिलाकर चार सौ ग्यारह वर्ष का होता है। ये अन्ध्रवंशीय राजा लोग पाँच वंशों में विभक्त हो जायँगे ।।३५५-३५८।। उनके बाद सत्रह आभीरवंशीय राजाओं का शासनकाल आयेगा, फिर सात गर्दमिनवंशीय और दस शकवंशीय राजा होंगे। तदनन्तर आठ यवन, चौदह तुषारवंशीय, तेरह मेनण्ट और अट्ठारह मौन वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा राज्य करेंगे। आन्ध्रवंशीय राजा लोग तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। शक लोग तीन सौ अस्सी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे ।।३५९-३६१।। यवन लोग अस्सी वर्षों तक राज्य करेंगे। तुषारवंशीय राजा लोग पाँच सौ वर्षों तंक पृथ्वी का राज्य करेंगे। तेरह मरुण्डवंशीय राजागण अन्य शूद्र जातीय राजाओं के साथ साढ़े चार सौ वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उस समय अनेक म्लेच्छ जातियाँ होंगी। उनमें से ग्यारह म्लेच्छवंशीय राजागण तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन राजाओं के बाद कोलिकिल नामक शूद्र जातीय राजाओं का राज्य होगा ।।३६२-३६४।। उन कोलिकिलों से विन्ध्यशक्ति नामक राजा के हाथ में शासनशक्ति

+ एतदर्धं क. ग. घ. पुस्तके नास्ति।

* एतदनन्तरं ख. ग. घ. पुस्तकेष्वधिकः श्लोक उपलभ्यते स यथा 'सप्तषष्टि च वर्षाणि दशाऽऽभीरास्ततो नृपाः। सप्तगर्दभिनश्चैव भोक्ष्यन्तीमां द्विसप्ततिः'। इति।

ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति । समाः षण्णवतिं ज्ञात्वा पृथिवीं च समेष्यति ।।३६५।।
वृषान्वै दिशकाञ्चापि भविष्यांश्च निबोधत । शेषस्य नागराजस्य पुत्रः स्वरपुरंजयः ।।३६६।।
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्वहः । सदाचन्द्रस्तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवांस्तथा ।।३६७।।
धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विंशजः स्मृतः । भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेशे तु भविष्यति ।।३६८।।
+ अङ्गानां नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति । तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशाः किल ।।३६९।।
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै । दौहित्रः शिशुको नाम पुरिकायां नृपोऽभवत् ।।३७०।।
विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् । भोक्ष्यन्ति च समाः षष्टिं पुरीं काञ्चनकां च वै ।।३७१।।
यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः । तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपाः ।।३७२।।
विन्ध्यकानां कुलेऽतीते नृपा वै वाह्लिकास्त्रयः । सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिंशति (त) म् ।।३७३।।
शक्यमा नाम वै राजा माहिषीणां महीपतिः । ×पुष्यमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ।।३७४।।
मेकलायां नृपाः सप्त भविष्यन्ति च सत्तमाः । कोमलायां तु राजानो भविष्यन्ति महाबलाः ।।३७५।।
मेघा इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु । नैषधाः पार्थिवाः सर्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् ।।३७६।।
नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबलाः । मागमावां महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ।।३७७।।

आयेगी। वह छानबे वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। अब इसके उपरान्त भविष्यत्कालीन शूद्रजातीय विदेशी राजाओं (?) का वर्णन सुनिये। नागराज शेष का पुत्र शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाला राजा भोगी, नागकुल में सर्वश्रेष्ठ राजा होगा– यही सर्वप्रथम विदेशी राजा होगा। उसके उपरान्त सदाचन्द्र, चन्द्रांशभूत नखवान्, धनधर्मा, विंशज और भूतिनन्द नामक राजागण भी विदेश में राज्यपद प्राप्त करेंगे ।।३६५–३६८।। अंगवंशीय राजा नन्द के उपरान्त राजा मधुनन्दि के हाथ में शासनशक्ति जायगी, मधुमन्दि के छोटे भाई का नाम नन्दियशा होगा। इसी नन्दयशा के वंश में तीन राजा उत्पन्न होंगे। उनके नाम दौहित्र, शिशुक और परम बलशाली प्रवीर होंगे। ये तीनों कुल मिलाकर साठ वर्ष तक राज्य करेंगे। इन तीनों में राजा प्रवीर पूर्वकथित राजा विन्ध्यशक्ति का पुत्र होगा। राजा शिशुक पुरी में अन्य दोनों राजा काञ्चनपुरी में राज्य करेंगे ।।३६९–३७१।। ये तीनों राजा लोग प्रचुर दक्षिणा देकर वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे। तदनन्तर प्रवीर के चार पुत्र राज्यपद के अधिकारी होंगे। विन्ध्यकवंशीय राजाओं के परिवार के विनष्ट हो जाने पर सुप्रतीक नभीर आदि तीन वाह्लीक राजा लोग तीस वर्ष तक राज्यपद का उपभोग करेंगे। माहिषीवंशीयों में शक्यमा नामक एक राजा होगा। तदनन्तर पुष्यमित्र और पट्टमित्र नामक राजा तेरह वर्ष के लिए राजा होंगे ।।३७२–३७४।। मेकला में सात उत्तम नरपतिगण राज्यासन प्राप्त करेंगे। कुछ महाबलशाली राजा कोमला में राज्य प्रतिष्ठापित करेंगे। तदनन्तर मेघ नाम से विख्यात नव परम बुद्धिशाली राजा होंगे। ये निषधदेशीय समस्त नृपतिगण मन्वन्तर की समाप्ति तक राज्यपद के अधिकारी रहेंगे। इनकी उत्पत्ति नल वंश से होगी, ये सब–के–सब महान् बलशाली एवं परम पराक्रमी होंगे। इसके उपरान्त महान् बलशाली मगधदेशीय विश्वस्फानि नामक राजा होगा ।।३७५–३७७।। उस समय के अन्य नरेशों को समूल नष्ट करके वह अन्यान्य

+ एतदर्धं न ग. पुस्तके।
× एतदर्धस्थान पुत्रमित्रा भविष्यन्ति पणिमत्रास्त्रयोदशेति पाठो ङ. पुस्तके।

उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्सोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति । कैवर्तान्पञ्चकांश्चैव पुलिन्दान्ब्राह्मणांस्तथा ।।३७८।।
स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा । विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ।।३७९।।
विश्वस्फानिर्नरपतिः क्लीबाकृतिरिवोच्यते । उत्सादयित्वा क्षत्रं तु क्षत्रमन्यत्करिष्यति ।।३८०।।
*देवान्पितॄंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वा सकृत्पुनः । जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यस्यते बली ।।३८१।।
संन्यस्य स्वशरीरं तु शुक्रलोकं गमिष्यति । नवनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरीं चम्पावतीं नृपाः ।।३८२।।
मथुरां च पुरीं रम्यां नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै । अनुगङ्गं प्रयागं च साकेतु मगधांस्तथा ।।
एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ।।३८३।।
निषधान्यदुकांश्चैव शैशीतान्कालतोपकान् । एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजाः ।।३८४।।
कोशलांश्चान्ध्रपौण्ड्रांश्च ताम्रलिप्तान्ससागरान् । चम्पां चैव पुरीं रम्यां भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ।।३८५।।
कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये । एताञ्जपदान्सर्वान्पालयिष्यति वै गुहः ।।३८६।।
स्त्रीराष्ट्रं भक्ष्यकांश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वयः । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ज्ञेते महीक्षितः ।।३८७।।
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिकाः । भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।३८८।।
नैव मूर्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः । युगदोषाद्दुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ।।३८९।।
स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् । भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधा पार्थिवास्तथा ।।३९०।।

जातिवालों को राज्यपद प्रदान करेगा। जिनमें कैवर्त, पञ्चक, पुलिन्द और ब्राह्मणों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महान् पराक्रमी राजा विश्वस्फानि विभिन्न देशों में इन जातिवालों का राज्य स्थापित करेगा। युद्ध में वह विष्णु के समान बलवान् होगा। ऐसा कहा जाता है कि वह राजा विश्वस्फानि आकृति में नपुंसकों के समान होगा। अपने पराक्रम से क्षत्रिय जाति का विध्वंस करके वह शासन को इतर जातिवालों के अधीन कर देगा ।।३७८-३८०।। परमबलशाली राजा विश्वस्फानि अपने जीवन में देवताओं, पितरों एवं ब्राह्मणों को एक बार पुनः सन्तुष्ट करके अन्तिम समय में पवित्र जाह्नवी तट पर प्राण त्याग करेगा। अपने भौतिक शरीर को त्यागकर वह इन्द्रलोक प्राप्त करेगा। उसके उपरान्त चम्पावतीपुरी में नव नागवंशीय राजाओं का अधिकार होगा। मथुरापुरी में सात नागवंशीय राजा लोग शासन करेंगे। इसके अनन्तर गंगा के तटवर्ती प्रान्त प्रयाग, साकेत और मगध आदि जनपदों में गुप्तवंशीय राजाओं का अधिकार होगा ।।३८१-३८३।। निषध, यदुक, शैशीत, कालतोपक आदि जनपदों में मणिधान्य वंशज राजाओं का शासन होगा। कोशल, आन्ध्र, पौण्ड्र, समुद्रसमेत ताम्रलिप्त देवताओं द्वारा सुरक्षित मनोहारिणी चम्पानगरी-कलिङ्ग, महिष, महेन्द्रनिलय प्रभृति जनपदों में गुहवंशोत्पन्न राजा का राज्य होगा ।।३८४-३८६।। कनक नामक राजा सौराष्ट्र (स्त्री राष्ट्र) भक्ष्यक आदि जनपदों का शासक होगा। ये सब राजागण भी उसी एक समय में इन सब स्थानों के शासक होंगे। इनके उपरान्त थोड़े प्रसन्न होनेवाले, मिथ्यावादी, महान् क्रोधी, अधार्मिक प्रवृत्तियोंवाले धर्मार्थकाम-सभी ओर से विहीन यवनों का यहाँ पर राज्य होगा। वे यवन राजागण कभी मूर्धाभिषिक्त नहीं होंगे, युगदोष के कारण वे परम दुराचारी होंगे। कलि के अन्तिम भाग में स्त्री और बालकों का वध करनेवाले वे राजा लोग परस्पर मारकाट मचाकर पृथ्वी पर शासन करेंगे ।।३८७-३९०।। उन

---

* इतः प्रभृति सार्धश्लोको नास्ति ग. पुस्तके।

उदितोदितवंशास्ते उदित्तास्तमितास्तथा । भविष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षितः ।।३९१।।
विहीनास्तु भविष्यन्ति धर्मतः कामतोऽर्थतः । तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः ।।३९२।।
विपर्ययेण वर्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजाः । लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपाः ।।३९३।।
तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा । लवाल्लवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः ।।३९४।।
तथा गतास्तु वै काष्ठां प्रजासु जगतीश्वराः । राजानः संप्रणश्यन्ति कालेनोपहतास्तदा ।।३९५।।
कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः । अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ।।३९६।।
प्रनष्टे नृपशब्दे च संध्याश्लिष्टे कलौ युगे । किंचिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ।।३९७।।
असाधना हताशाश्च व्याधिशोकेन पीडिताः । अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च ।।३९८।।
अनाथा हि परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः । त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यन्ति वनौकसः ।।३९९।।
एवं नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु । नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहाः सुहृज्जनाः ।।४००।।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः । सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ।।४०१।।
सरितः सागरानूपान्सेवन्ते पर्वतानि च । अङ्गान्कलिङ्गान्वङ्गांश्च काश्मीरान्काशिकोशलान् ।।४०२।।
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः । कृत्स्नं हिमवतः पृष्ठं कूलं च लवणाम्भसः ।।४०३।।

दुराचारी राजाओं के वंश कहीं पर तो अत्यन्त बढ़ जायँगे और कहीं पर बहुत बढ़कर विनाश को प्राप्त हो जायँगे। कालक्रम से पृथ्वी पर ऐसे दुराचारी नृशंस राजाओं का शासन होगा। वे धर्मार्थकाम त्रिवर्ग से सर्वदा विहीन रहेंगे। प्रत्येक जनपदों में वे म्लेच्छाचारपरायण राजा लोग जा-जाकर मिल जायँगे ।।३९१-३९२।। परिणामस्वरूप सब ओर से जनपदों में भी उनके अत्याचारों की धूम मच जायगी। वहाँ जाकर वे सब उलटफेर मचायेंगे, प्रजावर्ग का विनाश करेंगे। लालच में भरे हुए, मिथ्याचारण वे राजा लोग इसी प्रकार सर्वदा पापकर्मों में लगे रहेंगे। कालक्रम से उनके विनाश हो जाने पर देश में स्त्रियों की अधिकता हो जायगी, लोग आयु; सौन्दर्य, बल एवं शास्त्रज्ञान में धीरे-धीरे न्यून होते जायँगे। इस प्रकार क्षीण होते-होते प्रजा जब अन्तिम ह्रास की सीमा पर पहुँच जायगी, तब वे दुराचारी राजा लोग कालक्रम से विनाश को प्राप्त हो जायँगे ।।३९३-३९५।। उस समय कल्कि द्वारा ताडित होकर वे अधार्मिक म्लेच्छ सब ओर से विनष्ट हो जायँगे और पाखण्डों का उच्छेद हो जायगा। इस प्रकार सन्ध्यामात्र जब कलियुग शेष रह जायगा तो नृप शब्द ही नष्ट हो जायगा, अर्थात् राजाओं का सर्वदा अभाव हो जायगा। कुछ प्रजाएँ शेष रह जायँगी। धर्म के नष्ट हो जाने पर साधनविहीन आपत्तियों की मारी, व्याधि एवं शोक के कारण चिन्ताकुलित, अनावृष्टि तथा परस्पर मारकाट से आतंकित और पीड़ित प्रजाएँ अनाथ हो जायँगी। सब ओर से त्रस्त होकर वे जीविकाविहीन हो जायँगी। अत्यन्त दुःखित होकर पुर, ग्राम एवं नगरों को छोड़कर वन में निवास बनायेंगी ।।३९६-३९९।। इस प्रकार राजाओं के विनाश होने पर प्रजाएँ अपना घर छोड़कर भाग जायँगी। स्नेह भावना नष्ट हो जायगी, आपत्तियों से दलित होकर स्नेहियों तथा सुहृदों को छोड़ देगी। वर्णाश्रम धर्म का विनाश हो जायगा, वे घोर संकर वर्ण हो जायँगी। पर्वतों की गुफाओं और नदियों के एकान्त तटों पर वे निवास करेंगी ।।४००-४०१।। घर द्वार छोड़कर सारी प्रजाएँ समुद्रतट, नदियों, पर्वतों एवं जलीय प्रान्तों में निवासार्थ भाग जायँगी। सारी मानव जाति अपने-अपने प्रिय देशों को छोड़कर अङ्ग, कलिङ्ग, बङ्ग, काश्मीर, काशी, कोशल, ऋषिक, गिरिद्रोणी प्रभृति प्रान्तों में आश्रय प्राप्त करेंगी। आर्य लोग म्लेच्छों के साथ सारी हिमवान् की पृष्ठभूमि,

अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति आर्या म्लेच्छजनैः सह । मृगैर्मीनैर्विहङ्गैश्च श्वापदैस्तक्षुभिस्तथा ।।
×मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ।।४०४।।
चीरं पर्णं च विविधं वल्कलान्यजिनानि च । स्वयं कृत्वा विवत्स्यन्ति यथामुनिजनास्तथा ।।४०५।।
बीजान्नानि तथा निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः । अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः ।।४०६।।
नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रित्य मानवाः । पार्थिवान्व्यवहारेण विबाधन्तः परस्परम् ।।४०७।।
बह्वपत्याः प्रजाहीनाः शौचाचार विवर्जिताः । एवं भविष्यन्ति नरास्तदाऽधर्मे व्यवस्थिताः ।।४०८।।
हीनाद्धीनांस्तथा धर्मान्प्रजा समनुवर्तते । आयुस्तदा त्रयोविंशं न कश्चिदतिवर्तते ।।४०९।।
दुर्बला विषयग्लाना जरया संपरिप्लुताः । पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बराः ।।४१०।।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुंधराम् । एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके ।।४११।।
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके । निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ।।
ससंध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ।।४१२।।
यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा पुष्यबृहस्पती । एकरात्रे भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत् ।।४१३।।
एष वंशक्रमः कृत्स्नं कीर्तितो वो यथाक्रमम् । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।।४१४।।

क्षार समुद्र के तटवर्ती प्रान्तों एवं भीषण अरण्यों में मृगों, मत्स्यों, पक्षियों एवं अन्यान्य हिंस्र जन्तुओं के साथ-साथ मधु, शाक, मूल, फलादि खा-खाकर जीवन यापन करेंगे ।।४०२-४०४।। वे मुनियों की भाँति वृक्ष के वल्कलों, मृगचर्मों एवं पत्तों के चीर अपने हाथों से बना-बनाकर धारण करेंगे। निम्न प्रान्तों में अन्न के बीजों का अन्वेषण करते हुए वे लोग काष्ठ और शंकुओं द्वारा जीविका अर्जित करेंगे। बकरी, भेड़, गधे और ऊँटों का यत्नपूर्वक पालन करेंगे ।।४०५-४०६।। जल के लिए नदियों के किनारे निवास बनायेंगे। राजाओं में परस्पर वैमनस्य का बीज बोयेंगे। किन्हीं-किन्हीं को सन्तानों की अधिकता हो जायगी, किन्हीं-किन्हीं को सन्तानें एकदम न रहेंगी, पवित्रता एवं आचार का स्थान एकदम से उनमें विलुप्त हो जायगा। उस समय अधर्म में पड़ी हुई मानव जाति इस प्रकार की हो जायगी। लोग निकृष्ट से भी निकृष्टतर अधर्ममय कार्यों में अनुरक्त हो जायँगे। उस समय तेईस वर्ष से बढ़कर किसी की आयु न होगी ।।४०७-४०९।। दुर्बलाङ्ग, विषयलोलुप, वृद्धता से दबाये हुए पत्ते, मूल, फूल, फल का आहार करनेवाले, चीर एवं कृष्ण मृग-चर्म के पहननेवाले वे लोग जीविका के लिए सारी पृथ्वी का भ्रमण करेंगे। कलियुग के अन्त में प्रजाएँ इस प्रकार की विविध आपत्तियों में ग्रस्त हो जायँगी ।।४१०-४११।। एक सहस्र वर्षात्मक उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर उस समय की सारी प्रजाएँ भी उसी के साथ सर्वांशतः नष्ट हो जायँगी और इस प्रकार संध्या समेत कलियुग के व्यतीत हो जाने पर कृतयुग की प्रवृत्ति होगी। जिस समय चन्द्रमा, सूर्य, पुष्य और बृहस्पति—ये सब एक राशि पर होंगे, उस समय कृतयुग की प्रवृत्ति होगी ।।४१२-४१३।। अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन राजाओं के वंशों को क्रमानुसार मैं आप लोगों को बतला चुका। राजा परीक्षित के जन्म से लेकर महापद्म के अभिषेक तक का समय एक सहस्र पचास वर्ष जानना

× इतः प्रभृति सार्धश्लोको नास्ति घ. पुस्तके।

महादेवाभिषेकात्तु जन्म यावत्परीक्षितः । एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।।४१५।।
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् । अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।।४१६।।
एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्तिताः । भविष्यैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।।४१७।।
*सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् । सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां ते त्वया पुनः ।।४१८।।
सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले । सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।।
सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।।४१९।।
सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्नाश्चैव सप्तभिः । तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः ।।४२०।।
सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि । ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ।।४२१।।
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः । नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम् ।।४२२।।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् । अन्ध्रांशे सचतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ।।४२३।।
इमास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्ति प्रजा भृशम् । अनृतोपहताः सर्वा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।।४२४।।
श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा । संकरं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।।४२५।।
संसक्ताश्च भविष्यन्ति शूद्राः सार्धं द्विजातिभिः । ब्राह्मणाः शूद्रयष्टारः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ।।४२६।।
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्सवः । लवं लवं भ्रश्यमानाः प्रजाः सर्वा क्रमेण तु ।।४२७।।

चाहिए। पुराणों के जाननेवाले वैदिकज्ञानसम्पन्न ऋषियों ने महापद्म के शासनकाल से लेकर अन्ध्रों के अन्त तक का काल आठ सौ उन्तीस वर्ष का बतलाया है। सप्तर्षिगण एक-एक नक्षत्र में एक-एक सौ वर्ष क्रमानुसार अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार समस्त नक्षत्रमण्डल में वे सत्ताईस सौ वर्ष स्थित रहते हैं। पर्यायक्रम से एक-एक नक्षत्र में एक-एक सौ वर्ष की स्थिति का काल उनका एक-एक युग कहलाता है। यह युग दिव्य संख्या से निर्णीत होता है ।।४१४-४१९।। दिव्य साठ वर्षों तथा सात दिनों का सप्तर्षियों का एक सौ वर्ष होता है। सप्तर्षिगणों के इस प्रकार के गतिक्रम में दिव्यकाल का प्रवर्तन होता है। सप्तर्षिगण प्रथमतः नक्षत्रमण्डल के पूर्व दिशा की ओर पश्चात् उत्तर दिशा की ओर दिखायी पड़ते हैं। तदनन्तर आकाश के मध्यभाग में जो नक्षत्र दिखायी पड़ता है, उसके समानान्तर दिखायी पड़ता है। उसके साथ आकाश में सप्तर्षिगणों को सौ वर्षों तक स्थित जानना चाहिए ? नक्षत्रों एवं ऋषियों के साथ योग होने का यही निदर्शन है। हमारे मत से राजा परीक्षित के राजत्वकाल में सप्तर्षिगण एक सौ वर्ष के लिए मघा नक्षत्र में स्थित होंगे, अन्ध्रवंशीय राजा की समाप्ति के बाद वे चौबीसवें नक्षत्र (शतभिषा) में स्थित रहेंगे ।।४२०-४२३।। उस समय पृथ्वी पर सारी प्रजाएँ अनेक प्रकार की विपत्तियों में पिस जायँगी। मिथ्याचारपरायण होकर धर्मार्थकाम विहीन हो जायँगी। शास्त्रीय श्रौत स्मार्त कर्मों का ह्रास हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा लुप्त हो जायगी, दुर्बलात्मा मानव अज्ञान में पड़कर संकरवर्ण हो जायँगे। शूद्र लोग द्विजातियों के साथ हिल-मिल जायँगे, ब्राह्मण शूद्रों के घर जाकर यज्ञ कराने लगेंगे, शूद्र लोग मन्त्रकर्त्ता बन जायँगे। जीविका के लोभ से ब्राह्मण उन शूद्रों की उपासना करने लगेंगे, सारी प्रजा धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त होने लगेगी और इसी प्रकार युग की समाप्ति हो जाने पर वह भी क्षीण हो जायगी। जिस

---

* इतः प्रभृति पर्यायेण शतं शतमित्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते।

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये। यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥४२८॥
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत। सहस्राणां शतानीह त्रीणि मानुषसंख्यया ॥
षष्टिं चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलिः ॥४२९॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु तत्संध्यांशं प्रकीर्तितम्। निःशेषे च तदा तस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते ॥४३०॥
ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदैः प्रकीर्तितौ। इक्ष्वाकोस्तु स्मृतः क्षत्रः सुमित्रान्तं विवस्वतः ॥४३१॥
ऐलं क्षत्रं क्षेमकान्तं सोमवंशविदो विदुः। एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥४३२॥
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवान्वये स्मृताः ॥४३३॥
युगे युगे महात्मानः समतीताः सहस्रशः। बहुत्वन्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ॥४३४॥
पुनरुक्तबहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिताः। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्निमिवंशः समाप्यते ॥४३५॥
एतस्यां तु युगाख्यायां यतः क्षत्रं प्रपस्यते। तथा हि कथयिष्यामि गदतो मे निबोधत ॥४३६॥
देवापिः पौरवो राजा इक्ष्वाकोश्चैव यो मतः। महायोगबेलोपेतः कलापग्राममास्थितः ॥४३७॥
देवापिः पौरवौ राजा इक्ष्वाकोस्तु भविष्यति। एतौ क्षत्रप्रणेतारौ चतुर्विंशे चतुर्युगे ॥४३८॥
न च विंशे युगे सोमवंशस्याऽऽदिर्भविष्यति। देवापिरसपत्नस्तु ऐलादिर्भविता नृपः ॥४३९॥
क्षत्रप्रवर्तकौ ह्येतौ भविष्येते चतुर्युगे। एवं सर्वत्र विज्ञेयं संतानार्थे तु लक्षणम् ॥४४०॥

दिन भगवान् स्वर्गवासी होते हैं, उसी दिन कलियुग की प्रवृत्ति होती है, उसकी अवधि की संख्या सुनिये। मानव मान से तीन लाख साठ सहस्र वर्षों का कलियुग कहा जाता है ॥४२४-४२९॥ उसका संध्यांश देव मान से एक सहस्र वर्ष कहा जाता है। कलियुग की समाप्ति हो जाने पर कृतयुग का प्रारम्भ होता है। इला और इक्ष्वाकु के वंशों को, उनके पारस्परिक भेदों के साथ, हम बतला चुके, इक्ष्वाकु के वंश में जिन क्षत्रियों का आविर्भाव हुआ, वे सब राजा सुमित्र के अन्त पर्यन्त रहे, सुमित्र के बाद सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का अवसान हो जाता है। चन्द्रवंश के इतिहास को जाननेवाले लोग इला के वंश को राजा क्षेमक के अन्त तक जानते हैं। सूर्य के कीर्तिशाली इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका ॥४३०-४३२॥ इसके अतिरिक्त उन सबों के वंश में अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का भी वर्णन किया गया। प्रत्येक युगों में सहस्रों लाखों की संख्या में महान् पराक्रमशाली, बुद्धिमान् एवं जितेन्द्रिय राजा लोग उत्पन्न हो गये हैं, बहुत अधिक हो जाने तथा पुनरुक्ति के कारण उनकी संख्या प्रत्येक कुल के अनुसार मैंने नहीं बतलायी। इस वैवस्वत मन्वन्तर में निमिवंश की समाप्ति हो जाती है ॥४३३-४३५॥ इस वर्तमान युग में जिस प्रकार इन क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पौरववंशीय देवापि नामक राजा जो महान् योगाभ्यासी होगा, कलाप ग्राम में निवास करेगा, इसी प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय सोमपुत्र सुवर्चा नामक एक राजा होगा। चौबीसवें युग में ये दो परमवीर राजा क्षत्रिय धर्म का प्रवर्तन करनेवाले होंगे ॥४३७-४३८॥ बीसवें (?) युग में चन्द्रवंश का आदिम राजा कोई न होगा। देवापि बिना किसी की प्रतिद्वन्द्विता एवं वैरभावना के ऐल वंश का प्रथम राजा होगा। चारों युगों के लिए ये दो राजा क्षत्रिय धर्म के प्रवर्तक होंगे। क्षत्रिय गुण, धर्म, स्वभाववाली सन्तानों के लिए इन्हीं दोनों राजाओं को मूलरूप जानना चाहिए। तथाकथित कलियुग के व्यतीत हो जाने पर जब पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, तब विख्यात सप्तर्षियों

क्षीणे कलियुगे तस्मिन्भविष्येतु कृते युगे । सप्तर्षिभिस्तु तैः सार्धमाद्ये त्रेतायुगे पुनः ।।४४१।।
गोत्राणां क्षत्रियाणां च भविष्येते प्रवर्तकौ । द्वापरांशे न तिष्ठन्ति क्षत्रिया ऋषिभिः सह ।।४४२।।
काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुनः । बीजार्थं ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः ।।४४३।।
एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहान्तरेषु वै । सप्तर्षयो नृपैः सार्धं संतानार्थं युगे युगे ।।४४४।।
क्षत्रस्यैव समुच्छेदः संबन्धो वै द्विजैः स्मृतः । मन्वन्तराणां सप्तानां संतानाश्च सुताश्च ते ।।४४५।।
परम्परा युगानां च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः । यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षयः ।।४४६।।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्टाक्षयास्तु ते (?) । एतेन क्रमयोगेण ऐलेक्ष्वाक्वन्वया द्विजाः ।।४४७।।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणे कलौ पुनः । अनुयान्ति युगाख्यां तु यावन्मन्तरक्षयः ।।४४८।।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते । कृते वंशकुलाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।।
द्विवंशकरणाश्चैव कीर्तयिष्ये निबोधत ।।४४९।।
ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृतिः परिवर्तते । राजानः श्रेणिबद्धास्तु तथाऽन्ये क्षत्रिया नृपाः ।।४५०।।
ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवैक्ष्वाकवा नृपाः । तेषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिषेकिणाम् ।।४५१।।
तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः । भजते त्रिंशकं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथादिशम् ।।४५२।।
तेष्वतीताः समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत । शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः ।।४५३।।

के साथ ये दोनों क्षत्रिय गोत्र के प्रवर्तकों के रूप में जन्म धारण करेंगे। इसी प्रकार त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में पुनः जन्म धारण करेंगे। द्वापरांश में न तो क्षत्रिय रहेंगे न ऋषिगण रहेंगे ।।४३९-४४२।। सतयुग और त्रेतायुग के क्षीण होने पर वे ऋषि तथा राजर्षिगण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के वंशों के बीज रूप होकर उत्पन्न होंगे ।।४४३।। सभी मन्वन्तरों में इसी प्रकार सप्तर्षिगण क्षत्रिय राजाओं के साथ स्थित रहते हैं। और प्रत्येक युग में इसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करने के लिए राजाओं के साथ अवतीर्ण होते हैं। क्षत्रिय वंश का मूलतः विध्वंस, ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध स्थापन, सातों मन्वन्तर, मन्वन्तरों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाएँ, युगों की परम्परा, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की उत्पत्ति, उनके कुलों का उद्‌भव, उत्पत्ति के उपरान्त उनके विनाश एवं दीर्घायुप्राप्ति, प्रजाओं की प्रवृत्ति आदि समस्त बातों को सप्तर्षिगण जानते हैं ।।४४४-४४६$\frac{१}{२}$।। इस उपर्युक्त क्रम के अनुसार ऐल तथा इक्ष्वाकुवंशीय द्विजातियाँ त्रेता में उत्पन्न होकर कलियुग के विनाश पर्यन्त युग का अनुवर्तन तब तक करती रहती हैं, जब तक मन्वन्तर का क्षय नहीं उपस्थित होता। जमदग्नि पुत्र परशुराम के पृथ्वीपति राजाओं के साथ क्षत्रियों का समूल संहार कर डालने के बाद चन्द्र और सूर्य दोनों वंश के क्षत्रियों की पुनः उत्पत्ति हुई, मैं उन सबका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।।४४७-४४९।। उस महान् क्षत्रिय संहार के बाद इला और इक्ष्वाकु के वंशज क्षत्रियों की सन्तानों का पुनः विस्तार हुआ, धारावाहिक रूप में क्षत्रिय लोग पुनः राज्याधिकारी हुए, उनके साथ-साथ अन्यान्य क्षत्रिय भी राजा हुए। ऐल और ऐक्ष्वाकु-ऐसे वंश थे, जिनमें परम विख्यात अभिषिक्त राजाओं के एक सौ कुल हुए। भोजवंशीय राजाओं के कुलों की संख्या उनकी द्विगुणित कही जाती है, इस प्रकार ऐसे क्षत्रिय कुलों की संख्या तीन सौ हो जाती है (?) उनमें समान नामवाले राजा व्यतीत हो चुके हैं, उन सबको बतला रहा हूँ, सुनिये ।।४५०-४५२$\frac{१}{२}$।। ऐसे राजाओं में प्रतिविन्ध्यों की संख्या एक सौ, नागों की एक सौ, हयों की एक सौ, धृतराष्ट्रों की एक सौ, जनमेजयों की अस्सी, ब्रह्मदत्तों की एक सौ, शीरी और वीरियों की एक सौ, पौलों की एक सौ, तथा श्वेत

धृत (धार्त) राष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः। शतं च ब्रह्मदत्तानां शीरिणां वीरिणां शतम् ॥४५४॥
ततः शतं तु पौलानां श्वेतकाशकुशादयः। ततोऽवरे सहस्त्रं वै येऽतीताः शतबिन्दवः ॥४५५॥
ईजिरे चाश्वमेधैस्ते सर्वे नियुतदक्षिणैः। एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्त्रशः ॥४५६॥
मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन्वर्तमानेऽन्तरे तु ये। तेषां निबोधतोत्पन्ना लोके संततयः स्मृताः ॥४५७॥
न शक्यं विस्तरं तेषां संतानानां परम्परा। तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥४५८॥
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे। एता राजर्षिभिः सार्धं शिष्टा यास्ता निबोधत ॥४५९॥
चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्याः सह राजभिः। युगाख्यानां विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥४६०॥
एतद्वः कथितं सर्वं समासव्यासयोगतः। पुनरुक्तं बहुत्वाच्च न शक्यं तु युगैः सह ॥४६१॥
एते ययातिपुत्राणां पञ्चविंशा विशां हिताः। कीर्तिता ह्यमिता ये ये लोकान्वै धारयन्त्युत ॥४६२॥
लभते च वरान्पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः कीर्तिं धनं पुत्रान्स्वर्गं चाऽऽनन्त्यमश्नुते ॥४६३॥
धारणाच्छ्रवणाच्चैव ते लोकान्धारयन्त्युत। इत्येष वो मया पादस्तृतीयः कथितो द्विजाः॥
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च किं भूयो वर्तयाम्यहम् ॥४६४॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते तुर्वस्वादिवंशवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

काश-कुशादिकों की एक सौ की है। शतविन्दु नामक एक सहस्र राजा हो चुके हैं ॥४५३-४५५॥ ये सभी नृपतिगण करोड़ों की दक्षिणावाले अनेक अश्वमेध यज्ञों से अनुष्ठान करनेवाले थे, सैकड़ों सहस्रों की संख्या में ऐसे उदारचेता नृपति व्यतीत हो गये हैं। इसी वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में, इन्हीं मनु के अधिकार काल में, जो राजा हो गये हैं, उन्हीं की बहुत बड़ी संख्या में संततियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सब की परम्परा का विस्तृत विवरण पहले और पीछे की सारी संख्याएँ मिलाकर सौ वर्ष में भी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ॥४५६-४५८॥ वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाईसवाँ युग समाप्तप्राय हो गया है, इस समय राजर्षियों के साथ जो सन्तानें शेष हैं, उन्हें सुनिये। भविष्य में इसी युग में चालीस अन्य विशिष्ट राजा लोग राज्य करेंगे, वैवस्वत का सर्वांशतः अवसान होगा ॥४५९-४६०॥ प्रसंगतः संक्षेप और विस्तार में मैं आप लोगों को राजाओं का यह वृत्तान्त बतला चुका, प्रत्येक युगों में होनेवाले समस्त राजाओं का वृत्तान्त एवं वंशक्रम बहुत अधिक एवं पुनरुक्ति के कारण मैं नहीं बतला सकता। सम्राट् ययाति के पुत्रों से होनेवाले प्रजारक्षक पचीस राजवंशों का एवं उनके शासनाधीन देशों का वर्णन कर चुका, वे सब-के-सब अमित प्रभावशाली एवं बलवान् थे, बड़े प्रेम से समस्त लोकों का पालन करते थे। इस पवित्र वृत्तान्त को धारण करने से तथा सुनने से मनुष्य दीघार्यु, यश, धन, पुत्र और अनन्त कालव्यापी स्वर्ग निवास—इन पाँच वरदानों को प्राप्त करता है। इस लोक में ये वरदान परम दुर्लभ हैं।

द्विजवृन्द! मैं आप लोगों को विस्तारपूर्वक क्रमानुसार इस तृतीय पाद को सुना चुका, अब इसके बाद क्या बतलाऊँ, बतलाइये ॥४६१-४६४॥

श्री वायुमहापुराण में तुर्वस्वादि वंशवर्णन नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९९॥

अथ उपसंहारपादः

अथ शततमोऽध्यायः

मन्वन्तरनिसर्गवर्णनम्

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रान्तं सूतेन धीमता। ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमाः ।।१।।

ऋषय ऊचुः

पादः क्रान्तस्तृतीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया। चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय ।।२।।
मन्वन्तराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह। सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यान्तरे मनोः ।।३।।
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि मे ।।४।।

सूत उवाच

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्। पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः ।।५।।
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः ।।६।।

उपसंहार

अध्याय १००

मन्वन्तरों का वर्णन

परम बुद्धिमान् सूत द्वारा तृतीय पाद को सुनने के उपरान्त श्रेष्ठ ऋषियों ने चतुर्थ पाद के विषय में जिज्ञासा प्रकट की ।।१।।

ऋषिवृन्द बोले–सूत जी! आप अनुषङ्ग नामक तृतीय पाद को हम लोगों को सुना चुके, अब चतुर्थ उपसंहार नामक पाद का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। जो मन्वन्तर व्यातीत हो चुके हैं, उनके अतिरिक्त अन्य मन्वन्तर हैं, तथा इस वर्तमान मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हैं, उन सबका वृत्तान्त हमें बतलाइये। वर्तमान महात्मा मनु की सृष्टि का उद्भव एवं विस्तार किस प्रकार होता है, इन सब बातों को क्रमानुसार विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये ।।२–४।।

सूत बोले–ऋषिवर्यवृन्द! मैं आप लोगों को इन सब जिज्ञासाओं के बार में यथातथ्य रूप से बतला रहा हूँ। चतुर्थ उपसंहार पाद का वर्णन सुनिये। द्विजवृन्द! साथ ही वर्तमान महात्मा मनु के इस सृष्टि–विस्तार का भी विस्तारपूर्वक क्रमानुसार वर्णन कर रहा हूँ ।।५–६।। व्यतीत सातों मन्वन्तरों का भी भविष्यत्कालीन सातों मन्वन्तरों के साथ संक्षिप्त

मन्वन्तराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः। प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत ।।७।।
एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्तसु वै मया। मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानि मे ।।८।।
सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह। भविष्यस्य भविष्यन्ति समासात्तन्निबोधत ।।९।।
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः। कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः ।।१०।।
द्वैपायनो वसिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा। आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृङ्गस्तु काश्यपः ।।११।।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशाः। एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः ।।१२।।
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रयः। तेषां गणास्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः ।।१३।।
नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहिताः। रितस्तपश्व शुक्रश्च द्युतिर्ज्योतिष्प्रभाकरौ ।।१४।।
प्रभासो भासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिऋर्तुर्विराट्। अर्चिष्मान्द्योतनो भानुर्यशः कीर्तिर्बुधो धृतिः ।।
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्तिताः ।।१५।।
*प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हन्ताऽरिहा रितुः। सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान् ।।१६।।
देहो मुनिर्नयो ज्येष्ठः समः सत्यश्च विश्रुतेः। इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्तिताः ।।१७।।
दमोदाता विदः सोमो वित्तवैद्यौ यमो निधिः। होमं हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः ।।१८।।
ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः। मुख्या ह्येते समाख्याताः सावर्णेः प्रथमेऽन्तरे ।।१९।।

वर्णन कर रहा हूँ, लोगों का प्रलय किस प्रकार होता है—यह भी बतला रहा हूँ, सुनिये। पूर्व प्रसंग में सातों अतीत एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का विशद वर्णन मैं यद्यपि कर चुका हूँ, पर यहाँ प्रसंगवश भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का संक्षेप में पुनः वर्णन कर रहा हूँ ।।७–८।। सम्प्रति वर्तमान वैवस्वत मनु तथा भविष्यत्कालीन सावर्ण मनु का वर्णन कर रहा हूँ, संक्षेप में सुनिये। भावी मन्वन्तर में जो मुनिगण होंगे उनके नाम सुनिये। वे होंगे कुशिकनन्दन गालव, जमदग्निपुत्र भार्गव, वसिष्ठगोत्रीय द्वैपायन, शारद्वतवंशोत्पन्न कृप, अत्रिवंशोद्भव दीप्तिमान्, काश्यपगोत्रीय ऋष्यशृङ्ग एवं भरद्वाजगोत्रीय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा। ये सात परम प्रभावशाली महात्मागण भावी मन्वन्तर में परम ऋषि के नाम से विख्यात होंगे। सुतपा, अमिताभ और सुख ये तीन भावी मन्वन्तर के देवगणों के प्रमुख गण होंगे। इनमें एक-एक में बीस-बीस देवता विराजमान होंगे ।।९–१३।। उन सबके नाम बतला रहा हूँ, सावधानतापूर्वक सुनिये। रित, तप, शुक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, भासकृत, धर्म, तेज, रश्मि, ऋतु, विराट्, अर्चिष्मान्, द्योतन, भानु, यश, कीर्ति, बुध और धृति—ये बीस देवगण सुतपा नामक गण में सम्मिलित हैं ।।१४–१५।। प्रभु, विभु, विभास, जेता, हन्ता, अरिहा, रितु, सुमति, प्रमति, दीप्ति, समाख्यात (?), मह, महान्, देह, मुनि, नय, ज्येष्ठ, सम, सत्य और विश्रुत—ये बीस अमिताभ कहे जाते हैं। दम, दाता, विद, सोम, वित्त, वैद्य, यम, निधि, होम, हव्य, हुत, दान, देय, दाता, तप, शम, ध्रुव, स्थान, विधान और नियम—ये बीस सावर्णि मन्वन्तर की प्रथम अवस्था में बीस मुख्य (सुख) नामक देवगण कहे गये हैं ।।१६–१९।।

---

* इतः प्रभृति श्लोकद्वयं न विद्यते घ. पुस्तके।

मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः। सांप्रतस्य भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः ।।२०।।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनः पुरा। वीरवांश्चावरीयांश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृती ।।२१।।
चरिष्णुराज्यो विष्णुश्च वाचः सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नवैव तु ।।२२।।
नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेश्चान्तरेषु वै। सावर्णमनवश्चान्ये भविष्या ब्रह्मणः सुताः ।।२३।।
मेरुसावर्णिनस्ते वै दृष्टा वै दिव्यदृष्टिभिः। दक्षस्य ते हि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः ।।२४।।
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः। ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ।।२५।।
महर्लोकगताऽऽवृत्य+भविष्या मेरुमाश्रिताः। महाभावास्तु ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे ।।२६।।

ऋषय ऊचुः

दक्षेण जनिताः पुत्राः कन्यायामात्मनः कथम्। भवेन ब्रह्मणा चैव धर्मेण च महात्मनः ।।२७।।

सूत उवाच

अतो भविष्यान्वक्ष्यामि सावर्णमनवस्तु ये। तेषां जन्म प्रभावं च नमस्कृत्य प्रचेतसे ।।२८।।
वैवस्वते ह्यपस्पृष्टे किंचिच्छिष्टे च चाक्षुषे। जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे ।।२९।।
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये। सावर्णा नामतः पञ्च चत्वारः परमर्षिजाः ।।३०।।

ये समस्त देवगण महात्मा कश्यप के पुत्र हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के उपरान्त सावर्ण के मन्वन्तर में ये ही देवगणों के स्थान पर प्रतिष्ठित होंगे। उस सावर्णि मन्वन्तर में विरोचन पुत्र बलि इन देवगणों का स्वामी इन्द्र होगा। सावर्ण मनु के नव पुत्र होंगे, उनके नाम होंगे, वीरवान्, अवरीयान्, निर्मोह, सत्यवाक्कृती, चरिष्णु, आज्य, विष्णु, वाच और सुमति। इनके अतिरिक्त अन्य सावर्ण मन्वन्तरीय नव मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे ।।२०-२२।। भविष्य में और भी अनेक ब्रह्मा के पुत्र सावर्ण मनु उत्पन्न होंगे, दिव्यदृष्टिसम्पन्न लोग उन सबको मेरु सावर्णि के नाम से देखते हैं। वे मनुगण दक्ष के नाती एवं उनकी प्रियतमा पुत्री के पुत्र हैं, वे परम तेजस्वी, महान् तपस्वी एवं सुमेरु के पृष्ठ पर निवास करनेवाले हैं, वे ब्रह्मादि देवगणों द्वारा तथा परम बुद्धिमान् दक्ष द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वे महर्लोक वासी हैं, वहाँ से आकर सुमेरु के पृष्ठ भाग पर आश्रय लेते हैं, पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में उन महानुभावों की उत्पत्ति हुई थी ।।२३-२६।।

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! दक्ष ने अपनी कन्या में पुत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार की? और शंकर, ब्रह्मा एवं धर्म द्वारा इन महात्मा मनुगणों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? ।।२७।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! प्रचेता को प्रणामकर अब मैं भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सावर्ण मनुगणों के जन्म वृत्तान्त, प्रभाव आदि का वर्णन कर रहा हूँ। चाक्षुष मन्वन्तर के कुछ शेष रह जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हो जाता है, उसी समय उन भविष्यत्कालीन मनुगणों की उत्पत्ति होती है। उनमें पाँच सावर्ण मनुगण पशुपति दक्ष के नाती, चार मनुगण परम ऋषियों द्वारा समुत्पन्न तथा एक सावर्ण मनु विवस्वान् के संयोग से छाया संज्ञा के पुत्र हैं। संज्ञा के ज्येष्ठ

+ अत्र संधिरार्षः।

संज्ञापुत्रस्तु सावर्ण एको वैवस्वतस्तथा । ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ।।३१।।
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।।३२।।
वेदे श्रुतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ।।३३।।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ।।३४।।
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरं तेषु वक्ष्यते । चतुर्दशैव ते ज्ञेयाः सर्वाः स्वायंभुवादयः ।।३५।।
मन्वन्तराधिकारेषु वर्तन्तेऽत्र सकृत्सकृत् । विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ।।३६।।
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षष्ठास्तथाऽपरे । पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शान्तिर्वैवस्वतः प्रभुः ।।३७।।
ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः । सह प्रजानिसर्गेण सर्वांस्त्वनागतान्द्विजान् ।।३८।।
वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः । अन्यूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः ।।३९।।
पुनरुक्ता बहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् । मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ।।४०।।
कुले कुले निसर्गास्तु तस्माद्भूयो विभागशः । तेषामेव हि सिध्यर्थं विस्तरेण क्रमेण च ।।४१।।
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता । सर्वकन्यावशिष्टा तु श्रेष्ठा धर्मपरा सुता ।।
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽन्तिके ।।४२।।

पुत्र परम ऐश्वर्यशाली वैवस्वत मनु इन सावर्ण मनु से ज्येष्ठ हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर इन दोनों मनुओं की कल्याणी उत्पत्ति होती है। परम यशस्वी इन मनुगणों की संख्या चौदह कही जाती है ।।२८-३२।। वेद, श्रुति, पुराण आदि में सर्वत्र ये मनुगण परम प्रभावशाली, प्रजापति सभी जीव निकायों के अधीश्वर के रूप में वर्णित किये गये हैं। इन्ही नरेश्वर मनुगणों द्वारा सातों द्वीपों एवं पर्वतों समेत यह वसुन्धरा सहस्र युगों तक परिपालित होती है। उन मन्वन्तरों में होनेवाली प्रजा, तपस्या एवं सृष्टि विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ। स्वायंभुव मनु आदि की वह सृष्टि चौदह ही जाननी चाहिए ।।३३-३५।। मनुगण अपने-अपने मन्वन्तराधिकार में एक-एक बार वर्तमान रहते हैं। जब अधिकार से वे निवृत्त हो जाते हैं, तब महर्लोक में अवस्थित होते हैं। उन चौदह मनुओं में आठ के अधिकार-काल समाप्त हो गये हैं, छह मनुओं का अधिकार-काल शेष है। सप्त पूर्व मन्वन्तरों के समाप्त हो जाने पर सम्प्रति वैवस्वत मनु का अधिकार-काल चल रहा है, अब जो शेष मनुगण हैं, उनके अधिकार-काल का वर्णन, उस समय के देवताओं, ऋषियों, दानवों एवं ब्राह्मणादि द्विजातियों की सृष्टि परम्परा के साथ बतला रहा हूँ ।।३६-३८।। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि-विस्तार के द्वारा ही अन्य मन्वन्तरों की सृष्टि का विस्तार जानना चाहिए। वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि के समान ही उनकी भी सृष्टि होती है, उनमें कुछ भी विशेषता वा न्यूनता नहीं रहती। भूत व भावी मन्वन्तरों में प्रत्येक वंशों में जो सृष्टि होती है, उसका पुनरुक्ति और अधिकता के भय से विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर रहा हूँ। केवल उनका विभागपूर्वक विस्तार एवं क्रम बतला रहा हूँ। दक्ष प्रजापति की एक सुव्रता नामक परम धार्मिक यशस्विनी कन्या थी। वह अन्य कन्याओं से छोटी होती हुई भी गुणों में श्रेष्ठ एवं धर्मपरायण थी। पिता दक्ष एक बार अपनी उस कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा के समीप गये ।।३९-४२।। पितामह ब्रह्मा जी उस समय धर्म और भव के

वैराजस्तमुपासीनं धर्मेण च भवेन च । भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माऽभ्यभाषत ।।४३।।
दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रत । चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्शुभान् ।।४४।।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा । तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ।।४५।।
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत । सदृशानुरूपांस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ।।४६।।
संसिद्धा कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियाऽन्विताः । उपभोगसमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः ।।४७।।
ते दृष्ट्वा तान्स्वयं बुद्ध्वा ब्रह्म व्याहारिणस्तदा । संरब्धा वै व्यकर्षन्त मम पुत्रो ममेत्युत ।।४८।।
अभिध्यानान्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम् । यो यस्य वपुषा तुल्यो भजतां स तु तं सुतम् ।।४९।।
यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च नामतः । तं गृह्णातु सुभद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ।।५०।।
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा । तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च वीर्यतः ।।५१।।
एवं ते समयं कृत्वा सुवर्णा जगृहुः सुतान् । *यस्मात्सवर्णास्तेषां वै ब्रह्मादीनां कुमारकाः ।।५२।।
सवर्णा मनवस्तस्मात्सवर्णत्वं हि ते यतः । मननान्माननाच्चैव तस्मात्ते मनवः स्मृताः ।।५३।।
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य हं । रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः ।।५४।।

साथ वैराज नामक लोक में विराजमान थे। दक्ष को भव और धर्म के समीप खड़ा देखकर ब्रह्मा ने कहा, सद्व्रतपरायण दक्ष ! तुम्हारी यह कल्याणी कन्या चार पुत्रों को उत्पन्न करेगी, वे चारों भावी काल में चारों वर्णों के संस्थापक कल्याणकारी मनु के रूप में विख्यात होंगे। ब्रह्मा की ऐसी वाणी सुनकर दक्ष, धर्म और भव ब्रह्मा के साथ ही मन–ही–मन उस कन्या के साथ संगमन किया। सत्य का ध्यान करनेवाले इन महान् तपस्वियों के मानसिक संकल्प के अनुसार उस कन्या ने उन्हीं चारों के अनुसार चार सुन्दर कुमारों को उसी क्षण उत्पन्न किया ।।४३–४६।। वे कुमार समस्त कार्यों के पूर्ण करनेवाले, परम बुद्धिमान्, श्रीमान् एवं अपने उसी सद्योजात शरीर से विविध भोगों के उपभोग में सामर्थ्य रखनेवाले थे। इन चारों कुमारों को देखकर इन समस्त ब्रह्मवेत्ता देवताओं में 'यह मेरा पुत्र है', 'यह मेरा पुत्र', इस प्रकार की बातें कह–कहकर छीनाझपटी होने लगी और क्रोध का प्रदर्शन होने लगा। वे चारों पुत्र उन चारों महान् प्रभावशाली देवताओं के मानसिक अभिध्यान से उत्पन्न हुए थे, अतः उन सब ने परस्पर यह तय किया कि इन सब में जो शरीर जिसके समान हो, वह उसी को अपना पुत्र माने ।।४७–४९।। स्वरूप, पराक्रम, नाम और वर्ण में जो पुत्र जिसके समान हो वह उस पुत्र को ग्रहण करे। पुत्र सर्वदा पिता के स्वरूप का अनुकरण करता है, पराक्रम में भी पुत्र माता और पिता के समान होता है, यह निश्चित है कि पुत्र अपने ही समान होता है, अतः जो जिसके समान हो वह उसी का पुत्र है।' ब्रह्मा आदि देवताओं ने परस्पर इस प्रकार की सम्मति करके अपने समान आकृति, वर्ण और पराक्रमवाले पुत्रों को ग्रहण किया ।।५०–५२।। वे चारों कुमार ब्रह्मा, धर्म, दक्ष और भव के सावर्ण (समान वर्णवाले) थे अतः उनका सावर्ण नाम पड़ा। मानसिक मनन (समागम की भावना) के कारण उनकी उत्पत्ति हुई थी, अतः मनु नाम से विख्यात हुए। चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ हुआ, तब प्रजापति रुचि के रौच्य नामक एक पुत्र हुआ ।।५३–५४।। भूति नामक जननी में जो पुत्र

---

* इतः प्रभृति मनवः स्मृता इत्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नामाभवत्सुतः। वैवस्वतेऽन्तरे राजा द्वौ मनू तु विवस्वतः ।।५५।।
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च विश्रुतः। ज्येष्ठः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ।।५६।।
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः। सवर्णा मनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः ।।५७।।
तपसा संभृतात्मानः त्वेषु मन्वन्तरेषु वै। भविष्येषु भविष्यन्ति सर्वकार्यार्थसाधकाः ।।५८।।
प्रथमं मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः। पुत्रा मरीचिगर्भाश्च सुशर्माणश्च ते त्रयः ।।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेऽन्तरे ।।५९।।
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः। भविष्यस्य भविष्यस्तु एकैको द्वादशो गणः ।।६०।।
ऐश्वर्यसंग्रहो राहो बाहुवंशस्तथैव च। पारा द्वादश विज्ञेया उतरांस्तु निबोधत ।।६१।।
वाजियो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यया। दधिक्रावायपक्वाश्च प्रणीतो विजया मधुः ।।६२।।
तेजस्मान्नथवो (?) द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः। सुशर्मा (र्म) णस्तु वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ।।६३।।
वर्णस्तथाऽप्यङ्गाविश्चौ मुरण्यो व्रजनो मतः। अमितो द्रवकेतुश्च जम्भोस्थाजस्त्रशक्रकाः ।।६४।।
सुनेमिर्द्युतपाश्चैव सुशर्माणः प्रकीर्तिताः। तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः ।।६५।।
स्कन्दः सोमप्रतीकाशः कार्तिकेयस्तु पावकः। मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ।।६६।।

उत्पन्न किया गया, वह भौत्य नाम से विख्यात हुआ। वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान के मनु नामक दो पुत्र राजा हुए, जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हुए। इनमें एक परम ऐश्वर्यशाली विद्वान् वैवस्वत मनु ज्येष्ठ संज्ञा पुत्र और दूसरे वैवस्वत मनु सवर्ण (छाया रूप धारिणी संज्ञा) के पुत्र कहे जाते हैं। सवर्ण जो चार मनुगण हुए वे महर्षियों से उत्पन्न हुए थे ।।५५-५७।। ये सभी मनुगण परम तपोनिष्ठ थे। ये भविष्यत्कालीन अपने-अपने मन्वन्तरों में समस्त कार्यों में समर्थ होकर विराजमान होंगे। प्रथम मनु दक्षपुत्र मेरु सावर्णि थे, उनका दूसरा नाम प्रजापति रोहित था। ये भविष्य मन्वन्तर के भावी मनु होंगे। इनके वैवस्वत मन्वन्तर में अनेक महात्मा पुत्र हुए, जिनके गणों के नाम मरीचिगर्भा, सुशर्मा और पार हुए। इनमें से एक-एक गण बारह भागों में विभक्त है। ऐश्वर्यसंग्रह, राह, बाहुवंश आदि को पारगण के अन्तर्गत जानना चाहिए। अन्यान्य गणों का विवरण सुनिये। वाजिय, वाजिजित्, प्रभूति, ककुद्यया, दधिक्राव, अयपक्व, प्रणीत, विजय, मधु, तेजस्वान् और अथर्वद्वय—ये बारह मरीचिगण के अधीन थे। सुशर्मागण का विवरण बतला रहा हूँ, सुनिये ।।५८-६३।। वर्ण, अङ्ग, अविश्य, मुरण्य, व्रजन, अमित, द्रवकेतु, जम्भोस्थ, अजस्र, शक्रक, सुनेमि, द्युतपा ये बारह सुशर्मा नाम से कहे जाते हैं। भविष्यत्काल में अद्भुत नामक देव इन सबका इन्द्र होगा। अग्निपुत्र चन्द्रमा के समान सुन्दर आकृतिवाले स्वामि कार्तिकेय, जिनका दूसरा नाम स्कन्द भी है, पुलस्त्यगोत्रीय मेधातिथि, कश्यपगोत्रीय वसु, भृगुवंशोद्भव ज्योतिष्मान्, अङ्गिरानन्दन द्युतिमान्, वसिष्ठगोत्रोत्पन्न वसित, अत्रिकुलभूषण हव्यवाहन पौलववंशीय सुतपा—ये सात रोहित

ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा। वसितश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ।।६७।।
सुतपाः पौलवश्चैव सप्तैते रोहितान्तरे। धृतिकेतुदीप्तिकेतुशापहस्ता निरामयः ।।६८।।
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्रथः। प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।६९।।
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः। द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवान्तरे मनोः ।।७०।।
सुखामना विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ। त्विषिवन्तश्च ते सर्वे शतसंख्याश्च ते समाः ।।७१।।
प्राणायामच्छतः प्रोक्ता ऋषिभिः पुरुषेषु वै। देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः ।।७२।।
तेषामिन्द्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शान्तिरुच्यते। हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चापि भार्गवः ।।७३।।
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वसिष्ठश्चापि यः स्मृतः। पौलस्त्यः प्रतिपश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः ।।
अभिमन्युश्चाङ्गिरसः सप्तैते परमर्षयः ।।७४।।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान्। शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।।७५।।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः। एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके ।।७६।।
निर्माणरतयो देवाः कामजा वै मनोजवाः। गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम् ।।७७।।
एकैकस्त्रिंशतस्तेषां गणास्तु त्रिदिवौकसाम्। मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः ।।७८।।
निर्माणरतयो देवा रात्र्यस्तु विहंगमाः। गणास्ते वै त्रयः प्रोक्ता देवतानां भविष्यति ।।७९।।
मनोजवा मुहूर्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः। एते हि ब्रह्मणः पुत्रा भविष्या मनवः स्मृताः ।।८०।।

मन्वन्तर के ऋषि कहे गये हैं। उस प्रथम सावर्णि मनु के धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, शाप, हस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अनीक भूरिद्युम्न और बृहद्रथ, ये नव पुत्र कहे जाते हैं ।।६४–६९।। दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भाव्य होगा। इन भाव्य मनु के अधिकार–काल में सुखमना और विरुद्ध नामक दो देवताओं के गण कहे जाते हैं। ये समस्त देवगण परमकान्तिशाली, संख्या में सौ और समान धर्मवाले हैं। ऋषियों ने इन देवगणों को पुरुषों का प्राणायाम बतलाया है, धर्मपुत्र द्वितीय मनु के अधिकार–काल में ये देवताओं के पद पर प्रतिष्ठित होंगे। इन सब देवताओं के स्वामी इन्द्र परम विद्वान् शान्ति होंगे–ऐसा कहा जाता है ।।७०–७२$\frac{१}{२}$।। पुलहगोत्रीय हविष्मान्, भृगुगोत्रोत्पन्न परम शोभासम्पन्न सुकीर्ति, अत्रिवंशोद्भव आपोमूर्ति, वसिष्ठवंशोत्पन्न आपोमूर्ति, पुलस्त्यकुलभूषण प्रतिप, कश्यपकुलनन्दन नाभाग और अङ्गिरागोत्रोत्पन्न अभिमन्यु ये सात उस मन्वन्तर के परम ऋषि होंगे ।।७३–७४।। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा–ये दस भाव्य मनु के पुत्र होंगे। ग्यारहवें पर्याय में तृतीय सावर्णि मनु का जब अधिकार–काल होगा, तब परम महिमाशाली देवगणों के तीन विशेष गण विख्यात होंगे ।।७५–७६।। उनके नाम होंगे निर्माणरति, कामज और मनोजव। उन स्वर्ग निवासी देवताओं के इन एक–एक गणों में तीस–तीस देवता होंगे। पण्डित लोग मास में जिन तीस दिनों की गणना करते हैं, वे ही निर्माणरति देवगण हैं। रात्रि और विहङ्गमात्मक देवगण कामज और मुहूर्तगण मनोजव देवगण के नाम से विख्यात हैं। भविष्यत्काल

तेषामिन्द्रो वृषो नाम भविष्यः सुरराट्ततः । तेषां सप्तर्षयश्चापि कीर्त्यमानान्निबोधत ।।८१।।
हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मान्यश्च भार्गवः । वारुणिश्चैव चाऽऽत्रेयो वासिष्ठो भग एव च ।।८२।।
पुष्टिश्चाङ्गिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा । पौलहो ह्यग्नितेजाश्च देवा ह्येकादशेऽन्तरे ।।८३।।
सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः । क्षेमधर्मा गृहेषुश्च आदर्शः पौण्ड्रको मतः ।।८४।।
सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै मनोः । द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ।।८५।।
चतुर्थं ऋतुसावर्णे देवास्तस्यान्तरे शृणु । पञ्चैव तु गणाः प्रोक्ता दे (र्दे) वतानामनागताः ।।८६।।
हरिता रोहिताश्चैव (+देवाः सुमनसस्तथा । सुकर्माणः सुपाराश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ।।८७।।
ब्रह्मणो मानसा ह्येत एकैको दशको गण । अरुन्तिजो हविश्चैव) विद्वान्यश्च सहस्रशः ।।८८।।
पर्वतानुचरश्चैव अपोंऽशुश्च मनोजवः । ऊर्जा स्वाहा स्वधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः ।।८९।।
तपोजानिभृतिश्चैव वाचा बन्धुश्च यः स्मृतः । रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ।।९०।।
व्युष्टिर्विधिश्च वै देवो दशैते रोहिताः स्मृताः । उषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः।।९१।।
देवान्सुमनसो विद्धि सुकर्माणो निबोधत । सुपर्वा वृषभः पृष्टः कपिद्युम्नो विपश्चितः।।९२।।
विक्रमश्च क्रमश्चैव निभृतः कान्त एव च । एते सुकर्मणो देवा सुतांश्चैषां निबोधत।।९३।।

में देवताओं के ये तीन गण कहे जाते हैं। उन देवताओं के स्वामी वृष नामक सुरराज होंगे। उन मन्वन्तर के सप्तर्षियों का नाम बतला रहा हूँ, सुनिये ।।७७-८१।। कश्यपनन्दन हविष्मान्, भृगुगोत्रीय वपुष्मान्, अत्रिवंशोद्भव वारुणि, वसिष्ठगोत्रोत्पन्न भग, अङ्गिरावंशीय पुष्टि, पुलस्त्य कुलभूषण निश्चर और पुलहगोत्रीय अग्नितेजा—ये सात ग्यारहवें पर्याय के देवगण कहे जाते हैं। सर्ववेग, सुधर्मा, देवानीक, पुरोवह, क्षेमधर्मा, गृहेषु, आदर्श और पौण्ड्रक—ये ग्यारहवें मन्वन्तर के सावर्ण मनु के पुत्र कहे जाते हैं ।।८२-८४$\frac{१}{२}$।। बारहवें मन्वन्तर में रुद्रपुत्र ऋत सावर्णि का कार्यकाल होगा, उस अवधि में वर्तमान देवगणों के पाँच विशेष गण कहे जाते हैं ।।८५-८६।। उनके हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुपार—ये पाँच नाम उनके कहे जाते हैं। ये सब देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, इन एक-एक गणों में दस-दस देवता रहते हैं। उनमें अरुन्तिज, हवि, विद्वान्, पर्वतानुचर, अप, अंशु, मनोजव, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा और तारा—ये दस हरितगण के अन्तर्गत कहे जाते हैं। तप, जानि, भृति, वाचा, बन्धु, रज, राज, स्वर्णपाद, व्युष्टि और विधि—ये दस रोहित गण में हैं ।।८७-९०$\frac{१}{२}$।। तैंतीस की संख्या में उषित आदि जो देवगण कहे जाते हैं, उन्हें ही सुमना नामक देवगणों के अन्तर्गत जानिये, सुकर्मा नामक गण का विवरण सुनिये। सुपर्वा, वृषभ, पृष्ठ, कपिद्युम्न, विपश्चित, विक्रम, क्रम, निभृत और क्रान्त—ये दस सुकर्मा देवगण के अधीन हैं। इनके सुतों को सुनिये ।।९०-९३।। (सुपार

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

वर्षोदितस्तथा जिष्टो वर्चस्वी द्युतिमान्हविः। शुभो हविष्कृतात्प्राप्तिर्व्यापृथो दशमस्तथा।।९४।।
सुपारा मानता (श्च गणा) स्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः। तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महायशाः।।९५।।
कृतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु शात्रेयः सुतपास्तथा। तपोमूर्तिश्चाङ्गिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा।।९६।।
तपोऽशयानः पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः। भार्गवः सप्तयस्त्वेषां विज्ञेयस्तु तपोमतिः।।९७।।
एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्ये सावर्णिकेऽन्तरे। देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः।।९८।।
मित्रवान्मित्रबिन्दुश्च मित्रसेनो ह्यमित्रहा। मित्रबाहुः सुतर्चाश्च द्वादशैते मनोः सुताः।।९९।।
त्रयोदशे तु पर्याये भाव्या रौच्यान्तरे पुनः। त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवानां तु स्वयंभुवा।।१००।।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वे महात्मनः। सुत्रामाणः सुधर्माणः सुकर्माणश्च ते त्रयः।।१०१।।
त्रिदशानां गणाः भोक्ता भविष्याः सोमपायिनः। त्रयस्त्रिंशद्देवतायाः प्राभविष्यन्त याज्ञिकैः।।१०२।।
आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव हि। देवैर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत।।१०३।।
सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु आज्यपा नाम सांप्रतम्। सुकर्मणोऽनुयाज्यास्तु पृषदाज्याशिनस्तु ये ।।१०४।।
उपयाज्याः सुधर्माण इति देवाः प्रकीर्तिताः। दिवस्पतिर्महासत्त्वस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ।।१०५।।
पुलहात्मजपुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः। अङ्गिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यः पथ्यवांस्तु सः ।।१०६।।

नामक गण को सुनिये) वर्षोदित (वर्योदित), जिष्ठ, वर्चस्वी, द्युतिमान्, हवि, शुभ, हविष्कृत, प्राप्ति, व्यापृथ और दशम—ये सुपारा नामक गण में रहनेवाले देवताओं के नाम कहे गये हैं। इन देवताओं के इन्द्र महान् यशस्वी ऋतधामा होंगे। वसिष्ठपुत्र कृति, अत्रिनन्दन सुतपा, अङ्गिरागोत्रीय तपोमूर्ति, कश्यपात्मज तपस्वी, पुलस्त्यगोत्रोद्भव तपोऽशयान, पुलहकुलोत्पन्न तपोरति और भृगुदनन्दन तपोमति—ये सात ऋषि उक्त मन्वन्तर के जानने चाहिए ।।९४–९७$\frac{१}{२}$।। इस सावर्णिक मन्वन्तर में देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रविन्दु, मित्रसेन, अमित्रहा, मित्रबाहु और सुतर्चा—ये बारह (?) मनु के पुत्र होंगे। तेरहवें रौच्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के तीन ही गणों के होने की बात स्वयंभू ब्रह्मा जी ने बतलायी है। वे सब परम महात्मा एवं ब्रह्मा के मानसिक पुत्र कहे जाते हैं। उनके नाम हैं, सुत्रामा, सुधर्मा और सुकर्मा। ये ही भावी मन्वन्तर में सोमरस पान करनेवाले देवताओं के पदों पर प्रतिष्ठित होते हैं। यज्ञकर्त्ताओं के समेत इस मन्वन्तर में देवताओं की कुल संख्या तैंतीस होती है ।।९८–१०२।। आज्य, पृषदाज्य, ग्रहश्रेष्ठ एवं अन्याय देवगणों को मिलाकर भी वह देवसंख्या तैंतीस ही होती है। इनका अलग-अलग वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। सम्प्रति प्रयाज और आज्य नाम से प्रसिद्ध सभी देवगण सुत्रामा नामक गण के अधीन हैं। अनुयाज्य और पृषदाज्याशी देवगण सुकर्मा नामक गण के अन्तर्गत हैं ।।१०३–१०४।। उपयाज्य नामक देवगण सुधर्मा नामक गण के अधीन कहे गये हैं। इन सब देवगणों के स्वामी इन्द्र महाबलवान् दिवस्पति होंगे ।।१०५।। रुचि के इन पुत्रगणों को पुलह के पौत्र जानना चाहिए। अङ्गिरा पुत्र धृतिमान्, पुलस्त्यगोत्रीय पथ्यवान्, पुलहनन्दन तत्त्वदर्शी, भृगुगोत्रीय निरुत्सक, अत्रिगोत्रोद्भव निष्प्रकम्प, कश्यपात्मज निर्मोह और वसिष्ठवंशोत्पन्न स्वरूप—ये सात तेरहवें मन्वन्तर

पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सकः। निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोहः कश्यपस्तथा ।।१०७।।
स्वरूपश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदशे। चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मधृतो भवः ।।१०८।।
अनेकक्षत्रबद्धश्च सुरसो निर्भयः पृथः। रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यन्तरे तु त्रयोदशे ।।१०९।।
चतुर्दशे तु पर्याये भौतस्याप्यन्तरे मनोः। देवतानां गणाः पञ्च प्रोक्ता ये तु भविष्यति ।।११०।।
चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भाजरास्तथा। *वाचावृद्धाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ।।१११।।
+अपरा (परांश्चा) पि मनोः सूनूस्सप्तैतान्विद्धि चाक्षुषान्। बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान्सप्त तान्विदुः ।।
सप्त लोकाः परित्रास्ते भाजिराः सप्त सिन्धवः ।।११२।।
वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य वै। सर्वे मन्वन्तरेन्द्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।।११३।।
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः। त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।।
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इन्द्रास्तेऽभिभवन्ति वै ।।११४।।
भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः। भूतानुवादिनः सक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ।।११५।।
अग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः। भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ।।
ओजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्तैते मनोः सुताः ।।११६।।

के ऋषि कहे जाते हैं। चित्रसेन, विचित्र, तपोधर्म, धृत, भव, अनेकबद्ध, क्षत्रबद्ध, सुरस, निर्भय और पृथ–ये रौच्य मन्वन्तरीय मनु के पुत्र कहे जाते हैं ।।१०६–१०९।। भविष्यत्कालीन चौदहवें भौत्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के पाँच गण कहे जाते हैं। उनके नाम हैं, चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भाजर और वाचावृद्ध। परवर्ती मनु के सातों पुत्रों को ही चाक्षुष देवगण जानो, पण्डित जन बृहदादि साम समूह को ही सात कनिष्ठ देवगण बतलाते हैं। सातों लोक पवित्र (परित्रस्त) एवं सातों समुद्र भाजर (भाजिर) नाम से बतलाये जाते हैं ।।११०–११२।। सातों ऋषियों को वाचावृद्ध देवता जानो। स्वायंभुव मनु से लेकर सभी मनुओं के अधिकार–काल में जितने इन्द्र होते हैं, उन सबको एक ही प्रकार के स्वभाव, मर्यादा एवं प्रभाव सम्पन्न जानना चाहिए। अपने तेज, तपस्या, बुद्धि, शास्त्रीय ज्ञान, बल, पराक्रम एवं गुणों से वे इन्द्रगण इस त्रैलोक्य में जितने भी स्थावर–जङ्गम जीवनिकाय हैं, सब का अतिक्रमण करते हैं, अर्थात् उनके समान कोई अन्य नहीं होता। केवल ब्रह्म सत्य है ।।११३–११४।। समस्त स्थावर–जंगमात्मक जगत् मिथ्या है, इन भूतों की कोई सत्ता नहीं है–ऐसे मतवाले भूतापवादी हैं, और वे ही सच्चे अर्थों में प्रसन्नचित्त रहते हैं, ये जीव जगत् सब नित्य एवं अनित्य–दोनों हैं, वे भूतवादी हैं, उन्हें मध्यकोटि का समझना चाहिए, संसार एवं उसकी वस्तुएँ सभी नित्य एवं अविनश्वर हैं ऐसा जानकर जो उसी में अनुरक्त रहते हैं, वे भूतानुवादी हैं, उत्कृष्ट पण्डितों द्वारा जगत् की ये तीन व्याख्याएँ की जाती हैं। अग्नीध्र, काश्यप, पौलस्त्य, मागध, भार्गव, अग्निबाहु, आंगिरस, शुचि और परम तेजस्वी सुबल–ये भौत्यमनु के अधिकार–काल में उत्पन्न होनेवाले उनके पुत्र हैं ।।११५–११६।। उपर्युक्त ये

---

* इत आरभ्य विद्धि चाक्षुषानित्यन्तग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

+ एतदर्धस्थाने सप्त तांस्तान्भागान्विद्धि चाक्षुषसंज्ञकानिति क. पुस्तके। ग. ङ. पुस्तकयेरेतदर्धं त्रुटितमस्ति।

सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः। एकौ वैवस्वस्तश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते ।।११७।।
रौच्यो भौतश्च यौ तौ तु मनोः पौलहभार्गवौ। भौत्यस्यैवाऽऽधिपत्ये तु पूर्णः कल्पस्तु पूर्यते× ।।११८।।

सूत उवाच

निःशेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह। अन्तेऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।।११९।।
सप्तैते भार्गवा देवा अन्ते मन्वन्तरे तदा। भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्यां ह्येकसप्ततिम् ।।१२०।।
पितृभिर्मनुभिश्चैव सार्धं सप्तर्षिभिस्तु ये। यज्वानश्चैव तेऽप्यन्ये तद्भक्ताश्चैव तैः सह ।।१२१।।
महर्लोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वराः। ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं क्षीणे मन्वन्तरे तदा ।।१२२।।
ततः स्थानानि शून्यानि स्थानिनां तानि वै द्विजाः। प्रभ्रश्यन्ति विमुक्तानि ताराऋक्षग्रहैस्तथा ।।१२३।।
ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह। सेन्द्रास्तेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।।१२४।।
जिताद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश। मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्ते वै महौजसः ।।१२५।।
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं सायो (यु) ज्यं कल्पवासिनाम्। समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते संकलने तदा ।।१२६।।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश। सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोकं सहानुगाः ।।१२७।।
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति। भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु चाप्युत ।।१२८।।

चार मनुगण, जो सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हैं, वे ब्रह्मादि चारों देवताओं के पुत्र हैं, विवस्वान् सूर्य के पुत्र एक वैवस्वत मनु भी सावर्ण मनु कहे जाते हैं। रौच्य और भौत्य–ये दो पुलह और भार्गवगोत्रीय हैं। इन्हीं भौत्य मनु के अधिकार-काल में कल्प की परिसमाप्ति हो जाती है ।।११७-११८।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! सभी मन्वन्तर जब समाप्त हो जाते हैं और उनमें अनेक युग व्यतीत हो जाते हैं, तब सृष्टि का संहार होता है–ऐसा कहा जाता है। अन्तिम मन्वन्तर में ये सात भृगुवंशोत्पन्न देवगण इकहत्तर युगों तक समस्त त्रैलोक्य में विराजमान रहकर समस्त भोगों का उपभोग करेंगे और अन्त में पितरों, मुनियों, सप्तर्षियों, अन्यान्य यज्ञपरायण यजमानों एवं भक्तों के साथ तीनों लोकों का परित्याग करके वे सर्वशक्तिसम्पन्न देवगण महर्लोक को चले जायँगे ।।११९-१२१½।। इस प्रकार जब वे सब छोड़कर मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर चले जायँगे तब यह त्रैलोक्य निराधार हो जायगा! द्विजवृन्द! उस समय सभी स्थान शून्य हो जायगा, स्थानी (अभिमानी) देवगण भी अपने-अपने स्थान छोड़ देंगे। तारा, नक्षत्र, ग्रहादि निरवलम्ब होकर विध्वंस हो जाते हैं ।।१२२-१२३।। त्रैलोक्य के समस्त सामर्थ्यसम्पन्न शक्तियों के समाप्त हो जाने पर इन्द्रादि प्रमुख देवगण, चाक्षुषादि समस्त मनुगण एवं अन्यान्य महान् तेजस्वी देवगण–सभी महर्लोक में जाकर वहाँ कल्पपर्यन्त स्थिर निवास करनेवाले देवताओं की समानता प्राप्त करेंगे। इस प्रकार महर्लोक में कल्पवासी अन्यान्य देवताओं के साथ मिलने पर जब प्रलय का जोर बहुत अधिक बढ़ जायगा, तब वे चौदहों मनुगण अपने सहगामी अनुचरादि के साथ सशरीर जनलोक चले जाते हैं–ऐसा सुना जाता है ।।१२४-१२७।। देवताओं के महर्लोक से जनलोक में चले जाने पर जब केवल स्थावर जीवनिकाय शेष रह जाते

× अत्राध्यायसमाप्तिः ख. पुस्तके।

शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु । देवेषु च गतेषूर्ध्वं सायो(यु)ज्यं कल्पवासिनाम् ।।१२९।।
संहृत्य तांस्तता ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् । संस्थापयति वै सर्गं महन्दृष्टवा युगक्षये ।।१३०।।
चतुर्युगसहस्रान्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः । ÷रात्रिं युगसहस्रान्तामहोरात्रविदो जनाः ।।१३१।।
नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवाऽऽत्यन्तिकोऽर्थतः । त्रिविधः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः ।।१३२।।
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः । प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ।।१३३।।
ज्ञानाच्चाऽऽत्यन्तिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः । ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ।।१३४।।
अहरन्ते प्रकुरुते सर्वस्य प्रलयं पुनः । सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ।।१३५।।
ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्ते च युगक्षये । तत्राऽऽत्मस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ।।१३६।।
तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी । तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ।।१३७।।
तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च । सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदतिष्ठद्विभावसुः ।।१३८।।
असह्यरश्मिर्भगवान्पिबन्नम्भो गभस्तिभिः । हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ।।१३९।।
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वनं शनैः । भौमं काष्ठं वनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ।।१४०।।

हैं, मह, भू आदि सभी लोकों के स्थान शून्य हो जाते हैं, देवगण कल्पपर्यन्त निवास करनेवाले अन्यान्य देवताओं के समान स्थान प्राप्तकर ऊपर चले जाते हैं, उस समय ब्रह्मा देवताओं, ऋषियों, पितरों, दानवों—सब का संहारकर युगक्षय पर महती वृष्टि के द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापना करते हैं ।।१२८–१३०।। एक सहस्र चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन बतलाया जाता है और इसी प्रकार एक सहस्र चतुर्युग की उनकी रात्रि, दिन रात्रि के नाम को जाननेवाले ज्योतिषी लोग जानते हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक एवं आत्यन्तिक—जीवों के ये तीन प्रकार के प्रलय बतलाये जाते हैं, अर्थानुसार इनकी चरितार्थता होती है। इनमें ब्रह्मा द्वारा किया गया कल्पदाह प्रसंयम और नैमित्तिक है। जिन प्रलय में भूतों के कारणों (असाधारण कारणों) का क्षय हो जाता है उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं ।।१३१–१३३।। अच्छी तरह जान-बूझकर किये गये उस महान् प्रलय को, जिसके बाद कारणीभूत उपादानों का अस्तित्व एकदम नष्ट हो जाता है, वे असम्भव हो जाते हैं, आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। त्रैलोक्यवासी उन देवताओं का संहार करने के उपरान्त अपने एक दिन के बाद पुनः सृष्टि का प्रलय करते हैं। उस समय शयन करने की इच्छा से भगवान् ब्रह्मा प्रजाओं का संहार करते हैं। इस प्रकार एक सहस्र युग के व्यतीत हो जाने के उपरान्त युगक्षय के प्राप्त होने पर प्रजापति आत्मस्थ समस्त प्रजाओं का विस्तार करने में प्रवृत्त होते हैं ।।१३४–१३६।। उस समय सौ वर्ष व्यापी घोर अनावृष्टि होती है, जिससे पृथ्वीतल में जो अल्पसार प्राणी शेष रह जाते हैं, वे भी विनष्ट होकर पृथ्वी रूप में परिणत हो जाते हैं। विभावसु सात विशिष्ट रश्मियों से समन्वित होकर उदित होते हैं, और अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से जलराशि का शोषण करते हैं। उस समय उनकी रश्मियों का तेज असह्य हो जाता है। वे रश्मियाँ हरित वर्ण की एवं परम तेजोमयी होती हैं, उनका सात भाग होता है ।।१३७–१३९।। वे शनैः-शनैः पृथ्वीस्थ समस्त जलराशि में व्याप्त होकर अधिकाधिक विवर्तित

÷ इत आरभ्य प्रतिसंचर इत्यन्तग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

तस्मादुदकं सूर्यस्य तपतोऽपि हि कथ्यते । नावृष्ट्या *तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविष्यते ।।१४१।।
नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणा दीप्यते रविः । तस्मादपः पिबन्यो वै दीप्यते रविरम्बरे ।।१४२।।
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्भो महार्णवात् । तेनाऽऽहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत ।।१४३।।
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् । चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ।।१४४।।
प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ऊर्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः । दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रतापिनः ।।१४५।।
ते वारिणा च संदीप्ता बहुसाहस्त्ररश्मयः । खं समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुंधराम् ।।१४६।।
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा । साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ।।१४७।।
दीप्ताभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समन्ततः । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्च संरुद्धं सूर्यरश्मिभिः ।।१४८।।
सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् । एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ।।१४९।।
सर्वलोकप्रणाशं च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली । चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा ।।१५०।।
ततः प्रलीयते सर्वं जङ्गमं स्थावरं तदा । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ।।१५१।।

हो जाती हैं। भौम, काष्ठ, वन, तेज प्रभृति में पुनः-पुनः परिव्याप्त होकर वे रश्मियाँ जल से बहुत अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं। ज्वलनात्मक सूर्य के अधिक ताप का कारण इसीलिए जल कहा जाता है, अनावृष्टि से सूर्य तप्त नहीं होते और न अनावृष्टि से उनके मण्डल सन्निवेश आदि में ही कोई विशेष दीप्ति होती है, यही नहीं बल्कि अनावृष्टि से उनकी रश्मियाँ पृथ्वीस्थ पदार्थों के रसादि का संचयन नहीं कर पाती हैं। केवल जल से रवि उद्दीप्त होते हैं। अपनी किरणों द्वारा जलराशि का पान करते हुए वे आकाशमण्डल में प्रकाशित होते हैं। उनकी वे सातों किरणें समुद्र से जल का पान करती हैं। उस जल रूप आहार से संदीप्त होकर सूर्य सात हो जाते हैं ।।१४०-१४३।। इस प्रकार उनकी ये सातों रश्मियाँ सूर्य रूप हो चारों दिशाओं में व्याप्त होकर चारों लोकों को अग्नि की भाँति दग्ध कर देती हैं। नीचे-ऊपर सर्वत्र अपनी उन प्रखर तेजस्विनी किरणों द्वारा युगान्तकालीन अग्नि के समान परम उद्दीप्त वे सातों भास्कर परम तप्त हो उठते हैं ।।१४४-१४५।। जलराशि के पान करने के कारण उत्तरोत्तर अधिक उद्दीप्त होनेवाली अनेक सहस्र रश्मियों से समन्वित वे सूर्यवृन्द समस्त वसुन्धरा को दग्ध करते हुए सारे आकाशमण्डल में प्रकाशित होते हैं। उन सबों के परम प्रखर प्रताप से दग्ध होती हुई वसुन्धरा पर्वतों, नदियों एवं समुद्रों समेत सूखी हो जायगी, कहीं पर आर्हता के चिह्न भी शेष न रहेंगे। चारों ओर से विचित्र रंग-बिरंगी परम तेजस्विनी उन सूर्य रश्मियों से समस्त पृथ्वीमण्डल, ऊपर-नीचे सर्वत्र व्याप्त हो जाता है ।।१४६-१४८।। सूर्य के प्रताप से उत्पन्न होनेवाली अग्नियाँ इस प्रकार जब बहुत अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाती हैं, तब परस्पर मिलकर एक ज्वाला के रूप में परिणत हो जाती हैं। एक मण्डलाकार स्वरूप धारणकर वह अग्नि चारों लोकों को अपने परम तेज से शीघ्र ही भस्म कर देती है, उस समय सभी लोकों का विनाश हो जाता है, सभी स्थावर-जंगम जीवनिकाय विलीन हो जाते हैं, पृथ्वी वृक्षों एवं तृणों से विहीन होकर कच्छप की पीठ की भाँति हो जाती है ।।१४९-१५१।। चारों ओर से इस प्रकार वृक्षादि रहित जगत् एक भाड़ की तरह दिखायी

---

* अत्राऽऽत्मनेपदमार्षम्।

अम्बरीषमिवाऽऽभाति सर्वं मारीषितं जगत् । सर्वमेव तदाऽर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते नभः ।।१५२।।
पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च । ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ।।१५३।।
दीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः । सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ।।१५४।।
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वतः । पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ।।१५५।।
ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा । लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्तकोऽनलः ।।१५६।।
ततः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत् । निर्दह्य तांस्तु पातालान्नागलोकमथादहत् ।।१५७।।
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा ऊर्ध्वं स दहते दिवम् । योजनानां सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।।१५८।।
उदतिष्ठच्छिखास्तस्य बह्व्यः संवर्तकस्य तु । गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ।।
तदा तहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः ।।१५९।।
भूलोकं तु भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा । घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम् ।।१६०।।
व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना । तत्तेजः समनुप्राप्तं कृत्स्नं जगदिदं शनैः ।।
अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ।।१६१।।
ततो गजगुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः । उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः ।।१६२।।

पड़ता है, सारा आकाशमण्डल ज्वालाओं से देदीप्यमान हो जाता है, पाताल में जो जीवसमूह रहते हैं, महान् समुद्रों में जिन जन्तुओं का निवास रहता है, वे भी विलीन होकर पृथ्वी रूप में परिणत हो जाते हैं ।।१५२–१५३।। सभी जीवों में व्याप्त रहनेवाले अग्निदेव सातों द्वीपों, पर्वतों, समस्त वर्षों (देशों) एवं महासमुद्रों तक को भस्म कर देते हैं। सर्वत्र व्याप्त अग्नि उस समय जब समुद्रों, नदियों, पातालस्थ प्रदेशों से जलराशि का पान करते हुए परम जाज्वल्यमान होकर पृथ्वी का आश्रय लेती है, तब महान् संवर्तक नामक अग्नि पर्वतों का अतिक्रमण कर घोर रूप हो समस्त लोकों का विनाश करने लगती है। पृथ्वी का भेदन कर वह रसातल को शुष्क कर देती है, पाताल के सभी प्रदेशों को भस्मकर वह नागों का लोक जला देती है ।।१५४–१५७।। निम्न भूमण्डल का दहन करने के उपरान्त ऊपर आकाशस्थ प्रदेशों एवं पिण्डों का दहन करती है, उस समय महान् संवर्तक की ज्वालाएँ सहस्रों, लाखों, अरबों योजनों तक ऊपर को उठती हैं। गन्धर्वों, पिशाचों, सर्पों एवं राक्षसों के आश्रयों को सर्वांशतः भस्म करने के उपरान्त गोलोक को भी वह भस्म कर देती है ।।१५८–१५९।। इस प्रकार कालाग्नि घोर स्वरूप धारणकर भू, भुव, स्व एवं मह–इन चारों लोकों को सर्वांशतः भस्मावशेष कर देती है। नीचे–ऊपर सर्वत्र अग्नि से परिव्याप्त होकर धीरे–धीरे यह समस्त जगन्मण्डल तेजोमय होकर एक तपाये हुए लोहे के पिण्ड की भाँति प्रकाशमान होता है। उसके बाद हाथियों के समूहों के समान आकारवाले, विद्युतों से सुप्रकाशित संवर्तक नामक मेघगण घोररूप धारणकर आकाशमण्डल में उठ पड़ते हैं ।।१६०–१६२।। उनमें

केचिन्नीलोत्पलश्यामा केचित्कुमुदसंनिभाः । केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः परे ।।१६३।।
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा । धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ।।१६४।।
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा । मनःशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाऽम्बुदाः ।।१६५।।
इन्द्रगोपनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि । (*केचित्पुरधराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः ।।१६६।।
केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः) । कुण्डागारनिभाः केचित्केचित्मीनकुलोपमाः ।।१६७।।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः । तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम् ।।१६८।।
ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मिकाः । सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ।।१६९।।
ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महौघवत् । सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम् ।।१७०।।
प्रवृष्टैश्च तथाऽत्यर्थं वारिभिः पूर्यते जगत् । अद्भिस्तेऽभिभूतं च तदाऽग्निः प्रविशत्यपः ।।१७१।।
नष्टे चाग्नौ वर्षशते पयोदाः पाकसंभवाः । प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जलपरिस्रवैः ।।१७२।।
धाराभिः पूरयन्तीमं चोद्यमाना स्वयंभुवा । अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।।
साद्रिद्वीपान्तरं पृथ्वी अद्भिः संछाद्यते तदा ।।१७३।।

कुछ नीचे कमल के समान श्यामल वर्ण के, कुछ कुमुदिनी के समान श्वेत वर्ण के, कुछ वैदर्भ मणि के समान, कुछ इन्द्रनील के समान, कुछ कुन्द और शंख के समान अतिशय श्वेत, कुछ काजल के समान काले, कुछ धुएँ के समान अतिशय काले, कुछ पीले, कुछ गधे के समान धूसरित रंगवाले, कुछ लाल के समान रक्तवर्णवाले, कुछ मैनशिल के समान और कुछ कबूतरों के समान वर्णवाले रहते हैं ।।१६३–१६५।। यही नहीं, कुछ इन्द्रगोप (एक बरसाती कीड़ा जो लाल रंग का होता है) के समान अतिशय रक्त वर्ण के मेघ आकाशमण्डल में दिखायी पड़ते हैं। कुछ ग्रामों एवं पृथ्वीखण्ड के समान भीषण, कुछ हाथियों की पंक्ति के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान भीषण, कुछ चट्टानों की तरह विस्तृत मेघ भी होते हैं, कुछ की आकृति कुण्डों की तरह गहरी दिखायी पड़ती है, कुछ मछलियों के समूहों से व्याप्त दिखायी पड़ते हैं ।।१६६–१६७।। इस प्रकार अनेक रूप धारणकर कठोर कर्कश गर्जन करनेवाले वे मेघगण सारे आकाशमण्डल को व्याप्त कर लेते हैं। सूर्यात्मक वे मेघगण घोर गर्जन करते हुए सात भागों में विभक्त होकर उस अग्नि को शान्त करने लगते हैं। बड़े वेग से जलराशि बरसाते हुए वे मेघगण उस परम घोर अमङ्गलकारी अग्नि को सर्वत्र नष्ट कर देते हैं ।।१६८–१७०।। उस अनन्त जलराशि से समस्त जगन्मण्डल पूर्ण हो जाता है, अग्नि का सारा तेज जल से शान्त हो जाता है, वह जल में प्रविष्ट होकर विलीन हो जाती है। अग्नि के नष्ट हो जाने के उपरान्त समस्त ज्वलनात्मक कार्यों के परिणाम से उत्पन्न पर्जन्यगण सौ वर्षों तक अपनी अकूत जलराशि की वृष्टि द्वारा समस्त जगन्मण्डल को प्लावित करते हैं। स्वयंभू की प्रेरणा से प्रेरित होकर वे अपनी धाराओं से जगत् को पूर्ण कर देते हैं। कुछ पयोद अपनी जलराशि से मर्यादा को भी अतिक्रान्त कर देते हैं। उस समय पृथ्वी के समस्त द्वीप, पर्वत एवं प्रदेश जल से आच्छादित हो जाते हैं ।।१७१–१७३।। सूत कहते हैं, विप्रवृन्द! पर्जन्यों से

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

तस्य वृष्ट्या च तोयं तत्सर्वं हि परिमण्डितम् । प्रविशत्युदधौ विप्राः पीतं सूर्यस्य रश्मिभिः ।।१७४।।
आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति । पुनः पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्ति चार्णवाः ।।१७५।।
ततः समुद्राः स्वां वेलां परिक्रामन्ति सर्वशः । पर्वताश्च विशीर्यन्ते मही चाप्सु निमज्जति ।।१७६।।
ततस्तु सहसोद्भ्रान्तः पयोदांस्तान्नभस्तले । संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ।।१७७।।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ।।१७८।।
अथाम्भसावृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः । अथ भूमितलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा ।।
नष्टे भातेऽवलीनं तत्प्राज्ञायत न किंचन ।।१७९।।
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्वशः । प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येकं सलिलाख्यां भजत्युत ।।१८०।।
आगतागतिकं चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम् । प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्यं च तज्जलम् ।।१८१।।
आभान्ति यस्मात्ता भाभिर्भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु । भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यते ।।१८२।।
नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते । एकार्णवे तदाऽऽपो वै न शीघ्रास्तेन ता नराः ।।१८३।।

वृष्टि द्वारा बरसाया गया जल–समूह, जितना भी होता है, जाकर समुद्र में प्रवेश करता है, वहाँ सूर्य की किरणों से पिया जाता है, सूर्य की किरणों से पिये जाने के बाद वह जल बादलों में स्थित होता है। फिर वही पृथ्वी पर गिरता है, और फिर से सारे समुद्र भर जाते हैं और भरकर अपनी मर्यादा को भी बाँध जाते हैं, जिसके कारण पर्वत–समूह छिन्न–भिन्न होकर गिर पड़ते हैं, पृथ्वी पानी में छिप जाती है ।।१७४–१७६।। अस्तु, इस प्रकार जब मेघगण आकाशमण्डल में स्थित होकर वृष्टि से समस्त जगन्मण्डल को व्याप्त कर देते हैं, जब सहसा महान् वायु घोर स्वरूप धारणकर उन बादलों को चारों ओर से आकाश में घेर लेता है, उस महान् भीषण, एक समुद्र के रूप में परिणत जगत् के सारे स्थावर जंगमात्मक जीवनिकाय नष्ट हो जाते हैं, और ऐसी अवस्था में एक सहस्र युग व्यतीत हो जाता है, इसी अवस्था को कल्प कहते हैं ।।१७७–१७८।। पण्डित लोग उस स्थिति को, जबकि समस्त लोक जलराशि से घिर जाते हैं, एकार्णव (एक समुद्र) कहते हैं। उस एकार्णव में पृथ्वी, आकाश अथवा वायु का कोई विशेष स्थान वा सन्निवेश नहीं मालूम पड़ता, सब पृथक् अस्तित्व मिट जाता है, सभी एक–दूसरे में विलीन हो जाते हैं, कौन क्या है–यह कुछ नहीं मालूम पड़ता। पार्थिव (पृथ्वी सम्बन्धी), सामुद्र (समुद्रीय) एवं हैम (सुवर्ण सम्बन्धी, तैजस) जलराशि चारों ओर प्रवाहित होती हुई उस समय एकमात्र सलिल (जल) की पदवी धारण करती है, अर्थात् उनकी अलग सत्ता नहीं रह जाती ।।१७९–१८०।। समस्त जलराशि केवल अनवरत इधर–उधर आती–जाती रहती है–ऐसा कहा जाता है, समुद्र के रूप में परिणत वह जलराशि समस्त महीमण्डल को आच्छादित कर लेती है ।।१८१।। भा शब्द प्रकाश और व्याप्ति करने के अर्थ में व्यवहृत होता है, इस समस्त जगन्मण्डल के भस्म हो जाने के बाद अपनी व्याप्ति एवं प्रभा से सब ओर प्रकाशित होता है, अतः उसका नाम अम्भ (जल) कहा जाता है, यही इस नाम के पड़ने का कारण है। अर् धातु अनेकत्व एवं शीघ्रत्व को प्रकट करता है, एकार्णव होने पर यतः वह जलराशि शीघ्रता से नहीं चलती, अतः उसका नाम नार कहा जाता है ।।१८२–१८३।। एक सहस्र युग के समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता

तस्मिन्युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो मते। तावन्तं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत्।।
तदा तु सर्वव्यापारा निवर्तन्ते प्रजापतेः ।।१८४।।
एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे। तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्।।१८५।।
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक्।।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथी यः पुरुषो निरुच्यते ।।१८६।।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट्।।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वै संपद्यते वै तमसः परस्तात् ।।१८७।।
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते। सुषुप्सुरप्रकाशां स्वां रात्रिं तु कुरुते प्रभुः।।१८८।।
चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वाण्डमण्डिताः। पश्यन्ते तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः।।१८९।।
जनलोके विवर्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुषः। भृग्वादयो महात्मानः पूर्वे व्याख्यातलक्षणाः।।१९०।।
सत्यादीन्सप्त लोकान्वै ते हि पश्यन्ति चक्षुषा। ब्रह्माणं ते तु पश्यन्ति महाब्राह्मीषु रात्रिषु।।१९१।।
सप्तर्षयः प्रपश्यन्ति सुप्तकालं स्वरात्रिषु। कल्पानां परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्यः स पठ्यते।।१९२।।
स स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः। एवमावेशयित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजायते।।१९३।।

है, उतने ही समय तक समस्त जगत् एकार्णव के रूप में परिणत रहता है, उस अवधि में प्रजापति ब्रह्मा के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाते हैं ।।१८४।। इस प्रकार महान् एकार्णव में जब समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् नष्ट हो जाता है, तब सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, ।।१८५।। सहस्रशीर्षा, सुन्दर मनवाले, सहस्रचक्षु, सहस्रमुख, सहस्रवचन बोलनेवाले, सहस्रबाहु, त्रयी (वेदत्रयी) पथानुगामी, आदित्य के समान प्रखर तेजस्वी स्वरूपवाले, समस्त भुवनरक्षक, अपूर्व, अद्वितीय, अपने अनुपम तेज से अभिभूत करनेवाले, महान् अन्धकार रूप अज्ञान से परे, हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा स्थित रहते हैं। महामहिमामय भगवान् उस समय जबकि एक सहस्र बार चारों युग व्यतीत हो जाते हैं, समस्त जगन्मण्डल जलराशि में डूब जाता है, शासन करने की इच्छा से अपनी महारात्रि की कल्पना करते हैं, जो महान् अन्धकार से पूर्ण रहती है ।।१८६-१८८।। जिस समय चारों प्रकार की प्रजाओं को उस विशाल अण्ड में परिणत करके (सबका संहार करके) महात्मा प्रजापति ब्रह्मा शयन करते हैं, उस समय उनको केवल सप्तर्षिगण देखते रहते हैं। वे भृगु आदि महात्मा ऋषिगण उस समय जनलोक में निवास करते हैं, परम तपस्या के फलस्वरूप उन्हें दिव्य चक्षु की प्राप्ति हुई रहती है। इनके विस्तृत लक्षणों की चर्चा पूर्व प्रसंग में कर चुका हूँ। ये महात्मागण अपने दिव्यनेत्रों से सत्यादि सातों लोकों को देखते रहते हैं। भगवान् ब्रह्मा का दर्शन उन्हें महाबलशाली रात्रियों में होता है ।।१८९-१९१।। अपनी रात्रि के आने पर ब्रह्मा जिस समय सुषुप्तावस्था में स्थित रहते हैं, उस समय सातों ऋषि उन्हें देखते हैं। समस्त कल्पों के अन्त में एकमात्र भगवान् ब्रह्मा ही शेष (परमेष्ठी) रहते हैं, अतः उन्हें आद्य (सर्वप्रथम) कहा जाता है। सब-कुछ करने-धरनेवाले महान् तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा अपनी रात्रि में आत्मा में सबको समेटकर एक महान् एकार्णव जगत्

अथाऽत्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत् । ततः स वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले ।।१९४।।
ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः । मनःसिसृक्षया युक्तं सर्गाय निदधे पुनः ।।१९५।।
एवं सलोके निर्वृत्ते उपशान्ते प्रजापतौ । ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे ।।१९६।।
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः । ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः ।।
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्संकलने तदा ।।१९७।।
गन्धर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचान्तानि सर्वशः । कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाऽऽश्रयन्ति वै ।।१९८।।
तिर्यग्योनीनि सत्त्वानि नारकेयाणि यान्यपि । तदा तान्यपि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः ।।
जने तान्युपपद्यन्ते यावत्संप्लवते जगत् ।।१९९।।
व्युष्टायां तु रजन्यां तु ब्रह्मणेऽव्यक्तयोनये । जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः ।।२००।।
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । तेषामपीह सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।।२०१।।
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमनं स्मृतम् । वया जन्म निरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ।।२०२।।
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते । यथा सर्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ।।२०३।।
स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजाः । यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।।२०४।।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मोत्तरात्रिषु । प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।।२०५।।

में, जबकि चारों ओर घोर अन्धकार विद्यमान रहता है, निवास करते हैं। तदनन्तर जब रात्रि व्यतीत हो जाती है तब वे जाग्रत होते हैं, और सृष्टि करने की इच्छा से पुनः मन का संयोग करते हैं ।।१९२-१९५।। इसी प्रकार ब्रह्मा के नैमित्तिक प्रलय में प्रजापति के उपशान्त एवं समस्त लोकों के विनष्ट हो जाने पर सभी जीवनिकाय अपने शरीरों से वियुक्त हो जाते हैं, सूर्य की किरणों से सभी जीव यहाँ तक कि देवता, ऋषि एवं बड़े-बड़े मुनिगण भी भस्म हो जाते हैं ।।१९६-१९७।। इतना ही नहीं, गन्धर्व एवं पिशाचादि योनियों में उत्पन्न भूतगण भी कल्पान्त में भस्म होकर जनलोक का आश्रय लेते हैं। उस समय जो तिर्यक् योनि में उत्पन्न होनेवाले प्राणी रहते हैं, अथवा जिनका घोर नरकादि लोकों में निवास रहता है वे भी दग्ध होकर निष्पाप हो जाते हैं, और जनलोक में विद्यमान होते हैं ।।१९८-१९९।। अन्त में जब ब्रह्मा की इस महारात्रि का अवसान होता है, तब वे सब जीव पुनः उत्पन्न होते हैं। ऋषिगण, मनुगण, देवगण एवं प्रजा, इन सबकी यही गति होती है। उस समय उन सिद्धि प्राप्त करनेवालों का भी विनाश एवं उत्पन्न होना बतलाया जाता है। जिस प्रकार इस लोक में सूर्य का उदय होना तथा अस्त होना निश्चित कहा जाता है, उसी प्रकार समस्त जीवों का भी जन्म लेना और मृत्यु प्राप्त करना देखा जाता है ।।२००-२०२।। समस्त जीवों के इस महान् विनाश के बाद पुनः भव अर्थात् उत्पत्ति होती है, इसीलिए इस लोक का नाम संसार कहा जाता है। जिस प्रकार वर्षाऋतु में वे वस्तुएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रलय के प्रत्येक कल्पों में जिन चराचर जीवों का जो-जो स्वरूप रहता है, जैसा-जैसा आकार-प्रकार रहता है, ब्राह्म रात्रि के अवसान के उपरान्त पुनः नये कल्प का आरम्भ होने पर वे उसी प्रकार के स्वरूप, आकार एवं प्रकार में उत्पन्न देखे जाते हैं। चराचर जीववृन्द, प्रजाकर्त्ता, प्रजापति, महायोगी एवं

*निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकारं प्रजापतिम् । ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ।।२०६।।
सस्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः । व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।।२०७।।
येनैव सृष्टा प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।।
पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु संव्रजन्ति ।।२०८।।
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव तत्रैव विवर्तमानाः ।।
मर्त्यास्तु देहान्तरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरन्ति ।।२०९।।
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः ।।
तद्भाविताख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वाः ÷ ।।२१०।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंप्लवम् । मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः ।।
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ।।२११।।
स युगाख्यासहस्रं तु सर्वाण्येवान्तराणि वै । अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे निःशेषः कल्प उच्यते ।।२१२।।
एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्यां निबोधत । निमेषस्तुल्यमात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु ।।२१३।।
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृता । लवः क्षणास्तु पञ्चैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः ।।२१४।।

महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश करते हैं और उसी से पुनः बाहर निकलते हैं ।।२०३–२०६।। प्रत्येक कल्प के आदिमकाल में व्यक्त एवं अव्यक्त उभयविध उपाधिधारी देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा ही समस्त जीवसमूह की सृष्टि करते हैं। इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है, वह उन्हीं का बनाया हुआ। इस महीतल में प्रथम प्रवर्तित जलराशि जिस मार्ग का आश्रय लेकर प्रयाण करती है, अन्यान्य जलराशियाँ भी उसी पूर्व प्रथित पथ पर प्रयाण करती हैं। मनुष्यगण, दूसरे शरीर की भवितव्यता (आवश्यक प्राप्ति) के कारण एवं रविरश्मियों के वशीभूत होकर, अपने–अपने शुभाशुभ कार्यकलापों के अधीन उसी कर्म के निर्दिष्ट पथ पर विचरण करते हुए ऊर्ध्व अथवा निम्न लोकों में गमन करते हैं। जो देवगण, मनुगण, प्रजापति एवं अन्यान्य स्वर्गस्थ सिद्धिप्राप्त पुरुष हैं, वे भी भवितव्यतावश अपने–अपने धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वभावतः जन्म धारण करते हैं ।।२०७–२१०।। ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त मैं प्रलय काल के विषय में बतला रहा हूँ। जो चौदह मन्वन्तर होते हैं, उनको बतला चुका। साथ में ही उनमें होनेवाली प्रजाओं की सृष्टि भी देवताओं के साथ बतला चुका हूँ। वे सभी मन्वन्तर एक सहस्र युगों के होते हैं। इसी प्रकार दो सहस्र युगों के व्यतीत होने पर एक कल्प की समाप्ति होती कही जाती है ।।२११–२१२।। इस अवधि को ब्रह्मा का एक दिन समझना चाहिए। उसकी संख्या के बारे में विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये। एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है उसे निमेष कहते हैं, मनुष्य की आँख की झपकी में जो समय लगता है, उसे भी निमेष कहते हैं। ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है। पाँच क्षण का एक लव होता है। बीस काष्ठा का तीन लव होता है ।।२१३–२१४।। मतान्तर

---

* अत्राऽऽत्मनेपदमार्षम् ।

÷ अत्राध्यायसमाप्तिः ख. पुस्तके। अनन्तरं सूत उवाचेति च।

प्रस्थः सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः । लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिंशतः कलाः ।।२१५।।
मुहूर्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः । अहोरात्रं कालानां तु द्व्यधिकानि शतानि षट् ।।२१६।।
ताश्चैव संख्यया ज्ञेयं चन्द्रादित्यगतिर्यथा । निमेषा दश पञ्चैव काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला ।।२१७।।
त्रिंशत्कला मुहूर्तस्तु दशभागः कला स्मृता । चत्वारिंशत्कलानां तु मुहूर्त इति संज्ञितः ।।२१८।।
मुहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः । तस्थानेनाम्भसा(सां)चापि पलान्यथ त्रयोदश ।।२१९।।
मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते । एते वाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घटः ।।२२०।।
हेममाषैः कृतच्छिद्रैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । समाहनि च रात्रौ च मुहूर्ता वै द्विनालिकाः ।।२२१।।
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वृतुषु नित्यशः । अधिकं षट्शतं पञ्च कलानां प्रविधीयते ।।२२२।।
तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम् । सावनेन तु मासेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृतः ।।२२३।।
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः । अह्नाऽनेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी ।।२२४।।
तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् । कलानां सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ।।२२५।।
यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं दिव्या कोटी तु सा स्मृता । शतानां च सहस्राणि दश द्विगुणितानि च ।।
+नवतिं च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ।।२२६।।
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम् । संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्नन्तरं तदा ।।२२७।।

के साढ़े सात प्रस्थ का एक लव होता है, तीस लव की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्त का एक दिन–रात होता है—एक दिन–रात में छह सौ दो कलाएँ होती है ।।२१५–२१६।। इन्हीं संख्याओं से चन्द्रमा और सूर्य की गति जाननी चाहिए, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, किन्हीं–किन्हीं के मत से चालीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। जाननेवालों ने इन सब के यही प्रमाण निश्चित किये हैं। जल द्वारा भी एक प्रकार से परिमाण का निश्चय होता है, मागधमान के अनुसार तेरह पल–जल का एक प्रस्थ होता है, ऐसे चार प्रस्थों का एक नालिक घट होता है ।।२१७–२२०।। एक कलश में चार अंगुलों पर चार सुवर्णमाष के समान छिद्रों द्वारा दिन और रात भर में प्रतिमुहूर्त दो नालिका जल का क्षरण होता है। सूर्य की गति की न्यूनता के रहते हुए भी सभी ऋतुओं में एक दिन–रात छह सौ से कुछ अधिक कलाओंवाला होता है। यह दिन मनुष्यों का है, नाक्षत्रिक दिन–रात का परिमाण छह सौ दस कलाओं का होता है। यही एक सावन का भी मान है। इन मान से बारह मास का एक मानव वर्ष कहा जाता है ।।२२१–२२३।। उतना ही एक दिव्य वर्ष का मान है—ऐसा शास्त्रों का निश्चय है। इसी दिन मान से मास, अयन एवं वर्ष आदि की गणना होती है, ये संज्ञाएँ ब्रह्मा के एक दिन की उपलक्षण मात्र हैं। कलाओं द्वारा परिगणित होने के कारण समय काल नाम से पुकारा जाता है। एक ब्राह्म दिवस एक करोड़ बीस लाख नव सहस्र से अधिक दिव्य वर्षों का होता है। इस कथन से ऋषिवृन्द परम विस्मित हो उठे। यह परम अद्भुत बात मालूम पड़ी, काल संख्या विषयक जिज्ञासा की शान्ति के लिए पुनः उन सबों ने पूछा ।।२२४–२२७।।

---

* इतः प्रभृति सार्धश्लोको नास्ति ख. पुस्तके।

ऋषय ऊचुः

संख्याप्रलयमात्रं तु मानुषेणैव संमतम् । मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम् ।।२२८।।
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः । संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्मान्प्रोवाच भगवान्प्रभुः ।।२२९।।
एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके । तासां संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मयं वक्ष्याम्यहः क्षये ।।२३०।।
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु । द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ।।२३१।।
तथा शतसहस्त्राणि एकोननवतिः पुनः । अशीतिश्च सहस्त्राणि एष कालः प्लवस्य तु ।।२३२।।
मानुषाख्येण संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः । सप्त सूर्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ।।२३३।।
महाभूतेषु लीयन्ते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । सलिलेनाऽऽप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।२३४।।
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ । निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसाऽऽवृते ।।
ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे किल ।।२३५।।
तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदहः प्रभोः । रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ चाप्यहः स्मृतम् ।।२३६।।
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते । आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ।।२३७।।
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च । आभूतेभ्यः प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसंप्लवः ।।२३८।।
*अग्रे भूतः प्रजानां तु तस्माद्भूतः प्रजापतिः । आभूतात्प्लवते चैव तस्मादाभूतसंप्लवः ।।२३९।।

ऋषिगण बोले–हम लोग संक्षेप में मानव मान से–सम्मत संख्या द्वारा प्रलय का परिमाण सुनना चाहते हैं, आप छोटे-छोटे पदों में इसका संक्षिप्त परिचय दीजिये। ऋषियों की बात सुनकर लोकहितैषी परम ऐश्वर्यशाली भगवान् वायु, जिन्हें दिव्य नेत्र प्राप्त थे, संक्षेप में कथा का प्रारम्भ करते हुए बोले ।।२२८–२२९।। लौकिक दिन-रात का प्रमाण मैं आप लोगों को बतला चुका हूँ, उन्हीं के माध्यम से ब्राह्म वर्ष के पूर्व उनके दिवस का परिमाण बतला रहा हूँ। मानव के चार सौ बत्तीस करोड़ उन्यासी लाख अस्सी सहस्र वर्षों में प्रलय होता है, मानव मान से इतने ही वर्षों बाद प्रलय की अवधि कही गयी है। प्रलय के अवसर पर सात सूर्य उदित होते हैं, सभी लोको में चारों प्रकार की प्रजाएँ महाभूतों में विलीन हो जाती हैं, सारा लोक जलमग्न हो जाता है, स्थावर-जंगम जीवनिकाय नष्ट हो जाते हैं ।।२३०–२३४।। संहार कार्य कर प्रजापति शान्त हो जाते हैं, दग्ध लोक-समूहों में आलोक (प्रकाश) का सर्वथा अभाव हो जाता है। घोर नैश अन्धकार में संसार सभी ओर से आवृत हो जाता है। ईश्वर में अधिष्ठित गृह समस्त जगत् एक महासमुद्र रूप में परिणत हो जाता है। तब तक भगवान् का एक दिन रहता है तब तक एकार्णव रूप जगत् की स्थिति जाननी चाहिए, उसके बाद उनकी रात्रि केवल जलावस्था तक रहती है। इसके उपरान्त दिन कहा जाता है। ये दिन और रात क्रम से परिवर्तित होते हैं। इस प्रकार उन परम ऐश्वर्यशाली का एक दिन-रात निखिल प्राणिसमूहों की प्रलय-अवधि तक कहा जाता है ।।२३५–२३८।। इस समस्त त्रैलोक्य में जितने भी चराचर भूत (जीव) समूह हैं, वे सब-के-सब विनष्ट हो जाते हैं, इसीलिए प्रलय का नाम आभूतसंप्लव कहा जाता हैं। प्रजाओं में सब में प्रथम भूत (उत्पन्न) हुए थे। अतः प्रजापति भूत हैं, उन्हीं से सब चराचर

---

* नास्त्ययं श्लोको घ. पुस्तके।

शाश्वते चामृतत्वे च शब्दे चाऽऽभूतसंप्लवः। अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ।।
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृता ।।२४०।।
परार्धद्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम्। एतावान्स्थितिकालस्तु अजस्येह प्रजापतेः ।।
स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।२४१।।
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति। तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ।।२४२।।
तथा ह्यप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे। महत्प्रलीयतेऽऽव्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत् ।।२४३।।
इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः। ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ।।२४४।।
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्तयामि वः। +य इद धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ।।
कीर्तनाच्छ्रवणाच्चापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ।।२४५।।
×ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो विजयी भवेत् ।।
वैश्यस्तु धनलाभाग्व(भाक्चैव) शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।।२४६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते मन्वन्तरनिसर्गादिकथनं नाम शततमोऽध्यायः।।१००।।

जगत् भूत (विनाश) होता है, इसलिए भी प्रलय को आभूतसंप्लव कहते हैं। शाश्वत एवं अमृतत्व शब्द भी इस आभूतसंप्लव शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अतीत, भविष्य एवं वर्तमान प्रजाओं का त्रैकालिक आयु परिमाण दिव्य संख्या में अपरार्द्ध कहा जाता है ।।२३९-२४०।। प्रजापति ब्रह्मा की परम आयु दो परार्द्ध काल हैं। इतने ही समय तक उनकी स्थिति कही जाती है। इसके उपरान्त परमेष्ठी ब्रह्मा का प्रतिसर्ग होता है। जिस प्रकार वायु के झोंके में दीप की ज्योति शान्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रतिसर्ग द्वारा ब्रह्मा शान्त हो जाते हैं! उस समय जब अव्यक्त में महत् विलीन हो जाता है और महदादि सब महेश्वर में तद्रूप हो जाते हैं, तब गुण साम्य हो जाता है। प्रलय का वृत्तान्त मैं आप लोगों को सुना चुका, यही ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है, इसका वर्णन मैंने संक्षेप ही में किया है, अब बतलाइये आप लोगों को पुनः क्या बतलाऊँ ? जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को धारण करता है, अथवा नित्य श्रवण करता है, वह महान् सिद्धि प्राप्त करता है, क्योंकि इसके श्रवण एवं कीर्त्तन से भी महान् फल की प्राप्ति होती है। इसके माहात्म्य से ब्राह्मण को विद्या-प्राप्ति होती है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र सुख लाभ करता है ।।२४१-२४६।।

श्री वायुमहापुराण में मन्वन्तरनिसर्गकथन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।।१००।।

+ एतदर्धस्थाने य इदं ध्यायते नित्यं धारयेद्यः समाहित इति घ. पुस्तके।

× अयं श्लोको न विद्यते क. ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

अथैकशततमोऽध्यायः

भूर्लोकादिव्यवस्थावर्णनम्

वायुरुवाच

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजैः। धर्मा वैशेषिकाश्चैव आचीर्णाः सूक्ष्मदर्शिभिः ।।१।।
ते देवैः सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः। चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।।२।।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। ऋषिभिर्दैवतैश्चैव सह गन्धर्वराक्षसैः ।।३।।
मन्वन्तराधिकारेषु जयन्तीह पुनः पुनः। देवाः सप्तर्षयश्चैव मनवः पितरस्तथा ।।४।।
सर्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोकं समाश्रिताः। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहितैः सुराः ।।५।।
तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः। वर्णाश्रमाणां धर्मेषु श्रौतस्मार्तेषु संस्थितैः ।।
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षयः ।।६।।

ऋषय ऊचुः

महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वस्त्वथा विभो। प्रतिलोके च कर्तव्यमनेकैः समधिष्ठिताः ।।७।।

अध्याय १०१

भूर्लोकादि की व्यवस्था

वायु बोले–ऋषिगण! जो सूक्ष्मदर्शी असामान्य चरित्रबलसम्पन्न द्विजातिवृन्द, यज्ञादि का सुन्दर अनुष्ठान कर शास्त्रसम्मत विशेष–विशेष धर्मों का पालन करते हैं, वे सब देवताओं के साथ महर्लोक में निवास करते हैं। मैंने पूर्व प्रसंग में जिन अतीत, भविष्य एवं वर्तमानकालीन परम यशस्वी चौदह मनुओं का वर्णन किया है, वे ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों एवं राक्षसों के साथ प्रत्येक मन्वन्तरों में पुनः–पुनः जन्म धारण करते हैं ।।१–३½।। देवगण सप्तर्षि, मनुगण एवं पितरगण ये सभी धार्मिक विचारोंवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के साथ क्रमशः अतीत होकर महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं। अभिमानरहित, सत्यवादी, योगपरायण, श्रौतस्मार्त कर्मों में श्रद्धा रखनेवाले, वर्णाश्रमाचार में निष्ठावान् ब्राह्मणादि प्रजाओं के साथ वे लोग मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर विधि निर्दिष्ट काल के बाद अपने–अपने अधिकारों से विनिवृत्त होकर महर्लोक में आश्रित होते हैं ।।४–६।।

ऋषियों ने पूछा–परम समर्थ मातरिश्वन्! आप जिस महर्लोक की चर्चा कर रहे हैं, वह किस प्रकार का है, हम समझते हैं, प्रत्येक लोकों में बहुसंख्यक पुण्यात्मा जन निवास करते होंगे, अतः उन महात्माओं के निवास के जितने लोक हैं और वे जिस प्रकार जलाये जाते हैं, उन्हें आप बतलावें, क्योंकि आप हम सबों पर प्रसन्न हैं,

*यावन्तश्चैव ते लोका दह्यन्ते येन ते प्रभो । एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि वेत्थ यथातथम् ।।८।।
एवमुक्तस्ततो वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभिः । प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ।।९।।

वायुरुवाच

चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभिः । लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवाः ।।१०।।
सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै । भूरादयास्तु संख्याताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह ।।११।।
अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै । स्थानानि स्थानिभिः सार्धं कृतानि तु निबन्धनम् ।।१२।।
पृथिवी चान्तरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम् । स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यार्णवकानि च ।।१३।।
क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते (च्म्यहम्) । यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ।।१४।।
जनस्तपश्च सत्यं च स्थानान्येतानि त्रीणि तु । ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाऽऽप्रसंयमात् ।।१५।।
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै । भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुवः स्मृतः ।।१६।।
स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै महः स्मृतः । जनस्तु पञ्चमो लोकस्तपः षष्ठो विभाव्यते ।।१७।।
सत्यस्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम् । भूरिति व्याहृते पूर्वं भूर्लोकश्च ततोऽभवत् ।।१८।।
+(द्वितीयो भुव इत्युक्त अन्तरिक्षं ततोऽभवत् । तृतीयं स्वरितीत्युक्ते दिवं प्रादुर्बभूव ह ।।१९।।

और इन सब बातों को यथार्थ रूप में जानते हैं। विनत मुनियों के इस प्रकार कहने पर तत्त्ववेत्ता वायु ने मधुर वाणी में कहा ।।७–९।।

वायु बोले–ऋषिवृन्द! महर्षियों ने ऐसे चौदह लोकों को बतलाया है, जिनमें पुण्यात्मा मानवगण निवास करते हैं, उनमें सात को कृत और सात को अकृत लोक कहते हैं। भू आदि सात लोक कृत हैं ।।१०–११।। सात प्राकृत लोक अकृत कहे जाते हैं। स्थानाभिमानी देवताओं के साथ कृत लोकों की स्थिति है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह–ये चारों लोक आर्णविक नाम से प्रसिद्ध हैं। ये क्षय और वृद्धिवाले लोक कहे जाते हैं। जो लोक क्षय वृद्धि रहित हैं उनके विषय में बतला रहा हूँ। नैमित्तिक लोक जितने हैं, वे प्रलयपर्यन्त स्थिर रहनेवाले हैं। जन, तप और सत्य–ये तीन लोक ऐकान्तिक और सत्त्वगुण सम्पन्न हैं, इनकी स्थिति कल्प पर्यन्त रहती है ।।१२–१५।। सात व्यक्त कहे जानेवाले लोकों का वर्णन कर रहा हूँ, उन सब में प्रथम भूर्लोक है, दूसरा भुवः, तीसरा स्वः, चौथा महः, पाँचवाँ जनः, छठा तपः और सातवाँ सत्य है। इनके बाद निरालोक (घोर अन्धकार है)। ब्रह्मा ने भूः–ऐसा उच्चारणकर भूर्लोक की, भुवः–ऐसा उच्चारणकर भुवर्लोक की, स्वः ऐसा उच्चारणकर स्वर्लोक की सृष्टि की। भूर्भुवः स्वः–इन्हीं तीनों महाव्याहृतियों से उक्त तीनों की उत्पत्ति हुई है। भू की पार्थिव लोक नाम से, भुव की अन्तरिक्ष लोक नाम से, और स्वर् की स्वर्ग लोक

---

* अयं सार्धश्लोको नास्ति ग. पुस्तके।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मा लोकमकल्पयत्) । ततो भूः पार्थिवो लोकोह्यन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।।२०।।
स्वर्लोको वै दिवं ह्येतत्पुराणे निश्चयं गतम् । भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपतिः स्मृतः ।।२१।।
वायुर्भुवस्याधिपतिस्तेन वायुर्भुवस्पतिः । भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पतिः ।।२२।।
महेतिव्याहृतेनैवं महर्लोकस्ततोऽभवत् । विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः ।।२३।।
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जनाः । तासां स्वायंभुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जनः ।।२४।।
यास्ताः स्वायंभुवाद्या हि पुरस्तत्परिकीर्तिताः । कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठिति ÷ तदा तपः ।।२५।।
ऋभुः सनत्कुमाराद्या यत्र सन्त्यूर्ध्वरेतसः । तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तपः ।।२६।।
सत्येति ब्रह्मणः शब्दः सत्तामात्रस्तु स स्मृतः । ब्रह्मलोकस्ततः सत्यं सप्तमः स तु भास्करः ।।२७।।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसाः । सर्पभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषैः ।।
स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः ।।२८।।
भरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवात्तथाश्विनौ । अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोक्या दिवौकसः ।।२९।।
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा । ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोकं समाश्रिताः ।।३०।।

नाम से प्रसिद्धि है—ऐसा पुराणों में निश्चित किया गया है। अग्नि भूतों का अर्थात् पृथ्वीस्थ समस्त पदार्थों का अधिपति है, इसी कारण उसे भूतपति के नाम से लोग जानते हैं ।।१६–२१।। अन्तरिक्ष का अधिपति वायु है, इसी कारण से वायु भुवस्पति के नाम से प्रसिद्ध हैं। भव्य अर्थात् स्वर्लोक का अधिपति सूर्य है, इसी कारण वह दिवस्पति नाम से विख्यात है। ब्रह्मा के 'महा' (महान्)—ऐसा उच्चारण करने पर महर्लोक की सृष्टि हुई थी, देवगण अपने अधिकार-काल से विनिवृत्त होकर महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं। जनलोक उक्त लोकों में पाँचवाँ है, इसी लोक से स्वायंभुव मनु आदि की प्रजाओं का जनन (उत्पत्ति) होता है, अतः उसकी जनलोक नाम से प्रसिद्धि है। पूर्व प्रसंग में स्वायंभुव मनु आदि की जिन प्रजाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है वे सब कल्प के अवसान-काल में, जबकि समस्त लोक दग्ध हो जाते हैं, तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह उस समय भी विद्यमान रहता है ।।२२–२५।। ऋभु एवं सनत्कुमारादि देवगण जो परम ब्रह्मचारी एवं ऊर्ध्वरेता हो गये हैं, कठोर तपस्या द्वारा आत्मा को जिन्होंने वश में कर लिया है, वे जिस लोक में अवस्थित रहते हैं उसको तपोलोक कहते हैं—यह भी तपोलोक का एक लक्षण है। सत्य—यह ब्रह्मा का एक शब्द है, इसका प्रयोग सत्ता (अस्तित्व) मात्र में होता है, इसी कारण ब्रह्मलोक सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध है, यह परम प्रकाशमय लोक उक्त सातों लोकों में अन्तिम अर्थात् सातवाँ है। समस्त देवगण गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों और गुह्यकों के साथ स्वर्लोक में निवास करते हैं। सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यगण पृथ्वीलोक के निवासी हैं ।।२६–२८।। मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण, कुछ देवगण, दोनों अश्विनीकुमार ये यद्यपि किसी निकेतन में निवास करनेवाले नहीं हैं; पर इनका प्रमुख निवास-स्थल भुवर्लोक है। स्वर्गलोक में निवास करनेवाले आदित्यगण, ऋभुगण, विश्वेदेवगण, साध्यगण, पितरगण एवं अंगिरागोत्रीय ऋषिगण भी भुवर्लोक में आश्रय प्राप्त करते हैं। ये सभी देवादिगण

÷ अत्र परस्मैपदमार्षम्।

एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः । इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्माव्याहारसंभवाः ।।३१।।
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृताः । आरभ्यन्ते तु तन्मात्रैः शुद्धास्तेषां परस्परम् ।।३२।।
शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्च ये व्यतीता भुवं श्रिताः । महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।।
*इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः ।।३३।।
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ये स्मृताः । तान्सर्वान्सप्त सूर्यास्ते अर्चिभिर्निर्दहन्ति वै ।।३४।।
मरीचिः कश्यपो दक्षस्तथा स्वायंभुवोऽङ्गिराः । भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः ।।३५।।
प्रजानां पतयः सर्वे वर्तन्ते तत्र तैः सह । निःसत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्ध्वरेतसः ।।३६।।
ऋभुः सनत्कुमाराद्या वैराज्यास्ते तपोधनाः । मन्वन्तराणां सर्वेषां सावर्णानां ततः स्मृताः ।।
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ।।३७।।
योगं तपश्च सत्यं च समाधाय तदाऽऽत्मनि । षष्ठे काले निवर्तन्ते तत्तदाह (?) विपर्यये ।।३८।।
सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिणाम् । ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः ।।३९।।
+पर्यासपारिमाण्येन भूर्लोकः समितिः स्मृतः । भूम्यन्तरं यदादित्यादन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।।४०।।

विमानों में चढ़कर ताराओं एवं ग्रहपिण्डों का आश्रय ग्रहणकर भुवर्लोक में निवास करते हैं। ब्रह्मा के भूभुवस्वरादि शब्दों के उच्चारणों द्वारा निर्मित लोकों की चर्चा आप लोगों से कर चुका। भूर्लोकादि महर्लोकान्त (भूलोक से लेकर महर्लोक तक) जिन लोकों की चर्चा ऊपर की गयी है, वे सब तन्मात्राओं से आरम्भ किये गये हैं, ये परस्पर शुद्ध हैं, एक-दूसरे से मिले हुए नहीं हैं। शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु पर्यन्त, जो पृथ्वी लोक में आश्रय करनेवाले व्यतीत हो चुके हैं, वे भी कल्पान्त के अवसर पर इस चतुर्थ महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं। ब्रह्मा की महाव्याहृतियों से उत्पन्न समस्त लोकों का विवरण क्रमपूर्वक कह चुका ।।२९-३३।। प्रलय में भू से लेकर महर्लोक तक जब सभी लोक सात सूर्य की रश्मियों द्वारा दग्ध हो जाते हैं, तब मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायंभुव, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु आदि प्रजापतिगण एक साथ जनलोक में निवास करते हैं। ऋभु एवं सनत्कुमारादि निःसत्त्व, निर्मम ऊर्ध्वरिता संसार विरागी ऋषिगण तपोलोक में निवास करते हैं। सावर्णादि चौदह मनुगणों के अधिकार-काल की पुनरावृत्ति इसी तपोलोक से कही जाती है। उस महान् लोक विनाशकाल के अवसर पर जनलोकादि निम्न श्रेणी के लोकों में निवास करनेवाले प्राणिवृन्द अपने-अपने योग, तप, सत्य आदि का आत्मा में समाधान करके उस तपोलोक में आश्रय ग्रहण करते हैं ।।३४-३८।। सत्य सातवाँ लोक है, वहाँ जाकर पुनरावृत्ति नहीं होती। इस सत्यलोक का कभी विनाश नहीं होता—इसी का दूसरा नाम ब्रह्मलोक भी है, परिमाणों के अनुसार भूर्लोक मध्यवर्ती माना जाता है, भूमि-तल से लेकर सूर्यपर्यन्त भुवर्लोक की स्थिति कही जाती है, सूर्य से लेकर ध्रुवपर्यन्त स्वर्गलोक की स्थिति है, इसे दिव लोक भी कहते हैं। ध्रुव से लेकर

---

* एतदर्धं क. पुस्तके नास्ति।

+ इत आरभ्य सर्वश्लोको न विद्यते ग. पुस्तके।

सूर्यध्रुवान्तरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः । ध्रुवाज्जनान्तरं यच्च महर्लोकः स उच्यते ।।४१।।
विख्याताः सप्त लोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः । भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्नादास्तु रसात्मकाः ।।४२।।
भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ते । चतुर्थे येऽपि वर्तन्ते महर्लोकं समाश्रिताः ।।४३।।
विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा । सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्वभीप्सितम् ।।४४।।
एते देवा यजन्ते वै यज्ञैः सर्वैः परस्परम् । अतीतान्वर्तमानांश्च वर्तमानाननागतान् ।।४५।।
प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा अन्तराः सांप्रतैः पुनः । निवर्ततीत्यासंबन्धोऽतीते देवगणे ततः (?) ।।४६।।
विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषां तु मानसी । तेषां तु मानसीज्ञेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ।।४७।।
उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा । समासेन मया विप्रा भूयस्तं वर्तयामि वः ।।४८।।

वायुरुवाच

मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः । (*पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादयः ।।४९।।
पूर्वं ते संप्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह । ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाऽऽश्रयन्ति ते) ।।५०।।
कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै । भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्तेष्वथाग्निना ।।५१।।

जनलोकपर्यन्त महर्लोक है, इसी प्रकार अन्यान्य लोकों की भी स्थिति है। अब उन परम विख्यात सातों लोकों की सिद्धियों की चर्चा कर रहा हूँ। भूर्लोक में निवास करनेवाले सब अन्नभक्षी रसास्वादी हैं, भुवर्लोक में निवास करनेवाले सोमपायी हैं अर्थात् वे सोम का पान करते हैं, स्वर्गलोक निवासियों का आहार आज्य पान है। जो चतुर्थ महर्लोक में निवास करते हैं, उनकी पाँच मानसिक सिद्धियाँ कही जाती हैं, मन में सङ्कल्प मात्र करने से उन्हें समस्त मनोवांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।।३९-४४।। समस्त देवगण सभी प्रकार यज्ञों का अनुष्ठान करके परस्पर सन्तुष्टि लाभ करते हैं। वर्तमान देव अतीतकालीन देवताओं के लिए भविष्यत्कालीन देव वर्तमान देवताओं के लिए। इस प्रकार परवर्ती काल में उत्पन्न होनेवाले अपने पूर्ववर्ती की सन्तुष्टि के लिए इन यज्ञादिकों का अनुष्ठान करते हैं। देवगणों के व्यतीत होने पर उनका सम्बन्ध निवृत्त हो जाता है। उन महर्लोक निवासियों का अधिकार-काल जब समाप्त हो जाता है, उस समय भी उनकी परम विशुद्ध मानसी सिद्धियों की परम्परा उनमें विद्यमान जाननी चाहिए। विप्रवृन्द! आप लोगों को जनलोक तथा उससे निम्नवर्ती चारों लोकों की चर्चा संक्षेप में सुना चुका, पुनः उसी का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ ।।४५-४८।।

वायु ने कहा-ऋषिगण! मरीचि, कश्यप, दक्ष, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि ऋषिगण सर्वप्रथम ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं, और अपनी-अपनी प्रजाओं का विस्तार करके पुनः जनलोक का आश्रय लेते हैं ।।४९-५०।। कल्प के अवसान में संवर्तक नामक अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से जब भू भुव स्वर् मह- ये चारों लोक प्रज्वलित हो उठते हैं, इनमें सब ओर से अग्नि फैल जाती है, तब महर्लोक निवासी यमादि देवगण सूक्ष्म

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

शिखा संवर्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जनाः । यामादयो गणाः सर्वे महर्लोकनिवासिनः ।।५२।।
महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाऽऽश्रयन्ति ते । सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ।।५३।।
तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तथा । जनलोके विवर्तन्ते यावत्संप्लवते जगत् ।।५४।।
व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिनः । अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह ।।५५।।
स्वायंभुवादयः सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधकाः । देवास्ते वै पुनस्तेषां जायन्ते निधनेष्विह ।।५६।।
यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः । पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ।।५७।।
देवान्वये देवता हि सप्त संभूतयः स्मृताः । व्यतीताः कल्पजास्तेषां तिस्रः शिष्टास्तथा परे ।।५८।।
आवर्तमाना देवास्ते क्रमेणैतेन सर्वशः । गत्वा जवं जवीभावं दशकृत्वः पुनः पुनः ।।५९।।
ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् । भाविनोऽर्थस्य च बलात्पुण्याख्यातिबलेन च ।।६०।।
निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्थाः सुमनसस्तथा । वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम् ।।६१।।
ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः । कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये ।।६२।।
इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थानान्यापूरयन्त्युत । देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वशः ।।६३।।
एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै । वैराजेषूपपन्नास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवान् ।।६४।।
पूर्णे पूर्णे ततः कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः । ब्रह्मलोके विवर्तन्ते पूर्वपूर्वक्रमेण तु ।।६५।।

शरीर धारणकर जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं, और तदुपरान्त वहीं पर निवास करने लगते हैं ।।५१-५३।। वहाँ पहुँचकर वे जनलोक निवासियों के समान सामर्थ्यशील, स्वरूपवान् एवं ऐश्वर्यशाली हो जाते हैं और उसी रूप में जगत् के महान् विनाशकाल तक स्थित रहते हैं। अव्यक्त योनि भगवान् ब्रह्मा की महारजनी के व्यतीत होने पर जब पुनः उनके दिन का प्रारम्भ होता है तब वे स्वायंभुव आदि मनु, मरीचि आदि साधक ऋषिगण अपने-अपने पूर्ववर्ती पुरुषों की मृत्यु के उपरान्त पूर्वक्रम से पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं ।।५४-५६।। तदनन्तर यमादि देवगण पूर्वकथित ज्येष्ठ कनिष्ठादि क्रम से जन्म ग्रहण करते हैं। देववंश में देवताओं की सात विभूतियों का स्मरण किया जाता है। उनमें से चार कल्पज देवता व्यतीत हो चुके हैं, तीन शेष हैं। देवता भी उक्त क्रम से दस बार पुनः-पुनः जन्म-मरण को प्राप्त होकर संसार के सभी पदार्थों एवं भावों में अनित्यता का दर्शन करते हैं, तदनन्तर भावी की बलवत्ता से एवं अपने किये गये पुण्य कर्मों के प्रभाव से वे प्रशान्त चित्त हो जाते हैं, और सभी कार्यों से निवृत्त होकर स्वस्थ मन से इस जनलोक का परित्यागकर वैराजलोक को प्राप्त होते हैं ।।५७-६१।। तत्पश्चात् बहुत काल के उपरान्त नित्य योगाभ्यासपरायण तपोनिष्ठ वे लोग धर्म कीर्त्तन के प्रभाव से उन परम धार्मिकों के वंश में जन्म ग्रहण करते हैं। और इस प्रकार उत्पन्न होकर देवत्व, ऋषित्व एवं मनुष्यत्व को प्राप्तकर उन-उन स्थानों की पूर्ति करते हैं। सभी देवगण इस प्रकार दस बार जन्म ग्रहण करने के बाद वैराज नामक लोकों में आश्रय प्राप्तकर दस कल्पपर्यन्त निवास करते हैं ।।६२-६४।। एक-एक कल्प के पूर्ण होने पर वैराज नामक लोकों में स्थित होकर वे देवगण पूर्व-पूर्व क्रम से ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं। वैराज के कल्पों के

एस्मिन्ब्रह्मलोके तु कल्पे वैराजके गते। वैराजं पुरनप्येके कल्पस्थानमकल्पयन् ।।६६।।
एवं पूर्वानुपूर्वेण ब्रह्मलोकगतेन वै। एवं तेषु व्यतीतेषु तपसा परिकल्पिते ।।
वैराजे तूपपद्यन्ते दशकृत्वो निवर्तते ।।६७।।
एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः। निधनं ब्रह्मलोके तु गतानामृषिभिः सह ।।६८।।

सूत उवाच

न शक्यमानुपूर्व्येण तेषां वक्तुं प्रविस्तरम्। अनादित्वाच्च कालस्य असंख्यानाच्च सर्वशः ।।
एवमेव न संदेहो यथावत्कथितं मया ।।६९।।
तदुपश्रुत्य वाक्यार्थमृषयः संशयान्विताः। सूतमाहुः पुराणज्ञं व्यासशिष्यं महामतिम् ।।७०।।

ऋषय ऊचुः

वैराजास्ते यदाहारा यत्सत्त्वाश्च यदाश्रयाः। तिष्ठन्ति चैव यत्कालं तन्नो ब्रूहि यथातथम् ।।७१।।
तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित्। सूतः पौराणिको वाक्यं विनयेनेदमब्रवीत्* ।।७२।।
ततः प्राप्यन्त ते सर्वे शुद्धिशुद्धतमाश्च ये। आभूतसंप्लवास्तत्र दश तिष्ठन्ति ते जनाः ।।७३।।
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः। स्थितलोकस्थितत्वाच्च तेषां भूतं न विद्यते ।।७४।।

व्यतीत हो जाने पर वे इस ब्रह्मलोक में निवास करते हैं। कुछ लोग वैराज लोक को कल्पपर्यन्त स्थायी मानते हैं, इसी पूर्व कथित क्रमानुसार वे लोग अपने-अपने तप के प्रभाव से वैराज लोक में जा-जाकर वहाँ दस कल्पपर्यन्त निवासकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वैराज लोक में जो लोग प्राप्त होते हैं, वे दस बार जन्म धारणकर निवृत्त होते हैं (?) इसी प्रकार देवताओं के सहस्रों युग समाप्त हो गये हैं। ऋषियों के साथ मृत्यु प्राप्तकर वे देवगण वैराज लोकों में निवास करने के उपरान्त ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं ।।६५-६८।।

सूत बोले-ऋषिवृन्द! देवताओं की एवं लय सृष्टि के विस्तार को क्रमानुसार नहीं बतलाया जा सकता, काल का कोई आदि नहीं है। संख्याओं की भी कोई इयत्ता नहीं है। जैसा मैं आप लोगों को अभी बतला चुका हूँ, उसमें सन्देह मत मानिये, वह सब वैसा ही हुआ है ।।६९।। सूत की इन बातों को सुनकर ऋषियों को बहुत सन्देह हो गया, तब वे वेदव्यास के परम बुद्धिमान् शिष्य सूत से, जो पुराणों के मार्मिक स्थलों को जाननेवाले थे, बोले ।।७०।।

ऋषियों ने पूछा-सूत जी! उस वैराज नामक लोकों में निवास करनेवाले जो आहार करते हैं, उनका जो पराक्रम है, जिन पदार्थों या वस्तुओं का उन्हें आश्रय प्राप्त है, जितने समय तक वे वहाँ स्थित रहते हैं-इन सब बातो को हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं, बतलाइये ।।७१।। ऋषियों की इस जिज्ञासा को सुनकर लोकार्थ तत्त्ववेत्ता, पौराणिक सूत जी विनयपूर्ण स्वर में बोले। ऋषिवृन्द! धर्माचरण के कारण जो परम शुद्ध एवं निर्विकार हो जाते हैं वे लोग उस वैराज नामक लोक में दस कल्प तक निवास करते हैं ।।७२-७३।। वे सब परम ज्ञानी, सूक्ष्म एवं स्वच्छ शरीर समन्वित होते हैं। अनन्त काल तक स्थित रहने के कारण उनके शरीर में भूतों का सम्पर्क नहीं रहता ।।७४।। दस कल्प के उपरान्त

---

* अत्र सूत उवाचेति ख. पुस्तके।

ऊचुः सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्ते योगधर्मिणः । ख्यातिं नैमित्तिकीं तेषां पर्याये समुपस्थिते ।।७५।।
स्थानत्यागे मनश्चापि युगपत्संप्रवर्तते । ऊचुः सर्वे तदाऽन्योन्यं वैराजाः शुद्धबुद्धयः ।।७६।।
एवमेव महाभागाः प्रणवं संप्रविश्य ह । ब्रह्मलोके प्रवर्तामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ।।७७।।
एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिनः । योजयित्वा तदाऽऽत्मानं वर्तन्ते योगधर्मिणः ।।७८।।
तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्ता दीपार्चिषो यथा । ब्रह्मकायमवर्तन्त पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।७९।।
लोकं तं समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् । आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य अमृतत्वाय ते गताः ।।८०।।
*वैराजेभ्यस्तयैषोर्ध्वमन्तरे षड्गुणे सतः । ब्रह्मलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहितः ।।८१।।
ते सर्वे प्रणवात्मानो बुद्धशुद्धतपास्तथा । आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्यामृतत्वं च भजन्त्युत ।।८२।।
द्वंद्वैस्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिताः । आधिपत्यं विना तुल्या ब्राह्मणस्ते महौजसः ।।८३।।
प्रभावविजयैश्वर्यस्थितिवैराग्यदर्शनैः । ते ब्रह्मलौकिकाः सर्वे गतिं प्राप्य विवर्तनीम् ।।८४।।
ब्रह्मणा सह देवैश्च संप्राप्ते प्रतिसंचरे । तपसोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः ।।
अव्यक्ते संप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिनः ।।८५।।
इत्येतदमृतं शुद्धं नित्यमक्षयमव्ययम् । देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते ।।८६।।

वैराज लोक से विवर्तन का अवसर जब उपस्थित होता है तब वैराज लोक में निवास करनेवाले, शुद्धबुद्धि, योगाभ्यासपरायण सनत्कुमारादि, सिद्धगण उस लोक को त्यागने के लिए एक साथ ही समुत्सुक होकर परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप करते हैं, हे महाभाग्यशालियो! अब हम लोग प्रणव का आश्रय प्राप्तकर ब्रह्मलोक में निवास करेंगे, उससे हम सबों को विशेष कल्याण की प्राप्ति होगी ।।७५-७७।। इस प्रकार परस्पर सम्भाषण करने के उपरान्त वे योगधर्मा महात्मागण योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा ब्रह्म में सन्नियोजित कर शान्त दीपशिखा की भाँति पुनरावृत्ति विरहित ब्रह्मपद की प्राप्ति करते हैं, और उसी स्थान पर विलीन हो जाते हैं। उस परम सुखदायिनी कल्पनाओं से परिपूर्ण अनामय ब्रह्मलोक को प्राप्तकर ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व की सम्प्राप्ति करते हैं। यह ब्रह्मलोक वैराज नामक लोकों से छह गुना अधिक ऊपर विद्यमान है। उसकी ख्याति ब्रह्मलोक नाम से है, वहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं ।।७८-८१। वहाँ के सभी निवासी परम शुद्ध, बुद्ध एवं तपोनिष्ठ होते हैं, प्रणव ही उनकी आत्मा होती है। ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व का उपभोग करते हैं। उनमें सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का उदय नहीं होता, तीनों भावों का उनमें सर्वथा अभाव रहता है, वे सब-के-सब परम तेजस्वी एवं आधिपत्य को छोड़कर सभी बातों में ब्रह्मा के समान प्रभावशाली होते हैं। प्रभाव, विजय, ऐश्वर्य, स्थिति, वैराग्य, ज्ञानादि में ब्रह्मा ही के समान होते हैं। वे परमशुद्ध, बुद्ध, ज्ञानी, क्रियाशील, ब्रह्मलोक में निवास करनेवाले महात्मागण पुनर्जन्म मरणादि विरहित शुभ गति को प्राप्तकर महाप्रलय में अपनी तपस्याओं के पूर्ण हो जाने पर ब्रह्मा ही के साथ अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाते हैं ।।८२-८५।। यही नित्य, अक्षय, अव्यय, परम शुद्ध अमृत पद है। इसी आवृत्ति विरहित सनातन परमपद की प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वरिता देवता एवं ऋषिगण वेदान्तादि में

---

* इत आरभ्य 'भजन्त्यत' इत्यन्तग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

अपुनर्मार्गगादीनां तेषां चैवोर्ध्वरेतसाम् । कर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलक्ष्यत ।।८७।।
तत्र तेऽभ्यासिनो युक्ताः परां काष्ठामुपासते । हित्वा शरीरं पाप्मानममृतत्वाय ते गताः ।।८८।।
वीतरागा जितक्रोधा निर्मोहाः सत्यवादिनः । शान्ताः प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रियाः ।।८९।।
निःसङ्गाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायो (यु) ज्यगाः स्मृताः । अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकिल्विषाः ।।
।।९०।।
तेषामभ्रंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः
एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमं व्योम्नि भास्वरम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति ह्यमरा ब्रह्मणा सह ।।९१।।

ऋषय ऊचुः

कस्मादेष परार्धश्च कश्चैष पर उच्यते । एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।।९२।।

सूत उवाच

शृणुध्वं मे परार्धं च परिसंख्यां परस्य च । एकं दश शतं चैव सहस्रं चैव संख्यया ।।९३।।
विज्ञेयमासहस्रं तु सहस्राणि दशायुतम् । एकं शतसहस्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः ।।९४।।
तथा शतसहस्राणामर्बुदं कोटिरुच्यते । अर्बुदं दशकोट्यस्तु अब्जं कोटिशतं विदुः ।।९५।।
सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः । दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः ।।९६।।

निर्णीत मङ्गलमय कर्मो के अनुष्ठान में निरत रहकर शुद्धि प्राप्त करते हैं, और सतत योगाभ्यास में दत्तचित्त रहकर उसकी अन्तिम सीमा तक उपासना (साधना) करते हैं और अन्त में अपने पापमय शरीर को त्यागकर अमृतत्व की प्राप्ति करते हैं ।।८६–८८।। वीतराग, जितक्रोध, निर्मोह, सत्यवादी, आत्मा को वश में रखनेवाले, जितेन्द्रिय, दयावान्, संगविरहित, पवित्रात्मा जन ही उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते सुने जाते हैं। जो वीरात्मा कामनाविहीन, योगपरायण एवं तपस्या द्वारा समस्त पापों को नष्ट करनेवाले हैं, उन्हीं के ऐसे अविनश्वर लोकों की कल्पना की गयी है, जहाँ पर प्राप्त होनेवाले कल्याण एवं सुख की कोई इयत्ता नहीं है। यह ब्रह्मपद परम दिव्यगुणसम्पन्न एवं परम आकाश जाज्वल्यमान है, वहाँ जाकर वे अमरगण ब्रह्मा के साथ–निवास सुख का अनुभव करते हुए शोकरहित हो जाते हैं ।।८९–९१।।

ऋषि ने पूछा–समादरणीय सूत जी! यह परार्द्ध क्या है? पर किसे कहते हैं? यह हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया बतलाइये ।।९२।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! मैं परायी और पर की परिभाषा बतला रहा हूँ, सुनिये। एक, दस, सौ, सहस्र ये संख्याएँ आप लोगों को विदित ही हैं। आगे चलकर दस सहस्र का एक अयुत जानना चाहिए। सौ सहस्र का बुद्धिमान् लोग एक नियुत बतलाते हैं। दस सौ सहस्र अर्थात् दस नियुत[१] की एक कोटि होती है, दस कोटि का एक अर्बुद (अरब) होता है, सौ कोटि का एक अब्ज (पद्म) बतलाते हैं। मनीषीगण एक सहस्र कोटि को खर्व कहते हैं, दस सहस्र कोटि का

---

[१] यहाँ आनन्दाश्रम की प्रति में 'अर्बुदं' पाठ अशुद्ध है, शुद्ध पाठ इस प्रकार होगा, 'तथा शतसहस्राणां दशकं कोटि रुच्यते।'–अनुवादक

शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते । सहस्रं तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः ।।
गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः ।।९७।।
कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते । कोटिसहस्रनियुता स चान्त इति संज्ञितः ।।९८।।
कोटिकोटिसहस्राणि परार्धं इति कीर्त्यते । परार्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः ।।९९।।
शतमाहुः परिदृढं सहस्रं परिपद्मकम् । विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ।।१००।।
अर्बुदं न्यर्बुदं चैव स्वर्बुदं च ततः स्मृतम् । खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कुं पद्मं तथैव च ।।१०१।।
समुद्रं मध्यमं चैव परार्धमपरं ततः । एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ ।।१०२।।
शतानीति विजानीयात्संज्ञितानि महर्षिभिः । कल्पसंख्या प्रवृत्तस्य परार्धं ब्रह्मणः स्मृतम् ।।१०३।।
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यते । पर एष परार्धश्च संख्यातः संख्यया मया ।।१०४।।
यस्मादस्य परं वीर्यं परमायुः परं तपः । परा शक्तिः परो धर्मः परा विद्या परा धृतिः ।।१०५।।
परं ब्रह्म परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च । तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ।।१०६।।
परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेषु ततः परः । संख्यातस्तु परा ब्रह्म तस्यार्धं तु परार्धता ।।१०७।।

एक निखर्व होता है, सौ सहस्र कोटि का एक शङ्कु कहा जाता है, सहस्र-सहस्र कोटि को पुनः दस बार गुणित करने पर जो गुणनफल प्राप्त होता है उसे संख्या-तत्त्ववेत्ता लोग समुद्र नाम से पुकारते हैं ।।९३-९७।। सहस्र अयुत कोटि का एक मध्य, सहस्र नियुत कोटि का एक अन्त, और सहस्र कोटि कोटि का एक परार्द्ध होता है। मनीषीगण दो परार्द्ध की एक संख्या मानते हैं। सौ संख्या को परिदृढ़ और सहस्र को परिपद्मक कहते हैं। उसके उपरान्त अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, स्वर्बुद (रवर्बुद), खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म, समुद्र, मध्यम, परार्द्ध और पर आदि कुल अठारह संख्याएँ हैं, जो गणना के कार्यों में प्रयुक्त होती हैं। ये संख्याएँ परस्पर गुणित होने पर सौ-सौ की संख्या में परिणत हो जाती हैं। महर्षियों ने बतलाया है, ब्रह्मा के एक कल्प काल की परिमाण संख्या सृष्टि आरम्भ होने के काल से लेकर एक परार्द्ध होती है। इसके उपरान्त एक परायी काल सृष्टि रहित अवस्था में व्यतीत होता है। उसके बाद पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, इस प्रकार एक सृष्टि के आरम्भकाल से दूसरी सृष्टि के आरम्भ का काल दो परार्द्ध अर्थात् एक परकाल होता है। पर और परार्द्ध इन दोनों कालों को संख्याओं द्वारा मैं बतला चुका ।।९८-१०४।। भगवान् ब्रह्मा का यतः पराक्रम परम अतिशय महान् एवं (सीमारहित) है, परम आयु है, तपस्या परम है, शक्ति परा है, धर्म परम है, विद्या परा है, धैर्य परम है एवं ब्रह्मज्ञान परम है, ऐश्वर्य परम है, संक्षेप में निष्कर्ष यह कि उनसे बढ़कर किसी परम वस्तु में कोई अन्य नहीं है, वही एकमात्र सभी वस्तुओं की परम सीमा में मर्यादा रूप से अवस्थित हैं, इसी कारण से समस्त सांसारिक पदार्थों में उन्हें ही पर पद से विशिष्ट समझना चाहिए, उनके इस महान् अधिकार-काल के आधे भाग को इसीलिए परार्द्ध कहा जाता है। पुरुष, प्रकृति एवं ब्रह्मा-ये तीनों संख्याओं द्वारा सर्वथा असंख्येय हैं, अर्थात् गणनाओं से इनकी इयत्ता नहीं बाँधी जा सकती। किन्तु ऐसा होने पर भी संख्याओं द्वारा इनके पारस्परिक न्यूनाधिक्य का कुछ अनुमान किया जाता है, इसी कारण से इन्हें संख्येय कहते हैं, वस्तुतः परार्द्ध की पूर्ववर्तिनी संख्याओं की गणना

संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततं चापि तत्रकिम्। संख्येयं संख्यया दृष्टमपरार्धाद्विभाष्यते ।।१०८।।
राशौ दृष्टे न संख्याऽस्ति तदसंख्यस्य लक्षणम्। अनपत्यं सिक्तास्वेषु (?) दृष्टवान्पञ्चलक्षणम् ।।१०९।।
ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यातं शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभिः। एवं ज्ञानप्रतिष्टत्वात्सर्वं ब्रह्माऽनुपश्यति ।।११०।।
तच्छुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः। बाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः ।।१११।।
पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः। ब्रह्मलोकस्तु भगवन्यावन्मात्रान्तरः प्रभो ।।११२।।
योजनाग्रेण संख्यातं साधनं योजनस्य तु। क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।११३।।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक्। उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं यथाक्रमम् ।।११४।।

वायुरुवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मे विवक्षितम्। अव्यक्ताद्व्यक्तभागो वै महास्थूलो विभाव्यते ।।११५।।
दशैव महतां भागा भूतादिः स्थूल उच्यते। दशभागाधिकं चापि भूतादेः परमाणुकः ।।११६।।
परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावाग्राह्यो न चक्षुषा। यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ।।११७।।
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ।।११८।।

की जा सकती है। उससे परवर्तिनी संख्याएँ व्यावहारिक दृष्टि से किसी प्रकार व्यक्त कर दी जाती हैं किन्तु उनकी गणना असंख्य में ही की जाती है ।।१०५-१०८।। एक महान् राशि की इकाइयों की संख्या नहीं की जाती। उसे असंख्य का लक्षण मानते हैं, क्योंकि उनकी गणना में सारी संख्याएँ ही समाप्त हो जाती हैं, कोई संख्या शेष नहीं रहती। परार्द्ध, पर, ब्रह्मा, प्रकृति एवं पुरुष-इन पाँचों के तात्त्विक निर्णय में कोई पूर्व निर्दिष्ट विधान दृष्टिगत नहीं है। केवल शुद्ध, बुद्ध, दिव्यदृष्टिसम्पन्न योगाभ्यासपरायण लोग ही अपनी महान् शुद्धता के कारण उनके तत्त्व निर्णय में समर्थ होते हैं। इन सभी तत्त्वों को भगवान् ब्रह्मा, समस्त ज्ञानराशि के एकमात्र आगारस्वरूप होने के कारण यथार्थतः देखते हैं ।।१०९-११०।। वायु की इन बातों को सुनकर ब्रह्मवेत्ता नैमिषारण्य निवासी महर्षिगण अतिशय हर्ष से आनन्दाश्रु बहाने लगे, उनके कण्ठ गद्गद हो गये। उन सभी ब्रह्मवेत्ताओं ने मातरिश्वा से पूछा। भगवन् वायुदेव! उक्त ब्रह्मलोक जितनी दूरी पर अवस्थित है, इसकी दूरी जितने योजनों एवं कोसों में है, एवं उन योजनों और कोसों की परिभाषा क्या है- इन सब बातों की हम सबको जिज्ञासा हो रही है, इनकी यथार्थतः जानकारी हमें कराइये। महर्षियों की इस वाणी को सुनकर वायु ने मीठे विनीतस्वर में उक्त ब्रह्मलोक के बारे में जो कुछ देखा या सुना था, क्रमानुसार बतलाना प्रारम्भ किया ।।१११-११४।।

वायु बोले-ऋषिवृन्द! आप लोगों का अन्यान्य वक्तव्य विषयों को बतला रहा हूँ, सुनिये। अव्यक्त की अपेक्षा व्यक्त भाग महा स्थूल बतलाया जाता है। महत् के दस भाग जितना स्थूल भूतादि बतलाये जाते हैं, भूतादि से दस भाग अधिक स्थूल परमाणु कहा जाता है। यह परमाणु भी अतिशय सूक्ष्म होता है, इसे केवल अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, आँखों द्वारा नहीं। लोक में जो सबसे सूक्ष्म परम अभेद्य वस्तु होती है, उसी को परमाणु जानना चाहिए। जालियों के भीतर घुसकर (कमरे के अन्दर) आनेवाली सूर्य की किरणों में जो अति सूक्ष्म धूल के कण दिखलायी पड़ते हैं, वही प्रमाणों में सर्वप्रथम परमाणु कहे जाते हैं ।।११५-११८।। ऐसे आठ परिमाणुओं का जब समवाय (मिलन) होता

*अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत् । त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते ।।११९।।
त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः । तेऽप्यष्टौ समवायस्था बलाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ।।१२०।।
बलाग्राण्यष्ट लिक्षा स्याद्यूका तच्चाष्टकं भवेत् । यूकाष्टकं यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ।।१२१।।
द्वादशाङ्गुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते । रत्निश्चाङ्गुलिपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः ।।१२२।।
चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु । किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।।१२३।।
षणणवत्यङ्गुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः । एतद्गव्यूतिसंख्यार्थोपादानं धनुषः स्मृतम् ।।१२४।।
धनुर्दण्डो युगं नाली तुल्यान्येतान्यथाङ्गुलैः । धनुषस्त्रिशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः ।।१२५।।
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते । अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तु विधीयते ।।१२६।।
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते । एतत्सहस्रं विज्ञेयं शक्रक्रोशान्तरं तथा ।।१२७।।
योजनानां तु संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः । एतेन योजनाग्रेण शृणुध्वं ब्रह्मणोऽन्तरम् ।।१२८।।
महीतलात्सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः । दिवाकरात्सहस्रेण तावदूर्ध्वं निशाकरः ।।१२९।।
पूर्णं शतसहस्रं तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ।।१३०।।
शतं सहस्रं संख्यातो मेरुर्द्विगुणितं पुनः । ग्राहन्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ।।१३१।।

है, तब उसे त्रसरेणु कहा जाता है, इसे पद्मरज भी कहा जाता है। ऐसे आठ त्रसरेणुओं के मेल से रथरेणु बनता है, वे भी जब आठ इकट्ठे हो जाते हैं. तब बुद्धिमान् लोग बलाग्र कहते हैं। ऐसे आठ बलाग्रों की एक लिक्षा होती है, और आठ लिक्षा की एक यूका कही जाती है। आठ यूका का एक जव कहा जाता है और आठ जव का एक अंगुल होता है। बारह अँगुलियों के पोरों की एक वितस्ति होती है, और ऐसे ही इक्कीस पोरों की एक रत्नि जाननी चाहिए ।।११९–१२२।। चौबीस अंगुलों का एक हाथ होता है। बयालीस अंगुल अर्थात् दो रत्नि का एक किष्कु होता है। बुद्धिमान् लोग छानबे अंगुलों का एक धनुष बतलाते हैं। यह धनुष गव्यूति अर्थात् दो कोस परिमाण मापने में एक साधन कहा जाता है। संख्या के तत्त्वों के जाननेवाले लोग धनुष, दण्ड, युग और नाली को अंगुलों द्वारा एक समान बतलाते हैं। अर्थात् ये उपर्युक्त चारों परिमाण छानबे अंगुलों के कहे जाते हैं। तीन सौ धनुष परिमाण का एक नल्व कहा जाता है, और दो सहस्र धनुष की एक गव्यूति अर्थात् दो कोस होता है। आठ सहस्र धनुष का एक योजन बतलाया जाता है ।।१२३–१२६।। इस प्रकार धनुष के परिमाण द्वारा योजन तक का माप किया जाता है। संख्यातत्त्वविदों ने इसी पद्धति में योजन तक का परिमाण निश्चित किया है। इस योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी सुनिये। पृथ्वीतल से सौ सहस्र अर्थात् एक लाख योजन पर सूर्य का निवास है। सूर्य से सौ सहस्र योजन दूर चन्द्रमा है ।।१२७–१२९।। चन्द्रमा से सहस्र योजन दूर नक्षत्रों का प्रकाश होता है। मेरुमण्डल इस नक्षत्र लोक से दो लाख योजन पर अवस्थित है। इस नक्षत्रमण्डल से ऊपर एक-एक ग्रह परस्पर इतनी ही दूरी पर हैं। सभी ताराग्रहों में बुध निम्न प्रदेश चारी है, उसके ऊपर शुक्र का लोक है,

---

* नास्त्ययं श्लोकः ख. घ. पुस्तकयोः।

ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः । तस्योर्ध्वं चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्वं च लोहितः ।।१३२।।
ततो बृहस्पतिश्चोर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चरः । ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां शनैश्चरात् ।।१३३।।
सप्तर्षिमण्डलं कृष्णमुपरिष्टात्प्रकाशते । ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं विभाव्यते ।।१३४।।
योऽसो तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके । उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ।।१३५।।
त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया । मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी ।।१३६।।
वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्तते । सर्वासां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः ।।१३७।।
त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत । ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।।
*(एकयोजनकोटी सा इत्येवं निश्चयं गतम् ।।१३८।।
द्वे कोट्यौ तु महर्लोकाद्यस्मिंस्ते कल्पवासिनः) । यत्र ते ब्रह्मणः पुत्रा दक्षाद्या साधकाः स्मृताः ।।१३९।।
चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम् । वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः ।।१४०।।
षड्गुणं तु तपोलोकात्सत्यलोकान्तरं स्मृतम् । अपुनर्मारकामानां (णां) ब्रह्मलोकः स उच्यते ।।१४१।।
यस्मान्न च्यवते भूयो ब्रह्माणं स उपासते । एककोटिर्योजनानां पञ्चाशन्नियुतानि तु ।।१४२।।
ऊर्ध्वभागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः । चतुर(तस्त्र)श्चैव कोट्यस्तु नियुता पञ्चषष्टि च ।।१४३।।

उससे ऊपर मङ्गल है, उससे ऊपर बृहस्पति तदनन्तर शनैश्चर का निवास है, शनैश्चर से ऊपर एक लाख योजन पर सप्तर्षि मण्डलों का प्रकाश होता है। इन सप्तर्षियों से भी एक लाख योजन ऊपर तारामय दिव्य लघु विमान में उत्तानपाद का सुत ध्रुव स्वर्गलोक के प्रमुख चिह्नस्वरूप होकर विराजमान रहते हैं ।।१३०–१३५।। योजनों द्वारा त्रैलोक्य की ऊँचाई की व्याख्या मैं कर चुका। सभी मन्वन्तरों में जो लौकिक यज्ञादि सत्कर्मों के अनुष्ठान इस लोक में वर्णाश्रमाचारानुमोदित ढंग से होते रहते हैं, वे ही समस्त देवयोनि में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की स्थिति के कारण भूत कहे जाते हैं। त्रैलोक्य की यह व्याख्या कर चुका, अब इसके आगे का विवरण सुनिये ।।१३६–१३७$\frac{१}{२}$।। उस ध्रुवलोक से ऊपर महर्लोक की स्थिति है, जिसमें उन कल्पपर्यन्त स्थिर रहनेवाले महात्माओं का निवास रहता है। उसकी दूरी ध्रुव से एक कोटि योजन की है–ऐसा निश्चय हो चुका है। उस महर्लोक से दो कोटि योजन ऊपर जनलोक की स्थिति है, जिनमें सिद्धि के अभिलाषी ब्रह्मा के पुत्र दक्षादि कल्पपर्यन्त निवास करते हैं। जनलोक के चार कोटि योजन ऊपर तपोलोक की स्थिति स्मरण की जाती है, जिनमें भूतों के तापादि से सर्वथा विरहित वैराज नामक देवताओं का निवास कहा जाता है। तपोलोक से छह गुणित अर्थात् छह कोटि योजन ऊपर सत्यलोक की स्थिति कही जाती है, वही पुनरावृत्ति विरहित जरामर–आदि विहीन सिद्धों का ब्रह्मलोक कहा जाता है ।।१३८–१४१।। उस ब्रह्मलोक से उनका कभी भी पतन नहीं होता, वहाँ वे सर्वथा ब्रह्मा की उपासना में निरत रहते हैं। इस ब्रह्मलोक से अण्ड (ब्रह्माण्ड) के ऊपर भाग का परिमाण एक कोटि पचास नियुत योजन एवं निम्न भाग का परिमाण चार कोटि पैंसठ नियुत योजन कहा जाता है। इस अंश के अधो भाग में ध्रुव

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके नास्ति।

एषोऽर्धांशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापरः स्मृतः । ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यातं योजनाग्राद्यथाश्रुतम् + ।।१४४।।
अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम् । गच्छन्ति घोरकर्माणः प्राणिनो यत्र कर्मभिः ।।१४५।।
नरको रौरवो रोधः सूकरस्ताल एव च । (× तप्तकुम्भो महाज्वालः शबलोऽथ विमोचनः ।।१४६।।
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंसनः । अधः शिराः पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च) ।।१४७।।
तथा वैतरणं कृष्णमसिपत्रवनं तथा । अग्निज्वालो महाघोरः संदशोऽथश्व भोजनः ।।१४८।।
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यसिजस्तथा । अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्वनरका ह्येवमादयः ।।१४९।।
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः । येषु दुष्कृतकर्माणः पतन्तीह पृथक्पृथक् ।।१५०।।
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्तिताः । रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिशंसति ।।
क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्यः पतते नरः ।।१५१।।
रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च अग्निदाता पुरस्य च । सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः ।।१५२।।
ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यं च दुर्गतिम् । ब्रह्महत्यां च यः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः ।।१५३।।

की स्थिति और उसी में नक्षत्र ग्रहादिकों का विचरण होता है, ऊपरी भागों में किसी की भी गति नहीं सुनी जाती है। मैंने जिस प्रकार सुना था उसी प्रकार योजनों द्वारा उपर्युक्त लोकों की दूरी आदि का वर्णन ध्रुवलोक से ऊपर स्थित आप लोगों के सम्मुख कर चुका। अब इसके उपरान्त अधोगति को प्राप्त होनेवाले जीवों के निवास-स्थलों का वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ पर घोर पाप कर्म करनेवाले पापात्मा अपने कर्मों के अनुसार गमन करते हैं ।।१४२-१४५।। रौरव, रोध, सूकर, ताल , तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोचन, कृमी, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विशंसन, अधःशिरा, पूयवह, रुधिरान्ध, वैतरण, कृष्ण, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदश, श्व भोजन, तम, कृष्णसूत्र, लोह, असिज, अप्रतिष्ठ, वीचि, अश्व आदि घोर अंधकारमय नरलोक हैं, जो यमराज के अधीन हैं। इन्हीं नरकों में दुष्कर्मी लोक पृथक्-पृथक् पतित होते हैं। ये रौरवादि सभी नरक भूमि के निम्न भाग में अवस्थित कहे जाते हैं। जो कूट साक्षी है अर्थात् झूठी गवाही देता है, सर्वथा मिथ्या बोलने में निरत रहता है, एक पक्ष का किसी कारणवश समर्थन करता है वह सत्यभाषी मनुष्य घोर रौरव नरक में गिरता है ।।१४६-१५१।। गोहत्या करनेवाला, गर्भ की हत्या करनेवाला, किसी ग्रामादि में आग लगानेवाला पापी मनुष्य रोध नामक नरक में गिरता है। जो ब्राह्मण की हत्या करता है, सुरापान करता है, सुवर्ण की चोरी करता है, वह पापात्मा सूकर नामक नरक में निपतित होता है। जो किसी क्षत्रिय की हत्या करता है, अथवा किसी ब्राह्मण या वैश्य की हत्या करता है, गुरु की शय्या (स्त्री के साथ) पर गमन करता है, वह पापी मनुष्य घोर ताल नामक नरक में निपतित होता है। जो पापात्मा बहन के साथ व्यभिचार करता है, राजा की हत्या करता है वह तप्तकुम्भ नामक नरक लोक में निवास करता है। दूसरे के अश्व को चुराकर विक्रय करनेवाला तथा अन्यायपूर्वक किसी को बाँधने

+ अत्राध्यायसमाप्तिः ख. पुस्तके।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

तप्तकुम्भो स्वसागामी तथा राजभटश्च यः । तप्तलोहे चाश्ववणिक्तथा बन्धनरक्षिता ।।१५४।।
साध्वीविक्रयकर्ता च वस्तु भक्तं परित्यजेत् । महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै ।।१५५।।
वेदो विक्रीयते येन वेदं दूषयते च यः । गुरूंश्चैवावमन्यन्ते वाऽऽक्रोशैस्ताडयन्ति च ।।१५६।।
अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत् । विमोहे पतिते चौरो मर्यादां यो भिनत्ति वै ।।१५७।।
दुरिष्टं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते । (*देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणां चाप्यपूजकः ।।
रत्नं दूषयते वस्तु कृमिभक्ष्यं प्रपद्यते ।।१५८।।
पर्यश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणीं सुहृदः सताम्) । लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गतः ।।१५९।।
काण्डकर्ता कुलालश्च निष्कहर्ता चिकित्सकः । आरामेष्वग्निदाता यः पतते स विशंसने ।।१६०।।
असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः । नक्षत्रैर्जीवते यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ।।१६१।।
क्षीरं सुरां च मांसं च लाक्षां गन्धं रसं तिलान् । एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत् ।।१६२।।

(फँसाने) वाला पापी पुरुष तप्तलोह नामक नरक में निवास करता है। जो अपनी पतिव्रता स्त्री को बेचता है तथा अपने अनुगामी भक्त को छोड़ देता है, अपनी पुत्री अथवा पुत्रवधू के साथ समागम करता है, वह पापात्मा मनुष्य महाज्वाल नामक नरक में पतित होता है ।।१५२-१५५।। जो वेदों का विक्रय करता है, अथवा वेद की निन्दा करता है, अपने गुरुजनों का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है या मारता-पीटता है, अथवा अगम्य स्थलों में (पुत्री; पुत्रवधू, भगिनी, गुरुपत्नी आदि के साथ) गमन करता है, वह पापात्मा शबल नामक घोर नरक में गिरता है। जो परद्रव्यापहारी पापात्मा किसी की मर्यादा (प्राचीर, चहारदीवारी आदि) में भेदन करता है, वह विमोह नामक नरक में पतित होता है। जो किसी का अनिष्ट साधन करता है वह कीटलोह नामक नरक में निवास करता है। देवता और ब्राह्मण के साथ जो पापात्मा विद्वेष करता है, गुरुजनों की पूजा नहीं करता तथा रत्न को दूषित करता है, वह कृमिभक्ष्य नामक घोर नरक में पहुँचता है ।।१५६-१५८।। जो पापात्मा किसी ब्राह्मणी, मित्रादि एवं कन्या के सामने उपस्थित रहने पर भी उन्हें न देकर अकेला भोजन करता है वह अतिशय दुर्गन्धमय लालाभक्ष नामक घोर नरक में निपतित होता है। जो पापात्मा काण्डकर्त्ता होते हैं, शराब बनाते हैं, दूसरों का निष्क चुराते हैं, अच्छी ओषधि जानते हुए भी द्वेषवश या लालच से बुरी दवा करते हैं, किसी के बाग अथवा उपवनादि में आग लगाते हैं वे विशंसन नामक घोर नरक में गिरते हैं। जो असत् कर्मों द्वारा धन उपार्जित करता है अथवा नीच प्रवृत्तिवालों का दान ग्रहण करता है, जिन्हें यज्ञादि का अधिकार नहीं है, उनसे यज्ञादि का अनुष्ठान करवाता है, नक्षत्रों से अपनी जीविका चलाता है, वह पापात्मा अधोमुख नामक नरक में जाता है। दूध, मदिरा, मांस, लाक्षा, सुगन्धित पदार्थ तैल इत्रादि, रस एवं तिल आदि वस्तुओं का विक्रेता घोर पूयवह नामक नरक में गिरता है ।।१५९-१६२।। जो मुर्गे को मारता है, बिल्ली और सूअर का वध करता है, पक्षियों, मृगों एवं बकरों को मारता है, वह पापात्मा

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

य: कुक्कुटानि बध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च तान् । पक्षिणश्च मृगांश्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत् ।।१६३।।
अजाविको माहिषकस्तथा चक्रध्वजी च यः । रङ्गोपजीविको विप्रः शाकुनिर्ग्रामयाजकः ।।१६४।।
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातकः ।।१६५।।
विशस्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च । पर्वकारश्च सूची च यश्च स्यान्मित्रघातकः ।।
रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ।।१६६।।
उपविष्टमेकपङ्क्त्यां विषमं भोजयन्ति ये । पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र संशयः ।।१६७।।
मृषावादी नरो यश्च तथा चक्रोशकोऽशुभः । पतति नरके घोरे मूत्राकीर्णे स पापकृत् ।।१६८।।
मधुग्राहाभिहन्तारो यान्ति वैतरणीं नराः । उन्मत्ताश्चित्तभग्नाश्च शौचाचारविवर्जिताः ।।१६९।।
क्रोधना दुःखदाश्चैव कुहकाःकष्टगामिनः । असिपत्रवने छेदी तथा ह्यौरभ्रिकाश्च ये ।।
कर्तनैश्च विकृष्यन्ते मृगव्याधाः सुदारुणैः ।।१७०।।
आश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै । भोज्यन्ते श्यामशवलैरयस्तुण्डैश्च वायसैः ।।१७१।।

प्राणी भी उसी पूयवह नामक नरक में जाता है। जो ब्राह्मण होकर भी बकरी, बकरे, भेड़, महिष आदि का पालन करता है, चक्र एवं ध्वजा ग्रहण करता है, रंगों की बिक्री से जीविका चलाता है, पक्षी मारता है, ग्रामों में इधर-उधर झूठ-मूठ का यज्ञ करता फिरता है, किसी के घर में आग लगाता है, विष देता है, कुण्डों के (संकरवर्णवालों के) घर भोजन करता है, सोमरस विक्रय करता है, मदिरा पीता है, मांस भक्षण करता है, पशुओं की हिंसा करता है, महिषादि का बलिदान करता है, मृगादि वन्य जन्तुओं का शिकार करता है, गाँठें बनाता है, सूचीकर्म (सिलाई) करता है, मित्रों की हत्या करता है, वह रुधिरान्ध नामक घोर नरक में गिरता है--ऐसा मनीषियों का कथन है ।।१६३-१६६।। जो एक ही पंक्ति में बैठाये गये व्यक्तियों को भोजन कराने में भेद करते हैं, वे पापात्मा घोर विड्भुज नामक नरक में गिरते हैं--इसमें सन्देह नहीं। जो मिथ्यावादी मनुष्य होता है तथा जो सर्वथा दूसरे को अभिशाप अथवा गाली-गलौज दिया करता है, अमांगलिक कार्यों में निरत रहता है, वह पापात्मा मूत्राकीर्ण नामक नरक में निवास करता है, जो पापात्मा मधुदान करनेवाले को मारते हैं, अर्थात् अपने प्रति शुभ कर्म करनेवाले को भी मार डालते हैं, वे वैतरणी में जाते हैं। जो उन्मत्त है, जिनका चित्त विकृत एवं मस्तिष्क ठिकाने नहीं रहता, पवित्रता एवं आचार से जो विहीन रहते हैं, अकारण क्रोध करते हैं, दूसरों को सदा दुःख दिया करते हैं, जादू या इन्द्रजालादि से दूसरे को अपने वश में रखकर उनके साथ अत्याचार करते हैं, वे पापात्मा असिपत्रवन नामक घोर नरक में परम दारुण स्वभाववाले हिंस्र जन्तुओं द्वारा काट-काटकर इधर-उधर खींचे जाते हैं, दूसरों के सिर काटनेवाले पापात्माओं की भी यही दशा होती है ।।१६७-१७०।। ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की मर्यादा को भ्रष्ट करनेवाले पापात्मा अग्निज्वाल नामक घोर नरक में पतित होते हैं, वहाँ पर लौहमय चोंचवाले श्याम एवं चितकबरे रंग के काग उनका शरीर नोच-नोचकर भक्षण करते हैं, यज्ञादि सत्कर्म, व्रतादि सदाचारों से विहीन होने पर पापात्मा प्राणी संदंश नामक नरक में गिरता है। जो व्रती अथवा ब्रह्मचारी स्वप्नावस्था में भी स्खलित हो जाते हैं, अथवा

इज्याव्रतसमालोपात्संदंशे नरके पतेत्। स्कन्दते यदि वा स्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ।।१७२।।
पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये। ते सर्वे नरके यान्ति नियतं तु श्वभोजने ।।१७३।।
वर्णाश्रमविरुद्धाभिक्रोधहर्षसमन्विताः । कर्माकर्मणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिनः (ण) ।।१७४।।
उपरिष्टात्तितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान्। सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपः स्मृतः ।।१७५।।
एवमादिक्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत। भूमेरधस्तात्सप्तैव नरकाः परिकीर्तिताः ।।१७६।।
अधर्मसूनवस्ते स्युरन्धतामिस्रकादयः। रौरवः प्रथमस्तेषां महारौरव एव च ।।१७७।।
अस्याधः पुनरप्यन्यः शीतस्तप इति स्मृतः। तृतीयः कालसूत्रः स्यान्महाहविविधः स्मृतः ।।१७८।।
अप्रतिष्ठश्चतुर्थः स्यादवीची पञ्चम स्मृतः। लोहपृष्ठस्तमस्तेषामविधेयस्तु सप्तमः ।।१७९।।
घोरत्वाद्रौरवः प्रोक्तः साम्भको दहनः स्मृतः। सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तमोऽधमः ।।१८०।।
सर्पो निकृन्तनः प्रोक्तः कालसूत्रेऽतिदारुणः। अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सुदारुणः ।।१८१।।
अवीचिर्दारुणः प्रोक्तो यन्त्रसंपीडनाच्च सः। तस्मात्सुदारुणो लोहः कर्मणां क्षयणाच्च सः ।।१८२।।
तथाभूते (त) शरीरत्वादविवे (धि) भ्यस्तु स स्मृतः। पीडबन्धवधासङ्गादप्रतीकारलक्षणः ।।१८३।।

जो मनुष्य अपने पुत्रों द्वारा अध्ययन करते हैं, अथवा पुत्रों द्वारा अनुशासित होकर जीवन यापन करते हैं, वे सब भी श्वभोजन नामक घोर नरक में निवास करते हैं। वर्णाश्रम की मर्यादा से विरहित अनायास क्रोध हर्षादि में आविष्ट होकर जो लोग बिना विचारे सदसद् कार्य किया करते हैं, वे भी निरय (नरक) गामी होते हैं ।।१७१-१७४।। उपर्युक्त रौरव नरक महान् विस्तृत एवं घोर है, ऊपर से शीतल और भीतर से अति उष्ण है, उसके निम्न प्रदेश में परम शीतल तप? तम नामक नरक कहा जाता है, इस भूमितल के निम्नप्रदेश में सात नरक लोक बतलाये जाते हैं, उन्हें क्रमानुरूप सुनिये। उन अधर्म से उत्पन्न होनेवाले नरकों के नाम अन्धतामिस्र आदि हैं। उनमें रौरव सर्वप्रथम एवं महान् दारुण कष्टपूर्ण है, दूसरा महारौरव नामक है, तीसरा उसका निम्नप्रदेश में परम शीतल एवं अति उष्ण नरक स्मरण किया जाता है, उसका नाम कालसूत्र है, वह तीसरा नरक है। उसका अपर नाम महाहविविधि भी बतलाया जाता है। चौथा नरक अप्रतिष्ठ कहा जाता है, पाँचवाँ अवीची नामक नरक है। छठाँ लोहपृष्ठ नामक नरक है, सातवाँ अविधेय नाम से प्रख्यात है ।।१७५-१७९।। अतिशय घोर कष्टप्रद होने के कारण प्रथम नरक का नाम रौरव पड़ा है। यह यद्यपि जलयुक्त है, पर परम ज्वलनात्मक है। उसके निम्नप्रदेश में परम शीतल, अति दारुण एवं अधम तम नामक नरक है ।।१८०।। कालसूत्र में डँसनेवाला सर्प बतलाया जाता है—इसलिए वह परम दारुण है। अप्रतिष्ठ नरक में किसी प्रकार भी प्राणी ठहर नहीं सकता, क्योंकि उसमें अतिशय दारुण भँवरें उठती रहती हैं। यन्त्र द्वारा पीड़ित किया जाता है— इसी कारण से अवीचि नरक भी परम दारुण कहा जाता है। उससे भी दारुण लोहपृष्ठ नामक है। उसमें जलकर मनुष्यों के समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं, इसी कारण परम दारुण वह भी कहा जाता है। सातवें अविधेय नामक नरक में तथाकथित अशरीरी रहने पर भी प्राणी को जिस बन्धनजनित पीड़ा एवं कष्ट को सहन करना पड़ता है, वह परम असह्य हो जाता है, उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं दिखाता। ये नरक लोक सब-के-सब पर्वतों के समान भीषणाकार एवं आलोक से सर्वदा विहीन

ऊर्ध्वं लोकैः समावेतौ निरालोकाश्च ते स्मृताः । दुःखोत्कर्षस्तु सर्वेषु अधर्मस्य निमित्ततः* ।।१८४।।
ऊर्ध्वं लोकैः समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ । कूटाङ्गारप्रमाणैश्च शरीरी सूत्रनायकाः ।।१८५।।
उपभोगसमर्थैस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभिः । दुःखमकर्षश्चोग्रस्तु तेषु सर्वेषु वै स्मृतः ।।१८६।।
यातनाश्चाप्यसंव्येया नारकाणां तथा स्मृताः । तत्रानुभूय ते दुःखं क्षीणे कर्मणि वै पुनः ।।१८७।।
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्ते कर्मशेषे गते ततः । देवाश्च नारकाश्चैव उर्ध्वं चाधश्च संस्थिताः ।।१८८।।
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्तयः । उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः ।।१८९।।
पश्यन्ति नारकान्देवा ह्यधोवक्त्रान्ह्यधोगतान् । नारकाश्च तथा देवान्सर्वान्पश्यन्त्यधोमुखान् ।।१९०।।
अनग्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः । तस्मादूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ।।१९१।।
एषा स्वाभाविकी संज्ञा लोकालोके प्रवर्तते । अथाब्रुवन्पुनर्वायुं ब्राह्मणाः सत्रिणस्तदा ।।१९२।।

ऋषय ऊचुः

सर्वेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम् । संसारे संसरान्तीहयावन्तः प्राणिनश्च तान् ।।१९३।।
संख्यया परिसंख्याय ततः प्रब्रूहि कृत्स्नशः । ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा मारुतो वाक्यमब्रवीत् ।।१९४।।

कहे जाते हैं। अधर्म के कारण इन सबों में प्राणियों को असह्य यातना का अनुभव करना पड़ता है। इन सबों में दुःखों का प्राबल्य रहता है ।।१८१–१८४।। विशेषतया ऊपर के दो लोक अन्य लोकों के समान होते हुए भी परम दारुण अन्धकारमय होते हैं। इन नरकों में विविध कष्टों का अनुभव करने में सक्षम शरीर को पूर्वकृत कर्मों के अनुसार धारणकर वे पापात्मा दुःख भोगते हैं। सभी नरकों में दुःख की अधिकता बतलायी जाती है। नरक निवासियों को दी जानेवाली उन यातनाओं की संख्या अगणित है। वहाँ विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव कर लेने के उपरान्त जब कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है तब वे तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं ।।१८५–१८७½।। ऊपर रहनेवाले समस्त देवताओं एवं निम्नप्रदेशों में रहनेवाले नारकीय प्राणी ये सब अपने धर्माधर्म के अनुसार शरीर धारण करते हैं। इस उत्पत्ति के मूल उनके स्वयंकृत कर्म हैं, उन औत्पत्तिक कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए ही वे शरीर धारण करते हैं। देवगण इन अधोभाग में अवस्थित नारकीय प्राणियों को अधोमुख हुए देखते हैं इसी प्रकार वे नारकीय भी समस्त देवताओं को अधोमुख देखते हैं। उन लोकों में अग्रभाग एवं मूलभाग का कोई भेद नहीं है, उनकी स्थिति यों ही स्वाभाविक है, इसी कारण से लोकालोक में कोई ऊपर अथवा निम्न का भेदभाव नहीं है। लोकालोक की यह स्वाभाविक संज्ञा प्रचलित है। वायु की इन बातों को सुनने के उपरान्त यज्ञकर्त्ता ब्रह्मणों ने पुनः पूछा ।।१८८–१९२।।

ऋषियों ने कहा–भगवन् वायुदेव! उस लोकालोक में निवास करनेवाले समस्त प्राणियों की जितने इस संसार में विचरण करते हैं उनकी संख्या क्या है, वे कौन हैं ये सब बातें सम्पूर्णतया मुझे बतलायें। ऋषियों की इस जिज्ञासा को सुनकर मारुत बोले ।।१९३–१९४।।

---

* अत्र ख. घ. पुस्तकयोरधिकमर्धं वर्तते तद्यथा सुखोत्कर्षः स्मृतः सर्वे धर्मस्य हि निमित्ततः। तथा ङ. पुस्तकेऽपि 'दुःखोत्कर्षः स्मृतः सर्वे धर्मस्य हि निमित्ततः।' इति।

वायुरुवाच

न शक्या जन्तवः कृत्स्नाः प्रसंख्यातुं कथंचन। अनाद्यन्ताश्च संकीर्णा ह्यप्यूहेन व्यवस्थिताः।।
गणना विनिवृत्तैषामानन्त्येन प्रकीर्तिताः ।।१९५।।
न दिव्यचक्षुषा ज्ञातुं शक्या ज्ञानेन वा पुनः। चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिपाः ।।१९६।।
अनाव्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते। ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु संख्यया तन्निबोधत ।।१९७।।
यः सहस्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह। पार्थिवाः क्रिमयस्तावत्संसेकाद्येषु संभवः ।।१९८।।
संसेकज्ञानाभावेन सहस्रेणैव संमिताः। औदका जन्तवः सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम् ।।१९९।।
सहस्रेणैव भावेन सत्त्वानां सलिलौकसाम्। विहंगमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः ।।२००।।
यः सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणां भवेत्। पशवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदाः ।।२०१।।
चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैव संमताः। भागेन द्विपदा ज्ञेया लौकिकेऽस्मिंस्तु सर्वशः ।।२०२।।
यः सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदां पुनः। धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेयः संमिताः पुनः ।।२०३।।
सहस्रेणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवं गताः। यः सहस्रतमो भागो धार्मिकाणां भवेद्दिवि ।।
संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ।।२०४।।

वायु बोले–ऋषिवृन्द! उन समस्त प्राणियों की संख्या बतलाना किसी प्रकार भी हमसे सम्भव नहीं है। उनका प्रवाह अनादि है, अनन्त है, वे इतने परस्पर सङ्कीर्ण हैं कि केवल अनुमान या तर्क से विचार किया जा सकता है। उनकी गणना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है, वे अनन्त हैं–ऐसा ही उनके विषय में कहा जाता है। दिव्य दृष्टि अथवा परम ज्ञान द्वारा भी उनकी निश्चित संख्या नहीं जानी जा सकती। अतः हे नर श्रेष्ठ वृन्द! मैं उनकी निश्चित संख्या इस चर्म चक्षु से किस प्रकार बतला सकते हैं। जो अचिन्तनीय एवं सर्वथा अज्ञात है–ऐसे प्रश्न को नहीं करना चाहिए। ब्रह्मा ने इस विषय में जो सामान्यतया जातिगत संख्याएँ निश्चित की हैं, उसे सुनिये। इस संसार में स्थावर जीवों का जो सहस्रतम भाग है संख्या में उतने ही पार्थिवकृमि हैं, जो संसेक आदि से उत्पन्न होते हैं। इन संसेकज जन्तुओं का सहस्रतम भाग जितना होता है.उतने ही समस्त जलीय जन्तु होते हैं, यह भलीभाँति निश्चित एवं सुविचारित मत है ।।१९५–१९९।। इन जलनिवासी जन्तुओं का सहस्रतम भाग लौकिक विहङ्गमों की संख्या के बराबर है। उन लौकिक विहङ्गमों का सहस्रतम भाग जितना होता है उतनी ही संख्या में समस्त चतुष्पद जीव होते हैं। उन समस्त चतुष्पदों का सहस्रतम भाग जितना होता है, उतने ही संख्या में द्विपद (मनुष्य) होते हैं। पुनः इन द्विपदों का जो सहस्रतम भाग होता है उतने ही संख्या में सम्माननीय धार्मिक विचारवाले सत्पुरुष होते हैं। इन धार्मिकों का सहस्रतम भाग जितना होता है उतने स्वर्गीय धार्मिक होते हैं। स्वर्ग में इन धर्मात्मा महापुरुषों की संख्या का जितना सहस्रतम भाग होता है उतनी ही मोक्ष प्राप्त करनेवालों की संख्या होती है ।।२००–२०४।। वे स्वर्गोपपादकों के समान ही होते हैं। जो पापा कर्म में निरत रहनेवाले पतित दुरात्मा

स्वर्गोपपादकैस्तुल्या यातनास्थानवासिनः । पतिताः पापकर्माणो दुरात्मानो म्रियन्ति ये ।।
रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवन्ति ते ।।२०५।।
वेदनाकटुकास्तब्धा यातनास्थानमागताः । उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मकः ।।२०६।।
ततो धनात्मकश्चापि शीतात्मा सततं तपः । एवं सुदुर्लभाः सन्तः स्वर्गे वा धार्मिका नराः ।।२०७।।
एषा संख्या कृता संख्या (?) ईश्वरेण स्वयंभुवा । गणना विनिवृत्तैषा संख्या ब्राह्मी च मानुषी ।।२०८।।

ऋषय ऊचुः

महो जनस्तपः सत्यं भूतो भाव्यो भवस्तथा । उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ।।
लोकान्तरं च यादृग्वै तन्नो ब्रूहि यथातथम् ।।२०९।।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् । स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थं इदं तत्त्वमुवाच ह ।।२१०।।

वायुरुवाच

व्यक्तं तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः । प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मनः ।।२११।।
ऋभुः सनत्कुमाराद्याः संबुद्धाः शुद्धबुद्धयः । व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मैव सत्तमाः ।।२१२।।
अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्रह्म निष्ठन्ति योगिनः । ऋषीणां बालखिल्यानां तैर्यथाहृतमीश्वरैः ।।२१३।।

मृत्यु के वश में होकर उन यातना स्थानों–नरकों–में निवास करते हैं, वे महान् अन्धकारपूर्ण उन परम भयानक रौरवादि नरकों में परम शीत एवं उत्ताप का अनुभव करते हैं। उन यातना स्थानों में पहुँचकर वेदना की असह्य कटुता को वे स्तब्ध होकर सहन करते हैं, उस रौरव नरक को परम उष्ण तेजोमय (उत्तापक) एवं घोर रसात्मक जानना चाहिए। उससे भी परम भयानक सर्वदा परम शीतात्म तप (तम) नामक नरक है। सात्त्विक गुणसम्पन्न धार्मिक नर परम दुर्लभ होते हैं, जो स्वर्ग लोक में निवास करते हैं। स्वयंभू परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा ने, उपर्युक्त आनुपातिक संख्या निश्चित की है। उस विषय में मनुष्यों की निश्चित की गयी संख्या की निवृत्ति है, अर्थात् मानव कभी इस विषय की संख्या आदि निश्चित नहीं कर सकता, केवल ब्राह्मी संख्या ही ऐसे स्थलों पर प्रमाणभूत होती है ।।२०५–२०८।।

ऋषिवृन्द बोले–भगवन् वायुदेव ! आपने मह, जन, तप, सत्य, भूत (भू), भाव्य (भुव) एवं भव (स्वर)–इन सातों लोकों की स्थिति एक के बाद एक बतलायी है। उन लोकों में एक की अपेक्षा दूसरे में क्या अन्तर है– इसे हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं। उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों की इस बात को सुनकर तत्त्वविद् वायु ने तथ्यपूर्ण अपनी बातों को कहना प्रारम्भ किया ।।२०९–२१०।।

वायु बोले–ऋषिवृन्द ! उस व्यक्त का मनीषीगण तर्क द्वारा, योगीगण अपने योगबल द्वारा प्रत्यक्ष एवं क्रियानिष्ठगण अपने सदनुष्ठान, प्रत्याहार एवं ध्यान द्वारा दर्शन करते हैं। ऋभु, शुद्धबुद्धिसम्पन्न, सनत्कुमारादि शोक विरहित, रजोगुणहीन, सत्त्वगुणसम्पन्न, ब्रह्मपरायण साधु पुरुष, महान् ऐश्वर्यशाली बालखिल्यादि महर्षिगण एवं अक्षय प्रेमपरायण ब्रह्मनिष्ठ योगी जन उस महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के निवास–स्थल का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, जो परम

यथा चैव मया दृष्टं सांनिध्यं तत्र कुर्वता । अतर्ह्य(र्क्य)सत्कृतार्थानामालयं चेश्वरस्य यत् ।।२१४।।
ईश्वरः परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम् । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ।।२१५।।
दृष्टत्वमात्यसंबन्धमधिष्ठानत्वमेव च । अव्ययानि दशैतानि तस्मिंतिष्ठन्ति शंकरे ।।२१६।।
बिभुत्वात्खलु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रतः । स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते ।।२१७।।
अक्षरं ध्रुवमव्यग्रमष्टमं त्वौपसर्गिकम् । तस्येश्वरस्य यन्मात्रं स्थानं मायामयं परम् ।।२१८।।
मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वरः । देवानामुपसंहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते ।।२१९।।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च ब्रुवतो मे निबोधत । त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुता दश पञ्च च ।।
भूर्लोकाद्ब्रह्मलोको वै योजनैः संप्रकीर्त्यते ।।२२०।।
एकयोजनकोटिस्तु पञ्चाशन्नियुतानि च । ऊर्ध्वं भागघताण्डं तु ब्रह्मलोकात्परं स्मृतम् ।।२२१।।
*एषोर्ध्वगः प्रचारस्तु गत्यन्तं च ततः स्मृतम् । (+ नित्या ह्यपरिसंख्येयाः परस्परगुणाश्रयाः ।।२२२।।
सूक्ष्माः प्रसवधर्मिण्यस्ततः प्रकृततः स्मृताः । येभ्योऽधिकर्ता संजज्ञे क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः) ।।२२३।।
तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् । अनुत्पाद्यं परं धाम परमाणु परेशयम् ।।२२४।।

अतर्क्य एवं सत्पुरुषों को कृतकृत्य करनेवाला है। उस परम गुह्य भगवदालय का सन्निधान करते हुए मैंने भी प्रत्यक्ष दर्शन किया है। वह ईश्वर परमाणु के समान होने से, केवल मनीषी पुरुषों की भावनाओं द्वारा गृहीत हो सकता है। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा, धैर्य, दर्शकत्व, अधिष्ठानत्व एवं आत्मज्ञान–ये दस शाश्वत धर्म उस मङ्गलमय परमात्मा में नित्य प्रतिष्ठित रहनेवाले हैं ।।२११–२१६।। वह विभु है, योगिजनों की योगाग्नि भी उसी परम ब्रह्म के अनुग्रह से उद्दीप्त होती है। वह शरीर धारणकर सामान्य लोगों का निरन्तर उपकार किया करता है। उस परम ईश्वर का वह अधिष्ठान भी परम एवं परिणामविहीन है, परम स्थिर है, सुख–दुःखादि जागतिक जंजालों से रहित है, मायामय एवं सत्स्वरूप है। यही आठ प्रकार की प्रकृतियों का मूल आश्रय है, समग्र सृष्टि विस्तार का मूलाधार है। मङ्गलमय महेश्वर ने, मायामय होकर उसकी सृष्टि की है. उसी स्थान पर दिव्य गुणमय देवताओं का सम्यक् उपसंहार होता है। उसका विस्तार एवं अनुक्रमपूर्वक वर्णन मैं आगे कर रहा हूँ, सुनिये। इस भूलोक से ब्रह्मलोक का अन्तर तेरह कोटि पन्द्रह नियुत योजन कहा जाता है ।।२१७–२२०।। उक्त ब्रह्मलोक से भी ऊपर जो ब्रह्माण्ड का अंश विद्यमान है वह एक कोटि पचास नियुत योजन तक सुना जाता है। इस ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व भाग की सीमा इतनी ही है, उसके ऊपर किसी की गति नहीं है। नित्य, अपरिसंख्येय, परस्पर गुणाश्रयी, सूक्ष्म, प्रसवधर्मिणी प्रकृतियाँ कही गयी हैं। उन्हीं से ब्रह्म नामधारी जगत्कर्त्ता क्षेत्रज्ञ का प्रादुर्भाव होता है। उन्हीं में प्रकृतिमय, सूक्ष्म, अक्षय, अविनश्वर, अनुत्पाद्य, अतर्क्य, अधिष्ठानात्मक, परमाणु–स्वरूप, परेशय, अमूर्त एवं मूर्तिमान, परम धाम परमेश्वर विराजमान रहता है। वह परमाणुस्वरूप महेश्वर प्रादुर्भाव,

---

* अत्र संधिस्त्वार्षः।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तकेषु न विद्यते। इतः प्रभृति प्रकृतयः स्मृता इत्यन्त, पाठो घ. पुस्तके नास्ति।

अक्षयश्चाप्यनूह्यश्च अमूर्तिर्मूर्तिमानसौ । प्रादुर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चैवाप्यनुग्रहः ।।२२५।।
विधिरन्यैरनौपम्यः परमाणुर्महेश्वरः । सतेजा एष तमसो यः पुरस्तात्मकाशकः ।।२२६।।
यदण्डमासीत्सौवर्णं प्रथमं स्वौपसर्गिकम् । बृहतं सर्वतो वृत्तमश्विराद्व्यवजायत ।।२२७।।
ईश्वराद्वीजनिर्भेदः क्षेत्रज्ञो बीज इष्यते । योनिं प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका ।।२२८।।
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसंस्थानमेव च । सन्निसर्गः स तन्वा च लोकधातुर्महात्मनः ।।२२९।।
पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य अण्डादर्वाक्च ब्रह्मणः । ×तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं यस्य मनोमयम् ।।२३०।।
तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः । शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम् ।।२३१।।
सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमाः । अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ।।२३२।।
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोभिमर्दिना । शान्तकौम्भेन महता प्रकारेणार्कवर्चसा ।।२३३।।
द्वारैश्चतुर्भिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः । तपनीयनिभैः शुभ्रैर्गाढं सुकृतवेष्टनम् ।।२३४।।
तच्चाऽऽकाशे पुरं रम्यं दिव्यं घण्टानिनादितम् । (÷ न तत्र क्रमते मृत्युर्न तापो न जरा श्रमः ।।२३५।।

तिरोभाव, स्थिति, अनुग्रह एवं दयादि का आश्रयभूत है। इन सभी विधानों में अनुपम है। वह अपने परम तेजोबल एवं प्रकाश से पुरोवर्ती तमोराशि को प्रकाशित करनेवाला है। जो हिरण्यमय अण्ड समस्त सृष्टि का मूल रूप, सर्वापेक्षा महान् एवं आद्य, औपसर्गिक सभी ओर से वृत्ताकार है, वह इसी परमेश्वर से आविर्भूत हुआ है ।।२२१–२२७।। उसी ईश्वर से सृष्टि के समस्त बीजों की परम्परा प्रचलित हुई है, यह क्षेत्रज्ञ स्वयमेव सृष्टि का बीज स्वरूप है। प्रकृति ही सब की योनि (उत्पत्ति-स्थली) है। और वह स्वयं नारायणात्मिका है। समस्त लोकों का निर्माता वह परमैश्वर्यशाली परमात्मा लोक सृष्टि एवं लोक की विधिवत् स्थिति के लिए ही प्रकृति के सहयोग से अपने शरीर द्वारा ब्रह्मलोक एवं ब्रह्माण्डादि का निर्माण करता है। उन दोनों के मध्यभाग में एक परम रमणीय दिव्य स्थान है, जो मनोमय स्थान के नाम से ख्यात है। वह उस परम तेजस्वी ईश्वर का शिव नामक पुर है, जिसमें पुनर्जन्मादि से भीत होनेवाले महापुरुषों का निवास है। द्विजवर्यवृन्द ! वह शिव नामक पुरी सौ सहस्र योजनों में विस्तृत है। इसका अन्तर्वर्ती भाग पृथ्वीमण्डल जितना विस्तीर्ण है ।।२२८–२३२।। इस महापुरी के चारों ओर मध्याह्नकालीन भास्कर की भाँति परम तेजस्वी, अन्यान्य तेजस्वी पदार्थों के तेज को मलिन कर देनेवाली सुवर्ण निर्मित महान् चहारदीवारी सुशोभित है। उसकी चमक चारों ओर सूर्य के समान चकाचौंध करती रहती है। उस महान् पुरी में चार द्वार हैं, जो सुवर्ण से निर्मित हैं। मोतियों की लड़ियाँ उनकी शोभावृद्धि करती है, वे परम शुभ्र एवं शोभासम्पन्न हैं। उस मनोहर पुरी के चारों ओर एक अन्य रक्षा दीवाल भी खड़ी है, जो परम पुष्ट है। आकाश में वह परम सुशोभित पुरी दिव्य घण्टाओं के सुरम्य नादों से कूजित रहती है। उस पुरी में न तो वृद्धावस्था का कोई भय रहता है न मृत्यु का कोई आतङ्क। परिश्रम भी नहीं खलता। समस्त त्रैलोक्य

× एतदर्धं त्रुटितं ग. घ. ङ. पुस्तकेषु।

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके नास्ति।

नददन्यैः पुशचारं रूपमासौतुमर्हति (?)। सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां दिशो दश ।।२३६।।
तत्पुरं गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति। भावेन मानसो भूमिर्विन्यस्ता कनकामयी ।।२३७।।
रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम्। शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च ।।२३८।।
अर्धश्वेतार्धरक्तानि सौवर्णानि तथैव च। रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभैः ।।२३९।।
सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाऽप्रतिमेन च। तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेषूपवनेषु च ।।२४०।।
भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च। अर्धकृष्णार्धरक्तानि सुकुमारान्तराणि च ।।२४१।।
आतपत्रप्रमाणानि पङ्कजैः संवृतानि च। भूयः सप्त महानद्यास्तासां नामानि बोधत ।।२४२।।
वरा वरेण्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी। वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ।।२४३।।
पद्मात्पलदलोन्मिश्रं फेनाद्यावर्तविग्रहम्। जलं मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वराः ।।२४४।।
न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुराः पितरस्तथा। न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ।।२४५।।
तत्र ये ध्यानमव्यग्राः सुयुक्ता विजितेन्द्रियाः। पश्यन्तीह महात्मानः पुरं तद्गोवृषात्मनः ।।२४६।।
मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याममिततेजसा। सुमहान्मेरुसंकाशो दिव्यो भद्रश्रिया वृतः ।।२४७।।
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः। अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वतः स विभूषितः ।।२४८।।

में ऐसी कोई पुरी नहीं है; जिसकी शोभा को उस रम्य पुरी की सुन्दरता अनुकरण करे अर्थात् वैसी सुरम्य पुरी त्रैलोक्य में अन्यत्र कहीं नहीं है। दसों दिशाओं में उसका परिमाण एक लाख योजन है। भगवान् वृषभध्वज महेश्वर की वह पुरी अपने तेजोबल से अवस्थित है। उस सुवर्णमयी पुरी की सृष्टि मानसिक भावभूमि पर हुई है ।।२३३-२३७।। रत्नों की बालुका से विन्यस्त उस परम रम्य नगरी की शोभा अधिक बढ़ जाती है। शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुप्रकाशमय, प्रातःकालीन सूर्य की भाँति मनोहर एवं तेजोमय आधे श्वेत आधे लाल सुवर्णनिर्मित रथ के चक्कों के समान गोलाकार दिव्य पद्म उस पुरी में शोभायमान हैं। वे पद्म अपनी सुकुमारता, सौन्दर्य एवं सुगन्ध में अनुपम हैं। ऐसे परम मनोहर दिव्य पद्म वहाँ के वनों एवं उपवनों में सर्वत्र हैं। वहाँ के कुछ सुन्दर परम सुकुमार पद्म भृङ्ग के पंख के समान श्यामल वर्ण के, कुछ एकदम सुनहले, कुछ आधे काले आधे लाल, आकार में छत्र के समान होते हैं। ऐसे सुन्दर पद्मों से वहाँ के जलाशय व्याप्त हैं, वहाँ सात महानदियाँ हैं, उनके नाम वरा, वरेण्या, वरदा, वरार्हा, वरवर्णिनी, वरमा, वरभद्रा है। वे परम रमणीय नदियाँ उस सुन्दर पुरी की शोभा वृद्धि करनेवाली हैं ।।२३८-२४३।। इन सुन्दर सरिताओं में श्वेत, रक्त पद्मों के दलों से विमिश्रित, फेनों एवं भँवरियों से विभूषित मणियों के टुकड़ों के समान परम स्वच्छ शुभ्र जल प्रवाहित होता है। अप्रमेय महेश्वर के इस परम रम्यपुर को न तो ब्रह्मर्षिगण ही जानते हैं, न देवता ही जानते हैं। असुरों एवं पितरों को भी इस पुर का कोई पता नहीं है। जो परम जितेन्द्रिय योगाभ्यासपरायण महात्मा हैं, जिनका चित्त कभी चंचल वा व्यग्र नहीं होता, वे ही ध्यान धरकर वृषभध्वज के इस पुर का दर्शन करते हैं ।।२४४-२४६।। उस पुरवर के मध्य भाग में अनुपम तेजस्वी, महान्, सुमेरु पर्वत के समान विशाल, समग्र सौन्दर्यश्री से विभूषित एक प्रासाद सुशोभित है, जिसके

स्फटिकैश्चन्द्रसंकाशैर्वैदूर्यैः सोमसंप्रभैः । बालसूर्यप्रभैश्चैव सौवर्णैश्चाग्निसंप्रभैः ।।२४९।।
राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयैः शुभैः । दृढैर्वज्रमयैश्चैव इत्येवं सुसमाहितैः ।।२५०।।
जलैश्च विविधाकारैर्दीप्यद्भिरधिवासितम् । चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृतम् ।।२५१।।
रुक्मघण्टनिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः । किंनराणामधीवासैः संध्याभ्राकारराजितैः ।।२५२।।
परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभैः । यथा हि मेरुशैलेन्द्रो हेमशृङ्गैर्विराजते ।।२५३।।
(*चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् । एवं प्रसादराजोऽसौ भूमिकाभिर्विराजते ।।२५४।।
वसन्तप्रीतमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने । लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्माया कीर्तिः शोभा सरस्वती ।।२५५।।
देव्या वै सहिता ह्येता रूपगन्धसमविन्ताः । नित्या ह्यपरिसंख्याताः परस्परगुणाश्रयाः) ।।
भूषणं सर्वरत्नानां योऽन्यः कान्तिविलासयोः ।।२५६।।
कोटीशतं महाभाग विभज्याऽऽत्मानमात्मना । भगवन्तं महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिताः ।।२५७।।
तासां सहस्त्रशश्चान्याः पृष्ठतः परिचारिकाः । रूपिण्यश्च श्रिया युक्ताः सर्वाः कमललोचनाः ।।२५८।।

सहस्त्र चरण हैं, उस मङ्गलमय प्रासाद की रचना सुवर्ण से है। सभी ओर से अमूल्य अनुपम रत्नों द्वारा उसकी शोभा वृद्धि होती है। कहीं शुभ्र स्फटिक मणियों से, कहीं चन्द्रकान्त मणियों से, कहीं वैदूर्य मणियों से, कहीं चन्द्रमा के समान सुशोभित मणियों से, कहीं प्रातःकालीन सूर्य की भाँति परम मनोहर किन्तु तेजोमय मणियों से, कहीं सुवर्णमय मणियों से, कहीं अग्नि के समान तेजोमय मणियों से, कहीं रजतमय (चाँदी की) मणियों से, कहीं सुरम्य इन्द्रनील मणियों से, कहीं परम दृढ़ हीरों से उस विशाल प्रासाद की शोभा वृद्धि होती है। वे सभी मणियाँ भली तरह जड़ी गयी हैं। चमकते हुए गवाक्ष, जँगले जो विविध प्रकार के बने हुए हैं उस प्रासाद की शोभा वृद्धि के सहायक हैं। चन्द्रमा की किरणों के समान सुप्रकाशमान पताकाएँ उस पर सुशोभित हैं ।।२४७–२५१।। सुवर्ण निर्मित घण्टों के सुरम्य स्वरों से वह प्रासाद मुखरित रहता है, प्रमोद एवं उत्सव के समारोह वहाँ नित्य मनाये जाते हैं। सन्ध्याकालीन मेघों की पंक्तियों के समान सुशोभित किन्नरों के आवास-स्थान उस पुर में परम शोभा पाते हैं। वे चारों ओर से सुवर्ण निर्मित पुष्पों एवं सुवर्णमय जलराशि की तरह सुशोभित होते हैं। किन्नरों के सुरम्य भवनों से वह पुर सुवर्णमय शिखरों से सुशोभित पर्वतराज सुमेरु की तरह शोभा पाता है। कहीं पर सुवर्णनिर्मित पताकाओं की पंक्तियों से वह पुर परम शोभासम्पन्न होता है। वह महाप्रासाद चारों ओर से विस्तृत भूमिका द्वारा और भी शोभा पाता है। त्र्यम्बक शिव के उस भवन में वसन्त की मूर्ति विराजमान रहती है। उसके अतिरिक्त लक्ष्मी, श्री, माया, कीर्ति, शोभा, सरस्वती आदि देवियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य एवं सुगन्ध के साथ वहाँ निवास करती हैं। वे देवियाँ सर्वदा एक रूप हैं, उनकी संख्या नहीं परिगणित की जा सकती। उनके गुण समुदाय परस्पर आश्रित रहते हैं। अर्थात् उनकी दया की शोभा उनकी क्षमा और शान्ति से होती है, और उनकी शान्ति दया से विशेष शोभाशालिनी हो जाती है। कान्ति एवं विलास की वे उत्पत्ति-स्थली हैं, समग्र रत्नों के आभूषणों से उनकी शोभा की अधिक वृद्धि होती है, वे महाभाग्यशालिनी देवियाँ सैकड़ों कोटि अंशों में अपने को आत्मा से विभक्त करके निरालस भाव से परमैश्वर्यशाली एवं महान् भगवान् परमेश्वर को प्रमुदित करती हैं ।।२५२–२५७।। उनकी सहस्त्रों की

---

* एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थे पाठव्यत्यासो दृश्यते ख. पुस्तके।

लीलाविलाससंयुक्तैर्भावैरतिमनोहरैः । गणैस्ताः सह मोदन्ते शैलाभैः पावकोपमैः ।।२५९।।
कुब्जा वामनिकाश्चैव वरगात्रा हयाननाः । पुण्ड्राश्च विकटाश्चैव करालाश्चिपिटाननाः ।।२६०।।
लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिकाः । मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ।।२६१।।
गजाननास्तथैवान्याः सिंहव्याघ्राननास्तथा । लोहिताक्षा महास्तन्यः सुभगाश्चरुलोचनाः ।।२६२।।
ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्यश्चारुलोचनाः । अन्याश्च कामरूपिण्यो नानावेषधराः स्त्रियः ।।२६३।।
अभ्यन्तरपरिस्कन्धा देवावासगृहोचिताः । * रराम भगवांस्तत्र दशबाहुर्महेश्वरः ।।२६४।।
नन्दिना च गणैः सार्धं विश्वरूपैर्महात्मभिः । तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्यौदार्यपराक्रमैः ।।२६५।।
पावकात्मजसंकाशैर्यूपदंष्ट्रोत्कटाननैः । वन्द्यमानो विमानश्च(स्थैः)पूज्यमानश्च तत्परैः ।।२६६।।
सर्वर्तुकुसुमां मालां जिघ्रमा ÷ णोरसि स्थिताम् । नीलोत्पलदलश्यामं पृथुताम्रायतेक्षणम् ।।२६७।।

संख्या में अन्य परिचारिकाएँ रहती हैं जो सर्वदा उनका अनुगमन करती हैं। वे सब भी कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली, स्वरूपवती एवं शोभाशालिनी रहती हैं। परम मनोहर लीला एवं विलास की भावनाओं से ओत-प्रोत, पर्वत के समान भीषणाकार, अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं तेजस्वी गणों के साथ वे परिचारिकाएँ आनन्द का अनुभव करती हैं, उन परिचारिकाओं में कुछ कुबड़ी हैं, कुछ वामनाकृत हैं, किसी का शरीर बहुत सुन्दर है, पर मुख घोड़े के समान है। कुछ गन्ने के समान पतली और लम्बी पर स्वभाव से बड़ी विकट, कुछ देखने में महा कराल, कुछ चिपटे मुखवाली, कुछ लम्बे पेटोंवाली, कुछ छोटे हाथोंवाली, कोई नेत्रविहीन, कोई छोटे चरणोंवाली, कुछ सिंह के समान कटिवाली, कोई हाथी के समान भीषण मुख और उदरवाली, कुछ वैसे ही हाथी के समान मुखवाली, कुछ सिंह और बाघ के समान मुखवाली हैं। उनमें किसी के नेत्र बहुत लाल हैं तो कोई लम्बे-लम्बे विशाल स्तनों के भारों से दुःखी हैं। इनके अतिरिक्त कुछ बहुत ही सुन्दर एवं चित्ताकर्षक नेत्रोंवाली भी हैं ।।२५८-२६२।। उन परम सुन्दरियों के केश बहुत छोटे और घुँघराले होते हैं। उनके नेत्र चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। अन्यान्य सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकार की वेश-भूषा से सुसज्जित होकर वहाँ पर विराजमान रहती हैं। वे अपनी इच्छा के अनुरूप स्वरूप धारण करनेवाली हैं। उस विशाल महाप्रासाद के भीतरी भाग में वे सुन्दरियाँ सर्वथा विचरण किया करती हैं, वे सचमुच देवस्थानों में निवास करने योग्य हैं। उस सुन्दर विशाल प्रासाद में दशबाहु भगवान् महेश्वर क्रीडा करते हैं। उनके साथ नन्दीश्वर एवं महान् पराक्रमशाली विश्व रूप धारण करने में सक्षम उनके गण निवास करते हैं। रुद्रगण भगवान् के समान ही उदार एवं पराक्रमशाली हैं। वे आकृति में अग्नि पुत्र की भाँति परम भयानक होते हैं, खम्भे के समान विशाल एवं भीषण दाँतों से उनके मुख की एक विकट शोभा होती है। ये गण विमानों में चढ़कर तन्मय होकर भगवान् की वन्दना एवं पूजा करते हैं। उस समय महादेव जी सभी ऋतुओं में सुलभ पुष्पों से निर्मित माला को, जो उनके विशाल वक्षःस्थल पर शोभा वृद्धि करती है, सूँघते हैं। वे नीले कमल दल के समान श्यामल वर्ण हैं, लम्बे-लम्बे लाल वर्ण के उनके मनोहर नेत्र हैं। कुछ भयानक और लम्बे होंठ,

---

* अत्र परस्मैपदमार्षम्।

÷ अत्र संधिरार्षः।

ईषत्कराललम्बोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रागणाञ्चितम् । षडूर्ध्वनेत्रं दुष्प्रेक्ष्यं रुचिरं चीरवाससम् ।।२६८।।
आहवेष्वपरिक्लिष्टं देवानामरिनाशनम् । बाहुना बाहुमावेश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे स्थितम् ।।२६९।।
रराज पट्टिशं तस्य वामाग्रकरगोचरम् । महाभैरवनिर्घोषं बलेनाप्रतिमौजसम् ।।
दशवर्णधनुश्चैव विचित्रं शोभतेऽधिकम् ।।२७०।।
त्रिशूलं विद्युताभासममोघं शत्रुनाशनम् । जाज्वल्यमानं वपुषा परमं तत्त्विषा युतम् ।।२७१।।
असिश्चैबौजसां श्रेष्ठः शीतरश्मिः शशी तथा । तेजसा वपुषा कान्त्या देवेशस्य महात्मनः ।।
शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ।।२७२।।
स्थितः पुरस्ताद्देवस्य शातकौम्भमयो महान् । शुशुभे रुचिरः श्रीमान्सोदकः सः कमण्डलुः ।।२७३।।
असिमावेश्य चाङ्गेषु पाण्डुराम्बरधारिणी । उरश्छेदेन महता मौक्तिकेन विराजिता ।।
चतुर्भुजा महाभागा विजया लोकसंमता ।।२७४।।
देव्या आद्यप्रतीहारी श्रीरिवाप्रतिमा परा । विभ्राजन्ती स्थिता चैव कृत्वा देवस्य चाञ्जलिम् ।।२७५।।
तस्याः पृष्ठानुगाश्चान्याः स्त्रियोऽप्सरोगणान्विताः । ताः खल्वभिनवैः कान्तैरुपतिष्ठन्ति शंकरम् ।।२७६।।
सर्वलक्षणसंपन्ना वादित्रैरुपवृंहिताः । उपगायन्ति देवेशं गणा गन्धर्वयोनयः ।।२७७।।

तीक्ष्ण दंत पंक्तियों से सुशोभित हैं, ऊपर को ताकनेवाले भयानक नेत्र से उनका मुखमण्डल दुष्प्रेक्ष्य होता है। सुन्दर चीर वस्त्र धारण किये रहते हैं ।।२६३-२६८।। युद्धों में जिसे कोई कठिनाई नहीं होती, ऐसे राक्षसों के परम विध्वंसक एक हाथ को वे दूसरे हाथ में लपेटकर वामपार्श्व में रख लेते हैं। उससे थोड़ी ही दूर पर स्थित उनके वाम हाथ में सुशोभित पट्टिश नामक अस्त्र शोभा पाता है, उसके अतिरिक्त जिसकी प्रत्यञ्चा का निनाद महान् भीषण होता है, जिसके समान दृढ़ एवं तेजस्वी कोई अन्य धनुष नहीं हैं, उनका दसवर्णोंवाला विचित्र धनुष भी वहाँ अधिकाधिक शोभा लाभ करता है ।।२६९-२७०।। विद्युत् के समान चमकीला शत्रुसंहारकारी उनका त्रिशूल भी वहाँ अपनी जाज्वल्यमान कान्ति से परम शोभा प्राप्त करता है। उस त्रिशूल का लक्ष्य कभी विफल होनेवाला नहीं है। देवाधिदेव महान् पराक्रमशाली भगवान् के समीप परम तेजोमय तलवार एवं शीतलरश्मि चन्द्रमा सुशोभित हैं। अपने तेज शरीर एवं कान्ति से वे वेदी में अग्नि की ज्वाला की तरह अधिक सुशोभित होते हैं। देव के सम्मुख सुवर्णमय, महान् कमण्डलु जल समेत विराजमान है, उसकी शोभा की एक निराली छटा रहती है। अपने अंग में तलवार लटकाये हुए, पीले रंग का वस्त्र धारण किये, वक्षःस्थल पर एक विशाल मुक्ता की माला धारण किये चार भुजाओं से सुशोभित लोक सम्माननीय महाभाग्यशालिनी देवी विजया भी वहाँ स्थित हैं ।।२७१-२७४।। वह देवी की सर्वप्रथम प्रतिहारिणी है, रूप में दूसरी लक्ष्मी के समान अनुपम है। भगवान् शंकर की ओर अंजलि बाँधे हुए वहाँ पर उसकी परम शोभा होती है। उसके पीछे अन्य अनुगामी स्त्रियाँ रहती हैं, उनके साथ अप्सराओं के झुण्ड रहते हैं। वे सब भी अपने अभिनव कान्तों के साथ शंकर की उपासना में तल्लीन रहती हैं। सर्वलक्षणसम्पन्न, विविध प्रकार के वाद्यों से समन्वित गन्धर्वों की टोलियाँ देवेश के समक्ष गायन,

अभ्युन्नतो महोरस्कः शरन्मेघसमद्युतिः । शोभते नन्दमानश्च गोपतिस्तस्य वेश्मनि ।।२७८।।
स्कन्दश्च सपरीवारः पुत्रोऽस्यामितवीर्यवान् । रक्ताम्बरधरः श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षणः ।।२७९।।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् । व्यपेतव्यसनाः क्रूराः प्रजानां पालने रताः ।।२८०।।
तैः सार्धं स महावीर्यः शोभते शिखिवाहनः । व्यालक्रीडनकैस्तत्र क्रीडते विश्वतोमुखः ।।२८१।।
ये नृपा विबुधेन्द्राणां काञ्चनस्य प्रदायिनः । ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिनः ।।२८२।।
गूढस्वाध्यायतपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तयः । एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च संमताः ।।२८३।।
मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवर्तन्त पुनः पुनः । श्रूयतां देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ।।२८४।।
व्याघ्राश्चैवानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विनः । स्वच्छन्दचारिणः सर्वे स्वयं देवेन निर्मिताः ।।२८५।।
मृत्योर्मृत्युसमास्ते तु यमदर्पापहारिणः । विभूतिमप्यसंख्येयां को न खल्वभिधास्यते ।।२८६।।
अतः परमिदं भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् । भूतानामनुकम्पार्थं यत्कृतं तन्निबोधत ।।२८७।।

वादन करती हैं। उनके उस सुन्दर प्रासाद में अति विशाल वक्षःस्थल शरत्कालीन मेघ के समान गोपति (नन्दीश्वर) आनन्द का अनुभव करता हुआ सुशोभित है। रक्त वर्ण के वस्त्र को धारण किये हुए, परम शोभासम्पन्न, कमल दल के समान सुन्दर नेत्रवाले उनके अमित पराक्रमशाली पुत्र स्कन्द भी वहाँ सपरिवार सुशोभित हैं। शाख, विशाख और नैगमेय प्रभृति अनुचरगण भी उनके साथ विराजमान हैं, जो प्रकृति से परम क्रूर किन्तु प्रजा पालन में दत्तचित्त एवं व्यसनों से विहीन हैं, उन अनुचरों के साथ महान् पराक्रमी शिखिवाहन, विश्वतोमुख स्कन्द व्यालक्रीड़ा का अनुभव करते हैं ।।२७५-२८१।। जो राजा लोग विद्वान् पण्डितेन्द्रों को सुवर्ण की दक्षिणा देते हैं, जो विप्र अपने गृह पर निवास करते हुए भी ब्रह्म-चिन्तन में निरत रहते हैं, जो उंछ वृत्ति से जीविका निर्वाह करनेवाले ब्रह्मचारीगण सर्वदा स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन रहते हैं, वे देवाधिदेव शंकर की इस पुरी में उनकी सभा के सभ्य होते हैं। अनेक मन्वन्तर व्यतीत होकर पुनः-पुनः प्रारम्भ होते हैं, किन्तु महादेव की वह सभा पूर्ववत् प्रतिष्ठित है। देवदेव की अन्य उत्तम आश्चर्यजनक घटनाएँ सुनिये। सुवर्ण के समान पीले वर्णवाले परम वेगशाली व्याघ्र उनके अनुगामी रहते हैं। वे सब अपनी इच्छा के अनुसार गमन करते हैं, देवदेव ने स्वयमेव उनका निर्माण किया है ।।२८२-२८५।। वे मृत्यु के लिए भी मृत्यु के समान हैं, यमराज के भी दर्प को चूर्ण करनेवाले हैं। अर्थात् उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं रहता। इस प्रकार देवदेव की विभूतियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है, वे असंख्य हैं, कौन उन्हें सम्पूर्णतया बतला सकता है। अब इसके उपरान्त मैं ऐसी अद्भुत एवं उत्तम विभूतियाँ बतलाऊँगा, भव ने जिन्हें जीवों के ऊपर असीम अनुग्रह करके निर्मित किया है, सुनिये। भव के उक्त उत्तम प्रासाद में जो परम शोभामय स्तम्भ लगे हुए हैं, उनमें उनकी माया द्वारा निर्मित एक सहस्र सिंहगण प्रदीप्त अग्नि के समान जाज्वल्यमान पाश द्वारा पृथक्-पृथक् बँधे हुए हैं। वहाँ पर वे सुखपूर्वक निवास करते हैं। वे सिंहगण देखने में मन्दराचल के समान विशालाकार हैं, बल एवं तेज में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, मुक्ताहार, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत उनके रंग हैं। बिजली संयुक्त मेघों की कड़क के समान वे भीषण निनाद करते हैं ।।२८६-२८८।। उनकी

मन्दराद्रिप्रकाशानां बलेनाप्रतिमौजसाम् । हारकुन्देन्दुवर्णानां विद्युद्घननिनादिनाम्* ।।२८८।।
चूडामणिधराणां वै मेघसंनिभवाससाम् । श्रीवत्साङ्कितवक्त्राणामङ्गुलीशूलपाणिनाम् ।।२८९।।
एवं दिशानां देवानां रूपेणोत्तमशालिनाम् । तस्य प्रासादमुख्यस्य स्तम्भेषूत्तमशोभिषु ।।२९०।।
संयताग्निमयीभिस्तु शृङ्खलाभिः पृथक्पृथक् । मायासहस्त्रं सिंहानां सुखं तत्र निवासिनाम् ।।२९१।।
स्तम्भेऽप्यपासृताषष्टं (?) त्र्यम्बकस्य निवेशने । अथ तत्प्रतिसंपूज्य वायोर्वाक्यं सुविस्मिताः ।।
ऋषयः प्रत्यभाषन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ।।२९२।।
भगवन्सर्वभूतानां प्राण सर्वत्रग प्रभो । के ते सिंहमहाभूताः क्व ते जाताः किमात्मकाः ।।२९३।।
सिंहाः केनापराधेन भूतानां प्रभविष्णुना । वैश्वानरमयैः पाशैः संरुद्धास्तु पृथक्पृथक् ।।२९४।।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह । यद्वै सहस्त्रं सिंहानामीश्वरेण महात्मना ।।
व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ।२९५।।
भूतानामभयं दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने । यज्ञभागनिमित्तं च ईश्वरस्याऽऽज्ञया तदा ।।२९६।।
तेषां विधानमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया । देव्या मन्युं कृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ।।२९७।।
निःसृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी । आत्मनः कर्मसाक्षिण्या भूतैः सार्धं तदाऽनुगैः ।।२९८।।

शिखाओं पर मणि शोभायमान हैं। मेघ के समान काले रंग के वस्त्रों से उनके शरीर वेष्टित हैं। श्रीवत्स चिह्न से वे सुशोभित हैं, अपने भीषण नखों से संयुक्त अँगुलियों को धारणकर वे शूलपाणि के समान हैं। दशों दिशाओं में देवताओं के समान सुन्दर स्वरूपधारी वे सिंहगण त्र्यम्बक के उक्त प्रासाद में शृङ्खलाबद्ध होकर विराजमान हैं। वायु के इस कथन का अभिनन्दन करते हुए नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण परम विस्मय विमुग्ध हो गये और बोले—समस्त जीवधारियों के प्राण! सर्वत्र गमन करनेवाले! महामहिमामय भगवन् वायुदेव! वे महान् पराक्रमशाली सिंह कौन हैं? वे कहाँ उत्पन्न हुए ? उनका स्वरूप कैसा है ? परम प्रभावशाली भगवान् शंकर ने उन सिंहों को किस अपराध के कारण अग्निमय पाशों में बाँधकर पृथक्-पृथक् कर रखा है ।।२८९-२९४।। ऋषियों की इस बात को सुनकर वायु बोले, ऋषिगण! वे एक सहस्र सिंह, जिनकी महात्मा भगवान् शंकर ने अपने शरीर से अलग करके सृष्टि की है, उनके क्रोध के मूर्त रूप हैं, जीवों को अभयदान देकर उन्होंने उन सबको अग्नि के पाशों में बाँध रखा है। प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के साथ यज्ञभाग के सम्बन्ध में विरोध होने पर भगवान् की आज्ञा से उन सहस्र सिंहों में से केवल एक सिंह छूटा था, जिसने महादेवी उमा के अमर्ष को देखकर लीलापूर्वक दक्ष के यज्ञ का सर्वांशतः विनाश कर दिया था। उस समय महादेवी के शरीर से महेश्वरी महाकाली अपने कर्मों की साक्षिणी होकर अपने अनुचर भूतगणों के साथ प्रादुर्भूत हुई थीं। रुद्र

---

* इत उत्तरमेकः श्लोकोऽधिको ङ. पुस्तके स यथा-सुदीर्घारितकायानामतविक्रूरचक्षुषाम्। दंष्ट्रोत्कटमहास्थानां महाविक्रमशालिनाम्। इति।

स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालयः । वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा देव्या मन्युप्रमार्जनः ।।२९९।।
तस्य वेशम सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै । संनिवेशस्त्वनौपम्यो मया वः परिकीर्तितः ।।३००।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि ये यत्र प्रतिवासिनः) । रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु ।।३०१।।
नानारत्नविचित्रेषु पताकाबहुलेषु च । सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ।।३०२।।
राजतेषु महान्तेषु शातकौम्भमयेषु च । संध्याभ्रसंनिकाशेषु कैलासप्रतिमेषु च ।।३०३।।
इष्टैः शब्दादिभिर्भागैर्ये भवस्यानुसारिणः । प्रासादवरमुख्येषु तेषु मोदन्ति सुव्रताः ।।३०४।।
ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः। गीतवादित्रघोषाश्च संस्तवाश्च समन्ततः ।।३०५।।
संहताश्चैवमतुला नानाश्रयकृतास्तथा । एवमादीनि वर्तन्ते तेषां प्रासादमूर्धनि ।।३०६।।
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः । अनौपम्यैर्वरै रत्नैः सर्वतः परिभूषितः ।।३०७।।
स्फटिकैश्चन्द्रसंकाशैर्वैदूर्यमणिसंप्रभैः । बालसूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसप्रभैः ।।३०८।।
चुक्रुशुर्ऋषयः श्रुत्वा नैमिषयास्तपस्विनः । आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम् ।।३०९।।

के उक्त आवास-स्थल में निवास करनेवाले भगवान् क्रोध ही तथोक्त वीरभद्र हैं, जो देवी के अमर्ष को दूर करने के लिए अति भीषण शरीर धारणकर प्रादुर्भूत हुए। परम गोपनीय सुरेश्वर शंकर के उक्त प्रासाद का सविस्तार वर्णन आप लोगों से कर चुका, उसके समान कोई अन्य प्रासाद नहीं है, समस्त त्रैलोक्य में वह अनुपम है ।।२९५-३००।। इसके बाद उक्त पुरी में अवस्थित अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों का वर्णन कर रहा हूँ। अन्तरिक्ष में अवस्थित उस परमरम्य शिवपुरी में अनेक सुन्दर प्रासाद बने हुए हैं, जो विविध प्रकार के रत्नों से चित्रित एवं जटित हैं, असंख्य पताकाएँ उनकी शोभा वृद्धि कर रही हैं। सभी मनोरथों को वे पूर्ण करनेवाले हैं। सुन्दर वनों एवं उपवनों से उनकी एक निराली छटा है। उनमें से कितने विशाल प्रासाद चाँदी के और कितने स्वच्छ सुवर्ण के हैं। कितनों की शोभा सायंकालीन मेघों के समान लाल वर्ण की और कितनों की कैलास-शिखर के समान श्वेत वर्ण की है। उन सुरम्य प्रासादों में भव के सद्व्रतपरायण अनुचरगण अभिमत संगीतादि विविध भोगोपयोगी साधनों से आनन्द का अनुभव करते हैं। वहाँ चारों ओर ब्रह्मचर्चा का सुरम्य स्वर गुंजरित होता रहता है। विविध कल्याणदायिनी पौराणिक कथाएँ बराबर चलती रहती हैं, गायन, वादन, स्तोत्रादि सभी ओर चलते रहते हैं। उक्त विविध प्रकार के स्वरों से एक विचित्र मनोहारिणी दशा वहाँ की हो जाती है, उसकी तुलना कहीं अन्यत्र से नहीं दी जा सकती। वहाँ के सभी गृहों में उक्त मांगलिक कथाओं, स्तोत्रों, गायन-वादनादि मनोरंजक साधनों का कार्यक्रम चलता है। ऐसे अनेक सुरम्य प्रासादों में एक सर्वश्रेष्ठ प्रासाद है, जो सहस्र चरणों (स्तम्भों) से सुशोभित एवं सुवर्णमय है। सभी ओर से अनुपम रत्न उसमें विभूषित हो रहे हैं। उन रत्नों में से कितने चन्द्रमा के समान निर्मल, वैदूर्यमणि के समान देदीप्यमान, उदयकालीन सूर्य के समान मनोहर एवं तेजस्वी, अग्नि एवं सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। वायु के इस वर्णन को सुनकर नैमिषारण्य निवासी तपस्वी ऋषिवृन्द परम विस्मित एवं संशयित होकर समीरण से बोले ।।३०१-३०९।।

ऋषय ऊचुः

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः। अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ।।
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ।।३१०।।

वायुरुवाच

श्रूयतां देवदेवस्य भक्तियैरनुकल्पिता। ह्रीमन्तः सूर्जिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः ।।३११।।
(+मध्याहाराश्च मात्राश्च आत्माराम जितेन्द्रियाः। जितद्वंद्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सराः ।।
भावस्थाः सर्वभूतानामव्यापारा अनाकुलाः)। कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ।।३१२।।
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ।।३१३।।
तैर्लब्धं रुद्रमालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्। भवस्य रूपसादृश्यं नीताश्चैव ह्यनुत्तमम् ।।३१४।।
वैश्वानरमुखा सर्वे विश्वरूपा कपर्दिनः। नीलकण्ठा सितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः ।।३१५।।
अर्धचन्द्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः। सर्वे दशभुजा वीराः पद्मान्तरसुगन्धिनः ।।३१६।।
तरुणादित्यसंकाशाः सर्वे ते पीतवाससः। पिनाकपाणयः सर्वे श्वेतगोवृषवाहनाः ।।३१७।।
श्रियाऽन्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः। तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ।।३१८।।

ऋषियों ने पूछा—भगवन् वायुदेव! उस पुरश्रेष्ठ में निवासी करनेवाले शिव के अनुगामी महात्मागण कौन हैं जो वहाँ सभी सुखों का अनुभव करते हैं। ऋषियों के इस वचन को सुनकर वायु बोले ।।३१०।।

वायु ने कहा—ऋषिवृन्द! सुनिये। जो देवदेव भगवान् शंकर की भक्ति करते हैं, और सर्वदा लज्जान्वित, तपस्या के क्लेशों को सहन करने में सशक्त, पराक्रमशील, अलोलुप, मिताहार-विहारपरायण, आत्मा में रमणशील (आत्म-चिन्तन में निरत), जितेन्द्रिय, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे, महोत्सव सम्पन्न, सब के साथ बन्धुत्व का व्यवहार मानते हुए, मत्सरादि से विहीन, भावप्रवण, सभी जीवों में समदर्शिता का व्यवहार रखते हुए, आकुलतारहित, मनसा, वाचा, कर्मणा एवं विशुद्ध अन्तरात्मा से भक्ति रख एवं अनन्य चित्त होकर शिव की शरण में जाते हैं, वे ही रुद्र का सायुज्य पद प्राप्त करते हैं, जो शाश्वत एवं अविनश्वर हैं। यही नहीं प्रत्युत वे भव के सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में भी समानता प्राप्त करते हैं। वे सभी शिवपुर निवासी अग्नि के समान मुखवाले, सब तरह के स्वरूप धारण करने में सशक्त, जटाजूटधारी, नीलकण्ठ, श्वेतग्रीव, तीक्ष्ण दाँत, त्रिलोचन, अर्द्धचन्द्र को सिर में धारण करनेवाले, जटाओं के मुकुट से विभूषित, वीर तथा दस भुजाओं से सुशोभित होते हैं, उनके शरीर से पद्म के अन्तर्भाग की भाँति भीनी-भीनी सुगन्ध आती है। वे मध्याह्न के सूर्य की तरह परम तेजस्वी होते हैं। सभी पीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं। सब के हाथों में पिनाक रहता है, सभी श्वेतवर्ण के वृषभ पर सवार होते हैं ।।३११-३१७।। सुन्दर कुण्डल एवं हार से विभूषित होने पर उनकी निराली छटा होती है, वे सब-के-सब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं तेज में एक-दूसरे से चढ़े-बढ़े रहते हैं। वृद्धावस्था एवं मृत्यु

+ एतचिह्नान्तर्गतग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते।

विभज्य बहुधाऽऽत्मानं जरामृत्युविवर्जिताः । क्रीडन्ते विविधैर्भावैर्भोगान्प्राप्य सुदुर्लभान् ।।३१९।।
स्वच्छन्दगतयः सिद्धाः सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः । एकादशानां रुद्राणां कोट्योऽनेका महात्मनाम् ।।३२०।।
एभिः सह महात्मानो देवदेवो महेश्वरः । भक्तानुकम्पी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः ।।३२१।।
नाहं तेषां रुद्राणां भवस्य च महात्मनः । नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ।।३२२।।
मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यमित्येतामीश्वराच्छ्रुताम् । अथ ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।।
श्रुत्वेमां परमां पुण्यां कथां त्रैयम्बकीं ततः ।।३२३।।
भृशं चानुग्रहं प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम् । संभावयित्वा चाप्येनां वायुमूचुर्महाबलम् ।।३२४।।

ऋषय ऊचुः

समीरण महाभाग अस्माकं च त्वया विभो । ईश्वरस्योत्तमं पुण्यमष्टमं त्वौपसर्गिकम् ।।३२५।।
तस्य स्थानं प्रमाणं च यथावत्परिकीर्तितम् । यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मनः ।।३२६।।
महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेय सुरैरपि । स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्त्रस्यामितौजसः ।।३२७।।
यस्य भक्तेष्वसंमोहो ह्यनुकम्पार्थमेव च । ब्राह्मी लक्ष्मीः स्वयं जुष्टा या साऽप्रतिमशालिनी ।।३२८।।
व्याप्य ज्योत्स्नेव खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपिणा । विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि ।।३२९।।

के भय से रहित होकर वे शिवपुर निवासी अपने को अनेक भागों में विभक्तकर विविध प्रकार की अति दुर्लभ उपभोग्य सामग्रियों को प्राप्तकर विविध भावों से भोगते हैं। वे सब स्वच्छन्द गमन करते हैं, सभी सिद्धियाँ उनकी वशवर्तिनी हैं, दूसरे सिद्धगण उन्हें प्रबुद्ध करते हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रगणों की संख्या शिवपुर में अनेक कोटि है। इन सबों के साथ देवदेव पार्वतीवल्लभ, भक्तहितकारी भगवान् महेश्वर आनन्द का अनुभव करते हैं ।।३१८-३२१।। ऋषिवृन्द! मैं सच कह रहा हूँ कि उन शिवपुर निवासी रुद्रगणों की एवं परम ऐश्वर्यमय भगवान् महेश्वर की विविध सम्भूतियों को अर्थात् सब की विविध रूपता को नहीं देख पाता। वे सब परस्पर अभिन्न हैं। स्वयं भगवान् के मुख से सुनी गयी त्र्यम्बक की इस पुण्यकथा को मातरिश्वा वायु ने जब उन सूर्य के समान परम तेजोमय ऋषियों को सुनाया तो वे परम प्रसन्न हुए और अपने को परम अनुगृहीत माना। इस पुण्य कथा का अभिनन्दन करते हुए वे सब महाबलशाली वायु से बोले ।।३२२-३२४।।

ऋषियों ने कहा–महाभाग! आप सर्वसमर्थ हैं, आपने ईश्वर के उस परम पुण्यमय सर्वश्रेष्ठ अष्टम औपसर्गिक निवास-स्थान का प्रमाण एवं अन्य परिचयात्मक विवरण हम लोगों को सुनाया है, जो परमात्मा की सुगन्ध से सर्वथा समृद्ध है। महादेव का माहात्म्य देवताओं को भी कठिनता से विदित होता है। वे अपने ही पराक्रम द्वारा अमित तेजस्वी सहस्रों अनुचरों की सृष्टि करनेवाले हैं, जो प्रभाव आदि में उन्हीं के समान हैं। जो भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही भक्तों के हृदय में सम्मोह (अज्ञान) का संचार नहीं करते। अनुपम शक्तिशालिनी ब्राह्मी एवं लक्ष्मी स्वयमेव जिसके द्वारा उपभुक्त होती हैं ।।३२५-३२८।। जिस प्रकार चन्द्रिका समस्त आकाश एवं चन्द्रमा में व्याप्त रहती है, उसी प्रकार विश्वरूपी भगवान् द्वारा विन्यस्त विभूति उनके उस सुन्दर प्रासाद में सर्वत्र व्याप्त रहती है। ऐसे सर्वशक्तिसम्पन्न

महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणां तु महात्मनाम् । तत्सर्वं निखिलेनेदं वक्त्रादमृतनिस्रवम् ।।३३०।।
अपीत्वा (?) खलु सर्वस्य भक्त्याऽस्माभिस्तु सुव्रताः । नास्ति किंचिदविज्ञेयमन्यच्चैवानुगामिनः ।।
प्रश्नं देववर प्राण यथावद्वक्तुमर्हसि ।।३३१।।

सूत उवाच

स खलूवाच भगवान्किं भूयो वर्तयाम्यहम् । किं मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रताः ।।३३२।।

ऋषय ऊचुः

आदित्याः परिपार्श्वेयाः सिंहा वै क्रोधविक्रमाः । वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिनः ।।३३३।।
अभूतसंप्लवे घोरे सर्वप्राणभृतां क्षये । किमवस्था भवन्त्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत् ।।३३४।।
*एते ये वै त्वया प्रोक्ताः सिंहव्याघ्रगणैः सह । ये चान्ये सिद्धिसंप्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ।।३३५।।
इदं च परमं तत्त्वं समाख्यास्यामि शृण्वताम् । विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा ।।३३६।।
तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मणः सुताः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।।३३७।।
वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशाः । मुनिः पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः ।।३३८।।
ततः काले व्यतिक्रान्ते कल्पानां पर्यये गते । महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ।।३३९।।

महादेव के समान ही पराक्रमशाली एवं महात्मा रुद्रों की भी शक्ति है। वह सारी कथा आपके मुख से अमृत की धारा की भाँति हम सबों ने भक्तिपूर्वक पान की है, और उससे हम सबको परम तृप्ति का लाभ हुआ है। उसे सुनने के उपरान्त अब कुछ भी सुनना शेष नहीं रह गया है। हे देववरों के प्राण! इसके उपरान्त आप हमारे एक अन्य प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें ।।३२९-३३१।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! नैमिषारण्यवासी ऋषियों की इस विनीत वाणी को सुनकर भगवान् वायु ने कहा, सद्व्रतपरायण ऋषिगण! अब आपको क्या बतलाऊँ, मुझे क्या कहना है? ।।३३२।।

ऋषियों ने कहा–भगवन् वायुदेव! भगवान् शंकर के पार्श्वभाग में अवस्थित आदित्य, उनके क्रोध के मूर्तरूप वे सिंहगण, वैश्वानरगण, भूतगण, अनुगामी व्याघ्रवृन्द तथा उनके साथ अन्य जिन सिद्धि प्राप्त करनेवालों की चर्चा आपने ऊपर की है–वे सब उस सर्वप्राणिविनाशक घोर महाप्रलय में किस अवस्था को प्राप्त होते हैं, आप यथार्थवेत्ता हैं, इस बात को यथार्थतः बतलाने की कृपा करें। मातरिश्वा बोले, ऋषिवृन्द! यह परम गुह्य तत्त्व बतला रहा हूँ, सावधानतापूर्वक सुनिये। उन समस्त सिद्धि प्राप्त करनेवाले शिवपुर निवासियों में जो ब्रह्मा के कुमार पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बोढु, कपिल, आसुरि एवं महायशस्वी मुनिवर पञ्चशिख ऋषि हैं, तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो ऋषिगण हैं, वे सब-के-सब आदि कारणभूत अव्यक्त सत्ता की महत्ता को जानकर पूर्व ही परम गति को प्राप्त हो जाते हैं ।।३३३-३३८।। तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने के उपरान्त कल्प समाप्ति के अवसर पर, जबकि

---

* इत आरभ्य शृण्वतामित्यन्तग्रन्थो ग. पुस्तके न विद्यते।

अनेकरुद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरी । शब्दादीन्विषयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधश्रयात् ।।३४०।।
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा । वैहायपदमव्यग्रं भूतानामनुकम्पया ।।३४१।।
तत्र यान्ति महात्मानः परमाणुं महेश्वरम् । तरन्ति सुमहावर्तां जन्ममृत्यूदकां नदीम् ।।३४२।।
ततः पश्यन्ति सर्वाणं (?) परं ब्रह्माणमेव च । देव्या वै सहिताः सप्त या देव्यः परिकीर्तिताः ।।३४३।।
तत्तत्सहस्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च । वैश्वानरभूतभव्यव्याघ्राश्चैवानुगामिनः ।।३४४।।
आवेश्याऽऽत्मनि तान्सर्वान्संख्यायोपद्धवांस्तथा । लोकान्सप्त इमान्सर्वान्महाभूतानि पञ्च च ।।३४५।।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च । स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः ।।३४६।।
स एष ओतः प्रोतश्च बहिरन्तश्च निश्चयात् । एको हि भगवान्नाथो ह्यनादिश्चान्तकृद्द्विजाः ।।३४७।।
ततस्त ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः । स्वं स्वमाश्रमसंवासमारोप्याग्निं तथाऽऽत्मनि ।।३४८।।
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना । अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ।।३४९।।
व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः । योगमनुपमं दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः ।।३५०।।
प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन तेजसा । तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् ।।३५१।।

समस्त महाभूतों का विनाश हो जाता है, और महाप्रलय आ जाता है, अनेक कोटि रुद्रगण सत्य का आश्रय ग्रहणकर, शब्दादि विषयों से विरक्त होकर अपने ज्ञानमय तेजोबल से समस्त जीवधारियों में आत्मभाव से प्रविष्ट होकर सभी भूतों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए अविनश्वर अच्युत वैहायस पद को प्राप्त करते हैं। वे सब महात्मागण परमाणुस्वरूपधारी महेश्वर को प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँचकर जन्म-मृत्यु रूप जल से प्रपूर्ण, भीषण भँवरों से समन्वित भवनदी को पार कर जाते हैं। वहाँ पर प्राप्त होकर वे सर्वव्यापी परब्रह्म का दर्शन करते हैं। ऊपर जिन सात महादेवियों की चर्चा की गयी है उनके साथ ही वे वहाँ अवस्थित होते हैं ।।३३९-३४३।। सिंहों एवं आदित्यों को, जिनकी संख्या एक सहस्र कही जाती है, तथा वैश्वानर, भूत, भव्य, व्याघ्र एवं अनुगामी रुद्रगण—इन सबको अपनी आत्मा में आविष्ट करके इन सातों लोकों को तथा पाँचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु) को भी शंकर अपने में समाविष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु के साथ वे इस सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विनाश दोनों करते हैं, वे रुद्र हैं, साममय हैं, यजुर्मय हैं। द्विजवृन्द! वे बाहर-भीतर सर्वत्र एक निश्चय से ओत-प्रोत रहते हैं। वे ही एकमात्र समस्त चराचर जगत् के नाथ हैं, उनका आदि नहीं है, वे स्वयं ही सबके अन्तकर्त्ता हैं। वायु की इन बातों को सुनकर दिवाकर के समान परम तेजस्वी नैमिषारण्य-निवासी वे ऋषिगण अपने-अपने आश्रम में अग्नि का आधान करके मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध अन्तरात्मा से अनन्य चित्त होकर महेश्वर की आराधना में लग गये ।।३४४-३४९।। व्रत एवं उपवास की साधना में पुनः लग गये। सभी जीवों पर दया का व्यवहार करने लगे। उनके समस्त संशय छिन्न हो गये थे। अतः उन्हें अनुपम दिव्य योग की प्राप्ति हुई। अपनी परम भक्ति एवं ज्ञानमय तेजोबल से उन सबों को शाश्वत रुद्र-सालोक्य पद की प्राप्ति हुई। जो तपस्वी व्यक्ति वायु द्वारा बतलायी गयी इस शिवपुरी की स्तुति का पाठ करता है, वह चाहे ब्राह्मण हो, चाहे

यः पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तमिमां स्तुतिम् । *ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा स्वक्रियापरः ।।३५२।।
लभते रुद्रसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः । अमद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेन्द्रियः ।।३५३।।
आभूतसंप्लवस्थायी अप्रतीघातलक्षणः । गाणपत्यं स लभते स्थानं वा सार्वकामिकम् ।।३५४।।
मद्यपो मद्यपैः सार्धं भूतसंघैश्च मोदते । सोऽर्च्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानां वरदो भवेत् ।।
इति होवाच भगवान्वायुर्वाक्यमिदं वरः ।।३५५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते शिवपुरवर्णनं नामैकशततमोऽध्यायः ।।१०१।।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयंभुवः । ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः ।।१।।
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः । अव्यक्तान्ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ।।२।।

क्षत्रिय हो, चाहे अपने कार्य-व्यापार में लगा हुआ वैश्य हो, रुद्र का सालोक्य प्राप्त करता है, रुद्र में उसकी भक्ति बढ़ती है, उसके सारे सन्ताप दूर हो जाते हैं। जो जितेन्द्रिय शूद्र भव में भक्ति रखनेवाला है, और कभी मदिरा नहीं पान करता वह भी इसके पाठ से महाप्रलय तक की परमायु प्राप्त करता है, इस महान् अवधि में उसे कोई कष्ट भी नहीं होता, अथवा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले गणपति का पद उसे प्राप्त होता है। यदि शूद्र मद्यप है तो वह भी मद्यप भूतगणों के साथ आनन्द का अनुभव करता है। पृथ्वी तल में पूज्य होकर वह सामान्य मनुष्यों को वरदान देता है। भगवान् वायु ने इस सुन्दर कथा को नैमिषारण्यवासी ऋषियों को सुनाया था ।।३५०-३५५।।

श्री वायुमहापुराण में शिवपुरवर्णन नामक एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ।।१०१।।

अध्याय १०२

प्रतिसर्ग-वर्णन

सूत बोले-ऋषिवृन्द! अब इसके बाद मैं परम पुरुषोत्तम स्वयंभू भगवान् के प्रत्याहार[१] का वर्णन कर रहा हूँ। परम ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा के स्थिति-काल के समाप्त होने पर ईश्वर जिस प्रकार अपनी आत्मा में परम सूक्ष्म रूप

---

* इत उत्तरमधिकमर्धं ख. पुस्तके तद्यथा-शिवलोके स वसति यावदाभूतसंप्लवम्। इति।

[१] सृष्टि को संकुचित करने की प्रक्रिया।

परं तदनु कल्पानामपूर्णे कल्पसंक्षये । उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ।।३।।
अन्ते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा । अन्ते कलियुगे तस्मि (×न्क्षीणे संहार उच्यते ।।४।।
संप्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते । प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये ।।५।।
महादादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये । स्वभावकारिते तस्मि) न्प्रवृत्ते प्रतिसंचरे ।।६।।
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् । आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ।।
प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ।।७।।
आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वनाः । सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ।।८।।
अपामस्ति गुणी यस्तु ज्योतिषे लीयते रसः । नश्यन्त्यापस्तदा तच्च रसतन्मात्रसंक्षयात् ।।९।।
तेजसा संहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्त्युत । ग्रस्ते च सलिलं तेजः सर्वतोमुखमीक्ष्यते ।।१०।।
अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जले तदा । सर्वमापूर्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ।।११।।
अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमथस्ततः । ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम् ।।
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ।।१२।।

में इस समस्त जगत् को स्थिर कर लेते हैं उसे बतला रहा हूँ। उस प्रत्याहार में समस्त अव्यक्त (?) भूतों को व्यक्त ग्रस लेता है (?)। कल्पों के क्षय-काल के थोड़े शेष रहने पर ही सृष्टि के इस प्रत्याहार का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। सबसे अन्तिम द्रुम नामक मनु की अधिकारावधि के अन्तिम अवसर पर कलियुग के अवसान में यह घोर संकट-काल उपस्थित होता है। उस समय यह सारी सृष्टि अप्रत्यक्ष (अव्यक्त) में परिणत हो जाती है, वही सृष्टि का संहार कहा जाता है ।।१-४।। उस प्रति संचर काल के प्रवृत्त होने पर जब सृष्टि का प्रत्याहार उपस्थित होता है, उस समय भूतों की तन्मात्राओं का भी विनाश होता है। महदादि विशेषान्त समस्त विकार क्षय को प्राप्त होते हैं। यह सब स्वाभाविक ढंग पर घटित होता है। सर्वप्रथम जलराशि भूमि के गन्धगुण को ग्रस लेती है, जिससे भूमि गन्धविहीन होकर जल में विलीन हो जाती है। और इस प्रकार जल में गन्ध-तन्मात्रा के प्रविष्ट हो जाने से पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है। उसके बाद वह जलराशि समस्त जगत् में व्याप्त होकर वेगवान् एवं अति मुखरित होकर सर्वत्र संचरित और स्थिर होने लगती है। तदनन्तर जल का जो रस गुण है वह ज्योति (तेज) में लीन हो जाता है, और इस प्रकार रस तन्मात्रा के नष्ट हो जाने से जलराशि समाप्त हो जाती है। तेज के द्वारा विनष्ट रस के ज्योति में परिणत हो जाने पर जलराशि का जब सर्वथा अभाव हो जाता है तब सभी ओर तेज-ही-तेज दिखायी पड़ने लगता है। समस्त जगत् में व्याप्त अग्नि उस समय जल को अपने में ग्रहण कर लेती है, उसकी लपटों से यह जगन्मण्डल शनैः-शनैः पूर्ण हो जाता है ।।५-११।। नीचे-ऊपर, इधर-उधर सर्वत्र अग्नि की लपटों के फैल जाने पर ज्योति के प्रकाशमय गुण

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ङ. पुस्तके नास्ति।

प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः । उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ।।१३।।
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि । ततस्तु मूलमासाद्यो वायुः संभवमात्मनः ।।१४।।
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश । वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत् ।।१५।।
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्टत्यनावृतम् । अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ।।१६।।
सर्वमापूरयन्नादैः सुमहत्तत्प्रकाशते । परिमण्डलं तच्छुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ।।१७।।
शब्दमात्रं तथाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति । तं तु शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ।।१८।।
भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै । अभिमानात्मनो ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ।।१९।।
भूतादि ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः । महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः ।।२०।।
बुद्धिर्मतश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च । पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ।।२१।।
संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये । स्वात्मन्येव स्थिते चैव कारणे लोककारणे ।।२२।।
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्याऽवस्थितेन वै । तदाऽऽद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित् ।।२३।।
अनाख्यानादबाधत्वादज्ञानोज्ज्ञानिनामपि । आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तन्न विद्यते ।।२४।।

रूप को वायु अपने में समेट लेती है, उस समय वायु में वह तेजोराशि दीप शिखा की भाँति विलीन हो जाती है। तन्मात्रा के विनष्ट हो जाने पर अग्नि का रूप नष्ट हो जाता है, जिससे तेज शान्त पड़ जाता है, वायु से यह समस्त जगत् अतिशय कम्पायमान हो उठता है। तेज के वायु के रूप में परिणत हो जाने पर जब समस्त लोक आलोक-विहीन हो जाता है, तब वायु अपने मूल उत्पत्ति-स्थान का आश्रय ग्रहण करता है और ऊपर-नीचे इधर-उधर दसों दिशाओं को बारम्बार कम्पित करता है। तदुपरान्त वायु के स्पर्शात्मक गुण को आकाश अपने में समेट लेता है। परिणामस्वरूप वायु का वेग शान्त हो जाता है, उस समय केवल अनावृत आकाश स्थित रहता है, कोई रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं मूर्ति उसकी नहीं रहती, अपने भीषण निनाद से जगत् को पूरित करता हुआ वह मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, वह केवल शब्दात्मक रहता है, उसमें केवल पोल रहती है। इस प्रकार केवल शब्दगुणयुक्त आकाश समस्त भूतों को आवृत कर स्थिर रहता है। उसके बाद उस शब्दगुणमय आकाश को भी भूतादि ग्रस लेता है ।।१२-१८।। समस्त भूतों को एवं उन आश्रित समस्त इन्द्रियों को एक साथ ही यह अहंकारतत्त्व ग्रस लेता है, यह भूतादि तामस अर्थात् अहंकारतत्त्व के नाम से विख्यात है। उस भूतादि तामस को भी बुद्धि रूपी महत्तत्त्व ग्रसता है। यही महत्तत्व ही संकल्प एवं अध्यवसायात्मक है। तत्त्वचिन्तापरायण लोग इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान् एवं अक्षर प्रभृति पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं। इस प्रकार जब सभी भूत विलीन हो जाते हैं, गुणों में साम्य हो जाता है, समस्त जगत् तमोमय हो जाता है, लोक के कारणभूत कारणसमूह आत्मस्थित हो जाते हैं, सृष्टि निवृत्त होकर प्रकृति में अव्यस्थित हो जाती है, तब आदि-अन्त किसी का कुछ पता नहीं लगता, कुछ दिखायी नहीं पड़ता, किसी का कुछ नाम-रूप शेष नहीं रह जाता, जिससे ज्ञानसम्पन्न को भी कुछ मालूम नहीं पड़ता और उस समय गतागत का

भावग्राह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते। स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ।।२५।।
अनिर्देश्या प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिका कारणेन तु। एवं सप्तादयोऽभ्यस्तात्क्रमात्प्रकृतयस्तु वै ।।२६।।
प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशन्ति परस्परम्। येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते ।।२७।।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोको सपर्वतम्। उदकावरणं यच्च ज्योतिषां लीयते तु तत् ।।२८।।
यत्तैजसं चाऽऽवरणमाकाशं ग्रसते तु तत्। यद्वायव्यं चाऽऽवरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ।।२९।।
आकाशवरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत्। भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः ।।३०।।
महान्तं ग्रसतेऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततः परम्। एतौ संहारविस्तारौ ब्रह्माऽव्यक्तात्ततः पुनः ।।३१।।
सृजते ग्रसते चैव विकारान्सर्गसंयमे। सांसिद्धकार्यकरणाः संसिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ।।३२।।
गत्वा जवं जवीभावे स्थानेष्वेषु प्रसंयमात्। प्रत्याहारे वियुज्यन्ते क्षेत्रज्ञाः करणैः पुनः ।।३३।।
अव्यक्तं क्षेत्रमित्याहुर्ब्रह्म क्षेत्रज्ञ उच्यते। साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगोऽनादिमांस्तयोः ।।३४।।
एवं सर्गेषु विज्ञेयं क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणाः। ब्रह्मविच्चैव विज्ञेयः क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक् ।।३५।।
विषयाविषयत्वं च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्मृतम्। ब्रह्मा तु विषयो ज्ञेयोऽविषयः क्षेत्रमुच्यते ।।३६।।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते। बहुत्वाच्च शरीराणां शरीरी बहुधा स्मृतः ।।३७।।

भी कुछ बोध नहीं होता ।।१९-२४।। ऐसी स्थिति का भावनाओं एवं अनुमान द्वारा कुछ चिन्तन करके यह कहा गया है कि उस समय वे सब पदार्थ उस सदसदात्मक, शाश्वत परम कारण में प्रतिष्ठित होते हैं। यह स्वात्मिका प्रवृत्ति कारण द्वारा अनिर्देश्य है। सृष्टि के इन सातों उपादानों के इस प्रकार क्रमशः विलय कहे जाते हैं। प्रत्याहारकाल में इसी प्रकार इन सातों प्राकृत पदार्थों का परस्पर अनुप्रवेश होता है। सातों द्वीप, समस्त पर्वत, सातों लोक एवं सब समुद्र इन सबको जिसने आवृत किया है, वह विशाल ब्रह्माण्ड सर्वप्रथम जलराशि में विलीन होता है। और तदनन्तर वह जलावरण ज्योति पदार्थ में विलय होता है। उसके बाद उस तैजस आवरण को वायु ग्रसता है और उस वायवीय आवरण को आकाश समेट लेता है। उस आकाशीय आवरण को भूतादि तामस अहङ्कार तत्त्व ग्रसता है। भूतादि को बुद्धि रूप महत्तत्त्व ग्रसता है। उस महत्तत्त्व को अव्यक्त ग्रसता है, उसके बाद गुणों में समानता हो जाती है। सृष्टि का यह संहार एवं विस्तार ब्रह्मनिष्ठ अव्यक्त प्रकृति से होता है। सृष्टि के लिए ही वह इन विकारों को ग्रसती एवं निर्माण करती है। समस्त कार्य और कारणों को अधिगत करनेवाले जो परम ज्ञानी एवं सिद्ध लोग हैं वे इन स्थानों पर अपने प्रकृष्टसंयम से इस संहारकालीन आकर्षण में स्वयं द्रुतगति से आकृष्ट हो प्रत्याहारकाल में वे क्षेत्रज्ञ करणों से पुनः वियुक्त हो जाते हैं। अव्यक्त ही को क्षेत्र कहा जाता है, और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। इन दोनों का साधर्म्य एवं वैधर्म्यमूलक संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है ।।२५-३४।। विप्रवृन्द! समस्त सर्गों में (सृष्टि में) क्षेत्रज्ञों के विषय में यही विशेषता (क्रम) जाननी चाहिए। जो पृथक्-पृथक् रूप में इस क्षेत्र का (ज्ञान) तत्त्व जानता है, उसी को ब्रह्मज्ञानी (क्षेत्रज्ञ) जानना चाहिए। क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का विषयत्व एवं अविषयत्व प्रसिद्ध है, ब्रह्मा को विषय

अव्यूहासंकराच्चैव ज्योतिर्वच्च व्यवस्थित । यस्मात्प्रतिशरीरं हि सुखदुःखोपलब्धिता ।।
तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयं तु विजानता ।।३८।।
यदा प्रवर्तते चैषां भेदानां चैव संयमाः । स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा ।।३९।।
निवर्तते तदा तस्य स्थितिरागः स्वयंभुवः । सहसा योज्यकैः सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः ।।४०।।
विनिवृत्ते तदा रागे स्थितावात्मनिवासिनाम् । तत्कालवासिनां तेषां तदा तद्दोषदर्शिनाम् ।।४१।।
उत्पद्यन्तेऽथ वैराग्यमात्मवादप्रणाशनम् । भोज्यभोक्तृत्वनानात्वे तेषां तद्भावदर्शिनाम् ।।४२।।
पृथगज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः । प्रकृतौ करणातीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनाम् ।।४३।।
स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रशान्ता दर्शनात्मकाः । शुद्धा निरञ्जनाः सर्वे चेतनाचेतनास्तथा ।।४४।।
तत्रैव परिनिर्वाणाः स्मृता नाऽऽगामिनस्तु ते । निर्गुणत्वान्निरात्मानः प्रकृत्यन्ते व्यतिक्रमात् ।।४५।।
इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयंभुवः । भिद्यन्ते सर्वभूतानां करणानि प्रसंयमे ।।४६।।
इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां करणैः सह । तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः ।।४७।।

सूत उवाच

धर्माधर्मौ तपो ज्ञानं शुभे सत्यानृते तथा । ऊर्ध्वभावो ह्यधोभावो सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।।४८।।

एवं क्षेत्र को अविषय जानना चाहिए। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित है, उसकी उपयोगिता ही क्षेत्रज्ञ के लिए कही जाती है। शरीर के आधिक्य के कारण शरीरी भी अनेक कहे जाते हैं ।।३५-३७।। किन्तु ये ज्योतिर्मय पदार्थ की भाँति असम्बद्ध और असंकर रहते हैं। प्रत्येक शरीर में सुख-दुःख दोनों की उपलब्धि होती है, अतः ज्ञानी लोग पुरुष को अनेक मानते हैं। बहुत काल व्यतीत हो जाने पर प्रकृतिवश जब सब के भेद की प्रवृत्ति का संयम घटित होता है तब स्वयंभू की स्थितिबुद्धि निवृत्त हो जाती है। और उस समय समस्त ब्रह्मलोक-निवासी सहसा अपनी-अपनी स्थितिवृत्ति में दोष देखकर वैराग्ययुक्त हो जाते हैं। जिससे उनके आत्मवादात्मक अहंकार का सर्वथा विनाश हो जाता है। भोग्य एवं भोक्तापन के ज्ञान से रहित होकर वे नानात्व के दर्शनाभाव से प्रशान्त होकर आत्मा में अवस्थित होते हैं ।।३८-४२।। वे समस्त ब्रह्मलोक-निवासी पृथक्-पृथक् क्षेत्र ज्ञानयुक्त होने के कारण ही क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। वे सब प्रकृतिगत सभी कारणों से परे हैं और उन सबके नानात्व के देखनेवाले हैं। चेतनाचेतनात्मक, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, निरञ्जन, प्रकृति में निर्वाण प्राप्त करनेवाले एवं पुनः कभी लौटकर आनेवाली नहीं हैं अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता। प्रकृति निर्गुण और निरात्म होने के कारण वे क्षेत्रज्ञगण मुक्त हो जाते हैं, उनका पुनः आगमन (जन्म) नहीं होता। स्वयंभू का प्राकृत प्रतिसर्ग इसी प्रकार का कहा जाता है। सभी भूतों के कारणसमूह प्रकृति के इस गुण-संयम में भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। तत्त्वों का करणों के साथ इसी प्रकार का संयम है। द्विजवृन्द! यह तत्त्वप्रसंयम आवर्तनशील कहा जाता है ।।४३-४७।।

सूत बोले-ऋषिवृन्द! धर्म, अधर्म, तप, ज्ञान, सत्य, झूठ, ऊर्ध्व, अधः, सुख, दुःख, प्रिय, अप्रिय-ये सब

सर्वमेतत्प्रयातस्य गुणमात्रात्मकं स्मृतम् । निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम् ।।४९।।
प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति । योन्यवस्था स्वभावे च देहिनां तु निषिच्यते ।।५०।।
जन्तूनां पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् । अव्यक्तस्थानि तान्येव पुण्यपापानि जन्तवः ।।
योजयन्ति पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ।।५१।।
धर्माधर्मौ तु जन्तूनां गुणमात्रात्मकावुभौ । करणैः स्वैः प्रचीयेते कायत्वेनेह जन्तुभिः ।।५२।।
सुचेतनाः प्रलीयन्ते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः । सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जन्तवः ।।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते करणैः संचरन्ति च ।।५३।।
राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः । गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ।।५४।।
ऊर्ध्वं देवात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः । तयोः प्रवर्तकं मध्य इहैवाऽऽवर्तकं रजः ।।५५।।
इत्येवं परिवर्तन्ते त्रयः श्रोतोगुणात्मकाः । लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता ।।५६।।
अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभ्यन्ते हि मानवैः । एतास्तु गतयस्तिस्त्रः शुभाः पापात्मिकाः स्मृताः ।।५७।।
तमसाऽभिभवाज्जन्तुर्याथातथ्यं न विन्दति । अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ त्रिविधं वध्यते ततः ।।५८।।
प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च । दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्तं विवर्तते ।।५९।।

गुणमात्रात्मक कहे जाते हैं। इन्द्रियों से परे अर्थात् जितेन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न प्राणियों के जो कुछ भी शुभाशुभ पुण्य-पापात्मक कर्म हैं, वे सब प्रकृतिवश प्रतिष्ठित हैं। प्राणधारी जन्तुओं के जो कुछ भी पुण्य-पापादि कर्म प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं। प्रकृति ही उन देहधारियों के स्वभाव की उत्पत्ति-स्थली है। अव्यक्त प्रकृति में प्रतिष्ठित जन्तुओं के पुण्यपापादि कर्मसमूह अन्य शरीर धारण करने पर पुनः संयुक्त हो जाते हैं। देहधारियों के धर्म और अधर्म—ये दो गुणमात्रात्मक हैं। कार्य दशा में अपने-अपने कारणों द्वारा देहधारी के स्वभाव में वृद्धि प्राप्त करते हैं। इस जगत् में क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सुचेतन गुण समुदाय सृष्टि की और संहारदशा में अपने-अपने करणों द्वारा संयुक्त, वियुक्त और संचरणशील होते हैं ।।४८-५३।। समस्त पुरुषों में अधिष्ठित राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी—ये तीन गुणमात्र वृत्तियाँ प्रवर्तित होती हैं। ऊर्ध्व भाग देवात्मक एवं सत्त्वगुणसम्पन्न है, अधोभाग तमोगुणमय है, दोनों का मध्यवर्ती एवं प्रवर्तक भाग रजोगुणमय इह लोक प्रापक है। समस्त त्रैलोक्य में सर्व जीवों के भीतर यही तीन भाव परिवर्तित होते रहते हैं। ज्ञानी पुरुष को लोक में समस्त जीवों के इन विविध स्वभावों की पर्यालोचना नहीं करनी चाहिए। मानव अविद्यावश विविध प्रकार के कर्मों का अनुष्ठानकर शुभ, पाप एवं मध्यात्मक तीन गतियों को प्राप्त करता है। जन्तुगण तमोगुण में आबद्ध होकर यथार्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करने से वंचित रह जाते हैं। और इस प्रकार तत्त्वों के अदर्शन के कारण तीन प्रकार के बन्धनों से आबद्ध होते हैं। प्रथम प्राकृत बन्धन, द्वितीय वैकारिक बन्धन और तृतीय दक्षिणात्मक बन्धन—इन तीनों से अतिशय आबद्ध होकर जन्तुगण दुःख का अनुभव करते हैं। ये तीनों अज्ञानमूलक बन्धन कहे

इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुकाः । अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ।।६०।।
*अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः । येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ।।६१।।
रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् । अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ।।
कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्तते ।।६२।।
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा । पुनर्भवकरी दुःखा कर्मणां जायते तु सा ।।६३।।
सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः । तैलपालीकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्तते ।।६४।।
तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते । तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ।।६५।।
ज्ञानाद्धि त्यज्यते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते । वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ।।६६।।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् । अभिषङ्गाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवशात्मनः ।।६७।।
अनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविषादनम् । दुःखलाभेन तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ।।६८।।
इत्येष वैषयो रागः संभूत्या कारणं स्मृतम् । ब्रह्मादौ स्थावरान्ते वै संसारे ह्याधिभौतिके ।।
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ।।६९।।

जाते हैं ।।५४-५९$\frac{१}{२}$।। अनित्य पदार्थों में नित्यता का दर्शन, दुःख में सुख का दर्शन, परकीय वस्तु में निजत्व का दर्शन, अपवित्र में पवित्रता का दर्शन, जिनके मन में ऐसे दोष रहते हैं, उनके विपर्ययवश ज्ञान में भी दोष हो जाते हैं। राग और द्वेष से पूर्ण निवृत्ति का होना ही ज्ञान कहा जाता है। ऐसे ज्ञान का अभाव तमोगुण का मूल है, शुभ एवं अशुभ कर्मों का प्रेरक रजोगुण है। कर्मों से पुनः शरीर धारण करना पड़ता है, जिससे महादुःख की प्राप्ति होती है ।।६०-६२।। कान से, नेत्र से, चमड़े से, जीभ से और नाक से पुनर्जन्म के कारणभूत कर्मों का जन्म होता है। अपने-अपने किये गये कर्मों के फल से ही अज्ञ जीव की इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषयों की तृष्णा में फँसकर दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। वह तेली के बैल के समान उन्हीं विषयों में बार-बार चक्कर काटता रहता है। इसी कारण से समस्त अनर्थों के मूलभूत अज्ञान से बचने का उपदेश किया जाता है। उसे अपना शत्रु समझकर मनुष्य को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए। ज्ञान द्वारा ही समस्त अज्ञानों से मुक्ति मिलती है। अज्ञान त्याग से सांसारिक विषय-वासनाओं से विराग होता है। वैराग्य से मन की शुद्धि होती है और मनः शुद्धि से सात्त्विक भावनाओं का उदय होता है, जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। अब इसके उपरान्त समस्त प्राणियों को अज्ञान में डालनेवाले राग के विषय में बतला रहा हूँ। इसी राग के कारण प्राणिसमूह अवश होकर विषय-वासनाओं से निबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के अनुराग से ही प्रीति, ताप एवं विषाद का जन्म होता है। मनोभिलषित वस्तु की प्राप्ति में बाधा पड़ने से दुःख होता है, उसके रात-दिन के अनुस्मरण से सुख का अनुभव होता है। यह सब विषयगत राग है, जो सब की उत्पत्ति का कारण कहा जाता है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर जीवनिकाय जितने हैं, वे सब इस आधिभौतिक जगत् में इसी अज्ञानमूलक विषयों के प्रति अनुराग रखने से जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए इस अज्ञान

---

* नास्त्ययं श्लोकः ख. पुस्तके।

यस्य चाऽर्षं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च। वर्णाश्रमविरोधी यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ।।७०।।
एष मार्गो हि निरधितिर्यग्योनौ च कारणम्। तिर्यग्योनिगतं चैव कारणं स निरुच्यते ।।७१।।
विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनो च षड्विधे। मारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः ।।७२।।
अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम्। इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ।।७३।।
सत्त्वस्थमात्रकं चित्तं यथा सत्त्वप्रदर्शनात्। तत्त्वानां च तथा तत्त्वं दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ।।७४।।
सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम्। नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वैयोगमुच्यते ।।७५।।
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च। संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ।।७६।।
निःसंबन्धो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते। स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ।।७७।।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः। स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शिभिः ।।७८।।
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात्। लिङ्गाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरञ्जनम् ।।७९।।
निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते। तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम् ।।८०।।
निमित्तमप्रतीघात इष्टशब्दादिलक्षणे। अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ।।८१।।

से सर्वथा बचे रहना चाहिए ।।६३-६९।। ऋषियों के कहे गये मत एवं शिष्टजनों द्वारा आचरित कर्मसमूह उक्त अज्ञान के अनुकूल नहीं है, यह अज्ञान वास्तव में वर्णाश्रमधर्म विरोधी एवं शिष्टानुमोदित शास्त्रों से विपरीत है। यह एक अज्ञान पथ अस्थिर एवं तिर्यक् योनि में जन्म देने का कारण है। तिर्यक् योनिगत कारण यह कहा जाता है। उस तिर्यक् योनि में जन्म लेने से जो यातनाएँ अनुभव करनी पड़ती हैं, उससे भी अधिक विविध प्रकार का कष्ट इस अज्ञान से मिलता है। छह प्रकार के कारणों एवं विषयों में तथा तिर्यक् योनियों में जो भी यातनाएँ जीवों को अनुभव करनी पड़ती हैं, वे कामनाओं के प्रतिघात से उत्पन्न होती हैं। वह सारी असफलता एवं ऐश्वर्य की न्यूनता इच्छाओं के प्रतिघात होने से ही उत्पन्न कही जाती है। भूतादिकों की ये चार प्रकार की तामसी वृत्तियाँ कही गयी हैं। सात्त्विक भावनाओं के प्रदर्शन होने से चित्त को सत्त्व प्रधान माना जा सकता है, तत्त्वों के यथावत् अनुदर्शन एवं विचार से, तत्त्वों के रहस्य ज्ञान से, सत्त्व और क्षेत्रज्ञ का नानात्व ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान से ही योगोत्पत्ति होती है—ऐसा लोगों का कहना है ।।७०-७५।। उसी संसार से बँधे रहने पर वास्तव बन्धन एवं उसी से मुक्त रहने पर वास्तविक मुक्ति होती है। संसार से विनिवृत्त हो जाने पर जब मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तब प्राणी लिङ्ग शरीर से भी मुक्त हो जाता है। उस मुक्तावस्था में जीव का किसी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। उसकी एक अचैतन्यावस्था रहती है, केवल आत्मनिष्ठ वह रहता है। जीव की इस विशेष अवस्था को, जब वह केवल आत्मस्थ रहता है, विरूप कहा जाता है। संक्षेप में मैंने ज्ञान एवं मोक्ष का परिचय आप लोगों को कराया है, तत्त्वद्रष्टा लोग इस मोक्ष को तीन प्रकार का बतलाते हैं ।।७६-७८।। उनमें प्रथम मोक्ष ज्ञान बल से संसारिक विषय-वासनाओं से वियोग होना कहा जाता है। दूसरा मोक्ष, राग-द्वेषादि का निर्मूलन होना है, जिससे लिंगाभाव दशा में जीव को कैवल्य की प्राप्ति होती है, कैवल्य से निरञ्जनत्व एवं निरञ्जनत्व से परम शुद्धत्व की प्राप्ति होती है, उस विशेष मोक्षावस्था में जीव को

क्षेत्रज्ञेष्ववसज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ।।८२।।
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षणे। अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात् ।।८३।।
तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम्। एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ।।८४।।
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्वाऽनुचिन्त्य च। विशुद्धं कार्यकरणं सत्त्वाभ्येति चरान्तुय (?) ।।८५।।
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति। ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ।।८६।।
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ।।८७।।
प्राणस्थानानि भिन्दन्हि च्छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च। शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूर्ध्वं तु क्रमते ततः ।।८८।।
स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः। समासात्संवृते ज्ञाने संवृतेषु च कर्मसु ।।८९।।
स जीतोऽनभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः। अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुनः ।।९०।।
शरीरं प्रजहं (हत्) सो वै निरुच्छ्वासस्ततो भवेत्। एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ।।९१।।
यथेह लोके खद्योतं नीयमानमितस्ततः। रञ्जनं तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते ।।९२।।
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम्। शब्दाद्ये विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ।।९३।।

किसी मार्ग प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं रहती। तृतीय मोक्ष तृष्णा का सर्वतोभावेन अभाव होना है, तृष्णा का यह सर्वथा विनाश मोक्ष का मूल कारण है। अभिमत शब्दादिकों में प्रतिघातजन्य दुःखानुभूति मुक्तात्माओं को नहीं होती, ये आठ प्रकृतिजन्य रूप, जो गुण मात्रात्मक कहे जाते हैं, क्षेत्रज्ञों में क्रमानुरूप अवसक्त होते हैं। अब उसके उपरान्त दोष दर्शन के कारण वैराग्य का लक्षण बतला रहा हूँ। पाँच प्रकार के दिव्य एवं मानुष विषयादिकों में अनासक्ति एवं द्वेषाभाव का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि इनमें दोष के दर्शन होते हैं। सन्ताप, प्रीति एवं विषाद को वर्जित करना चाहिए। इस प्रकार इन्हें छोड़ देने पर शरीरी सांसारिक पदार्थों में ममत्वरहित हो जाता है ।।७९-८४।। यह संसार अनित्य है, अमंगलकारी है, दुःखदायी है,—ऐसा सोचकर कार्य एवं कारणों के विशुद्ध तत्त्व को जानकर ही विज्ञों को चित्त के कषाय की तरह परिपक्व हो जाने पर समस्त दोषों का दर्शन होता है। जिससे महाप्रयाण काल में नैमित्तिक दोषों के कारण शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित ऊष्मा का प्रकोप होता है। और वह शरीर में रहनेवाले समस्त दोषों को रोकता है प्राणों के स्थानों का भेदन एवं मर्मस्थलों का छेदन करता हुआ शीतलता से अधिक प्रवृद्ध वायु ऊर्ध्वगामी होता है ।।८५-८८।। समस्त जीवधारियों के प्राण-स्थलों में अवस्थित वायु की यही दशा अन्त समय में होती है। संक्षेप में समस्त चेतना एवं कृतकर्मों के संकुचित हो जाने पर वह जीव स्वकृत पूर्व कर्मों के साथ शरीर से अपनी स्थिति विच्छिन्न कर लेता है। आठों अङ्गों से प्राण की समस्त वृत्तियाँ छूट जाती हैं। इस प्रकार शरीर छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वासरहित दशा में हो जाता है। और समस्त प्राणों से विहीन होकर वह शरीर अन्त में मृतक नाम से पुकारा जाता है। जैसे इस लोक में खद्योत को इधर-उधर ले जानेवाला भी प्रकाशमान होता है और खद्योत के मर जाने पर वह भी नहीं दिखायी पड़ता वही दशा प्राणों की और शरीर की है। तृष्णा का विनाश होना ही तीसरे मोक्ष का लक्षण कहा गया है। शब्दादिक पाँच दोषादि विषयों से द्वेष एवं अतिशय आसक्ति का न रखना प्रीति एवं

अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः प्रीतितापविवर्जनम् । वैराग्यकारणं ह्येतत्प्रकृतीनां लयस्य च ।।९४।।
अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् । अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतान्ताः प्रकृतेर्लयाः ।।९५।।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः शिष्टाः शास्त्रविरोधिनः । वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ।।९६।।
ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवताः । ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ।।९७।।
निमित्तिमप्रतीघात इष्टे शब्दादिलक्षणे । अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ।।९८।।
क्षेत्रज्ञेष्वनुषज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु । प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ।।९९।।
पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा । श्वाविति श्वानपानश्च(?)योनीः प्रविशतस्तथा ।।१००।।
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् । जीवमाणास्तथा लिङ्गं कारणं च चतुष्टयम् ।।१०१।।
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलिख्यते । व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं स वै रूपं तु कृत्स्नशः ।।१०२।।
अव्यक्तान्तर्गृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् । एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते ।।१०३।।
नष्टं चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् । यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते ।।१०४।।
भिद्यते करणं चापि अव्यक्ताज्ञानिनस्तथा । मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः ।।१०५।।

सन्ताप से वर्जित रहना ही वैराग्य एवं प्रकृति के विलय का कारण कहा गया है ।।८९-९४।। पूर्व कथित आठों प्रकृतियों को यथाक्रम जानना चाहिए, जो अव्यक्त से लेकर पाँचों महाभूतों तक कही जाती है, यही आठ प्रकृति के लय हैं। शास्त्र से विरोध (न) करनेवाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी शिष्ट कहे जाते हैं, वर्णाश्रम-व्यवस्था के धर्मशासन देवस्थानों की प्राप्ति के कारण भूत हैं। ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देवयोनियाँ कही जाती हैं, अणिमा आदि ऐश्वर्यदायिनी सिद्धियाँ भी आठ हैं। अभिमत शाब्दिक पदार्थों में प्रतिघातजन्य दुःखानुभूति उन स्थानों में रहनेवालों को नहीं होती। वे प्रकृतिजन्य गुणमात्रात्मक आठ प्रकार के स्वरूप क्षेत्रज्ञों में क्रमानुसार अवसक्त होते हैं। वर्षाकाल में जिस प्रकार आकाशमण्डल में अवस्थित मेघों में तद्गत जलादि पदार्थों को लोग चर्मचक्षु से नहीं देख सकते केवल अनुमानादि द्वारा ही उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सिद्ध लोग जीवात्मा को अपने दिव्य नेत्रों से देखते हैं, सामान्य लोग जीव को नहीं देख सकते। वह जीवात्मा द्विजाति उच्च योनियों से लेकर श्वानों को बाँधनेवाले चाण्डालों तक की योनियों में प्रवेश करता है, इस प्रकार ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्, समस्त योनियों में वह यथाक्रम अपने कर्मों के अनुसार धावन करता रहता है। जीव, प्राण, लिङ्ग, कारण प्रभृति पर्यायवाची शब्दों द्वारा जो सब एक ही अर्थ के द्योतक हैं, वह उल्लिखित होता है। व्यक्त, अव्यक्त सर्वत्र जगत् में वह प्रमाणस्वरूप है। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित अव्यक्तान्तः पाति समस्त जगत् के इन समस्त कारणों को भलीभाँति अवगत कर लेने पर प्राणी पवित्र हो जाता है और उसे लोग विप्र की उपाधि देते हैं ।।९५-१०३।। जगत् के इन समस्त कारणों एवं तत्त्वों को भलीभाँति देख लेने पर जीवात्मा यथेष्ट रूप से सुखपूर्वक शरीर छोड़ने पर बहिर्गत होता है। अव्यक्तादि के ज्ञान होने के कारण प्राणी के अन्य जन्मादि के कारणों का विनाश हो जाता है, गुणों के परिणामों से वह मुक्त हो जाता है, और इस

नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथाऽङ्कुरः । जीविकः सर्वसंसाराद्बीजशारीरमानसः ।।१०६।।
ज्ञानाच्चतुर्दशाच्छुद्धः प्रकृतिं सोऽनुवर्तते । प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ।।१०७।।
तत्सद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते । अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ।।१०८।।
अस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते । क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ।।१०९।।
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाव्यते । क्षेत्रत्वप्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययी सदा ।।११०।।
क्षयणात्करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च । भाज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ।।१११।।
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं विलक्षणं । विकारलक्षणं तद्वै साक्षरक्षरमेव च ।।११२।।
तमेव च विकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः । तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ।।११३।।
*संसारनरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत् । दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते ।।११४।।
सुखदुःखमोहभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते । अचेतत्वाद्धि विषयस्तद्धि धर्मविभुः स्मृतः ।।११५।।
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत् । अक्षरं तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ।।११६।।
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते । पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषे+त्यभिधीयते ।।११७।।

प्रकार शान्तिपूर्वक प्राणादि के परित्याग के अनन्तर वह शरीर एवं मानस कर्म सूत्रों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर अन्य शरीर भी नहीं धारण करता, ठीक उसी तरह जैसे बीज के भस्म हो जाने के बाद अङ्कुर का उद्गम नहीं होता। चौदह प्रकार के ज्ञानों से सुपरिचित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति का अनुवर्तन करता है। विद्वान् लोग केवल प्रकृति को ही सत्य बतलाते हैं, विकारों का उनकी दृष्टि में मिथ्यात्व सिद्ध हो चुका है। जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, वह असत्य अथवा मिथ्या है, सद्भाव सत्य कहा जाता है, क्षेत्रज्ञ नाम एवं रूप से रहित है किन्तु नाम और रूप की परम्परा उसी से चलती कही जाती है। क्षेत्र के जानने के कारण उसकी क्षेत्रज्ञ की उपाधि है। उस क्षेत्र का भली-भाँति प्रत्यय (अधिगम) कर लेने के कारण क्षेत्रज्ञ मङ्गलदायी कहा जाता है ।।१०४-१०९।। जीवगण इसलिए उस मंगलकारी क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं, क्षेत्र की भावना केवल क्षेत्रज्ञों द्वारा होती है। यह क्षेत्र प्रत्यय है, क्षेत्रज्ञ सर्वदा उसका प्रत्ययी है। क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य एवं विषयत्व के कारण क्षेत्रज्ञ लोग उसकी क्षेत्र संज्ञा बतलाते हैं, सवैरूप्य विलक्षण महत् से लेकर विशेष तक समस्त क्षराक्षर पदार्थ निचय विकार कहे जाते हैं। उन समस्त विकारों से पुनः क्षरण होता देखा जाता है इसीलिए उन्हें क्षर कहते हैं। संसार एवं नरकों से पुरुष की रक्षा करता है, अनेक दुःखों से उसे पुनः-पुनः बचाता है, अतः उसको क्षेत्र कहते हैं। सुख, दुःख एवं मोह उत्पन्न करता है, अतः उसकी भोज्य नाम से भी प्रसिद्धि है, अचेतन विषय होने के कारण वह सर्वव्यापी विभु नाम से स्मरण किया जाता है ।।११०-११५।। वे सब विकार समूह यतः कभी क्षय नहीं होते, क्षीण नहीं होते, अतः अक्षर नाम से भी विख्यात हैं। पुर में सर्वदा शयन करने के कारण पुरुष नाम पड़ा, पुर का प्रत्ययी होने से भी उसकी पुरुष नाम से प्रसिद्धि है। पुरुष के लक्षण क्या हैं? उसके जाननेवाले उसे किस रूप में जानते हैं—इसे बतला रहे हैं, सुनिये। वह पुरुष शुद्ध, निरञ्जन

---

* अयं श्लोको न विद्यते क. घ. पुस्तकयोः।

+ अत्र संधिरार्षः।

पुरुषं कथयस्वाथ कथं तज्ज्ञैर्विभाष्यते । शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जितः ।।११८।।
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः । नैर्हेतिकान्तनिर्देश्यसूक्तस्तस्मिन्न विद्यते ।।११९।।
शुद्धत्वान्न तु देश्यो वै हृष्टत्वात्समदर्शनः । आत्मप्रत्ययकारी सारनूनं (?) चापि हेतुकम् ।।
भावग्राह्यमनुमान्यं चिन्तयन्न प्रमुह्यते ।।१२०।।
यदा पश्यति ज्ञातारं शान्तार्थं दर्शनात्मकम् । दृश्यादृश्येषु निर्देश्यं तदा तदुद्धरं वरम् ।।१२१।।
एवं ज्ञात्वा स विज्ञाता ततः शान्तिं नियच्छति । कार्ये च कारणे चैव बुद्ध्यादौ भौतिके तदा ।।१२२।।
संप्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च । विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्वशः ।।१२३।।
स्वेनाऽऽत्मानं तमात्मानं कारणात्मा नियच्छति । प्रकृतौ कारणे चैव स्वात्मन्येवोपतिष्ठति ।।१२४।।
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः । एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति (?) वा ।।१२५।।
आत्मवान्स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा । कर्ता वा साऽप्यकर्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ।।
यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने । अवाच्यं तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ।।१२६।।
अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वशः । नाभिलिम्पति तत्तत्त्वं संप्राप्य मनसा सह ।।१२७।।
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शान्ते क्षीणे निरञ्जने । व्यपेतसुखःदुखे च विरुद्धे शान्तिमागते ।।१२८।।

की तरह परम निर्मल, ज्ञान एवं अज्ञान दोनों से विवर्जित, अस्ति तथा नास्ति इन दोनों विशेषणों से रहित है। उसके लिए बद्ध, मुक्त, गतिशील एवं स्थिर कोई भी विशेषण लागू नहीं होता। परम शुद्धता के कारण वह अनिर्देश्य एवं आनन्दस्वरूप कहा जाता है। परम हृष्ट होने के कारण समदर्शी कहा जाता है। आत्मप्रत्यय कर्त्ता होने के कारण उनमें कोई हेतुवाद नहीं रहता। वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य तथा अनुमानों एवं चिन्तनों द्वारा गम्य है। इन उपायों द्वारा उसे देखनेवाले मोह के वश नहीं होते ।।११६-१२०।। इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व प्रपञ्च में एकमात्र निर्देश्य, परम श्रेष्ठ, ज्ञानमय, शान्तिमय सर्वज्ञ पुरुष को जब प्राणी देखता है तभी वह समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है और तभी उसे वास्तविक शान्ति की उपलब्धि होती है। कार्य, कारण, भौतिक बुद्धि आदि पदार्थ समूह, संयुक्त अथवा वियुक्त, जीवित अथवा मृत इन सब में वह विज्ञाता पृथक्त्व का दर्शन नहीं करता। आत्मा द्वारा वह उस कारणात्मा से संयुक्त होता है, प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी ही आत्मा में उपासना करता है। इस लोक अथवा पर लोक में वह विद्यमान रहता है और नहीं भी रहता है। वह एक है अथवा अनेक है, क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है, आत्मवान् है अथवा निरात्मा है, चेतन है अथवा अचेतन है, कर्त्ता है वा अकर्त्ता है, भोक्ता है वा भोज्य है इन किन्हीं भी विशेषणों से विशिष्ट एवं अविशिष्ट है ।।१२१-१२५।। उस निरञ्जन क्षेत्रज्ञ को जानने के बाद संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती, उसकी कोई संज्ञा नहीं होती इसी कारण से वह अवाच्य कहा जाता है। उसके कोई हेतु नहीं हैं, अतः वह अग्राह्य है। चिन्तन से परे एवं सर्वत्र प्राप्य (व्याप्त) होने के कारण वह अप्रतर्क्य है। मन के साथ उसे प्राप्त

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते। एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ॥१२९॥
सृजते ग्रसते चैव ग्रस्तः पर्यवतिष्ठते। क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्वं प्रवर्तते ॥१३०॥
अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते वृद्धिपूर्वकम्। साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विधितस्तयोः ॥
अनादिमान्स संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ॥१३१॥
यावच्च सर्गप्रतिसर्गकालस्तावच्च तिष्ठति सुसंनिरुध्य।
पूर्वं हितव्ये (?) तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥१३२॥
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वं प्र (प्रा) धानिकी चेश्वरकारिता च।
अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१३३॥
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः। उक्तो ह्यस्मिंस्तदाऽत्यन्तं करयस्तत्प्रमुच्यते (?) ॥१३४॥
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्तितो मया। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयः किं वर्तयाम्यहम् ॥१३५॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रतिसर्गवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

करने के उपरान्त अन्य विषयों में आसक्त नहीं होना पड़ता। क्षेत्रज्ञ के गुणरहित शुद्ध, शान्त, क्षीण, मलरहित, सुख-दुःख से विहीन, परम शान्ति प्राप्त कर लेने; एवं निरात्मक हो जाने पर वाच्य एवं अवाच्य का अस्तित्व नहीं रह जाता। व्यक्त एवं अव्यक्त सृष्टि का संसार एवं विस्तार उसी परम पुरुष से प्रतिष्ठित होता है। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित इस समस्त जगत् की वह पुरुष सृष्टि करता है, और लय काल में वहीं ग्रस लेता है ॥१२६-१३०। बुद्धिपूर्वक जगत् की सृष्टि एवं लय उसी के अधिष्ठान भूत होते हैं। उन दोनों के (प्रकृति एवं पुरुष के) संयोग साधर्म्य वैधर्म्य घटित होते हैं। उसका संयोग कब हुआ इसका आदि काल नहीं है, चिरकाल से वह है। सृष्टि के आदिमकाल से लेकर विनाशकाल तक प्रकृति उस परमपुरुष को सन्निरुद्ध करके रखती है, उस अवस्था में पुरुष से अबुद्धिपूर्वक यह सृष्टि प्रवर्तित होती है (?) उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानते हैं। जगत् की इस सृष्टि एवं संहार की इस प्रक्रिया को कोई तो ईश्वरकृत मानते हैं और कोई प्राधानिक अर्थात् प्रकृतिकृत। परन्तु सृष्टि का यह व्यापार अनादि एवं अनन्त है। जगत् को अभिमानपूर्वक वित्रासित करती हुई वह प्रकृति प्राप्त होती है। प्रकृतिजन्य सृष्टि का यह तृतीय हेतु कहा जा चुका, इनमें अत्यन्त निष्ठा रखनेवाला मुक्ति प्राप्त करता है। (?) आप लोगों से इस प्रकार तीन प्रतिसर्गों की चर्चा मैं विस्तारपूर्वक क्रमशः कर चुका, अब आगे के लिए बतलाइये, मैं क्या कहूँ ॥१३१-१३५॥

श्री वायुपुराण में प्रतिसर्गवर्णन नामक एक सौ दो अध्याय समाप्त ॥१०२॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ सृष्टिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । प्रजानां मनुभिः सार्धं देवानामृषिभिः सह ।।१।।
पितृगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् । दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ।।२।।
अत्यद्भुतानि कर्माणि विधिमान्धर्मनिश्चयः । विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ।।३।।
तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा । मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्याभूतसंभवम् ।।४।।
एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः । पप्रच्छुः सत्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्तनम् ।।५।।
(* कथं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते । बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ।।६।।
विकारेष्वविसृष्टेषु अव्यक्ते चाऽऽत्मनि स्थिते । + अप्रवृत्ते ब्राह्मणानु महासायो (यु) ज्यगैस्तदा ।।
कथं प्रपस्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।७।।

अध्याय १०३

सृष्टि वर्णन

ऋषियों ने कहा–सूत जी! आपने एक महान् आख्यान हम लोगों से कहा। मनु समेत समस्त प्रजाओं, ऋषियों समेत समस्त देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, भूतों, पिशाचों, उरगों, राक्षसों, दैत्यों, दानवों, यक्षों एवं पक्षियों के अति अद्‌भुत कर्म, उनके धर्म निश्चय, उनके जन्म की विचित्र एवं श्रेष्ठ कथाएँ, जो मन एवं कान को सुख देनेवाली थीं आपने हम लोगों को अपनी परम मनोहर वाणी में सुनाया। सूत पुत्र वे कथाएँ सचमुच मनुष्य को महाप्रलय पर्यन्त प्रसन्न रखनेवाली हैं। इस प्रकार उन सब यज्ञकर्त्ता महर्षियों ने सूत जी का सत्कार एवं समादर करते हुए पुनः सृष्टि प्रवर्तन की आख्या पूछा ।।१-५।। महाप्राज्ञ सूत जी! जब क्षेत्रज्ञ समस्त प्राकृत गुण बन्धनों से विमुक्त हो जाता है, प्रकृति के सत्त्व, रजस्, तमस् ये तीनों गुण साम्यावस्था में परिणत हो जाते हैं, समस्त ब्रह्माण्ड घोर अन्धकारमय हो जाता है, विकार समूह निष्क्रिय एवं प्रवृत्तिरहित हो जाते हैं, जीव समूह ब्रह्मा के साथ ही महान् साम्राज्य में सन्निविष्ट होकर अव्यक्तात्मा में विलीन हो जाते हैं, तब पुनः सृष्टि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है? उसे आप अच्छी तरह हम लोगों को बतलाइये। ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर लोमहर्षण सूत जी पुनः सृष्टि विषय की व्याख्या करते हुए बोले, ऋषिवृन्द! उस अवस्था में जिस प्रकार पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, मैं बतला रहा हूँ। संक्षेप में इस पुनः

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ख. पुस्तके नास्ति।

+ नस्त्यर्धमिदं घ. पुस्तके।

एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः । व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्तनम्) ।।८।।
अहं वो वर्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते । पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तं निबोधत ।।९।।
दृष्टं चैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः । तस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।।१०।।
अव्यक्तवत्परोक्षत्वाद्ग्रहणं तद्दुरासदम् । विकारैः प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्तते ।।११।।
प्रधानं पुरुषाणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति । धर्माधर्मौ प्रलीयेते अव्यक्तौ प्राणिनां सदा ।।१२।।
सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः । तमोमात्रात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ।।१३।।
अविभागवन्तावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ । सर्वकार्ये बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ।।१४।।
अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञो ह्यधिष्ठास्यति तान्गुणान् । एवं तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ।।१५।।
यदा प्रवर्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । भोज्यभोक्तृत्वसंबन्धं प्रपत्स्येते युतावुभौ ।।१६।।
तस्माच्छरणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तच्च वैषम्यं भजते तु तत् ।।१७।।
ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ।।१८।।
महदाद्यं विशेषान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् । क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ।।१९।।
ब्रह्माण्डे प्रथमः सोऽथ भविता चेश्वरः पुनः । ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपतिः शिवः ।।२०।।

सृष्टि का क्रम पूर्ववत् ही समझना चाहिए, फिर भी संक्षेप में बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये! मैंने जैसा देखा है, अनुमान किया है जिस प्रकार की युक्तियाँ एवं तर्क प्रचलित हैं, उन सबको बतला रहा हूँ, सुनिये। वाणी उस सृष्टि तत्त्व तक मन के साथ ही अपनी गति प्राप्त न करके निवृत्त हो जाती है ।।६-१०।। जिस प्रकार अव्यक्त परोक्ष एवं दुरधिगम्य है, उसी प्रकार सृष्टि के विषय भी परोक्ष एवं दुरधिगम्य हैं। जब विकार विलीन हो जाते हैं, उनका कहीं दर्शन नहीं होता, गुणों में साम्य हो जाता है, संसृति के कार्यजाल निवृत्त हो जाते हैं, उस समय पुरुष प्रकृति में साधर्म्य से अवस्थित होता है, प्राणियों के व्यक्ताव्यक्त धर्माधर्म भी विलीन हो जाते हैं। गुण सत्त्व में सत्त्वमात्रात्मक धर्म प्रतिष्ठित होता है, तमोगुण में तमोमात्रात्मक गुण प्रतिष्ठित होता है। गुणासाम्यावस्था में ये दोनों गुण विभागरहित हो जाते हैं। उस समय प्रधान के सभी कार्यों में प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक होगी। क्षेत्रज्ञ उन गुणों को अबुद्धिपूर्वक अधिष्ठित करेगा। उस समय पुर भी अभिमानपूर्वक प्राप्त होगा। जब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों परस्पर प्रवर्तित होंगे उस समय वे भोज्य और भोक्तृत्व सम्बन्ध से समन्वित होंगे ।।११-१६।। अतः इन सब की शरण एकमात्र अव्यक्त है, साम्यावस्था में प्रतिष्ठित वे गुणात्मक सृष्टि प्रारम्भ के समय क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित होकर विषमता को प्राप्त होते हैं। तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों व्यक्तावस्था को प्राप्त होंगे, क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित सत्त्व विकार को उत्पन्न करेंगे। वे विकार महत्तत्त्व से लेकर विशेष तक चौबीस गुणात्मक माने गये हैं। क्षेत्रज्ञ पुरुष एवं प्रकृति को प्राप्त होंगे। ब्रह्माण्ड में प्रथम वह ऐश्वर्यशाली पुनः उत्पन्न होगा। वह समस्त ज्ञेय जगत् एवं समस्त जीव समूह का अधीश्वर एवं शिव है। सभी मुक्तात्माओं का एकमात्र स्वामी, ब्रह्मा, ब्रह्ममय एवं महान् है। आदि देव है, प्रधान प्रकृति के अनुग्रह के लिए उसका

ईश्वरः सर्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् । आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ।।२१।।
अनाद्यौ वरमुत्पादावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ । अनादिसंयोगयुतौ सर्वक्षेत्रज्ञमेव च ।।२२।।
अबुद्धिपूर्वकं युक्तौ मशकौ तु वरौ तदा । अप्रत्ययमनाद्यं च स्थितावुदकमप्स्यशः (?) ।।२३।।
प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गे प्रपतस्यते । अज्ञा गुणैः प्रवर्तन्ते रजःसत्त्वतमात्मकम् ।।२४।।
प्रवृत्तिकाले रजसाऽभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यतां च ।
विशेषतां चेन्द्रियतां च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्याः ।।२५।।
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् । रजःसत्त्वतमा व्यक्ता विधर्माणः परस्परम् ।।२६।।
आद्यन्ते संप्रपतस्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः । संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यन्तेऽभिमानिनः ।।२७।।
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यन्ते अव्यक्तात्पूर्वमेव च । प्रसूते या च सुवहाः साधिकाश्चाप्यसाधिका ।।२८।।
संसरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह । कार्याणि प्रतिपतस्यन्ते उत्पद्यन्ते पुनः पुनः ।।२९।।
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्माधर्मौ परस्परम् । आरप्सन्ती (भन्ते) ह चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण च ।।३०।।
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् । गुणास्तत्प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।३१।।
गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।३२।।

यह आविर्भाव कहा जाता है। वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, अनादि एक परम सूक्ष्म कहे जाते हैं, अनादि काल से उन दोनों का संयोग कहा जाता है, समस्त क्षेत्र के वे अभिज्ञ हैं ।।१७-२२।। मशक और उदुम्बर, जल और मत्स्य की भाँति इनका सम्बन्ध अप्रतर्क्य, अनादि तथा नियत है। (?) अज्ञ प्रकृति पुनः सृष्टि काल में अपने रजस्, सत्त्व एवं तमस् गुणों के योग से विकारयुक्त होकर जगत् के रूप में परिणत हो जाती है। क्षेत्रज्ञ मानवगण इस प्रकृति के सृष्टि प्रवृत्ति काल में रजोगुण से आक्रान्त होकर महत्तत्त्व, महाभूत, इन्द्रिय एवं विशेषादि परिणामों का लाभ कर गुणों के अवसान को प्राप्त होते हैं। सत्य का सङ्कल्प करनेवाले ध्याननिष्ठ ब्रह्मा की सृष्टि प्रवृत्ति के समय परस्पर विधर्मी रजस्, सत्त्व, तमोगुण कार्यकारणवश व्यक्तावस्था को प्राप्त होते हैं। अभिमानी क्षेत्र एवं उसके जाननेवाले क्षेत्रज्ञ परस्पर व्यक्तभाव को सम्प्राप्त होंगे (?) अव्यक्त से प्रथम साधिका एवं असाधिका सत्त्वगुणमयी सृष्टि प्रादुर्भूत होकर स्थान एवं प्रकरणादि के साथ कार्य रूप में पुनः-पुनः आविर्भूत-तिरोभूत होती हैं ।।२३-२९।। क्षेत्रज्ञगण सृष्टि-विस्तार के लिए परस्पर तुल्य होकर भी सृष्टि के उस आदिम काल में गुणमात्रात्मक धर्म-अधर्म वर अनुग्रह आदि से विविध विकार को प्राप्त होते हैं, गुणों की विचित्रता के कारण ही वे इस प्रकार विकार को प्राप्त होते हैं, उनके पूर्व युगीन गुणगण उनके समीप स्वयमेव अनुधावन करते हैं। इसीलिए वे उन्हें रुचिकर प्रतीत होते हैं। पूर्व सृष्टि में क्षेत्रज्ञों के जो गुण रहते हैं इस पर सृष्टि काल में भी उन्हीं गुणों को वे पुनः-पुनः प्राप्त करते हैं। हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य-ये गुणगण उनसे पूर्व सृष्टि के भावित रहते हैं अतः इस पर सृष्टि में वे उन्हें प्राप्त होते हैं, इसी कारणवश उन्हें ये रुचिकर भी होते हैं। महाभूत, इन्द्रियार्थ, मूर्त पदार्थ एवं प्राणिवृन्द की अनेकता-ये सब

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।३३।।
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु । विप्रयोगाश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्तते ।।३४।।
इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः* । समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ।।३५।।
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् । प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः ।।३६।।
स पुत्रः संभवपिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः । सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ।।३७।।
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चाऽऽत्मनः । युगपत्संप्रवर्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ।।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्तते ।।३८।।
विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । कीर्तितं वो यथा पूर्वं तथैवाभ्युपधार्यताम् ।।३९।।
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं संस्थितिं च व्ययं च ।।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ।।४०।।
यथा यूयं विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ।।
त्यक्त्वा देहानायुषोऽन्ते कृतार्थान्पुण्यांल्लोकान्प्राप्य यथेष्टं चरिष्यथ ।।४१।।
एते ते नैमिषेया वै इष्ट्वा सृष्ट्वा च वै तदा । जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः ।।४२।।

कार्य-कलाप गुणों की विचित्रता के कारण ही घटित होते हैं। संक्षेप में पुनर्वार सृष्टि के क्रम को मैं आप लोगों को सुना चुका। अब संक्षेप में ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन कर रहा हूँ ।।३०-३५।। नित्य, सत्-असत्-उभयात्मक, अव्यक्त, कारणस्वरूप प्रकृति पुरुष के संयोग से एक महान् ऐश्वर्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है उसी का नाम ब्रह्मा है। वही समस्त उत्पन्न पदार्थों का पिता है। अभिमान गुणात्मक समस्त लोकों की सृष्टि करता है। वही महत् पद से भी विशिष्ट कहा जाता है। उस महत् से अहङ्कार का उद्भव होता है। उसकी आत्मा से भूतों की उत्पत्ति होती है, वे समस्त भूत चय एक ही साथ उत्पन्न होते हैं, वे ही इन्द्रियों के नाम से भी विख्यात हैं। उन भूत समूहों से अन्यान्य भूत भेदों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार सृष्टि का प्रवर्तन होता है। हे ऋषिवृन्द! सृष्टि की यह कथा परम विस्तृत एवं महान् है। मेरी जैसी कुछ बुद्धि थी, जैसा मैंने सुना था, वैसा आप लोगों के सम्मुख बतला चुका, उसे उक्त प्रकार से ही समझिये। नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने सूत से लोक की स्थिति, उत्पत्ति एवं विनाश की उक्त वार्ता सुनने के उपरान्त उस दीर्घकालीन यज्ञ में अवभृथ स्नान किया और पुण्य लोकों को प्राप्त किया। उसी प्रकार आप लोग भी विधिपूर्वक देवादि की पूजा अर्चा कर, यज्ञान्त में अवभृथ स्नान से शुद्धि लाभ कर, दीर्घायु के उपभोग के उपरान्त शरीरों को छोड़कर पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करोगे और वहाँ कृतकृत्य होकर यथेच्छ विहार करोगे। यज्ञकर्त्ता नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने जिस प्रकार यज्ञादि का अनुष्ठान कर, प्रजाओं की सृष्टि कर, यज्ञस्नान में अवभृथ

---

* इत उत्तरमयं श्लोकः ख. पुस्तके स यथा-धारणाक्षुतबुद्धीनां योगानां चैव धार्यताम्। यतेन्द्रियाः सुसंबन्धाधारणाद्योगनिश्चयाः। इति।

विप्रास्तथा यूयमपि दृष्ट्वा बहुविधैर्मखैः । आयुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्तारः स्थ द्विजोत्तमाः ।।४३।।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः । अनुषङ्ग उपोद्घात उपसंहार एव च ।।४४।।
एवमेतच्चतुष्पादं पुराणं लोकसंमतम् । उवाच भगवान्साक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः ।।४५।।
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमाः । तत्प्रसादादसंदिग्धं भूतोत्पत्तिलयानि च ।।४६।।
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम् । सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ।।४७।।
इमं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि तथाऽऽध्यापयतेऽपि च ।।४८।।
स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः । ब्रह्मसायौ(यु)ज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते ।।४९।।
तेषां कीर्तिमतां कीर्तिं प्रजेशानां महात्मनाम्× । प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ।।५०+।।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमतम् । कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिनः ।।५१।।
मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम् । देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ।।
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यं च महदाप्नुयात् ।।५२।।

स्नान के उपरान्त स्वर्ग को प्राप्त किया था उसी प्रकार द्विजवर्यवृन्द! तुम लोग भी अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान कर स्वर्ग को प्राप्त करोगे ।।३६-४३।। कथावस्तुपरिग्रहात्मक (वर्ण्य-विषयों की सूची) प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात एवं उपसंहार इन चार पादों से उपबृंहित लोकसम्मत इस महापुराण को लोककल्याण में निरत साक्षात् भगवान् वायु ने यज्ञ के प्रसङ्ग में मुनियों से कहा था। उन्हीं की कृपा से प्राप्त, इस असन्दिग्ध, भूतों की उत्पत्ति एवं विनाश की कथा से युक्त लोक की प्रधान सृष्टि एवं ईश्वरकारिता को भलीभाँति जानकर मेधावी पुरुष मोहवश नहीं होता ।।४४-४७।। जो विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास को सुनता है या दूसरों को सुनाता है, अथवा शिष्यों को पढ़ाता है, वह महेन्द्र के स्थान को प्राप्तकर अनन्त कालपर्यन्त सुख का अनुभव करता है। ब्रह्म साम्राज्य प्राप्तकर ब्रह्मा के साथ मुक्ति लाभ करता है। परम ऐश्वर्यशाली प्रजापतियों की यशोगाथाओं का, जो वास्तव में इस समस्त भूमण्डल के अधीश्वर हैं, गान कर प्राणी ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास रचित इस परम यशोदायक, आयु प्रदाता, पुण्यप्रद, वेदों द्वारा सम्मानित पुराण को ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं। जो इन मन्वन्तरेश्वरों की यशोगाथा का वर्णन करता है, परम ऐश्वर्यशाली, तेजस्वी देवताओं एवं ऋषियों का गुणगान करता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्ति प्राप्त करता है एवं महान् पुण्य का भागी होता है ।।४८-५२।। जो विद्वान् प्रत्येक पर्वों के अवसरों पर इस

× इतं परमेते श्लोकाः अधिका उपलभ्यन्ते ख. पुस्तके ते च यथा-इदं यः श्रावयेद्विद्वांस्तस्य चैवोत्तमा गतिः। धनधान्यसुखैश्वर्यं प्राप्यते नात्र संशयः। ब्राह्मणो लभते विद्यां ब्रह्मासायुज्यमाप्नुयात्। क्षत्रियो जयमाप्नोति सुरलोकोत्तमा गतिम् । वैश्यस्तु धनलाभांढ्या धनधान्यलभेति च शूद्रः सुखमवाप्नोति पुत्रपौत्रादिसंयुतः। श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽधीते शृणुयाद्यतः। अन्ते विष्णुपुरं याति यत्र गत्वा न शोचति। इति।

+ ब्रह्मभूयाय गच्छतीत्युत्तरमेते श्लोका अधिकाः ख. पुस्तके उपलभ्यन्ते ते च यथा-
येनेदं भारतं पुण्यं शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्यणशः । स चापि लभते स्वर्गं वायुप्रोक्ते प्रसादतः ।।
इदं वायुपुराणं च श्रद्धया वाऽपि यः पठेत् । तस्य गृहे स्थिता लक्ष्मीर्दीर्घमाप्नुरवामुतात् ।।
लिखित्वा लेखयित्वा च पूजयित्वा यथाविधि । नाग्निचौरभयं तत्र ग्रहरोगादिकं भयम् ।।

यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि। धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।५३।।
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः। अक्षयं सार्वकामीयं पितृंस्तच्चोपतिष्ठति ।।५४।।
तस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं पुराणं तेन चोच्यते। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५५।।
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्याः प्रधानतः। इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे (दधते) मतिम् ।।५६।।
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सर्वशः। तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।।
ब्रह्मसायो (यु) ज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते ।।५७!।
सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च। ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ।।५८।।
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः। बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ।।५९।।
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः। इन्द्रश्चापि वशिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ।।६०।।
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते। शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ।।६१।।

पुण्यप्रद कथा को सर्वदा सुनाया करता है, वह पापरहित होकर स्वर्ग प्राप्त करता है और साक्षात् ब्रह्मपद का अधिकारी होता है। इस पुराण के अन्तिम उपसंहार पाद को जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है, जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों को सुनाता है वह अपने पितरों की भूरि उपासना करता है। पुरा अर्थात् प्राचीनकाल में इसकी प्रतिष्ठा थी, अतः इसको पुराण कहते हैं, जो व्यक्ति पुराण की इस निरुक्ति का तात्पर्य समझता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्त होता है। तीनों वर्णों में जो मनुष्य इस परम श्रेष्ठ इतिहास को सुनकर धर्म की ओर प्रवृत्ति करता है, वह अपने शरीरस्थ रोमकूपों जितने करोड़ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है। समस्त पापों को दूर करनेवाले, पुण्यप्रद, पवित्र, यशोदायक इस पुराण को भगवान् ब्रह्मा ने मातरिश्वा वायु के लिए प्रदान किया था, वायु से इसे शुक्राचार्य ने प्राप्त किया, उनसे भी बृहस्पति को इसकी प्राप्ति हुई। उसके उपरान्त बृहस्पति ने सविता को इसकी शिक्षा दी ।।५३–५९।। सविता ने मृत्यु से कहा, मृत्यु ने पुनः इन्द्र को इसकी शिक्षा दी। इन्द्र ने भी वशिष्ठ को और वसिष्ठ ने सारस्वत को इसे दिया। सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्ट को, त्रिविष्ट ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया। उपरान्त अन्तरिक्ष ने वर्षों को, उन्होंने त्रय्यारुण को, त्रय्यारुण ने धनञ्जय को, धनञ्जय ने कृतञ्जय को, कृतञ्जय ने तृणञ्जय को, तृणञ्जय ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने गौतम को, गौतम ने निर्यन्तर को इसका उपदेश दिया। उसके उपरान्त निर्यन्तर ने वाजश्रवा को, वाजश्रवा ने सोमशुष्मा

ते सर्वे नाशमायान्ति यावच्चन्द्रद्युतारकाः। सर्वपापविनिर्मुक्तो अ (ह्य) न्ते विष्णुपुरं ब्रजेत् ।।
नच मारीभयं किंचित्सर्वत्र सुखामाप्नुयात्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिसंपदः ।।
भवन्ति सततं तस्य नात्र कार्या विचारणा। इदं वः क्षत्रियोऽधीते तस्य फलमनन्तकम् ।।
इहलोके परा कीर्तिं विजयस्तस्य जायते। पुत्रपौत्रसुखं तस्य मृतः स्वर्गपुरं वसेत् ।।
इदं चाधीयतेऽशूद्रःश्रावयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः। तस्य गृहे स्थिरा लक्ष्मीः सत्यं सत्यं हि नान्यथा इति ।।

वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च। त्रय्यारुणो धनंजये स च प्रादात्कृतंजये ।।६२।।
कृतंजयस्तृणंजयाय भरद्वाजाय सोऽप्यथ। गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः ।।६३।।
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च। स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ।।६४।।
तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये। शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ।।६५।।
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः। द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।।६६।।

शांशपायन उवाच

मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये। इत्येव वाचा ब्रह्माद्रिगुरुणा समुदाहृता ।।६७।।
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।।६८।।
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा। नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ।।६९।।
नाश्रद्दधानाविदुषे नापुत्राय कथंचन। नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।।७०।।

अव्यक्ते वै यस्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं कालमन्तर्गतं च ।।
वह्निं वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम्* ।।७१।।
वाचो वेदांश्चान्तरिक्षं शरीरं क्षितिं पादौ तारका रोमकूपान् ।।
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्याश्च अङ्गाणि च यस्य पुच्छम् ।।७२।।

को और उन्होंने तृणबिन्दु को इसका उपदेश किया। तृणबिन्दु ने दक्ष को, और दक्ष ने शक्ति को दिया। शक्ति से इसका उपदेश गर्भस्थ पराशर ने प्राप्त किया। पराशर से जातुकर्ण और जातुकर्ण से परम ऐश्वर्यशाली द्वैपायन ने इसे प्राप्त किया। द्विजवृन्द! उन्हीं द्वैपायन से इसकी शिक्षा मुझे प्राप्त हुई, और मैंने आप लोगों को सुनाया ।।६०–६६।।

शांशपायन बोले–द्विजवृन्द! इस प्रकार मैं भी व्यास से प्राप्त इस पुण्य कथा को अपने पुत्र अमितबुद्धि को भी सुना चुका हूँ। इसके आदि गुरु ब्रह्मा ही हैं। इस प्रकार इस पुण्य गाथा का वर्णन मैं आप लोगों से कर चुका। बुद्धिमानों को सर्वप्रथम गुरुजनों को नमस्कार करना चाहिए। धन, पुण्य, आयु, यश एवं मनोरथों को देनेवाले इस पापनाशक वृत्तान्त को ब्राह्मणों को सर्वदा नियमपूर्वक सुनना चाहिए। इस परम पवित्र एवं उत्तम आख्यान को कभी भूलकर अपवित्र, पापात्मा एवं ऐसे अनजान व्यक्ति को न बतलाना चाहिए, जो सेवा भाव ग्रहणकर शिष्य रूप में एक वर्ष तक सेवारत न रह चुका हो। इसी प्रकार इसका उपदेश अश्रद्धालु, अविद्वान्, अपुत्री एवं अहितकारी व्यक्ति को भी कभी न देना चाहिए। अव्यक्त जिसकी योनि (उत्पत्ति–स्थली) है, व्यक्ताव्यक्त काल जिसकी देह है, अग्नि जिसका मुख है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ जिसके कान हैं, वायु जिसकी नासिका है, वेद समूह जिसकी वाणी है, अन्तरिक्ष जिसका शरीर है, पृथ्वी जिसके चरण हैं, ताराएँ जिसकी रोमावलियाँ हैं, समस्त दिशाएँ जिसके समस्त अङ्गोपाङ्ग हैं, समस्त वेदाङ्ग जिसकी पूँछ हैं, उस परम देव–देव जनकों के भी जनक समस्त लोकसमूहों में व्याप्त एवं प्रतिष्ठित, वरदान दायक महेश्वर

---

* इत उत्तरग्रन्थस्त्रुटितो ङ. पुस्तके।

तं देवदेवं जननं जनाना सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितं च ।।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ।।७३।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सृष्टिवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०३।।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

व्याससंशयापनोदनम्

÷शौनकादिऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता । व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसंबोधनेन च ।।१।।
अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि चानघ । उपक्रमोपसंहारविधिनोक्तानि कृत्स्नशः ।।२।।
चतुर्दशसहस्त्रं च मात्स्यं प्रोक्तमतिस्फुटम् । तत्संख्याकं भविष्यं च प्रोक्तं पञ्चशताधिकम् ।।३।।
मार्कण्डेयं महारम्यं प्रोक्तं नवसहस्त्रकम् । कथितं ब्रह्मवैवर्तमष्टादशसहस्त्रकम् ।।४।।

ब्रह्मा को मैं सर्वप्रथम प्रयत होकर नमस्कर करता हूँ ।।६७-७३।।

श्री वायुमहापुराण में सृष्टिवर्णन नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ।।१०३।।

अध्याय १०४

व्यास की सन्देह-निवृत्ति

शौनकादि ऋषियों ने पूछा–महाभाग सूत जी! आप सचमुच पापरहित हैं, क्योंकि भगवान् व्यास की कृपा से आप निखिल शास्त्रों के मर्मों को अधिगत कर चुके हैं; आप अठारहों पुराणों को इतिहास, उपक्रम एवं उपसंहारादि समेत हम लोगों को सम्पूर्णतया बतला चुके। अत्यन्त स्पष्ट रीति से आपने चौदह सहस्र श्लोकों में वर्णित मात्स्य महापुराण को बतलाया, उतनी ही संख्यावाले भविष्य महापुराण को भी आपने बतलाया, भविष्य में मत्स्य की अपेक्षा पाँच सौ श्लोक अधिक हैं। उसके बाद आपने परम रमणीय नव सहस्र श्लोकों में पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का वर्णन किया ।।१-४½।। उसके उपरान्त अठारह सहस्र ब्रह्मवैवर्त का वर्णन आपने किया। बारह सहस्र एक सौ श्लोकों का

÷ अयमध्यायः कव्यतिरिक्तपुस्तकेषु न विद्यते।

शतोत्तरं च ब्रह्माण्डं सूर्यसंख्यासहस्रकम् । अथ भागवतं दिव्यमष्टादशसहस्रकम् ।।५।।
सहस्राणि दशैवोक्तं पुराणं ब्रह्मनामकम् । अयुतश्लोकघटितं पुराणं वामनाभिधम् ।।६।।
तथैवायुतसंख्यातं षट्शताधिकमादिकम् । त्रयोविंशतिसाहस्रमनिलं तद्गतं शुभम् ।।७।।
त्रयोविंशतिसाहस्रं नारदीयमुदाहृतम् । एकोनविंशसाहस्रं वैनतेयमुदाहृतम् ।।८।।
सहस्रपञ्चपञ्चाशत्प्रोक्तं पाद्मं सुविस्तरम् । सप्तदशसहस्रं तु कूर्मं प्रोक्तं मनोहरम् ।।९।।
चतुर्विंशतिसाहस्रं शौकरं परमाद्भुतम् । एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दमुक्तं सुविस्तृतम् ।।१०।।
एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि बृहन्ति च । पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिताः ।।११।।
रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ।।१२।।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च संकरजातयः । गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ।।१३।।
अनेकविधदानानि यमाश्च नियमैः सह । योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा ।।१४।।
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिलनीरजः । उपासनविधिश्चोक्तं कर्मसंशुद्धिचेतसाम् ।।१५।।
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथाऽऽर्हतम् । षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ।।१६।।
एतदन्तच्च विविधं पुराणेषु निरूपितम् । अतः परं किमप्यस्ति न वा बोद्धव्यमुत्तमम् ।।१७।।
न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपयेदथ वा भवान् । अत्र नः संशयं छिन्धि पूर्णः पौराणिको यतः ।।१८।।

ब्रह्माण्ड पुराण, अठारह सहस्र श्लोकों का भागवत महापुराण, दस सहस्र श्लोकों का ब्रह्म पुराण, दस सहस्र श्लोकों का वामन पुराण, छह सौ अधिक दस सहस्र श्लोकों का आदि पुराण, तेईस सहस्र (?) श्लोकों का वायुपुराण, तेईस सहस्र का नारदीय पुराण, उन्नीस सहस्र का वैनतेय (गरुड़) पुराण, पचपन सहस्र का पद्म पुराण, सत्रह सहस्र का मनोहर कूर्म पुराण, चौबीस सहस्र परमाद्भुत कथाओं से सुगंफित शौकर (वाराह) पुराण, परम विस्तृत इक्यासी सहस्र श्लोकों में ग्रथित स्कन्द पुराण आपने बतलाया। इस प्रकार परम विस्तृत अठारह पुराणों का गान आपने किया। उन पुराणों में बहुतेरे धर्मों का निरूपण किया गया है ।।५-११।। रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र, विशेषतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अन्यान्य संकर वर्ण द्वारा विधेय धर्मों का उनमें वर्णन है। गंगा आदि महान् नदियों एवं विविध प्रकार के यज्ञों, तपों एवं व्रतों के नियम उनमें वर्णित हैं। अनेक प्रकार के दान, यम, नियम, योग धर्म, सांख्य धर्म, भागवत धर्म, भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, वैराग्यमार्ग, अनिल, नीरज (?) विविध उपासनाएँ चित्त की कर्म संशुद्धि आदि का विधि समेत वर्णन किया गया है। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, आर्हत, षड् दर्शनादि विविध विषयों का उन पुराणों में पर्यालोचन किया गया है। किन्तु हमारे मन में यह जिज्ञासा शेष रह जाती है कि इन उपुर्यक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें शेष रह जाती हैं या नहीं (?) भगवान् व्यासदेव को अथवा आपको ऐसी कोई बात नहीं है जो ज्ञात न होगी अथवा किन्हीं कारणों से आप लोग उसे छिपा रहे होंगे। इस विषय को लेकर हमारे मन में बड़ा सन्देह है, आप समस्त पुराणों के जाननेवाले परम विद्वान् हैं, कृपया हमारी संशय निवृत्ति करें ।।१२-१८।।

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि प्रश्नमेनं सुदुर्लभम्। अतिगोप्यतरं दिव्यमनाख्येयं प्रचक्षते ।।१९।।
पराशरसुतो व्यासः कृत्वा पौराणिकीं कथाम्। सर्ववेदार्थघटितां चिन्तयामास चेतसि ।।२०।।
वर्णाश्रमवतां धर्मो मया सम्यगुदाहृतः। मुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः ।।२१।।
जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्तः सूत्रनिर्णये। निरूपितं परं ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ।।२२।।
अक्षरं परमं ब्रह्म परमात्मापरं पदं पदम्। यदर्थं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ।।२३।।
आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणां च पृथग्विधाम्। आसनं प्राणरोधश्च प्रत्याहारश्च धारणा ।।२४।।
ध्यानं समाधिरेतानि यमैश्च नियमैः सह। अष्टाङ्गानि यदर्थं च चरन्ति मुनिपुङ्गवाः ।।२५।।
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामात्रतत्पराः। परार्पणधिया सम्यङ्निष्कामाः कलिलोज्झिताः ।।२६।।
मज्ज्ञप्तये निराकर्तुं पापाचरणमात्मनः। गङ्गादितीर्थचर्याणि निषेवन्ते शुचिव्रताः ।।२७।।
तद्ब्रह्म परमं शुद्ध मनाद्यन्तमनामयम्। नित्यं सर्वगतं स्थाणु कूटस्थं कूटवर्णितम् ।।२८।।
सर्वेन्द्रियचराभासं प्राकृतेन्द्रियवर्णितम्। दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं नित्यं चिन्मात्रमव्ययम् ।।२९।।
अध्यास्तं सर्ववद्यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते। विश्वस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारं च रज्जुवत् ।।३०।।

सूत बोले–शौनक जी! इस परम दुर्लभ प्रश्न का उत्तर सुनिये, बतला रहा हूँ। यह अत्यन्त गोपनीय, दिव्यगुण सम्पन्न एवं किसी से कहने योग्य नहीं है। पराशर पुत्र भगवान् व्यासदेव समस्त वेदार्थों के सारभूत पुराणों की रचना जब कर चुके तब अपने चित्त में विचार किया कि इन पुराणों में वर्णाश्रम मर्यादा को माननेवालों के धर्मों का मैं भली तरह निरूपण कर चुका, वेदों के अनुसार चलनेवाले अनेक प्रकार के मोक्षदायी मार्गों का निर्वचन कर चुका, सूत्र निर्णय में जीव, ईश्वर और ब्रह्मा के भेदों का पर्यालोचन कर चुका, श्रुति प्रतिपादन युक्तियों से परम ब्रह्म का निर्णय कर चुका ।।१९–२२।। वह परम ब्रह्म परमात्मा कभी विनष्ट होनेवाला नहीं है, वही परम पद है। उसी के लिए बड़े-बड़े बुद्धिमान् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आदि धर्मों का प्रतिपालन करते हैं, बड़े-बड़े पुङ्गव आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, यम, नियम और समाधि–इन आठों अङ्गों का विधिवत् पालन करते हैं। एकमात्र वेदों के वचनों में आस्था रखनेवाले उसी परम ब्रह्म के उद्देश्य से कर्म करते हैं, परार्पण बुद्धि से वे निष्काम एवं पापरहित भावना से जीवन यापन करते हैं। अपने पापाचरण को निराकृत करने के लिए पवित्रात्मा उसी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गंगा आदि पवित्र तीर्थों का सेवन करते हैं ।।२३–२७।। वह परम ब्रह्म शुद्ध, अनादि, अनन्त एवं अनामय है। नित्य, सर्वगत, स्थाणु, कूटस्थ एवं कूट वर्णित है। समस्त इन्द्रिय ग्रामों में विचरण करनेवाला, अतीन्द्रिय, दिक्कालात्मक, नित्य, चिन्मात्र एवं अव्यय है। इस निखिल ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र व्याप्त है, उसी की ज्योति से यह सुप्रकाशित है। रज्जु की तरह निर्विकार वह ब्रह्म इस समस्त विश्व में भी संयुक्त नहीं होता। सम्यक् विचार करने पर फेन, तरङ्ग, बुद्बुद

सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोर्मिबुद्बुदोदकम्। तथा विचारितं ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ।।३१।।
सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः। यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ।।३२।।
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ। भवेतां या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ।।३३।।
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं यदिदं स्मृतम्। यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिञ्ज्ञाते जगन्न हि ।।३४।।
असत्यं यज्जडं दुःखं अवस्त्विति निरूपितम्। विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिकम् ।।३५।।
जीवे जाग्रति विश्वाख्यं स्वप्ने यत्तैजसं स्मृतम्। सुषुप्तौ प्राज्ञसंज्ञं यत्सर्वावस्थासु संस्मृतम् ।।३६।।
यच्चक्षुषां चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रोत्रमप्यति। त्वक्त्वचां रसनं तस्य प्राणं प्राणस्य यद्विदुः ।।३७।।
बुद्धिज्ञानेन च प्राणाः क्रियाशक्त्या निरन्तरम्। यन्नेशिरे समभ्येतुं ज्ञातुं च परमार्थतः ।।३८।।
रज्जावहिर्मरौ वारि नीलिमा गगने यथा। असद्विश्वमिदं भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ।।३९।।
घटावच्छिन्न एवायं महाकाशो विभिद्यते। कार्योपाधिपरिच्छिन्नं तद्वद्यज्जीवसंज्ञकम् ।।४०।।
मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया। ब्रह्माण्डं चित्रमतुलं यस्मिन्भित्ताविवार्पितम् ।।४१।।
धावतोऽन्यानतिक्रान्तं वदतो वागगोचरम्। वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीतं तदक्षरम् ।।४२।।

एवं उदक की तरह है। अर्थात् जिस प्रकार फेन, तरङ्ग, बुद्बुद ये सब जल के विकार ही हैं, जल से अलग इनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है, उसी प्रकार अच्छी तरह विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि वह ब्रह्म समस्त विश्व विभूतियों से पृथक् नहीं है। सब कुछ ब्रह्म ही है, जगत् में अनेक कुछ नहीं है—यही सब वेदों का परमार्थ है। उसी से इन समस्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है, और उसी में ये पुनः समाविष्ट हो जाते हैं ।।२८–३२।। उसी के उन्मेष और निमेष से जगत् का प्रलय एवं उदय होता है। उसी की आधारभूत वह परा शक्ति है, जो समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विनाशकर्त्री है। उसी में यह समस्त जगत् अवस्थित है, उसी से इसकी उत्पत्ति होती है, उसी के द्वारा इसकी पालना होती है, वह स्वयं जगत् रूप है। उसी के न जानने से जगत् की सत्ता का बोध होता है, उसके जान लेने पर यह सब मिथ्या मालूम पड़ता है। वह असत्य, जड़, दुःख एवं अवस्तु निरूपित किया गया है, इसके विपरीत वह परब्रह्म सत् चित् आनन्द एवं मूर्तमान् है। वह जीवों की जागरण अवस्था में विश्व, स्वप्नावस्था में तैजस एवं सुषुप्ति में प्राज्ञ संज्ञक है, सभी अवस्थाओं में उसका अस्तित्व स्मरण किया जाता है। वह चक्षुओं का भी चक्षु है, श्रोत्रों का भी श्रोत्र है, त्वचा की भी त्वचा है, रसना की भी रसना है और अधिक क्या प्राणों का भी प्राण है, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं ।।३३–३७।। मानव अपनी बुद्धि, ज्ञान, प्राण एवं क्रिया शक्ति—इन सब के द्वारा निरन्तर अध्यवसाय करते रहने पर भी उसके परमार्थ को जानने एवं वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ है। रज्जु में सर्प, बालू में जल, गगन में नीलिमा की भाँति अविद्या के कारण यह असत् जगत् सत् रूप की भाँति प्रतीत होता है। जिस प्रकार यह महान् आकाश घटादि के भीतर होने के कारण घटाकाश आदि नामों से भिन्न रूप से पुकारा जाता है, उसी प्रकार वह परब्रह्म कार्योपाधि से परिच्छिन्न होकर जीवात्मा नाम से प्रसिद्ध होता है। विचित्र गुणशालिनी चित्रकारिणी माया द्वारा यह ब्रह्माण्ड रूप चित्र भित्ति की तरह उस परब्रह्म में चित्रित है। वह अक्षर परब्रह्म अन्य दौड़नेवालों को भी अतिक्रान्त करनेवाला तथा वक्ता की युक्ति भरी

अक्षरान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः। इत्येवं श्रूयते वेदे बहुधाऽपि विचारिते ।।४३।।
अक्षरस्याऽऽत्मनश्चापि स्वात्मरूपतया स्थितम्। परमानन्दसंदोहरूपमानन्दविग्रहम् ।।४४।।
लीलाविलासरसिकं बल्लवीयूथमध्यगम्। शिखिपिच्छकिरीटेन भास्वद्रत्नचितेन च ।।४५।।
उल्लसद्विद्युदाटोपकुण्डलाभ्यां विराजितम्। कर्णोपान्तचरन्नेत्रखञ्जरीटमनोहरम् ।।४६।।
कुञ्जकुञ्जप्रियावृन्दविलासरतिलम्पटम्। पीताम्बरधरं दिव्यं चन्दनालेपमण्डितम् ।।४७।।
अधरामृतसंसिक्तवेणुनादेन बल्लवीः। मोहयन्तं चिदानन्दमनङ्गमदभञ्जनम् ।।४८।।
कोटिकामकलापूर्णं कोटिचन्द्रांशुनिर्मलम्। द्विरेफकण्ठविलसद्रत्नगुञ्जामृगाकुलम् ।।४९।।
यमुनापुलिने तुङ्गे तमालवनकानने। कदम्बचम्पकाशोकपारिजातमनोहरे ।।५०।।
शिखिपारावतशुकपिककोलाहलाकुले। निरोधार्थं गवामेव धावमानमितस्ततः ।।५१।।
राधाविलासरसिकं कृष्णाख्यं पुरुषं परम्। श्रुतवानस्ति वेदेभ्यो यतस्तन्द्गोचरोऽभवत् ।।५२।।
एवं ब्रह्मणि चिन्मात्रे निर्गुणे भेदवर्जिते। गोलोकसंज्ञके कृष्णो दीव्यतीति श्रुतं मया ।।५३।।
नातः परतरं किंचिन्निगमागमयोरपि। तथाऽपि निगमो वक्ति ह्यक्षरात्परतः परः ।।५४।।

वाणी से भी अगोचर है, वेदों एवं वेदान्तों के सिद्धान्तों द्वारा निर्णय होता है ।।३८–४२।। उस परा शक्तिसम्पन्न परब्रह्म से परे कुछ नहीं है, वही एकमात्र परा काष्ठा है, परा गति है। अनेक बार विचार करने के बाद वेदों से यही निश्चय हुआ। सुना जाता है कि अपनी अव्ययात्मा में आत्म रूप से अवस्थित, परमानन्द सन्दोहस्वरूप, आनन्द विग्रह, लीला विलास रसिक गोपियों के समूह में विचरण करनेवाले चमकीले रत्नों से गुम्फित मयूर के पिच्छों के बने हुए मनोहर किरीट से सुशोभित, चमकती हुई बिजली की रेखाओं के समान आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले कुण्डलों से विराजमान, कानों के समीप तक लम्बे, मनोहर खञ्जरीट के समान चञ्चल नेत्रोंवाले, कुञ्ज–कुञ्ज में प्रिय गोपियों के वृन्द में रतिक्रीड़ा के अभिलाषी, पीताम्बरधारी, दिव्य चन्दन एवं अङ्गरागादिकों के विलेपन से सुगन्धित अपने अधरामृत से संसिक्त वेणु के सुरम्य नाद से गोपियों को विमोहित करनेवाले, चित्स्वरूप, आनन्द रूप, अनङ्ग मद भञ्जक, कोटि काम की कला से पूर्ण, कोटि चन्द्र की किरणों के समान निर्मल, भ्रमरों के सुरम्य गुञ्जार से विराजित, रत्नपूर्ण गुञ्जाओं एवं मृगों से चारों ओर घिरे हुए पवित्र उच्च यमुना तट पर तमाल के रमणीय वनों में, कदम्ब, चम्पक, अशोक और पारिजात के वृक्षों से मनोहर, मयूर, पारावत, शुक, पिकादि पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण, वन प्रान्तों में गौओं के रक्षार्थ इधर–उधर दौड़ते हुए, राधा के विलास के प्रेमी, श्रीकृष्ण ही वह परम पुरुष हैं। वेदों से भी यही सुना जाता है। उन्हीं से इस समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाश होता है ।।४३–५२।। वह परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण चिन्मात्र, निर्गुण, भेदविहीन ब्रह्ममय गोलोक में विहार करनेवाले हैं–ऐसा हमने सुना है। उनसे परे कोई भी वस्तु इस विशाल ब्रह्माण्ड में नहीं है। निगमागमों से यही बात प्रमाणित होती है। ऐसा होने पर भी निगम कहता है कि वे परम पुरुष अक्षर से भी परवर्ती हैं।

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते । तस्मादपि परः कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ।।५५।।
उद्दिष्टो वेदवचनैर्विशेषो ज्ञायते कथम् । श्रुतेर्वाऽर्थोऽन्यथा बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ।।५६।।
श्रुत्यर्थे संशयापन्नो व्यासः सत्यवतीसुतः । विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ।।५७।।

सूत उवाच

विचारयन्नपि मुनिर्नाऽऽप वेदार्थनिश्चयम् । वेदो नारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरयः ।।५८।।
तदाऽपि महतीमार्तिं सतां हृदयतापिनीम् । पुनर्विचारयामास कं व्रजामि करोमि किम् ।।५९।।
पृच्छामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम् । अज्ञात्वाऽन्यतमं लोके संदेहविनिवर्तकम् ।।६०।।
मेरोः कुहरिणीं गत्वा चचार परमं तपः । यत्र कार्तस्वरस्फूर्जज्ज्योत्स्नाजलैर्निरन्तरम् ।।६१।।
सदा प्रबाधते विष्वक्तमः स्तोमं दृशंतुदम् । चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम् ।।६२।।
नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् । क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ।।६३।।
जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः । जातरूपशिलानद्धतटसंचारपक्षिभिः ।।६४।।

वे गोलोकवासी भगवान् कृष्ण अक्षर से परे कहे जाते हैं। उस अक्षर से परे कौन है—जिसका यशोगान श्रुतियाँ सर्वदा करती हैं। वेद वचनों से जो उद्दिष्ट है वह विशेष किस प्रकार से ज्ञात हो सकता है? अथवा श्रुति के 'परतस्त्वक्षरात्' इस वचन का अन्यथा अर्थ किसी प्रकार का जानना चाहिए। श्रुति के उक्त वचन के अर्थ निर्धारण में संशयाविष्ट सत्यवती सुत उक्त प्रकार से बहुत देर तक विचार करते रहे किन्तु उसके तत्त्वनिश्चय तक नहीं पहुँच सके ।।५३–५७।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! इस प्रकार बहुत देर तक विचारमग्न रहने पर भी व्यास जी वेदार्थ निश्चय में असफल रहे। वेद साक्षात् नारायण का स्वरूप है, जिसमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा जानते हुए भी व्यासदेव हृदय को आन्दोलित करनेवाली बहुत बड़ी चिन्ता से ग्रस्त रहे, और पुनः बराबर सोचते रहे कि कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? इस लोक में हमारे इस सन्देह को निवृत्त करनेवाला सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ कोई नहीं है, जिससे अपने सन्देह को दूर करूँ। ऐसा निश्चय कर वे सुमेरु पर्वत की सुन्दर गुफा में जाकर तपस्या करने में निरत हो गये। उस गुफा में यद्यपि आँखों को कष्ट देनेवाले घोर अन्धकार का समूह चारों ओर से व्याप्त हो रहा था, फिर भी सुवर्ण की शिलाओं की चमकीली ज्योत्स्ना राशि निरन्तर शोभायमान हो रही थी। वहाँ एक परम रमणीय बहुत बड़ा वन्य प्रदेश था ।।५८–६२।। जिसमें विविध प्रकार के वृक्षों और लताओं के कुञ्जों में पक्षियों के कलरव हो रहे थे। उस मनोहर वन्य प्रान्त में प्राणी क्षुधा, पिपासा, भय, क्रोध, सन्ताप, ग्लानि आदि मानसिक कष्टों से मुक्त हो जाता था। कमलिनियों के समूहों से सुशोभित अनेक प्रकार के जलाशय वहाँ की शोभावृद्धि कर रहे थे, उन जलाशयों के तट पर जड़ी हुई सुवर्ण की शिलाओं पर विचरण करनेवाले पक्षियों के प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ते थे। कमल वनों में विचरण करनेवाले वायु से वहाँ का वातावरण अत्यन्त शुद्ध हो रहा था। हिंस्र जन्तु भी अपने क्रूर स्वभावों को छोड़कर वहाँ वैरविहीन एवं उपकारी भावों से जीवन व्यतीत करते थे। चारों ओर निर्जनता का साम्राज्य था। दिव्य लताओं के समूहों से एक

युक्तमम्भोजपवनैः सेव्यमानं समन्ततः । शिवैरध्यासितं भावैर्हिंस्रैः सत्त्वैः समुज्झितम् ।।६५।।
निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् । शुकैः पारावतैर्हृद्यैरुन्मदन्मत्तकोकिलम् ।।६६।।
उत्पतत्पद्मरजसां पटलामोददिङ्मुखम् । तत्रापि काञ्चनी दिव्या गुहा परमशोभना ।।६७।।
तां प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासनः । सस्मार वेदांश्चतुरस्तदेकाग्रमना मुनिः ।।६८।।
त्रयी जगाम शरदां शतस्य स्मरतोऽस्य हि । प्रादुरासंस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ।।६९।।
स्फुरत्पद्मपलाशाक्षा जटामुकुटधारिणः । कुशमुष्टिकराम्भोजा मृगत्वङ्मण्डितांसकाः ।।७०।।
स्वरैः षोडशभिः क्लृप्तवदनाः प्रणवान्तराः । कचवर्गोद्भवैर्वर्णैः पञ्चावयवपाणयः ।।७१।।
पवर्गदक्षचरणा वामपादास्तवर्गतः । आत्त(त)रन्त्यन्तवर्णाश्च येषां कुक्षिद्वयात्मकौ ।।७२।।
नाभिनिद्राः कान्तपृष्ठा मोदरा यरलवोत्कचाः । अग्निदक्षांशरुचिरा धराग्रीवा भृतांसकाः ।।७३।।
अन्तस्थसंस्थाना वैखरीवाग्विजृम्भिताः । अपश्यन्मधुरामोषां हृदयाम्भोजकल्पिताम् ।।७४।।
हरेर्भगवतः साक्षादाविर्भावस्थली हि सा । कारीमपश्यद्भ्रूमध्ये मायामाधारसंस्थिताम् ।।७५।।
लिङ्गदंशे ततः काञ्चीमवन्तीं नाभिमण्डले । कण्ठस्थांद्वारकामेषां प्रयागं प्राणगं तथा ।।७६।।

विचित्र प्रकार की शोभा थी। हृदय को आकर्षित करनेवाले शुकों, पारावतों के समूह तथा मतवाले कोकिलों के शब्द हो रहे थे। कमलों के पराग हवा के साथ उड़कर दिशाओं को आमोदित कर रहे थे, पटल की सुगन्धि चारों ओर व्याप्त हो रही थी। ऐसे परम रमणीय वन्य प्रान्त में सुवर्णमयी परमशोभासम्पन्न वह गुफा थी, उस पवित्र गुफा में प्रविष्ट होकर व्यास जी ने आहार, चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मन से चारों वेदों का स्मरण किया ।।६३-६८।। उस प्रकार वेदों का स्मरण करते-करते उनके तीन सौ वर्ष जब व्यतीत हो गये, तब उन परम पवित्र चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, उनके मनोहर नेत्र विकसित कमलदल के समान मनोहर थे, उनके शिरोभाग जटा एवं मुकुट से अलंकृत थे, उनकी मुट्ठियों में कुश के स्तबक तथा कमल विराजमान थे, पवित्र मृगचर्म से उनके स्कन्ध प्रदेश की एक अनूठी शोभा हो रही थी ।।६९-७०।। सोलह स्वरों एवं बीच-बीच में प्रणव के उच्चारणों से उनके मुख की शोभा वृद्धि हो रही थी। कवर्ग एवं चवर्ग के सभी वर्णों से उनके हाथों की पाँच-पाँच अँगुलियों समेत दोनों हाथों की शोभा बढ़ रही थी। पवर्ग उनके दक्षिण चरण एवं तवर्ग वाम चरण की शोभा कर रहे थे। उन सबों के दोनों कुक्षिप्रदेशों में अन्त्य वर्ण विराजमान थे। न वर्ण उनके नाभिप्रदेश, क पृष्ठप्रदेश, म उदरदेश और य र ल केशपाशों के शोभादायक थे। अग्निबीज दक्षिण स्कन्धप्रदेश, पृथ्वीबीज ग्रीवा प्रदेश तथा भृत वाम स्कन्धप्रदेश में विराजमान थे। सभी अन्तःस्थ (यवरल) वर्ण उनकी सन्धियों में शोभायमान थे, वैखरी वाक् से वे प्रस्फुरित हो रहे थे। व्यासदेव ने उन वेदों के हृदय कमल प्रदेश में अवस्थित मथुरापुरी का दर्शन किया, क्योंकि वह पवित्र पुरी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-स्थली है ।।७१-७४$\frac{१}{२}$।। उनकी भौंहों के मध्य में काशी का दर्शन किया, आधार स्थल में माया पुरी दिखायी पड़ी। लिङ्ग प्रदेश में काञ्ची, नाभिमण्डल में अवन्ती, क प्रदेश में द्वारका एवं प्राणों में प्रयाग की स्थिति देखी।

सव्यापसव्ययोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुना नदी। मध्ये सरस्वती साक्षाद्गयाक्षेत्रं तथाऽऽनने ।।७७।।
हनुग्रीवामध्यगतं प्रभासक्षेत्रमुत्तमम्। बदर्याश्रममेतेषां ब्रह्मरन्ध्रे ददर्श ह ।।७८।।
पौण्ड्रवर्धननेपालपीठं नयनयोर्युगे। पीठं पूर्णगिरिं नाम ललाटे समदृश्यत ।।७९।।
कण्ठे च मथुरापीठं काञ्चीपीठं कटिस्थितम्। जालंधरं तथा पीठं स्तनदेशेष्वदृश्यत ।।८०।।
भृगुपीठं कर्णदेशे अयोध्यां नासिकापुटे। ब्रह्मरन्ध्रे स्थितं ब्राह्मं शैवं सीमन्तसीमनि ।।८१।।
शाक्तं जिह्वाग्रधिषणं वैष्णवं हृदयाम्बुजे। सौरं चक्षुष्प्रदेशस्थं बौद्धच्छायासुसंगतम् ।।८२।।
सौत्रामणिं कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि। वाजपेयं कटितटे अग्निहोत्रं तथाऽऽनने ।।८३।।
अश्वमेधं कटितटे नरमेधमथोदरे। राजसूयं शिरोदेशे आवसथ्यं तथाऽधरे ।।८४।।
ऊर्ध्वोष्ठे दक्षिणाग्निं च गार्हपत्यं मुखान्तरे। हव्यं श्रुतौ मन्त्रभेदास्तथा रोमस्ववस्थितान् ।।
भृत्यैरिव महाराजं पुराणैर्न्यायमिश्रितैः ।।८५।।
संहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथगुपासितान्। कर्मज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ।।८६।।

उन वेदों के दाहिने एवं बायें पार्श्वों में गङ्गा एवं यमुना प्रवहमान थीं। मध्यदेश में साक्षात् सरस्वती की धारा थी, मुख प्रदेश में गया क्षेत्र था। दाढ़ी और कण्ठ प्रदेश के मध्य में उत्तम प्रभास क्षेत्र था, इन वेदों के ब्रह्मरन्ध्र में व्यासदेव ने बदरिकाश्रम का दर्शन किया ।।७५-७८।। दोनों नेत्रों में पौण्ड्रवर्धन और नेपाल–ये दो पीठ तथा ललाट प्रदेश में पूर्णगिरि नामक पीठ का दर्शन किया। कण्ठ में मथुरा पीठ, कटि प्रदेश में काञ्ची पीठ तथा स्तन प्रदेशों में जालन्धर पीठ का व्यासदेव ने दर्शन प्राप्त किया। कर्ण प्रदेश में उन्होंने भृगुपीठ का तथा नासिकापुट में अयोध्या का दर्शन किया। इसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित ब्राह्म तीर्थ तथा सीमन्त प्रदेश में अवस्थित शैव तीर्थ का दर्शन किया। उनकी जिह्वाओं के अग्र देश में शाक्त एवं हृदयकमल में वैष्णव तीर्थों का निवास था। चक्षु प्रदेशों में सौर और छाया में बौद्ध तीर्थों के दर्शन हुए। कण्ठ देश में सौत्रामणि यज्ञ और उरु प्रदेशों में पशु बन्धन देखा। दक्षिण कटि प्रदेश में वाजपेय तथा मुख प्रदेश में अग्निहोत्र का दर्शन किया ।।७९-८३।। इसी प्रकार वाम कटि प्रदेश में अश्वमेध, उदर में नरमेध, शिरोदेश में राजसूय तथा अधर में आवसथ्य का दर्शन किया। वेदों के ऊपरी ओंष्ठों में दक्षिणाग्नि को, मुखमध्य में गार्हपत्य अग्नि को, श्रुतियों में हवनीय अग्नि को तथा रोम कूपों में अवस्थित निखिल मन्त्र समूहों के व्यास को दर्शन हुए। न्याय मिश्रित समस्त पुराणगण मर्त्यों की तरह वेद महाराज का पूजन कर रहे थे। संहिताएँ भी पृथक्-पृथक् रूप से उन सब की उपासना में तत्पर थीं। कर्म, ज्ञान एवं उपासना–इन तीनों अङ्गों से उन भक्त जनानुग्रहकारी वेदों की अर्चा की जा रही थी। उपर्युक्त विशेषताओं से विशिष्ट चारों वेदों को देखकर कृष्णद्वैपायन व्यासदेव परम विस्मित हुए। उस समय ब्रह्म तेजोमय दिव्यगुणसम्पन्न वे वेदगण अतिशय प्रभा से पूर्ण प्रभाकर की भाँति आकाश से गिरते हुए की भाँति दिखायी पड़ रहे थे। प्रज्वलित अग्नि की लपटों की भाँति उनके मुखमण्डल से अनुपम ओज दिखायी

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनिः कृष्णो बभूव तान् । ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यांस्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।।
ज्वलतोऽग्नीनिवोदर्कात्कोटीन्दुसमदर्शनान् ।।८७।।
ववन्दे सहसोत्थाय दण्डवत्पतितो मुनिः । कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहमितीरयन् ।।८८।।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं मनः । अद्य मे सफलं चाऽऽयुर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचराः ।।८९।।
अलौकिकं लौकिकं च यत्किंचिदपि विद्यते । न तद्वोऽविदितं वेद्यं भूतं भव्यं भवच्च यत् ।।९०।।
न प्रवृत्तिफला यूयं दर्शयन्तोऽपि तान्सदा । यदृक्षाकरसंकोचविधानायेह रागिणाम् ।।९१।।
प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरौ । मृषारागविषयौ तत्संकोचविधिक्षयौ ।।९२।।
अतो लोकहितैर्नूनं परमार्थानिरूपणे । स्वोक्ताः स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिताः ।।९३।।
अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः । त्रातं सर्वं जगन्नूनं शब्दब्रह्मात्ममूर्तिभिः ।।९४।।
अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कृपालवः । कर्मणां फलमादिष्टं सर्गः कामैकचेतसाम् ।।९५।।
ईशार्पितधियां पुंसां कृतस्यापि च कर्मणः । चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम् ।।९६।।
मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येवं सच्चिदानन्दमेव यत् । सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ।।९७।।

पड़ रहा था। इतने पर भी वे कोटि चन्द्रमा के समान सुन्दर लग रहे थे ।।८४-८७।। इस प्रकार सम्मुख समागत चारों वेदों को देखकर मुनिवरेण्य व्यासदेव दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़े और मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया—यह कहते हुए बोले, भगवन्! आज मेरा जन्म सफल है, मेरा मन कृतार्थ हो गया, मेरी आयु फलवती है, जो आप लोगों के अलभ्य दर्शन प्राप्त हुए। इस जगत् में अलौकिक अथवा लौकिक, जो कुछ भी पदार्थ हैं, वे आप लोगों से छुपे हुए नहीं हैं, यही नहीं जो कुछ भी ज्ञातव्य भूत भव्यादि पदार्थ हैं वे सब भी आपको विदित हैं। 'तुम सब केवल प्रवृत्तिमार्ग के उपदेष्टा नहीं हो।' ऐसा आप लोग रागासक्त प्राणियों की स्वेच्छाचारिता के संकोच के लिए विधान करते हैं। जगत्प्रपञ्चों के मिथ्यात्व एवं ब्रह्मत्व के प्रतिपादक जो विधि निषेधमय वचन आप लोगों के हैं—वे मिथ्या राग के विषय नहीं हैं, संकोच के विधि निषेधक हैं। आप लोग लोककल्याण में निरत रहकर केवल परमार्थ निरूपण करते हैं, यही कारण है कि अपने कहे गये स्वर्गादि विषयों को नश्वर समझकर निन्दित माना है ।।८८-९३।। अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों के भेद बनाकर कर्म एवं ज्ञान के उपदेशों द्वारा समस्त जगत् की निश्चय ही रक्षा की है। यदि आप लोग हमारे ऊपर कृपाशील हैं तो हम आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। कामनाओं से घिरे हुए चित्तोंवाले मनुष्यों के जो कुछ भी सत्कर्म होते हैं, उन सब का फल स्वर्ग कहा गया है। ईश्वर में अपनी चित्तवृत्ति को लगानेवाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गयी है। चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान-प्राप्ति से मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप है। उसके भली-भाँति जान लेने पर जो कुछ भी कृत अकृत रहता है, समाप्त हो जाता है। अर्थात् फिर उसका फल भोगना नहीं पड़ता। वह निःसङ्ग चिदाकाश (आकाश की भाँति सब का आधार एवं निर्लेप) ज्ञान रूप, असंवृत, निरीह, अचल, शुद्ध, गुणातीत एवं

यन्निःसङ्गं चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम्। निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ।।९८।।
विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकारं न नश्यति। यथाऽन्धतमसा व्याप्तलोकस्य र (वि) रोजसा ।।९९।।
लोहस्येव मणिस्तद्वद्मणियाश्वेतयितृ यत् (?)। यदाभासेन सा सत्तां प्रतिपद्य विजृम्भते ।।१००।।
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो। तस्यामपि प्रलीनायां कूटस्थं च यदेकलम् ।।१०१।।
भवद्भिरेवं निर्णीतं तत्तथैवं न संशयः। तथाऽपि मम जिज्ञासा वर्तते केवलं हृदि ।।१०२।।
अतोऽपि परमं किंचिद्वर्तते किल वा न वा। तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शनाः ।।१०३।।
यच्छ्रवःफलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता। एवं ब्रुवन्तमनघं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।।
साधु साध्विति संकीर्त्य प्रत्यूचुर्निगमा वचः ।।१०४।।

वेदा ऊचुः

साधु साधु महाप्राज्ञ विष्णुरात्मा शरीरिणाम्। अजोऽपि जन्म संपद्य लोकानुग्रहमीहसे ।।१०५।।
अन्यथा ते न घटते संसारकर्मबन्धनम्। अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया ।।१०६।।

व्यापक स्मरण किया जाता है ।।९४-९८।। जगत् के समस्त विकारों के विनष्ट हो जाने पर भी वह निर्विकार नष्ट नहीं होता। घोर अन्धकार से व्याप्त जगत् को जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से आलोकित करता है, मणि जिस प्रकार लोह को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार निर्विकार ब्रह्म भी इस जगत् को आलोकित करता है, उसी के आभास मात्र से यह सारी सृष्टि प्रकाशित होती है। इस सृष्टि के प्रलीन हो जाने पर वह परब्रह्म जीवेश्वरादि रूप से एवं अपनी विश्वाकृति से कूटस्थ एवं अद्वितीय रूप में परिशेष रहता है। उसका सम्यक् निर्णय आप ही लोगों ने किया है वह उसी प्रकार का है, जैसा आप लोगों ने निर्णय किया है, इसमें सन्देह नहीं। ऐसा होने पर भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा वर्तमान है ।।९९-१०२।। उस परब्रह्म से भी बढ़कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं, हे महाभाग्यशालियो! आप सब तत्त्वों के पारदर्शी हैं, कृपया इस जिज्ञासा की शान्ति कीजिये। सचमुच उसी के श्रवण का फल ही हमारे जन्म की कृतार्थता है, अर्थात् इस परम गोपनीय विषय को जानकर मेरा जन्म सफल हो जायगा। निष्पाप सत्यवती सुत व्यासदेव के इस प्रकार पूछने पर निगमों ने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनके प्रश्न का उत्तर दिया ।।१०२-१०४।।

वेदों ने कहा—महाप्राज्ञ भगवन् व्यासदेव! आपको धन्यवाद है, धन्यवाद है। आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं, शरीरधारियों के आत्मा हैं, अजन्मा होकर भी आप जन्म धारणकर लोक के ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं। अन्यथा आपको सांसारिक कर्म बन्धनों का कोई भय नहीं है। ज्ञान द्वारा गम्य भगवती माया द्वारा आप अछूते हैं, अर्थात् आप पर माया (अविद्या) का कोई प्रभाव नहीं है। आप अपनी इच्छा ही से शरीर धारण करते हैं और अपनी इच्छा ही से तिरोहित भी होते हैं। हम लोगों को जो मत मान्य है, उसी को आपने प्रदर्शित किया है। पुराणों, इतिहासों एवं सूत्रों में आपने अनेक प्रकार से उसका प्रतिपादन किया है। वह परब्रह्म अक्षर, परम एवं सभी कारणों का कारणस्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप है। उसी को

बिभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे। अस्मत्संमत एवार्थो भवता संप्रदर्शितः ।।१०७।।
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा। अक्षरं ब्रह्म परमं सर्वकारणकारणम् ।।१०८।।
तस्याऽऽत्मनोऽप्यात्मभावतया पुष्पस्य गन्धवत्। रसवद्वा स्थितं रूपमवेहि परमं हि तत् ।।१०९।।
अनुभूतं तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके लये। अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्परं केवलो रसः ।।
न च तत्र वयं शक्ताः शब्दातीते तदात्मकाः ।।११०।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते व्याससंशयापनोदनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।।१०४।।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

*गयामाहात्म्यम्

(+वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः) ।।१।।

सबसे परम समझो। प्राकृतिक लय के होने पर हम सबों को यही अनुभव हुआ है कि उस अक्षर परब्रह्म से परे जो कुछ है वह पुष्प के रस की भाँति वही है, शब्द स्वरूप हम लोग उसकी महिमा को पूर्णतया समझने में समर्थ नहीं हैं, वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है ।।१०५-११०।।

श्री वायुमहापुराण में व्याससंशयापनोदन नामक एक सौ चार अध्याय समाप्त ।।१०४।।

अध्याय १०५

गया माहात्म्य

वायु बोले—ऋषिवृन्द! अब इस कथा के उपरान्त हम सर्वश्रेष्ठ गया का माहात्म्य बतला रहे हैं, जिसका श्रवण कर प्राणी समस्त पापों से निस्सन्देह छूट जाता है ।।१।।

---

* इदं गयामाहात्म्यं ग. घ. ङ. पुस्तकेषु न विद्यते।
+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

सूत उवाच

सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः। सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम्÷ ।।२।।

नारद उवाच

सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम्। तारकं सर्वभूतानां पठतां (×शृण्वतां तथा ।।३।।

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतावकम् (?)। गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु) ।।४।।
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थितः। प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिलां धर्मो ह्यधारयत् ।।५।।
तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः। फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।।
गयासुरस्य विप्रेन्द्र ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ।।६।।
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम्। श्वेतकल्पे तु वाराहे गयो यागमकारयत् ।।७।।

सूत बोले–ऋषिवृन्द! एक बार महाभाग्यशाली सनक प्रभृति देवर्षियों के साथ नारद जी ने सनत्कुमार को विधिवत् प्रणामकर निवेदन किया ।।२।।

नारद ने कहा–सनत्कुमार जी! समस्त उत्तम तीर्थों में भी उत्तम किसी ऐसे तीर्थ का माहात्म्य हमें बतलाइये, जिसके पढ़ने एवं सुननेवाले सभी प्राणी तर जाते हैं ।।३।।

सनत्कुमार बोले–नारद जी! आपके अनुरोध पर तीर्थवर गया का माहात्म्य हम बतला रहे हैं, जो श्राद्धादि पैतृक कार्यों में समस्त प्राणियों को तारनेवाला है, वह गया तीर्थ सभी देशों में, सभी तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद है, उसका माहात्म्य सुनिये। एक बार यज्ञ के लिए ब्रह्मा के अनुरोध करने पर गयासुर ने यहाँ तपस्या की थी, उसके सिर पर एक शिला की स्थापना कर भगवान् ब्रह्मा ने यज्ञ सम्पन्न किया था। वह पवित्र यज्ञ ब्रह्मा जी ने इसी तीर्थ में किया था, विप्रवर्य! वह असुर किसी प्रकार विचलित न हो जाय–इस उद्देश्य से ब्रह्मादि देवताओं के साथ भगवान् गदाधर भी फल्गु आदि तीर्थों के रूप में रात-दिन वहाँ स्थित रहते हैं ।।४-६।। निर्विघ्न यज्ञ की समाप्ति हो जाने के उपरान्त ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा से गृहादि प्रदान किये। श्वेत वाराह कल्प में उसी पवित्र स्थान पर गयासुर ने यज्ञाराधन किया। तभी से यह

÷ इत उत्तरं मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थ उपलभ्यते सोऽयम्–
गयायात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्तिदाम्। निष्कृतिस्त्विह कर्तॄणां ब्रह्मणा गीयते पुरा।।१
ब्रह्मज्ञानं गया श्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा।।२
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्। किं कुरुक्षेत्रवासेन यदि पुत्रो गयां व्रजेत्।।३
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः। न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि।।४
इति श्रुत्वा तदा वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः। सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम्।।५।। इति।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् । काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ।।८।।
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति । गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत् ।।
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति ।।९।।
*एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।।१०।।
गयां गत्वाऽन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः । पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।
+नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिकम् ।।११।।
महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति । पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ।।१२।।
×ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ।।१३।।
आत्मजोऽप्यन्यजो वाऽपि गयाभूमौ यदा तदा । यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ।।१४।।
=नामगोत्रे समुच्चार्य पिण्डपातनमिष्यते । येन केनापि कस्मैचित्स याति परमां गतिम् ।।१५।।
⊂ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ।।१६।।

परम पुनीत क्षेत्र गया के नाम से ख्यात हुआ, इसे ब्रह्मा जी बहुत पसन्द करते हैं। यही नहीं, नरक के भय से डरे हुए पितरगण भी इस परम पुनीत क्षेत्र की बड़ी कामना करते हैं। वे कहते हैं कि जो पुत्र गया यात्रा करेगा वह हम सब को इस दुःख संसार से तार देगा। इस पुनीत गया तीर्थ में पुत्र को गया हुआ देखकर पितरों के घर उत्सव मनाये जाते हैं। वे कहते हैं कि इस पुनीत तीर्थ में अपने पैरों से भी जल का स्पर्श कर पुत्रगण हमें क्या नहीं दे देंगे? ।।७–९।। एक पुत्र भी गया चला जायगा या अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा नील वृषभ का उत्सर्ग करेगा (तो हम सब का उद्धार हो जायगा, इसीलिए) पितरगण इन्हीं उद्देश्यों से बहुत पुत्रों के होने की कामना करते हैं। इस गया तीर्थ में जाकर जो पुत्र अन्न का दान करता है, पितरगण उसी सुपुत्र से अपने को पुत्रवान् मानते हैं। यहाँ पर तीन पक्ष तक निवास करनेवाला पुत्र अपने सात पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है। यदि तीन पक्ष निवास न कर सके तो पन्द्रह दिन, सात रात अथवा तीन रात्रि के निवास का भी महान् फल होता है। महाकल्प काल से सञ्चित पाप कर्मों का भी गया में जाकर विनाश हो जाता है। वहाँ पितरों के उद्देश्य से पिण्डदान करना चाहिए, अपने लिए भी तिल के बिना पिण्डदान करने का विधान है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुजनों की स्त्री के साथ समागम, ऐसे घोर पाप एवं ऐसे पापियों के संसर्ग से होनेवाले अन्यान्य पाप कर्म गया में श्राद्ध करने से विनष्ट हो जाते हैं ।।१०–१३।। अपना औरस पुत्र हो अथवा किसी अन्य का पुत्र हो, जब–जब गया क्षेत्र की पवित्र भूमि पर जिस–जिस के नाम से पिण्डदान करता है, उस–उस को वह पिण्ड शाश्वत ब्रह्म पद को प्राप्त कराता है। इस गया तीर्थ में नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर पिण्डदान करने की विधि विहित है,

---

* न विद्यतेऽयं श्लोकः क. पुस्तके।
+ इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।
× अयं श्लोको नास्ति ख. पुस्तके।
= न विद्यतेऽयं श्लोकः क. पुस्तके।
⊂ अयं श्लोकः ख. पुस्तके न विद्यते।

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्। वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ।।१७।।
गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः। अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः ।।१८।।
न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ। ÷चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्मसु ।।१९।।
महातीर्थे तु संप्राप्ते क्षतदोषो न विद्यते। तथा दैवप्रमादेन सुमहत्सु व्रणेषु च ।।
पुनः कर्माधिकारी च श्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक् ।।२०।।
सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिण्डस्य पातनम्। दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ।।२१।।
प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके। ब्रह्मज्ञानाद्यथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः ।।२२।।
कीकटादिमृतानां च पितॄणां तारणाय च। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं सुविचक्षणैः ।।२३।।
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत्। तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वा पितृभिः सह देवताः ।।२४।।
मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः। वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् ।।२५।।
दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः। दण्डं न्यस्य विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ।।२६।।

वह चाहे जिस किसी का जिस किसी के उद्देश्य से दिया हो, परम गति प्राप्त कराता है। ब्रह्मज्ञान, गया श्राद्ध, गोशाला में मृत्युलाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास—ये चार कर्म पुरुषों के लिए मोक्षदायक हैं। किन्तु इन सबों से ब्रह्मज्ञान, गोशाला में मृत्युलाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास करने का क्या काम है, यदि पुत्र पवित्र गया तीर्थ की यात्रा करता है ।।१४-१७।। गया तीर्थ में बुद्धिमान् पुरुष सभी समयों में पिण्डदान कर सकते हैं। किन्तु अधिकमास, जन्म दिन, गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर तथा बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने के समय गया श्राद्ध को न छोड़ना चाहिए। चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण के अवसर पर मृतकों के पिण्डकर्मों में महान् फल होता है। इस महातीर्थ में जाने पर क्षत का दोष नहीं लगता। दैवदुर्विपाकतया किसी महान् व्रण के हो जाने पर भी मनुष्य को गया तीर्थ में श्राद्ध कर्म का अधिकार रहता है, वह भी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। जीवन में एक बार की गया यात्रा एवं एक बार का गया का पिण्डदान करने से प्राणी को जीवन में कुछ दुर्लभ नहीं रहता, नित्य निवास करनेवालों की तो फिर बात ही क्या है? ब्रह्मादि देवताओं के परमप्रिय मुक्तिदायी इस गया तीर्थ में यदि कोई असावधानतया मृत्युलाभ करता है, तो उसे निस्सन्देह वैसी ही मुक्ति प्राप्त होती है, जैसी ब्रह्मज्ञान से ।।१८-२२।। कीकट (मगध) प्रभृति देशों में मृत्यु प्राप्त करनेवाले पितरों को तारने के लिए बुद्धिमान् पुरुष को सब प्रयत्न करके गया श्राद्ध करना चाहिए। उस समय ब्रह्मज्ञानपरायण विप्रों को हव्य-कव्यादि से सन्तुष्ट करना चाहिए, क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने पर सभी देवगण व पितरगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। विशाला, विरजा और गया को छोड़कर सभी तीर्थों में मुण्डन एवं उपवास करने की विधि विहित है, पिण्डदान करनेवाले भिक्षु को गया में जाकर केवल दण्ड दिखलाना चाहिए, पिण्डदान नहीं करना चाहिए, विष्णुपद पर दण्ड रखकर वह पितरों के समेत मुक्तिलाभ करता है। पारमार्थिक दृष्टि से दण्डधारी पाप अथवा पुण्य का भागी नहीं होता, अतः सभी क्रियाओं का

÷ अयं श्लोको न क. पुस्तके।

न दण्डी किल्बिषं धत्ते पुण्यं वा परमार्थतः। अतः सर्वां क्रियां त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः ।।२७।।
संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्। मुण्डं कुर्याच्च पूर्वेऽस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ।।२८।।
सार्धक्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणेरितम्। पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ।।२९।।
तन्मध्ये सर्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै। श्राद्धकृद्यो गयाक्षेत्रे पितॄणामनृणो हि सः ।।३०।।
शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु कुलानां शतमुद्धरेत्। गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति ।।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां च पदे पदे ।।३१।।
पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम्। तत्फलं च भवेन्नूनं समग्रं नात्र संशयः ।।३२।।
पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा। तण्डुलैः फलमूलाद्यैर्गयायां पिण्डपातनम् ।।३३।।
तिलकल्केन खण्डेन गुडेन सघृतेन वा। केवलेनैव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽथ वा ।।३४।।
पिण्याकं सघृतं खण्डं पितृभ्योऽक्षयमित्युत। इज्यते वाऽऽर्तवं भोज्यं हविष्यान्नं मुनीरितम् ।।३५।।
एकतः सर्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि। स्मृत्वा गदाधराङ्घ्र्यब्जं फल्गुतीर्थाम्बु चैकतः ।।३६।।
* पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम्। दक्षिणा चान्नसंकल्पस्तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ।।३७।।

परित्यागकर भावप्रवण होकर एकमात्र भगवान् विष्णु का ध्यान करता है ।।२३-२७।। संन्यासी को सभी कर्मों का परित्याग तो कर देना चाहिए, पर केवल वेद को नहीं त्यागना चाहिए। गयातीर्थ में जाकर उसे तीर्थ के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर किसी दिशा में मुण्डन कराना चाहिए। भगवान् ब्रह्मा ने गयातीर्थ का परिमाण ढाई कोस का, गया क्षेत्र का पाँच कोस का तथा गया शिर का एक कोस का बतलाया है ।।२८-२९।। त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे इसी के भीतर स्थित हैं। जो मनुष्य गया क्षेत्र में श्राद्ध करता है वह पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। गया शिर में जो श्राद्ध करता है वह सौ कुलों का उद्धार करता है। घर से गया का प्रस्थान मात्र करने से पितरों को पद-पद पर स्वर्गारोहण की सीढ़ियाँ मिलने लगती है ।।३०-३१।। अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल होता है, वह समस्त फल गया यात्रा[१] के एक-एक पग पर प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। दुग्ध मिश्रित चरु, सत्तू, पेठा, चावल, विविध प्रकार के फल एवं मूल-इन वस्तुओं से गया में पिण्डदान किया जाता है। तिलकल्क, घृतसमेत गुड़खण्ड अथवा केवल दही या उत्तम मधु या घृतसमेत पिण्याक द्वारा गया में श्राद्ध करने से पितरों को अक्षय तृप्ति मिलती है। अथवा जिस ऋतु में श्राद्ध हो रहा हो उस ऋतु में होनेवाले भोज्य पदार्थ, मुनियों द्वारा उद्दिष्ट हविष्यान्न एवं रसयुक्त सुमधुर वस्तुओं को एक ओर रखकर भगवान् गदाधर के चरणारविन्द एवं फल्गु के पवित्र जल का स्मरणकर पितरों के उद्देश्य से दान करना चाहिए। पिण्ड के लिए आसन, पिण्डदान, प्रत्यवनेजन, दक्षिणा और अन्न सङ्कल्प-तीर्थश्राद्धों की यही विधि है ।।३२-३७।।

---

१. अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र एवं मगध देशों में तीर्थयात्रा के अतिरिक्त यात्रा करने से प्राचीन स्मृतियों में पुनः शुद्धि संस्कार की आवश्यकता बतलायी गयी है।

* इत आरभ्य विचक्षणैरित्यन्तं ग्रन्थव्यत्यासः ख. पुस्तके।

नाऽऽवाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसंभवः । सकारुण्येन कर्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ।।३८।।
अन्यत्राऽऽवाहिताः काले पितरो यान्त्यमुं प्रति । तीर्थे सदा वसन्त्येव तस्मादावाहनं न हि ।।३९।।
तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकाङ्क्षिभिः । कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा कार्या क्रियाऽनिशम् ।।४०।।
ब्रह्मचार्येकभोजी च भूयाशी सत्यवाक्शुचिः । सर्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते ।।४१।।
तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाषण्डं पूर्वतस्त्यजेत्) । पाषण्डः स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारकः ।।४२।।
तीर्थेषु ये नरा धीराः कर्म कुर्वन्ति तद्गताः । यथा ब्रह्मविदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेतसः ।।
प्रविशन्ति परेशाख्यं ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः ।।४३।।
[+याऽऽस्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता । (साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै ।।
त्रातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ।।४४।।
तथाऽक्षयवटं गत्वा विप्रान्संतोषयिष्यति । ब्रह्माप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् ।।
तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ।।४५।।
×गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते । सांनिध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ।।४६।।

तीर्थों में आवाहन, दिशाओं में परदा टाँगना अथवा दृष्टिजन्य दोष, ये सब तीर्थ श्राद्धों में नहीं होते। बुद्धिमानों को करुणापूर्वक तीर्थश्राद्धों को सम्पन्न करना चाहिए। पितरगण अन्य स्थानों में आवाहन करने पर जाते हैं, किन्तु यहाँ नहीं, क्योंकि वे तीर्थों में तो सर्वदा निवास ही करते हैं, यही कारण है कि तीर्थों में उन्हें आवाहित नहीं किया जाता। फल की आकांक्षा से तीर्थों में श्राद्ध प्रदान करनेवाले पुरुषों को काम, क्रोध तथा लोभ को छोड़कर सारी क्रियाएँ करनी चाहिए ।।३८-४०।। ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर एक समय भोजन करना चाहिए, पृथ्वी पर शयन करना चाहिए, सत्य वचन बोलना, मन एवं शरीर से पवित्र रहना चाहिए। सभी जीवों के कल्याण साधन में निरत रहना चाहिए—जो इन सब नियमों का पालन करता है, वह तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है। धीर पुरुष को तीर्थों की यात्रा करते समय सर्वप्रथम पाखण्ड को त्याग देना चाहिए। जो कामनाओं को उत्तेजित करता है, वह पाखण्ड है, जो धीर पुरुष तीर्थों में जाकर पितरों में भक्ति एवं निष्ठा रखकर ब्रह्मवेत्ताओं की भाँति अनन्यचित्त हो सब कर्म करते हैं, वे ब्रह्मपरायण परेश ब्रह्मपद में प्रविष्ट होते हैं, त्रैलोक्य विख्यात जो वैतरणी नामक नदी है, वह भी पितरों को तारने के लिए गया क्षेत्र में अवतीर्ण हुई है, उस वैतरणी में स्नानकर गोदान करनेवाला अपने इक्कीस कुलों को तारता है ।।४१-४४।। अक्षयवट के पास जाकर जो ब्रह्मपरायण ब्राह्मणों को हव्य-कव्यादि वस्तुओं से पूजित करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है, क्योंकि उनके सन्तुष्ट हो जाने पर समस्त पितरगण एवं देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। उस पवित्र गया तीर्थ में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर कोई-न-कोई तीर्थ विद्यमान न हो। वहाँ सभी तीर्थों का सान्निध्य रहता है, गया तीर्थ उन सबसे बढ़कर

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

× इतः प्रभृति सुदुर्लभमित्यन्तं ग्रन्थव्यत्यासः ख. पुस्तके वर्तते।

मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे । =गयायां दुर्लभं लोके वदन्ति ऋषयः सदा ।।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ।।४७।।
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ।।४८।।
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः । न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ।।४९।।

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०५।।

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

गयासुरः कथं जातः किंप्रभावः किमात्मकः । तपस्तप्तं कथं तेन कथं देहपवित्रता ।।१।।

सनत्कुमार उवाच

विष्णोर्नाभ्यम्बुजाज्जातो ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज संप्रोक्तः पूर्वं देवेन विष्णुना ।।२।।

पुण्य है। मीन, मेष, कन्या, धनु एवं वृष राशि पर जब सूर्य हों उस समय गया तीर्थ परम दुर्लभ है, ऋषि लोग सर्वदा यह कहते आये हैं कि तीनों लोकों में गया का पिण्डदान परम दुर्लभ है। मकर राशि पर जब चन्द्रमा और सूर्य स्थित हों, उस समय तीनों लोकों में गया श्राद्ध परम दुर्लभ माना गया है। मनुष्य गया में पिण्डदान करने से जो फल प्राप्त करता है, उसका मैं सैकड़ों कोटि कल्पों में भी वर्णन नहीं कर सकता ।।४५-४९।।

श्री वायुमहापुराण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।१०५।।

अध्याय १०६

गया माहात्म्य

नारद बोले-ब्रह्मन्! वह गयासुर किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? उसका प्रभाव और स्वरूप क्या था ? उसने किस प्रकार तपस्या की ? शारीरिक पवित्रता उसे कैसे प्राप्त हुई ।।१।।

सनत्कुमार बोले-नारद जी! भगवान् विष्णु के नाभिकमल से लोकपितामह ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए थे और पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के कहने पर उन्होंने प्रजाओं की सृष्टि की थी। आसुरभाव से उन्होंने असुरों की तथा उदार भावों से

= इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

आसुरेणैव भावेन असुरानसृजत्पुरा। सौमनस्येन भावेन देवान्सुमनसोऽसृजत् ।।३।।
गयासुरोऽसुराणां च महाबलपराक्रमः। योजनानां सपादं च शतं तस्योच्छ्रयः स्मृतः ।।४।।
स्थूलः षष्टिर्योजनानां श्रेष्ठोऽसौ वैष्णवः स्मृतः। कोलाहलं गिरिवरे तपस्तेपे सुदारुणम् ।।५।।
बहुवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासं स्थिरोऽभवत्। तत्तपस्तापिता देवाः संक्षोभं परमं गताः ।।६।।
ब्रह्मलोकं गता देवाः प्रोचुस्तेऽथ पितामहम्। गयासुराद्रक्ष देव ब्रह्मा देवांस्ततोऽब्रवीत् ।।७।।
व्रजामः शंकरं देवा ब्रह्माद्याश्च गताः शिवम्। कैलासे चाब्रुवन्नत्वा रक्ष देव महासुरात् ।।८।।
ब्रह्माद्यानब्रवीच्छंभुर्व्रजामः शरणं हरिम्। क्षीराब्धौ देवदेवेशः स नः श्रेयो विधास्यति ।।
ब्रह्मा महेश्वरो देवा विष्णुं नत्वा प्रतुष्टुवुः ।।९।।

देवा ऊचुः

ॐ नमो विष्णवे भर्त्रे सर्वेषां प्रभविष्णवे। रोचिष्णवे जिष्णवे च राक्षसादिग्रसिष्णवे ।।१०।।
धरिष्णवेऽखिलस्यास्य योगिनां पारयिष्णवे। वर्धिष्णवे ह्यनन्ताय नमो भ्राजिष्णवे नमः ।।११।।

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो वासुदेवः सुराणां दर्शनं ददौ। किमर्थमागता देवा विष्णुनोक्तास्तमब्रुवन् ।।१२।।

देवतओं की उत्पत्ति की थी। उन असुरों में महाबलवान् तथा पराक्रमी गयासुर हुआ। उसकी ऊँचाई सवा सौ योजनों की सुनी जाती है। मोटाई साठ सहस्र योजनों की थी। भगवान् विष्णु का वह भक्त था। कोलाहल नामक सुन्दर गिरि पर जाकर उसने परम दारुण तपस्या की थी। सुना जाता है कि वहाँ जाकर अनेक सहस्र वर्षों तक श्वास को रोककर स्थित रहा। उसके इस दारुण तप को देखकर देवगण बहुत सन्तप्त और क्षुब्ध हुए। अन्ततः देवगण ब्रह्मलोक में स्थित पितामह ब्रह्मा के पास जाकर बोले, देव! गयासुर से हम लोगों की रक्षा कीजिये। देवताओं की आर्त वाणी सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा ।।२-७।। देवगण! चलिये, इस कार्य के लिए हम लोग एक साथ शंकर के पास चलें। ऐसा निश्चय कर ब्रह्मादि देवगण कैलास शिखर पर अवस्थित शंकर के पास गये और बोले, देव! महासुर गय से हम लोगों की रक्षा कीजिये। शम्भु ने ब्रह्मादि देवगणों से कहा-चलिये, हम लोग इस कार्य के लिए हरि की शरण में चलें। क्षीरसागर में वे देवदेवेश विराजमान हैं, वे ही लोगों का कल्याण साधन करेंगे। इस प्रकार निश्चयकर ब्रह्मा, महादेव एवं देवताओं ने क्षीरसागर में जाकर भगवान् विष्णु को नमस्कारकर स्तुति की ।।८-९।।

देवताओं ने कहा-जो समस्त जीवों के उत्पत्तिकर्त्ता एवं पालक हैं, परम शोभाशाली एवं विजयी हैं, राक्षसादि अनुपकारियों के ग्रसनेवाले हैं, अखिल चराचर जगत् के धारण करनेवाले एवं योगियों के उद्धारक हैं, अनन्त महिमाशाली, उत्तरोत्तर विकासशील एवं महा महिमामय हैं, उन भगवान् विष्णु को हम सभी बार-बार नमस्कार करते हैं ।।१०-११।।

सनत्कुमार बोले-नारद जी! ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् वासुदेव ने उन्हें दर्शन दिया

गयासुरभयाद्देव रक्षास्मानब्रवीद्धरिम् । ब्रह्माद्या यान्तु तं दैत्यमागमिष्यामहं ततः ।।१३।।
केशवो गरुडारूढो वरं दातुं गयासुरे । सर्वे स्वं स्वं समास्थाय ययुर्वाहनमुत्तमम् ।।१४।।
ऊचुस्तं वासुदेवाद्याः किमर्थं तप्यते त्वदा । संतुष्टाः स्वागताः सर्वे वरं ब्रूहि गयासुर ।।१५।।

गयासुर उवाच

यदि तुष्टाः स्थ मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सर्वदेवद्विजातिभ्यो यज्ञतीर्थशिलोच्चयात् ।।१६।।
*देवेभ्योऽतिपवित्रोऽहमृषिभ्योऽपि शिवाव्ययात् । मन्त्रेभ्यो देवदेवीम्यो योगिभ्यश्चापि सर्वशः ।।१७।।
न्यासिभ्यश्चापि कर्मिभ्यो धर्मिभिश्च तथा पुनः । ज्ञ (य) तिपवित्रेभ्यः पवित्रः स्यां सदा सुराः ।।१८।।
पवित्रमस्तु तं देवा दैत्यमुक्त्वा ययुर्दिवम् । दैत्यं दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च सर्वे हरिपुरं ययुः ।।१९।।
शून्यं लोकत्रयं जातं शून्या यमपुरी ह्यभूत् । यम इंद्रादिभिः सार्धं ब्रह्मलोकं ततोऽगतम् ।।२०।।
ब्रह्माणमूचिरे देवा गयासुरविलोपिताः । त्वया दत्तोऽधिकारो वै गृहाण त्वं पितामह ।।२१।।
ब्रह्माऽब्रवीत्ततो देवान्व्रजामो विष्णुमव्ययम् । ब्रह्मादयोऽब्रुवन्विष्णुं त्वया दत्तवरेऽसुरे ।।२२।।

और कहा कि देवगण! आप लोगों का यहाँ पर किस कारण आगमन हुआ है। देवताओं ने हरि से कहा, देव! हम लोगों की गयासुर से रक्षा कीजिये। हरि ने कहा, ब्रह्मादि देवगण आप लोग जाइये, मैं उस दैत्य के पास आ रहा हूँ। ऐसा कहकर केशव गरुड़ पर सवार होकर वरदान देने की कामना से गयासुर के पास गमनोद्यत हुए और अन्य देवगण भी अपने-अपने उत्तम वाहनों पर सवार होकर उसी स्थान को गये। वासुदेव प्रभृति देवगणों ने जाकर गयासुर से कहा, गयासुर! तुम किस लिए तपस्या कर रहे हो ? तुम्हारी इस घोर तपस्या से हम सब सन्तुष्ट हैं.और तुम्हें वर देने के लिए यहाँ आये हुए हैं, मन चाहा वरदान माँग लो ।।१२-१५।।

गयासुर बोला-ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रभृति देवगण! यदि आप लोग सचमुच हमारे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो मेरी यह कामना है कि मैं सभी देवताओं, द्विजातियों, यज्ञों, तीर्थों एवं पर्वतीय प्रान्तों से भी पवित्र हो जाऊँ, समस्त देवगणों से भी लोग मुझे अति पवित्र मानें। धर्माचारपरायण ऋषियों एवं अविनाशी शिव से भी बढ़कर पवित्र होने की मेरी कामना है; सभी प्रकार के उत्तमोत्तम मन्त्रों, देवी, देवताओं एवं सभी प्रकार के योगियों, संन्यासियों, गृहस्थों, धर्मिष्ठों एवं यतियों से भी, जो अतिशय पवित्र जाने जाते हैं मैं सर्वदा बढ़कर पवित्र होऊँ-यही मेरी अभिलाषा है। गयासुर! तुम अपनी इच्छा के अनुरूप ही पवित्रता लाभ करो-ऐसा कहकर देवगण गयासुर को पुनः देखकर एवं पवित्र करने की भावना से स्पर्शकर स्वर्ग को प्रस्थित हुए। गयासुर के इस अद्भुत एवं महान् कार्य से तीनों लोक एवं यमपुरी सूनी हो गयी। तब इन्द्रादि देवताओं को साथ लेकर यमराज ब्रह्मलोक को गये। गयासुर द्वारा अपदस्थ किये गये देवताओं ने कहा, पितामह! हम सबों का अधिकार तुम्हारा ही दिया हुआ था, अब उसे तुम्हीं ग्रहण करो ।।१६-२१।। ब्रह्मा ने देवताओं की ऐसी बातें सुनकर उनसे कहा, चलिये, इस कार्य के लिए हम लोग भगवान् विष्णु के पास चलें जो कभी विचलित

---

* एतदर्धस्थाने वेदोभ्योऽतिपवित्रोऽहं पवित्रे भवभोः सदेति ख. पुस्तके।

तद्दर्शनाद्ययुः स्वर्गं शून्यं लोकत्रयं ह्यभूत्। देवैरुक्तो वासुदेवो ब्रह्माणं स बचोऽब्रवीत् ।।२३।।
गत्वाऽसुरं प्रार्थयस्व यज्ञार्थं देहि देहकम्। विष्णूक्तः ससुरो ब्रह्मा गत्वाऽपश्यन्महासुरम् ।।२४।।
गयासुरोऽब्रवीद्दृष्ट्वा ब्राह्मणं त्रिदशैः सह। संपूज्योत्थाय विधिवत्प्रणतः श्वद्धयाऽन्वितः ।।२५।।

गयासुर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः। यदागतोऽतिथिर्ब्रह्मा सर्वं प्राप्तं मयाऽद्य वै ।।२६।।
योगिन्योगाङ्गवित्सर्वलोकस्वामिन्पितर्गुरो । यदर्थमागतो ब्रह्मंस्तत्कार्यं करवाण्यहम् ।।२७।।

ब्रह्मोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टानि भ्रमता मया। यज्ञार्थं न तु ते तानि पवित्राणि शरीरतः ।।२८।।
त्वया देहे पवित्रत्वं प्राप्तं विष्णुप्रसादतः। अतः पवित्रं देहं त्वं यज्ञार्थं देहि मेऽसुर ।।२९।।

गयासुर उवाच

धन्योऽहं देवदेवेश यद्देहं प्रार्थ्यते त्वया। पितृवंशः कृतार्थो मे देहे यागं करोषि चेत्।।३०।।
त्वयैवोत्पादितो देहः पवित्रस्तु त्वया कृतः। सर्वेषामुपकाराय यागोऽवश्यं भवत्विति।।३१।।

होनेवाले नहीं हैं। वहाँ जाकर ब्रह्मा प्रभृति देवों ने भगवान् विष्णु से कहा, देव! तुमने गयासुर को जैसा वरदान दे दिया है उसके प्रभाव से प्रतिदिन सभी प्राणी उसका दर्शन करके स्वर्ग को चले जाते हैं, उसका परिणाम यह हुआ है कि तीनों लोक सूना हो गया है, देवताओं के इस संयुक्त निवेदन करने पर वासुदेव ने ब्रह्मा से कहा, कि आप जाकर यज्ञ करने के लिए गयासुर से प्रार्थना करें कि वह अपना शरीर दे। विष्णु भगवान् के ऐसा कहने पर देवताओं समेत ब्रह्मा उस महान् असुर गय के पास गये। अन्य देवताओं के साथ ब्रह्मा को आया देखकर गयासुर ने उन सब को विधिपूर्वक प्रणाम किया और परम श्रद्धापूर्वक पूजा आदि करके निवेदन किया ।।२२-२५।।

गयासुर बोला-आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी तपस्या फलवती हुई, जो स्वयं भगवान् ब्रह्मा अतिथि रूप में यहाँ आये। आज मैं सब कुछ पा चुका। हे योगिन् ! योगवेत्ता, सभी लोकों के स्वामिन्! गुरुदेव ब्रह्मन्! भगवन्! आप जिस प्रयोजन से यहाँ पधारे हैं, उसे मैं पूरा करना चाहता हूँ ।।२६-२७।।

ब्रह्मा ने कहा-महाभाग गयासुर! समस्त पृथ्वी भर में भ्रमण करके मैंने जिन-जिन तीर्थों को देखा है, वे तुम्हारे शरीर की पवित्रता के कारण यज्ञ के लिए पवित्र नहीं रह सके। भगवान् विष्णु की अनुकम्पा से तुमने अपने शरीर में परम पवित्रता का लाभ किया है, अतः मैं चाहता हूँ कि यज्ञ के लिए तुम अपने पवित्र शरीर का मुझे दान करो ।।२८-२९।।

गयासुर बोला-हे देवदेवेश! आप हमारे शरीर के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, यह हमारा धन्य भाग्य है। यदि आप हमारे शरीर में यज्ञ क्रिया सम्पन्न करेंगे तो हमारा पितृ कुल कृतकृत्य हो जायगा। हे देव! इस नश्वर शरीर की रचना आप ही ने की है, तुम्हीं ने इसे इतनी अपूर्व पवित्रता प्रदान की है, सभी जीवधारियों के लाभार्थ होनेवाला वह याग अवश्य सम्पन्न होगा। श्वेत कल्प में ऐसी बातें कर गयासुर नैर्ऋत दिशा की ओर धराशायी हो गया, उस समय

इत्युक्त्वा सोऽपतद्भूमौ श्वेतकल्पे गयासुरः। नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य तदा कोलाहले गिरौ।।३२।।
शिरः कृत्वोत्तरे दैत्यः पादौ कृत्वा तु दक्षिणे। ब्रह्मा संभृतसंभारो मानसानृत्विजोऽसृजत्।।३३।।
अग्निशर्माणममृतं शौनकं जाञ्जलिं मृदुम्। कुमुथिं वेदकौण्डिल्यं हारीतं काश्यपं कृपम्।।३४।।
गर्गं कौशिकवासिष्ठौ मुनिं भार्गवमव्ययम्। वृद्धं पाराशरं कण्वं माण्डव्यं श्रुतिकेवलम्।।३५।।
श्वेतं सुमालं दमनं सुहोत्रं कङ्कमेव च। लौकाक्षिं च महाबाहुं जैगीषव्यं तथैव च।।३६।।
दधिपञ्चमुखं विप्रमृषयं कर्कमेव च। कात्यायनं गोभिलं च मुनिमुग्रमहाव्रतम्।।३७।।
*सुपालकं गौतमं च तथा वेदशिरोव्रतम्। जयामालिनमव्यग्रं चाटुहासं च दारुणम्।।३८।।
+आत्रेयं चाप्यङ्गिरसमौपमन्युं महाव्रतम्। गोकर्णं च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतम्।।३९।।
एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान्वेधा लोकपितामहः। परिकल्प्याकरोद्यागं गयासुरशरीरके।।४०।।
अग्निशर्माऽपि पञ्चाग्नीन्मुखादेतानथासृजत्। दक्षिणाग्निं गार्हपत्याहवनीयौ तपोव्ययः।।४१।।
सभ्यावसभ्यौ देवर्षे तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः। यज्ञस्य च प्रतिष्ठार्थं विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ।।४२।।
हुत्वा पूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु। यज्ञयूपं सूरैः सार्धं समानीय व्यरोपयत्।।४३।।

पर्वत प्रान्त में सर्वत्र कोलाहल मच गया। दैत्य ने अपने सिर को उत्तर दिशा में और दोनों पैरों को दक्षिण दिशा में किया। यज्ञ की समस्त सामग्रियों एवं साधनों समेत ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ को सर्वाङ्गतः सम्पन्न करने के लिए मानस पुरोहितों की सृष्टि की ।।३०–३३।। उनके नाम थे, अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, जाञ्जलि, मृदु, कुमुथि, वेद कौण्डिल्य, हारीत, काश्यप, कृप, गर्ग, कौशिक, वाशिष्ठ, परम तपोनिष्ठ भार्गव, वृद्ध पाराशर, कण्व, माण्डव्य, श्रुतिकेवल, श्वेत, सुमाल, दमन, सुहोत्र, कङ्क, लौकाक्षि, महाबाहु जैगीषव्य, दधिपञ्चमुख, विप्रवर ऋषय, कर्क, कात्यायन, गोभिल, महाव्रतशाली मुनिवर उग्र, सुपालक, गौतम, वेदशिरोव्रत, अव्यग्रचित्त जयमाली, चाटुहास, दारुण, आत्रेय, अङ्गिरस, महाव्रतशील औपमन्यु, गोकर्ण, गुहावास, शिखण्डी, उमाव्रत–इन सब मुनियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे विप्रों की लोक पितामह ब्रह्मा जी ने सृष्टि की और गयासुर के शरीर पर यज्ञ का कार्य प्रारम्भ किया ।।३४–४०।। इन उपर्युक्त पुरोहित ऋषियों में से अग्निशर्मा ने अपने मुख से दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आवहनीय, सभ्य एवं अवसभ्य नामक पाँच अग्नियों का निर्माण किया। हे देवर्षि! इन्हीं पाँचों अग्नियों में यज्ञों की प्रतिष्ठा हुई। यज्ञ की सम्यक् प्रतिष्ठापना के लिए ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणाएँ दी गयीं। यज्ञ के अन्त में भगवान् ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दान के उपरान्त अवभृथ स्नान किया–और समस्त देवताओं के साथ यज्ञस्तम्भ को आरोपित किया। उस मंगलमय स्तम्भ को ब्रह्मा के उत्तम सरोवर में विमज्जित कर उसी में प्रतिष्ठित भी किया। यज्ञभूमि के चलायमान होने पर ब्रह्मा जी चकित होकर धर्मराज से बोले, यमराज, तुम्हारे घर एक शिला है, उसे बिना किसी वितर्क के यहाँ लाओ और दैत्य के सिर पर शीघ्र स्थापित करो–ऐसी मेरी आज्ञा है। असुरराज गय

---

* इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

+ अयं श्लोको न विद्यते ख. पुस्तके।

ब्रह्मणः सरसः श्रेष्ठे सरस्येवाऽऽश्रितं शुभम् । चलितश्चकितो ब्रह्मा धर्मराजमभाषत ।।४४।।
जाता गृहे तव शिला समानीयाविचारयन् । दैत्यस्य शीघ्रं शिरसि तां धारय ममाऽऽज्ञया ।।४५।।
निश्चलार्थं यमः श्रुत्वाऽधारयन्मस्तके शिलाम् । शिलायां धारितायां तु सशिलश्चासुरोऽचलत् ।।४६।।
देवानूचेऽथ रुद्रादीञ्शिलायां निश्चलाः किल । तिष्ठन्तु देवाः सकलास्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः ।।४७।।
देवाः पादैर्लक्षयित्वा तथाऽपि कलितोऽसुरः । ब्रह्माऽथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम् ।।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नत्वा चाऽऽदृत्य तं प्रभुम् ।।४८।।

ब्रह्मोवाच

ब्रह्माण्डस्य पते नाथ नमामि जगतां पतिम् । गतिं कीर्तिमतां नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।।४९।।
विष्वक्सेनोऽब्रवीद्विष्णुं देव त्वां स्तौति पद्मजः । हरिराहाऽऽनय स्वं तं विष्णूक्तः स तमानयत् ।।
अजमूचे हरिः कस्मादागतोऽसि वदस्व तत् ।।५०।।

ब्रह्मोवाच

देवदेव कृते यागे प्रचचाल गयासुरः । शिलायां देवरूपिण्यां न्यस्तायां तस्य मस्तके ।।५१।।
रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् । इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादं कुरु माधव ।।५२।।

के शरीर को निश्चल करने को अत्यावश्यक समझकर यमराज ने शिला लाकर उसके मस्तक पर रखा, किन्तु उस शिला के रखने पर भी असुरराज शिला समेत विचलित हो गया। तब ब्रह्मा ने रुद्रादि देवताओं से कहा कि आप लोग इस शिला को निश्चल करने के लिए इस पर अवस्थित हो जायँ। देवगण 'बहुत अच्छा' कहकर उसी शिला पर अवस्थित हो गये। देवताओं के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महाअसुर चंचल ही बना रहा। तब व्याकुल होकर ब्रह्मा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु के पास गये और वहाँ विनम्रभाव से आदरपूर्वक प्रभु की इस प्रकार प्रार्थना की ।।४१–४८।।

ब्रह्मा बोले–हे निखिल ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! जगदीश्वर आपको हमारा नमस्कार है, आप मनुष्यों को यश देनेवाले, उनकी भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता आप ही हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर विष्वक्सेन ने भगवान् विष्णु के समीप जाकर कहा, देव! पद्म सम्भव भगवान् आपकी स्तुति कर रहे हैं। हरि ने कहा जाओ, उन्हें लिवा लाओ। भगवान् विष्णु के आदेशानुसार विष्वक्सेन ने ब्रह्मा को भगवान् के सम्मुख उपस्थित किया। हरि ने अजन्मा ब्रह्मा से कहा, देव किस कारणवश आपका यहाँ पदार्पण हुआ है, बतलाइये ।।४९–५०।।

ब्रह्मा ने कहा–भगवन्! आपके निर्देशानुसार यज्ञ सम्पन्न तो हो गया पर गयासुर अभी तक चञ्चल बना हुआ है। हम सबों ने उसके मस्तक पर यद्यपि देवरूपिणी शिला लाकर रखी है, फिर भी वह चलायमान है। यही नहीं, रुद्र प्रभृत्ति देवगणों के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महान् असुर निश्चल नहीं हुआ। माधव! अब वह जिस प्रकार निश्चल हो, आप उसके लिए कृपा करें। ब्रह्मा की आर्त वाणी सुनकर भगवान् हरि ने अपने शरीर से खींचकर एक मूर्ति ब्रह्मा

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्ण स्वशरीरतः । मूर्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान्हरिः ।।५३।।
अनीय मूर्तिं ब्रह्माऽपि शिलायां समधारयत् । तथाऽपि चलितं वीक्ष्य पुनर्देवमथाऽऽह्वयत् ।।५४।।
आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् । जनार्दनाभिधानेन पुण्डरीकेतिनामतः ।।
शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ।।५५।।
निश्चलार्थं पञ्चधाऽऽसीच्छिलायां प्रपितामहः । पितामहोऽथ फल्वीशः केदारः कनकेश्वरः ।।५६।।
ब्रह्मा स्थितः स्वयं तत्र गजरूपी विनायकः । गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कस्त्रिधा रविः ।।५७।।
लक्ष्मीः सीताभिधानेन गौरी च मङ्गलाह्वया । गायत्री चैव सावित्री त्रिसंध्या च सरस्वती ।।५८।।
इन्द्रो बृहस्पतिः पूषा वसवोऽष्टौ महाबलाः । विश्वे देवाश्चाऽऽश्विनेयौ [*मारुतो विश्वनायकः ।।
सयक्षोरगगन्धर्वास्तस्थुर्देवाः स्वशक्तिभिः ।।५९।।
आद्यया गदया चासौ! यस्माद्दैत्यः स्थिरीकृतः । स्थित इत्येव हरिणा तस्मादादिगदाधरः ।।६०।।
ऊचे गयासुरो देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम् । यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरमलयं मया ।।
विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ।।६१।।
यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थ गदया हरिणा तथा । पीडितो यद्यहं देवाः प्रसन्नाः सन्तु सर्वदा ।।६२।।

को गयासुर के शरीर को निश्चल करने के लिए दिया। ब्रह्मा ने उक्त मूर्ति को लाकर गयासुर के मस्तक पर स्थापित शिला के ऊपर स्थापित किया। किन्तु उस पर भी जब शिला को चलायमान देखा तो पुनः हरि का आवाहन किया। ब्रह्मा के आवाहन करने पर भगवान् क्षीरसागर से आकर शिला के ऊपर स्वयमेव अवस्थित हुए ।।५१-५५।। स्वयं भगवान् जनार्दन पुण्डरीकाक्ष ने गदा धारणकर उक्त शिला को निश्चल करने के लिए उस पर अपना अवस्थान किया। उसी शिला को अधिकाधिक निश्चल करने के लिए प्रपितामह ने अपने को पाँच भागों में विभक्त कर अवस्थान किया। वे पाँचों वहाँ प्रपितामह, पितामह, फल्वीश, केदार और कनकेश्वर के नाम से विख्यात थे। उसी शिला पर गज रूपधारी विनायक भी स्थित हुए। सूर्य गयादित्य, उत्तरार्क और दक्षिणार्क इन तीन नामों से अवस्थित हुए। लक्ष्मी सीता के नाम से तथा गौरी मङ्गला के नाम से उस शिलाखण्ड पर अवस्थित हुईं। सरस्वती गायत्री, सावित्री और त्रिसन्ध्या इन तीनों स्वरूपों में स्थित हुईं। इनके अतिरिक्त इन्द्र, बृहस्पति, पूषा, महाबलशाली आठों वसुगण, विश्वेदेवगण, दोनों अश्विनी कुमार, विश्व नामक मारुत, यक्ष, गन्धर्व, उरगादिकों के साथ अपनी-अपनी शक्तियों समेत उस शिलाखण्ड पर विराजमान हुए ।।५६-५९।। यतः भगवान् हरि की आदि गदा से वह असुरराज गय स्थिर किया गया था, अतः भगवान् आदि गदाधर के नाम से विख्यात हुए। उक्त अवसर पर गयासुर ने उपस्थित देवगणों से कहा, सुरवृन्द! आप लोगों ने किस कारण से हमें वंचित किया, मैंने यज्ञ के लिए अपने शरीर को ब्रह्मा को समर्पित किया था। क्या मैं भगवान् विष्णु के वचन

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

गदाधरादयस्तुष्टा प्रोचुः सार्धं गयासुरम् । वरं ब्रूहि प्रसन्नाः स्मो देवानूचे गयासुरः ।।६३।।
यावत्पृथ्वी पर्वताश्च यावच्चन्द्रार्कतारकाः । तावच्छिलायां तिष्ठन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।
अन्ये च सकला देवा मन्नाम्ना क्षेत्रमस्तु वै ।।६४।।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । तन्मध्ये सर्वतीर्थानि प्रयच्छन्ति हितं नृणाम् ।।६५।।
स्नानादितर्पणं कृत्वा पिण्डदानात्फलाधिकम् । महात्मानि सहस्रं च कुलानां चोद्धरेन्नरः ।।६६।।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण येयं तिष्ठत सर्वदा । गदाधरः स्वयं लोकाद्भूयात्सर्वाघनाशनात् ।।६७।।
श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते । ब्रह्महत्यादिकं पापं विनश्यतु च सेविनाम् ।।६८।।
नैमिषं पुष्करं गङ्गा प्रयागश्चाविमुक्तिकम् । एतान्यन्यानि तीर्थानि दिवि भुव्यन्तरिक्षतः ।।
समायान्तु सदा नृणां प्रयच्छन्तु हितं सुराः ।।६९।।
+किं बहूक्त्या सुरगणा युष्मास्वेकाऽपि देवता । चेन्न तिष्ठेदहं चापि सभयः प्रतिपाल्यताम् ।।७०।।
गयासुरवचः श्रुत्वा प्रोचुर्विष्ण्वादयः सुराः । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ।।७१।।

मात्र से निश्चल न हो जाता ? देवताओं तथा भगवान् विष्णु की गदा द्वारा मैं पीड़ित हो चुका हूँ। आप देवगण सर्वदा प्रसन्न रहें ।।६०-६२।। समस्त देवताओं के साथ गदाधारी महान् देवताओं को गयासुर की इन बातों से बड़ी प्रसन्नता हुई, वे बोले, गयासुर! हम लोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, जो वरदान चाहो, माँग लो। गयासुर ने देवताओं से कहा—देवगण! जब तक पृथ्वी का अस्तित्व है, जब तक पर्वतगण, चन्द्रमा, तारागण विद्यमान रहें, तब तक इस शिला पर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निवास बना रहे, अन्यान्य समस्त देवगण भी बने रहें, इस क्षेत्र की प्रतिष्ठा मेरे नाम से हो। गयाक्षेत्र की मर्यादा पाँच कोस की तथा गया सिर की मर्यादा एक कोस की है। इन दोनों के मध्य भाग में मानव हितकारी समस्त तीर्थों का निवास हो—ऐसा आप लोग वरदान करें। इस बीच में स्नानादिकर तर्पण एवं पिण्डदान से महान् फल की प्राप्ति हो, इस महान् प्रभावशाली क्षेत्र में पिण्डदानादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य अपने सहस्रों कुलों का उद्धार करे ।।६३-६६।। आप लोग व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर धारणकर इस शिला पर सर्वदा विद्यमान रहें। भगवान् गदाधर यहाँ स्थित रहकर समस्त लोक के पाप पुञ्जों का विनाश करें। जो लोग यहाँ सपिण्ड श्राद्ध दान करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें। इस पवित्र क्षेत्र के सेवन करनेवालों के ब्रह्महत्या आदि घोर पाप विनष्ट हो जायँ। नैमिष, पुष्कर, गङ्गा, प्रयाग, अविमुक्त प्रभृति जितने उत्तमोत्तम तीर्थ हैं, तथा उनके अतिरिक्त जो अन्यान्य तीर्थ स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं भूमण्डल में हैं, वे सभी हमारे इस पवित्र तीर्थ में आकर मानव मात्र का कल्याण सम्पादित करें—ऐसा वरदान आप लोग हमें दीजिये। देवगण! बहुत अधिक मैं क्या कहूँ। आप लोगों में से यदि एक भी देवता इस शिला पर न रहेंगे तो मैं भी स्थित न रह सकूँगा। यही प्रतिज्ञा है, इसका प्रतिपालन करते जाइयेगा ।।६७-७०।। गयासुर के वचन सुनकर विष्णु प्रभृति देवताओं ने कहा, गयासुर! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सम्पन्न होगा इसमें सन्देह नहीं है। इस पवित्र तीर्थ में आनेवाले मनुष्यगण

+ अयं श्लोकः ख. पुस्तके न।

अस्मत्पादानर्चयित्वा यास्यन्ति परमां गतिम् । देवैर्दत्तवरो दैत्यो हर्षितो निश्चलोऽभवत् ।।७२।।
स्थितेषु चैव देवेषु ब्राह्मणेभ्यो ददावजः । ग्रामांश्च पञ्चपञ्चाशत्पञ्चक्रोशीं गयां तथा ।।
गृहान्कृत्वा ददौ दिव्यान्सर्वोपस्करसंयुतान् ।।७३।।
कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातादिकांस्तरून् । महानदीं क्षीरवहां घृतकुल्यास्तथैव च ।।७४।।
मधुस्त्रवां मधुकुल्यां दिव्याज्याढ्यसरांसि च । सुवर्णदीर्घिकां चैव बहूनन्नादिपर्वतान् ।।७५।।
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च सर्वं ब्रह्मा सृजन्ददौ । न याचध्वंहि विप्रेन्द्रा अन्यानुक्त्वा ददावजः।।७६।।
दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं नत्वां ह्यादिगदाधरम् । धर्मारण्ये तत्र धर्मं याजयित्वा ययाचिरे ।।७७।।
धर्मयागे च लोभाद्वै प्रतिगृह्य धनादिकम् । ततो ब्रह्मा समागत्य ब्राह्मणांस्ताञ्शशाप ह ।।७८।।
कृतवन्तो यतो लोभं मद्दत्तेष्वखिलेष्वपि । तस्मादृणाधिका यूयं भविष्यन्ति(थ)सदा द्विजाः ।।७९।।
युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वता । नद्यादयो वारिवहा मृन्मयाश्च तथा गृहाः ।।८०।।
कामधेनुः कल्पवृक्षो मल्लोकमुपतिष्ठताम् । एवं शप्ता ब्रह्मणा ते प्रार्थयन्तोऽब्रुवन्नजम् ।।८१।।
त्वया यद्दत्तमखिलं तत्सर्वं शापतो गतम् । जीवनार्थं प्रसादं नो भगवन्कर्तुमर्हसि ।।८२।।

हम लोगों की पूजा करके परम गति प्राप्त करेंगे। देवगणों के इस प्रकार वरदान देने पर दैत्य परम हर्षित होकर निश्चलता को प्राप्त हुआ। उक्त शिला पर उपर्युक्त देवगणों के अवस्थित हो जाने पर ब्रह्मा ने यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों को पचपन ग्राम प्रदान किये। पञ्चक्रोशी गया पुरी को भी उन्हें उत्सर्ग कर दिया। गृहस्थी के सभी साधनों एवं सामग्रियों से समन्वित दिव्य गृहों का निर्माणकर उन्हें समर्पित किया। इसके अतिरिक्त कामधेनु गौ, कल्पवृक्ष, पारिजात प्रभृति देवतरु, क्षीरवाहिनी महानदी, घृतपूर्ण छोटी बावलियाँ, मधुस्त्राविणी मनोहर नदी, मधुपूरित छोटी-छोटी गड़हियाँ, दिव्यगुण सम्पन्न घृतों से परिपूर्ण सरोवर, सुवर्णनिर्मित बावली, अनेक अन्नादिकों से बने हुए पर्वत, विविध प्रकार के भक्ष्य, भोज्य फलादि सामग्री भी उन्हें निर्माण करके समर्पित किया। दान करते समय अयोनिज ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणों से कहा कि विप्रेन्द्रवृन्द! आप लोग अब किसी दूसरे से याचना न करेंगे ।।७१-७६।। इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त भगवान् गदाधर को नमस्कारकर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये। धर्मारण्य में धर्म ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया, उस यज्ञ में उन्हीं गयापुरीस्थ ब्राह्मणों ने लोभवश धनादि की याचना की और अंगीकार किया। उनके इन निषिद्ध कर्म से अप्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि तुम लोगों ने मेरे निखिल दिव्य सम्पत्ति के दान देने पर भी यतः लोभ नहीं छोड़ा अतः सर्वदा अधिक ऋणग्रस्त बने रहोगे। वे नदियाँ, मधु एवं क्षीरादि पदार्थों की वहन करनेवाली थीं, अब केवल जलवाहिनी रहेंगी, पर्वत पाषाणमय हो जायँगे। वे दिव्य सामग्रियोंवाले सुन्दर गृह अब मृत्तिकामय हो जायँगे ।।७७-८०।। कामधेनु एवं कल्पवृक्षादि हमारे लोक में चले जायँगे। अजन्मा ब्रह्मा जी से इस प्रकार अभिशप्त होने पर ब्राह्मणों ने निवेदन किया, देव! आपने कृपापूर्वक जो वस्तुएँ हम लोगों को समर्पित की थीं, वे तुम्हारे शाप के कारण नाश को प्राप्त हो गयीं। भगवन्! हम लोगों की जीविका किस प्रकार चलेगी इसके लिए तो कृपा करें। ब्राह्मणों

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणान्ब्रह्मा प्रोवाचेदं दयान्वितः। तीर्थोपजीविका यूयमाचन्द्रार्कं भविष्यथ ।।८३।।
लोकाः पुण्या गयायां ये श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः। युष्मान्ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ।।८४।।
आक्रान्तं दैत्यजठरं धर्मेण विरजाद्रिणा। नाभिकूपसमीपे तु देवी या विरजा स्थिता ।।८५।।
तत्र पिण्डादिकं कृत्वा त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्। महेन्द्रगिरिणा तस्य कृतौ पादौ सुनिश्चलौ ।।
तत्र पिण्डादिकृत्सप्त कुलान्युद्धरते नराः ।।८६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।।१०६।।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

कथं शिला समुत्पन्ना यथाऽऽक्रान्तो गयासुरः। किं रूपं किं च माहात्म्यं तस्या किं वद नाम च ।।१।।

के इस आर्त निवेदन पर भगवान् ब्रह्मा को दया आ गयी। वे बोले, अच्छा अब से जब तक चन्द्रमा, सूर्य एवं ताराओं का अस्तित्व रहेगा तब तक तुम लोग तीर्थों द्वारा जीविका निर्वाह करोगे। जो पुण्यकर्मी लोग इस गयापुरी में आकर श्राद्धकर्म सम्पन्न करेंगे वे ब्रह्मलोकगामी होंगे। जो तुम लोगों की पूजा अर्चा करेंगे, वे मानो हमारी ही पूजा अर्चा करेंगे, तुम्हारी पूजा से हम सर्वदा सन्तुष्ट होंगे। इस गयापुरी में पवित्र विरज नामक गिरि से दैत्य का उदर भाग आक्रान्त है, इसके नाभि कूप के समीप विरजा नामक देवी का निवास है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करके मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है, महेन्द्र नामक गिरि ने दैत्य के दोनों चरणों को सुनिश्चल किया है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करनेवाला मनुष्य अपने सात कुलों का उद्धार करता है ।।८१-८६।।

श्री वायु महापुराण का गयामाहात्म्य नामक एक सौ छठवाँ अध्याय समाप्त ।।१०६।।

अध्याय १०७

गया माहात्म्य

नारद बोले–ब्रह्मन्! वह प्रसिद्ध शिला किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे गयासुर का शरीर दबाया गया था। उसका स्वरूप एवं माहात्म्य क्या है ? उसका नाम क्या है? बतलाइये ।।१।।

सनत्कुमार उवाच

आसीद्धर्मो महातेजाः सर्वविज्ञानपारगः। विश्वरूपा च तत्पत्नी भर्तृव्रतपरायणा ।।२।।
तस्यां धर्मात्समुत्पन्ना कन्या धर्मव्रता सती। रूपयौवनसंपन्ना लक्ष्मीरिव गुणाधिका ।।३।।
तस्यां ये तु गुणा ह्यासंस्ते तिष्ठन्ति जगत्त्रये। धर्मो धर्मव्रतायास्तु त्रिषु लोकेषु मार्गयन् ।।४।।
नानुरूपं वरं लेभे धर्मोऽथ वरसिद्धये। तपः कुरु वरार्थं त्वं तथेत्युक्त्वा वनं ययौ ।।५।।
कन्या सा च तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करं च यत्। वायुभक्षा श्वेतकल्पे युगानामयुतं पुरा ।।६।।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः। पर्यटन्पृथिवीं सर्वां कन्यारत्नं ददर्श सः ।।७।।
रूपयौवनसंपन्ना परमे तपसि स्थिताम्। पप्रच्छाथ मरीचिस्तां का त्वं कस्यासि तद्वद ।।८।।
रूपेणानेन मां भीरु विमोहयसि सुव्रते। ब्रह्मात्मजोऽहं विख्यातो मरीचिर्वेदपारगः ।।९।।
मरीचेर्वचनं श्रुत्वा कन्या प्रोवाच तं मुनिम्। अहं धर्मव्रता नाम धर्मपुत्री तपोन्विता ।।१०।।
पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र चरामि परमं तपः। धर्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्वकम् ।।११।।
पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते। पतिव्रतेक्षया पृथ्वीं विचरामि ह्यहर्निशम् ।।१२।।
त्वं चेत्पतिव्रता जाता भजे त्वां भज मां वरम्। लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः ।।१३।।

सनत्कुमार बोले–प्राचीनकाल में महान् तेजस्वी, समस्त विज्ञानतत्त्ववेत्ता धर्म नामक महानुभाव हुए। उनकी पतिव्रतपरायणा विश्वरूपा नामक पत्नी थी। उस पत्नी में धर्म के संयोग से धर्मव्रता नामक एक सती कन्या उत्पन्न हुई जो स्वरूप एवं यौवन से सम्पन्न एवं लक्ष्मी के समान परम गुणवती थी। उसमें जितने गुण उपलब्ध थे वे तीनों जगत् के प्राणियों में उपलब्ध थे। धर्मव्रता के लिए धर्म ने तीनों लोकों में अनुरूप वर ढूँढ़ा किन्तु कहीं भी कोई उपयुक्त पात्र नहीं दिखायी पड़ा। तब धर्म ने वरदान से सिद्धि प्राप्त करने के लिए पुत्री से कहा–बेटी, अनुरूप पति–प्राप्ति के लिए तपस्या करो। कन्या ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर वन को गमन किया और वहाँ जाकर परम कठोर तपस्या प्रारम्भ किया ।।२–५।। श्वेतकल्प में धर्मव्रता ने उक्त तपस्या के सङ्ग में दस सहस्त्र युगों तक केवल वायु का आहार किया। ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि परम विख्यात ऋषि थे। वे पृथ्वी का पर्यटन करते हुए वहाँ आये और उक्त कन्यारत्न का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि वह परम रूपवती एवं पूर्ण यौवना होते हुए भी घोर तपस्या में लीन है। ऋषिवर मरीचि ने कन्या से जिज्ञासा प्रकट की कि हे कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? ।।६–८।। सद्व्रतपरायणे! तुम अपनी मोहक रूपराशि से हमारे चित्त को मुग्ध कर रही हो। भीरु! तुम डरो मत। मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, समस्त वेदों का सम्यक् अध्ययन एवं परिशीलन कर चुका हूँ, सारे संसार में लोग मुझे मरीचि नाम से जानते हैं। मरीचि के वचन को सुनकर कन्या ने कहा, मुनिवर! मैं धर्म की पुत्री हूँ, मेरा नाम धर्मव्रता है। अनुरूप पति एवं पतिव्रतधर्म की प्राप्ति के लिए मैं यह कठोर तपस्या कर रही हूँ। धर्मव्रता की बातें सुनकर मुनिवर मरीचि ने प्रेमपूर्वक कहा, शुभव्रते! मेरे दर्शन मात्र से तुम पतिव्रता होओगी। केवल पतिव्रता नारियों के देखने की इच्छा ही से मैं रात–दिन पृथ्वी का पर्यटन करता हूँ ।।९–१२।। यदि तुम पतिव्रता हो तो मुझे पतिरूप में अङ्गीकार करो, मैं तुम्हें पत्नीरूप में स्वीकार करता हूँ। इस लोक में न तो तुम्हारे

धर्मव्रते धर्मपत्नी तस्मात्त्वं भव मेऽधुना। धर्मव्रता मुनिं प्राह धर्मं याचय सुव्रत ।।१४।।
तच्छुत्वा धर्ममगमन्मुनिं धर्मो ददर्श ह। तेजःपुञ्जं वरं नत्वा आसनार्घ्यादिनाऽर्चयत् ।।१५।।
किमर्थमागतः पृष्ठो मरीचिधर्ममब्रवीत्। कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका वरा ।।
मह्यं कन्यां च तां देहि श्रेयस्तव भविष्यति ।।१६।।
अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्मः प्रोचे तथेति तम्। धर्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये ।।१७।।
*ब्राह्मणाय विवाहेन धनरत्नादिकं ददौ। वरं च दत्तवांस्तस्मै तद्वाक्यं यत्तथा कृतम् ।।
अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ।।१८।।
रेमे मुनिस्तया सार्धं यथा विष्णुः श्रिया सह। पार्वत्या च यथा शंभुः सरस्वत्या यथा ह्यजः ।।१९।।
जज्ञे पुत्रशतं तस्यां मरीचेर्विष्णुनोपमम्। मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः ।।२०।।
+श्रान्तः कदाचित्तां पत्नीमुवाचेति पतिव्रताम्। भुक्त्वा तु शयनस्थस्य पादसंवाहनं कुरु ।।२१।।
धर्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयनस्थस्य सा मुनेः। पादसंवाहनं चक्रे घृतेनाभ्यज्य तत्परा ।।२२।।

समान कोई कन्या है और न मेरे समान कोई वर है। धर्मव्रते! अब तुम हमारी धर्मपत्नी हो जाओ। मुनिवर मरीचि की बातें सुनकर धर्मव्रता ने कहा, सुव्रत! आप इस विषय में हमारे पिता से याचना करें। धर्मव्रता के कथनानुसार मरीचि धर्म के पास गये। धर्म ने परम तेजस्वी मरीचि मुनि को देखकर आसन एवं अर्घ्यादि समर्पित कर मरीचि की पूजा की और पूछा कि मुनिवर्य! आपका शुभागमन किस प्रयोजन द्वारा यहाँ हुआ? मरीचि बोले, महानुभाव! योग्य पत्नी के अन्वेषण के लिए समस्त भूमण्डल विचरण की कामना से मैं घूम रहा था कि तुम्हारी परम सुन्दरी एवं धर्मशील कन्या धर्मव्रता दृष्टिगत हुई, तुम अपनी कन्या मुझे दे दो। तुम्हारा परम कल्याण होगा ।।१३-१६।। मुनि की बातें सुन धर्म ने अर्घ्यादि से पुनः पूजन किया और उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। वन प्रान्त से धर्मव्रता को अपने निवास पर लाकर विधिपूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न करके मरीचि को समर्पित किया। उस मङ्गल कार्य के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को धन रत्नादि भी समर्पित किये। मरीचि के कथनानुसार सब कार्य धर्म ने सम्पादित कर दिया, इसके लिए उन्होंने वरदान दिया। तदन्तर मरीचि अपनी नव विवाहिता धर्मपत्नी धर्मव्रता को अग्निहोत्रादि वैवाहिक धार्मिक विधियों का विधिवत् अनुष्ठान कर अपने आश्रम में ले गये और वहाँ उसके साथ इस प्रकार आनन्दोपभोग किया जिस प्रकार भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ, शम्भु पार्वती के साथ तथा अजन्मा ब्रह्मा सरस्वती के साथ करते हैं। धर्मव्रता के संयोग से मरीचि के भगवान् विष्णु के समान परम तेजस्वी एवं प्रभावशाली सौ पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार कभी फलपुष्पादि लाने के लिए मुनिवर वन को गये और वहाँ से लौटकर बहुत थक गये थे, भोजनोपरान्त अपनी पतिव्रता पत्नी धर्मव्रता से उन्होंने कहा कि प्रिये! मैं शय्या पर लेट गया हूँ, मेरा पैर दबा दो। धर्मव्रता ने आज्ञा अङ्गीकार कर शय्या पर लेटे हुए मुनिवर

---

* इदमर्धं नास्ति क. पुस्तके।

+ इत आरभ्य मुनेरित्यन्तं नास्ति ख. पुस्तके।

निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः । ×इयेष दृष्ट्वा ब्रह्माणं मनसाऽर्चयितुं प्रभुम् ।।२३।।
पादसंवाहनं कुर्यां किं पूज्योऽयं जगद्गुरुः । इत्याकुला समुत्तस्थौ मत्वा सा तं गुरोर्गुरुम् ।।२४।।
अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं समपूजयत् । सत्कृतायां तु शय्यायां विश्राममकरोदजः ।।२५।।
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता समुत्तस्थौ स्वतल्पतः । धर्मव्रतामपश्यन्स विप्रः क्रुद्धः शशाप ताम् ।।२६।।
पादसंवाहनं त्यक्त्वा यस्मादाज्ञां विहाय मे । गताऽन्यत्र ततः पापाच्छापदग्धा शिला भव ।।२७।।
भर्त्रा धर्मव्रता शप्ता मरीचिं प्राह सा रुषा । शयाने त्वयि संप्राप्ते ब्रह्मा त्वज्जनको गुरुः ।।२८।।
त्वयोत्थाय हि कर्तव्यं स्वगुरोः पूजनं सदा । मया तु धर्मचारिण्या तव कार्ये कृते मुने ।।२९।।
अदोषाऽहं यतः शप्ता तस्माच्छापं ददामि ते । त्वं च शापं महादेवाद्भर्तः प्राप्स्यस्यसंशयम् ।।३०।।
÷व्याकुलं तं पतिं दृष्ट्वा व्याकुलाऽगात्प्रजापतिम् । नत्वा शयानं ब्रह्माणमग्निं प्रज्वाल्य चेन्धनः ।।३१।।
गार्हपत्ये स्थिता चक्रे तपः परमदुष्करम् । तथा शप्तो मरीचिश्च तपस्तेपे सुदारुणम् ।।३२।।

मरीचि का पाद संवाहन प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम घृत लगाकर वह तन्मयतापूर्वक पैर दबाने लगी, थोड़ी ही देर में जब मुनि को नींद लग गयी, पितामह ब्रह्मा जी उस स्थान पर पधारे ।।१७–२२$\frac{1}{2}$।। समुपस्थित ब्रह्मा को देखकर साध्वी धर्मव्रता ने मन में प्रभुवर्य की अर्चना करने का संकल्प किया, किन्तु उसके मन में वितर्क हुआ कि ऐसी अवस्था में जबकि पतिदेव बहुत ही थके हुए हैं, मुझे क्या उचित है, मैं पतिदेव का पाद संवाहन करती रहूँ? या जगत् पूज्य ब्रह्मदेव की पूजा सम्पन्न करूँ? ऐसा विचार मन में उठते न उठते ही वह आकुल चित्त होकर उठ खड़ी हुई कि ब्रह्मा जगद्गुरु हैं, उनकी पूजा परमावश्यक है। वहाँ से उठकर उसने अर्घ्य पाद्यादि समर्पित कर ब्रह्मा की विविधत् पूजा की। विधिपूर्वक सत्कार किये जाने पर अज ब्रह्मा जी (एक दूसरी) शय्या पर विश्राम करने लगे ।।२३–२५।। दुर्भाग्यवश इसी बीच में पतिदेव की आँखें खुल गयीं। वे अपनी शय्या पर से उठ बैठे, धर्मव्रता को देखा कि वह पैर नहीं दबा रही है। उसके इस व्यवहार से विप्रवर मरीचि को महान् क्रोध हुआ, और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरी आज्ञा के बिना पैर का दबाना छोड़कर तू अन्यत्र चली गयी अतः इस पाप कर्म के कारण मैं तुझे शाप दे रहा हूँ कि तू शिला हो जा ।।२६–२७।। पति के शाप देने पर धर्मव्रता को भी अमर्ष हुआ, उसने कहा, तुमको निद्रा लग गयी थी, उसी समय तुम्हारे पूज्य पिता जी यहाँ पधारे ।।२८।। तुमको सर्वदा अपने गुरु का उठकर पूजन वन्दनादि करना चाहिए। अतः मैंने धर्म विचारकर तुम्हारे ही कर्त्तव्य का पालन किया था ।।२९।। इसमें मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, तुमने तो नाहक मुझे शाप दे दिया है, अतः मैं भी तुम्हें शाप दे रही हूँ, कि तुम्हें महादेव जी शाप देंगे, इसमें कोई संशय बात नहीं की है। अपने पति को शाप के भय से व्याकुल देखकर धर्मव्रता को और भी व्याकुलता हुई, वह प्रजापति ब्रह्मा के पास गयी। उस समय संयोगतः ब्रह्मा जी निद्रा ले रहे थे। उन्हें प्रणामकर इन्धनों द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उसी गार्हपत्याग्नि में स्थित होकर परम दारुण तप में लीन हो गयी। उधर अभिशप्त मरीचि

× नास्तीदमर्धं ख. पुस्तके।

÷ एतच्छ्लोकस्थानेऽयं श्लोकः क. पुस्तके-तं व्याकुलं पतिं दृष्ट्वा व्याकुला सा पतिव्रता। पतिव्रतात्वमाहात्म्यात्पत्युः शापं दधार सा।

पतिव्रतायास्तपसा मरीचेस्तपसा तथा। इन्द्रादयश्च संतप्ता गतास्ते शरणं हरिम् ।।३३।।
ऊचुः क्षीराम्बुधौ सुप्तं संतप्तास्तपसा हरे। पतिव्रतायाश्च मुनेस्त्रैलोक्यं रक्ष केशव ।।३४।।
इन्द्रादीनां वचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्मव्रतो ययौ। एतस्मिन्नेव काले तु प्रबुद्धो भगवानजः ।।
ऊचुर्धर्मव्रतां देवा अग्निस्थां तां सकेशवाः ।।३५।।
अग्निमध्ये तपः कर्तुं कस्य शक्तिः पतिव्रते। त्वया कृतं तत्परमं सर्वलोकभयंकरम् ।।३६।।
वरं वरय धर्मज्ञे अस्मत्तो यदभीप्सितम्। विष्ण्वादीनां वचः श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताऽब्रवीत् ।।३७।।
भर्तृशापमशक्ताऽहं निवर्तयितुमोजसा। (*दत्तो मरीचिना शापो मह्यं स ह्यपगच्छतु ।।३८।।
धर्मव्रतावचः श्रुत्वा प्रोचुरेतां सुराः पुनः। धर्मव्रते धर्मपुत्रि शापोऽयं परमर्षिणा ।।३९।।
दत्तस्ते न निराकर्तुं शक्यो देवद्विजातिभिः। तस्मादन्यं वरं ब्रूहि यतो धर्मस्य संस्थितिः) ।।४०।।
भवेद्वै त्रिषु लोकेषु वेदोक्तस्य शुभव्रते। देवानां वचनं श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताऽब्रवीत् ।।४१।।
भर्तुः शापान्मोचयितुं न शक्ताश्च यदाऽमराः। मह्यं वरं प्रयच्छध्वं एवंविधमनुत्तमम् ।।४२।।

भी तपस्या में दत्तचित्त होकर जुट गये ।।३०–३२।। उस परम तपस्विनी धर्मव्रता एवं मरीचि की परम कठोर तपस्या से इन्द्र प्रभृति देवगण परम सन्तप्त होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये। उस समय भगवन् विष्णु क्षीरसागर में शयन कर रहे थे, उक्त दम्पति की कठोर तपस्या से सन्तप्त देवताओं ने वहाँ जाकर प्रार्थना की कि देव! परम तपस्विनी पतिव्रता धर्मव्रता एवं मुनिवर मरीचि के दारुण तप को देखकर हम लोग बहुत दुःखी हैं, त्रैलोक्य की रक्षा कीजिये ।।३३–३४।। इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का आर्त्तनिवेदन सुनकर भगवान् विष्णु धर्मव्रता के समीप गये, उधर इसी अवधि में स्वयं भगवान् ब्रह्मा की भी नींद समाप्त हो गयी थी। अग्नि में अवस्थित होकर परम दारुण तपस्या में तत्पर धर्मव्रता को देखकर विष्णु समेत देवगण बोले, पतिव्रते! अग्नि में स्थित होकर तपस्या करने की शक्ति किसमें है ? तुमने समस्त संसार को भयभीत कर देनेवाले उस परम दारुण तप का अनुष्ठान किया है, जिसे कोई नहीं कर सकता। धर्म के मर्म को तुम समझनेवाली हो। अपनी इच्छा के अनुरूप वरदान हमसे माँग लो। विष्णु प्रभृति देवताओं का वचन सुनकर धर्मव्रता ने कहा, देववृन्द! पति के शाप का निराकरण मैं अपने स्वाभाविक तेज से नहीं कर सकती थी, अतः उसी को निराकृत करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। पतिदेव मुनिवर मरीचि ने मुझे शाप दे दिया है, वह दूर हो जाय—यही मेरी कामना है ।।३५–३८।। धर्मव्रता की बातें सुनकर देवताओं ने पुनः कहा; धर्म–पुत्रि धर्मव्रते! यह शाप परमऋषि मरीचि का दिया हुआ है, देवताओं एवं ब्राह्मणों में इसे निष्फल करने की शक्ति नहीं है। इसलिए किसी अन्य वरदान की प्रार्थना करो, जिससे धर्म की मर्यादा विचलित न हो। शुभव्रते! वेदों में वर्णित धर्म की जिस प्रकार मर्यादा न बिगड़े उसका विचारकर तीनों लोकों में चाहे परम दुर्लभ क्यों न हो वरदान तुम माँग सकती हो। देवताओं की बातें सुनकर धर्मव्रता ने कहा, देववृन्द! यदि आप लोग पति के शाप को निराकृत करने में असमर्थ हैं तो मुझे इस प्रकार का वरदान दीजिये कि मैं निखिल ब्रह्माण्ड में परम पावन शिला रूप में प्रादुर्भूत

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

शिलाऽहं हि भविष्यामि ब्रह्माण्डे पावनी शुभा । नदीनदसरस्तीर्थदेवादिभ्योऽतिपावनी ।।४३।।
ऋष्यादिभ्यो मुनिभ्यश्च मुख्यदेवेभ्य एव च । त्रैलोक्ये यानि लिङ्गानि व्यक्ताव्यक्तात्मकान्यपि ।।
तानि निष्ठन्तु मद्देहे तीर्थरूपेण सर्वदा ।।४४।।
तीर्थान्यपि च सर्वाणि नक्षत्रप्रमुखास्तथा । तिष्ठन्तु देवाः सकला देव्यश्च मुनयस्तथा ।।४५।।
शिलास्थितेषु तीर्थेषु स्नात्वा कृत्वाऽथ तर्पणम् । श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते ।।४६।।
गदाधरो दृश्यतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । मुक्तिर्भवेत्पितृणां च बहूनां श्राद्धतः सदा ।।४७।।
जरायुजाण्डजा वाऽपि स्वेदजा वाऽपि चोद्भिदः । त्यक्त्वा देहं शिलायां ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम् ।।४८।।
यथाऽर्चिते हरौ सर्वे यज्ञाः पूर्णा भवन्ति हि । तथा श्राद्धं तर्पणं च स्नानं चाक्षयमस्त्विह ।।४९।।
मम देहे सुरेशानां ये जपन्ति श्रुतादिकम् । अचिरेणापि ते सिद्धाः सिद्धिभाजो भवन्तु वै ।।५०।।
पितृणां कुलसाहस्त्रमात्मना सहिते नरः । श्राद्धादिना समुद्धत्य विष्णुलोकं नयेद्ध्रुवम् ।।५१।।
यावत्यो हि सरिच्छ्रेष्ठा गङ्गाद्याश्च ह्रदाः शुभाः । समुद्राद्याः सरोमुख्या मानसाद्याः सुरेश्वराः ।।
नृणा श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ।।५२।।
+शरीरेण सामायान्तु क्वचिन्नो यान्तु देवताः । एको विष्णुस्त्रिधामूर्तिर्यावत्संकीर्त्यते बुधैः ।।५३।।

होऊँ। जितने भी नद, नदी, सरोवर, तीर्थ एवं देवादि हैं, उन सबसे अधिक पवित्रता का मुझमें निवास हो ।।३९–४३।। वही नहीं जितने भी ऋषि, मुनि एवं प्रमुख देवगण हैं, उन सबसे भी अधिक पवित्रता मुझमें हो। समस्त त्रैलोक्य में जितने व्यक्ताव्यक्त लिङ्गादि हैं, वे सब तीर्थ रूप धारणकर हमारे शरीर में निवास करें ।।४४।। भूमण्डल के समस्त तीर्थ, नक्षत्रप्रमुख, समस्त देवगण, देवियाँ एवं मुनिगण—सभी निवास करें—शिला पर स्थित उन तीर्थों में स्नान एवं तर्पणकर जो पिण्डादि समेत श्राद्ध कर्म करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें ।।४५–४६।। उस शिला पर दृश्यतीर्थ गदाधर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हों, वहाँ श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से अनेक पितरों को मुक्ति प्राप्त हो। जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिद्—सभी प्रकार के जीवनिकाय पवित्र शिला पर प्राण त्यागकर विष्णु की स्वरूपता प्राप्त करें। जिस प्रकार भगवान् विष्णु की पूजा कर देने पर सभी प्रकार यज्ञ पूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार श्राद्ध, तर्पण एवं स्नान करने से यहाँ अक्षय फल की प्राप्ति हो। मेरे शरीर पर देवेशों के मन्त्रों का जो जाप करें, वे थोड़ी ही समय में सिद्धि प्राप्त करें ।।४७–५०।। अपने समेत पितरों एवं सहस्त्रों कुलों का वह मनुष्य उद्धार करनेवाला हो। उस पवित्र शिला पर श्राद्धादि सम्पन्नकर पितरों को प्रसन्न करनेवाला विष्णु लोक को प्राप्त करे ।।५१।। गङ्गा प्रभृति जितनी श्रेष्ठ नदियाँ, मनोहर सरोवर, समुद्रादि, पवित्र मानसादि तीर्थ, इन्द्रादि देवगण हों वे श्राद्धकर्त्ता को मुक्ति प्रदान करने के लिए मेरे शरीर पर निवास करें ।।५२।। देवगण, आप लोग अपने मूर्त रूप से यहाँ बने रहें, कहीं अन्यत्र न जायँ। पण्डित लोग तीन स्वरूपों में व्यक्त होनेवाले एकमात्र भगवान् विष्णु का जब तक संकीर्त्तन करें तब तक शिला पर सभी तीर्थ

+ इदमर्धं ख. पुस्तके नास्ति।

तावच्छिलायां सर्वाणि तीर्थानि सह दैवतैः । सदा तिष्ठन्तु मुनयो गन्धर्वाणां गणाश्च ये ।।५४।।
यावत्तिष्ठिति ब्रह्माण्डं तावत्तिष्ठतु वै शिला । मम देहेऽश्मरूपे च ये जपन्ति तपन्ति च ।।५५।।
×जुहोत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योपतिष्ठताम्(?) । अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं जपहोमतपांसि च ।।
शिलापर्वतरूपेण मयि तिष्ठत सर्वदा ।।५६।।
पतिव्रतावचः श्रुत्वा देवाः प्रोचुः पतिव्रताम् । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ।।५७।।
गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा । तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ।।
वरं शिलायै दत्त्वैवं तत्रैवान्तर्दधुः सुराः ।।५८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।।१०७।।

एवं देवगण निवास करते रहें। मुनियों एवं गन्धर्वों का भी सर्वदा उस पर निवास रहे। जब तक ब्रह्माण्ड का अस्तित्व रहे तब तक इस शिला का अस्तित्व रहे। पत्थर रूपी मेरे शरीर पर स्थित होकर जो लोग जप, तपस्या एवं हवनादि करें, वे अक्षय फल प्राप्त करें। इस पर किया गया श्राद्ध, जप, हवन एवं तप–सभी अक्षय फलदायी हों। देवगण! आप लोग शिलाओं एवं पर्वत शिखरों का स्वरूप धारणकर मेरे शरीर पर सर्वदा स्थित रहें ।।५३–५६।। पतिपरायण धर्मव्रता के वचनों को सुनकर देवताओं ने कहा, धर्मव्रते! तुम्हारी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी–इसमें सन्देह मत करना। गयासुर के सिर पर जब तुम स्थिर होगी तब चरणादि स्वरूप से हम लोग तुम्हारे शरीर पर स्थिर होंगे। इस प्रकार धर्मव्रता को वरदान देने के उपरान्त देवगण अन्तर्धान हो गये ।।५७–५८।।

श्री वायुमहापुराण में 'गयामाहात्म्य' नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।।१०७'।

× इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं शृणु नारद मुक्तिदम्। यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुंगवाः ।।१।।
शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपाऽतिपावनी। विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।२।।
तस्याः संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः। शून्ये लोकत्रये जाते शून्या यमपुरी ह्यभूत् ।।३।।
यम इन्द्रादिभिर्गत्वा ऊचे ब्रह्माणमद्भुतम्। अधिकारं गृहाणाथ यमदण्डं पितामह ।।४।।
यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व ताम्। ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहे तां समधारयत् ।।५।।
यमोऽधिकारं स्वं चक्रे पापिनां शासनादिकम्। एवंविधा गुरुतरा शिला जगति विश्रुता ।।६।।
यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः। ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी ।।७।।
गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः। अतः पवित्रयोर्योगः पितॄणां मोक्षदायकः ।।८।।
पवित्रयोर्द्वयोर्योगे हयमेधमजोऽकरोत्। भागार्थमागतन्दृष्ट्वा विष्ण्वादीनब्रवीच्छिला ।।९।।

अध्याय १०८

सनत्कुमार बोले–नारद जी! अब इसके उपरान्त उक्त शिला का माहात्म्य वर्णन कर रहा हूँ, जिसका गान बड़े-बड़े मुनिगण एवं देवतागण किया करते हैं, जिसके श्रवण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, सुनिये। वह परम पवित्र शिला पृथ्वी पर देवस्वरूप से स्थित हुई। वह विचित्र नामक शिला तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हुई, उसके स्पर्श मात्र करने से सभी लोकों के निवासी विष्णुपुर को प्राप्त हुए। इस प्रकार जब तीनों लोक सुनसान हो गये, यमपुरी भी सूनी हो गयी ।।१–३।। तब यमराज इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ अद्‌भुत कर्मशाली भगवान् ब्रह्मा के पास गये और बोले, पितामह, आप यमदण्ड एवं उसके अधिकारों को अब स्वयं ग्रहण कीजिये। ब्रह्मा ने यमराज से कहा कि उस शिला को तुम अपने घर पर स्थापित करो। ब्रह्मा के आदेशानुसार धर्मराज ने उसे अपने घर स्थापित किया। और पापकर्मियों के शासनादि की अपनी व्यवस्था पूर्ववत् परिचालित की। इस प्रकार वह महान् गुरु शिला समस्त संसार में विख्यात हुई जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का यश समस्त संसार में व्याप्त है, निखिल ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार सुमेरु की महिमा प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यह देवस्वरूपिणी शिला भी संसार में अपने माहात्म्य से विख्यात थी। अपने भारीपन के कारण यह गयासुर के सिर पर स्थापित की गयी थी। इन दोनों परम पवित्र आत्माओं के संयोग पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन दोनों परम पुनीत आत्माओं के संयोग-स्थली पर अजन्मा ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। यज्ञ में अपने भागों को प्राप्त करने के लिए समागत विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों से शिला ने पुनः कहा ।।४–९।।

शिलास्थितिप्रतिज्ञां तु कुर्वन्तु पितृमुक्तये । तथेत्युक्त्वा शिलायां ते देवा विष्ण्वादयः स्थिताः ।।१०।।
शिलारूपेण मूर्त्या च पदरूपेण देवताः । मूर्तामूर्तस्वरूपेण स्थिताः पूर्वप्रतिज्ञया ।।११।।
दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला । तस्मात्स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितॄणां ब्रह्मलोकदः ।।१२।।
आच्छादितः शिलापादः प्रभासेनाद्रिणा यतः । भासितो भास्करेणेति प्रभासः परिकीर्तितः ।।१३।।
प्रभासं हि विनिर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः । (*अङ्गुष्ठोत्थित ईशोऽपि प्रभासेशः प्रकीर्तितः ।।१४।।
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः सा च प्रेतशिला स्मृता) । पिण्डदानाद्यतस्तस्यां प्रेतत्वान्मुच्यते नरः ।।१५।।
महानदीप्रभासाद्र्योः संगमे स्नानकृन्नरः । रामो देव्या सह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतम् ।।१६।।
प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम स्नातो भवेति च । रामतीर्थं ततो भूत्वा त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।१७।।
जन्मान्तरशतं साग्रं यत्कृतं दुष्कृतं मया । तत्सर्वं विलयं यातु रामतीर्थाभिषेचनात् ।।१८।।
मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्वीत मानवः । रामतीर्थं पिण्डदस्तु विष्णुलोकं प्रयात्यसौ ।।
तथेत्युक्त्वा स्थितो रामः सीतया भरताग्रजः ।।१९।।
राम राम महाबाहो देवानामभयंकर । त्वां नमस्येऽत्र देवेशं मम नश्यतु पातकम् ।।२०।।

कि देववृन्द! इस शिला पर स्थित रहने की प्रतिज्ञा, पितरों की मुक्ति के लिए आप लोग करें, विष्णु प्रभृति देवताओं ने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया और यहाँ बराबर बने रहे। पूर्व प्रतिज्ञावश देवगण शिलारूप में, मूर्तिरूप में, पाद रूप में, अपने साक्षात् स्वरूप में तथा प्रच्छन्न रूप में उस शिला पर स्थित रहे। दैत्यों के मुण्ड के पृष्ठ भाग पर यतः वह पवित्र शिला स्थित है, अतः वह स्थान मुण्डपृष्ठाद्रि के नाम से विख्यात है, वह पितरों को ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला है। शिला का चरणप्रान्त प्रभास नामक गिरि से अच्छादित है, सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होने के कारण वह गिरि प्रभास नाम से विख्यात है, उस प्रभास गिरि का भेदन करके शिला का अङ्गुष्ठ भाग बाहर निकला हुआ है, उक्त उठे हुए शिलाङ्गुष्ठ के ईश प्रभासेश नाम से पुकारे जाते हैं। शिलाङ्गुष्ठ का एक छोर जो है, वही प्रेतशिला के नाम से प्रसिद्ध है। उस प्रेतशिला पर पिण्डादि दान करने से मनुष्यों के पितरगण प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं ।।१०-१५।। महानदी और प्रभास गिरि के संगम स्थल में मनुष्य को स्नान करना चाहिए। उक्त पवित्र स्थल पर रामचन्द्र जी ने अपनी पत्नी जानकी के साथ स्नान किया था, तभी से यह रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। इस पवित्र स्थल पर रामचन्द्र जी से महानदी ने स्वयं प्रार्थना की थी कि श्रीराम जी! आप यहाँ स्नान कर लें। इसी कारण से वह पवित्र स्थान रामतीर्थ के नाम से तीनों लोकों में विख्यात है। सैकड़ों जन्म में जो पाप कर्म किये हों वे सब पवित्र रामतीर्थ में अभिषेचन मात्र करने से विनाश को प्राप्त हों। इस मन्त्र का उच्चारण कर रामतीर्थ में जो मनुष्य स्नान करे तथा वहाँ पिण्डदान करे वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करे।' महानदी की उक्त प्रार्थना को सुनकर भरत के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी वहाँ रुक गये थे ।।१६-१९।। महाबाहु, देवताओं को अभय प्रदान करनेवाले राम, हम तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं, देवेश! मेरे पाप कर्मों का नाश हो। इस

---

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् । प्रेतत्वात्तस्य पितरो विमुक्ताः पितृतां ययुः ।।२१।।
आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च । पापं नाशय मे देवो मनोवाक्कायकर्मजम् ।।२२।।
नमस्कृत्य प्रभासेशं भासमानं शिवं व्रजेत् । तं च शंभुं नमस्कृत्य कुर्याद्यमबलिं ततः ।।२३।।
रामे वनं गते शैलमागत्य भरतः स्थितः । पितृपिण्डादिकं कृत्वा रामं संस्थाप्य तत्र च ।।२४।।
रामं सीतां लक्ष्मणं च मुनीन्स्थापितवान्प्रभुः । भारतस्याऽऽश्रमे पुण्ये नित्यं पुण्यतमैर्वृतम् ।।
(+मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः ।।२५।।
स्थापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनात्) । मतङ्गस्य पदे श्राद्धी सर्वांस्तारयते पितॄन् ।।२६।।
रामतीर्थे नरः स्नात्वा रामं सीतां समर्च्य च । रामेश्वरं प्रणम्याथ न देही जायते पुनः ।।२७।।
शिलाया जघनं भूयः समाक्रान्तं नगेन तु । धर्मराजेन संप्रोक्तो न गच्छेति नगः स्मृतः ।।२८।।
यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ । ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितृणां मुक्तिहेतवे ।।२९।।
द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ ।।३०।।

मन्त्र का उच्चारण करते हुए जो प्राणी उस रामतीर्थ में स्नानकर, पिण्ड समेत श्राद्ध कर्म सम्पन्न करते हैं उसके पितरगण प्रेतयोनि से छुटकारा पाकर पितरलोक को प्राप्त करते हैं। हे देवेश! आप स्वयमेव जलस्वरूप हैं, चन्द्रसूर्यादि ज्योतिः पदार्थों के पालक आप ही हैं, देव! मेरे मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक पापकर्मों का विनाश कीजिये। इस मन्त्र से प्रभासेश को नमस्कार करने के उपरान्त परम ज्योतिर्मय शिव के समीप जाना चाहिए। वहाँ शम्भु को नमस्कारकर यमराज के लिए बलिकर्म करना चाहिए। श्रीरामचन्द्र जी के वन चले जाने पर भरत जी पर्वत पर आकर स्थित हुए थे और वहीं पिता के पिण्डदानादि को सम्पन्नकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण एवं अन्यान्य मुनिगणों की मूर्तियों का स्थापन किया था। महात्मा भरत के उस पुनीत आश्रम में सर्वदा पवित्रात्माओं के निवास होते हैं। वहीं पर मतङ्ग का आश्रम भी सभी मनुष्यों को दिखायी पड़ता है ।।२०-२५।। इस लोक में धर्म के निदर्शनार्थ उस परम धार्मिक मङ्गल आश्रम की स्थापना हुई। उस मतङ्ग पद में श्राद्ध करनेवाला प्राणी अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है। पुनीत रामतीर्थ में स्नानकर मानव राम और सीता की पूजाकर तथा रामेश्वर को प्रणामकर पुनः शरीर नहीं धारण करता ।।२७।। उस शिला का जघन प्रान्त पर्वत से आक्रान्त है, धर्मराज ने स्वयं उससे कहा था कि तू मत जा, इसी कारण से उसका नाम नग (न जानेवाला) कहा जाता है। उस स्थान पर यमराज और धर्मराज गयासुर को निश्चल करने के लिए व्यवस्थित हैं, पितरों को मुक्ति प्राप्त हो इस अभिलाषा से मैं उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ। दो श्वान, श्याम और शबल वहाँ पर स्थित हैं जो वैवस्वत के कुलोत्पन्न हैं। उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ, इससे वे अपनी हिंसकवृत्ति छोड़ दें ।।२८-३०।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न विद्यते।

ऐन्द्रावारुणवायव्ययाम्यनैर्ऋत्यसंस्थिताः । वायसा प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयाऽर्पितम्* ।।३१।।
शिलाया दक्षिणे हस्ते स्थापितः कुण्डपर्वतः । तिमिरादित्यईशानभर्गावेते महेश्वराः ।।३२।।
वह्निर्द्वौ वरुणौ रुद्राश्चत्वारः पितृमोक्षदाः । (+भरताश्रममासाद्य तान्नमेत्पूजयेन्नरः ।।३३।।
पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो मुच्यते पितृभिः सह । यत्र कुत्रापि देवर्षे भरतस्याऽऽश्रमे नरः ।।
स्नातः श्राद्धादिकं कुर्यात्तत्कल्पोऽपि न हीयते) ।।३४।।
गयायां चाक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । सर्वमानन्त्यमाहुर्वै यद्दत्तं भरताश्रमे ।।३५।।
चतुर्युगस्वरूपेण चतस्रो रविमूर्तयः । दृष्टाः स्पृष्टाः पूजितास्ताः पितॄणां मुक्तिदा (यि) काः ।।३६।।
(×मुक्तिर्वामन इत्येव तारकाख्यो विधिः परः । संसारार्णवतप्तानां नावावेतौ सुरेश्वरौ ।।
तारकं ब्रह्म विश्वेषां मृतानां जीवितामिदम् ।।३७।।
त्रिविक्रमं च ब्रह्माणं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । पितृभिः सह धर्मात्मा स याति परमां गतिम्) ।।३८।।

पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैर्ऋत्य प्रभृति दिशाओं में रहनेवाले काग पृथ्वी पर दिये गये मेरे पिण्ड को अंगीकार करें। शिला के दाहिने हाथ पर कुण्ड नामक पर्वत की स्थापना हुई है, वहाँ तिमिरादित्य ईशान, भर्ग, महेश्वर, अग्नि, दोनों वरुण तथा चारों रुद्र स्थापित हैं जो पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। पुनीत भरत के आश्रम में जाकर मनुष्य को उनकी पूजा एवं नमस्कार करना चाहिए। पातकों एवं उपपातकों से मानव एवं उसके पितरगण सभी मुक्त हो जाते हैं। देवर्षि! भरत के पुनीत आश्रम में जहाँ कहीं भी स्नानकर मनुष्य श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करे, वे श्राद्धादि कल्पपर्यन्त फल देनेवाले होते हैं। यूँ तो सारी गयासुरी में जप, हवन, तपस्या—सभी अक्षय फलदायी कहे जाते हैं। भरत के पुनीत आश्रम में जो कुछ दान किया जाता है, वह अनन्त फलदायी कहा जाता है ।।३१-३५।। चारों युगों का स्वरूप धारण कर सूर्य की चार मूर्तियाँ वहाँ प्रतिष्ठित हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, पूजन करने से पितरों को मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति और वामन तारक नामक दो वहाँ अन्य मूर्तियाँ हैं, संसार सागर में सन्तप्त प्राणियों के लिए वे दोनों सुरेश्वर नौका स्वरूप हैं। सभी मृत एवं जीवित प्राणियों के उद्धारक एकमात्र ब्रह्मा जी हैं। जो पुरुषोत्तम त्रिविक्रम वामन देव का दर्शन करता है, वह धर्मात्मा अपने पितरों समेत परम गति को प्राप्त करता है। शिला के बायें चरण पर भी अभ्युद्यन्तक नामक गिरि

---

* इत उत्तरमेते श्लोका मुद्रितपुस्तकटिप्पण्यामधिका उपलभ्यन्ते ते यथा—
यमोऽसि यमदूतोऽसि वायसोऽसि महाबल । सप्तजन्मकृतं पापं बलिं भुक्त्वा विनाशय ।।१।।
रामे वनं गते शैलमागत्य भरतेन हि । पितुः पिण्डादिकं कृत्वा रामेशः स्थापितोऽत्र वै ।।२।।
स्नात्वा नत्वा च रामेशं रामसीतासमन्वितम् । तत्र श्राद्धं सपिण्डं च कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ।।३।।
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतैः सह।।इति।

+ एतश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न विद्यते।

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

शिलाया वामपादेऽपि तथाऽभ्युद्यन्तको गिरिः। स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ।।३९।।
नैमिषारण्यपार्श्वं तु ईये ब्रह्मा सुरैः सह। मुख्यसंज्ञं हि तत्तीर्थं देवास्तत्र पदे स्थिताः ।।४०।।
त्रिषु तेषु पदेष्वेव तीर्थेषु मुनिसत्तम। यत्किंचिदशुभं कर्म तत्प्रणश्यति नारद ।।४१।।
÷तन्नैमिषवनं पुण्यं सेवितं पुण्यपौरुषैः। तत्र व्यासः शुकः पैलः कण्वो वेधाः शिवो हरिः ।।४२।।
तेषां दर्शनमात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः। वामहस्ते शिलायास्तु तया चोद्यन्तको गिरिः ।।४३।।
स पर्वतः समानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना=। तत्र ब्रह्मा हरेश्चैव तपश्चोग्रं च चक्रतुः ।।४४।।
तत्रागस्त्यस्य हि वरं कुण्डं त्रैलोक्यदुर्लभम्। यत्र मुन्यष्टकं सिद्धं तपस्तप्त्वा शिवं गतम् ।।
कुण्डे मुन्यष्टकं नत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ।।४५।।

प्रतिष्ठित है, उक्त स्थान पर पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ।।३६-३९।। पुनीत नैमिषारण्य के समीप में अन्यान्य देवताओं के साथ ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, उसका नाम मुख्यतीर्थ है, उसके चरणों में देवगण का निवास है। मुनिसत्तम नारद जी! उस पुनीत तीर्थ के केवल तीन चरण भूमि में मनुष्य के जो कुछ भी अशुभ कर्म होते हैं सभी नष्ट हो जाते हैं। वह पवित्र नैमिषारण्य पुण्य पुरुषों द्वारा सेवित है वहाँ व्यास, शुक, पैल, कण्व, वेधा, शिव, हरि प्रभृति देवगणों का निवास-स्थान है उनके केवल दर्शन करने से मनुष्य पाप कर्मों से मुक्ति पा जाता है। शिला के बायें हाथ पर उद्यन्तक नामक गिरि प्रतिष्ठित है, महात्मा अगस्त्य ने उस पर्वत को यहाँ लाकर स्थापित किया था। उस पर्वत प्रान्त में भगवान् ब्रह्मा एवं शिव ने उग्र तपस्या की थी। वहाँ अगस्त्य का त्रैलोक्य दुर्लभ परम रमणीय कुण्ड है, जिसमें आठ मुनियों ने परम कठोर तपस्या कर सिद्धि एवं शिव की प्राप्ति की थी। उस कुण्ड में उक्त आठों मुनियों को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ।।४०-४५।। देवर्षि नारद जी! महात्मा अगस्त्य

÷ इत आरभ्य चोद्यन्तको गिरिरित्यन्तग्रन्थो नास्ति ख. पुस्तके।
= इत उत्तरमेते श्लोका मुद्रितपुस्तकपाठेऽधिका उपलभ्यन्ते-
स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। कुण्डश्चोद्यन्तकस्तत्र आपत्मनस्तसा कृतः।।१।।
ब्रह्मणा तत्र सावित्रीकुमाराभ्यां सह स्थितम्। हाहाहूहूप्रभृतयो गीतिनादं प्रचक्रिरे।।२।।
कुण्डमुद्यन्तकं तत्र गीतवादित्रको गिरिः। अगस्त्यो भगवान्यत्र तपश्चोग्रं चकार ह।।३।।
ब्रह्मणस्तु वरं लेभे माहात्म्यं भुवि दुर्लभम्। लोपामुद्रां तथा भार्यां पितॄणां परमां गतिम्।।४।।
स्नातस्तत्र च मध्याह्ने सावित्रीं समुपास्य च। कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः।।५।।
अगस्त्यस्य पदे स्नात्वा पिण्डदो ब्रह्मलोकगः। पितृभिः सह धर्मात्मा पूज्यमानो दिवौकसाम्।।६।।
ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः। परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसंकटात्।।७।।
नत्वा गयाकुमारं च ब्राह्मण्यं लभते नरः। सोमकुण्डाभिषेकी च सोमलोकं नयेत्पितॄन्।।८।।
बलिः काकशिलायां तु काकेभ्य ऋणमोक्षदः। स्वर्गद्वारेश्वरं नत्वा स्वर्गाद्ब्रह्मपुरं व्रजेत्।।९।।
पिण्डदो व्योमगङ्गायां निर्मलः स्वर्नयेपितॄन्। शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्मकूटमधारयत्।।
ततोऽसौ भस्मकूटाद्रिर्भस्मस्नातश्च नारद।।१०।।
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः। मतङ्गस्य पदे मुन्ये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्।।११।।

अगस्त्येनाथ देवर्षे उद्रयाद्रेर्महात्मना । शिलाया वामहस्तेऽपि स्थापितो गिरिराद्शुभः ।।
*वादित्रद्यौर्दिव्यमितैराद्यो वादित्रको गिरिः ।।४६।।
तत्र विद्याधरो नाम गन्धर्वाप्सरसां गणैः । +समेतोऽद्यापि गीतानि दिव्यानि सह गीयते ।।४७।।
मोहनश्च सुनीथं च शैलूजो मोहनोत्तमः । पर्वतो नारदध्यानी संगीती पुष्पदन्तकः) ।।
हाहाहूहूप्रभृतयो गीतदानं प्रचक्रिरे ।।४८।।

ने शिला के बायें हाथ पर उदयाचल पर्वत से लाकर इस पर्वत की स्थापना की थी, जो परम कल्याण प्रदाता है, उस पवित्र शैल पर विविध प्रकार के बाजों एवं संगीत की ध्वनि हुआ करती है। वह सर्वप्रथम वादित्रक गिरि के नाम से विख्यात है। उस पुनीत पर्वत शृङ्ग पर विद्याधर, गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूह आज भी संयुक्त रूप में दिव्य गीत गाया करते हैं। मोहन, सुनीथ, शैलूज, मोहनोत्तम, पर्वत, नारद, ध्यानी, संगीती, पुष्पदन्तक, हाहा, हूहू प्रभृति गन्धर्वगण वहाँ दिव्य संगीतदान करते हैं ।।४६-४८।। सभी गन्धर्वों समेत चित्ररथ भी वहाँ स्थित रहता है। वे सब गन्धर्वगण इस

तस्याग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी। कपिलेशो नदीतीरे ह्यमासोमसमागमे।।१२।।
कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं नमेच्च यः। श्राद्धः स्वर्गगामी स्यान्माहेशीकुण्ड एव च।।१३।।
गौरी च मङ्गला तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी। जनार्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते च पिण्डदः।।१४।।
मन्त्रेण चाऽऽत्मनोऽन्येषां सव्यहस्ते तिलैर्विना। जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः।।१५।।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन। दोह देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मिन्मृते तु तम्।।१६।।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन। गयाशीर्षे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि।।१७।।
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे। पितृपते नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे।।१८।।
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दन। लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद।।१९।।
तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्। पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्य स्वर्गं प्रापुर्नरा ध्रुवम्।।२०।।
वामजानु तु संपात्य नत्वा भीमो जनार्दनम्। श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्विष्णुलोकगः।।२१।।
शिलाया दक्षिणे पादे प्रेतकूटो गिरिर्धृतः। धर्मराजेन पादाभ्यां गिरिः प्रेतशिलाश्रयः।।२२।।
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पापभारतः। प्रेतभावस्वरूपेण करग्रहणकानने।।२३।।
पृष्ठे स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते। श्राद्धादिकरणानृणां तीर्थं पितृविमुक्तिदम्।।२४।।
गतः शिलाङ्गसंस्पर्शात्प्रेतकूटः पवित्रताम्। प्रेतकूटश्च तत्रा-ऽस्ते देवास्तव पदे स्थिताः।।
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन्।।२५।।
शिलासमीपे ये विप्र प्रेतरूपा भयानकाः। सर्गे ते यमलोके तु पृथिव्यां पर्यटन्ति वै।।२६।।
गयासुरस्य शिरसि पुण्ये प्रेतादिवर्जिते। स्थिता ब्रह्मादयो देवा गतः सोऽपि पवित्रताम्।।२७।।

---

* इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके ।।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

(+तथा चित्ररथो नाम सर्वगन्धर्वसंवृतः। गायन्ति मधुराण्येव गीतान्यद्रौ महोत्सवम्।।४९।।
अतः स पर्वतो देवैः सेव्यतेऽद्यापि नित्यशः। धर्मजास्तत्र देवेशो हरो भस्माङ्गरागवान्।।५०।।
पार्वत्या सहितो रुद्रः पर्वते गीतनादिते। मोदते पूजितो ध्येयः पितॄणां परमां गतिम्।।५१।।
गयायां परमात्मा हि गोपतिर्वा गदाधरः। हीयते वैष्णवी माया तथा रुद्रार्चया मुने)।।५२।।
शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्मकूटो गिरिर्धृतः। धर्मराजेन तत्राऽऽस्ते अगस्त्यः सह भार्यया।।५३।।
अगस्त्यस्य पदे स्नातः पिण्डदो ब्रह्मलोकगः। (÷ब्रह्मणस्तु वरं लेभे माहात्म्यं भुवि दुर्लभम्।।५४।।

पुनीत पर्वत शिखर पर मनोहर गीत गा-गाकर महान् उत्सव करते हैं। यही कारण है कि यह पुनीत पर्वतराज आज भी देवताओं द्वारा सेवित है, गीतों एवं बाजनों से निनादित इस पवित्र पर्वत शिखर पर देवेश महादेव जी अङ्गों में विभूति लगाये हुए पार्वती के साथ आनन्द का अनुभव करते हैं। इनकी पूजा करने से पितरगण परम गति प्राप्त करते हैं, उन शिव जी का ध्यान वहाँ अवश्यमेव करना चाहिए। इस गया क्षेत्र में परमात्मा गदाधारी अथवा गोपालक भगवान् विराजमान रहते हैं। मुने! रुद्र की पूजा करने से मनुष्य वैष्णवी माया से मुक्त हो जाता है। शिला के दाहिने हाथ में भस्मकूट नामक गिरि धारण किया गया है, उस पर अपनी स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य तथा धर्मराज विद्यमान हैं।।४९-५३।। अगस्त्य के चरण प्रान्त में स्नानकर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकगामी होता है। पृथ्वी भर में दुर्लभ वरदान को तथा

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजवनं गृहम्। च्यवनस्याऽऽश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनः पुना।।२८।।
वैकुण्ठे हेमदण्डैश्च हेमकूटो गिरिस्तथा। श्राद्धपिण्डादिकृत्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्।।२९।।
शिलादक्षिणपादे तु गृध्रकूटो गिरिर्धृतः। धर्मराजेन सुस्थैर्यकरणाय सुपावनः।।३०।।
गृध्ररूपेण तत्राथ तपः कृत्वा महर्षयः। विमुक्त्या गृध्रकूटोऽयं तत्र गृध्रेश्वरः स्थिरः।।३१।।
तत्र गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा यान्ति शंभुप्रदं नराः। तत्र गृध्रवटं नत्वा प्राप्तकामो दिवं व्रजेत्।।३२।।
तत्र गृध्रगुहायां च पिण्डदः शिवलोकभाक्। तत्र माहेश्वरी धारा पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्।।३३।।
मूलक्षेत्रं सरस्तत्र पिण्डदो ब्रह्मलोकभाक्। ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत्।।३४।।
आदिपालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरम्। यत्राऽऽस्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः।।
नाभौ च पिण्डदो यस्तु पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्।।३५।।
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत्। मुण्डपृष्ठेऽरविन्द्राद्रिं दृष्ट्वा पापं विनाशयेत्।।३६।।
कौञ्चरूपेण संविष्टो मुनिस्तत्र तपोऽकरोत्। तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादः प्रकीर्तितः।।३७।।
स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गं कुलत्रयं। शिलायां व्यक्तरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मनाः स्थितः।।
लक्ष्मीशो विबुधैः सार्धं तस्माद्देवमयी शिला (इति)।।३८।।

+ एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न विद्यते।
÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न विद्यते।

लोपामुद्रां तथा भार्यां पितॄणां परमां गतिम्) । तत्रागस्त्येश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।५५।।
अगस्त्यं च सभार्यं च पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । दण्डिनाऽथ तपस्तेपे सीताद्रेर्दक्षिणे गिरौ ।।५६।।
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः । तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी ।।
कपिलेशो नदीतीरे अमासोमसमागमे ।।५७।।
कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं समर्च्य च । कृते श्राद्धे पिण्डदाने पितरो मोक्षमाप्नुयुः ।।५८।।
अग्निधारा गिरिवरादागताद्यन्तकादनु । (×तत्र सारस्वतं कुण्डं सरस्वत्या प्रकल्पितम् ।।५९।।
शुक्रस्तत्र सुतैः सार्धं स(ष)ण्डामर्कादिभिः प्रभुः । तत्र तत्र मुनीन्द्राणां पदेषु मुनिसत्तम ।।
श्राद्धपिण्डादिकृत्स्नातः पितॄंस्तारयते नरः ।।६०।।
शिलाया वामहस्तेऽपि गृध्रकूटो गिरिर्धृतः) । गृध्ररूपेण संसिद्धास्तपस्तप्त्वा महर्षयः ।।६१।।
अतो गिरिर्गृध्रकूटस्तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः । दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं नत्वा यायाच्छंभोः पदं नरः ।।६२।।
तत्र गृध्रे गुहायां च पिण्डदः शिवलोकभाक् । तत्र गृध्रे वटं नत्वा प्राप्तकामो दिवं व्रजेत् ।।६३।।

लोपामुद्रा को महर्षि अगस्त्य ने ब्रह्मा जी से यहीं प्राप्त किया था। यह परम पुनीत स्थल पितरों को परमगति देनेवाला है। वहाँ अगस्त्येश्वर का दर्शन करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य की पूजा करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। सीताचल के दाहिने भाग में जो पर्वत है, उस पर दण्डी ने तपस्या की थी। वहाँ वटेश्वर नामक वट वृक्ष है, जिसके नीचे पितामह ब्रह्मा का निवास-स्थान है। उसके आगे रुक्मिणीकुण्ड नामक तीर्थ है, पश्चिम में कपिला नामक नदी है। उस नदी के तट पर कपिलेश का स्थान है। सोमवती अमावस्या के संयोग पर कपिला नदी में स्नानकर कपिलेश की विधिवत् पूजाकर पिण्डदान एवं श्राद्धादि करने से पितरगण मोक्ष की प्राप्ति करते हैं ।।५४-५८।। गिरिवर उद्यन्तक के साथ लगी हुई एक अग्निधारा प्रवाहित होती है। वहीं पर एक सरस्वती द्वारा प्रतिष्ठापित सारस्वत नामक कुण्ड है। परम ऐश्वर्यशाली षण्डामर्क प्रभृति पुरोहितों के साथ शुक्राचार्य वहाँ स्थित हैं। मुनिसत्तम! उस पवित्र स्थान पर उन मुनिवरों की पूजा एवं श्राद्ध-पिण्डदानादि करनेवाला मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है ।।५९-६०।। शिला के बायें हाथ में एक अन्य गृध्रकूट नामक गिरि धारण किया गया है, अनेक महान् ऋषियों ने गृध्र का स्वरूप धारणकर वहाँ पर तपस्याकर परमसिद्धि प्राप्त की थी। इसी से उस पर्वत नामक गृध्रकूट पड़ गया, वहीं पर गृध्रेश्वर का निवास-स्थान है। मनुष्य वहाँ गृध्रेश्वर का दर्शन पूजनादि कर शम्भु का लोक प्राप्त करता है। खास गृध्र गिरि की गुफा में पिण्डदान करनेवाला भी शिवलोकगामी होता है। उसी गृध्रकूट पर वट को नमस्कार करनेवाला मनुष्य अपनी समस्त अभिलाषाओं की पूर्तिकर स्वर्ग प्राप्त करता है। वहाँ पर स्थित भगवान् शंकर का दर्शनकर प्राणी ऋण एवं पाप से मुक्ति प्राप्तकर शिवलोकगामी होता है। उसी गृध्रकूट पर एक शूलक्षेत्र नामक तीर्थ है, वहाँ पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। उस गयासुर के ऊपर रखी गयी शिला का उदर देश

× धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न विद्यते।

ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत् । शूलक्षेत्रं च तत्राऽऽस्ते पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ।।६४।।
तं दृष्ट्वा मुच्यते विघ्नैः पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ।।६५।।
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठारविन्दाद्री दृष्ट्वा पापं विनाशयेत् ।।
गयानाभौ सुषुम्नायां पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ।।६६।।
*शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेतपर्वतः । धर्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः ।।६७।।
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पादभारतः । गतः शिलायाः संसर्गात्प्रेतकूटः पवित्रताम् ।।६८।।
प्रेतकुण्डं च तत्राऽऽस्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः । तत्र कुण्डादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ।।६९।।
पृथक्स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकारिणां नृणां तीर्थे पितृविमुक्तये ।।
प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः ।।७०।।
पादाङ्कितां मुण्डपृष्ठां महादेवनिवासिनीम् । तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्च मुक्तः पापोपपातकैः) ।।७१।।
गयाशिरसि पुण्ये च सर्वपापविवर्जिते । प्रेतादिवर्जितं यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम् ।।७२।।
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् । च्यवनस्याऽऽश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनः पुना ।।७३।।

आदिपाल नामक गिरि से आक्रान्त है, उस पर विघ्नों के विनाशक विघ्नेश्वर गणेश गजरूप धारणकर अवस्थित हैं। उनका दर्शन करनेवाला विघ्नों से मुक्त होकर अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है ।।६१–६५।। मुण्डपृष्ठ के नितम्ब प्रदेश में देवदारु का वन था, मुण्डपृष्ठ एवं अरविन्दाद्रि का दर्शन करनेवाला अपने पाप कर्मों को विनष्ट करता है। गयापुरी की नाभिस्थली में जो सुषुम्ना नाम से विख्यात है, पिण्ड प्रदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। शिला के बायें चरण पर प्रेतगिरि नामक एक पर्वत धर्मराज ने स्थापित किया था, यह प्रेतगिरि पहले पापों के कारण अतिशय मलिन था, इसी कारण इसका नाम प्रेतशिला कहा जाता था। धर्मराज ने अपने पैरों से इसे उठाकर फेंक दिया। उक्त शिला के संसर्ग के कारण यह पवित्रता को प्राप्त हुआ। वहीं पर एक प्रेतकुण्ड नामक कुण्ड है, जिसके चरण प्रान्त में देवताओं का निवास है, वहाँ पिण्डदानादि करनेवाला प्राणी अपने पितरों को प्रेतयोनि से मुक्ति दिलाता है। इस गयातीर्थ में पितरों की मुक्ति के लिए श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाले प्राणियों के कार्यों में विघ्न डालनेवाले बहुत से प्रेत धनुष धारणकर अलग स्थित रहते हैं, और उनका हाथ पकड़ लेते हैं, अर्थात् बहुतेरा विघ्न डालते हैं ।।६६–७०।। महादेव की निवासस्थली मुण्डपृष्ठा नामक एक शिला है, जो उनके चरण चिह्नों से अङ्कित है। उसका दर्शन कर समस्त लोक पापों एवं उपपापों से मुक्त हो जाता है। समस्त पापों से विसर्जित, पुण्यप्रद गयाशिर यतः प्रेतादि से रहित है, अतः उसे सर्वापेक्षा परम पुनीत एवं सुन्दर कहा जाता है। सारे मगध प्रदेश के तीर्थों में गया नगरी सर्वाधिक पुण्य प्रदायिनी है, राजगृह नामक वन सभी वनों में अधिक पुण्यप्रद है, आश्रमों में च्यवन का आश्रय अधिक पुण्यप्रद है, नदियों में पुनपुना नदी सबसे

---

* इतः परमयं श्लोकोऽधिकः ख. पुस्तके–श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। जनार्दनाय मेषाय समभ्यर्च्य यथाविधि ।।इति।।

वैकुण्ठो लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः। अत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ।।७४।।
क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत्। तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः ।।७५।।
स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गं स्वकं कुलम्। बलिः काकशिलायां च काकेभ्य ऋणमोक्षदः ।।७६।।
मुण्डपृष्ठस्य सानौ हि लोमशो लोमहर्षणः। द्वावेतौ परमं तप्त्वा तपःसिद्धिं परां गतौ ।।७७।।
आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी। शरावती वेत्रवती चन्द्रभागा सरस्वती ।।७८।।
कावेरी सिन्धुवीरा च चन्दना च सरिद्वरा। वासिष्ठी सरयूर्गङ्गा यमुना गण्डकीन्दिरा ।।७९।।
महावैतरणी नाम्ना निक्षरा च दिवौकसः। सावव्यलकनन्दा (?) च उदीची कनकाह्वया ।।८०।।
कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठा सर्वस्याघविमोचिनी। कृष्णवेण्या चर्मवती द्वे नद्यौ मुक्तिदायिके ।।८१।।
आहूते सरितां श्रेष्ठे लोमहर्षेण साहसात्। तपसस्तु प्रभावेण नर्मदा मुनिपुङ्गव ।।
तासु सर्वासु यः स्नात्वा पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ।।८२।।
ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः। परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसंकटात् ।।८३।।
निक्षरायां पुष्करिण्यां स्नातः श्राद्धादिकं नरः। कुर्यात्क्रौञ्चपदे दिव्ये नियमाद्वासरत्रयम् ।।
सर्वान्पितॄन्नयेत्स्वर्गं पञ्च पापिन एव च ।।८४।।

अधिक पुण्यदायिनी है। इसी प्रकार वैकुण्ठ, लोहदण्ड, गृध्रकूट और शोणक भी पुण्यप्रद हैं, इन स्थानों पर श्राद्धादि द्वारा मनुष्य अपने सभी पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ।।७१-७४।। मुण्डपृष्ठ पर मुनि ने क्रौञ्च पक्षी का रूप धारणकर तपस्या की थी, उनके चरणों के चिह्नों से यह चिह्नित भी है, इसी कारण से इसका क्रौञ्चपाद नाम स्मरण किया जाता है। वहाँ जाकर जलाशय में स्नान करनेवाला प्राणी अपने कुल को स्वर्ग की पुरी में पहुँचाता है। काकशिला पर कौआ का बलि कर्म ऋण से मुक्ति दिलानेवाला है। मुण्डपृष्ठ की उपत्यका में लोमहर्षण और लोमश इन दोनों ने परम कठोर तपस्या करके परम सिद्धि की प्राप्ति की थी। लोमश ने इस स्थान पर, नदियों में श्रेष्ठ महानदी, शरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, कावेरी, सिन्धुवीरा, चन्दना, वाशिष्ठी, सरयू, गंगा, यमुना, गण्डकी, इन्दिरा, स्वर्गवासियों की निक्षरा महावैतरणी, अलकनन्दा, उदीची, कनका, कौशिकी, ब्रह्मदा, जो सभी नदियों में श्रेष्ठ एवं सभी के पापों को विनष्ट करनेवाली हैं, इन सब नदियों का आवाहन किया था। मुक्तदायिनी कृष्णा, वेणी और चर्मवती–इन दोनों नदियों को जो सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं, लोमहर्षण ने अपने तपोबल से आवाहित किया था। मुनिपुङ्गव! अपने तपस्या के प्रभाव से नर्मदा का भी आवाहन लोमहर्षण ने किया था, इन सभी नदियों में स्नानकर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है ।।७५-८२।। इस गयातीर्थ में अवस्थित ब्रह्मयोनि नामक तीर्थ में प्रवेशकर जो मनुष्य बाहर निकल आता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है और योनि सङ्कटों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है। निक्षरा नामक पोखरी में स्नानकर श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य दिव्य क्रौञ्चपद पर नियमपूर्वक तीन दिनों तक निवास करे, ऐसा करनेवाला व्यक्ति पाँच प्रकार के पापों के करनेवाले समस्त पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। भस्मकूट पर जनार्दन का निवास-स्थल है, उनके हाथ में अपने लिये तथा अन्यान्य लोगों के लिए तिलों के पिण्ड अपसव्य हो दान करना चाहिए, जीवित व्यक्तियों

जनार्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते तु पिण्डदः । आत्मानोऽप्यथवाऽन्येषां सव्येनापि तिलैर्विना ।।
जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ।।८५।।
यस्तु पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । यदुद्दिश्य त्वया देवस्तस्मिन्पिण्डो मृते प्रभो ।।८६।।
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । अन्तकाले गते मह्यं त्वया देयो गयाशिरे ।।८७।।
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद । पितृपते नमस्ते तु नमस्ते पितृरूपिणे ।।८८।।
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ।।८९।।
* नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक। लक्ष्मीकान्त नमस्ते तु पितॄणां मोक्षदो भव ।।९०।।
वामजानं सुसंपात्य नत्वा भीमो जनार्दनम् । श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्ब्रह्मलोकभाक् ।।
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतेन च ।।९१।।
शिलायां व्यक्तरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः । लक्ष्मीशो विबुधैः सार्ध तस्माद्देवमयी शिला।।९२।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०८।।

के लिए दधिमिश्रित पिण्डदान करना चाहिए। जो इस तरह करते हैं वे सभी विष्णुलोकगामी होते हैं। पिण्डदान करते समय यह मंत्र उच्चारण करना चाहिए। प्रभो! जनार्दन! जो पिण्ड मैं जिसके उद्देश्य से आपके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ, उसके मर जाने पर वह पिण्ड आप उसके लिए पहुँचा देंगे। जनार्दन! यह पिण्ड मैं अपने लिये आपके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ, मेरा अन्तकाल जब हो जाय तब उसे आप गयाशिर में हमें प्रदान करेंगे। जनार्दन! आप पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपको हम नमस्कार करते हैं, आप पितरों के स्वामी हैं, स्वयं पितृस्वरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। गया क्षेत्र में भगवान् जनार्दन स्वयमेव पितृरूप से विराजमान रहते हैं, उन पुण्डरीकाक्ष भगवान् का दर्शनकर मानव अपने तीनों ऋणों से छुटकारा पाता है ।।८३-८९।। तीनों ऋणों से मुक्ति देनेवाले पुण्डरीकाक्ष, आप लक्ष्मी के कान्त हैं, हमारे पितरों को मोक्ष प्रदान करें, आपको हमारा नमस्कार है। भीम ने अपने बायें घुटने को मोड़कर भगवान् जनार्दन को नमस्कार एवं पितरों के लिए पिण्डदान आदि करके भाइयों समेत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की। यही नहीं उस धर्मात्मा ने पितरों समेत अपने सौ कुलों का भी उद्धार किया। उस पुनीत शिला के ऊपर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु अपने व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से देवगणों के साथ स्वयमेव विराजमान रहते हैं, यही कारण है कि वह शिला देवमयी कही जाती है ।।९०-९२।।

श्री वायुमहापुराण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।।१०८।।

---

* एतच्छ्लोकस्थानेऽयं श्लोकः क. पुस्तके स यथा–नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन लक्ष्मीकान्त नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे।।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

कथं व्यक्तस्वरूपेण स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । कथं व्यक्तस्वरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ।।१।।
कथं गदा समापन्ना यथा ह्यादिगदाधरः । गदालोलं कथं चाऽऽसीत्सर्वपापक्षयंकरम् ।।२।।

सनत्कुमार उवाच

गदो नामासुरो ह्यासीद्वज्राद्वज्रतरो दृढः । प्रार्थितो ब्रह्मणे प्रादात्स्वशरीरास्थि दुस्त्यजम् ।।३।।
ब्रह्मोक्तो विश्कर्माऽपि गदां चक्रेऽद्भुतां तदा । तदस्थि वज्रनिष्पेषैः कुन्दैः स्वर्गे ह्यधारयत् ।।४।।
अथ कालेन महता मनौ स्वायंभुवे क्वचित् । हेती रक्षो ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सदारुणम् ।।५।।
दिव्यवर्षसहस्राणां शतं वायुमभक्षयत् । उन्मुखश्चोर्ध्वबाहुश्च पादाङ्गुष्ठभरेण ह ।।६।।
एकेनातिष्ठदव्यग्रः शीर्णपर्णानिलाशनः । ब्रह्मदींस्तपसा तुष्टान्वरं वव्रे वरप्रदान् ।।७।।
देवैर्दैत्यैश्च शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्मनुजादिभिः । कृष्णेशानादिचक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः ।।८।।

अध्याय १०९

गया माहात्म्य

नारद बोले–सनत्कुमार जी! आदि गदाधर भगवान् किस प्रकार व्यक्त रूप में अवस्थित हैं? व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से वे व्यक्त स्वरूप में किस प्रकार अवस्थित हैं? वह गदा किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे उनकी आदि गदाधर उपाधि हुई? सभी पापों को विनष्ट करनेवाली उस गदा की चञ्चलता किस प्रकार हुई ।।१-२।।

सनत्कुमार बोले–प्राचीनकाल में वज्र से भी परम कठोर गद नामक एक घोर असुर था, ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर उसने अपनी हड्डियाँ ब्रह्मा को समर्पित की थीं, जिनका देना परम कठिन कार्य था। ब्रह्मा के कहने पर विश्वकर्मा ने उन हड्डियों की एक अद्भुत गदा बनायी, उस अस्थिखण्ड की वज्र भेदन करनेवाले यन्त्रों से गदा बनाकर स्वर्ग लोक में विश्वकर्मा ने स्थापित किया था ।।३-४।। बहुत दिन बीत जाने के बाद की बात है एक बार स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मनन्दन हेति नामक राक्षस ने परम कठोर तपस्या की, एक लाख दिव्य वर्षों तक उसने केवल वायु का आहार किया, एक पैर के अँगूठों पर खड़े रहकर मुख और दोनों बाहुओं को ऊपर कर शान्त चित्त से वह तपस्या में लीन था। इस अवधि में पुराने, गिरे हुए पत्ते एवं वायु का आहार करता था ।।५-६$\frac{१}{२}$।। इस परम कठोर तपस्या से सुप्रसन्न वरदायक ब्रह्मा प्रभृति देवगणों से उसने वरदान की याचना की कि मैं समस्त देव, दैत्य, विविध प्रकार के शस्त्र, अस्त्र, मनुष्य, कृष्ण, शिव, सुदर्शन चक्रादि से न मारा जाऊँ, मेरे समान महाबलवान् कोई दूसरा न हो। देवगण हेति की प्रार्थना स्वीकारकर अन्तर्हित हो गये ।।७-८$\frac{१}{२}$।। तदुपरान्त उसने देवताओं को पराजित कर इन्द्र का पद छीन

तथेत्युक्त्वाऽन्तर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत् । इन्द्रत्वमकरोद्धेतिर्भीता ब्रह्महरादयः ।।९।।
हरिं ते शरणं जग्मुरूचुर्हेतिं जहीति तान् । ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवासुरैः सुराः ।।१०।।
महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्मि हि येन तम् । इत्युक्तास्ते ततो देवा गदां तां हरये ददुः ।।११।।
दधार तां गदामादौ देवैरुक्तो गदाधरः । गदया हेतिमाहत्य देवैः स त्रिदिवं ययौ ।।१२।।
गदामादाववष्टभ्य गयासुरशिरःशिलाम् । निश्चलार्थं स्थितो यस्मात्तस्मादादिगदाधरः ।।१३।।
शिलापर्वतरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः । शिलासौ मुण्डपृष्ठाद्रिः प्रभासो नाम पर्वतः ।।१४।।
उद्यन्तो गीतनादश्च भस्मकूटो गिरिर्महान् । गृध्रकूटः प्रेतकूटश्चाऽऽदिपालोऽरविन्दकः ।।१५।।
पञ्चलोकः सप्तलोको वैकुण्ठो लोहदण्डकः । क्रौञ्चपादोऽक्षयवटः फल्गुतीर्थं मधुश्रं (स्त्र) वा ।।१६।।
दधिकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी । वैतरण्यादिरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः ।।१७।।
विष्णोः पदं रुद्रपदं ब्रह्मणः पदमुत्तमम् । कश्यपस्य पदं दिव्यं द्वौ हस्तौ यत्र निर्गतौ ।।१८।।
पञ्चानीनां ददान्यत्र इन्द्रागस्त्यपदे परे । रवेश्च कार्तिकेयस्य क्रौञ्चमातङ्गयोरपि ।।१९।।
मुख्यलिङ्गानि सर्वाणि व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः । आद्यो गदाधरश्चैव व्यक्तः श्रीमान्गदाधरः ।।२०।।
गायत्री चैव सावित्री संध्या चैव सरस्वती । गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कोऽपि नैमिषः ।।२१।।

लिया, ब्रह्मा, महादेव–सभी उसके इस प्रचण्ड कर्म से भयभीत होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये और बोले, भगवन्! हेति का संहार कीजिये। हरि ने देवगणों से कहा, सुरवृन्द! हेति समस्त देवताओं एवं असुरों द्वारा भी नहीं मारा जा सकता। मुझे कोई महान् अस्त्र दीजिये जिससे हेति का वध कर सकूँ। भगवान् विष्णु के इस प्रकार कहने पर देवताओं ने वही गदा उन्हें समर्पित की ।।९-११।। देवताओं के अनुरोध पर हरि ने सर्वप्रथम उस गदा को धारण किया, और उसी से हेति का विनाशकर सुरगणों के साथ स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया। गयासुर के निश्चलता करने के लिए ऊपर रखी गयी शिला पर भगवान् ने उसी गदा को स्थापित किया था, इसीलिए उसका नाम आदि गदाधर पड़ा ।।१२-१३।। शिलापर्वत स्वरूप से भगवान् आदिगदाधर उस गया क्षेत्र में व्यक्त हुए शिला के अतिरिक्त मुण्डपृष्ठाद्रि, प्रभास, उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट नामक महागिरि, गृध्रकूट, प्रेतकूट, आदिपाल, अरविन्दक, पञ्चलोक, सप्तलोक, वैकुण्ठ, लोहदण्डक, क्रौञ्चपाद, अक्षयवट, फल्गुतीर्थ, मधुश्रवा, दधिकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी, वैतरणी प्रभृति के रूप में आदिगदाधर भगवान् व्यक्त हैं ।।१४-१७।। विष्णुपद, रुद्रपद, उत्तम ब्रह्मपद दिव्यगुणयुक्त कश्यपपद जहाँ पर दो हाथ निकले हुए हैं, पंचाग्नियों के पद, इन्द्र एवं अगस्त्य के पद, सूर्य, कार्तिकेय, क्रौञ्च, मातङ्ग एवं अन्यान्य प्रमुख लिङ्ग–ये सभी वहाँ व्यक्ताव्यक्त स्वरूप में उपस्थित हैं, आदि गदाधर भगवान् स्वयमेव इन स्वरूपों से व्यक्तरूप में विराजमान हैं ।।१८-२०।। गायत्री, सावित्री, सन्ध्या, सरस्वती, गयादित्य, उत्तरार्क, दक्षिणार्क, नैमिष, श्वेतार्क, गणनाथ, आठों वसुगण, मुनीन्द्रगण, ग्यारह रुद्रगण, सातों ऋषिगण, सोमनाथ, सिद्धेश, कपर्दीश, विनायक,

श्वेतार्को गणनाथश्च वसवोऽष्टौ मुनीश्वराः। रुद्राश्चैकादशैवाथ तथा सप्तर्षयोऽपरे ।।२२।।
सोमनाथश्च सिद्धेशः कपर्दीशो विनायकः। नारायणो महालक्ष्मीर्ब्रह्मा श्रीपुरुषोत्तमः ।।२३।।
मार्कण्डेयेशः कोटीशो ह्यङ्गिरेशः पितामहः। जनार्दनो मङ्गला च पुण्डरीकाक्ष उत्तमः ।।२४।।
इत्यादिव्यक्तरूपेण स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः। हेतिर्यो राक्षसस्तस्मिन्हतो विष्णुपुरं गतः ।।२५।।
ब्रह्मणा सह रुद्राद्यैः कारिते निश्चलेऽसुरे। तुष्टावाऽऽद्यगदापाणिं वेधा हर्षेण निर्वृतः ।।२६।।

ब्रह्मोवाच

गदाधरं व्यपगतकालकल्मषं गयागतं विदितगुणं गुणातिगम्।
गुहागतं गिरिवरगौरगेहगं गणार्चितं वरदमहं नमामि ।।२७।।
अहःश्रियं त्रिदशगणादिसुश्रियं भवश्रियं दितिभवदारणश्रियम्।
कलिश्रियं कलिमलमर्दनश्रियं गदाधरं नौमि तमाश्रितश्रियम् ।।२८।।
दृढादृढं परिवृढगाढसंस्तुतं कामाद्भुतं सुदृढमरूढिरूढिगम्।
तमाढ्यगं दृढदुरिताद्यढौकितं स्वढौकृतं दृढतरगोत्रसूक्तिभम् ।।२९।।
विदेहकं करणकलाविवर्जितं विजन्मकं दिनकरवेदिभूषितम्।
गदाधरं ध्वनिमुखवर्जितं परं नमाम्यहं सततमनादिमीश्वरम् ।।३०।।

नारायण, महालक्ष्मी, ब्रह्मा, श्री पुरुषोत्तम, मार्कण्डेयेश, कोटीश, अङ्गिरेश, पितामह, जनार्दन, मङ्गला, पुण्डरीकाक्ष इत्यादि स्वरूप से आदिगदाधर भगवान् विराजमान हैं। वह हेति नामक राक्षस, जिसकी कथा ऊपर कही जा चुकी है, मृत्यु के उपरान्त भगवान् विष्णु के लोक में पहुँचा। गयासुर के निश्चल कर देने पर ब्रह्मा समेत रुद्रादि देवगण परम हर्षित हुए और आदिगदाधर की इस प्रकार सब लोगों ने मिलकर स्तुति की ।।२१-२६।।

ब्रह्मा बोले—गया क्षेत्र में विराजमान, सभी गुणों से परे, प्रशस्त गुणशाली, समस्त काल चक्रों एवं पापों से विहीन, गुणों द्वारा सुपूजित, गदा धारण करनेवाले, गिरिराज की हिमाच्छादित गुहा में विराजमान वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२७।। दिन की शोभा, देवगणों को विजय श्री प्रदान करनेवाले, महादेव जी को यश प्रदान करनेवाले, दैत्यों का विनाशकर सुरगणों को प्रसन्न करनेवाले, कलि के घोर पापों को विनष्टकर यश उपार्जित करनेवाले, कलियुग में भी परमशोभासम्पन्न, शरणागत रक्षक भगवान् गदाधर को नमस्कार करता हूँ ।।२८।। परम पुष्टि भक्ति रखनेवाले भक्त जन जिसकी गाढ़ी भक्ति से स्तुति करते हैं, ऐसे परम कठोर से भी कठोर, अद्भुत कर्मशील, परम विक्रमशील, अजन्मा होकर भी शरीर धारण करनेवाले, कठोर पापकर्मों को नष्ट करनेवाले, पूज्यों में भी अग्रणी, पापियों को न प्राप्त होनेवाले भगवान् को हमारा नमस्कार है, जो वाक्य एवं मन से अगोचर होकर भी सद्वंशों में उत्पन्न होनेवाले हैं, शरीररहित, करण एवं कलाओं से विहीन, अजन्मा, सूर्य की भाँति परम कान्तिमान्, ध्वनि एवं मुख से विहीन, अनादि, परम ऐश्वर्यशाली भगवान् को सर्वदा नमस्कार करते हैं ।।२९-३०।। मन से भी परे, बुद्धि

मनोतिगं मतिगतिवर्जितं परं सदाऽद्वयं स्तुतिशिरसि स्तुतं बुधैः ।
चिदात्मकं कलिगतकारणातिगं गदाधरं हृदयगतं नमामि तम् ।।३१।।

सनत्कुमार उवाच

देवैः सार्धं ब्रह्मणैवं स्तुतश्चाऽऽदिगदाधरः । ऊचे वरं वृणीष्व त्वं वरं ब्रह्मा तमब्रवीत् ।।३२।।
शिलायां देवरूपिण्यां न तिष्ठामस्त्वया विना । स्थास्यामोऽत्र त्वया सार्धं नित्यं व्यक्तादिरूपिणा ।।३३।।
एवमस्तु श्रिया सार्धं स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । *लोकानां रक्षणार्थाय जगतां मुक्तिहेतवे ।।
सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो जनार्दन इति श्रुतः ।।३४।।
वेदैरगम्या या मूर्तिरादिभूता सनातनी । सुव्यक्ता श्वेतकल्पे सा भविष्यति तथा पुनः ।।
वाराहकल्पे ह्यव्यक्ता व्यक्तिमप्यगमत्पुरा ।।३५।।
संतारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च । गयाशिरसि सुव्यक्तो भविष्यति न संशयः ।।३६।।
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् । (+कुष्ठरोगादिनिर्मुक्ता यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ।।३७।।
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम्) । ते प्राप्स्यन्ति धनं दान्यमायुरारोग्यमेव च ।।३८।।

की गति से भी अगम्य, परात्पर, द्वैतरहित, जिस भगवान् की पण्डित जन सर्वदा स्तुति करते हैं, उस चित्स्वरूप, कलिकाल गत कारण समूहों से परे, हृदय में विराजमान उस भगवान् गदाधर को नमस्कार करते हैं ।।३१।

सनत्कुमार बोले—देवताओं समेत ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त विष्णु ने कहा, वरदान माँगिये। तब ब्रह्मा ने वरदान की याचना की कि देव! इस देवस्वरूपिणी शिला पर आपके बिना हम लोग नहीं रहेंगे, व्यक्तादिस्वरूप सम्पन्न आपके साथ ही हम लोग यहाँ पर सर्वदा स्थिर रह सकेंगे। आदिगदाधर ऐसा ही हो—कहकर लक्ष्मी के साथ वहाँ विराजमान हुए। समस्त लोकों की रक्षा एवं जगत् के जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए भगवान् आदि गदाधर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन नाम से वहाँ व्यक्त स्वरूप धारणकर स्थित हुए—ऐसे सुना जाता है ।।३२-३४।। श्वेत कल्प में वेदों द्वारा अगम्य जो आदि भूत, सनातन, भगवान् की व्यक्त मूर्ति थी, वही भविष्य में वाराह कल्प के आने पर अव्यक्त हो जाती है। प्राचीनकाल में वही व्यक्तता को प्राप्त हुई। लोक का उद्धार एवं देवताओं की रक्षा करने के लिए गयाशिर पर वह व्यक्त होगी इसमें सन्देह का स्थान नहीं है ।।३५-३६।। जो लोग सर्वदा भक्तिपूर्वक भगवान् आदिगदाधर का दर्शन करेंगे, वे कुष्ठ-जैसे महान् असाध्य रोगों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक को जायँगे। जो आदिगदाधर भगवान् का भक्तिपूर्वक सर्वदा दर्शन करेंगे वे विपुल धन, धान्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति करेंगे ।।३७-३८।। कलत्र, पुत्र, पौत्रादि, गुण, कीर्ति एवं सुख की उन्हें प्राप्ति होगी। जो लोग

---

* अयं श्लोकः ख. पुस्तके न विद्यते।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति।

कलत्रपुत्रपौत्रादिगुणकीर्तिसुखानि च । श्रद्धया ये नमस्यन्ति राज्यं ब्रह्मपुरं तथा ।।
भुक्त्वा व्रजेयुः सततं पुण्यपुञ्जफलं नराः ।।३९।।
गन्धदानेन गन्धाढ्यः सौभाग्यं पुष्पदानतः । धूपदानेन राज्याप्तिर्दीपाद्दीप्तिर्भविष्यति ।।४०।।
ध्वजदानात्पापहानिर्यात्राकृद्ब्रह्मलोकभाक् । श्राद्धपिण्डप्रदो यस्तु विष्णुं नेष्यन्ति वै पितॄन् ।।४१।।
श्रद्धया ये नमस्यन्ति स्तोत्रेणाऽऽदिगदाधरम् । (×स्तोष्यन्ति च समभ्यर्च्य पितॄन्नेष्यन्ति माधवम् ।।
शिवोऽपि परया प्रीत्या तुष्टावाऽऽदिगदाधरम् ।।४२।।

शिव उवाच

अव्यक्तरूपो यो देवो मुण्डपृष्ठाद्रिरूपतः । फल्गुतीर्थादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ।।४३।।
*व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण पदरूपेण संस्थितः । मुखादिलिङ्गरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ।।४४।।
अव्यक्तरूपो यो देवो जनार्दनस्वरूपतः । मुण्डपृष्ठे स्वयं जातो नमाम्यादिगदाधरम् ।।४५।।
शिलायां देवरूपिण्यां स्थितं ब्रह्मादिभिः सुरैः । पूजितं सत्कृतं देवैस्तं नमामि गदाधरम् ।।४६।।
यं च दृष्ट्वा ततः पृष्ट्वा पूजयित्वा प्रणम्य च । श्राद्धादौ ब्रह्मलोकाप्तिर्नमाम्यादिगदाधरम् ।।४७।।

भगवान् आदिगदाधर को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करेंगे, वे राज्य तथा ब्रह्मपुर की प्राप्ति करेंगे। वे मनुष्य अपने निखिल पुण्यकर्मों का विपुल फल भोगकर अन्त में ब्रह्मपुर को प्राप्त होंगे ।।३९।। सुगन्धित द्रव्यों के दान से विपुल सुगन्धित द्रव्यों की प्राप्ति होगी, पुष्प के दान से सौभाग्य की वृद्धि होगी। धूप-दान से राज्य-प्राप्ति होगी, दीप-दान से विपुल कान्ति मिलेगी। ध्वजा के दान से पाप का विनाश होगा, जो यात्रा करेगा वह ब्रह्मलोक का अधिकारी होगा। जो श्राद्ध एवं पिण्डदान करेगा वह अपने पितरों को विष्णुलोक में पहुँचायेगा ।।४०-४१।। जो व्यक्ति ऊपर के स्तोत्र द्वारा स्तुतिकर आदिगदाधर को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करेगा, पूजन करेगा, वह अपने पितरों को माधव के समीप पहुँचायेगा। शिव ने भी परम भक्तिपूर्वक आदि गदाधर की स्तुति की थी ।।४२।।

शिव ने कहा—जो अव्यक्त स्वरूप धारणकर मुण्डपृष्ठपर्वत एवं फल्गुतीर्थ प्रभृति अन्यान्य तीर्थों के स्वरूप में विराजमान है, उस परमदेव आदिगदाधर को हम नमस्कार करते हैं। जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप धारणकर पद, मुखादि चिह्नों के रूप में विराजमान है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो अव्यक्त स्वरूप धारण करनेवाला देव मुण्डपृष्ठ पर जनार्दन का स्वरूप धारणकर विरागमान है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं ।।४३-४५।। जो देवस्वरूपिणी शिला पर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों द्वारा पूजित एवं सत्कृत होकर अवस्थित है, उस गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। श्राद्धादि में जिसका दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं प्रणाम करके प्राणी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। महदादि व्यक्त जगत् का जो एकमात्र कारणस्वरूप है, अव्यक्त

× नायं श्लोकः ख. पुस्तके।

* इतः प्रभृति जातो नमाम्यादिगदाधरमित्यन्तं ग्रन्थव्यत्यासः ख. पुस्तके।

महादादेश्च जगतो व्यक्तस्यैकं हि कारणम् । अव्यक्तज्ञानरूपं तं नमाम्यादिगदाधरम् ।।४८।।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नविनिर्मुक्तं नमाम्यादिगदाधरम् ।।४९।।
नित्यानित्यविनिर्मुक्तं सत्यमानन्दमव्ययम् । तुरीयं ज्योतिरात्मानं नमाम्यादिगदाधरम् ।।५०।।

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो महेशेन प्रीतो ह्यादिगदाधरः । स्थितो देवः शिलायां स ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ।।५१।।
संस्थितं मुण्डपृष्ठाद्रौ देवमादिगदाधरम् । स्तुवन्ति पूजयन्तीह ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते ।।५२।।
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् । कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ।।५३।।
+वन्ध्या च लभते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् । राजा विजयमाप्नोति शूद्रश्च सुखमाप्नुयात् ।।५४।।
पुत्रार्थी लभते पुत्रानभ्यर्च्याऽऽदिगदाधरम् । मनसा प्रार्थितं सर्वं पूजाद्यैः प्राप्नुयाद्धरेः ।।५५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०९।।

एवं ज्ञानस्वरूप है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं ।।४६-४८।। जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण एवं अहङ्कार से विवर्जित एवं जागरण तथा स्वप्न से विहीन है उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो नित्य एवं अनित्य के पचड़ों से रहित है, सत्स्वरूप, आनन्दस्वरूप एवं अव्यय है, तुरीय आत्मा एवं ज्योति कहा जाता है उस आदिगदाधर को हम नमस्कार करते हैं ।।४९-५०।।

सनत्कुमार बोले—नारद जी! महेश्वर द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त भगवान् आदिगदाधर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों के साथ उस शिला के ऊपर स्थित हुए। मुण्डपृष्ठ गिरि पर अवस्थित आदिगदाधर देव की जो लोग स्तुति एवं पूजा करते हैं, वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं ।।५१-५२।। धर्म का अभिलाषी धर्म प्राप्त करता है, अर्थ का अभिलाषी अर्थ प्राप्त करता है, काम का अभिलाषी काम प्राप्त करता है, मोक्ष का अभिलाषी मोक्ष की प्राप्ति करता है, वन्ध्या वेद-वेदाङ्गपारगामी पुत्र प्राप्त करती है, राजा विजय की प्राप्ति करता है, शूद्र सुख की प्राप्ति करता है। आदिगदाधर की विधिवत् पूजाकर पुत्र को चाहनेवाला अनेक पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् विष्णु की पूजा आदि से मनुष्य अपनी सभी मानसिक अभिलाषाओं को प्राप्त करता है ।।५३-५५।।

श्री वायु महापुराण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ।।१०९।।

+ न विद्यतेऽयं श्लोकः ख. पुस्तके।

गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति। स्वर्गारोहणसोपानं पितृणां च पदे पदे।।१।।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

गयायात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्तिदाम्। निष्कृतिः श्राद्धकर्तॄणां ब्रह्मणा गीयते पुरा ।।१।।
उद्यतश्चेद्गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कार्पटीवेषं कृत्वा ग्रामप्रदक्षिणम् ।।२।।
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्। ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ।।३।।
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः। अहंकारविमुक्तो यः स तीर्थफलमश्नुते= ।।४।।
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चापि सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।।५।।
ततो गयाप्रवेशे च पूर्वतोऽस्ति महानदी। तत्र तोये समुत्पाद्य स्नातव्यं निर्मले जले ।।६।।
देवादींस्तर्पयित्वाऽथ श्राद्धं कृत्वा यथाविधि। ÷ स्ववेदशाखागदितमर्घ्यावाहनवर्जितम् ।।७।।

अध्याय ११०

गया माहात्म्य

सनत्कुमार बोले–नारद जी! गया यात्रा की विधि बतला रहा हूँ, जो मुक्ति को देनेवाली है, सुनिये। प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी ने यह बतलाया था कि गया में श्राद्ध करनेवालों का इस भवबन्धन से निस्तार हो जाता है। विधिपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्नकर जो व्यक्ति गया यात्रा के लिए उद्यत हो, उसे चाहिए कि सर्वप्रथम श्राद्धकर कौपीन धारणकर अपने ग्राम की प्रदक्षिणा करे, फिर दूसरे ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष अन्न का भक्षण करे, फिर दानादि न लेते हुए प्रतिदिन यात्रा करे। प्रतिग्रह से बचते हुए, सन्तुष्ट चित्त, इन्द्रियों को वश में कर पवित्र मन एवं शरीर से अहंकारादि को छोड़कर जो गया की यात्रा करता है वह तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है ।।१-४।। जिसके हाथ, पैर एवं मन संयत रहते हैं, विद्या, तप एवं कीर्ति की बहुलता रहती है, वह वास्तविक तीर्थ फल का उपभोग करता है। गया क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर पूर्व दिशा से महानदी पड़ती है, उसमें जल हिलोरकर निर्मल जल में स्नान करना चाहिए। फिर विधिपूर्वक देवादिकों का तर्पण एवं श्राद्धकर अपनी कुल-परम्परा में प्रचलित वेदशाखा का उच्चारण करना चाहिए। इस श्राद्धकर्म को अर्घ्य एवं आवाहन के बिना ही सम्पन्न करना चाहिए ।।५-७।। फिर दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वत

पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम्। तत्फलं च भवेन्नित्यं समग्रं नात्र संशयः।।२।।
ततो गयां समासाद्य स्नातव्यं तत्र निश्चयम्। इति।

= इत उत्तरमधिकाः श्लोका मुद्रितपुस्तकटिप्पण्यामुपलभ्यन्ते ते च यथा–

÷ नास्त्यर्धमिदं ख. पुस्तके।

अपरेऽह्नि शुचिर्भूत्वा गच्छेद्वै प्रेतपर्वते। ब्रह्मकुण्डे ततः स्नात्वा देवादींस्तर्पयेत्सुधीः ॥८॥
कुर्याच्छ्राद्धं सपिण्डानां प्रयतः प्रेतपर्वते। प्राचीनावीतिना भाव्यं दक्षिणाभिमुखः सुधीः ॥९॥
कव्यवाहोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा। अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥१०॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह। मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः ॥११॥
तेषां पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयामिमाम्। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु श्राद्धेनानेन शाश्वतीम् ॥१२॥
आचम्योक्त्वा च पञ्चाङ्गं प्राणायामं प्रयत्नतः। पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिहेतवे ॥१३॥
एवं च विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा पूर्वं यथाक्रमम्। पितॄनावाह्य चाभ्यर्च्य मन्त्रैः पिण्डप्रदो भवेत् ॥१४॥
तीर्थे प्रेतशिलादौ च चरुणा सघृतेन वा। प्रक्षाल्य पूर्वं तत्स्थानं पञ्चगव्यैः पृथक्पृथक् ॥
तैर्मन्त्रैरथ संपूज्य पञ्चगव्यैश्च देवताम् ॥१५॥
यावत्तिला मनुष्यैश्च गृहीताः पितृकर्मसु। गच्छन्ति तावदसुराः सिंहत्रस्ता यथा मृगाः ॥१६॥
अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च भूतेऽहनि। मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र+ पतिना सह ॥१७॥

की यात्रा करनी चाहिए, फिर ब्रह्मकुण्ड में स्नानकर बुद्धिमान् पुरुष को देवादिकों का तर्पण करना चाहिए। प्रेतपर्वत पर संयत मन हो सपिण्डों का श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। इस कर्म में बुद्धिमान् पुरुष प्राचीना[१], वीती और दक्षिणाभिमुख होना चाहिए ॥८-९॥ 'कव्यवाह, अग्नि, चन्द्रमा, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद और सोमपान करनेवाले पितृदेवगण! महाभाग्यशालियो! आप लोग यहाँ पधारें। इस तीर्थ में आप लोगों की कृपा से सुरक्षित जो हमारे पितरगण तथा हमारे कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पितरगण हैं, उन्हीं को पिण्डदान करने के लिए मैं गयापुरी में आया हूँ। हमारे इस श्राद्धकर्म से वे चिरन्तन तृप्ति लाभ करें ॥१०-१२॥ ऐसी प्रार्थना करने के उपरान्त आचमन करके प्रयत्नपूर्वक पाँचों अङ्गों समेत प्राणायाम करके, पुनरागमन से विरहित ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक क्रमानुसार श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए। उस समय पितरों का आवाहनकर उनकी विधिपूर्वक पूजा और मन्त्रों का उच्चारणकर पिण्डदान करना चाहिए। प्रेतशिला आदि तीर्थ स्थानों में घृत समेत चरु से पिण्डदान करना चाहिए। पञ्चगव्यों द्वारा उनके मन्त्रों से भली प्रकार उस स्थान को पवित्रकर मन्त्रों द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥१३-१५॥ पितृकर्मों में मनुष्य जितने तिलों को ग्रहण करते हैं, उतने असुरगण सिंह से भयभीत मृगों की भाँति वहाँ से दूर चले जाते हैं ॥१६॥ सभी अष्टकाओं में, वृद्धि श्राद्ध में, गया तीर्थ में तथा मृत्यु के दिन माता का श्राद्ध अलग से करना चाहिए, अन्यत्र पति (पिता) के साथ ही करना चाहिए। वृद्धि श्राद्ध में सर्वप्रथम माता का श्राद्ध करके गया में पिता के श्राद्ध को पहले करना चाहिए। दक्षिणाभिमुख होकर क्रमशः कुशों को बिछाकर पिता आदि के

+ आर्षश्चायं प्रयोगः।

[१] यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रखकर बायें हाथ को बाहर निकालने की विधि। पितृकर्मों में इसका प्रायः प्रयोग होता है।

बुद्धिश्राद्धं तु मात्रावि गयायां पितृपूर्वकम् । पाद्यपूर्व समारभ्य दक्षिणाग्रकुशैः क्रमात् ।।
पित्रादीनां समास्तीर्थ शेषं गृह्योक्तमाचरेत् ।।१८।।
दद्युः श्राद्धं ह्यपिण्डानां तेषां दक्षिणभागतः । कुशानास्तीर्य विधिना सकृद्दत्वा तिलोदकम् ।।१९।।
गृहीत्वाऽञ्जलिना तेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः । सक्तुना मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकम्× ।।
संबन्धिनस्तिलाद्भिश्च कुशेष्वावाहयेन्नरः ।।२०।।
(÷अब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ।।२१।।
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् । आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ।।२२।।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।।२३।।
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।२४।।

लिए पाद्यादि निवेदन करना चाहिए। शेष विधान अपने-अपने गृह्य सूत्रों के अनुसार करना चाहिए ।।१७-१८।। विधिवत् कुशों को बिछाकर एक बार तिल समेत जल दान करने के उपरान्त दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर सपिण्डों को श्राद्ध प्रदान करना चाहिए। अंजलि में पितृतीर्थों का जल लेकर यत्नपूर्वक उन्हें जल दान करना चाहिए। एक मुट्ठी सत्तू लेकर अक्षय पिण्ड दान करना चाहिए। अन्य सम्बन्धियों को भी आवाहन करके तिल मिश्रित जल का दान करना चाहिए ।।१९-२०।। "ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब तक जो भी देव, ऋषि, पितर एवं मानवगण हैं, माता, मातामह प्रभृति हमारे पितरगण हैं, वे इस जलदान से संतुष्ट हों। सातों द्वीपों में निवास करनेवाले, करोड़ों से भी अधिक कुलों में उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मलोक से इस लोक तक सर्वत्र विद्यमान उन्हीं लोगों की तृप्ति के लिए यह तिल मिश्रित जलाञ्जलि है ।।२१-२२।। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामही तथा प्रपितामही, मातामह तथा उनके पिता, प्रमातामह प्रभृति-जो भी हमारे पूर्व पुरुष हैं, उन्हीं लोगों के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, यह अक्षय रूप में उन्हें सन्तुष्ट

× क पुस्तकटिप्पण्यामेतेऽधिकाः श्लोका एतदग्रे दृश्यन्ते ते च यथा-
पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन च। गुडेन तण्डुलाद्यैर्वा पिण्डदानं विधीयते।।१।।
मुष्टिमात्रप्रमाणेन चाऽऽर्द्रामलकमात्रतः। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे।।२।।
उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्। माता पिता च भार्या च भगिनी दुहितुः पतिः।।३।।
पितृष्वसा मातृष्वसा सप्त गोत्राः प्रकीर्तिताः। विंशतिर्विंशतिः पित्रोरष्टेन्द्राः षोडश क्रमात्।।४।।
एकादश द्वादशाथ कुलान्येकोत्तरं शतम्। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।।५।।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही। मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः।।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्।।इति।।६।।
इत उत्तरमेतदर्धं ख. पुस्तके। तद्यथा-तिलाज्यमधुदध्यादि पिण्डद्रव्येषु योजयेत्।

÷ इत आरभ्य-आर्द्रामलकमात्रकमित्यन्तं ग्रन्थव्यत्यासः ख. पुस्तके।

मुष्टिमात्रप्रमाणं च आर्द्रामलकमात्रकम् । शमीपत्रप्रमाणं वा पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ।।
उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलानि शतमुद्धरेत् ।।२५।।
पितृर्भातुः स्वभार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा । पितृष्वसुर्मातृष्वसुः सप्त गोत्राः प्रकीर्तिताः ।।२६।।
चतुर्विंशतिविंशश्च षोडश द्वादशैव हि । रुद्रादिवसवश्चैव कुलान्येकोत्तरं शतम् ।।२७।।
नाऽऽपवाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसंभवः । न कारुण्येन कर्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ।।२८।।
पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् । दक्षिणा चान्नसंकल्पं तीर्यश्राद्धे स्वयं विधिः ।।२९।।
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ।।३०।।
*मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वानितन्कुशपृष्ठे तिलोदकैः ।।३१।।
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः+ ।।३२।।
इत्यतैर्मन्त्रैः सजलैस्तिलैर्दर्भेषु ध्यानवान् । आवाह्याभ्यर्च्य तेभ्यश्च पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ।।३३।।
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।३४।।

करे।" अपनी मुट्ठी भर का अथवा हरे आँवले भर का अथवा शमी के पत्ते जितना बड़ा पिण्ड गयाशिर पर प्रदान करना चाहिए। ऐसे पिण्डों को जो व्यक्ति प्रदान करता है वह अपने सात गोत्रों एवं सौ कुल पुरुषों का उद्धार करता है ।।२३-२५।। पिता, माता, अपनी स्त्री, बहिन, पुत्री, फूआ और मौसी–ये सात गोत्र कहे जाते हैं। चौबीस, बीस, सोलह, बारह, ग्यारह, सात और आठ–इतने पिण्डदान क्रमशः करने चाहिए। इनके करने से एक सौ एक कुलों का उद्धार होता है। बुद्धिमान् पुरुषों को तीर्थ श्राद्ध में आवाहन, परदा, शूद्रादिकों को देखने से उत्पन्न होनेवाले दोष को न मानना चाहिए, इसी प्रकार किसी प्रकार की कातरता अथवा करुणा भी न करनी चाहिए ।।२६-२८।। तीर्थ श्राद्धों में मुख्यतया इन्हीं विधियों का पालन होना चाहिए, पिण्ड का आसन, पिण्डदान, प्रत्यवनेजन, दक्षिणा तथा अन्न सङ्कल्प। पिण्डदान के पूर्व ऐसा सङ्कल्प करना चाहिए कि अपने कुल में उन सभी मृतकों को, जिनकी कहीं भी गति नहीं हुई, इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा मैं आवाहित कर रहा हूँ, अपने नाना के कुल में मरे हुए उन सभी लोगों को भी मैं इसी कुशासन पर तिलमिश्रित जल द्वारा आवाहित कर रहा हूँ, जिनकी कहीं भी गति नहीं हुई। इसी प्रकार बन्धुवर्गों के कुलों में भी उन मरे हुए लोगों को इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा आवाहित कर रहा हूँ जिनकी कहीं गति नहीं है ।।२९-३२।। इन उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा तिलमिश्रित जल से कुशों पर उन सभी मृतकों का ध्यान करना चाहिए। आवाहन के उपरान्त भली-भाँति पूजनकर उन्हें क्रमानुसार पिण्डदान करना चाहिए। अपने कुल में उन मरे हुए लोगों को, जिनकी कहीं भी गति नहीं हैं, उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, मातामह के कुल में मरे हुए

---

* न विद्यतेऽयं श्लोकः क. पुस्तके।

+ एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो नास्ति ख. पुस्तके।

मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।३५।।
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।३६।।
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।३७।।
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथाऽपरे। विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।३८।।
दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये। दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वाऽपि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।३९।।
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये। आत्मापघातिनो च ये तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।४०।।
अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृषया मृताः। भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।४१।।
रौरव्ये चान्धतामिश्रे (स्त्रे) कालसूत्रे च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।४२।।
× असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।४३।।
अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकं च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।४४।।
अनेकयातनासंस्थाः ये नीता यमकिंकरैः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।४५।।

उन लोगों को उबारने के लिए, जिनकी कहीं भी गति नहीं है, मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। बन्धुवर्गों के कुल में मरे हुए उन लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, जिनको कहीं भी गति नहीं मिली ।।३३-३६।। जो बिना दाँत जमे ही मर गये थे, गर्भ में ही जिनकी मृत्यु हो गयी थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। अग्नि में जलकर मरे हुए जो कोई हों, अग्नि में बिना जलाये गये जो कोई हों, ऐसे लोगों के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। वनाग्नि में जो मर गये थे, सिंहों एवं व्याघ्रों से जिनकी मृत्यु हुई, अन्यान्य दाढ़ोंवाले, सींगोंवाले, हिंस्र जानवरों से जिनकी मृत्यु हुई, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ। स्वयं फाँसी के लगाने से जिनकी मृत्यु हुई, विषों एवं शस्त्रों से जिन्होंने आत्महत्या करके अपने प्राण गँवा दिये, ऐसे आत्महत्यारों के उद्धार के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ ।।३७-४०।। घोर जंगली मार्गों में जो विवश होकर क्षुधा एवं प्यास से मर गये थे, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचों से ग्रस्त होने के कारण जिनकी मृत्यु हुई थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ। अपने घोर पापकर्मों के कारण जो रौरव, अन्धतामिस्र एवं कालसूत्र-जैसे नरकों में घोर यातनाएँ झेल रहे हैं, उनको उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ।।४१-४२।। घोर असिपत्र वन तथा कुम्भीपाक-जैसे नरकों में जो अपने पापकर्मों के फल भोग रहे हैं, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। प्रेतलोक में जाकर अन्यान्य यातनाओं से सताये जानेवालों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। यम दूतों द्वारा अनेक यातनाओं में जो पीसे जा

× एतदग्रेऽयं पाठः ख. पुस्तके स यथा—आब्रह्मस्तम्बपर्वतं यत्किंचित्सचराऽचरम्। मया दत्तेन तोयेन तृप्यन्तु भुवनत्रयम्।।इति।

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ।।४६।।
पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः। अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।४७।।
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्तः स्वेन कर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।४८।।
दिव्यन्तरीक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः। मृता असंस्कृता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ।।४९।।
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ।।५०।।
येऽबान्धवा बान्धवा वा येन्यजन्यजन्मनि बान्धवाः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ।।५१।।
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः। क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ।।५२।।
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।।५३।।

आ ब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः।
कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाऽऽश्रितसेवकाश्च ।।५४।।

रहे हैं, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ। समस्त नरकों एवं सभी प्रकार की यातनाओं में अपने पापकर्मों के कारण दुःख भोगनेवालों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ।।४३-४६।। पशु की योनि में उत्पन्न हो चुके हैं, नीच पक्षी, कीट एवं सरकनेवाले सर्प आदि योनियों में जिनका जन्म हो चुका है, अथवा वृक्षों की योनि में जो उत्पन्न हो चुके हैं–उन सबको उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। अपने कर्मों के अनुसार अनेक सहस्र जातियों में उत्पन्न हो-होकर जो दुःख भोग रहे हैं, जिन्हें मानवयोनि अब दुर्लभ हो चुकी है, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ।।४७-४८।। दिव्य लोक, अन्तरिक्षलोक एवं भूमिलोक में उपस्थित अपने बन्धुवर्गों एवं अपने पितरों को उबारने के लिए, जो कभी मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु संस्कार नहीं हुए, मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। जो हमारे पितरगण इस समय प्रेत रूप में वर्तमान हैं, वे हमारे इस पिण्डदान से सर्वदा के लिए तृप्ति लाभ करें ।।४९-५०।। जो हमारे इस जन्म के बान्धव अथवा अबान्धव हैं, जो हमारे अन्य जन्मों के बान्धव हैं, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिण्ड अक्षय तृप्ति करनेवाला हो। पिता के वंश में जो मर चुके हैं, माता के वंश में जो मर चुके हैं, हमारे गुरु, श्वसुर एवं बन्धुवर्गों के वंश में जिनकी मृत्यु हो चुकी है, जो कोई अन्य बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हुए हों, हमारे कुल में उत्पन्न होनेवाले ऐसे लोग, जिनको पिण्डदान करनेवाला कोई नहीं हैं, पुत्र स्त्री आदि से जो रहित रहे, जिनकी क्रिया लुप्त हो गयी, जन्म से ही जो अन्धे थे, पंगु थे, कुरूप थे, गर्भावस्था में जिनकी मृत्यु हो गयी जिन्हें कोई जानता है कोई नहीं जानता, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिण्ड अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला हो ।।५१-५३।। ब्रह्मा से लेकर हमारे पिता के वंश में जो कोई उत्पन्न हुए हों, तथा मेरी माता के वंश में जो उत्पन्न हुए हों, इन दोनों कुलों को, जो दासता एवं भृत्यता के बन्धन में बँधे हुए थे, आश्रित एवं सेवकों में

मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षा दृष्टा ह्यदृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि ।।५५।।
एतैश्च सर्वमन्त्रैस्तु स्त्रीलिङ्गान्तं समुह्य च । पिण्डान्दद्याद्यथा पूर्व स्त्रीणां मात्रादिकाक्रमात् ।।५६।।
स्वगोत्रे परगोत्रे वा दंपत्योः पिण्डपातनम् । अपृथङ्निष्फलं श्राद्धं पिण्डं चोदकतर्पणम् ।।५७।।
पिण्डपात्रे तिलान्क्षिप्त्वा पूरयित्वा कुशोदकैः । *मन्त्रेणानेन पिण्डांस्तान्प्रदक्षिणयथाक्रमम् ।।
परिषिच्य त्रिधा सर्वान्प्रणिपत्य समापयेत् ।।५८।।
पितॄन्विसृज्य चाऽऽचम्य साक्षिणः श्रावयेत्सुरान् । साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ।।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ।।५९।।
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर । त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात् ।।६०।।
सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिण्डदानं तु नारद । प्रेतपर्वतमारभ्य कुर्यात्तीर्थेषु च क्रमात् ।।६१।।
तिलमिश्रांस्ततः सक्तून्निक्षिपेत्प्रेतपर्वते । ÷अपसव्येन देवर्षे दक्षिणाभिमुखेन च ।।६२।।
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः ।।६३।।

जिनकी गणना की जाती थी, मित्र थे, शिष्य थे, पशु, वृक्ष, दृष्ट एवं अदृष्ट रूप से उपकारक थे, अन्य जन्म में जिनके साथ हमारी सङ्गति थी, उन सबको उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ' ।।५४-५५।। इन सभी उपर्युक्त मंत्रों का उच्चारण कर माताओं के लिए क्रमानुसार स्त्रीलिंग विशेषण लगाकर पिण्ड प्रदान करना चाहिए। अपने गोत्र के हों अथवा अन्य गोत्र के हों, स्त्री पुरुष के लिए पिण्डदान की विधि पृथक्-पृथक् विहित है, जो पृथक् रूप में नहीं करता उसका श्राद्ध पिण्डदान एवं तर्पण सभी निरर्थक है। पिण्ड रखने के पात्र में तिल छोड़कर फिर उसको पवित्र जल से पूर्णकर इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए क्रमानुसार प्रदक्षिणापूर्वक पिण्डदान करना चाहिए, तीन बार सिंचन करने के उपरान्त सब को प्रणाम करके पिण्डदान की विधि को समाप्त करना चाहिए ।।५६-५८।। पितरों को विसर्जित कर आचमन करके साक्षी रूप में उपस्थित देवताओं को यह सुनाना चाहिए। ब्रह्मा, शिव प्रभृति देवगण! आप लोग हमारे इस कार्य के साक्षी रहें कि मैं गया में आकर अपने पितरों के उद्धार का कार्य सम्पन्न कर चुका। देव! गदाधर! केवल पितृकार्य के लिए मैं गया आया हुआ था, भगवन्! आप ही इसके साक्षी हैं, मैं अब अपने तीनों ऋणों से मुक्त हूँ ।।५९-६०।। देवर्षि नारद जी! प्रायः सभी तीर्थ स्थानों में पिण्डदान की यही विधि है, सर्वप्रथम प्रेत पर्वत पर आरम्भ कर क्रमानुसार सभी स्थानों में उक्त क्रम से श्राद्ध करना चाहिए। प्रेत पर्वत पर तिलमिश्रित सत्तू दक्षिणाभिमुख एवं अपसव्य होकर छोड़ना चाहिए ।।६१-६२।। जो कोई हमारे पितरगण प्रेत रूप में कहीं विद्यमान हों, वे इस तिलमिश्रित सत्तू के दान से तृप्ति लाभ करें। ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त इन चराचर जीव-योनियों में जो भी हमारे

---

* नास्त्यर्धमिदं क. पुस्तके।

÷ नास्त्यर्धमिदं ख. पुस्तके।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किंचित्सचराचरम्। मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः ।।६४।।
प्रेतत्वाच्च विमुक्ताः स्युः पितरस्तस्य नारद। प्रेतत्वं तस्य माहात्म्यात्कुले चापि न जायते ।।६५।।
नाम्ना प्रेतशिला ख्याता गयाशिरसि मुक्तये। तीर्थमन्त्रादिरूपेण स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः ।।६६।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११०।।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

आदौ तु पञ्चतीर्थेषु चोत्तरे मानसे विधिः। आचम्य कुशहस्तेन शिरश्चाभ्युक्ष्य वारिणा ।।१।।
उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण स्नानमाचरेत्। उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ।।२।।
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये। ×स्नानार्थं तर्पणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् ।।३।।

पितरगण हों, वे मेरे दिये इस जलदान से सर्वांशतः तृप्ति लाभ करें ।।६३-६४।। नारद जी! इस विधि से श्राद्ध करनेवाले प्राणियों के पितरगण निश्चय ही प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं। यही नहीं प्रत्युत उसके इस शुभ कर्म के माहात्म्य से उसके कुल में कोई प्रेतयोनि में नही जाता। गयाशिर में वह प्रेत-शिला केवल प्रेतों की विमुक्ति के लिए है, तीर्थ मंत्रादि के रूप में आदिगदाधर देव भी वहाँ इसी सदाशय से विराजमान हैं ।।६५-६६।।

श्री वायुमहापुराण में गयामाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ।।११०।।

अध्याय १११

गया माहात्म्य

सनत्कुमार बोले—नारद जी! सर्वप्रथम उत्तर मानस में स्थित पाँचों तीर्थों में किस प्रकार श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करने चाहिए, इसकी विधि बतला रहा हूँ। आचमनकर हाथ में कुशा लेकर सिर पर जल द्वारा सिंचन करे। फिर उत्तरमानस की यात्रा करे और वहाँ जाकर इस मंत्र का उच्चारण करते हुए स्नान करे कि आत्मविशुद्धि के लिए मैं उत्तरमानस में स्नान कर रहा हूँ ।।१-२।। सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होनेवाली सिद्धियों को प्राप्त करने के

× पाठः—एतदर्धस्थानेऽयं देवादींस्तर्पयित्वाऽथ श्राद्धं कृत्वा सपिण्डकम्। इति ख. पुस्तके।

मानसं हि सरो ह्यत्र तस्मादुत्तरमानसम् । सूर्यं नत्वाऽर्चयित्वाऽथ सूर्यलोकं नयेत्पितॄन् ।।४।।
नमो भगवते भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे । जीवभार्गवसौरेयराहुकेतुस्वरूपिणे ।।५।।
उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसम् । उदीचीतीर्थमित्युक्तं तत्रौदीच्यं विमुक्तिदम् ।।
अत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः ।।६।।
मध्ये कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । स्नातः कनकवद्भाति नरो याति पवित्रताम् ।।७।।
तस्य दक्षिणभागे च तीर्थं दक्षिणमानसम् । दक्षिणे मानसे चैव तीर्थत्रयमुदाहृतम् ।।८।।
स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् । दक्षिणे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ।।९।।
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये । ब्रह्महत्यादिपापौघयातनाया विमुक्तये ।।१०।।
दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे । *सूर्यं नत्वाऽर्चयित्वा च सूर्यलोकं नयेत्पितॄन् ।।११।।
नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितॄणां तारणाय च । पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायाऽऽयुरारोग्यवृद्धये + ।।१२।।
फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । मुक्तिर्भवति कर्तॄणां पितॄणां श्राद्धतः सदा ।।१३।।

लिए तथा अपने पितरों की मुक्ति के लिए यह स्नान कर रहा हूँ। स्नान के लिए तर्पण करने के उपरान्त पिण्ड श्राद्ध करे। मानस नामक सरोवर यहाँ वर्तमान है अतः उसका उत्तरमानस नाम पड़ा है। वहाँ सूर्य को नमस्कार एवं पूजन करनेवाला अपने पितरों को सूर्य लोक पहुँचाता है ।।३-४।। परम ऐश्वर्यशाली, पालक, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु स्वरूप सूर्यदेव को हमारा नमस्कार है।' इस प्रकार सूर्य को नमस्कार करने के उपरान्त मौन धारणकर उत्तरमानस से दक्षिणमानस की यात्रा करनी चाहिए। वह उदीची का तीर्थ कहा जाता है, वह औदीच्य तीर्थ विमुक्ति देनेवाला है, इस तीर्थ में स्नान करनेवाला मनुष्य अपने शरीर से स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है ।।५-६।। तीनों लोकों में विख्यात कनखल नामक तीर्थ मध्यभाग में अवस्थित है, वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सुवर्ण की तरह कान्तिशाली एवं परम पुनीत होता है। उसके दक्षिण भाग में दक्षिणमानस नामक तीर्थ है, दक्षिणमानस में तीन तीर्थ कहे जाते हैं। इन तीनों तीर्थों में विधिपूर्वक स्नानकर पृथक्-पृथक् श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए। आत्म विशुद्धि के लिए दक्षिणमानस में स्नान कर रहा हूँ ।।७-९।। सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होनेवाली सिद्धियों की प्राप्ति के लिए, पितरों की मुक्ति के लिए, ब्रह्महत्या, घोर पापकर्मों एवं यातनाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए, हे दिवाकर देव! मैं इस दक्षिणमानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ, इस प्रकार सूर्य को नमस्कार एवं पूजित कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग लोक पहुँचाता है ।।१०-११।। हे सूर्यदेव! मैं आपको तृप्ति एवं पितरों को तारने के लिए नमस्कार कर रहा हूँ, पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, आयु एवं आरोग्य की वृद्धि के लिए नमस्कार कर रहा हूँ। तदनन्तर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ फल्गुतीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, वहाँ पर श्राद्ध करने से करनेवालों की एवं उनके पितरों की सर्वदा मुक्ति

---

* इदमर्धं न क. पुस्तके।

+ एतदग्रेऽयं श्लोकः क. पुस्तके टिप्पण्याम्–अनेन स्नानदानादि कृत्वा श्राद्धं सपिण्डकम्। कृत्वा नत्वा च मौन्यर्कमिमं मन्त्रमुदीरयेत्। एतदग्रे इदमर्धम्–एतत्तीर्थत्रये मौनी स्नानश्राद्धादिकं चरेत्। इति ख. पुस्तके।

ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत्पुरा। दक्षिणाग्नौ हुतं तत्र तद्रजः फल्गुतीर्थकम् ⊙ ।।१४।।
तीर्थानि यानि सर्वाणि भुवनेष्वखिलेष्वपि। तानि स्नातुं समायान्ति फल्गुतीर्थं सुरैः सह ।।१५।।
गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः। स्वयं हि द्रवरूपेण तस्माद्गङ्गाधिकं विदुः ।।१६।।
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत्। नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात् ।।१७।।
÷फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत्। सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तं नमेदथ पितामहम् ।।१८।।
नमः शिवाय देवाय ईशाय पुरुषाय वै। अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शंभवे ।।१९।।
÷फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्। आत्मानं तारयेत्सद्यो दश पूर्वान्दशापरान् ।।२०।।
नत्वा गदाधरं मन्त्रेणानेन पूजयेत्। ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ।।२१।।
पञ्चतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्। अमृतैः पञ्चभिः स्नानं पुष्पवस्त्राद्यलंकृतम् ।।
न कुर्याद्यो गदापाणेस्तस्य श्राद्धं निरर्थकम् ।।२२।।

होती है। ब्रह्मा की प्रार्थना पर प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु स्वयं फल्गु रूप में प्रतिष्ठित हुए। यज्ञ की दक्षिणाग्नि में आहुति रूप में पड़ा हुआ रज फल्गुतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।।१२-१४।। निखिल भुवन मण्डल में जितने भी तीर्थ समूह हैं वे देवताओं के साथ इस फल्गुतीर्थ में स्नान करने के लिए आते हैं, गङ्गा भगवान् विष्णु की पादोदक स्वरूप हैं, किन्तु फल्गु तो स्वयं आदिगदाधर स्वरूप है, स्वयं द्रव्य रूप में वे आदिगदाधर की मूर्ति हैं, यही कारण है कि गङ्गा से अधिक उनका माहात्म्य लोग बतलाते हैं ।।१५-१६।। जो व्यक्ति एक लाख अश्वमेध यज्ञ करता है, वह भी इतना फल नहीं प्राप्त करता, जितना फल्गु में स्नान करनेवाला पाता है। फल्गुतीर्थ में स्नानकर मनुष्य को तर्पण एवं सपिण्ड श्राद्ध कर्म अपने गृह्यसूक्त के अनुसार करना चाहिए, पितामह को नमस्कार करना चाहिए। शिव, ईश, पुरुष स्वरूप देव को हमारा नमस्कार है, अघोर वामदेव, सद्योजात एवं शम्भु उपाधि धारण करनेवाले देव-देव को हम नमस्कार करते हैं ।।१७-१९।। फल्गुतीर्थ में स्नानकर आदिगदाधर देव का दर्शन करनेवाला मनुष्य अपने को तो तारता ही है, अपने से दस पीढ़ी पूर्व एवं दस पीढ़ी बाद में होनेवालों को भी तुरन्त तारता है। आदिगदाधर देव का इस मन्त्र से नमस्कार पूजन करना चाहिए। तदनन्तर प्रणव ओंकार का उच्चारण करके यह कहे कि श्री भगवान् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्रीधर, विष्णु प्रभृति नामोंवाले को हमारा बारम्बार नमस्कार है' ।।२०-२१।। पाँचों तीर्थों में स्नान करनेवाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। जो व्यक्ति पञ्चामृत द्वारा स्नान कराकर सुन्दर पुष्प वस्त्रादि से अलंकृत करके भगवान् गदाधर की पूजा नहीं करता उसकी सारी श्राद्ध क्रिया निरर्थक

⊙ इत उत्तरमयं श्लोको वर्तते क. पुस्तकटिप्पण्याम्-तस्मिन्फलति फल्वा गौः कामधेनुर्जलं मही। दृष्टेरन्तर्गतं यस्मात्फल्गुतीर्थं न निष्फलम् इति।

÷ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा इत्यस्मात्प्राक् क. पुस्तक टिप्पण्यामधिक एकः श्लोको वर्तते स यथा-फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमादृतः। पितॄणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये इति।

नागकूटाद्गृध्रकूटाद्यूपादुत्तरमानसात् √ । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ।।२३।।
प्रथमेऽह्नि विधिः प्रोक्तो द्वितीये दिवसे व्रजेत् । धर्मारण्यं तत्र धर्मो यस्माद्यज्ञमकारयत् ।।
गमनाद्ब्रह्मलोकाप्तिर्भवत्येव हि नारद ।।२४।।
मतङ्गवाप्यां यः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् । गत्वा नत्वा मतङ्गेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।२५।।
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः । मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितृणां निष्कृतिः कृता ।।२६।।
*पूर्वं हि ब्रह्मतीर्थे च कूपे श्राद्धादि कारयेत् । तत्कूपयूपयोर्मध्ये सर्वांस्तारयते पितॄन् ।।
धर्मं धर्मेश्वरं नत्वा महाबोधितरुं नमेत् ।।२७।।
नमस्तेऽश्वत्थराजाय ब्रह्मविष्णुशिवात्मने । बोधिद्रुमाय कर्तॄणां पितृणां तारणाय च ।।२८।।
येऽस्मत्कुले मातृवंशे बान्धवा दुर्गतिं गताः । त्वद्दर्शनात्स्पर्शनाच्च स्वर्गतिं यान्तु शाश्वतीम् ।।२९।।
ऋणत्रयं मया दत्तं गयामागत्य वृक्षराट् । त्वत्प्रसादान्महापापाद्विमुक्तोऽहं भवार्णवात् ।।३०।।
तृतीये ब्रह्मसरसि स्नात्वा श्राद्धं सपिण्डकम् । कृत्वा सर्वप्रमाणेन मन्त्रेण विधिवत्सुत ।।३१।।

है। नागकूट से गृध्रकूट, गृध्रकूट से यूप एवं यूप से उत्तरमानस ये ही गयासुर के शिरोभाग कहे जाते हैं, इन्हीं को फल्गुतीर्थ कहते हैं। प्रथम दिन में किये जानेवाले विधानों को बतला चुका। तदनन्तर दूसरे दिन धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिए। इसी धर्मारण्य में भगवान् ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ का अनुष्ठान किया था। नारद जी! इस पुनीत धर्मारण्य में गमन मात्र से मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।२२-२४।। फिर मतङ्ग वापी में स्नानकर तर्पण एवं श्राद्ध करना चाहिए, वहाँ जाकर मतङ्गेश को नमस्कारकर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। हे लोकपाल देवगण! आप हमारे इस कार्य में साक्षी रहें कि मैं इस मतङ्ग तीर्थ में आकर अपने पितरों का निस्तार कर चुका।' प्रथमतः ब्रह्मतीर्थ में जाकर कूप पर श्राद्धादि करना चाहिए। उस कूप एवं यूप के मध्यभाग में श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है। वहाँ पर धर्म धर्मेश्वर को नमस्कारकर महाबोधि वृक्ष को नमस्कार करना चाहिए ।।२५-२७।। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप! अश्वत्थराज! बोधि वृक्ष! आपको हमारा नमस्कार है। यहाँ पर श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाले एवं उसके पितरों के तारने के लिए मैं यह क्रिया कर रहा हूँ। हमारे पिता के तथा माता के वंश में उत्पन्न होकर जो बान्धवगण दुर्गति भोग रहे हैं, वे तुम्हारे दर्शन एवं स्पर्श के करने से सर्वदा के लिए स्वर्गलोक की प्राप्ति करें। वृक्षराज! इस गयापुरी में आकर मैं अपने तीनों ऋणों से मुक्त हो गया हूँ, तुम्हारी कृपा से मैं महान् पापों से विमुक्त हो गया हूँ ।।२८-३०।। तीसरे दिन ब्रह्मसरोवर में स्नानकर सभी प्रकार की विधियों से संयुक्त, मन्त्रोच्चारण करके सपिण्ड श्राद्ध करे। 'तीनों ऋणों की मुक्ति प्राप्त करने की कामना से मैं इस तीर्थ

√ एतच्छ्लोकपरतः क. पुस्तकटिप्पण्यामधिकः श्लोको विद्यते स यथा-मुण्डपृष्ठनगाधस्तात्फल्गुतीर्थमनुत्तमम्। अत्र श्राद्धादिना सर्वे पितरो मोक्षमाप्नुयुः।इति।

* इदमर्धं न विद्यते ख. पुस्तके।

+स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये । तत्कूपयूपयोर्मध्ये ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।३२।।
यागं कृत्वोत्थितो यूपो ब्रह्मणा यूप इत्यसौ । कृत्वा ब्रह्मसरःश्राद्धं सर्वांस्तारयते पितॄन् ।।३३।।
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् । ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।३४।।
नमोऽस्तु ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिरूपिणे । भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः ।।३५।।
गोप्रचारसमीपस्था आम्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः । तेषां सेचनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः (णा) ।।३६।।
आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं ब्रह्मदेवमयं तरुम् । विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ।।३७।।
एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददानः ।।
आम्रश्च सिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा × ।।३८।।
ततो यमबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन संयतः । यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ ।।
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ।।३९।।
ततः श्वानबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।।
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि रक्षेतां पथि सर्वदा ।।४०।।

में स्नान कर रहा हूँ, इस प्रकार उस कूप और यूप के मध्य में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। ब्रह्मा ने यज्ञ-समाप्ति के बाद उक्त यूप (यज्ञ समस्त) की प्रतिष्ठा की थी, तभी से उसकी प्रसिद्धि है, ब्रह्मसरोवर में श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरों को तारता है ।।३१-३३।। उक्त यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ की फल-प्राप्ति होती है। ब्रह्मा को नमस्कार करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है। 'अजन्मा, निखिल चराचर जगत् के आदि कर्त्ता भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है, अपने भक्तों एवं पितरों के उद्धारक ब्रह्मा जी को बारम्बार हमारा नमस्कार है ।।३४-३५।। गोत्रचार के समीप में ब्रह्मा द्वारा लगाये गये आम्र के वृक्ष हैं, उनके सींचने मात्र से पितरगण मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। ब्रह्मसरोवर में उत्पन्न होनेवाले आम्र के वृक्ष ब्रह्मदेवमय है, स्वयं विष्णु के स्वरूप हैं, पितरों की मुक्ति की कामना से मैं इनका सिञ्चन कर रहा हूँ। अपने हाथों में घड़ा और कुश लेकर एक मुनि आम्र के मूल में जल देते हुए आम्र को सींचते हैं, और अपने पितरगणों की भी तृप्ति करते हैं, उनकी एक ही क्रिया दो प्रयोजनों की सिद्धि करने में प्रसिद्ध हुई। तदनन्तर इस मन्त्र से स्वस्थ चित्त होकर यमराज को बलि प्रदान करना चाहिए। यमराज और धर्मराज-ये दोनों गयासुर को निश्चल करने के लिए यहाँ विशेष रूप से स्थित हैं। अपने पितरों की मुक्ति की कामना से मैं उन दोनों को बलि प्रदान कर रहा हूँ ।।३६-३९।। नारद जी! तदनन्तर श्वानों के लिए बलि प्रदान करना चाहिए, वैवस्वत के कुल में उत्पन्न होनेवाले जो दोनों श्यामल और चितकबरे श्वान हैं, उन्हें, मैं बलि दे रहा हूँ, वे मार्ग में सर्वदा हमारी रक्षा करें ।।४०।। नारद जी! तदनन्तर काकों

+ नास्त्यर्धमिदं ख. पुस्तके।

× इत उत्तरमेतदर्धं विद्यते ख. पुस्तके तद्यथा-यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत्।।

ततः काकबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं समर्पितम् ।।४१।।
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नानादिकमथाऽऽचरेत् । गयाशिरस्यथ श्राद्धं पादे कुर्यात्सपिण्डकम् ।।
साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रितं कृतम् ।।४२।।
नागाज्जनार्दनाद्ब्रह्मयूपाच्चोत्तरमानसात् । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ।।४३।।
पितामहं समासाद्य यावदुत्तरमानसम् । फल्गुतीर्थं तु विज्ञेयं देवानामपि दुर्लभम् ।।४४।।
क्रौञ्चपादात्फल्गुतीर्थं यावत्साक्षाद्गयाशिरः । मुखं गयासुरस्यैतत्तस्माच्छ्राद्धमिहाक्षयम् ।।४५।।
मुण्डपृष्ठान्नगाधस्तात्साक्षात्तत्फल्गुतीर्थकम् । आद्यो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ।।
विष्ण्वादिपदरूपेण पितॄणां मुक्तिहेतवे ।।४६।।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं दर्शनात्पापनाशनम् । स्पर्शनात्पूजनाद्वाऽपि पितॄणां दत्तमक्षयम् ।।४७।।
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा कुलसाहस्रमात्मना । नयेद्विष्णुपदं दिव्यमनन्तं शिवमव्ययम् ।।४८।।
श्राद्धं कृत्वा रुद्रपदे नयेत्कुलशतं नरः । सहाऽऽत्मना शिवपुरं तथा ब्रह्मपदे नरः ।।४९।।
ब्रह्मलोकं कुलशतं समुद्धृत्य नयेत्पितॄन् । *कश्यपस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।५०।।

के लिए बलि प्रदान करना चाहिए। पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैर्ऋत कोण एवं दिशाओं में रहनेवाले वायसगण! मैंने आप लोगों के लिए पृथ्वी पर इस पिण्ड को समर्पित किया है, इसे ग्रहण कीजिये। तदनन्तर चौथे दिन फल्गुतीर्थ में स्नानादि करना चाहिए। फिर गयाशिर पर स्थित विष्णुपद पर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए। वहीं पर गयासुर का साक्षात् शिरोभोग है, यह फल्गुतीर्थ उसी के शिरोभाग पर अवस्थित है ।।४१-४२।। नाग, जनार्दन, ब्रह्मयूप और उत्तरमानस तक यह गयाशिर कहा जाता है, उसी को फल्गुतीर्थ भी कहते हैं। ब्रह्मा के स्थान से लेकर उत्तरमानस तक विस्तृत फल्गुतीर्थ को देवताओं के लिए भी दुर्लभ समझना चाहिए। क्रौञ्चपाद से लेकर गयाशिर तक जो फल्गुतीर्थ है, वह गयासुर का मुख भाग है, इसी कारण से वहाँ पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी है ।।४३-४५।। मुण्डपृष्ठ गिरि का निम्न प्रदेश भी फल्गुतीर्थ है, वहाँ पर आद्य गदाधर भगवान् अपने व्यक्ताव्यक्त स्वरूप में अवस्थित हैं। पितरों को मुक्ति प्रदान करने के लिए वहाँ भगवान् विष्णु आदि देवताओं के चरण चिह्न विद्यमान हैं ।।४६।। वह दिव्य विष्णु पद केवल दर्शन करने से घोर पापों को नाश करनेवाला है, स्पर्श एवं पूजन करने से भी पापों का नाश होता है, वहाँ पर पितरों को दिया गया दान अक्षय फलकारक होता है। सपिण्ड श्राद्ध कर्म करनेवाला मनुष्य अपने साथ अपने सहस्र कुलवालों को भी दिव्य, अव्यय, कल्याणप्रद, अनन्त विष्णु पद को पहुँचाता है ।।४७-४८।। रुद्र के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार करके उन्हें शिवपुर पहुँचाता है। इसी प्रकार ब्रह्मा के चरण प्रदेश में श्राद्ध कर्म सम्पन्न करनेवाला अपने सौ कुल के पितरगणों का उद्धारकर उन्हें ब्रह्मलोक को

---

* इदमर्धं न विद्यते ख. पुस्तके।

दक्षिणाग्निपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। गार्हपत्यपदे श्राद्धी वाजपेयफलं लभेत् ।।५१।।
श्राद्धं कृत्वाऽऽहवनीये अश्वमेधफलं लभेत्। श्राद्धं कृत्वा सभ्यपदे ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ।।५२।।
आवसथ्यपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। श्राद्धं कृत्वा शक्रपदे इन्द्रलोकं नयेत्पितॄन् ।।५३।।
अगस्त्यस्य पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। क्रौञ्चमातङ्गयोः श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।५४।।
श्राद्धी सूर्यपदे पञ्च पापिनोऽर्कपुरं नयेत्। कार्तिकेयपदे श्राद्धी शिवलोकं नयेत्पितॄन् ।।५५।।
गणेशस्य पदे श्राद्धी रुद्रलोकं नयेत्पितॄन्। गजकर्णतर्पणकृन्निर्मलं स्वर्नयेत्पितॄन् ।।५६।।
अन्येषां च पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। सर्वेषां काश्यपं श्रेष्ठं विष्णो रुद्रस्य वै पदम् ।।
ब्रह्मणश्च पदं चापि श्रेष्ठं तत्र प्रकीर्तितम् ।।५७।।
प्रारम्भे च समाप्तौ च तेषामन्यतमं स्मृतम्। श्रेयस्करं भवेत्तत्र श्राद्धकर्तुश्च नारद ।।५८।।
कश्यपस्य पदे दिव्ये भारद्वाजो मुनिः पुरा। श्राद्धं कृत्वोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम् ।।५९।।
शुक्लकृष्णौ ततो हस्तौ पदमुद्भिद्य निर्गतौ। दृष्ट्वा हस्तद्वयं तत्र मुनिः संशयमागतः ।।६०।।

पहुँचाता है। कश्यप के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाता है, दक्षिणाग्नि पद प्रदेश में श्राद्ध कर्म करनेवाला मनुष्य पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है। गार्हपत्य के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।।४९-५१।। आहवनीय अग्नि प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार सभ्याग्नि चरण प्रदेश में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला व्यक्ति ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है, आवसथ्य के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। शक्र के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला पितरों को इन्द्रलोक पहुँचाता है। अगस्त्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाता है। क्रौञ्च मातङ्ग के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। सूर्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला अपने पाँच पापों के करनेवाले पितरों को सूर्यपुर को पहुँचाता है, कार्तिकेय के चरणों में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है ।।५२-५५।। गणेश के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है। गजकर्ण नामक तीर्थ में तर्पण करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्गलोक पहुँचाता है। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के चरणों में श्राद्धकर्म सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। किन्तु सभी चरण प्रान्तों में भगवान् विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा एवं कश्यप के चरण प्रान्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं ।।५६-५७।। नारद जी! गया यात्रा के प्रारम्भ एवं अवसान काल में इन सबों में किसी एक में श्राद्ध करने का विधान कहा जाता है, वहाँ पर श्राद्ध करनेवाले को विशेषतया कल्याण-प्राप्ति होती है। प्राचीनकाल में कश्यप जी के दिव्य चरणप्रान्त में भारद्वाज मुनि पितरों के लिए श्राद्ध कर्म कर रहे थे, उसी समय जबकि वे पिण्डदान करने को उद्यत हुए थे, चरणों को फोड़कर श्यामल और गौर वर्ण के दो हाथ बाहर निकल पड़े। दोनों हाथों को

ततः स्वमातरं शान्तां पप्रच्छ स महामुनिः । कश्यपश्य पदे दिव्ये शुक्ले कृष्णेऽथ वा करे ।।
पिण्डो देयो मया मातर्जनासि पितरं वद ।।६१।।

शान्तोवाच

भारद्वाज महाप्राज्ञ देहि कृष्णाय पिण्डकम् । भारद्वाजस्ततः पिण्डं दातुं कृष्णाय चोद्यतः ।।६२।।
श्वेतोऽदृश्योऽब्रवीत्तत्र पुत्रस्त्वं हि ममौरसः । कृष्णीऽब्रवीन्मम क्षेत्रं ततो मे देहि पिण्डकम् ।।६३।।
स्वैरिण्यथाब्रवीद्दातुं क्षेत्रिणे बीजिने ततः । भारद्वाजस्ततः पिण्डं कश्यपस्य पदे ददौ+ ।।
÷हंसयुक्तविमानेन ब्रह्मलोकमुभौ गतौ ।।६४।।
रामो रुद्रपदे श्राद्धे पिण्डदानाय चोद्यतः । पिता दशरथः स्वर्गात्प्रसार्य करमागतः ।।६५।।
नादात्पिण्डं करे रामो ददौ रुद्रपदे ततः । शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतं रामं दशरथोऽब्रवीत् ।।६६।।
तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोकमवाप्नुयाम् । हस्ते पिण्डप्रदानेन स्वर्गतिर्न हि मे भवेत् ।।६७।।
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा द्विजान्प्रजाः । यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा विष्णुलोकं व्रजिष्यसि ।।६८।।

इस प्रकार एकाएक बाहर निकला देखकर भारद्वाज मुनि बड़े सन्देह में पड़ गये। और अपनी माता शान्ता से उन्होंने पूछा, जननि! कश्यप के दिव्य चरणों में ये शुक्ल एवं कृष्ण वर्ण के जो दो हाथ निकले हुए हैं, उनमें से मुझे किस हाथ में पिण्डदान करना चाहिए। तू पितरों के कार्यो को भली-भाँति जानती हो, अतः मेरा संशय दूर करो ।।५८-६१।।

शान्ता बोली-भारद्वाज! तुम परम बुद्धिमान् हो, श्यामल हाथ में पिण्डदान करो। माता के आदेशानुसार भारद्वाज श्यामल हाथ में जब पिण्डदान करने को उद्यत हुए तो श्वेत हाथ अदृश्य हो गया, और बोला कि तू तो मेरा औरस पुत्र है। अतः मुझे पिण्ड प्रदान करो। कृष्णहाथ ने कहा, मेरा क्षेत्र है, इसलिए मुझे पिण्ड प्रदान करो। तब स्वैरिणी माता ने कहा, पुत्र! क्षेत्राधिकारी एवं बीजाधिकारी दोनों को पिण्ड प्रदान करो। तब भारद्वाज ने कश्यप के चरणों में पिण्ड प्रदान किया। जिसके माहात्म्य से वे दोनों ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए ।।६२-६४।। इसी प्रकार रुद्र के चरणों में रामचन्द्र जी पिण्डदान के लिए जब समुद्यत हुए तो उनके पिता दशरथ स्वर्ग लोक से हाथ फैलाये हुए आ गये। किन्तु राम ने हाथ में पिण्डदान न करके रुद्रपद में ही पिण्डदान किया। शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग होने के भय से भीत राम से दशरथ ने कहा, पुत्र! मैं तार दिया गया, अब शङ्कर के लोक को जा रहा हूँ। सचमुच हाथ में पिण्डदान करने से हमें स्वर्ग-प्राप्ति न होती ।।६५-६७।। तुम भी चिरकाल तक राज्य करके, समस्त प्रजावर्ग एवं ब्राह्मणों का विधिवत् पालन करके प्रचुर दक्षिणा युक्त अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके विष्णु लोक को प्राप्त करोगे। अयोध्यापुरी में निवास करनेवाले

+ अत्राध्यायसमाप्तिर्दृश्यते ख. पुस्तके।

÷ हंसयुक्तविमानेनेत्यारभ्य वन्दे श्रीप्रपितामहमित्यन्तः पाठो नास्ति ख. पुस्तके।

पुर्ययोध्याजनैः सार्धं कृमिकीटादिभिः सह। इत्युक्त्वाऽसौ दशरथो रुद्रलोकं परं ययौ ।।६९।।
भीष्मो विष्णुपदे श्रेष्ठे आहूय पितरं स्वकम्। श्राद्धं कृत्वोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम् ।।७०।।
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसि शंतनोः। नादात्पिण्डं करे भीष्मो ददौ विष्णुपदे ततः ।।७१।।
शंतनुः प्राह संतुष्टः शास्त्रार्थे निश्चलो भवान्। त्रिकालदृष्टिर्भवतु चान्ते विष्णुश्च ते गतिः ।।७२।।
स्वेच्छया मरणं चास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमार्गतः। कनकेशं च केदारं नारसिंहं च वामनम् ।।
उदङ्मार्गे समभ्यर्च्य पितृन्सर्वांश्च तारयेत् ।।७३।।
गयाशिरसि यः पिण्डान्येषां नाम्ना तु निर्वपेत्। नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः* ।।७४।।
सर्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पदैरेभिः सुलक्षितः। प्रयान्ति पितरः सर्वे ब्रह्मलोकमनामयम् ।।७५।।
हेत्यसुरस्य यच्छीर्षं गदया तद्द्विधा कृतम्। ततः प्रक्षालिता यस्मात्तीर्थं तच्च विमुक्तये ।।
गदालोलमिति ख्यातं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।।७६।।
गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालनाद्धरेः। स्नानं करोमि सिद्ध्यर्थमक्षयं पदमाप्नुयाम् ।।७७।।

लोगों के तथा कृमिकीटादिकों के साथ तुम्हें विष्णुलोक की प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर राजा दशरथ परमश्रेष्ठ रुद्रलोक को चले गये ।।६८-६९।। इसी प्रकार भीष्म ने परमश्रेष्ठ विष्णुपद पर अपने पितरों का आवाहन कर श्राद्ध करते समय पिण्डदान के लिए उद्यत हुए तो गयाशिर पर उनके पिता राजा शन्तनु के दोनों हाथ बाहर निकल आये। किन्तु उन्होंने हाथों में पिण्डदान न देकर विष्णुपद पर ही पिण्डदान किया। उनके इस निश्चय से शन्तनु को बड़ा सन्तोष हुआ, वे बोले कि आप शास्त्रीय मर्यादा के पालन में निश्चल विचार रखते हैं, आपकी दृष्टि त्रिकाल-दर्शनी हो, अन्तकाल में भगवान् विष्णु की गति प्राप्त हो। इच्छा करने पर मृत्यु की प्राप्ति हो, ऐसा कहकर शन्तनु मुक्ति को प्राप्त हुए। उत्तर मार्ग में कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन की भली-भाँति पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है ।।७०-७३।। गयाशिर में जाकर जिन-जिनके नाम से मनुष्य पिण्डदान करता है, यदि नरक में हैं तो स्वर्ग पहुँच जाते हैं, स्वर्ग में हैं तो मुक्ति प्राप्त करते हैं। देवताओं के चरणों से मुण्डपृष्ठाद्रि सर्वत्र चिह्नित है, वहाँ पर श्राद्धादि करने से पितरगण विविध ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। असुरराज हेति का जो सिर था, वह उक्त गदा से दो भागों में विभक्त हो गया था, वहीं पर विष्णु ने गदा को धोया था, यही कारण है कि वह तीर्थ पितरों की मुक्ति के लिए विशेष ख्यात है। सभी उत्तम तीर्थों में भी वह उत्तम है, उसका नाम गदालोल कहा जाता है ।।७४-७६।। उस गदालोल नामक महातीर्थ में भगवान् विष्णु की गदा धोने से ही यह माहात्म्य है। वहाँ पर स्नान करते समय यह सकल्प करे-इस परम पुनीत गदालोल तीर्थ में मैं सिद्धि प्राप्ति की कामना से स्नान कर रहा हूँ, मुझे अक्षय पद

---

* स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुरित्यस्मात्परतः क. पुस्तकटिप्पण्यां श्लोकद्वयमधिकं वर्तते तद्यथा-
गयाशिरसि यः पिण्डं शमीपत्रप्रमाणतः। कन्दमूलफलाद्यैर्वा दद्यात्स्वर्गं नयेत्पितृन्।।इति।।
पदानि यत्र दृश्यन्ते विष्ण्वादीनां तदग्रतः। श्राद्धं कृत्वा सपिण्डं च तेषां लोकान्नयेत्पितृन्।।

पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा कुर्यात्सपिण्डकम्। श्राद्धं पितॄन्ब्रह्मलोकं नयेदात्मानमेव च ।।७८।।
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिना+र्चयेत् । तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ।।७९।।
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे अन्नेनैव प्रयत्नतः। पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम् ।।८०।।
वटवृक्षसमीपे तु शाकेनाप्युदकेन वा। एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवन्ति भोजिताः ।।८१।।
देयं दानं षोडशकं गयातीर्थपुरोधसे। वस्त्रं गन्धादिभिः पुत्रैः सम्यक्संपूज्य यत्नतः+ ।।८२।।
एकार्णवे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया। बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने ।।८३।।
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापहराय च। अक्षयब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षयवटाय वै ।।८४।।
कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद्गदाधरः। लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे श्रीप्रपितामहम् ।।८५।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।१११।।

की प्राप्ति हो। इस प्रकार पाँचवें दिन गदालोल नामक तीर्थ में स्नानकर सपिण्ड श्राद्ध करनेवाला अपने साथ अपने समस्त पितरों को भी ब्रह्मलोक पहुँचाता है। श्राद्ध के उपरान्त ब्रह्मकल्पित ब्राह्मणों को हव्य-कव्यादि सामग्रियों से सन्तुष्ट करे। क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने से ही सब पितर एवं देवगण सन्तुष्ट होते हैं ।।७७-७९।। अक्षयवट तीर्थ में अन्न द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला अपने पितरगणों को अक्षय एवं सनातन ब्रह्मलोक को पहुँचाता है। वटवृक्ष के समीप शाक अथवा जल द्वारा भी यदि एक विप्र को भोजन करा दिया जाय तो उससे कोटि ब्राह्मणों को भोजन किया हुआ समझना चाहिए। गयातीर्थ के पुरोहितों को सोलह प्रकार का दान कर देना चाहिए, वस्त्र एवं सुगन्ध आदि सामग्रियों द्वारा पुत्रों समेत विधिपूर्वक उनकी पूजा करके दान देना चाहिए ।।८०-८२।। इस चराचर जगत् के एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो जाने पर जो बालरूपधारी भगवान् वटवृक्ष के पत्ते पर योग निद्रा धारणकर शयन करते हैं, उन योग शायी को हमारा नमस्कार है। संसार रूपी वृक्ष के लिए शस्त्र स्वरूप, निखिल पापों के हरनेवाले, अक्षय ब्रह्म पद प्रदान करनेवाले अक्षयवट को हमारा नमस्कार है। कलियुग में लोग शिव के भक्त हैं, उन्हीं के लिए गदाधर देव सर्वत्र लिङ्ग रूप धारणकर विराजमान हैं, उन परम पितामह को हमारा नमस्कार है ।।८३-८५।।

श्री वायुमहापुराण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।।१११।।

+ इत उत्तरं क पुस्तकटिप्पण्यामधिकं श्लोकद्वयमस्ति तद्यथा-
गयातीर्थवटे चैव पितॄणां दत्तमक्षयम्। दृष्ट्वा नत्वा च संपूज्य वटेशं सुसमाहितः।।
पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम्।।१।।
गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा। गयाशीर्षे वटे चैव पितॄणां दत्तमक्षयम्।।इति।।२।।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

यज्ञं चक्रे गयो राजा बह्वन्नं बहुदक्षिणाम् । यत्र द्रव्यसमूहानां संख्या कर्तुं न शक्यते+ ।।१।।
सिकता वा यथा लोके यथा च दिवि तारकाः । तथा रत्नसुवर्णाद्यैरसंख्यातास्तु दक्षिणाः ।।२।।
नैवेह पूर्वे ये केचिन्न करिष्यन्ति चापरे । प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिताः ।।३।।
गयं विष्ण्वादयस्तुष्टा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् । गयस्तान्प्रार्थयामास अभिशप्ताश्च ये पुरा ।।४।।
ब्राह्मणा ते द्विजाः पूता भवन्तु क्रतुपूजिताः* । ÷गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ।।५।।

अध्याय ११२

गया माहात्म्य

सनत्कुमार बोले–नारद जी ! राजा गय ने अपने राजत्व–काल में प्रचुर अन्नों एवं दक्षिणाओंवाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था, उनमें व्यय किये गये द्रव्यों की संख्या बतलाना कठिन है ।।१।। लोक में जितने–जितने धूल कण हैं, अथवा आकाश में जितने तारे हैं, उतने रत्नों एवं सुवर्ण की मुद्राओं की उन यज्ञों में दक्षिणा दी गयी थी तो भला उनकी संख्या कौन निश्चित कर सकता है। इस लोक में वैसे यज्ञ न तो हुए हैं और न भविष्य में कभी होंगे। सभी देशों के रहनेवाले द्विजगण सन्तुष्ट होकर उसकी यशोगाथा का गान करते हैं। उसके इस महान् कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णुप्रभृति देवताओं ने अनुरोध किया कि गय! तुम वरदान माँगो। गय ने उन देवताओं से कहा, सुरगण! यदि आप लोग सचमुच प्रसन्न हैं तो हमें यह वरदान दें कि प्राचीनकाल में भगवान् ब्रह्मा ने जिन द्विजों को अभिशाप दे दिया था, वे आज से यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायँ। यह पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र एवं विख्यात हो जाय ।।२–५।। देवगण ऐसा ही हो, कहकर उसकी प्रार्थना को स्वीकारकर अन्तर्हित हो गये। गय विविध भोगों का उपभोगकर विष्णुलोक

+ संख्या कर्तुं न शक्यत इत्यस्मात्परतः ख. पुस्तकेऽधिको ग्रन्थोऽस्ति स यथा–
स्थिता गयायामन्नादिपर्वताः पञ्चविंशतिः। प्रशंसन्ति द्विजास्तत्र देशे देशे सुपूजिताः।।३।।
दानातिशयमालोक्य सर्वे विष्ण्वादयः सुराः। संतुष्टा गयराजानं वरान्ब्रूहीति चाब्रुवन्।।४।।
नैव पूर्वं केऽप्यकुर्वंन्न करिष्यन्ति चापरे।इति।

* भवन्तु ऋतुपूजिता इत्यनन्तरं ख पुस्तकेऽतिरिक्ताः कतिपयश्लोकाः सन्ति ते यथा–
गयाश्राद्धविधानाय द्विजा मूर्ताश्चतुर्दश। तेषां वाक्यं प्रकुर्वीत यदि ब्रह्मा स्वयं भवेत्।।१।।
गौतमं काश्यपं कौत्सं कौशिकं कण्वमेव च। भारद्वाजं ह्यौशनसं वात्स्यं पाराशरं तथा।।२।।
हरित्कुमारमाण्डव्यं लोकाक्षिं लोकसंमहत्। वाशिष्ठं च तथाऽऽत्रेयं गोत्राण्येषां चतुर्दश।।इति।

÷ इदमर्धं नास्ति ख. पुस्तके।

एवमस्तु वरं दत्त्वा ततश्चान्तर्दधुः सुराः । गयश्च भोगान्संभुज्य विष्णुलोकं परं ययौ ।।६।।
विशालायां विशालोऽभूद्राजाऽपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् । कथं पुत्रादयो मे स्युर्विशालं चाब्रुवन्द्विजाः ।।७।।
गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति । विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदः पुत्रवानभूत् ।।८।।
दृष्ट्वाऽऽकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् । के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ।।९।।
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकादिहाऽऽगतः । मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्तमः ।।१०।।
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयो येन घातिताः । अवीचिनरकं प्राप्तौ मुक्तौ त्वत्पिण्डदानतः ।।११।।
पितृन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिंदम ।।१२।।
तेनास्मद्युगपद्योगो जातो वाक्येन सत्तम । ×मुक्तिः कृता त्वया पुत्र ब्रजामः स्वर्गमुत्तमम् ।।
एवं पुत्रैः पितृणां च कर्तव्या मुक्तिरुत्तमा ।।१३।।
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा भुक्त्वा भोगांश्च दुर्लभान् । यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा याया विष्णुपुरं ततः ।।१४।।
एवं लब्धवरो राजा राज्यं कृत्वा दिवं गतः । प्रेतराजः सह प्रेतैर्गयाश्राद्धाद्दिवं गतः ।।१५।।

को प्राप्त हुआ। कालान्तर में विशाला नगरी में विशाल नाम से एक राजा हुआ। उसे कोई सन्तान नहीं थी। ब्राह्मणों से पूछा कि मुझे पुत्रादि की प्राप्ति किस प्रकार होगी? ब्राह्मणों ने कहा–राजन्! गया में पिण्डदान करने से आपको सन्तति की प्राप्ति होगी। राजा विशाल भी गयाशिर में पिण्डदान करके पुत्रवान् हुआ ।।६–८।। आकाश में उसने रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण एवं कृष्णवर्ण के तीन पुरुषों को देखकर उनसे कहा, आप लोग कौन हैं! उनमें से सर्वप्रथम श्वेत पुरुष ने विशाल से कहा, मैं श्वेत पुरुष तुम्हारा पिता हूँ, इन्द्रलोक से यहाँ आया हुआ हूँ, पुत्र! यह रक्त वर्णवाले हमारे पिता हैं, जो ब्रह्महत्या के कारण महान् पापी माने गये हैं ।।९–१०।। ये कृष्ण वर्णवाले हमारे पितामह हैं, जिन्होंने बहुतेरे ऋषियों का हनन किया है, ये दोनों अवीची नामक नरक में दुःख भोग रहे थे, किन्तु तुम्हारे पिण्डदान से ये दोनों मुक्त हो गये। शत्रुकुल नाशक! तुमने 'मैं अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह लोगों को सन्तुष्ट कर रहा हूँ, ऐसा संकल्प कर जो जल दान किया था उसी के प्रभाव से हम तीनों एक साथ ही मुक्त हो गये। मेरे योग्य पुत्र! तुमने हम सबों को दुःख सागर से उबार लिया, अब हम लोग परम सन्तुष्ट होकर उत्तम स्वर्गलोक को जा रहे हैं। सभी पुत्रों को अपने पितरों की इसी प्रकार उत्तम मुक्ति के उपाय करने चाहिए ।।११–१३।। तुम भी चिरकाल तक राज्य–सुख का अनुभव करके परम दुर्लभ भोगों का उपभोगकर, विपुल दक्षिणावाले अनेक यज्ञों का सदनुष्ठानकर विष्णुपुर को प्राप्त होगे। इस प्रकार अपने पितरों द्वारा वरदान प्राप्तकर राजा विशाल ने चिरकाल तक राज्य–सुख का अनुभव करने के उपरान्त स्वर्गप्राप्ति की। प्रेतराज अन्यान्य प्रेतों के साथ गयाश्राद्ध के माहात्म्य से स्वर्ग को प्राप्त हुए। किसी प्रेत ने अपनी मुक्ति के लिए एक बनिये से कहा था

× इदमर्धं न विद्यते ख. पुस्तके।

प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थं वणिजं कं चिदब्रवीत् । मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वापणं कुरु ।।१६।।
प्रेतभावविमुक्त्यर्थं त्वं गृहाण धनं मम । तद्धनं सर्वमादाय गयाश्राद्धव्ययं कुरु ।।१७।।
धनस्यैतस्य षष्ठांशं तुभ्यं वै दत्तवानहम् । स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवाहम्÷ ।।१८।।
गत्वा गयां गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम् । समदाद्बन्धुभिः सार्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ।।१९।।
प्रेतः प्रेतत्वनिर्मुक्तो वणिक्स्वगृहमागतः । एवं गयस्य शंभोश्च क्षेत्रं विष्णो रवेस्तथा ।।२०।।
उपोषितोऽथ गायत्रीतीर्थे महानदीस्थिते । गायत्र्याः पुरतः स्नात्वा प्रातः संध्यामुपासयेत् ।।
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा नयेद्ब्रह्मण्यतां कुलम् ।।२१।।
तीर्थे समुदिते स्नात्वा सावित्र्याः पुरतो नरः । संध्यामुपास्य मध्याह्ने नयेत्कुलशतं दिवम् ।।
पिण्डदानं ततः कुर्यात्पितृणां मुक्तिकाम्यया ।।२२।।
प्राचीसरस्वतीतीर्थे स्नात्वा चापि यथाविधि । संध्यामुपास्य सायाह्ने विष्णुलोकं नयेत्पितॄन् ।।
बहुजन्मकृतात्संध्यालोपान्मुक्तस्त्रिसंध्यकृत् ।।२३।।
विशालायां लेलिहाने तीर्थे च भरताश्रमे । पादाङ्किते मुण्डपृष्ठे गदाधरसमीपतः ।।२४।।

कि तुम मेरे नाम से गयाशिर पर पिण्डदान करो ।।१४–१६।। इससे हमारी प्रेत योनि छूट जायगी, मेरे धन को तुम ले लो। मेरे सब धन को तुम लेकर गया श्राद्ध करने में व्यय करो। सारी संपत्ति का छठा अंश मैं तुम्हें पारिश्रमिक के रूप में दे रहा हूँ। अपने नाम गोत्रादि भी यथाक्रम तुम्हें बतला रहा हूँ। प्रेत के अनुरोध पर वणिक् ने अपने बन्धुवर्गों के साथ गया की यात्रा की और गयाशिर में जाकर प्रेतराज के लिए पिण्ड प्रदान किया, और उसके बाद अपने पितरों का भी पिण्डदान किया। प्रेत प्रेत-योनि से मुक्त हो गया और पिण्डदान विधिवत् सम्पन्न करके वणिक् अपने घर आया। गय, शम्भु, विष्णु एवं रवि के क्षेत्रों का माहात्म्य इस प्रकार का है ।।१७–२०।। महानदी के तट पर अवस्थित गायत्री तीर्थ में उपवासकर गायत्री के सामने स्नानकर प्रातःकालीन सन्ध्या का अनुष्ठान करना चाहिए। फिर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह अपने कुल को ब्रह्मपद की प्राप्ति कराता है। तदुपरान्त समुदित तीर्थ में गायत्री के सम्मुख स्नान करनेवाला मनुष्य मध्याह्न की सन्ध्या करके अपने सौ कुलों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। मध्याह्न सन्ध्या के बाद पितरों की मुक्ति की कामना से वहाँ पर भी पितरों के लिए पिण्ड प्रदान करना चाहिए ।।२१–२२।। फिर प्राचीसरस्वती नामक तीर्थ में विधिपूर्वक स्नानकर सायङ्कालीन सन्ध्या करनेवाला अपने पितरों को विष्णुलोक प्राप्त कराता है। अनेक जन्म में सन्ध्या न करने के कारण संचित पापों से उक्त तीनों सन्ध्याओं का करनेवाला मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मुण्डपृष्ठ पर्वत पर गदाधर के समीप में उनके चरणों से चिह्नित विशालक्षेत्र में स्थित लेलिहान नामक पवित्र तीर्थ है, जहाँ भरत का आश्रम था, यहीं पर आकाशगङ्गा का प्रवाह प्रवाहित होता है, गिरिकर्ण मुख नामक कई पवित्र

÷ इतः परमेकः श्लोकोऽधिकः ख. पुस्तके।

तीर्थे चाऽऽकाशगङ्गायां गिरिकर्णमुखेषु च। स्नातोऽथ पिण्डदो ब्रह्मलोकं कुलशतं नयेत् ।।२५।।
देवनद्यां वैतरण्यां स्नातः स्वर्गं नयेत्पितॄन्। स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ।।२६।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वैतरण्यां तु नारद। एकविंशतिकुलान्याहुस्तारयेन्नात्र संशयः* ।।२७।।
+या सा वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता। सावतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै ।।२८।।
×त्रिरात्रोपोषणेनैव तीर्थाभिगमनेन च। अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो जायते नरः÷ ।।२९।।
घृतकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी। शिलायाः संगमो यत्र तत्र प्रोक्ता मधुस्त्रवा ।।३०।।

तीर्थ भी वहीं पर हैं, वहाँ पर स्नानकर पिण्डदान करनेवाला अपने सौ कुलों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है ।।२३–२५।। देवनदी वैतरणी में स्नान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्गलोक प्राप्त कराता है एवं उसी वैतरणी में स्नानकर गौ दान करनेवाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। नारद जी! वैतरणी में स्नान करनेवालों के लिए जो फल मैं बतला रहा हूँ, वह सत्य है, सत्य है और सत्य है। ऐसा कहा जाता है कि वैतरणी में स्नान करके गोदान करनेवाला निस्सन्देह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है ।।२६–२७।। तीनों लोकों में अपने अनुपम माहात्म्य के कारण जो परम विख्यात है वह वैतरणी नदी गयाक्षेत्र में पितरों को तारने के लिए अवतरित हुई है। इन पुनीत क्षेत्र की यात्रा करके तीन रात का उपवास करना चाहिए, किन्तु यहाँ आकर सुवर्ण और गौ का जो मनुष्य दान नहीं करता वह दरिद्र होता है ।।२८–२९।। घृतकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी तथा शिला के संगम पर स्थित मधुश्रवा–इन सब में स्नान करनेवाला दस सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। सपिण्डक श्राद्ध एवं पिण्डदान करके मनुष्य अपने सौ कुलों को एवं समस्त पितरगणों को नरकयातना से उबारकर विष्णुलोक प्राप्त कराता है ।।३०–३१।। दशाश्वमेध,

---

* संशय इत्यनन्तरं क. पुस्तकटिप्पण्यामधिकं श्लोकद्वयमस्ति तद्यथा–
यमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी। तामहं तर्तुमिच्छामि कृष्णां गां प्रददन्निमाम्।।१।।
अशक्तो यदि वा शक्तो गोप्रदानं करोति यः। देवनद्यां गोप्रदाने श्राद्धदः स्वर्नयेत्पितॄन्।।इति।।२।।

+ अयं श्लोको नास्ति ख. पुस्तके।

× त्रिरात्रोपोषणेनेति श्लोकात्प्राक् क. पुस्तकेऽधिकं श्लोकद्वयमस्ति तद्यथा–
गोदावर्यां वैतरण्यां यमुनायां तथैव च। देवनद्यां गोप्रचारे श्राद्धदः स्वर्नयेत्पितॄन्।।१।।
पुष्करिण्यां घृतकुल्यां मधुकुल्यां तथैव च। कोटितीर्थे रुक्मिणीये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्।।इति।।२।।

÷ इतः परमेते श्लोकाः ख. पुस्तकेऽधिका उपलभ्यन्ते ते यथा–
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत्। कुमारमभिगम्याथ नत्वा मुक्तिमवाप्नुयात्।।१।।
स्नात्वा च सोमधारायां सोमलोकं च गच्छति। सस्वर्न कृन्नरो वाण्यं स्वर्गः स्वर्गं नयेत्पितॄन्।।२।।
श्रीकृष्णं येऽभ्यर्चयन्ति सुभद्रां बलभद्रकम्। ज्ञानं प्राप्य श्रियं पुत्रान्व्रजन्ति पुरुषोत्तमम्।।३।।
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य सर्वरोगैः प्रमुच्यते। वैश्वानरं समभ्यर्च्य उत्तमां दीप्तिमाप्नुयात्।।४।।
मन्दारमभिगम्याथ मन्दारेशं प्रपुज्य च। अक्षयं श्रियमाप्नोति महालक्ष्मीं तथा नरः।।५।।

अयुतं चाश्वमेधानां स्नानकृल्लभते नरः । श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा पिण्डदानं तथैव च ।।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेत्पितृन्× ।।३१।।
दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे चामरकण्टके । कोटितीर्थे रुक्मकुण्डे पिण्डतः स्वर्नयेत्पितृन् ।।३२।।
(√ वैतरण्यां घृतकुल्यां मधुकुल्यां तथैव च । कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं च यः ।।३३।।
कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः । मार्कण्डयेशकोटीशौ नत्वा स्यात्पितृतारकः ।।३४।।
रुक्मपारिजातवने पार्वत्या सह शंकरः । रहस्ये संस्थितो रेमे युगानामयुतं पुरा ।।३५।।
मरीचिः फलपुष्पार्थं पारिजातवनं गतः । इष्ट्वा शप्तो महेशेन यत्मात्सुखविघातकः ।।३६।।
दुःखी भवेति तद्भीतो मरीचिस्तुष्टुवे शिवम् । तुष्टः प्रोवाच तं शंभुर्वृणीष्व वरमुत्तमम् ।।३७।।
शापाद्भवतु मुक्तिर्मे मरीचिः प्राह शंकरम् । भवेद्गयायां मुक्तिस्ते शिवोक्तः प्रययौ गयाम् ।।३८।।

हंसतीर्थ, अमरकण्टक, कोटितीर्थ तथा रुक्मकुण्ड में पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। वैतरणी, घृतकुल्या, मधुकुल्या तथा कोटितीर्थ में स्नानकर जो मनुष्य कोटीश्वर का दर्शन करता है, वह एक कोटि जन्म तक वेदपारगामी धनयुक्त ब्राह्मण होता है। मार्कण्डेय एवं कोटीश्वर को नमस्कार करके लोग अपने पितरों के उद्धारक होते हैं ।।३२–३४।। एक बार रुक्मपारिजात नामक वन में बहुत प्राचीनकाल में महादेव जी पार्वती के साथ दस सहस्र युगों तक रहस्यक्रीडा कर रहे थे। संयोगतः फलपुष्पादि चुनने के लिए मरीचि ऋषि उसी पारिजात वन में गये। अपने सुख में विघातक होने के कारण महेश ने मरीचि को शाप दे दिया कि तुम दुःख का अनुभव करो। शापभय से भीत होकर मरीचि ने शङ्कर की स्तुति की, शिव जी ने सन्तुष्ट होकर कहा कि कोई उत्तम वरदान माँगो ।।३५–३७।। मरीचि ने शिव से निवेदन किया कि भगवन्! इस शाप से मेरी मुक्ति हो– यही प्रार्थना है। शिव ने कहा कि जाओ तुम्हारी मुक्ति गयातीर्थ में जाने से होगी। शिव के आदेशानुसार मरीचि गया को प्रस्थित हो गये। और वहाँ जाकर शिला

विद्यां सरस्वतीं नत्वा विद्यापारं गतो भवेत्। अभ्यर्चेन्माधवं········महदैश्वर्यमाप्नुयात्।।६।।
नारायणं च वाराहं संपूज्य स्वर्गभाग्भवेत्। क्षेत्रपालं समभ्यर्च्य ग्रहैर्ऋक्षैर्न बाध्यते।।७।।
गरुडं च समभ्यर्च्य विषवृक्षात्प्रमुच्यते। सिद्धेश्वरं च कालेशं सोमनाथमहेश्वरम्।।८।।
रुद्रेश्वरं लोकनाथं ब्रह्मेशं च कपर्दिनम्। अष्टौ लिङ्गानि गुह्यानि संपूज्याथ शिवं नयेत्।।९।।
पिण्डदश्चम्पकारण्ये चम्पकेशं प्रणम्य च। तथैव जम्बुकारण्ये ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन्।।१०।।
गोकर्णे वायुतीर्थे च तृतीयाख्ये जलाशये। श्राद्धी च पुष्करिण्यां तु ब्रह्मलोकं नयेत्पितृन्।।११।।
वैतरण्यांश्च तरश्वं तृतीयास्यो जलाशयः। तदुत्तरश्चक्रसरस्तदग्रे सागरस्तथा।।१२।।
सागरे पिण्डदानेन पितॄणां च परागतिः।।इति।।

× इत उत्तरमविस्पष्टश्लोकः ख. पुस्तके वर्तते स यथा–गदाधरादृक्षिनो यावतीर्थमधुश्रवाः।
महानदिङ्गनं च मृतानां स्वर्गकारकम्।

√ एतचिह्नान्तर्गतग्रंथस्थानेऽयं श्लोकः ख. पुस्तके स यथा–
वशिष्ठस्याऽऽश्रमं गत्वा वाजपेयफलं लभेत्। वशिष्ठेशं नमस्कृत्य तत्कुण्डे पिण्डदो भवेत्।।इति।।

शिलास्थितस्तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करं च यत् । मरीचिरीश्वराच्छप्तः कृष्णत्वमगमत्पुरा ।।
तपसा दारुणेनेह स विप्रः शुक्लतां गतः ।।३९।।
हरिरूचे मरीचिं च वरं वृणु हि पुत्रक । किमलभ्यं त्वयि तुष्टे मरीचिः प्राह माधवम् ।।४०।।
हरशापाद्विमुक्तोऽहं शिला भवतु पावनी । पितृमुक्तिकरी च स्यात्तथेत्युक्त्वा दिवं गतः ।।४१।।
दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नरः शुचिः । यत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमित्युतः ।।४२।।
तत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः । पाप्मानं प्रजहात्येष जीर्णत्वचमिवोरगः ।।
तत्पङ्कजवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।।४३।।
पाण्डुशिला वै तत्राऽऽस्ते श्राद्धं यत्राक्षयं भवेत् । युधिष्ठिरस्तु तस्यां हि श्राद्धं कर्तु ययौ मुने ।।४४।।
तत्र काले पाण्डुनोक्तं मद्धस्ते देहि पिण्डकम् । हस्तं त्यक्त्वा शिलायां च पिण्डदानं चकार सः ।।४५।।
शिलायां पिण्डदानेन प्रहृष्टो व्यासनन्दनः । वरं ददौ स्वपुत्राय राज्यं कुरु महीतले ।।४६।।
अकण्टकं तु संपूर्णं त्वं मे त्राता हि पुत्रक ।।४७।।
स्वर्गं व्रज शरीरेण भ्रातृभिः परिवारितः । दृष्टिमात्रेण संपूतान्नरकस्थान्दिवं नय ।।४८।।
इत्युक्त्वा प्रययौ पाण्डुः शाश्वतं पदमव्ययम् । मतङ्गस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।४९।।

पर स्थित होकर परम कठोर तपस्या करनी शुरू की। उसे सभी लोग कठिनता से कर सकते थे। महादेव के शाप से जो मरीचि पूर्वकाल में कृष्णवर्ण के हो गये थे वे ही अपने इस कठोर तप के माहात्म्य से शुक्लवर्ण हो गये ।।३८-३९।। हरि ने मरीचि से कहा, पुत्र! कोई वरदान माँगो, मरीचि ने माधव से निवेदन किया, भगवन्! आपके सन्तुष्ट हो जाने पर संसार में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो अलभ्य हो, मैं जिस शिला पर तपकर शिव शाप से विमुक्त हुआ हूँ, वह शिला परम पुनीत हो जाय, पितरों की मुक्तिदायिनी बन जाय। मरीचि की प्रार्थना को अङ्गीकारकर भगवान् स्वर्ग को चले गये। स्वर्ग निवासी देवगणों की पुष्करिणी के पास पहुँचकर मनुष्य परम पवित्र हो जाता है। वहाँ पर दान देने से पितरों को अक्षयफल की प्राप्ति होती है, वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी सदेह स्वर्ग प्राप्त करता है, अपने समस्त पापकर्मों को वह सर्प के केंचुल की भाँति छोड़ देता है। वहाँ मनोहर पंकजवन पुण्यशील जनों से सुसेवित है ।।४०-४३।। वहीं पर पुनीत पाण्डुशिला भी है, जिस पर किया गया श्राद्धकर्म अक्षयफलदायी होता है। मुनि नारद जी! प्राचीनकाल में उस शिला पर जब युधिष्ठिर श्राद्ध करने के लिए गये थे उस समय स्वयं पाण्डु ने आकर कहा कि पुत्र! मेरे हाथों पर पिण्ड प्रदान करो। किन्तु उन्होंने हाथ को छोड़कर शिला पर ही पिण्ड प्रदान किया। शिला पर पिण्ड प्रदान करने से व्यासनन्दन पाण्डु को परम हर्ष प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पुत्र को वरदान दिया कि पुत्र! इस सम्पूर्ण पृथ्वीतल पर तुम निष्कण्टक राज्य करो, तुम मेरे उद्धारक हो ।।४४-४७।। अपने भाइयों के साथ तुम सदेह स्वर्ग जाओ और अपनी दृष्टि मात्र से नरक निवासियों को पवित्रकर स्वर्ग प्राप्त कराओ।' ऐसा कहकर पाण्डु अव्यय शाश्वत पद को चले गये। मतङ्ग के चरणों पर श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग लोक प्रप्त कराता है। विष्णुप्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ ब्रह्मा जी ने शमी के गर्भ से मथकर यज्ञ के लिए अग्नि प्रकट की, इसीलिए वह तीर्थ तीनों लोकों में परम विख्यात हुआ। पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाला वह पुनीत तीर्थ मखतीर्थ के नाम से ख्यात हुआ, वहाँ पर स्नानकर पिण्डदान

निर्मथ्याग्निं शमीगर्भे विधिर्विष्ण्वादिभिः सह। लेभे तीर्थं तु यज्ञार्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।५०।।
मखसंज्ञं तु तत्तीर्थं पितॄणां मुक्तिदायकम्। स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पिण्डदो मुक्तिप्राप्नुयात् ।।५१।।
षितॄन्स्वर्ग नयेन्नत्वा संगमेऽङ्गारकेश्वरौ। गयाकूटे पिण्डदानादश्वमेधफलं लभेत् ।।५२।।
भस्मकूटे भस्मनाथं नत्वा च तारयेत्पितॄन्। त्यक्तपापो भवेन्मुक्तः संगमे स्नानमाचरेत् ।।५३।।
इष्टिं चक्रेऽश्वमेधाख्यां वशिष्ठो मुनिसत्तमः। इष्टितो निर्गतः शंभुर्वरं वृणु वशिष्ठकम् ।।५४।।
प्राहेति तं वशिष्ठोऽपि शिव तुष्टोऽसि मे यदि। वस्तव्यं चात्र देवेश तथेत्युक्त्वा शिवः स्थितः) ।।५५।।
पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च। स्नात्वा नत्वाऽथ संपूज्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।५६।।
कर्दमाले गयानाभौ मुण्डपृष्ठसमीपतः। स्नात्वा श्राद्धादिंकं कृत्वा पितॄणामनृणो भवेत्* ।।५७।।
फल्गुरचण्डीश्मशानाक्षी मङ्गलाद्याः समर्चयेत्। गयायां च वृषोत्सर्गात्त्रिः सप्तकुलमुद्धरेत् ।।
यत्र यत्र स्थिता देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः ।।५८।।
आद्यं गदाधरं ध्यायञ्श्राद्धपिण्डादिदानतः। कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ।।५९।।
गयागयो गयादित्यो गायत्री च गदाधरः। गया गयासुरश्चैव षड्गया मुक्तिदायिकाः ।।६०।।

करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है ।।४८–५१।। संगम पर स्थित अङ्गारक एवं महादेव को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। गया कूट में पिण्डदान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। भस्मकूट में भस्मनाथ को नमस्कारकर मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है। संगम में स्नान करनेवाला अपने पापों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। मुनिवर वशिष्ठ ने वहाँ पर एक अश्वमेध यज्ञ किया था, उस यज्ञ से शम्भु उत्पन्न होकर वशिष्ठ से बोले कि वरदान माँगो। वशिष्ठ ने कहा, शम्भु देव! यदि आप सचमुच हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप यहीं पर निवास करें। 'ऐसा ही होगा' कहकर शिव वहाँ विराजमान हो गये ।।५२–५५।। धेनुकारण्य में कामधेनु के पद चिह्नों पर पिण्डदान करनेवाला वहाँ पर स्नान एवं नमस्कार करके अपने पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। मुण्डपृष्ठ के समीप गयासुर के नाभिप्रदेश में कर्दमाल नामक तीर्थ है, वहाँ पर स्नान करने तथा श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है ।।५६–५७।। वहाँ पर विराजमान फल्गु, चण्डी, श्मशानाक्षी एवं मङ्गला आदि देवियों की पूजा करनी चाहिए। गया में वृषोत्सर्ग करनेवाला इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। इस पुनीत गया तीर्थ में जहाँ देवताओं का निवास है, वहीं पर जितेन्द्रिय ऋषिगण भी विराजमान रहते हैं ।।५८।। आदिगदाधर देव का ध्यान करते हुए श्राद्ध एवं पिण्डादि का दान करनेवाला अपने सौ कुलों का उद्धारकर समस्त पितरगणों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। गयागय, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया एवं गयासुर–ये छह गया मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं। जो मनुष्य इस पुण्यप्रद गयाख्यान को सर्वदा

---

* एतदग्रेऽधिकं श्लोकद्वयं वर्तते ख. पुस्तके तद्यथा–
मुण्डपृष्ठां नमेद्देवीं क्षेत्रपालादिसंयुताम्। पूजयित्वाऽभयं तस्माद्विषरोगादिनाशनीम्।।१।।
कामपीठिं च कामाक्षां (क्षी) पूजयेत्कामरूपिणीम्। सर्वसौभाग्यकामो हि देवीं विन्ध्यनिवासिनीम्।।इति।।२।।

* इत आरभ्य न विद्यते इत्यन्तं पाठव्यत्यासः ख पुस्तके।

+ एतच्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके न।

गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः। शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम्+ ।।६१।।
(×पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः। गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम् ।।६२।।
गयाया महिमानं च अभ्यसेद्यः समाहितः। तेनेष्टं राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ।।६३।।
य लिखेद्वा लेखयेद्वाऽपि पूजयेद्वाऽपि पुस्तकम्। तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः सुप्रसन्ना भविष्यति ।।६४।।
उपाख्यानमिदं पुण्यं गृहे तिष्ठति पुस्तकम्। सर्पाग्निचौरजनितं भयं तत्र न विद्यते ।।६५।।
श्राद्धकाले पठेद्यस्तु गयामाहात्म्यमुत्तमम्। विधिहीनं तु तत्सर्वं पितॄणां तु गयासमम् ।।६६।।
यानि तीर्थानि त्रैलोक्ये तानि दृष्टानि तत्र वै। येन ज्ञातं गयाख्याने श्रुतं वा पठितं मुने ।।६७।।

सूत उवाच

सनत्कुमारो मुनिपुङ्गवाय पुण्यां कथां चाथ निवेद्य भक्त्या ।।
स्वमाश्रमं पुण्यवनैरुपेतं विसृज्य संगीतगुरुं जगाम ।।६८।।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११२।।

उपसंहारपादः समाप्तः

पढ़ता है, अथवा जो श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो पुण्यशाली मनुष्य ब्राह्मणों द्वारा इस पुण्यप्रद गयाख्यान का पाठ करवाता है, वह निश्चित रूप से गया श्राद्ध करता है। जो मनुष्य समाहित चित्त होकर गया की अनुपमेय महिमाओं का चिन्तन करता है, नारद जी! वह अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करता है। जो गयाख्यान की पुस्तक को स्वयं लिखता है, अथवा दूसरे से लिखवाता है अथवा पूजन करता है, उसके घर पर लक्ष्मी सुस्थिर एवं सुप्रसन्न रहेंगी। इस पुण्यप्रद गयाख्यान की पुस्तक जिसके घर रहती है, उसके घर सर्प, चोर एवं अग्निजनित बाधाओं का भय नहीं रहता। श्राद्धकाल में जो मनुष्य इस पुनीत गयामाहात्म्य का पाठ करता है, उसका श्राद्ध विधिवत् न होने पर भी पितरों के लिए गया के समान फलदायी होता है। सारे त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी गयापुरी में देखे गये हैं। नारद जी! इस गयाख्यान के सम्बन्ध में मैं जितना जानता था, जितना सुना था, वह सब आपको बतला चुका ।।५९–६७।।

सूत बोले–इस प्रकार सनत्कुमार मुनिपुङ्गव नारद जी को भक्तिपूर्वक इस पुण्यकथा को सुना चुकने के उपरान्त उस सङ्गीत गुरु (नारद जी) से विदा लेकर पुण्य वन्य प्रान्त में अवस्थित अपने आश्रम को चले गये ।।६८।।

वायुकथित महापुराण के उपसंहार नामक चतुर्थचरण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११२।।

श्रीगुरुचरणाभ्यां नमः

शिवमस्तु

× एतदर्धस्थानेऽयं पाठः ख. पुस्तके–पठेद्वा पाठयेद्वाऽपि पूजयेद्वाऽपि पुस्तकम्।इति।